THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

91

# Rasaratna Samuchchaya

by

## S'RĪ VĀGBHATĀCHĀRYA

*Edited with-*

THE SURATNOJJVALĀ HINDI COMMENTARY

*and*

*Notes, Introduction, Indices, Appendices etc,.*

By

PANDIT S'RĪ AMBIKĀDATTA S'ĀSTRĪ

Ayurvedacharya ( A. M. S. ) B. H. U.

PUBLISHED BY

JAYA KRISHNA DÂS HARIDÂS GUPTA

*The Chowkhamba Sanskrit Series Office.*

Benares City.

1939

PRINTED BY

JAYA KRISHNA DAS GUPTA,

VIDYA VILAS PRESS, BENARES CITY.

1939.

*Registered According to Act XXV of 1867.*

*All Rights Reserved by the Publishers.*

* श्रीः *

* हरिदास—संस्कृत—ग्रन्थमाला *

९१

# श्रीवाग्भटाचार्यविरचितः

# रसरत्नसमुच्चयः ।

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयेऽधिगतप्राच्यपाश्चात्य
चिकित्साशास्त्रतत्त्वेन श्री कृष्णात्मजेन
आयुर्वेदाचार्य, ए. एम्. एस्. इत्युपाधिधारिणा
पण्डित श्री अम्बिकादत्त-शास्त्रिणा
विरचितया—
पारदगन्धकाभ्रकलाहताभ्रादिरसोपरसधातूपधात्वादीनां विज्ञानानुमत-
वर्णनोपेतेन ज्वरादिसमस्तरोगपथ्यापथ्यप्राच्यपाश्चात्यमतानुमत-
निदानाद्यनेकविषयोपबृंहितेन च
विमर्शेण विभूषितया—
सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषा-टीकयाऽऽलङ्कृतः ।
तेनैव संशोधितश्च ।

प्रकाशकः—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः
चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस,
विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी ।

१९९६

# भूमिका

वर्तमान समय में पृथ्वीमण्डल पर अनेक चिकित्सा प्रणालियां प्रचलित हैं जैसे आयुर्वेद, एलोपेथी, होमियोपेथी, यूनानी, जलचिकित्सा (हाइड्रोपेथी), विद्युच्चिकित्सा आदि। इन सब चिकित्साओं की जननी कहलाने का सौभाग्य आयुर्वेदचिकित्सा प्रणाली को ही प्राप्त है, अथवा यों कह सकते हैं कि इन सब का अन्तर्भाव आयुर्वेद के अन्दर ही हो सकता है। जो लोग एलोपेथी ही को वैज्ञानिक कह कर अन्य चिकित्सा को अवैज्ञानिक कहने का साहस करते हैं उनकी धारणा एक दम असत्य है क्योंकि एलोपेथी के अन्दर जितने भी विषय ( Anotomy, Physiology, Surgery, Toxicology, Jurisprudence, Midwifery, Materiamedica, Medicine etc., ) हैं उन सबका वर्णन आयुर्वेद के अन्दर करोड़ों वर्ष पहिले से लिखा हुआ मिलता है। इस लिए हम दावे के साथ कह सकते हैं कि संसार भर की चिकित्साप्रणालियों में सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ यदि कोई चिकित्सा प्रणाली है तो वह आयुर्वेदचिकित्सा प्रणाली ही है। हमारे आयुर्वेद के अन्दर इस समय कोई शाखा पिछड़ी हुई है तो वह सिर्फ शल्यशालाक्य चिकित्सा ही है। इसका कारण इस शाखा को प्रोत्साहन नहीं मिलना है तथा वैद्यबन्धुओं का आलस्य और आधुनिक भूपालों की उपेक्षा आदि है। अब इसकी सर्वोत्कृष्ट उन्नति होने का समय अत्यन्त निकट ही है। अस्तु आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली आसुरी, मानुषी और दैवी इस तरह तीन भागों में विभक्त है जैसे कहा भी है—

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृतरसैर्या निर्मिता सद्रसै-
श्चूर्णस्नेहकषायलेहरचिता स्यान्मानवी मध्यमा।
शस्त्रच्छेदनलास्यलक्ष्मणकृताऽचाराधमा साऽऽसुरी-
त्यायुर्वेदरहस्यमेतदखिलं तिस्रश्चिकित्सा मताः॥ १॥
आसुरी मानुषी दैवी चिकित्सा त्रिविधा मता।
शस्त्रैः कषायैर्लोहाद्यैः क्रमेणान्त्याः सुपूजिताः॥ २॥

इन तीनों में दैवी ( रस ) चिकित्सा सर्व श्रेष्ठ मानी गई है । यह मानना सोलहों आना ( पूर्णतया ) सत्य भी है क्योंकि शस्त्रचिकित्सा केवल वर्धित या विकृत हुए शरीराङ्ग को काट सकती है । किन्तु उस विकार का पूर्ण निर्मूलन नहीं कर सकती है । जैसे अर्श (Piles), अर्बुद ( Tumours ) आदि का छेदन करने पर भी अनेकों बार उनकी पुनरुत्पत्ति होते देखी गई है किन्तु रसचिकित्सा के द्वारा चिकित्सा करने पर लाभ ( रोगनाश ) देर से होता है किन्तु स्थाई होता है इस लिए रसचिकित्सा सर्वोत्तम है । रसों के सेवन करने से शरीर रोगों से प्रथम ही पृथक् रहता है ।

"प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"

इस लिए इस चिकित्सा को दैवी चिकित्सा कहना अत्युक्ति नहीं है अपि तु यथार्थ ही है । अत एव रसचिकित्सक सर्व चिकित्सकों में उत्तम "उत्तमो रस वैद्यस्तु मध्यमो मूलिकादिभिः ।

अधमः शस्त्रदाहाभ्याम्"

माना गया है । यद्यपि काष्ठौषधियों द्वारा निर्मित चूर्ण, अवलेह आदि भी शरीर के लिये हितकर हैं तथापि चूर्ण अवलेहादिक की तरह रसों का अधिक प्रयोग नहीं करना पड़ता है तथा रस अरुचिकर कभी भी नहीं होते हैं और शीघ्रातिशीघ्र शरीर को आरोग्य प्रदान करते हैं ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥

इस लिये निर्विवाद सिद्ध हो गया कि रसचिकित्सा अन्य चिकित्साओं में तो श्रेष्ठ है ही परन्तु आयुर्वेदीय 'अष्ट''अङ्गों' में भी सर्व प्रथम मानी गई है । इस रस चिकित्सा का आविर्भाव सर्व प्रथम महादेवजी ने किया है । अत एव यह चिकित्सा दैवी है । बाद में रसचिकित्सा के प्रवर्तक कई आचार्य हुए हैं ।

आदिमश्चन्द्रसेनश्च लङ्केशश्च विशारदः ।
कपालीमत्तमाण्डव्यौ भास्करः शूरसेनकः ॥ १ ॥
रत्नकोशश्च शम्भुश्च सात्विको नरवाहनः ।

इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिर्ज्याडिरेव च ॥ २ ॥
नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः ।
खण्डः कापालिको ब्रह्मा गोविन्दो लम्पको हरिः ॥ ३ ॥

इन आचार्यों ने कई रस ग्रन्थ बनाये हैं । निम्न रसतन्त्र या संहिताओं का नामोल्लेख मिलता है ।

| | | |
|---|---|---|
| रसेन्द्रसंहिता | सिद्धलक्ष्मीश्वरतन्त्र | चन्द्रसेनसिद्धान्त |
| दत्तात्रेयसंहिता | लम्पटतन्त्र | लङ्केशसिद्धान्त |
| अगस्त्यसंहिता | स्वच्छन्दभैरवतन्त्र | कपिलसिद्धान्त |
| नासत्यसंहिता | मन्थानभैरवतन्त्र | ब्रह्मसिद्धान्त |
| गोरक्षसंहिता | काकचण्डीश्वरतन्त्र(१) | रसरत्नाकर |
| रुद्रयामलतन्त्र | हरीश्वरतन्त्र | रसरत्नप्रदीप |
| महारसायनतन्त्र | महादेवतन्त्र | रसपारिजात |
| कामधेनुतन्त्र | नागार्जुनतन्त्र | रसेन्द्रसारसङ्ग्रह |
| दत्तात्रेयतन्त्र | बालतन्त्र | रसरत्नसमुच्चय आदि। |

इनमें से बहुत से ग्रन्थ लुप्त हैं तथा जो मिलते हैं उनमें यह रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रन्थ भी रसचिकित्सा का एक सर्वाङ्गीण ग्रन्थ है । यद्यपि इस का प्रचार कुछ वर्षों पहिले कम था किन्तु इसके अन्दर अनेक रसों के उत्तमोत्तम योग तथा पारद के अनेक संस्कारों का उत्तम वर्णन होने से अब दिनों दिन इसकी आवश्यकता बढ़ती जा रही है तथा यह ग्रन्थ अब वैद्य समुदाय में अधिक प्रचलित हो रहा है तथा विहार आदि अनेक स्थानों को सम्मानित परीक्षाओं में भी रखा हुआ है । इस ग्रन्थ में अनेक उत्तमोत्तम योग हैं, जिनका अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है । यदि इन योगों का प्रयोग किया जाय तो चिकित्सा में आश्चर्यजनक लाभ हो सकता है । यह ग्रन्थ तीस अध्यायों में विभक्त है ।

प्रथमाध्याय-में हिमालयवर्णन, रस ( पारद ) के उत्कर्ष का वर्णन, मूर्च्छित पारद के गुण तथा उसकी उत्पत्ति, भेद और निरुक्ति आदि पारदसम्बन्धी वर्णन है ।

---

( १ ) काशी संस्कृत ग्रन्थमाला नं० ७३ में मुद्रित है ।

द्वितीयाध्याय-में आठ महारसों के भेद, गुण, शोधन तथा मारण और उनकी उत्पत्ति का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। यथा—

अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम्।
चपलो रसकश्चेति.....॥

तृतीयाध्याय-में अष्ट उपरसों की उत्पत्ति, भेद, गुण, शोधन तथा उनके प्रयोगों का वर्णन है। यथा—

"गन्धाश्मगैरिकासीसकाङ्क्षीतालशिलाञ्जनम्।
कङ्कुष्ठं चेत्युपरसाः.....॥

चतुर्थाध्याय-में रत्नों के भेद, नाम, गुण, शोधन, मारण और प्रयोगों का वर्णन है। यथा—

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः।
चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः॥
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी।
पुष्परागो गोमेदश्च पद्मरागः प्रवालकम्॥
वैदूर्यं च तथा नीलः.....॥

पञ्चमाध्याय-में शुद्धलोह (स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह अर्थात् मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त), पूतिलोह (नाग, वङ्ग) और मिश्रलोह (पित्तल, कांसा, भरत, रुक्मलोह) की उत्पत्ति, भेद, गुणदोष, शोधन, मारण और प्रयोगों का वर्णन है।

षष्ठाध्याय-में शिष्योपानयन, रसविद्या गुरुलक्षण, शिष्य और अनुचरों का गुण, रसशाला और रसमण्डप का निर्माण, रसलिङ्ग की स्थापना, पूजन और ध्यान, शिष्यदीक्षादानविधि, कालिनीलक्षण और होमविधि का वर्णन है।

सप्तमाध्याय-में रसशालानिर्माण, उपरस, महारस, अष्ट लोह और उपकरणों की पूजाविधि, पद्महस्तवैद्यादिकों का लक्षण तथा रससाधनीय पदार्थों का वर्णन और परिचारकों के लक्षण का वर्णन है।

अष्टम व नवम अध्याय-में क्रमशः परिभाषावर्णन, व दोलायन्त्र, विद्याधरयन्त्र, घटयन्त्र, पातनयन्त्रादिकों का वर्णन है।

दशमाध्याय–में विविध मूषा तथा विविधपुट तथा अम्लवर्ग, विष वर्ग, दुग्धवर्ग, रक्तादिवर्ग, शोधनीयगणादिकों का वर्णन है।

एकादशाध्याय—में मानपरिभाषा, पारद के अष्टादश संस्कार तथा २५ प्रकार के बन्धनों का विस्तृत वर्णन है।

बारहवें से पच्चीसवें अध्याय–में शरीर में होने वाले समस्तरोगों (जैसे ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास, हिक्का, वैस्वर्य, क्षय, अरुचि, प्रसेक, छर्दि, हृद्रोग, तृष्णा, मदात्यय, अर्श, उदावर्त, अतिसार, ग्रहणी, प्रवाहिका, विसूची, अग्निमान्द्य, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, सोमरोग, पिडिका, विद्रधि, वृद्धि, गुल्म, शूल, उदररोग, पाण्डु, शोफ, विसर्प, कुष्ठ, श्वित्र, वातव्याधि, वातरक्त, वन्ध्यारोग, गर्भिणीविकार, सूतिकारोग, बालरोग, उन्माद, अपस्मार, नेत्ररोग, कर्णरोग, नासिकारोग, मुखरोग, शिरोरोग, व्रण, अस्थिभग्न, भगन्दर, गलगण्ड, गण्डमाला, क्षुद्ररोग, उष्णवात (औपसर्गिक मेह) उपदंश आदि गुह्यरोग, विषजन्य रोग के लक्षण, भेद, निदान तथा चिकित्सा का विस्तृत वर्णन है।

छब्बीसवें अध्याय–में जरारोग की निदानचिकित्सा, मासिकरसायन, षाण्मासिकरसायन, पाक्षिकरसायन, अष्टमासिक रसायन, त्रिवार्षिक-रसायन, सहस्रवर्षायुष्करसायन, त्रिफलारसायन और कान्ताभ्रक रसायनादि का वर्णन है।

सत्ताइसवें अध्याय–में वाजीकरण के लिये अनेक प्रकार के दिव्य रसों का वर्णन तथा स्तम्भनशक्तिवर्द्धक उपाय हैं।

अट्ठाइसवें अध्याय–में लोह अर्थात् स्वर्ण, रजत ताम्रादिकों के अनेक कल्पों का वर्णन है।

उन्तीसवें अध्याय–में विषों की उत्पत्ति, विषों के भेद, गुणदोष तथा अनेक रोगों पर विषके कल्पों का वर्णन है।

तीसवें अध्याय–में रसमारण, रसजारण तथा रस (पारद) के अनेक रोगों को नष्ट करने के लिये अनेक कल्पों का वर्णन, ग्रन्थोप-संहार, आचार रसायन, आयुर्वेदोपदेश का पालन, कुवैद्यवर्जन, शास्त्रज्ञ वैद्य का साफल्य, चिकित्सा की सर्वत्र सफलता, वैद्य और रोगी

का परस्पर कर्तव्य, वैद्य की सर्वत्र आवश्यकता तथा ग्रन्थकार की विज्ञप्ति आदि का सुन्दर वर्णन है।

इस प्रकार प्रथमाध्याय से लेकर तीसवें अध्याय तक आये हुए विषयों के अवलोकन करने से इस ग्रन्थ की कितनी आवश्यकता है यह सहज ही में विदित हो सकता है। इस प्रकार का अन्य रस ग्रन्थ मिलना अत्यन्त असम्भव है। ऐसे ही रस ग्रन्थ के ऊपर अन्वेषण करने से आतुरों का अधिक हित तथा आयुर्वेद की उन्नति में परम सहायता हो सकती है। इस ग्रन्थ की हिन्दी में आजतक कोई ऐसी सरल तथा गूढार्थों का प्रबोध कराने वाली वैज्ञानिक अन्वेषण से परिपूर्ण टीका नहीं निकली थी। इस महती क्षति की पूर्ति के लिए काशीस्थ सुप्रसिद्ध चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय के अध्यक्ष श्रीमान् बाबू जयकृष्णदास जी गुप्त ने 'जो कि आयुर्वेदोद्धार तथा विद्वज्जन तथा आयुर्वेदामृतपान करने के लिए उत्कण्ठित छात्रों के हित का विचार सदा चाहते हैं, एक ऐसी विस्तृत भाषा टीका जो कि वैज्ञानिक व्याख्यानों से परिपूर्ण हो, लिखने के लिए प्रार्थना की। उस प्रार्थना को मैंने भी स्वीकार करके कार्य करना प्रारम्भ कर दिया।

इस ग्रन्थ की टीका के उत्तम रूप से समाप्ति होने में कई कारण हैं। सर्व प्रथम रसेन्द्र की संस्कृत टीका के अवलोकन करने से प्रसन्न हुए काशीस्थ वैद्यशिरोमणि गुरुजनों का शुभाशीर्वाद तथा मेवाडाधिराज रविकुलकमलदिवाकर श्री श्री श्री १००८ श्री जी हजूर भूपाल सिंह जी के प्रधान चिकित्सक ( राजवैद्य ) श्रीमान् डाक्टर रविशङ्कर जी का शुभाशीर्वाद तथा आगे आयुर्वेदोद्धार सम्बन्धी कार्य करने का प्रोत्साहन और उक्त महाराणाधिराज उदयपुर ( मेवाड़ ) की पूर्ण स्नेहदृष्टि तथा सहायता ही प्रधान है।

## इस टीका की विशेषतायें—

मूलग्रन्थ में जितने विषय लिखे हुए हैं उतने अन्य रस ग्रन्थों में इस प्रकार स्पष्ट और विस्तृत नहीं हैं अत एव यह ग्रन्थ स्वयं ही अत्यन्त उपादेय है, फिर भी टीका इतनी स्पष्ट और विस्तृत तथा वैज्ञानिक अन्वेषणों

से परिपूर्ण होने के कारण यह एक पूर्ण रस ग्रन्थ बन गया है तथा इसटीका के समान पूर्व में कोई ऐसी टीका नहीं थी और न बनेगी कारण यह है कि ग्रन्थारम्भसे लेकर ग्रन्थ समाप्ति तक मूलका अर्थ स्पष्टतया लिख कर नीचे विमर्श के अन्दर खनिजों का वैज्ञानिक पूर्ण वर्णन तथा रोगों का डाक्टरी के मत से भेद निदानादिक का जहां तहां वर्णन कर दिया गया है। अत एव मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसी टीका "न भूता न भविष्यति" हां हो सकती है कि इसी का अनुकरण कर के कुछ इधर उधर परिवर्तन कर के अन्य टीका प्रकाशित हो किन्तु वह भी निम्न पद्यानुकूल होगी।

"उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी"

अस्तु जो कुछ है संसार के पूज्य विद्वानों की सेवा में उपस्थित है।

हंसः श्वेतो बकः श्वेतः को भेदो बकहंसयोः।
नीरक्षीरविभागे तु हंसो हंसो बको बकः॥

विशेषतायें—

[ १ ]

प्रथमाध्याय में सर्व प्रथम लिखे हुए पारद के विषयका विमर्श ३८ पृष्ठों में वर्णित है। पारद का स्वरूप, सङ्केत ( Symbol ), परमाणु-भार ( Atomic weight ), आपेक्षिकघनत्व ( Relative Density ). हिमाङ्क ( Freezing Point ), क्वथनाङ्क (Boiling Paint) आदि का परिभाषा के सहित वर्णन है तथा उसके पश्चात् पारद की उपस्थिति, पारद की सर्वप्रथम प्राप्ति, पारद निकालने योग्य खनिज, पारद की परीक्षा ( Test ), पारदीय खनिज प्राप्ति के स्थान, पारद के दोषों का समन्वय, पारद के भेद, शुद्धाशुद्धपारद के लक्षण आदि पारदसम्बन्धि अनेक बातों पर प्राच्य-पाश्चात्य मत से अच्छा वर्णन किया गया है जिस से हमारे वैद्य बन्धुओं को पारद के ज्ञान की विशेष करके नव्य ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति हो जाय।

[ २ ]

द्वितीयाध्याय में लिखित अभ्रकादिक अष्ट महारसों के विमर्श में प्रत्येक महारस की उत्पत्ति, भेद, प्राप्तिस्थान, गुणदोष आदि का आधुनिक मत से वर्णन है।

[ ३ ]

तृतीयाध्याय में लिखित गन्धकादिक अष्ट उपरसों की उपलब्धि, भेद, प्राप्तिस्थान आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

[ ४ ]

एकादशाध्याय में पारद के संस्कारों की सब विधियां टिप्पणी के रूप में प्रत्येक स्थान पर लिखी गई हैं।

[ ५ ]

प्रत्येक ज्वर के लक्षण, प्रत्येक ज्वर का पथ्य तथा अपथ्य का विशेष उल्लेख किया गया है। साथ २ रसनिर्माण में जो २ पारिभाषिक शब्द आये हैं उन की टिप्पणी में परिभाषा लिख दी हैं।

[ ६ ]

इसी तरह रक्त पित्त, कास, श्वास, हिक्का, स्वरभङ्ग, राजयक्ष्मा, छर्दि, हृद्रोग, मदात्यय, अर्श, उदावर्त, अतीसार, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, वृद्धि, गुल्म, उदररोग, पाण्डु, शोथ, विसर्प, कुष्ठ, वातव्याधि, वातरक्त, भगन्दर, नेत्र रोग आदि समस्त रोगों के विषय में विमर्श लिख दिया है जिस में सब रोगों का पथ्यापथ्य तथा जहां तहां डाक्टरी मत से रोग भेद आदि का वर्णन भी किया गया है।

[ ७ ]

सर्व प्रकार के विषों का भेद, उन के शोधन की विधि तथा प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

[ ८ ]

सर्व प्रकार के क्षुद्र रोगों का पृथक् २ लक्षण, पृथक् २ चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य का अन्य रसग्रन्थों की सहायता से पूर्ण वर्णन कर दिया है।

[ ९ ]

कहीं २ पर अनेक रोग तथा उन की चिकित्सा का प्रक्षिप्त रूप से आवश्यक होने के कारण वर्णन कर दिया गया है।

[ १० ]

रसायन और वाजीकरण का लक्षण, कुटीनिर्माणविधि, चरकोक्ताचार, रसायन आदि अनेक उपयुक्त विषयों का चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों के आधार पर वर्णन किया गया है।

इस तरह मैंने टीका की विशेषता को संक्षेप में दिखलाई है। विमर्शानुक्रमणिका के अवलोकन करने से विज्ञ महानुभावों को विदित हो जायगा कि यह टीका कहां तक उपयुक्त है।

इस टीका के लिखने में चरक, सुश्रुत, वाग्भट, रसेन्द्रसारसङ्ग्रह, भैषज्यरत्नावली, रसतरङ्गिणी, खनिजविज्ञान, प्रारम्भिक रसायन आदि अनेक ग्रन्थों की सहायता प्राप्त हुई है अतः उन ग्रन्थकर्ताओं के प्रति परम श्रद्धा प्रकट करता हूं तथा उनके ऋण से कभी भी निर्मुक्त नहीं हो सकता। सर्वप्रथम श्रीमान् विप्रकुलावतंस, हिन्दूविश्वविद्यालय के प्राण, देशोद्धारक, भगवद्भक्त, कुलपति महोदय श्रीमहामना मदनमोहन मालवीय जी के प्रति असीम श्रद्धा प्रगट करता हूं क्यों कि आप ही की साधना से यह प्राच्यनव्यायुर्वेदीय विद्यालय स्थापित हुआ और इसी में मैंने जन्तुशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा आयुर्वेद और डाक्टरी का उच्चज्ञान प्राप्त करके इस प्रकार की वैज्ञानिक टीका के लिखने में प्रवृत्ति प्रदर्शित की। इस टीका के लिखने में विशेष कर अनेक जटिल स्थलों पर पूज्यपाद गुरुवर्य, चिकित्सकचूडामणि, आयुर्वेद विद्यालय (हिन्दू यूनिवरसीटी) के प्रधानाध्यक्ष श्रीमान् पं० सत्यनारायण जी शास्त्री ने चिकित्सा के सिद्धान्तों में तथा खनिजविषयों पर श्रीमान् कविराज प्रतापसिंह जी (रसशास्त्राध्यापक आयुर्वेद फार्मेसी सुपरिन्टेण्डेण्ट) ने अत्यन्त सहायता प्रदान की है अतः उक्त दोनों महानुभावों के प्रति मैं परम श्रद्धा प्रगट करता हूं। साथ ही साथ आयुर्वेद कालेज के पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र के अध्यापक तथा अनेक ग्रन्थों के लेखक आयुर्वेदाचार्य डा० भास्कर गोविन्द घाणेकर जी के प्रति परमश्रद्धा प्रगट करता हूं क्यों कि आप ही ने सर्व प्रथम अपनी सुकृतियों के द्वारा हम लोगों की इस नवीनप्रकार की टीका लेखन पद्धति में रुचि उत्पन्न की तथा एक मार्ग सा बना दिया। इनके अतिरिक्त डा० मुकुन्द स्वरूप जी वर्मा (सरसुन्दरलाल हास्पिटल सुपरिन्टेण्डेण्ट तथा वायस-प्रिन्सिपल आयुर्वेदकालेज तथा सर्जरी के प्रोफेसर) तथा पं० जगन्नाथजी शर्मा वाजपेयी एम० ए० (प्रोफेसर आयुर्वेद कालेज) तथा अन्य समस्त-

गुरुओं के प्रति भी परम श्रद्धा प्रकट करता हूं, क्यों कि आप लोगों के सदुपदेश तथा प्रोत्साहन का ही फल है कि मैं इस टीका के लिखने में सफल हुआ।

आयुर्वेद प्रेमी तथा छात्रों के हितचिन्तक और सरस्वतीसेवापरायण परम वैष्णवभक्त चौखम्बा पुस्तकालय के अध्यक्ष श्रीमान् जयकृष्णदास जी को मैं अनेक धन्यवाद देता हूं, क्यों कि आपने अपने उदारभावसे तथा सरस्वती की सेवा और आयुर्वेद की उन्नति तथा छात्रों के हित आदि अनेक विषयों का विचार रखकर आयुर्वेद ग्रन्थों के प्रकाशन की सदिच्छा प्रगट की तथा अब दिनों दिन प्रत्यक्ष रूप में प्रगट भी हो रही है, इस ग्रन्थ के प्रकाशन में तन, मन, धन सब कुछ व्यय करके इस कार्य को पूर्ण किया। अन्त में मैं इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक प्रूफ संशोधन में पं० रामचन्द्र पणशीकरजी ने अपना समय दिया अतः उन्हें धन्यवाद देता हूं।

ग्रन्थ की छपाई का कार्य बहुत ही शीघ्रता से हुआ है इसलिये अनेक स्थानों पर अत्यन्त ध्यान देने पर भी सम्भव है अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक क्षमा करें, आगामी संस्करण में सब ठीक कर दी जायगीं। इस टीका से यदि वैद्यक शास्त्र तथा वैद्यसमुदाय का स्वल्प भी उपकार हुआ तो मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्।
इति।

सम्वत् १९९६
ज्येष्ठ शुक्ल
पूर्णिमा

निवेदयति—विद्वदनुचरः
**अम्बिकादत्तशास्त्री**
आयुर्वेदाचार्य ( A. M. S. )
**हिन्दू विश्वविद्यालय**
**आयुर्वेदकालेज, काशी**

# समर्पणम्

श्रीमन्महीमहेन्द्रमहाराजाधिराजमहाराणेति
विरुदालङ्कृतानां हिन्दूकुलपतीनां
के० सी० एस० आई० जी० सी० आई० इत्युपाधिविभूषितानां
६ श्रीमेदपाटेश्वराणां
"श्रीभूपालसिंहवर्म" महोदयानां
करकमलयोः
द्वितीयमिदं कृतिपुष्पं सप्रणयोल्लसन्मानसा समर्प्यते

श्रीएकलिङ्गेश्वरपादपद्म-
सम्पूजयन् धर्मपुरःसरेण ।
सम्पालयन् स्वाः प्रकृतीरिदानीं
श्रीमेदपाटाऽवनिपालकोऽसौ ॥ १ ॥
"भूपालवर्मा" वसुधाधिपेन्द्र
आस्ते तदीये च करारविन्दे ।
रत्नोज्ज्वलाख्यां रसरत्नटीकां
समर्पयेऽहं मुदितात्मना वै ॥ २ ॥

श्रीमतां शुभचिन्तकः
अम्बिकादत्त शास्त्री "आयुर्वेदाचार्यः"

# रसरत्नसमुच्चयस्य मूलविषयानुक्रमणिका—


| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| **प्रथमोऽध्यायः ।** | |
| मङ्गलाचरणम् | १ |
| टीकाकारकृतमङ्गलाचरणं व्याख्या-प्रयोजनञ्च | ,, |
| ग्रन्थकर्तॄणां नामानि | २ |
| हिमालयवर्णनम् | ३ |
| महादेवस्थितिवर्णनम् | ४ |
| रसोत्कर्षवर्णनम् | ५ |
| पारदस्य विशेषतो महत्ता | ६ |
| मूर्च्छितादिपारदगुणाः | ७ |
| पारदे सर्वौषधानामन्तर्भावः | ९ |
| रसस्य जीवन्मुक्तिकारणता | १० |
| रसोत्पत्तिवर्णनम् | १३ |
| रसानां भेदाः | १४ |
| रसादीनां निरुक्तिः | १६ |
| रससंस्कारकारणम् | १७ |
| रसस्य स्थानान्तरगतिवर्णनम् | १८ |
| हिङ्गुलोत्पत्तिवर्णनम् | १९ |
| **द्वितीयोऽध्यायः ।** | |
| महारसाः | ५८ |
| गन्धाभ्रयोः स्वरूपम् | ,, |
| अभ्रकगुणाः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अभ्रभेदाः | ६० |
| पिनाकादीनां लक्षणानि | ,, |
| वर्णभेदेनाभ्रकस्य भेदास्तेषां क्रिया-विषयश्च | ,, |
| ग्रासयोग्याभ्रम् | ६१ |
| निश्चन्द्रसचन्द्राभ्रयोर्गुणदोषौ | ,, |
| अशुद्धाभ्रस्य दोषाः | ,, |
| अभ्रशोधनमारणे | ६२ |
| धान्याभ्रकम् | ६३ |
| धान्याभ्रमारणम् | ,, |
| अभ्रमारणम् | ,, |
| मतान्तर | ,, |
| अभ्रकसत्त्वपातनम् | ६४ |
| प्रकारान्तर | ,, |
| किट्टात्सत्त्वग्रहणम् | ६५ |
| सत्त्वशोधनम् | ,, |
| सत्त्वानां मृदुकरणम् | ,, |
| अभ्रमारणम् | ६६ |
| मारणे प्रकारान्तरम् | ६७ |
| सत्त्वस्यशोधनमारणे | ,, |
| अभ्रप्रयोगः | ६८ |
| वैक्रान्तः | ,, |
| वैक्रान्तस्य वर्णभेदाः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वैक्रान्तस्य गुणाः | ६९ |
| वैक्रान्तोत्पत्तिः | ,, |
| वैक्रान्तस्य स्थानं निरुक्तिश्च | ७० |
| मतान्तरेण वर्णभेदकथनम् | ,, |
| वर्णभेदेन कार्यभेदकथनम् | ,, |
| आहरणविधिः | ७१ |
| गुणान्तरम् | ,, |
| शोधनम् | ,, |
| मतान्तरे शोधनमारणे | ७० |
| मतान्तरम् | ७२ |
| सत्त्वपातनम् | ७२ |
| मतान्तरम् | ,, |
| मृतवैक्रान्तस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च | ,, |
| प्रयोगान्तरम् | ७३ |
| **अथ माक्षिकम्** | ,, |
| माक्षिकोत्पत्तिवर्णनम् | ,, |
| माक्षिकस्य गुणाः | ,, |
| माक्षिकभेदाः | ७४ |
| माक्षिकगुणाः | ७५ |
| सुवर्णमाक्षिकशोधनमारणे | ,, |
| सत्त्वपातनम् | ,, |
| विशुद्धताप्यसत्त्वलक्षणम् | ७६ |
| सुवर्णमाक्षिकरसायनम् | ,, |
| सुवर्णमाक्षिकरसायनम् | ७७ |
| विमलभेदाः | ,, |
| विमलस्य लक्षणगुणाः | ७८ |
| विमलभेदानां प्रयोगनिर्देशः | ,, |
| विमलशोधनम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| विमलस्य मारणम् | ७८ |
| विमलस्य सत्त्वपातनविधिः | ,, |
| मतान्तरेण सत्त्वपातनम् | ७९ |
| विमलस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च | ,, |
| **अथ शिलाजतु** | ८० |
| शिलाजतुभेदाः | ,, |
| शिलाजतुन उत्पत्तिः | ,, |
| शुद्धशिलाजतुलक्षणम् | ८१ |
| गुणाः | ८२ |
| शोधनम् | ८३ |
| शिलाजतुमारणम् | ,, |
| प्रयोगविधिः | ,, |
| सत्त्वपातनम् | ,, |
| कर्पूरशिलाजतुनो लक्षणादिकम् | ८४ |
| **सस्यकः** | ,, |
| सस्यकोत्पत्तिवर्णनम् | ,, |
| प्रशस्तसस्यकलक्षणम् | ,, |
| गुणाः | ८५ |
| शोधनम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| तुत्थखर्परमारणम् | ,, |
| तुत्थसत्त्वपातनम् | ,, |
| मतान्तरम् | ८६ |
| प्रयोगविधिः | ,, |
| भालुकितन्त्रोक्तप्रयोग विधिः | ,, |
| **अथ चपलः** | ,, |
| गुणाः | ८८ |
| शोधनम् | ८९ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सत्त्वपातनम् | ८९ |
| रसकः | ,, |
| सत्यकस्य प्रयोगविषयो गुणाश्च | ९० |
| शोधनम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| रसकस्य ताम्रादिरञ्जनविधिः | ९१ |
| खर्परस्य भस्म तथा सत्त्वपातन-विधिश्च | ,, |
| मतान्तरम् | ९२ |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| सत्त्वमारणम् | ९३ |
| प्रयोगविधिः | ,, |
| **तृतीयोऽध्यायः ।** | |
| उपरसानां नामानि | ,, |
| गन्धकोत्पत्तिः | ,, |
| गन्धकभेदाः | ९५ |
| गन्धकगुणाः | ९६ |
| बलिवसाख्यगन्धकोत्पत्तिः | ,, |
| गन्धकशुद्धिः | ९७ |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरम् | ९८ |
| प्रयोगः | ,, |
| गन्धकद्रुतिः | ,, |
| प्रयोगविधिः | ९९ |
| अन्यविधप्रयोगविधिः | ,, |
| गन्धकसेवने वर्ज्यानि | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कुष्ठे गन्धकप्रयोगः | १०० |
| कण्डूहर प्रयोगः | ,, |
| गन्धकतैलम् | १०१ |
| गन्धकगुणाः | ,, |
| गैरिकम् | ११० |
| गैरिकभेदाः | ,, |
| पाषाणस्वर्णगैरिकयोर्लक्षणम् | ,, |
| गैरिकशोधनम् | १११ |
| कासीसरसायनम् | ,, |
| कासीसभेदाः | ,, |
| बालुकासीसगुणाः | ११२ |
| पुष्पकासीसगुणाः | ,, |
| कासीस शोधनम् | ,, |
| सत्त्वग्रहणनिर्देशः | ,, |
| शोधनान्तरम् | ११३ |
| कासीसप्रयोगः | ,, |
| तुवरीनिरूपणम् | ,, |
| तुवरीपरिचयः | ,, |
| तुवरीभेदाः | ११४ |
| तुवरीलक्षणगुणाः | ,, |
| तुवरीशोधनम् | ,, |
| तुवरीसत्त्वपातनविधिः | ,, |
| तालकसन्निरूपणम् | ११५ |
| तालकभेदाः | ,, |
| पत्रतालकलक्षणम् | ,, |
| पिण्डतालकलक्षणम् | ,, |
| गुणाः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| हरतालशुद्धिः | ११६ |
| अशुद्धतालसेवनदोषाः | ,, |
| मतान्तरेण तालशोधनम् | ,, |
| मतान्तरेण शोधनमारणनिरूपणम् | ,, |
| सत्त्वपातनम् | ११७ |
| मतान्तरम् | ,, |
| **मनःशिलानिरूपणम्** | ११९ |
| मनःशिलाया भेदाः | ,, |
| त्रिविधमनःशिलालक्षणानि | |
| गुणाः | ,, |
| अशुद्धशुद्धदोषगुणाः | ,, |
| शोधनम् | १२० |
| मतान्तरम् | ,, |
| सत्त्वपातनम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| **अञ्जनानां सन्निरूपणम्** | ,, |
| अञ्जनभेदाः | ,, |
| सौवीराञ्जनगुणाः | १२२ |
| रसाञ्जनगुणाः | ,, |
| स्रोतोऽञ्जनगुणाः | ,, |
| लेखनस्वरूपम् | ,, |
| पुष्पाञ्जनगुणाः | १२३ |
| नीलाञ्जनगुणाः | ,, |
| शोधनम् | ,, |
| अञ्जनसत्त्वाहरणम् | ,, |
| स्रोतोऽञ्जनलक्षणम् | ,, |
| अञ्जनरसबन्धनम् | ,, |
| रसाञ्जनस्य विशेषशोधनम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| स्रोतोऽञ्जनसत्त्वपातनविधिः | १२४ |
| **कङ्कुष्ठनिरूपणम्** | ,, |
| कङ्कुष्ठोत्पत्तिवर्णनम् | ,, |
| द्विविधकङ्कुष्ठलक्षणम् | ,, |
| कङ्कुष्ठोत्पत्तौ मतान्तराणि | ,, |
| गुणाः | १२५ |
| रसोपरसानां सामान्यशोधनं सत्त्व- | |
| पातनविधिश्च | ,, |
| कङ्कुष्ठशोधनम् | ,, |
| रेचकयोगः | ,, |
| ताम्बूलानुपानवर्जनम् | १२६ |
| विषनाशार्थं कङ्कुष्ठप्रयोगविधिः | ,, |
| **साधारणरसपरिगणनम्** | ,, |
| **कम्पिल्लः** | ,, |
| गुणाः | १२७ |
| **गौरीपाषाणः** | ,, |
| शोधनम् | १२८ |
| सत्त्वग्रहणम् | १२९ |
| गुणाः | ,, |
| **नवसारनिरूपणम्** | ,, |
| नवसारोत्पत्तिः | ,, |
| मतान्तरेणोत्पत्तिः | १३० |
| गुणाः | ,, |
| **वराटिकावर्णनम्** | ,, |
| वराटिकालक्षणम् | ,, |
| उत्तमादि वराटिका | ,, |
| गुणाः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शोधनम् | १३१ |
| **अभ्रिजारनिरूपणम्** | ,, |
| अभ्रिजारपरिचयः | ,, |
| गुणाः | ,, |
| तस्य स्वभावतः शुद्धत्वनिर्देशः | ,, |
| **गिरिसिन्दूरनिरूपणम्** | १३२ |
| गिरिसिन्दूरगुणाः | ,, |
| **हिङ्गुलनिरूपणम्** | ,, |
| हिङ्गुलभेदाः | ,, |
| शुकतुण्डकस्य परिचयः | ,, |
| हंसपादलक्षणम् | ,, |
| हिङ्गुलगुणाः | ,, |
| शोधनम् | १३३ |
| हिङ्गुलसत्त्वाकर्षणविधिः | ,, |
| **मृद्दारशृङ्गम्** | ,, |
| परिचयः | ,, |
| गुणाः | ,, |
| साधारणशोधननिर्देशः | १३४ |
| सत्त्वानां सामान्यशोधनम् | ,, |

## चतुर्थोऽध्यायः ।

| | |
|---|---|
| रत्ननिरुपणम् | १३५ |
| मणयः | ,, |
| मणीनां नामानि | ,, |
| श्रेष्ठमणीनां नामानि | ,, |
| ग्रहप्रसादकरत्नानि | ,, |
| ग्रहानुसारेण रत्नपरिगणनम् | १३६ |
| रत्नप्रयोगविषयः | ,, |
| **माणिक्यम्** | १३६ |
| द्विविधमाणिक्यनिर्देशः | ,, |
| श्रेष्ठमाणिक्यलक्षणम् | ,, |
| श्रेष्ठनीलमाणिक्यलक्षणम् | ,, |
| निकृष्टमाणिक्यलक्षणम् | १३७ |
| माणिक्यगुणाः | ,, |
| **मौक्तिकनिरूपणम्** | ,, |
| प्रशस्तमौक्तिकलक्षणम् | ,, |
| मौक्तिकशुक्त्योर्गुणाः | ,, |
| हेममौक्तिकम् | १३८ |
| मौक्तिकगुणान्तरम् | ,, |
| **प्रवालनिरूपणम्** | ,, |
| ग्राह्यप्रवालस्वरूपः | ,, |
| हेयप्रवालस्वरूपम् | ,, |
| प्रवालगुणाः | १३९ |
| **तार्क्ष्यम्** | ,, |
| प्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम् | ,, |
| अप्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम् | ,, |
| तार्क्ष्यगुणाः | ,, |
| **पुष्परागः** | , |
| श्रेष्ठपुष्परागलक्षणम् | ,, |
| हेयपुष्परागलक्षणम् | १४० |
| पुष्परागगुणाः | ,, |
| **वज्रम्** | ,, |
| वज्रभेदाः | ,, |
| पुंवज्रलक्षणम् | ,, |
| स्त्रीनपुंसकवज्रयोर्लक्षणानि | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| जातिभेदेनाधिकारीभेदकथनम् | १४१ |
| वर्णभेदेनाधिकारीभेदकथनम् | ,, |
| वज्रगुणाः | ,, |
| रत्नदोषाः | १४२ |
| वज्रशोधनम् | ,, |
| वज्रमारणम् | ,, |
| मतान्तरेण मारणम् | ,, |
| मतान्तरेण मारणम् | १४३ |
| मतान्तरेण मारणम् | १४४ |
| प्रयोगविशेषेण गुणविशेषकथनम् | ,, |
| वज्ररसायनम् | ,, |
| **नीलनिरूपणम्** | १४५ |
| नीलभेदाः | ,, |
| जलशङ्खनीलयोः स्वरूपम् | ,, |
| गुणाः | ,, |
| **गोमेदः** | १४६ |
| गोमेदनिरुक्तिः | ,, |
| प्रशस्तगोमेदलक्षणम् | ,, |
| हेयगोमेदलक्षणम् | ,, |
| गुणाः | ,, |
| रत्नमारणनिषेधः | ,, |
| रत्नप्रयोगः | १४७ |
| रत्नानां साधारणशोधनम् | ,, |
| **वैदूर्यम्** | ,, |
| श्रेष्ठवैदूर्यलक्षणम् | ,, |
| हेयवैदूर्यलक्षणम् | ,, |
| गुणाः | ,, |
| रत्नशुद्धिः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| रत्नभस्मक्रमः | १४८ |
| रत्नानां द्रावणम् | ,, |
| मुक्ताद्रावणे विशेषक्रमः | ,, |
| वज्रद्रावणविशेषविधिः | १५० |
| वैक्रान्तद्रावणे विशेषक्रमः | ,, |
| अन्यविधिः | ,, |
| अन्यविधिः | ,, |
| **राजावर्तः** | १५१ |
| उत्तममध्यमराजावर्तलक्षणम् | ,, |
| गुणाः | ,, |
| राजावर्तादिसामान्यशोधनम् | ,, |
| राजावर्तशोधनम् | ,, |
| राजावर्तमारणम् | ,, |
| सत्त्वपातनम् | १५२ |
| द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः | ,, |
| रत्नधारणगुणाः | ,, |
| **गैरिकम्** | ,, |
| गैरिकस्यशोधनं सत्त्वपातनञ्च | ,, |


## पञ्चमोऽध्यायः ।


| | |
|---|---|
| **लोहानि** | १५३ |
| लोहजातिपरिगणनम् | ,, |
| **स्वर्णम्** | १५४ |
| स्वर्णभेदाः | ,, |
| प्राकृतस्वर्णस्योत्पत्तिः | ,, |
| सहजस्वर्णोत्पत्तिः | ,, |
| वह्निजस्वर्णोत्पत्तिः | ,, |
| स्वर्णत्रयगुणाः | १५५ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| खनिजस्वर्णोत्पत्तिस्तल्लक्षणगुणाश्च | १५५ |
| वेधजस्वर्णोत्पत्तिर्गुणाश्च | ,, |
| स्वर्णरौप्ययोः सामान्यगुणाः | ,, |
| स्वर्णगुणाः | १५६ |
| अशोधितामरितस्वर्णदोषाः | ,, |
| स्वर्णशोधनम् | ,, |
| लौहमारणार्थमुत्तमद्रव्यकथनम् | ,, |
| स्वर्णमारणम् | १५७ |
| अन्यविधिः | ,, |
| अन्यविधिः | ,, |
| स्वर्णद्रावणम् | ,, |
| अन्यविधिः | १५८ |
| स्वर्णभस्मप्रयोगविधिः | ,, |
| अशुद्धामारितस्वर्णदोषाः | ,, |
| रजतम् | १५९ |
| रजतभेदाः | ,, |
| सहजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च | ,, |
| खनिजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च | ,, |
| कृत्रिमरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च | ,, |
| उत्तमरौप्यलक्षणम् | ,, |
| निकृष्टरौप्यलक्षणम् | १६० |
| रौप्यगुणाः | ,, |
| गुणान्तरम् | ,, |
| स्वर्णादिशोधनम् | ,, |
| अशोधितमारितलोहस्य दोषाः | १६१ |
| रौप्यस्य विशेषशोधनम् | ,, |
| अन्यविधिः | ,, |
| रौप्यमारणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अन्यविधिः | १६२ |
| रौप्यस्य निरुत्थीभस्मकरणम् | ,, |
| अन्यविधिः | ,, |
| स्वर्णरौप्ययोर्द्रावणम् | ,, |
| रौप्यप्रयोगः | १६३ |
| **ताम्रम्** | ,, |
| ताम्रभेदाः | ,, |
| म्लेच्छताम्रस्य लक्षणम् | ,, |
| नेपालताम्रलक्षणम् | ,, |
| रसकर्मानर्हताम्रलक्षणम् | १६४ |
| गुणाः | ,, |
| ताम्रस्य दोषाः | ,, |
| ताम्रशुद्धिः | १६५ |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| ताम्रभस्म | ,, |
| अन्यविधिः | १६६ |
| मारणान्तरम् | ,, |
| सोमनाथीताम्रभस्म | ,, |
| ताम्रभस्मगुणाः | १६७ |
| ग्रन्थान्तरोक्त ताम्रप्रयोगः | ,, |
| **अथलौहम्** | १६८ |
| लौहभेदाः | ,, |
| मुण्डलौहभेदाः | ,, |
| मृदुमुण्डलक्षणम् | ,, |
| कुण्ठमुण्डलक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कडारमुण्डलक्षणम् | १६९ |
| मुण्डगुणाः | ,, |
| अशुद्धलौहस्य दोषाः | ,, |
| तीक्ष्णलौहम् | ,, |
| तीक्ष्णलौहभेदाः | ,, |
| खरलौहलक्षणम् | ,, |
| सारलौहलक्षणम् | १७० |
| हृन्नाललौहलक्षणम् | ,, |
| सपर्यायपोगरलक्षणम् | ,, |
| वाजीरलौहलक्षणम् | ,, |
| काललौहलक्षणम् | ,, |
| खरलौहगुणाः | १७१ |
| अन्यसारादितीक्ष्णलौहगुणाः | ,, |
| कान्तलोहभेदाः | ,, |
| वर्णानुसारकार्यभेदाः | ,, |
| अधमादिकथनम् | १७२ |
| भ्रामककान्तलक्षणम् | ,, |
| चुम्बककर्षकलक्षणम् | ,, |
| द्रावककान्तलक्षणम् | ,, |
| रोमकान्तलक्षणम् | ,, |
| मुखभेदेनश्रेष्ठाश्रेष्ठकथनम् | ,, |
| भ्रामकादिलौहकार्यनिर्देशः | १७३ |
| रसक्रमेण कान्तस्य विशेषता | ,, |
| कान्तलौहस्य प्राह्याप्राह्यनिर्देशः | ,, |
| कान्तलौहलक्षणम् | १७४ |
| कान्तलौहगुणाः | ,, |
| लौहकल्पश्रेष्ठता | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| मारणार्थं लौहस्य परिमाणनिर्देशः | १७४ |
| लौहमारणे मन्त्रः | ,, |
| लौहत्रयाणामुत्तरोत्तरगुणाधिक्यम् | ,, |
| सर्वलौहशुद्धिः | १७५ |
| लौहस्थगिरिजदोषनाशनविधिः | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरेण शोधनं मारणञ्च | १७६ |
| मतान्तरेण मारणञ्च | ,, |
| तीक्ष्णलौहस्य मारणम् | ,, |
| कान्तलौहस्य गुणाः | १७७ |
| लौहस्य मारणान्तरम् | ,, |
| तीक्ष्णलौहस्य विशेषमारणम् | १७८ |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरे सर्वलौहानां मारणम् | ,, |
| अन्यविधिः | १७९ |
| अन्यविधिः | ,, |
| अन्यविधिः | ,, |
| कान्तलौहस्य रामराजीप्रोक्त-शोधनम् | १८० |
| अन्यविधिः | १८१ |
| लौहप्रयोगः | ,, |
| लौहानां रामराजीप्रोक्तगुणाः | १८२ |
| श्रेष्ठकान्तलौहस्य लक्षणम् | ,, |
| लौहद्रुतिः | ,, |
| कान्तलौहस्य विशेषमारणम् | १८३ |
| अथाष्टलौहानां द्रावणम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| अशुद्धपक्कलौहदोषाः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| उत्तरोत्तरमधिकगुणकरं लौहम् | १८४ |
| **मण्डूरम्** | ,, |
| मण्डूरशोधनम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| लौहमण्डूरयोर्गुणसाम्यता | १८५ |
| **वङ्गनिरुपणम्** | ,, |
| वङ्गस्य द्वैविध्यनिर्देशः | ,, |
| खुरकवङ्गस्य मिश्रकवङ्गस्य च लक्षणम् | ,, |
| वङ्गगुणाः | ,, |
| खुरकवङ्गशोधनम् | ,, |
| मिश्रकवङ्गशोधनम् | ,, |
| नागवङ्गकांस्यताम्राणां सामान्यशोधनम् | ,, |
| वङ्गभस्म | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरम् | १८६ |
| मतान्तरम् | ,, |
| वङ्गरसायनम् | ,, |
| **नागः** | १८८ |
| शुद्धसीसकलक्षणम् | ,, |
| सीसकगुणाः | १८९ |
| नागशुद्धिः | ,, |
| नागभस्म | ,, |
| मतान्तरम् | १९० |
| नागस्यनिरुत्थभस्मीकरणम् | ,, |
| मतान्तरम् | १९१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| नागरसायनम् | १९२ |
| **पित्तलम्** | ,, |
| पित्तलभेदाः | ,, |
| रीतिकालक्षणम् | ,, |
| काकतुण्डीलक्षणम् | ,, |
| रीतिकाया गुणाः | ,, |
| काकतुण्ड्या गुणाः | १९३ |
| शुभरीतिकालक्षणम् | ,, |
| अशुभरीतिलक्षणम् | ,, |
| रीतिकाशोधनम् | ,, |
| रीतिकामारणम् | ,, |
| मतान्तरम् | १९४ |
| पित्तलरसायनम् | ,, |
| पित्तलद्रुतिः | ,, |
| **कांस्यम्** | १९५ |
| कांस्योत्पत्तिवर्णनम् | ,, |
| प्रशस्तकांस्यलक्षणम् | ,, |
| त्याज्यकांस्यलक्षणम् | ,, |
| कांस्यगुणाः | ,, |
| कांस्यशोधनम् | १९६ |
| कांस्यमारणम् | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| **वर्तलौहम्** | ,, |
| वर्तलौहस्वरूपः | ,, |
| वर्तलौहगुणाः | ,, |
| वर्तलौहशोधनम् | १९७ |
| वर्तलौहमारणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| रसोपरसलोहानां सूतसाधकत्वनिर्देशः | १९७ |
| रत्नादीनां सूतयोग्यत्वनिर्देशः | ,, |
| भूनागसत्त्वपातनम् | १९८ |
| मतान्तरम् | १९९ |
| भूनागमुष्टिका | २०० |
| तैलपातनविधिः | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरम् | २०१ |
| मतान्तरम् | ,, |
| तैलपातनम् | २०२ |
| विष्णुमुष्टितैलपातनम् | ,, |
| जैपालतैलपातनम् | ,, |
| वाकुचीतैलाहरणविधिः | ,, |
| कृष्णमिश्रश्वेतगुञ्जाबीजतैलपातनविधिः | ,, |
| **षष्ठोऽध्यायः ।** | |
| शिष्योपानयननिरुपणम् | २०३ |
| क्रमयुक्तशास्त्रम् | ,, |
| शास्त्रक्रमयोः परस्परापेक्षा | ,, |
| रसविद्यागुरुः | ,, |
| शिष्यगुणाः | २०४ |
| अनुचरगुणाः | ,, |
| अयोग्यशिष्याः | ,, |
| रससाधनरसशालारस मण्डपाः | २०५ |
| रसलिङ्गस्थापनादि | २०६ |
| रसलिङ्गपूजनफलम् | ,, |
| ध्यानम् | २०७ |
| देवीपूजनमन्त्रम् | ,, |
| कुम्भस्थापनादिशिष्यदीक्षादानविधिः | २०८ |
| कालिनीलक्षणम् | २०९ |
| कालिन्यभावे तदनुकल्पविधिः | ,, |
| होमविधिः | २१० |
| रससिद्ध्यर्थं सङ्ग्रहणीयपदार्थास्तत्पूजनादिकञ्च | २११ |
| रसशक्तयः | ,, |
| उपरसाः | ,, |
| महारसाः | २१२ |
| अष्टलोहपूजाक्रमः | ,, |
| उपकरणानां पूजाविधिः | ,, |
| रससिद्धीश्वरब्राह्मणादीनां पूजनम् | २१३ |
| अदीक्षितस्य रसविद्यासाधनवैफल्यनिर्देशः | २१४ |
| रससाधने सिद्धिलाभहेतुनिर्देशः | ,, |
| कस्मै किमर्थं रसविद्यादातव्या तन्निर्देशः | २१५ |
| गुरुसन्तोषस्य सर्वसिद्धिहेतुत्वनिर्देशः | ,, |
| रसविद्याया अवश्यगोप्यत्वनिर्देशः | ,, |
| **सप्तमोऽध्यायः ।** | |
| रसशाला | २१६ |
| रससाधनीयपदार्थाः | २१७ |
| चालनीभेदलक्षणादिकम् | २१८ |
| रससि[illegible]वुपकरणानि | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| उपलनामानि | २१९ |
| कूपीनिर्माणद्रव्याणि | ,, |
| कूपीपर्यायाः | ,, |
| क्षपकस्य पर्यायाः | ,, |
| शूर्पादीनां समर्चनम् | ,, |
| रसविद्यायां कीदृशा वैद्या अन्ये वा नियोज्यास्तत्कथनम् | २२० |
| रसपाककाले मन्त्रजपस्य कर्तव्यतानिर्देशः | ,, |
| परिचारकलक्षणम् | ,, |
| पद्महस्तवैद्यलक्षणम् | २२१ |
| अमृतहस्तवैद्यलक्षणम् | ,, |
| दग्धहस्तवैद्यलक्षणम् | ,, |
| निधिरक्षायोग्यपुरुषाः | ,, |
| बलिसाधने नियोज्यपुरुषलक्षणम् | ,, |
| रसायने नियोज्यपुरुषलक्षणम् | २२२ |
| स्वर्णादिधातुसिद्धिनियुक्तियोग्यपुरुषाः | ,, |
| भेषजाहरणे नियोज्यपुरुषलक्षणम् | ,, |
| केषां रससिद्धिर्भवतीत्याह | ,, |
| रससिद्धसाधकस्य कर्तव्यनिर्देशः | ,, |
| रससिद्धमर्त्यफलम् | २२३ |

## अष्टमोऽध्यायः ।

| | |
|---|---|
| परिभाषा | २२४ |
| धन्वन्तरिभागः | ,, |
| रुद्रभागः | ,, |
| विश्वासघातकवैद्यलक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कज्जली | २२५ |
| रसपङ्कः | ,, |
| पिष्टी | ,, |
| मतान्तरम् | ,, |
| पातनपिष्टी | ,, |
| स्वर्णरौप्ययोः कृष्टिः | २२६ |
| कृष्ट्या उपयोगः | ,, |
| स्वर्णकृष्टयाः कार्यम् | ,, |
| वरलोहकम् | ,, |
| हेमरक्ती | ,, |
| हेमरक्तीप्रयोगः | ,, |
| तार्यरक्ती | २२७ |
| दलम् | ,, |
| अन्यविधदलम् | ,, |
| शुल्वनागम् | ,, |
| शुल्वनागगुणाः | २२८ |
| पिञ्जरी | ,, |
| चन्द्रार्कम् | ,, |
| निर्वापणम् | २२९ |
| निर्वापणद्रव्यमात्रा | ,, |
| वारितरलौहलक्षणम् | ,, |
| मृतलौहलक्षणम् | ,, |
| भपुनर्भवलक्षणम् | ,, |
| उत्तमभस्मलक्षणम् | २३० |
| निरुत्थलौहलक्षणम् | ,, |
| बीजलक्षणम् | ,, |
| ताडनस्वरूपम् | ,, |
| धान्याभ्रलक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सत्त्वलक्षणम् | २३१ |
| एककोलिसकलक्षणम् | ,, |
| द्रावणादिकर्मसाधनेकाष्ठनिर्देशः | ,, |
| हिङ्गुलाकृष्टो रसः | ,, |
| घोषाकृष्टताम्रलक्षणम् | ,, |
| वरनागलक्षणम् | २३२ |
| उत्थापनलक्षणम् | ,, |
| ढालनलक्षणम् | ,, |
| नागसम्भूतचपलः | ,, |
| वङ्गसम्भूतचपलः | २३३ |
| चपलकार्यम् | ,, |
| बद्धरसोपयोगः | ,, |
| धौतम् | ,, |
| द्वन्द्वानम् | २३४ |
| भञ्जनी | ,, |
| चुल्लका | ,, |
| पतङ्गीरागः | ,, |
| आवापः | ,, |
| अभिषेकः | २३५ |
| निर्वापलक्षणम् | ,, |
| प्रतिवापसमयनिर्देशः | ,, |
| शुद्धावर्तः | ,, |
| बीजावर्तः | ,, |
| स्वाङ्गशीतलम् | ,, |
| बहिःशीतलम् | २३६ |
| स्वेदनलक्षणम् | ,, |
| मर्दनलक्षणम् | ,, |
| मूर्च्छनलक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| उत्थापनादिलक्षणम् | २३७ |
| बन्धलक्षणम् | ,, |
| पातनलक्षणम् | ,, |
| रोधनलक्षणम् | २३८ |
| नियमनलक्षणम् | ,, |
| दीपनलक्षणम् | २३९ |
| ग्रासमानम् | ,, |
| जारणाभेदनिर्देशः | ,, |
| निर्मुखजारणालक्षणम् | २४० |
| बीजादिनिर्देशः | ,, |
| मुखलक्षणम् | ,, |
| सम्मुखजारणालक्षणम् | ,, |
| राक्षसवक्त्रसलक्षणम् | ,, |
| चारणालक्षणम् | २४१ |
| गर्भद्रुतिलक्षणम् | ,, |
| बाह्यद्रुतिलक्षणम् | ,, |
| द्रुतेर्भेदाः | ,, |
| द्रुतेः स्वरूपम् | ,, |
| जारणाभेदः | ,, |
| जारणालक्षणम् | ,, |
| बिडादिलक्षणम् | २४२ |
| रञ्जनलक्षणम् | ,, |
| सारणालक्षणम् | ,, |
| वेधलक्षणं भेदाश्च | ,, |
| लेपवेधलक्षणम् | २४३ |
| क्षेपवेधलक्षणम् | ,, |
| कुन्तवेधलक्षणम् | ,, |
| धूमवेधलक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शब्दवेधलक्षणम् | २४८ |
| उद्घाटनलक्षणम् | ,, |
| स्वेदनलक्षणम् | ,, |
| सन्यासलक्षणम् | ,, |
| रसस्वेदसन्यासगुणाः | २४५ |
| परिभाषाऽऽवश्यकता | ,, |
| अध्यायपठनफलम् | ,, |

## नवमोऽध्यायः ।

| | |
|---|---|
| यन्त्राणि | २४६ |
| यन्त्रशब्दनिरुक्तिः | ,, |
| दोलायन्त्रम् | ,, |
| स्वेदनीयन्त्रम् | २४७ |
| पाटनयन्त्रम् | ,, |
| अधःपातनयन्त्रम् | २४८ |
| कच्छपयन्त्रम् | ,, |
| दीपिकायन्त्रम् | ,, |
| डोकीयन्त्रम् | २४९ |
| आरणायन्त्रम् | ,, |
| जारणायन्त्रस्य- | ,, |
| प्रकारान्तरम् | २५० |
| विद्याधरयन्त्रम् | २५१ |
| सोमानलयन्त्रम् | ,, |
| गर्भयन्त्रम् | ,, |
| हंसपाकयन्त्रम् | २५२ |
| वालुकायन्त्रम् | २५३ |
| वालुकायन्त्रस्य प्रकारान्तरम् | ,, |
| जलयन्त्रम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| प्रकारान्तरम् | २५४ |
| नालिकायन्त्रम् | ,, |
| भूधरयन्त्रम् | ,, |
| पुटयन्त्रम् | ,, |
| कोष्ठीयन्त्रम् | २५५ |
| वलभीयन्त्रम् | ,, |
| तिर्यक्पातनयन्त्रम् | २५६ |
| पालिकायन्त्रम् | ,, |
| वटयन्त्रम् | ,, |
| इष्टिकायन्त्रम् | २५७ |
| हिङ्गुलाकृष्टि विद्याधरयन्त्रम् | ,, |
| डमरुयन्त्रम् | २५८ |
| नालियन्त्रम् | ,, |
| तोयमृल्लक्षणम् | ,, |
| वह्निमृत्ना | २५९ |
| शेषनाभियन्त्रवर्णनम् | ,, |
| प्रस्तयन्त्रम् | ,, |
| स्थालीयन्त्रम् | २६० |
| धूपयन्त्रम् | ,, |
| कन्दुकयन्त्रम् | २६१ |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| खल्लयन्त्रम् | २६२ |
| खल्लयन्त्रस्य त्रैविध्यनिर्देशः | ,, |
| द्विविधखल्लयोः सामान्यलक्षणम् | ,, |
| अर्धचन्द्राकृतिखल्लनिर्देशः | ,, |
| वर्त्तुलखल्लनिर्देशः | २६३ |
| तप्तखल्लप्रमाणनिर्देशः | ,, |
| तप्तखल्लविधिः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| **दशमोऽध्यायः ।** | |
| मूषादिकथनम् | २६४ |
| मूषायाः पर्यायाः | ,, |
| मूषाया निरुक्तिः | ,, |
| मूषाया उपादानम् | २६५ |
| मूषा शंसा | ,, |
| सन्धिलेपस्य पर्यायाः | ,, |
| मूषोपयुक्तमृत्तिका | ,, |
| मतान्तरम् | २६६ |
| मूषामृत्तिकायां संयोज्यद्रव्याणि | ,, |
| वज्रमूषा | ,, |
| योगमूषा | ,, |
| वज्रद्रावणीमूषा | २६७ |
| गारमूषा | ,, |
| वरमूषा | ,, |
| वर्णमूषा | २६८ |
| रौप्यमूषा | ,, |
| विडमूषा | ,, |
| वज्रद्रावणमूषा | ,, |
| मूषाऽऽप्यायनम् | २६९ |
| वृन्ताकमूषा | ,, |
| गोस्तनीमूषा | २७० |
| मल्लमूषा | ,, |
| पक्वमूषा | ,, |
| गोलमूषा | ,, |
| महामूषा | २७१ |
| मण्डूकमूषा | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| मूसलाख्यमूषा | २७१ |
| कोष्ठिकानिर्देशः | ,, |
| अङ्गारकोष्ठी | २७२ |
| पातालकोष्ठी | २७३ |
| गारकोष्ठी | ,, |
| वङ्कनालम् | २७४ |
| मूषाकोष्ठी | ,, |
| पुटस्य लक्षणम् | २७५ |
| पुटस्य फलम् | ,, |
| महापुटम् | २७७ |
| गजपुटम् | ,, |
| वाराहपुटम् | २७८ |
| कुक्कुटपुटम् | ,, |
| कपोतपुटम् | ,, |
| गोवैरस्वरूपम् | ,, |
| गोवैरपुटलक्षणम् | २७९ |
| भाण्डपुटम् | ,, |
| बालुकापुटम् | ,, |
| भूधरपुटम् | २८० |
| लावकपुटम् | ,, |
| अनुक्तपुटमानेकर्त्तव्यनिर्देशः | २८१ |
| उपलपर्यायाः | ,, |
| कृत्रिमाकृत्रिमलौहनिर्देशः | ,, |
| षड्लवणानि | २८२ |
| क्षारत्रयम् | ,, |
| क्षारपञ्चकम् | ,, |
| मधुत्रयम् | २८३ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| रसकर्मणितैलाहरणोपयोगिद्रव्याणि | २८३ |
| वसावर्गः | ,, |
| सूत्रवर्गः | ,, |
| माहिषपञ्चकछागलपञ्चकयोनिर्देशः | २८४ |
| अम्लवर्गः | ,, |
| अम्लपञ्चकम् | ,, |
| पञ्चमृत्तिका | २८५ |
| विषवर्गः | ,, |
| उपविषवर्गः | २८६ |
| दुग्धवर्गः | ,, |
| स्निग्धवर्गः | २८७ |
| क्षारवर्गः | ,, |
| शीतवर्गः | २८८ |
| श्वेतवर्गः | ,, |
| कृष्णवर्गः | ,, |
| रसवर्गादीनां प्रयोजननिर्देशः | ,, |
| शोधनीयगणः | ,, |
| लौहमलनाशनगणः | २८९ |
| लौहकाठिन्यनाशकोयोगः | ,, |
| द्रावकवर्गः | ,, |
| क्षारादिकानां कार्यम् | ,, |

## एकादशोऽध्यायः ।

| | |
|---|---|
| रसशोधनादिकथनम् | २९० |
| मानपरिभाषा | ,, |
| मानपरिभाषायां मतान्तरम् | २९१ |
| अष्टादशसंस्काराः | २९२ |
| व्याधिविशेषेरसप्रयोगनिषेधः | २९३ |
| शुद्धमूर्च्छितरसगुणाः | ,, |
| मृतपारदगुणाः | ,, |
| रसदोषास्तेषां कार्याणि च | ,, |
| संस्कारार्थं पारदस्य परिमाणनिर्देशः | २९४ |
| स्वेदनसंस्कारः | २९५ |
| मर्दनसंस्कारः | २९६ |
| मूर्च्छनसंस्कारः | २९७ |
| उत्थापनसंस्कारः | २९८ |
| पातनसंस्कारः | २९९ |
| उर्ध्वाधः पातनयोः सङ्ख्या निर्देशः | ३०० |
| अधःपातनविधिः | ,, |
| पातने प्रकारान्तराणि | ,, |
| तिर्यक्पातनम् | ३०१ |
| मर्दनादीनां गुणाः | ३०२ |
| निरोधसंस्कारः | ,, |
| नियामनसंस्कारः | ३०४ |
| प्रकारान्तरम् | ३०५ |
| दीपनसंस्कारः | ,, |
| प्रकारान्तरेण दीपनम् | ३०६ |
| रसभावनादौ मूलिन्यः | ३०७ |
| सूतसंस्कारकार्यत्वनिर्देशः | ३०९ |
| रसबन्धनप्रतिज्ञा तस्य व्युत्पत्तिश्च | ,, |
| रसबन्धाः | ,, |
| हठबन्धः | ३१० |
| आरोटबन्धः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| आभासबन्धः | ३११ |
| क्रियाहीनबन्धः | ३१२ |
| पिष्टिकाबन्धः | ,, |
| क्षारबन्धः | ,, |
| खोटबन्धः | ३१३ |
| पोटबन्धलक्षणम् | ,, |
| कल्कबन्धलक्षणम् | ,, |
| कज्जलीबन्धलक्षणम् | ३१४ |
| सजीवबन्धलक्षणम् | ,, |
| निर्जीवबन्धलक्षणम् | ३१५ |
| निर्बीजबन्धलक्षणम् | ,, |
| सबीजबन्धलक्षणम् | ,, |
| शृङ्खलाबन्धलक्षणम् | ३१६ |
| द्रुतिबन्धलक्षणम् | ,, |
| बालकबन्धलक्षणम् | ३१७ |
| कुमारबन्धलक्षणम् | ,, |
| तरुणबन्धलक्षणम् | ३१८ |
| वृद्धबन्धलक्षणम् | ,, |
| मूर्तिबन्धलक्षणम् | ,, |
| जलबन्धलक्षणम् | ३१९ |
| अग्निबन्धलक्षणम् | ,, |
| सूतानां मूर्च्छाकल्पः | ,, |
| महाबन्धलक्षणम् | ३२१ |
| जलूकाबन्धः | ,, |
| क्रियाविशेषेण जलूकाया गुणविशेषः | ३२२ |
| जलूकायाः त्रिविधप्रमाणनिर्देशः | ,, |
| जलूकायाः संस्कारविशेषः | ३२३ |
| प्रकारान्तरेण जलूकानिर्माणम् | ३२३ |
| प्रकारान्तरम् | ३२४ |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| प्रकारान्तरम | ३२५ |
| प्रकारान्तरम् | ३२६ |
| योनिद्रावणम् | ,, |
| मदनवलयम् | ३२७ |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| पारदभस्म | ३२८ |
| प्रकारान्तरम | ,, |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| प्रकारान्तरम् | ३२९ |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| प्रकारान्तरम् | ३३० |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| रसभस्मविधिः | ३३१ |
| पारदभस्मनि पथ्यम् | ३३२ |
| पारदभस्मनि कुपथ्यम् | ,, |
| देवीशास्त्रोक्तककरादिगणः | ३३३ |
| श्रीकृष्णदेवोक्तककरादिगणः | ३३४ |
| ककारादिनिषेधस्यापवादः | ३३५ |
| पारदविकार उपायाः | ,, |
| रससेवने उपचारविधिः | ,, |
| **द्वादशोऽध्यायः ।** | |
| ज्वरचिकित्सा | ३३६ |
| रोगगणना | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वातज्वरलक्षणम् | ३३७ |
| पित्तज्वरलक्षणम् | ३३८ |
| कफज्वरलक्षणम् | ,, |
| द्विदोषजत्रिदोषजज्वरकथनम् | ३३९ |
| त्रैलोक्यसुन्दररसः | ३४० |
| त्रैलोक्यडम्बररसः | ३४१ |
| मेघनादरसः | ३४३ |
| ज्वरगजहरिरसः | ,, |
| दीपिकारसः | ३४४ |
| शीतभञ्जीरसः | ३४५ |
| प्रकारान्तरेण शीतभञ्जीरसः | ३४६ |
| मृतजीवनरसः | ३४७ |
| वृद्धज्वराङ्कुशरसः | ३४९ |
| महाज्वराङ्कुशरसः | ,, |
| मृत्युञ्जयरसः | ३५१ |
| सर्वज्वरादिरसः | ,, |
| चन्द्रसूर्यरसः | ३५२ |
| विषप्रयोगायोग्यनिर्देशः | ३५३ |
| उमाप्रसादनोरसः | ३५४ |
| ज्वराङ्कुशरसः | ३५५ |
| सर्वज्ञसुन्दरचिन्तामणिरसः | ३५६ |
| लोकनाथगुटिका | ३५७ |
| सूचिकाभरणरसः | ३५९ |
| शार्ङ्गेष्टादिवर्गः | ३६४ |
| सूचीमुखरसः | ३६५ |
| सन्निपातगजाङ्कुशरसः | ३६६ |
| चातुर्थिकहरो रसः | ३६७ |
| चातुर्थिकगजाङ्कुशरसः | ३६८ |
| मृत्युञ्जयरसः | ३६९ |
| पञ्चवक्त्ररसः | ,, |
| उन्मत्तरसः | ३७० |
| सन्निपाताञ्जनरसः | ,, |
| नस्यम् | ३७१ |
| प्रतापलङ्केश्वररसः | ,, |
| प्राणेश्वररसः | ३७३ |
| मृतसञ्जीवनरसः | ३७४ |
| द्वितीयमृतसञ्जीवनरसः | ३७५ |
| सन्निपातकुठाररसः | ३७६ |
| नवज्वरारिरसः | ३७७ |
| जलमञ्जरीरसः | ३७८ |
| कान्तरसः | ३७९ |
| चन्द्रोदयरसः | ,, |
| जीर्णज्वरारिरसः | ३८० |
| नवज्वरमुरारिरसः | ३८१ |
| **त्रयोदशोऽध्यायः ।** | |
| रक्तपित्तम् | ३८४ |
| रक्तपित्ताङ्कुशरसः | ३८५ |
| चन्द्रकलारसः | ३८६ |
| पटोलादियोगः | ३८८ |
| रसेन्द्रयोगः | ३८९ |
| अन्यश्च | ,, |
| नवनीतादियोगः | ,, |
| शिरोलेपः | ,, |
| द्राक्षादिक्काथः | ३९० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| योगद्वयम् | ३९० |
| सितामृता | ,, |
| **कासः** | ,, |
| कासनाशनरसः | ३९१ |
| कासहररसः | ,, |
| रक्तकारण्डरसः | ३९२ |
| भूताङ्कुशरसः | ३९३ |
| बोलबद्धरसः | ३९४ |
| अग्निरसः | ३९५ |
| स्वयमग्निरसः | ,, |
| सामान्योपायाः | ३९६ |
| मृङ्गराजयोगः | ,, |
| अर्कादियोगः | ,, |
| कासघ्नधूमद्वयम् | ,, |
| क्षयकासान्तकोयोगः | ३९८ |
| **श्वासः** | ,, |
| ऊर्द्ध्वश्वासादिः | ३९९ |
| सूर्यावर्तरसः | ,, |
| श्वासान्तकरसः | ४०० |
| श्वासारिवटकः | ४०१ |
| सप्तामृतावटी | ,, |
| नीलकण्ठरसः | ४०२ |
| श्वासकासकरिकेसरी रसः | ४०३ |
| सूर्यरसः | ४०४ |
| सामान्योपचाराः | ,, |
| **हिक्का** | ४०५ |
| हिक्कानाशनरसः | ४०७ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कज्जलयोगः | ४०७ |
| शिलापूतरसः | ,, |
| मन्थानभैरवरसः | ४०९ |
| विश्वादिवटिका | ४१० |
| सामान्योपचाराः | ४११ |
| तत्र रास्नादिक्षीरम् | ,, |
| हिक्काघ्नधूमः | ,, |
| गन्धपाषाणयोगः कफेभेषजविशेषनिर्देशश्च | ४१२ |
| **स्वरभङ्गः** | ,, |
| पर्पटीरसः | ४१३ |
| कफरोगे क्रियासूत्रम् | ४१७ |
| **चतुर्दशोऽध्यायः ।** | |
| राजयक्ष्मा | ,, |
| कनकसुन्दररसः | ४१८ |
| राजमृगाङ्करसः | ४२१ |
| शङ्खेश्वररसः | ,, |
| मृगाङ्कपोट्टलीरसः | ४२२ |
| मृगाङ्कपोट्टलीरसः | ४२३ |
| यक्ष्मणि औषधविशेषसेवनोपदेशः | ,, |
| पञ्चामृतोरसः | ४२४ |
| जयन्तीप्रयोगः | ,, |
| क्षयशामकरसः | ,, |
| लोकनाथरसः | ४२५ |
| वैद्यनाथरसः | ४२८ |
| लोकनाथरसः | ४२९ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| प्राणनाथरसः | ४३० |
| वज्ररसः | ४३१ |
| महावीररसः | ४३३ |
| अरुचिस्तस्या निदानम् | ४३५ |
| अरुचेः सलक्षणभेदाः | ,, |
| अरुचि-चिकित्सा | ,, |
| यवानीखाण्डवचूर्णम् | ,, |
| हृद्रोगः | ४३६ |
| वान्तिचिकित्सायां मातुलुङ्गादि योगः– | ४३७ |
| रम्भ्यादियोगः | ,, |
| पुनर्न्नवालकयोगौ | ४३८ |
| हृदयरोगः | ४३९ |
| हृद्रोग-चिकित्सा | ,, |
| दशमूलादिक्काथः | ,, |
| कङ्कुभार्यं चूर्णम् | ,, |
| हृदयार्णवोरसः | ४४० |
| नागार्जुनाभ्रम् | ,, |
| पञ्चाननरसः | ४४१ |
| तृष्णारोगः | ,, |
| तृष्णाहररसः | ४४२ |
| मदात्ययरोगः | ,, |
| राजावर्तरसः | ४४४ |
| द्वितीयराजावर्त्तरसः | ,, |
| भैरवनाथी पञ्चामृतपर्पटी | ४४५ |
| **पञ्चदशोऽध्यायः ।** | **४५०** |
| अर्शः | ,, |
| पित्तार्शोलक्षणम् | ४५१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वातार्शोलक्षणम् | ४५२ |
| अर्शःकुठाररसः | ४५३ |
| पित्तार्शोहररसः | ४५४ |
| सर्वलोकाश्रयरसः | ४५५ |
| अर्शोघ्नवटकम् | ४५६ |
| अर्शोघ्नी वटिका | ४५७ |
| मूलकुठाररसः | ४५८ |
| महोदयप्रत्ययसाररसः | ४६१ |
| कनकसुन्दररसः | ४६२ |
| अर्केशः | ४६४ |
| तीक्ष्णमुखरसः | ४६६ |
| अर्शःकुठाररसः | ४६७ |
| त्रैलोक्यतिलकरसः | ४६८ |
| सामान्योपचाराः | ४७२ |
| वचादिमोदकः | ,, |
| लौहादिचूर्णम् | ,, |
| श्लेष्मार्शांसि औषधविशेषनिर्देशः | ४७३ |
| अर्शोहरयोगः | ,, |
| देवदाल्दादिलेपः | ,, |
| अर्शःकुठारलेपः | ४७४ |
| अर्शोघ्नशौचः | ,, |
| दुर्नामहरोलेपः | ,, |
| अर्शोघ्नीवर्तिः | ,, |
| अर्कक्षीरादिलेपः | ४७५ |
| शिग्रुमूलादिलेपः | ,, |
| **षोडशोऽध्यायः ।** | **४७६** |
| उदावर्तः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| उदावर्तहरघृतम् | ४७७ |
| **अतिसारः** | ४७९ |
| दर्दुररसः | ४८० |
| द्वितीयदर्दुररसः | ४८१ |
| आनन्दभैरवरसः | ,, |
| सुधासाररसः | ४८२ |
| रसोत्तमः | ४८४ |
| स्वेदनीयन्त्रलक्षणम् | ४८५ |
| लोकेश्वररसः | ,, |
| लोकनाथरसः | ४८६ |
| नागसुन्दररसः | ,, |
| षण्णिष्कतैलम् | ४८८ |
| **सङ्ग्रहणी** | ४८९ |
| वज्रकपाटरसः | ,, |
| अग्निकुमाररसः | ४९० |
| कनकसुन्दररसः | ४९१ |
| ग्रहणीहररसः | ४९२ |
| चण्डसङ्ग्रहगदैककपाटरसः | ,, |
| लघुसिद्धाभ्रकरसः | ४९३ |
| सर्वरोगरसः | ४९४ |
| ग्रहणीगजकेसरीरसः | ४९७ |
| शीघ्रप्रभावरसः | ४९९ |
| पोट्टलीरसः | ५०० |
| वह्निज्वालावटीरसः | ५०१ |
| वज्रधररसः | ५०२ |
| ग्रहणीकपाटरसः | ,, |
| सौवर्चलादिचूर्णम् | ५०३ |
| मुस्तादिचूर्णम् | ५०४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सामान्योपायाः | ५०४ |
| वह्न्यादिचूर्णम् | ,, |
| दग्धशम्बूकादियोगः | ,, |
| अन्योपायः | ५०५ |
| **अजीर्णम्** | ,, |
| अजीर्णकण्टकरसः | ५०६ |
| विध्वंसरसः | ,, |
| विसूचीविजयरसः | ५०७ |
| अग्निकुमाररसः | ,, |
| वडवाग्निरसः | ५०८ |
| वैश्वानरपोटलीरसः | ५०९ |
| चराचरवटीलक्षणम् | ५१० |
| श्रेष्ठमध्यमाधमवराटिकायालक्षणम् | ५११ |
| पुंवराटलक्षणं तस्य दोषाश्च | ,, |
| वडवामुखी गुटी | ,, |
| कव्यादरसः | ५१२ |
| राजशेखरवटी | ५१४ |
| अग्निकुमाररसः | ५१५ |
| अमृतवटी | ५१६ |
| राक्षसनामारसः | ५१७ |
| जीवननामारसः | ५१८ |
| वडवानलरसः | ५१९ |
| अग्निजननीवटी | ५२० |
| सर्वरोगान्तका वटी | ,, |
| सामान्योपायः | ५२१ |
| **सप्तदशोऽध्यायः ।** | |
| मूत्रकृच्छ्राश्मर्यादिचिकित्सनम् | ५२३ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पाषाणभेदीरसः | ५२६ |
| द्वितीयपाषाणभेदीरसः | ५२७ |
| गोक्षुरादिचूर्णम् | ५२८ |
| त्रिविक्रमरसः | ,, |
| आनन्दभैरवी वटी | ५२९ |
| अश्मरीहरयोगः | , |
| यवक्षारप्रयोगः | ५३० |
| हरिद्राप्रयोगः | ,, |
| शिवोक्तयोगः | ,, |
| लघुलोकेश्वररसः | , |
| सामान्योपायः | ५३१ |
| गोक्षुरप्रयोगः | ,, |
| पाण्डूरादियोगः | ,, |
| शुक्लपिण्याकादियोगः | ५३२ |
| मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः | ,, |
| विदार्यादिकषायः | ,, |
| क्षारप्रयोगः | ५३३ |
| प्रमेहः | ,, |
| चन्द्रप्रभावटी | ५३९ |
| प्रमेहगजसिंहरसः | ५४० |
| महाविद्यागुटी | ५४१ |
| मेहध्वान्तविवस्वान् रसः | ५४२ |
| उमाशम्भुरसः | ५४४ |
| रसेन्द्रनागरसः | ५४६ |
| मेहशत्रुरसः | ५४७ |
| कासीसबद्धरसः | ५४८ |
| भीमपराक्रमरसः | ५४० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सञ्जीवन रसः | ५५१ |
| मेहमर्दनरसः | ५५२ |
| रामबाणरसः | ५५३ |
| राजमृगाङ्करसः | ५५५ |
| मेहहररसः | ५५७ |
| उदयभास्कररसः | ५५८ |
| हिमांशुरसः | ५६० |
| वसन्तकुसुमाकररसः | ५६१ |
| सर्वमेहान्तकरसः | ५६३ |
| मेहारिरसः | ,, |
| मेहबद्धरसः | ५६६ |
| हरिशङ्कररसः | ,, |
| वङ्गेश्वरो रसः | ५६७ |
| गुडमार्कण्डी | ,, |
| ताम्रयोगः | ५६८ |
| रक्तमेहे वङ्गप्रयोगः | ,, |
| शुक्रमेहे वङ्गप्रयोगः | ,, |
| मधुमेहे वङ्गप्रयोगः | ,, |
| शाल्मलिप्रयोगः | ५६९ |
| रक्तमेहे बोलबद्धरसोपदेशः | ,, |
| श्लैष्मातकक्वाथः | ,, |
| कुष्माण्डस्वरसप्रयोगः | ,, |
| स्त्रीणांरक्तस्रावे तौवरयोगः | ५७० |
| मेहकुठारो रसः | ,, |

## अष्टादशोऽध्यायः ।

| | |
|---|---|
| विद्रधिः | ५७१ |
| सर्वेश्वरपोट्टलीरसः | ५७२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सर्वामयहरो रसः | ५७५ |
| वरुणकषायः | ५७७ |
| शोभाञ्जनादिक्वाथः | ,, |
| **वृद्धिचिकित्सा** | ५७८ |
| वातारिरसः | ,, |
| सामान्योपायः | ५७९ |
| दार्वीप्रयोगः | ,, |
| वातारिरसस्य प्रयोगोपदेशः | ,, |
| तैलार्द्रकप्रयोगः | ५८० |
| आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलम् | ,, |
| आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलान्तरघृतञ्च | ,, |
| अन्त्रवृद्धौ मांसरसः | ५८१ |
| अन्त्रवृद्धौ द्वितीयमांसरसः | ,, |
| **गुल्मः** | ५८२ |
| गन्धकादिपोट्टलीरसः | ,, |
| गन्धकादिपोट्टल्याः प्रयोगान्तरम् | ५८३ |
| वङ्गेश्वररसः | ५८४ |
| शिखिवाडवरसः | ५८५ |
| दीप्तामररसः | ५८६ |
| विद्याधररसः | ,, |
| रक्तोदरकुठाररसः | ५८७ |
| वैश्वानररसः | ५८८ |
| अग्निकुमाररसः | ५८९ |
| सर्वाङ्गसुन्दररसः | ,, |
| गुल्मनाशनरसः | ५९२ |
| सामान्योपायः | ५९३ |
| तिलक्वाथः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| देवदार्वादिचूर्णम् | ५९३ |
| देवदालीपञ्चाङ्गचूर्णम् | ,, |
| तक्रासवः | ,, |
| एरण्डक्षारम् | ५९४ |
| शरपुङ्खादियोगः | ५९५ |
| वज्रक्षारप्रयोगः | ,, |
| काञ्चनीप्रयोगः | ,, |
| प्लीह्नि रक्तमोक्षणोपदेशः | ,, |
| **शूलचिकित्सा** | ५९६ |
| अग्निमुखरसः | ,, |
| त्रिनेत्ररसः | ५९८ |
| सौभाग्ययोगः | ५९९ |
| चिन्तामणिरसः | ,, |
| शूलकेसरीरसः | ६०० |
| मृतोत्थापनरसः | ६०१ |
| क्षारताम्ररसः | ६०३ |
| शूलान्तकर : | ६०४ |
| द्वितीयोऽग्निमुखरसः | ६०५ |
| द्वितीयत्रिनेत्ररसः | ६०६ |
| उदयभास्कररसः | ६०७ |
| शूलगजकेसरीरसः | ६०८ |
| द्वितीयक्षारताम्रम् | ६०९ |
| ताम्राष्टकम् | ६१० |
| वडवानलगुटिका | ,, |
| अग्निकुमाररसः | ६११ |
| शूलहरक्षारः | ६१३ |
| क्षारवटी | ६१४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सामान्योपायः | ६१४ |
| शम्बूकादिलौहम् | ,, |
| अथेन्द्रवारुणिकादिचूर्णम् | ६१५ |
| भूदार्वादियोगः | ,, |
| सद्यःशूलहरोयोगः | ,, |
| सद्यःशूलहरयोगद्वयम् | ६१६ |
| **कार्श्य-चिकित्सा** | ,, |
| अमृतार्णवरसः | ,, |
| पूर्णचन्द्ररसः | ६१७ |
| **स्थौल्यचिकित्सा** | ६१८ |
| वडवाग्निमुखरसः | ,, |
| स्थौल्ये पूर्वकृत्यनिर्देशः | ,, |
| मध्वार्द्रकप्रयोगः | ,, |
| अग्निकुमाररसः | ,, |
| **अम्लपित्त-चिकित्सा** | ६२३ |
| तत्रादौ अम्लपित्तलक्षणम् | ,, |
| लीलाविलासरसः | ,, |
| ताम्रद्रुतिरसः | ६२५ |
| कुष्माण्डखण्डलेहः | ६२७ |
| सामान्योपायः | ६२८ |
| वमनयोगः | ,, |
| विरेचनयोगः | ६२९ |
| **पित्तरोग-चिकित्सा** | ,, |
| पित्तान्तकरसः | ,, |
| दशसारचूर्णम् | ६३० |
| **एकोनविंशोऽध्यायः।** | |
| उदरादिचिकित्सा | ६३१ |
| जलोदरलक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वातोदरलक्षणम् | ६३२ |
| उदरभ्रंरसः | ६३३ |
| विनोदविद्याधररसः | ,, |
| सुरेचनकररसः | ६३४ |
| मृत्युञ्जयरसः | ,, |
| उदरे विरेचनविधिः | ६३६ |
| त्रैलोक्यसुन्दररसः | ,, |
| महावह्निरसः | ६३७ |
| गुडनागरप्रयोगः | ६३८ |
| वैश्वानररसः | ,, |
| उदयमार्त्तण्डरसः | ६३९ |
| सूर्यप्रभागुटिका | ६४० |
| वज्रक्षारम् | ,, |
| सामान्योपायाः | ६४२ |
| खदिरादियोगः | ,, |
| पिप्पलीप्रयोगः | ,, |
| **पाण्डुरोगः** | ६४३ |
| हंसमण्डूरः | ,, |
| कालविध्वंसनरसः | ६४४ |
| पञ्चाननरसः | ६४६ |
| आरोग्यसागररसः | ६४८ |
| पाण्डुपङ्कशोषणरसः | ६५० |
| पित्तपाण्डुरिरसः | ,, |
| त्रैलोक्यसुन्दररसः | ६५१ |
| त्रिनेत्राख्यरसप्रयोगः | ,, |
| जयपालरसः | ,, |
| देवदालीचूर्णम् | ६५२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पाण्डुहारीहरीतकी | ६५२ |
| विजयावटिका | ६५३ |
| टङ्कणादियोगः | ६५४ |
| कामला | ,, |
| कामलाप्रणुद्रसः | ,, |
| त्रियोनिरसः | ६५५ |
| कामेश्वररसः | ६५६ |
| सिन्दूरभूषणरसः | ६५७ |
| सुधापञ्चकरसः | ६५८ |
| मुस्तादिचूर्णम् | ,, |
| सामान्योपायः | ६५९ |
| **विंशोऽध्यायः ।** | |
| विसर्पजिद्रसः | ६६० |
| वसर्पनाशनतैलम् | ६६१ |
| विसर्पहरतैलम् | ,, |
| **कुष्ठरोगः** | ६६२ |
| गलत्कुष्ठलक्षणम् | ,, |
| श्वित्रकुष्ठलक्षणं भेदाश्च | ,, |
| वातकुष्ठहररसः | ६६३ |
| पित्तकुष्ठहररसः | ,, |
| कफकुष्ठहररसः | ६६४ |
| सन्निपातकुष्ठहररसः | ,, |
| विजयरसः | ६६५ |
| सर्वेश्वररसः | ६६६ |
| सुप्तकुष्ठारिरसः | ६६७ |
| प्रतापलङ्केश्वरः | ६६८ |
| कुष्ठनाशनरसः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कुष्ठजिद्रसः | ६६९ |
| तालेश्वररसः | ,, |
| महातालेश्वररसः | ६७१ |
| ककनसुन्दररसः | ६७२ |
| हरिबोलाङ्कुशरसः | ६७३ |
| त्रिपुरान्तकरसः | ,, |
| विश्वहितरसः | ६७४ |
| व्योषादिगुटिका | ६७५ |
| कुष्ठकुठाररसः | ६७६ |
| वज्रशेखररसः | ६७७ |
| दद्रुकुष्ठविद्रावणरसः | ६७९ |
| माणिक्यतिलकरसः | ,, |
| परहितरसः | ६८० |
| तालकेश्वररसः | ६८२ |
| खगेश्वररसः | ६८४ |
| कुष्ठनाशनरसः | ६८५ |
| आरोग्यवर्धिनी गुटिका | ,, |
| नारायणरसः | ६८७ |
| मेदिनीसाररसः | ६८८ |
| जन्तुघ्नीगुटिका | ६९० |
| धन्वन्तरिरसः | ६९१ |
| वज्रधाररसः | ६९२ |
| महातालेश्वररसः | ,, |
| कुष्ठकुठाररसः | ६९४ |
| स्वर्णक्षीररसः | ६९५ |
| त्रैलोक्यविजयतैलम् | ६९६ |
| कुष्ठान्तपर्पटीरसः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कासीसबद्धरसः | ६९७ |
| सर्वेश्वररसः | ६९८ |
| योगराजगुग्गुलुप्रयोगोपदेशः | ६९९ |
| श्वित्रारिरसः | ,, |
| चन्द्रप्रभावटिका | ७०० |
| किलासनाशनरसः | ७०१ |
| उदयादित्यरसः | ,, |
| अल्पश्वित्रे शिलादिलेपः | ७०३ |
| अङ्कोलतैलादिलेपद्वयम् | ,, |
| श्वित्रान्तकरसः | ७०४ |
| श्वेतारियोगः | ७०५ |
| कृष्णीकरणयोगः | ,, |
| श्वित्रकुष्ठारिरसः | ७०६ |
| लुह्यादितैलम् | ,, |
| आरग्वधादितैलम् | ,, |
| गन्धपिष्टीतैलम् | ७०७ |
| सर्वकुष्ठान्तकृत्तैलम् | ७०८ |
| कुष्ठविद्रावणतैलम् | ,, |
| वज्रतैलम् | ७०९ |
| महाभल्लातैलम् | ७१० |
| महामार्त्तण्डतैलम् | ,, |
| श्वित्रारितैलम् | ७१२ |
| कुष्ठारितैलम् | ,, |
| कुष्ठामयघ्नगणः | ७१३ |
| महानिम्बादिचूर्णम् | ,, |
| सर्वकुष्ठाङ्कुशचूर्णम् | ७१४ |
| श्वित्रनाशनचूर्णम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| श्वेतकुष्ठहरचूर्णम् | ७१४ |
| सामान्योपायः | ७१५ |
| सिध्मेगन्धपाषाणलेपः | ,, |
| सिध्मे वराटिकालेपः | ,, |
| दद्रुकुष्ठे मयूरक्षारादिलेपः | ७१६ |
| चर्मकुष्ठे पर्पटीरसप्रयोगविधिः | ,, |
| मेघनादाद्युद्वर्तनम् | ,, |
| निर्गुण्ड्यादिप्रलेपः | ७१७ |
| गुञ्जाद्युद्वर्तनम् | ,, |
| काञ्चन्यादिप्रयोगः | ७१८ |
| कुमार्यादिलेपः | ,, |
| महामुण्डीलेपः | ,, |
| कण्डूव्रणादिहरः शिलादिप्रलेपः | ,, |
| गन्धकादिप्रयोगः | ७१९ |
| कुष्ठविध्वंसनो लेपः | ,, |
| **कृमिचिकित्सा** | ७२० |
| क्रिमिलक्षणम् | ,, |
| अग्नितुण्डरसः | ,, |
| क्रिमिज्वरे आखुपर्णीप्रयोगः | ७२१ |
| क्रिमौ पर्पटीप्रयोगोपदेशः | ,, |
| कीटमर्दनरसः | ,, |
| कृमिघ्नरसः | ७२२ |
| क्रिमिहररसः | ,, |
| कृमिशूलहरो रसः | ७२३ |
| सूतभस्मप्रयोगः | ,, |
| **एकविंशोऽध्यायः ।** | |
| अष्टौ महारोगाः | ७२४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शीतवातलक्षणम् | ७२४ |
| वातारिरसः | ७२५ |
| विजयागुटिकाप्रयोगोपदेशः | ,, |
| शीतारिरसः | ७२६ |
| स्पर्शवातः | ,, |
| सर्वेश्वररसः | ७२७ |
| अर्केश्वररसः | ७२८ |
| स्पर्शवातघ्नरसः | ,, |
| गन्धाश्मगर्भरसः | ७२९ |
| द्वितीयगन्धाश्मगर्भरसः | ७३० |
| स्पर्शवातारिरसः | ७३१ |
| स्पर्शवातान्तकृद्वटी | ,, |
| स्पर्शवातारितैलम् | ७३२ |
| स्पर्शवाते राजवृक्षप्रयोगः | ७३३ |
| स्पर्शवाते चक्रमर्दादिः | ,, |
| अस्पर्शवाते त्रिगन्धप्रयोगः | ७३४ |
| अस्पर्शवाते हियावलीप्रयोगः | ,, |
| यवानीघृतम् | ,, |
| स्पर्शान्तकरोऽर्कदुग्धप्रयोगः | ,, |
| स्पर्शान्तको हल्यादियोगः | ७३५ |
| स्पर्शवाते रसेन्द्रलेपः | ,, |
| **रक्तवात-चिकित्सा** | ,, |
| रक्तवातलक्षणम् | ,, |
| सामान्योपायाः | ,, |
| त्रियोनिरसप्रयोगः | ,, |
| कोकिलाक्षादिकषायः | ७३६ |
| संशोधनोपदेशः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| रक्तवातेऽपथ्यम् | ७३६ |
| **आमवातः** | ,, |
| आमवातेवातारिरसप्रयोगोपदेशः | ,, |
| अनिलारियोगः | ७३७ |
| आमवातेएरण्डतैलप्रशंसा | ,, |
| **अपस्मारः** | ,, |
| पर्पटीरसप्रयोगविधिः | ७३८ |
| ब्राह्म्यादिनस्यम् | ,, |
| गवाक्ष्यादिनस्यम् | ,, |
| श्वेतापराजितादिनस्यम् | ७३९ |
| अपस्मारहरनस्यम् | ,, |
| अपस्मारहरो योगः | ,, |
| **उन्मादः** | ७४० |
| माहेश्वरधूपः | ,, |
| उन्मादे पर्पटीरसप्रयोगोपदेशः | ७४१ |
| उन्मादे उपचारविशेषाः | ,, |
| **एकाङ्गवातः** | ७४२ |
| वडवानलरसः | ,, |
| मार्त्तण्डेश्वररसः | ७४३ |
| चतुःसुधारसः | ७४५ |
| सर्ववातारिरसः | ७४७ |
| वातविध्वंसनरसः | ७४९ |
| वृकोदरगुटिका | ७५१ |
| प्रभावती वटी | ७५२ |
| स्वच्छन्दभैरवरसः | ७५३ |
| स्वच्छन्दभैरवरसः | ७५४ |
| वडवानलरसः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| त्र्यम्बकेश्वररसः | ७५५ |
| गगनगर्भा वटी | ७५६ |
| वातगजाङ्कुशरसः | ,, |
| शतावरी गुग्गुलुः | ७५७ |
| योगराज गुग्गुलुः | ७५८ |
| द्वितीयो योगराजगुग्गुलुः | ७६० |
| षडङ्गगुग्गुलुः | ७६१ |
| विजयभैरवतैलम् | ७६२ |
| द्वितीयविजयभैरवतैलम् | ,, |
| सूततैलम् | ७६३ |
| एरण्डतैलत्रिफलादिसिद्धघृतवानन्द भैरवोपदेशश्च | ७६४ |
| सामान्योपायाः | ,, |
| पर्पटरसप्रयोगविधिः | ,, |
| सर्जतैलम् | ७६५ |
| एकाङ्गवाते पर्पटीरसप्रयोगविध्यन्तरम् | ,, |
| धूमसारादिषडङ्गप्रयोगः | ,, |
| निर्गुण्डीप्रयोगः | ७६६ |
| रक्तैरण्डप्रयोगः | ,, |
| इन्द्रवारुणीप्रयोगः | ,, |
| सर्वाङ्गैकाङ्गवातारिरसः | ,, |
| वातरक्तः | ७६७ |
| अधिकारान्तरोक्तौषधप्रयोगोपदेशः | ,, |
| वातरक्तादिसर्वरोगे सर्वेश्वरी पर्पटी | ,, |
| **पित्तरोग-चिकित्सा** | ,, |
| चन्दनाद्यलेहः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अमृतप्राशचूर्णम् | ७६८ |
| ऐलेयकतैलम् | ७७० |
| ऐलेयसर्पिः | ७७१ |
| ऐलेयकप्रयोगः | ७७२ |
| **द्वाविंशोऽध्यायः ।** | |
| वन्ध्यादिचिकित्सा | ७७३ |
| वन्ध्यादोषभेदादिकथनम् | ,, |
| जयसुन्दररसः | ७७५ |
| रत्नभागोत्तररसः | ७७७ |
| चक्रिकाबन्धरसः | ७७८ |
| बर्धमानरसः | ७८० |
| द्रुतिसाररसः | ७८३ |
| समान्योपायाः | ७८५ |
| देवदालीप्रयोगः | ,, |
| शरपुङ्खाप्रयोगः | ७८६ |
| रुद्राक्षादिप्रयोगः | ,, |
| श्वेतकण्टकारीप्रयोगः | ,, |
| विष्णुक्रान्ताप्रयोगः | ७८७ |
| अश्वगन्धाप्रयोगः | ७८८ |
| शिवोक्ततान्त्रिकप्रयोगः | ,, |
| मृतवत्सालक्षणम् | ,, |
| शङ्करोक्तदेवव्यपाश्रयचिकित्सा | ,, |
| युक्तिव्यपाश्रये वन्ध्याकर्कटकीप्रयोगः | ७९१ |
| गर्भिणीरोगः | ,, |
| गर्भिणीरोगापनयन-गर्भपोषणसामान्योपायाः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| प्रथममासे पद्माकादिकल्कः | ७९१ |
| द्वितीयमासे नीलोत्पलादिकल्कः | ,, |
| तृतीयमासे श्रीखण्डादिकल्कः | ७९२ |
| तृतीयमासे नीलोत्पलादिकल्कान्तरम् | ,, |
| गर्भिणीज्वरहरः पाठादिकषायः | ,, |
| गर्भिणीज्वरहरश्छिन्नादिकषायः | ७९३ |
| गर्भिणीज्वरहरः पयस्यादिकषायः | ,, |
| गर्भिणीज्वरहानिः | ७९४ |
| गर्भिण्यतीसारहरो वृक्षकत्वगादिकषायः | ,, |
| गर्भिण्यतिसारहरौ श्रीपर्ण्यादिबलादिक्काथौ | ,, |
| गर्भिण्युदावर्त्तादिहरः पुनर्नवादिकषायः | ,, |
| गर्भिण्याः शोथहरोपायः | ७९५ |
| गर्भिणीशोथहरः पुनर्नवादिलेपः | ,, |
| गर्भिण्युदावर्त्तादिहरोवर्षाभूक्काथः | ,, |
| गर्भिण्याः पित्तार्तिहरोयष्टिकादिक्काथः | ,, |
| गर्भिण्याः श्वासकासहरस्तिक्तकादिकषायः | ७९६ |
| गर्भिणीकासे मरिचप्रयोगः | ,, |
| गर्भिण्या वान्तौ लाजादिकषायः | ,, |
| गर्भिण्या हिक्कायां बालबिल्वादिक्काथः | ,, |
| गर्भिण्या अग्निमान्द्ये अजमोदादिचूर्णम् | ,, |
| गर्भिण्या वातरोगे बालबिल्वादिसाधितक्षीरप्रयोगः | ७९७ |
| गर्भिण्या मूत्ररोगे श्वदंष्ट्रादिकषायः | ,, |
| गर्भिण्या मासानुमासिकयोगाः | ,, |
| मूढगर्भचिकित्सा | ८०० |
| अन्तर्मृतापत्यायां लक्षणम् | ,, |
| मूढगर्भाया असाध्यलक्षणम् | ,, |
| गर्भप्रसवसामान्योपायाः | ८०१ |
| तत्र करञ्जबीजादिप्रलेप अहिनिर्मोकस्नुहीक्षीरौ च | ,, |
| हलिनीप्रयोगः | ,, |
| यष्टिकादिकल्कः | ,, |
| लाङ्गल्यादिलेपः | ८०२ |
| मातुलुङ्गीरम्भाप्रयोगौ | ,, |
| सिद्धार्थादिवस्तिः | ,, |
| सिद्धार्थकानुवासनम् | ,, |
| **सूतिका-चिकित्सा** | ८०३ |
| पर्पटीरसः | ,, |
| सूतिकारोगनाशनरसः | ,, |
| सौभाग्यशुण्ठी | ,, |
| सामान्योपायाः | ८०५ |
| तत्रादौ कैरण्टकादिक्काथः | ,, |
| पञ्चमूलक्काथः | ,, |
| भूनिम्बादितैलम् | ,, |
| **योनिव्यापच्चिकित्सा** | ८०६ |
| योनिशूलहरोनिर्गुण्ड्यादिप्रयोगः | ,, |
| प्रसंसिन्यां कारलीकन्दप्रयोगः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शिथिलयोनौ इन्द्रगोपप्रयोगः | ८०६ |
| विवृतायां माकन्दमूलादिलेपः | ,, |
| श्रीपर्णीतैलम् | ८०७ |
| **बालरोगः** | ,, |
| माहेश्वरधूपः | ,, |
| विजयधूपः | ८०८ |
| ग्रहनाशिनीगुटिका | ,, |
| सामान्योपायाः | ८०९ |
| कणास्वर्णप्रयोगः | ,, |
| सद्योजातबालस्य संज्ञाजननोपायः | ,, |
| सद्योजातबालस्य ज्वरादिनिवारणोपायः | ,, |
| पित्तज्वरे रोहिणीक्षीरम् | ,, |
| पित्तज्वरे अश्वत्थक्षीरम् | ८१० |
| गन्धोत्पलजटादिकल्कः | ,, |
| सहदेव्यादिचूर्णम् | ,, |
| न्यग्रोधादिक्काथः | ,, |
| रक्तातिसारहरचूर्णम् | ८११ |
| सक्षीरबोलप्रयोगः | ,, |
| मूत्रविड्ग्रहहरं मधुकादि | ,, |
| यष्ट्यादिघृतम् | ,, |
| शङ्खनाभ्यादिवर्तिः | ८१२ |
| अश्वगन्धाघृतम् | ,, |
| तालुकण्टलक्षणम् | ,, |
| तालुकण्टकचिकित्सा | ८१३ |
| गुदकीटस्य निदानलक्षणे | ,, |
| गुदकीटचिकित्सा | ८१४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| गुदपाकचिकित्सा | ८१४ |
| मुखपाकचिकित्सा | ८१५ |
| नाभिपाकचिकित्सा | ,, |
| कुण्डलचिकित्सा | ,, |
| बालपञ्चामृतम् | ८१६ |
| तिक्ताद्यं घृतम् | ,, |
| राजीकुष्ठादि लेपः | ,, |
| छिन्नातैलम् | ८१७ |
| स्फूर्जकादितैलम् | ,, |
| निम्बादिघृतं क्षीरञ्च | ,, |
| **त्रयोविंशोऽध्यायः।** | |
| **उन्मादरोगः** | ८१८ |
| उन्मादस्य निदानसम्प्राप्ती | ,, |
| उन्मादलक्षणम् | ८१९ |
| उन्मादचिकित्सा | ,, |
| ग्रहघ्नधूपः | ,, |
| सामान्योपायाः | ,, |
| अर्कमूर्तिरसस्यप्रयोगविधिः | ,, |
| निर्गुण्डिकादितैलम् | ८२० |
| **अपस्मारः** | ,, |
| अपस्मारसम्प्राप्तिलक्षणे | ,, |
| अपस्मारचिकित्सा | ८२१ |
| अपस्मारनाशनरसः | ,, |
| नवाङ्गवटिका | ८२२ |
| सूतकप्रत्ययः | ,, |
| सर्वेश्वररसः | ८२३ |
| धूस्तूरपञ्चाङ्गघृतम् | ८२४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| चूर्णाञ्जनम् | ८२४ |
| मसीयोगः | ,, |
| तिलजदीपाञ्जनम् | ८२५ |
| चण्डभैरवरसः | ,, |
| पर्पटीरसप्रयोगविधिः | ८२६ |
| पर्पटीरसस्य प्रकारान्तरेण सेवनोपदेशः | ,, |
| नेत्ररोगाणां संख्या | ,, |
| नेत्ररोग-चिकित्सा | ८२७ |
| ताम्रवर्तिः | ,, |
| ताम्रद्रुतिः | ,, |
| ताम्रद्रुतिः | ,, |
| ताम्रद्रुतिः | ८२९ |
| गन्धकद्रुतिः | ८३० |
| गरुडाञ्जनम् | ८३१ |
| तिमिरहराञ्जनम् | ८३२ |
| पटलहराञ्जनम् | ,, |
| रक्ताञ्जनम् | ८३३ |
| शम्बूकादिवर्तिः | ,, |
| नक्तान्ध्ये पञ्चाङ्गगुटिका | ,, |
| नवनेत्रदात्रीवर्तिः | ८३४ |
| नयनरोगहरा वर्तिः | ,, |
| शिग्रुतैलम् | ८३५ |
| नागादिवर्तिः | ,, |
| वाताभिष्यन्दे इन्द्रादिवर्तिः | ,, |
| श्लेष्माभिष्यन्दे शुल्वादिवर्तिः | ८३६ |
| त्रिदोषाभिष्यन्दे रसेन्द्रवर्तिः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पित्ताभिष्यन्दे तीक्ष्णादिवर्तिः | ८३७ |
| पित्ताभिष्यन्दे नागादिवर्तिः | ,, |
| ताम्रादिवर्तिः | ,, |
| पारदादिवर्तिः | ८३८ |
| एकत्रिंशाङ्गवर्तिः | ,, |
| षडङ्गवर्तिः | ८३९ |
| द्वादशाङ्गवर्तिः | ,, |
| पटलहरेन्द्ररसः | ८४० |
| स्वर्णादिवर्तिः | ,, |
| विशाल्याञ्जनम् | ,, |
| पुष्पहराञ्जनम् | ८४१ |
| शिग्रुमूलाद्याश्च्योतनम् | ,, |
| नेत्रशूलघ्नमाश्च्योतनम् | ,, |
| पौनर्नवाञ्जनम् | ,, |
| नेत्रजलस्रावहरोयोगः | ,, |
| वक्रोमहराञ्जनञ्च | ,, |
| नृकपालाञ्जनम् | ८४२ |
| काचान्यहराञ्जनम् | ,, |
| रात्र्यन्धहराञ्जनम् | ,, |
| अभिष्यन्दहरो योगः | ८४३ |
| रात्र्यन्धे व्योषाञ्जनम् | ,, |
| रात्र्यन्धे मरिचाञ्जनम् | ,, |
| तिमिरहराञ्जनम् | ,, |
| **चतुर्विंशोऽध्यायः ।** | **८४५** |
| कर्णरोगः | ,, |
| कर्णरोगनामानि | ,, |
| कर्णरोगचिकित्सा | ८४६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कर्णरोगहरी वज्रादिवटिका | ८४६ |
| कर्णमयघ्नतैलम् | ,, |
| क्रिमिकर्णारितैलम् | ८४७ |
| सामान्योपायाः | ,, |
| कर्णशूले लवणार्द्रकप्रयोगः | ,, |
| कर्णशूले तिलपर्णीप्रयोगः | ,, |
| अर्कपत्रप्रयोगः | ,, |
| लशुनरसप्रयोगः | ,, |
| पूयहरो मेघनाद स्वरसः | ८४८ |
| बाधिर्यहरं रुषत्यादिचूर्णम् | ,, |
| कर्णमूलस्फोटहरः केतकादिलेपः | ,, |
| कर्णगलादिस्फोटहरः पुत्रजीवलेपः | ,, |
| गोमक्षिकानिःसारणार्थं तगर-चर्वणादिकम् | ,, |
| कर्णपालीवर्धको मुषलीप्रयोगः | ८४९ |
| कर्णवर्धकचर्मचेटप्रयोगः | ,, |
| कर्णवृद्धिकरोवराहतैलप्रलेपः | ,, |
| नासारोगाः | ८५० |
| मणिपर्पटीरसः | ,, |
| पूयासलक्षणम् | ८५१ |
| सामान्योपायः | ,, |
| कुङ्कुमादिनस्यम् | ८५२ |
| कामलाहराञ्जनम् | ,, |
| कामलाहरमञ्जनान्तरम् | ,, |
| मुखरोगाः | ,, |
| मुखरोग-चिकित्सा | ८५३ |
| ताप्यादिवटी | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| धातुबद्धरसगुटिका | ८५३ |
| महासरस्वतीचूर्णम् | ८५५ |
| मुखरोगादिगलगण्डमालारोगाणां सामान्योपायाः | ,, |
| गलकीलके आमलकप्रयोगः विषतिन्दुकादि वटी च | ,, |
| गलकीलके सैन्धवप्रयोगः | ८५६ |
| गलकीलके भल्लातकप्रयोगः | ,, |
| दन्तदार्ढ्यकरोजिह्वापूतिगन्धहरश्च जयाप्रयोगः | ,, |
| मुखपाके पर्पटीरसः | ,, |
| मुखशोषे महाराष्ट्री गुटिका | ८५७ |
| सामान्योपायाः | ,, |
| मुखवैवर्ण्ये पुनर्नवाद्युद्वर्तनम् | ,, |
| नीलिकायां रजन्यादिलेपः | ,, |
| मुखवैवर्ण्ये वङ्गभस्मप्रयोगः | ८५८ |
| मुखवैवर्ण्यादौ मातुलुङ्गादिप्रलेपः | ,, |
| मञ्जिष्ठादिप्रलेपः | ,, |
| मुखदौर्गन्ध्यनाशिनी कुष्ठादिवटी | ,, |
| मुखदौर्गन्ध्ये गृहधूमकाथः | ८५९ |
| मुखदौर्गन्ध्ये पथ्यादि वटिका | ,, |
| मुखवैरस्ये लाजादिचूर्णम् | ,, |
| उपजिह्वायां निर्गुण्डयादियोगः | ,, |
| कृमिदन्ते अभयादिगुटिका | ८६० |
| कृमिदन्ते वासीसादिगुटिका | ,, |
| कृमिदन्ते विशालाधूमः | ,, |
| चलदन्ते जात्यादिदन्तधावनम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्कः |
|---|---|
| चलदन्ते मूलकबीजप्रयोगः | ८६१ |
| मुखवैरस्ये आरनालगण्डूषः | ,, |
| सुखदो गण्डूषः | ,, |
| कण्ठशालूकादौ पारदादिप्रलेपः | ,, |
| गलकोलेसैन्धवप्रयोगः | ८६२ |
| गलरोगे मण्डूरलेपः | ,, |
| अपचीगण्डमालाचिकित्सा | ,, |
| गण्डमालायां ब्रह्मदण्डीयमूल-प्रयोगः | ८६३ |
| गण्डमालायां गन्धकादिप्रयोगः | ,, |
| गण्डमालायां जैपालप्रयोगः | ,, |
| चलदन्ते हेमतारादिगुटिका | ८६४ |
| चलदन्ते धातुबद्धरसगुटिकोपदेशः | ,, |
| **शिरोरोगाणां नामानि** | ,, |
| शिरोरोगचिकित्सा | ८६५ |
| शिरोरोगारिरसः | ,, |
| मस्तकरोगाणां सामान्योपायाः | ,, |
| अर्द्धावभेदके गिरिकर्णीप्रयोगः | ,, |
| गुडादिनस्यम् | ,, |
| मरिचप्रयोगः | ,, |
| शिरः शूले कुङ्कुमादिनस्यम् | ८६६ |
| अर्धशूले मरिचप्रयोगः | ,, |
| यूकालिक्षायां पारदप्रयोगः | ,, |
| दारुणतैलम् | ,, |
| केशपाते हरिद्रादिलेपः | ८६७ |
| दृढकेशकरो जातिपुष्पादिप्रलेपः | ,, |
| केशपाते शृङ्गयादितैलम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्का |
|---|---|
| इन्द्रलुप्ते भल्लातादिलेपः | ८६८ |
| इन्द्रलुप्ते गुञ्जाप्रयोगः | ८६८ |
| सूर्यावर्तादौ अभ्रादिवटिका | ,, |
| पलितादौ कटुतैलनस्यम् | ८६९ |
| खालित्ये स्नुह्यादितैलं विषतैलञ्च | ,, |
| व्रणस्यभेदनिर्देशः | ८७० |
| जात्यादिघृतम् | ,, |
| सामान्योपायाः | ८७१ |
| व्रणशोधनरोपणार्थंशुल्वादिप्रयोगः | ,, |
| व्रणरोपणार्थं पटोलादिलेप | ,, |
| व्रणरोपणार्थं निम्बपत्रादिप्रयोगः | ,, |
| व्रणरोपणे अपामार्गप्रयोगः | ,, |
| व्रणरोपणे गुडटङ्कणवर्त्तिः | ८७२ |
| दूषितव्रणलेखनार्थं पारदादिप्रयोगः | ,, |
| **भग्नस्य भेदनिर्देशः** | ,, |
| भग्नेपर्पटीरसप्रयोगविधिः | ८७३ |
| भग्ने वज्रीलेपः कान्तपाषाणलेपश्च | ,, |
| भगन्दरलक्षणम् | ,, |
| भगन्दरस्य निरुक्तिः | ,, |
| रविताण्डवरसः | ८७४ |
| सामान्योपायाः | ८७५ |
| कर्तव्यनिर्देशः | ,, |
| लाङ्गल्यादिप्रलेपः | ,, |
| कालाग्निरसः | ,, |
| चक्रिकाबद्धरसप्रयोगोपदेशः | ,, |
| स्फोटने चतुरङ्गलेपः | ८७६ |
| स्फोटने हरिद्रादिप्रलेपः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शोषणे नरास्थितैलप्रयोगः | ८७६ |
| शोधनरोपणे ताम्रभस्मप्रयोगः | ८७७ |
| रोपणे मार्जारास्थिप्रलेपः | ,, |
| भगन्दरव्रणक्षालने त्रिफलाकषायः | ८७७ |
| भूतलोत्थचूर्णप्रयोगः | ,, |
| कुक्कुरास्थिलेपः | ,, |
| ग्रन्थिलक्षणं व्युत्पत्तिश्च | ८७८ |
| मेदोग्रन्थौ अरिमेदादिभस्मलेपः | ,, |
| मेदोवृद्धौ गुडूच्यादिः | ,, |
| गण्डमालायामुदयभास्करः | ,, |
| कालस्फोटादौ पुत्रजीवप्रलेपः | ८७९ |
| सन्धिग्रन्थौ रक्तस्रावविधिः | ,, |
| कक्षग्रन्थ्यादौ पुत्रजीवप्रयोगः | ८८० |
| कालस्फोटे गुञ्जापत्रादिचूर्णम् | ,, |
| कालस्फोटे विष्णुक्रान्तादिप्रलेपः | ,, |
| ग्रन्थ्यादौ पुनर्नवादिप्रलेपः | ,, |
| अर्बुदभेदः | ८८१ |
| अर्बुदहररसः | ,, |
| सामान्योपायाः | ,, |
| गण्डमालापचीलक्षणम् | ८८२ |
| गण्डमालायां सुरवारुण्यादियोगः | ८८३ |
| गण्डमालायामर्कक्षीरादिलेपः | ,, |
| अपच्यां गिरिकर्णिकाप्रयोगः | ८८४ |
| गण्डमालायां छुछून्दरी तैलम् | ,, |
| गण्डमालायां सहदेवीप्रयोगः | ,, |
| अपच्यादौ गुञ्जादिलेपः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| **पञ्चविंशोऽध्यायः ।** | |
| क्षुद्ररोगाणां नामानि | ८८५ |
| क्षुद्ररोगे पर्पटीप्रयोगविधिः | ८९५ |
| व्यङ्गे शशरुधिरप्रयोगः—जातिफल-प्रयोगश्च | ,, |
| व्यङ्गे इक्षुदीमज्जप्रयोगः | ,, |
| कुनखे स्नुहीक्षीरादिप्रलेपः | ,, |
| कुनखे अभयाप्रयोगः | ८९६ |
| कुनखे कुष्ठादिप्रलेपप्रयोगः | ,, |
| कुनखे पुत्रजीवप्रयोगः | ,, |
| कक्षाग्रन्थौ शिग्रुप्रयोगः | ,, |
| कक्षाग्रन्थौ विषादिलेपः | ,, |
| स्तनविद्रधौ क्रियाक्रमः | ,, |
| स्तनविद्रधिस्फोटने एकवीरप्रयोगः | ८९७ |
| स्तनविद्रधिरोपणे यष्ट्यादिचूर्णम् | ,, |
| स्तनविद्रधिरोपणे दारुवर्त्तिः | ,, |
| **लिङ्गरोग-चिकित्सा** | ८९८ |
| बोलप्रयोगः | ,, |
| लिङ्गपाके उडुम्बरादिक्षालनम् | ,, |
| लिङ्गपाके जीरकप्रयोगः | ,, |
| लिङ्गपाके महाशङ्खप्रयोगः | ,, |
| लिङ्गपाके घोण्टादिलेपः | ,, |
| लिङ्गपाके गन्धप्रयोगः | ८९९ |
| लिङ्गपाके निम्बादिचूर्णम् | ,, |
| लिङ्गव्रणरोपणे सैन्धवप्रयोगः | ,, |
| लिङ्गव्रणादौ शिग्रुप्रयोगः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| लिङ्गादिग्रन्थौ कुष्ठादिलेपः | ८९९ |
| गुह्यादिगतपीटिकायामश्वत्थादि प्रलेपः | ९०० |
| लिङ्गादिपिडकायां वाकुचीचित्रक प्रयोगः | ,, |
| लिङ्गादिपिडकायां सर्षाक्षीप्रयोगः | ,, |
| उपदंशहरो धूपः | ,, |
| कण्डूवादौ काञ्चनीप्रयोगः | ९०१ |
| पामायां शाखोटकक्वाथः | ९०२ |
| पादकण्डूहरयोगः | ,, |
| पाददाहे तिलादिचूर्णम् | ,, |
| पादकण्डूहरं प्रयोगान्तरम् | ,, |
| पादस्फुटने पथ्यामर्दनम् | ,, |
| कदरे यवचिञ्चादिकषायः | ९०३ |
| विपादिकायां गुडादिप्रलेपः | ,, |
| विपादिकायां मदनादिप्रलेपः | ,, |
| विपादिकायां मदनादिप्रलेपः | ,, |
| कण्डूवादौ रसादिप्रलेपः | ,, |
| **स्वरभङ्गे** | ९०४ |
| धात्रीफलस्वरसप्रयोगः | ,, |
| स्वरभङ्गे देवदार्वादिचूर्णम् | ,, |
| गलदाहे सैन्धवादि चूर्णम् | ९०५ |
| गलदाहे करञ्जमज्जापथ्याप्रयोगः | ,, |
| स्तनवर्द्धने स्नेहनस्यम् | ,, |
| स्तनव्रणेकुरूवकतैलम् | ९०६ |
| स्तनविद्रधौ शुल्वप्रयोग | ,, |
| स्नायुके कुम्भीप्रयोगः | ९०७ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| भस्मकलक्षणम् | ९०७ |
| श्लीपदस्य सम्प्राप्तिलक्षणे | ,, |
| श्लीपदहररसः | ,, |
| श्लीपदहरलेपः | ९०८ |
| वल्मीकेपित्तलभस्मप्रयोगः | ,, |
| स्थौल्येविडङ्गादिचूर्णम् | ९१० |
| स्थौल्येत्रिफलादिपत्रादिकषायौ | ,, |
| विपरीतरतिजव्याधिलक्षणम् | ,, |
| विपरीतरतिजव्याधिप्रतीकारः | ९११ |
| उपदंशादिप्रतीकारः | ,, |
| सर्वरक्तविकारे उपायः | ९१२ |
| अस्थिभग्नेलाक्षादिप्रलेपः | ,, |
| स्नायुकेअस्पर्शारिप्रयोगोपदेशः | ,, |
| *योनिव्यापन्नदानम्* | ,, |
| योनिव्यापत्सुपिष्टीयोगः | ,, |
| योनिशूलेनिम्बादिगोलकम् | ९१३ |
| योनिरोगेसोमराज्यादिप्रलेपः | ,, |
| योनिकृमिशूलेरसोनादिप्रलेपः | ,, |
| मञ्जिष्ठादिघृतम् | ,, |
| रजोनाशेत्रियोनिरसप्रयोगविधिः | ९१४ |
| पुष्परोधहरयोगत्रयम् | ,, |
| पुष्परोधरक्तगुल्महरयोगद्वयम् | ९१५ |
| पुष्परोधे चणकप्रयोगः | ,, |
| पुष्परोधे गुडव्योषादिचूर्णम् | ,, |
| गर्भाजनने धुस्तूरप्रयोगः | ९१६ |
| गर्भाजनने सैन्धवप्रयोगः | ,, |
| गर्भस्रावणे चूर्णप्रयोगः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| गर्भस्रावणे एरण्डप्रयोगः | ९१६ |
| गर्भस्रावणे चित्रकप्रयोगः | ,, |
| अतिरक्तस्रावेशरपुङ्खाप्रयोगः | ,, |
| अतिरक्तस्रावे अर्कमूर्तिरसप्रयोगविधिः | ,, |
| योनिशूलहरयोगद्वयम् | ९१८ |
| रजोदोषे व्योषादितैलम् | ,, |
| पुष्यानुगं चूर्णम् | ,, |
| विविधविषनिर्देशः | ९१९ |
| विष-चिकित्सा | ,, |
| मेघनादप्रयोगः | ,, |
| सूतशतावरीयोगः | ,, |
| सूतसोमराजीयोगः | ९२० |
| अभ्रकादिप्रलेपः | ,, |
| लूताविषेसूतभस्मप्रयोगः | ,, |
| महासर्पविषे नागदमनप्रयोगः | ९२१ |
| पद्माङ्गशिरीषप्रयोगः | ,, |
| अश्वगन्धावन्द्याप्रयोगौ | ,, |
| वृश्चिकविषेव्योषादितैलम् | ,, |
| मृतसञ्जीवनम् | ,, |
| आखुविषेशिरीषप्रयोगः | ९२२ |
| सर्पविषे देवदार्वादियोगः | ,, |
| सर्पविषे टङ्कणप्रयोगः | ,, |
| वृश्चिकविषे मनोह्वादिगुलिका | ९२३ |
| वृश्चिकविषे पलाशबीजगुलिका | ,, |
| गरविषे कनकादिवटी | ,, |
| सविषान्ने वृक्षाम्रादियोगः | ,, |
| तार्क्ष्यसूतः | ९२४ |
| विषहररसः | ,, |
| **षड्विंशोऽध्यायः ।** | |
| जरारोग-चिकित्सा | ९२५ |
| रसायनगुणाः | ,, |
| जरायानिदानम् | ,, |
| वार्धक्यहररसायनम् | ,, |
| उदयादित्यरसः | ९२६ |
| सर्वरोगहररसयानम् | ९२७ |
| मासिकरसायनम् | ,, |
| षाण्मासिकरसायनम् | ९२८ |
| पाक्षिकरसायनम् | ९२९ |
| हेमादिरसायनम् | ,, |
| पिप्पल्यादिरसायनम् | ,, |
| अष्टमासिकरसायनम् | ९३० |
| त्रिवार्षिकरसायनम् | ९३१ |
| षष्ठ्यधिकत्रिशतवर्षायुष्करसायनम् | ९३२ |
| सहस्रवर्षायुष्कररसायनम् | ,, |
| त्रिफलारसायनम् | ९३३ |
| द्वितीयत्रिफलारसायनम् | ,, |
| तृतीयत्रिफलारसायनम् | ९३४ |
| षडङ्गरसायनम् | ,, |
| वार्षिकरसायनम् | ,, |
| कुष्ठादिहररसायनम् | ९३५ |
| ज्योतिष्मतीतैलरसायनम् | ,, |
| सर्वरोगान्तकरसायनम् | ९३६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कान्तरसायनम् | ९३६ |
| अन्यत् त्रिफलारसायनम् | ९३७ |
| द्वितीयकान्तरसायनम् | ९३८ |
| तृतीयकान्तरसायनम् | ,, |
| कान्ताभ्रकरसायनम् | ९३९ |
| पाठादिघृतम् | ९४० |
| ताप्यादिवटकः | ,, |
| कमलाविलासरसः | ९४१ |
| लक्ष्मीविलासरसः | ९४२ |
| सौश्रुतनारिकेलप्रयोगः | ९४३ |
| **सप्तविंशोऽध्यायः ।** | |
| वाजीकरणम् | ९४५ |
| वाजीकरणगुणाः | ,, |
| वाजीकरणस्य निरुक्तिः | ,, |
| शुक्रक्षयस्य निदानम् | ,, |
| वाजीकरणयोगोपदेशे प्रतोज्ञा | ,, |
| वाजीकरणप्रयोगे पूर्वकृत्यम् | ९४६ |
| कामकलाख्यरसः | ,, |
| कामदेवरसः | ९४७ |
| मदनसुन्दररसः | ९४८ |
| पूर्णचन्द्ररसः | ९४९ |
| मदनमुन्मद्ररसः | ,, |
| कुसुमायुधः | ९५१ |
| सूतेन्द्ररसः | ९५३ |
| मदनकामदेवरसः | ९५४ |
| कामधेनुरसः | ९५६ |
| महाभ्रसत्त्वम् | ९५८ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| उमापतिरसः | ९५९ |
| महाकनकसुन्दररसः | ९६० |
| अमृतार्णवरसः | ९६१ |
| मदनसञ्जीवनरसः | ९६४ |
| पुष्पधन्वारसः | ९६५ |
| रसेन्द्रचूडामणिः | ९६६ |
| पूर्णचन्द्ररसः | ९६८ |
| महाकल्कः | ,, |
| मदनमोदकः | ९७२ |
| कामेश्वरमोदकः | ९७३ |
| वाजीकरणेसामान्योपायाः | ९७४ |
| मधुकप्रयोगः | ,, |
| शृङ्गीप्रयोगः | ९७५ |
| स्वयङ्गुप्तादिचूर्णम् | ,, |
| तिलप्रयोगः | ,, |
| सिन्दूररसः | ,, |
| कार्श्यहरयोगः | ९७६ |
| कार्श्यहरयोगत्रयम् | ,, |
| लिङ्गलेपाः, द्रावणञ्च | ९७७ |
| द्रावणे सूतप्रयोगः | ,, |
| सिन्दूरमधुलेपः | ,, |
| स्तम्भने कृकवाकुप्रयोगः | ,, |
| कर्पूरादिप्रलेपः | ९७८ |
| पुण्डरीकप्रयोगः | ,, |
| मदनजीवनः | ,, |
| **अष्टविंशोऽध्यायः ।** | |
| लोहकल्पः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| रसस्य प्राधान्यकीर्तनम् | ९७९ |
| रसभेदाः | ,, |
| पानीयकषायविधिः | ,, |
| स्वर्णरौप्यशोधनम् | ,, |
| ताम्रशोधनम् | ,, |
| वङ्गनागयोः शोधनम् | ९८० |
| कान्तलोहस्य लक्षणम् | ,, |
| कान्तलोहस्य शोधनम् | ,, |
| धातूनां सामान्यमारणम् | ९८१ |
| स्वर्णमारणम् | ,, |
| रौप्यताम्रमारणम् | ,, |
| वङ्गसीसकमारणम् | ८२९ |
| सीसकस्यमारणान्तरम् | ,, |
| लोहमारणम् | ९८३ |
| असम्यङ्मारितलोहस्यलक्षणम् | ,, |
| निरुत्थलोहस्य लक्षणम् | ,, |
| निरुत्थलोहस्य परीक्षा | ९८४ |
| अनिरुत्थलोहस्य मारणम् | ,, |
| मृत्युहारी रसः | ,, |
| लोहकल्पः | ९८६ |
| लोहमारणप्रकारः | ९८७ |
| लोहकल्पः | ९८८ |
| लोहकल्पेदन्त्यादिगणः | ९९४ |
| ताम्रद्रुतिसंज्ञकोलोहकल्पः | ,, |
| क्षयादौ खण्डखाद्याख्यलोहकल्पः | ९९५ |
| धातुभस्मनां पृथक्पृथक् तत्तद्रोगेषु प्रयोगः | ९९६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| प्रथमद्वितीयलोहकल्पौ | ९९३ |
| तृतीयलोहकल्पः | ,, |
| चतुर्थीलोहकल्पः | ९९७ |
| पञ्चमो लोहकल्पः | ,, |
| षष्ठलोहकल्पः | ,, |
| शूलेसप्तमलोहकल्पः | ९९८ |
| जीर्णज्वरादौ अष्टमोलोहकल्पः | ,, |
| क्षयादौनवमो लोहकल्पः | ९९९ |
| विविधरोगे दशमोलोहकल्पः | ,, |
| यक्ष्मादौ एकादशोलोहकल्पः | ,, |
| गरादौ द्वादशत्रयोदशलोहकल्पौ | १००० |
| अम्लपित्तादौ चतुर्दशोलोहकल्पः | ,, |
| ग्रहण्यादौ पञ्चदशो लोहकल्पः | ,, |
| सर्वरोगेषु षोडशो लोहकल्पः | १००१ |
| कुष्ठेसप्तदशो लोहकल्पः | १००२ |
| मेदः प्रभृतिरोगेषु अष्टादशोलोहकल्पः | ,, |
| कुष्ठे एकोनविंशो लोहकल्पः | ,, |
| सर्वरोगेषु विंशतितमो लोहकल्पः | ,, |
| नेत्ररोगेकान्तनागाख्येकविंशलोहकल्पः | ,, |
| रसायने द्वाविंशलोहकल्पः | १००४ |
| अरिष्टलक्षणे त्रयोविंशलोहकल्पः | ,, |
| जरादौ चतुर्विंशलोहकल्पः | ,, |
| पञ्चविंशादिलोहकल्पचतुष्टयम् | ,, |
| रसायने षड्विंशलोहकल्पः | १००५ |
| मृतलोहानां रसत्वकथनम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

| | |
|---|---|
| विषकल्पः | १००६ |
| विषोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च | ,, |
| स्थावरविषाणां जातिभेदाः | ,, |
| कन्दविषाणां नामानि | १००८ |
| कर्कटादिकन्दविषाणां लक्षणम् | ,, |
| श्वेतादिवर्णभेदेन विषाणां जातिभेदः | ,, |
| वर्णभेदेनविषाणां क्रियाभेदः | १००९ |
| विषामृतयोः तुल्ययोनित्वनिर्देशः | ,, |
| रसायनार्थं विषप्रयोगे विधिः | ,, |
| विषप्रयोगार्हपुरुषकालयोर्निर्देशः | १०१० |
| विषे निषिद्धद्रव्याणि | ,, |
| अवस्थाविशेषे विषस्यापकारत्वनिर्देशः | ,, |
| विषविद्रावणघृतम् | १०११ |
| श्वित्रारितैलम् | ,, |
| सूर्यप्रभावर्त्तिः | १०१२ |
| विषादिगुटिका | १०१३ |
| जयागुटी | ,, |
| द्वितीया जयागुटी | ,, |
| तृतीया जयागुटी | १०१४ |
| विषस्य मात्रानिर्देशः | ,, |
| प्रयोगकालभेदेन विषस्यक्रिया विशेषः | ,, |
| विषशोधनप्रयोगः | १०१५ |
| नवज्वरे विषकल्पः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| जीर्णज्वरे विषकल्पः | १०१६ |
| जीर्णज्वरादौ विषकल्पः | ,, |
| विषमज्वरे विषकल्पः | ,, |
| रक्तपित्ते विषकल्पः | ,, |
| श्वासकासे विषकल्पः | ,, |
| श्वासहिक्कयोर्विषकल्पः | १०१७ |
| छर्द्यां विषकल्पः | ,, |
| क्षये विषकल्पः | ,, |
| ग्रहण्यां विषकल्पः | ,, |
| मूत्रकृच्छ्रे विषकल्पः | १०१८ |
| उदावर्ताश्मर्योः विषकल्पः | ,, |
| अश्मर्यां विषकल्पः | ,, |
| गुल्मे विषकल्पः | ,, |
| शूले विषकल्पः | ,, |
| गुल्मप्लीह्नोः विषकल्पः | ,, |
| प्लीह्नि विषकल्पः | १०१९ |
| कुष्ठे विषकल्पः | ,, |
| अन्यो विषकल्पः | ,, |
| कुष्ठघ्नो लेपः | ,, |
| विचर्चिकादौ विषकल्पः | ,, |
| विचर्चिकादौ विषकल्पः | १०२० |
| कुष्ठे विषकल्पः | ,, |
| विषतैलम् | ,, |
| कुष्ठहरतैलम् | १०२१ |
| कुष्ठादौ चन्दनादितैलम् | ,, |
| श्वित्रादौ विषकल्पः | १०२२ |
| अन्योयोगः | ,, |
| वाते विषकल्पः | १०२३ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अग्निदाहे विषकल्पः | १०२३ |
| वन्ध्यायां विषकल्पः | ,, |
| मूढगर्भे विषकल्पः | १०२४ |
| बुद्धिवर्द्धने विषकल्पः | ,, |
| तिमिरे विषकल्पः | ,, |
| तिमिरे द्वितीयो विषकल्पः | ,, |
| तिमिरे तृतीयो विषकल्पः | ,, |
| काचे विषकल्पः | १०२५ |
| द्वितीयो विषकल्पः | ,, |
| तृतीयो विषकल्पः | ,, |
| शुक्रार्मजिद्विषकल्पः | ,, |
| शुक्रादौ विषकल्पः | ,, |
| पिल्ले विषकल्पः | १०२६ |
| नक्तान्ध्ये विषकल्पः | ,, |
| नक्तान्ध्ये अन्यविषकल्पः | ,, |
| कर्णशूले विषकल्पः | १०२७ |
| शिरःशूले विषकल्पः | ,, |
| शिरःशूले द्वितीयो विषकल्पः | ,, |
| पूतिनस्ये विषकल्पः | ,, |
| मुखरोगे विषकल्पः | ,, |
| मुखरोगेऽन्यो विषकल्पः | ,, |
| पलितादौ विषकल्पः | १०२८ |
| खलतौ विषकल्पः | ,, |
| दिग्धाहृते विषकल्पः | ,, |
| दुष्टव्रणे विषकल्पः | ,, |
| अपच्यां कृतमालादिघृताख्यो विषकल्पः | १०२९ |
| अपचीघृतैलाख्य विषकल्पः | १०२९ |
| अपच्यादौ विषकल्पः | ,, |
| दुःसाध्यरोगे विषकल्पः | १०३० |
| रसायने विषकल्पः | ,, |
| जयागुडिकाख्यो विषकल्पः | १०३१ |
| तत्तद्रोगेषु विषकल्पः | ,, |
| रसायने विषकल्पः | १०३३ |
| वाजीकरणे विषकल्पः | ,, |
| विषहरो योगः | १०३४ |
| आखुविषे विषकल्पः | ,, |
| सर्वविषे विषकल्पः | ,, |
| संज्ञासञ्जनने विषकल्पः | ,, |
| विषदाहे विषकल्पः | १०३५ |
| मात्राऽमात्राभेदेन विषामृतयोर्गुणागुणौ | ,, |
| सहसाविषसेवने अष्टौवेगाः | ,, |
| विषसेवने संशोधनविधिः | ,, |
| विषघ्नगणः | १०३६ |
| गव्यघृतस्य विषघ्नत्वोक्तिः | ,, |
| विषस्य प्रयोगविधिः | ,, |
| विषसेविनः पथ्यापथ्यविधिः | १०३७ |
| प्रयोज्यविषाणि | ,, |
| तीक्ष्णविषातियुक्तविषयोश्चिकित्सा | १०३८ |
| विषेमन्त्रादिक्रियावैफल्ये प्रतीकारः | ,, |
| सर्पदष्टे विषकल्पः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सर्पविषेमूलविषस्य मात्रा | १०३९ |
| कीटविषे वृश्चिकविषे च मूल- विषस्य मात्राः | ,, |
| लूताविषे विषकल्पः | ,, |
| जयावटिकाख्यो विषकल्पः | ,, |
| विषसेवनस्य फलम् | १०४० |


## त्रिंशोऽध्यायः ।


| | |
|---|---|
| रसकल्पः | ,, |
| वडवानलोविडः | ,, |
| रसमारणम् | १०४१ |
| रसमारणे प्रकारान्तरम् | ,, |
| सप्तप्रकारेण प्रकारान्तरम् | १०४२-१०४३ |
| पारदजारणम् | १०४३ |
| रसजारणे निषिद्धद्रव्याणि | १०४५ |
| क्षयादौ रसकल्पः | ,, |
| वज्रपञ्जररसः | १०४६ |
| पञ्चामृतरसः | १०४७ |
| मृतसञ्जीवनी वटी | ,, |
| महानीलतैलम् | १०४८ |
| ज्वरे रसकल्पः | १०४९ |
| त्रिदोषज्वरे | ,, |
| रक्तपित्ते | ,, |
| कासे | ,, |
| क्षये | १०५० |
| हिक्कायाम् | ,, |
| छर्दिदाहयोः | ,, |
| अर्शसि | ,, |
| अतिसारे विसूच्याञ्च | १०५० |
| अजीर्णे | १०५१ |
| प्रवाहिकायाम् | ,, |
| मूत्रकृच्छ्रे | ,, |
| मेहेषु | ,, |
| प्लीहादौ | १०५२ |
| पक्तिशूले | ,, |
| आमशूले | ,, |
| उदरे | ,, |
| कामलायाम् | ,, |
| पाण्ड्वादौ | १०५३ |
| शोथे | ,, |
| कुष्ठे | ,, |
| कुष्ठे रसकल्पः | १०५४ |
| किलासे रसकल्पः | ,, |
| श्वित्रे रसकल्पः | ,, |
| कृमौ रसकल्पः | १०५५ |
| वातरोगे रसकल्पः | ,, |
| गृध्रस्यां रसकल्पः | ,, |
| वातरक्ते रसकल्पः | ,, |
| स्थौल्ये रसकल्पः | ,, |
| कार्श्ये रसकल्पः | ,, |
| अपस्मारादौ रसकल्पः | १०५६ |
| अपस्मारादौ अन्ययोगः | ,, |
| पक्षमशाते रसकल्पः | ,, |
| नेत्ररोगे रसकल्पः | ,, |
| तिमिरे | १०५७ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| जाड्ये | ,, |
| व्रणे | ,, |
| ग्रन्थौ मसूरिकायाञ्च | ,, |
| सिध्मादौ | ,, |
| अस्थिस्रावे | १०५८ |
| विषे | ,, |
| विषे प्रयोगान्तरम् | १०५९ |
| सर्पविषे | ,, |
| सर्पविषे पिशाचायञ्जनम् | ,, |
| उन्दुरुविषे | ,, |
| वृश्चिकविषे | १०६० |
| विषदिग्धव्रणे | ,, |
| रसायने रसकल्पः | ,, |
| अन्योरसकल्पः | ,, |
| पञ्चप्रकारेणकल्पान्तरम् | १०६०–१०६२ |
| वाजीकरणे मदनवर्धनाख्यो रसकल्पः | ,, |
| वाजीकरणे | ,, |
| रसप्रयोगे उपचारविधिः | १०६३ |
| रससेवनेऽपथ्यानि | ,, |
| निषिद्धव्यवहारे दोषः | १०६४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| निषिद्धद्रव्यव्यवहारजदोषेप्रतीकारः | १०६४ |
| नागवङ्गयुक्तरससेवनेप्रतीकारः | ,, |
| ग्रन्थस्योपसंहारः | १०६५ |
| औषधीनां गुणदोषकरणे कारणम् | ,, |
| औषधसेवनविधिः | १०६६ |
| आचाररसायनम् | ,, |
| आयुर्वेदोपदेशस्यावश्यपालनी-योक्तिः | १०६७ |
| कुवैद्यवर्जनोपदेशः | ,, |
| शास्त्रज्ञवैद्यस्य साफल्योक्तिः | १०६८ |
| चिकित्सायाः सर्वत्रसाफल्यतोक्तिः | ,, |
| चिकित्साकर्मणि प्रमादेदोषाः | ,, |
| चिकित्साकर्तव्यावधिः | १०६९ |
| वैद्यातुरयोरन्योन्यकर्तव्यः | ,, |
| वैद्यस्य सर्वत्रावश्यकता | ,, |
| पुरावृत्तद्वारा वैद्यस्य सर्वत्र सर्व-पूज्यत्वप्रतिपादनम् | ,, |
| ग्रन्थकर्तुर्विज्ञप्तिः | १०७१ |

॥ श्रीः ॥

# विमर्शानुक्रमणिका-


| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| जारणलक्षणम् | ६ | रसकर्पूरकीप्राचीननिर्माणविधि | २९ |
| प्रसनप्रकारः | ७ | रसकर्पूरकीनव्यनिर्माणविधि | ३० |
| मूर्च्छनाप्रकारः | ८ | प्राकृतिकपारद | ३१ |
| बन्धनप्रकारः | ,, | पारदरजतमिश्रक | ,, |
| भस्मकरणप्रकारः | ,, | टेट्राहाईड्राइट | ,, |
| रसायनलक्षणम् | ९ | परीक्षा | ,, |
| गौतमोक्तअष्टगुण | ११ | पारदप्राप्ति के कुछ गौण खनिज | ,, |
| ब्रह्मज्ञानोपाय | १२ | लिविङ्गस्टोनाईट | ,, |
| सदाचारनिर्देश | ,, | बार्सेनाईट | ३२ |
| दोषगणना | १६ | ग्वाडलकाजाराइट | ,, |
| रसायनलक्षणम् | ,, | टेर्लिङ्ग्वाईट | ३३ |
| अष्टादशसंस्काराः | ,, | इगलेस्टोनाईट | ,, |
| नागादिअष्टदोष | १८ | क्लेनाइट | ,, |
| पर्पटथादि सप्तकञ्चुकदोष | ,, | मोजेसाइट | ,, |
| रसरक्षामन्त्रः | ,, | मोन्ट्रोयडाईट | ,, |
| ध्यानप्रकारः | ,, | रिमेनाइट | ,, |
| **पारदीयविमर्शः** | २० | ओनोफ्राइट | ,, |
| पारदकी उपस्थिति | २१ | कोलोरेडोआईट | ,, |
| पारदकोसर्वप्रथमप्राप्ति | २३ | लेहरबेकाइट | ३४ |
| पारदनिकालनेयोग्य खनिज | २७ | आयोडीराइट | ,, |
| हिङ्गुलः | ,, | पारदीयखनिजप्राप्तिकेस्थान | ३५ |
| चर्मारः | २८ | वृटिशबोर्नियो | ,, |
| हीरकद्युतिः | ,, | भारतवर्ष | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| अफ्रीका | ३५ | ट्युनिस | ४१ |
| उत्तरीयअमेरिका | ,, | नार्थअमेरिका | ,, |
| आस्ट्रेलिया | ,, | होण्डुरास | ,, |
| पापुआ | ३६ | मेक्सको | ,, |
| न्यूजीलेण्ड | ,, | यूनाईटेडस्टेट्स | ,, |
| अस्वेनिया | ,, | अलस्का | ४२ |
| जेकोस्लोविया | ,, | एटिजाना | ,, |
| फ्रान्स और कार्सिका | ,, | केलिफोर्निया | ४३ |
| जर्मनी | ,, | कार्नकोष्टी | ,, |
| हङ्गरी | ३७ | सेण्टाक्लेराकौण्टि | ४५ |
| इटली | ,, | सोलेनो | ४६ |
| स्टीक | ,, | सोनोमा | ४७ |
| डोवरओर | ,, | सोकेट की खान | ,, |
| कोरेलाइन | ,, | ट्रिनिटी | ,, |
| पोर्तुगाल | ३८ | वेली | ,, |
| रस्सीया | ,, | इडाहो | ,, |
| स्केण्डिनेविया | ,, | निवाडा | ,, |
| स्पेन | ,, | ओरेगन | ,, |
| युगोस्लेविया | ३९ | लेन | ४८ |
| एशियामाइनर | ,, | टेक्सास | ,, |
| चीन | ,, | उटाह | ४९ |
| जापान | ४० | वाशिङ्गटन | ,, |
| न्यूकेलिडोनिया | ,, | दक्षिण अमेरिका | ५० |
| पर्सिया | ,, | चिली | ,, |
| अफ्रिका | ,, | कोलम्बिया | ,, |
| एलजीरिया | ,, | डचगायना | ,, |
| इटालियनसोमेलिलेण्ड | ,, | यूकोडर | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पेरु | ५० |
| जुनिन | ५१ |
| हुवानुको | ,, |
| वीनेजुए | ,, |
| पारद के दोष | ५२ |
| पारद के सप्तकञ्चुक | ५३ |
| पारद के भेद | ५५ |
| शुद्ध पारद के लक्षण | ५६ |
| अशुद्ध पारद के लक्षण | ५७ |
| **अभ्रकीयविमर्शः** | ५९ |
| उत्पत्ति | ,, |
| **वैक्रान्तीयविमर्शः** | ६९ |
| उपलब्धिः | ७० |
| **मामाक्षिकीयविमर्शः** | ७४ |
| स्वर्णमाक्षिक | ,, |
| रौप्यमाक्षिक | ,, |
| कांस्यमाक्षिक | ,, |
| **विमलः** | ७७ |
| उपलब्धिः | ,, |
| **शिलाजतुविमर्शः** | ८० |
| **चपलविमर्शः** | ८७ |
| उपस्थिति | ,, |
| गुण | ८८ |
| विस्मथ का उपयोग | ,, |
| **रसकविमर्शः** | ८९ |
| गन्धकीयविमर्शः | १०१ |
| उपलब्धि | १०२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| यौगिकगन्धक | १०२ |
| गन्धकनिम्नरूप में मिलता है | १०५ |
| गन्धक और गन्धकीय खनिज प्राप्ति के स्थान | ,, |
| अफगानिस्तान | ,, |
| आसाम | ,, |
| बलुचिस्तान | ,, |
| कच्छी | ,, |
| लास बेला | १०६ |
| मेकरन तट | ,, |
| सिबि | ,, |
| विहार और उड़ीसा | ,, |
| बम्बई | १०७ |
| वर्मा | ,, |
| दक्षिण हैदराबाद | ,, |
| काश्मीर | ,, |
| गोदावरी | १०८ |
| ट्रावनकोर | ,, |
| शिरानी | ,, |
| पञ्जाब | ,, |
| संयुक्तप्रान्त | १०९ |
| कुमायूं | ,, |
| **गैरिकविमर्शः** | ११० |
| **कासीसविमर्शः** | ,, |
| **हरतालविमर्शः** | ११५ |
| **अञ्जनविमर्शः** | १२१ |
| सौवीराञ्जन | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| रसाञ्जन | १२१ |
| स्रोतोऽञ्जन | १२२ |
| पुष्पाञ्जन | ,, |
| नीलाञ्जन | ,, |
| **कङ्कुष्ठविमर्शः** | १२४ |
| गौरीपाषाणविमर्शः | १२७ |
| आर्सेनिक की उपलब्धि | १२८ |
| आर्सेनिक की पहचान | ,, |
| आर्सेनिक के आक्साइड | ,, |
| आर्सेनिक के सल्फाइड | ,, |
| **नवसारविमर्शः** | १२९ |
| नियामकगण | २३८ |
| नियमनसंस्कारः | ,, |
| *कपोतलक्षणम्* | २५० |
| पञ्चक्षार | २५२ |
| अष्टमूत्र | ,, |
| मूषोपयोगिमृत्तिकास्वरूपम् | २७४ |
| वङ्कनाललक्षणम् | ,, |
| अपुनर्भवलक्षणम् | २७५ |
| वारितरस्यलक्षणम् | २७६ |
| रेखापूर्णतायाः स्वरूपम् | ,, |
| गोष्ठस्वरूपम् | २७९ |
| गर्वरपुटलक्षणम् | ,, |
| भाण्डपुटलक्षणम् | ,, |
| लावकपुटविमर्शः | २८० |
| लावकपुटलक्षणम् | २८१ |
| कृत्रिमपित्तलनिर्माणविधिः | २८२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कृत्रिमकांस्यनिर्माणविधिः | २८२ |
| शृङ्गिकविषलक्षणम् | २८५ |
| कालकूटविषपरिचयः | ,, |
| वत्सनाभलक्षणम् | ,, |
| विषवर्गीकरणम् | २८६ |
| उपविषाणि | ,, |
| **रक्तवर्गविमर्शः** | २८७ |
| पारदग्रहणपरिमाण | २९५ |
| स्वेदनप्रकारः | २९६ |
| मर्दनलक्षणम् | २९७ |
| मूर्च्छन लक्षणम् | ,, |
| मतान्तरेण पारदस्य मूर्च्छनम् | २९८ |
| उत्थापनस्वरूपम् | २९९ |
| *बोधनस्य प्रथमप्रकारः* | ३०४ |
| द्वितीयप्रकारः | ,, |
| तृतीयः प्रकारः | ,, |
| नियामनलक्षणम् | ,, |
| क्षारद्वयं क्षारत्रयञ्च | ३०५ |
| दीपनसंस्कारः | ,, |
| रसतरङ्गिण्युक्तप्रकारः | ३०६ |
| नियामकगणः | ,, |
| दीपनसंस्कारकरणविधिः | ,, |
| दीपनस्वरूपम् | ३०७ |
| दीपनस्य प्रथमप्रकारः | ,, |
| द्वितीयः प्रकारः | ,, |
| तृतीयः प्रकारः | ,, |
| चतुर्थः प्रकारः | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| क्षेत्रीकरणस्वरूपम् | ३११ |
| क्षेत्रीकरणप्रक्रिया | ,, |
| खोटबन्धस्य लक्षणम् | ३१३ |
| कज्जलीस्वरूपम् | ३१४ |
| बाह्यद्रुतिलक्षणम् | ३१७ |
| उपद्रवलक्षणम् | ,, |
| अरिष्टलक्षणम् | ,, |
| रसायनलक्षणम् | ,, |
| भूधरयन्त्रस्वरूपम् | ३३० |
| रसायनोचितरसः | ३३१ |
| रसभक्षणकालः | ,, |
| मात्राभेदः | ,, |
| पञ्चकर्मायोग्यव्यक्तिः | ,, |
| हंसोदकः | ३३२ |
| सुरा | ३३३ |
| आसवः | ,, |
| पित्तज्वरलक्षणम् | ३३८ |
| श्लेष्मजज्वरलक्षणम् | ,, |
| द्वन्द्वजसन्निपातजज्वराणां लक्षणम् | ३३९ |
| वातपित्तज्वरलक्षणम् | ,, |
| वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् | ,, |
| पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम् | ,, |
| सन्निपातज्वरलक्षणम् | ,, |
| जयपालशोधनविधिः | ३४२ |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| स्नुहीदुग्धशोधनविधिः | ३४३ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| विषतिन्दुकबीजशोधनविधिः | ३४३ |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| प्रकारान्तरम् | ,, |
| विषमज्वरलक्षणम् | ३४६ |
| चूर्णकुष्माण्डस्वरसयोर्हरताल शोधनविधिः | ३४९ |
| चूर्णोदकनिर्माणविधिः | ,, |
| तिलक्षारोदके तालशोधनविधिः | ,, |
| धुस्तूरबीजशोधनविधिः | ३५० |
| प्रकारान्तरम् | ३५१ |
| व्योषपरिभाषा | ,, |
| विषनिषेधविमर्शः | ३५४ |
| लवणपञ्चकम् | ,, |
| कवचीयन्त्रनिर्माणविधिः | ३५५ |
| अग्निजारपरिचयः | ३६१ |
| शृङ्गीविषलक्षणम् | ३६३ |
| शृङ्गीविषशोधनम् | ,, |
| सूचिकाभरणरसनिर्माणविधिः | ,, |
| कृष्णसर्पविषस्याहरणविधिः | ३६४ |
| कृष्णसर्पविषशोधनविधिः | ,, |
| अशुद्धलाङ्गलीसेवनेदोषाः | ३६७ |
| लाङ्गलीशोधनविधिः | ,, |
| अभिन्यासज्वरलक्षणम् | ,, |
| ससारादिश्लोकव्याख्या | ३६८ |
| कुक्कुटपुटलक्षणम् | ३६९ |
| पञ्चपित्तम् | ३७३ |
| ज्वरेपथ्यापथ्यव्यवस्था | ३८२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पथ्यस्य प्रयोजनम् | ३८२ |
| सर्वविधज्वरेषु पथ्यानि | ” |
| मध्यमज्वरेहितानि | ३८३ |
| पुराणज्वरे हितानि | ” |
| आगन्तुकज्वरे हितानि | ” |
| विषमज्वरे हितानि | ३८४ |
| अतिलङ्घनं वर्ज्यम् | ” |
| सम्यग्लङ्घितलक्षणानि | ” |
| उष्णजललक्षणम् | ” |
| **रक्तपित्तविमर्शः** | ३८५ |
| रक्तपित्तव्याख्या | ” |
| रक्तपित्तनिदान और गति | ” |
| [illegible]दिमौषधियां | ” |
| **कोहारिवर्गः** | ३८९ |
| रक्तरोधकौषधयः | ” |
| रक्तपित्ते साधारणपथ्यः | ३९० |
| कासनिदानम् | ३९१ |
| पैत्तिककासनिदानम् | ३९४ |
| क्षयकासनिदानलक्षणादिकम् | ” |
| कफजकासलक्षणम् | ३९५ |
| कासघ्नधूमविमर्शः | ३९७ |
| धूमसेवनविधिः | ” |
| धूमकालाः | ” |
| धूमपानवर्ज्यावस्था | ” |
| वातकासे पथ्यानि | ३९८ |
| कासेसाधारणपथ्यनिर्देशः | ” |
| ऊर्द्ध्वश्वासलक्षणादिकम् | ३९९ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| त्रिकत्रयस्वरूपम् | ४०३ |
| श्वासेपथ्यापथ्यम् | ४०५ |
| अपथ्यम् | ” |
| अतिव्यायामनिषेधः | ४०६ |
| व्यायामानर्हाः | ” |
| व्यायामार्हा | ” |
| व्यायामसमयः | ” |
| बलाबललक्षणम् | ” |
| अधारणीया वेगाः | ” |
| हिक्कास्वरूपं निरुक्तिश्च | ४०७ |
| तासां पूर्वरुपम् | ” |
| तासां नामानि | ” |
| धान्याभ्रस्वरूपम् | ४०८ |
| विश्वादिश्लोकव्याख्या | ४१० |
| क्षीरपाकविधिः | ४११ |
| हिक्कायां पथ्यापथ्यम् | ४१२ |
| त्रिकटुस्वरुपम् | ४१६ |
| त्रिफलास्वरूपम् | ” |
| आरनालस्वरूपम् | ” |
| दशमूलस्वरूपम् | ” |
| उभयपञ्चमूलम् | ” |
| स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ४१७ |
| अथापथ्यम् | ” |
| राजयक्ष्मनिदानम् | ४१८ |
| राजयक्ष्मलक्षणम् | ” |
| राजयक्ष्मणि साधारणपथ्यम् | ४३४ |
| यक्ष्मीशोधनव्यवस्था | ” |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वमनविधिः | ४३५ |
| विरेचनम् | ,, |
| अरोचके पथ्यापथ्यव्यवस्था | ४३६ |
| अपथ्यानि | ,, |
| छर्द्यापथ्यानि | ४३८ |
| अपथ्यानि | ,, |
| हृदयरोगलक्षणसम्प्राप्ती | ४३९ |
| अध्यशनलक्षणम् | ,, |
| हृद्रोगे पथ्यापथ्यम् | ४४१ |
| तृष्णारोगेऽपथ्यम् | ४४२ |
| पालिकायन्त्रस्वरूपः | ४४८ |
| मदात्ययपथ्यापथ्यव्यवस्था | ४५० |
| अम्लवर्गः | ,, |
| पित्तार्शसां लक्षणम् | ४५१ |
| वातार्शसां लक्षणम् | ४५२ |
| श्लेष्मसन्निपातार्शसां लक्षणम् | ,, |
| श्लेष्मार्शसन्त्रिदोषजस्य च लक्षणम् | ,, |
| सहजार्शसांलक्षणम् | ,, |
| अन्धमूषापरिभाषा | ४६७ |
| अर्शोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ४७५ |
| अन्नेषु | ४७६ |
| मांसेषु | ,, |
| शाकेषु | ,, |
| अर्शोरोगेऽपथ्यानि | ,, |
| स्नेहपाकविधिः | ४७८ |
| स्नेहपाकपरीक्षा | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वैद्यनाथवटीनिर्माणम् | ४७९ |
| लौहप्रयोगः | ,, |
| उदावर्त्तेऽपथ्यानि | ,, |
| अतीसारनिदानम् | ४८० |
| नवीन तथा पुराने धान्यों के ग्रहण करने का निर्देश | ,, |
| अध्यशनलक्षणम् | ,, |
| अतीसारे पथ्यानि | ४८८ |
| अतीसारेऽपथ्यानि | ,, |
| अतीसारे पानीयम् | ४८९ |
| ग्रहणीरोगसम्प्राप्त्यादिवर्णनम् | ,, |
| पञ्चकोलस्वरूपः | ४९९ |
| रुदन्तीपरिचयः | ५०२ |
| क्षारत्रयस्वरूपम् | ,, |
| ग्रहण्यां पथ्यापथ्यविमर्शः | ५०५ |
| ग्रहण्यामपथ्यानि | ,, |
| अग्निमान्द्यादिषु पथ्यापथ्यव्यवस्था | ५२२ |
| अपथ्यानि | ,, |
| मूत्रकृच्छ्रविमर्शः | ५२३ |
| मूत्रदोषाङ्कुषोरसः | ,, |
| अश्मरीनाशकोपायाः | ५२४ |
| अश्मरी की उत्पत्ति | ५२५ |
| अश्मरी के भेद | ,, |
| अश्मरी का पूर्वरूप तथा लक्षण | ५२६ |
| मूत्रकृच्छ्रकारणानि | ५३१ |
| अश्मरीरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ५३४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अपथ्यानि | ५३४ |
| प्रमेहविमर्शः | ” |
| स्वास्थ्यलक्षणम् | ” |
| प्रमेह की उत्पत्ति में कारण | ” |
| प्रमेह की सम्प्राप्ति | ” |
| प्रमेहों का पूर्वरूप | ” |
| प्रमेहों के सामान्य लक्षण तथा भेद | ५३५ |
| तन्द्रालक्षणम् | ” |
| कफप्रमेहाः | ५३६ |
| पित्तप्रमेहाः | ” |
| वातप्रमेहाः | ” |
| प्रमेहों का समन्वय | ” |
| चरनागलक्षणम् | ५५२ |
| मल्लमूषास्वरूपः | ५५६ |
| कवचीयन्त्रलक्षणम् | ५६५ |
| प्रमेहे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ५७१ |
| अपथ्यानि | ” |
| विद्रधिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ५७८ |
| अपथ्यानि | ” |
| वर्ध्मवृद्धिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ५८१ |
| पञ्चकोलस्वरूपम् | ५८३ |
| गुल्मे पथ्यानि | ५९३ |
| क्षारनिर्माणविधिः | ५९४ |
| प्लीहविमर्शः | ५९६ |
| प्लीहरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः | ” |
| नागवल्लभरसः | ६१६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| द्वितीयः | ६१६ |
| स्थौल्ये पथ्यापथ्यम् | ६२३ |
| अम्लपित्तरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ६२९ |
| उदरवृद्धि के कारण | ६३२ |
| अष्टपुष्पाणि | ६४१ |
| उदररोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ६४३ |
| पाण्डुरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः | ६६० |
| लङ्केश्वररसः | ६६९ |
| लूतारोगेतिहासः | ६८९ |
| मधुरत्रयम् | ६९४ |
| मूर्च्छितपारद का स्वरूप | ६९५ |
| त्रैलोक्यविजयरसः | ६९६ |
| शुद्धगन्धकप्रयोगविमर्शः | ७०७ |
| गन्धकसेवने वर्जनीयानि | ” |
| वलिवसापरिचयः | ७०८ |
| सिद्धस्नेह के लक्षण | ७१२ |
| विपादिका | ७१८ |
| कुष्ठे पथ्यापथ्यविवेकः | ७२० |
| कृमिरोगेपथ्यापथ्यविवेकः | ७२४ |
| तालकेश्वरः | ७२९ |
| पञ्चार्कतैलम् | ७३१ |
| आमवातेपथ्यापथ्यव्यवस्था | ७३७ |
| अपस्मारे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ७३९ |
| उन्मादरोगेपथ्यापथ्यव्यवस्था | ७४१ |
| वरूणादिगणः | ७४९ |
| वातरक्तेपथ्यापथ्यव्यवस्था | ७७२ |
| लक्ष्मणास्वरूपः | ७७५ |

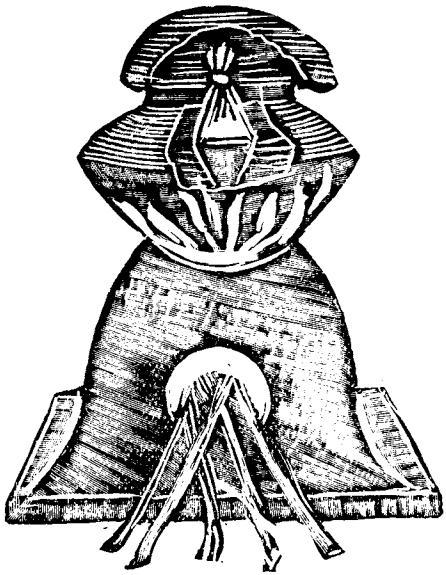
| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| नागोदरलक्षणम् | ७७९ |
| उपविष्टकलक्षणम् | ७८० |
| जलकूर्मकलक्षणम् | ,, |
| अभ्रकद्युतिप्रकारवर्णनम् | ,, |
| गर्भिण्याः पथ्यापथ्यविवेकः | ७९९ |
| बालरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ८१८ |
| त्रिलौहस्वरूपम् | ८२२ |
| नेत्ररोगविमर्शः | ८२७ |
| नेत्ररोगे पथ्यापथ्यानि | ८४४ |
| अन्ययोगाः | ८४९ |
| कर्णरोगेपथ्यापथ्यविवेकः | ८५० |
| नासारोगेपथ्यापथ्यम् | ८५२ |
| मुखरोगेपथ्यापथ्यविवेकः | ८६० |
| तन्तुरोगे वर्जनीयम् | ८६४ |
| शिरोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ८६९ |
| भगन्दरे पथ्यापथ्यविवेकः | ८७७ |
| अर्बुदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ८८२ |
| अपथ्यानि | ,, |
| अजगल्लिकायालक्षणं चिकित्सा च | ८८६ |
| यवप्रख्यायालक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| अन्धालज्या लक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| विवृताया लक्षणं चिकित्सा च | ८८७ |
| कच्छप्यालक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| वल्मीकस्यलक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| इन्द्रवृद्धालक्षणम् | ,, |
| इन्द्रवृद्धायाश्चिकित्सा | ८८८ |
| पनसिकालक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्का |
|---|---|
| पनसिकायाश्चिकित्सा | ८८८ |
| पाषाणगर्दभलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| जालगर्दभलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| इरिवेल्लिकालक्षणम् | ,, |
| कक्षालक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| विस्फोटकलक्षणम् | ,, |
| अग्निरोहिणीलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| चिप्यकुनखयोर्लक्षणं चिकित्सा च | ८८९ |
| अनुशयीलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| विदारिकाया लक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| शर्कार्बुदलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| पाददारिकाया लक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| उपोदिकाद्यं तैलम् | ८९० |
| कदरस्य लक्षणं | ,, |
| कदरचिकित्सा | ,, |
| अलसस्यलक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| इन्द्रलुप्तस्यलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ८९१ |
| दारुणकस्यलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| अरुंषिकाया लक्षणम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| हरिद्राद्यं तैलम् | ८९२ |
| पलितस्य लक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| मसूरिकायालक्षणं चिकित्सा च | ,, |
| यौवनपिडकाया लक्षणम् | ,, |
| पद्मिनीकण्टकलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| जतुमणिलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| मशकलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| तिलकालकलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| न्यच्छस्य लक्षणम् | ,, |
| व्यङ्गस्यलक्षणम् | ,, |
| तयोश्चिकित्सा | ,, |
| परिवर्तितकालक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| अथवा | ,, |
| अवपाटिकालक्षणम् | ८९३ |
| चिकित्सा | ,, |
| निरुद्धप्रकषस्यलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| सन्निरुद्धगुदलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| अहिपूतनलक्षणम् | ८९४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| चिकित्सा | ८९४ |
| वृषणकच्छूलक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| गुदभ्रंशस्य लक्षणम् | ,, |
| चिकित्सा | ,, |
| मूषकतैलम् | ,, |
| क्षुद्ररोगेषु पथ्यापथ्यविधिः | ,, |
| स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ९०५ |
| इलीपदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ९०८ |
| स्थौल्ये पथ्यापथ्यम् | ९१० |
| त्रिफलारसायनस्य विमर्शः | ९३३ |
| कामकलाख्यरसनिर्माणप्रकारान्तरम् | ९४७ |
| पूर्णेन्दुरसः | ९५० |
| मण्डकपरिभाषा | ९६३ |
| कान्तलौहलक्षणम् | ९८० |
| लौहशोधनार्थं क्वाथविधिः | ९८१ |
| वज्रभस्मविधिः | ९८२ |
| अथवा | ,, |
| नागभस्मविधिः | ,, |
| अथवा | ,, |
| लौहमारणविधिः | ९८३ |
| निरुत्थभस्मपरीक्षाप्रकारः | ९८४ |
| कुटीनिर्माणप्रकारः | ९८६ |
| चरकोक्ताचाररसायनम् | १०६६ |

१ दोलायन्त्रम्—



द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरितार्धोदकस्य च ।
मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥
तयोस्तुनिक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोटलीम् ।
बध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोलायन्त्रमिति स्मृतम् ॥ १ ॥

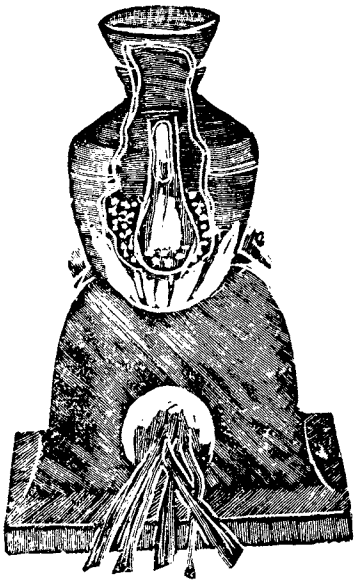
इति रसरत्नसमुच्चयः ।

अन्यच्च—विबध्य सौषधं सूतं सभूर्जे त्रिगुणाम्बरे ।
रसपोट्टलिकां काष्ठे दृढं बध्वा गुणेन हि ॥ २ ॥
सन्धानपूर्णकुम्भान्तः प्रलम्बनगतिस्थिताम् ।
अधस्ताद् ज्वालयेदग्निं तत्तदुक्तक्रमेणहि ॥ ३ ॥
दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तम्

इति रसेन्द्रचूडामणिः ।

एक मिट्टि की हण्डिका में काञ्जी, निम्बू का रस, क्षारोदक या जयन्ती, निर्गुण्डी आदि स्वेदनार्ह औषधियों का स्वरस या क्वाथ भर कर उस हण्डिका के दोनों किनारों में युक्ति से दो छिद्र बना कर उन छिद्रों में एक काष्ठ की मज बूत पतली लकड़ी डाल दें। फिर उस लकड़ी के बीच में पारद की पोट्टली या अन्य लोह ताम्रादिक या रत्न आदि की पोट्टली बांध कर भाण्डस्थ द्रव में लटका दें। फिर इस हण्डिका को चूल्हे पर चढ़ा कर यथोदित समय तक अग्नि प्रदीप्त कर के पोट्टलीस्थ पदार्थ का स्वेदन करते हैं। इसी को दोलायन्त्र कहते हैं। अर्थात् पारदादिक की पोट्टली काष्ठ के साथ बांधने से दोले ( झूले ) की तरह द्रव में लटकती है अतः दोला यन्त्र कहा गया है।

## २ बालुकायन्त्रं लवणयन्त्रञ्च



रसगर्भां गूढवक्त्रां मृद्वस्त्राङ्गुलघनावृताम् ।
शोषितां काचकलसीं त्रिषु भागेषु पूरयेत् ॥ १ ॥
भाण्डे वितस्तिगम्भीरे बालुकासु प्रतिष्ठितम् ।
तद्भाण्डं पूरयेत् त्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत् ॥ २ ॥
भाण्डवक्त्रं मणिकया सन्धिं लिम्पेन्मृदा पचेत ।
चुल्ल्यां तृणस्य चादाऽहान्मणिकापृष्ठवर्त्तिनः ॥ ३ ॥
एतद्धि बालुकायन्त्रं तद्यन्त्रं लवणाश्रयम् ।
पञ्चाढबालुकापूर्ण-भाण्डे निक्षिप्य यत्नतः ॥ ४ ॥
पच्यते रसगोलाद्यं बालुकायन्त्रमीरितम् ।
एवं लवणनिक्षेपात् प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ॥ ५ ॥

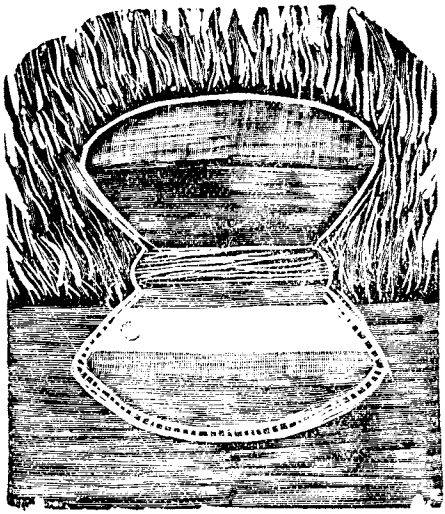
अथवा—

अन्तःकृतरसालेपताम्रपात्रमुखस्य च ।
लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ॥ १ ॥
तद्भाण्डं पटुनाऽऽपूर्य्य क्षारैर्वा पूर्ववत् पचेत् ।
एवं लवणयन्त्रं स्याद् रसकर्म्मणि शस्यते ॥ २ ॥

रसरत्नसमुच्चयः ।

एक आतसी शीशी जिसका नीचे का भाग ( पेंदी ) चौड़ा हो तथा लम्बी और सङ्कुचित नलिका हो, लेकर उस की नलिका में एक पतली लकड़ी डाल कर शीशी को उलटी करदें । फिर इस लकडी को किसी टेबुल के सहारे दृढ़ बांध दें । फिर हण्डिका में २४ घण्टे तक गली हुई मुल्तानी ( चिकनी ) मिट्टी का आतसी शीशी के पृष्ठ ( पीठ ) भाग पर पतला एक लेप कर के उसी मिट्टी के घोल में भींगी हुई वस्त्र की पट्टी का प्रलेप कर के सुखा लेवें । फिर सूख जाने पर दूसरी पट्टी का लेप करदें । इस तरह सात वार लेप कर के सुखा लेवें । फिर उस आतसी शीशी के चार भागों में से तीन भागों को कज्जली से भर दें । फिर एक लोहे या मिट्टी की नांद ( टब ) को बालुका (रेत) से भर कर उस बालुका के मध्य में आतसी शीशी को गले तक गाड दें । फिर उस नांद के मुख पर शराव ढक कर के सन्धि बन्धन कर दें । फिर इस यन्त्र को भट्टी पर चढ़ा कर अग्नि प्रज्वलित कर दें तथा हण्डिका ( यन्त्र ) के मुख पर स्थित शराव के अन्दर तृण भर दें । स्थान को बालुका, रेत अथवा क्षार या लवण से भर कर यन्त्र को चूल्हे पर चढ़ा कर पाक करना चाहिए । इस को बालुका यन्त्र या लवण यन्त्र कहते हैं ।

## ३ भूधरयन्त्रम्।



बालुकागूढसर्वाङ्गां गर्तं मूषां रसान्विताम्।
दीप्तोत्पलैः संवृणुयाद् यन्त्रं तद् भूधराह्वयम् ॥ १ ॥

पृथ्वी में एक हस्त गहरा गढा (गर्त) बना कर उसके अर्धभाग को बालुका से भर दें, फिर उस बालुका पर औषध से पूर्ण मूषा को रख दें तथा मूषा का मुख बन्द कर देना चाहिए। पश्चात् शेष गर्त को रेत से भर कर अर्थात् सारी मूषा को रेत से ढक कर उस पर जंगली उपलों की आंच जला देनी चाहिए। इस को भूधर यन्त्र कहते हैं। यह वर्णन चित्र के अनुसार नहीं है। अत्रि संहिता का वर्णन चित्रानुसार है। यथा—

यन्त्रं डमरुवद्वाथ वाऽधःपातनयन्त्रवत्।
भूगर्तं तत् समाधाय चोर्ध्वमाकीर्य वह्निना ॥ १ ॥
अधः स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा सूतकं तत्र पातयेत्।
एतद् भूधरयन्त्रं स्यात् सूतसंस्कारकर्मणि ॥ २ ॥

इत्यत्रिसंहिता

अर्थात् चपटे आकार की दो हण्डिकाएं लेकर एक हण्डिका के भीतरी प्रदेश में पारद के निम्ब्वादिरस पिष्टकल्क का प्रलेप करके सुखा दें तथा दूसरी हण्डिका में जल भर कर पारद लिप्त हण्डिका को जल पूर्ण हण्डिका के मुख के साथ औंधी कर के मिलाकर दोनों की सन्धियों को बन्द करके डमरू के समानाकार का यन्त्र बनालें। फिर इस यन्त्र को पृथ्वी के अन्दर खोदे हुए गर्त में रखकर सूतलिप्त हण्डिका के पृष्ठ पर अग्नि जला दें। इसको भूधरयन्त्र कहते हैं।

भाव प्रकाश में इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है। यथा—

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाजनम् ॥ १ ॥
ततो दीप्तैरधःपातमुपलैस्तस्य कारयेत्।
यन्त्रे भूधरसंज्ञे तु ततः सूतोविशुद्धयति ॥ २ ॥

## ४ तिर्यक्पातनयन्त्रम्—



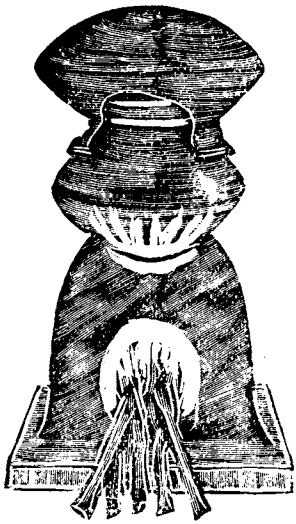
क्षिपेद्रसं घटे दीर्घनताधोनालसंयुते ।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु ॥
तत्र रुद्ध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरथ ।
अधस्ताद्रसकुम्भस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम् ॥
इतरस्मिन् घटे तोयं प्रक्षिपेत् स्वादुशीतलम् ।
तिर्यक्पातनमेतद्धि वार्तिकैरभिधीयते ॥

इति रसरत्नसमुच्चयः ।

एक मिट्टी के घट में पारद भर कर घट की ग्रीवा के कुछ नीचे के भाग में एक छिद्र बना कर उस छिद्र में एक लम्बी तथा टेढी नली लगा देनी चाहिए । फिर उस नली के दूसरे भाग को एक दूसरे घट के मध्य भाग में छिद्र बना कर उस में प्रविष्ट कर दें । फिर पारदातिरिक्त घट में शीतल जल भर कर दोनों

के मुख को ढक्कन से तथा नालीप्रवेशजन्य छिद्रों को कपडमिट्टि द्वारा बन्द कर के सुखा कर युक्ति से चूल्हे पर पारद वाले घट को स्थापित कर के अग्नि जला देवें। अग्नि जलते समय चूल्हे के नीचे स्थित घट पर एक लोटे या पात्र के द्वारा शीतल जल डालते रहना चाहिए। इस तरह चूल्हे पर स्थित घट के अन्दर से पारद अग्नि के ताप के कारण उड कर नीचे वाले घट के जल में नलिका मार्ग से हो कर एकत्रित होता रहता है। वार्तिककारों ने इस को तिर्यक्पातन यन्त्र कहा है।

## ५ ऊर्ध्वाधःपातनयन्त्रवर्णनम् ।



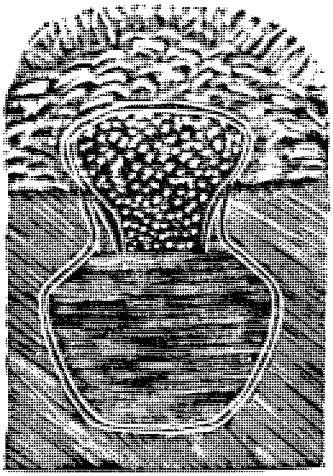
अष्टाङ्गुलपरीणाहमानाहेन दशाङ्गुलम् ।
चतुरङ्गुलकौत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥ १ ॥
अधोभाण्डमुखं तस्य भाण्डस्योपरिवर्तिनः ।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णपृष्ठस्याऽऽस्ये प्रवेशयेत ॥
पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः ।
लिप्त्वा विशोषयेत् सन्धिं जलाधारे जलं क्षिपेत ॥ ३ ॥
चुल्ल्यामारोप्येदेतत पातनायन्त्रमीरितम् ॥ ४ ॥

अष्ट अङ्गुल परिधियुक्त, दशअङ्गुल दीर्घ तथा चारअङ्गुल मोटा एक मिट्टी का भाण्ड लेकर उसमें शीतल जल भरदें । फिर सोलह अङ्गुल चौडे पृष्ठ ( पीठ ) वाला एक भाण्ड लेकर उसके भीतरी भाग में औषधपिष्ट पारद कल्क का लेप करके सुखाकर अधोमुख करके जलपूर्ण घट की ग्रीवा के नीचे तक इसके मुखको

प्रविष्ट ( धंसा ) करके आस पास की सन्धि को भैंस के दुग्ध से पीसे हुए माष चूर्ण, लौहकिट्ट आदि के कल्क से विलिप्त करके सुखाकर चूल्हे पर चढा के अग्नि जलादें । इससे पारद का अधः पातन होता है ।

अथवा एक मिट्टी का भाण्ड लेकर औंधामुख करके पृथ्वी पर रखकर उसके पृष्ठ भाग पर आठ अङ्गुल चौड़ा, दश अङ्गुल लम्बा तथा चार अङ्गुल मोटा एक चिकनी मिट्टी अथवा उडदी की पिट्टी का आलवाल ( थाला ) बनाकर सुखालें । फिर सोलह अङ्गुल चौडे पृष्ठ वाला एक भाण्ड लेकर उसके भीतरी तल में पारद कल्क का लेप करके सुखाकर इसके मुख को पृष्ठ पर आल वाल वाले अधोमुखकृत भाण्ड के मुख से मिलाकर भैंस के दुग्ध, माषचूर्ण और मण्डूर किट्टादिकृत कल्क से सन्धिबन्धन करके सुखाकर चूल्हे पर चढा के अग्नि जला दें । आलवाल के भीतरी गरम हुए जल को थोडी२ देर में निकाल२ कर उसमें शीतल जल बार२ डालते रहना चाहिए । इससे पारद का ऊर्ध्वपातन संस्कार होता है तथा यह अर्थ चित्रानुकूल भी है ।

## ६ अधःपातनयन्त्रवर्णनम्



अथोर्द्ध्वभाजने लिप्तस्थापितस्य जले सुधीः ।
दीप्तैर्वनोत्पलैः कुर्यादधःपातं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

रसरत्न समुच्चयः ।

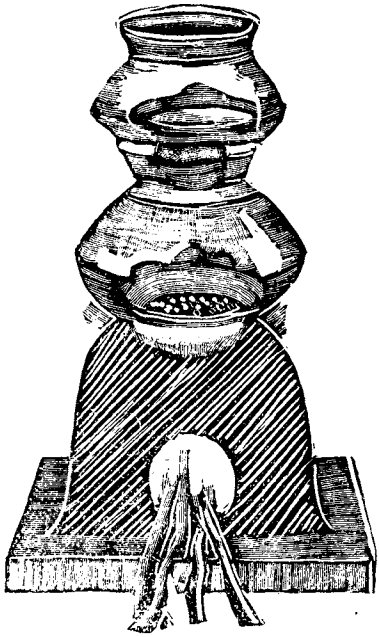
एक छोटा भाण्ड लेकर उसके भीतरी तलो में पारदकल्क का प्रलेप कर दें तथा पृष्ठ प्रदेश पर माषचूर्णादिक से एक आलवाल ( क्यारी=थाला ) बनाकर सुखालें। फिर एक चौडे उदर वाले भाण्ड में शीतल जल भरकर औषधलिप्त भाण्ड को अधोमुख करके दोनों के मुखों को मिलाकर सन्धिबन्धन कर दें। फिर यन्त्र को एक गढे में रखकर ऊपरी भाण्ड के आलवाल में जङ्गली उपले भर कर अग्नि जला दें। इससे पारद का अधोघट के शीतल जल में अधःपातन होता है।

रसेन्द्रचूडामणि ग्रन्थ में इसका वर्णन निम्नरूप से है।

यथा—

उपर्यधस्तनस्थाल्यां क्षिपेद्दन्यामधोमुखीम् ।
स्थालिकां चिपटीभूततलान्तर्लिप्तपारदाम् ॥ १ ॥
क्षिप्त्वा तां पङ्किले गर्ते ज्वालयेन् मूर्ध्नि पावकम् ।
अधःपातनयन्त्रं हि तदेतत् परिकीर्तितम् ॥ २ ॥

## ७ विद्याधर ( ऊर्द्ध्वपातन ) यन्त्र वर्णनम्—



यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात् ।
चुल्लीं चतुर्मुखीं कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत् ॥ १ ॥
तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्भाण्डकाननम् ।
यन्त्रं विद्याधरं नाम तन्त्रज्ञैः परिकीर्तितम् ॥ २ ॥

रसरत्नसमुच्चयः ।

समानाकार दो मिट्टी के भाण्डों को परस्पर मिलाने को विद्याधर यन्त्र कहते हैं ।

विधिः—एक चारमुख वाला चूल्हा बनाकर उसपर औषधादिक से भरा हुआ एक मिट्टी का भाण्ड रखना चाहिए । फिर इस भाण्ड के मुखपर एक ऊर्ध्वमुख वाला दूसरा भाण्ड रखकर नीचे के भाण्ड के मुख को ऊपरी भाण्ड के तल के

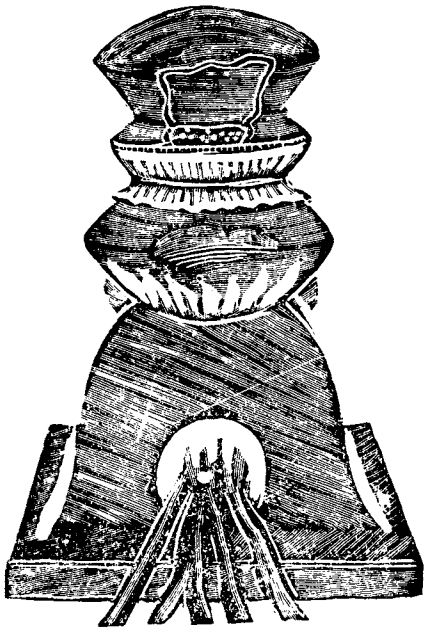
साथ कण्डमिट्टी द्वारा बन्दकर देते हैं। फिर सूखने पर अग्नि प्रज्वलित कर देनी चाहिए। इसको रसशास्त्रज्ञों ने विद्याधर यन्त्र कहा है।

भावप्रकाश में इसका वर्णन अत्यन्त स्पष्ट मिलता है। यथा—

अधः स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा निदध्याच्चन्मुखोपरि।
स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ् निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ १ ॥
ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः।
अधस्ताद् ज्वालयेदग्निं यावत् प्रहरपञ्चकम् ॥ २ ॥
स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम्।
विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ३ ॥

इति भावप्रकाशः।

## स्वेदन ( कन्दुक ) यन्त्रवर्णनम्



स्थूलस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वासो बध्वा मुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्य विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रपिधाय च ॥ १ ॥
अधस्ताद् ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत् कन्दुकाभिधम् ।
स्वेदनीयन्त्रमित्यन्ये प्राहुश्चैदं मनीषिणः ॥ २ ॥

एक बडे मिट्टी के भाण्ड में जल, किसी औषधि का स्वरस अथवा क्वाथ भर कर उसके मुख को एक मजबूत वस्त्र से बन्द करके वस्त्र पर स्वेदनीय औषध को रख कर ऊपर से मुख को शराव द्वारा या जैसे चित्र में दिखाया है वैसे हण्डिका द्वारा बन्द करके कपडमिट्टी द्वारा सन्धिबन्धन कर देना चाहिए । फिर यन्त्र को चूल्हे पर चढाकर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए । इस को कन्दुकयन्त्र कहते हैं । रसशास्त्र के अन्य आचार्यों ने इसे स्वेदनीयन्त्र भी कहा है ।

अथवा—यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं दत्वामुखोपरि ।
स्वेद्यद्रव्यं विनिक्षिप्य पिधानं प्रपिधाय च ॥
अधस्ताद् ज्वालमेदग्नि यन्त्रं तत् कन्दुकं स्मृतम् ॥

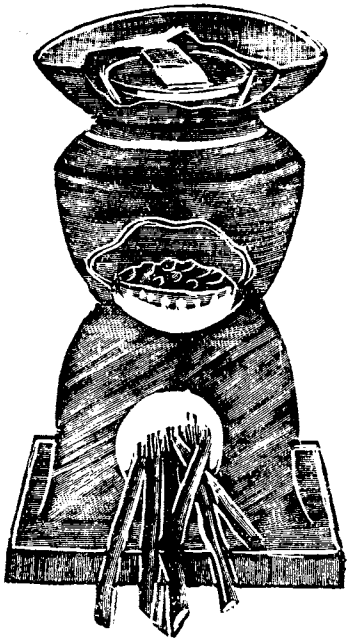
एक स्थाली में जल या औषधस्वरस भर कर उसके मुख पर वस्त्र न लगा के तृण (घास) रख कर उन पर स्वेदनीयौषध रख के शराव से बन्द करके कपडमिट्टी द्वारा सन्धिबन्धन कर देते हैं, फिर अग्नि जला कर स्वेदन करते हैं । यह भी कन्दुकयन्त्र कहलाता है । अन्यत्र इसका वर्णन निम्न रूप से मिलता है ।

यथा—

स्थूलस्थाल्यां द्रवं क्षिप्त्वा वासो बध्वामुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य पिधान्या प्रपिधाय च ॥
आधोऽग्निं ज्वालयेत्तत्र तत् स्यात् कन्दुकयन्त्रकम् ।
स्वेदनं यन्त्रमित्येतत् प्राहुरन्ये मनीषिणः ॥

रसेन्द्रचूणामणिः

## ६ धूपयन्त्रवर्णनम्

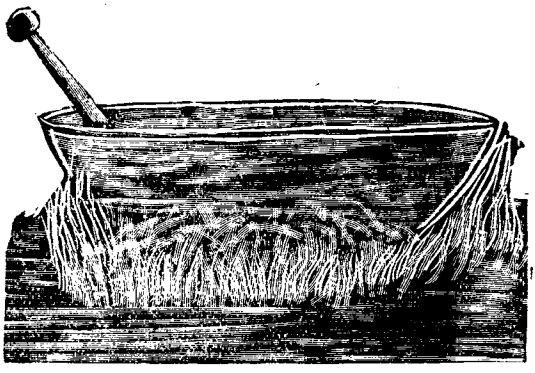


विधायाष्टाङ्गुलं पात्रं लौहमष्टाङ्गुलोच्छ्रयम् ।
कण्ठाधो द्व्यङ्गुले देशे गलाधारे हि तत्र च ॥ १ ॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिक्षिपेत् ।
तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ २ ॥
पत्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ ३ ॥
मृदा विलिप्य सन्धिञ्च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृत्स्नानि हृतान्युक्तविधानतः ॥ ४ ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवन्ति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जलया वा मृताहिना ॥

धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवङ्गेन धूपयेत् ॥ ६ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयन्त्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रवसाधने ॥ ७ ॥

आठ अङ्गुल चौड़ा और आठ ही अङ्गुल ऊंचा एक लोह का पात्र बनवा कर उसके कण्ठ के नीचे दो अङ्गुल चौड़े स्थान में एक आधार बनवा कर उस में पतली और तिरच्छी लोहे की शलाकाओं को टेढ़ी रख देनी चाहिए । फिर उन शलाकाओं के ऊपर छोटे २ कण्टक वेध्य सोने के पत्र रखकर प्रथम पत्रों के नीचे गन्धक हरताल आदि की कज्जली लौहपात्र में डालकर उस पात्र को एक दूसरे नीचे मुखवाले पात्र से ढक कर कपड़मिटी ( या जलमृत्तिका ) से सन्धिबन्धन करके चूल्हे पर चढा कर नीचे आग जलाना चाहिए । इस तरह पात्र में रखी हुई कज्जली के धूम से सोने के पत्र काले पड़ जाते हैं तथा मृत भी हो जाते हैं । इस तरह से मृत सुवर्णपत्रों को पारद तुरन्त ही भक्षण कर जाता है और वे भक्षण किये हुए पत्र पारद में शीघ्र ही द्रुत हो जाते है । गन्धक, हरताल, मनःशिला, इनकी कज्जली से अथवा मृतनाग से स्वर्णपत्रों को प्रथम धूपित करना चाहिए । चांदी के पत्रों को धूपित करने के लिये उन पत्रों को मृतवङ्ग से धूपित करना चाहिए । अन्य यथायोग्य उपरसों से भी तारपत्रों को धूपित करते हैं । जिस वस्तु से पत्रों को धूपित करना हो उस वस्तु की कज्जली बनाकर पत्रों के नीचे लोह पात्र में रख देनी चाहिए । इसको धूपयन्त्र कहते हैं । इस यंत्र को जारण करने योग्य द्रव्यों कि सिद्धि करने के लिये प्रयुक्त करते हैं ॥ १–७ ॥

## १० तप्तखल्लयन्त्रवर्णनम्



तत्रादौ तस्य प्रमाणकथनम्--

लौहो नवाङ्गुलः खल्लो निम्नत्वे च षडङ्गुलः ।
मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्लाभिधोऽप्ययम् ॥ १ ॥

९ अङ्गुल को लम्बी तथा उतनी ही चौडी और ६ अङ्गुल गहरी लौह की खरल बनवानी चाहिए तथा उसकी घर्षणी ( मर्दक ) ८ अङ्गुल की लम्बी बनवानी चाहिए । यह तप्त खल्ल का प्रमाण है ॥ १ ॥

तप्तखल्लविधिः--

कृत्वा खल्लाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।
तस्यां निवेश्य तं खल्लं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥
तदन्तर्मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ॥ १ ॥
प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ।
कृतः कान्तायसा सोऽयं भवेत् कोटिगुणो रसः ॥ २ ॥

जितने प्रमाण की लम्बी चौडी खरल बनी हुई हो उसी के प्रमाणानुकूल चूल्हा बनवा कर उस में कोयले आदि भर के उस पर खल्ल को रख दें तथा नीचे अग्नि जला देवें और पार्श्व में धौंकनी लगा कर वह्नि को प्रदीप्त करते रहना चाहिए, पश्चात् उस खरल में औषधियों के साथ घोट कर बनाई हुई

पारद की पिष्टी और क्षार तथा काञ्जी आदि अम्लपदार्थ डाल कर घोटते रहना चाहिए। इस प्रकार स्वेदन करने से पारद की पिष्टी द्रुत हो जाती है। साधारण लौह की अपेक्षा कान्त लौह की तद्खरल में स्वेदित किया हुआ रस ( पारद ) कोटिगुण अधिक फलप्रद होता है ॥ १-२ ॥

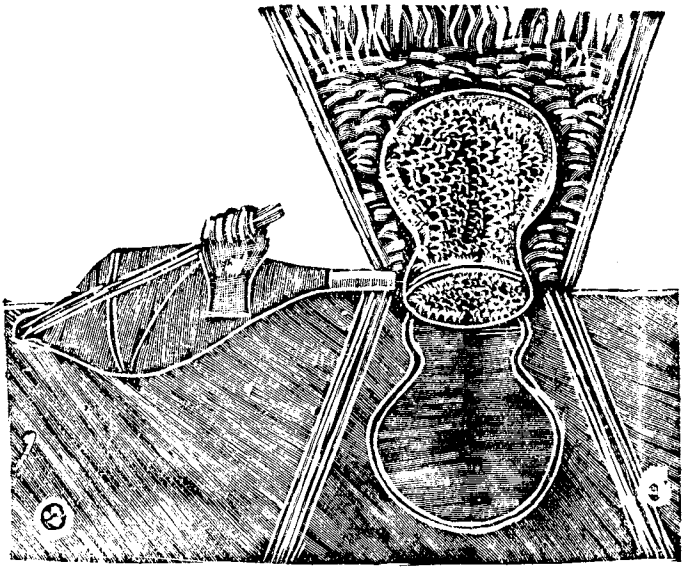
अत्रिसंहितोक्तस्वखरलविधिः--

अजाशकृत्तुषाग्निञ्च भूगर्ते त्रितयं क्षिपेत्।
तस्योपरि स्थितः खरलस्तत्स्वखरल इति स्मृतः ॥ १ ॥

अर्थात पृथ्वी के अन्दर गर्त ( गढ़ा ) खोद कर उस में बकरी की मींगन्यां, धान की भूसी या तुष और अग्नि तीनों डाल कर उन पर औषधपूर्ण खरल को रख कर रसादिक का स्वेदन करें ॥ १ ॥

इत्यत्रिसंहिता।

## ११. कोष्ठीयन्त्रवर्णनम् ।



षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम् ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठीयन्त्रमिति स्मृतम् ॥ १ ॥ रसरत्नसमुच्चयः ।

सोलह अङ्गुल चौडा और एक हस्त भर लम्बी तथा समान आकार की एक मूषा बनवानी चाहिए । इस को कोष्ठी यन्त्र कहते हैं । यह यन्त्र धातु तथा रत्न आदि के सत्वों को निकालने के लिए उत्तम है ॥ १ ॥

अत्रिसंहिता में निम्नवर्णन अधिक है यथा—

परिपूर्णं दृढाङ्गारैरधोवातेन कोष्ठके ।
मात्रया ज्वालमार्गेण ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥

एक लौह या मिटी की कोष्ठिका बनवाकर उसके मध्य में भस्त्रा (धोंकनी) के मुख को प्रविष्ट करने के लिये छिद्र रखना चाहिए जैसा कि चित्र में दर्शाया है। तथा कोष्ठिका के अन्दर औषधपूर्ण मूषा या डमरूयन्त्राकार को मूषा रखकर उसके ऊपर तथा चारों ओर पार्श्व में कोयले आदि भर के वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए तथा भस्त्रा के द्वारा अग्नि प्रधमन करते रहना चाहिए ।

॥ श्रीः ॥

# रसरत्नसमुच्चयः

## रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकयाऽलङ्कृतः ।

## रसोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

मङ्गलाचरणम्—

यस्याऽऽनन्दभवेन मङ्गलकलासम्भावितेन स्फुर-
द्धाम्ना सिद्धरसामृतेन करुणावीक्षासुधासिन्धुना ।
भक्तानां प्रभवप्रसंहृतिजरारागादिरोगाः क्षणा-
च्छान्तिं यान्ति जगत्प्रधानमिषजे तस्मै परस्मै नमः ॥ १ ॥

### टीकाकारकृतमङ्गलाचरणं व्याख्याप्रयोजनञ्च ।

ध्यात्वा साम्बमहेशपादकमलं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्
नत्वा नीलसरोजश्यामलतनुं श्रीरामचन्द्रं तथा ।
स्मृत्वाऽहं हृदयारविन्दपटले श्रीकृष्णतातं त्वथ
भाषामाकलयामि वाग्भटकृते ग्रन्थे सुरत्नोज्ज्वलाम् ॥ १ ॥
श्रीमेदपाटदेशे हि लब्धजन्मा भिषग्वरः ।
श्रीकृष्णतनुजो वैद्यः ख्यातगुर्जरगौड़जः ॥ २ ॥
अम्बिकादत्तशर्माऽहं वैद्यकोद्धारकाम्यया ।
प्राच्यं श्रमेण पाश्चात्यं चिकित्साशास्त्रसागरम् ॥ ३ ॥
निर्मथ्योभयसिद्धान्तै—र्भूषितां तत्त्वदर्शिभिः ।
रत्नोज्ज्वलामिमां टीकां करोमि विदुषां मुदे ॥ ४ ॥

जिस परमपूज्य महेश्वर के आनन्द से उत्पन्न और शुभ शीतल कलाओं से सम्भावित, प्रदीप्ततेजयुक्त कृपादृष्टिरूप अमृत के समुद्र के समान गुणकारी, सिद्ध

हुए पारदरूपी सुधा के सेवन से भक्तजनों के जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और रागद्वेष मोहादि अनेक रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ऐसे उस परम प्रसिद्ध संसार के प्रधान चिकित्सक ईश्वर ( शङ्कर ) को प्रणाम है ॥ १ ॥

अथ ग्रन्थकर्तृणां नामानि—

आदिमश्चन्द्रसेनश्च लङ्केशश्च विशारदः ।
कपाली मत्तमाण्डव्यौ भास्करः शूरसेनकः ॥ २ ॥
रत्नकोशश्च शंभुश्च सात्विको नरवाहनः ।
इन्द्रदो गोमुखश्चैव कम्बलिर्व्याडिरेव च ॥ ३ ॥
नागार्जुनः सुरानन्दो नागबोधिर्यशोधनः ।
खण्डः कापालिको ब्रह्मा गोविन्दो लम्पको हरिः ॥ ४ ॥
सप्तविंशतिसंख्याका रससिद्धिप्रदायकाः ।
रसाङ्कुशो भैरवश्च नन्दी स्वच्छन्दभैरवः ॥ ५ ॥
मन्थानभरवश्चैव काकश्चण्डीश्वरस्तथा ।
वासुदेव ऋषिः शृङ्गः क्रियातन्त्रसमुच्चयौ ॥ ६ ॥
रसेन्द्रतिलको योगी भालुकी मैथिलाह्वयः ।
महादेवो नरेन्द्रश्च वासुदेवो हरीश्वरः ॥ ७ ॥
एतेषां क्रियतेऽन्येषां तन्त्राण्यालोक्य सङ्ग्रहः ।
रसानामथ सिद्धानां चिकित्सार्थोपयोगिनाम् ॥
सूनुना सिंहगुप्तस्य रसरत्नसमुच्चयः ॥ ८ ॥
रसोपरसलोहानि यन्त्रादिकरणानि च ।
शुद्ध्यर्थमपि लोहानां तन्त्रादिकरणानि च ॥
शुद्धिः सत्त्वं द्रुतिर्भस्मकरणं च प्रवक्ष्यते ॥ ९ ॥

आदिम, चन्द्रसेन, लङ्केश, विशारद, कपाली, मत्त, माण्डव्य, भास्कर, शूरसेन, रत्नकोष, शम्भु, सात्विक, नरवाहन, इन्द्रद, गोमुख, कम्बली, व्याडि, नागार्जुन, सुरानन्द, नागबोधि, यशोधन, खण्ड, कपालिक, ब्रह्मा, गोविन्द, लम्पक, और हरि, ये सत्ताईस आचार्य रससिद्धि देने वाले हुए। और भी रसाङ्कुश, भैरव, नन्दी, स्वच्छन्दभैरव, मन्थानभैरव, काकचण्डी, वासुदेव, ऋषि और रसक्रिया तथा

तन्त्र का सङ्ग्रह करने वाला शृङ्ग, रसेन्द्रतिलक, योगी, भालुकी, मैथिल, गोदेव, नरेन्द्र, वासुदेव, हरीश्वर, इनके और अन्य आचार्यों के रसतन्त्र शास्त्रों को देख कर चिकित्सा में अत्यन्त उपयुक्त सिद्धरसों का इस 'रसरत्नसमुच्चय' नामक ग्रन्थ में सिंहगुप्त का पुत्र मैं वाग्भट स्वयं सङ्ग्रह करता हूं। इस ग्रन्थ में रस और उपरस तथा सप्तलौह या सप्तधातु तथा इनकी शुद्धि के लिये दोला यन्त्रादि उपकरण तन्त्र तथा इनके शोधन, सत्वपातन, द्रुतिकरण और भस्म करने की भिन्न २ विधियों का वर्णन भी किया जायगा ॥ २-९ ॥

अथ हिमालयवर्णनम्—

**अस्ति नीहारनिलयो महानुत्तरदिङ्मुखे।**
**उत्तुङ्गशृङ्गसङ्घातलङ्घिताभ्रो महीधरः॥ १० ॥**
**विश्रामाय वियन्मार्गविलङ्घनघनश्रमः।**
**अवतीर्ण इव क्षोणीं शरदम्बुमुचां गणः॥ ११ ॥**
**राशिराशीविषाधीशफणाफलकरोचिषाम्।**
**भित्त्वा भुवमिवोत्तीर्णो यो विभाति भृशोन्नतः॥ १२ ॥**
**ज्वलदोषधयो यस्य नितम्बमणिभूमयः।**
**नक्तमुद्दामतडितामनुकुर्वन्ति वार्मुचाम्॥ १३ ॥**
**कटके सञ्चरन्तीनां यस्य किन्नरयोषिताम्।**
**पादेषु धातुरागेण लाक्षाकृत्यमनुष्ठितम्॥ १४ ॥**
**अवतंसितशीतांशुराच्छादितदिगम्बरः।**
**यो गुहाधिगतो लोकैर्गिरीश इति गीयते॥ १५ ॥**

उत्तर दिशा में स्थित, हिम का प्रधान स्थान, ऊंचे २ शिखरों के समूह से मेघों को भी अतिक्रमण करने वाला, दिनरात आकाश मार्ग में चलने से उत्पन्न हुए श्रम के निवारणार्थ भूपृष्ठ पर उतरा हुआ मानों शरद् ऋतु के मेघों के समूह के समान शोभायमान, और पृथ्वी को विदीर्ण करके निकले हुए शेष नाग के सहस्रफणों में स्थित मणियों की किरणों के समूह के सदृश श्वेतकान्ति वाला अत्यन्त उन्नत हिमालयपर्वत शोभायमान हो रहा है, और दिव्य औषधियों वाले जिस हिमालय के मध्य भाग का मणिजड़ित प्रदेश ( भूमियां ) रात्रि में अत्यन्त चमकती हुई विद्युत् से युक्त मेघों का अनुकरण करते हैं। और जिस हिमालय के

मध्य भाग में भ्रमण करती हुई किन्नर स्त्रियों के चरणों में लगी हुई पद्मरागादि मनःशिला और गैरिक आदि धातुओं की लालिमा ने अलक्तक के पादरञ्जनरूपी कार्य को सम्पादन किया है। और वहां शिवजी का स्थान होने से चन्द्रमा को अपना शिरोभूषण बनाकर, तथा दिशारूपी वस्त्रों को धारण किया हुआ ( अर्थात् समग्रदिशाओं में व्याप्त ) और नाना कन्दराओं से युक्त ( अथवा अपने दौहित्र कार्तिकेय का अधिष्ठान है जिसमें ) ऐसा यह हिमालय सर्व पर्वतों का स्वामी जनों से पुकारा जाता है ॥ १०—१५ ॥

अथ महादेवस्थितिवर्णनम्—

**निमीलितदृशो नित्यं मुनयो यस्य सानुषु ।**
**प्रत्यक्षयन्ति गिरिशमवाङ्मनसगोचरम् ॥ १६ ॥**
**शिलातलप्रतिहतैर्यस्य निर्झरशीकरैः ।**
**अह्न्यपि निरीक्षन्ते यक्षास्ताराङ्कितं नभः ॥ १७ ॥**
**नीहारपवनोद्रेकनिःसहा यत्र पूरुषाः ।**
**निजस्त्रीणां निषेवन्ते कुचोष्माणं निरन्तरम् ॥ १८ ॥**
**सञ्चरन्कटके यस्य निदाघेऽपि दिवाकरः ।**
**उद्दामहिमरुद्धोष्मा न शीतांशोर्विभिद्यते ॥ १९ ॥**
**गुहागृहेषु कस्तूरीमृगनाभिसुगन्धिषु ।**
**गायन्ति यत्र किन्नर्यो गौरीपरिणयोत्सवम् ॥ २० ॥**
**चकास्ति तत्र जगतामादिदेवो महेश्वरः ।**
**रसात्मना जगत्त्रातुं जातो यस्मान्महारसः ॥ २१ ॥**

जिस हिमगिरि के शिखर प्रदेशों पर स्थित महर्षिगण ध्यान से नेत्रों को बन्द करके वाणी और चित्त से भी अवर्णनीय ऐसे महादेव का नित्य ही ज्ञान चक्षुओं से प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते हैं। और जिस पर्वत पर रहने वाले यक्षगण दिन में भी शिलापृष्ठ पर ताड़ित हुए झरणों के छोटे २ कणों से आकाश को नक्षत्रों से व्याप्त हुआ देखते हैं। और जहां पर निवास करने वाले पुरुष तुषार के कणों से मिश्रित वायु के वेग को सहन करने में असमर्थ होकर सर्वदा निज स्त्रियों के स्तनों की उष्णता को प्राप्त करते हैं। और जिस हिमालय के शृङ्ग पर ग्रीष्म ऋतु में सञ्चरण करने वाला सूर्य तुषार से उष्णता नष्ट होने के कारण चन्द्रमा से भिन्न-

प्रतीत नहीं होता । और जिस हिमालय की कस्तूरी मृग के नाभिगत कस्तूरी से सुगन्धित कन्दराओं के गृहों में बैठी हुई किन्नरों की स्त्रियां श्रीपार्वती के शुभ विवाहोत्सव के मङ्गल गीत गाती रहतीं हैं ऐसे शुभ कैलास पर्वत पर संसार के प्रथम आराध्य भगवान् महादेव इस रूप से संसार की रक्षा के लिये विराजमान हैं जिन से ही महान् पारद रस की उत्पत्ति हुई है ॥ १६—२१ ॥

अथ रसोत्कर्षवर्णनम्—

**शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात् ।**
**नृणांभवेत्सूतकदर्शनेन यत्सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात् ॥ २२ ॥**
**विधाय रसलिङ्गं यो भक्तियुक्तः समर्चयेत् ।**
**जगत्त्रितयलिङ्गानां पूजाफलमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥**
**भक्षणं स्पर्शनं दानं ध्यानं च परिपूजनम् ।**
**पञ्चधा रसपूजोक्ता महापातकनाशिनी ॥ २४ ॥**
**हन्ति भक्षणमात्रेण पूर्वजन्माघसम्भवम् ।**
**रोगसङ्घमशेषाणां नराणां नात्र संशयः ॥ २५ ॥**
**पूर्वजन्मकृतं पापं सद्यो नश्यति देहिनाम् ।**
**सुगन्धपिष्टसूतेन यदि शम्भुर्विलेपितः ॥ २६ ॥**
**अभ्रकं त्रुटिमात्रं यो रसस्य परिजारयेत् ।**
**शतक्रतुफलं तस्य भवेदित्यब्रवीच्छिवः ॥ २७ ॥**
**यश्च निन्दति सूतेन्द्रं शम्भोस्तेजः परात्परम् ।**
**स पतेन्नरके घोरे यावत्कल्पविकल्पनम् ॥ २८ ॥**

विधि सहित किए हुए सैकड़ों अश्वमेध यज्ञों से अथवा करोड़ों गौओं के दानसे और हजारों मन सोने के दान करने से तथा काशी प्रयागादि पुण्य स्थानों में स्नान करने से जो पुण्यफल प्राप्त होता है वही फल केवल मनुष्य को पारद के दर्शन से लब्ध होता है । यदि कोई पारद का शिवलिङ्ग निर्माण कर भक्तिपूर्वक अर्चन करता है तो उसको तीनों लोकों में स्थित शिवलिङ्ग पूजन का फल प्राप्त होता है । औषध रूप से पारद का सेवन, तथा स्पर्शन, दान, ध्यान और पूजन करना यह पांच तरह की बड़े २ पापों का नाश करने वाली रसेन्द्र की पूजन शास्त्रों में कही गई है । इसको शास्त्रोक्तविधि सहित औषध रूप में सेवन करने से समस्त

मनुष्यों के पूर्व जन्म के पापों से उत्पन्न होने वाले रोग समूह जड़ से नष्ट हो जाते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। पारे का गन्धक के साथ पेषण करके शिवलिङ्ग पर चन्दन के समान लेपन करने से मनुष्यों के पूर्व देह कृत पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य अभ्रक तथा किञ्चिन्मात्र भी पारद का अच्छी तरह जारण करता है उसको शत अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है, ऐसा शिव जी ने कहा है।

जारणलक्षणं यथा—सूते गन्धादिनिक्षेपात्तत्तद्विधिविशेषतः ।
गन्धाद्यं जार्यते यत्तु जारणं कथ्यते बुधैः ॥

जो मनुष्य परमोत्कृष्ट महादेव के तेज स्वरूप पारद की निन्दा करता है वह कल्पान्त तक नरक में पड़ा रहता है ॥ २२—२८ ॥

अथ पारदस्य विशेषतो महत्ता—

**रोगिभ्यो यो रसं दत्ते शुद्धिपाकसमन्वितम् ।**
**तुलादानाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ २९ ॥**
**सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यगदं जगत् ।**
**रसध्यानमदं प्रोक्तं ब्रह्महत्यादिपापनुत् ॥ ३० ॥**
**अभ्रग्रासो हि सूतस्य नैवेद्यं परिकीर्तितम् ।**
**रसस्येत्यर्चनं कृत्वा प्राप्नुयात्क्रतुजं फलम् ॥ ३१ ॥**
**उदरे संस्थिते सूते यस्योत्क्रामति जीवितम् ।**
**स मुक्तो दुष्कृताद्घोरात्प्रयाति परमं पदम् ॥ ३२ ॥**

जो वैद्य सम्पूर्ण शुद्धि करके पारद की भस्म या उसका पाक करके रोगियों को औषध रूप में देता है उसको तुलादान तथा अश्वमेध यज्ञ करने का अनश्वर फल प्राप्त होता है। पारद का भस्मादि रूप में सिद्ध होने पर संसार को दारिद्र्य और रोग से मुक्त कर दूंगा इस तरह से किया हुआ पारद का ध्यान ब्रह्महत्यादि अनेक पापों का नाश करता है। पारद में अभ्रक को लीन करने के लिये जो जारण कर्म होता है उस पारद को अभ्रग्रास कहते हैं, इस तरह अभ्रक का ग्रास करना ही पारद का नैवेद्य है पारद की पूजा में भी अभ्रक रक्खा जाता है इस तरह पारद की जो पूजन करता है वह यज्ञजन्य फल को प्राप्त करता है।

ग्रसनप्रकारः—वज्रकण्टकवच्चोग्रं वृद्धमष्टाङ्गुलं मृदा ।
विलिप्य गोकरीषाग्नौ पुटितं तत्र शोषितम् ॥ १ ॥
त्र्यहं वज्रे विनिक्षिप्तो ग्रासार्थी जायते रसः ।
ग्रसते गन्धहेमादिवज्रसत्त्वादिकं क्षणात् ॥ २ ॥

अभ्रादिग्रसनशक्तिसञ्जननमेव रसस्य पूजनम्—

जिस मनुष्य की औषधरूप में सेवित पारद के उदर में रहने पर अपनी आयु समाप्ति के कारण मृत्यु हो जाती है वह घोर पापों से मुक्त होकर अन्तिम मुक्तिपद को प्राप्त होता है ॥ २९–३२ ॥

अथ मूर्च्छितादिपारदगुणाः—

**मूर्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।**
**अमरी करोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ३३ ॥**
**सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम् ।**
**श्वित्रं तदपि च शमयति यस्तस्मात्कः पवित्रतरः सूतात् ३४**
**रसबन्ध एव धन्यः प्रारम्भे यस्य सततमितिकरणा ।**
**सेत्स्यति रसे करिष्ये महीमहं निर्जरामरणाम् ॥ ३५ ॥**
**सुकृतफलं तावदिदं सुकुले यज्जन्म धीश्च तत्रापि ।**
**साऽपि च सकलमहीतलतुलनफला भूतलं च सुविधेयम् ॥३६॥**
**भूतलविधेयतायाः फलमर्थास्ते च विविधभोगफलाः ।**
**भोगाश्च सन्ति शरीरे तदनित्यमतो वृथा सकलम् ॥ ३७ ॥**
**इति धनशरीरभोगान्मत्वाऽनित्यान्सदैव यतनीयम् ।**
**मुक्तौ सा च ज्ञानात्तच्चाभ्यासात्स च स्थिरे देहे ॥ ३८ ॥**
**तत्स्थैर्यं न समर्थं रसायनं किमपि मूललोहादि ।**
**स्वयमस्थिरस्वभावं दाह्यं क्लेद्यं च शोष्यं च ॥ ३९ ॥**

विधिसहित मूर्च्छित पारद व्याधि को नष्ट करता है, स्वेदनादि बन्धन साधन प्रकियाओं से बद्ध पारद मोक्ष प्रदान करता है, भस्मीभूत पारा मनुष्य को अमर बनाता है अत एव पारद से बढकर और कृपा करने वाला कौन है ? देव, गुरु, गौ, और ब्राह्मण इत्यादि प्राणिमात्र की हिंसा से उत्पन्न पापों के समूह से उत्पन्न हुए असाध्य श्वेत कुष्ठ को भी जो निश्चय ही दूर करता है ऐसे पारद से

अधिक पवित्र कौन पदार्थ है ? जिस मनुष्य की इच्छा प्रथम ही रस बन्धन के लिये निरन्तर होती रहती है तथा मैं रस का सम्यक् बन्धन हो जाने पर भूमण्डल के मनुष्यों को अजर एवं अमर कर दूंगा वह धन्य है ।

मूर्च्छनाप्रकारः—गन्धकेन रसं प्राज्ञः सुदृढं मर्दयेद्भिषक् ।
कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ॥
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितो रसकोविदैः ।
असौ रोगचयं हन्यादनुपानस्य योगतः ॥ इति र० सा० सं० ।

बहुविधमूर्च्छनाप्रकारेषु षड्गुणगन्धकजारणप्रक्रिया साधीयसी ।

यथा—रसगुणबलिजारणं विनाऽयं न खलु रूजाहरणक्षमो रसेन्द्रः ।
न जलदकलधौतपाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति प्रसिद्धा ॥
इति र० चि० म०

बन्धनप्रकारो यथा रसरत्नाकरे—

कटुतुम्ब्युद्भवे कन्दे वन्ध्यायाः क्षीरकन्दके ।
अपक्वैकं समादाय तद्गर्भे पिण्डिका ततः ॥
दशनिष्कं शुद्धसूतं निष्कैकं शुद्धगन्धकम् ।
स्तोकं स्तोकं क्षिपेद्गन्धं पाषाणे तु च कुट्टयेत् ॥
याममात्रे भवेत् पिण्डी रक्तकन्दे विनिःक्षिपेत् ।
अर्धार्द्धं भस्म वैक्रान्तं दत्वा निष्कार्धमानकम् ॥
ततः कन्दस्य मज्जाभिर्मुखं बद्ध्वा मृदा दृढम् ।
लिप्तमङ्गुलमानेन सर्वतः शोष्य गोलकम् ॥
पाचयेत् भूधरे यन्त्रे तदुधृत्य पुनः पचेत् ।
उर्द्ध्वभागमधः कुर्यादित्येवं परिवर्जयेत् ॥
क्रमेण चालयेदूर्ध्वं बहिर्युग्मोपलैः पचेत् ।
ततो भित्वा तु सङ्ग्राह्यः बद्धःस्याद्दाडिमोपमम् ॥
नाम्ना वैक्रान्तबद्धोऽयं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥

भस्मकरणप्रकारो यथा—

द्विपलं शुद्धसूतस्य सूतार्धं गन्धकं तथा ।
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं निरन्तरम् ॥

रुद्ध्वा तत् भूधरे यन्त्रे दिनैकं मारयेत् पुटे ॥ इति र० सा० सं०।

पूर्वजन्म कृत अच्छे कर्मों का फल है कि उत्तम वंश में जन्म हो, उसमें भी श्रेष्ठ कुशाग्र तथा आस्तिक्य बुद्धि हो और वह बुद्धि भी सम्पूर्ण भूमण्डल के ज्ञान की तुलना कर सके, फिर उस श्रेष्ठ बुद्धि से पृथ्वी को शक्ति शालिनी बनाने का यत्न करना उससे धनप्राप्ति रूप फल होता है, और धन का फल नाना प्रकार के भोग हैं, और वे भोग शरीर ही में सम्पादित होते हैं (अर्थात् शरीर द्वारा ही भोगे जाते हैं)। किन्तु वह शरीर नाशवान् है इसलिये उपर्युक्त सर्व सामग्री वृथा ही है। इस कारण धन, शरीर, तथा भोगविलासादियों को अनित्य जानकर सदा ही मुक्ति प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए, और वह मुक्ति सत्य ज्ञान से होती है, वह यथार्थ ज्ञान योगाभ्यास से, और योग का अभ्यास व्याधि रहित स्थिर शरीर द्वारा ही हो सकता है, इस देह की स्थिरता को बनाई रखने में मूल काष्ठ औषधियां तथा धातु स्वर्ण लौहादि कोई भी रसायन समर्थ नहीं है क्यों कि वे काष्ठादि तथा धातु औषधियां स्वयं अस्थिर प्रकृति वाली होती हैं तथा वन्हि उनका नाश कर देती है, जल से आर्द्र हो जाती हैं, सूर्य अपनी उष्णता से उन्हें जला देता है। किन्तु पारद पर किसी का भी अनिष्ट कारी प्रभाव नहीं पड़ता है अतः सब में यही उत्तम है।

रसायनलक्षणम्— यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्। इति चरकः, ॥३३-३९॥

पारदे सर्वौषधानामन्तर्भावः—

**काष्ठौषध्यो नागे नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्बे।**
**शुल्बं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥ ४० ॥**
**अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्तौ योगिनो यथा लीनाः।**
**तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥ ४१ ॥**

काष्ठादिकमूल औषधियां सीसे में, सीसा वङ्ग में, वङ्ग ताम्र में, ताम्र रजत में तथा रजत (चांदी) सोने में और सुवर्ण पारद में विधियों द्वारा मिल जाता है, जिस तरह योगीजन श्रीशिवजी के रूप में लीन होकर अमृतत्व को प्राप्त करते हैं (अर्थात् वे शिवजी में मिलकर जन्म मृत्यु जराव्याधि, आदि

रोगों से मुक्त हो जाते हैं ) इसी तरह अभ्रक को अपने में लीन किया हुआ पारद सम्पूर्ण सुवर्ण लौहादि धातुओं को अपने में समाविष्ट कर लेता है ॥४०–४१ ॥

अथ रसस्य जीवन्मुक्तिकारणतामाह—

परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम् ।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ ४२ ॥
स्थिरदेहेऽभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञानं गुणाष्टकोपेतम् ।
प्राप्नोति ब्रह्मपदं न पुनर्भववासजन्मदुःखानि ॥ ४३ ॥
एकांशेन जगद्युगपद्वष्टभ्यावस्थितं परं ज्योतिः ।
पादैस्त्रिभिस्तदमृतं सुलभं न विरक्तिमात्रेण ॥ ४४ ॥
न हि देहेन कथञ्चिद्व्याधिजरामरणदुःखविधुरेण ।
क्षणभङ्गुरेण सूदमं तद्ब्रह्मोपासितुं शक्यम् ॥ ४५ ॥
नामापि देहसिद्धेः को गृह्णीयाद्विना शरीरेण ।
यद्योगगम्यममलं मनसाऽपि न गोचरं तत्त्वम् ॥ ४६ ॥
यज्ञाद्दानात्तपसो वेदाध्ययनाद्व्रतात्सदाचारात् ।
अत्यन्तभूयसी किल योगवशादात्मसंसिद्धिः ॥ ४७ ॥
भ्रूयुगमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्यवज्रगङ्गाभम् ।
केषाञ्चित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योतिः ॥ ४८ ॥
परमानन्दैकरसं परमं ज्योतिःस्वभावमविकल्पम् ।
विगलितसकलक्लेशं ज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम् ॥ ४९ ॥
तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन् ।
उत्सन्नकर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहैव चाऽऽप्नोति ॥ ५० ॥
रागद्वेषविमुक्ताः सत्याचारा मृषारहिताः ।
सर्वत्र निर्विशेषा भवन्ति चिद्ब्रह्मसंस्पर्शात् ॥ ५१ ॥
तिष्ठन्त्यणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदितानन्दाः ।
ब्रह्मस्वभावममृतं सम्प्राप्ताश्चैव कृतकृत्याः ॥ ५२ ॥
आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयः परं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥ ५३ ॥

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रहं देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ५४ ॥
यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादिदुःखविवशं च ।
याग्यं तन्न समाधौ प्रतिहितबुद्धीन्द्रियप्रसरम् ॥ ५५ ॥
बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलम्पटः परतः ।
यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम् ॥ ५६ ॥
अस्मिन्नेव शरीरे येषां परमात्मनो न संवेदः ।
देहत्यागादूर्ध्वं तेषां तद्ब्रह्म दूरतरम् ॥ ५७ ॥
ब्रह्मादयो यतन्ते तस्मिन्दिव्यां तनुं समाश्रित्य ।
जीवन्मुक्ताश्चान्ये कल्पान्तस्थायिनो मुनयः ॥ ५८ ॥
तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम् ।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगात् ॥ ५९ ॥

जिस तरह संसार के सर्व प्राणी परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाते हैं उसी तरह रसों में राजा (श्रेष्ठ) पारद में सम्पूर्ण रस, उपरस लौहादि द्रव्य समाविष्ट हो जाते हैं, इस तरह का यह पारद शरीर को अजर और अमर बना देता है ( अर्थात् परब्रह्म की उपासना से जो अजर और अमर फल प्राप्त होता है वही फल इससे है अतः पारद भी ब्रह्मस्वरूप ही है )

पारद के सेवन करने से स्थिर देह प्राप्त होने पर अभ्यास करने से गौतम महर्षि प्रतिपादित अष्टविध गुणों से युक्त यथार्थ ज्ञान को मनुष्य प्राप्त करके ब्रह्म पदको प्राप्त करता है फिर वह पुनरुत्पत्ति और वासना जनित दुःखों को प्राप्त नहीं होता है, इस तरह पारद मोक्ष देने वाला है ।

गौतमोक्त अष्टगुण, सर्वभूतदया, क्षान्तिः, अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गलवचन, अकार्पण्य, अस्पृहा, ये हैं । तीन पादों (सत्व, रज, और तम) से युक्त अर्थात् त्रिविक्रमस्वरूप परमोत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूप पदार्थ अपने सर्वभूतस्वरूप एक अंश ( पाद ) से जगत् को धारण करके स्थित है वह अमृत स्वरूप पर ब्रह्म केवल वैराग्य मात्र से प्राप्त नहीं होता है ।

'पादोऽस्य सर्वभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि' इति श्रुतिः ।

'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' इति गीता ॥

व्याधि, जरा, मरण आदि अनेक कष्टों से आक्रान्त तथा क्षण में नाश होने वाले इस देह से किसी तरह से भी वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रसिद्ध ब्रह्म कभी भी ध्यान गम्य नहीं हो सकता है। इसी को प्रकारान्तर से कहते हैं—जो निर्मल है और मन का भी विषय न होने वाला है किन्तु योग से प्राप्त होने वाला है ऐसे तत्त्वस्वरूप ब्रह्म को देहसिद्धि के विना इस क्षणविध्वंसी स्थूल शरीर से कौन ऐसा व्यक्ति है जो प्राप्त कर सके ?

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह,

ब्रह्मज्ञानोपाय निम्न हैं—यागानुष्ठानों से, अन्न वस्त्रादि के दान से, तपश्चर्या से, वेदपाठ से, दम से, सत्पुरुषों के समान सदाचरण करने से, और योग से, अत्यन्त प्रचुर तथा सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञानरूप आत्मसिद्धि प्राप्त होती है।

'निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिधीयते'

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥
तस्मिन्देशे य आचारः पारम्पर्य्यक्रमागतः। वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥
साधवः क्षीणदोषाश्च सच्छब्दः साधुवाचकः। तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते॥

दोनों भ्रूकुटियों के बीच में स्थित जो अग्नि, विद्युत् और सूर्य के समान जगत् को प्रकाशित करने वाला उत्कृष्ट ज्योतिः स्वरूप परब्रह्म है वह ज्ञान चक्षुयुक्त किसी २ मनुष्य को प्रकाशित होता है।

केवल नित्यानन्दस्वरूप, सर्वदा एकरस, और अनादि, तर्क वितर्कादि कल्पों से रहित स्वभाव वाला, समग्र क्लेशों से रहित, शान्तस्वरूप, सब के जानने योग्य तथा आत्मा ही में मनन होने वाला, ज्योतिः स्वरूप ब्रह्म है, ऐसे ब्रह्म में मन को निविष्ट कर, निखिल जगत् को उस ब्रह्म से व्याप्त और प्रकाश युक्त देखता हुआ शुभाशुभ कर्मों से युक्त होकर मनुष्य इसी संसार में ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है। उस ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष स्वजनानुराग और परजनद्वेष से रहित, शुद्ध आचार-युक्त मिथ्याभाषणादि रहित और सब में समदर्शी होते हैं और अमृत स्वरूप ब्रह्मस्वभाव को प्राप्त पुरुष अणिमादि अष्टसिद्धियों से युक्त देदीप्यमान देहवाले, और सर्वदा आनन्द ही में मग्न रहने वाले तथा अपने को कृतकृत्य जान कर रहते हैं।

जो तत्व को साक्षात्कार कराने वाली श्रुतिस्मृत्यादि विद्याओं का आधार है

और धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष का मूल है ऐसे एक जीवन मरण से रहित शरीर के सिवाय अन्य कौनसा उत्तम श्रेय है ?।

जो पुरुष देहस्थिर करने वाले प्रत्यक्ष प्रमाणों से भी पारद को यथार्थ नहीं समझता है वह स्थूल चक्षु से अज्ञेय तथा ज्ञानस्वरूप ( चिन्मय ) शरीर से रहित ब्रह्मदेव को कैसे सत्य जान सकेगा ? जो शरीर बुढापे से जर्जरित हो गया है और कास, श्वास आदि दुःखों से व्याप्त है और सत्यासत्यनिर्णायक बुद्धि तथा स्वविषय प्रत्यक्ष करने वाली इन्द्रियों से कमजोर है ऐसा यह शरीर परमात्मा का एकाग्रचित्त से ध्यान करने में अयोग्य है।

सोलह वर्ष की अवस्था पर्यन्त मनुष्य बालक रूप में रहता है बाद में युवावस्था प्राप्त होने पर स्रक् चन्दन वनितारूप विषयरसों में लिप्त हो जाता है, फिर ७० वर्ष के बाद ज्ञान प्राप्त होने पर वृद्ध हो जाता है इस लिये मर्त्यजन कैसे मुक्ति लाभ करें ?। जिन मनुष्यों को इसी शरीर में परब्रह्मका यथार्थ ज्ञान न हो तो फिर इस देह त्याग के पश्चात् वे ब्रह्म ज्ञान से अत्यन्त दूर रह जाते हैं। ब्रह्मादिक देवता उस ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये दिव्यशरीर धारण करके तथा अनेक कल्पों तक स्थित रहने वाले जीवन्मुक्त होकर मुनि लोग भी उसके लिये प्रयत्न करते रहते हैं। इसलिये जीवन्मुक्ति की अभिलाषा रखने वाले योगी को चाहिये कि वह सर्वप्रथम महादेव और पार्वती से जन्य पारद और गन्धक के संयोग से निर्मित औषधि से दिव्य शरीर प्राप्त करने की कोशिश करें।

पारदं शिववीर्य्यञ्च दुर्गा बीजञ्च गन्धकम् ॥ ४२-५९ ॥

अथ रसोत्पत्तिवर्णनम्—

शैलेऽस्मिञ्शिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोकक्षोभकारिणि ॥ ६० ॥
विनिवारयितुं वह्निः संभोगं प्रेषितः सुरैः।
काङ्क्षमाणैस्तयोः पुत्रं तारकासुरनामकम् ॥ ६१ ॥
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम्।
अपत्तिभावसंक्षुब्धं स्मरलोलाविलोकिनम् ॥ ६२ ॥
तं दृष्ट्वा लज्जितः शंभुर्विरतः सुरतात्तदा।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना ॥ ६३ ॥

प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गङ्गायामपि सोऽपतत् ।
बहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदन्दह्यमानया ॥ ६४ ॥
सञ्जातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिहेतवः ।
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भूरिसारतः ॥ ६५ ॥
शतयोजननिम्नांस्तान्कृत्वा कूपांस्तु पञ्च च ।
तदाप्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पञ्चधाऽभवत् ॥ ६६ ॥

हिमालय पर्वत पर महादेव और पार्वती दोनों में प्रेम पूर्वक परस्पर जय की इच्छा से लोकत्रय को क्षुब्ध करने वाला सम्भोग कर्म प्रारम्भ हुआ, उस सम्भोग को बन्द कराने की इच्छा वाले और शिव तथा पार्वती की देह से उत्पन्न पुत्र की चाहना वाले देवताओं ने अग्नि को भेजा। कबूतर के रूप को धारण किये हुए, हिमालय की गुफा में आये हुये और कामक्रीडा को देखने वाले देव भाव से संक्षुब्ध हुए अनल (अग्नि) देव को देख कर लज्जा के कारण शिव जी सम्भोग से विरत हुए, उस समय महादेव जी के शरीर से अन्तिम धातु (शुक्र) का पात हुआ, उस धातु को शिवजी ने अग्नि के मुख में डाल दिया, बाद में वह धातु वन्हि के मुख से गङ्गा में गिर पड़ा, उस तेज को न सहन करने वाली गङ्गा ने भी उसे बाहर फेंक दिया, उस वीर्य्य के क्षिप्त भाग से सिद्धिप्रदान करने वाले अनेक रसादिक धातु उत्पन्न हुए। जिस समय अग्नि के मुख से गुरुभारयुक्त शिवजी के धातु का बहिः पतन हुआ, उस वक्त वह धातु सौ योजन गहरे पांच कुए बना कर पञ्चविध हो गया ॥ ६०—६६ ॥

अथ रसानां भेदः—

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।
इति पञ्चविधो जातः क्षेत्रभेदेन शंभुजः ॥ ६७ ॥
रसो रक्तो विनिर्मुक्तः सर्वदोषै रसायनः ।
सञ्जातास्त्रिदशास्तेन नीरुजा निर्जरामराः ॥ ६८ ॥
रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तः श्यावो रूक्षोऽति चञ्चलः ।
रसायिनोऽभवंस्तेन नागा मृत्युजरोज्झिताः ॥ ६९ ॥
देवैर्नागैश्च तौ कूपौ पूरितौ मृद्भिरश्मभिः ।
तदाप्रभृति लोकानां तौ जातावतिदुर्लभौ ॥ ७० ॥

ईषत्पीतश्च रूक्षाङ्गो दोषयुक्तश्च सूतकः ।
दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः ॥ ७१ ॥
अथान्यकूपजः सोऽपि चञ्चलः श्वेतवर्णवान् ।
पारदो विविधैर्योगैः सर्वरोगहरः स हि ॥ ७२ ॥
मयूरचन्द्रिकाछायः स रसो मिश्रको मतः ।
सोऽप्यष्टादशसंस्कारयुक्तश्चातीव सिद्धिदः ॥ ७३ ॥
त्रयः सूतादयः सूताः सर्वसिद्धिकरा अपि ।
निजकर्मविनिर्माणैः शक्तिमन्तोऽतिमात्रया ॥ ७४ ॥
एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः ।
आयुरारोग्यसन्तानं रससिद्धिं च विन्दति ॥ ७५ ॥

शिवजी से उत्पन्न धातु क्षेत्र भेद से रस, रसेन्द्र, सूत, पारद, और मिश्रक इस तरह पांच तरह का कहलाया । रस नामक पारद सबदोषों से रहित तथा रक्त वर्ण का होता है उसके सेवन से देवता लोग अजर और अमर होगये । रसेन्द्र नामक पारद दोषों से रहित कपिशवर्ण (श्यामवर्ण) लिये हुए तथा स्पर्श में रूक्ष और देखने में अत्यन्त निर्मल और रसायन गुण देने वाला होता है । उसके सेवन से नाग जाति मृत्यु तथा बुढापे से मुक्त होगई । इसके बाद नाग और इन्द्रादिक अजर अमर हुए देवताओं ने उन दोनों कुओं को 'जिनमें रस और रसेन्द्र भरा था, मिट्टी और पत्थरों से बन्द कर दिया, उसी समय से वे दोनों कुए या पारद प्राणियों के लिये दुष्प्राप्य होगये ।

देखने में कुछ पीला, स्पर्श में रूक्ष और सप्तकञ्चुक तथा नागादि दोषों से युक्त सूत नाम का पारद होता है तथा अठारह संस्कारों से सिद्ध होने पर वह मनुष्य को लोह के समान मजबूत बना देता है, और अन्य कुओं से उत्पन्न रस चञ्चल और श्वेत वर्ण का होता है उसे पारद कहते हैं, वह विविध औषधियों के संयोग से, या अष्टादश संस्कार करने पर, सम्पूर्ण रोग दूर करता है । मोर के पुच्छस्थ विविध वर्ण की चन्द्राकृति की छाया वाला मिश्रक नाम का रस (पारद) होता है, वह भी अठारह संस्कारों से सिद्ध होने पर अत्यन्त सिद्धि प्रदान करता है । सूत, पारद और मिश्रक ये तीनों सूत (रस)

सम्पूर्ण सिद्धियों के देने वाले हैं तथापि उनका यदि अष्टादश स्वेदनादि संस्कार हो जाय तो उस कर्म के प्रभाव से वे अत्यन्त शक्ति देने वाले हो जाते हैं।

जो इस तरह रस की उत्पत्ति को जानता है, वह धर्मात्मा कहलाता है, और वही आयु और आरोग्य की परम्परा को प्राप्त करता है तथा रस शोधनादिकर्म में सफल भी होता है।

दोषगणना—नागो वङ्गो मलो वन्हि श्चाञ्चल्यञ्च विषं गिरिः।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गाः पारदे स्थिताः ॥ र० सा० सं०।

रसायनलक्षणन्तु—

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।
स्वस्थस्यौजस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम् ॥ 'इति चरकः।
देहस्येन्द्रियदन्तानां दृढीकरणमेव च।
वलीपलितखालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया ॥
पूर्ववैद्यप्रणीतं हि तद्रसायनमुच्यते। इति वैद्यक संग्रहः।

अष्टादश संस्काराः—

"स्वेदन-मर्दन-मूर्च्छनोत्थापन-पातन-बोधन नियमन-दीपनानुवासन-गगनादि-ग्रास-प्रमाणचारण-गर्भद्रुति-बाह्यद्रुतियोग-जारण-रञ्जनसारण-क्रामणवेध-भक्षणानीति"।
रसेन्द्रचिन्तामणिः।

सूत और पारद शब्द व्यक्ति तथा जाति उभयवाचक हैं। जैसे तृण शब्द तृणविशेष और सर्वतृणनिष्ठ तृणजाति का वाचक होता है ॥ ६७–७५ ॥

अथ रसादीनां निरुक्तिः—

**रसनात्सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते।**
**जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मतः ॥ ७६ ॥**
**रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तितः।**
**देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः ॥ ७७ ॥**
**रोगपङ्काब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः।**
**सर्वधातुगतं तेजोमिश्रितं यत्र तिष्ठति ॥**
**तस्मात् स मिश्रकः प्रोक्तो नानारूपफलप्रदः ॥ ७८ ॥**

**एवंभूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ॥**
**प्रभावान्मानुषा जाता देवतुल्यबलायुषः ॥ ७९ ॥**

सुवर्ण रजत आदि धातुओं को द्रवरूप में परिणत करने से अथवा सब धातुओं में उत्कर्ष वीर्याधान करने से पारद रस शब्द से कहा जाता है, अथवा जरा, व्याधि और मृत्यु के नाश करने में समर्थ होने से भी इसको रस कहते हैं । अभ्रक आदि आठ महारस—और गन्धकादि उपरसो में श्रेष्ठ होने से रसेन्द्र कहलाता है। शरीर को लोहे के तुल्य दृढ सिद्धि देने से अर्थात् मज़बूत करने से सूत कहा जाता है । व्याधि रूपी कीचड़ के समुद्र में डूबे हुए मनुष्यों को उससे पार करने के कारण पारद कहा जाता हैं । जिसमें सब धातुओं का तेज मिश्र होकर रहता है इसलिये उसे मिश्रक भी कहते हैं। वह नाना प्रकार के रोगों को नाश करने का फल करता है। अर्थात् मिश्रक नामक पारद में सब धातुओं के गुण पाये जाते हैं । इस प्रकार से मनुष्यों की मृत्युरूप व्याधि या मृत्यु और ज्वरादि रोगों को दूर करने वाले सूत के प्रभाव से मनुष्य देवताओं के समान बल और आयु से युक्त होने लगे ।

संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौ पारदः स्मृत ॥ ७६-७९ ॥

अथ रससंस्कारकारणम्—

**तान्दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदनन्तरम् ।**
**दोषैश्च कञ्चुकाभिश्च रसराजो नियोजितः ॥**
**तदाप्रभृति सूतोऽसौ नैव सिध्यत्यसंस्कृतः ॥ ८० ॥**
**जलगो जलरूपेण त्वरितो हंसगो भवेत् ।**
**मलगो मलरूपेण सधूमो धूमगो भवेत् ॥ ८१ ॥**
**अन्या जीवगतिर्दैवी जीवोऽण्डादिव निष्क्रमेत् ।**
**स तांश्च जीवयेज्जीवान् तेन जीवो रसः स्मृतः ॥ ८२ ॥**
**चतस्रो गतयो दृश्या अदृश्या पञ्चमी गतिः ।**
**मन्त्रध्यानादिना तस्य रुध्यते पञ्चमी गतिः ॥ ८३ ॥**
**इति भिन्नगतित्वाच्च सूतराजस्य दुर्लभः ।**
**संस्कारस्तस्य भिषजा निपुणेन तु रक्षयेत् ॥ ८४ ॥**

इस तरह मनुष्यों को अजर अमर होते देख इन्द्र के प्रार्थना करने पर महादेव-जी ने उस पारद में

नागादि अष्ट दोष और पर्पट्यादि सप्तकञ्चुक दोष

नागो वङ्गो मलो वह्निश्चाञ्चल्यञ्च विषं गिरिः ।
असह्याग्नि र्महादोषा निसर्गाः पारदे स्थिताः ॥ र० सा० सं०
भेदी द्रावी मलकरी ध्वांक्षी पर्पटिका च सा ।
अन्धकारी पाटनिका कञ्चुकाः सप्त कीर्तिताः ॥ र० त०

मिला दिये। उस समय से आज तक यह सूत बिना संस्कारों के सिद्धि देने वाला नहीं होता है। जल के समान द्रव रूप होने से जल के साथ गमन शील है। चाञ्चल्य होने से हंस के समान गमन शील है। मल रूप होने से मलादि दोषों के साथ मिल जाता है। अग्नि आदि से तप्त करने पर धूम के समान उड़न शील हो जाता है। इन चार प्रकार की गतियों के सिवाय पांचवीं भी अदृश्यरूप रस की गति है। उस गति के कारण देहरूप कोष से (अण्डात्) आत्मा की तरह निकल जाता है। अर्थात् जिस तरह से मृत्यु के समय आत्मा की गति का ज्ञान किसी को भी नहीं होता है इसी तरह रस की पांचवीं गति अदृश्य है। वह रस जीवों (प्राणियों) को प्राण दान करने से जीव कहलाता है।

पारद की उपर्युक्त जलग, हंसग, धूमग, मलग, रूप चारों गतियों का प्रत्यक्ष दर्शन होता है किन्तु पांचवीं गति अदृश्य है। परन्तु वह पांचवीं गति रस-रक्षामन्त्र और रसध्यान से रोकी जाती है। उक्त प्रकार से भिन्न २ गति होने के कारण पारद का संस्कार करना कठिन है। इस लिये निपुण वैद्य का कर्तव्य है कि वह उन संस्कारों की रक्षा करे ॥ ८०—८४ ॥

रसरक्षामन्त्रः—ओं अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च ।
सर्व्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररुपिभ्यः ॥ र० सा० सं०

ध्यानप्रकारः—हृद्वयोमकर्णिकाऽन्तःस्थं रसेन्द्रं परमेश्वरि ? ।
स्मरन्विमुच्यते पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः ॥ र० चि० म०

अथ रसस्य स्थानन्तरगतिवर्णनम्—

**प्रथमे रजसि स्नातां हयारूढां स्वलंकृताम् ।**
**वीक्षमाणां वधूं दृष्ट्वा जिघृक्षुः कूपगो रसः ॥ ८५ ॥**
**उद्गच्छति जवात्सोऽपि तं दृष्ट्वा याति वेगतः ।**
**अनुगच्छति तां सूतः सीमानं योजनोन्मितम् ॥ ८६ ॥**

**प्रत्यायाति ततः कूपं वेगतः शिवसम्भवः ।**
**मार्गनिर्मितगर्तेषु स्थितं गृह्णन्ति पारदम् ॥ ८७ ॥**

इसी समय प्रथम बार मासिकधर्म स्नान की हुई और अनेक प्रकार से उत्तम आभूषणों से शोभायमान तथा अश्व पर बैठी हुई और पारे के कुएँ में झांकती हुई तरुणी को देखकर उसे पकड़ने की इच्छा से वेग करके पारद कुएँ के बाहिर निकला । वह तरुणी भी उस पारे को देखकर वेग से भागने लगी । इसी तरह पारद भी चार कोस ( योजन ) पर्यन्त उसके पीछे पीछे चलता रहा, परन्तु उस स्त्री के भाग जाने पर बड़े वेग से फिर अपने आधार भूत कुएँ में आने लगा । उस समय कुछ पारा मार्ग में बने हुए गढहों में ठहर गया । उसी पारे को वे लोग गढहों से ग्रहण करते हैं ॥ ८५—८७ ॥

अथ हिङ्गुलोत्पत्तिवर्णनम्—

**पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।**
**स रसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ॥**
**तां मृदं पातनायन्त्रे क्षिप्त्वा सूतं हरन्ति च ॥ ८८ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
रसोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अत्यन्त गुरुता ( भारीपन ) होने के कारण जो पारद अग्नि के मुख से निकल कर दरद नाम वाले देश में गिरा, तभी से वह रस वहां की पृथ्वी में लीन हो गया । उस देश के लोग दरद नाम की मिट्टी को विद्याधर नामक उर्ध्व पातन यन्त्र में रख कर उससे पारा निकालते हैं ॥ ८८ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां
रसोत्पत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ।

## पारदीयविमर्शः—

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विषय के ऊपर गवेषणा करके जो कुछ सूत्र रूप में लिख दिया वह अक्षरशः सत्य है। उनके ज्ञान को आजकल के नवयुग के प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक अथक परिश्रम करने पर भी अभीतक नहीं प्राप्त कर सके हैं। बहुत से सत्यप्रिय वैज्ञानिकों ने हमारे आचार्यों के सूत्राशयों को प्रत्यक्षादिकप्रमाणों से स्वयं प्रत्यक्ष करके सिद्ध करलेने पर अन्तः करण से उनकी चरण चञ्चरीकता को स्वीकार की है तथा उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा भी की है। इसके कई एक उदाहरण हैं। हमारे ऋषि महर्षि आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के ज्ञान के यथार्थ विज्ञानी थे। इस विषय में प्रायः वर्तमान समय के सब देशके विद्वानों का एक मत है किन्तु उन प्राचीन महर्षियों की शिष्य परम्परा के भी पश्चात् उप शिष्य परम्परा ने उन के सूत्रों का इस प्रकार का अलङ्कारिकसंस्कृत भाषा में वर्णन किया कि जिसके फलस्वरूपमें आधुनिक संस्कृत साहित्य के विद्वानों ने उन सूत्रस्थ द्रव्यों की विज्ञानता को खोकर केवल आप्तोक्त ही मानकर शनैः शनैः अपने शेष विज्ञान सूर्य को भी अपने आप अज्ञानाम्बर से ढक दिया। उधर आजकल के पाश्चात्य विद्वानों ने हमारे ही महर्षियों के सूत्रों के तत्व को भलीभांति समझ कर उसी के आधार पर प्रत्येक पदार्थ का अन्वेषण करना प्रारम्भ कर दिया जिसका फल यह निकला कि गुरुओं

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ इति मनु० अ० २

को शिष्य बनाकर पाश्चात्य विद्वानों ने अपने मस्तक को ऊंचा उठा लिया।

इतना होने पर भी आजकल हम लोग अपने महर्षियों के इन

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि काञ्चनम्॥
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम्।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥ ( इति मनु० अ० २ )

श्लोकप्रतिपादित वचनों का सर्वथा अनादर करके खोये हुए अपने ही विज्ञान भास्कर के उदय के लिये इतस्ततः मनसा, वाचा, कर्मणा इन में से किसी एक भी उद्योग को नहीं कर रहे हैं। अस्तु "सब दिन रहत न एक समान, इस लोकोक्ति के अनुसार अब दैव ही गाढ निद्रा में सोये हुए हम लोगों के ऊपर से अज्ञान रूपी चादर को खींच रहा है। इससे आशा है कि वह दिन अब शीघ्र ही आयगा जब कि हमारे विशाल भारत में विज्ञान दिवाकर प्रतिदिन उदित हुआ करेगा। हमारा वैद्यक व्यवसाय सम्पूर्ण जगत् की रक्षा के लिये ही है जैसे कि कहा है—नात्मार्थं नापिकामार्थमथ भूतदयाम्प्रति।

अत एव हमें सर्व प्रथम अपने ज्ञान को सर्वसमुन्नत बनाना ही चाहिए। तथा रसचिकित्सा में कौन पदार्थ कैसा है, कहां प्राप्त होता है, किस रूप में प्राप्त होता है, आदि अनेक ज्ञान की पूर्णावश्यकता है। इस लिये इस रसग्रन्थ में प्रत्येक पदार्थ की समाप्ति के पश्चात् उसका पूर्ण परिचय कराना मेरा परम कर्तव्य है।

पारद—मर्करी। Mercury.—इस धरातल ( संसार ) में जितने भी खनिज द्रव्य हैं वे सब पृथ्वी के भीतर अर्थात् भूगर्भ में उत्पन्न होते हैं। उन में पारद ही एक ऐसा खनिज है जो साधारण तापक्रम ( Normal Temperature) पर द्रवरुप में प्राप्त होता है। पारद का स्वरुप पिघलो हुई चांदी के समान होता है इसी कारण रसकामधेनु में इसको गलद्रुप्यनिभम् ( अर्थात् द्रुतचांदी के सदृश) कहा है। तथा सम्भव है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इसको क्विक्-सिल्वर ( quick silver ) इसी हेतु से कहा है। पारद का सङ्केत ( सिम्बोल Symbol ) Hg. है तथा इसका परमाणुभार(१) ( एटोमिक वेट Atomic weight. ) २०० है तथा इसको तत्व(२) ( एलीमेण्ट Element ) माना है। इसका आपेक्षिक घनत्व(३) ( Relative Density )१३०६९ है।

यह ३९° से० पर जमता है अर्थात् इसका हिमाङ्क(४) Freezing Point ३९° से० है तथा ३५६° से० पर उबलता है अर्थात् इसका क्वथनाङ्क(५) ( Boiling Point ) ३५६° से० है।

### पारद की उपस्थिति—

पारद कभी कभी मुक्तावस्था में या स्वतन्त्र रुप से प्रकृति में अत्यल्प मात्रा में

---

( १ ) किसी तत्व के परमाणुभार को एकाङ्क ( unit ) मान कर उसकी तुलना से दूसरे तत्वों के परमाणुभार के जो अङ्क प्राप्त होते हैं उन्हें 'परमाणुभार' ( Atomic weight ) कहते हैं। प्रा० र०

( २ ) जिन्हें रासायनिक दृष्टि से दो वा दो से अधिक पदार्थों में विच्छिन्न ( पृथक् ) नहीं कर सकते हैं ऐसे पदार्थों को 'तत्व' ( Elements ) कहते हैं। प्रा० र०

( ३ ) जब एक पदार्थ के घनत्व की किसी दूसरे पदार्थ के घनत्व से तुलना की जाती है तब इसे आपेक्षिकघनत्व ( Relative Density ) कहते हैं तथा किसी पदार्थ के इकाई आयतन (Unit Volume) में कितनी मात्रा (Mass) विद्यमान है इसी को घनत्व (Density) कहते हैं। प्रा० र०

( ४ ) जिस तापक्रम पर द्रव पदार्थ घन बनते हैं उसे 'हिमाङ्क' ( Freezing Point ) कहते हैं।

( ५ ) जिस तापक्रम पर द्रव उबलने लगता है वह तापक्रम उस द्रव का 'क्वथनाङ्क' ( Boiling Point ) कहाता है। प्रा० र०

पाया जाता है। यह प्राचीन काल से हिङ्गुल (सिनबार Hgs) ही से अधिकतर निकाला जाता है। इसके अन्य रस ग्रन्थों में तथा इसी ग्रन्थ (रसरत्नसमुच्चय) में अनेक प्रमाण हैं यथा—

दरदं ( हिङ्गुलं ) पातने यन्त्रे पातयेत् सलिलाशये ।
सत्वं सूतकसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ ( रसार्णव )
तं सूतं योजयेद्योगे सप्तकञ्चुकवर्जितम् ।
ज्वरादिहरणे सर्वरसेषु विनियोजयेत् ॥ ( रसदर्पण )
पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।
स रसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ।
तां मृदं पातनायन्त्रे क्षिप्त्वा सूतं हरन्ति च ॥ ( रसरत्नसमुच्चय )
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण हिङ्गुलादुत्थितो रसः ।
हिङ्गुलोत्थः स्मृतश्चैव हिङ्गुलाकृष्ट उच्यते ॥ ( र० त० )
अथवा हिङ्गुलात् सूतं ग्राहयेत् तन्निगद्यते ।
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितो हिङ्गुलो दिनम् ॥
ऊर्ध्वपातनयन्त्रेण ग्राह्यः स्याद्विमलो रसः ।
कञ्चुकैर्नागवङ्गाद्यैर्निर्मुक्तो रसकर्मणि
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्मकृत् ॥ ( र० सा० सं० )

इन सब अवतरणों को पढ़ने से यह सिद्ध होता है कि पुराण काल ही से हिङ्गुल से विशेष रूप से पारद निकाला जाता है ।

भारत से इतर देशों मे भी हिङ्गुल ही से पारद निकाला जाता है। थियो फ्रास्टस ( Theo Phrastus ) नाम के विद्वान ने ईसा के पूर्व की ३०० शताब्दि के लगभग लिखा है कि ताम्रचूर्ण और हिङ्गुल को सिरके के साथ पीस कर उसे उड़ाकर पारद पृथक् करते थे । इसी प्रकार डायस्कोरीडीज ( Dioscorides ) नामक विद्वान् ने भी लौह चूर्ण के साथ हिङ्गुल मिलाकर उड़ाके पारद निकाला था । यही विधि ऊंचे दर्जे के हिङ्गुल से पारद निकालने के लिये कहीं २ अब तक भी काम में लाई जाती है ।

सोना चांदी बनाने वाले कीमियागर लोगों ने पारद पर अनेक प्रकार के परीक्षण किये तथा उन्हीं के अनुभव से पारद-मिश्रक (Amalgams) का ज्ञान व्यवहार में सर्व प्रथम प्रचलित हुआ। इसके पूर्व काल में कुछ लोगोंको धारण थी कि लोहे अथवा पारद जैसी तीन धातुएँ स्वर्ण या चांदी के रूप में परिणत हो सकती है। लोग ऐसा समझते थे की पारस मणि की सहायता से यह कार्य हो सकता है ।

"पारस परसि कुधातु सुहाई"

इसलिये इस पारस मणि के अन्वेषण करने के लिये कितने ही पुरुषों ने अपना समग्र जीवन दे दिया किन्तु वे उसको प्राप्त नहीं कर सके। धीरे धीरे इस निरर्थक खोज की ओर से लोगों ने मन का हटाकर ऐसी क्रियाओं के अन्वेषण में लगे जो लोहे वा पारे को चांदी या स्वर्ण में परिणत कर दे। कुछ लोग यह समझते थे कि मिश्र देश वालों को इस क्रिया का ज्ञान था जिससे वे हीन धातुओं को स्वर्ण सदृश सुन्दर धातुओं में परिणत कर देते थे। पाश्चात्य देशों में सबसे प्रथम सन् १५६६ ई० में पेरू (Peru) देश के हुवान्कावेलिका (Huancavelica) नामक स्थान में हिङ्गुल का अस्तित्व विदित हुआ और सन् १६३३ ई० में लोपेज़—सावेद्रा-वार्बा Lopez Saavedra Barba नामक व्यक्ति ने पारद निकालने के लिये अल्युडेल (Aludel गडकलों वाली) नामक भट्टी तैयार की। इसी भट्टी को १६४६ ई० में बुस्टा-मेण्ट (Bustamente) नाम के किसी रसायन शास्त्रवेत्ता ने स्पेन (Spain) देशीय पारदीयखनिज प्राप्ति के प्रसिद्ध अलमाडन (Almaden) स्थान की खानों में प्रचलित की पारद निकालने के लिये यह भट्टी दो शताब्दियों से भी अधिक समय तक उक्त दोनों देशों में प्रयुक्त होती रही। किन्तु अब नवीन उत्तम भट्टियों के बन जाने से इसका व्यवहार बन्द हो गया है।

खनिज से पारद निकालने की विधि अत्यन्त सरल है। खनिज को खुले स्थान में फूंकते हैं जिससे हिङ्गुल का गन्धक सल्फर डाइआक्साइड (Sulphur Dioxide) में बदल जात है और पारद मुक्त हो जाता है। कभी २ हिङ्गुल को चूने के साथ मिलाकर बन्द रिटोर्ट में स्रवित करते हैं जिससे केलसियम सल्फाइड और सल्फेड बनता है तथा पारद मुक्त हो जाता है। विधिपूर्वक निकाले हुए पारद के अन्दर बहुत सी अशुद्धियां रह जाती हैं। तथा इस पारद के साथ बहुत से यन्त्रवाहित (Mechanically carried) अपद्रव्य मिल रहते हैं। इनमें से कुछ तो केमोयास चमड़े के द्वारा छानने से दूर हो जाते हैं और कुछ यशद (zinc) वङ्ग (tin) सीस (Lead) सदृश पदार्थ मिले रहते हैं जो कि पारद का ऊर्ध्वपातन करने से दूर हो जाते हैं। अशुद्ध पारद को तनु नाइट्रिक अम्ल (Dilut Nitric Acid) में घुलाने से अन्य धातुएं उसमें घुल जाती हैं तथा शुद्ध पारद को निकाल कर जलसे धो के कपड़े से छान लेना चाहिए।

### पारद का सर्व प्रथम प्राप्ति—

भूगर्भविज्ञों के मतानुसार संसार में पारद आर्कियन से क्वार्टनरी आयु प्रदर्शित करने वाले शिलाव्यूहों में पाया गया है। यह आयु एक करोड़ पचहत्तर लाख वर्ष के लगभग मानी जाती है तथा पारद अनेक प्रकार के रङ्गरूप वाले विभिन्न जातीय जलज और आग्नेय पाषाणखण्डों में व्याप्त मिलता है। उदाहरण के लिये रेणु-

शिला ( Sand stone ), मृत्तिकापाषाण ( Shales ), सुधापाषाण ( lime stone, ) स्फटिकशिला ( quartzite ) आदि जलज और ज्वालामुखी की लावा आदि आग्नेय पाषाणों के नाम लिखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उक्त उभय गुणधर्मरहित रूपान्तरितपाषाणखण्डों (Schists) में भी यह पाया जाता है, किन्तु अधिकतर आग्नेय पाषाणखण्डों के ही समीप मिलता है।

पारदीय खनिजों के जमाव को देखने से यह भी विदित होता है कि भूगर्भ में जब आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होते हुए अपनी द्रवावस्था से घनावस्था में परिणत होने लगे उस समय उड़नशील खनिज जो कि उनके भीतरी भाग में विद्यमान थे वे वाष्परूप में उड़कर ऊपर के समीपवर्ती पाषाण खण्डों की दरारों में जमा हो गये। उनमें पारदीय खनिज भी अन्यतम है। सम्भवतः इसी कारण उष्ण जल के स्रोतों के समीप में पारद आजकल भी पाया जाता है।

अमेरिका के प्रसिद्धभूगर्भविज्ञ रेन्सम ( Ransome ) और स्पर ( Spurr ) नाम के विद्वानों का विचार है कि पारद सदा ज्वालामुखी आग्नेय पाषाणों के सिलसिले में ही पाया जाता है, क्योंकि इस का अस्तित्व अधिकांश में अर्वाचीन ज्वालामुखी पाषाणों में ही पाया गया है। किन्तु इस सिद्धान्त का स्थित करने में अपवाद यह है कि स्पेन देश की बड़ाखानें जो अलमाडन नामक स्थान में विद्यमान हैं वे भूगर्भकाल के निर्णयानुसार अत्यन्त प्राचीन हैं और उनमें पारद १३०० फीट की गहराई पर पाया जाता है। इसी प्रकार अमेरिका प्रदेश की केलिफोनिया ( California ), न्यू इड्रिआ ( New Idria ) और न्यू अलमाडन ( New Almaden ) की खानें हैं जिनका सम्बन्ध ज्वालामुखी के उद्गम से नहीं है। इन खानों में २२०० फीट की गहराई पर पारद मिलता है।

इस प्रकार अनेक मतभेद रहते हुए भी इस बात पर सब भूगर्भ विज्ञों का एकमत है कि पारद भूगर्भ के अन्तराल से उष्ण जल के साथ ही बाहर पृथ्वी पर प्रगट हुआ है और इसीलिये यह अपने खनिजों के साथ भूभाग के ऊपरी तल में ही अधिकतर जमा हुआ मिलता है। जिस उष्ण जल के साथ पारद निकलता है वह जल चाहे वर्षा द्वारा पृथ्वी के अन्तराल के उष्णभाग में जाकर पुनः उष्णस्रोत के रूप में बाहर निकला हो, चाहे पातालिक आग्नेय पाषाणों से निकलकर बाहर आया हो किन्तु यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि पारद उष्ण जल के साथ ही क्षारीय घोलों में घुला हुआ पृथ्वी की ऊपरी दरारों में या खुले भूभाग में आकर प्राकृतिक पारद और पारदीय खनिज हिङ्गुल आदि के रूप में जमा हुआ है।

इसी ( रसरत्नसमुच्चय ) ग्रन्थ में पारद के उत्पत्ति के विषय में निम्न विचार प्रगट किये गये हैं।

शैलेऽस्मिञ्छिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया।
सम्प्रवृत्ते च सम्भोगे त्रिलोकक्षोभकारिणि॥
विनिवारयितुं वह्निः सम्भोगं प्रेषितः सुरैः।
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम्॥
अपक्षिभावसंक्षुब्धं स्मरलीलाविलोकिनम्।
तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरताच्तदा॥
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना।
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गङ्गायामपि सोऽपतत्॥
वह्निः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया।
सञ्जातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिदायकाः॥
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भुवि सर्वतः।
शतयोजननिम्नास्ते जाताः कूपास्तु पञ्च च।
तदाप्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पञ्चधाऽभवत्॥

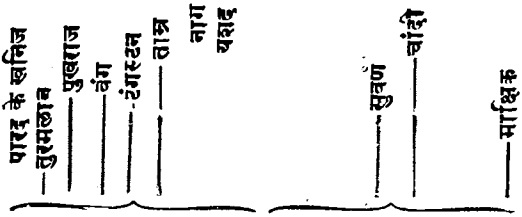
( रसरत्नसमुच्चय पूर्वखण्ड प्र० अध्याय )

इन पारदोत्पत्ति विषयक श्लोकों की प्राचीनानुमत शब्दानुकूल व्याख्या ( स्पष्ट भावार्थ ) मैंने प्रकरण में लिख दी है। किन्तु प्राचीनपारदोत्पत्ति की तुलना यदि आधुनिक विज्ञान के अनुसार करनी हो तो निम्न रूप से करनी चाहिए।

इस अवतरण का तात्त्विक भावार्थ यह विदित होता है कि हिमालय में जब जड़ और चैतन्य शक्ति के अन्दर संघर्षण होता है तब पृथ्वी के अन्तराल में आग्नेय पदार्थ ज्वालामुखी के रूपमें प्रगट होने लगते हैं। उस समय त्रैलोक्य में क्षोभ उत्पन्न करने वाला भूकम्प पैदा होता है। संसार के हिम प्रदेशों में ही प्रायः ज्वालामुखी प्रगट होते हैं। अर्थात् "शैलेऽस्मिन्" आदि प्रथम श्लोक में इसी अभिप्राय का रूपक है। जहां भूकम्प के उपरान्त ज्वालामुखी का उद्गम होता है वहां पर पृथ्वी शतधा विदीर्ण हो जाती है जिसमें से प्रथम धूम्र वर्ण की गैस निकलती है। यह वृत्तान्त प्रायः (कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत् कन्दरे स्थितम्) इस रूपकालङ्कार से दिखाया है। धुएं के निकलने के पश्चात् अग्नि की ज्वाला निकलने लगती है यह (अपक्षिभावसंक्षुब्धम्) आदि दूसरे श्लोक का तात्पर्य हो सकता है। जब ज्वालामुखी का उद्गम हो जाता है तब भूकम्प होना बन्द हो जाता है इस प्रकार का अभिप्राय "तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भु विरतः सुरताच्तदा" इस पद्य के साथ मिल सकता है।

जब ज्वाला मुखी के आग्नेय पाषाण क्रमशः शीतल होने लगते हैं तब उसके अन्तराल के उड़नशील खनिज उष्ण जल के साथ मिल कर वाष्परूप में ऊपर आकर शीत होने पर जम जाते हैं। इसी बात के द्योतक अन्य दो श्लोक हैं। जो

खनिज इस प्रकार निकल कर जमा होते हैं उनके जमने का क्रम डा०सी० जी केलिस प्रोफेसर इम्पिरियल कालेज लण्डन के मतानुसार यह है—सब के नीचे पातालिक आग्नेय पाषाण ग्रेनाइट ( Granite ) और उसके ऊपरी भाग में एक ओर जलज, पारद, तुरमलीन, पुखराज, वंग और टगस्टन रहते हैं तथा दूसरी ओर भारी धातु जैसे ताम्र, नाग, यशद, सुवर्ण, रजत, और रौप्यमाक्षिक आदि रहते हैं। इसका नक़शा वे इस प्रकार बनाते हैं।




जो लोग ऐसी खानों को खनते हैं वे प्रायः एक के बाद दूसरे खनिज को निकाल कर लाभ उठाते हैं; सम्भवतः इसी का मूल ग्रन्थ के पाठ में ( सज्ञातास्तन्मलाधाना-द्धातवः सिद्धिदायकाः ) इस प्रकारका वर्णन है। यह भी निश्चित है कि जहां पर पारद की खाने हैं वहां पर किसी किसी स्थान पर नल के आकार के कूप भी मिलते हैं। यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में भी पारद के खनिजों में जलाकार कूप मिलते हैं जिनकी समानता "शतयोजननिम्नास्ते ( विस्तीर्णाः ) जाता कूपास्तु पञ्च च" इस प्राचीनोक्ति में अक्षरशः सत्य मिलती जुलती है। उन देशों में पारद के कूप २४६० फीट तक गहरे हैं। नीचे के अङ्ग्रेजी अवतरण से ज्ञात होता है कि भूगर्भ के अन्दर सौ मील की खुदाई पारद निकालने की हुई है। प्राचीन पारदोत्पत्ति के अन्दर पांच कूपों का उल्लेख है परन्तु वहां पर इस समय अठारह कूप ( Shafts ) हैं जिनसे पारद निकाला जाता है। यह सम्भव है कि उस समय में पाञ्च कूपों का ही पता लगा हो।

ITALY

"In the Montebuono mine, according to R. Rosenlecher Miocene sands overlie and conceal Nummulitic Limestone. At a depth of 100 ft. a great vertical crevice about 6 ft. wide was struck, filled with Miocene sands and clays, impregnated with cinnabar in an extremely fine state of division. In the immediately neighbouring

rock are several funnel-shaped cavities, also filled with metalliferous sands and clays, the proportion of cinnabar increasing with the depth. These funnel-shaped cavities appear to bear some analogy to the vertical pipes or holes (Trajas) in gypsum at the mercury mines of Huitzuco Guerrero, Mexico. Broadly speaking, the whole deposit forms a large funnel, position of which is marked on the surface by distinct depression."

UNITED STATES.

"Santa Clara County—The new Almaden group of mines was discovered in Santa Clara County by two Mexicans in 1824, but the ore was not recognized as cinnabar until 1845. The large output of mercury from the mine has already been mentioned. *Altogether 18 shafts have been sunk*, and there are nearly 100 *miles of underground workings*, a large proportion of which have of course, caved in. The greatest depth in 1917 was 2,450 ft. below the top of mine Hill (1. 600 ft. altitude) so it is the deepest and most extensive mercury mine in the world."

*Monographs on Mineral Resources, Imperial Institute London Mercury Ores. By Edward Halse A. R. S. M. page* 45 & 75.

इन अवतरणों का प्राचीन मत के साथ मिलान करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनों का ज्ञान भी ठीक आज कल के ज्ञान के अनुसार पूर्ण वैज्ञानिक ढङ्ग ही का था। किन्तु वह अलङ्कारिक तथा तान्त्रिक भाषा में होने के कारण विना प्रत्यक्ष किये ठीक समझ में नहीं आ सकता है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि वैद्यवर्ग इस पारद के वैज्ञानिक वर्णन को पढ़ कर इस

"एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः"

आचार्योक्ति का अवश्य ही पालन करेंगे।

अब नीचे जिन जिन खनिजों से पारद निकाला जाता है उन उन खनिजों का परिगणन किया जाता है।

## पारद निकालने योग्य खनिज।

(१) हिङ्गुल, हंसपाद (सिनाबार Cinnabar Hgs) इसके भेद उत्पत्ति तथा निर्माण और प्राप्ति का विस्तृत वर्णन आगे यथा प्रसङ्ग किया जायगा।

( २ ) चर्मारः Metacinnabar ( Hgs )

यह कृष्णवर्ण का खनिज है। इसका रासायनिक सङ्गठन रक्त हिङ्गुल ( जपाकुसुमसङ्काश=Bright Red Sulphide) का ही सा है। यह मृत्तिका रूप में और रवों के रूप में पाया जाता है। यह मृत्तिका रूप म अधिक पाया जाता है। रवों के रूप में इसकी कठोरता ३ है तथा विशिष्ट गुरूत्व ( Specific gravity. ७०८१ होता है। इसको चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से काली लकीर खिचती है। देखने में यह धातु की सी द्युतिवाला होता है। मृत्तिकाकृति में विशिष्ट गुरूत्व कुछ कम होता है इसी का रस कामधेनु नामक रसग्रन्थ में "चर्मारः कृष्णरूपः स्यात्" इस रूप में वर्णित किया गया है।

३ हीरकद्युति=केलोमल ( Calomel Hg 2 Cl 2 )

यह हीरे के समान द्युति ( कान्ति ) वाला ( 'हीरकद्युति सङ्काशम्, रस कामधेनु ) रवेदार पारद का खनिज है। इसे मरक्युरस क्लोराइड या कैलोमल कहते हैं।

प्राप्ति—यहप्राकृतिक दशा में स्पेन देश के इड्रिया ( Idria ) अलमाडन ( Almaden ) नामक स्थान में स्वल्प मात्रा में पाया जाता है। यह रवों ( कण Crystals ) के रूप में ही प्रायः मिलता है। इसके रवे बहुत ही जटिल सङ्गठन के होते हैं। इसका रङ्ग श्वेत या पाण्डु होता है। चीनी मिट्टी की कसौटी पर रगड़ने से अल्पपीताभ-श्वेत लकीर खिचती है। इसके रवे की चमक हीरे की सी होती है। इसका विशिष्ट गुरूत्व ६०५ होता है। भारतीय रसशास्त्रियों को इस पारदीय खनिज का पूर्ण ज्ञान था। रस कामधेनु ग्रन्थ में इसका जो वर्णन लिखा है वह बहुत ही सुन्दर तथा यथार्थ है। उसमें संक्षेप से इसके विषय की प्रायः सभी बातें आगई हैं।

"हीरकद्युतिसङ्काशं प्रमाणाद्धीरकात् क्वचित्" ( रसकामधेनु पृ० ९७३ )

इस खनिज का निम्न अङ्ग्रेजी वर्णन प्राचीन मत के साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है।

Calomel ( Hg 2 Cl 2 )

This is Mercurous chloride and is found at Idria and at Almaden as one of the minor mercury minerals. It occurs in crystal so often highly complex of the tetragonal system.

Lustre adamantine (हीरकद्युतिसङ्काशम्) Fracture conchoidal (प्रमाणाद्धीरकात्क्वचित्) Colour white, or yellowish grey: Streak Pale, yellowish-White, hardness 1 to 2 specific gravity 6·5Loc. Cit. Page.

इस अवतरण के शब्द जब रस कामधेनु के अवतरण के साथ मिलाये जाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन रस शास्त्रियों ने भली प्रकार खान पर बठ कर नमूना

सामने रखकर खोज के साथ सारा वृत्त गागर में सागर की तरह भर दिया है। क्वचित् शब्द का प्रयोग अल्पमात्रा में मिलने के लिये और हीरकद्युति लस्टर एण्ड मेंन्टाइन तथा प्रमाणाद्धीरकात यह वाक्य फ्रेक्चर कोन्कोइडल के लिये ऐसा जंचता है कि मानो पर्य्याय शब्द लिख दिये हैं। ऐसा वर्णन पढ़कर किस वैद्य को अभिमान न होगा कि हमारा शास्त्र वैसा ही वैज्ञानिक है जैसा आजकल के नवशिक्षित लोग वैज्ञानिक होने का दावा करते हैं। इस खनिज के कम मिलने से और इसको उपयोगिता औषधि रूपमें अधिक देखकर सर्व प्रथम भारतीय रस शास्त्रियों ने रस कर्पूर के नाम से इसका रासायनिक विधि से निर्माण कर लिया। इसके बड़े कारखाने आज भी सूरत (गुजरात) में विद्यमान हैं। जहां पर प्रति वर्ष दो ढ़ाई सौ मन माल तैयार होकर सारे देश में विक्रयार्थ जाता है। इसका भाव १२) से २४) प्रति सेर के लग भग रहता है। इसका भाव सदा पारद के भाव पर निर्भर रहता है। मद्रास, और हैदराबाद दक्षिण में भी इसके बनाने के कारखाने हैं। वहां प्रायः सभी लोग शीत के दिनों में इसका सेवन करते हैं। ये लोग सूरत का बना हुआ रस कर्पूर लेकर फिर से आतिशी शीशी में भर कर बालुकायन्त्र से अग्नि देकर उसे उड़ाकर पपड़ी की शकल में तैय्यार करते हैं और उसे शुद्ध समझते हैं। इन कारखानों में रस कर्पूर और हिङ्गुल बनाने वाले खास खास आदमी रहते हैं। उनका यह खानदानी रोजगार समझा जाता है। वे लोग बारा बारी से इसे बनाकर बेचते हैं। एक एक भट्टी में दो दो ढाई ढाई मन का धान उतारते हैं। ये धान पिंडाकार बारीक चमकीले रवों के सम्मिलित कणों का समुदाय होता है। हाथ से दबाने पर इनका चूर्ण बारीक बारीक कणों में विभक्त हो जाता है।

रस कर्पूर की प्राचीन निर्माण विधि।

शुद्धसूतसमं कुर्यात् प्रत्येकं गैरिकं सुधिः।
इष्टिकां खटिकां तद्वत्स्फटिकां सिन्धुजन्म च॥
वल्मीकं क्षारलवणं भाण्डरञ्जकमृत्तिकाम्।
सर्वाण्येतानि सञ्चूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत्॥
एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं यावद्यामं विमर्दयेत्।
तच्चूर्णसहितं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत्॥
तस्याः स्थाल्या मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम्।
सहस्रकुट्टितमृदा मुद्रयेदनयोर्मुखम्॥
संशोष्य मुद्रयेत् भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत्।
सम्यक् विशोष्य मुद्रां तां स्थालीं चुल्यां विधारयेत्॥
अग्निं निरन्तरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम्।
अङ्गारोपरि तद्यन्त्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम्॥

शनैरुद्धाटयेद्यन्त्रमूर्ध्वस्थालीगतं रसम् ।
कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद् गुणवत्तरम् ॥ ( इति भावप्रकाश )

भावार्थ—शुद्ध पारद' गैरिक, ईंट का चूर्ण, खरिया मिट्टी, फिटकरी, सेंधा नमक, हिरमिजी ( एक प्रकार की लाल मिट्टी जो मिट्टी के बर्तन रँगने में व्यवहृत होती है सब द्रव्य समान लेकर पारद के अतिरिक्त अन्य सब द्रव्यों को पीस कर कपड़छान करके पारद के साथ मिलाकर एक प्रहर ( ३ घन्टे ) तक घोटें । तथा घोटे हुए द्रव्यों को एक मजबूत हाण्डी में रखें और उस पर ठीक जमने वाली दूसरी हाण्डी मुंह की ओर से ढक दें । बाद में कपड़ा और मिट्टी कूटकर मिलाकर जल में घोल के इससे उक्त दोनों हंडियों के मुख बन्द करके बाद में सुखावें । सूखने पर फिर कपरौटी कर दें । सन्धि इस प्रकार बन्द करें कि जिससे पारद बाष्पी भवन के समय निकल न सके । सन्धि लेप के भली प्रकार सूखने पर निरन्तर चार दिन तथा चार रात तक बबूल की लकड़ी की आंच दें । स्वाङ्ग शीतल होने पर सावधानी से सन्धि खोलकर ऊपर की हंडी में कर्पूर के जैसे लगे हुए द्रव्य को धीरे से निकाल लें । यह फिरंग (सिफलिस) उपदंश आदि के लिये उत्तम योग है ।

## रस कर्पूर की नव्य निर्माणविधि—

आधुनिक विधि में केवल पारद और खाने का साधारण नमक यथावश्यक मात्रा में लेकर और उड़ाकर रस कर्पूर बनाते हैं । आंच देने की प्राचीन विधि ही कुछ परिवर्तन के साथ व्यवहृत की जाती है । इसमें पारद १०० भाग के साथ नमक की गेस क्लोरिन १८ भाग मिली रहती है । इसको पाश्चात्य चिकित्सक औषधि में केलोमल के नाम से व्यवहार करते हैं इसे सब—क्लोराइड आफ मर्करी भी कहते हैं । इसका प्राचीन नाम रसकर्पूर था किन्तु आज कल 'पर—क्लोराइड़ आफ़ मर्करी के लिये यह नाम व्यवहृत होता है, जिसमें पारद के साथ क्लोरिन की मात्रा ३५॥ होती है और इसका व्यवहार भी उपदंश, फिरङ्ग आदि में बहुतायत से होता है । यह बहुत उपयोगी औषध है । मेरे विचार में दोनों की निर्माणविधि साधारण दृष्टि से समान होने के कारण रसकर्पूर संज्ञा दोनों में व्यवहृत होती है; किन्तु यह भूल है । दोनों रासायनिक दृष्टि से भिन्न भिन्न गुण धर्म वाले द्रव्य हैं और एक दूसरे के स्थान पर कभी किसी का व्यवहार नहीं करना चाहिये । इनका नाम भी स्पष्ट रीति से अलग अलग कर देने आवश्यक हैं । आधुनिक रसकर्पूर 'पर क्लोराइट आफ़ मर्करी' या, कोरोसिव सब्लोमेण्ट, के लिये रसकर्पूर और केलोमल ( सब क्लोराइड़ आफ़मर्करी ) के लिये सुधानिधिरस या रसपुष्प नाम व्यवहार में लाने चाहिये, जिससे दोनों द्रव्यों का भ्रम दूर हो जावे और औषधि के व्यवहार में हानि न उठानी पड़े । इन नामों का उपयोग "रसतरङ्गिणी" कार ने किया है ।

रसपुष्पं रससुमं कुसुमं रसपूर्वकम्।
मतं निरूच्यते कैश्चित्सुधानिधिरसाख्यया॥

विशेष के लिये पृष्ठ नं ३९ से ४८ तक रसतरङ्गिणी पढ़ें।

( ४ ) पारद का चौथा खनिज प्राकृतिक पारद ( Native Mercury.) है।

यह बहुत अल्पमात्रा में प्राप्त होता है। कभी कभी इसके कण खनिज हिङ्गुल के साथ बिखरे हुए पाये जाते हैं। यह पारद प्राप्ति का गौण खनिज समझा जाता है तथा इटली और स्पेन की खानों में यह मिलता है।

( ९ ) पारद रजत मिश्रक (Silver Amalgam. )

यह पारद का खनिज प्रकृति में पारद और रजत के भिन्न भिन्न परिणाम में बना पाया जाता है। यह अधिकतर चीनी ( Chile ) देश की खानों में पाया जाता है। इन खानों के अतिरिक्त जर्मनी स्पेन और यूनाईटेड स्टेट्स की खानों में भी पाया जाता है। यह पर्पटी जैसा है।

( ६ ) टेट्राहीड्राइट या मर्क्युरियल फेहलोर ( Tetrahedrite or Mercurial Fahlore. )

इस खनिज में से भी व्यापार के योग्य पारद निकल सकता है किन्तु यह वास्तव में ताम्र का ही खनिज है और बहुत अल्प मात्रा में पाया जाता है। जर्मनी के बोसनिया ( Bosnia ) और पेलेटिनेट ( Palatinate ) नामक स्थानों में ही विशेषतः मिलता है।

## परीक्षा

ऊपर लिखे हुए किसी भी खनिज को पारद के लिये परीक्षा कर सकते हैं। एक काच की परीक्षा नलिका ( Tastube ) में उक्त पारदीय खनिजों में से कोई भी ( जिसकी परीक्षा करनी हो ) पारद खनिज का चूर्ण तथा चूना या खाने का सोडा भर कर स्पिरिट लेम्प पर तपाने से नलिका के शीतल प्रदेश में पारद के कण जमे हुए नज़र आवेंगे। यदि पारद का खनिज पारद और गन्धक का यौगिक ( हिङ्गुल ) हुवा तो नलिका के शीतल प्रदेश में लाल हिङ्गुल और पारद दोनों दिखाई देंगे तथा जलते हुए गन्धक की तीव्र गन्ध भी प्रतीत होगी।

## पारद प्राप्ति के कुछ गौण खनिज

उक्त खनिजों के अतिरिक्त अल्पमात्रा में प्राप्त होने वाले कुछ पारदीय खनिज ऐसे भी हैं जो किसी स्थान विशेष में ही प्राप्त होते हैं और उन से भी पारद निकाला जा सकता है।

उनके निम्न नाम हैं।

( १ ) लिविङ्गस्टोनाइट ( Livingstonite $2\,Sb_2\,S_3\;\;Hg\,S$ )

यह हिङ्गुल और एण्टोमनी का फोलाद सा कृष्ण-वर्ण यौगिक है इसमें धातुकी सी द्युति होती है। घिसने पर लाल लकीर खिंचती है। यह रवेदार वल्मीक शिखराकार पिंड सा होता है। कठोरता २, विशिष्ट गुरुत्व ४. ८१ होता है। मेक्सिको देश का पारद निकालने का यह मुख्य खनिज है। वहां पर चिरकाल तक इसकी खान का कार्य होता रहा है।

यह गन्धक और गोदन्ती के साथ भी पाया जाता है। इसका वर्णन रसरत्नसमुच्चय, में लिखे "स्रोतोञ्जन" के साथ बहुत मिलता है—

यथा—वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति।
घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं लक्षयेद् ध्रुवम्॥ (र० र० स० प्र० अ०)

अर्थात् दीमक की बामी जैसा शिखराकार (कोलुमनरमेस्सिव फार्म columnar Massive Form.) तथा तोड़ने पर नील कमल के समान वर्ण का दिखाई दे तथ कसौटी पर घिसने से गैरिक की सी लाल लकीर पड़े वह अवश्य स्रोतोञ्जन है। साथ फौलाद का रङ्ग नील कमल के पत्ते के वर्ण के समान होता है। इस यौगिक में सुरमा है इस लिये इसको स्रोतोञ्जन मानना ठीक है।

(२) बार्सेनाइट (Barcenite)

यह बहुत जटिल मात्रा में पाया जाने वाला खनिज है। इसका प्रादुर्भाव उपर्युक्त लिबिगस्टोनाइट से ही होता है। केवल मेक्सिको देश के हिजुको (Huitzuco) नामक स्थान पर ही प्राप्त होता है। सन् १८७८ ई० में जे० डबल्यु० मेलेट (J. W. Mallet.) ने मेरियानो बार्सीना (Meriano Baercena) के नाम पर ही इस खनिज का नामकरण किया है। मेक्सिकल भूगर्भ—विज्ञों का मत है कि यह खनिज हिंगुल और एन्टिमनिऑक्साइड (Antimony oxide $Sb_2{}^{\circ}{}_3$) का यौगिक है। यह मृत्तिका के ढेले के आकार का कृष्ण वर्ण होता है। कसौटी पर घिसने से राख (Ash grey) और कुछ हरापन लिये हुए रंग की लकीर खिंचती है। कठोरत ६. ५, विशिष्ट गुरुत्व ५. ३४३.

(३) ग्वाडालकाज़ाराइट (Guadal cazarite)

यह खनिज प्रायः कृष्ण हिंगुल की ही जाति का है। इस में थोड़ा सा यशद (२ से ४%) और अत्यल्प मात्रा में सेलेनियम् (Selenium १%) मिला रहता है। (यह धातु गन्धक का सा होता है और आज कल वायरलेस टेलिग्राफी में फोटो भेजने के कार्य में उपयोगी है) इसके सहयोगी खनिज रक्त हिंगुल, बेराइटस (Barytes) और स्फटिक (quartz) हैं। यह मेक्सिको प्रान्त के ग्वाडलकाज़ार (Guadalcazar) स्थान में प्राप्त होने के कारण इस का नाम ग्राम नाम पर ही अन्य खनिजों से पृथक् समझने के लिये रख दिया गया है।

अब पारद के वे खनिज लिखे जाते हैं जो अत्यल्प मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु ब्रिवस्टर कौन्टी ( Brewster county ), टेक्सास ( Texas ) में इतनी मात्रा में मिलते हैं कि जिनसे खान का व्यवसाय किया जा सकता है—

( १ ) टेर्लिङ्ग्वाइट ( Terlinguaite Hg 2 clo )

यह खनिज पारद, क्लोरिन और ओक्सिजन का यौगिक ( Oxychloride of Mercury ) है। यह गन्धक के से पीले रवों में पाया जाता है। वायु में रखने से इसका रङ्ग पीले से गहरा जैतून जैसा हरा ( Olive Green ) हो जाता है। इसकी कठोरता २ से ३ तक तथा विशिष्ट गुरुत्व ८·७२९. है।

( २ ) इगलेस्टोनाइट ( Eglestonite Hg 4 Cl 2 0 )

यह छोटे २ भूरे पीले रङ्ग के रवों में पाया जाता है। इसके कणों में रोजन ( सूखा गन्धा विरोजा ) की सी द्युति नजर आती है। यह धूप में रखने से शीघ्र काला पड़ जाता है। इसकी कठोरता २ से ३ तक तथा विशिष्ट गुरुत्व ८·३२७.।

( ३ ) क्लेनाइट ( Kleinite MercuryAmmoniumchloride. )

यह पारद और नौसादर का प्राकृतिक यौगिक है। इसके रवे गन्धक जैसे पीले होते हैं और उनमें विकृत स्थानों पर नारंगी के वर्ण के दाग होते हैं। इसकी कठोरता ३ से ४ तक तथा विशिष्ट गुरुत्व ७·९८. है। यह भी टेर्लिङ्ग्वाइट के साथ ही पाया जाता है।

( ४ ) मोजेसाइट ( Mosesite )

यह खनिज भी प्राकृतिक पारद और नौसादर का यौगिक है। एवं टेर्लिङ्ग्वाइट के साथ ही पाया जाता है।

( ५ ) मान्ट्रोयडाइट ( Montroydite )

यह नारङ्गी के से लाल रवों में पाया जाता है जिनमें कांच की सी चमक रहती है। इसकी कठोरता २ से भी कम है। यह खनिज उपर्युक्त चारों खनिजों के साथ पाया जाता है। उक्त पांचों खनिज रस शास्त्रोक्त "सुपीतः शुकतुण्डकः" इस जाति के पारदीय खनिजों के साथ समता रखते हैं। ये गन्धक से पीले और नारंगी से लाल वर्ण के होते हैं। सभी ये खनिज पारद प्राप्ति के साधन हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पारदीय खनिज हैं जो बहुत ही अत्यल्पाल्प मात्रा में पाये जाते हैं। उनके नाम ये हैं—

( १ ) टिमेनाइट ( Tiemanite Hg Se. )

यह सिलेनियं और पारद का खनिज है।

( २ ) ओनोफ्राइट ( onofrite HgS, Se. )

यह गन्धक, सिलेनियं और पारद का यौगिक है।

( ३ ) कोलोरेडोआइट (Coloradoite Hg Te.)

यह टेलुरियं नामक खनिज और पारद का यौगिक है।

( ४ ) लेहर बेकाइट ( Lehrbachite a Selenide of Lead and mercury ) यह सेलेनाइड, सीसा ( नाग Lead ) और पारद का यौगिक है।

( ५ ) आयोड़ीराइट ( Iodyrite )

यह अत्यल्प मात्रा में चीली ( Chile ) नामक स्थान पर आयोडाइड, रजत, और पारद का यौगिक पाया जाता है। आयुर्वेद के रस-शास्त्रों में हिंगुल के शीर्षक में जो वर्णन मिलता है वह समस्त पारद के खनिजों के विषय में समझना चाहिये। पारद के मुख्य खनिज तो स्पष्ट रूप से लिख दिये हैं और गौण खनिज उन्हीं के अन्तर्गत करने का प्रयत्न किया गया है। आज कल भी प्रधान खनिजों से ही पारद निकालने का व्यवसाय चलता है। शेष खनिज किसी देशविशेष के स्थानविशेष में मिलते हैं। उनका उपयोग पारद निकालने के लिये कभी २ किया जाता रहा है।

इसका वर्णन रस शास्त्रियों ने एक श्लोक के अर्धभाग में कर दिया है।

"पिण्डरूपमिदं साक्षात् दृश्यते दृष्टि सौख्यदम्" ( रसकामधेनु पृ० २७३ )

इन सब अवतरणों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राप्य रसग्रन्थों में हिंगुल के वर्णन में जितना भी साहित्य मिलता है वह सब ठीक है, केवल ग्रन्थ संग्रहात्मक होने के कारण सिलसिले वार खनिजों का स्वरूप समझना कठिन हो गया है। तथापि जितनी सामग्री उपलब्ध है उससे यह निर्णय सहज में निकाला जा सकता है कि प्राचीन भारतीय रस—शास्त्रियों को पारद प्राप्ति के प्रायः सारे खनिज विदित थे।

उन्होंने उनका इतना ही वर्णन किया है कि जितना औषधि निर्माता के ज्ञान के लिये आवश्यक है। आधुनिक काल में भी औषधियों के गुणधर्म बतलाने वाली पुस्तकों ( मेटरिया मेडिका आदि ) में औषधि निर्माणोपयोगी खनिजों का वर्णन संक्षेप में दिया गया है। परन्तु खनिज सम्बन्धी वैज्ञानिक ग्रन्थों में बहुत विस्तार के साथ सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन पाया जाता है। सम्भवतः इसी प्रकार यहाँ के खनिज शास्त्रोंमें भी विशद वर्णन रहा हो पर दैव दुर्विपाक से आज कल उपलब्ध नहीं है।

रस शास्त्रियों ने औषधोपयोगी खनिजों का संक्षेप में परिचय देकर उनके शोधन मारण और औषधि गुण धर्म पर विशेष प्रकाश डालने का प्रयास किया है। वैद्यों का यह अभिमान ठीक हो सकता है कि गत भारतीय संस्कृति के समय में जब देश की उन्नत दशा रही हो, सर्वत्र ज्ञान प्रसार करने का कार्य यहाँ के विद्वान् करते रहे हों, पर आज कल की पारतन्त्र्य दशा में उक्त अभिमान छोड़कर रसशास्त्रोक्त खनिजों का वर्तमान कालिक उपलब्ध ज्ञान प्राप्त करना वैद्य मात्र के लिये परमावश्यक है। क्योंकि जो औषधि के द्रव्य बाज़ार में आ रहे हैं वे प्रायः कृत्रिम और अशुद्ध मिलते है। पन्सारी उनमें अनेक बाह्य अशुद्धियाँ मिलाकर बेचते हैं। ऐसी दशा में पूर्णतया

द्रव्य ज्ञान के बिना शुद्ध औषधि बनाना अत्यन्त कठिन हो गया है; जिसका फल यह हो रहा है कि शास्त्रोक्त गुण, प्रभाव औषधियों में नहीं देखे जाते हैं। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये पारद के समस्त प्राप्य खनिजों का वर्णन कर दिया गया है।

## पारदीय खनिज प्राप्ति के स्थान

### बृटिश बोर्नियो ( British Borneo )

इसप्रान्त में रक्तहिङ्गुल ( हंसपाद ), प्राकृतिक पारद और रसपुष्प ( केलोमल Calomel ) अल्प मात्रा में पाया जाता है।

### भारतवर्ष ( इण्डिया India )

यहां अब तक कोई निश्चित स्थान पारद या उसके खनिजों की प्राप्ति का विदित नहीं हुआ है। अभी हाल ही में चित्राल ( पंजाब ) की नदी की रेत में हिङ्गुल के अस्तित्व का पता लगा है। यह स्थान सावधानी पूर्वक सुरक्षित कर दिया गया है (मानोग्राफ ऑनमक्युरी ओर्स पृष्ठ ४२ )

इसके अतिरिक्त अदन (Aden), अफ़गानिस्तान ( Afghanistan ), अण्डमन आइलेण्ड ( Andaman Islands ) बर्मा ( Burma ), तिब्बत ( Tibet ) आदि पार्श्ववर्ती देशों में भी हिङ्गुल के मिलने की सन्दिग्ध सूचनाएँ समय समय पर प्रकाशित हुई हैं।

( विबलोग्राफी भाग २ पृष्ठ ३६३ )

### अफ्रीका ( Africa )

न्यासालेन्ड ( Nyasaland ) नामक स्थान में पारद का होना बताया गया है। किन्तु उसकी ब्योरेवार रिपोर्ट अभीतक प्रकाशित नहीं हुई है।

यूनियन आफ् साउथ अफ्रिका ( Union of South Africa ) ट्रान्सवाल ज़िले में स्फटिक के साथ मिला हुआ हिंगुल पाया जाता है। एवं इसी देश के अन्य स्थानों में गेलेना ( Galena ) or Lead Sulphide–लेड सल्फाइड) यशद (Zinc), स्फटिक, रेणुशिला आदि के साथ में मिलता है। एक स्थान पर प्राकृतिक पारद सुवर्ण के साथ भी पाया जाता है।

### उत्तरीय अमेरिका ( North America )

केनाडा ( Canada ) के सब प्रान्तो में भिन्न भिन्न जातीय खनिज पाषाण और उष्ण स्रोतों में प्राकृतिक पारद और हिंगुल पाया जाता है।

### आस्ट्रेलिया ( Australia )

इस देश में हिंगुल और प्राकृतिक पारद अनेक स्थानों में पाया जाता है। सन् १८९२ तक केवल क्वीन्सलेन्ड ( Queensland ) से १३७०० पाउण्ड (१ पाउण्ड आध सेर के बराबर होता है ) पारद निकाला गया है। यहां ज्वालामुखी पाषाणों में भी

अधिकतर पारदीय खनिज मिलते हैं। पारद के खनिज निकालने के लिये यहां अनेक कूप खने गये हैं, जिनकी गहराई ९० से २४० फीट तक है।

पापुआ ( Papua )

इस देश में भी पारद के खनिज पाए जाते हैं। किन्तु अभी तक पारद निकालने का काम प्रारम्भ नहीं हुआ है इसलिये यहां के खनिजों का व्यवहारिक मूल्य का पता नहीं लग सकता है।

न्यूज़ीलेण्ड ( New Zealand )

इस देश में सोना, चांदी, माक्षिक आदि खनिजों के साथ अनेक स्थानों में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। सन् १९१७ से १९२० ई० तक ९०० फ्लास्क पारद पुही पुही (Puhi Puhi) नामक स्थान से निकाला गया था। इस देश के एक स्थान पर उष्ण-स्रोत में हिंगुल प्राकृतिक गन्धक के साथ अन्य खनिजों के सहयोग में पाया जाता है।

अल्बेनिया ( Albania )

यह विदित हुआ है कि इस देश में भी पारद के खनिज हिंगुल और प्राकृतिक पारद पाये जाते हैं। किन्तु ब्योरा अभी तक मालूम नहीं हो सका है।

जोकोस्लोवेकिया ( Czechoslovakia )

इसके दो तीन प्रान्तों में हिङ्गुल, पारद-मिश्रक (Amalgam) माक्षिक, स्फटिक आदि के साथ पाया जाता है। खड़िया के रूपान्तरित स्लेट और लावा के तर ( Sheet ) के बीच में हिंगुल, गेलेना और यशद भी पाये जाते हैं।

फ्रान्स और कार्सिका ( France and corsica )

इस देश के अनेक प्रान्तों में हिङ्गुल और प्राकृतिक पारद चूने ( calcite ) की भूमि में माक्षिक, स्फटिक, यशद, खपर ( Calarmine ), गेलेना ( Galena ) पारदीय मिश्रक ( Amalgam ), एन्टिमनि, गन्धक, आर्सेनिक, प्लेटिनम् ( Platinum ) आदि के साथ पाया जाता है। इस में प्लेटिनम् का अल्पांश ही मिलता है।

जर्मनी ( Germany )

जर्मनी में पारद के खनिज अधिक नहीं प्राप्त होते हैं। जितने भी अब तक प्राप्त हुए थे वे सब काम में आगये हैं। तथापि किसी किसी स्थान विशेष पर अनेक अन्य खनिजों के साथ धागे की शकल के तार से हिङ्गुल के रेशे पाये जाते हैं। एक स्थान पर फोसिल मच्छियों में भी हिङ्गुल जमा हुआ पाया गया है।

इस के अतिरिक्त प्राकृतिक पारद, रजत मिश्रक ( silver Amalgam ), केलोमल ( रसपुष्प ), मेटे सिन्नाबार ( कृष्ण हिङ्गुल ), मर्क्युरियल फेहलोर ( Mercurial Fehlore ताम्र मिश्रक ) भ. पाये जाते हैं। इन के साथ साथ माक्षिक, रक्त और पीत गरिक, साइडराइट ( Siderite ), सुरमा ( Gelena ), टेट्रा हीड-

गाइट ( Tetrahedrite ) सुवर्ण-रौप्यमाक्षिक, स्फटिक, एन्टिमनि, अयस्कान्ति ( Pyrolusite ), सिलो मेलेन, ( Psilomelane ) आदि खनिज भी मिलते हैं। एक स्थान पर २७०० फुट और दूसरे स्थान पर १२०० फुट की विस्तृत भूमि पर फैले हुए पारदीय खनिज पाये गये हैं। राइनलेन्ड ( Rhinland ) के ज़िले में ९० फ्लास्क पारद प्रतिवर्ष यशद खनिज के साथ निकलता है।

## हङ्गरी ( Hungary )

महायुद्ध के पूर्व हङ्गरी में वार्षिक ९० टन पारद निकलता था। अब उस के प्रान्त बदल गये हैं। हङ्गरी में एन्टिमनि के साथ पारदीय खनिज पाये जाते थे, जहां तक विदित हुआ है आज कल इस देश में पारद निकलने का व्यवसाय नहीं होता है।

## इटली ( Italy )

इटली में सर्वत्र पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं। वहां पर कई एक पुरानी बड़ी बड़ी खानें हैं। पारदीय खानों का प्रबन्ध राजकीय तरफ से किया जाता है। इटली में पारद के मुख्य चार खनिज पाये जाते हैं।

१—स्टील ओर दैत्येन्द्ररक्त ( Steel orestahlerz )।

इस में ७५ फीस दी पारद मिलता है। २—लोवर ओर ( Liverore-Leb-ererz ) यकृदाकार हिङ्गुल या दरदः। यह मृत्तिका जाति का हिङ्गुल है। इस पर स्टेह लर्ज ( Stehlerz ) का कञ्चुक ( Kernels ) चढे रहते हैं।

३—कोर लाइन ( Coralline = corallenerz )

प्रवालाभ हिङ्गुल ( श्वेतरेखः प्रवालाभः ) ४—ब्रिक ( Brickore ) और गिरि सिन्दूर या रक्त हिङ्गुल ( जपाकुसुमसङ्काशः हंसपादा महोत्तमः ) यह पारदीय खनिजों के किनारे पाया जाता है। सम्भवतः इसी प्रकार के खनिजों को देखकर ऊपर के वाक्य प्राचीनों ने लिखे हैं। इटली के इड्रिया ( Idria ) नामक स्थान में सब से पुरानी पारद की बड़ी खाने हैं। इन खानों में एक स्थल पर फन्नेल (Funnel) की शकल के पाइप (नल या छिद्र) हैं। सम्भव है ऐसे ही कूपाकार छिद्र देख कर इस ग्रन्थ ( रसरत्न समुच्चय ) में 'जाताः कूपाश्च पञ्च च' वाक्य किसी महर्षि ने लिख दिये हों। इस विषय में मानो ग्राफ् आफ् मकॅरी के पृष्ठ ४५ का निम्न लिखित अवतरण ध्यान में रखने योग्य है—

In the Immediately neighbouring rock are several funnel-shaped cavities also filled with metallif erous sands and Clays. The proportion of cinnabar mereasing with the depth.

These funnel-shaped cavities appear to bear some analogy to the vertical pipes or holes (Trajas) in Gypsum-at the mercury mines of Huitzuco,-Gnerrero, Mexico. Broadly Speaking, the hole deposit forms a large funnel the position of which is marked on the surface By a distinct depression.

### पोर्तुगाल ( Portugal )

कुछ वर्षों से इस देश में भी पारद की निकासी होने लगी है।

### रूमानिया ( Rumania )

इस प्रदेश के जलाटना ( Zalatna ) नामक स्थान के पारदीय खनिजों से पारद निकालने का व्यवसाय किया जाता था। किन्तु व्यवसाय लाभ प्रद न होने के कारण प्रायः बन्दसा हो गया है।

### रस्सिया ( Russia )

योरोप और एशिया के अन्दर युक्रेन ( Ukraine ) सहित इस देश में सन् १८९७ में ६१६ मेट्रिक टन पारद निकला था। सन् १९१० में तीन चार सौ मेट्रिक टन के लग भग पारद की निकासी हुई और उसके एक ही वर्ष के बाद सन् १९११ में केवल २५ मेट्रिक टन की उपज रह गई। अब बहुत अल्पमात्रा में इस देश में पारद का रोजगार होता है। सारे एशिया में हिङ्गुल, प्राकृतिक पारद आदि पारदीय खनिज प्राप्त होते हैं। माक्षिक, एन्टिमनी, गन्धक, गेलेना, स्फटिक, चूना आदि खनिजों के साथ साथ व पत्थर के कोयले के साथ भी हिङ्गुल मिला पाया जाता है।

### स्केण्डिनेविया ( Scandinavia )

यहां पर प्राकृतिक रजत के साथ पारद पाया जाता है। स्वेडन के साला (Sala) नामक स्थान पर पारदीय रजत—मिश्रक ( Silver Amalgam ), प्राकृतिक पारद और किसी किसी स्थान पर अल्प मात्रा में हिङ्गुल भी पाया जाता है।

### स्पेन ( Spain )

इस समय संसार में स्पेन देशीय अल्माडन ( Almadan ) नामक स्थान की पारदीय खनिजों की खानें सर्व प्रधान हैं। संसार की पारद की माँग एक तिहाई इसी की खानों से पूरी होती है। इस स्थान की खानों में विशेषता यह है कि गहराई के साथ साथ ऊँचे दर्जे के उत्तम पारदीय खनिज निकलते जाते हैं। इस समय तक १३०० फुट की गहराई की खानें खुद चुकी हैं। इस देश में शताब्दियों से पारद निकालने का व्यवसाय हो रहा है। यहां का मुख्य खनिज पारद निकालने योग्य रक्त हिङ्गुल ( cinnabar ) ही अधिकता से मिलता है। यह हिङ्गुल बहुत तेज़ लाल रङ्ग का

होता है ( Cinnabar of Bright Red colour ) यहाँ से सम्भवतः रसशास्त्रियों का "जपाकुसुम सङ्काशो हंसपादो महोत्तमः" इस प्रकार का हिङ्गुल आता रहा है। यहां शुद्ध रवेदार हिङ्गुल अल्पमात्रा में पाया जाता है। जितना भी मिलता है वह स्फटिक, माक्षिक और बराइट के रवोंके साथ में मिलता है। ढेले की शकल का हिङ्गुल जिसमें ७५ से ८५ फीसदी पारद रहता है बहुतायत से पाया जाता है। इसके सहयोग में अन्य खनिज बहुत कम मिले पाये जाते हैं। प्राकृतिक—पारद, केलोमल, बहुत कम मात्रा में मिलता है। स्पेन के एक प्रान्त में रक्त और कृष्ण हिङ्गुल, हरिताल, मनः शिला, आर्सेनिक ( Arsenic ), सुधा पाषाण ( Lime Stone ), रेणु पाषाण ( Sand stone ) आदि के साथ में पाया जाता है।

अलमाडन की खानों में सन् १९६४ ई० से १९१९ ई० तक नीचे लिखी सारणी के अनुसार पारद की निकासी हुई है।

| समय | मेट्रिक टन्स | वार्षिक निकासी |
|---|---|---|
| १६४–१७०० | १७८६३ | १०३ |
| १७००–१८०० | ४२१४९ | ४२१ |
| १८००–१८७५ | ६०१६ | ८०२ |
| १८७६–१९१९ | ४३००० (अनुमान) | १००० (अनुमान) |

### युगोस्लेविया ( Yugoslavia )

इस स्टेट में बोसनिया ( Bosnia ), सर्विया ( Servia ), स्लोवेनिया कार्निओला ( Slovania-Carniala ) प्रान्तों में मुख्यतः पारद के खनिज पाये जाते हैं।

### एशिया माइनर ( Asiaminor )

इस देश में ३००० वर्षों से पारद निकालने का व्यवसाय हो रहा है। सन् १९०६ और १९०७ में वार्षिक ३००० फ्लास्क पारद कोनिया और केरो बुरम माइनस् (खान) ( Konia And Karo Burum Mines ) में निकला था। इसी प्रकार एनाटोलिया ( Anotolia ) में ४००० से ६००० फ्लास्क प्रतिवर्ष निकलता रहा है। सन् १९०९ में तुर्क स्थानीय ( Turkish ) पारद की निकासी १४२ टन्स ( ३७८६ फ्लास्क ) हुई थी। महायुद्ध के समय एसियाटिक तुर्की की पारदीय खानें जर्मनी के अधिकार में आगई थीं।

### चाइना या चीन ( China )

चीन के अनेक स्थानों में पारदीय खनिजों के मिलने की सूचनायें समय समय पर प्रकाशित होती रही हैं। इस समय केवल युआनशानचङ्ग (yuanshanchang) नामक स्थान की खानें ही प्रसिद्ध हैं। यहां पर दो प्रकार का हिङ्गुल पाया जाता है। एक का रङ्ग तेज लाल ( Bright Red ) और दूसरे का गहरा लाल ( Dark Opequered ) होता है। यहां बहुत ही प्राचीन प्रणाली से हिङ्गुल एकत्रित किया

जाता है। एवं इसे इंगुर ( Vermillion ) के रूप में ही तैय्यार करते हैं, जिसका स्थानीय व्यापारी रङ्गसाज़ी में उपयोग करते हैं। प्राचीन काल में इसी प्रकार के हिङ्गुल के व्यापार के कारण भारतीय रस शास्त्रियों ने 'चीन पिष्ट' और चूर्णपारदः पर्य्याय शब्द रखकर हिङ्गुल के चीन सम्बन्धी व्यापार को चिरस्मरणीय बना दिया है। चीन में सन् १९०५ ई० के पूर्व अनेक वर्ष तक प्रति वर्ष ६४० फ्लास्क पारद निकलता रहा है। सन् १९१८ ई० में ६४६८०० पाउन्ड पारद चीन से निकला था।

जापान ( Japan )

वर्तमान समय में जापान में केवल एक स्थान की खानें पारद निकालने के लिये खनी जा रही हैं। यहां पर हिङ्गुल चूने के पाषाण ( Calcite ) और रेणु शिला के साथ पाया जाता है।

न्यूकेलेडोनिया ( New Caledonia )

न्यूकेलेडोनिया के बोरेल ( Bourail ), केनाला ( Canala ), कोनो आना ( Konaona ) और पिवाका ( Piwaka ) नामक स्थान पर पौने-दो से सवा-दो फीसदी पारद निकालने वाले खनिज प्राप्त होते हैं, किन्तु आजकल यहां पर पारद की निकासी का कारोबार बन्द है।

फारस ( Persia ) पर्सिया

प्राचीन समय से ही फारस में पारदीय खनिजों का होना विदित था। तख्तई-सुलेमान ( Takht-i-Suleiman ) नाम के प्रदेश के ज़िलों में हिङ्गुल, प्राकृतिक पारद, पत्र हरिताल, और मनः शिला मिलते हैं। हरिताल और मनः शिला पर्सियन कुर्दिस्तान ( Persian Kurdistan ) नामक स्थान पर भी पाये जाते हैं।

अफ्रिका ( Africa )

अफ्रिका के एलजीरिया ( Algeria ) नामक स्थान से कुछ समय पूर्व थोड़ा पारद विदेशों में भेजा गया था। इस देश में यशद रजत युक्त स्रोतोञ्जन ( Argenti Ferous ), खर्पर (Calamine) नीलाञ्जन ( Antimony ) आदि के साथ में हिङ्गुल पाया जाता है।

एलजीरिया ( Algeria ) के अतिरिक्त बीर-बेनी-सोलाह ( Bir-Beni-sulah ) नामक स्थान में जो कोलो ( Collo ) से ६ माईल की दूरी पर है गेलेना के साथ में हिङ्गुल मिलता है। और भी अफ्रिका के अनेक प्रदेश हैं जिन में गेलेना या यशद के साथ हिङ्गुल पाया जाता है। कहीं कहीं स्वतन्त्र रूप से भी हिङ्गुल मिलता है।

इटालियन सोमेलिलेण्ड (Italian Somaliland )

इस देश के उत्तरी भाग में हिङ्गुल होने की सूचना प्रकाशित हुई है।

### ट्युनिस ( Tunis )

एलजीरिया के समान यहां भी अनेक प्रकार के खनिजों के साथ हिङ्गुल का जमाव मिलता है।

### अपर सेनेगल और नीगर ( Upper Senegal and Neger )

इस देश के बम्बोक ( Bambouk ) प्रान्त में पारदीय खनिज मिलते हैं।

### नार्थ अमेरिका ( North America )

उत्तर अमेरिका के पारदीय खनिज अलस्का ( Alaska ) से सेन्ट्रल अमेरिका ( Central America ) तक कार्डिलेरनरीजियन ( Cardilleranregion ) में प्राप्त होते हैं।

### होन्डुरास ( Honduras )

होन्डुरास के प्रजासत्तात्मक राज्य में पारदीय खनिजों का होना चिरकाल से विदित है। सन् १९०९ ई० में १३८ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। स्पेनिश लोगों के राज्यकाल में उत्तम हिङ्गुल का जमाव कोमायागुआ ( comayuga ) विभाग में रहा किन्तु फिर उसका उपयोगन हीं किया गया।

### मेक्सिको ( Mexico )

मेक्सिको में सर्वत्र पारदीय खनिजों का जमाव पाया जाता है किन्तु मुख्यतः सान लुइस पोटासी ( San Louis Potasi ) और ग्वरेरो ( Guerrero ) राज्य में पाये जाते हैं।

यहां के सब पारदीय खनिज ज्वालामुखी के उद्गम स्थानोय उष्ण स्रोतों की रासायनिक क्रिया से उत्पन्न हुए विदित होते हैं। इस देश में रक्तहिङ्गुल, कृष्णहिङ्गुल और रसपुष्प ( केलोमल ) व प्राकृतिक पारद बहुतायत से पाये जाते हैं।

### यूनाइटेड स्टेट्स ( United States )

प्रायः सारे युनाईटेड स्टेट्स आफ् अमेरिका में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। संसार में स्पेन के उपरान्त केलिफो-निया का नम्बर दूसरा है। इस देश में रक्तहिङ्गुल, कृष्णहिगुल, रसपुष्प (कोलोमल) और प्राकृतिक पारद प्रायः सहयोग में मिलते हैं। पारदीय अन्य खनिज भी साधारणतया इस देश में यत्र तत्र मिल जाते हैं। अमेरिका के संयुक्त राज्यके पारदीय खनिज हलकी जाति के हैं। इनमें पारद ७५% फीसदी निकलता है। सन् १९१८ के उपरान्त पारद का मूल्य गिर जाने से और खान के व्यवसाय का व्यय बढ़ जाने से यहां के पारद की निकासी पर बुरा प्रभाव पड़ा है। जिससे सन् १९२१ में ६३३९ फ्लास्क ही पारद निकाला गया। यह मात्रा सन् १९२० की अपेक्षा अधिक है और सन् १९१२ से १९१९ तक की अपेक्षा चतुर्थांश के लगभग है और जो सन् १८५० से अब तक का निकासी को देखने से सब से अल्प मात्रा मानी

जाती है। इस निकासी में भी टेक्सास से ३१ फ्लास्क, केलिफोर्निया से ३०९१, नवाडा से १०० और इहाडो से १ फ्लास्क पारद निकला है। सन् १९१७ से अलस्का और एरिजोना से पारद बिलकुल नहीं निकाला गया। इसी प्रकार इहाडो से सन् १९१९ और १९२० में औरेगन से १९२१ में एक दम पारद की निकासी नहीं हुई।

अलस्का ( Alaska )

इस प्रदेश में जार्ज टाउन ( GeorgeTown ) के १९ मील ऊपर नदी के उत्तरी किनारे पर १९०६ में हिङ्गुल के अस्तित्व का पता लगा है और वहां पारद निकालने का कार्य प्रारम्भ किया गया।

यहां पर स्टिबनाइट ( Stibnite ), स्फटिक ( quarty ), साइडराइट ( Siderite ) आदि खनिज के सहयोग में हिङ्गुल पाया जाता है। स्टिबनाइट ( एन्टिमनि सल्फाइड ) और हिङ्गुल मालूम होता है कि साथ ही साथ भूगर्भ से निकल कर जमा हुए हैं; क्योंकि ये एक दूसरे पर जमे हुए पाये जाते हैं। कहीं पर स्टिबनाइट पर हिंगुल जमा हुआ मिलता है तो कहीं पर स्टिबनाइट हिङ्गुल पर। जहां पर ये खनिज प्राप्त होते हैं वह स्थान दुर्गम होने के कारण पारद निकालने का कार्य बन्द सा रहा तथापि सन् १९१९ में वहां पर नवीन पद्धति से कार्य प्रारम्भ किया गया और जो माल निकला वह वहां के ही व्यवसाइयों के हाथ बेच दिया गया। इसी नदी के बहाव की तरफ १०० मील नीचे की ओर एक स्थान पर हिंगुल पाया गया है। किन्तु वहां पर भी पारद निकासी का कार्य अब तक प्रारम्भ नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई स्थानों में हिंगुल पाया जाता है और सैकड़ों पाउण्ड निकाला जा सकता है। नोमे सीवार्ड पेनिन्सुला ( Nome seward peninsule ) से लगभग ६० मील की दूरी पर 'फलेसर माइनिङ्ग डेनियल क्रीक' नामक स्थान है वहां पर एकत्रित संगृहीत रूप से अच्छी मात्रा में हिंगुल मिलता है। इसी ज़िले में एक स्थान और है जिसे फलेसर्स आफ ऐरन क्रीक' कहते हैं वहां पर हिंगुल का जमाव अधिक मात्रा में है।

एरिज़ोना ( Arizona )

इस प्रदेश में ६ मील तक लम्बे और ११ मील तक के चौड़े फैलाव में पारदीय खनिज पाये जाते हैं। जिस भाग में हिंगुल मिलता है वह ३०० से ६०० फीट की दूरी पर क्षेत्र रूप से विभक्त है। पारद निकालने का सारा कार्य खनिज की अधिकता को देख कर बीच के भाग में प्रारम्भ हुआ है। यहां पर हिंगुल पृथ्वी की शिरा और छोटे २ गर्त व खण्डहरों में पाया जाता है। कभी कभी रौप्यमाक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, गरिक आदि के साथ में भी हिंगुल मिल जाता है। एक स्थान पर ३ मील चौड़ा हिंगुल प्राप्ति का क्षेत्र है, जहां पर कृष्ण और रक्त दोनों प्रकार का हिंगुल, स्फटिक,

सुधापाषाण, गैरिक आदि की भूमि में पाया जाता है। सन् १९१७ में ४० फ्लास्क पारद इस प्रदेश से निकला था।

### केलिफोर्निया ( California )

सन् १८५० से १९२१ तक केलिफोर्निया पारद निकालने का प्रधान देश रहा है। यहां से २२६११८१ फ्लास्क या ७६२९३ मेट्रिक टन्स पारद वार्षिक निकलता है यह मात्रा प्रसिद्ध स्पेनदेशीय अल्माडन की खानों की निकासी से ५० वर्ष की पारद की पैदाइश के बराबर है। किसी कारण वश केलिफोर्निया की अपेक्षा टेक्सास की पारद की निकासी सन् १९२१ में अधिक रही है। लगभग ८०% फीसदी अमेरिका के संयुक्त राज्य की पैदाइश १० खानों से हुई है। इन खानों में मुख्य न्यूएल्माडन की खान है जहां से सन् १८५० से १९१७ ई० तक १०२११८३ फ्लास्क पारद निकला है। इस से दूसरे नम्बर पर न्यू इड्रिया की खाने हैं, जहां से सन् १८५८ से १९१७ तक ३०६४७५ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। तीसरा नम्बर ओटहिल का है यहां से सन् १८७३ से १९१७ ई० तक १६२०६६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। केलिफोर्निया का पारदीय खनिज प्राप्ति का स्थान ४०० मील लम्बा और ७५ मील चौड़ा है और यहां पर प्राचीन व अर्वाचीन ज्वालामुखी के उद्गम चिह्न अनेक पाये जाते हैं। सन् १९१९ ई० में पारदीय खानों के मुख्य जिले सानबेनीटो, न्यू इड्रिआ, माइन्स ( San Benito, New Idria Mines ), सान्टा क्लेरा ( Santa clara ), सोनोमा ( Sonoma ), सान लुइस ओबिस्पो (San Luis obispa), नापा(Napa) और लेक ( Lake ) गिने जाते हैं।

### कार्न कौन्टी ( Karn county )

कार्न कौन्टी नाम के प्रान्त में पारदीय खनिज प्राप्ति का जो स्थान है वह केलिफोर्निया के ज्ञात पारदीय खनिज प्राप्ति स्थान से भिन्न है। यहां का कारखाना हाल ही के शोध का फल है। यहां की गहराई केवल ३० फीट ही भूगर्भ में है। यहां से पारद का निकासी हुई है, किन्तु उसका ब्योरा उपलब्ध नहीं है। ग्रेट बे स्टर्न नामक खान से सन् ३८१५ से १९०९ तक १८३१६ फ्लास्क पारद निकाला गया। बाद को यह खान बन्द कर दी गई है। प्रसिद्ध सल्फर-बेङ्क नामक गन्धक की खान से जहां पहिले केवल गन्धक की ही निकासी होती थी ७२४०० फ्लास्क पारद निकाला गया है। यहां के स्रोत के जल से जो गैसें निकली हैं वे कार्बोनिक एसिड, सल्फ्युरेटेड हाइड्रोजन, सल्फर डाई ओक्साइड और मार्श गैस हैं। इन जलों में कार्बोनेट्स, बोरेटस, सोडियम् क्लोराइड ( नमक ), पोटासियम् क्लोराइड, अमोनियम् क्लोराइड ( नोसादर ), व अल्कलाइन सल्फाइड घुले पाये जाते हैं। हिड्डुल विकृत बेसाल्ट नामक ज्वालामुखी पाषाण खण्डों के तले पाया जाता है जो किसी

स्थान पर दानेदार और किसी स्थान पर मृत्तिकाकृति का हिङ्गुल जमा मिलता है। यहां के हिङ्गुल के सहयोग में गन्धक, ओपल, स्फटिक और रौप्यमाक्षिक पाये जाते हैं। बेकर ( Backer ) का कथन है कि सल्फर बैंक के अन्तराल की खान केलिफोर्निया के प्रधान पारदीय खानों के मुकाबले की है।

१९१७ में सल्फर-बैंक नामक खानों का माल ८००,००० टन बाष्प यन्त्रों से पीसा गया था और सब से अधिक पारद इस देश से सन् १९१८ में निकाला गया, किन्तु सन् १९१९ में फिर पारद की निकासी नाम शेष रह गई। लेक ज़िले में पारद निकालने के स्थान सेन्ट जोन्स ( St Johns ) और हेलन ( Helen ) हैं। नापा ज़िले में सन् १८६३ से १९१९ तक ३३८९५१ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। इस के अतिरिक्त कोरोना ( ( Corona ), नाक्से विल ( Knox ville ), मनहाटन ( Manhattan ) नामक खानों में भी रक्त हिङ्गुल, कृष्ण हिङ्गुल, रौप्यमाक्षिक, गन्धक, स्टिबनाइट के साथ पाया जाता है, किन्तु सन् १९२० से इन खानों का व्यवसाय बन्द है। ओट हिल ( oat Hill ) की खान में रेणुशिला के अन्दर जमा हुआ हिङ्गुल पाया जाता है। सन् १८७६ से १९१७ तक १५२५६६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई है। सानबेनिटो ( San Benito ) ज़िले में ३३४२५९ फ्लास्क पारद सन् १८६५ से १९१९ तक निकाला गया। अमेरिका के संयुक्त राज के पारद निकासी का यह ज़िला सब से अधिक उपजाऊ समझा जाता है। न्यू इड्रिया की खान से इस स्टेट के सब पारद निकासी की अपेक्षा आधा पारद निकाला गया है। न्यू इड्रिया की खान में अधिकतर कृष्ण हिंगुल पाया जाता है। यहां पारद प्राप्ति का स्थान २॥ मील के फैलाव में है। १५-२० मील भूगर्भ के अन्तराल में खुदाई का काम हो रहा है। सान, लुइस, ओबिस्पो जिलों ( San Luis obispo country ) में वहां के आदिमनिवासी ( Indians ) शताब्दियों से हिङ्गुल को रङ्ग के काम में उपयोग करते हैं। व्यापारियों ने सब से प्रथम सन् १८६२ में इस स्थान के खान की रक्षा की और सन् १८७६ से १९१८ तक ४९६०० फ्लास्क पारद निकला।

क्लो ( Klau ) नामक खान से १४२१३ फ्लास्क पारद निकाल कर सन् १९१६ में काम बन्द कर दिया गया था और फिर सन् १९१९ में प्रारम्भ हुआ। यहां पर हिङ्गुल स्फटिक और रौप्य माक्षिक के सह योग में पाया जाता है।

ओसीनिक ( Oceanic ) नामक खान से १९१७ के अन्त तक २३५५१ फ्लास्क पारद निकाला गया था। इस ज़िले में केवल इसी खान से सन् १९१८ में १४६० फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहां की भूमि में हिङ्गुल एकसा सर्वत्र पाया जाता है। यहां सन् १९१९ में पारद का एक और खनिज ५५० फुट की गहराई पर पाया गया है।

### सेन्टाक्लेरा कौन्टि ( Santa clara county )

इस प्रान्त में न्यू एल्माडन की खानों का पता सन् १८२४ में लग गया था, किन्तु सन् १८४९ तक यहां के पारदीय खनिज हिङ्गुल की पहिचान न हो सकी। यहां की खानों से पारद की बडी मात्रा निकलने का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। इस समय तक १८ कूप ( Shapcha ) खोदे गये हैं। यहां के भूगर्भवर्ती कन्दराओं की लम्बाई १०० मील के लगभग है। इन कन्दराओं में से अनेक कन्दराएँ अपने आप बैठ भी गई हैं। सन् १९१७ में सब से अधिक गहराई २४५० फुट मानहिल नामक पहाड़ी की चोंटी जो १६०० फुट ऊँची है के नीचे थी। इस लिये संसार में यह सब से बड़ी और गहरी खान गिनी जाती है। ८०० फुट गहराई के नीचे का भाग कुछ वर्ष हुए बन्द कर दिया गया है। स्पेन की अल्माडन खानों के हिङ्गुल की अपेक्षा यहां का माल अत्यन्त निम्न-श्रेणी का है, जिसमें केवल १॥ से १ फीसदी तक पारद पाया जाता है। इस खान का वर्णन पढ़कर यह सहज में ही समझ में आजाता है। कि इस ग्रन्थ ( रस रत्न समुच्चय ) में जो "शतयोजननिम्नास्ते जाताः कूपास्तु पञ्च च" लिखा है, वह कहां तक सत्यता युक्त है। संसार में अनेक परिवर्तन हाते रहते हैं। उस समय पारद निकालने क केवल पांच ही कूप खुदे मिले होंगे। आज यहां पर अठारह कूप खुदे पाये जाते हैं। शतयोजन निम्न मानना इस दशा में ठीक हो सकता है कि पृथ्वी के उपरितल से जो पारद निकालने के लिये भूगर्भ में खुदाई की गई वहु खुदाई नापकर जोड़ने से शतयोजन अर्थात् ४५०० मील के लगभग गहराई समझी जावे। आजकल भी इसी प्रकार को मापने की प्रथा प्रचलित है। योजन शब्द से चार कोस साधारणतया माने जाते हैं, किन्तु इसका भी शास्त्रीय विचार करने से पता लगता है कि एक योजन ४ मील नौ सौ साठ गज का होता है। मेदिनीकारने "योजनं परमात्मनि चतुष्कोश्यां च योगे च" लिखा है, जिससे चार कोस स्पष्टतया माना है। इसी प्रकार तारानाथ ने "स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन" लिखा है। लीलावती में भी विशेष गणना करके चार कोस ही का योजन माना है। किन्तु उस गणना से ३२००० हाथ का योजन होता है। हाथ के नाप के लिए मान शास्त्र में १२ अंगुल का हाथ माना है। लीलावती और मान शास्त्र की संज्ञाओं में कुछ भेद है।

"द्वादशाङ्गुलिकाहस्त तद्द्वयन्तु शयः स्मृतः।
तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुःसहस्रिकः॥
तच्चतुष्कं योजनं स्यात् ....."

( मानशास्त्र )

इस हिसाब से १६००० हाथ का १ योजन होता है।

"हस्तैश्चतुर्भिर्भवतीहदण्डः क्रोशः सहस्रद्वितयेन तेषाम् ।
स्याद्योजनं क्रोशचतुष्टयेन"

इस हिसाब से ३२००० हाथ का एक योजन होता है। इन हिसाबों का आज कल के हिसाब से मुकाबला करें तो ८००० गज का १ योजन होता है। एक मील १७६० गज का होता है।

इन अवतरणों को देखने से साधारणतया यह विदित होता है कि निम्न का अर्थ वही करना चाहिए जो ऊपर किया गया है, अर्थात् निम्न का अर्थ एकदम गहरा नहीं किन्तु भूगर्भ में जो अनेक गुफाएं पारद निकालने के लिये खोदी जाती हैं उनका नाप करके एकत्रित लिखी गई है। एक स्थान पर कूप की गहराई २४९० फुट तक हुई है। यह गहराई यदि एक योजन तक चली जावे तो वहां पर मनुष्य का जीवन सम्भव नहीं है। मेरे विचार में आजकल की प्रथा के अनुसार गणना और नाप का व्यवहार पूर्व काल में भी था और उसका उपयोग इसी तरह समझने के लिये इस समय भी करना चाहिए। ऐसा करने से व्यवहार में सरलता हो जाती है तथा असम्भवता का दोष दूर हो जाता हैं। इस भाव को स्पष्ट समझने के लिये आजकल पारद की खान के विषय में जो प्रत्यक्ष है वह नीचे लिखे अवतरण को विचारने से ठीक समझ में आसकता है।

Santa Clara County—

The new Almadan groups of mines was discovered in Santa Clara County by two Mexicans in 1824, but the ore was not recognized as a Cinnabar until 1845. The large output of mercury from this mine has already been mentioned, altogether 18 shafts have been sunk, and there are nearly 100 miles of underground workings a large proportion of which have of course caved in the greatest depth in 1917 was 2450 ft. below the top of Mine Hill (1600 ft. Altitude). So it is the deepest and most extensive mercury mine in the world. *Monographs on mercury are Page 757*

सोलेनो (Solano) नामक ज़िले में सन् १८७३ से १९१८ तक १७११६ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहां की खान का नाम सेन्ट जौन्स (St. Johns) है। इस खान का पता सन् १८५२ में लगा और सन् १८७३ में यहां से पारद निकालने का व्यवसाय प्रारम्भ हुआ। तब से सन् १९१७ तक १६४५५ फ्लास्क पारद निकाला गया था। यहां पर हिंगुल रौप्यमाक्षिक या विमल (Marcasite) के साथ पाया जाता है। हिंगुल के समीप जाड़ों में गाढ़ा गाढ़ा खनिज तैल भी जमा मिलता है। यह खान ६९० फुट गहरी है।

सोनोमा ( Sonoma ) ज़िलेमें १८७३ से १९१९ ई० तक ६९०६३ फ्लास्क पारद निकाला गया। जिस में ग्रेट ईस्टर्न और माउन्ट जेक्सन नामक खानों से १८७६ से १९१७ तक ४२०९२ फ्लास्क पारद की निकासी हुई। यहां पर भी हिंगुल रौप्य माक्षिक के साथ में पाया जाता है। इसी ज़िले में रेटल स्नेक ( Rattle snake ) खान में प्राकृतिक पारद ( Native Mercury ) काली मिट्टी की शकल में जमा हुआ मिलता है। इसके साथ स्नेहयुक्तशिलाजतु ( oily Bitumen ) भी मिला पाया जाता है।

सोक्रेट की खान ( Socrate's Mine ) में भी प्राकृतिक पारद पाया जाता है। नीचे की गहराई में हिंगुल भी मिलता है। सन् १९१८ में यहां से कुछ पारद की निकासी की गई किन्तु १९१९ में काम बन्द रहा।

ट्रिनिटि ( Trinity ) ज़िले में १८७५ से १९१७ तक ३११६६ फ्लास्क पारद उत्पन्न हुआ इसमें से केस्टेला ( Castella ) के पास की अलटूना ( Altoona ) खान से २९००० फ्लास्क पारद निकला, शेष अन्यत्र से निकला। यहां पर जो हिंगुल मिलता है उसका क्षेत्रफल ४०० फुट लम्बा और ४ से २० फुट चौड़ा है। येलो ( Vellow ) जिले में रीड ( Reed ) नामक खान में कृष्ण हिंगुल ही मुख्य खनिज रौप्यमाक्षिक के साथ पाया जाता है। यहां की खान ३०० फुट गहरी है।

इडाहो ( Idaho )

वेली ( Velly ) ज़िले में १ मील लम्बी चौड़ी भूमि में हिंगुल रौप्यमाक्षिक के साथ मिला पाया जाता है। यहां की फन नामक खान से १९१७ में ९ फ्लास्क और १९१८ में २२ फ्लास्क पारद की निकासी हुई।

निवाडा ( Nevada )

इस स्टेट में बहुत सी जगह फैला हुआ हिंगुल पाया जाता है। पिलोर नामक पहाड़ के उत्तर पूरब दो मील की दूरी पर और मीना स्थान से दक्षिण पूरब आठ मील की दूरी पर एक पहाड़ है उसमें हिंगुल अधिकता से मिलता है। इस लिए उसका नाम हिंगुल पर्वत ( Cinnabar Mountain ) रख दिया गया है। क्या हमारे देश में आसाम की हिंगुलाज देवी का इसी कारण से तो नाम नहीं स्थिर हुआ है ?, प्रति वर्ष हजारों यात्री वहां पर दर्शन करने जाते हैं। सन् १९१० से १९१९ तक निवादा से १३७४६ फ्लास्क पारद निकाला गया है किन्तु १९१९ से यहां का कार्य शिथिल हो गया है और १९२० में ७९ फ्लास्क ही पारद निकाला गया। सन् १९२१ में १०० फ्लास्क पारद की निकासी हुई।

ओरेगन ( Oregon )

इस राज्य में हिंगुल सर्वत्र पाया जाता है किन्तु पारद के निकालने की खानें

थोड़ी सी हैं। जेक्सन ज़िले में गोल्डहिल ( सुमेरु ) के उत्तर १२ मील दूरी प हिंगुल अधिक मात्रा में पाया जाता है। यहां १०० से ३०० फुट चौड़ा क्षेत्र जहां पर ग्रेनाइट रेणु पाषाण का संयोगिक जमाव है। यहां के खनिज में हिंगुल प्राकृतिक पारद, रौप्यमाक्षिक, सुवर्ण, यशद और कृष्ण हिंगुल सा एक भारी खनिज पाया जाता है। सर्वत्र उत्तम श्रेणी का खनिज मण्डूर की शकल का १ से २० इञ्च मोटा और वृक्ष की आकृति में पाया जाता है। यहां पारद निकालने का व्यवसाय क्रमशः उन्नति कर रहा है। यहां भी खान २७५ फुट गहरी और ६० फुट लम्बी इस समय है। यहां से १९०० टन खनिज से ४२३०५ पाउण्ड पारद निकाला गया।

लेन ( Lane )

इस ज़िले में हिंगुल और प्राकृतिक पारद साथ साथ पाये जाते हैं। रौप्यमाक्षिक और विमल भी हिंगुल के सहयोगी खनिज हैं। यहां का मुख्य खन्दाक ( Stapa ) १९० फुट लम्बा और १५ फुट चौडा है जिसकी गहराई लगभग ४०० फुट के नीचे चली गई है। इसके अन्दर का खानज १९०००० टन कूंता गया था। यहां की खान पारद निकालने की मुख्य खान समझी जाती थी किन्तु १९१९ में बन्द कर दी गई। सन् १९१६ से ११२० तक १८५२ फ्लास्क पारद की निकासी औरगन राज्य से हुई।

टेक्सास ( Texas )

इस राज्य की सारी पारद की निकासी ब्रिवस्टर जिले ( Brewster County ) से हुई। इस स्थान की खोज १८९ : में हुई और १८९९ से १९१९ तक ८९३७० फ्लास्क पारद निकाला गया। यहां का पारद प्राप्ति का क्षेत्र १५ मील लम्बा और दो मील चौड़ा है। यहां की सबसे अधिक गहराई १९०६ में ३०० फुट थी किन्तु चर्न ड्रिल ( Churn drill ) से ४४७ फुट की गहराई पर भी हिंगुल के सब चिह्न प्राप्त हुए। यहां पर पारद के अनेक खनिज पाये जाते हैं। किसी किसी कन्दरा में ओक्सीक्लोराइड, टलिङ्ग वाइट, ईगलस्टोनाइट, मेट्रोडाइट, प्राकृतिक पारद और अल्प मात्रा में केलोमल ( रसपुष्प ) हिंगुल के साथ २ पाये जाते हैं। टेक्सास के टेलिङ्गुआ ( Terlingua ) ज़िले में केलिफोर्निया की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी में हिंगुल प्राप्त होता रहा है। यहां की खान २५०० फुट लम्बी और ७५० फुट गहरी है। यहां पर चूने के कङ्कड के साथ साथ हिंगुल, प्राकृतिक पारद, खालिस गन्धक, रौप्य माक्षिक और विमल अन्य खनिजों के सहयोग में पाये जाते हैं। १८९९ से १९२० तक टेक्सास से ९३२७१ फ्लास्क पारद की निकासी की गई। सबसे अधिक माल १९१७ में १०७९१ फ्लास्क पारद निकाला गया, बाद में काम शिथिल पड़ गया तथापि सन् १९२१ में केलिफोर्निया की अपेक्षा टेक्सास में पारद अधिक निकाला गया। उसकी मात्रा ३१४४ फ्लास्क थी।

### उटाह ( Utah )

यहां पर मृत्तिका जाति के द्विगुल से बहुत मात्रा में पारद निकालने का अध्यवसाय होता रहा है। यहां पर सोने की खान में से ही पारद के खनिजों के निकास का पता लगा है। इस खान में टिमानाइट ( Tiemannite Hgsse ) और ओनाफ्राइट ( Ono frite Hgsse ) नामक पारदीय खनिजों से भी थोड़ा पारद निकाला गया। १९०६ में १११३ फ्लास्क पारद निकाला गया था।

### वाशिंगटन Washington )

यहां के प्रान्तों में भी पारद की पर्याप्त निकासी हुई है तथापि १९१३ के उपरान्त पारद के भाव के गिर जाने से और निकासी का खर्च बढ़ जाने से इस का व्यवसाय मन्द पड़ गया है। स्पेन की सरकार अपने यहां पारद की निकासी अधिक बढ़ाने के लिये नवीन आविष्कारों का बाहुल्य से उपयोग कर रही है। ऐसी दशा में अमेरिका के संयुक्त राज्य के पारद व्यवसाय को अवश्य हानि पहुंचेगी। यहां पर १०% फीसदी वर्तमान में पारद निकासी पर कर लगता है। सन् १९१४ से १९२१ तक नीचे लिखी सारणी के अनुसार संयुक्त राज्य में पारद निकाला गया है। यह मान ७६ पाउण्ड फ्लास्क का है।

| सन् | केलिफोर्निया | टेक्सास | निवादा | ओरेगन | ऐरजोना इडाहो, वाशिङ्गटन | टोटल | फ्लास्क |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १९१४ | ११३०३ | ३१९६ | २०८९ | — | — | १६९६८ | ,, |
| १९१५ | १४२८३ | ४४२३(अ) | २३२७ | (क) | — | २१०३३ | ,, |
| १९१६ | २१०४५ | ६३०६(ब) | २१९८ | ३७८ | ६(ख) | २९९३२ | ,, |
| १९१७ | २३९३८ | १०७९१ | ९९७ | ३१३ | १२०(ग) | ३६१५९ | ,, |
| १९१८ | २२६६४ | ८४५१ | १०४४ | ७०२ | २२(घ) | ३२८८३ | ,, |
| १९१९ | १५२०५ | ५०१९ | ७५६ | ४३५ | — | २१४१५ | ,, |
| १९२० | ९८४९ | ३४३६ | ८३ | २४ | — | १३३९२ | ,, |
| १९२१ | ३०६५ | ३१२३ | १०० | — | १ | ६३३९ | ,, |

( अ ) इसमें ऐरिजोना कीनिकासी भी सम्मिलित है।
( ब ) इसमें भी ऐरिजोना और ओरेगन की निकासी मिली हुई है।
( क ) टेक्सास के साथ निकासी दी गई है।
( ख ) केवल ऐरिजोना को उत्पत्ति है।
( ग ) एरिजोना ४० वाशिंगटन ७५ इडाहो ९ फ्लास्क है।
( घ ) केवल इडाहो की निकासी है।

दक्षिण अमेरिका ( South America )

ब्राजिल ( Brazil ) यहां पारद के खनिज पेट्रोलियं वाले शिलाजतु की भूमि में छोटे छोटे कणों के रूप में बिखरे पाये जाते हैं या सुवर्ण युक्त स्फटिक के साथ हिंगुल मिला पाया जाता है।

चिली ( Chile )

इस देश में हिंगुल, रेड पाउडर ( Red Powder oxide ), गिरिसिन्दूर, प्राकृतिक पारद, टिट्रेहाईड्रेट ( Tetrahedrite ) आदि पारद के खनिज पाये जाते हैं। इन के सहयोग में रौप्यमाक्षिक, सुवर्णमाक्षिक, गरिक, कठिन स्फटिक आदि मिले रहते हैं। इसी जिले में प्राकृतिक पारद रजतमिश्रक चिरकाल से पारद निकालने के लिये ज्ञात रहा है। इसके आसपास के स्थानों में हिंगुल भी पाया जाता है।

कोलम्बिया ( Columbia )

इस देश में हिङ्गुल सूक्ष्म चूर्ण के रूप में इधर उधर फैला हुआ पाया जाता है। रौप्यमाक्षिक और हिंगुल के साथ साथ प्राकृतिक पारद भी मिला पाया जाता है। सुवर्ण और रजत के प्राकृतिक पारदीय मिश्रक भी यहां पर प्राप्त होते हैं। यहां के खनिज हलकी जाति के होने के कारण पारद निकालने का व्यवसाय चिरकाल तक नहीं चल सकता है।

डचगायना ( Dutchguina )

इस देश में ९ मील के फैलाव में हिङ्गुल का विस्तार मालूम हुआ और परीक्षा के लिये जो कूप खोदा गया उसमें २० फुट की गहराई पर उत्तम श्रेणी का खनिज प्राप्त हुआ। इस के उपरान्त यहां का विशेष विवरण प्रकाशित नहीं हुआ न व्यापार के लिये यहां कोई अध्यवसाय ही किया गया है।

यूकोडर ( Ecuador )

यहां पर पारद निकालने का व्यवसाय बहुत प्राचीन काल से चलता है। आज कल खान में खनिज शेष नहीं है तथापि आसपास की भूमि में प्राकृतिक पारद पाया जाता है। कहीं कहीं पर हिङ्गुल भी मिला है।

पेरू ( Peru)

पेरू के आदिम निवासी लोग हिङ्गुल को रङ्गसाज़ी में व्यवहार करते थे; ऐसी

किंवदन्ती प्रसिद्ध है। यहां पर पारद के खनिजों का बहुत बड़ा व्यापार रहा है। सन् १९६६ से १९७० के लगभग स्पेन राज्य ने २५०००० डयूकेटस (लगभग ११७००० पाउन्ड) देकर यहां की पारद की खान खरीद ली थी। यह खान २२० फुट लम्बी, १११ फुट चौड़ी और ४४५ फुट गहरी थी। बाद में निरन्तर कार्य होते रहने से यहाँ की गहराई १४०४ फुट तक होगई थी। इस खान का काम बे सिलसिले रहा, पर खुदाई का काम खूब होता रहा है। यहां पर एक स्थान की खुदाई मुरब्बा ४००० गज और उपरितल पर गहराई १०० से २० फुट की है। सन् १९०१ से १९०३ तक इस खान से माल इस प्रकार निकाला गया है।

| समय | टोटल पारद की उत्पत्ति | वार्षिक उत्पत्ति क्विन्टल्स सेट्रिकरन में | वार्षिक उत्पत्ति फ्लास्क के हिसाब में |
|---|---|---|---|
| १९०१—१७८९ | १०४०४६९ | २१८ | ६१२४ |
| १७९०—१८४३ | ६९७६६ | ९९ | १६३० |
| १८४४—१९०३ | १००००० | ७०६ | २२५ |

यहां पर की गहराई की नाप करने के लिये २१३ फुट गहरा कूप खोदने के लिये प्रयत्न किया गया किन्तु वह १९७ फुट पर जाकर विफल हुआ, तब अन्यत्र प्रयत्न किया गया। वहाँ पर ९८९ फुट गहराई तक पहुंच कर फिर पूर्व खनित भूमि के अन्तराल में पहुंचने का प्रयत्न किया जा रहा है। यदि यह खुदाई पूर्ण हो गई तो ३१३७ फुट की गहराई होगी। इस प्रयत्न के लिये भट्टियां (Furnaces) तय्यार हो गई हैं। इस खान के पास में उष्ण जल के कई स्रोत हैं।

### जुनिन (Junin)

इस विभाग के योलि (youli) ज़िले में स्फटिक की शिराओं में और रेणु पाषाणों में हिङ्गुल जमा हुआ पाया जाता है। हिङ्गुल के सहयोग में रौप्य माक्षिक पाया जाता है। यहां पर हिङ्गुल प्राप्ति के स्थान के समीप उष्ण जल का स्रोत है और उसकी तह पर प्राकृतिक गन्धक पाया जाता है। इस जिले में एक स्थान अनकाचस (Ancachs) कहलाता है। वहां पृथ्वी की शिराओं में गेलेना, यशद, रौप्यमाक्षिक और सुवर्णमाक्षिक के साथ साथ हिङ्गुल भी पाया जाता है।

### हुवानुको (Huanuco)

इस विभाग के चोन्टा (Chonta) ज़िले में तीन जमाव हैं जिनमें रौप्यमाक्षिक, यशद, गेलेना, हिंगुल, टेट्राहिड्रेट (Tetrahedrite) आदि रेणु-पाषाण और स्फटिक-पाषाणों के साथ पाये जाते हैं।

### वीनेजुए (Venezue)

सन् १९०४ में यह सूचना प्रकाशित हुई थी कि यहां उष्ण स्रोत के जमाव के

*साथ साथ हिङ्गुल भी पाया जाता है। हिंगुल के साथ रौप्यमाक्षिक भी मिलता है।*

## ब्यौरेवार विवरण का कारण

ऊपर के पारदीय खनिज के ब्यौरेवार विवरण के लिखने का उद्देश यह है कि रसशास्त्रोक्त पारद गन्धक सम्बन्धी अनेक बातों पर विचार करने के लिये उपयुक्त सामग्री प्राप्त हो सके और साथ ही हमारे देश के भ्रमणशील वैद्य उपयुक्त उष्णस्रोतों के पूज्य धार्मिक कुण्डों व तीर्थों पर जाकर गन्धक व हिंगुल या तत्सम्बन्धी अनेक जानकारियां प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकें। बद्रीनाथ की यात्रा में और विहार आदि अन्य प्रान्तों में अनेक उष्णस्रोत हैं और वहाँ पर धर्मार्थी प्रतिवर्ष तीर्थ करने जाते हैं। यदि उनका ध्यान इस तरफ आकर्षित होने लगे तो सम्भव है अनेक प्रकार के अमूल्य खनिजों का पता लग जावे और भविष्य में विदेशियों का मुँह न ताकना पड़े तथा हमारे ही देश में हमारे रसशास्त्र की सामग्री एकत्रित करने की सुलभता हो सके।

## पारद के दोष

प्राकृतिक पारद, हिङ्गुलोत्थ पारद तथा उसके रसकर्पूरादि यौगिक दाहक विष हैं। पारद में अन्य धातु भी मिले रहते हैं। इन्हीं दोषों का दिखाने के लिये इस ग्रन्थ में "विषं वह्निमलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः" इस तरह अशुद्ध पारद मारक होने से विष दोष तथा दाहक होने से वह्नि दोष और धात्वन्तर के संयोग होने से मल दोष से युक्त पारद माना गया है। इन दोषों से युक्त पारद के अथवा पारदीय यौगिक के सेवन करने से "रसे मरणसन्तापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात्" इस क्रम से मरण, सन्ताप और मूर्च्छा आदि उपद्रव होते हैं।

यही बात आजकल के वैज्ञानिक भी मानते हैं घाष की मेटेरिया मेडिका ( Materia Medica ) के पृष्ठ नं० ४४६ में पारद प्रयोग के एक्यूट टाक्सिक एक्शन ( Acute Toxic Action तात्कालिक पारदविष प्रभाव ) के शीर्षक में लिखा है कि पारद के यौगिक विशेष कर रसकर्पूरादि ( रसकर्पूर=कोरोसिव सबलिमेट ) रसपुष्प ( केलामल, सुधानिधि रस ) और मुग्धरस ( ग्रे पाउडर ) ये सेवन करने से कोष्ठ में भयङ्कर प्रभाव करते हैं जिससे वमन ( Vomitign ), विरेचन ( Purging ), शूल ( Pain ) रक्तातिसार ( Bloody Stools ), मूर्च्छा ( Callapse ) तथा अन्त में मरण ( Death ) भी होता है।

Acute Toxic Action-Acute poisoning is not common. Mercurials aspecialli the mercuric salts produce severe gastro enteritis with Vomiting pains purging and bloody stools callapse and even death Materia Medica and Therapeutics By R. Ghosh Page 446.

इसी लिये पारद के संस्कारों की हमारे प्राचीन रसशास्त्रों में पूर्ण व्यवस्था की गई है जिससे ये दोष कम हों तथा द्रव्यान्तर संयोग से रोगनाशक व शक्तिप्रद गुण उत्पन्न हो जावें। पारद का विषप्रभाव तो स्वाभाविक है। जब खान से पारद निकलता है उस समय उसके साथ में संखिया, एण्टिमनी भी निकलते हैं। ये दोनों द्रव्य भयङ्कर विष हैं तथा उड़न शील भी हैं इस लिये पारद की शुद्धि करते समय इनकी अशुद्धियों को दूर करने का भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

पारद में दो यौगिक दोष नाग (Lead) और वङ्ग ( Tin ) के माने गये हैं। यथा—

यौगिकौ नागवङ्गौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्ठदौ ?

ये आधुनिक दृष्टि से भी ठीक हैं। दोष की मेटेरिया मेडिका ऐण्ड थेराप्युटिक्स नामक ग्रन्थ में लिखा है कि पारद में लेड ( Lead ) टिन ( Tin ) तथा अन्य धातुओं की अशुद्धियां भी मिली रहती हैं यथा—Impurites—Lead Tin and other metals )।

अन्य धातुओं के विषय में लाडर ब्रण्टन नाम के विद्वान् ने अपने फार्माकोलोजी थेराप्युटिक्स एण्ड मेटेरिया मेडिका नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६९१ पर लिखा है कि "Other metals especially Lead Arsenic and Antimony may be present अर्थात् अन्य अशुद्धियों में लेड ( नाग ) आर्सेनिक ( संखिया ) एण्टिमनी ( स्तोताञ्जन ) हो सकते हैं। इन अवतरणों से स्पष्ट है कि पारद में अन्य धातु मिले रहते हैं अत एव मल दोष को मानना सर्वथा सत्य तथा ज्ञातव्य है।

## पारद के सप्तकञ्चुक

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त पारद में सप्तकञ्चुक दोष भी माने गये हैं। इनको रसशास्त्र में औपाधिक माना गया है।

औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकञ्चुकाः ।
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्तकञ्चुकाः ॥

सप्तकञ्चुक क्या है ?—आधुनिक रसायन और खनिज विज्ञान के परिशीलन से पता चलता है कि पारद प्रायः सब धातुओं से भारी है। जब यह अन्य धातुओं के साथ मिलता है जैसा कि इसी ग्रन्थ में कहा है—

काष्ठौषध्यो नागे नागो वङ्गेऽथ वङ्गमपि शुल्वे ।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकञ्च लीयते सूते ॥

तब उसे पारदीय मिश्रक ( Alloy of Mercury ) कहते हैं।

इस अवस्था में पारद के अन्दर मिली हुइ धातुएँ प्रायः पारद के ऊपर आवरण की भांति तैरती रहती हैं। इस प्रकार के आवरण को कञ्चुक कह सकते हैं। पारद

के कञ्चुक दोषों का प्राच्य पाश्चात्य ढङ्ग से रसतरङ्गिणी में अच्छा वर्णन कर दिया गया है।

यथा—धातवो रससंश्लिष्टा यदा विष्णुपदामृतम्।
गृह्णन्ति हि तदा तेषां कश्चिद्भागोऽवशीर्यते॥
ततश्चूर्णत्वमापन्ना रसमाच्छादयन्ति ते।
तेनावरणसाम्येन धातवः सूतसङ्गताः॥
कञ्चुकाख्यां भजन्तीति प्राच्यपाश्चात्यसम्मतिः।
कैश्चिदेते कञ्चुकाख्या दोषा औपाधिकाः स्मृताः॥
(रसतरङ्गिणी पृष्ठ २७)

पारद के मिश्रक अत्यधिक दबाव पर (on very High pressure) विश्लिष्ट हो जाते हैं अर्थात् पारद अलग निकल आता है। सम्भवतः इसी ज्ञान के आधार पर आयुर्वेद के रस शास्त्रज्ञों ने पारद को शुद्ध करने के लिये अनेक प्रकार की शोधन विधियों का आविष्कार किया है। साधारणतया पारद लेटिन गेबर (The Latin Geber) के लेखानुसार वङ्ग, सुवर्ण, ताम्र, रजत और लोहे के साथ मिलता है, तथा इसके बाद के लेखकों के मतानुसार पारद यशद (Zinc), नाग (Lead) और पेलेदियं (Palladium) नामक धातु के साथ भी मिलता है। लौह के साथ कठिनता से मिलता है। बाज़ार में ये मिश्रक व्यापार के लिये आते हैं। पारद तथा वङ्ग (Tin) का मिश्रक दर्पण पर कलई करने के काम आता है। सुवर्ण और रजत के द्वारा बने हुए पारदीय मिश्रक सोनहरी, रूपहरी, गिलट की कारीगरी में उपयुक्त होते हैं। यशद और वङ्ग के साथ बने हुए पारदीय मिश्रक विद्युत् यन्त्रों की रबर पर चढ़ाने के लिये तैय्यार होते हैं। इसी प्रकार भिन्न २ मात्रा से बने हुए रजत, ताम्र, वङ्ग और कभी २ सुवर्ण तथा प्लेटिनम के द्वारा बने हुए पारदीय मिश्रक दांतों की खातों के भरने के काम में आते हैं। इन के अतिरिक्त पोटासियं (Potassium) सोडियम् (Sodium) अमोनियम् (Ammonium) केडमियम् (Cadmium) के अमालगम् (Amalgams) भी तैय्यार होते हैं।

आधुनिक विद्वानों ने पारद पर वायु विशेष (गेस) का भी कञ्चुक (आवरण) माना है। यह आवरण अत्यन्त सूक्ष्म होता है और विशिष्ट यन्त्र द्वारा ही परीक्षित या दृष्टिगत हो सकता है।

"J. J. Jaak and R. Sissingh have shown that a layer of absorbed gas only one Molecule thick can be dected optically on the surface of Mercury. (Monograph on Mercury ores Pages 15)

इन दोषों के अतिरिक्त हमारे अन्य रस ग्रन्थों में पारद के अन्दर अन्य दोष भी

माने गये हैं परन्तु उनका कोई विशेष उपयोग ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि जिनका आधिक्य से विचार किया जाना आवश्यक हो। भूमिज, गिरिज, वारिज जो दोष माने हैं वे सरलता से समझ में आ सकते हैं। जिस भूमि से पारद निकला उसके संसर्गज दोष, जिस स्रोत के जल में घुल कर ऊपर आकर हिङ्गुल के रूप में बना उसके दोष भी पारद में रहना सम्भव है। इस लिये शुद्धि के समय जहाँ से खनिज पारद एकत्रित किया गया हो वहां के स्थान के संसर्ग से होने वाले सब दोषों का परिहार अवश्य कर लेना चाहिये। कितना सूक्ष्म विचार है। किन्तु दुःख है कि आजकल हम लोगों को यह भी पता लगाने की इच्छा नहीं कि बाजार में जो वर्तमान पारद आता है उसका उद्गम देश कहां पर है और उस देश में पारद के साथ सहयोगी धातु कौन २ निकलते हैं तथा उनका पारद पर क्या प्रभाव पड़ता है, अथवा उस की शुद्धि क्यों की जाती है और शुद्धि के द्रव्यों का पारद के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है। हम पारद के सब कृत्य केवल इस लिये करते हैं कि शास्त्र की आज्ञा है। इस प्रकार की उदासी का फल यह हो रहा है कि अन्धकार में प्रयत्न किया जा रहा है। करने वाले को बिना ज्ञान के काम करते रहने से उद्देश्य हीन की तरह श्रान्ति हो जाती है और वह उस प्रयत्न से विरत हो जाता है। यही कारण है कि वैद्य समाज पारद के बचे हुए अष्टकर्म को भी यथाविधि करने में उदासीन सा हो गया है। हमारे पूर्वाचार्यों ने पारद पर अथक परिश्रम कर उसके अनेक अद्भुत गुणों का ज्ञान प्राप्त किया और वह ज्ञान ऐसा स्थिर तथा व्यापक है कि प्रत्यक्षवादी आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक भी अनेक परीक्षाएं कर प्रायः उसी फल पर पहुँचे हैं। इस समय पौर्वात्य और पाश्चात्य ज्ञान को एकत्रित करके आगे बढने के लिये प्रयत्न करना परमावश्यक है। जापान इसी कारण उन्नत हो रहा है तथा सारा संसार उसका मान करके उसके आविष्कारों से लाभ उठा रहा है। अभी हाल ही में उसने मोती को शीघ्र पैदा करने की क्रिया के आविष्कार से संसार में नवयुग उत्पन्न कर दिया है तथा "स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकम्" की युक्ति का शशः खण्डन कर अरबों का लाभ प्राप्त कर रहा है।

## पारद के भेद

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।
इति पञ्चविधो जातः क्षेत्रभेदेन शम्भुजः ॥

इस प्रकार पारद के ५ भेद माने गये हैं। रस नामक पारद रक्त वर्ण का होता है इस को रेड आकसाइड आफ् मर्करी ( Red oxide of Mercury ) कह सकते हैं। रसेन्द्र नामक पारद रूक्ष तथा श्याव वर्ण का होता है इसको इम्प्योर ( Impure ) कह सकते हैं। सूत नामक पारद रूक्ष तथा कुछ पीतवर्ण की आभा से युक्त होता है

इसको यलो आक्साइड आफ मर्करी ( yellow oxide of Mercury ) कहना चाहिए। पारद नामक चौथे प्रकार का पारा चञ्चल तथा श्वेत वर्ण वाला होता है अर्थात इसका वर्ण गली हुई चांदी के समान होता है यह अल्प प्राप्य है। इसको नेटिव मर्करी ( Native Mercry ) कहना चाहिए। मिश्रक नामक पारद अन्य धातुओं के साथ मिला रहता है तथा मोर के पङ्ख की चन्द्रिका के समान चमकदार होता है इसको मिश्रक कहते हैं अर्थात् Mix with Lead zinc and Tin इनके साथ मिश्रिक रूप में प्राप्त होता है।

## शुद्ध पारद के लक्षण।

शुद्ध पारद चांदी के समान श्वेत वर्ण का होता है। साधारण तापक्रम पर यह द्रवरूप में रहता है। हिलाने से इसके गोल कण बनते हैं। तथा पृथ्वी पर पात्र से गिरा देने पर छोटे २ कणों में विभक्त होकर फैल ( बिखर ) जाता है। इन बिखे हुए कणों को फिर मार्जनी या वस्त्र से एकत्रित करके पात्र में भर सकते हैं। पारद अत्यन्त शीतांश पर सफेद रांगे ( Tin ) का सा ठोस हो जाता है और वह चाकू से काटा जा सकता है। द्रवावस्था में पारद की पतली तह ( सतह ) पारदर्शक ( ट्रान्स पेरेण्ट Transparent ) या पारभासक ( ट्रान्स ल्यू सेण्ट Translucent ) होती है तथा उसमें नीले रङ्ग की आभा दिखाई देती है। रस शास्त्रों में शुद्ध पारद के ये ही लक्षण बताये हैं।

यथा—"अन्तः सुनीलो बहिरुज्वलो यो,
मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः
शस्तः.....( र० सा० सं० )

थोड़ा सा पारद एक कांच या चीनी के बर्तन में रख कर उस पर ऊपर की ओर से पानी की तेज़ धार गिराई जाय तो पारद के बुलबुले ( Bubbles ) पानी की सतह पर तैरते हुए दिखाई देते हैं और इन में नीली आभा दिखाई देती है तथा वे शीघ्र फूट कर ठोस पारद कण के रूप में बदल जाते हैं।

पारद का आपेक्षिक घनत्व ( Relative Density ) जल की अपेक्षा १३६ है। पारद ३५७ से ३५९ डिग्री की उष्णता पर उड़ने लगता। पारद की वाष्प रङ्ग रहित होती है। रसायन शास्त्र के नियमानुसार यद्यपि पारद बहुत ऊंची डिग्री के तापक्रम पर उड़ता है तथापि साधारण तापक्रम ( Normal Temperature ) पर अत्यन्त स्वल्प मात्रा में उड़ता देखा गया है। एक चीनी के बर्तन में पारद रखकर ऊपर सुवर्ण के पत्र के ढकने या लटकाने से दो तीन मास में इसकी मन्द उड़न शीलता की परीक्षा हो जाती है। इतने समय में सुवर्ण के पत्र पर पारद लगा दिखाई देगा। पारद द्रव होते हुए भी कज्जल, गन्धक, और खड़िया आदि चूर्ण द्रव्यों के साथ

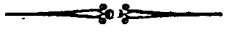
घोटने से अत्यन्त सूक्ष्म कणों में विभक्त हो जाता है। इसे पारद की मूर्छना या मरण ( Extinction or Deadning ) कहते हैं।

## अशुद्ध पारद के लक्षण—

साधारणतया बाजार का पारद किसी विशेषांश में अन्य धातुओं से संयुक्त रहता है। इस लिये यदि किसी साफ़ चीनी या कांच के बर्तन में थोड़ा सा पारद रख कर उसे तिरछा करें तो पारद के कण पुच्छयुक्त दिखाई देंगे। अशुद्ध पारद को यदि वायु में हिलावें तो पारद के ऊपरी भाग में काले से चूर्ण की सतह जम जावेगी जिससे पारद के छोटे २ कण आवृत हो जावेंगे। यह रजत पारद के साथ मिले हुए धातुओं के आतञ्चन ( आक्सिडेशन Oxidation ) होने से उत्पन्न होती है। यही कञ्चक दोष माना गया है। प्रायः अशुद्ध पारद का स्वरूप धूएं के समान पाण्डु और चित्र विचित्र होता है जैसा कि कहा भी है।

"अथ धूम्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ" इस लिये इस प्रकार के पारद को औषध या रसकर्म में अच्छी प्रकार से शुद्ध किये बिना प्रयुक्त न करें।

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनो वाग्भट्टाचार्यस्य कृतरसरत्नसमुच्चये पण्डितप्रवरेण श्रीकृष्णात्मजेन अम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचित-रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकान्तर्गतः खनिजविज्ञानाद्यनेक-रसग्रन्थसङ्गृहीतः पारदीयविमर्शः समाप्तः॥



## अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ महारसाः—

**अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम् ।**
**चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वाऽष्टौ संग्रहेद्रसान् ॥ १ ॥**

चार प्रकार का अभ्रक ( श्वेत, अरुण, श्याम, पीत ) तीन प्रकारका ( श्वेत रक्त, नील, ) वैक्रान्त, दो प्रकार का माक्षिक ( स्वर्ण और रौप्य ) विमल ( माक्षिक विशेष ) या मतान्तर से सोनामाखी ( माक्षिक ), रूपामाखी ( विमल ) शिलाजीत, तुत्थ, चपल ( विस्मथ ) खर्पर, ये आठ महारस हैं। इन्हें अच्छी तरह से लक्षणों से पहचान कर वैद्य संग्रह करे ॥ १ ॥

अथ गन्धाभ्रयोः स्वरूपम्—

**देव्या रजो भवेद्गन्धो धातुः शुक्रं तथाऽभ्रकम् ।**

पार्वती देवी का आर्तव शोणित गन्धक है और ब्रह्माजी का वीर्य अभ्रक है।

अथ अभ्रकगुणाः—

**गौरीतेजः परममृतं वातपित्तक्षयघ्नं**
**प्रज्ञाबोधि प्रशमितरुजं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ।**
**बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यं**
**तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योम सूतेन्द्रबन्धि ॥ २ ॥**
**राजहस्तादधस्ताद्यत्समानीतं घनं खनेः ।**
**भवेत्तदुत्कफलदं निःसत्वं निष्फलं परम् ॥ ३ ॥**

अभ्रक वात, पित्त ओर क्षय को नष्ट करता है, बुद्धि को बढ़ाता है, सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है, अमृत तुल्य गुण कारक है, वृष्य है, आयु के लिये हित कर है, बल दायक और रुचिवर्धक है, स्निग्ध है तथा पाचक वन्हि को बढ़ाता है, शीतवीर्य है, कफ को नष्ट करता है, भिन्न २ योगों में मिला कर देने से समस्त व्याधियों को नष्ट करता है। अभ्रक पारद का नियमन करता है। जो अभ्रक आठ हस्त से भी गहरी खोदी हुई खान से निकलता है वही उत्तम सर्व गुणों को करता है, किन्तु सार रहित और राजहस्त प्रमाण से रहित खान से ( उपर से ) निकला हुआ ठीक नहीं है ॥ २-३ ॥

विमर्शः—अभ्रक को लैटिन में माइका (Mica) तथा अंग्रेजी में टाल्क (Talk) और ग्लिम्मर ( Glimmer ) कहते हैं। यह भी खानों से निकलता है। उपलब्धि-यह बिहार प्रान्त में हजारीबाग और गिरडी तथा बङ्गाल में रानीगञ्ज के आसपास की कोयले की खानों के अन्दर मिलता है। तथा मद्रास के निल्लोर जिले में भी कहीं २ मिलता है और सिन्ध, तथा बम्बई प्रेसीडेन्सी के धारवाड़ जिले में भी प्राप्त होता है। पञ्जाब में कांगड़ा जिले के नूरपुर तहसील की खानों में से भस्म करने योग्य अच्छा कृष्णाभ्रक मिलता है। राजपूताना में किशनगढ तथा अजमेर के नजदीक वाले पहाड़ों में भी इसकी कहीं कहीं खाने हैं। यू० पी० में अल्मोड़ा तथा बाघेश्वर में भी कहीं २ मिलता है। अभ्रक के पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्राभ्रक इन चार भेदों में वज्राभ्रक को लोहाभ्रक का अपर पर्य्याय समझना चाहिए क्यों कि वज्राभ्रक के इन

सुप्रशस्तं कठोराङ्गं गुरु कज्जलसन्निभम्।
यत्र शब्दायते वह्नौ नैवोच्छूनं भवेदपि॥
सदाकरसमुद्भूतं वज्रेति प्रथितं घनम्॥ ( इति र० सा० सं० )

तथा—यदञ्जननिभं क्षिप्तं न वह्नौ विकृतिं व्रजेत्।
वज्रसंज्ञं हि तद् योज्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत्॥ ( इति र० चि०

लक्षणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो अभ्रक कठोर ( अधिक वजनी ) तथा कज्जल या काले अञ्जन के समान वर्ण का हो वह वज्राभ्रक औषध में प्रशस्त माना गया है तथा आजकल यह निश्चित हो गया है कि जिस अभ्रक में लोह का अंश अधिक होता है वही अधिक वजनी तथा काले वर्ण का होता है। इस प्रकार के अभ्रक को बायो टाईट ( Bio Tite ) कहते हैं। और भी अभ्रक की अनेक जातियां मिलती हैं किन्तु रसग्रन्थों में औषध के लिये वज्राभ्रक ( लोहाभ्रक ) से बढकर उनकी महत्वता नहीं है इस लिये यहां पर वर्णन नहीं किया गया है।

उत्पत्ति—"देव्या रजो भवेद्ब्रन्धो धातुः शुक्रं तथाऽभ्रकम्"

अर्थात् ब्रह्माजी का शुक्र अथवा पार्वती देवी का धातुस्वरूप जो शुक्र है वही अभ्रक है। इससे यह दिखाया गया कि अभ्रक की उत्पत्ति का सम्बन्ध पार्वती देवी से है। इस आशय का पार्वती अर्थात् पर्वते भवा या पर्वतस्य इयं पार्वती ( पर्वत सम्बन्धिनी पृथिवी या पर्वतसन्निकट पृथिवी अर्थात् पर्वत ( पहाड़ ) की खान का धातु अर्थात् परम तत्व ( रासायनिक परिवर्तनादिक विधियों से बना हुआ ) ही अभ्रक है। इस प्रकार के अर्थ की सत्यता में प्रथम कारण तो "सदाकरसमुद्भूतं वज्रेति प्रथितं घनम्, यह तथा राजहस्तादधस्ताद्यत् समानीतं घनं खनेः" आदि अपने दूरदर्शी, त्रिकाल विज्ञानी रसशास्त्र के आचार्य की सूत्रबद्धकृति ही प्रमाण है। तथा दूसरा कारण आधुनिक युग के वैज्ञानिकों की प्रत्यक्ष करके दिखाई हुई विज्ञान चर्चा को समझना चाहिए।

अथाभ्रभेदाः—

**पिनाकं नागमण्डूकं वज्रमित्यभ्रकं मतम् ।**
**श्वेतादिवर्णभेदेन प्रत्येकं तच्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥**

अभ्रक पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्र इन भेदों से चार प्रकार का है, और ये हरेक चारों भेद चार २ प्रकार के हैं । जैसे श्वेत, अरुण, श्याम और पीत । कुछ लोगों का मत है कि अभ्रक श्वेतादि भेद से चार तरह का है किन्तु श्याम ( कृष्ण ) अभ्रक पिनाकादि चार भेदों वाला होता है ॥ ४ ॥

अथ पिनाकादीनां लक्षणानि—

**पिनाकं पावकोत्तप्तं विमुञ्चति दलोच्चयम् ।**
**तत्सेवितं मलं बद्ध्वा मारयत्येव मानवम् ॥ ५ ॥**
**नागाभ्रं नागवत्कुर्याद्ध्वनिं पावकसंस्थितम् ।**
**तद्भुक्तं कुरुते कुष्ठं मण्डलाख्यं न संशयः ॥ ६ ॥**
**उत्प्लुत्योत्प्लुत्य मण्डूकं भ्रामं पतति चाभ्रकम् ।**
**तत्कुर्यादश्मरीरोगमसाध्यं शस्त्रतोऽन्यथा ॥ ७ ॥**
**वज्राभ्रं वह्निसन्तप्तं निर्मुक्ताशेषवैकृतम् ।**
**देहलोहकरं तच्च सर्वरोगहरं परम् ॥ ८ ॥**

पिनाक अभ्रक अग्नि में तपाने से पत्ररूप में पृथक हो जाता है । उस को सेवन करने से मल का अवरोध होता है । इससे मृत्यु भी हो जाती है । नागाभ्रक अग्नि पर रखने से सर्प की तरह शब्द ( फूं फूं ) करता है । उसके सेवन से मण्डलाकार कुष्ठ उत्पन्न होता है । मण्डूक संज्ञक अभ्रक अग्नि में तपाने पर मण्डूक के समान उछल २ कर भागता है । उसके सेवन करने से दवासे असाध्य परन्तु शस्त्रादि कर्म से साध्य अश्मरी रोग उत्पन्न होता है । वज्र संज्ञक अभ्रक अग्नि में तपाने पर भी किसी भी विकृति को प्राप्त नहीं होता है । वह शरीर को अत्यन्त दृढ बनाता है तथा सब रोगों का नाशक है ॥ ५–८ ॥

अथ वर्णभेदेनाभ्रकस्य भेदास्तेषां क्रियाविषयश्च—

**श्वेतं रक्तं च पीतं च कृष्णमेवं चतुर्विधम् ।**
**श्वेतं श्वेतक्रियासूक्तं रक्ताभं रक्तकर्मणि ॥**
**पीताभमभ्रकं यत्तु श्रेष्ठं तत्पीतकर्मणि ॥ ९ ॥**

**चतुर्विधं वरं व्योम यद्यप्युक्तं रसायने।**
**तथाऽपि कृष्णवर्णाभ्रं कोटिकोटिगुणाधिकम्॥ १०॥**

अभ्रक श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण इन चार भेदों में प्राप्त होता है। श्वेत अभ्रक चांदी बनाने या उसके मारण में और श्वित्र कुष्ठों को दूर करने में या अग्नि से जलने पर श्वेत चर्म को दूर करने में प्रयुक्त होता है। रक्त अभ्रक हिङ्गुलादि लाल वस्तुओं के शोधन अथवा रक्त की वृद्धि और शुद्धि में प्रयुक्त होता है। पीला अभ्रक स्वर्णादि पीत वस्तुओं के मारण में या पाण्डु रोग से पीत देह को सुधारने में प्रयुक्त होता है। यद्यपि चारों प्रकार का अभ्रक रसायन के लिये श्रेष्ठ है तथापि कृष्ण वर्ण का अभ्रक करोड़ों फल देने वाला होता है॥ ९-१०॥

**स्निग्धं पृथुदलं वर्णसंयुक्तं भारतोऽधिकम्।**
**सुखनिर्मोच्यपत्रं च तदभ्रं शस्तमीरितम्॥ ११॥**

स्निग्ध, बड़े २ पत्रवाला, श्रेष्ठ वर्णयुक्त, वजन में भारी और जिसके पत्र सुख से अलग हो जांय वह अभ्रक श्रेष्ठ है॥ ११॥

अथ ग्रासयोग्याभ्रम्—

**सचन्द्रिकं च किट्टाभं व्योम न ग्रासयेद्रसः।**
**ग्रसितश्च नियोज्योऽसौ लोहे चैव रसायने॥ १२॥**

जो अभ्रक चमकदार हो और लोह के किट्ट सदृश हो वह पारद में नहीं मिल सकता है। और यदि पारे से ग्रसित हो जाय तब उसे लोहादि योगों में और रसायन कर्म में ग्रहण करना चाहिए॥ १२॥

निश्चन्द्रसचन्द्राभ्रयोर्गुणदोषौ—

**निश्चन्द्रिकं मृतं व्योम सेव्यं सर्वगदेषु च।**
**सेवितं चन्द्रसंयुक्तं मेहं मन्दानलं चरेत्॥ १३॥**

चमक से रहित अभ्रक की भस्म सेवन करानी चाहिए। निश्चन्द्रीकरण क्रिया रहित अभ्रक भस्म का सेवन करने से मनुष्य प्रमेह और मन्दाग्नि को प्राप्त होता है॥ १३॥

अथाशुद्धाभ्रस्य दोषाः—

**यैरुक्तं युक्तिनिर्मुक्तैः पत्राभ्रकरसायनम्।**
**तैर्दृष्टं कालकूटाख्यं विषं जीवनहेतवे॥ १४॥**

**सत्त्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।**
**अन्यथा त्वगुणं कृत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥ १५ ॥**

युक्तियों से हीन जिन मनुष्यों ने पत्राभ्रक सेवन करने को कहा है उन्होंने जीवन की रक्षा के लिये कालकूट नामक विष खाने को कहा है। सत्व निकालने के लिये और औषध रूप में सेवन करने के लिये शोधन किये हुए अभ्रक का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा न करने से गुणों के बदले निश्चय करके विकार ही पैदा करता है ॥ १४–१५ ॥

अथाभ्रशोधनमारणे—

**प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं काञ्जिकेऽभ्रकम् ।**
**निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं वाऽपि गोजले ॥ १६ ॥**
**त्रिफलाक्वथिते चापि गवां दुग्धे विशेषतः ।**
**ततो धान्याभ्रकं कृत्वा पिष्ट्वा मत्स्याक्षिकारसैः ॥ १७ ॥**
**चक्रीं कृत्वा विशोष्याथ पुटेदर्धेभके पुटे ।**
**पुटेदेवं हि षड्वारं पौनर्नवरसैः सह ॥ १८ ॥**
**कलांशटङ्कणेनापि सम्मर्द्य कृतचक्रिकम् ।**
**अर्धेभाख्यपुटैस्तद्वत्सप्तवारं पुटेत्खलु ॥ १९ ॥**
**एवं वासारसेनापि तण्डुलीयरसेन च ।**
**प्रपुटेत्सप्तवाराणि पूर्वप्रोक्तविधानतः ॥**
**एवं सिद्धं घनं सर्वयोगेषु विनियोजयेत् ॥ २० ॥**

अभ्रक को वन्हि में अत्यन्त तप्त करके काञ्जी, गोमूत्र, त्रिफला क्वाथ, तथा विशेष कर गौ के दुग्ध, इन सब में सात २ वार निर्वापित करना चाहिए। ऐसी शुद्धि से सब दोषों से अभ्रक रहित हो जाता है। ध्यान रहे कि प्रत्येक निर्वापन में काञ्जी इत्यादि द्रव पदार्थ बदल दें और ये पदार्थ इतनी मात्रा में ले जितनी में तप्त अभ्रक अच्छी तरह डूब जाय। बाद में धान्याभ्रक करके मत्स्याक्षि (हिलमोचिका वा गण्ड दूर्वा) के रस में खूब पीस कर टिकिया बना कर सुखा ले बाद में अर्ध-गज पुट में पुट देना चाहिए। इसी तरह पुनर्नवा (साठी) के रस में घोट कर ६ पुट देना चाहिए। फिर इसी तरह अभ्रक की अपेक्षा सोलवें भाग टङ्कण के साथ घोट कर सात पुट देवें। इसी तरह अडूसे के रस में घोट कर सात पुट दें और

चोलाई के रस में भी घोट कर सात पुट दें। इस तरह भस्म रूप में सिद्ध हुआ अभ्रक सब कामों में गुणकर होता हैं ॥ १६-२० ॥

अथ धान्याभ्रकम्—

**चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके ।**
**निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ २१ ॥**

शुद्ध अभ्रक का चूर्ण चतुर्थांश शाली ( धान ) में मिलाकर वस्त्र में बांधके पोटली बना लें। फिर उस पोटली को काञ्जी में डालकर मर्दन करने पर वस्त्र से निकला हुआ अभ्रक धान्याभ्रक कहलाता है ॥ २१ ॥

अथ धान्याभ्रमारणम्—

**धान्याभ्रं कासमर्दस्य रसेन परिमर्दितम् ।**
**पुटितं दशवारेण म्रियते नात्र संशयः ॥**
**तद्वन्मुस्तारसेनापि तन्दुलीयरसेन च ॥ २२ ॥**

धान्याभ्रक को कासमर्द ( कसोञ्जी ) के रस से घोट कर दश पुट देने से मृत ( भस्म रूप ) हो जाता है। इसी तरह मुस्ते के रस में घोट कर दस पुट देना चाहिए, तथा चोलाई के रस में घोट कर दस पुट देने से मृत हो जाता है ॥२२॥

अथाभ्रमारणम्—

**पीतामलकसौभाग्यपिष्टं चक्रीकृताभ्रकम् ।**
**पुटितं षष्ठीवाराणि सिन्दूराभं प्रजायते ॥**
**क्षयाद्यखिलरोगघ्नं भवेद्रोगानुपानतः ॥ २३ ॥**

अभ्रक में सोलवां भाग की मात्रा में सोहागा मिला कर हलदी तथा आंवले के रस में घोट कर चक्रिका बनाकर छ २ वार पुट देने से सिन्दूर के समान रक्त वर्ण वाली भस्म हो जाती है। यह भस्म क्षय वगैरे सब रोगों को यथानुपान में देने से नष्ट करती है ॥ २३ ॥

मतान्तर—

**वटमूलत्वचः क्वाथैस्ताम्बूलीपत्रसारतः ।**
**वासामत्स्याक्षिकाभ्यां वा मीनाद्या सकठिल्लया ॥ २४ ॥**
**पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम् ।**
**भवेद्विंशतिवारेण सिन्दूरसदृशप्रभम् ॥ २५ ॥**

धान्याभ्रक को वट के मूल को छाल के काढ़े में घोटकर अथवा ताम्बूल पत्र के स्वरस में घोटकर या अडूसा और हिलमोचिका के रस में घोटकर या करेला और गण्डदूर्वा ( मत्स्याक्षी ) के रस में घोटकर २० पुट देने से सिन्दूर सदृश भस्म हो जाती है। केवल वट के दुग्ध में भी घोट कर २० पुट देने से भस्म हो जाती है ॥ २४–२५ ॥

अथाभ्रकसत्वपातनम्—

**पादांशटङ्कणोपेतं मुसलीरसमर्दितम् ।**
**रुन्ध्यात्कोष्ठ्यां दृढं ध्मातं सत्त्वरूपं भवेद्धनम् ॥ २६ ॥**

अभ्रक में चतुर्थांश रूप में टङ्कण मिलाकर ताल मूली ( मुसली ) के रस में घोट कर कोष्ठिका यन्त्र में रख कर फूंकने से सत्व निकल आता है।

कोष्ठिका यन्त्रल०

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम् ।
धातुसत्वनिपातार्थं कोष्ठिकं परिकीर्तितम् ॥ २६ ॥

प्रकारान्तर—

**कासमर्दघनध्वानवासानां च पुनर्भुवः ।**
**मत्स्याद्यायाः काण्डवल्ल्याश्च हंसपाद्या रसैः पृथक् ॥२७॥**
**पिष्ट्वा पिष्ट्वा प्रयत्नेन शोषयेद्धर्मयोगतः ।**
**पलं गोधूमचूर्णस्य क्षुद्रमत्स्याश्च टङ्कणम् ॥ २८ ॥**
**प्रत्येकमष्टमांशेन दत्त्वा दत्त्वा विमर्दयेत् ।**
**मर्दने मर्दने सम्यक्शोषयेद्रविरश्मिभिः ॥ २९ ॥**
**पञ्चाजं पञ्चगव्यं वा पञ्चमाहिषमेव च ।**
**क्षिप्त्वा गोलान्प्रकुर्वीत किंचित्तिन्दुकतोऽधिकान् ॥ ३० ॥**
**पयो दधि घृतं मूत्रं सविट्कं चाजमुच्यते ।**
**अधःपातनकोष्ठ्यां हि ध्मात्वा सत्त्वं निपातयेत् ॥ ३१ ॥**

कसौदी, नागरमोथा, धनियां, अडूसा, और पुनर्नवा, हिलमोचिका, करेला, हंसपादी इन वस्तुओं के रस में अभ्रक को पृथक् पृथक् घोट कर सूर्य की गर्मी से सुखाले और गेहूं का चूर्ण १ पल तथा मत्स्याक्षी ( गण्डदूर्वा ) और सोहागा ये प्रत्येक अभ्रक से अष्टमांश लेकर घोटना चाहिए। फिर सूर्य की किरणों से सूख

जाने पर बकरी का दुग्ध, दही, घृत, मूत्र और मिंगनी (मल) ये पांच वस्तु मिलाकर या पञ्चगव्य अथवा भैंस की दुग्धादि पांच वस्तु मिलाकर एक कर्ष से अधिक मोटे गोले बनाकर अधःपातन कोष्ठिका यन्त्र में रख कर फूंकने से अभ्रक का सत्व निकल जाता है। दुग्ध, दही, घी, मूत्र और गोबर इनका मिश्रण पञ्चगव्य है ॥ २७–३१ ॥

अथ किट्टात्सत्वग्रहणम्—

**कोष्ठ्यां किट्टं समाहृत्य विचूर्ण्य खवकान्हरेत्।**
**तत्किट्टं स्वल्पटङ्केन गोमयेन विमर्द्य च ॥ ३२ ॥**
**गोलान्विधाय संशोष्य घर्मे भूयोऽपि पूर्ववत्।**
**भूयः किट्टं समाहृत्य मृदित्वा सत्त्वमाहरेत् ॥ ३३ ॥**

पश्चात् मूषा में से शेष अभ्रक के किट्ट को निकाल कर चूर्ण कर के उस में आठवां भाग टङ्कण और समभाग गौ का गोबर मिलाकर मर्दन करे और फिर घाम में शुष्क कर पूर्वानुसार सत्व निकाल ले, फिर भी किट्ट शेष रहे तो इसी रीति से टङ्कण और गोबर मिलाकर सत्व निकालना चाहिए ॥ ३२–३३ ॥

अथ सत्वशोधनम्—

**अथ सत्त्वकणांस्तांस्तु क्वाथयित्वाऽम्लकाञ्जिकैः।**
**शोधनीयगणोपेतं मूषामध्ये निरुध्य च ॥ ३४ ॥**
**सम्यग्द्रुतं समाहृत्य द्विवारं प्रथमेद्धनम्।**
**इति शुद्धं भवेत्सत्त्वं योज्यं रसरसायने ॥ ३५ ॥**

बाद में अभ्रक के सत्व के कणों का खट्टी काञ्जी से क्वाथ करके फिर शोधन गण की वस्तुओं के रस में घोट कर गोले बना कर मूषा यन्त्र में बन्द कर के फूंके। इस तरह द्रुत हुए सत्व को द्वितीय वार शोधन गण की औषधियों से घोट कर गोले बनाले पश्चात् उन्हें मूषा यन्त्र में बन्द करके फूंकने से वह सत्व शुद्ध हो जाता है और रस तथा रसायन के काम में आता है ॥ ३४–३५ ॥

अथ सत्वानां मृदुकरणम्—

**मधुतैलवसाज्येषु द्रावितं परिवापितम्।**
**मृदु स्याद्दशवारेण सत्त्वं लोहादिकं खरम् ॥ ३६ ॥**

अभ्रक सत्व को अग्नि संयोग से द्रवित कर के शहद, तैल, वसा और घृत में

दश वार निर्वापित करने से मृदु हो जाता है। इसी तरह कठिन लोहादि धातु भी मृदु होते हैं ॥ ३६ ॥

अथाभ्रमारणम्—

पट्टचूर्णं विधायाथ गोघृतेन परिप्लुतम् ।
भर्जयेत्सप्तवाराणि चुल्लीसंस्थितखर्परे ॥ ३७ ॥
अग्निवर्णं भवेद्यावद्वारं वारं विचूर्णयेत् ।
तृणं दत्त्वा दहेद्यावत्तावद्वा भर्जनं चरेत् ॥ ३८ ॥
ततः सगन्धकं पिष्ट्वा वटमूलकषायतः ।
पुटेद्विंशति वारेण वाराहेण पुटेन हि ॥ ३९ ॥
पुनर्विंशतिवाराणि त्रिफलोत्थकषायतः ।
त्रिफलामुण्डिकाभृङ्गपत्रपथ्याक्षमूलकैः ॥ ४० ॥
भावयित्वा प्रयोक्तव्यं सर्वरोगेषु मात्रया ।
सत्त्वाभ्रात्किंचिदपरं निर्विकारं गुणाधिकम् ॥ ४१ ॥
एवं चेच्छतवाराणि पुटपाकेन साधितम् ।
गुणवज्जायतेऽत्यर्थं परं पाचनदीपनम् ॥ ४२ ॥

अभ्रक सत्व को कपड़े से छान कर या पत्थर पर चूर्ण कर के गोघृत मिला कर चूल्हे पर स्थित कटाह इत्यादि पात्र में भूने। जब तक अग्नि के समान लाल वर्ण का न हो तब तक उस सत्व का कड़ाह में घोट कर चूर्ण करता जाय या कटाह में तृण डालने से वे जलने लगे तब तक घोट २ के चूर्ण करता जाय। इस तरह सात बार भूनना चाहिए। फिर उसमें समान मात्रा में शुद्ध गन्धक डाल कर वट के मूल के कषाय या क्वाथ से घोट कर वाराह संज्ञक पुट द्वारा २० पुट देवे। प्रत्येक पुट में गन्धक मिलाना चाहिए। फिर त्रिफले के क्वाथ या कषाय से घोट कर उसी तरह २० पुट देना चाहिए। पश्चात् त्रिफला, मुण्डी, भांगरे के पत्ते और हरीतकी तथा बहेड़ा और मूली इनके रस की क्रमशः भावना देकर सब रोगों में मात्रानुसार प्रयोग करना चाहिए। इस सत्वाभ्रक से अन्य अधिक गुण करने वाली और कोई औषधि नहीं है। इसी प्रकार यदि १०० पुट दे कर अभ्रक सत्व का पुट पाक करें तो अत्यन्त गुण कारक तथा अग्निदीपक और पाचनशक्ति बढ़ाने वाली अभ्रक भस्म हो जाती है ॥ ३७–४२ ॥

मारणे प्रकारान्तरमाह—

गन्धर्वपत्रतोयेन गुडेन सह भावितम्।
अधोर्ध्वं वटपत्राणि निश्चन्द्रं त्रिपुटः खगम्॥ ४३॥
क्षुधं करोति चात्यर्थं गुञ्जार्धमितिसेवया।
तत्तद्रोगहरैर्योगैः सर्वरोगहरं परम्॥ ४४॥

यदि अभ्रक में गुड़ मिला कर एरण्ड ( रेंडी ) के पत्रों के स्वरस की भावना देकर शराव में रख कर ऊपर से वट पत्र रख कर शराव को कपड़ मिट्टि कर फूंक दे। इस तरह तीन पुट देने से अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म तैय्यार होती है। इस भस्म को आधे रत्ती की मात्रा में सेवन करने से अत्यन्त क्षुधा लगती है और यह भस्म भिन्न २ दवाइयों या अनुपान के साथ देने से सर्व व्याधियों को दूर करती है॥ ४३-४४॥

अथ सत्वस्य शोधनमारणे—

सत्त्वस्य गोलकं ध्मातं सस्यसंयुक्तकाञ्जिके।
निर्वाप्य तत्क्षणेनैव कुट्टयेल्लोहपारया॥ ४५॥
संप्रताप्य घनस्थूलकणान्क्षिप्त्वाऽथ काञ्जिके।
तत्क्षणेन समाहृत्य कुट्टयित्वा रजश्चरेत्॥ ४६॥
गोघृतेन च तच्चूर्णं भर्जयेत्पूर्ववत्त्रिधा।
धात्रीफलरसैस्तद्वद्धात्रीपत्ररसेन वा॥ ४७॥
भर्जने भर्जने कार्यं शिलापट्टेन पेषणम्।
ततः पुनर्नवावासारसैः काञ्जिकमिश्रितैः॥ ४८॥
प्रपुटेद्दशवाराणि दशवाराणि गन्धकैः।
एवं संशोधितं व्योमसत्वं सर्वगुणोत्तरम्।
यथेष्टं विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने॥ ४९॥
द्रुतयो नैव निर्दिष्टाः शास्त्रे दृष्टा अपि दृढम्॥
विना शंभोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन॥ ५०॥

अभ्रक सत्व का गोला बना कर उसे प्रतप्त करें और फिर बिना छानी काञ्जी में बुझावे और उसी समय लोह के मूसल से चूर्ण करता जाय। इस तरह अभ्रक सत्व के स्थूल कणों को बार २ प्रतप्त कर के काञ्जी में बुझा कर उसी समय निकाल

कर चूर्ण करलें, फिर उस चूर्ण को पूर्वोक्त विधि से गोघृत से भूंजना चाहिए। अथवा इसी तरह आंवले के फल या पत्रों के स्वरस से भूनना चाहिए। प्रत्येक भर्जन के समय शिलापट्ट से चूर्ण करना आवश्यक है। बाद में पुनर्नवा और वासा के स्वरस में काञ्जी मिला कर घोट कर दश वार पुट देना चाहिए। इसी तरह गन्धक के साथ भी घोट कर दस पुट देना चाहिए। इस तरह शोधित किया हुआ अभ्रक सत्व सर्वगुण युक्त होता है और उस का पारद के जारण या रसायन में यथेष्ट प्रयोग कर सकते हैं। द्रुतियों का शास्त्र में वर्णन होने पर भी उपयोग ठीक विधि से नहीं बताया गया है और ये शिवजी की अनुकम्पा के विना सिद्ध भी नहीं होती हैं ॥ ४५–५० ॥

अथाभ्रप्रयोगः—

**वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं सेवितं**
**दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुरुग्ग्रहणिकाशूलामकुष्ठामयम्।**
**जूर्तिं श्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्धरं**
**मन्दाग्निं जठरव्यथां विजयते योगैरशेषामयान्॥ ५१ ॥**

इत्यभ्रकाधिकारः।

वायविडङ्ग, सोंठ, मिर्च, पिप्पल, प्रत्येक का दो दो रत्ती चूर्ण करले फिर उस चूर्ण में घृत मिलाकर दो रत्ती अभ्रक रस मिलाकर सेवन करे। इससे क्षय, पाण्डु, ग्रहणी, खांसी, शूल, आंव, और कुष्ठ रोग, ज्वर, श्वास, बीस प्रकार के प्रमेह, अरुचि, असाध्य कास रोग, मन्दाग्नि, उदर की समस्त व्याधियां और भिन्न २ अनुपानों से समग्र व्याधियां नष्ट हो जाती है ॥ ५१ ॥

अथ वैक्रान्तः—

**अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः।**
**शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ५२ ॥**

आठ कोनों तथा आठ फलकों से युक्त और षट्कोणवाला, स्निग्ध, भारी, शुद्ध और मिश्रित रङ्ग वाला उत्तम वैक्रान्त होता है ॥ ५२ ॥

अथ वैक्रान्तस्य वर्णभेदाः—

**श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः।**
**श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥ ५३ ॥**

श्वेत, रक्त, पीत, नील, धूमवर्ण, कृष्ण, श्याम तथा चित्रवर्ण या स्वर्णवर्ण इन वर्ण भेदों से वैक्रान्त आठ तरह का है ॥ ५३ ॥

अथ वैक्रान्तगुणाः—

**आयुष्प्रदश्च बलवर्णकरोऽतिवृष्यः प्रज्ञाप्रदः सकलदोषगदापहारी।**
**दीप्ताग्निकृत्पविसमानगुणस्तरस्वी वैक्रान्तकः खलु वपुर्बललोहकारी॥५४॥**
**रसायनेषु सर्वेषु पूर्वगण्यः प्रतापवान्।**
**वज्रस्थाने नियोक्तव्यो वैक्रान्तः सर्वदोषहा ॥ ५५ ॥**

वैक्रान्त अवस्था बढाता है, शरीर में बल तथा वर्ण पैदाकरता है, अत्यन्त वृष्य तथा बुद्धिप्रद है, सम्पूर्ण कुपित वातादि दोष और व्याधियों को नष्ट करता है, अग्नि को दीप्त करता है, वज्र ( हीरक ) के समान गुणकारी है, तथा शक्ति पैदा करता है, शरीर को बलयुक्त एवं लौह सदृश दृढ करता है। जितने भी रसायन हैं उनमें यह प्रधान और प्रभावसम्पन्न तथा सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाला है। इसका हीरे के स्थान में भी प्रयोग करते हैं ॥ ५४–५५ ॥

अथ वैक्रान्तोत्पत्तिः—

**दैत्येन्द्रो माहिषः सिद्धः सहदेवसमुद्भवः।**
**दुर्गा भगवती देवी तं शूलेन व्यमर्दयत् ॥ ५६ ॥**
**तस्य रक्तं तु पतितं यत्र यत्र स्थितं भुवि।**
**तत्र तत्र तु वैक्रान्तं वज्राकारं महारसम् ॥ ५७ ॥**

देवताओं ( अथवा सहदेव ) के साथ उत्पन्न तथा शङ्करजी से सिद्धिप्राप्त दैत्यों के राजा महिषासुर को भगवती दुर्गा ने जब अपने त्रिशूल से मारा था उस वक्त उसका रक्त जहां २ पृथ्वी पर पड़ा वहां २ वज्र के सदृश आकार वाले महारस वैक्रान्त की उत्पत्ति हुई ॥ ५६–५७ ॥

विमर्शः—वैक्रान्त को टर्मुली ( Turmuly ) कहते हैं।

परिचय—यह एक विशेष खनिज है जो कि अभ्रक के साथ २ तथा कभी २ स्वतन्त्र रूप से भी प्राप्त होता है। सम्भव है कि इसी कारण इसका अभ्रक के बाद पाठ रखा गया है। इसकी जो मूल में उत्पत्ति दिखाई गई है वह अलङ्कारिक भाषा से ओतप्रोत होती हुई भी समर्थ का प्रतिपादन करती है। किन्तु आजकल के जौहरियों के प्रयोग के आधार पर इसके विषय में जो दग्ध हीरक होने की धारणा लोगों की बनी हुई वह भ्रम से परिपूर्ण है। यह स्वतन्त्र खनिज है।

**उपलब्धि—यह खनिज प्रथम सीलोन से निकलता था किन्तु आजकल विशेष कर अफ्रीका से निकलता है तथा वहाँ से सर्वत्र वितरित होता है। इसके जो अनेक वर्ण के सुन्दर २ कण ( क्रिस्टल्स् Crystals ) आते हैं उनकी गणना रत्नों में होती है। इसी लिये इस ग्रन्थ में इसका आगे रत्नों के साथ भी उल्लेख किया गया है। इसके बहुमूल्य कणों को जौहरी अनेक प्रकार के आभूषणों में काम में लाते हैं।**

**इसके कृष्णवर्ण के खनिज में लोहे का अंश अधिक होता है इस लिये उसका ही विशेष कर के औषध कर्म में प्रयोग करना चाहिए।**

वैक्रान्तस्य स्थानं निरुक्तिञ्चाह—

**विन्ध्यस्य दक्षिणे भागे ह्युत्तरे वाऽस्ति सर्वतः।**
**विकृन्तयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः ॥ ५८ ॥**

यह वैक्रान्त विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर तथा दक्षिण भाग में सर्वत्र खानों में प्राप्त होता है तथा लौह ताम्रादिक समग्र धातुओं को काट डालने से वैक्रान्त कहा जाता है ॥ ५८ ॥

मतान्तरेण वर्णभेदकथनम्—

**श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतप्रभः।**
**मयूरकण्ठसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः ॥ ५९ ॥**

यह श्वेत, पीत, रक्त, नील और कबूतर के समान धूम्रवर्ण वाला तथा मयूर के कण्ठ के समान चित्रवर्ण युक्त और मरकतमणि के तुल्य वर्ण वाला सात रङ्ग का होता है ॥ ५९ ॥

वर्णभेदेन कार्यभेदकथनम्—

**देहसिद्धिकरं कृष्णं पीते पीतं सिते सितम्।**
**सर्वार्थसिद्धिदं रक्तं तथा मरकतप्रभम् ॥**
**शेषे द्वे निष्फले वर्ज्ये वैक्रान्तमिति सप्तधा ॥ ६० ॥**

कृष्णवर्ण वाला वैक्रान्त शरीर को सिद्धि प्रदान ( अजरअमर ) करता है। पीत वैक्रान्त को स्वर्ण के जारण मारण में प्रयोग करते हैं। इसी तरह श्वेत को चांदी के लिये या श्वेत कुष्ठादिरोगों में प्रयुक्त करते हैं। लाल तथा मरकत मणि समान वर्ण वाले वैक्रान्त को सेवन करने से सम्पूर्ण सिद्धियां प्राप्त होती हैं। शेष दो रंगवाला ( नील तथा कबूतर वर्ण ) वैक्रान्त विशेष फल नहीं करने से वर्जनीय है। इस तरह वैक्रान्त सात प्रकार का होता है ॥ ६० ॥

अथाऽऽहरणविधिः—

**यत्र क्षेत्रे स्थितं चैव वैक्रान्तं तत्र भैरवम् ।**
**विनायकं च संपूज्य गृह्णीयाच्छुद्धमानसः ॥ ६१ ॥**

जिस खान ( क्षेत्र ) में वैक्रान्त हो वहां पर भैरव तथा गणेशजी की पूजन कर शुद्धचित्त होकर उसे ग्रहण करें ॥ ६१ ॥

अथ गुणान्तरम्—

**वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः ।**
**विषघ्नो रसराजश्च ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत् ॥ ६२ ॥**

वैक्रान्त हीरे के समान है तथा शरीर को लौह तुल्य बनाता है । विषों का प्रभाव नष्ट करता है । ज्वर, कुष्ठ और क्षय रोगों को नष्ट करता है । यह रसों का राजा कहलाता है ॥ ६२ ॥

अथ शोधनम्—

**वैक्रान्तकाः स्युस्त्रिदिनं विशुद्धाः संस्वेदिताः क्षारपटूनि दत्त्वा ।**
**अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थरम्भानीरेऽथवा कोद्रववारिपक्काः ॥ ६३ ॥**

सर्व प्रकार के वैक्रान्त को काञ्जी में, गोमूत्र में, कुलत्थी के काढे में, या केले के स्वरस में क्षारवर्ग के क्षार डालकर दोला यन्त्र में तीन दिन स्वेदन करके शुद्ध करते हैं। अथवा कोदो धान के जलमें पकाने से भी शुद्ध हो जाता है ॥६३॥

मतान्तरे शोधनमारणे—

**कुलत्थक्काथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुध्यति ।**
**म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बुकद्रवसंयुतः ॥ ६४ ॥**

कुलत्थी के काढे में एक प्रहर स्वेदन करने से वैक्रान्त शुद्ध हो जाता है । बाद में सम भाग शुद्ध गन्धक डाल कर निम्बूरस से घोट कर आठ पुट देने से भस्म हो जाती है ॥ ६४ ॥

मतान्तरम्—

**वैक्रान्तेषु च तप्तेषु हयमूत्रं विनिक्षिपेत् ।**
**पौनःपुन्येन वा कुर्याद्द्रवं दत्त्वा पुटं त्वनु ॥**
**भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ ६५ ॥**

वैक्रान्त को प्राप्त करके घोड़े के मूत्र में बुझावे। इस तरह २१ वार प्रतप्त कर

नया मूत्र डाल २ कर बुझाना चाहिए। बाद में पुट देने पर वज्र के स्थान पर प्रयोग करने लायक भस्म हो जाती है ॥ ६५ ॥

अथ सत्वपातनम्—

**मोचमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।**
**वज्रकन्दनिशाकल्कफलचूर्णसमन्वितम् ॥ ६६ ॥**
**तत्कल्कं टङ्कणं लाक्षाचूर्णं वैक्रान्तसम्भवम् ।**
**नरसारसमायुक्तं मेषशृङ्गीद्रवान्वितम् ॥ ६७ ॥**
**पिण्डितं मूकमूषस्थं ध्मापितं च हठाग्निना ।**
**तत्रैव पतते सत्त्वं वैक्रान्तस्य न संशयः ॥ ६८ ॥**

कदली कन्द ( केले की जड़ ) मोरट ( इक्षुमूल ) रस पलाश ( ढाक ) का क्षार और गोमूत्र इनसे वैक्रान्त को भावित करे। पश्चात् उसमें जङ्गली सूरण कन्द तथा हलदी का कल्क और त्रिफला का चूर्ण, सोहागा, लाह चूर्ण और नोसादर मिलाकर मेंढासिङ्गी के स्वरस से घोट कर गोला बनावे। उस गोले को अन्धमूषा में रख कर धौंकनी ( भस्त्रा ) से अग्नि को दीप्त करके फूंके। इससे निश्चय ही सत्व निकल आता है ॥ ६६-६८ ॥

अथ मतान्तरम्—

**सत्त्वपातनयोगेन मर्दितश्च वटीकृतः ।**
**मूषास्थो घटिकाध्मातो वैक्रान्तः सत्त्वमुत्सृजेत् ॥ ६९ ॥**

सत्व निकालने में प्रयुक्त होने वाली औषधियों के साथ वैक्रान्त को घोट कर गोला बनाकर मूषायन्त्र में रख कर एक घण्टे तक तीव्र अग्नि से धमन करने से सत्व निकल जाता है ॥ ६९ ॥

अथ मृतवैक्रान्तस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च—

**भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्ना मृतेनान्वितः**
**पादांशेन कणाज्यवेल्लसहितो गुञ्जामितः सेवितः ।**
**यक्ष्माणं जरणं च पाण्डुगुदजं श्वासं च कासामयं**
**दुष्टां च ग्रहणीमुरःक्षतमुखान् रोगाञ्जयेद्देहकृत् ॥ ७० ॥**

भस्म हुए एक रत्ती वैक्रान्त में चतुर्थभाग रूप में सुवर्ण भस्म मिलाकर विडङ्ग, छोटी पीपल और घृत मिला कर सेवन करने से राजयक्ष्मा, बुढापा,

पाण्डुरोग, अर्श, श्वास, कास, दुषित ग्रहणी, उरःक्षत तथा मुख के रोग नष्ट होते हैं तथा शरीर भी बलयुक्त होता है ॥ ७० ॥

अथ प्रयोगान्तरम्—

**सूतभस्मार्धसंयुक्तं नीलवैक्रान्तभस्मकम्**
**मृताभ्रसत्त्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ ७१ ॥**
**क्षौद्राज्यसंयुतं प्रातर्गुञ्जामात्रं निषेवितम् ।**
**निहन्ति सकलान् रोगान् दुर्जयानन्यभेषजैः ।**
**त्रिःसप्तदिवसैर्नृणां गङ्गांभ इव पातकम् ॥ ७२ ॥**

इति वैक्रान्ताधिकारः ।

पारद भस्म ( रससिन्दूर ) आधा भाग, एक भाग नील वर्ण के वैक्रान्त की भस्म तथा दोनों के तुल्य मृत अभ्रक का सत्व मिला कर घोट कर शहद तथा घृत मिला कर प्रातःएक रत्ती भर ( १ गुञ्जा ) २१ दिन तक सेवन करने से अन्य औषधियों से असाध्य भी मनुष्यों के सकल रोग नष्ट हो जाते हैं जिस तरह गङ्गा जल पापों को नष्ट कर देता है ॥ ७१-७२ ॥

अथ माक्षिकम्—

माक्षिकोत्पत्तिवर्णनम्

**सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः ।**
**ताप्यां किरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥**
**ताप्यः सूर्यांशुसन्तप्तो माधवे मासि दृश्यते ॥ ७३ ॥**

विष्णु भगवान की कृपा से सुमेरु पर्वत से उत्पन्न हुआ तथा सुवर्ण के समान चमकने वाला माक्षिक धातु तापी नदी और किरात, चीन इत्यादि यवन देशों में निर्मित हुआ है और यह तापी नदी से उत्पन्न माक्षिक वैशाखमास में सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त होने पर दिखाई देता है ॥ ७३ ॥

अथ माक्षिकस्य गुणाः—

**मधुरः काञ्चनाभासः साम्लो रजतसन्निभः ।**
**किञ्चित् कषायमधुरः शीतः पाके कटुर्लघुः ।**
**तत्सेवनाज्जराव्याधिविषैर्न परिभूयते ॥ ७४ ॥**

सुवर्ण के समान चमकदार माक्षिक मधुररसवाला होता है और रजतवर्ण

माक्षिक अम्ल तथा कुछ कसैला और मधुर, पाक में शीतवीर्य कटु और लघु होता है। इन दोनों प्रकार के माक्षिक का सेवन करने से मनुष्य जरा व्याधि और विष से आक्रान्त नहीं होता है ॥ ७४ ॥

अथ माक्षिकभेदाः—

**माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः ।**
**तत्राऽऽद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम् ॥ ७५ ॥**
**तपतीतीरसम्भूतं पञ्चवर्णसुवर्णवत् ।**
**पाषाणबहलः प्रोक्तस्ताराख्योऽल्पगुणात्मकः ॥ ७६ ॥**

माक्षिक धातु सुवर्ण और रजत का भाग मिलने से दो तरह का होता है। इनमें प्रथम सुवर्ण माक्षिक जो कि कान्यकुब्ज ( कन्नोज या कानपुर ) देश की खानों से निकलता है सुवर्ण के समान होता है। किन्तु तापी नदी के तट के पास की खानों से निकाला हुआ सोनामाखी धातु पांच रङ्ग वाला तथा सुवर्ण सदृश होता है, रौप्यमाक्षिक में पत्थर का भाग ज्यादा होता है तथा वह अल्प गुणदायक है ॥ ७५-७६ ॥

विमर्शः—भारतवर्ष में माक्षिक कोयलों की खानों में मिलता है। आचार्यों ने इसके तीन भेद बताये हैं किन्तु इस ग्रन्थ में इसके दो ही भेद हैं। तथा आगे विमल ( रौप्यमाक्षिक ) के तीन भेद किए हैं किन्तु यह अन्य रसग्रन्थों से विरुद्ध है।

"माक्षिको द्विविधो हेममाक्षिकस्तारमाक्षिकः" ( इति० र० र० स० )

१ स्वर्णमाक्षिक—कापर पेराइटिज़ ( Copperpyritis Cu fes 2 )

२ रोप्यमाक्षिक ( विमल )—आयर्न पेराइटिज़ ( Iron pyritis )

३ कांस्यमाक्षिक ( आर्सेनो पेराइटिज़ Arsano pyritis )

ये तीनों खनिज ताम्र, लौह, और संखिये के गन्धित हैं। इनमें से गन्धक निकाल देने से उक्त तीनों पदार्थों की प्राप्ति होती है। यद्यपि इनमें अन्य खनिज भी रहते हैं किन्तु प्रधान रूप में उपर्युक्त ही होते हैं। इस लिये इनकी भस्म बनाने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यद्यपि बजार में आने वाले स्वर्ण तथा रौप्य माक्षिक में दोनों ( स्वर्णरजत ) की मात्रा नहीं होती है। किन्तु विदेशों से कुछ इनके अधिक मूल्य खनिज आते हैं उनमें दोनों धातुओं का कुछ अंश रहता है इसलिये रस शास्त्रों में जहां २ स्वर्ण और चांदी के भस्म के अभाव में इन दोनों का ग्रहण करना हो तब उक्त अधिक मूल्यवान माक्षिक खनिजों की भस्म बनाकर प्रयोग करना चाहिये।

माक्षिकगुणाः—

**माक्षीकधातुः सकलामयघ्नः प्राणो रसेन्द्रस्य परं हि वृष्यः ।**
**दुर्मललोहद्वयमेलनश्च गुणोत्तरः सर्वरसायनाग्र्यः ॥ ७७ ॥**

माक्षिक धातु सम्पूर्ण रोग नाशक है, पारद के गुणों का उत्कर्ष करता है तथा अत्यन्त वृष्य है । परस्पर कठिनता से मिश्रित होने वाले लोह द्वय को मिला देता है ॥ ७७ ॥

अथ सुवर्णमाक्षिकशोधनमारणे—

**एरण्डतैललुङ्गाम्बुसिद्धं शुद्ध्यति माक्षिकम् ।**
**सिद्धं वा कदलीकन्दतोयेन घटिकाद्वयम् ।**
**तप्तं क्षिप्तं वराक्वाथे शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ ७८ ॥**
**मातुलुङ्गाम्बुगन्धाभ्यां पिष्टं मूषोदरे स्थितम् ।**
**पञ्चकोडपुटैर्दग्धं म्रियते माक्षिकं खलु ॥ ७९ ॥**
**एरण्डस्नेहगव्याज्यैर्मातुलुङ्गरसेन वा ।**
**खर्परस्थं दृढं पक्वं जायते धातुसन्निभम् ॥**
**एवं मृतं रसे योज्यं रसायनविधावपि ॥ ८० ॥**

माक्षिक का चूर्ण कर एरण्ड तेल ( रेड़ी तेल ), बिजौरे निम्बू का रस या केले की जड़ के रस में डालकर दोलायन्त्र विधि से दो घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती हैं । अथवा त्रिफला के क्वाथ में तपा कर सात बार बुझाने से शुद्ध हो जाता है । बिजौरे निम्बू का रस और समान गन्धक शुद्ध माक्षिक में मिला कर खरल करें । बाद में गोला बनाकर मूषायन्त्र में रख कर वाराह पुट में पांच पुट देने से निश्चय ही माक्षिक की भस्म हो जाती है । इसी तरह एरण्ड तैल या गाय के घी को कड़ाह में डालकर उसमें सोनामाखी को खूब पकाने से भस्म सदृश हो जाता है । केवल बिजौरे के रस से भी पकाने पर भस्म हो जाती है, इस तरह मृत माक्षिक को रस और रसायन में उपयोग करना चाहिए ॥ ७८-८० ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

**त्रिंशांशनागसंयुक्तं क्षारैरम्लैश्च मर्दितम् ।**
**ध्मातं प्रकटमूषायां सत्त्वं मुञ्चति माक्षिकम् ॥ ८१ ॥**

**सप्तवारं परिद्राव्य क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।**
**माक्षीकसत्त्वसम्मिश्रं नागं नश्यति निश्चितम् ॥ ८२ ॥**
**क्षौद्रगन्धर्वतैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।**
**कदलीकन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः ॥**
**मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्वनिभं मृदु ॥ ८३ ॥**

माक्षिक के चूर्ण में तीसवें भाग की मात्रा से नागभस्म मिलाकर समान भाग क्षार ( स्वर्जिका, यवक्षार, टङ्कण ) और अम्ल रसों से घोट कर गोला बनाकर सत्व पातन करने की मूषा में रखकर फूंकने से माक्षिक अपना सत्व छोड़ देता है। इस सत्व को अग्नि पर तप्त कर निर्गुण्डी के रस में सात बार बुझाने से माक्षिक के सत्व के साथ मिश्रित नाग निश्चय ही नष्ट हो जाता है। माक्षिक को क्रम से शहद्, एरण्डतैल, गौमूत्र घृत और केले के कन्द के रस में भावना देकर गोला बना कर मूषा में रख कर फूंकने से ताम्र के समान लाल और मृदु सत्व निकल जाता है ॥ ८१–८३ ॥

अथ विशुद्धताप्यसत्वलक्षणम्—

**गुञ्जाबीजसमच्छायं द्रुतद्रावं च शीतलम् ।**
**ताप्यसत्त्वं विशुद्धं तद्देहलोहकरं परम् ॥ ८४ ॥**

गुञ्जाबीज के समान रक्तवर्ण और अग्नि पर जल्दी पिघलने वाला तथा शीतल शुद्ध माक्षिक सत्व होता है। वह देह को श्रेष्ठ बनाता है ॥ ८४ ॥

अथ सुवर्णमाक्षिकरसायनम्—

**माक्षीकसत्त्वं च रसेन पिष्टं कृत्वा विलीने च बलिं निधाय ।**
**सम्मिश्र्य सम्मर्द्य च खल्वमध्ये निःक्षिप्यसत्त्वं द्रुतिमभ्रकस्य ॥ ८५ ॥**
**विधाय गोलं लवणाख्यन्त्रे पचेद्दिनार्द्धं मृदुवह्निना च ।**
**स्वतः सुशीतं परिचूर्ण्य सम्यग्वल्लोन्मितं व्योषविडङ्गयुक्तम् ॥ ८६ ॥**
**संसेवितं क्षौद्रयुतं निहन्ति जरां सरोगान्त्वपमृत्युमेव ।**
**दुस्साध्यरोगानपि सप्तवासरैर्नैतेन तुल्योऽस्ति सुधारसोऽपि ॥८७॥**

माक्षिक सत्व को शुद्ध समान भाग पारे के साथ खूब घोट कर चमक रहित कज्जली बनावे। फिर उसमें सत्व के बराबर ही गन्धक मिला कर घोटे, गन्धक के मिल जाने पर माक्षिक सत्व के समान भाग ही में अभ्रक सत्व की द्रुति मिलाकर

घोंट कर गोला बनावे। उस गोले को लवण नामक यन्त्र में रख कर मृदु अग्नि से आधे दिन तक पकावे। स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल कर चूर्ण कर ले। इसमें से एक रत्ती की मात्रा में लेकर सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडङ्ग के चूर्ण में मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से समग्र रोग, जरा तथा अत्यन्त कष्टसाध्य भी रोग और अकाल मृत्यु सात दिन में दूर हो जाते हैं। इसके समान अमृत रस भी गुण नहीं करता है॥ ८५-८७॥

अथ सुवर्णमाक्षिकरसायनम्—

**एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जा क्षौद्रं च टङ्कणम्।**
**मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत्॥ ८८॥**

इति माक्षिकाधिकारः।

एरण्ड तेल, गुञ्जा का चूर्ण, शहद् और सुहागा इनके चूर्ण के साथ सुवर्ण माक्षिक सत्व के चूर्ण को डाल कर अग्नि पर गलाने से सोना माखी के सत्व का द्रवण हो जाता है॥ ८८॥

विमलभेदाः—

**विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः।**
**तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या स लक्ष्यते॥ ८९॥**

कुछ लोग (पर्य्यायमुक्तावलीकार) विमल को रूपमाखी कहते हैं। विमल भी माक्षिक धातु का ही एक भेद है। विमल के ३ भेद हैं। सुवर्ण का भाग मिला रहने से सुवर्ण विमल, चांदी का भाग मिला रहने से तार विमल और कांस्य का भाग रहने से कांस्य विमल कहलाता है। चमक से ही विमल के भेदों का ज्ञान होता है॥ ८९॥

**विमल—इसको रौप्यमाक्षिक कहते हैं। बाजारों में इसके चतुष्कोण कण मिलते हैं और उनका वर्ण स्वर्ण के समान होता है। इसी लिये इसको फूल्स गोल्ड (Fools gold) भी कहते हैं तथा अज्ञ लोग इसे स्वर्ण माक्षिक मान कर स्वर्ण के अभाव में प्रयुक्त करते हैं। किन्तु यह गन्धक तथा लौह का यौगिक है। इस में स्वल्प मात्रा में भी स्वर्ण नहीं रहता है।**

**जो असली स्वर्णमाक्षिक होता है उसमें ताम्र का अंश रहता है तथा वह कणरूप में नहीं आता है। "सत्वं चन्द्रार्कसङ्काशम्" इस पद से सिद्ध होता है कि प्राचीनाचार्यों ने भी असली स्वर्णमाक्षिक में ताम्र को उपस्थित को माना है।**

उपलब्धि—आज कल माक्षिक धातु विशेष करके विहार, नेपाल, पञ्जाब और बुन्देलखण्ड की रियासतों में मिलता है तथा विदेश में भी इसकी खाने हैं।

अथ विमलस्य लक्षणगुणाः—

**वर्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः।**
**मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोऽतिरसायनः॥ ९०॥**

जो विमल गोल तथा चारों ओर कोण युक्त हो तथा स्पर्श में स्निग्ध और फलकाकार हो वह श्रेष्ठ है, तथा कुपित वात और पित्त को नष्ट करता है तथा अत्यन्त रसायन और वृष्य है॥ ९०॥

विमलभेदानां प्रयोगनिर्देशः—

**पूर्वो हेमक्रियासूक्तो द्वितीयो रूप्यकृन्मतः।**
**तृतीयो भेषजे तेषु पूर्वपूर्वो गुणोत्तरः॥ ९१॥**

सुवर्ण विमल सोने के जारण मारण या उसके स्थान में प्रयुक्त होता है। तार विमल चांदी के कार्य में और तृतीय कांस्य विमल औषध में काम आता है। इन तीनों में पूर्व से पूर्व श्रेष्ठ माना गया है॥ ९१॥

अथ विमलशोधनम्—

**आर्द्रूषजले स्विन्नो विमलो विमलो भवेत्।**
**जम्बीरस्वरसे स्विन्नो मेषशृङ्गीरसेऽथवा॥**
**आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च यथाऽपरे॥ ९२॥**

विमल को दोला यन्त्र द्वारा वासा के रस में या नीम्बू के रस में या मेढा-सिङ्गी के रस में दो घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है। इस विधि से अन्य धातुओं को भी शुद्ध करना चाहिये॥ ९२॥

अथ विमलस्य मारणम्—

**गन्धाश्मलकुचाम्लैश्च म्रियते दशभिः पुटैः॥ ९३॥**

विमल के चूर्ण में समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर बड़हर ( लकुच ) के स्वरस में या निम्बू के रस में घोट कर १० पुट देने से भस्म हो जाती है॥९३॥

अथ विमलस्य सत्वपातनविधिः—

**सटङ्कलकुचद्रावैर्मेषशृंग्याश्च भस्मना।**
**पिष्टो मूषोदरे लिप्तः संशोष्य च निरुध्य च॥ ९४॥**

षट्प्रस्थकोकिलैर्ध्मातो विमलः सीससन्निभः।
सत्त्वं मुञ्चति तद्युक्तो रसः स्यात्स रसायनः॥ ९५॥

विमल भस्म में बराबर भाग में सुहागा और मेढासिङ्गी की भस्म मिलाकर बडहर के रस में घोट कर मूषा के अन्दर लेप कर के सुखा लें। फिर मूषा यन्त्र को बंध कर के ६ प्रस्थ कोयले की आंच में फूकने से सीसे के समान श्वेत सत्व निकल आता है। इस सत्व को पारे के साथ मिलाने से उत्तम रसायन तैय्यार हो जाता है॥ ९४-९५॥

अथ मतान्तरेण सत्वपातनम्—

विमलं शिग्रुतोयेन कांक्षीकासीसटङ्कणम्।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदलीरसे॥ ९६॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मूकमूषगम्।
सत्त्वं चन्द्रार्कसंकाशं पतते नात्र संशयः॥ ९७॥

विमल भस्म के बराबर २ फिटकिरी, हीराकसीस, सोहागा और जङ्गली सूरण-कन्द लेकर इनको कदली कन्द स्वरस या सहजन (शिग्रु) की छाल के क्वाथ से घोट कर पाढल क्षार भी मिला कर मूकमूषा यन्त्र में बन्द कर फूंकने से चन्द्र और अर्क (सूर्य) के समान श्वेत या चन्द्रकिरणवत् श्वेत सत्व निकलता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ९६-९७॥

अथ विमलस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च—

तत्सत्त्वं सूतसंयुक्तं पिष्टं कृत्वा सुमर्दितम्।
विलीनं गन्धके क्षिप्त्वा जारयेत् त्रिगुणालकम्॥ ९८॥
शिलां पञ्चगुणां चापि वालुकायन्त्रके खलु।
तारभस्म दशांशेन तावद्वैक्रान्तकं मृतम्॥ ९९॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य पटेन परिगाल्य च।
निक्षिप्य कूपिकामध्ये परिपूर्य प्रयत्नतः॥ १००॥
लीढो व्योषवरान्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेविता
हन्याद्दुर्भगकृज्ज्वराञ्श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचीः।
मूलार्त्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयं कामलाम्
सर्वान्पित्तमरुद्गदान्किमपरैर्योगैरशेषामयान्॥ १०१॥

विमल का सत्व और शुद्ध पारद समान मात्रा में घोटकर अग्नि में द्रुत हुए गन्धक के साथ मिलाकर तीन गुणी हरताल के साथ जारण करें। फिर विमल सत्व से पांच गुणी मनःशिला मिला कर बालुका यंत्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीत होने पर उस यन्त्र से निकाल कर सत्व से दशमांश चांदीभस्म और उतनी ही वैक्रान्त भस्म मिलाकर घोट कर वस्त्र से छान कर शीशी में रख लेना चाहिये। फिर इस विमल रसायन को बलानुसार एक या दो रत्ती के प्रमाण से त्रिकटु और त्रिफला तथा घृत के साथ सेवन करने से तीव्रज्वर, शोथ, पाण्डुरोग, प्रमेह, अर्श, अरुचि, संग्रहणी, शूल, राजयक्ष्मा, कामला, शिरदर्द तथा समग्र वात तथा पित्त जन्य रोगों को नष्ट करता है। ज्यादा क्या कहें जैसे २ रोग हो उनके अनुकूल अनुपान के साथ देने से लाभ करता है॥ ९८–१०१॥

अथ शिलाजतु—

शिलाजतुभेदाः—

**शिलाधातुर्द्विधा प्रोक्तो गोमूत्राद्यो रसायनः।**
**कर्पूरपूर्वकश्चान्यस्तत्राद्यो द्विविधः पुनः॥**
**ससत्त्वश्चैव निःसत्त्वस्तयोः पूर्वो गुणाधिकः॥ १०२॥**

शिलाजीत दो तरह की होती है। एक गोमूत्र के समान गन्धवाली और दूसरी कर्पूर के समान गन्धवाली। इन दोनों भेदों में गोमूत्र गंधी शिलाजीत उत्तम रसायन है। इस गोमूत्रगंधी शिलाजीत के भी दो भेद हैं। एक सत्व सहित, दूसरी सत्वहीन, इनमें भी प्रथम अधिक गुण प्रद होती है॥ १०२॥

शिलाजतुन उत्पत्तिः—

**ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यः पादेभ्यो हिमभूभृतः।**
**स्वर्णरूप्यार्कगर्भेभ्यः शिलाधातुर्विनिःसरेत्॥ १०३॥**

ग्रीष्म कालीन सूर्य के तीव्र ताप से तपे हुए और सुवर्ण, चांदी, तथा ताम्र धातुओं से युक्त हिमालय पर्वत के शिखरों की चट्टानों से शिलाजतु निकलती है॥ १०३॥

**विमर्शः—आजकल शिलाजीत गिलगिट (काश्मीर का सीमा प्रान्त) बृटिश गढवाल, बाघेश्वर, भूटान तथा तिब्बत के पहाड़ों से आती है। इसका यौगिक क्या है इसका अभी तक ठीक २ निर्णय नहीं हुआ है तथापि प्राचीनशास्त्र मत तथा अर्वाचीन रसायन शास्त्र के मतों का समन्वय करने से प्रतीत होता है कि यह खनिजतैल**

( मिनरल ओइल Mineral oil ) का यौगिक है । इसलिये इसको अग्नि पर तपाने का निषेध है । क्योंकि उसमें पेट्रोल जाति का तैल होने से शीघ्र ही उड़न शील है तथा अग्निपरीक्षा करने पर निर्धूम होने को लिखा है और जल के अन्दर डूबने का भी निषेध है ( अर्थात् यह खनिज तैल है इससे जलपर तैरेगा )

यथा—"वह्नौ क्षिप्तं भवेद्यत्तल्लिङ्गाकारमधूमकम् ।
सांललेऽप्यविलीनञ्च तच्छुद्धं हिशिलाजतु ॥

यह द्रव्य शिलाजत्वादिक लौह आदि अनेकों योगों में पड़ता है तथा उन से क्षयरोग में बहुत लाभ होता है । आधुनिक चिकित्सक भी पेट्रोलियम् इमल्शन ( Patrolium Imultion ) का क्षय में बहुत प्रयोग करते है । इस को बेन्जर्स इमल्शन कहते हैं । यह आधुनिक चिकित्सकों ने प्राचीन चिकित्सकों के रसग्रन्थों से ही सीखकर प्रयोग करना प्रारम्भ किया है । तथा इसग्रन्थ में जो इनके उत्पत्ति का ( ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यः ) इत्यादि श्लोकों से वर्णन किया गया है वह अत्यन्त युक्तियुक्त है ।

स्वर्णगर्भगिरेर्जातो जपापुष्पनिभो गुरुः ।
स स्वल्पतिक्तः सुस्वादुः परमं तद्रसायनम् ॥ १०४ ॥
रूप्यगर्भगिरेर्जातं मधुरं पाण्डुरं गुरु ।
शिलाजं पित्तरोगघ्नं विशेषात्पाण्डुरोगहृत् ॥ १०५ ॥
ताम्रगर्भगिरेर्जातं नीलवर्णं घनं गुरु ।
शिलाजं कफवातघ्नं तिक्तोष्णं क्षयरोगहृत् ॥ १०६ ॥

जिस हिमालय पर्वत की खान या चट्टान में सुवर्ण भाग ज्यादा होता है उससे निकली शिलाजीत जपापुष्प के समान लालवर्ण, वजन में भारी और कुछ स्वाद में तिक्त तथा स्वादु होती है । यह उत्तम रसायन है । चांदी की खान वाले स्थान से निकली शिलाजीत भारी, मधुर और पाण्डुरवर्ण की होती है। इससे पित्त-रोग और विशेषकर पाण्डुरोग नष्ट होता है । ताम्रधातु युक्त पर्वत की खान से निकली शिलाजीत नीलवर्ण, भारी और ठोस होती है यह शिलाजीत तिक्त तथा उष्ण है कफ और वात विकार से उत्पन्न रोग तथा क्षयरोग को नष्ट करती है ॥ १०४–१०६ ॥

शुद्धशिलाजतुलक्षणम्—

वह्नौ क्षिप्तं भवेद्यत्तल्लिङ्गाकारमधूमकम् ।
सलिलेऽप्यविलीनं च तच्छुद्धं हि शिलाजतु ॥ १०७ ॥

शुद्धशिलाजीतपरीक्षा—वह्नि में डालने से लिङ्गाकार हो तथा धुआं न दे और जल में न घुले किन्तु नीचे सूत्र रूप में बैठ जाय वह उत्तम है ॥ १०७ ॥

अथ गुणाः—

**नूनं सज्वरपाण्डुशोफशमनं मेहाग्निमान्द्यापहं**
**मेदच्छेदकरं च यद्मशमनं शूलामयोन्मूलनम् ।**
**गुल्मप्लीहविनाशनं जठरहृच्छूलघ्नमामापहम् ।**
**सर्वत्वग्गदनाशनं किमपरं देहे च लोहे हितम् ॥ १०८ ॥**
**रसोपरससूतेन्द्ररत्नलोहेषु ये गुणाः ।**
**वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया ॥ १०९ ॥**

शिलाजीत ज्वर, पाण्डुरोग, शोथ (सूजन), बीस प्रकार के प्रमेह तथा अग्निमान्द्य को नष्ट करती है। बढी हुई शरीर की चर्बी ( मेद ) को काट कर निकालती है तथा राजयक्ष्मा, शूल, गुल्म, प्लीहवृद्धि और उदर रोगों को नष्ट करती है। सम्पूर्ण चर्म की व्याधियों को नष्ट करती है। शरीर को लौह सदृश करती है। रस, उपरस, पारद, रत्न तथा सप्त धातुओं में जो गुण हैं वे मनुष्यों के जरा तथा मरण को जीतने के लिये मानों शिलाजीत में निवास करते हैं ॥ १०८–१०९ ॥

अथ शोधनम्—

**क्षाराम्लगोजलैर्धौतं शुद्ध्यत्येव शिलाजतु ॥ ११० ॥**
**शिलाधातुं च दुग्धेन त्रिफलामार्कवद्रवैः ।**
**लोहपात्रे विनिक्षिप्य शोधयेदतियत्नतः ॥ १११ ॥**
**क्षाराम्लगुग्गुलोपेतैः स्वेदनीयन्त्रमध्यगैः ।**
**स्वेदिता घटिकामानाच्छिलाधातुर्विशुद्ध्यति ॥ ११२ ॥**

क्षार, अम्ल तथा गोमूत्र से घोट कर धोने पर शिलाजीत शुद्ध हो जाती है। अथवा दुग्ध, त्रिफलाक्वाथ और भांगरे के स्वरस को लौह के पात्र में डाल कर शिलाजीत डाल दे। सूर्य की गर्मी से शुद्ध भाग द्रवों के ऊपर तैरने लगता है। बुद्धिमान उस तैरने वाले अंश को काच के पात्र में एकत्र करे। अथवा दोलायन्त्र में क्षार, अम्ल और गुग्गुल डाल कर उनके साथ शिलाजीत को एक घण्टे तक स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है ॥ ११०–११२ ॥

अथ शिलाजतुमारणम्—

**शिलया गन्धतालाभ्यां मातुलुङ्गरसेन च।**
**पुटितो हि शिलाधातुर्म्रियतेऽष्टगिरिण्डकैः॥ ११३॥**

शिलाजीत की मारण विधि–शिलाजीत को मनः शिला, गन्धक तथा हरताल के साथ बिजौरे निम्बू के रस से घोट कर गोला बनाकर गज पुट में आठ जङ्गली उपलों द्वारा पुट देने से उसकी भस्म हो जाती है॥ ११३॥

अथ प्रयोगविधिः—

**भस्मीभूतशिलोद्भवं समतुलं कान्तं च वैक्रान्तकं**
**युक्तं च त्रिफलाकटुत्रिकघृतैर्वल्लेन तुल्यं भजेत्।**
**पाण्डौ यक्ष्मगदे तथाग्निसदने मेहेषु मूलामये॥**
**गुल्मप्लीहमहोदरे बहुविधे शूले च योन्यामये॥ ११४॥**
**सेवेत यदि षण्मासं रसायनविधानतः।**
**वलीपलितनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी॥ ११५॥**

शिलाजीत की भस्म, कान्तलौह भस्म और वैक्रान्तभस्म इन्हें समान २ भाग में परस्पर मिलाकर घोट लें। बाद में एक रत्ती की मात्रा से त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण तथा घृत के सङ्ग सेवन करने से पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा, अग्निमांद्य, प्रमेह, अर्श, गुल्म, प्लीह वृद्धि, जलोदर तथा अनेक प्रकार के उदर शूल और स्त्रियों के योनि रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि इस रसायन को विधि पूर्वक ६ मास सेवन करे तो बालों का श्वेत होना तथा गिरना बन्द होकर सुख पूर्वक सौ वर्ष तक मनुष्य जीता रहता है॥ ११४–११५॥

अथ सत्त्वपातनम्—

**पिष्टं द्रावणवर्गेण साम्लेन गिरिसम्भवम्।**
**क्षिप्त्वा मूषोदरे रुद्ध्वा गाढैर्ध्मातं हि कोकिलैः॥**
**सत्त्वं मुञ्चेच्छिलाधातुस्तत्क्षणाल्लोहसन्निभम्॥ ११६॥**

शिलाजीत को द्रावक वर्ग की गुड़, गुग्गुल, गुञ्जा, घृत इन औषधियों के साथ तथा काञ्जी इत्यादि अम्ल से पेषण करके मूषायन्त्र में डाल कर उसका मुख अवरुद्ध कर के बेर के कोयलों की अग्नि में फूंकने से सत्व निकल जाता है। यह सत्व लौह सदृश दृढ होता है॥ ११६॥

अथ कर्पूरशिलाजतुनो लक्षणादिकम्—

**पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराद्यं शिलाजतु ।**
**मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम् ॥ ११७ ॥**
**एलातायेन सम्भिन्नं सिद्धं शुद्धिमुपैति तत् ।**
**नैतस्य मारणं सत्त्वपातनं विहितं बुधैः ॥ ११८ ॥**

इति शिलाजित्वधिकारः ।

कर्पूर गन्धवाली शिलाजीत पाण्डुवर्ण तथा बालू के आकार की होती है। इस के सेवन से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोग नष्ट होता है। इस की शुद्धि इलायची के क्वाथ में घोटने से होती है। आयुर्वेद के विद्वानों ने इसका मारण और सत्व पातन का विधान नहीं कहा है ॥११७–११८॥

अथ सस्यकः—

अथ सस्यकोत्पत्तिवर्णनम्—

**पीत्वा हालाहलं वान्तं पीतामृतगरुत्मता ।**
**विषेणामृतयुक्तेन गिरौ मरकताह्वये ।**
**तद्वान्तं हि घनीभूतं सञ्जातं सस्यकं खलु ॥ ११९ ॥**

किसी समय अमृत पान किये हुए गरुड़ जी ने हालाहल नामक विषका पान कर लिया। इस कारण अमृत और हालाहल विष के एकत्र होने से मरकत नामक पर्वत पर उन्हें वमन होगई। कुछ समय के पश्चात् वह वमन पदार्थ घन स्वरूप होकर नील तुत्थ के रूप में परिणत होगया ॥ ११९ ॥

प्रशस्तसस्यकलक्षणम्—

**मयूरकण्ठसच्छायं भाराढ्यमतिशस्यते ॥ १२० ॥**
**द्रव्यं विषयुतं यत्तद्द्रव्याधिकगुणं भवेत् ।**
**सुधाहालाहलैर्युक्ता सुधाधिकगुणा तथा ॥ १२१ ॥**

जो नील तुत्थ ( सस्यक ) मयूर के कण्ठ के समान नील वर्ण और भार युक्त हो वह औषध कर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ है। किसी द्रव्य में विष मिल जाने से उस के गुण बढ़ जाते हैं। इसी तरह हालाहल विष से युक्त सुधा भी सुधा (अमृत) से भी अधिक गुण प्रद हो जाती है ॥ १२०–१२१ ॥

अथ गुणाः—

**निःशेषदोषविषहृद्रुगदशूलमूलकुष्ठाम्लपैत्तिकविबन्धहरं परञ्च ॥**
**रसायनं वमनरेककरं गरघ्नं श्वित्रापहं गदितमत्र मयूरतुत्थम् ॥१२२॥**

नील तुत्थ कुपित वात पित्तादि सम्पूर्ण दोष, विषप्रभाव, हृदय रोग, शूल, अर्श, कुष्ठ, अम्लपित्त तथा विबन्ध ( मलावरोध ) को नष्ट करता है। यह अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है। इस से वमन तथा विरेचन कर्म होते हैं और श्वेत कुष्ठ तथा विष के आक्रमण को दूर करता है ॥ १२२ ॥

अथ शोधनम्—

**सस्यकं शुद्धिमाप्नोति रक्तवर्गेण भावितम् ॥ १२३ ॥**

नीलतुत्थ रक्त वर्ग में कही हुई जपाकुसुमादि औषधियों के रस की भावना से शुद्ध होता है ॥ १२३ ॥

अथ मतान्तरम्—

**स्नेहवर्गेण संसिक्तं सप्तवारमदूषितम् ॥**
**दोलायन्त्रेण सुस्विन्नं सस्यकं प्रहरत्रयम् ।**
**गोमहिष्याजमूत्रेषु शुद्ध्यते तुत्थखर्परम् ॥ १२४ ॥**

अथवा नील तुत्थ को तप्त कर स्नेह वर्गोक्त घृत, तैल, वसा आदि पदार्थों में सात वार बुझा कर शुद्ध करते हैं। केवल दोलायन्त्र में ३ प्रहर तक गौ, भैंस और बकरी के मूत्र के साथ स्वेदन करने से भी नीलतुत्थ शुद्ध हो जाता है ॥ १२४ ॥

अथ तुत्थखर्परमारणम्—

**लकुचद्रावगन्धाश्मटङ्कणेन समन्वितम् ।**
**निरुध्य मूषिकामध्ये म्रियते कोक्कुटैः पुटैः ॥ १२५ ॥**

शुद्ध नीलतुत्थ को समान गन्धक और टङ्कण के साथ बड़हल के फल के स्वरस में घोट कर मूषायन्त्र में बन्ध कर के कुक्कुट पुट देने से भस्म हो जाती है॥ १२५॥

अथ तुत्थसत्त्वपातनम्—

**सस्यकस्य तु चूर्णं तु पादसौभाग्यसंयुतम् ।**
**करञ्जतैलमध्यस्थं दिनमेकं निधापयेत् ॥ १२६ ॥**
**अन्धमूषास्यमध्यस्थं ध्मापयेत्कोकिलत्रयम् ।**
**इन्द्रगोपाकृति चैव सत्त्वं भवति शोभनम् ॥ १२७ ॥**

नीलतुत्थ चूण के साथ चोथाई भाग की मात्रा में सुहागा मिला कर घोटें। फिर उसको करञ्ज के तैल में एक दिन तक भिङ्गो दे। तदनन्तर उसका गोला बनाकर अन्धमूषा में बन्दकर बैर (बदरी) काष्ट के कोयलों की अग्नि में तीन दिन तक फूंकने से इन्द्रगोप (बीर बहूटी) के समान सुन्दर लालवर्ण का सत्व प्राप्त होता है॥१२७॥

अथ मतान्तरम्—

**निम्बुद्रवाल्पटङ्काभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च।**
**ताम्ररूपं परिध्मातं सत्वं मुञ्चति सस्यकम्॥ १२८॥**
**शुद्धं सस्यं शिखिक्रान्तं पूर्वभेषजसंयुतम्।**
**नानाविधानयोगेन सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम्॥ १२९॥**

अथवा नीलतुत्थ चूर्ण के साथ कुछ टङ्कण (सुहागा) मिलाकर निम्बू के रस से घोट कर गोला बनावें। पश्चात् मूषायन्त्र में बन्दकर फूंकने से ताम्र के समान लाल वर्ण का सत्व प्राप्त होता है। शुद्ध नील तुत्थ चूर्ण को सत्वपातन कराने वाली पूर्वोक्त औषधियों के साथ मिला कर भिन्न २ सत्वपातन की विधियों द्वारा अग्नि देने से सत्व प्राप्त हो जाता है॥ १२८–१२९॥

अथ प्रयोगविधिः—

**सत्त्वमेतत्समादाय खरभूनागसत्त्वयुक्।**
**तन्मुद्रिका कृतस्पर्शा शूलघ्नी तत् क्षणाद्भवेत्॥ १३०॥**
**चराचरं विषं भूतडाकिनीदृग्गतं जयेत्।**
**मुद्रिकेयं विधातव्या दृष्टप्रत्ययकारिका॥ १३१॥**

नील तुत्थ का सत्व, दुरालभा और केंचुए (अर्थ वर्म) का सत्व इन को मिला कर अंगूठी बनवावे। इस के स्पर्श मात्र से शीघ्र ही शूल नष्ट हो जाता है। किसी पुस्तक में खर के स्थान में कर्ष शब्द लिखा है उस मत से एक कर्ष केंचुए का सत्व लेना चाहिए, दुरालभा नहीं लेवें। इस अंगूठी के प्रभाव से स्थावर और जङ्गम विष तथा भूत, प्रेत और डाकिनीयों की दृष्टि से उत्पन्न बाधाएं दूर हो जाती हैं तथा यह मुद्रिका प्रत्यक्ष विश्वास पैदा कराने वाली है॥ १३०–३३१॥

अथ भालुकितन्त्रोक्तप्रयोगविधिः—

**रामवत्सोमसेनानीर्मुद्रितेऽपि तथाऽक्षरम्।**
**हिमालयोत्तरे पार्श्वे अश्वकर्णो महाद्रुमः।**

**तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव विलयं गतम् ॥ १३२ ॥**
**मन्त्रेणानेन मुद्राम्भो निपीतं सप्तमन्त्रितम् ।**
**सद्यःशूलहरं प्रोक्तमिति भालुकिभाषितम् ॥ १३३ ॥**
**अनया मुद्रया तप्तं तैलमग्नौ सुनिश्चितम् ।**
**लेपितं हन्ति वेगेन शूलं यत्र क्वचिद्भवेत् ॥**
**सद्यः सूतिकरं नार्याः सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ १३४ ॥**

इति सस्यकाधिकारः ।

राम शब्द से लेकर गतम् यहां तक मन्त्र का स्वरूप है। इस मन्त्र को पढ़ते हुए मुद्रा को जल में छोड़ दें। इस तरह सात वार मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित कर के पीलाने से शीघ्र ही शूल नष्ट होजाता है। यह भालुकिमहर्षि का कथन है। इस अंगूठी को तैल में डाल कर अग्नि पर पकावें। फिर जहां कहीं शूल चलता हो वहां इस तैल के लगाने से शूल चलना बन्द हो जाता है तथा गर्भवती स्त्रियों के हस्त पाद पर लगा के मर्दन करने से तुरन्त प्रसव होता है। नेत्रों में लगाने से नेत्र पीड़ा दूर हो जाती है ॥१३२-१३४॥

अथ चपलः—

**गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ।**
**हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धनः ॥ १३५ ॥**
**शेषौ तु मध्यौ लाक्षावच्छीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ ।**
**वङ्गवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ॥ १३६ ॥**

चपल धातु सर्षप वर्ण युक्त ( गौर ) और श्वेत, रक्त तथा कृष्ण इस तरह चार प्रकार का होता है। गौर और श्वेत चपल पारद के बन्धन करने में श्रेष्ठ हैं। शेष रक्त तथा कृष्ण वर्ण की चपल लाह के समान शीघ्र द्रव हो जाने के कारण मध्यम कही गई है तथा उन से विशेष फल भी नहीं होता है। यह धातु अग्नि में वङ्ग ( रांगा ) के समान द्रव हो जाता है। इस कारण इसको चपल कहते हैं ॥ १३५-१३६ ॥

**विमर्शः—चपल को बिस्मथ ( Bismuth ) कहते हैं। इसका संकेत Bi है तथा परमाणु भार ( Atomic weights ) २०९ है।**

**उपस्थिति—यह धातु मुक्तावस्था में भी पाई जाती है। इस धातु की प्राप्ति**

प्रायः बिस्मथ आक्साइड ( Bismuth oxide $Bi_2S_2$ ) और बिस्मथ तथा बिस्मथ सल्फाईड ( Bismuth sulphide बिस्मथ ग्लांस $Bi_2S_2$ ) इन दो प्रधान खनिजों से होती है तथा टङ्गस्टेन और वङ्ग के खनिजों के साथ भी थोड़ी मात्रा में बिस्मथ पाया जाता है।

बिस्मथ की उपलब्धि बिस्मथ आक्साइड ( Bismuth oxide ) को कोयलों के साथ गरम करने से आक्साइड लब्धीकृत हो बिस्मथ मुक्त हो जाता है तथा द्रव अवस्था में बह कर कोयले से पृथक् हो जाता है।

यह क्रिया इस प्रकार होती है।

$$_2 Bi_2O3 + C = 4 Bi + 3 co 2$$

गुण—बिस्मथ भूरे रङ्ग की रक्त आभा ली हुई क्रिस्टलीय धातु है। यह कठोर और भङ्गुर होती है। इस में चमकीली धातुकद्युति होती है। इस का विशिष्ट घनत्व ७'८ होता है। यह ५०° से० पर के तापक्रम पर पिघलती है।

यह वायु या आक्सिजन से आक्रान्त नहीं होती है परन्तु तीव्र आंच से वायु में आक्साइड के रूप में परिणत हो जाती है। तनु गन्धकाम्ल और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की भी इस पर कोई क्रिया नहीं होती है। तप्त गन्धकाम्ल से यह बिस्मथ सल्फेट ( Bi 2 so 4 ) 3 और सल्फर डाई-आक्साइड ( Sulphur Di oxide ) में परिणत हो जाता है। तनु अथवा समाहृत नाइट्रिक अम्ल से यह शीघ्रता से आक्रान्त होकर बिस्मथ नाइट्रेट बनती है और नाइट्रोजन का आक्साइड मुक्त करती है।

बिस्मथ का उपयोग—आज कल इस का स्टीरियो टाइप में अधिक प्रयोग होता है तथा निम्न तापक्रम पर पिघलने वाली अनेक धातुओं के निर्माण में प्रयुक्त होती है। बिस्मथ के अनेक आक्साइड होते हैं। उन में बिस्मथ ट्राइ-आक्साइड् और बिस्मथ पेण्टाक्साइड मुख्य हैं। बिस्मथ का सल्फाईड प्रकृति में भी पाया जाता है और कृत्रिम रीति से भी तैयार हो सकती है। बिस्मथ के सामान्य नाइट्रेट और भास्मिक नाइट्रेट होते हैं। इसका पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र में उदर रोग और उपदंश आदि में विशेष प्रयोग होता है। किन्तु हमारे चिकित्सक इसका प्रयोग नहीं करते हैं। वैद्य बन्धुओं को इसका प्रयोग कर के लाभ उठाना चाहिए।

अथ गुणाः—

चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णमधुरो मतः॥ १३७॥
चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः॥ १३८॥

**महारसेषु कैश्चिद्धि चपलः परिकीर्तितः ॥ १३६ ॥**

चपल धातु लेखन ( मोटे शरीर को पतला करना ) तथा स्निग्ध है और शरीर को लौह समान दृढ करती है। पारद के साथ मिलाने से अधिक गुण प्रद और स्वाद में तिक्त मधुर तथा उष्ण प्रकृति वाली है। चपल श्वेत पाषाण या फिटकरी के सदृश और षट् कोण युक्त होती है। यह स्निग्ध, गुरु, त्रिदोषनाशक, अत्यन्त वृष्य और पारद बन्धन करती है। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि महा रसों में चपल की भी गणना है ॥ १३७–१३९ ॥

अथ शोधनम्—

**जम्बीरकर्कोटकशृङ्गवेरैर्विभावनाभिश्चपलस्य शुद्धिः ॥१४०॥**

चपल धातु को चूर्ण करके निम्बू, बन्ध्या कर्कोटकी तथा आर्द्रक के रस की सात भावना देने से शुद्ध हो जाती है ॥ १४० ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

**शैलं तु चूर्णयित्वा तु धान्याम्लोपविषैर्विषैः।**
**पिण्डं बध्वा तु विधिवत्पातयेच्चपलं तथा ॥ १४१ ॥**

इति चपलाधिकारः।

चपल को काञ्जी, विष तथा उपविष के काथों की भावना देकर ( अर्थात् इन से घोटकर ) गोला बना कर मूषा में फूंकने से सत्व निकल जाता है ॥ १४१ ॥

अथ रसकः—

**रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः।**
**सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥ १४२ ॥**

रसक अर्थात् खर्पर दो प्रकार का होता है। जो पत्ररूप रचना वाला होता है उसे दर्दुर कहते हैं और जिसमें पत्र रचना नहीं होती है उसे कारवेल्लक कहते हैं ॥ १४२ ॥

**विमर्शः—रसक को खर्पर कहते हैं तथा इसका अङ्गरेजी नाम स्मिथ सोनाइट (Smithsonite) तथा केलेमाइट ( Calamite ) है। प्राचीन रस शास्त्र में जो इसके दो भेद ( रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः ) किये गये हैं उनमें कारवेल्लक खर्पर के लक्षण स्मिथ सोनाइट के साथ तथा दर्दुर खर्पर के लक्षण केलोमाइट के साथ मिलते जुलते हैं। प्रथम जिङ्क सिलिकेट है तथा द्वितीय जिङ्क कार्बोनेट है।**

औषधिकर्म में प्रथम का प्रयोग प्रशस्त है। यह प्रायः अमेरिका की खानों से आता है। आज काल बाजार में खर्पर नाम से जो खनिज आता है वह एक प्रकार की मृत्तिका है जहां तक हो सके उसका प्रयोग न करें शुद्ध खनिज मंगवा कर ही प्रयोग करना चाहिए।

सत्यकस्य प्रयोगविषयो गुणाश्च—

सत्त्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु ।
रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः ॥
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरञ्जनः ॥ १४३ ॥
नागार्जुनेन सन्दिष्टौ रसश्च रसकावुभौ ।
श्रेष्ठौ सिद्धरसौ ख्यातौ देहलोहकरौ परम् ॥ १४४ ॥
रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः ॥ १४५ ॥

दर्दुर नामक खर्पर का सत्त्वपातन कर्म में प्रयोग होता है तथा औषधियों में कारवेल्लक का प्रयोग होता है। खर्पर बीस प्रकार के प्रमेह, कफ, पित्त, नेत्ररोग और राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। लौह तथा पारद को रञ्ज देता है। नागार्जुनाचार्य ने खर्पर तथा पारद को सिद्ध रस कहा है तथा ये दोनों देह को स्थिर करते हैं। जो मनुष्य खर्पर तथा पारद को अग्नि में नहीं उड़ने वाले धर्म का बना देता है अथवा जो मनुष्य दोनों को अपनी पाचकाग्नि से पचा लेता है उसकी देहसिद्धि दासी बन जाती है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १४३–१४५ ॥

अथ शोधनम्—

कटुकालाबुनिर्यास आलोड्य रसकं पचेत् ।
शुद्धं दोषविनिर्मुक्तं पीतवर्णं च जायते ॥ १४६ ॥

खर्पर को कड़वी तुम्बी के रस में घोट कर पकाने से दोषरहित और शुद्ध होजाता है तथा इसका रञ्ज पीला होजाता है ॥ १४६ ॥

अथ मतान्तरम्—

खर्परः परिसन्तप्तः सप्तवारं निमज्जितः ।
बीजपूररसस्यान्तर्निर्मलत्वं समश्नुते ॥ १४७ ॥
नृमूत्रे वाऽश्वमूत्रे वा तक्रे वा काञ्जिकेऽथवा ।
प्रताप्य मज्जितं सम्यक् खर्परं परिशुद्ध्यति ॥ १४८ ॥

खर्पर को अग्नि में खूब प्रतप्त कर बिजोरे निम्बू के रस में सात बार बुझाने-से शुद्ध हो जाता है। अथवा नरमूत्र, हयमूत्र तथा तक्र और काञ्जी में तप्त कर बुझाने से भी शुद्ध होजाता है ॥ १४७-१४८ ॥

अथ रसकस्य ताम्रादिरञ्जनविधिः—

**नरमूत्रे स्थितो मासं रसको रञ्जयेद्ध्रुवम्।**
**शुद्धताम्रं रसं तारं शुद्धस्वर्णप्रभं यथा ॥ १४९ ॥**

खर्पर को एक मास तक मनुष्य के मूत्र में डुबो कर रखने से शुद्धताम्र, पारद तथा चांदी को सुवर्ण के समान कान्तियुक्त कर देता है ॥ १४९ ॥

अथ खर्परस्य भस्म तथा सत्त्वपातनविधिश्च—

**हरिद्रात्रिफलारालसिन्धुधूमैः सटङ्कणैः।**
**सारुष्करैश्च पादांशैः साम्लैः सम्मर्द्य खर्परम् ॥ १५० ॥**
**लिप्तं वृन्ताकमूषायां शोषयित्वा निरुध्य च।**
**मूषां मुषोपरि न्यस्य खर्परं प्रथमेत्ततः ॥ १५१ ॥**
**खर्परे प्रद्रुते ज्वाला भवेन्नीला सिता यदि।**
**तदा सन्दंशतो मूषां धृत्वा कृत्वा त्वधोमुखीम् ॥ १५२ ॥**
**शनैरास्फालयेद्भूमौ यथा नालं न भज्यते।**
**वङ्गाभं पतितं सत्त्वं समादाय नियोजयेत्।**
**एवं त्रिचतुरैर्वारैः सर्वं सत्त्वं विनिःसरेत् ॥ १५३ ॥**

शुद्ध खर्पर के चूर्ण में हरिद्रा, त्रिफला, राल, गृहधूम सुहागा, भल्लातक (भिलावा) प्रत्येक खर्पर से चतुर्थांश भाग की मात्रा से मिला कर काञ्जी या निम्बू के रस में घोट कर वृन्ताक नाम की मूषा में लेप कर दें। सूखने पर मूषा का मुख बन्द करके इसे दूसरी मूषा के ऊपर रखकर अग्नि में फूंके। इस तरह खर्पर के द्रुत होने पर मूषा से श्वेत या नीली ज्वाला निकलने लगे तब उसे संड़सी से पकड़ कर पृथ्वी की ओर मुख औंधा कर ताड़न करे। परन्तु मूषा की नाल को बचाना चाहिए। इस तरह वङ्ग के समान सत्त्व निकलता है। इस विधि को तीन या चार वार करने से सम्पूर्ण सत्व निकल जाता है। इसका सर्वत्र प्रयोग करें ॥ १५०-१५३ ॥

अथ मतान्तरम्—

**साभयाजतुभूनागनिशाधूमजटङ्कणम् ।**
**मूकमूषागतं ध्मातं शुद्धं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ १५४ ॥**

अथवा हरीतकी, लाक्षा, केंचुआ ( अर्थवर्म ), हरिद्रा, घर का धुंआं, सुहागा इन सबको खर्पर से चतुर्थांश भाग की मात्रा से लेकर खर्पर चूर्ण को मूकमूषा में रख कर फूंकने से सत्त्व निकल जाता है ॥ १५४ ॥

अथ मतान्तरम्—

**लाक्षागुडाऽऽसुरीपथ्याहरिद्रासर्जटङ्कणैः ।**
**सम्यक् सञ्चूर्ण्य तत्पक्वं गोदुग्धेन घृतेन च ॥ १५५ ॥**
**वृन्ताकमूषिकामध्ये निरुध्य गुटिकाकृतम् ।**
**ध्मात्वा ध्मात्वा समाकृष्य ढालयित्वा शिलातले ।**
**सत्त्वं वङ्काकृति ग्राह्यं रसकस्य मनोहरम् ॥ १५६ ॥**

अथवा लाक्षा, गुड़, राई ( राजिका ) हरड़, हल्दी, राल और टङ्कण इनका चूर्णकर खर्पर के साथ घोऐं । फिर गोघृत और दुग्ध से पका कर गोला बनालें । फिर उस गोले को वृन्ताक मूषा में रखकर उसका मुख बन्द कर फूंकें । पश्चात् किसी पत्थर पर मूषा को ढालने से वज्र के समान सुन्दर सत्त्व निकल आता है ॥ १५५-१५६ ॥

अथ मतान्तरम्—

**यद्वा जलयुतां स्थालीं निखनेत्कोष्ठिकोदरे ।**
**सच्छिद्रं तन्मुखे मल्लं तन्मुखेऽधोमुखीं क्षिपेत् ॥ १५७ ॥**
**मूषोपरि शिखित्रांश्च प्रक्षिप्य प्रधमेद्दृढम् ।**
**पतितं स्थालीकानीरे सत्त्वमादाय योजयेत् ॥ १५८ ॥**

अथवा एक हांडी में जल भर कर उसे जमीन में गाड़ देवें । उस स्थाली के मुख पर छिद्र वाला एक सकोरा रख दें । उस सकोरे पर मूषा का ख वाला भाग रख कर मुषा पर कोयले डालकर अग्नि पर फूंके । खूब प्रधमन करने से मूषा के मुख से सत्त्व निकल कर हण्डिका के जल में गिर जायगा । उसको लेकर औषधियों के कार्य में प्रयोग करना चाहिए ॥ १५७-१५८ ॥

अथ सत्त्वमारणम्—

**तत्सत्त्वं तालकोपेतं प्रक्षिप्य खलु खर्परे।**
**मर्दयेल्लोहदण्डेन भस्मीभवति निश्चितम् ॥ १५८ ॥**

खर्पर सत्त्व को कड़ाही में डाल कर उसमें समान मात्रा से हरताल डाल कर अग्नि पर रख दें और लौह के दण्ड से चलाता रहे। इस तरह खर्पर सत्त्व की भस्म हो जाती है ॥ १५९ ॥

अथ प्रयोगविधिः—

**तद् भस्म मृतकान्तेन समेन सह योजयेत्।**
**अष्टगुञ्जामितं चूर्णं त्रिफलाक्वाथसंयुतम् ॥ १६० ॥**
**कान्तपात्रस्थितं रात्रौ तिलजप्रातरापकम्।**
**निषेवितं निहन्त्याशु मधुमेहमपि ध्रुवम् ॥ १६१ ॥**
**पित्तं क्षयं च पाण्डुं च श्वयथुं गुल्ममेव च।**
**रक्तगुल्मं च नारीणां प्रदरं सोमरोगकम् ॥ १६२ ॥**
**योनिरोगानशेषांश्च विषमांश्च ज्वरानपि।**
**रजःशूलं च नारीणां कासं श्वासञ्च हिध्मिकाम् ॥ १६३ ॥**

इति रसकाधिकारः।

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

खर्पर सत्त्व की भस्म को समान कान्तलौह भस्म के साथ मिलादें। इसमें से १ रत्ती ( गुञ्जा ) लेकर एक कान्त लौह के पात्र में डालकर उसमें त्रिफला क्वाथ पूर्णमात्रा में भर दें, रात भर पड़ा रख कर प्रातःकाल इसमें कुछ तिलों का क्षार डाल कर सेवन करने से मधुमेह ( डायबेटिज् ), पित्त के रोग, क्षय, पाण्डु, शोथ, गुल्म, स्त्रियों का रक्तगुल्म, प्रदर और सोमरोग, सम्पूर्ण योनिरोग, विषम ज्वर ( मलेरिया ), रजःप्रवृत्तिकालीन शूल, कास, श्वास हिचकी आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६०-१६३ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां रसोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथोपरसानां नामानि—

**गन्धाश्मगैरिकासीसकांक्षीतालशिलाञ्जनम् ।**
**कङ्कुष्ठं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि ॥ १ ॥**

गन्धक ( सल्फर ), गैरिक, कासीस, सुराष्ट्रमृत्तिका ( कांक्षी ), हरताल, मैनशील, अञ्जन, कङ्कुष्ठ ये आठ उपरस हैं । इनका पारद के कार्य में उपयोग होता है ॥ १ ॥

अथ गन्धकोत्पत्तिः—

पार्वत्युवाच ।

**गन्धकस्य तु महात्म्यं तद्गुह्यं वद मे विभो ॥ २ ॥**

हे भगवन् गन्धक का गुप्त माहात्म्य मुझे सुनाईये ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच ।

**श्वेतद्वीपे पुरा देवि सर्वरत्नविभूषिते ।**
**सर्वकाममये रम्ये तीरे क्षीरपयोनिधेः ॥ ३ ॥**
**विद्याधरीभिर्मुख्याभिरङ्गनाभिश्च योगिनाम् ।**
**सिद्धाङ्गनाभिः श्रेष्ठाभिस्तथैवाप्सरसां गणैः ॥ ४ ॥**
**देवाङ्गनाभी रम्याभिः क्रीडन्तीभिर्मनोहरैः ।**
**गीतैर्नृत्यैर्विचित्रैश्च वाद्यैर्नानाविधैस्तथा ॥ ५ ॥**
**एवं संक्रीडमानायाः प्राभवत्प्रसृतं रजः ।**
**तद्रजोऽतीव सुश्रोणि सुगन्धि सुमनोहरम् ॥ ६ ॥**
**रजसश्चातिबाहुल्याद्वासस्ते रक्ततां ययौ ।**
**तत्र त्यक्त्वा तु तद्वस्त्रं सुस्नाता क्षीरसागरे ॥ ७ ॥**
**वृता देवाङ्गनाभिस्त्व कैलासं पुनरागता ।**
**ऊर्मिभिस्तद्रजोवस्त्रं नीतं मध्ये पयोनिधेः ॥ ८ ॥**
**एवं ते शोणितं भद्रे प्रविष्टं क्षीरसागरे ।**
**क्षीराब्धिमथने चैतदमृतेन सहोत्थितम् ॥ ९ ॥**
**निजगंधेन तान्सर्वान्हर्षयन्सर्वदानवान् ।**
**ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम् ॥ १० ॥**

रसस्य बन्धनार्थाय जारणाय भवत्वलम्।
ये गुणाः पारदे प्रोक्तास्ते चैवात्र भवन्त्विति ॥ ११ ॥
इति देवगणैः प्रीतैः पुरा प्राक्तं सुरेश्वरि।
तेनायं गन्धको नाम विख्यातः क्षितिमण्डले ॥ १२ ॥

इस तरह पार्वतीजी के प्रश्न करने पर शिवजी कहने लगे हे देवि ? किसी समय श्वेतद्वीप नामक देश में सर्वरत्नों से शोभायमान, निखिल कामदेव की सामग्री वाले क्षीरसमुद्र के तट पर श्रेष्ठ सिद्धाङ्गनाओं, अप्सराओं, विद्याधरियों योगिनियों और देवताओं की स्त्रियों के साथ नाना प्रकार की रासक्रीड़ा तथा मनोहर गीत, नृत्य, वाद्य आदि क्रीड़ा करते करते तुम्हारा रजःस्राव हो गया। हे सुश्रोणि ? वह रज अत्यन्त सुगन्धित और मनोहर तथा उस रज के अधिक निकलने से तुम्हारे वस्त्र लाल हो गये, तब तुम उन रञ्जित वस्त्रों को वहीं छोड़ कर क्षीर समुद्र में स्नान कर देवताओं की स्त्रियों के साथ कैलास पर्वत पर चली आई। उधर वे रज के वस्त्र तरङ्गों के द्वारा क्षीरसमुद्र में मिल गये। हे भद्रे ? इस तरह तुम्हारा आर्तव शोणित क्षीर सागर में प्रविष्ट हो गया। जिस समय क्षीर सागर का मथन होने लगा उस समय यह रज सभी दानवों को अपनी सुगन्ध से प्रसन्न करता हुआ अमृत के साथ बाहर निकला, तब देव समाज ने कहा कि यह संसार में गन्धक कहलाएगा और पारद के बन्धन तथा जारण के लिये समर्थ होगा और जो गुण पारद में हैं वे सब इस में भी होंगे। हे सुरेश्वरि ? प्रसन्न हुए देवताओं ने इस तरह गन्धक के विषय में कहा है। तभी से यह खनिज संसार में गन्धक के नाम से विख्यात हुआ ॥ ३-१२ ॥

अथ गन्धकभेदाः—

स चापि त्रिविधो देवि शुकचञ्चुनिभो वरः।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः प्रिये ॥ १३ ॥
चतुर्धा गन्धको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु।
श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्तो लेपने लोहमारणे ॥ १४ ॥
तथा चामलसारः स्याद्यो भवेत्पीतवर्णवान्।
शुकपिच्छः स एव स्याच्छ्रेष्ठो रसरसायने ॥ १५ ॥
रक्तश्च शुकतुण्डाख्यो धातुवादविधौ वरः।

दुर्लभः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः ॥ १६ ॥

हे देवि ? वह गन्धक तीन प्रकारका है । प्रथम तोते की चोंच के समान लाल वर्ण वाला होता है वह उत्तम है। दूसरा पीले वर्ण का होता है वह मध्यम होता है। तृतीय श्वेत वर्ण का होता है वह अधम है; कुछ लोगों का मत है कि श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण भेद से गन्धक चार तरह का होता है । इन में श्वेत गन्धक को खटिक कहते हैं । क्यों कि यह खड़िया के समान सफेद होता है । यह लेप करने में तथा लौह मारण में काम आता है और जो गन्धक पीले वर्ण का होता है उसे आमला सार गन्धक कहते हैं । इसी का एक दूसरा भेद होता है, उस का नाम शुक पिच्छ है, वह रस और रसायन में श्रेष्ठ होता है । जो गन्धक तोते की चोञ्च समान होता है वह सोना, चांदी इत्यादि धातुओं के बनाने में श्रेष्ठ होता है। जो कृष्ण वर्ण का गन्धक होता है वह जरा और मृत्यु को नष्ट करता है किन्तु वह दुर्लभ है ॥ १३–१६ ॥

अथ गन्धकगुणाः—

**गन्धाश्मातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णो मतः ।**
**कण्डूकुष्ठविसर्पदद्रुदलनो दीप्तानलः पाचनः ॥**
**आमोन्मोचनशोषणो विषहरः सूतेन्द्रवीर्यप्रदः ।**
**गौरीपुष्पभवस्तथा कृमिहरःसत्त्वात्मकः सूतजित् ॥ १७ ॥**
**बलिना सेवितः पूर्वं प्रभूतबलहेतवे ॥ १८ ॥**

गन्धक श्रेष्ठ रसायन है तथा स्वाद में मधुर तथा पाक में कटु एवं उष्ण है । यह खुजली, कुष्ठ, विसर्प ( फैलने वाली खुजली ) और दद्रु को नष्ट करता है, पाचन शक्ति बढ़ाता है, अग्नि दीप्त करता है, आंव को दूर करता है तथा उस का शोषक है, विषनाशक तथा पारद के गुणों का उत्कर्ष बढ़ाता है । प्लीहावृद्धि, आध्मान और कृमियों को नष्ट करता है । सत्त्वस्वरूप गन्धक पारद को जीतने वाला है। पूर्वकाल में शक्ति प्राप्ति के लिये राजा बली ने इस का सेवनकिया था॥१७–१८॥

अथ बलिवसाख्यगन्धकोत्पत्तिः—

**वासुकिं कर्षतस्तस्य तन्मुखज्वालया द्रुता ।**
**वसा गन्धकगन्धाढ्या सर्वतो निःसृता तनाः ॥ १९ ॥**
**गन्धकत्वं च सम्प्राप्ता गन्धोऽभूत्सविषःस्मृतः ।**

**तस्माद्बलिवसेत्युक्तो गन्धकोऽतिमनोहरः ॥ २० ॥**

समुद्र के मन्थन के समय वासुकी को खींचते हुए उस के मुख की ज्वाला से मिली हुई राजा बली के शरीर से गन्धक की गन्ध से मिली हुई जो वसा ( चर्बी ) निकली वही गन्धक के स्वरूप को प्राप्त होकर विषगन्धक कहलाई। इस अत्यन्त मनोहर गन्धक को बलिवसा कहते हैं ॥ १९–२० ॥

अथ गन्धकशुद्धिः—

**पयः स्विन्नो घटीमात्रं वारिधौतो हि गन्धकः ।**
**गव्याज्यविद्रुतो वस्त्राद्गालितः शुद्धिमृच्छति ॥ २१ ॥**
**एवं संशोधितः सोऽयं पाषाणानंबरे त्यजेत् ।**
**घृते विषं तुषाकारं स्वयं पिण्डत्वमेव च ॥ २२ ॥**
**इति शुद्धो हि गन्धाश्मा नापथ्यैर्विकृतिं व्रजेत् ।**
**अपथ्यादन्यथा हन्यात्पीतं हालाहलं तथा ॥ २३ ॥**

गन्धक को एक घण्टे तक दुग्ध में स्वेदन कर जल से धो डालें । फिर उसे चूल्हे पर कड़ाई में द्रव कर के वस्त्र से छान डालें। इस प्रकार से शुद्ध हुए गन्धक के पाषाण के टुकड़े तथा अन्य मल निकल जाते हैं। और विष बिन्दुओं के रूप में घी के ऊपर तैरने लगता है । स्वयं गन्धक ठंढक से पिण्ड के स्वरूप का हो जाता है । इस तरह से शुद्ध गन्धक के सेवन करने पर अपथ्य होने पर भी विकार उत्पन्न नहीं होता । किन्तु अशुद्ध गन्धक सेवन करने पर अपथ्य हो जाय तो वह हालाहल विष की तरह मनुष्य को मार डालता है । गन्धक को पिघला (द्रुत) कर भृङ्गराज के रस में छोड़ने से शुद्ध हो जाता है । इस तरह सात वार करना चाहिए । प्रत्येक समय में भृङ्गराज का रस बदलना चाहिये और गन्धक को उष्ण जल से धोना चाहिए ॥ २१–२३ ॥

मतान्तरम्—

**गन्धको द्रावितो भृङ्गरसे क्षिप्तो विशुध्यति ।**
**तद्रसैः सप्तधा भिन्नो गन्धकः परिशुध्यति ॥ २४ ॥**

अथवा गन्धक को द्रुत करके सात बार भृङ्गराज (भांगरे) के रस में बुझाने से भी शुद्धि हो जाती है अथवा भृङ्गराज के स्वरस से आप्लावित करके सूर्योदय से सूर्यास्त तक घोटें । इस तरह सात बार घोटने से वह शुद्ध हो जाता ॥२४॥

अथ मतान्तरम्—

स्थाल्यां दुग्धं विनिक्षिप्य मुखे वस्त्रं निबध्य च ।
गन्धकं तत्र निक्षिप्य चूर्णितं सिकताकृतिम् ॥ २५ ॥
छादयेत्पृथुदीर्घेण खर्परेणैव गन्धकम् ।
ज्वालयेत्खर्परस्योर्ध्वं वनच्छाणैस्तथोपलैः ॥ २६ ॥
दुग्धे निपतितो गन्धो गलितः परिशुद्धयति ।
शतवारं कृतश्चैव निर्गन्धो जायते ध्रुवम् ॥ २७ ॥

एक हण्डिका में दुग्ध ( जितने में गन्धक डूब सके ) भर कर पतले शुद्ध वस्त्र से उसका मुख बांध देना चाहिए तथा उस वस्त्र पर गन्धक का बारीक चूर्ण कर रख दें और ऊपर से शराव द्वारा ढक दें, बाद में सकोरे पर जङ्गली उपलों ( छाणों ) की अग्नि जलादें। इससे गन्धक पिघल कर वस्त्र से छन कर दुग्ध में पड़ जाता है और शुद्ध हो जाता है। इस तरह सौ बार करने से गन्धक निःसन्देह गन्ध रहित हो जाता है ॥ २५–२७ ॥

अथ प्रयोगः—

इत्थं विशुद्धस्त्रिफलाऽऽज्यभृङ्गमधुन्वितः शाणमितो हि लीढः ।
गृध्राक्षितुल्यं कुरुतेऽक्षियुग्मं करोति रोगोज्झितदीर्घमायुः ॥ २८ ॥

इस तरह उपर्युक्त विधि से शतवार शुद्ध किया हुआ गन्धक एक शाण ( चोअन्नी भर ) लेकर उसमें त्रिफला चूर्ण, मधु, भांगरे का रस और घृत मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से दोनों नेत्र गिद्ध की आंख के समान दूर की वस्तुओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं और रोग रहित होकर मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २८ ॥

अथ गन्धकद्रुतिः—

कलांशव्योषसंयुक्तं गन्धकं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
अरत्निमात्रे वस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टय तत् ॥ २९ ॥
सूत्रेण वेष्टयित्वाऽथ यामं तैले निमज्जयेत् ।
धृत्वा संदंशतो वर्तिमध्यं प्रज्ज्वालयेच्च तम् ।
द्रुतो निपतितो गन्धो बिन्दुशः काचभाजने ॥ ३० ॥

शुद्ध गन्धक में षोडशांस त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पीपल ) का चूर्ण मिला कर

खरल में दोनों का अत्यन्त बारीक चूर्ण करलें, इस चूर्ण को एक हाथ चौरस कपड़े पर बिछा कर उसे मोड़ कर दृढ बत्ती बनाले उस बत्ती को धागे से लपेट कर एक प्रहर तक तिल तैल में डूबो दें। फिर उसे संड़सी से बीच में पकड़ कर अग्नि से जलावें और नीचे एक काच का पात्र रख दें जिसमें गन्धक द्रुत होकर बिन्दु २ कर के तैल के रूप में एकत्रित हो जायगा ॥ २९-३० ॥

अथ प्रयोगविधिः—

**तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पत्रे नागवल्ल्यास्त्रिबिन्दुकाम् ॥**
**वल्लेन प्रमितं स्वच्छं सूतेन्द्रं च विमर्दयेत् ॥ ३१ ॥**
**अङ्गुल्याऽथ सपत्रां तां द्रुतिं सूतं च भक्षयेत् ।**
**करोति दीपनं तीव्रं क्षयं पाण्डु च नाशयेत् ॥ ३२ ॥**
**कासं श्वासं च शूलार्तिं ग्रहणामतिदुर्धराम् ।**
**आमं विनाशयत्याशु लघुत्वं प्रकरोति च ॥ ३३ ॥**

उस तैल स्वरूप गन्धक द्रुति के तीन बूंद और एक रत्ती भर रससिन्दूर लें के घोट कर दोनों को अङ्गुली से पान में मिला कर भक्षण करें। इस से अग्नि दीप्त होती है तथा तीव्र क्षय, पाण्डु, कास और श्वास ये रोग नष्ट हो जाते हैं, तथा शूल, दुःसाध्य ग्रहणी, आंव ये भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन करने से शरीर में लघुता उत्पन्न होती है ॥ ३१-३३ ॥

अथान्यविधप्रयोगविधिः—

**घृताक्ते लोहपात्रे तु विद्रुतं शुद्धगन्धकम् ।**
**घृताक्तदर्विकाक्षिप्तं द्विनिष्कप्रमितं भजेत् ॥**
**हन्ति क्षयमुखान् रोगान्कुष्ठरोगं विशेषतः ॥ ३४ ॥**

घृत से लिप्त लौह पात्र ( कडाही ) में शुद्ध गन्धक डालकर पिघलावें फिर उसे घृत से लिप्त कलच्छु से चलाते रहें। कुछ देर बाद नीचे उतार कर चूर्ण कर रख लें। इस गन्धक को एक निष्क (चार मासा) से दो निष्क की मात्रा में सेवन करने से कुष्ठ तथा क्षय रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

गन्धकसेवने वर्ज्यानि—

**क्षाराम्लतैलसौवीरविदाहिद्विदलं तथा ।**
**शुद्धगन्धकसेवायां त्याज्यं योगयुतेन हि ॥ ३५ ॥**

शुद्ध गन्धक का सेवन करने वाले मनुष्य क्षार (नीमक), अम्ल (निम्बू इ०), तैल और निस्तुष यव या गोधूमकृत काञ्जी (सौवीर), जलन कारक वस्तु या अम्ल-पाकि वस्तु जैसे वंशकरीरादि और दो दल वाले मुद्गादि शमीधान्य त्याग दें॥३५॥

कुष्ठे गन्धकप्रयोगः—

**गन्धकस्तुल्यमरिचः षड्गुणत्रिफलान्वितः ।**
**घृष्टः शम्पाकमूलेन पीतश्चाखिलकुष्ठहा ॥ ३६ ॥**
**तन्मूलं सलिले पिष्टं लेपयेत्प्रत्यहं तनौ ।**
**दृ प्रत्ययोगोऽयं सर्वत्राप्रतिवीर्यवान् ।**
**श्रीमता सोमदेवेन सम्यगत्र प्रकीर्तितः ॥ ३७ ॥**

शुद्ध गन्धक और मरिच चूर्ण समान भाग लेकर गन्धक से षड् गुण अधिक त्रिफला चूर्ण मिलाकर घोट लें। फिर इस चूर्ण को अमलतास की जड़ के क्वाथ या स्वरस के साथ पीने से सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसी के साथ साथ अमलतास की जड़ को पानी में चन्दन की तरह घिस कर उसका शरीर पर लेप करना चाहिए। यह योग कुष्ठनाशन के लिये प्रत्यक्ष फलप्रद देखा गया है। इसके समान अन्य योग शान्तिप्रद नहीं है। यह सोमदेव ने बताया है॥३६-३७॥

अथ कण्डूहरप्रयोगः—

**द्विनिष्कप्रमितं गन्धं पिष्ट्वा तैलेन संयुतम् ।**
**अथापामार्गतोयेन सतैलमरिचेन हि ॥ ३८ ॥**
**विलिप्यासकलं देहं तिष्ठेद् घर्मे ततः परम् ।**
**तक्रभक्तं च भुञ्जीत तृतीये प्रहरे खलु ॥ ३९ ॥**
**भजेद्रात्रौ तथा वह्निं समुत्थाय तथाप्रगे ।**
**महिषीछगणं लिह्त्वा स्नायाच्छीतेन वारिणा ॥ ४० ॥**
**ततोऽभ्यज्य घृतैर्देहं स्नायादिष्टोष्णवारिणा ।**
**अमुना क्रमयोगेन विनश्यत्यतिवेगतः ।**
**दुर्जया बहुकालीना पामा कण्डूः सुनिश्चितम् ॥ ४१ ॥**
**गन्धकस्य प्रयोगाणां शतं तन्न प्रकीर्तितम् ।**
**ग्रन्थविस्तारभीतेन सोमदेवेन भूभुजा ॥ ४२ ॥**

दो निष्क ( ८ मासे ) भर शुद्ध गन्धक का चूर्ण तथा इतना ही मरिचचूर्ण

लेकर दोनों को कटुतैल और अपामार्ग के जल के साथ घोट कर सम्पूर्ण शरीर में लेप कर धूप में खड़ा रहना चाहिए। तीसरे प्रहर में भूख लगने पर मटठा और भात का भोजन करें। रात्रि में अग्नि से देह को तपावें। दूसरे दिन उठ कर भैंस के गोबर का शरीर पर लेप कर शीत जल से स्नान करें। पश्चात् समग्र शरीर पर घृत की मालिश कर मन्दोष्ण जल से स्नान करें। इस तरह इस प्रयोग का कुछ दिन सेवन करने से शीघ्र ही बहुकालीन तथा असाध्य पामा, और कण्डू निश्चय ही नष्ट हो जाती हैं। इस तरह के गन्धक के सैकड़ों प्रयोग हैं उनका ग्रन्थ विस्तार होने के भय से महाराज सोमदेव ने नहीं वर्णन कियाहै ॥३८–४२॥

अथ गन्धकतैलम्—

**अथवाऽर्कस्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यन्तु सप्तधा।**
**गन्धकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेद्घनम् ॥ ४३ ॥**
**तद्वर्तिं ज्वलितां दंशे धृतां कुर्यादधोमुखीम्।**
**तैलं पतेदधोभाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ ४४ ॥**

किसी स्वच्छ वस्त्र को सेंहुड़ के दुग्ध से लिप्त कर सुखा लें। इस तरह सात बार सुखावें, पश्चात् सात वार ही उस वस्त्र को मदार के दुग्ध से लिप्त कर सुखालें। फिर शुद्ध गन्धक को मक्खन या घृत में पीस कर उसका वस्त्र पर गाढ़ा लेप कर वस्त्र की बत्ती बना लें। उस बत्ती को संड़सी से पकड़ कर जलावें, फिर उसका एक मुख नीचे रखे पात्र को ओर कर देना चाहिए। इस तरह तैल नीचे के पात्र में गिरेगा। उसेसब कामों में (रोगनाशार्थ) ग्रहण करें ॥ ४३–४४ ॥

शुद्धगन्धकगुणाः—

**अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ ४५ ॥**

इति गन्धकाधिकारः—

शुद्ध गन्धक कुष्ट रोग तथा जरा और मरण (अकाल मृत्यु) को नष्ट करता है। यह पाचकाग्नि को दीप्त करता है। उष्ण वीर्य तथा वीर्य अर्थात् शरीर शक्ति को बढ़ाता है ॥ ४५ ॥

**अथ गन्धकीयविमर्शः—**

**गन्धक** ( Sulphur ) **सल्फर।**

**इस मूलतत्त्व** ( Element ) **का ज्ञान सांसारिक प्राणियों को कब से है, इसके**

ऐतिहासिक वृत्त का ब्योरा अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। सम्भवतः इस तत्त्व का ज्ञान भ्रमणशील रसायन प्रेमियों ने ज्वालामुखी, उष्णस्रोत तथा गोदन्ती के क्षेत्र प्रभृति प्रदेशों में उग्र गन्ध और ज्वलनशक्ति देखकर अन्वेषण किया हो इसी लिये प्राचीन आर्य रसायन ग्रन्थों में "गन्धक" नाम से ही इसका अभिधान किया गया है। गन्धक की उत्पत्ति के प्रकरण में लिखा है कि:—

निजगन्धेन तान्सर्वान् हर्षयन्दैत्यदानवान्।
ततो देवगणैरुक्तं गन्धकाख्यो भवत्वयम्॥

इसी प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक साहित्य में ज्वलन शक्ति के कारण इसको सल्फर (Sul=sal=salt Fur=fire) अर्थात् ज्वलन-शील-लवण के अभिधान से सम्बोधित किया है।

उपलब्धि—

गन्धक प्रायः ज्वालामुखी प्रदेशों में स्वतन्त्र दशा में पाया जाता है। मिल्चरलिच (Mitscherlich) नामक विद्वान् ने सर्व प्रथम योरोप में गन्धक की अनेक प्रकार की परिवर्तित रासायनिक दशाओं का प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। गन्धक का प्रयोग भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से किया जा रहा है। रस ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि आर्यरसायन-विज्ञों ने भी ब्योरेवार इसके रासायनिक परिवर्तन और गुणों का अध्ययन किया तथा उसका औषधि में उपयोग कर जन समुदाय का बड़ा उपकार किया था। किन्तु इस ब्योरे से यह प्रगट नहीं होता कि गन्धक का क्रमबद्ध अध्ययन करने वाला महापुरुष कौन था और किस समय में वह वर्तमान रहा। यह ऐतिहासिक वृत्त अन्वेषणीय है।

गन्धक उन थोड़े से मूलतत्वों में गिना जाता है जो प्रकृति में स्वतन्त्र रूप से पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं यह प्रशान्त वा प्रज्वलित ज्वालामुखी प्रदेशों में आधिक्य से प्राप्त होता है। योरोप में इटली (Italy), सिसली (Sicily), आइस-लेन्ड (Iceland) आदि देशों में बहुतायत से मिलता है। असाधारणतया अन्य खनिजों के साथ में भी यह यौगिक रूप में पाया जाता है। कहीं २ हाइड्रोजन गेस के साथ सल्फ्युरेटेड हाईड्रोजन (Sulphurated Hydrogen) के रूप में उष्ण स्रोतों में पाया जाता है। ऐसे स्रोत बद्रीनाथजी की यात्रा के मार्ग में प्रायः देखे जाते हैं। अन्यत्र भी भारतवर्ष के विहार, बङ्गाल, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तों में तीर्थों के स्थानों में प्रायः ऐसे उष्ण स्रोत मिला करते हैं। ऐसे स्रोतों में गन्धक की उग्र गन्ध होती है।

यौगिक-गन्धक सल्फाइड (Sulphide) के रूप में अनेक खनिजों के साथ में मिला रहता है उनमें से प्रधान निम्न लिखित समझे जाते हैं।

१ रौप्यमाक्षिक (Iron pyrites) लौहमाक्षिक।

२ सुवर्णमाक्षिक ( Copper pyrites ) ताम्रमाक्षिक।
३ कांस्यमाक्षिक (Arseno pyrites ) तालमाक्षिक ।
४ कान्तमाक्षिक ( Pyrrhotite ) चुम्बकीय लौहमाक्षिक ।
५ विमल ( Marcasite pyritous ) लौहमाक्षिक ( विशिष्टरूप युक्त )।
६ गन्धनाग ( Galena ) नीलाञ्जन ।
७ गन्धयशद Zinc blende ) यशद का खनिज ।
८ गन्धबरनाग ( Stibnite )।
९ गन्धरजत ( Argentite ) रजतखनिज ।
१० हिङ्गुल ( Cinnabar ) पारद का खनिज ।
११ गोदन्ती ( Gypsum ) गन्धक का खनिज ।
१२ बेरिया सल्फेट ( Heavy spar ) बराइट ।
१३ बोर्नाइट ( Bornite ) पाषाणस्वरूप ताम्रमाक्षिक ।

उक्त खनिजों की मात्रा किसी किसी स्थान पर बहुत व्यापक और बड़ी तादाद में पाई जाती है। स्वतन्त्र तथा अन्य खनिजों के साथ मिला हुआ गन्धक प्रायः पृथ्वी के सर्वांश में पाया जाता है।

वनस्पतियों में भी नीचे लिखे गणों में प्रायः गन्धक मिला रहता है:—
राईवर्ग, गाजरवर्ग, लहसुनवर्ग, इनके रस और बीजों के तैल में सल्फेट ( Sulphate ) और सल्फाइड ( Sulphide ) के रूप में गन्धक पाया जाता है।

प्राणि वर्ग में भी यह रक्तादि धातुओं में अत्यल्प प्रमाण से मिला रहता है। पित्त में २९ फी सदी गन्धकांश गन्धक के तेजाब ( Hydro chloric acid ) के रूप में विद्यमान है।

प्रकृति में अनेक प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाओं से गन्धक पैदा होता है। माक्षिक के आक्सिडेशन से भी गन्धक पृथक् होकर जहां माक्षिक के कण घुले रहते हैं, वहां पर के कोष्ठों में जमा पाया जाता है। जहां पर ज्वालामुखी की कन्दराओं से अनेक प्रकार की गन्धकीय गैसें ऊपर की ओर निकलती हैं वहां पर 'सल्फर डाई औक्साइड' और हाइडोजन सल्फाईड की प्रतिक्रिया से गन्धकाम्ल और गन्धक उत्पन्न होता है।

( $H_2S$ हाइड्रोजन सल्फाइड $\times_2$ $So_2$ सल्फर डाइ आक्साइड $H_2So_4$ गन्धकाम्ल और 2S गन्धक ) कहीं २ सम्भवतः हाइड्रोजन सल्फाइड और आक्सिजन की अपूर्ण प्रति क्रिया से गन्धक बनता है। ( $_2H_2So$ हाइड्रोजन सल्फाइड + $O_2$ आक्सिजन की प्रतिक्रिया से $_2H_2O$ जल और $_2S$ गन्धक) अथवा सल्फर डाइ ओक्साइड और जल की प्रतिक्रिया से गन्ध काम्ल और गन्धक

पैदा होते हैं। ($_3So_2 +_2 H_2O =_2 H_2So_4 + S$) इस प्रकार से उत्पन्न हुआ गन्धक का बड़ा जमाव 'अबासानो बेरी माइनहोकैडो जापान में गन्धक निकालने के लिये काम में लाया जा रहा है। यह जमाव पुराने सूखे ज्वालामुखी सम्बन्धी मृत्तिकामय तालाबों के क्षेत्र के साथ पाया गया है। इस जमाव से बहुत बड़ी मात्रा में गन्धक निकाल कर युनाइटेड स्टेट को भेजा है। इस प्रकार के जमाव जो मेक्सिको ( Mexico ) आदि प्रदेशों में पाये जाते हैं उनका भी उपयोग करने का प्रबन्ध किया जा रहा है। सबसे अधिक गन्धक खुश्क या तर उष्ण स्रोतों के आस पास में पाया जाता है। ऐसे स्थानों में डाइड्रोजन सल्फाइड के अपूर्ण ओक्सिडेशन से अथवा गन्धकोत्पादक जीवाणुओं की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है। इस रीति से उत्पन्न हुए गन्धक के जमाव अमेरिका के पश्चिमी राज्यों में प्रायः मिलते हैं। उदाहरण के लिये कुपराइट ( Cuprite ), इस्मेरेल्डा कन्टी ( Esmeralda County ), नवाडा ( Navada ), सल्फर बेंक केलिफोर्निया ( Sulphur Bank California ), रेबिट होल माइन्स हम्बाल्ट कौन्टी ( Rabbit Hole Mines Humboldt county), उटाह (Utah),कौडी (Cody),थर्मोपोलिस (Thermopolis) और व्योमिङ्ग (Wyoming) जिलों के नाम लिखे जा सकते हैं। अन्त के तीन जिलों में गन्धक निकालने का व्यवसाय प्रारम्भ हैं। व्योमिंग जिले में जो गन्धक प्राप्त होता है वह अल्पांश में चूने के साथ पाया जाता है। यहां का जमाव गहरा नहीं है तथापि व्यापार चलाने लायक समझा जाता है।

संसार में जितना भी प्राकृतिक गन्धक प्राप्त होता है वह ज्वालामुखी या उष्ण स्रोतों के उद्गम से ही निकलता नहीं है किन्तु सब से अधिक निक्षिप्तस्तरों के जमाव ( Sedimentary beds ) में पाया जाता है, ऐसे जमावों का घनिष्ट सम्बन्ध गोदन्ती ( Gypsum ) व सुधापाषाण ( Lime stone ) के साथ रहता है। इनके अतिरिक्त कालसाइट ( Calcite ), अरेगोनाइट ( Aragonite ), ओपल और कभी कभी स्फटिक (Quartz) आदि के साथ गन्धक मिला प्राप्त होता है। गैसीय और घन हाइड्रोकार्बन (Gaseous and solid Hydro Carbons) के साथ भी गन्धक का सहयोग देखा गया है। संसार के बड़े २ गोदन्ती के क्षेत्रों के साथ विशेष रूप से गन्धक का सम्बन्ध सदा और सर्वत्र पाया जाता है, चाहे ऐसे सम्बन्ध व्यापारोपयोगी गन्धक निकालने का कार्य न दें तथापि गन्धक उत्पत्ति का यह नित्य सम्बन्ध सर्वत्र दिखाई देता रहेगा। इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो तो लुसियाना ( Louisiana ) के बोरिंग ( Boring ) का विवरण जो उक्त स्टेट की सर्वे के बुलेटिन में प्रकाशित हुआ है, मंगाकर अवलोकन करना चाहिए। इस विवरण के देखने से गोदन्ती और गन्धक का अविरत जन्यजनक सम्बन्ध भली प्रकार विदित हो

जाता है। गन्धक गोदन्ती और चूने के साथ शिरा, मृत्तिका, राल का शकल का तथा रवों आदि के रूप में जमा पाया जाता है।

गन्धक निम्न रूप में मिलता है।

( १ ) रवेदार गन्धक ( Crystalline Forms )

( क ) अष्टफलकीम रवेदार गन्धक ( Octahedral sulphur )

( ख ) त्रिपार्श्वीय रवेदार गन्धक ( Prismatic sulphur )

( २ ) बिना रवेदार गन्धक ( Amorphous forms )

अ ) नम्य गन्धक ( Plastic sulphur )

( ब ) श्वेत रवे रहित ( White Amorphous )

( म ) पीत रवे रहित ( Yellow amorphous )

( ३ ) द्रवितगन्धक ( Colloidal sulphur )

## गन्धक और गन्धकीय खनिज प्राप्ति के स्थान

### अफ़गानिस्तान—

के हजार जाठ ( Hazara Jat ) नामक स्थान में प्राकृतिक गन्धक बहुतायत से प्राप्त होता है।

पीत गन्धक के डले और शिरायें गोदन्ती के खण्डों के साथ "दस्त-इ-सफेद" ( Dast i-safed ) नामक स्थान के आस पास में मिलता है।

### आसाम—

के लखिमपुर जिले के "माकुम" ( Makum ) ग्राम में माक्षिक के खण्ड ( Shales ) भुगर्भज कोयले के साथ ऊपर आसाम में प्राप्त होते हैं। किन्तु इनकी मात्रा इतनी नहीं है कि जिससे गन्धक निकालकर व्यापारिक लाभ उठाया जा सके।

### बलुचिस्तान ( Baluchistan )

के कोह-इ-सुलतान ( Koh-i-sultan ) नामक स्थान में प्रशान्त ज्वालामुखी के आस पास के परिवर्त्तित स्थानों में पीत गन्धक और गौदन्ती पाये जाते हैं। यहां के निवासी खनिज गन्धक को नाँदो में भर कर गरम करते हैं। जब गन्धक पिघल जाता है तब उसे तसलों की शकल के ढांचों में ढाल कर अन्य पार्थिव अशुद्धियों से शुद्ध कर लिया करते हैं। "बोलन पास के "ड्राज बेन्ट" ( Draj Bent ) और गोकुर्थ ( Gokurth ) नामक स्थानों में भी मृत्तिकाकृति चूने के साथ गन्धक पाया जाता है। किन्तु यहां से उसकी निकासी कठिन है।

### कच्छी ( Kachhi )

जिले के सन्नी ( Sanni ) नामक स्थान में गन्धक की बड़ी खान रही है। सन् १८४६ ई० हुटन (Huttan ) नामक अंग्रेज ने इस स्थान को जाकर देखा था।

उसका कथन है कि इस स्थान में गंधक अष्ट पार्श्वीय खों और चूर्ण के रूप में बहुतायत से प्राप्त हो सकता है। अब भी यहां के निवासी खनिज गंधक को निकाल कर 'सब्बी' के पूर्व की तरफ स्थित बाग ( Bagh ) नामक स्थान पर ले जाकर उसे तैल के साथ पिघाल कर शुद्ध किया करते हैं। बाग नामक स्थान सब्बी से ४० मील दूर है। यहां पर की खान की खुदाई का काम अफगानीस्तान के अमीर के तरफ से होता रहा है पर अब बृटिश सरकार के आधिपत्य में आ जाने पर गंधक की निकासी का काम बन्द कर दिया गया है। किसी कारण वश इस खान में आग लग जाने से खान का कुछ अंश जल भी गया है। सन् १९०६ ई० में इस खान को टिप्पर ( Tipper ) नामक अंग्रेज देखने गया था। उसका लिखना है कि इस स्थान में गन्धक शिवालिक मृत्तिका के साथ शिराओं के रूप में प्राप्त होता है। कुछ स्थान पर गन्धक इस प्रकार जमा हुआ है कि वह आसानी से जल सकता है। होलेन्ड ( Holland ) नामक विद्वान की राय है कि यहां गन्धकीय जमाव व्यापारिक लाभ उठाने के योग्य है।

लास बेला ( Las bela )

जिले में 'कान बेरार' ( Kan Berar ) नामक स्थान के आस पास खारे स्रोतों के समीप गन्धक का जमाव देखा गया है। यहां पर के स्रोतों के समीप रेणु शिला की शिराओं में लवण और गन्धक की शिरायें देखी जाती हैं। किन्तु परीक्षा करने से विदित हुआ कि यहां का जमाव व्यापारोपयोगी नहीं है।

मेकरन तट ( Mekran coast )

के जिले में करघारी ( Karghari ) के पास गोलकुर्ट ( Golkurt ) स्थान में बहुत गन्धक एकत्रित किया जा सकता है।

सिबि ( Sibi )।

जिले में "खाटान" (Khattan) नामक स्थान के मिट्टी के तैल के कूप के पास वाले उष्ण स्रोतों के स्राव से रवेदार गन्धक का बहुत सा जमाव पाया जाता है।

बेरन आइलेन्ड ( Barten Island )

में भी गन्धक का जमाव पाया जाता है। किन्तु उसकी मोटाई २ या ३ इञ्च से अधिक नहीं है और कई दर्जन टन से अधिक गन्धक निकालने का अनुमान भी नहीं किया जाता है।

बिहार और उड़िसा—

मयूरभञ्ज रियासत के धल भूमि सीमा प्रान्त के मालाघाटी के पास में विशेष रूप से रौप्यमाक्षिक ( Iron pyrites ) अनेक स्थानों में पाया जाता है। आज कल गन्धक निकालने का यह प्रधान खनिज समझा जाता है।

सिन्ध भूम जिले में सुवर्ण माक्षिक ( Copper pyrites ) से ताम्र के साथ

गन्धक बहुतायत के साथ प्राप्त किया जा सकता है। यहां के ताम्र के खनिजों का व्यापार उसी दशा में लाभ कारक हो सकता है जब बड़े पैमानों पर काम किया जाय।

बम्बई—

सिन्ध के गिजरी बन्दर ( Ghizri bunder ) पर गन्धक के जमाव का पता लगाया गया है। यहां के खनिजों से ६० फी सदी गन्धक प्राप्त किया जा सकता है। किसी समय "लाकि" ( Laki ) नामक स्थान के स्रोतों के स्राव से जो गन्धक के जमाव "जामा" ( Scum ) के रूप में बनते थे, उनसे वहां के ग्राम्यजन गन्धक निकालने का अध्यवसाय करते थे। किन्तु व्यापारिक लाभ के लिये यहां की गन्धक पर्याप्त नहीं समझी जाती।

बर्मा ( Burma )

सन् १८७३ में स्ट्रोवर ( Strover ) नामक विद्वान ने लिखा है कि बर्मी राजाओं के राज्य काल में अपर बर्मा में अनेक स्थानों से २८००० बिस ( एक बर्मी तौल ) गन्धक रौप्यमाक्षिक से उड़ा कर प्रति वर्ष निकाला जाता रहा है। बर्मा में गन्धक व्यवसाय का मुख्य केन्द्र जोन्स ( Jones ) के लेखानुसार "मासुन" ( Mowsun ) नामक प्रान्त के समीप में रहा है।

दक्षिणी शान राज्यों ( Southern Shan states ) में भी गन्धक निकालने का व्यवसाय अब तक होता रहा है। शान राज्यों का अनेक प्रकार की स्फटिक शिलाओं में रौप्यमाक्षिक पाया गया है। इस रौप्यमाक्षिक से गन्धक निकालने का कारोबार चल सकता है। यहां के रौप्यमाक्षिक में सुवर्ण, रजत आदि बहुमूल्य खनिज प्राप्त नहीं होते। ये स्थान इतने निकट हैं कि यहां पर रौप्यमाक्षिक से गन्धक-काम्ल बनाने का व्यवसाय लाभ पूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

दक्षिण हैदराबाद—

के गुलबर्ग ( Gulbarg ) जिले में मुदानूर ( Mudanur ) नामक स्थान पर आधिक्य से रौप्यमाक्षिक प्राप्त होता है, जिससे गन्धक निकालने का व्यवसाय किसी जमाने में होता रहा है।

काश्मीर—

के बाल्टिस्तान ( Baltistan ) जिले में अनेक उष्ण-स्रोतों से गन्धक का जमाव होता है। रूपशु ( Rupshu ) जिले की पुगा घाटी ( Puga valley ) के उष्ण-स्रोत-सम्बन्धी गन्धकीय जमाव से काश्मीर दरबार की तरफ से गन्धक निकालने का कारोबार हुआ करता था, यहां शीत अधिक होने के कारण केवल वर्ष में चार मास तक ही कारखाना चलता था, जिससे गन्धक की वार्षिक निकासी २०-२५ टन हो जाया करती थी।

मद्रास—

के आरकोट ( Arcot ) जिले में आधा मील तक गन्धक का जमाव 'वोलण्डर-पेट ( Wolunderpet ) से कुछेक मील की दूरी पर पोडिया बोलियं ( Wodia Paliam ) नामक जिले में स्थित है।

गोदावरी—

के किनारे २ दलदलों के क्षेत्रों में पानी सूख जाने पर ढेलों के रूप में जमा हुआ गन्धक पाया जाता है। यहां के गन्धक के खनिजों में २८% फी सदी स्वतन्त्र गन्धक और ६८ फी सदी निश्रित रूप में गन्धक पाया जाता है।

ट्रावनकोर—

राज्य में मङ्गामलाई ( Mangamalai ) नामक पहाड़ी पर कान्तमाक्षिक ( Pyrrhotite ) मिलता है इससे गन्धक निकाला जा सकता है। इसी स्थान के पश्चिमी भाग की ओर कुछ दूरी पर एक दूसरा जमाव भी कान्तमाक्षिक का है।

उत्तरी पश्चिमीय सीमाप्रान्त ( North West Frontier Province )

के कोहाट जिले में इन्डस ( Indus ) नदी के पश्चिमी किनारे पर माक्षिकीय ( Pyritous ) मिश्रित स्फटिक ( Alum ) के खपड़े सुधा पाषाण के नीचे जमे पाये जाते हैं। इन खपड़ों से गन्धक निकालने का व्यवसाय किया जाता रहा है। गन्धक निकालने के लिये डमरू यन्त्र का उपयोग किया जाता था। इस यन्त्र द्वारा गन्धक उड़ाकर गन्धक के फूल तय्यार किये जाते रहे हैं।

शिरानी ( Shirani )

नामक जिले में डोमुन्डा ( Domunda ) के पास में रौप्यमाक्षिक के परिवर्तन से गन्धक जमा होता हुआ देखा गया है।

पञ्जाब—

में डेरागाजी खान के सोरीपास नामक स्थान पर गन्धक निकालने का कारोबार चलता था। यहां पर गन्धक गोदन्ती के साथ उष्ण स्रोतों में जमा हुआ दिखाई देता है। गोदन्ती के अन्दर पीत गन्धक के रेशे या शिरायें मिली पाई जाती हैं। कोहाटा की भांति डमरू यन्त्र से उड़ाकर शुद्ध गन्धक एकत्रित करने का व्यवहार यहां भी चालू था। गन्धारी पहाड़ के दक्षिणी किनारे पर सफेद क्षेत्रों में भी गन्धक पाया जाता है।

झङ्ग ( Jhang ) राज्य में किराना पहाड़ी के पाषाणों में कान्त माक्षिक ( Pyrrhotite ) के ढेले पाये गये हैं। हुन्डी वाला नामक स्थान की खान में भी रेलवे स्टेशन के पास विमल के नमूने प्राप्त हुये हैं।

मियां वाला ( Mian wala ) जिले में पेट्रोलियं प्राप्ति की जमीन में गन्धक

पाया जाता है। बोरिङ्ग ( Bowring ) नामक स्थान के पास पेट्रोलियं के स्रोत के समीपसमीप मीलों तक पहाड़ी भूमि पर गोदन्तीके साथ गन्धक पाया जाता है। किन्तु यहां पर व्यापारोपयोगी गन्धक की मात्रा मिलने में सन्देह है।

रावल पिंडी के जिले में मशालापास के पूर्वी ओर की पहाड़ी पर गन्धक की खान में काम होता रहा है।

संयुक्त प्रान्त—

के देहरादून, जोन्सार जिलें में मेवार ( Maiwar ) नामक स्थान की सीसक ( Lead ) की खान की परिधि में गन्धक पाया जाता है और उसका इतना निकास होता है कि जिससे सीसक निकालने का सारा व्यय प्राप्त हो जाया करता है।

कुमायूँ—

जिले के उष्ण स्रोतों से अल्प मात्रा में गन्धक जमा पाया जाता है। कुमायूँ प्रान्त के नीचे लिखे स्थानों का गन्धक प्राप्ति के विषय में विशेषतः उल्लेख है—

( १ ) राम गङ्गा और गर्जिया नदी के तटवर्ती उष्णस्रोत।

( २ ) नन्द प्रयाग के पास मन्सियारी मुल्ला, दसोली और मुल्लानागपुरा।

उक्त स्थानों के अतिरिक्त अनेक उष्ण स्रोतों के आसपास में न्यूनाधिक मात्रा में गन्धक पाया जाता है उसको शैलोदक ( Mineral waters ) कहते हैं।

आज कल माक्षिक का (गन्धक युक्त होने के कारण) गन्धकाम्ल बनाने के लिये अधिकतया व्यवहार किया जाता है। इसलिये गन्धक प्रसङ्ग में गन्धकाम्ल (Sulphuric acid) का संक्षिप्त ब्योरा जानना आवश्यक है। संसार व्यापी योरोपियन युद्ध के कुछ ही पूर्व युनाइटेड स्टेट्स में लगभग ३२००,००० छोटे टन ( Short tons ) गन्धकाम्ल बनता था। युद्ध की दशा में विस्फोटक ( Explosive ) पदार्थों के निर्माण के लिये इसकी मांग अधिक हो गई। सन् १९१६ में ६२१०००० टन गन्धकाम्ल बनाया गया और १९१८ में ८:००००० टन तय्यार किया गया। सन् १९१६ ई० में ४० फी सदी गन्धकाम्ल स्पेनिश माक्षिक ले कर बनाया गया था। शेष ६ फी सदी केनाडियन माक्षिक, १३ फी सदी अमेरिकन माक्षिक, २२ फी सदी ताम्र और यशद के खनिज गलाने से उत्पन्न गन्धकीय वाष्प और शेष १९ फी सदी प्राकृतिक गन्धक लेकर बनाया जाता है। युद्ध के पूर्व प्राकृतिक गन्धक का उपयोग इस कार्य के लिये नहीं किया जाता रहा है। इस लेख से यह स्पष्ट है कि माक्षिक अन्य गन्धक के खनिजों के साथ या स्वतन्त्र ही गन्धकाम्ल बनाने के लिये प्रधानता से उपयोग किया जा रहा है। इस काम के लिये अनेक देश, विशेष कर स्पेन, नारवे (Norway) पोर्च्युगाल (Portugal), फ्रान्स, युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका, जर्मनी २,००००० टन से अधिक माक्षिक की प्रतिवर्ष निकासी करते हैं।

युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका में गन्धक प्राप्ति के मुख्य खनिज माक्षिक और विमल ( Pyrite marcasite pyrrhotite ) ५३.३% व ३८.४% की सदी वाले क्रमशः समझे जाते हैं।

इसी प्रकार पाश्चात्य वैज्ञानिक साहित्य में ज्वलन शक्ति के कारण इसको सल्फर (Sulphur) अर्थात् ज्वलन-शील-लवण के अभिधान से सम्बोधित किया है।

अथ गैरिकम्—

गैरिकभेदाः—

**पाषाणगैरिकं चैकं द्वितीयं स्वर्णगैरिकम् ॥ ४६ ॥**

गैरिक दो प्रकार का होता है एक को पाषाण गैरिक तथा दूसरे को स्वर्ण गैरिक कहते हैं ॥ ४६ ॥

**विमर्शः**—गैरिक को साधारणतया हीमोटाइट ( Heamotite ) कहते हैं। इसके दो भेद हैं प्रथम पाषाणगैरिक तथा द्वितीय स्वर्णगैरिक ( Kidney Iron ore ) है। यह द्वितीय प्रकार का खनिज भारत वर्ष में अल्पमात्रा में मिलता है किन्तु अमेरीका और जर्मन में अधिक मात्रा में मिलता है इसको गैरिक का मणि समझना चाहिए। जहां तक हो सके औषध कर्म में स्वर्ण गैरिक का ही प्रयोग करना चाहिए। गैरिक लौहका प्रधान खनिज है। यह रेड आयर्न आक्साइड (Red Iron oxide ) है। तातां (टाटा) के कारखाने में इससे लोह (Iron) निकाला जाता है।

पाषाणस्वर्णगैरिकयोर्लक्षणम्—

**पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम्।**
**अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम् ॥ ४७ ॥**
**स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत्।**
**हिध्मावमिविषघ्नं च रक्तघ्न स्वर्णगैरिकम्।**
**पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणे ॥ ४८ ॥**

पाषाण गैरिक स्पर्श में कठिन तथा ताम्रवर्ण का होता है, स्वर्ण गैरिक अत्यन्त रक्तवर्ण तथा स्निग्ध और कोमल होता है। यह स्वर्ण गैरिक स्वादु, स्निग्ध, शीतल, नेत्रहितकर, कसैला और रक्तपित्त को नष्ट करता है और हिचकी, वमन, विष इन का नाशक है, रक्तस्राव को नष्ट करता है। पाषाणगैरिक स्वर्णगैरिक से कुछ कम गुणवाला होता है ॥ ४७–४८ ॥

अथ गैरिकशोधनम्—

**गैरिकं तु गवां दुग्धैर्भावितं शुद्धिमृच्छति ॥ ४९ ॥**
**गैरिकं सत्त्वरूपं हि नन्दिना परिकीर्तितम् ॥ ५० ॥**
**कैरप्युक्तं पतेत्सत्त्वं क्षाराम्लस्विन्नगैरिकात्।**
**उपतिष्ठति सूतेन्द्रमेकत्वं गुणवत्तरम् ॥ ५१ ॥**

गैरिक गोदुग्ध से भावना देने पर शुद्ध हो जाता है। नन्दी नामक सिद्ध ने गैरिक को सत्त्व स्वरूप ही बताया है। कुछ लोगों का मत है कि क्षार और अम्ल में स्वेदन करने से गैरिक से सत्त्व निकलता है। गैरिक सत्त्व पारद में मिल जाता है और अधिक गुणकर होता है ॥ ४९–५१ ॥

अथ कासीसरसायनम्—

तत्रादौ कासीसभेदाः—

**कासीसं वालुकाद्येकं पुष्पपूर्वमथापरम् ॥ ५२ ॥**

कासीस दो तरह का होता है। एक को बालु काकासीस तथा द्वितीय को पुष्प कासीस कहते हैं। बालु कासीस को धातु कासीस भी कहते हैं ॥ ५२ ॥

विमर्शः—कासीस को साधारणतया आजकल फेराइ सल्फ ( Ferri Sulph ) अथवा फेरस सल्फेट ( Ferrous Sulphate ) कहते हैं। यह लौह और गन्धक का यौगिक है। यह आजकल प्रायः कृत्रिम ही मिलता है तथा लौह पर गन्धक के तेजाब गन्धकाम्ल ( Sulphuric Acid ) के प्रयोग से तैय्यार किया जाता है। प्रायः प्राकृतिक या कृत्रिम कासीस हरे क्रिस्टलीय रूप में पाया जाता है। यह भङ्गुर होता है तथा जल में विलेय (Soluble) है तथा उस में घुल कर विलयन (Solution) बनता है। इसको अग्नि पर गरम करने से इसमें से जल निकलता है इस जल को क्रिस्टलीकरण का जल ( Water of Crystallisation ) कहते हैं। इसी जल के कारण यह क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार तपाने से जल निकल जाने पर जो चूर्ण अवशेष रह जाता है वह सफेद रङ्ग का हो जाता है। अतः जल ही के कारण यह क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होता है। इसको ज्यादा गरम करने से इससे प्रथम जल निकलता है फिर सफेद रङ्ग का धुआं निकलता है जिसे यदि द्रवीभूत करके परीक्षा करें तो मालूम होता है कि वह तेल ( oil ) सा गाढा पदार्थ है। इसको कुछ बूंदे जल में डालकर स्वाद लेने से खट्टा मालूम होता है तथा इस कासीस के द्रवीभूत धूम्र को लकड़ी या कपड़ों पर डालें तो वे झुलस जावेंगे। परीक्षा करने से यह गन्धकाम्ल ( Sulphuric

Acid) सिद्ध हुआ है। इस निर्णय के पहिले इसको कसीस का तैल कहते थे। इसके निकल जाने से जो पदार्थ शेष रहता है वह कासीस के गुणधर्मों से भिन्न होता है। इस द्रव्यका रङ्ग कपिल होता है तथा जल में डालने से यह बिलकुल अविलय ( In Soluble ) है तथा देखने में भी मोरचे के समान प्रतीत होता है। जो क्रिस्टल स्वरूप कासीस है उसे पुष्पकासीस समझना चाहिए और उसका सूत्र यह ( Fe Soy TH 20 ) है। जो आक्साई के रुप में हो जाता है उसको वालु कासीस समझना चाहिए, तथा उसका सूत्र ( Fe Soy ) है। प्रायः औषध कर्म में पुष्प कासीस को ही अधिक गुणकर होने से ग्रहण करना चाहिए।

बालुकासीसगुणाः—

**क्षाराम्लागुरुधूमाभं सोष्णवीर्यं विषापहम्।**
**वालुकापूर्वकासीसं श्वित्रघ्नं केशरञ्जनम्॥ ५३॥**

बालुकाकासीस क्षार, अम्ल और गुरु होता है तथा वर्ण में धूएं के सदृश होता है और वीर्य में उष्ण और विष विकारों को विनष्ट कर देता है तथा सफेद कुष्ठ को नष्ट करता है और केशों को काले रंग का कर देता है॥ ५३॥

पुष्पकासीसगुणाः—

**पुष्पादिकासीसमतिप्रशस्तं सोष्णं कषायाम्लमतीव नेत्र्यम्।**
**विषानिलश्लेष्मगदव्रणघ्नं श्वित्रक्षयघ्नं कचरञ्जनञ्च॥५४॥**

पुष्प कासीस औषध कर्म में श्रेष्ठ है। यह उष्णवीर्य्य, कषाय और अम्ल होता है। नेत्रों के लिये अत्यन्त हितकर है और विषबाधा, वात और कफ से जन्यरोग, व्रण तथा श्वेतकुष्ठ को नष्ट करता है, शिर के बालों को काला करता है॥ ५४॥

कासीसशोधनम्—

**सकृद्भृङ्गाम्बुना क्लिन्नं कासीसं निर्मलं भवेत्॥ ५५॥**

कासीस का चूर्ण कर भृङ्गराज के स्वरस या क्वाथ में एक बार भिगो देने से शुद्ध हो जाता है॥ ५५॥

सत्त्वग्रहणनिर्देशः—

**तुवरीसत्त्ववत्सत्त्वमेतस्यापि समाहरेत्॥ ५६॥**

वक्ष्यमाण तुवरी ( फिटकरी ) के सत्त्व के निष्कासन की विधि के समान इसका भी सत्त्व निकाल कर ग्रहण करना चाहिए॥ ५६॥

अथ शोधनान्तरम्—

**कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रियाः ॥ ५७ ॥**

कासीस को पञ्चपित्त ( वराह, छाग, महिष, मत्स्य, मयूरपित्त, ) और स्त्री के मासिक धर्म कालीन शोणित से भिगो देने पर शुद्धि होती है ॥ ५७ ॥

कासीसप्रयोगः—

**बलिना हतकासीसं क्रान्तं कासीसमारितम् ।**
**उभयं समभागं हि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ॥ ५८ ॥**
**विषमांशघृतक्षौद्रप्लुतं शाणमितं प्रगे ।**
**सेवितं हन्ति वेगेन श्वित्रं पाण्डुक्षयामयम् ॥ ५९ ॥**
**गुल्मप्लीहगदं शूलं मूलरोगं विशेषतः ।**
**रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ॥ ६० ॥**
**आमसंशोषणं श्रेष्ठं मन्दाग्निपरिदीपनम् ।**
**पलितं बलिभिः सार्धं विनाशयति निश्चितम् ॥ ६१ ॥**

इति कासीसाधिकारः ।

गन्धक से मारण की हुई कासीस भस्म और कासीस से मारण की हुई लौह भस्म या वैक्रान्तभस्म इन दोनों को समान भाग लेकर खरल में घोट लें इसमें से एक शाण (चोअन्नी) भर लेकर त्रिफला चूर्ण और वायविडङ्गचूर्ण विषम मात्रा से घृत तथा मधु मिलाकर प्रातःकाल नित्य सेवन करने से श्वेत कुष्ठ, पाण्डु, क्षयरोग, पञ्चप्रकार के गुल्म, प्लीहवृद्धि, शूल, अर्श नष्ट होते हैं । इस योग को रसायन-विधि से एकवर्ष पर्यन्त सेवन करने से आंवरोग सूख जाता है, मन्दाग्नि दीप्त हो जाती है, बालों का श्वेत होना तथा गिरना दोनों रोग निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८–६१ ॥

अथ तुवरीनिरूपणम्—

तुवरीपरिचयः—

**सौराष्ट्राश्मनि सम्भूता मृत्स्ना सा तुवरी मता ।**
**वस्त्रेषु लिप्यते यासौ मञ्जिष्ठारागबन्धिनी ॥ ६२ ॥**

सौराष्ट्रदेश के पत्थरों की खान से पैदा होने वाली मृत्ति का को तुवरी

( फिटकरी ) कहते हैं। यह वस्त्रों को रंग देती है तथा मंजीठ के रंग को पक्का बनाती है ॥ ६२ ॥

**विमर्शः—तुवरी वह मृत्तिका है कि जिस का शुद्ध करके फिटकरी बनाते हैं। बङ्गाल केमिकल और फार्मास्यूटिकल कम्पनी कलकत्ता आदि स्थान इसका अधिक निर्माण करते हैं।**

तुवरीभेदाः—

**फटकी फुल्लिका चेति द्वितीया परिकीर्तिता ॥ ६३ ॥**

इसी का द्वितीय भेद फुल्लिका या फूलफिटकरी कहलाता ॥ ६३ ॥

तुवरीलक्षणगुणाः—

**ईषत्पीता गुरुः स्निग्धा पीतिकाविषनाशिनी ।**
**व्रणकुष्ठहरा सर्वकुष्ठघ्नी च विशेषतः ॥ ६४ ॥**
**निर्भारा शुभ्रवर्णा च स्निग्धा साम्लाऽपरा मता ।**
**सा फुल्ला तुवरी प्रोक्ता लेपात्ताम्रं चरेदयः ॥ ६५ ॥**
**काङ्क्षी कषाया कटुकाम्लकण्ठ्या केश्या व्रणघ्नी विषनाशिनी च ।**
**श्वित्रापहा नेत्रहिता त्रिदोषशान्तिप्रदा पारदजारणी च ॥ ६६ ॥**

फिटकरी कुछ पीत, स्निग्ध और भारी होती है तथा विष, व्रण, कुष्ट को नष्ट करती है। जो फिटकरी श्वेत होती है वह भार में हलकी, स्निग्ध और खट्टी होती है, इसे फूल फिटकरी कहते हैं। ताम्र पर इसका लेप करने से शीघ्र भस्म हो जाती है। फिटकरी कषाय, कटु तथा अम्ल स्वादवाली होती है। यह कण्ठ और केशों को लाभ पहूंचाती है। व्रणविष, श्वेतकुष्ठ को नष्ट करती है तथा त्रिदोष को साम्यावस्था में रखती है। इससे पारद का जारण हो जाता है ॥ ६४-६६ ॥

अथ तुवरीशोधनम्—

**तुवरी काञ्जिके क्षिप्ता त्रिदिनाच्छुद्धिमृच्छति ॥ ६७ ॥**

फिटकरी को तीन दिन तक काञ्जी में डालकर रखने से शुद्ध हो जाती है॥६७॥

तुवरीसत्त्वपातनविधिः—

**क्षाराम्लैर्मर्दिता धमाता सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ ६८ ॥**
**गोपित्तेन शतं वारान् सौराष्ट्रीं भावयेत्ततः ।**
**धमित्वा पातयेत्सत्त्वं क्रामणं चातिगुह्यकम् ॥ ६९ ॥**

इति तुवर्याधिकारः ।

इसको क्षार और अम्ल पदार्थों के साथ घोटकर फूंकने से औषधोपयोगी सत्त्व निकलता है। अथवा गोपित्त (गोरोचन) से सौ भावना देकर फूंक कर सत्त्वपातन करना चाहिए। यह सत्त्व रस तथा उपरसों के बन्धन करने में श्रेष्ठ है तथा गोपनीय है ॥ ६८-६९ ॥

अथ तालकसञ्ज्ञिरूपणम्—

तालकभेदाः—

**हरतालं द्विधा प्रोक्तं पत्राद्यं पिण्डसंज्ञकम् ॥ ७० ॥**

हरताल दो तरह की होती है, एक पत्र हरताल और दूसरी पिण्डहरताल कहलाती है ॥ ७० ॥

पत्रतालकलक्षणम्—

**स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं तनुपत्रञ्च भासुरम्।**
**तत्पत्रतालकं प्रोक्तं बहुपुत्रं रसायनम् ॥ ७१ ॥**

जो हरताल सुवर्ण के समान पीतवर्ण, भारी, स्निग्ध और छोटे २ पत्रों की रचना वाली तथा चमकती हुई होती है उसे पत्रहरताल कहते हैं। यह पुत्र देने वाली और रसायन गुणदायक होती है ॥ ७१ ॥

पिण्डतालकलक्षणम्—

**निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा गुरु।**
**स्त्रीपुष्पहरणं तच्तु गुणाल्पं पिण्डतालकम् ॥ ७२ ॥**

जो हरताल पत्ररचनारहित, पिण्डसदृश, अल्पसार और भारी होती है उसे पिण्डहरताल कहते हैं। यह स्त्रियों के मासिक धर्म को नष्ट करती है तथा पत्रहरताल से अल्प गुणों वाली होती हैं ॥ ७२ ॥

**विमर्शः—हरताल गन्धक और सङ्खिया का यौगिक है। मनःशिला भी गन्धक और सङ्खिया का यौगिक है किन्तु इनके अणुओं के सङ्गठन के कारण गुणों में भेद हो जाता है और इसी लिये ये दोनों पदार्थ पृथक् २ लिखे गये हैं। आजकल प्रायः ये दोनों पदार्थ कृत्रिम ही बजार में मिलते हैं किन्तु भारतवर्ष के अल्मोड़ा के पहाड़ों की खानों में तथा अन्य देशों में प्राकृतिक भी मिलते हैं। हरताल को आर्पिमेण्ट ( Arpiment ) कहते हैं। इसके शास्त्रों में जो भेद हैं उनका वर्णन मूल में देखिये।**

अथ गुणाः—

**श्लेष्मरक्तविषवातभूतनुत्केवलञ्च खलु पुष्पहृत्स्त्रियाः।**

**स्निग्धमुष्णकटुकञ्च दीपनं कुष्ठहारि हरितालमुच्यते ॥ ७३ ॥**

हरताल दूषित कफ, रक्तविकार, विष, भूतबाधा (कृमियों का आक्रमण) और वायु के विकारों को दूर करती है। स्त्रियों के मासिकधर्म को नष्ट करती है और स्निग्ध, उष्ण, कड़वी तथा अग्निदीपक और कुष्ठ को नष्ट करती है ॥ ७३ ॥

अथ हरतालशुद्धिः—

**स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा ।**
**तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुद्ध्यति ॥ ७४ ॥**

हरताल को दोलायन्त्रद्वारा कुष्माण्डस्वरस, तिलक्षारोदक या चूने के जल में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती है ॥ ७४ ॥

अशुद्धतालसेवनदोषाः—

**अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत् ।**
**तापस्फोटाङ्गसङ्कोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ७५ ॥**

अशुद्ध हरताल आयु को नष्ट करती है, कफ तथा वायु के रोग और प्रमेह उत्पन्न करती है। शरीर में जलन, सङ्कोच और फोड़ा फुन्सी उत्पन्न करती है, इस कारण इसका शोधन करना चाहिये ॥ ७५ ॥

मतान्तरेण तालशोधनम् ।

**तालकं कणशः कृत्वा दशांशेन च टङ्कणम् ।**
**जम्बीरोत्थद्रवैः क्षाल्यं काञ्जिकैः क्षालयेत्ततः ॥ ७६ ॥**
**वस्त्रे चतुर्गुणे बद्ध्वा दोलायन्त्रे दिनं पचेत् ।**
**सचूर्णेनारनालेन दिनं कुष्माण्डजे रसे ।**
**स्वेद्यं वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ७७ ॥**

हरताल के टुकड़े २ कर के उसमें दशमांश सुहागा मिलाकर निम्बूरस से सात बार और काञ्जी से भी सातबार धोट के धोकर चारपर्त किए वस्त्र में बांध कर दोलायन्त्र द्वारा एक दिन तक चूनामिली हुई काञ्जी में स्वेदन करें अथवा कुष्माण्ड जल में या शाल्मली रस में स्वेदन करें इस तरह ताऱ शुद्ध हो जाती है ॥ ७६-७७ ॥

अथ मतान्तरेण शोधनमारणनिरुपणम्—

**मधुतुल्ये घनीभूते कषाये ब्रह्ममूलजे ।**
**त्रिवारं तालकं भाव्यं पिष्ट्वा मूत्रेऽथ माहिषे ॥ ७८ ॥**

उपलैर्दशभिर्देयं पुटं रुद्ध्वाथ पेषयेत् ।
एवं द्वादशधा पाच्यं शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ७९ ॥

ढाक ( पलाश ) की जड़ का शहद् के समान गाढा क्वाथ बनाकर इससे तीन वार शुद्ध हरताल को भावित कर पश्चात् भैंस के मूत्र में घोटकर गोला बनाकर सम्पुट में रख कर कपड़ मिट्टी द्वारा बन्दकर दस जङ्गली उपलों से पुट देना चाहिए । इस तरह द्वादश पुट देने से हरताल शुद्ध तथा मृत हो जाती है । इसको योग बनाने में लेना चाहिये ॥ ७८–७९ ॥

सत्त्वपातनम्—

कुलित्थक्वाथसौभाग्यमहिष्याज्यमधुप्लुतम् ।
स्थाल्यां क्षिप्त्वा विदध्याच्च मल्लेन च्छिद्रयोगिना ॥ ८० ॥
सम्यङ् निरुध्य शिखिनं ज्वालयेत्क्रमवर्धितम् ।
एकप्रहरमात्रं हि रन्ध्रमाच्छाद्य गोमयैः ॥ ८१ ॥
यामान्ते छिद्रमुद्घाट्य दृष्टे धूमे च पाण्डुरे ।
शीतां स्थालीं समुत्तार्य सत्त्वमुत्कृष्य चाहरेत् ॥ ८२ ॥
सर्वपाषाणसत्त्वानां प्रकाराः सन्ति कोटिशः ।
ग्रन्थविस्तरभीत्याऽत्र लिखिता न मया खलु ॥ ८३ ॥

शुद्ध हरताल तथा सुहागा समान भाग लेकर कुलत्थ क्वाथ, भैंस का घी और शहद के साथ घोटकर गोला बना लें, उस गोले को एक हण्डिका में रख कर मध्यछिद्र युक्त सकोरे से हण्डिका ढक दें । पश्चात् अच्छी प्रकार सन्धि बन्धन कर अग्नि जलानी चाहिए । एक प्रहर तक अग्नि मन्द मध्य तथा तीव्र देनी चाहिये तथा शराव के मध्य छिद्र को आर्द्र गोबर से ढक देनी चाहिए । एक प्रहर के अन्त में गोबर को हटाकर छिद्र से देखना चाहिए, यदि देखने से श्वेत ( पाण्डुर ) धूम दिखाई दें तब अग्नि बन्दकर स्वाङ्ग शीत होने पर स्थाली उतारना चाहिए ( एक प्रहर अग्नि देना साधारण कहा है ) फिर सन्धि तोड़कर हण्डिका में लगे हुए सत्त्व को ग्रहण करें । इसी तरह अन्य खनिज पाषाणपदार्थों के सत्त्व निकालने के अनेक प्रकार हैं उन्हें यहां ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं लिखे हैं ॥ ८०–८३ ॥

अथ मतान्तरम्—

पलालकं रवेर्दुग्धैर्दिनमेकं विमर्दयेत् ।

क्षिप्त्वा षोडशिकातैले मिश्रयित्वा ततः पचेत् ॥ ८४ ॥
वनावृतप्रदेशे च समयामावधि ध्रुवम् ।
स्वाङ्गशीतमधःस्थञ्च सत्त्वं श्वेतं समाहरेत् ॥ ८५ ॥
छागलस्याथ बालेन बलिना च समन्वितम् ।
तालकं दिवसद्वन्द्वं मर्दयित्वाऽतियत्नतः ॥ ८६ ॥
युक्तं द्रावणवर्गेण काचकूप्यां विनिःक्षिपेत् ।
त्रिधा ताञ्च मृदा लिप्त्वा परिशोष्य खरातपे ॥ ८७ ॥
ततः खर्परकच्छिद्रे तामर्धां चैव कूपिकाम् ।
प्रवेश्य ज्वालयेदग्निं द्वादशप्रहरावधि ॥
कूपिकण्ठस्थितं शीतं शुद्धं सत्त्वं समाहरेत् ॥ ८८ ॥
पलार्धप्रमितं तालं बद्ध्वा वस्त्रे सिते दृढे ।
बलिनाऽऽलिप्य यत्नेन त्रिवारं परिशोष्य च ॥ ८९ ॥
द्राविते त्रिपले ताम्रे क्षिपेत्तालकपोटलीम् ।
भस्मनाच्छादयेच्छीघ्रं ताम्रेणाऽऽवेष्टितं सितम् ॥
मृदुलं सत्त्वमादद्यात्प्रोक्तं रसरसायने ॥ ९० ॥

इति तालकाधिकारः—

एक पल (चार तोले) भर शुद्ध हरताल को मदार के दुग्ध से एक दिन तक घोटकर एक पल तिल के तैल में मिश्रण कर खुले स्थान में बालुका यन्त्र द्वारा सात प्रहर तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीत होने पर नीचे निकले हुए श्वेत सत्त्व को ग्रहण करें अथवा छाग के पुच्छ के बाल और गन्धक को हरताल के साथ दो दिन तक घोटकर उसमें द्रावक वर्ग के पदार्थ (शहद्, घी, सुहागा) मिलाकर काच कूपी ( आतसी शीशी ) में भर कर तीन कपड़ मिट्टी करके धूप में सुखालें फिर मध्यछिद्र युक्त मिट्टी के कुण्डे में बालु भर कर आतसी शीशी रख दें (आधी शीशी बालु से ढकी रहनी चाहिए) पश्चात्, २ प्रहर तक अग्नि देना चाहिये। स्वाङ्ग शीत होने पर कूपिकण्ठ में लगे हुए श्वेत सत्त्व को ग्रहण करे। अथवा आधे पल ( २ तोला ) शुद्ध हरताल को श्वेत मजबूत वस्त्र में बांधकर पोटली बनालें। उस पोटली को तीन वार गोमूत्र में पिसे हुए गन्धक से लेपकर धूप में सुखाले। फिर तीन पल द्रव हुए ताम्र में पोटली रखकर

राख से अच्छी प्रकार पोटली को ढक दें कुछ काल के बाद ताम्र पर निकली हुई। श्वेत और मृदु सत्त्व को रस और रसायन के लिये ग्रहण करें ॥ ८४–९० ॥

अथ मनःशिलानिरूपणम्—

मनःशिलाया भेदाः—

**मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामाङ्गी कणवीरका ।**
**खण्डाख्या चेति तद्रूपं विविच्य परिकथ्यते ॥ ९१ ॥**

मनःशिला तीन प्रकार की होती है। (१) श्यामाङ्गी, (२) कणवीरका, (३) खण्डाख्या, ॥ ९१ ॥

त्रिविधमनःशिलालक्षणानि—

**श्यामा रक्ता सगौरा च भाराढ्या श्यामिका मता ।**
**तेजस्विनी च निर्गौरा ताम्राभा कणवीरका ॥ ९२ ॥**
**चूर्णीभूताऽतिरक्ताङ्गी सभारा खण्डपूर्विका ।**
**उत्तरोत्तरतः श्रेष्ठा भूरिसत्त्वा प्रकीर्तिता ॥ ९३ ॥**

जो काली, लाल तथा गौर ( सर्षपवर्ण ) वर्ण मिश्रित और भारी होती है उसको श्यामाङ्गी कहते हैं। जो तेज युक्त तथा ताम्र समान चमकदार हो और गौर-वर्ण रहित हो उसको कणवीरका कहते हैं और जो चूर्ण के रूप में हो तथा अत्यन्त रक्त तथा भारयुक्त हो उसको खण्डाख्य मैन शील कहते हैं। इन तीनों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तथा ज्यादे सत्त्ववाली होती हैं ॥ ९२–९३ ॥

अथ गुणाः—

**मनःशिला सर्वरसायनाढ्या तिक्ता कटूष्णा कफवातहन्त्री ।**
**सत्त्वात्मिका भूतविषाग्निमान्द्यकण्डूतिकासाक्षयहारिणी च॥ ९४ ॥**

मनःशिला सब रसायनों में श्रेष्ठ तथा तिक्त, कटु, उष्ण और कफ, वात को नष्ट करती है तथा अधिक सत्त्व वाली शिला भूत, विष, अग्निमांद्य, कण्डू, कास और क्षय रोग को नष्ट करती है ॥ ९४ ॥

अशुद्धशुद्धदोषगुणाः—

**अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च अशुद्धा कुरुते शिला ।**
**मन्दाग्निं मलबन्धं च शुद्धा सर्वरुजापहा ॥ ९५ ॥**

अशुद्ध मनःशिला अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि और मलबन्ध करती है, किन्तु शुद्ध करने पर सकल व्याधियों को नष्ट करती है ॥ ९५ ॥

अथ शोधनम्—

**अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ।**
**भृङ्गवेररसैर्वाऽपि विशुद्ध्यति मनःशिला ॥ ९६ ॥**

मैन शील को अगस्त्य वृक्ष के पत्र के स्वरस से या अदरक (आदी) स्वरस से सात वार भावना देने से शुद्ध हो जाती है ॥ ९६ ॥

मतान्तरम्—

**जयन्तीभृङ्गराजोत्थरक्तागस्त्यरसैः शिलाम् ।**
**दोलायन्त्रे पचेद्यामं यामं छागोत्थमूत्रकैः ।**
**क्षालयेदारनालेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९७ ॥**

अथवा जयन्ती, भृङ्गराज, रक्त अगस्त्य इन में से किसी एक के रस से दोलायन्त्र में एक प्रहर स्वेदन करके पश्चात् उसी प्रकार बकरी के मूत्र में पकावे फिर काञ्जी से धोकर सब रोगों में प्रयोग करे ॥ ९७ ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

**अष्टमांशेन किट्टेन गुडगुग्गुलुसर्पिषा ।**
**कोष्ठ्यां रुद्ध्वा दृढं ध्माता सत्त्वं मुञ्चेन्मनःशिला ॥ ९८ ॥**

शुद्ध मैनशील में अष्टमांश किट्ट ( मण्डूर ) और गुड़ गुग्गुल तथा घृत मिलाकर मूषायन्त्र में बन्दकर खूब फूंकने से सत्त्व निकल जाता है ॥ ९८ ॥

मतान्तरम्—

**भूनागधौतसौभाग्यमदनैश्च विमर्दितैः ।**
**कारवल्लीदलाम्भोभिर्मूषां कृत्वाऽत्र निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥**
**शिलां क्षाराम्लनिष्पिष्टां प्रथमेत्तदनन्तरम् ।**
**कोकिलाद्वयमात्रं हि ध्मानात्सत्त्वं त्यजत्यसौ ॥ १०० ॥**

इति मनःशिलाधिकारः ।

अथवा केचुए (भूनाग) का सत्त्व, सुहागा, मैनफल इनका चूर्ण कर करेले के रस से मूषा का निर्माण कर उसमें क्षार और अम्ल रस में पिसी हुई मनः शिला रख कर कोयलों की आग्न में फूंकने से सत्त्व निकल जाता है ॥ ९९–१०० ॥

अथाञ्जनानां सन्निरूपणम्—

अञ्जनभेदाः—

**सौवीरमञ्जनं प्रोक्तं रसाञ्जनमतः परम् ।**

स्रोतोऽञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च।
नीलाञ्जनं च तेषां हि स्वरूपमिह वर्ण्यते ॥ १०१ ॥

अञ्जन पांच प्रकार के होते हैं' जैसे १ सौवीराञ्जन, २ रसांजन ( रसौंत ), ३ स्रोतोऽञ्जन ( कालासुरमा ), ४ पुष्पाञ्जन ( श्वेतसुरमा ), ५ नीलाञ्जन ( नील सुरमा ) ये पांच भेद हैं ॥ १०१ ॥

विमर्शः—आजकल प्रायः बाजारों में असली अञ्जन नहीं मिलते हैं। इसका कारण प्रथम तो हमारा ही है, क्योंकि हम अच्छी प्रकार से परीक्षा नहीं करते हैं और सिर्फ अज्ञ पंसारी के भरोसे ही पर निर्भर रहते हैं। इसका नतीजा (परिणाम) यह निकलता है कि हमारी औषध शास्त्रोक्त फल नहीं करती है। इस लिये हम नीचे सब प्रकार के अञ्जनों के आधुनिक मत से लक्षण तथा गुण आदि लिख देते हैं। इन लक्षणों से उस द्रव्य की परीक्षा अच्छी प्रकार कर लेनी चाहिए तथा विश्वस्त स्थानों से ही मंगवाने चाहिए। शास्त्र में इनके निम्न पांच भेद किये गये हैं।

"सौवीरमञ्जनं प्रोक्तं रसाञ्जनमतः परम्।
स्रोतोऽञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च।
नीलाञ्जनञ्च तेषां हि पञ्च भेदाः प्रकीर्तिताः॥

१ सौवीराञ्जन-स्टिबनाइटिस ( Stybnitis )
२ रसाञ्जन ( यलो अक्साइड आफ़मर्करी Yellow,oxide of mercury )
३ स्रोतोऽञ्जन (अन्टीमनी सल्फाइड Antimony sulphide या बरनाग सुरमा)
४ पुष्पाञ्जन ( जिन्क आक्साइड Zinc oxide )
५ नीलाञ्जन ( गेलेना या लेड सल्फाइड Lead sulphide )

सौवीराञ्जन—यह नेत्र के लिये अच्छा है तथा यह अन्टिमनी ( An timony ) और गन्धक ( Sulphur ) का यौगिक है। यह सुरमा बेली आसाम से आता है।

शास्त्र में इसका लक्षण यह है वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति। सौवीराञ्जनमित्याहुरायुर्वेद विदोजनाः॥

रसाञ्जन—इसको यलो आकसाइड आफ् मर्करी (Yellowoxide of Mercuty) कहते हैं। आजकल प्रायः चिकित्सक रसाञ्जन शब्द से

"दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पाद पक्त्वा यदा घनम्।
तदा रसाञ्जनं ख्यातं.....इति॥ इस भावप्रकाशोक्त लक्षण विधि से बने हुए द्रव्य ही को सर्वत्र ग्रहण करते हैं। किन्तु यह उचित नहीं है। जहां रसनिर्माण की प्रक्रिया हो वहां रसाञ्जन शब्द से "रसगर्भं रसाञ्जनम्, अर्थात् यलो आक्साइड आफ् मर्करी Yellowoxide of Mercury केनाम से जो खनिज आता

है उसे लेना चाहिए तथा क्वाथ और चूर्णादि प्रक्रिया में भावप्रकाशोक्त रसाञ्जन का ग्रहण करें।

स्रोतोऽञ्जन—यह अन्टीमनी सल्फाइड ( Antimony Sulphide ) है। बर्मा और मैसूर में थोड़ा अन्टीमनी सल्फाइड प्राप्त होता है। आजकल सफेद सुरमे के नाम से बाजारों में जो द्रव्य मिलता है वह केलसाइट है उसे नहीं लेना चाहिए। वह चूने की जाति का एक पत्थर है स्रोतोऽञ्जन नहीं है।

पुष्पाञ्जन—यह Zinc oxide जिन्क आक्साइड है। इसे सफेदा भी कहते हैं। यह जैपूर में बहुत बनता है तथा आजकल पाश्चात्य चिकित्सक नेत्र के लिये यशद के योगों का अत्यन्त प्रयोग करते हैं।

नीलाञ्जन—यह लेड सल्फाइड ( Lead sulphide ) या गेलेना है। यह भी नेत्र के लिये हितकर है तथा बर्मा से अधिक आता है।

सौवीराञ्जनगुणाः—

**सौवीरमञ्जनं धूम्रं रक्तपित्तहरं हिमम्।**
**विषहिध्माक्षिरोगघ्नं व्रणशोधनरोपणम्॥ १०२॥**

अब प्रत्येक का वर्णन करते हैं-सौवीराञ्जन धूम्र वर्ण का होता है। यह रक्तपित्त, विष, हिचकी और नेत्र के रोगों को नष्ट करता है तथा शीतल होता है, व्रण का शोधन करके भर देता है॥ १०२॥

रसाञ्जनगुणाः—

**रसाञ्जनञ्च पीताभं विषवक्त्रगदापहम्।**
**श्वासहिध्मापहं वर्ण्यं वातपित्तास्रनाशनम्॥ १०३॥**

रसाञ्जन कुछ पीले वर्ण का होता है। यह विषबाधा, मुखरोग, श्वास, हिचकी वातरक्त तथा रक्तपित्त को नष्ट करता है और वर्ण बढाता है॥ १०३॥

स्रोतोऽञ्जनगुणाः—

**स्रोतोऽञ्जनं हिमं स्निग्धं कषायं स्वादु लेखनम्।**
**नेत्र्यं हिध्माविषच्छर्दिकफपित्तास्ररोगनुत्॥ १०४॥**

स्रोतोऽञ्जन शीत, स्निग्ध, कषाय, स्वादु तथा लेखन होता है। नेत्रों का हितकारक है और हिचकी, विषबाधा, वमन, कफ, रक्तपित्त इन रोगों को नष्ट करता है॥ १०४॥

लेखनस्वरूपं—

धातून् मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्।
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरं मुष्णं वचा यवाः॥

पुष्पाञ्जनगुणाः—

**पुष्पाञ्जनं सितं स्निग्धं हिमं सर्वाक्षिरोगनुत्।**
**अतिदुर्धरहिध्माघ्नं विषज्वरगदापहम् ॥ १०५ ॥**

पुष्पाञ्जन श्वेत, स्निग्ध और शीतल होता है। समग्र नेत्रके रोगों को नष्ट करता है। दुःसाध्य हिचकी, विषबाधा तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥ १०५ ॥

नीलाञ्जनगुणाः—

**नीलाञ्जनं गुरु स्निग्धं नेत्र्यं दोषत्रयापहम्।**
**रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम् ॥ १०६ ॥**

नीलाञ्जन गुरु, स्निग्ध, नेत्रहितकारी, दोषत्रयनाशक, रसायन और सुवर्ण भस्म करने में श्रेष्ठ (सहायक) और लोहे को मृदु करता है ॥ १०६ ॥

अथ शोधनम्—

**अञ्जनानि विशुध्यन्ति भृङ्गराजनिजद्रवैः ॥ १०७ ॥**

सब प्रकार के अञ्जन भृङ्गराज के स्वरस में घोटने से शुद्ध हो जाते हैं ॥१०७॥

अञ्जनसत्त्वाहरणम्—

**मनोह्वासत्त्ववत्सत्त्वमञ्जनानां समाहरेत् ॥ १०८ ॥**

प्रायःसब अञ्जनों का सत्त्व मनः शिला की सत्त्वपातनविधि से प्राप्त होता है॥१०८॥

स्रोतोऽञ्जनलक्षणम्—

**वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति।**
**घृष्टं तु गैरिकच्छायं स्रोतोजं लक्षयेद्बुधः ॥ १०९ ॥**

जो अञ्जन दीमकगृह के शिखर के स्वरूप का हो और तोड़ने पर नील कमल की प्रभा समान ज्ञात हो तथा घिसने से गैरिक के समान लाल हो वह स्रोतोऽञ्जन कहलाता है ॥ १०९ ॥

अञ्जनरसबन्धनम्—

**गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च।**
**भावितं बहुशस्तच्च शीघ्रं बध्नाति सूतकम् ॥ ११० ॥**

अञ्जन को गोबर के रस, गोमूत्र, घृत, शहत, वसा इन द्रव्यों में क्रमशः बहुत बार भावना देकर शुद्ध करने से वह शीघ्र ही पारद का बन्धन करता है ॥११०॥

रसाञ्जनस्य विशेषशोधनम्—

**सूर्यावर्तादियोगेन शुद्धमेति रसाञ्जनम् ॥ १११ ॥**

रसाञ्जन आगे कहे हुए सूर्यावर्तादियोगों से शुद्ध होता है ॥ १११ ॥

स्रोतोऽञ्जनसत्त्वपातनविधिः—

**राजावर्तकवत्सत्त्वं ग्राह्यं स्रोतोऽञ्जनादपि ॥ ११२ ॥**

इत्यञ्जनाधिकारः ।

स्रोतोऽञ्जन का सत्त्वपातन राजावर्त के सत्त्वपातन की विधि से निकालना चाहिए ॥ ११२ ॥

अथ कङ्कुष्ठनिरूपणम्—

कङ्कुष्ठोत्पत्तिवर्णनं भेदाश्च—

**हिमवत्पादशिखरे कङ्कुष्ठमुपजायते ।**
**तत्रैकं नालिकाख्यं हि तदन्यद्रेणुकं मतम् ॥ ११३ ॥**

कङ्कुष्ठ की उत्पत्ति हिमालय पर्वत के समीपवर्ति शिखरों से होती है । यह नालिकाख्य और रेणुक नाम से दो तरह का होता है ॥ ११३ ॥

द्विविधकङ्कुष्ठलक्षणम्—

**पीतप्रभं गुरु स्निग्धं श्रेष्ठं कङ्कुष्ठमादिमम् ।**
**श्यामपीतं लघु त्यक्तसत्त्वं नेष्टं हि रेणुकम् ॥ ११४ ॥**

प्रथम नालिक नामक कङ्कुष्ठ पीतवर्ण, भारयुक्त तथा स्निग्ध होता है और वह औषध कार्यमें श्रेष्ठ है । रेणुककङ्कुष्ठ कुछ कृष्ण और पीतवर्ण युक्त, लघु तथा सत्त्व-रहित होता है वह औषधकार्य में इष्ट नहीं है ॥ ११४ ॥

कङ्कुष्ठोत्पत्तौ मतान्तराणि—

**केचिद्वदन्ति कङ्कुष्ठं सद्योजातस्य दन्तिनः ।**
**वर्चश्च श्यामपीताभं रेचनं परिकथ्यते ॥ ११५ ॥**
**कतिचित्तेजिवाहानां नालं कङ्कुष्ठसंज्ञकम् ।**
**वदन्ति श्वेतपीताभं तदतीव विरेचनम् ॥ ११६ ॥**

कुछ लोग कङ्कुष्ठ को हस्ती के सद्य उत्पन्न हुए बच्चे का मल कहते हैं और वह कृष्ण तथा पीत दोनों रंग का होता है तथा दस्तकारक होता है । कुछ लोग तेजस्वी अश्वों से उत्पन्न हुए बच्चे के नाभि नाल को कङ्कुष्ठ मानते हैं, इसका वर्ण कुछ सफेद और पीत होता है और वह अत्यन्त विरेचक होता है॥ ११५-११६॥

**विमर्शः—कङ्कुष्ठ खनिज द्रव्य नहीं है । यह हिमालय के ऊपर या सन्निकट प्रदेश में उत्पन्न हुइ वनस्पति के रस से बनाया जाता है । इस रस को धातु या बांस की**

नलियों में सञ्चित करने से कङ्कुष्ठ नलिकाकार मिलता है तथा चूर्ण रूप में भी मिलता है। सम्भव है कि वजन अधिक होने हो के कारण खनिजों के साथ इसका वर्णन किया गया है। अन्य प्रकार से जो मूल में इसकी उत्पत्ति बताइ गई है इसको सत्यता अभी तक प्रमाणित नहीं हुई है।

अथ गुणाः—

**रसे रसायनं श्रेष्ठं निःसत्त्वं बहु वैकृतम् ॥ ११७ ॥**
**कङ्कुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चातिरेचनम्।**
**व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत् ॥ ११८ ॥**

कङ्कुष्ठ रस और रसायन कर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ होता है परन्तु जो सत्त्वरहित होता है वह विकार उत्पन्न करता है। कङ्कुष्ठ तिक्त, कटु और उष्णवीर्य होता है तथा अत्यन्त रेचक भी होता है और व्रण, उदावर्त, शूल, गुल्म, प्लीहवृद्धि, अर्श इनका नाशक है ॥ ११७-११८ ॥

रसोपरसानां सामान्यशोधनं सत्त्वपातनविधिश्च—

**सूर्यावर्तककदली वन्ध्या कोशातकी च सुरदाली।**
**शिग्रुश्च वज्रकन्दो नीरङ्गणाकाकमाची च ॥ ११९ ॥**
**आसामेकरसेन तु लवणक्षाराम्लभाविता बहुशः।**
**शुद्ध्यन्ति रसोपरसा ध्माता मुञ्चन्ति सत्त्वानि ॥ १२० ॥**

सम्पूर्ण रस तथा उपरसों का शोधन और सत्त्वपातन सुवर्चला, केला, वन्ध्याकर्कोटी, कोषातकी (घोषालता), वन्दाल ( पीतघोषा ), जङ्गलीसूरणकन्द, सहजन, बालक या जलपीपल, मकोय इनमें से किसी एक के रस में और क्षार, लवण तथा अम्ल से भावना देकर रस तथा उपरसों को शुद्ध करते हैं और इन्हीं की भावना देकर फूंकने से इनका सत्त्वपातन होता है ॥ ११९-१२० ॥

कङ्कुष्ठशोधनम्—

**कङ्कुष्ठं शुद्धिमायाति त्रिधा शुण्ठ्यम्बुभावितम् ॥ १२१ ॥**
**सत्त्वाकर्षोऽस्य न प्रोक्तो यस्मात्सत्त्वमयं हि तत् ॥ १२२ ॥**

कङ्कुष्ठ को तीन वार सोंठ के क्वाथ से भावित कर देनेसे शुद्ध होजाता है। यह स्वयं सत्त्वस्वरूप होने से इसकी सत्त्वपातनविधि नहीं कही है ॥ १२१-१२२ ॥

रेचकयोगः—

**भजेदेनं विरेकार्थं ग्राहिभिर्यवमात्रया।**

**नाशयेदामपूर्तिं च विरेच्य क्षणमात्रतः ॥१२३ ॥**

कङ्कुष्ठ को एक यव के प्रमाण से मलरोधक जीरक सोंठ आदि के साथ विरेचन के लिये सेवन करना चाहिए। इससे दस्त होकर आमदोष नष्ट होजाता है॥ १२३ ॥

ताम्बूलानुपानवर्जनम्—

**भक्षितः सह ताम्बूलैर्विरिच्यासून्विनाशयेत् ॥ १२४ ॥**

इसको ताम्बूल के साथ सेवन करने से इतने दस्त आते हैं कि प्राणतक के निकलने का भय रहता है ॥ १२४ ॥

अथ विषनाशार्थं कङ्कुष्ठप्रयोगविधिः—

**बर्बूरीमूलिकाक्काथो जीरसौभाग्यकं समम् ।**
**कङ्कुष्ठविषनाशाय भूयो भूयः पिबेन्नरः ॥ १२५ ॥**

इत्युपरसाः ।

अशुद्ध कंकुष्ठ के विष को नष्ट करने के लिये या ज्यादा होने वाली दस्तों को रोकने के लिये बबूर की जड़ के क्काथ में जीरा और टङ्कण समान २ डालकर बार २ पान करना चाहिए या बर्बुरी=वनतुलसी और मूलिका के क्काथ में समान भाग जीरा और सुहागा डालकर पान करना चाहिए ॥ १२५ ॥

अथ साधारणरसपरिगणनम्—

**कम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नवसारकः ।**
**कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिन्दूरहिङ्गुलौ॥ १२६ ॥**
**मृद्दारशृङ्गमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ।**
**रससिद्धिकराः प्रोक्ता नागार्जुनपुरःसरः ॥ १२७ ॥**

कबीला, सखिया, नौसादर, कौड़ी, अम्बर, सिन्दूर, हिङ्गुल, मृद्दारशृङ्ग ये नागार्जुनादिग्रन्थकारों के मत से रससिद्धिप्रदान करने वाले आठ साधारण रस हैं॥१२६-१२७॥

अथ कम्पिल्लः—

**इष्टिकाचूर्णसङ्काशश्चान्द्रकाढ्योऽतिरेचनः ।**
**सौराष्ट्रदेशे चोत्पन्नः स हि कम्पिल्लकः स्मृतः ॥ १२८ ॥**

कबीला ईंट के चूर्ण की तरह लाल और चमकदार होता है। यह अत्यन्त रेचक होता है। यह सौराष्ट्रदेश में खानों से उत्पन्न होता है ॥ १२८ ॥

विमर्शः—यह भी आजकल के वैज्ञानिकों के मत से खनिज द्रव्य नहीं है। किन्तु हिमालय की वनस्पतियों के फलों पर जमने वाला ( होने वाला ) रज ( चूर्ण ) है।

अथ गुणाः—

**पित्तव्रणाध्मानविबन्धहारी श्लेष्मोदरार्तिकृमिगुल्महारी।**
**मूलामशोफज्वरशूलहारी कम्पिल्लको रेच्यगदापहारी ॥ १२९ ॥**

यह पित्त, व्रण, आध्मान और मलावरोध को नष्ट करता है और कफ, उदररोग ( जलोदरादि ), कृमि, गुल्म, अर्श, आमदोष, सूजन, ज्वर, शूल इनको नष्ट करता है और विरेचन के योग्य रोगों को नष्ट करता है ॥ १२९ ॥

इति कम्पिल्लाधिकारः—

अथ गौरीपाषाणः।

**गौरीपाषाणकः पीतो विकटो हतचूर्णकः।**
**स्फटिकाभश्च शङ्खाभो हरिद्राभस्त्रयः स्मृताः ॥ १३० ॥**

गौरीपाषाण (सङ्खिया) के पीत, विकट और हतचूर्णक ये तीन पर्याय हैं। और यह तीन प्रकार का होता है। एक स्फटिक समान श्वेत, दूसरा शङ्खसमान धूसर, तीसरा हलदी के समान पीला होता है ॥ १३० ॥

विमर्शः—गोरीपाषाण (सङ्खिया) को आर्सेनिक ( Arsenic ) कहते हैं। इसका सङ्केत As तथा परमाणुभार ७५ है। यह स्वतन्त्र रूप से कम मिलता है। प्रायः अन्य खनिजों के साथ मिलता है। यह रक्त सल्फाइड ( As 2 S 3 ) अर्थात् मैन्सील और पीत सल्फाइड ( As 2 S 3 ) अर्थात् हरताल के रूप में बहुत प्राचीन समय ही से ज्ञात था। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के चित्रल स्थान में खानों से बहुत हरिताल निकलता था। चीन के यूनान प्रान्त से बहुत सल्फाइड आता था और बर्मा वालों के द्वारा वार्निश बनाने में प्रयुक्त होता था। [illegible] साथ आर्सिनाइड के रूप में यह बहुत फैला हुआ पाया जाता है। इसका सब से महत्त्व का खनिज आर्सेनिकल पीराइटीज़ ( Fe As S ) है जो आयर्न पीराइटीज़ और अन्य सल्फाइड् खनिजों के साथ मिला हुआ पाया जाता है। गन्धकाम्ल के निर्माण में जब आयर्न पीराइटीज़ जलाया जाता है तब आर्सेनिक भी आक्सी कृत हो बाष्पशील आर्सेनिक आकसाइड बन कर भट्ठी से निकली उष्ण गैसों के साथ निकल कर नल में जो धूल इकट्ठी होती है उसमें वह विद्यमान रहता है। इस आक्साइड् को 'सोमल' कहते हैं इसी से आर्सेनिक के यौगिक तैय्यार होते हैं।

आर्सेनिक की उपलब्धि—आर्सेनिक के आक्साइड् वा सल्फाइड् को लकड़ी के कोयलों के साथ गरम करने से आर्सेनिक प्राप्त होता है। प्राकृतिक खनिज को आक्सिजन् के अभाव में गरम करने से भी आर्सेनिक उद्धनित हो ( Sublime ) इस्पात के समान भूरे रङ्ग के चूर्ण में प्राप्त होता है।

इस तरह से उद्धनित आर्सेनिक चमकीला इस्पात के सदृश भूरे रङ्ग का धातु सा देख पड़ने वाला पदार्थ है। इसके क्रिस्टल षट्फलकीय होते हैं। इनका विशिष्ट घनत्व ५. ६२ से ५. ९६ तक होता है। यह बहुत भङ्गुर होता है। यह ताप ( Heat ) और विद्युत् का सुचालक भी होता है। १००० से० पर यह उद्धनित होना आरम्भ करता और धुँधले रक्त ताप पर बहुत शीघ्रता से सीधे बाष्प में बाष्पीभूत होजाता है। इसके बाष्प के घनत्व से मालूम होता है कि इसके अणु चतुर्बन्धक परन्तु उच्च तापक्रम पर यह द्विबन्धक हो जाता है। इसके बाष्प का रङ्ग पीला ( Yellow ) होता है। इसमें लहसुन सी गन्ध होती है।

आर्सेनिक की पहचान—आर्सेनिक और इसके यौगिक बहुत विषाक्त होते हैं। अतः इसको अल्पमात्रा में पहचानना बहुत आवश्यक होता है। अनेक विधियों से आर्सेनिक अल्प मात्रा में पहचाना जाता है। आर्सेनिक को सल्फाइड के रूप में अवक्षिप्त कर उस अवक्षेप को सुखाकर पोटासियम् साइनाइड् के साथ परख नली (टेस्ट-ट्यूब ) में गरम करने से आर्सेनिक का कृष्णवर्ण का निक्षेप प्राप्त होता है। इस निक्षेप को वायु में गरम करने से आर्सिनियस् आक्साइड् का श्वेत क्रिस्टलीय उद्धनित ( Sublimate ) प्राप्त होता है। इसको जल में घोल कर उस में सिल्वर नाइट्रेट् के विलयन को डालने से सिल्व् आर्सेनाइट् का पीत अवक्षेप (यलोडियो जिट) प्राप्त होता है। आर्सेनिक के दो आक्साइड् होते हैं।

१ आर्सिनियस् आक्साइड् वा आर्सेनिक् ट्राइ—आक्साइड् ( Asy o6 )।

२ आर्सेनिक आक्साइड् वा आर्सेनिक पेण्टाक् साइड् ( As2 o5 )

आर्सेनिक् के तीन सल्फाइड् हैं जो प्राकृतिक हैं तथा तीनों कृत्रिम भी होते हैं।

१ आर्सेनिक् डाइ—सल्फाइड् ( मन्साल, रोअलगर् ) As 2 S 2

२ आर्सेनिक् ट्राइ—सल्फाइड् ( हरिताल, ओरपीमेण्ट ) As 2 S 3

३ आर्सेनिक् पेण्टा—सल्फाइड् As 2 S 5

अथ शोधनम्—

पूर्वः पूर्वो गुणैः श्रेष्ठः कारवल्लीफले क्षिपेत्।
स्वेदयेद्धण्डिकामध्ये शुद्धो भवति मूषकः ॥ १३१ ॥

इन में पूर्व २ क्रम से श्रेष्ठ माने जाते हैं। सङ्खिया को छोटेछोटे टुकड़े कर

करेले को चीर कर उस के बीच में रखदे या करेले के रस में दोलायन्त्रद्वारा स्वेदन करके शुद्धकरना चाहिए ॥ १३१ ॥

अथ सत्त्वग्रहणम्—

**तालवद्ग्राह्येत्सत्त्वं शुद्धं शुभ्रं प्रयोजयेत् ॥ १३२ ॥**

इसका सत्त्व हरताल के समान निकालना चाहिए यह सत्त्व श्वेतवर्ण का होता है ॥१३२॥

अथ गुणाः—

**रसबन्धकरः स्निग्धो दोषघ्नो रसवीर्यकृत् ॥ १३३ ॥**

इति गौरीपाषाणाधिकारः ।

संखिया का सत्त्व स्निग्ध, दोषत्रयनाशक होता है तथा पारद का बन्धन करता है और गुण बढाता है ॥ १३३ ॥

अथ नवसारनिरूपणम्—

अथ नवसारोत्पत्तिः—

**करीरपीलुकाष्ठेषु पच्यमानेषु चोद्भवः ।**
**क्षारोऽसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणाभिधः ॥ १३४ ॥**

करीर और पीलु काष्ठ की लकड़ियों को जलाकर भस्म को पानी में घोलकर छाने हुए पानी को क्षारनिर्माण विधि से जलाने पर जो श्वेत भाग कड़ाही में शेष रह जाता है उसे नौसादर कहते हैं, चुल्लिकालवण भी उसी का नाम है ॥ १३४ ॥

विमर्शः—**नवसार को नौसादर करते हैं । इसको सेल अमोनियक,** Sal Ammoniac **तथा अमोनियम् क्लोराइड** Ammonium chloride **कहते हैं । इसका सूत्र** Nhycl **है ।**

**परिचय-नौसादर नमक के समान सफेद क्रिस्टलीय चूर्ण होता है । इसके क्रिस्टल का आकार आंखों से ठीक २ नहीं देखा जा सकता है । साधारणतः ये क्रिस्टल बहुत छोटे और रेशेदार होते हैं । छूने से रूक्ष प्रतीत होते हैं तथा भङ्गुर होते हैं । इन में कोई गन्ध (** Odour ) **नहीं होती है । नौसादर स्वाद में नमकीन होता है । यह जल में बहुत अधिक विलेय है । इसको गरम करने से सफेद धुआं निकलता है । यह पिघलने के पहिले ही उड़ जाता है जिस बर्तन में यह गरम किया जाता हो उस बर्तन पर यदि कोई बर्तन पेंदी की ओर से ढक दिया जाय और उसके अन्दर जल भर देने से नौसादर उड़कर उस ठन्डे बर्तन की पेंदी में लगकर जम जावेगा ।**

मतान्तरेणोत्पत्तिः—

**इष्टिकादहने जातं पाण्डुरं लवणं लघु ।**
**तदुक्तं नवसाराख्यं चूल्लिकालवणञ्च तत् ॥ १३५ ॥**

ईंटों के भट्टों में ईंटों के जलने के समय जो पाण्डुर और हलका लवण प्राप्त होता है उसको नौसादर या चूल्लिकालवण भी कहते हैं ॥ १३५ ॥

अथ गुणाः—

**रसेन्द्रजारणं लोहद्रावणं जठराग्निकृत् ।**
**गुल्मप्लीहास्यशोषघ्नं भुक्तमांसादिजारणम् ।**
**विडाख्यञ्च त्रिदोषघ्नं चूल्लिकालवणं मतम् ॥ १३६ ॥**

नौसादर पारद के जारण और सम्पूर्ण धातुओं के द्रवण करने में उपयुक्त होता है । जठराग्नि को बढाता है तथा गुल्म, प्लीहवृद्धि और मुखशोष को नष्ट करता है, खाये हुए मांसादि गुरूपदार्थों को पचाता है । कुछ लोगों के मत से विड़नामक लवण भी नौसादर कहलाता है और वह त्रिदोषनाशक होता है ॥१३६॥

अथ वराटिकावर्णनम्—

अथ वराटिकालक्षणम्—

**पीताभा ग्रन्थिका पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिका ।**
**रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टा सा चराचरसंज्ञिका ॥ १३७ ॥**

कोडी कुछ पीतवर्ण युक्त और पीठ पर गांठ युक्त और लम्बी तथा गोल आकार की होती है उसे वराटिका कहते हैं तथा उसे रसवैद्य चराचर नाम से भी पुकारते हैं ॥ १३७ ॥

उत्तमादिवराटिका—

**सार्धनिष्कभरा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ।**
**पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ १३८ ॥**

डेढनिष्क ( ६ मासे ) वजन की कौड़ी श्रेष्ठ होती है और एक निष्क वजन की मध्यम होती है और तीन मासे वजन की कौड़ी कनिष्ठ मानी गई है ॥१३८॥

अथ गुणाः—

**परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी ।**
**कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ।**

**रसेन्द्रजारणे प्रोक्ता बिडद्रव्येषु शस्यते ॥ १३९ ॥**
**तदन्ये तु वराटाः स्युर्गुरवः श्लेष्मपित्तलाः ॥ १४० ॥**

भोजन पचने पर उत्पन्न शूल ( परिणाम शूल ) तथा ग्रहणी और क्षय को कौड़ी नष्ट करती है । यह कटु, उष्ण, दीपनी और वृष्य होती है । नेत्रों के लिये हितकर है, वात और कफ को नष्ट करती है, पारद के जारण में श्रेष्ठ है और बिड द्रव्यों में प्रशस्त है, इससे विपरीत लक्षण वाली वराट कौड़ी कहलाती है, वह वजन में भारी और वातपित्त को पैदा करती है ॥ १३९-१४० ॥

अथ शोधनम्—

**वराटाः काञ्जिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयुः ॥ १४१ ॥**

इति वराटिकाधिकारः ।

वराटों को काञ्जी में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाती हैं ॥ १४१ ॥

अथाम्बुजारनिरूपणम्—

अथाम्बुजारपरिचयः—

**समुद्रेणाम्बुनक्रस्य जरायुर्बहिरुज्झितः ।**
**संशुष्को भानुतापेन सोऽम्बुजार इति स्मृतः ॥ १४२ ॥**

समुद्र ने अम्बुनक्रनामक जलचर के जरायु (गर्भ कोष) को बाहर फेंक दिया, पश्चात् वह सूर्य की धूप से सूख गया उसी को अम्बुजार या अम्बर कहते हैं॥१४२॥

अथ गुणाः—

**अम्बुजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् ।**
**वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा ॥ १४३ ॥**

अम्बुजार त्रिदोष को नष्ट करता है, धनुर्वात आदि वातरोगों को दूर करता है, रस वीर्य्य को बढ़ाता है, अग्नि दीपक और धातुओं का जारण करता है ॥१४३॥

अथ तस्य स्वभावतः शुद्धत्वनिर्देशः—

**यदब्धिक्षारसंशुद्धस्तस्माच्छुद्धिर्न हीष्यते ॥ १४४ ॥**

इत्यम्बुजाराधिकारः ।

यह समुद्रक्षार के सम्पर्क में रहने से शुद्ध ही होता है अतः इसकी शुद्धि करना नहीं इष्ट है ॥ १४४ ॥

अथ गिरिसिन्दूरनिरूपणम्—

**महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तः स्थितो रसः ।**
**शुष्कशोणः स निर्दिष्टो गिरिसिन्दूरसंज्ञया ॥ १४५ ॥**

हिमालय, विन्ध्याचल आदि बड़े २ पहाड़ों को चट्टानों के बीच में जो लाल वर्ण का रस सूख जाता है उसको गिरि सिन्दूर नाम से कहते हैं ॥ १४५ ॥

गिरिसिन्दूरगुणाः—

**त्रिदोषशमनं भेदी रसबन्धनमग्रिमम् ।**
**देहलोहकरं नेत्र्यं गिरिसिन्दूरमीरितम् ॥ १४६ ॥**

यह त्रिदोष की शान्ति करता है, दस्तावर है और रसबन्धन करने वाले द्रव्यों में श्रेष्ठ है तथा देह को लौह सदृश दृढ करता है और नेत्र हितकर है॥ १४६॥

अथ हिङ्गुलनिरूपणम्—

हिङ्गुलभेदाः—

**हिङ्गुलः शुकतुण्डाख्यो हंसपादस्तथापरः ॥ १४७ ॥**

हिङ्गुल दो तरह का होता है, एक को शुकतुण्ड और दूसरे को हंसपाद, कहते हैं ॥ १४७ ॥

शुकतुण्डकस्य परिचयः—

**प्रथमोऽल्पगुणस्तत्र चर्मारः स निगद्यते ॥ १४८ ॥**

इन दोनों में जो शुक तुण्ड हिङ्गुल होता है वह अल्प गुणप्रद होता है इसको चर्मार भी कहते हैं ॥ १४८ ॥

हंसपादलक्षणम्—

**श्वेतरेखः प्रवालाभो हंसपादः स ईरितः ॥ १४९ ॥**

जिस हिंगुल का रंग प्रवाल के समान होता है तथा श्वेत रेखाएं पड़ी होती हैं उसे हंसपाक (द) कहते हैं ॥ १४९ ॥

हिङ्गुलगुणाः—

**हिङ्गुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः ।**
**सवरोगहरो वृष्यो जारणायातिशस्यते ॥ १५० ॥**
**एतस्मादाहृतः सूतो जीर्णगन्धसमो गुणैः ॥ १५१ ॥**

हिङ्गुल सब दोषों को नष्ट करता है, अग्नि दीपक और रसायन गुण को करता

है, सर्व रोगों को हरता है, वृष्य है, धातुओं के जारण में श्रेष्ठ है, इससे निकाला हुआ पारद गुणों में गन्धकजीर्ण पारद के समान होता है ॥१५०-१५१॥

अथ शोधनम्—

**सप्तकृत्वाऽऽर्द्रकद्रावैर्लकुचस्याम्बुनाऽपि वा।**
**शोषितो भावयित्वा च निर्दोषो जायते खलु ॥ १५२ ॥**
**किमत्र चित्रं दरदः सुभावितः क्षीरेण मेष्या बहुशोऽम्लवर्गैः।**
**एवं सुवर्णं बहुधर्मतापितं करोति साक्षाद्धरकुङ्कुमप्रभम् ॥१५३॥**

हिङ्गुल को अद्रक के रस की सात भावना देने से वह शुद्ध हो जाता है अथवा बडहल के रस की सात भावना से भी शुद्ध हो जाता है। अथवा हिङ्गुल को भेड़ के दुग्ध से और अम्ल वर्ग के पदार्थों के रस से बहुत वार भावना देकर सेवन करने से मनुष्य को कुङ्कुम (केशर) के समान कान्तिमान् और अच्छे वर्ण युक्त कर देता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अथवा इस प्रकार भावित हिङ्गुल बहुत वार अग्नि में तप्त हुए सुवर्ण तथा केशर के समान देह को कान्ति युक्त कर देता है ॥१५२-१५३॥

हिङ्गुलसत्त्वाकर्षणविधिः—

**दरदः पातनायन्त्रे पातितश्च जलाश्रये।**
**तत्सत्त्वं सूतसङ्काशं जायते नात्र संशयः ॥ १५४ ॥**

हिङ्गुल को शुद्ध कर अधःपातन यन्त्र की ऊर्ध्व हण्डि में लेपकर नीचे की हण्डिका में जलभर कर एक हस्त परिमित गड्ढे में उस यन्त्र को रख दें ऊपर फिर से अग्नि जलाने से पारद के समान सत्त्व नीचे के जल में गिर जायगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १५४ ॥

अथ मृद्दारशृङ्गकम्—

परिचयः—

**सदलं पीतवर्णं च भवेद्गुर्जरमण्डले।**
**अर्बुदस्य गिरेः पार्श्वे जातं मृद्दारशृङ्गकम् ॥ १५५ ॥**

गुजरात प्रान्त में आबु पहाड़ के समीप की खानों से पत्र रचना युक्त और पीतवर्ण की वस्तु प्राप्त होती है उसको मुरदासंग कहते हैं ॥ १५५ ॥

अथ गुणाः—

**सीससत्त्वं गुरु श्लेष्मशमनं पुङ्गदापहम्।**

**रसबन्धनमुत्कृष्टं केशरञ्जनमुत्तमम् ॥ १५६ ॥**

यह गुरू होता है, कफ के विकारों को शान्त करता है, मनुष्यों के उपदंशादि रोगों को नष्ट करता है, यह बन्धन में उत्कृष्ट है, केशों पर लगाने से उन्हें काला कर देता है ॥ १५६ ॥

साधारणशोधननिर्देशः—

**साधारणरसाः सर्वे मातुलुङ्गार्द्रकाम्बुना ।**
**त्रिरात्रं भाविताः शुष्का भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ १५७ ॥**

उपर्युक्त सब प्रकार के साधारण रस बिजौरे निम्बू के रस और अद्रक के रस से तीन दिन तक भावना देकर सुखा लेने से शुद्ध हो जाते हैं ॥ १५७ ॥

अथ सत्त्वानां सामान्यशोधनम्—

**यानि कानि च सत्त्वानि तानि शुध्यन्त्यशेषतः ।**
**ध्मातानि शुद्धिवर्गेण मिलन्ति च परस्परम् ॥ १५८ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये उपरससाधारणरसानां शुद्ध्यादिनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

इसी तरह सम्पूर्ण सत्त्वों को शुद्धिवर्ग के पदार्थों के साथ घोटकर फूंकने से शुद्ध हों जाते हैं और परस्पर मिलने के योग्य हो जाते हैं ॥ १५८ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायामुपरस-साधारणरसनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

# चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ रत्ननिरूपणम्—

अथ मणयः—

**मणयोऽपि च विज्ञेयाः सूतबन्धनकारकाः ॥ १ ॥**

सर्व प्रकार के रत्न भी पारद का बन्धन करते हैं तथा अन्य भी उनके अनेक अद्भुत गुण हैं ॥ १ ॥

अथ मणीनां नामानि—

**वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं मणिः ।**
**चन्द्रकान्तस्तथा चैव राजावर्तश्च सप्तमः ॥ २ ॥**
**गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयस्त्वमी ।**
**पुष्परागो गोमेदश्च पद्मरागो प्रवालकम् ॥ ३ ॥**
**वैदूर्यं च तथा नील एतेऽपि मणयो मताः ।**
**यत्नतः सङ्ग्रहीतव्या रसबन्धस्य कारणात् ॥ ४ ॥**

रत्नों के नाम-वैक्रान्त, सूर्य्यकान्त, हीरा, मोती, मणि, चन्द्रकान्त, राजावर्त, मरकत ( पन्ना ) ये आठ रत्न हैं और पुखराज, गोमेद, पद्मराग, प्रवाल, वैदूर्य और नीलम ये भी मणि या रत्न हैं । ये रत्न पारद का बन्धन करते हैं इसलिये इन्हें सावधानी से इकट्ठा करना चाहिए ॥ २-४ ॥

अथ श्रेष्ठमणीनां नामानि—

**पद्मरागेन्द्रनीलाख्यौ तथा मरकतोत्तमः ।**
**पुष्परागः सवज्राख्यः पञ्च रत्नवराः स्मृताः ॥ ५ ॥**

पद्मराग, इन्द्रनील, मरकत, पुखराज और हीरा ये पांच उत्तम रत्न हैं ॥५॥

अथ ग्रहप्रसादकरत्नानि—

**माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि तार्क्ष्यं च पुष्पं भिदुरं च नीलम् ।**
**गोमेदकं चाथ विदूरकं च क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम् ॥ ६ ॥**

पद्मराग, मोती, मूंगा, मरकत ( पन्ना ), पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद,

वैदूर्य्य, ये नवग्रहों की गणनानुसार उनके नौरत्न हैं अर्थात् इन रत्नों के धारण करने से या दान करने से वे ग्रह शान्त रहते हैं ॥ ६ ॥

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सूर्य, | चन्द्र | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि, | राहु | केतु |
| पद्मराग | मोती | मूंगा | पन्ना | पुखराज | हीरा | नीलम | गोमेद | वैदूर्य्य |

ग्रहानुसारेण रत्नपरिगणनम्—

**ग्रहानुमैत्र्या कुरुविन्दपुष्पप्रवालमुक्ताफलतार्क्यवज्रम् ।**
**नीलाख्यगोमेदविदूरकं च क्रमेण मुद्राधृतमिष्टसिद्ध्यै ॥७॥**

पद्मराग, पुखराज, प्रवाल, मोती, मरकत, हीरा, नीलम, गोमेद, वैदूर्य्य इन नवरत्नों की क्रम से सूर्यादि ग्रहों के साथ मित्रता होने से इनकी मुद्रा बनाकर धारण करना इष्टसिद्धि के लिये श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

रत्नप्रयोगविषयः—

**रसे रसायने दाने धारणे देवताऽर्चने ।**
**सुलक्ष्याणि सुजातीनि रत्नान्युक्तानि सिद्धये ॥ ८ ॥**

उत्तम जाति और उत्तम लक्षण वाले रत्न रस, रसायन, दान, धारण, देवार्चन और इष्टसिद्धि के लिये उत्तम कहे गये हैं ॥ ८ ॥

अथ माणिक्यम्—

द्विविधमाणिक्यनिर्देशः—

**माणिक्यं पद्मरागाख्यं द्वितीयं नीलगन्धि च ॥ ९ ॥**

मणिक्य नाम का रत्न दो तरह का होता है, एक पद्मराग और दूसरा नीलगन्धि कहलाता है ॥ ९ ॥

श्रेष्ठमाणिक्यलक्षणम्—

**कुशेशयदलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं गुरु स्फुटम् ।**
**वृत्तायतं समं गात्रं माणिक्यं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १० ॥**

जो माणिक्य लालवर्ण के कमल के पत्रों के समान लाल वर्ण का हो तथा स्वच्छ, स्निग्ध, भारी, दीप्तिमान, गोल और विस्तृत तथा समानावयव युक्त हो वह श्रेष्ठ होता है और ये लक्षण पद्मराग माणिक्य में होते हैं ॥ १० ॥

श्रेष्ठनीलमाणिक्यलक्षणम्—

**नीलं गङ्गाम्बुसम्भूतं नीलगर्भारुणच्छवि ।**

**पूर्वमाणिक्यवच्छ्रेष्ठं माणिक्यं नीलगन्धि तत् ॥ ११ ॥**

नीलमाणिक्य गङ्गा से उत्पन्न और बाहर से नीलवर्ण का तथा भीतर (मध्य) रक्त वर्ण का होता है, इसी को नीलगन्धि माणिक्य कहते हैं। यह भी पद्मराग-माणिक्य के समान ही उत्तम है ॥ ११ ॥

निकृष्टमाणिक्यलक्षणम्—

**रन्ध्रकार्कश्यमालिन्यरौक्ष्यावैशद्यसंयुतम्।**
**चिपिटं लघु वक्रं च माणिक्यं दुष्टमष्टधा ॥ १२ ॥**

जो छिद्रयुक्त, स्पर्श में कर्कश, मलिन, रुक्ष, अपारभासक, चिपटा, हलका और टेढा इन आठ दोषों से युक्त हो वह त्याज्य है ॥ १२ ॥

माणिक्यगुणाः—

**माणिक्यं दीपनं वृष्यं कफवातक्षयार्तिनुत्।**
**भूतवेतालपापघ्नं कर्मजव्याधिनाशनम् ॥ १३ ॥**

माणिक्य दीपन तथा वृष्य होता है और कफ, वात एवं क्षय रोग को नष्ट करता है, भूत से और वेताल की बाधाओं को दूर करता है। पाप और दुष्टकर्म से जन्य व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १३ ॥

अथ मौक्तिकनिरूपणम्—

प्रशस्तमौक्तिकलक्षणम्—

**ह्लादि श्वेतं लघु स्निग्धं रश्मिवन्निर्मलं महत्।**
**ख्यातं तोयप्रभं वृत्तं मौक्तिकं नवधा शुभम् ॥ १४ ॥**

जो मोती अवलोकन से चित्त प्रसन्न करता हो, श्वेत, लघु, स्निग्ध, चन्द्रकिरणसदृश किरणयुक्त, निर्मल, आकार में बड़ा, जल के समान स्वच्छ और गोल इन नव लक्षणों से युक्त हो वह सब कार्यों में शुभ माना जाता हैं ॥ १४ ॥

मौक्तिकशुक्त्योर्गुणाः—

**मुक्ताफलं लघु हिमं मधुरं च कान्ति-**
**दृष्ट्यग्निपुष्टिकरणं विषहारि भेदि।**
**वीर्यप्रदं जलनिधेर्जनिता च शुक्ति-**
**र्दीप्ता च पक्तिरुजमाशु हरदेवश्यम् ॥ १५ ॥**

मौक्तिक लघु, शीतल, मधुर, कान्तिवर्धक, आंख की ज्योति को बढाने वाला,

अग्नि दीपक, शरीरपुष्टिकारक, विषनाशक, भेदक और वीर्य्य वर्द्धक होता है। समुद्र में पैदा हुई शुक्ति अग्नि को दीप्त करती है तथा परिणामशूल को अवश्य ही दूर करती है ॥ १५ ॥

हेयमौक्तिकम्—

**रूक्षाङ्गं निर्जलं श्यावं ताम्राभं लवणोपमम् ।**
**अर्धशुभ्रं च विकटं ग्रन्थिलं मौक्तिकं त्यजेत् ॥ १६ ॥**

जो मौक्तिक स्पर्श में रूक्ष, शीतलगुणरहित, मटमैला, ताम्र के स्वरूप का और नीमकसदृश धूसर, अर्धश्वेत, विषमाकार और गांठदार हो वह औषधकार्य में त्याज्य है ॥ १६ ॥

मौक्तिकगुणान्तरम्—

**कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्यनुत् ।**
**पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ १७ ॥**

मोती (मुक्ताभस्म) कफ, पित्त, क्षय, कास, श्वास, अग्निमांद्य तथा दाह को नष्ट करता है, आयुष्य हितकर, वृष्य और शरीर पुष्टि कारक माना गया है॥१७॥

अथ प्रवालनिरूपणम्—

प्राह्यप्रवालस्वरूपः—

**पक्वबिम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।**
**स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ १८ ॥**

जो मूंगा पके हुए कुन्दरु ( तुण्डी ) के समान रक्त वर्णवाला गोल, लम्बा, वक्रतारहित, स्निग्ध, छिद्रशून्य और मोटा ऐसे नव(नौ)लक्षणों से युक्त हो वह सर्वकार्यों में शुभ माना गया है ॥ १८ ॥

हेयप्रवालस्वरूपम्—

**पाण्डुरं धूसरं रूक्षं सव्रणं कोटरान्वितम् ।**
**निर्भारं शुभ्रवर्णं च प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा ॥ १९ ॥**

जो मूंगा पाण्डुर ( श्वेतपीतमिश्रवर्ण ), धूसर ( श्वेतकृष्णमिश्रवर्ण ), रूक्ष, सच्छिद्र, कोटर ( खात ) युक्त, भाररहित, श्वेत, सूक्ष्म ( पतला ) इन आठ लक्षणों से युक्त हो वह अभीष्ट नहीं है ॥ १९ ॥

प्रवालगुणः—

**क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु।**
**विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगनुत्॥ २०॥**

प्रवालगुण—प्रवाल क्षय, रक्तपित्त और कास को नष्ट करती है और पाचकाग्नि को दीप्त करती है, भोजन को पचाती है, लघु है, विष, भूतबाधा तथा नेत्ररोग को दूर करती है॥ २०॥

अथ तार्क्ष्यम्—

प्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम्—

**हरिद्वर्णं गुरु स्निग्धं स्फुरद्रश्मिचयं शुभम्।**
**मसृणं भासुरं तार्क्ष्यं गात्रं सप्तगुणं मतम्॥ २१॥**

जो पन्ना हरे रङ्ग का, भारी, स्निग्ध, उज्वलकिरण युक्त, दीप्तियुक्त, मसृण (कोमल) और स्थूल इन सात लक्षणों से युक्त हो वह शुद्ध है॥ २१॥

अप्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम्—

**कपिलं कर्कशं नीलं पाण्डु कृष्णं मलान्वितम्।**
**चिपिटं विकटं रूक्षं लघु तार्क्ष्यं न शस्यते॥ २२॥**

जो पीतवर्ण, खुरदरा, नील, पाण्डु (श्वेतपीतमिश्रितवर्ण), काला, मैल युक्त, रूक्ष, चपटा, विषमाकार और लघु हो वह श्रेष्ठ नहीं है॥ २२॥

तार्क्ष्यगुणः—

**ज्वरच्छर्दिविषश्वाससन्निपाताग्निमान्द्यनुत्।**
**दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्धनम्॥ २३॥**

पन्ना के गुणः—यह ज्वर, वमन, विषबाधा, श्वास, सन्निपात, अग्निमांद्य, अर्श, पाण्डु, सूजन इन रोगों को नष्ट करता है और ओज (बल) को बढ़ाता है॥२३॥

अथ पुष्परागः—

श्रेष्ठपुष्परागलक्षणम्—

**पुष्परागो गुरुः स्निग्धः स्वच्छः स्थूलः समो मृदुः।**
**कर्णिकारप्रसूनाभो मसृणश्च शुभोऽष्टधा॥ २४॥**

जो पुखराज गुरु, स्निग्ध, स्वच्छ, मोटा, समानाकार, कोमल, कर्णिकार

( अमलताल ) के पुष्प के समान कान्ति युक्त और मसृण इन आठ लक्षणों से सम्पन्न हो वह शुभ है ॥ २४ ॥

हेयपुष्परागलक्षणम्—

**निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतश्यामं नतोन्नतम् ।**
**कपिशं कपिलं पाण्डु पुष्परागं परित्यजेत् ॥ २५ ॥**

जो तेज हीन, खुरदरा, रुखा, पीला और काला, ऊंचा या नीचा विषमाकार, कालापन लिये भूरे वर्ण का और पाण्डुर हो वह त्याज्य है ॥ २५ ॥

पुष्परागगुणाः—

**पुष्परागं विषच्छर्दिकफवातान्निमान्द्यनुत् ।**
**दाहकुष्ठास्रशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ २६ ॥**

पुखराज विषबाधा, वमन, कफ और वायु जन्यरोग, मन्दाग्नि, जलन, कुष्ठ और दूषितरक्त के विकारों को शान्त करता है और अग्नि को दीप्त करता है तथा पाचक और लघु होता हैं ॥ २६ ॥

अथ वज्रम्—

वज्रभेदाः—

**वज्रं च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम् ।**
**पूर्वं पूर्वमिह श्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः ॥ २७ ॥**

हीरा तीन प्रकार का होता है, १ नरजाति, २ नारी जाति, और ३ नपुंसक जाति । इन में पूर्व से पूर्व रस वीर्य्य और विपाक में श्रेष्ठ होता है ॥ २७ ॥

अथ पुंवज्रलक्षणम्—

**अष्टास्रं वाऽष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम् ।**
**अम्बुदेन्द्रधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ॥ २८ ॥**

जो हीरा आठकोण या आठ धार वाला हो अथवा छः कोणवाला हो और तेज युक्त तथा इन्द्र के धनुष के समान प्रकाशमान और लघु हो वह नर जाति का हीरा होता है ॥ २८ ॥

स्त्रीनपुंसकवज्रयोर्लक्षणानि—

**तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रं वर्तुलायतम् ।**
**वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किञ्चिद्गुरु नपुंसकम् ॥ २९ ॥**

जो हीरा लम्बा, गोल और चपटा हो वह स्त्री जाति का है। जो हीरा गोल मुड़े कोण वाला और भारी हो वह नपुंसक जाति का होता है ॥ २९ ॥

जातिभेदेनाधिकारीभेदकथनम्—

**स्त्रीपुन्नपुंसकं वज्रं योज्यं स्त्रीपुन्नपुंसके ।**
**व्यत्यासान्नैव फलदं पुंवज्रेण विना क्वचित् ॥ ३० ॥**

जो पुरुष जाति का हीरा हो उसका पुरुष के औषधि के लिये प्रयोग करें और स्त्री जाति का हीरा स्त्री जाति के लिये और नपुंसक जाति के हीरे को नपुंसक जाति के मनुष्य के लिए औषधार्थ प्रयोग करना चाहिये। पुरुष जाति हीरे को छोड़कर अन्य जाति के हीरों का प्रयोग भिन्न २ जाति में करने से लाभ नहीं होता है ॥ ३० ॥

वर्णभेदेनाधिकारीभेदकथनम्—

**श्वेतादिवर्णभेदेन तदेकैकं चतुर्विधम् ।**
**ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रं स्वस्ववर्णफलप्रदम् ॥ ३१ ॥**
**उत्तमोत्तमवर्णं हि नीचवर्णफलप्रदम् ।**
**न्यायोऽयं भैरवेणोक्तो पदार्थेष्वखिलेष्वपि ॥ ३२ ॥**

प्रत्येक जाति का हीरा श्वेत, पीत, लाल, काला इन वर्ण भेदों से चार प्रकार का होता है और ये चारों वर्ण के हीरे क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार जातियों के कहलाते हैं। इनका उपयोग भी अपनी २ जाति में करना चाहिए। उत्तम वर्ण का हीरा नीच वर्ण के पुरुषों में प्रयोग करने से भी फलप्रद होता है किन्तु नीच वर्ण के हीरे को उत्तमवर्ण के पुरुषों में प्रयोग करने से निष्फल होता है। यह न्याय भैरव नाम के आचार्य के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों के विषय में बतलाया गया है ॥ ३२ ॥

अथ वज्रगुणाः—

**आयुष्प्रदं झटिति सद्गुणदं च वृष्यं**
**दावत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम् ।**
**सूतेन्द्रबन्धवधसद्गुणकृत्प्रदीपनं**
**मृत्युञ्जयं तदमृतोपममेव वज्रम् ॥ ३३ ॥**

हीरे के गुणः—यह आयु को बढ़ाता है, तत्काल ही शरीर में अनेक गुणों को

उत्पन्न करता है, वृष्य है, वात-पित्त और कफ की शान्ति करता है, समग्र रोगों का नाश करता है, हीरक भस्म पारद के बन्धन, मारण और उसके गुणों को बढ़ाती है, अग्नि को दीप्त करती है, हीरा मृत्यु को नष्ट करता है। यह एक प्रकार का अमृत ही है ॥ ३३ ॥

रत्नदोषाः—

**ग्रासस्त्रासश्च बिन्दुश्च रेखा च जलगर्भता ।**
**सर्वरत्नेष्वमी पञ्च दोषाः साधारणा मताः ॥**
**क्षेत्रतोयभवा दोषा रत्नेषु न लगन्ति ते ॥ ३४ ॥**

सब प्रकार के रत्नों में ग्रास, त्रास, बिन्दु, रेखा, जलगर्भता ये पांच दोष स्वाभाविक ही होते हैं, परन्तु खान और जल के दोष रत्नों में नहीं होते हैं ॥ ३४ ॥

अथ वज्रशोधनम्—

**कुलत्थक्काथके स्विन्नं कोद्रवक्कथितेन वा ।**
**एकयामावधि स्विन्नं वज्रं शुध्यति निश्चितम् ॥ ३५ ॥**

हीरे को एक प्रहर तक दोलायन्त्र द्वारा कुलत्थी या कोदोधान के क्वाथ में स्वेदन करने से वह शुद्ध हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथ वज्रमारणम्—

**वज्रं मत्कुणरक्तेन चतुर्वारं विभावितम् ।**
**सुगन्धिमूषिकामांसैर्वर्तितैः परिवेष्ट्य च ॥ ३६ ॥**
**पुटेत्पुटैर्वराहाख्यैस्त्रिंशद्वारं ततः परम् ।**
**ध्मात्वा ध्मात्वा शतं वारान्कुलत्थक्काथके क्षिपेत् ।**
**अन्यैरुक्तःशतं वारान्कर्तव्योऽयं विधिः क्रमात् ॥ ३७ ॥**

शुद्ध हीरे को खटमल के रक्त से चार बार भावित कर छछूंदर के मांस में लपेट कर मूषा में बन्दकर ऊपर से कपड़ मिट्टी कर वाराह पुट की विधि से ३० पुट देवें पश्चात् पुट से निकाल कर अग्नि में प्रतप्त कर कुलत्थ के काढ़े में १०० बार बुझावें। कुछ लोगों का मत है कि मत्कुण रक्त की भावना से लेकर प्रतप्त कर कुलत्थ क्वाथ में बुझाने तक जो विधि है उसे क्रम से सौ बार करना चाहिए॥३७॥

मतान्तरेण मारणम्—

**कुलत्थक्काथसंयुक्तलकुचद्रवपिष्टया।**

शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च ॥ ३८ ॥
अष्टवारं पुटेत्सम्यग्विशुष्कैश्च वनोत्पलैः।
शतवारं ततो ध्मात्वा निक्षिप्तं शुद्धपारदे ॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत् ॥ ३९ ॥
सत्यवाक् सोमसेनानिरेतद्वज्रस्य मारणम्।
दृष्टप्रत्ययसंयुक्तमुक्तवान् रसकौतुकी ॥ ४० ॥

अथवा कुलत्थ क्वाथ और बड़हल के फलों के रस में मनःशिला को घोटकर पिष्टि बनालें, पश्चात् उस पिष्टि से मूषा को भीतर से लिप्तकर उसमें हीरे को रख कर मूषा का मुख बन्द कर के सुखा कर जंगली कण्डों की अग्नि में पुट देना चाहिए। इस तरह आठ पुट देकर हीरे को निकाल कर प्रतप्त करके शुद्ध पारद में १०० बार बुझाने से निश्चय ही वज्र की जल में तैरने लायक भस्म हो जाती है। यह हीरे की मारणविधि सत्य बोलने वाले और प्रत्यक्ष अनुभवी, रसक्रिया कौतुकी सोमसेनानी ने कही है ॥ ३८ ॥

मतान्तरेण मारणम्

विलिप्तं मत्कुणस्यास्रैः सप्तवारं विशोषितम्।
कासमर्दरसापूर्णे लोहपात्रे निवेशितम् ॥ ४१ ॥
सप्तवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु।
ब्रह्मज्योतिर्मुनीन्द्रेण क्रमोऽयं परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥
नीलज्योतिर्लताकन्दे घृष्टं घर्मे विशोषितम्।
वज्रं भस्मत्वमायाति कर्मवज्ज्ञानवह्निना ॥ ४३ ॥

अथवा सात वार हीरे को खट्मल के रुधिर से लिप्तकर सुखा लें, पश्चात् हीरे को अत्यन्त तप्त कर कसोंदी के रस से पूर्ण लौहपात्र में बुझाना चाहिए। इस तरह सात वार तप्त कर बुझाने से हीरे की भस्म हो जाती है यह विधि ब्रह्मज्योति नाम के मुनियों के स्वामी ने कही है। अथवा केवल नीलापराजिता या ज्योतिष्मती या क्षीरकाकोली के कन्द के साथ हीरे को घोट कर धूप में सुखाने से जिस प्रकार सत्यज्ञान रूप वन्हि से कर्म नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार हीरे की भस्म हो जाती है, ॥ ४१–४३ ॥

मतान्तरेण मारणम्—

**मदनस्य फलोद्भूतरसेन क्षोणिनागकैः ।**
**कृतकल्केन संलिप्य पुटेद्विंशतिवारकम् ॥**
**वज्रचूर्णं भवेद्वज्र्यं योजयेच्च रसादिषु ॥ ४४ ॥**
**तद्वज्रं चूर्णयित्वाथ किञ्चिट्टङ्कणसंयुतम् ।**
**खरभूनागसत्त्वेन विंशेनावर्तयेद्ध्रुवम् ॥**
**तुल्यस्वर्णेन तद्धमातं योजनीयं रसादिषु ॥ ४५ ॥**

अथवा मैन फल के रस में केचुओं को पीसकर उनका हीरे पर लेपकर पुट देना चाहिए। इस तरह २० पुट देने से रसादि कार्यों में उपयोग करने लायक श्रेष्ठ भस्म हो जाती है। इस हीरक भस्म में थोड़ा सुहागा और बीसवें भाग की मात्रा में केचुओं का सत्त्व मिलाकर घोट लें, फिर समान भाग सुवर्ण मिलाकर मूषा यन्त्र में फूंकने से हीरे का उत्तम रस तैय्यार हो जाता है, इसका रसादि कार्यों में प्रयोग करना चाहिए ॥ ३४–४५ ॥

अथ प्रयोगविशेषेण गुणविशेषकथनम्—

**त्रिगुणेन रसेनैव सम्मर्द्य गुटिकीकृतम् ।**
**मुखे धृतं करोत्याशु चलद्दन्तविबन्धनम् ॥ ४६ ॥**

हीरे की भस्म में त्रिगुण शुद्ध पारद मिलाकर घोट लें, फिर उसकी गोली बनाकर मुख में धारण करने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

अथ वज्ररसायनम्—

**त्रिंशद्भागमितं हि वज्रभसितं स्वर्णं कलाभागिकं ।**
**तारं चाष्टगुणं सिताऽमृतवरं रुद्रांशकं चाभ्रकम् ।**
**पादांशं खलु ताप्यकं वसुगुणं वैक्रान्तकं षड्गुणं**
**भागोऽप्युक्तरसै रसोऽयमुदितः षाड्गुण्यसंसिद्धये ॥ ४७ ॥**

इति वज्राधिकारः,

३० भाग हीरे की भस्म, १६ भाग सुवर्णभस्म, ८ भाग चांदीभस्म, ११ भाग शुद्ध मीठा विष या श्वेत पारद भस्म, ४ भाग अभ्रकभस्म, ८ भाग सुवर्णमाक्षिक भस्म और ६ भाग वैक्रान्त भस्म इन सबको खरल में कसोञ्जी आदि भेषज रसों के साथ घोट कर मात्रापूर्वक सेवन करने से षाड्गुण्य सिद्धि प्राप्त होती है ॥४७॥

अथ नीलनिरूपणम्–नीलभेदाः—

**जलनीलेन्द्रनीलं च शक्रनीलं तयोर्वरम् ॥ ४८ ॥**

नीलम के जलनील और इन्द्रनील ये दो भेद हैं इन दोनों में इन्द्रनील उत्तम होती है, ॥ ४८ ॥

जलशक्रनीलयोःस्वरूपम्—

**श्वैत्यगर्भितनीलाभं लघु तज्जलनीलकम् ।**
**काष्ण्यगर्भितनीलाभं सभारं शक्रनीलकम् ॥ ४९ ॥**

जो नील बीच में श्वेत हो और बाहर से नीलवर्ण युक्त हो और हलकी हो वह जलनील कहलाती है और जो मध्य में काले रङ्ग की हो और बाहर से अत्यन्त नील वर्ण युक्त हो तथा भारी हो वह इन्द्रनील कहलाती है ॥ ४९ ॥

श्रेष्ठनीललक्षणम्—

**एकच्छायं गुरु स्निग्धं स्वच्छ पिण्डितविग्रहम् ।**
**मृदु मध्ये लसज्ज्योतिः सप्तधा नीलमुत्तमम् ॥ ५० ॥**

जो नील एक सी छायावाली या अपने में अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब न बना सके, भारी, स्निग्ध, स्वच्छ, आकार में पिण्डस्वरूप हो और मृदु तथा दीप्त तेज युक्त इन सात लक्षणों से युक्त हो वह इन्द्रनील श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥

श्रेष्ठनीललक्षणम्—

**कोमलं विहितं रूक्षं निर्भारं रक्तगन्धि च ।**
**चिपिटाभं ससूक्ष्मं च जलनीलं हि सप्तधा ॥ ५१ ॥**

जो नील कोमल, रुक्ष, भार रहित, लालवर्णयुक्त या रक्त की गन्ध आती हो, चपटी हो तथा अत्यन्त सूक्ष्म हो, तथा आधी में एक रङ्ग और आधी में अन्य रङ्ग हो, इस तरह सात लक्षण जिसमें हों वह जलनील कहलाती है ॥ ५१ ॥

अथ गुणाः—

**श्वासकासहरं वृष्यं त्रिदोषघ्नं सुदीपनम् ।**
**विषमज्वरदुर्नामपापघ्नं नीलमीरितम् ॥ ५२ ॥**

नीलम—श्वास, कास, त्रिदोष, विषमज्वर और अर्श को नष्ट करती है तथा

---

४७ वें श्लोक में कहे हुए षड्गुण—

गुणाः–विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परताक्रिया ।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य न साध्यमति वर्तते ॥ इति चरकः

वृष्य और अग्निदीपक है। नील को शरीर में धारण करने से पाप भी नष्ट होते हैं॥५२॥

अथ गोमेदः—गोमेदनिरुक्तिः—

**गोमेदः समरागत्वाद्गोमेदं रत्नमुच्यते ॥ ५३ ॥**

गायके भेद के समान वर्ण होने से या रत्नों के समान वर्ण होने से गोमेद को गोमेदरत्न कहते हैं ॥ ५३ ॥

प्रशस्तगोमेदलक्षणम्—

**सुस्वच्छगोजलच्छायं स्वच्छं स्निग्धं समं गुरु ।**
**निर्दलं मसृणं दीप्तं गोमेदं शुभमष्टधा ॥ ५४ ॥**

जो अत्यन्त स्वच्छ और गोमूत्र के समान कान्ति युक्त हो, स्निग्ध तथा समानाकार हो, पत्ररचना रहित, मसृण, तोल में भारी तथा प्रकाशमान हो इस तरह आठ लक्षणों वाली गोमेद शुभ होती है ॥ ५४ ॥

हेयगोमेदलक्षणम्—

**विच्छायं लघु रूक्षाङ्गं चिपिटं पटलान्वितम् ।**
**निष्प्रभं पीतकाचाभं गोमेदं न शुभावहम् ॥ ५५ ॥**

जो गोमेद तेज रहित, लघु, स्पर्श में रूक्ष, चिपटाकार, पत्र रचना युक्त, प्रभा-रहित और पीले काच के समान हो वह अशुभ है ॥ ५५ ॥

अथ गुणाः—

**गोमेदं कफपित्तघ्नं क्षयपाण्डुक्षयङ्करम् ।**
**दीपनं पाचनं रुच्यं त्वच्यं बुद्धिप्रबोधनम् ॥ ५६ ॥**

गोमेद कफ, पित्त, पाण्डु, तथा क्षय को नष्ट करती है और दीपन, पाचन, रुचिवर्द्धक, बुद्धिप्रबोधक तथा चर्म हितकर है ॥ ५६ ॥

अथ क्षेपकश्लोकाः—

रत्नमारणनिषेधः—

**रत्नानां शोधनं श्रेष्ठं मारणं न गुणप्रदम् ।**
**भस्मना वीर्यहानिः स्यात्तस्मात्तानि च शोधयेत् ॥ १ ॥**

कुछ विद्वानों का मत है कि रत्नों का शोधन कर गुलाब पुष्पों के स्वरस (गुलाबजल) में घोट कर पिष्टि बनाकर प्रयोग करना चाहिए । इनकी भस्म करने से विशेष लाभ नहीं होता है अपि तु इन की भस्म बनाने से इन के प्रभाव की हानि होती है ॥ १ ॥

रत्नप्रयोगः—

**रसे रसायने दाने धारणे देवतार्चने।**
**सुलक्ष्याणि सुजातीनि सर्वाण्युक्तानि शोधयेत्॥ २॥**

रत्नों का प्रयोग रस, रसायन, दान, धारण, देवताओं की पूजन में श्रेष्ठजाति और शुभलक्षणों वाले रत्नों का शोधन कर प्रयोग करना चाहिये॥ २॥

रत्नानां साधारणशोधनम्—

**शुद्धिं चरन्ति रत्नानि निम्बाम्बुनि तुषाम्बुनि।**
**विशुध्यन्ति त्रिदिवसैर्विधृतानि च सर्वशः॥ ३॥**

प्रायः सर्व प्रकार के रत्नों को निम्बू के स्वरस या काञ्जी में तीन दिन तक भींगों देने से वे अच्छी तरह शुद्ध हो जाते हैं॥ ३॥

अथ वैदूर्यम्—श्रेष्ठवैदूर्यलक्षणम्—

**वैदूर्यं श्यामशुभ्राभं समं स्वच्छं गुरु स्फुटम्।**
**अभ्रशुभ्रोत्तरीयेण गर्भितं शुभमीरितम्॥ ५७॥**

जो वैदूर्यमणि कालापन लिये हुए श्वेत, समानाकार, निर्मल, तौल में भारी, तेज युक्त और जिसके भीतर श्वेतरंग की रेखाएं हो वह उत्तम होती है॥५७॥

हेयवैदूर्यलक्षणम्—

**श्यामं तोयसमच्छायं चिपिटं लघुकर्कशम्।**
**रक्तगर्भोत्तरीयं च वैदूर्यं नैव शस्यते॥ ५८॥**

जो वैदूर्य काली, जल के समान छाया वाली (प्रभाहीन), चिपटी, वजन रहित, स्पर्श में खुरदरी और मध्य में जिसके लाल रेखाएं हो वह अशुभ है॥५८॥

अथ गुणाः—

**वैदूर्यं रक्तपित्तघ्नं प्रज्ञायुर्बलवर्धनम्।**
**पित्तप्रधानरोगघ्नं दीपनं मलमोचनम्॥ ५९॥**

वैदूर्यमणि रक्तपित्त और पित्त के प्रधान (मुख्य) रोगों (अम्लपित्त) को शान्त करती है। बुद्धि, आयु और बल को बढ़ाती है, मलावरोध को नष्ट करती है तथा पाचकाग्नि को दीप्त करती है॥ ५९॥

अथ रत्नशुद्धिः—

**शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा।**

विद्रुमं क्षारवर्गेण ताक्ष्यं गोदुग्धकैस्तथा ॥ ६० ॥
पुष्परागं च सन्धानैः कुलत्थक्वाथसंयुतैः ।
तन्दुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ।
रोचनाभिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः ॥ ६१ ॥

माणिक्य अम्ल(१)वर्ग के द्रव्यों के रस से, मोती जयन्तीपत्र स्वरस से, प्रवाल क्षार(२)वर्ग के पदार्थों से, पन्ना गोदुग्ध से, पुष्पराग कुलत्थ क्वाथमिश्रित काञ्जी से, हीरा कांटेदार चौलाई के रस से, नीलम नीलवृक्ष ( नीलापराजिता ) के रस से, गोमेद गोरोचन से, वैदूर्य्य त्रिफला के क्वाथ से, एक प्रहर तक दोलायन्त्र द्वारा पकाने से शुद्ध होता है ॥ ६०-६१ ॥

अथ रत्नभस्मक्रमः—

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलागन्धकतालकैः ।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥ ६२ ॥

हीरे को छोड़कर शेष समग्र रत्नों में से प्रत्येक को समान मनःशिला, शुद्ध गंधक और हरताल के साथ मिलाकर बड़हल के रस से घोट कर मूषा में बन्द कर आठ वार फूंकने से भस्म हो जाती है ॥ ६२ ॥

अथ रत्नानां द्रावणम्—

रामठं पञ्चलवणं क्षाराणां त्रितयं तथा ।
मांसद्रवोऽम्लवेतश्च चूल्लिकालवणं तथा ॥ ६३ ॥
स्थूलं कुम्भीफलं पक्वं तथा ज्वालामुखी शुभा ।
द्रवन्ती च रुदन्ती च पयस्या चित्रमूलकम् ॥ ६४ ॥
दुग्धं स्नुह्यास्तथाऽर्कस्य सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।

---

( १ ) अम्लवेतसजम्बीरलुङ्गाम्लचणकाम्लकाः ।
नागरङ्गं तिन्तिड़ी च चिञ्चापत्रञ्च निम्बुकम् ॥
चाङ्गेरी दाड़िमञ्चैव करमर्दं तथैव च ।
एष चाम्लगणः प्रोक्तो वेतसाम्लसमायुतः ॥ १ ॥

( २ ) सुधापलाशशिखरीचिञ्चार्कतिलनालजाः ।
स्वर्जिका यावशूकश्च क्षाराष्टकमुदाहृतम् ॥ २ ॥

गोलं विधाय तन्मध्ये प्रक्षिपेत्तदनन्तरम् ॥ ६५ ॥
गुणवन्नवरत्नानि जातिमन्ति शुभानि च ।
भूर्जे तं गोलकं कृत्वा सूत्रेणावेष्टय यत्नतः ॥ ६६ ॥
पुनर्वस्त्रेण संवेष्टय दोलायन्त्रे निधाय च ।
सर्वाम्लयुक्तसन्धानपरिपूर्णघटोदरे ॥ ६७ ॥
अहोरात्रत्रयं यावत्स्वेदयेत्तीव्रवह्निना ।
तस्मादाहृत्य संक्षाल्य रत्नजां द्रुतिमाहरेत् ।
रत्नतुल्यप्रभा लघ्वी देहलोहकरी शुभा ॥ ६८ ॥

हींग, पाँचो (१)लवण ( सैन्धव, सामुद्र, विड्, सौवर्चल, रोमक ) तीनों (२)क्षार, ( सज्जीखार, यवक्षार, सुहागा ) मांसद्रव=मांसरस या अम्लवेत का भेद और अम्लवेत, नौसादर, कायफल या पक्वजैपालबीज, उत्तम कलिहारी, गोरोचन, मूषाकानी या चीरितपत्र की दन्ती, रुदन्ती, दुग्धी, चित्रकजड़, सेंहुड़ और मदार का दुग्ध इन सबको घोट कर गोला बना लेवें, फिर उस गोले में जिस रत्न की द्रुति करना हो उसको ( जो कि शुभ जाति का हो, नवीन हो ) रख कर बन्द कर दें, फिर गोले को भोज पत्र में रखकर धागे से अच्छी तरह बांधकर और फिर ऊपर से वस्त्र लपेटकर दोला-यन्त्र की विधि से सर्व प्रकार के अम्लवर्ग के पदार्थों के साथ तीन रात दिन तक तीव्र अग्नि से स्वेदन करें। चौथे दिन पोटली को यन्त्र से बाहर निकाल कर धो डालें और उसमें से रत्न की द्रुति को ग्रहण करें। यह रत्नद्रुति रत्नों के समान तेज वाली, लघु और शरीर की सिद्धि करने वाली तथा शुभ है ॥ ६३-६८ ॥

अथ मुक्ताद्रावणे विशेषक्रमः—

मुक्ताचूर्णं तु सप्ताहं वेतसाम्लेन मर्दितम् ।
जम्बीरोदरमध्ये तु धान्यराशौ विनिक्षिपेत् ।

---

( १ ) सैन्धवञ्चाथ सामुद्रं विड्डं सौवर्चलं तथा ।
रोमकञ्चेति विज्ञेयं बुधैर्लवणपञ्चकम् ॥
( २ ) स्वर्ज्जिक्षारो यवक्षारः क्षारद्वयमुदाहृतम् ।
सौभाग्येन समायुक्तं क्षारत्रिकमुदाहृतम् ॥

**सप्ताहादुद्धृतं चैव पुटं दत्वा द्रुतिं हरेत् ॥ ६९ ॥**

मोती चूर्ण को सात दिन तक अम्लवेत के रस से घोटकर गोला बनाकर बड़े निम्बू के बीच में चीर कर रख दें, फिर उस निम्बू को डोरे से बांधकर धान के ढेर में गाड़ दें, सात दिन के बाद जम्बीर को निकाल कर मूषायन्त्र में बन्द करके गजपुट दे देवें। फिर द्रुति ग्रहण करें ॥ ६९ ॥

वज्रद्रावणविशेषविधिः—

**वज्रवल्यन्तरस्थं च कृत्वा वज्रं निरोधयेत् ।**
**अम्लभाण्डगतं स्वेद्यं सप्ताहाद्द्रवतां व्रजेत् ॥ ७० ॥**

शुद्ध हीरे को अस्थिसंहारी (हड़जोड़) के जड़के बीच में गढा (खात)कर रख दें और डोरे से अच्छी प्रकार बन्द कर दें, और दोला यन्त्र में अम्लवर्ग के पदार्थों का रस भरकर सात दिन तक स्वेदन करें तो हीरे का द्रव हो जाता है ॥ ७० ॥

अथ वैक्रान्तद्रावणे विशेषक्रमः—

**श्वेतवर्णं तु वैक्रान्तमम्लवेतसभावितम् ।**
**सप्ताहान्नात्र सन्देहः खरघर्मे द्रवत्यलम् ॥ ७१ ॥**

श्वेत वैक्रान्त के चूर्ण को अम्लवेत के रस की भावना देकर घोट कर तीव्र धूप में सुखावें। इस तरह सात दिन भावना देकर सुखाने से वैक्रान्त की द्रुति हो जाती है ॥ ७१ ॥

अन्यविधिः—

**केतकीस्वरसं ग्राह्यं सैन्धवं स्वर्णपुष्पिका ।**
**इन्द्रगोपकसंयुक्तं सर्वं भाण्डे विनिक्षिपेत् ।**
**सप्ताहं स्वेदयेत्तस्मिन्वैक्रान्तं द्रवतां व्रजेत् ॥ ७२ ॥**

अथवा केवड़े का खरस, सेंधानीमक, स्वर्ण क्षीरी या कटेरी और इन्द्रगोप (बीर बहूटी) इन को पीस कर भाण्ड में भर दें फिर उसमें वैक्रान्त डालकर सात दिन तक स्वेदन करने से वैक्रान्त की द्रुति हो जाती है ॥ ७२ ॥

अन्यविधिः—

**लोहाष्टके तथा वज्रे वापनात्स्वेदनाद्द्रुतिः ।**
**जायते नात्र सन्देहो योगस्यास्य प्रभावतः ॥ ७३ ॥**
**कुरुते योगराजोऽयं रत्नानां द्रावणं परम् ॥ ७४ ॥**

इस उपर्युक्त द्रुति को लोहाष्टक ( स्वर्ण, रोप्य, ताम्र, वङ्ग, सीस, पित्तल, कान्तलौह, तीक्ष्ण लोह ) में या हीरे को भस्म में डालकर स्वेदन करने से उन लोहों का तथा हीरे का द्रवण हो जाता है। यह इस वैकान्त द्रुति का प्रभाव है और यह द्रुति अन्य रत्नों का भी द्रवण कर देती है ॥ ७३–७४ ॥

अथ राजावर्तः—उत्तममध्यमराजावर्तलक्षणम्—

**राजावर्तोऽल्परक्तोरुनीलिकामिश्रितप्रभः।**
**गुरुश्च मसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः ॥ ७५ ॥**

राजावर्त कुछ लाल और अधिक नीले रंग का होता है जो राजावर्त वजन में भारी और कोमल या स्निग्ध हो वह श्रेष्ठ है विपरीत मध्यम होता है ॥ ७५ ॥

अथ गुणाः—

**प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः।**
**दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः ॥ ७६ ॥**

यह बीस प्रकार के प्रमेह, क्षय, अर्श, पाण्डु और वात तथा कफ के विकारों को नष्ट करता है तथा दीपन, पाचन, वृष्य और रसायन होता है ॥ ७६ ॥

राजावर्तादिसामान्यशोधनम्—

**निम्बुद्रवैः सगोमूत्रैः सक्षारैः स्वेदिता खलु।**
**द्वित्रिवारेण शुद्धयन्ति राजावर्तादिधातवः ॥ ७७ ॥**

निम्बूके रस में यवक्षार और गोमूत्र मिलाकर दोलायन्त्र द्वारा राजावर्त तथा अन्यधातुओं को दो या तीन वार एक २ प्रहर तक स्वेदन करने से वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथ राजावर्तशोधनम्—

**शिरीषपुष्पार्द्ररसैः राजावर्तं विशोधयेत् ॥ ७८ ॥**

राजावर्त शिरीषपुष्प और अद्रक के स्वरस में स्वेदन करने से शुद्ध हो जाता है ॥ ७८ ॥

अथ राजावर्तमारणम्—

**लुङ्गाम्बुगन्धकोपेतो राजावर्तो विचूर्णितः।**
**पुटनात्सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत् ॥ ७९ ॥**

राजावर्तभस्म–राजावर्त को समान भाग गन्धक के साथ निम्बू के रस से घोटकर शराव में सम्पुटकर सात वार पुट देने से मृत हो जाता है ॥ ७९ ॥

अथ सत्त्वपातनम्—

**राजावर्तस्य चूर्णन्तु कुनटी घृतमिश्रितम् ।**
**विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम् ॥ ८० ॥**
**सौभाग्यपञ्चगव्येन पिण्डीबद्धन्तु जारयेत् ।**
**ध्मापितं खदिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥ ८१ ॥**

इति राजावर्ताधिकारः ।

शुद्ध राजावर्त का चूर्ण कर समान मनःशिला मिला कर घृत के साथ घोट ले, पश्चात् लौहे के पात्र ( कड़ाही ) में भैंस का दुग्ध डालकर राजावर्त को पकाना चाहिए । दुग्ध के अत्यन्त गाढ़ा होने के बाद उसमें सुहागा और पञ्चगव्य मिलाकर द्रवांश का जारण कर गोला बना लेवे पश्चात् खदिर ( खैर ) के कोयलों की अग्नि में फूंकने से सत्त्व निकल आता है ॥ ८०–८१ ॥

अथ द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः—

**कुसुम्भतैलमध्ये तु संस्थाप्या द्रुतयः पृथक् ।**
**तिष्ठन्ति चिरकालं तु प्राप्ते कार्ये नियोजयेत् ॥ ८२ ॥**

अथ द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः—सब द्रुतियों को पृथक् २ काच के पात्र में कुसुम्भ का तैल डाल कर रखने से वे बहुत समय तक गुणहीन नहीं होती हैं । समय पर औषधिकार्य में उनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८२ ॥

रत्नधारणगुणाः—

**सूर्यादिग्रहनिग्रहापहरणं दार्घायुरारोग्यदं**
**सौभाग्योदयभाग्यवश्यविभवोत्साहप्रदं धैर्यकृत् ।**
**दुश्छायाचलधूलिसंगतिभवाऽलक्ष्मीहरं सर्वदा**
**रत्नानां परिधारणं निगदितं भूतादिभिर्नाशनम् ॥ ८३ ॥**

उपर्युक्त नवरत्नों की ग्रहों के नामानुसार अङ्गूठी बनाकर धारण करने से उन ग्रहों से उत्पन्न बाधाएं दूर होती हैं और दीर्घायु तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा सौभाग्य ( स्त्रीप्रियत्व ) और भाग्य का उदय होता है, वशीकरण सिद्धि की प्राप्ति होती है, ऐश्वर्य और उत्साह बढ़ता है, धैर्य्य प्राप्त होता है, तथा भूतप्रेतों की अशुभछाया, वायु से बहने वाली धूलि समूह से उत्पन्न अशोभा, और भूत प्रेतों की बाधा आदि उपद्रव दूर होते हैं ॥ ८३ ॥

अथ गौरिकम्–गैरिकस्य शोधनं सत्त्वपातनञ्च—

**अनेन क्रमयोगेन गैरिकं विमलं भवेत्।**
**क्रमात् पीतञ्च रक्तञ्च सत्त्वं पतति शोधनम् ॥ ८४ ॥**

इति श्री वैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रत्नानां शुद्ध्यादिनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इसी तरह गैरिक की शुद्धि और सत्त्वपातन भी होता है। पाषाणगैरिक का सत्त्व पीतवर्ण और स्वर्ण गैरिक का सत्त्व लाल वर्ण का होता है ॥ ८४ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य–भाषाटीकायामुपरस-साधारणरसनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः।

## अथ पञ्चमोऽध्यायः।

अथ लोहानि–लोहजातिपरिगणनम्—

**शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम्।**
**पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्।**
**मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्तम्।**
**धातुर्लोहे लुह इति मतः सोऽप्यनेकार्थवाची ॥ १ ॥**

जिन खनिज धातुओं के लिये लोह शब्द का प्रयोग होता है वे लोह धातु तीन प्रकार की होती हैं, जैसे १ शुद्ध लोह, २ पूति लोह, ३ मिश्रलोह, सोना, चांदी, ताम्बा और लोहा ( मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त ) ये चार शुद्ध लोह हैं और नाग ( सीस ), वङ्ग ( राङ्गा ) ये दोनों पूती लोह हैं और पित्तल, कासां, भरत या

रुक्मलोह ये तीनों तृतीय जाति के मिश्र लोह हैं। लुह धातु को लोह अर्थ (कनकरजत के लिये) में या आकर्षण अर्थ में प्रयोग करते हैं क्योंकि सप्त या अष्ट लोह (कनकादिक) भी दोषों को खींच कर निकाल देते हैं और लोह शब्द भी अगुरूलोहित सुवर्णादि अनेक अर्थों का वाचक है ॥ १ ॥

अथ स्वर्णम्-स्वर्णभेदाः—

**प्राकृतं सहजं वह्निसम्भूतं खनिसम्भवम् ।**
**रसेंद्रवेधसञ्जातं स्वर्णं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ २ ॥**

सुवर्ण १ प्राकृत, २ सहज, ३ वन्हि से उत्पन्न, ४ खनिज से उत्पन्न, रसेन्द्र के वेध (स्वेदनादिक) से उत्पन्न, इस प्रकार यह पाँच तरह का होता है ॥ २ ॥

अथ प्राकृतस्वर्णस्योत्पत्तिः—

**ब्रह्माण्डं संवृतं येन रजोगुणभुवा खलु ।**
**तत्प्राकृतमिति प्रोक्तं देवानामपि दुर्लभम् ॥ ३ ॥**

रजोगुण से उत्पन्न हुए जिस सुवर्ण से ब्रह्माजी का आधारभूत स्वर्णमय अण्ड(१)या ब्रह्माण्ड (संसार) पैदा हुआ वह प्राकृत सुवर्ण है और वह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है ॥ ३ ॥

अथ सहजस्वर्णोत्पत्तिः—

**ब्रह्मा येनाऽवृता जातः सुवर्णेन जरायुणा ।**
**तन्मेरुरूपतां यातं सुवर्णं सहजं हि तत् ॥ ४ ॥**

जिस सुवर्ण की जरायु से वेष्टित ब्रह्माजी उत्पन्न हुये वह सुवर्ण मेरूपर्वत के रूप में परिणत हुआ, उसी को स्वाभाविक (सहज) सुवर्ण कहते हैं ॥ ४ ॥

वह्निजस्वर्णोत्पत्तिः—

**विसृष्टमग्निना शर्वं तेजः पीतं सुदुःसहम् ।**
**अभूत्सर्वसमुद्दिष्टं सुवर्णं वाह्निसम्भवम् ॥ ५ ॥**

---

(१) सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अत एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

महादेवजी के वीर्य को अग्निदेवता ने पान कर असह्य होने के कारण बाहर निकाल दिया वही वन्हि से उत्पन्न सुवर्ण कहलाया ॥ ५ ॥

स्वर्णत्रयगुणाः—

**एतत्स्वर्णत्रयं दिव्यं वर्णैः षोडशभिर्युतम् ।**
**धारणादेव तत्कुर्याच्छरीरमजरामरम् ॥ ६ ॥**

ये तीनों प्रकार के सुवर्ण दिव्य शक्तियों से युक्त और सौलह कलाओं से सम्पन्न हैं, इनके केवल धारण करने से शरीर अजर अमर हो जाता है ॥ ६ ॥

खनिजस्वर्णोत्पत्तिस्तल्लक्षणगुणाश्च—

**तत्र तत्र गिरोणां हि जातं खनिषु यद्भवेत् ।**
**तच्चतुर्दशवर्णाढ्यं भक्षितं सर्वरोगहृत् ॥ ७ ॥**

विन्ध्य सुमेरू हिमालयादि पर्वतों को खानों में उत्पन्न हुआ सुवर्ण खनिज सुवर्ण कहलाता है। वह चौदह कलाओं से युक्त होता है तथा सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

वेधजस्वर्णोत्पत्तिर्गुणाश्च—

**रसेन्द्रवेधसम्भूतं तद्वेधजमुदाहृतम् ।**
**रसायनं महाश्रेष्ठं पवित्रं वेधजं हि तत् ॥ ८ ॥**

पारद के वेधन कर्म से उत्पन्न सुवर्ण रसेन्द्रवेधसजात सुवर्ण कहलाता है। यह रसायन है, औषध कर्म में उत्तम तथा पवित्र है ॥ ८ ॥

स्वर्णरौप्ययोस्सामान्यगुणाः—

**आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलव्याधिविध्वंसि पुण्यं**
**भूतावेशप्रशान्तिस्मरभरसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि ।**
**गाङ्गेयं चाथ रूप्यं गदहरमजराकारि मेहापहारी**
**क्षीणानां पुष्टिकारि स्फुटमतिकरणं वीर्यवृद्धिप्रकारि ॥ ९ ॥**

यह स्वर्ण आयु, शोभा, कान्ति, बुद्धि और स्मृति को उत्पन्न करता है, सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है, पवित्र है, भूत प्रेतों के आवेश को दूर करता है, भोग शक्ति को बढाता है, सौख्य और पुष्टि करता है। गाङ्गेय सुवर्ण की तरह चांदी भी रोगों को हरती है, शरीर को अजर ( बुढापारहित ) करती है और

प्रमेह को नष्ट करती है, क्षीण पुरुषों को पुष्ट करती है, बुद्धि को स्फुट करती है और वीर्य्य को बढाती है ॥ ९ ॥

स्वर्णगुणाः—

**स्निग्धं मेध्यं विषगदहरं बृंहणं वृष्यमग्र्यं**
**यक्ष्मोन्मादप्रशमनपरं देहरोगप्रमाथि ।**
**मेधाबुद्धिस्मृतिसुखकरं सर्वदोषामयघ्नं**
**रुच्यं दीप्तिप्रशमितरुजं स्वादुपाकं सुवर्णम् ॥ १० ॥**

सुवर्ण स्निग्ध, वृष्य, बृंहण, मेध्य है और विषबाधा को नष्ट करता है, वन्हि का दीपक, यक्ष्मा का नाशक और शरीर के रोगों का नाशक, मेधा, (स्मरण शक्ति) बुद्धि, स्मृति, सुख का उत्पादक सम्पूर्ण दोष और रोगों का नाशक, रुचिकारक है और वन्हि को दीप्तकर रोगों की शान्ति करता है तथा स्वादुपाक होता है॥१०॥

अशोधितामारितस्वर्णदोषाः—

**सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति रोगवर्गं करोति च ।**
**अशुद्धममृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ ११ ॥**

अशुद्ध और विना भस्म किया हुआ सुवर्ण सेवन करने से सौख्य, वीर्य और बल का नाश होता है तथा रोग समूह को उत्पन्न करता है इसलिये प्रथम शोधन कर भस्म करना चाहिए ॥ ११ ॥

स्वर्णशोधनम्—

**कर्षप्रमाणं तु सुवर्णपत्रं शरावरुद्धं पटुधातुयुक्तम् ।**
**अङ्गारसंस्थं प्रहरार्धमानं ध्मातेन तत्स्यान्ननु पूर्णवर्णम्॥१२॥**

एक कर्ष ( एक तोला ) सुवर्ण के पत्र (वर्क) में गन्धक या सेंधा नमक और गेरू समान भाग मिलाकर शराव में बन्दकर आधे प्रहर तक धोंकनी से तेज अग्नि में फूंकने से सुवर्ण शुद्ध होकर श्रेष्ठ वर्ण का हो जाता है ॥ १२ ॥

लोहमारणार्थमुत्तमद्रव्यकथनम्—

**लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना ।**
**मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः ।**
**अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ॥ १३ ॥**

स्वर्णादि आठ प्रकार के लोहों का पारद भस्म के साथ मारण करना श्रेष्ठ है

और औषधिओं के साथ धातुओं का मारण मध्यम होता है तथा गन्धक मनः शिला आदि के साथ धातुओं ( लोह ) का मारण कनिष्ठ होता है और हरताल के साथ से मारण करने से लोहों में अवगुण उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

अथ स्वर्णमारणम्—

**कृत्वा कण्टकवेध्यानि स्वर्णपत्राणि लेपयेत् ।**
**लुङ्गाम्बुभस्मसूतेन म्रियते दशभिः पुटः ॥ १४ ॥**

शुद्ध किये सोने के सूई से छेदन करने लायक पत्र बनाकर निम्बू के रस में घोटे हुए पारद का मर्दनविधि से उन पर लेप कर देना चाहिये। इस तरह दस पुट देने से भस्म हो जाती है ॥ १४ ॥

अन्यविधिः—

**द्रुते विनिक्षिपेत्स्वर्णे लोहमानं मृतं रसम् ।**
**विचूर्ण्य लुङ्गतोयेन दरदेन समन्वितम् ॥**
**जायते कुङ्कुमच्छायं स्वर्णं द्वादशभिः पुटः ॥ १५ ॥**

अथवा स्वर्ण को पिघला कर समान पारे की भस्म मिलाकर विजौरे निम्बू के रस से घोटकर स्वर्ण के समान हिङ्गुल मिलाकर घोटकर १२ पुट देने से स्वर्ण की केशर के समान लाल भस्म हो जाती है ॥ १५ ॥

अन्यविधिः—

**हेम्नः पादं मृतं सूतं पिष्टमम्लेन केनचित् ।**
**पत्रे लिप्त्वा पुटैः पञ्चादष्टभिर्म्रियते ध्रुवम् ॥ १६ ॥**

अथवा सुवर्ण से चतुर्थांश पारद भस्म को किसी अम्ल में घोट कर सुवर्ण के पत्रों पर लेप कर दें, फिर पुट देवें। इस तरह आठ पुट देने से निश्चय ही सुवर्ण भस्म हो जाती है। प्रत्येक पुट में चतुर्थांश पारद भस्म डालनी चाहिये ॥ १६ ॥

स्वर्णद्रावणम्—

**मण्डूकास्थिवसाटङ्कहयलालेन्द्रगोपकैः ।**
**प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रुतम् ॥ १७ ॥**

सुवर्णद्रुतिः—सुवर्ण को गलाकर मेंढक की हड्डी का चूर्ण और चर्बी, सुहागा, गोड़ेकी लाला ( लार ), वीर बहूटी इनके साथ घोट कर फिर अग्नि पर फूंकने से सुवर्ण की बहुत समय तक ठहरने लायक द्रुति हो जाती है ॥ १७ ॥

अन्यविधिः—

**चूर्णं सुरेन्द्रगोपानां देवदालीफलद्रवैः ।**
**भावितं सदृशं हेम करोति जलवद्द्रुतम् ॥ १८ ॥**

अथवा इन्द्रगोप के चूर्ण को देवदाली ( बन्दाल ) के रस से भावित कर इसको सोने में मिलाकर फूंकने से वह जल के समान द्रुत हो जाता है ॥ १८ ॥

स्वर्णभस्मप्रयोगविधिः—

**एतद्भस्म सुवर्णजं कटुघृतोपेतं द्विगुञ्जोन्मितं**
**लीढं हन्ति नृणां क्षयाग्निसदनं श्वासं च कासारुचिम् ।**
**ओजोधातुविवर्धनं बलकरं पाण्ड्वामयध्वंसनं**
**पथ्यं सर्वविषापहं गरहरं दुष्टग्रहण्यादिनुत् ॥ १९ ॥**

सुवर्णभस्मसेवनविधि–दो रत्ती सुवर्ण भस्म को त्रिकटु और घृत के साथ सेवन करने से मनुष्यों के श्वास, कास, अरूचि, क्षय, अग्निमांद्य, पाण्डु, सर्पविष बाधा, सर्वविषबाधा, दुष्ट ग्रहणी आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं तथा ओज(१) बल और सप्त (२)धातुओं की वृद्धि होती है और यह अत्यन्त हितकर है ॥ १९ ॥

अशुद्धामारित स्वर्णदोषाः—

**बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजं कोपयतीव काये ।**
**असौख्यकारं च सदैव हेमापक्वं सदोषं मरणं करोति ॥२०॥**

इति स्वर्णधिकारः—

अशुद्धस्वर्णदोषः—

अशुद्ध और उत्तमविधि से अपक्व सुवर्ण के सेवनकरने से मनुष्यों के बल

---

( १ ) हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीषद्रक्तं सपीतकम् ।
ओजः शरीरे सङ्ख्यातं तन्नाशान्नाशमेति विनश्यति ॥
अष्टबिन्दुप्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ।
अग्निषोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितञ्च तत् ॥
ओजश्च तेजोधातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥
( २ ) रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।

और वीर्य्य का हरण होता है, शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तथा बैचेनी और मरण करता है ॥ २० ॥

अथ रजतम्—रजतभेदाः—

**सहजं खनिसञ्जातं कृत्रिमं त्रिविधं मतम् ।**
**रजतं पूर्वपूर्वं हि स्वगुणैरुत्तरोत्तरम् ॥ २१ ॥**

चान्दी सहज, खनिज और कृत्रिम भेद करके तीन तरह की होती है। तीनों में पूर्व पूर्व की चांदी अपने २ गुणों में उत्कृष्ट होती है ॥ २१ ॥

सहजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च—

**कैलासाद्यद्रिसम्भूतं सहजं रजतं भवेत् ।**
**तत्स्पृष्टं हि सकृद्व्याधिनाशनं देहिनां भवेत् ॥ २२ ॥**

कैलासादि पर्वत में उत्पन्न होने वाली चान्दी सहज होती है। इसके स्पर्शमात्र से मनुष्यों की व्याधियां तुरन्त नष्ट हो जाती हैं ॥ २२ ॥

खनिजरौप्योत्पत्ति र्गुणाश्च—

**हिमालयाद्रिकूटेषु यद्रूप्यं जायते हि तत् ।**
**खनिजं कथ्यते तज्ज्ञैः परमं हि रसायनम् ॥ २३ ॥**

हिमालय आदि पर्वतों के शिखरों की खानों से उत्पन्न चान्दी को विद्वान् लोग खनिज चान्दी कहते हैं और वह उत्तम रसायन है ॥ २३ ॥

कृत्रिमरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च—

**श्रीरामपादुकान्यस्तं वङ्गं यद्रूप्यतां गतम् ।**
**तत्पादरूप्यमित्युक्तं कृत्रिमं सर्वरोगनुत् ॥ २४ ॥**

श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के स्पर्श से जो वङ्ग चान्दी के रूप में परिणत हुआ उसको रामचन्द्रजी के चरण की कृत्रिम चान्दी कहते हैं। यह सर्वरोगों को नष्ट करती है॥ २४॥

उत्तमरौप्यलक्षणम्—

**घनं स्वच्छं गुरु स्निग्धं दोहे छेदे सितं मृदु ।**
**शङ्खाभं मसृणं स्फोटरहितं रजतं शुभम् ॥ २५ ॥**

श्रेष्ठ रजत के लक्षण–जो चान्दी वजनदार, स्वच्छ, भारी, स्निग्ध जलाने और काटने पर श्वेत, कोमल, मसृण, शङ्ख के समान और खातों से रहित हो वह औषधि में श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

निकृष्टरौप्यलक्षणम्—

**दाहे रक्तं च पीतं च कृष्णं रूक्षं स्फुटं लघु ।**
**स्थूलाङ्गं कर्कशाङ्गं च रजतं त्याज्यमग्निधा ॥ २६ ॥**

जो चान्दी तपाने से लाल, पीत और कृष्ण मालूम हो तथा रूक्ष, हलकी, खाद युक्त, मोटे अङ्ग वाली और कठोर हो वह त्याज्य है ॥ २६ ॥

अथ रौप्यगुणाः—

**रूप्यं विपाकमधुरं तुवराम्लसारं**
**शीतं सरं परमलेखनकं च रूप्यम् ।**
**स्निग्धं च वातकफजिज्जठराग्निदीपि**
**बल्यं परं स्थिरवयस्करणञ्च मेध्यम् ॥ २७ ॥**

चांदी के गुण—

चांदी पाक में मधुर, कषाय, अम्लरस वाली और शीतल, दस्तावर, शरीर के भेद को नष्ट करने वाली, स्निग्ध वात और कफ के रोग को नष्ट करने वाली, जठराग्नि की दीपक, बलदायक, अत्यन्त बुद्धिवर्द्धक और अवस्था बढ़ाने वाली होती है ॥ २७ ॥

अथ गुणान्तरम्—

**रौप्यं शीतं कषायाम्लं स्निग्धं वातहरं गुरु ।**
**रसायनविधानेन सर्वरोगापहारकम् ॥ २८ ॥**

चान्दी शीतल, कषाय, अम्ल, स्निग्ध, वातहर, गुरू और रसायन विधि से सब रोगों का नाश करने वाली है ॥ २८ ॥

स्वर्णादिशोधनम्—

**तले तक्रे गवां मूत्रे ह्यारनाले कुलत्थजे ।**
**क्रमान्निषेचयेत्तप्तं द्रावे द्रावे तु सप्तधा ॥**
**स्वर्णादिलोहपत्राणां शुद्धिरेषा प्रशस्यते ॥ २९ ॥**

स्वर्णादि लोह पत्रों को प्रतप्त कर तिलतैल, मट्ठा, गोमूत्र, काञ्जी, कुलत्थक्वाथ इन में से प्रत्येक में सात २ वार बुझाना चाहिए । इस तरह सोना और चान्दी के पत्रों की शुद्धि करना श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

अथाशोधितमारितलोहस्य दोषाः—

**आयुः शुक्रं बलं हन्ति तापविड्बन्धरोगकृत्।**
**अशुद्धं न मृतं तारं शुद्धं मार्यमतोबुधैः॥ ३०॥**

अशुद्ध और भस्म न की हुई चान्दी अवस्था, बल तथा शुक्र को नष्ट करती है और मलावरोध, जलन आदि रोग पैदा करती है, इसलिये विद्वानों को चाहिये कि चांदी को शुद्ध कर भस्म करें॥ ३०॥

अथ रौप्यस्य विशेषशोधनम्—

**नागेन टङ्कणेनैव वापितं शुद्धिमृच्छति।**
**तारं त्रिवारं निक्षिप्तं तैले ज्योतिष्मतीभवे॥ ३१॥**

चांदी को समान सीस भस्म और सुहागे के साथ पीसकर प्रतप्त कर के ज्योतिष्मती ( मालकांगनी ) के तैल में तीन बार बुझाने से इसकी शुद्धि होती है॥३१॥

अन्यविधिः—

**खर्परे भस्मचूर्णाभ्यां परितः पालिकां चरेत्।**
**तत्र रूप्यं विनिक्षिप्य समसीससमन्वितम्॥ ३२॥**
**जातसीसक्षयं यावद्धमेत्तावत्पुनः पुनः।**
**इत्थं संशोधितं रूप्यं योजनीयं रसादिषु॥ ३३॥**

अथवा किसी मिट्टी के पात्र में भस्म (राख) और सुहागे के चूर्ण का आलवाल (क्यारी) बनाकर उसमें समान सीसभस्म और सुहागे के साथ पिसी हुई चांदी को रखकर धौंकनी से चांदी में सीसभस्म नहीं मिले तब तक धमन करना चाहिये इस तरह शुद्ध हुई चांदी का सब कार्यों में प्रयोग करना चाहिये॥ ३२-३३॥

अथ रौप्यमारणम्—

**लकुचद्रवसूताभ्यां तारपत्रं प्रलेपयेत्।**
**ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा मूषामध्ये निरुध्य च॥ ३४॥**
**स्वेदयेद्वालुकायन्त्रे दिनमेकं दृढाग्निना।**
**स्वाङ्गशोतां च तां पिष्टिं साम्लतालेन मर्दिताम्।**
**पुटेद्द्वादशवाराणि भस्मीभवति रूप्यकम्॥ ३५॥**

बड़हल वृक्ष के फल के रस में पारद को घोटकर चांदी के पत्रों पर मर्दन-विधि से लेप कर के ऊपर और नीचे गन्धक का चूर्ण रखकर मूषा यन्त्र

में बन्दकर दें फिर कपड़मिट्टीकर वालुकायन्त्र द्वारा तीव्र अग्नि में एक दिन तक पकावें। स्वाङ्ग शीत होने पर चांदीके पत्रों को निकाल कर घोट लें फिर उसमें समान शुद्ध हरताल डालकर निम्बू के रस में घोट कर सम्पुट में रख फूंक दे, इस तरह १२ पुट देने से चांदी की भस्म हो जाती है ॥ ३४–३५ ॥

अन्यविधिः—

**माक्षीकचूर्णलुङ्गाम्लमर्दितं पुटितं शनैः ।**
**त्रिंशद्वारेण तत्तारं भस्मसाज्जायतेतराम् ॥ ३६ ॥**

अथवा चांदी का चूर्ण और समान शुद्ध सुवर्णमाक्षिक चूर्ण इन दोनों को निम्बू के रस में घोट कर सम्पुट कर के ३० पुट देने से उत्तम भस्म हो जाती है॥३६॥

रौप्यस्यनिरुत्थभस्मीकरणम्—

**भाव्यं ताप्यं स्नुहीक्षीरैस्तारपत्राणि लेपयेत् ।**
**मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ३७ ॥**

अथवा थूहर के दुग्ध से सोनामाखी को पीसकर चांदी के पत्रों पर लेप कर दें फिर पुट के विधान से फूंकने पर चांदी की निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥३७॥

अन्यविधिः—

**तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।**
**मर्द्यं जम्बीरजद्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ ३८ ॥**
**शोधयेदन्धयन्त्रे च त्रिंशदुपलकैः पचेत् ।**
**चतुर्दशपुटैरेवं निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ३९ ॥**

अथवा चार भाग चांदी के पत्रों पर एक भाग शुद्ध हरताल को जम्बीर के रस से घोट कर लेप कर दें, फिर उन्हें अन्धमूषा में रख कर तीस उपलों की आंच में पुट देवे, इस तरह १४ पुट देने से निश्चय ही चांदी की निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥ ३८–३९ ॥

स्वर्णरौप्ययोर्द्रावणम्—

**सप्तधा नरमूत्रेण भावयेद्देवदालिकाम् ।**
**तच्चूर्णवापमात्रेण द्रुतिः स्यात्स्वर्णतारयोः ॥ ४० ॥**

सुवर्णरजतद्रुतिः—देवदाली ( वन्दाल ) को मनुष्य के मूत्र में सात वार घोट कर अग्नि में पिघले सुवर्ण या रजत के अन्दर डालने से दोनों की द्रुति हो जाती है ॥ ४० ॥

अथ रौप्यप्रयोगः—

**भस्मीभूतं रजतममलं तत्समौ व्योमभानू**
**सर्वैस्तुल्यं त्रिकटु सवरं सारघाज्येन युक्तम् ॥**
**लीढं प्रातः क्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः**
**श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान् ॥ ४१ ॥**

इति रजताधिकारः ।

रजतभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म इन तीनों को समान समान भाग की मात्रा में लेकर तीनों के बराबर त्रिकटु ( सोंठ, मिर्च, पिप्पल ) का चूर्ण लेकर घोट लें, पश्चात् इस योग में से उचित मात्रा ( दो रत्ती ) लेकर शहद और घृत के साथ प्रातः सेवन करने से यक्ष्मा, पाण्डु, अर्श, श्वास, कास, नेत्रविकार तथा समग्र पित्तजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

अथ ताम्रम्—

ताम्रभेदाः—

**म्लेच्छं नेपालकं चेति तयोर्नेपालकं वरम् ।**
**नेपालादन्यखन्युत्थं म्लेच्छमित्यभिधीयते ॥ ४२ ॥**

ताम्र के म्लेच्छ और नेपाल ये दो भेद हैं । इन दोनों में नेपाल संज्ञक ताम्र श्रेष्ठ होता है । नेपाल देश की खानों के अतिरिक्त जिन खानों से ताम्र निकलता है वह म्लेच्छ कहलाता है ॥ ४२ ॥

अथ म्लेच्छताम्रस्य लक्षणम्—

**सितकृष्णारुणच्छायमतिवामि कठोरकम् ।**
**क्षालितं च पुनः कृष्णमेतन्म्लेच्छकताम्रकम् ॥ ४३ ॥**

जो ताम्र श्वेत, कृष्ण तथा कुछ लाल हो और अत्यन्त वमन कारक तथा कठोर हो और खूब धोने पर भी काला ही रहे वह म्लेच्छ ताम्र है ॥ ४३ ॥

अथ नेपालताम्रलक्षणम्—

**सुस्निग्धं मृदुलं शोणं घनाघातक्षमं गुरु ।**
**निर्विकारं गुणश्रेष्ठं ताम्रं नेपालमुच्यते ॥ ४४ ॥**

जो ताम्र स्निग्ध, कोमल, लालवर्ण, भारी, चोट मारने पर चूर्ण न होकर

बढ़ता हो, वह नेपाल संज्ञक ताम्र है। यह वमनादि विकारों से रहित तथा औषध कार्य में श्रेष्ठ होता है ॥ ४४ ॥

अथ रसकर्मानर्हताम्रलक्षणम्—

**पाण्डुरं कृष्णशोणं च लघुस्फुटनसंयुतम् ।**
**रूक्षाङ्गं सदलं ताम्रं नेष्यते रसकर्मणि ॥ ४५ ॥**

जो ताम्र पाण्डुर ( श्वेतपीतवर्णमिश्रित ), लालिमा लिये हुए काला, वजन में हलका, पीटने से चूर्ण होने वाला और रूक्षस्पर्शवाला तथा पत्रों की रचना-युक्त हो वह रस क्रिया में वर्जित है ॥ ४५ ॥

अथ गुणाः—

**ताम्रं तिक्तकषायकं च मधुरं पाकेऽथ वीर्योष्णकं**
**साम्लं पित्तकफापहं जठरकुष्ठामजन्त्वन्तकृत् ॥**
**ऊर्ध्वाधः परिशोधनं विषयकृत् स्थौल्यापहं क्षुत्करं**
**दुर्नामक्षयपाण्डुरोगशमनं नेत्र्यं परं लेखनम् ॥ ४६ ॥**

ताम्र तीता, कसैला, पाक होने पर मधुर, उष्णवीर्य्य, स्वाद में अम्ल, पित्त और कफ का नाशक, और उदरव्याधि, कुष्ठ, आमदोष, कृमिसमूह, स्थौल्य, अर्श, क्षय, पाण्डु इन रोगों को नष्ट करता है और नेत्रों के लिये हितकर, शरीर की मेदा का नाशक, भूख को बढानेवाला, ऊर्ध्व और अधः शरीर के भागों का (वमन तथा विरेचन द्वारा) शोधक और विष बाधा तथा यकृत् वृद्धि को दूर करता है॥४६॥

अथ ताम्रस्य दोषाः—

**अशुद्धं ताम्रमायुघ्नं कान्तिवीर्यबलापहम् ।**
**वान्तिमूर्च्छाभ्रमोत्क्लेदं कुष्ठं शूलं करोति तत् ॥ ४७ ॥**
**उत्क्लेदभेदभ्रमदाहमोहास्ताम्रस्य दोषाः खलु दुर्धरास्ते ।**
**विशोधनात्तद्विगतस्वदोषं सुधासमंस्याद्रसवीर्यपाके ॥४८॥**

अशुद्ध ताम्र आयुको नष्ट करता है तथा शरीर के बल, वीर्य्य और कान्ति को नष्ट करता है तथा वमन, मूर्च्छा, भ्रम, उत्क्लेद (चित्तग्लानि), कुष्ठ तथा शूल को उत्पन्न करता है किन्तु शुद्ध कर मृत ताम्र से उपर्युक्त दोष नहीं होते हैं। तथा और भी ताम्र के उत्क्लेद, भेद, भ्रम, जलन, मूर्च्छा ये दोष हैं जोकि बहुत प्रयत्न से दूर किये जाते हैं। यथाविधि शोधन करने से ताम्र सर्वदोषों से रहित होकर रस वीर्य और विपाक में अमृत के समान गुण करता है ॥ ४७-४८ ॥

अथ ताम्रशुद्धिः—

**ताम्रं क्षाराम्लसंयुक्तं द्रावितं दत्तगैरिकम्।**
**निक्षिप्तं महिषीतक्रे छगणे सप्तवारकम्।**
**पञ्चदोषविनिर्मुक्तं भस्मयोग्यं हि जायते॥ ४९॥**

ताम्र के अन्दर यवक्षार, काञ्जी या निम्बूरस और गैरिक मिला कर घोटें फिर उसे उपलों की अग्नि में द्रवित कर भैंस की तक्र ( मठ्ठा ) में बुझावें। इस तरह सात वार द्रवकर बुझाने से पञ्चदोष ( उत्क्लेदभेदभ्रमदाहमोहाः ) से रहित भस्म हो जाती है॥ ४९॥

मतान्तरम्—

**ताम्रनिर्मलपत्राणि लिप्त्वा निम्ब्वम्बुसिन्धुना।**
**ध्मात्वा सौवीरकक्षेपाद्विशुध्यत्यष्टवारतः॥ ५०॥**

अथवा शुद्ध ताम्र के पत्रों पर निम्बू के रस में नीमक पीसकर लेप कर दें पश्चात् उन्हें प्रतप्त कर निर्गुण्डी (मेउड़ी) के स्वरस या क्वाथ में बुझावें, इस तरह आठ वार बुझाने से शुद्धि हो जाती है॥ ५०॥

मतान्तरम्—

**निम्ब्वम्बुपटुलिप्तानि तापितान्यष्टवारकम्।**
**विशुध्यन्त्यर्कपत्राणि निर्गुण्डया रसमज्जनात्॥ ५१॥**

अथवा ताम्र के स्वच्छ पत्रों पर निम्बूरस से पिष्टलवण का लेप करके प्रतप्त कर उन्हें निर्गुण्डी के रस में बुझावें, इस तरह आठ वार करने से उनकी शुद्धि होती है॥ ५१॥

मतान्तरम्—

**गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना।**
**शुद्ध्यते नात्र सन्देहो मारणं चाप्यथोच्यते॥ ५२॥**

अथवा ताम्र पत्रों को गोमूत्र में डालकर तीव्र अग्नि पर एक प्रहर तक पकाने से निश्चय ही वे शुद्ध हो जाते हैं, अब आगे ताम्र मारण बतलाते हैं॥५२॥

ताम्रभस्म—

**जम्बीररससम्पिष्टरसगन्धकलेपितम्।**
**शुल्वपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम्॥ ५३॥**

ताम्र पत्रों पर निम्बू रस में पिसे हुए समान पारद और गन्धक का लेप कर शराव में रखकर तीन पुट देने से उनकी भस्म हो जाती है ॥ ५३ ॥

अन्यविधिः—

**अथवा मारितं ताम्रमम्लेनैकेन मर्दितम् ।**
**तद्गोलं सूरणस्यान्ता रुद्ध्वा सर्वत्र लेपयेत् ॥ ५४ ॥**
**शुष्कं गजपुटे पच्यात्सर्वदोषहरं भवेत् ।**
**वान्ति भ्रान्ति विरेकं च न करोति कदाचन ॥ ५५ ॥**

अथवा ताम्र भस्म को निम्बू के रस से घोट कर गोला बना लेवें पश्चात् इस गोले को सूरणकन्द के बीच में खात कर के रख दें फिर सूरण कन्द का मुख बन्दकर ऊपर कपड़मिट्टि करदें, सूख जाने पर इसको गजपुट में रखकर फूंक दे। इस विधि से की हुई ताम्रभस्म सर्व दोषों को नष्ट करती है और उसके सेवन करने से वमन, भ्रम, दस्त आदि दोष भी नहीं होते हैं ॥ ५४-५५ ॥

अथ मारणान्तरम्—

**ताम्रपत्राणि सूक्ष्माणि गोमूत्रे पञ्च यामकम् ।**
**क्षिप्त्वा रसेन भाण्डे तद्द्विगुणं देहि गन्धकम् ॥ ५६ ॥**
**अम्लपर्णी प्रपिष्याथ ह्यभितो देहि ताम्रकम् ।**
**सम्यङ् निरुध्य भाण्डे तमग्निं ज्वालय यामकम् ॥**
**भस्मीभवति ताम्रं तद्यथेष्टं विनियोजयेत् ॥ ५७ ॥**

ताम्र के छोटे २ पत्रों को पाञ्च प्रहर तक गोमूत्र में पड़े रहने दें या पका-लेवें, पश्चात् उन्हें गोमूत्र से निकाल कर समान पारद और द्विगुण गन्धक से घोट लें, फिर चाङ्गेरी को पीसकर ताम्र के चारों ओर लेपकर गोला बनाकर किसी हण्डिका में बन्द कर दें, पश्चात् एक प्रहर तक अग्नि देकर उतार कर के भस्म हुए ताम्र का निःशङ्क औषधकार्य में प्रयोग करें ॥ ५६-५७ ॥

सोमनाथीताम्रभस्म—

**शुल्वतुल्येन सूतेन वलिना तत्समेन च ।**
**तदर्धांशेन तालेन शिलया च तदर्धया ॥ ५८ ॥**
**विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां भिन्नकज्जलसन्निभाम् ।**
**यन्त्राध्यायविनिर्दिष्टगर्भयन्त्रोदरान्तरे ॥ ५९ ॥**

कञ्जलीं ताम्रपत्राणि पर्यायेण विनिक्षिपेत्।
प्रपचेद्यामपर्यन्तं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ ६० ॥

पारद से द्विगुण ताम्रपत्र लेकर दोनों को घृतकुमारी के रस से घोटकर एक हण्डिका में ताम्र के बराबर गन्धक डालकर उस गन्धक के बीच में ताम्र पत्र रख दें पश्चात् एक सकोरे से उस ताम्र को कपड़ मिट्टि द्वारा बन्दकर हण्डी के शेष भाग को नमक से भरकर हण्डिका का मुख दूसरे सकोरे से कपड़ मिट्टी द्वारा बन्द कर दें पश्चात् चूल्हे पर चार प्रहर तक पकाके निकाल कर ताम्र का चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को पिप्पली और शहद् के साथ एक रत्ती की मात्रा से सब रोगों के लिये प्रयोग करें ॥ ५८-६० ॥

ताम्रभस्मगुणाः—

तत्तद्रोगहरानुपानसहितं ताम्रं द्विवल्लोन्मितं
संलीढं परिणामशूलमुदरं शूलं च पाण्डुज्वरम्।
गुल्मप्लीहयकृत्क्षयाग्निसदनं मेहं च मूलामयं
दुष्टां च ग्रहणीं हरेद् ध्रुवमिदं श्रीसोमनाथाभिधम् ॥ ६१ ॥

इति ताम्राधिकारः।

ताम्रभस्म के गुण—यह भस्म श्वास, कास, क्षय, पाण्डु, मन्दाग्नि, अग्निमांद्य, अरुचि, गुल्म, प्लीह, यकृत्, मूर्च्छा, शूल, परिणामशूल सप्तधातुगत ज्वर और वातादिदोषत्रय प्रकोप से उत्पन्न समस्त रोगों को अनुकूल अनुपान के साथ सेवन करने से नष्ट करती है तथा रस और रसायन कार्य के लिये भी उचित मात्रा से ताम्र का प्रयोग करना चाहिये ॥ ६१ ॥

ग्रन्थान्तरोक्ताम्रप्रयोगः—

सूताद् द्विगुणितं ताम्रपत्रं कन्यारसैः प्लुतम्।
पिष्ट्वा तुल्येन बलिना भाण्डमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ६२ ॥
छन्नं शरावकेणैतत्तदूर्ध्वं लवणं त्यजेत्।
मुखे शरावकं दत्त्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ॥ ६३ ॥
अवचूर्ण्यैव तच्छुल्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत्।
पिप्पलीमधुना सार्धं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ६४ ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुमग्निमांद्यमरोचकम्।

**गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाशूलपक्त्यर्थमुत्तमम् ॥ ६५ ॥**
**दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ।**
**रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम् ।**
**रसे रसायने ताम्रं योजयेद्युक्तमात्रया ॥ ६६ ॥**

ताम्र के बराबर पारद और उतना ही गन्धक तथा ताम्र की आधी हरताल और हरताल की आधी मनःशिला इन चारों की उत्तम कज्जली बना कर एक शराव में नीचे आधी कज्जली रखकर ताम्र पत्र रख दें तथा ऊपर से फिर कज्जली रख-कर गर्भयन्त्र के अन्दर एक प्रहर तक पकावें । स्वाङ्गशीत होने पर पक्व ताम्र निकालकर चूर्ण करलें । इस विधि से बनी हुई ताम्रभस्म को सोमनाथोक्ताताम्रभस्म कहते हैं । इसके सेवन के गुण–इस भस्म को भिन्न २ रोगहरण करने वाले अनु-पानों के साथ दो रत्ती की मात्रा के रूप में सेवन करने से परिणामशूल, उदररोग ( जलोदर ) पाण्डु, ज्वर, गुल्म, प्लीह, यकृत , वृद्धि, क्षय, मन्दाग्नि, प्रमेह, अर्श और दुष्टसंग्रहणी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२-६६ ॥

अथ लौहम्—

लौहभेदाः—

**मुण्डं तीक्ष्णं च कान्तं च त्रिप्रकारमयः स्मृतम् ॥ ६७ ॥**

मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त, इन भेदों से लौह तीन प्रकार का होता है ॥ ६७ ॥

मुण्डलौहभेदाः—

**मृदु कुण्ठं कडारं च त्रिविधं मुण्डमुच्यते ॥ ६८ ॥**

मुण्डलौह भी तीन प्रकार का है यथा—मृदु, कुण्ठ, कडार ॥ ६८ ॥

मृदुमुण्डलक्षणम्—

**द्रुतद्रावमविस्फोटं चिक्कणं मृदु तच्छुभम् ॥ ६९ ॥**

जो लौह अग्नि में तपाने से शीघ्र गल जाय और हथौड़े या घन से पीटने पर चूर्ण होकर बिखरे नहीं तथा मृदु और कोमल हो उसको मृदुलौह कहते हैं॥६९॥

कुण्ठमुण्डलक्षणम्—

**हतं यत्प्रसरेद् दुःखात्तत्कुण्ठं मध्यमं स्मृतम् ॥ ७० ॥**

जो लौह घन से पीटने पर बहुत देर में कठिनता से बढ़े या चूर्ण हो जाय उसको कुण्ठ लौह कहते हैं । यह मध्यम होता है ॥ ७० ॥

कडारमुण्डलक्षणम्—

**यद्धतं भज्यते भङ्गे कृष्णं स्यात्तत्कडारकम् ॥ ७१ ॥**

जो लौह घन से पीटने पर जल्दी चूर्ण हो जाय और तोड़ने पर भीतर से काले रंग का हो वह कडारक लौह कहलाता है ॥ ७१ ॥

मुण्डगुणाः—

**मुण्डं परं मृदुलकं कफवातशूलमूलाममेहगदकामलपाण्डुहारि ।**
**गुल्मामवातजठरार्तिहरं प्रदीपि शोफापहं रुधिरकृत्खलु कोष्ठशोधि॥७२॥**

मुण्ड लौह के तीन भेदों में जो अत्यन्त मृदु लौह होता है वह कफ, वात, शूल, अर्श या शिरो रोग, आम, प्रमेह, कामला, पाण्डु, गुल्म, आमवात, उदर-रोग, शोथ इन रोगों को नष्ट करता है, जठराग्नि को पदीप्त करता है, रुधिर को बढ़ाता है और कोष्ठ की शुद्धि करता है ॥ ७२ ॥

अथाशुद्धलौहस्य दोषाः—

**अशुद्धलोहं न हितं निषेवणादायुर्बलं कान्तिविनाशि निश्चितम् ॥**
**हृदि प्रपीडां तनुते ह्यपाटवं रुजं करोत्येव विशोध्य मारयेत् ॥ ७३ ॥**

अशुद्ध लौह सेवन करना अहितकर है। इसके सेवन से आयु, बल और कान्ति नष्ट होती है। यह हृदय में अत्यन्त वेदना और रोग तथा शरीर में शिथिलता उत्पन्न करता है इसलिये इसको शुद्ध कर के पश्चात् इसकी भस्म करनी चाहिये॥७३॥

अथ तीक्ष्णलौहम्—

तीक्ष्णलौहभेदाः—

**खरं सारं च हुन्नालं तारावट्टं च वाजिरम् ।**
**काललोहाभिधानं च षड्विधं तीक्ष्णमुच्यते ॥ ७४ ॥**

खर, सार, हुन्नाल, तारावट्ट, वाजिर और काललौह ये तीक्ष्ण लौह के छ भेद हैं ॥ ७४ ॥

खरलौहलक्षणम्—

**परुषं पोगरोन्मुक्तं भङ्गे पारदवच्छवि ।**
**नमने भङ्गुरं यत्तत्खरलोहमुदाहृतम् ॥ ७५ ॥**

जो लौह कठोर, तरङ्गसदृश रेखाओं से रहित तथा तोड़ने पर पारद के समान चमकदार तथा मोड़ने से भङ्गुर हो वह खर लौह कहलाता है ॥ ७५ ॥

सारलौहलक्षणम्—

**वेगभङ्गुरधारं यत्सारलोहं तदीरितम् ।**
**पोगराभासकं पाण्डुभूमिजं सारमुच्यते ॥ ७६ ॥**

जिस लौह की धार प्रबल आघात से टूट या मुड़ जाय उसे सार लौह कहते हैं। इसमें टेढ़ी रेखाएं स्पष्ट प्रतीत होती हैं तथा यह पीली भूमि से उत्पन्न होता है॥ ७६॥

हृन्ताललौहलक्षणम्—

**कृष्णपाण्डुवपुश्चञ्चुबीजतुल्यगोरुपोगरम् ।**
**छेदने चातिपरुषं हृन्तालमिति कथ्यते ॥ ७७ ॥**

जो लौह कुछ अथवा पूर्ण कृष्णता लिये पाण्डुवर्ण का हो तथा एरण्ड (रेड़ी) के बीज के छिलके की रेखाओं के समान स्पष्ट रेखाओं से युक्त हो और तोड़ने पर अत्यन्त कठिन हो उसको हृन्ताल लौह कहते हैं ॥ ७७ ॥

सपर्यायपोगरलक्षणम्—

**अङ्गक्षया च वङ्गं च पोगरस्याभिधात्रयम् ।**
**चिकुरं भङ्गुरं लोहात्पोगरं तत्परं मतम् ॥ ७८ ॥**

उपर्युक्त पोगर के अङ्ग, क्षय ( छाया ) और वङ्ग ये तीन पर्याय वाचक शब्द हैं। लौह में पोगर टूटने वाला और चमकदार होता है ॥ ७८ ॥

वाजीरलौहलक्षणम्—

**पोगरैर्वज्रसङ्काशैः सूक्ष्मरेखैश्च सान्द्रकैः ।**
**निचितं श्यामलाङ्गं च वाजीरं तत्प्रकीर्त्यते ॥ ७९ ॥**

जिस लौह में पोगर वज्र के समान कठिन, चमकदार और सान्द्र ( अत्यन्त मिली हुई) छोटी २ रेखाओं से युक्त हो और जिसका वर्ण श्याम हो उसको वाजिर लौह कहते हैं ॥ ७९ ॥

काललौहलक्षणम्—

**नीलकृष्णप्रभं सान्द्रं मसृणं गुरु भासुरम् ।**
**लोहाघातेऽप्यभङ्गात्मधारं कालायसं मतम् ॥ ८० ॥**

जो लौह नीलिमा लिये काले वर्ण का हो तथा भारी, चिकना, कान्ति युक्त और लौह के घन के आघात से भी जिसकी धार न टूटे उसको काल लौह कहते हैं ॥ ८० ॥

खरलौहगुणाः—

**रूक्षं स्यात्खरलोहकं समधुरं पाकेऽथ वीर्ये हिमं**
**तिक्तोष्णं कफपित्तकुष्ठजठरप्लीहामपाण्डूर्तिनुत् ॥**
**सद्यः शूलयकृद्दरक्षयजरामेहामवातापहं**
**दीप्तं चातिरसायनं बलकरं दुर्नामदाहापहम् ॥ ८१ ॥**

खर लौह के गुण—यह रूक्ष, पाक में मधुर, शीतवीर्य, तिक्त और उष्ण होता है तथा कफ, पित्त, कुष्ठ, उदररोग, प्लीहा, आम, पाण्डु, शूल, यकृत्, राजयक्ष्मा, जरा, प्रमेह, आमवात, अर्श और दाह को नष्ट करता है तथा यह अत्यन्त रसायन, अग्नि दीपक और बल कारक होता है ॥ ८१ ॥

अन्यसारादितीक्ष्णलौहगुणाः—

**खरलोहात्परं सर्वमेकैकस्माच्छुतोत्तरम् ॥ ८२ ॥**

तीक्ष्ण लौह के अन्यभेद खरसंज्ञक लौह की अपेक्षा क्रमशः सौ सौ गुना अधिक गुणप्रद होते हैं ॥ ८२ ॥

कान्तलौहभेदाः—

**भ्रामकं चुम्बकं चैव कर्षकं द्रावकं तथा ।**
**एवं चतुर्विधं कान्तं रोमकान्तं च पञ्चमम् ॥ ८३ ॥**
**एकद्वित्रिचतुष्पञ्चसर्वतामुखमेव तत् ।**
**पीतं कृष्णं तथा रक्तं त्रिवर्णं स्यात्पृथक् पृथक् ।**
**क्रमेण देवतास्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ८४ ॥**

भ्रामक, चुम्बक, कर्षक, द्रावक ये कान्तलोहे के चार भेद हैं तथा पांचवां भेद रोमक है । किसी के एक मुख, किसी के दो मुख, किसी के तीन मुख और किसी के चार तथा पाँच मुख होते हैं और किसी के सबमुख होते हैं । इस तरह मुखभेद से कान्त लौह के छ भेद हैं और प्रत्येक पीत, कृष्ण, रक्त वर्ण भेद से तीन तीन तरह का होता है और क्रम से पीत वर्ण के लौह के ब्रह्मा, कृष्णवर्ण लोहे के विष्णु और रक्तवर्ण लोहे के महेश्वर अधिष्ठातृ देवता हैं ॥ ८३–८४ ॥

वर्णानुसारकार्यभेदाः—

**स्पर्शवेधि भवेत्पीतं कृष्णं श्रेष्ठं रसायने ।**
**रक्तवर्णं तथा चापि रसबन्धे प्रशस्यते ॥ ८५ ॥**

पीतवर्ण का लौह स्पर्शमात्र से पारद का वेधाख्यसंस्कार कर देता है तथा रसायन में कृष्णवर्ण का लौह श्रेष्ठ है और रक्तवर्ण का कान्त लौह पारद के बन्धन में श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥

अधमादिकथनम्—

**भ्रामकं तु कनिष्ठं स्याच्चुम्बकं मध्यमं तथा ।**
**उत्तमं कर्षकं चैव द्रावकं चोत्तमोत्तमम् ॥ ८६ ॥**

ऊपर कहे हुए कान्त लौह के भेदों में भ्रामकसंज्ञक लौह औषध कर्म में कनिष्ठ ( त्याज्य ) है, चुम्बक मध्यम है, कर्षक उत्तम है तथा द्रावक संज्ञक कान्त लौह सर्वोत्तम कहा गया है ॥ ८६ ॥

भ्रामककान्तलक्षणम्—

**भ्रामयेल्लोहजातं यत्तत्कान्तं भ्रामकं मतम् ॥ ८७ ॥**

जो लौह अपने प्रभाव से अन्य लौह समूह को भ्रमाता ( चञ्चल या गतियुक्त करता ) है उसे भ्रामककान्त लौह कहते हैं ॥ ८७ ॥

चुम्बककर्षकलक्षणम्—

**चुम्बयेच्चुम्बकं कान्तं कर्षयेत्कर्षकं तथा ॥ ८८ ॥**

जो अपने प्रभाव से अन्य लौह को खींचकर चुम्बित कर लेता है वह चुम्बक कहा जाता है और जो केवल अन्य लौह को अपनी ओर खींचता है उसे कर्षक कहते हैं ॥ ८८ ॥

द्रावककान्तलक्षणम्—

**साक्षाद्यद्द्रावयेल्लोहं तत्कान्तं द्रावकं भवेत् ॥ ८९ ॥**

और जो अपने संयोगसे अन्य लौह को द्रवित कर देता है उस कान्त लौह को द्रावक कहते हैं ॥ ८९ ॥

रोमकान्तलक्षणम्—

**तद्रोमकान्तं स्फुटिताद्यतो रोमोद्गमो भवेत् ॥ ९० ॥**

तथा जिस कान्त लौह के तोड़ने पर बालों के समान रेखाओं का अविर्भाव हो वह रोमकान्त कहलाता है ॥ ९० ॥

मुखभेदेन श्रेष्ठाश्रेष्ठत्वकथनम्—

**कनिष्ठं स्यादेकमुखं मध्यं द्वित्रिमुखं भवेत् ।**
**चतुष्पञ्चमुखं श्रेष्ठमुत्तमं सर्वतोमुखम् ॥ ९१ ॥**

जिस कान्त लौह में एक मुख हो वह कनिष्ठ है। दो या तीन मुखवाला मध्यम, चार और पाँच मुखोंवाला उत्तम और सर्वमुखवाला अत्यन्त उत्तम है॥९१॥

भ्रामकादिलौहकार्यनिर्देशः—

**भ्रामकं चुम्बकं चैव व्याधिनाशे प्रशस्यते।**
**रसे रसायने चैव कर्षकं द्रावकं हितम्॥ ९२॥**

भ्रामक और चुम्बक कान्त लौह व्याधिविनाश के लिये प्रशस्त हैं तथा रसायन के लिये कर्षक और द्रावक हितकर है॥ ९२॥

रसक्रमेण कान्तस्य विशेषता—

**मदोन्मत्तगजः सूतः कान्तमङ्कुशमुच्यते॥ ९३॥**

जिस तरह मदोन्मत्त हस्ती को अङ्कुश वश में कर लेता है उसी तरह चाञ्चल्यादि मदोन्मत्त पारद के बन्धन के लिये कान्त लौह एक तरह का अङ्कुश है, अर्थात् इससे पारद का बन्धन हो जाता है॥ ९३॥

कान्तलौहस्य ग्राह्याग्राह्यनिर्देशः—

**क्षेत्रं ज्ञात्वा गृहीतव्यं तत्प्रयत्नेन धीमता।**
**मारुताऽऽतपविक्षिप्तं वर्जयेन्नात्र संशयः॥ ९४॥**

बुद्धिमान को चाहिए कि उत्तम खान से प्रयत्न पूर्वक कान्त लौह को ग्रहण करें। जो लौह दूषितवायु और धूप से आक्रान्त हुआ हो उसे त्याग दें॥ ९४॥

कान्तलोहलक्षणम्—

**पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न लिप्ता**
**गन्धं हिङ्गु त्यजति च तथा तिक्ततां निम्बकल्कः।**
**पाके दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमौ**
**कान्तं लौहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं च नान्यत्॥ ९५॥**

जल से भरे जिस कान्त लौह के पात्र में तैल डालने पर फैले नहीं और उसी कान्त लौह के पात्र में हींग और नीम्ब के कल्क का लेप करने पर वे अपनी गन्ध और कटुता को त्याग दें और जिसके पात्र में दुग्ध के पकाने पर वह शिखराकृति हो जाय और उबल कर पात्र से बाहर पृथ्वी पर न गिरे, इन्हीं लक्षणों वाले लौह को कान्तलौह कहते हैं अन्य को नहीं॥ ९५॥

अथ कान्तलौहगुणाः—

**कान्तायोऽतिरसायनोत्तरतरं स्वस्थे चिरायुःप्रदं**
**स्निग्धं मेहहरं त्रिदोषशमनं शूलाऽऽममूलापहम् ।**
**गुल्मप्लीहयकृत्क्षयामयहरं पाण्डूदरव्याधिनु-**
**त्तिक्तोष्णं हिमवीर्यकं किमपरं योगेन सर्वार्तिनुत् ॥ ९६ ॥**

कान्त लौह अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है, स्वस्थ शरीर वाले मनुष्य की आयु को बढाता है, स्निग्ध है तथा प्रमेह, त्रिदोष प्रकोप, शूल, आम, बवासीर, गुल्म, प्लीहा, यकृत्, क्षय, पाण्डु तथा उदररोग को नष्ट करता है । यह स्वाद में तिक्त, उष्ण तथा शीतवीर्य्य है और भिन्न २ योगों के साथ मिलाकर सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है । इससे बढकर दूसरा कोई श्रेष्ठ रसायन नहीं है ॥ ९६ ॥

लौहकल्पश्रेष्ठता—

**सम्यगौषधकल्पानां लोहकल्पः प्रशस्यते ।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुद्धं लोहं च मारयेत् ॥ ९७ ॥**

अच्छे २ औषध कल्पो में लौह कल्प ही प्रशस्त है इसलिये यत्नपूर्वक कान्त लौह की साधारण और विशेष शुद्धि कर के मारण करना चाहिये ॥ ९७ ॥

अथ मारणार्थं लोहस्य परिमाणनिर्देशः—

**नायः पचेत्पञ्चपलादर्वागूर्ध्वं त्रयोदशात् ॥ ९८ ॥**

पाञ्च पल से कम और तेरह पल से ज्यादा लौह को एक वार में भस्म के लिये नहीं लेना चाहिये ॥ ९८ ॥

अथ लोहमारणे मन्त्रः(१)—

**आदौ मन्त्रस्ततः कर्म कर्तव्यं मन्त्र उच्यते ॥ ९९ ॥**

लौह मारण के प्रथम मन्त्र का जप कर के फिर मारण कर्म करना चाहिए नीचे मन्त्र कहा जाता है ॥ ९९ ॥

अथ लौहत्रयाणामुत्तरोत्तरगुणाधिक्यम्—

**लक्षोत्तरगुणं सर्वं लोहं स्यादुत्तरोत्तरम् ।**

---

(१) **"ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा"**
**अनेन मन्त्रेण लोहमारणम् ।**
**"ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा"** इस मन्त्र का जप कर के लौह का मारण करना चाहिए।

**कान्तं कोटिगुणं तत्र तदप्येवं गुणोत्तरम् ॥ १०० ॥**

मुण्डादि प्रत्येक लौह उत्तरोत्तर एक दूसरे से लक्षाधिक गुणों वाले हैं और उनमें कान्त लौह करोड़ से भी अधिक गुण वाला है। इसमें भी मन्त्रजप पूर्वक मारित कान्त लौह करोड़ गुण से भी अधिक गुण प्रद होता है ॥ १०० ॥

अथ सर्वलौहशुद्धिः

**शशक्षतजसंलिप्तं त्रिवारं परितापितम्।**
**मुण्डादिसकलं लोहं सर्वदोषान्विमुञ्चति ॥ १०१ ॥**

मुण्ड आदि सर्व प्रकार के लौह के छोटे २ टुकड़ों को खरगोश के रुधिर से लिप्त-कर अग्नि में तपाने से उनकी शुद्धि हो जाती है। यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए ॥ १०१ ॥

लोहस्थगिरिजदोषनाशनविधिः—

**क्वाथ्यमष्टगुणे तोये त्रिफलाषोडशं पलम्।**
**तत्क्वाथे पादशेषे तु लोहस्य पलपञ्चकम् ॥ १०२ ॥**
**कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत्।**
**एवं प्रलीयते दोषोगिरिजो लोहसम्भवः ॥ १०३ ॥**

अथवा १६ पल (६७ तो० त्रिफला) (क्वाथ्य) को आठगुने ( १२८ पल का ५१२ तो० या ६ सेर डेढ पाव २ तोले) जल में उबाल कर चतुर्थांश (३२ पल) शेष रख कर क्वाथ बना लो, पश्चात् ५ पल लौहे के सूक्ष्मपत्र या टुकड़े कर उन्हें प्रतप्त कर उस क्वाथ में बुझा लो। इस तरह सात बार बुझाने से लौहे के सर्व दोष(१) नष्ट हो जाते हैं ॥ १०२–१०३ ॥

ध्यान रहे कि ३२ पल क्वाथ के सात भाग करके उसमें लौह को सात वार बुझाना चाहिए, प्रथम वार बुझाये क्वाथको फेंककर दूसरा क्वाथ लेकर उसमें दूसरी वार बुझाना चाहिए। सात भाग करने पर प्रत्येक भागमें क्वाथ की मात्रा ९ तोले के करीब होती है। किसी आचार्य के मत से एक पल आठ तोले का होता है।

मतान्तरम्—

**सामुद्रलवणोपेतं तप्तं निर्वापितं खलु।**
**त्रिफलाक्वथिते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत् ॥ १०४ ॥**

---

(१) यथा–गुरुता हृदयोत्क्लेदः कश्मलं दाहकारिता।
अश्मदोषः सुदुर्गन्धो दोषाः सप्तायसस्य तु ॥

**चिञ्चाफलजलक्काथादयो दोषमुदस्यति ॥ १०५ ॥**

अथवा लौह के पत्रों को जल से पीसे निमक से लिप्त कर अग्नि में प्रतप्त कर लें, फिर उपर्युक्त विधि से बने हुए त्रिफला क्वाथ में बुझा लें। इस तरह सात वार करने से लौह शुद्ध हो जाता है। अथवा लौह को प्रतप्त कर इमली के पत्तोंके स्वरस या क्वाथमें सात वार बुझाने से भी वह शुद्ध हो जाता है॥१०४-१०५॥

मातान्तरेण शोधनं मारणञ्च—

**यद्वा फलत्रयोपेतं गोमूत्रे क्वथितं क्षणम् ।**
**रेचितं घृतसंयुक्तं क्षिप्त्वाऽयःखर्परे पचेत् ॥ १०६ ॥**
**चालयेल्लौहदण्डेन यावत्क्षिप्तं तृणं दहेत् ।**
**पिष्ट्वा पिष्ट्वा पचेदेवं पञ्चवारमतः परम् ॥ १०७ ॥**
**धात्रीफलरसैर्यद्वा त्रिफलाक्वथितोदकैः ।**
**पुटेल्लौहं चतुर्वारं भवेद्वारितरं खलु ॥ १०८ ॥**

अथवा १६ पल त्रिफला का आठगुने गोमूत्र में क्वाथ बनाकर पाच पल लौह को उस क्वाथ में खूब पकालें, फिर उस लौह का रेती से चूर्ण करके उसमें समान या द्विगुण घृत मिलाकर खर्परमें (कड़ाही) पकावें और लौहकी कलच्छी से चलाता रहे। जब पकाते २ लौह पर तृण डालने से वह जलने लगे तब उतार लें। इस तरह लौह को खरल में पीस पीसकर पाच वार पकाना चाहिये। फिर त्रिफला के क्वाथ से या आंवलों के रस में खूब खरल कर चार पुट देने चाहिए। इस तरह करने से लौह की जल में तैरने लायक भस्म हो जाती है॥ १०६-१०८॥

मातान्तरेण मारणञ्चम्—

**स्नेहाक्तं लोहरजो मूत्रे स्वरसेऽपि रात्रिधात्रीणाम् ।**
**पृथगेवं सप्तकृत्वो भर्जितमखिलामये योज्यम् ॥ १०९ ॥**

अथवा लौह चूर्ण को घृत से लिप्त कर गोमूत्र, हरिद्रास्वरस और आंवले के स्वरस में पृथक् २ सातवार पकाकर पुटविधि से भस्म बना के सम्पूर्ण रोगों में प्रयोग करना चाहिए॥ १०९॥

अथ तीक्ष्णलौहस्य मारणम्—

**तीक्ष्णलौहस्य पत्राणि निर्दलानि दृढेऽनले ।**
**ध्मात्वा क्षिपेज्जले सद्यःपाषाणोलूखलोदरे ॥ ११० ॥**

कण्डयेत्तद्दृढनिर्घातैः स्थूलया लोहपारया।
तन्मध्यात्स्थूलखण्डानि रुद्ध्वा मल्लद्वयान्तरे ॥ १११ ॥
ध्मात्वा क्षिप्त्वा जले सम्यक् पूर्ववत्कण्डयेत्खलु।
तच्चूर्णं सूतगन्धाभ्यां पुटेर्द्विंशतिवारकम् ॥ ११२ ॥
पुटे पूटे विधातव्यं पेषणं दृढवत्तरम्।
एवं भस्मीकृतं लौहं तत्तद्रोगेषु योजयेत् ॥ ११३ ॥

तीक्ष्ण लौह के ( जो कि दलरहित हों ) छोटे २ पत्रों को तीव्र अग्नि में अत्यन्त प्रतप्त कर पत्थरी की ओंखली में भरे हुए जल में बुझावें, फिर उस जल में से तुरन्त निकालकर लौह की ओंखली ( उलूखल या इमामदस्ता ) में डालकर स्थूल लौह के दण्ड ( बत्थे ) से चूर्ण करें। फिर उस चूर्ण में से बड़े २ लौह के पत्रों को सम्पुट में बन्दकर के अत्यन्त लाल कर जल में बुझा लेवें, फिर पूर्ववत् चूर्ण करले इस प्रकार उस लौहचूर्ण में समान भाग पारद और गन्धक की कज्जली मिलाकर सम्पुट में बन्दकर फूंके इस तरह प्रत्येक पुट में समान नवीन कज्जली मिलाकर खूब खरल में घोटकर बीसवार पुट देना चाहिए। इस तरह भस्म किये हुए लौह का सर्व रोगों में प्रयोग करना चाहिए ॥ ११०–११३ ॥

अथ कान्तलौहस्य गुणाः—

कान्तायः कमनीयकान्तिजननं पाण्ड्वामयान्मूलनम्।
यक्ष्मव्याधिनिबर्हणं गरहरं दोषत्रयोन्मूलनम् ॥
नानाकुष्ठनिबर्हणं बलकरं वृष्यं वयस्तम्भनम्।
सर्वव्याधिहरं रसायनवरं भौमामृतं नापरम् ॥ ११४ ॥

कान्त लौह शरीर की सुन्दर आकृति को उत्पन्न करता है और पाण्डु, राजयक्ष्मा, विषबाधा, त्रिदोषविकार तथा सर्व प्रकार के कुष्ठ को नष्ट करता है, बल को बढ़ाता है, वृष्य और वयः स्थापक है और यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है, अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन है, इससे बढकर पृथ्वी पर कोई अन्य अमृत नहीं है ॥ ११४ ॥

लौहस्य मारणान्तरम्—

हिङ्गुलस्य पलान्पञ्च नारीस्तन्येन पेषयेत्।
तेन लोहस्य पत्राणि लेपयेत्पलपञ्चकम् ॥ ११५ ॥

रुद्ध्वा गजपुटे पच्यात्कषायैस्त्रैफलैः पुनः ।
जम्बीरैरारनालैर्वा विंशत्यंशेन हिङ्गुलम् ॥ ११६ ॥
पिष्ट्वा रुद्ध्वा पचेल्लोहं तद्द्रवैः पाचयेत्पुनः ।
चत्वारिंशत्पुटैरेवं कान्तं तीक्ष्णं च मुण्डकम्
म्रियते नात्र सन्देहो दत्त्वा दत्त्वैव हिङ्गुलम् ॥ ११७ ॥

पाञ्चपल लौह के पत्रोंको स्त्री के दुग्ध में पीसे हुए पाञ्च पल हिङ्गुल से लिप्त कर शरावसम्पुट में बन्दकर गज पुट में फूंक दें, फिर काञ्जी, त्रिफलाक्वाथ और निम्बू-रस से २० तोले हिङ्गुल को घोट कर लौह पत्र पर लेपकर फूंकदे, फिर उक्तरसों में लौह को पकाना चाहिए इस तरह बार २ हिङ्गुल डालकर ४० पुट देने से कान्त, मुन्ड, तीक्ष्ण लौहों की भस्म हो जाती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ११५-११७॥

अथ तीक्ष्णलौहस्य विशेषमारणम्—

अथ पूर्वोदितं तीक्ष्णं वसुभल्लकवासयोः ।
पुटितं पत्रतोयेन त्रिंशद्वाराणि यत्नतः ॥
शोणितं जायते भस्म कृतसिन्दूरविभ्रमम् ॥ ११८ ॥

तीक्ष्ण लौह को श्वेत पुनर्नवा के रस से भावित कर तथा अडूसे के पत्रों के स्वरस या क्वाथ से भावित कर ३० पुट देने से सिन्दूर के समान लाल भस्म हो जाती है ॥ ११८ ॥

मतान्तरम्—

यद्वा तीक्ष्णदलोद्भूतं रजश्च त्रिफलाजलैः ।
पिष्ट्वा दत्त्वौदनं किञ्चिच्चक्रिकां प्रविधाय च ॥ ११९ ॥
शोषयित्वाऽतियत्नेन प्रपचेत्पञ्चभिः पुटैः ।
रक्तवर्णं हि तद्भस्म योजनीयं यथायथम् ॥ १२० ॥

अथवा लौह चूर्ण को त्रिफला क्वाथ से घोटकर कुछ भात मिलाकर टिकिया बना लें, सूख जाने पर सम्पुट में बन्द कर पुट दे दें। इस तरह पांच पुट देने से लाल वर्ण की लौह भस्म हो जाती है, उसको रोगानुसार प्रयोग करना चाहिये ॥ ११९-१२०॥

मतान्तरे सर्वलौहानां मारणम्—

मत्स्याक्षीगन्धबाह्लीकैर्लकुचद्रवपेषितैः ।
विलिप्य सकलं लोहं मत्स्याक्षीकल्कलेपितम् ॥ १२१ ॥

भस्त्राभ्यां सुदृढं ध्मात्वा त्रिशुलीनिर्गमावधि।
अधोद्धृत्य क्षिपेत्क्वाथे त्रिफलागोजलात्मके॥ १२२॥
तस्मादाहृत्य सन्ताड्य मृतमादाय लोहकम्।
पुनश्च पूर्ववद् ध्मात्वा मारयेदखिलायसम्॥ १२३॥
खण्डयित्वा ततो गन्धगुडत्रिफलया सह।
पुटेत्त्रिंशतिवाराणि निरुत्थं भस्म जायते॥ १२४॥

सर्व प्रकार के लौह चूर्ण को बड़हल के फल के रस से पीसे हुए गण्डदूर्वा, गन्धक, हींग, इन पदार्थों से लिप्तकर, फिर गण्डदूर्वा के कल्क को ऊपर नीचे रखकर लौह का गोला बना कर सुखालें, फिर धौंकनी द्वारा जब तक विविध रंग की ज्वाला न निकले तब तक फूंकता रहे, बाद में पत्रों को निकाल कर त्रिफला क्वाथ और गोमूत्र में उन्हें बुझावें, फिर उसमें से निकालकर चूर्ण करके पूर्वानुसार फूंक के बुझाकर खरल में चूर्ण करलें, पश्चात् लौह चूर्ण के समान गन्धक, गुड़ और त्रिफला चूर्ण ले कर सबको खरल में घोटकर के गोला बनाकर गजपुट में फूंक देवें, इस प्रकार ३० पुट देने से लौह की निरूत्थ भस्म हो जाती है॥ १२१-१२४॥

अन्यविधिः—

समगन्धमयश्चूर्णं कुमारीवारिभावितम्।
पुटीकृतं कियत्कालमवश्यं म्रियते ह्ययः॥ १२५॥

अथवा गन्धक और लौह चूर्ण बराबर २ लेकर घृत कुमारी के स्वरस में घोटकर के सम्पुट में बन्द कर आठ या दस पुट देने से अवश्य ही भस्म हो जाती है॥ १२५॥

अन्यविधिः—

जम्बीररससंयुक्ते दरदे तप्तमायसम्।
बहुवारं विनिक्षिप्तं म्रियते नात्र संशयः॥ १२६॥

निम्बू के रस में कुछ हिङ्गुल मिलाकर घोल बनालो, फिर इस घोल ( विलयन ) में लौह को प्रतप्त कर बुझावें, इस तरह २० या २५ वार बुझाने से लौह की भस्म हो जाती है॥ १२६॥

अन्यविधिः—

गोमूत्रत्रिफला क्वाथ्या तत्कषायेण भावयेत्।
त्रिःसप्ताहं प्रयत्नेन दिनकं मर्दयेत्पुनः॥ १२७॥

रुद्ध्वा गजपुटे पच्याद्दिनं क्वाथेन मर्दयेत् ।
दिवा मर्द्यं पुटेद्रात्रावेकविंशद्दिनावधि ।
एकविंशत्पुटैरेवं म्रियते त्रिविधं ह्ययः ॥ १२८ ॥

गोमूत्र में त्रिफला का क्वाथ बनाकर उससे २१ दिन तक लौह को भावित करें, फिर उसी क्वाथ से उस लौह को एक दिन तक खूब घोट करके सम्पुट कर गजपुट द्वारा रात्रि में पुट दे देवें, फिर निकालकर उसी क्वाथ से दिन में घोटकर रात्रि में पुट देवें इस तरह २१ पुट देने से तीनों प्रकार के लौह की भस्म हो जाती है ॥ १२७–१२८ ॥

अथ कान्तलोहस्य रामराजीप्रोक्तशोधनम्—

यत्पात्राध्युषिते तोये तैलबिन्दुर्न सर्पति ।
तारेणावर्तते यत्तत्कान्तलोहं तनूकृतम् ॥ १२९ ॥
अयसामुत्तमं सिञ्चेत्तप्तं तप्तं वरारसे ।
एवं शुद्धानि लोहानि पिष्टान्यम्लेन केनचित् ॥ १३० ॥
मृतसूतस्य पादेन प्रलिप्तानि पुटानले ।
पचेत्तुल्यस्य वा ताप्यगन्धाश्महरतेजसा ॥ १३१ ॥
तप्तं क्षाराम्लसंलिप्तं शशरक्तेन भावितम् ।
कान्तलोहं भवेद्भस्म सर्वदोषविवर्जितम् ॥ १३२ ॥

जिस लौह के जल से भरे हुए पात्र में तैल की बूंद छोड़ने पर वह फैले नहीं और जो लौहचूर्ण रजत चूर्ण के साथ मिश्रित हो जाय या उसको चारों ओर घेरले उस सर्वलौहों में उत्तम कान्त लौह के छोटे २ पत्र या टुकड़े बना करके प्रतप्त कर त्रिफला के क्वाथ में सात वार बुझाकर शुद्ध करलें, पश्चात् उसे निम्बू के रस या किसी अम्लरस से घोट करके चतुर्थांश पारदभस्म से मर्दनद्वारा लिप्तकर पुट देने से उसकी भस्म हो जाती है। अथवा लौह चूर्ण या पत्र को अम्लरस में घोटे हुये क्षार से लिप्त करके तपाकर खरगोश के रुधिर में सातवार बुझालें, पश्चात् लौह के बराबर सुवर्णमाक्षिक, गन्धक और पारद इनके साथ लौह पत्रों को घोटकर सम्पुट में बन्द कर गजपुट में फूंक दें, इस तरह लौह की सर्वदोष रहित भस्म हो जाती है ॥ १२९–१३२ ॥

अन्यविधिः—

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं खल्लेन कृतकज्जलम्।
द्वयोः समं लौहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ १३३ ॥
यामद्वयात्समुद्धृत्य यद्गोलं ताम्रपात्रके।
आच्छाद्यैरण्डपत्रैश्च यामार्धंऽत्युष्णतां व्रजेत् ॥ १३४ ॥
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात्त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्।
सम्पेष्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत्।
कान्तं तीक्ष्णं च मुण्डं च निरुत्थं जायते मृतम् ॥ १३५ ॥
स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णं कृत्वा च लौहवत्।
सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां सुमुखागतः ॥ १३६ ॥
अनुभूतं मया सत्यं सर्वरोगजरापहम्।
त्रिफलामधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १३७ ॥

अन्यविधि—शुद्ध पारद से द्विगुण गन्धक लेकर खरल में कज्जली बनालें, इस कज्जली के बराबर लौह चूर्ण लेकर उसको घृत कुमारी के रस में दो प्रहर तक घोट करके गोला बनालेवें, पश्चात् उस गोले को ताम्र के पात्र में रख कर रेंडी के पत्रों से ढककर आधे प्रहर तक अग्नि में या सूर्य की धूप में रहने दें, फिर उस गोले को तीन दिन तक धान्य के ढेर में गाड़ना चाहिए, चौथे दिन निकाल कर लौह चूर्ण को पीसकर वस्त्र से छान लें, इस तरह कान्त, तीक्ष्ण और मुण्ड लौह की जल में तैरने लायक निरुत्थ भस्म हो जाती है। इसी विधि से सुवर्णादि धातुओं की भी भस्म हो जाती है। यह योग सिद्धों के मुख से कहा हुआ है इसलिये उसको सिद्धयोग कहते हैं और मैंने भी इसकी सत्यता का अनुभव किया है। यह सर्व व्याधियों को नष्ट करता है। इसको त्रिफला और शहद के साथ सर्व रोगों में प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १३३–१३७ ॥

अथ लौहप्रयोगः—

एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं लोहस्य दिव्यामृतं
सम्यक् सिद्धरसायनं त्रिकटुकीवेल्लाज्यमध्वन्वितम्।
हन्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं
दिष्टं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः ॥१३८॥

लौहभस्म के गुण—यह निरुत्थ लौह भस्म अमृत के समान गुणकारी और सिद्ध रसायन है। इस भस्म को चार मासे की मात्रा में त्रिकटु, वायविडङ्ग, शहद् और घृत के साथ सेवन करने से जरा, मरण तथा सर्व व्याधियां नष्ट हो जाती हैं और सत्पुत्र को देती है। किसी समय महादेवजी ने कालयवन के पिता को पुत्र की प्राप्ति के लिये इस भस्म के सेवन का उपदेश दिया था ॥ १३८ ॥

अथ लौहानां रामराजीप्रोक्तगुणाः—

**लोहं जन्तुविकारपाण्डुपवनक्षीणत्वपित्तामय-**
**स्थौल्यार्शोग्रहणीज्वरार्तिकफजिच्छोफप्रमेहप्रणुत् ।**
**गुल्मप्लीहविषापहं बलकरं कुष्ठाग्निमान्द्यप्रणुत्**
**सौख्यालं विरसायनं मृतिहरं किट्टं च कान्तादिवत् ॥१३९॥**
**मृतानि लोहानि रसोभवन्ति निघ्नन्ति युक्तानि महामयांश्च ।**
**अभ्यासयोगाद् दृढदेहसिद्धिं कुर्वन्ति रुग्जन्मजराविनाशम् ॥ १४० ॥**

लोहभस्म कृमि से उत्पन्न विकार, पाण्डु, वायुरोग, क्षीणता, पित्तजन्यरोग, स्थूलता, बवासीर, संग्रहणी, ज्वर, कफ, शोथ, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, विषबाधा, कुष्ठ और मन्दाग्नि को नष्ट करती है, बल को बढ़ाती है, सुखकारक, उत्तम रसायन है और मृत्यु को नष्ट करती है। लौह का किट्ट भी कान्त लौह के समान गुणकारक होता है।

सर्वप्रकार के मृत लौह रस के समान गुणकारी और बड़े २ भयङ्कर रोगों को नष्ट करते हैं। इनके सेवन करने से देह दृढ और स्थिर हो जाती है और ये लौह रोग की उत्पत्ति और जरा को नष्ट करते हैं ॥ १३९–१४० ॥

अथ श्रेष्ठकान्तलौहस्य लक्षणम्—

**पक्वजम्बूफलच्छायं कान्तलोहं तदुत्तमम् ॥ १४१ ॥**

जो कान्तलोह पके हुए जामून के समान वर्णवाला हो वह श्रेष्ठ है ॥१४१॥

अथ लोहद्रुतिः—

**त्रिःसप्तकृत्वो गोमूत्रे जालिनीभस्मभावितम् ।**
**शोषयेत्तस्य वातेन तीक्ष्णं मूषागतं द्रवेत् ॥ १४२ ॥**
**सुरदालिभस्मगलितं त्रिःसप्तकृत्वोऽथ गोजले शुष्कम् ।**
**वापेन सलिलसदृशं करोति मूषागतं तीक्ष्णम् ॥ १४३ ॥**

कड़वी तरोई की राख को २१ वार गोमूत्र से भवित कर के उसे सुखा लेवें फिर उस राख को मूषा में रखकर लौह भस्म को भर दें, ऊपर से लौह पर फिर शेष राख रखकर बन्द करके अग्नि से धमन करने से लौह का द्रवण हो जाता है। अथवा देवदाली की राख को २१ वार गोमूत्र से भावित कर सुखा लें, पश्चात् मूषा में वह भस्म रख कर के उस में लौहभस्म भर कर ऊपर से फिर लौह को देवदाली भस्म से ढक कर मूषा का मुख बन्दकर अग्नि से तपावें। इस विधि से लौह की जल के सदृश द्रुति हो जाती है ॥ १४२-१४३ ॥

अथ कान्तलौहस्य विशेषमारणम्—

**सुरदालिभवं भस्म नरमूत्रेण गालितम्।**
**त्रिःसप्तवारं तत्क्षारवापात्कान्तद्रुतिर्भवेत् ॥ १४४ ॥**

देवदाली की राख को नरमूत्र से २१ वार भावितकर क्षारविधि से देवदाली भस्म का क्षार निकाल करके मूषायन्त्र में इस क्षार को और लौह भस्म को रखकर बन्द करके तीव्र अग्नि देने से कान्तलौह की द्रुति हो जाती है ॥ १४४ ॥

अथाष्टलोहानां द्रावणम्—

**गन्धकं कान्तपाषाणं चूर्णयित्वा समं समम्।**
**द्रुते लोहे प्रतीवापो देयो लोहाष्टकं द्रवेत् ॥ १४५ ॥**

सुवर्णादि अष्ट प्रकारके किसी भी लोह को पिघला कर गन्धक और कान्तलौह या चुम्बक पत्थर का चूर्ण डालता जाय तो उन सब की द्रुति होजाती है॥१४५॥

मतान्तरम्—

**देवदाल्याद्रवैर्भाव्यं गन्धकं दिनसप्तकम्।**
**तेन प्रवापमात्रेण लोहं तिष्ठति सूतवत् ॥ १४६ ॥**

अथवा गन्धक को सात दिन तक देवदाली ( हस्तीघोषक ) के रस से भावित करके चूर्ण करलें, फिर लौहों के अग्नि में पिघलते समय इस चूर्ण का प्रतिवाप ( प्रक्षेपण ) देने से वे पारद की तरह सर्वदा द्रुत अवस्था में ही रहते हैं ॥१४६॥

अशुद्धापक्वलोहदोषाः—

**अशुद्धलोहं न हितं निषेवणादायुर्बलं कान्तिविनाशि निश्चितम्।**
**हृदि प्रपीडां तनुते ह्यपाटवं रुजं करोत्येव विशोध्य मारयेत् ॥१४७॥**

अशुद्ध लोह का सेवन करना हितकर नहीं है, यह कान्ति, आयु और बल को

नष्ट करता है और हृदय में पीड़ा उत्पन्न करता है, शरीर को शिथिल कर देता है और रोग उत्पन्न करता है, इसलिये प्रथम लौह का उत्तम शोधनकर पश्चात् मारण करना चाहिए ॥ १४७ ॥

अथोत्तरोत्तरमधिकगुणकरं लोहम्—

**किट्टाद्दशगुणं मुण्डं मुण्डात्तीक्ष्णं शतोन्मितम् ।**
**तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कान्तं भक्षणात्कुरुते गुणान् ।**
**तस्मात्कान्तं सदा सेव्यं जरामृत्युहरं नृणाम् ॥ १४८ ॥**
**आयुष्प्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगप्रहर्ता मदनस्य कर्ता ।**
**अयःसमानं न हि किञ्चिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं हि जन्तोः ॥१४९॥**

किट्ट लौह से मुण्ड दसगुना लाभ कारक है और मुण्ड से तीक्ष्ण सौगुना अधिक लाभ करता है और तीक्ष्ण से कान्त लौह के सेवन के करने से लक्षगुणाधिक फल करता है, इसलिये सर्वदा जरा और मृत्यु को हरण करने वाले कान्त लौह का ही मनुष्यों को सेवन करना चाहिए । कान्त लौह आयु को बढाता है, बल, वीर्य और काम शक्ति को उत्पन्न करता है, रोगों को नष्ट करता है, इसलिये प्राणिमात्र के लिये लौह के समान गुणकारी अन्य कोई रसायन नहीं है ॥ १४८–१४९ ॥

अथ मण्डूरम्—

मण्डूरशोधनम्—

**अक्षाङ्गारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ।**
**सेचयेदक्षपात्रान्तः सप्तवारं पुनः पुनः ।**
**मण्डूरोऽयं समाख्यातश्चूर्णं श्लक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ १५० ॥**

लौह से उत्पन्न किट्ट ( मल ) को बहेड़े की अग्नि में प्रतप्त कर गोमूत्र से भरे हुए बहेड़े के पात्र में सात वार बुझाने से मण्डूर शुद्ध होजाता है पश्चात् इसका महीन चूर्ण करके भस्म बनाकर योगों में प्रयोग करे ॥ १५० ॥

मतान्तरम्—

**गोमुत्रैस्त्रिफला क्काथ्या तत्क्काथे सेचयेच्छनैः ।**
**लोहकिट्टं सुसन्तप्तं यावज्जीर्यति तत्स्वयम् ।**
**तच्चूर्णं जायते पेष्यं मण्डूरोऽयं प्रयोजयेत् ॥ १५१ ॥**

अथवा गोमूत्र में त्रिफला का क्वाथ बनाकर इस क्वाथ में मण्डूर को अत्यन्त

प्रतप्त कर तब तक बुझावें जबतक वह स्वयं चूर्ण न हो जाय, बाद में इसे पीस-कर भस्म बनाकर प्रयोग करें, यही मण्डूर भस्म है ॥ १५१ ॥

लौहमण्डूरयोर्गुणसाम्यता—

**ये गुणा मारिते मुण्डे ते गुणा मुण्डकिट्टके।**
**तस्मात्सर्वत्र मण्डूरं रोगशान्त्यै प्रयोजयेत् ॥ १५२ ॥**

इत्ययोऽधिकारः।

जो गुण भस्म किये हुये मुण्ड लोह के सेवन से होते हैं वे ही गुण मुण्ड के किट्ट (मण्डूरभस्म) के सेवन से होते हैं, इसलिये सब जगह रोग की शान्ति के लिये मण्डूरभस्म का प्रयोग करना चाहिए ॥ १५२ ॥

अथ वङ्गनिरूपणम्—वङ्गस्य द्वैविध्यनिर्देशः—

**खुरकं मिश्रकं चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते।**
**खुरं तत्र गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न हितं मतम् ॥ १५३ ॥**

खुरक और मिश्रक भेद से वङ्ग दो प्रकार का होता है, इन दोनों भेदों में से खुरक नाम का वङ्ग श्रेष्ठ है, किन्तु मिश्रक नाम का वङ्ग औषध कार्य में हित-कर नहीं है ॥ १५३ ॥

अथ खुरकवङ्गस्य मिश्रकवङ्गस्य च लक्षणम्—

**धवलं मृदुलं स्निग्धं द्रुतद्रावं सगौरवम्।**
**निःशब्दं खुरवङ्गं स्यात् ; मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥ १५४ ॥**

जो वङ्ग श्वेत, कोमल, स्निग्ध, वजन में भारी और अग्नि में तपाने पर शीघ्र द्रवित होने वाला तथा औषधियों के स्वरस में तपाकर बुझाने के समय अधिक शब्द न करे वह खुरक नाम का वङ्ग होता है। जो वङ्ग उक्त लक्षणों से विपरीत और श्वेत तथा काले रङ्ग का हो वह मिश्रक कहलाता है ॥ १५४ ॥

अथ वङ्गगुणाः—

**वङ्गं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम्।**
**मेहश्लेष्मामयघ्नं च मेदोघ्नं कृमिनाशनम् ॥ १५५ ॥**

वङ्ग तिक्त, उष्ण, रुक्ष और कुछ वात को कुपित करने वाला है तथा प्रमेह, श्लेष्मा (कफ) के विकार, क्रिमिजन्यरोग और मेदा को नष्ट करता है ॥१५५॥

अथ खुरकवङ्गशोधनम्—

द्रावयित्वा निशायुक्ते क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
विशुद्ध्यति त्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ १५६ ॥

खुरक वङ्ग को अग्नि पर स्थित कड़ाही के अन्दर पिघला ( द्रुत ) कर हरिद्रा के चूर्ण से युक्त निर्गुण्डी के रस में तीन वार बुझाने से शुद्ध हो जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १५६ ॥

अथ मिश्रकवङ्गशोधनम्—

अम्लतक्रविनिक्षिप्तं वर्षाभूविषतिन्दुभिः ।
कटूफलाम्बुगतं वङ्गं द्वितीयं परिशुद्ध्यति ॥ १५७ ॥

मिश्रक वङ्ग को कड़ाही में पिगलाकर श्वेत पुनर्नवा और कुचले के चूर्ण से मिले हुए खट्टी तक्र ( मट्ठे ) में अथवा कायफल के क्वाथ में बुझाने से शुद्ध हो जाता है ॥ १५७ ॥

अथ नागवङ्गकांस्यताम्राणां सामान्यशोधनम्—

शुद्ध्यति नागो वङ्गो घोषो रविरातपेऽपि मुनिसङ्ख्यैः ।
निर्गुण्डीरससेकैस्तन्मूलरजःप्रवापैश्च ॥ १५८ ॥

नाग, वङ्ग, कांसे और ताम्र को निर्गुण्डी के रस से भरे हुए पात्र में डाल कर सात दिन तक धूप में रखना चाहिए अथवा उपर्युक्त नागादिकों को कड़ाही में अग्नि से द्रुत कर निर्गुण्डीचूर्ण में पकावें, इस तरह सात वार करने से वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वङ्गभस्म—

सतालेनार्कदुग्धेन लिप्त्वा वङ्गदलानि च ।
बोधिचिञ्चात्वचःक्षारैर्द्ध्यात्लघुपुटानि च ।
मर्दयित्वा चरेद्भस्म तद्रसादिषु शस्यते ॥ १५९ ॥

शुद्ध वङ्ग के छोटे २ पत्र बनाकर उन्हें मदार के दुग्ध से पीसी हुई हरताल से लिप्त करदें, फिर उन्हें सकोरे में रखकर ऊपर और नीचे पीपल और इमली की छाल का क्षार रखकर दूसरे सकोरे के साथ कपड़ मिट्टी कर पुट देवें फिर इस को निकाल करके चूर्णकर भस्म बनालें, यह भस्म सर्वरसायनादि कार्यों में श्रेष्ठ है॥ १५९॥

मतान्तरम्—

प्रद्राव्य खर्परे वङ्गं षोडशांशं रसं क्षिपेत् ।

स्वल्पस्वल्पाऽऽलकं दत्त्वा भारद्वाजस्य काष्ठतः ।
मर्दयित्वा चरेद्धस्म तद्रसादिषु शस्यते ॥ १६० ॥

अथवा किसी खर्पर ( लौहपात्र ) में वङ्ग को अग्निद्वारा पिघाल ( द्रुत ) करके उसमें षोड़शांस शुद्ध पारद डालकर फिर उस में थोड़ा २ शुद्ध हरताल का चूर्ण डालताजाय और जङ्गली कपास के डण्डे से घोटता रहे, भस्म हो जाने पर उसका रसादिकार्यों में प्रयोग करें ॥ १६० ॥

मतान्तरम्—

पलाशद्रवयुक्तेन वङ्गपत्रं प्रलेपयेत् ।
तालेन पुटितं पश्चान्म्रियते नात्र संशयः ॥ १६१ ॥

अथवा वङ्ग के पत्रों को पलाशपुष्प अथवा पलाशजड़ के स्वरस से लिप्त कर समान भाग शुद्ध हरताल का चूर्ण मिलाकर के सम्पुट कर फूंकने से निश्चय हो वङ्ग की भस्म हो जाती है ॥ १६१ ॥

मतान्तरम्—

भल्लाततैलसंलिप्तं वङ्गं वस्त्रेण वेष्टितम् ।
चिञ्चापिप्पलपालाशकाष्ठाग्नौ याति पञ्चताम् ॥ १६२ ॥

अथवा शुद्ध वङ्ग के पत्रों को भिलावां के तैल से लिप्त करके ऊपर से साफ वस्त्र को लपेट दें, फिर उन्हें पीपल, इमली, पलाश, इन में से किसी एक की लकड़ियों की अग्नि में फूंकने से भस्म होजाती है ॥ १६२ ॥

अथ वङ्गरसायनम्—

वङ्गभस्मसमं कान्तं व्योमभस्म च तत्समम् ।
मर्दयेत्कनकाम्भोभिर्निम्बपत्ररसैरपि ॥ १६३ ॥
दाडिमस्य मयूरस्य रसेन च पृथक् पृथक् ।
भूपालावर्तभस्माथ विनिक्षिप्य समांशकम् ॥ १६४ ॥
गोमूत्रकशिलाधातुजलैः सम्यग्विमर्दयेत् ॥
ततो गुग्गुलुतायेन मर्दयित्व दिनाष्टकम् ॥ १६५ ॥
विशोष्य परिचूर्ण्याथ समभागेन योजयेत् ।
घृष्टं बन्धुकनिर्यासैर्नाकुलीबीजचूर्णकैः ॥ १६६ ॥
ततः क्षिपेत्करण्डान्तर्विधाय पटगालितम् ।

गोतक्रपिष्टरजनीसारेण सह पाययेत् ॥ १६७ ॥
चतुर्भिर्वङ्गकैस्तुल्यं रम्यं वङ्गरसायनम् ।
निश्चितं तेन नश्यन्ति मेहा विंशतिभेदकाः ॥ १६८ ॥
शालयो मुद्गसूपं च नवनीतं तिलोद्भवम् ।
पटोलं तिक्तकुण्डीरं तक्रं पथ्याय शस्यते ॥ १६९ ॥

इति वङ्गाधिकारः ।

वङ्ग भस्म के बराबर कान्त लौहभस्म और उतनी ही अभ्रक भस्म लेकर इन सब को खल्व में डालकर एक २ दिन तक धत्तूर और निम्बपत्र के स्वरस में मर्दन करना चाहिए, फिर इसी तरह दाड़िम के रस और अपामार्ग के रस से क्रमशः भावना देवें, पश्चात् इसमें वङ्ग के बराबर लाजवर्त की भस्म का एक भाग मिला कर के गोमूत्र और शिलाजीत के पानी से घोटें, फिर आठ दिन तक गूगल के पानी ( क्वाथ ) से घोट करके सुखालें, पश्चात् बन्धूकपुष्प ( गुलदुपहरिया ) के स्वरस या गोंद से घोट कर भावना दें, फिर इसमें तुल्य रास्ना बीज या सेमल बीज का चूर्ण मिला कर के खल्व में घोटकर वस्त्र से छान शीशी में भर लें । फिर इस सुन्दर वङ्ग रसायन को ४ वल्ल की मात्रा से हलदी के चूर्ण और गाय के तक्र के साथ सेवन करने से निश्चय ही बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं । इस रसायनसेवन के साथ २ साठीचांवलों का भात, मूंग की दाल, नवनीत, (मक्खन) तिलतैल, परवर का शाक, करले का शाक, कड़वी कन्हरी या बिम्बीफल और तक्र ये पथ्य में लेना चाहिए ॥ १६३–१६९ ॥

अथ नागः—

शुद्धसीसकलक्षणम्—

द्रुतद्रावं महाभारं छेदे कृष्णसमुज्ज्वलम् ।
पूतिगन्धं बहिः कृष्णं शुद्धं सीसमतोऽन्यथा ॥ १७० ॥

जो सीस अग्नि में गर्म करने से शीघ्र पिघल ( द्रुत ) जाय, तोल में भारी, तोड़ने पर चमक लिये हुए कृष्ण वर्ण का हो, कुछ दुर्गन्ध युक्त हो, बाहर से देखने में काला हो वह औषध कार्य में श्रेष्ठ है इन लक्षणों से विपरीतलक्षण का नाग त्याज्य है ॥ १७० ॥

सीसकगुणाः—

अत्युष्णं सीसकं स्निग्धं तिक्तं वातकफापहम्।
प्रमेहतोयदोषघ्नं दीपनं चामवातनुत् ॥ १७१ ॥

सीसा अत्यन्त उष्ण, स्निग्ध और तिक्तरसयुक्त होता है, तथा वात, कफ, प्रमेह, जल से जन्य रोग अथवा उदकमेह और आमवात को नष्ट करता है तथा अग्नि प्रदीप्त करता है ॥ १७१ ॥

अथ नागशुद्धिः—

सिन्दुवारजटाकौन्तीहरिद्राचूर्णकं क्षिपेत्।
द्रुते नागेऽथ निर्गुण्डयास्त्रिवारं निक्षिपेद्रसे ॥
नागः शुद्धो भवेदेवं मूर्च्छास्फोटदिनाचरेत् ॥ १७२ ॥

नाग को कड़ाही में डालकर अग्नि पर कड़ाही को रख दें, जब नाग द्रवित हो जाय तब उसमें निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, रेणुका का चूर्ण और हरिद्रा का चूर्ण डालकर कुछ देर तक घोटना चाहिए, पश्चात् निर्गुण्डीपत्र के स्वरस या क्वाथ में बुझावें, इस तरह तीन वार करने से नाग की शुद्धि हो जाती है और वह मूर्च्छा तथा फोड़े फुन्सी आदि विकारों को उत्पन्न नहीं करता है ॥ १७२ ॥

अथ नागभस्म—

तिर्यगाकारचुल्ल्यान्तु तिर्यग्वक्त्रं घटं न्यसेत् ॥
तं च वक्त्रं विना सर्वं गोपयेद्यत्नतो मृदा ॥ १७३ ॥
भ्रष्ट्यन्त्राभिधे तस्मिन् पात्रे सीसं विनिक्षिपेत्।
पलविंशतिकं शुद्धमधस्तीव्रानलं क्षिपेत् ॥ १७४ ॥
द्रुते नागे क्षिपेत्सूतं शुद्धं कर्षमितं शुभम्।
घर्षयित्वा क्षिपेत्क्षारमेकैकं हि पलं पलम् ॥ १७५ ॥
अर्जुनस्याक्षवृक्षस्य महाराजगिरेरपि।
दाडिमस्य मयूरस्य क्षिप्त्वा क्षारं पृथक् पृथक् ॥ १७६ ॥
एवं विंशतिरात्राणि पचेत्तीव्रेण वह्निना।
विघट्टयन्दृढं दोर्भ्यां लोहदर्व्या प्रयत्नतः ॥ १७७ ॥
रक्तं तज्जायते भस्म कपोतच्छायमेव वा।
नागं दोषविनिर्मुक्तं जायतेऽतिरसायनम् ॥ १७८ ॥

टेढ़े आकार वाले बने हुए चूल्हे पर एक घड़े को तिर्यक् मुख करके रख दें, फिर उस घड़े के मुख को छोड़कर सर्वाङ्ग पर चिकनी मिट्टी का लेप कर दें, यही भ्राष्ट्रसंज्ञकयन्त्र कहलाता है। इस यन्त्र में २० पल ( १ सेर ) शुद्ध सीसा डालकर नीचे तेज आंच लगानी चाहिए। जब सीस द्रुत हो जाय तब उस यन्त्र में एक कर्ष श्रेष्ठ तथा शुद्ध पारद डालकर लोहे की कलच्छु से घोटें, कुछ देर बाद उस यन्त्र में अर्जुन वृक्ष की छाल, बहेड़े की छाल, अमलतास या शाकविशेष, दाडिम ( अनार ) और अपामार्ग, इन सबका एक २ पल ( ४ तोला ) क्षार डाल कर तीव्र अग्नि से २१ दिन तक पकाना चाहिए। साथ में लोहे की कलच्छू द्वारा दोनों हाथों से खूब घोटते रहना चाहिए। इस विधि से नाग की लाल या कबूतर के वर्ण ( धूसर वर्ण ) के समान भस्म हो जाती है। इस विधि से नाग सब दोषों से रहित होकर निरूत्थ भस्म के रूप में अत्यन्त गुणकारक रसायन हो जाता है॥ १७३–१७८॥

मतान्तरम्—

**हतमुत्थापितं सीसं दशवारेण सिध्यति।**
**तन्मृतं सीसकं सर्वदोषमुक्तं रसायनम्॥ १७९॥**

सीस की उपर्युक्तविधि से भस्म बनाकर ऊर्द्ध्वपातनयन्त्र में उसका उत्थापन करें, इस तरह दस वार करने से सीस की सब दोषों से रहित रसायन के उपयोगी निरुत्थ भस्म हो जाती है॥ १७९॥

अथ नागस्य निरुत्थभस्मीकरणम्—

**अश्वत्थचिञ्चात्वग्भस्म नागस्य चतुरंशतः।**
**क्षिपेन्नागं पचेत्पात्रे चालयेल्लोहचाटुना॥ १८०॥**
**यावद्भस्म तदुद्धृत्य भस्मतुल्या मनःशिला।**
**जम्बीरैरारनालैर्वा पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥ १८१॥**
**स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा विंशत्यंशशिलायुतम्।**
**अम्लेनैव तु यामैकं पूर्ववत्पाचयेत्पुटे॥**
**एवं षष्टिपुटैः पक्को नागः स्यात्सुनिरुत्थकः॥ १८२॥**

शुद्ध नाग को कड़ाही में द्रवित कर के उसमें नाग से चतुर्थांश पीपल और इमली की त्वचा की राख डालकर लौह दण्ड से एक प्रहर तक खूब घोटना

चाहिए। एक प्रहर के बाद भस्म को निकाल कर, उसमें बराबर शुद्धमनः शिला मिलाकर के जम्बीररस या काञ्जी से घोटकर सम्पुट में बन्दकर के फूंक दें। एक प्रहर के पश्चात् स्वाङ्गशीत होने पर पुट से निकालकर फिर बीसवें भाग की मात्रा में मनःशिला मिला कर किसी अम्ल से घोटकर सम्पुट कर के एक प्रहर तक पकाना चाहिए। इस तरह प्रत्येक पुट में बीसवां भाग मनःशिला मिला कर ६० पुट देने से नाग की अत्यन्त गुणकर निरूत्थ भस्म हो जाती है ॥ १८०–१८२ ॥

अथ मतान्तरम्—

शिलया रविदुग्धेन नागपत्राणि लेपयेत्।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते तथा ॥ १८३ ॥

अथवा शुद्धनाग के पत्रों पर मदार के दुग्ध में घोटी हुई मनःशिला की पिष्टी का लेप कर पुटकी विधि से १० या १५ पुट देने से नाग की निरूत्थ भस्म हो जाती है ॥ १८३ ॥

अथ नागरसायनम्—

एवं नागोद्भवं भस्म ताप्यभस्माधभागिकम्।
पादं पादं क्षिपेद्भस्म शुल्वस्य विमलस्य च ॥ १८४ ॥
कान्ताभ्रसत्त्वयोश्चापि स्फटिकस्य पृथक् पृथक्।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य पुटेत्रिफलवारिणा ॥ १८५ ॥
त्रिशद्धनगिरिण्डैश्च त्रिशद्वारं विचूर्ण्यं तत्।
व्योषवेल्लकचूर्णैश्च समांशैः सह मेलयेत् ॥ १८६ ॥
मध्वाज्यसहितं हन्ति प्रलीढं वल्लमात्रया।
अशीतिवातजान्रोगान्धनुर्वातं विशेषतः ॥ १८७ ॥
कफरोगानशेषांश्च मूत्ररोगांश्च सर्वशः।
श्वांसं कासं क्षयं पाण्डुंश्वयथुं शीतकज्वयम् ॥ १८८ ॥
ग्रहणीमामदोषं च वह्निमान्द्यं सुदुर्जरम्।
सर्वानुदकदोषांश्च तत्तद्रोगानुपानतः ॥ १८९ ॥

उर्युक्तविधि से बनाई हुई सीसे की भस्म एक भाग तथा सुवर्णमाक्षिकभस्म अर्द्धभाग तथा ताम्रभस्म, विमलभस्म कान्तलौहभस्म, अभ्रकसत्व, स्फटिकभस्म, ये प्रत्येक सीस भस्म से चतुर्थांश लेना चाहिए इन सबको खरल में एकत्र कर

त्रिफला के क्वाथ से घोटकर तीस जंगली उपलों के अन्दर पुट देना चाहिए, फिर स्वाङ्गशीत होने के बाद निकालकर खरल में त्रिफलाक्वाथ से घोटकर पुट देवें। इस तरह तीस वार पुट देकर भस्म बनाले, फिर इसभस्म की एक वल्ल (दो रत्ती) की मात्रा में समानभाग त्रिकटुचूर्ण और वायविडङ्गचूर्ण मिलाकर शहद और मक्खन के साथ सेवन करने से अस्सी प्रकार के वातरोग, विशेष कर धनुर्वात, सम्पूर्ण कफ के रोग, मूत्र के रोग, श्वास, कास, क्षय, पाण्डु, शोथ, शीतज्वर, ग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि तथा सर्व प्रकार के जलदोष से उत्पन्न रोग भिन्न २ अनुपान के साथ सेवन से नष्ट हो जाते हैं ॥ १८४-१८९ ॥

अथ पित्तलम्—

पित्तलभेदाः—

**रीतिका काकतुण्डी च द्विविधं पित्तलं भवेत् ॥ १९० ॥**

पीतलधातु दो प्रकार की होती है, एक को रीतिका तथा द्वितीय भेद को काकतुण्डी कहते हैं ॥ १९० ॥

रीतिकालक्षणम्—

**सन्ताप्य काञ्जिके क्षिप्ता ताम्राभा रीतिका मता ॥ १९१ ॥**

पीतल को अग्नि में तपाकर काञ्जी में बुझाने से यदि वह ताम्बे के रङ्ग की हो जाय तो वह रीतिका पित्तल कहलाती है ॥ १९१ ॥

काकतुण्डीलक्षणम्—

**एवं या जायते कृष्णा काकतुण्डीति सा मता ॥ १९२ ॥**

पीतल को अग्नि में प्रतप्त कर काञ्जी में बुझाने से यदि वह कृष्णवर्ण की हो जाय तो काकतुण्डी पित्तल कही जाती है ॥ १९२ ॥

अथ रीतिकाया गुणाः—

**रीतिस्तिक्तरसा रूक्षा जन्तुघ्नी रक्तपित्तनुत्।**
**पाण्डुकुष्ठहरा योगात्सोष्णवीर्या च शीतला ॥ १९३ ॥**

रीतिका नाम की पीतल स्वाद में तिक्त, रूक्ष, जन्तुनाशक, रक्तपित्त और कुष्ठ को नाश करनेवाली और पांण्डुरोग नाशक है। शीतल पदार्थों के साथ सेवन करने से शीतवीर्य और उष्ण पदार्थों के साथ उष्णवीर्य्य है ॥ १९३ ॥

अथ काकतुण्ड्या गुणाः—

**काकतुण्डी गतस्नेहा तिक्तोष्णा कफपित्तनुत्।**
**यकृत्प्लीहहरा शीतवीर्या च परिकीर्तिता ॥ १९४ ॥**

काकतुण्डी नामक पीतल रूक्ष, कटु, उष्णवीर्य्य, कफपित्तनाशक और यकृत और प्लीहवृद्धि को नष्ट करती है तथा यह शीतवीर्य्य होती है ॥ १९४ ॥

अथ शुभरीतिकालक्षणम्—

**गुर्वी मृद्वी च पीताभा साराङ्गी ताडनक्षमा।**
**सुस्निग्धा मसृणाङ्गी च रीतिरेतादृशी शुभा ॥ १९५ ॥**

जो पीतल वजन में भारी, मृदु, पीतवर्णयुक्त, आघात से नहीं टूटने वाली और दृढ, अत्यन्त स्निग्ध तथा मसृण होतो वह पीतल औषध कर्म में श्रेष्ठ है॥ १९५॥

अशुभरीतिलक्षणम्—

**पाण्डुपीता खरा रूक्षा बर्बरा ताडनक्षमा।**
**पूतिगन्धा तथा लघ्वी रीतिर्नेष्टा रसादिषु ॥ १९६ ॥**

जो पीतल पाण्डुता तथा पीलेवर्ण वाली, खर, रूक्ष, आघात से टूटने वाली, लघु और दुर्गन्ध युक्त हो वह रसादि कर्म में श्रेष्ठ नहीं है ॥ १९६ ॥

रीतिकाशोधनम्—

**तप्त्वा क्षिप्त्वा च निर्गुण्डीरसे श्यामारजोऽन्विते।**
**पञ्चवारेण संशुद्धि रीतिरायाति निश्चितम् ॥ १९७ ॥**

पीतल को अग्नि में प्रतप्त कर हरिद्राचूर्ण से युक्त निर्गुण्डी के रस में ५ बार बुझाने से वह निश्चय ही शुद्ध हो जाती है ॥ १९७ ॥

रीतिकामारणम्—

**निम्बूरसशिलागन्धवेष्टिता पुटिताऽष्टधा।**
**रीतिरायाति भस्मत्वं ततो योज्या यथायथम् ॥ १९८ ॥**

शुद्ध पीतल के छोटे छोटे पत्र बनाकर उनकी बराबर शुद्ध गन्धक और मन शिला को निम्बू के रस में पीसकर पत्रों पर लेप कर देना चाहिए। फिर सम्पुट में बन्द कर पुट देवें, इस तरह आठ पुट देने से पीतल की श्रेष्ठ भस्म हो जाती है। इसको शास्त्रानुसार योगों में प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १९८ ॥

मतान्तरम्—

**ताम्रवन्मारणं तस्याः कृत्वा सर्वत्र योजयेत् ॥ १९९ ॥**

अथवा ताम्रभस्म विधि से पीतल की भस्म बना कर सब जगह उसका प्रयोग करें ॥ १९९ ॥

पित्तलरसायनम्—

**मृतारकूटकं कान्तं व्योमसत्त्वं च मारितम् ।**
**त्रयं समांशकं तुल्यं व्योषं जन्तुघ्नसंयुतम् ॥ २०० ॥**
**ब्रह्मबीजाजमोदाऽग्निभल्लातिलसंयुतम् ।**
**सेवितं निष्कमात्रं हि जन्तुघ्नं कुष्ठनाशनम् ।**
**विशेषाच्छ्वेतकुष्ठघ्नं दीपनं पाचनं हितम् ॥ २०१ ॥**

पीतलभस्म, कान्तलौहभस्म, मारित अभ्रकसत्त्व, इन तीनों को समान भाग ले कर खरल में घोट कर बराबर सोंठ, मीर्च, पीपल, वायविडङ्ग, ढाक के बीज, अजमोद और चित्रक के चूर्ण के साथ एक निष्क ( ४ मासे ) की मात्रा के सेवन करने से कृमि, कुष्ठ और विशेषकर श्वेतकुष्ठ को नष्ट करती है तथा दीपन और पाचन है ॥ २००–२०१ ॥

पित्तलद्रुतिः—

**सुवर्णरीतिकाचूर्णं भक्षितं वेष्टितं पुनः ।**
**छागेन कृष्णवर्णेन मत्तेन तरुणेन च ॥ २०२ ॥**
**तल्लिप्तं खर्परे दग्धं द्रुतिं मुञ्चति शोभनाम् ।**
**चतुर्दशलसद्वर्णसुवर्णसदृशच्छविः ।**
**देहलोहकरी प्रोक्ता युक्ता रसरसायने ॥ २०३ ॥**

इति पित्तलाधिकारः ।

सुवर्ण के समान उत्तम पीतवर्ण के शुद्ध पित्तल चूर्ण को किसी खाद्य पदार्थ के साथ मिलाकर काले और हृष्ट पुष्ट जवान बकरे को खिला देना चाहिए, फिर बकरे की विष्ठा ( मींगणियां ) को द्रावक वर्ग की औषधियों के साथ पीस कर मिट्टी के खर्पर में लिप्तकर अग्नि में जला देने से चोदह प्रकार के वर्ण से युक्त सुवर्ण के समान चमकदार उत्तम पीतल की द्रुति हो जाती है, इसका रस और रसायन कर्म में प्रयोग करने से देह लोह के समान दृढ और स्थिर हो जाती है ॥ २०२–२०३ ॥

अथ कांस्यम्—

कांस्योत्पत्तिवर्णनम्—

**अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागखुरकेण च ।**
**विद्रुतेन भवेत्कांस्यं तत्सौराष्ट्रभवं शुभम् ॥ २०४ ॥**

आठभाग ताम्र, दो भाग खुरक वङ्ग, इनदोनों को अग्नि में द्रुत करके मिलाने से कांस्य ( कृत्रिम ) बनता है। इसी विधि से खानों के अन्दर भी इसकी उत्पत्ति होती है, सौराष्ट्र देश का बना कांसा शुभ होता है ॥ २०४ ॥

अथ प्रशस्तकांस्यलक्षणम्—

**तीक्ष्णशब्दं मृदु स्निग्धमीषच्छ्यामलशुभ्रकम् ।**
**निर्मलं दाहरक्तं च षोढा कांस्यं प्रशस्यते ॥ २०५ ॥**

जो कांसा बजाने से तेज शब्द करता हो और मृदु, स्निग्ध तथा कुछ श्यामता युक्त शुभ्र ( श्वेत ) वर्ण का हो, निर्मल तथा अग्नि में तपाने से रक्तवर्ण का हो जाय इन लक्षणों वाला कांसा श्रेष्ठ होता है ॥ २०५ ॥

त्याज्यकांस्यलक्षणम्—

**तत्पीतं दहने ताम्रं खरं रूक्षं घनासहम् ।**
**मन्दनादं गतज्योतिः सप्तधा कांस्यमुत्सृजेत् ॥ २०६ ॥**

जिस कांसे का वर्ण पीला हो तथा अग्नि में तपाने से ताम्बे के समान वर्ण हो जाय तथा खर, रुक्ष, पीटने से टूटने वाला, ताड़न करने पर मन्द शब्द करने वाला और कान्ति रहित हो, इन सात लक्षणों वाला कांस्य औषध कर्म में त्याज्य है ॥ २०६ ॥

अथ कांस्यगुणाः—

**कांस्यं लघु च तिक्तोष्णं लेखनं दृक्प्रसादनम् ।**
**कृमिकुष्ठहरं वातपित्तघ्नं दीपनं हितम् ॥ २०७ ॥**
**घृतमेकं विना चान्यत्सर्वं कांस्यगतं नृणाम् ।**
**भुक्तमारोग्यसुखदं हितं सात्म्यकरं तथा ॥ २०८ ॥**

कांस्य लघु, तिक्त, उष्ण और लेखन होता है तथा कृमि, कुष्ठ, वात, पित्त का नाशक, अग्नि को दीप्त करने वाला और दृष्टि को बढ़ाता है तथा हितकर है। कांसे के बने पात्र में घृत को छोड़कर अन्य भोज्य पदार्थ रखकर खाने से मनुष्यों

के लिये आरोग्य और सुख प्रद है और शरीर के या प्रकृति के लिये सात्म्य होता है ॥ २०७–२०८ ॥

अथ कांस्यशोधनम्—

**तप्तं कांस्यं गवां मूत्रे वापितं परिशुध्यति ॥ २०९ ॥**

कांसे को अग्नि में प्रतप्त कर गोमूत्र में सातवार बुझानेसे वह शुद्ध होजाता है॥२०९॥

अथ कांस्यमारणम्—

**म्रियते गन्धतालाभ्यां निरुत्थं पञ्चभिः पुटैः ॥ २१० ॥**

कांस्य के पत्रोंपर निम्बूरस से घोटे हुए गन्धक और मनःशिला का लेपकर पांच पुट देने से उसको निरुत्थ भस्म हो जाती है ॥ २१० ॥

मतान्तरम्—

**त्रिक्षारं पञ्चलवणं सप्तधाऽम्लेन भावयेत् ॥**
**कांस्याऽऽरकूटपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ।**
**रुद्ध्वा गजपुटे पक्वं शुद्धभस्मत्वमाप्नुयात् ॥ २११ ॥**

इति कांस्याधिकारः ।

सज्जिखार, जवाखार, टङ्कण और पांचो नमक ( सौवर्चल, सैन्धव, विड्, औद्भिद, सामुद ) इनको किसी अम्लरस से सातवार भावित कर कांस्य तथा पीतल के पत्रों पर लेप करके सम्पुट में बन्द कर गज पुट में फूंक देने से कांसे या पीतल की उत्तम भस्म हो जाती है ॥ २११ ॥

अथ वर्तलोहम्—

वर्तलोहस्वरूपः—

**कांस्यार्करीतिलाहाऽहिजातं तद्वर्तलोहकम् ।**
**तदेव पञ्चलोहाख्यं लोहविद्भिरुदाहृतम् ॥ २१२ ॥**

कांस्य, ताम्र, पित्तल, लोह, सीस इनको गला कर मिला देने से जो धातु बनती है उस को लोहके विशेषज्ञ वर्तलोह या लोहपञ्च या पञ्चलोह (भरत) कहते हैं॥२१२॥

अथ वर्तलोहगुणाः—

**हिमाम्लं कटुकं रूक्षं कफपित्तविनाशनम् ।**
**रुच्यं त्वच्यं कृमिघ्नं च नेत्र्यं मलविशोधनम् ॥ २१३ ॥**
**तद्भाण्डे साधितं सर्वमन्नव्यञ्जनसूपकम् ।**

**अम्लेन वर्जितं चापि दीपनं पाचनं हितम् ॥ २१४ ॥**

वर्तलोह ( भरत ) शीतवीर्य्य, अम्ल, कटु, रुक्ष, कफपित्त और कृमि को नष्ट करता है, त्वचा और नेत्र के विकारों में हितकर तथा रुचिकारक और मल-शोधक होता है तथा भरत के बने हुए पात्र में अम्ल पदार्थ के अतिरिक्त और अन्य सर्व प्रकार के अन्न, शाक, दाल इत्यादि बनाकर खाने से अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है तथा पाचकशक्ति भी बढती है ॥ २१३-२१४ ॥

वर्तलोहशोधनम्—

**द्रुतमश्वजले क्षिप्तं वर्तलोहं विशुध्यति ॥ २१५ ॥**

वर्तलोह को अग्नि पर पिघलाकर तुरन्त ही घोड़े के मूत्र में बुझाने से वह शुद्ध होजाता है ॥ २१५ ॥

वर्तलोहमारणम्—

**म्रियते गन्धतालाभ्यां पुटितं वर्तलोहकम् ।**
**तेषु तेष्विह योगेषु योजनीयं यथाविधि ॥ २१६ ॥**

इति वर्तलोहाधिकारः ।

शुद्धवर्त लोंह के छोटे २ पत्र या टुकड़े करके उन पर समानभाग गन्धक और शुद्ध हरताल को निम्बू के रस में घोटकर लेप कर देना चाहिए, पश्चात् सम्पुट में बन्द करके गजपुट में सात वार फूंक देना चाहिए, इस तरह बनी भस्म को यथाशास्त्र सर्वप्रयोगों में प्रयुक्त करनी चाहिए ॥ २१६ ॥

अथ रसोपररसलोहानां सूतसाधकत्वनिर्देशः—

**जातिमद्भिर्विशुद्धैश्च विधिना परिसाधितैः ।**
**रसोपररसलोहाद्यैः सूतः सिध्यति नान्यथा ॥ २१७ ॥**

जो रस उपरस और लोह उत्तमजाति के हों तथा विधिपूर्वक शुद्ध और भस्म किये गये हों उन्हीं के संसर्ग से पारद सिद्ध होकर शरीर को अजर अमर बनाता है, इनके विना पारद भी सिद्ध नहीं होता है ॥ २१७ ॥

रत्नादीनां सूतयोग्यत्वनिर्देशः—

**रत्नानि लोहानि वराटशुक्तिपाषाणजातं खुरशृङ्गशल्यम् ।**
**महारसाद्येषु कठोरदेहं भस्मीकृतं स्यात्खलु सूतयोग्यम् ॥२१८॥**

सर्वप्रकार के रत्न, लोह (सप्त या अष्ट धातु) कौड़ी, शुक्ति, पाषाणजाति या

पाषाण से उत्पन्न होने वाले खनिज पदार्थ, खुर, सींग, शल्य ( अस्थि ) और महारसादियों में जो कठिन ( दृढाङ्ग ) पदार्थ वैक्रान्त, माक्षिक आदि हैं, उन्हें विधिपूर्वक शुद्ध करके भस्म के रूप में बनाने पर ही वे पारद के कार्य में उपयुक्त हो सकते हैं, अतः बुद्धिमान् को चाहिए कि यथाशास्त्र इनकी शुद्धि तथा भस्म करें ॥ २१८ ॥

भूनागसत्त्वपातनम्—

**वज्राणां द्रावणार्थाय सत्त्वं भूनागजं ब्रुवे ।**
**तदेव परमं तेजः सूतराजेन्द्रवज्रयोः ॥ २१९ ॥**
**धौतभूनागसम्भूतं मर्दयेद्भृङ्गजद्रवैः ।**
**निम्बूद्रवैश्च निर्गुण्ड्याः स्वरसैस्त्रिदिनं पृथक् ॥ २२० ॥**
**तद्द्रावणगणोपेतं सम्मर्द्य वटकीकृतम् ।**
**निरुध्य दृढमूषायां द्विदण्डं प्रधमेद् दृढम् ॥ २२१ ॥**
**स्वतः शीतं समाहृत्य पट्टके विनिवेश्य तत् ।**
**रवकान् राजिकातुल्यान्त्रिगुणतिभरान्वितान् ॥ २२२ ॥**
**द्वादशांशार्कसंयुक्तान्धमित्वा रवकान्हरेत् ।**
**प्रक्षाल्य रवकानाशु समादाय प्रयत्नतः ॥ २२३ ॥**
**वज्रादिद्रावणं तेन प्रकुर्वीत यथेप्सितम् ।**
**खरसत्त्वमिदं प्रोक्तं रसायनमनुत्तमम् ।**
**द्वित्रिमूषासु चैकस्यां सत्त्वं भवति निश्चितम् ॥ २२४ ॥**

भूनाग ( केञ्चुआअर्थवर्म ) का सत्त्व हीरकादि वज्रों के द्रावण करने में अत्यन्त उत्तम है तथा पारद और हीरक की शक्ति को बढाता है, इस लिये इस सत्त्व के पातन की विधि कहता हूं । जल से अच्छी प्रकार धोये हुए केञ्चुओं को सुखा कर उनका चूर्ण बना लेना चाहिए, फिर इस चूर्ण को भृङ्गराजरस (भांगरा), निम्बूरस और निर्गुण्डी स्वरस, से पृथक् २ तीन २ दिन तक मर्दनकरके द्रावक वर्ग के पदार्थ मिलाकर घोट लेना चाहिए। फिर टिकिया बनाकर एक मजबूत मूषा के अन्दर बन्द करके दो दण्ड (४८ मिनट) तक तेज अग्निद्वारा फूंकना चाहिए। स्वाङ्गशीत होने पर मूषा से उनको निकाल कर किसी पट्ट ( काष्ठपट्ट यावस्त्र ) पर डाल कर या वस्त्र से छान करके राई के बराबर मोटे २ तथा वजनी सत्त्व

कणों को एकत्र करके उनमें १२ वां भाग शुद्ध ताम्र का चूर्ण मिला कर मूषायन्त्र में बन्द करके फूंक दें, फिर उन सत्त्वकणों को निकाल के जल से धोकर रख लेना चाहिए। इन से वज्रादि का द्रावण करना चाहिए। यह सत्त्व अत्यन्त उत्तम रसायन है तथा इसे खर सत्त्व कहते हैं, इस सत्त्व को सम्पूर्ण निकालने के लिये दो या तीन मूषा लेकर विधिपूर्वक कार्य करना चाहिए। कभी २ एक ही मूषा के द्वारा सम्पूर्ण सत्त्व निकल जाता है ॥ २१९–२२४ ॥

मतान्तरम्—

**भुजङ्गमानुपादाय चतुष्प्रस्थसमन्वितान् ।**
**सुवर्णरूप्यताम्रायस्कान्तलभूतिभूमिजान् ॥ २२५ ॥**
**प्रक्षाल्य रजनीतोयैः शीतलैश्च जलैरपि ।**
**उपोषितं मयूरं वा शूरं वा चरणायुधम् ॥ २२६ ॥**
**क्रमेण चारयित्वाथ तद्विष्ठां समुपाहरेत् ।**
**क्षाराम्लैः सह सम्पेष्य विशोष्य च खरातपे ॥ २२७ ॥**
**ततः खर्परके क्षिप्त्वा भर्जयित्वा मषीं चरेत् ।**
**मषीं द्रावणवर्गेण संयुक्तां सम्प्रमर्दिताम् ॥ २२८ ॥**
**निरुध्य कोष्ठिकामध्ये प्रथमेद्धटिकाद्वयम् ।**
**शीतलीभूतमूषायाः खोटमाहृत्य पेषयेत् ॥ २२९ ॥**
**प्रक्षाल्य रसकान् सूक्ष्मान् समादाय प्रयत्नतः ।**
**सुवर्णमानवद् ध्मात्वा रवं कृत्वा नियोजयेत् ॥ २३० ॥**

सुवर्ण, रजत, ताम्र, कान्तलौह इत्यादि धातुएं जिन खानों से निकलती हैं उन खानों की मिट्टी में उत्पन्न होने वाले केंचुए ४ प्रस्थ ( २५६ या ३ सेर १६ तो० ) लेकर उन को हरिद्रा के स्वरस या क्वाथ से प्रथम अच्छी तरह धोकर दूसरी बार शीतल जल से धो कर साफ कर लेना चाहिए। फिर उन्हें एक भूखे मयूर या जवान कुक्कुट ( मूर्गा ) को खिला देवें। पश्चात् उस मयूर या मूर्गे की विष्ठा ( केंचुएं के खाने से निकली हुई ) को लेकर खल्व में क्षार और अम्ल वर्ग के पदार्थों के साथ घोटकर तेज धूप में सुखा लें, सूखने पर एक मिट्टी के खर्पर में उसे भूंजकर मषी अथवा कज्जली अथवा राख बनालेवें, फिर इस राख को द्रावकवर्ग की औषधियों के साथ घोटकर मूषायन्त्र में बन्दकर दो घड़ी तक

अग्नि में फूंके, स्वाङ्गशीत होने पर मूषा से भूनाग सत्त्व को निकालकर खल्व में पीस करके धोकर छोटे २ सत्त्व के कणों को यत्नपूर्वक निकाल लें, पश्चात् उन्हें मूषायन्त्र में बन्दकर स्वर्णद्रावण की विधि के अनुसार गला कर निकाल लें, फिर चूर्ण कर प्रयोग करना चाहिए ॥ २२५–२३० ॥

अथ भूनागमुद्रिका—

**भूनागोद्भवसत्त्वमुत्तममिदं श्रीसोमदेवोदितं**
**दत्तं पादमितं द्विशाणकनकेनैकं गतेनोर्मिकाम् ।**
**तद्धौताम्बुविलेपितं स्थिरचराद्भूतं विषं नेत्ररुक्**
**शूलं मूलगदं च कर्णजरुजो हन्यात्प्रसूतिग्रहम् ॥ २३१ ॥**

इति भूनागाधिकारः ।

श्रीसोमदेव के द्वारा कथित उत्तम भूनागसत्त्व चतुर्थांश ( २ मासा ) लेकर दो शाण ( ८ मासा ) स्वर्ण के साथ गलाकर दोनों को मिला कर एक अंगूठी बनवा लेनी चाहिए, फिर उस अगूंठी को पानी में डाल कर निकाल लें, वह अगूंठी का पानी स्थावर और जंगमविषबाधा, नेत्ररोग, शूल, अर्श, कर्णरोग और प्रसूति-रोग को स्पर्शमात्र से नष्ट कर देता है ॥ २३१ ॥

अथ तैलपातनविधिः ।

**मूलान्युत्तरवारुण्या जर्जरीकृत्य काञ्जिके ।**
**क्षिपेदङ्कोल्लबीजानां पेषिकां जर्जरीकृताम् ॥**
**तत्तैलं घृतवत्स्थानं ग्राह्यं तत्तु यथाविधि ॥ २३२ ॥**

तैल भी बीजों का सत्त्व होता है इस लिये सत्त्व पातन के प्रकरण में उनके निकालने की विधि लिखते हैं । इन्द्रवारुणी की जड़ को काञ्जी में पीसकर उसमें अंकोल के बीजों को पीस कर मिला देना चाहिए, फिर एक वस्त्र की बनी हुई पोटली में इनको रखकर तेज धूप में किसी लकड़ी के सहारे लटका देना चाहिए । जब पोटली से तैल नीचे रखे बर्तन में चूकर घी के समान ( गाढ़ा ) घनीभूत हो जाय तब किसी पात्र (शीशी) में ले लेना चाहिए ॥ २३२ ॥

मतान्तरम्—

**सम्पेष्योत्तरवारुण्याः पेटकार्या दलान्यथ ।**
**काञ्जिकेन ततस्तेन कल्केन परिमर्दयेत् ॥ २३३ ॥**

रजश्चाङ्कोल्लबीजानां तद्वध्वा विरलाम्बरे ।
तद्विलम्ब्याऽऽतपे तीव्रे तस्याधश्चषकं न्यसेत् ॥
तस्मिन्निपतितं तैलमादेयं श्वित्रनाशनम् ॥ २३४ ॥

अथवा इन्द्रायण के पत्ते तथा ज्योतिष्मती ( मालकंगुनी ) के पत्तों को काञ्जी में बारीक पीस कर कल्क बना लें, फिर इस कल्क के साथ अङ्कोल के बीजों के चूर्ण को पीस कर एक पतले वस्त्र में रख कर पोटली बनालें, फिर इस पोटली को तेज धूप में लटका करके नीचे एक काच का प्याला रख दें, फिर धूप के कारण पोटली से तैल चूकर प्याले में इकट्ठा हो जाता है, इस तैल को श्वेत कुष्ठ पर लगाने से वह अच्छा हो जाता है ॥ २३३-२३४ ॥

मतान्तरम्—

अङ्कोल्लबीजसम्भूतं चूर्णं सम्मर्द्य काञ्जिकैः ।
एकरात्रोषितं तत्तु पिण्डीकृत्य ततः परम् ॥ २३५ ॥
स्वेदयेत्कन्दुके यन्त्रे घटिकाद्वितयं ततः ।
तां च पिण्डीं दृढे वस्त्रे बद्ध्वा निष्पीड्य काष्ठतः ॥२३६॥
अधः पात्रस्थितं तैलं समाहृत्य नियोजयेत् ।
एवं कन्दुकयन्त्रेण सर्वतैलान्युपाहरेत् ॥ २३७ ॥

अथवा अङ्कोल बीज के चूर्ण को काञ्जी से घोटकर रात्रिपर्यन्त रख दें, फिर उस चूर्ण का गोला बना कर के एक हण्डिका में पानी भर कर गले पर एक वस्त्र बांध देना चाहिए। उस वस्त्र के मध्य भाग में गोला रख कर ऊपर से एक सकोरे से ढक कर के बन्द कर देना चाहिए, पश्चात् उस यन्त्र (कन्दुकनामक) को अग्नि पर चढाकर दो घड़ी तक स्वेदन करना चाहिए। बाद में उस स्वेदित गोले को मजबूत वस्त्र के अन्दर बांधकर दो काष्ठों के बीच दबाकर नीचे के पात्र में निकले हुए तैल को निकाल कर यथामति सर्वत्र प्रयोग करें, इसी प्रकार बनाये हुए कन्दुक नाम के यन्त्र से सर्व प्रकार के तैलों को निकालना चाहिए ॥२३५-२३७॥

मतान्तरम्—

अङ्कोलस्यापि तैलं स्यात्काकतुण्ड्या समूलया ॥ २३८ ॥

अथवा जड़ के सहित श्वेत गुञ्जा को पीस कर उसके रस से अङ्कोल के बीजों

को घोट कर कन्दुकनामक (१)यन्त्र से तैल निकालते हैं ॥ २३८ ॥

तैलपातनम्—

**बाकुचीदेवदाल्याश्च कर्कोटीमूलतो भवेत् ॥ २३९ ॥**

कर्कोटी ( बांझककोड़ा ) के जड़ के रस से बाकुची और बन्दाल के बीजों को पीस कर उपर्युक्तविधि से तैल निकालते हैं ॥ २३९ ॥

अथ विषमुष्टितैलपातनम्—

**अपामार्गकषायेण तैलं स्याद्विषमुष्टिजम् ॥ २४० ॥**

अपामार्ग के स्वरस से कुचले को घोट कर उपर्युक्तिविधि से तैल निकालते हैं॥२४०॥

अथ जैपालतैलपातनम्—

**मूलक्काथैः कुमार्याश्च तैलं जेपालजं हरेत् ॥ २४१ ॥**

घृतकुमारी की जड़ के रस से जैपाल ( जमालगोटा ) बीज को पीसकर तैल निकालना चाहिए ॥ २४१ ॥

बाकुचीतैलाहरणविधिः—

**क्काथैरक्तापमार्गस्य बाकुचीतैलमाहरेत् ॥ २४२ ॥**

लाल अपामार्ग ( लालदण्डी घोंघा ) के क्वाथ से बाकुची बीजों को घोट कर तैल निकालना चाहिए ॥ २४२ ॥

अथ कृष्णमिश्रश्वेतगुञ्जाबीजतैलपातनविधिः—

**कृष्णायाः काकतुण्डयाश्च बीजचूर्णानि कारयेत् ।**
**कान्तपाषाणचूर्णं च एकीकृत्य निरोधयेत् ।**
**धान्यराशिगतं पश्चादुद्धृत्य तैलमाहरेत् ॥ २४३ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये लोहशोधनमारणादिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

---

पिप्पली, श्वेतगुञ्जा और कान्तपाषाण का चूर्ण, इन सब को बराबर २ लेकर जल से पीस लें । फिर इस कल्क को किसी पात्र में बन्दकर धान के ढेर में एक

---

( १ ) साम्बुस्थालीमुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च ।
पिधाय पच्यते यत्र तद् यन्त्रं कन्दुकं स्मृतम् ॥

पक्व तक गाढ़ देना चाहिए । फिर इस कल्क को दो काष्ठ के पट्टों के बीच में दबाकर तैल निकालना चाहिए ॥ २४३ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां
लोहशोधनमारणादिनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः।

## अथ षष्ठोऽध्यायः।

शिष्योपानयननिरूपणम्—

अथ क्रमयुक्तशास्त्रम्—

**रसशास्त्राणि सर्वाणि समालोच्य यथाक्रमम् ।**
**साधकानां हितार्थाय प्रकटीक्रियतेऽधुना ॥ १ ॥**

यथाक्रम से सब रस के शास्त्रों का उत्तम प्रकार से अवलोकन कर रस शास्त्र को जानने की इच्छा वाले साधकों के हित के लिये रसशास्त्र का वर्णन किया जाता है॥ १॥

शास्त्रक्रमयोः परस्परापेक्षा—

**न क्रमेण विना शास्त्रं न शास्त्रेण विना क्रमः ।**
**शास्त्रं क्रमयुतं ज्ञात्वा यः करोति स सिद्धिभाक् ॥ २ ॥**

जिस शास्त्र में पौर्वापर्य्यरूप क्रम नहीं रहता है वह शास्त्र उत्तमशास्त्र नहीं है और शास्त्रप्रमाण से शून्य क्रम भी उत्तम क्रम नहीं है, इस कारण जो साधक क्रमानुसार शास्त्र को जान कर रसादिकर्म करने में प्रवृत्त होता है वही सिद्धि को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

रसवद्विगुरुः—

**आचार्यो ज्ञानवान्दक्षो रसशास्त्रविशारदः ।**
**मन्त्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ॥ ३ ॥**
**देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः ।**
**सर्वाम्नायविशेषज्ञः कुशलो रसकर्मणि ।**

**एवं लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ ४ ॥**

रसशास्त्र का उपदेशक आचार्य शास्त्र का पूर्णज्ञाता, रसनिर्माणक्रिया में चतुर, रसशास्त्र का पूर्ण विद्वान, मन्त्र की सिद्धि से युक्त, शूरवीर, गम्भीर चित्त वाला तथा शिव का भक्त, देवी का भक्त, सदा धैर्यता से काम करने वाला, देवता प्रसाधक, यज्ञ कर्म में संलग्न, प्रायः सर्व वेद दर्शनादि शास्त्रों का विशेषज्ञ, पारद तथा सर्व रस कर्म में निपुण, इतने लक्षणों से यदि सम्पन्न हो तो वह रसशास्त्र का आचार्य हो सकता है ॥ ३–४ ॥

अथ शिष्यगुणाः—

**गुरुभक्ताः सदाचाराः सत्यवन्तो दृढव्रताः ।**
**निरालस्याः स्वधर्मज्ञाः सदाऽऽज्ञापरिपालकाः ॥ ५ ॥**
**दम्भमात्सर्यनिर्मुक्ताः कुलाऽऽचारेषु दीक्षिताः ।**
**अत्यन्तसाधकाः शान्ता मन्त्राऽऽराधनतत्पराः ॥**
**इत्येवं लक्षणैर्युक्ताः शिष्याः स्युः सूतसिद्धये ॥ ६ ॥**

गुरु के भक्त, सदाचारसम्पन्न, सत्यवादी, अपने नियत ( व्रत ) में दृढ, आलस्य से रहित, स्वधर्म के जानने वाले, सर्वदा आप्त जनों की आज्ञा का पालन करने वाले और पाखण्ड तथा मात्सर्य से रहित, अपने कुलपरम्परा से प्राप्त आचार को मानने वाले, शान्तस्वभाव, रसादिविद्याग्रहण करने में अत्यन्त उत्साही और मन्त्रों के सिद्ध करने में प्रयत्नशील, इन लक्षणों से युक्त शिष्य सूत को सर्वसिद्धिप्रद बनाने में समर्थ हो सकते हैं तथा वे ही रसविद्या जानने के अधिकारी हैं ॥ ५–६ ॥

अथानुचरगुणाः—

**सहायाः सोद्यमास्तत्र तथा शिष्यास्ततोऽधिकाः ।**
**कुलीनाः स्वामिभक्ताश्च कर्तव्या रसकर्मणि ॥ ७ ॥**

जो सेवक उद्योगशील, शिष्य से भी अधिक गुण सम्पन्न तथा उत्तमकुल में उत्पन्न और स्वामीभक्त हों उन्हें रसकर्म में नियुक्त करना चाहिए ॥ ७ ॥

अथायोग्यशिष्याः—

**नास्तिका ये दुराचाराश्चुम्बका गुरुतोऽपरात् ।**
**विद्यां ग्रहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मखलोत्सवात् ॥ ८ ॥**

न तेषां सिध्यते किञ्चिन्मणिमन्त्रौषधादिकम् ।
कुर्वन्ति यदि मोहेन नाशयन्ति स्वकं धनम् ॥
इह लोके सुखं नास्ति परलोके तथैव च ॥ ९ ॥
तस्माद्भक्तिबलादेव सन्तुष्यति यदा गुरुः ।
तदा शिष्येण सा ग्राह्या रसविद्याऽऽत्मसिद्धये ।
हस्तमस्तकयोगेन वरं लब्ध्वा सुसाधयेत् ॥ १० ॥

जो शिष्य नास्तिक अर्थात् गुरू, शास्त्र, देव, धर्म, स्वर्गादि और पाप तथा पुण्य में विश्वास नहीं करते हों, दुष्ट आचार विचार वाले, गुरु को छोड़ कर अन्य से या गुरुही से चोरी, कपट और दुष्टता को छिपाकर विद्या की प्राप्ति के इच्छुक हों उनको मणि मन्त्र और औषध में से कुछ भी यथार्थ रूप से प्राप्त नहीं होता है और यदि वे मोह के वश से रसविद्या को सिद्धि में प्रवृत्त होते हैं तो स्वकीय धन का नाश कर इस लोक और परलोक में सुख से वञ्चित ही रहते हैं । इसलिये जब गुरु भक्तिभाव से प्रसन्न हो जायं तब उनसे आत्मसिद्धि के लिये रसविद्या ग्रहण करनी चाहिए । फिर गुरु को बद्धाञ्जलि होकर शिर से प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त कर रसकर्म का साधन करना चाहिए ॥ ८–१० ॥

अथ रससाधनरसशालारसमण्डपाः—

आतङ्करहिते देशे धर्मराज्ये मनोरमे ।
उमामहेश्वरोपेते समृद्धे नगरे शुभे ॥ ११ ॥
कर्तव्यं साधनं तत्र रसराजस्य धीमता ।
अत्यन्तपवने रम्ये चतुर्द्वारोपशोभिते ॥ १२ ॥
तत्र शाला प्रकर्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा ।
सम्यग्वातायनोपेता दिव्यचित्रैर्विचित्रिता ॥ १३ ॥
तत्समीपे समे दीप्ते कर्तव्यं रसमण्डपम् ।
अतिगुप्तं सुविस्तीर्णं कपाटार्गलशोभितम् ॥ १४ ॥
ध्वजछत्रवितानाढ्यं पुष्पमालाविलम्बितम् ।
भेरीकाहलघण्टादिशृङ्गीनादविनादितम् ॥ १५ ॥
भूः समा तत्र कर्तव्या सुदृढा दर्पणोपमा ।
तन्मध्ये वेदिका रम्या कर्तव्या लक्षणान्विता ॥ १६ ॥

जो नगर रोग से रहित, धर्म पूर्वक राज्य से युक्त, मनोहर, शिव तथा पार्वती के निवास से पवित्र, देश के समृद्ध तथा शुभ हो ऐसे शहर में रस का साधन करना चाहिए और जहां पर अत्यन्त रमणीक तथा चार द्वार वाला उपवन बनवाकर उसमें अत्यन्त विस्तृत ( लम्बी, चौड़ी ) मनोहर तथा सुन्दर २ खिड़कियों और झरोखों से युक्त और जिस में अनेक धन्वन्तरि, सिद्धिरसायन, शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य, देवता, तथा यन्त्रादिक उपकरणों के चित्र लगे हों ऐसी रसशाला बनवानी चाहिये। उसी रसशाला के समीप प्रकाशवाली समान भूमि में एक रसमण्डप बनाना चाहिए जो कि अत्यन्त शुभ्र, खूब लम्बा चौड़ा, सुन्दर किवाड़ और अर्गला से युक्त हो और पताकाएं, छत्र, वितान ( चन्दोवा ) जिसमें लगे हों और चारों तरफ सुगन्धित पुष्पों की मालाओं के टांकने से सुशोभित तथा भेरी मृदङ्ग, शंख, घड़ियाल घण्टा आदि वाद्यों से शब्दायमान होना चाहिए। उसी मण्डप की भूमि समान, दृढ और दर्पण के समान चमकदार होनी चाहिए, और उसके बीचों बीच शास्त्रानुसार शुभ लक्षणों वाली अत्यन्त सुन्दर वेदिका का निर्माण कराना चाहिए॥ ११-१६॥

रसलिङ्गस्थापनादि—

**निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम् ।**
**अम्लेन मर्दयेद्यामं तेन लिङ्गन्तु कारयेत् ॥ १७ ॥**
**दोलायन्त्रे सारनाले जम्बीरस्थं दिनं पचेत् ।**
**तल्लिङ्गं पूजयेत्तत्र सुशुभैरुपचारकैः ॥ १८ ॥**

तीन निष्क ( १२ मासा ) शुद्ध स्वर्ण के पत्र और नो निष्क ( ८ मा० ) पारद लेकर दोनों को निम्बू के रस से एक प्रहर तक घोट कर इनका शिवलिङ्ग बनवा लेना चाहिये, फिर उस लिङ्ग को बड़े निम्बू के बीच में रख कर काञ्जी में दोलायन्त्र के द्वारा एक दिन तक पकाना चाहिये, पश्चात् उसका वेदिका के मध्य में स्थापन करा कर सुन्दर उपचारों से यथाशास्त्र पूजन करनी चाहिए॥ १७-१८॥

रसलिङ्गपूजनफलम्—

**लिङ्गकोटिसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात् ।**
**तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ १९ ॥**
**ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्याश्चायुतानि हि ।**
**तत्क्षणाद्विलयं यान्ति रसलिङ्गस्य दर्शनात् ॥ २० ॥**

स्पर्शनात्प्राप्यते मुक्तिरिति सत्यं शिवोदितम्।
आग्नेय्यां श्रीअघोरेण मन्त्रराजेन चार्चयेत् ॥ २१ ॥

एक सहस्रकरोड़ शिवलिङ्गों की यथाविधि पूजन करने से जो फल होता है उससे भी करोड़ों गुना अधिक फल रसलिङ्ग की पूजन करने से प्राप्त होता है। हजारों ब्रह्महत्याओं से तथा लाखों गोहत्याओं से जो पाप उत्पन्न होता है वह केवल रसलिङ्ग के दर्शन कर लेने से क्षण भर में नष्ट हो जाता है। श्रीशिवजी ने कहा है कि इस लिङ्ग के स्पर्श करने से मुक्ति प्राप्त होती है, यह सत्य है। अग्नि कोण में रसलिङ्ग की स्थापना करके सब मन्त्रों में प्रधान जो अघोरमन्त्र(१) है उससे उसकी पूजन करनी चाहिए ॥ १९-२१ ॥

ध्यानम्—

अष्टादशभुजं शुभ्रं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।
प्रेतारूढं नीलकण्ठं रसलिङ्गं विचिन्तयेत् ॥ २२ ॥
तस्योत्सङ्गे महादेवीमेकवक्त्रां चतुर्भुजाम्।
अक्षमालाङ्कुशं दक्षे वामे पाशाभयं शुभम् ॥
दधतीं तप्तहेमाभां पीतवस्त्रां विभावयेत् ॥ २३ ॥

रसलिङ्ग का ध्यान—जिनके १८ भुजाएं हैं और जिनका गौरवर्ण हैं तथा जिनके ५ मुख और तीन नेत्र हैं और प्रेत (मृतक) के ऊपर आरूढ, नीलेकण्ठ-वाले ऐसे महादेव जी का रसलिङ्ग में अपना ध्यान बैठाना चाहिए, अर्थात् यह रसलिङ्ग एक तरह से शिवस्वरूप ही है और शिवस्वरूप उस रसलिङ्ग की प्रतिमा की गोद में अद्वितीयमुखवाली तथा चार भुजाओं से शोभायमान, दक्षिणहस्त में रुद्राक्षमाला और अङ्कुश और वामहस्त में शुभ पाश धारण की हुई और एक हस्त से भक्तजनों को शुभ अभयप्रदान करती हुई, सन्तप्त सुवर्ण की कान्ति के समान दैदीप्यमान एवं पीतवस्त्र धारण की हुई महादेवी श्री पार्वती का ध्यान करना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

देवीपूजनमन्त्रम्।

"वाङ्मयी श्रीः कामराजशक्तिबीजं रसाङ्कुशा-

---

(१) अघोरमन्त्रः—अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च।
सर्व्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररुपेभ्यः ॥

य नमो" द्वादशार्णैषा ज्ञेया विद्या रसाङ्कुशा ॥ २४ ॥
अनया पूजयेद्देवीं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
नन्दीभृङ्गीमहाकालकुलीरान्पूर्वदिक्क्रमात् ॥ २५ ॥
पूजयेन्नाममन्त्रैश्च प्रणवादिनमोन्तकैः ।
एवं नित्यार्चनं तत्र कर्तव्यं रससिद्धये ॥ २६ ॥

"ॐ वाञ्छयीश्रीः" इत्यादि २४ वें श्लोक में कहे मन्त्र का उच्चारण करते हुए गन्ध, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप आदि से श्री पार्वती देवी की पूजन करें पश्चात् यथाक्रम से रसलिङ्ग के पूर्व दिशा में नन्दी, पश्चिम में भृङ्गी, उत्तर में महाकाल और दक्षिण में कुलीर गण की स्थापना करके इनके नाम के आदि में ॐकार तथा अन्त में नमः-शब्द लगाकर ( जैसे ॐ नन्दिने नमः ) मन्त्र का उच्चारण करते हुए चारों की पूजन करनी चाहिए। इस तरह रससिद्धि की प्राप्ति के लिये उस रस मण्डप में सदा पूजन करनी चाहिए ॥ २४-२६ ॥

अथ कुम्भस्थापनादिशिष्यदीक्षादानविधिः—

रसविद्या शिवेनोक्ता दातव्या साधकाय वै ।
यथोक्तेन विधानेन गुरुणा मुदितात्मना ॥ २७ ॥
सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ।
कलशं तोयसम्पूर्णं हेमरत्नफलैर्युतम् ॥ २८ ॥
स्थापयेद्रसलिङ्गाग्रे दिव्यवस्त्रेण वेष्टितम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपनैवेद्यश्च सुपूजयेत् ॥ २९ ॥
पूजान्ते हवनं कर्याद्योनिकुण्डे सुलक्षणे ।
तिलाज्यैः पायसैः पुष्पैः शतपुष्पादिकैः पृथक् ॥ ३० ॥
अघोरेण रसाङ्कुश्या होमान्ते शिष्यमाह्वयेत् ।
कालिनीशक्तिसंयुक्तं रससिद्धिपरायणम् ॥ ३१ ॥

यह रसविद्या श्रीशिवजी ने कही है। इस विद्या को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले साधक को प्रसन्नचित्त गुरु द्वारा शास्त्रोक्तविधि के अनुसार शुभ मुहूर्त्त, शुभ नक्षत्र तथा शुभचन्द्रबल और शुभताराबल के समय में पूजन हवनादि करके प्रदान करनी चाहिए।

पूजनविधि—उपर्युक्त शुभ दिन में जल से भरा हुआ और सुवर्ण,

रत्न, फल पुष्पों से युक्त दिव्यवस्त्र से वेष्टित ( ढका हुआ ) एक कलश रसलिङ्ग के सामने स्थापित करके उसको गन्ध, पुष्प, अक्षत और नैवेद्य से अच्छी प्रकार जन करनी चाहिए। फिर पूजन के पश्चात् योनि के समान आकार वाले उत्तम कुण्ड में तिल, घृत, क्षीरान्न, पुष्प सौंफ इत्यादि पृथक् २ पदार्थों के द्वारा अघोर रसाङ्कुशीमन्त्र का उच्चारण करते हुए अथवा श्री अघोरमन्त्र से रसाङ्कुशी देवी के निमित्त हवन करना चाहिए। होम हो जाने के पश्चात् वक्ष्यमाण-लक्षणों से युक्त कालिनीशक्ति से युक्त और रस को सिद्धि करने में परायण शिष्य को समीप बुलाना चाहिए ॥ २७-३१ ॥

अथ कालिनीलक्षणम्—

**यस्यास्तु कुञ्चिताः केशाः श्यामा या पद्मलोचना ।**
**सुरूपा तरुणी भिन्ना विस्तीर्णजघना शुभा ॥ ३२ ॥**
**सङ्कीर्णहृदया पीनस्तनभारेण नम्रिता ।**
**चुम्बनालिङ्गनस्पर्शकोमला मृदुभाषिणी ॥ ३३ ॥**
**अश्वत्थपत्रसदृशयोनिदेशसुशोभिता ।**
**कृष्णपक्षे पुष्पवती सा नारी कालिनी स्मृता ॥**
**रसबन्धे प्रयोगे च उत्तमा सा रसायने ॥ ३४ ॥**

जिस स्त्री के घुंघरीले बाल हों और जो श्याम अङ्ग की या सौलह वर्ष की हो तथा कमल के समान विशाल और मनोहर नेत्रों से शोभायमान, सुन्दर लावण्ययुक्त, युवती ( यौवनमदान्मत्त ) और प्रस्फुटित योनिवाली और विस्तीर्ण जंघाओं वाली, शुभलक्षणों से युक्त, संकीर्ण (प्रसन्न) हृदय वालों और जो बड़े २ स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई हो तथा चुम्बन, आलिङ्गन और स्पर्श में कोमल प्रतीत होने वाली, मधुर आलाप ( भाषण ) शील तथा जिस का योनि-प्रदेश पीपल के पत्ते की रचना के समान सुशोभित हो और जो कृष्णपक्ष में रजस्वला होती हो वह स्त्री कालिनी कहलाती है। कालिनी स्त्री रस के बन्धन करने में, प्रयोग में और रसायन में उत्तम होती है ॥ ३२-३४ ॥

अथ कालिन्यभावे तदनुकल्पविधिः—

**तदभावे सुरूपा तु या कांचित्तरुणाङ्गना ।**
**तस्या देयं त्रिसप्ताहं गन्धकं घृतसंयुतम् ।**

कर्षैकैकं प्रभाते तु सा भवेत्कालिनीसमा ॥ ३५ ॥
एवं शक्तियुतो योऽसौ दीक्षयेत्तं गुरूत्तमः ।
सुस्नातमभिषिञ्चेत मन्त्रेण कलशोदकैः ॥ ३६ ॥
अघोरामङ्कुशीं विद्यां दद्याच्छिष्याय सद्गुरुः ।
यथाशक्त्या सुशिष्येण दातव्या गुरुदक्षिणा ॥ ३७ ॥
अथाज्ञया गुरोर्मन्त्रं लक्षं लक्षं पृथग्जपेत् ।
"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रम् अघोरतरप्रस्फुट २ प्रकट २ कह २ शमय २ जात २ दह २ पातय २ ॐ ह्रीं ह्रैं ह्रौं ह्रम् अघोराय फट्" इममघोरमन्त्रन्तु
"ओम् कामराजशक्तिबीजरसाङ्कुशाय आज्ञया विद्यां रसाङ्कुशाम्" ॥
अनया पूजयेद्देवीं शक्तिमङ्कुशविद्यया ॥ ३८ ॥

यदि उपर्युक्त लक्षणों वाली कालिनी स्त्री न मिल सके तो सुन्दररूपवाली किसी भी तरुण स्त्री को २१ दिन तक एक २ कर्ष शुद्ध गन्धक घृत के साथ प्रातः सेवन कराने से वह स्त्री कालिनी के समान सर्व गुणों से युक्त हो जाती है जो शिष्य इस कालिनी स्त्री के साथ दीक्षाग्रहण करने के योग्य हो तो उत्तम गुरू उसको दीक्षित करे। प्रथम स्नान किये हुए शिष्य को गुरू कलश के जल से मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अभिषिक्त करे, फिर सद्गुरू शिष्य को अघोर और अङ्कुशी विद्या का उपदेश दे, और अपनी शक्ति के अनुसार दीक्षा के पश्चात् गुरू जी को दक्षिणा दे कर फिर गुरूजी की आज्ञा से दोनों मन्त्रों का पृथक २ एक लाख जप करना चाहिए। इस अंकुशी विद्या(१) के द्वारा शक्तिस्वरूप देवी का पूजन करे ॥ ३५-३८ ॥

तत्र होमविधिः—

दशांशं जुहुयात्कुण्डे त्रिकोणे हस्तमात्रके ।
जातिपुष्पं त्रिमध्वक्तं पूर्णान्ते कन्यकार्चनम् ॥ ३९ ॥

पूजन करने के पश्चात् एक हाथ चौड़ा त्रिकोण के आकार वाला एक हवन का

---

(१) मूलपाठ में मन्त्र का यह स्वरूप लिखा है। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूम, अघोरतर प्रस्फुट २ प्रकट २ कह २ शमय २ जात २ दह २ पातय २ ॐ ह्रीं ह्रैं, ह्रौं ह्रूम, अघोराय फट् इममघोरमन्त्रन्तु ॐ कामराजशक्तिबीजरसाङ्कुशायै आज्ञया विद्या रसाङ्कुशाम्।

कुण्ड बनाकर उसमें शहद, घृत, खांड और चमेली के पुष्प इन्हें मिलाकर जप का दशांश (१० हजार) मन्त्र बोलते हुए हवन करके हवन के पश्चात् कन्याओं की पूजन करनी चाहिए ॥ ३९ ॥

अथ रससिद्ध्यर्थं संग्रहणीयपदार्थास्तत्पूजनादिकञ्च—

कृत्वाथ प्रविशेच्छालां शुद्धां लिप्तां सवेदिकाम् ।
षट्कोणं मण्डलं तत्र सिन्दूरेण द्विहस्तकम् ॥ ४० ॥
वेदिकायां लिखेत्सम्यक् तद्बहिश्चाष्टपत्रकम् ।
कमलं चतुरस्रं च चतुर्द्वारैः सुशोभितम् ॥ ४१ ॥
कर्णिकायां न्यसेत्खल्लं लोहजं स्वर्णलेखितम् ।
तन्मध्ये रसराजं तु पलानां शतमात्रकम् ॥
पञ्चाशत्पञ्चविंशद्वा पूजयेद्रसलिङ्गवत् ॥ ४२ ॥

इस तरह हवन का कार्य समाप्त कर पवित्र गोबर से लिप्त तथा वेदी जिस में बनी हो ऐसी शुद्ध शाला में प्रवेश करे। बाद में उस वेदी के ऊपर सिन्दूर से दो हाथ लम्बा और चौड़ा तथा छ कोनों वाला एक मण्डल बनाकर के उसके बाहर आठ दलों वाला एक कमल लिखना चाहिए और उसके चारों द्वारों पर एक चौकोर मण्डल बनाना चाहिए। कमल की कर्णिका के मध्य में एक लौह का खल्व रख कर उसमें स्वर्ण के द्वारा कुछ रेखाओं के चिन्ह बनाकर उस खल्व में १०० पल या ५० पल अथवा २५ पल पारद डाल कर रसलिंग के समान ही उस पारद की पूजन करनी चाहिए ॥ ४०–४२ ॥

तत्र रसशक्तयः—

वज्रवैक्रान्तवज्राभ्रकान्तपाषाणटङ्कणम् ।
भूनागः शक्तयश्चैताः षट्कोणे पूजयेत्क्रमात् ॥ ४३ ॥

हीरक, वैक्रान्त, वज्राभ्रक, कान्त पाषाण ( चुम्बक पत्थर ) सुहागा, भूनाग ( केन्चुए ) ये शक्तियां हैं अर्थात् रस की शक्ति को ये ६ पदार्थ बढ़ाते हैं अत इन्हें रसशक्तियां कहते हैं। इनको षट्दल कमल में यथाक्रम रख ( स्थापन ) कर इन की पूजन करनी चाहिए ॥ ४३ ॥

तत्र उपरसाः—

गन्धतालककासीसशिलाकङ्कुष्ठभूषणम् ।

राजावर्तो गैरिकश्चाख्याता उपरसा अमी ।
पूज्या अष्टदलेष्वेते पूर्वादीशानगङ्क्रमात् ॥ ४४ ॥

गन्धक, हरताल, कासीस, मैनशील कङ्कुष्ठ, अञ्जन, राजावर्त तथा गैरिक ये आठ उपरस हैं । इनको अष्टदल कमल में क्रम से पूर्वदिशा से लेकर ईशान कोणतक स्थापन करके पूजन करनी चाहिए ॥ ४४ ॥

तत्र महारसाः—

रसकं विमला ताप्यं चपला तुत्थमञ्जनम् ।
हिङ्गुलं सस्यकं चैव ख्याता एते महारसाः ।
पूर्वादीशानपर्यन्तं पत्राग्रेषु प्रपूजयेत् ॥ ४५ ॥

खर्पर, विमल, सुवर्ण माक्षिक, चपल, तुत्थ, अञ्जन, हिङ्गुल, सस्यक ये आठ महारस हैं । इनको पूर्वदिशा से ईशान कोण तक अष्टदल मण्डल की पखड़ियों के अग्रभाग में स्थापन करके पूजन करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

तत्र अष्टलोहपूजाक्रमः—

पूर्वद्वारे स्वर्णरौप्ये दक्षिणे ताम्रसीसके ।
पश्चिमे वङ्गकान्तौ च उत्तरे मुण्डतीक्ष्णके ।
सर्वमेतदघोरेण पूजयेदङ्कुशान्वितम् ॥ ४६ ॥

मण्डप की वेदी के चारप्रकार पहिले बताये हैं उन में से पूर्व के द्वारपर स्वर्ण और चांदी, दक्षिण के द्वार पर ताम्बा और सीसा, पश्चिम के द्वार पर वङ्ग और कौन्तलौह और उत्तर के द्वार पर मुण्ड तथा तीक्ष्णलौह की स्थापना करके उन को अंकुशो विद्या के साथ अघोर मन्त्र को पढ़ते हुए पूजन करनी चाहिए ॥४६॥

तत्र उपकरणानां पूजाविधिः—

बिडं काञ्जिकयन्त्राणि क्षारमृल्लवणानि च ।
कोष्ठी मूषा वङ्गनालि तुषाङ्गारवनोपलाः ॥ ४७ ॥
भस्त्रिका दण्डिकानेका शिला खल्वान्युलूखलम् ।
स्वर्णकारोपकरणं समस्ततुलनानि च ॥ ४८ ॥
मृत्काष्ठताम्रलोहोत्थपात्राणि विविधानि च ।
दिव्यौषधीनां वर्गाश्च रञ्जकस्नेहनानि च ॥
एतानि द्वारबाह्ये तु मूलमन्त्रेण पूजयेत् ॥ ४९ ॥

**वाङ्माया ह्रीं ततः क्षें च क्ष्मश्च पञ्चाक्षरो मनुः ।**
**अनेन मूलमन्त्रेण भैरवं तत्र पूजयेत् ॥**
**सर्वेषां रससिद्धानां नाम सङ्कीर्तयेत्तदा ॥ ५० ॥**

विड़ ( रस के जारण के लिये क्षार पदार्थों से बनाया हुआ पदार्थ विशेष ) काञ्जी, विविध यन्त्र, क्षार वर्गके आठों खार, पञ्चमृतिका, पाञ्चो लवण, कोष्ठियां, सब प्रकार की मूषा, वङ्ग नाल, तुष, कोयले, जङ्गली कण्डे, धौंकनी, विविध प्रकार की औषधियां चलाने के दण्ड, कल्क पीसने की शिला, खरलें, ओंखलियां, सुनार के विविध उपकरण, सब प्रकार की तुलाएं और सर्व प्रकार की मिट्टी, काष्ठ, ताम्बा और लौह के पात्र तथा आश्चर्यजनक गुण करने वाली दिव्य औषधियों के वर्ग ( समूह ) यथा जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, इत्यादि, तथा पारदादि को रञ्जने वाले पदार्थ और स्नेह, इन को द्वार के बाहर स्थापन करके मूलमन्त्र के द्वारा पूजन करनी चाहिए । मूलमन्त्र का स्वरूप—वाङ्माया ह्रीं ततः क्षेञ्च क्ष्माश्च पञ्चाक्षरो मनुः । तथा इसी मन्त्र से भैरव का पूजन भी करें, पश्चात् सब रस के सिद्ध आचार्यों का भी वहां स्मरण करना चाहिए ॥ ४७–५० ॥

अथ रससिद्धीश्वरब्राह्मणादीनां पूजनम्—

**व्यालाचार्यश्चंद्रसेनः सुबुद्धिर्नरवाहनः ।**
**नागार्जुनो रत्नघोषः सुरानन्दो यशोधनः ॥ ५१ ॥**
**इन्द्रधूमश्च माण्डव्यश्चर्पटी शूरसेनकः ।**
**आगमो नागबुद्धिश्च खण्डः कापालिको मतः ॥ ५२ ॥**
**कामारिस्तान्त्रिकः शम्भुर्लङ्कालम्पटशारदौ ।**
**बाणासुरो मुनिश्रेष्ठो गोविन्दः कपिलो बलिः ॥ ५३ ॥**
**एते सर्वे तु सूतेन्द्रा रससिद्धा महाबलाः ।**
**चरन्ति सर्वलोकेषु नित्या भोगपरायणाः ॥ ५४ ॥**
**सप्तविंशतिसङ्ख्याका रससिद्धिप्रदायकाः ।**
**वैद्याः पूज्याः प्रयत्नेन ततः कुर्याद्रसार्चनम् ॥ ५५ ॥**
**हर्षयन्द्विजदेवानां तर्पयेदिष्टदेवताः ।**
**कुमारीयोगिनीयोगीश्वरान्मेलकसाधकान् ॥**
**तर्पयेत्पूजयेद्भक्त्या यथाशक्त्यनुसारतः ॥ ५६ ॥**

इत्येवं सर्वसम्भारयुक्तं कुर्याद्रसोत्सवम् ।
सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थं सर्वेप्सितफलप्रदम् ॥ ५७ ॥

व्यालाचार्य, चन्द्रसेन, सुबुद्धि, नरवाहन, नागार्जुन रत्नघोष, सुरानन्द, यशोधन, इन्द्रधूम, माण्डव्य, चर्पटी, शूरसेन, आगम, नागबुद्धि, खण्ड, कपालिक, कामारि, तान्त्रिक, शम्भु, लंक, लम्पक, शारद, बाणासुर, मुनिश्रेष्ठ, गोविन्द, कपिल और बलि ये २७ पारद के साधन में इन्द्रके समान श्रेष्ठ, रससिद्ध, और महान बल से सम्पन्न आचार्य हैं। ये भोगों में लिप्त हो कर सर्वदा सब लोकों में विचरण करते रहते हैं। ये २७ आचार्य रससिद्धि का प्रदान करते हैं तथा इनकी यथाविधि पूजन करके पारद की पूजन करनी चाहिए। ब्राह्मण और देवताओं को भोजन तथा पूजनादिक से प्रसन्न करके इष्ट देवी देवताओं का भी पूजन करे। फिर अपनी शक्ति के अनुसार छोटी २ कन्याएं, योगिनी, योगीश्वर तथा पारद का साधन करने वाले इत्यादि का भक्तिपूर्वक पूजन करके उन्हें प्रसन्न करें, इस प्रकार सर्व सामग्री से युक्त और सर्व प्रकार की मनोरथपूर्ति करने वाला, सर्वविघ्न शान्ति के लिये रसोत्सव करना चाहिए ॥ ५१–५७ ॥

अदीक्षितस्य रसविद्यासाधनवैफल्यनिर्देशः—

अन्यथा यो विमूढात्मा मन्त्रदीक्षाक्रमाद्विना ।
कर्तुमिच्छति सूतस्य साधनं गुरुवर्जितः ॥ ५८ ॥
नासौ सिद्धिमवाप्नोति यत्नकोटिशतैरपि ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शास्त्रोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥ ५९ ॥

जो मूर्ख मन्त्र और दीक्षा क्रम को छोड़ कर गुरू की सहायता के विना ही रस की सिद्धि करने की इच्छा करता है वह करोड़ों प्रयत्न करने पर भी सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता है, इस लिये शास्त्र के कथनानुसार यत्न पूर्वक प्रथम दीक्षा पूजादि क्रिया करनी चाहिए ॥ ५८–५९ ॥

अथ रससाधने सिद्धिलाभहेतुनिर्देशः—

सम्यक्साधनसोद्यमा गुरुयुता राजाज्ञयाऽलङ्कृता
नानाकर्मपराङ्मुखा रसपराश्चाढ्या जनैश्चार्थिताः ।
मात्रायन्त्रसुपाककर्मकुशलाः सर्वौषधे कोविदाः
तेषां सिध्यति नान्यथा विधिबलाच्छ्रीपारदः पारदः ॥६०॥

जो मनुष्य उद्योग शील, सब साधनों को प्राप्त किया हुआ तथा गुरू से शास्त्र पढा हो, जिसको राजा का आधार हो और दूसरे मनुष्यों से रस सिद्धि करने के लिये प्रार्थित हो तथा अन्य सांसारिक कार्यों में जो आसक्त न हो, धनी हो, औषधादियों की मात्रा, मन्त्र, पाकक्रिया और सब काष्ठादि औषधियों के पहचानने में जो कुशल हो, भाग्य से वही शोभा और देहसिद्धि करने वाले पारद को सिद्ध कर सकता है ॥ ६० ॥

अथ कस्मै किमर्थं रसविद्या दातव्या तन्निर्देशः—

**रसशास्त्रं प्रदातव्यं विप्राणां धर्महेतवे ।**
**राज्ञे वैश्याय वृद्ध्यर्थं दास्यार्थमितरस्य य ॥ ६१ ॥**

रस शास्त्र ब्राह्मणों को चिकित्सा द्वारा परोपकारादि धर्म कार्य करने के लिये, राजा ( क्षत्रिय ) और वैश्य को उक्त शास्त्र की वृद्धि के लिये और अन्य श्रेष्ठ शूद्रादि मनुष्यों को तीनों वर्णों की सेवा करने के लिये पढ़ाना चाहिए ॥ ६१ ॥

अथ गुरुसन्तोषस्य सर्वसिद्धिहेतुत्वनिर्देशः—

**गुरौ तुष्टे शिवस्तुष्येच्छिवे तुष्टे रसस्तथा ।**
**रसे तुष्टे क्रियाः सर्वाःसिध्यन्त्येवं न संशयः ॥ ६२ ॥**

सुश्रुषादिक से गुरू के प्रसन्न होने से महादेव जी प्रसन्न होते हैं, महादेवजी के प्रसन्न होने से पारद प्रसन्न होता है और पारद के प्रसन्न होने से प्रायः सब काम सफल हो जाते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥

अथ रसविद्याया अवश्यगोप्यत्वनिर्देशः—

**रसविद्या दृढं गोप्या मातुर्गुह्यमिवध्रुवम् ।**
**भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या च प्रकाशनात् ॥ ६३ ॥**
**न रोगिविदितं कार्यं बहुभिर्विदितं तथा ।**
**रोगिणां बहुभिर्ज्ञातं भवेन्निर्वीर्यमौषधम् ॥ ६४ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये शिष्योपनयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

रसविद्या को माता के गोप्याङ्ग के समान गुप्त रखनी चाहिए, क्योंकि गुप्त रखने से वह वीर्य्यवती होती है, और प्रकाशित करने से निर्वीर्य हो जाती है।

जो औषधि रोगी तथा अन्य बहुत से मनुष्यों से जानी हुई होती है वह निर्वीर्य्य हो जाती है इसलिये प्रायः किसी भी औषधि को रोगी या अन्य मनुष्य को नहीं बताना चाहिये ॥ ६३-६४ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां
शिष्योपनयननिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

---

## अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ रसशाला—

**रसशालां प्रकुर्वीत सर्वबाधाविवर्जिते ।**
**सर्वौषधिमये देशे रम्ये कूपसमन्विते ॥ १ ॥**
**यक्षेश्यत्तसहस्राक्षदिग्विभागे सुशोभने ।**
**नानोपकरणोपेतां प्राकारेण सुशोभिताम् ॥ २ ॥**
**शालायाः पूर्वदिग्भागे स्थापयेद्रसभैरवम् ।**
**वह्निकर्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाणकर्म च ॥ ३ ॥**
**नैर्ऋत्ये शस्त्रकर्माणि वारुणे क्षालनादिकम् ।**
**शोषणं वायुकोणे च वेधकर्मोत्तरे तथा ॥**
**स्थापनं सिद्धवस्तूनां प्रकुर्यादीशकोणके ॥ ४ ॥**

जो स्थान सर्व प्रकार के विघ्नों से रहित हो, सब तरह की सूखी और आर्द्र औषधियां जहां मिलती हो तथा जो देखने में सुन्दर हो और कूप नदी तालाब से सुशोभित हो ऐसे स्थान में कुबेर की उत्तर दिशा, महादेव का ईशान कोण अथवा इन्द्र की पूर्व दिशा में अनेक प्रकार के औषधि बनाने के उपकरणों से युक्त और चारों ओर घेरा ( प्राकार ) जिस के हो ऐसी रसशाला का निर्माण करना चाहिए । रसशाला की पूर्वदिशा में रस भैरव ( रसलिङ्ग ) की स्थापना करे और आग्नेय कोण में अग्नि सम्बन्धी कार्य जैसे भट्टियां चूल्हे इत्यादि बनवाना चाहिए । दक्षिणदिशा में शिलापर कल्क का मर्दन आदि पाषाण कर्म करना चाहिए और नैर्ऋत्य कोण में धातुओं की परीक्षा के लिये अथवा यन्त्रादियों के

निर्माण के लिये तथा भेदन आदि शस्त्र कर्म करने के लिए भवननिर्माण करना चाहिए। पश्चिम दिशा में औषधियों का प्रक्षालन, वायव्यदिशा में आर्द्रद्रव्यों को सुखाने का कार्य, उत्तर दिशा में रसेन्द्र का वेधकर्म और सिद्धहुए पदार्थों को जैसे भस्म, रस, घृत, तैल, अवलेह, पाक इत्यादि ईशान कोण में रखना चाहिए॥१-४॥

अथ रससाधनीयपदार्थाः—

**पदार्थसङ्ग्रहः कार्यो रससाधनहेतुकः।**
**सत्त्वपातनकोष्ठीं भरत्कोष्ठीं सुशोभनाम्॥ ५॥**
**भूमिकोष्ठीं चलत्कोष्ठीं जलद्रोण्याऽप्यनेकशः।**
**भस्त्रिकायुगलं तद्वन्नलिके वंशलोहयोः॥ ६॥**
**स्वर्णायोघोषशुल्वाश्मकुण्ड्यश्चर्मकृतां तथा।**
**करणानि विचित्राणि द्रव्याण्यपि समाहरेत्॥ ७॥**
**कण्डणीपेषणीस्वल्पाद्रोणीरूपाश्च वर्तुलाः**
**आयसास्तप्तखल्लाश्च मर्दकाश्च तथाविधाः॥ ८॥**
**सूक्ष्मच्छिद्रसहस्राढ्या द्रव्यगालनहेतवे।**
**चालनी च कटत्राणि शलाका हिच कुण्डली॥ ९॥**

रस के साधन करने के लिये जो उत्तम पदार्थ हों उनका संग्रह करना चाहिए। सत्त्वपातन करने की कोष्ठी, सुन्दर आसव तैय्यार करने की कोष्ठी, तैल निकालने की भूमिकोष्ठी तथा इधर उधर आसानी से ले जाने लायक छोटी २ कोठियां, अनेक प्रकार के जल भरने के धातुनिर्मित या मिट्टी के द्रोणाकार पात्र, दो धौंकनियां, लौह की बनी हुई या बांस की बनी हुई दो नालियां ( भोंगली ) और स्वर्ण, लौह, ताम्र, कांस्य और पत्थर की बनी हुई छोटी २ कूंडियां ( स्थाली ) तथा चर्म के उपकरण और भी अन्य विचित्र तथा औषध कर्म के उपयोगी उपकरण तथा द्रव्यों का सम्पादन करना चाहिए। खाण्डने के लिये ओंखली, पीसने के लिये चक्की तथा छोटी २ द्रोणी के स्वरूप की खरलें, गोल खरलें, तप्तखरल, उसी प्रकार के लौह के बने हुए घोटने के हत्थे, औषध चूर्ण के छानने के लिये हजारों छोटे २ सूराखों वाली चलनी और धातुओं को काटने वाली तीखी धार की वस्तुएं, रससिन्दूरादि के पाक करने के लिये चलानेवाली लौह की पतली २ शलाकाएं ( हाटें ) तथा स्थाली और कड़ाह वगैरे के रखने के लिए तृण की बनी

हुई कुण्डलियां, इत्यादि पदार्थों का संग्रह करना चाहिए ॥ ५-९ ॥

चालनीभेदलक्षणादिकम्—

**चालनी त्रिविधा प्रोक्ता तत्स्वरूपं च कथ्यते ।**
**वैणवीभिः शलाकाभिर्निर्मिता ग्रथिता गुणैः ।**
**कीर्तिता सा सदास्थूलद्रव्याणां गालने हिता ॥ १० ॥**
**चूर्णचालनहेतोश्च चालन्यन्यापि वंशजा ॥ ११ ॥**
**कर्णिकारस्य शाल्मल्या हरिजातस्य कम्बया ।**
**चतुरङ्गुलविस्तारयुक्तया निर्मिता शुभा ॥ १२ ॥**
**कुण्डलयरत्निविस्तारा छागचर्माभिवेष्टिता ।**
**वाजिबालाम्बरानद्धतला चालनिका परा ॥**
**तया प्रचालनं कुर्याद्धतुं सूक्ष्मतरं रजः ॥ १३ ॥**

औषध चूर्ण को छानने वाली चालनी तीन तरह की होती है । आगे उनका स्वरूप लिखते हैं यथा बासों की सलियों से बनी हुई और मजबूत धागे से बंधी हुई जो चालनी होती है वह मोटे २ द्रव्यों के चालने के लिये उपयोगी होती है । दूसरी चालनी भी बांस ही से बनाई जाती है उसके द्वारा चूर्ण वगैरा छानना चाहिए । एक तीसरी चलनी होती है जो कि अमलतास, सेमल और चन्दन या बांस के कम्ब ( वल्कल ) से बनाई जाती है जो कि चार अङ्गुल ऊंची और उसकी चौड़ाई लम्बाई एक बेंत ( बालिस्त ) होनी चाहिए और बकरे के चर्म से चारों ओर मढकर के उसके तलभाग में घोड़े के बाल या वस्त्र बांधना चाहिए, इसके द्वारा औषधियों के छोटे २ चूर्ण को चालते हैं ॥ १०-१३ ॥

रससिद्धावुपकरणानि—

**मूषा-मृत्तुष-कार्पासवनोपलकपिष्टकम् ।**
**त्रिविधं भेषजं धातुजीवमूलमयं तथा ॥ १४ ॥**
**शिखित्रा गोवरं चैव शर्करा च सितोपला ।**
**शिखित्राः पावकोच्छिष्टा अङ्गारा कोकिला मताः ॥ १५ ॥**
**कोकिलाश्चेतिताङ्गारा निर्वाणाः पयसा विना ॥ १६ ॥**

पाचों प्रकार की मिट्टी, मूषा, तुष ( जो गेहूं आदि की भूसी ), कार्पास ( रूई या विनौले ), जंगलीकण्डे, तण्डुलपिष्ट और तीन प्रकार की धातु स्वर्णादि,

जीवमयक्षीर, मूत्र, पुरीष, मूलमय वनौषधादिक औषधियों का भी संग्रह करना चाहिए। इनके अतिरिक्त शिखित्र, गोबर, बालुका, कठिनी ( सफेदा, रेता ) इनका भी संग्रह करे। जिस तरह कुम्भकार कच्चे घड़ों को पकाता है उसी तरह से लकड़ों के टुकड़ों के ढेर को ऊपर से बन्दकर भीतर ही भीतर अग्नि द्वारा लकड़ियें पकाकर कोयले बनाये जाते हैं इन्हीं को प्रायः शिखित्र, कोकिला आदि नाम से कहते हैं। परन्तु मूलपाठ की संगति के लिये शिखित्र का स्वरुप इस तरह है जो अग्नि से जलकर शेष रहे हुए कोयले हैं वे शिखित्र कहलाते हैं और जो लकड़ी के टुकड़े कुम्भकार के आंवे की तरह अन्दर ही अन्दर अग्नि से जलकर पानी के बिना ही बुझ जाते हैं वे कोयले कहे जाते हैं ॥ १४–१६ ॥

उपलनामानि—

**पिष्टकं छगणं छाणमुपलं चोत्पलं तथा ।**
**गिरिण्डोपलसाठी च संशुष्कच्छागणाभिधाः ॥ १७ ॥**

पिष्टक, छगण, छाण, उपल, उत्पल, गिरिण्डोपल और साठी ये सात नाम सूखे गोबर के हैं ॥ १७ ॥

कूपीनिर्माणद्रव्याणि—

**काचायोमृद्वराटानां कूपिका चषकानि च ॥ १८ ॥**

काच, लौह, मिट्टी और कौड़ियें इनकी बनाई हुई शीशिएं तथा प्याले एकत्रित करे ॥१८॥

कूपीपर्यायाः—

**कूपिका कुपिका सिद्धा गोला चैव गिरिण्डिका ॥ १९ ॥**

शीशियों के नाम कूपिका, कुपिका, सिद्धा, गोला, गिरिण्डिका ये हैं ॥१९॥

अथ चषकस्य पर्यायाः—

**चषकं च कटोरी च वाटिका खारिका तथा ।**
**कञ्चोली ग्राहिका चेति नामान्येकार्थकानि हि ॥ २० ॥**

चषक, कटोरी, वाटिका, खारिका, कंचोली, और ग्राहिका ये नाम परस्पर एकार्थ को कहते हैं ॥ २० ॥

शूर्पादीनां समर्घनम्—

**शूर्पादिवेणुपात्राणि क्षुद्रशिप्राश्च शङ्किकाः ।**
**क्षुरप्राश्च तथा पाक्यः यच्चान्यत्तत्र युज्यते ॥**

**पालिका कर्णिका चैव शाकच्छेदनशस्त्रकाः ॥ २१ ॥**
**शालासम्मार्जनाद्यं हि रसपाकान्तकर्म यत् ।**
**तत्रोपयोगि यच्चान्यत्तत्सर्वं परविद्यया ॥ २२ ॥**
**श्रीरसाङ्कुशया सर्वं मन्त्रयित्वा समर्चयेत् ।**
**अन्यथा तद्गतं तेजः परिगृह्णन्ति भैरवाः ॥ २३ ॥**

सूप आदि बांस के बने हुए पात्र, छोटी २ सीपें ( शुक्तियां ), छोटे २ शंख, छुरियां, पाक करने योग्य पात्र और जो कुछ वस्तु औषध कर्म में उपयुक्त समझी जाय वह तथा शाकादि काटने के शस्त्र पालिका, कर्णिका, रसशाला का सम्मार्जन करने के लिये सम्मार्जनी ( झाड़ू ) आदि से लेकर पाककर्म तक जो कुछ भी उपकरण आवश्यक हों उनका संग्रह करके श्रेष्ठ जो रसाङ्कुशी विद्या है उसके द्वारा उन सबको अभिमन्त्रित करके पूजें । इस तरह उनका पूजनादिक नहीं करने से उनके अन्दर के तेज (शक्ति) को भैरव हर लेते हैं ॥२१-२३॥

अथ रसक्रियायां कीदृशा वैद्या अन्ये वा नियोज्यास्तत्कथनम्—

**रससञ्चिन्तका वैद्या निघण्टुज्ञाश्च वार्तिकाः ।**
**सर्वदेशजभाषाज्ञाः सङ्ग्राह्यास्तेऽपि साधकैः ॥ २४ ॥**

रस के साधक को जो वैद्य रससिद्धि के करने का विचार रखते हों और जो निघण्टु (औषधियों के नाम, लक्षण, गुण, दोष, प्रयोग) के उत्तम ज्ञान से सम्पन्न हों और जो वैद्य परिभाषा ( सांकेतिक शब्दार्थ ) तथा वार्तिक "उक्तानुक्तदुरुक्तार्थव्यक्तकारितुवार्तिकम्" के अर्थ को तथा सब देशों की भाषाओं को जानते हों उन वैद्यों का संग्रह करना चाहिए ॥ २४ ॥

अथ रसपाककाले मन्त्रजपस्य कर्तव्यतानिर्देशः—

**रसपाकावसानं हि सदाऽघोरं च जापयेत् ॥ २५ ॥**

जब तक रस का पाक होता रहे तब तक अघोर मन्त्र का किसी ब्राह्मण के द्वारा जप कराते रहना चाहिए ॥ २५ ॥

अथ परिचारकलक्षणम्—

**सोद्यमाः शुचयः शूरा बलिष्ठाः परिचारकाः ॥ २६ ॥**

जो परिचारक उद्योगशील, पवित्र, शूरवीर और बलवान् हों उन्हें रस के कार्य में नियुक्त करना चाहिए ॥ २६ ॥

पद्महस्तवैद्यलक्षणम्—

**धर्मिष्ठः सत्यवाग्विद्वान् शिवकेशवपूजकः ।**
**सदयः पद्महस्तश्च संयोज्यो रसवैद्यके ॥ २७ ॥**

जो धर्म में तत्पर, सत्य बोलने वाला, रसशास्त्र का विद्वान् और शिव, विष्णु का भक्त, दयावान् तथा जिसके हाथ में कमल का चिन्ह हो वह पद्महस्त वैद्य है उसको रससिद्धि करने में नियुक्त करें ॥ २७ ॥

अमृतहस्तवैद्यलक्षणम्—

**पताकाकुम्भपाथोजमत्स्यचापाङ्कपाणिकः ।**
**अनामाधस्थरेखाङ्कः सस्यादमृतहस्तवान् ॥ २८ ॥**

जिस के हस्त में ध्वजा, घट, कमल, मत्स्य और धनुष इनका चिन्ह हो तथा जिसकी अनामिका अङ्गुली के मूल में रेखाएं हों वह अमृतहस्त वैद्य कहलाता है ॥२८॥

दग्धहस्तवैद्यस्य लक्षणम्—

**अदेशिकः कृपामुक्तो लुब्धो गुरुविवर्जितः ।**
**कृष्णरेखाकरो वैद्यो दग्धहस्तः स उच्यते ॥ २९ ॥**

जो अन्य देश से आया हो तथा दयारहित, लोभी, गुरुदीक्षा से रहित हो तथा जिसके हाथ में काली रेखा हो वह वैद्य दग्धहस्त कहलाता है, उसको रसकर्म में नियुक्त नहीं करना चाहिए ॥ २९ ॥

निधिरक्षायोग्यपुरुषाः—

**भूतनिग्रहमन्त्रज्ञास्ते योज्या निधिसाधने ॥ ३० ॥**

भूत, प्रेत, पिशाचादि को दूर करने या वशमें करने के मन्त्र जो जानते हों उन्हें सिद्ध भस्म, पाक आदि की रक्षा के लिये नियुक्त करना चाहिए ॥ ३० ॥

अथ बलिसाधने नियोज्यपुरुषलक्षणम्—

**बलिष्ठाः सत्यवन्तश्च रक्ताक्षाः कृष्णविग्रहाः ।**
**भूतत्रासनविद्याश्च ते योज्या बलिसाधने ॥ ३१ ॥**

जो पुरुष बलवान् , सत्यवादी, लालनेत्र और काले शरीर के हों और जो भूत प्रेतों को डराने वाली विद्या को जानते हों उन्हें बलिदान करने के कार्य में नियुक्त करना उत्तम है ॥ ३१ ॥

अथ रसायने नियोज्यपुरुषलक्षणम्—

**निर्लोभाः सत्यवक्तारो देवब्राह्मणपूजकाः ।**
**यमिनः पथ्यभोक्तारो योजनीया रसायने ॥ ३२ ॥**

जो मनुष्य लोभरहित, सत्यवक्ता, देवता और ब्राह्मणों के पूजक, इन्द्रियनिग्रहशील और पथ्यभोजी हों उनको रससिद्धि में नियुक्त करें ॥ ३२ ॥

स्वर्णादिधातुसिद्धिनियुक्तियोग्यपुरुषाः—

**धनवन्तो वदान्याश्च सर्वोपस्करसंयुताः ।**
**गुरुवाक्यरता नित्यं धातुवादेषु ते शुभाः ॥ ३३ ॥**

जो पुरुष धनाढ्य, दान करने वाले तथा गुरु के वचनों का पालन करते हों उन्हें स्वर्ण, रौप्य आदि धातुओं के शोधन और मारण कर्म में नियुक्त करें ॥३३॥

अथ भेषजाहरणे नियोज्यपुरुषलक्षणम्—

**तत्तद्भौषधनामज्ञाः शुचयो वञ्चनोज्झिताः ।**
**नानाविषयभाषाज्ञास्ते मता भेषजाहृतौ ॥ ३४ ॥**

जो मनुष्य सब औषधियों के नाम को भलिभांति जानते हों और पवित्र, धूर्ततारहित तथा सबदेश की भाषा से परिचित हों उन्हें औषधियां लाने के लिये नियुक्त करना चाहिए ॥ ३४ ॥

अथ केषां रससिद्धिर्भवतीत्याह—

**शुचीनां सत्यवाक्यानामास्तिकानां मनस्विनाम् ।**
**सन्देहोज्झितचित्तानां रसः सिद्ध्यति सर्वदा ॥ ३५ ॥**

जिन की अन्तरात्मा, मन, कर्म और शरीर शुद्ध हो तथा जो सत्यवादी, आस्तिक (इहलोक, परलोक, आत्मा, परमात्मा इत्यादि के अस्तित्व का ज्ञान रखने वाले ), मन को जीतने वाले, रसादिसिद्धि के सन्देह से रहित हों उन्हीं को पारद-की सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥

अथ रससिद्धसाधकस्य कर्तव्यनिर्देशः—

**दशाष्टक्रियया सिद्धो रसोऽसौ साधकोत्तमः ।**
**हा रसो नष्टमित्युक्त्वा सेवेतान्यत्र तं रसम् ॥ ३६ ॥**

जो पुरुष स्वेदनमर्दनादि १८ संकारों के द्वारा रस को सिद्ध कर लेता है वह रस के साधकों में उत्तम साधक है तथा वह रस मूर्च्छना वगैरा से मृत हो गया

इस तरह का विषाद कर फिर किसी अन्य स्थान में रस साधन का कर्म प्रारम्भ कर देता है ॥ ३६ ॥

विमर्शः—कुछ पुस्तकों में "हारसानष्ट" के स्थान में 'महारसोऽयमित्युक्त्वा, ऐसा पाठ है वह भी ठीक है, उसका अर्थ यह महारस है ऐसा कह कर उसका सेवन करें। जहां पर "सिद्धो रसः" के स्थान में "सिद्धे रसे" ऐसा पाठ है वहां का अर्थ 'रस के सिद्ध होने पर यह है। यदि कोई शङ्का करे कि रस के सिद्ध होने पर उसके विषय में विषाद क्यों किया जाता है। उत्तर-जिस तरह राम, युधिष्ठिर आदि महापुरुष शत्रुओं को मार कर भी उनके लिये विषाद करते हैं वैसे ही यहां पर भी विषाद करना असङ्गत नहीं है ॥

रससिद्धमर्त्यफलम्—

**रससिद्धो भवेन्मर्त्यो दाता भोक्ता न याचकः।**
**जरामुक्तो जगत्पूज्यो दिव्यकान्तिः सदा सुखी ॥ ३७ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसशालाप्रकरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो पुरुष रससिद्धि प्राप्त कर लेता है वह दाता, भोक्ता, संसार का पूज्य, जरा ( बुढौति ) से रहित, दिव्य कान्ति से युक्त और सर्वदा सुखी रहता है और वह किसी के पास याचक बन कर मांगने नहीं जाता है अर्थात् उसके पास सब सिद्धिएं आजाती हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां रसशालानिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।

## अथ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ परिभाषा—

**कथ्यते सोमदेवेन मुग्धवैद्यप्रबुद्धये ।**
**परिभाषा रसेन्द्रस्य शास्त्रैः सिद्धैश्च भाषिता ॥ १ ॥**

अब सोमदेव नामक रसशास्त्र के आचार्य, अल्प मति वैद्यों को सहज में ज्ञान हो जाय इसलिये शास्त्र और सिद्ध पुरुषों से कही हुई रस सम्बन्धी परिभाषा को कहते हैं ॥ १ ॥

धन्वन्तरिभागः—

**अर्धं सिद्धरसस्य तैलघृतयोर्लेहस्य भागोऽष्टमः**
**संसिद्धाखिललोहचूर्णवटकादीनां तथा सप्तमः ।**
**यो दीयेत भिषग्वराय गदिभिर्निर्दिश्य धन्वन्तरिम् ।**
**सर्वाऽऽरोग्यसुखाप्तये निगदितो भागः स धन्वन्तरेः ॥ २ ॥**

जो रोगी अपने रोगमुक्ति के लिये तथा आरोग्य और सुखप्राप्ति के निमित्त वैद्य के द्वारा अपने द्रव्य से औषध निर्माण कराकर उसमें से निर्माता वैद्य को जारणमारणादिविधि से सिद्ध हुए रस और सिद्धकिये हुए घृत, तैल का आधाभाग, अवलेह का आठवांभाग, सिद्ध हुए सप्तलोह, चूर्ण, वटक इत्यादि में से सप्तमांश (सातवां) भाग धन्वन्तरि के निमित्त देता है वह धन्वन्तरि का भाग कहलाता है ॥२॥

रुद्रभागः—

**भैषज्यक्रीणितद्रव्यभागोऽप्येकादशो हि यः ।**
**वणिग्भ्यो गृह्यते वैद्यै रुद्रभागः स उच्यते ॥ ३ ॥**

औषधि के लिये खरीदे हुए द्रव्यों में का व्यापारियों से जो ग्यारहवां भाग वैद्य लेते हैं वही रुद्रभाग कहलाता है ॥ ३ ॥

अथ विश्वासघातकवैद्यलक्षणम्—

**प्रगृह्याऽधिकरुद्रांशं योऽसमीचीनमौषधम् ।**
**दापयेल्लुब्धधीर्वैद्यः स स्याद्विश्वासघातकः ॥ ४ ॥**

जो लोभी वैद्य अधिक मात्रा से रुद्रभाग लेकर खराब औषधि को श्रेष्ठ कह करा देता है या अन्य से दिला देता है वह वैद्य विश्वासघातक है ॥ ४ ॥

अथ कज्जली—

**धातुभिर्गन्धकाद्यैश्च निर्द्रवैर्मर्दितो रसः ।**
**सुश्लक्ष्णः कज्जलाभोऽसौ कज्जलीत्यभिधीयते ॥ ५ ॥**

गन्धक आदि धातुओं के साथ पारद को किसी द्रवपदार्थ (अम्लरस इत्यादि) के विना ही घोटकर उसका अत्यन्त चिकना और कज्जल के समान काला चूर्ण तैयार करते हैं उसी को कज्जली कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ रसपङ्कः—

**सद्रवा मर्दिता सैव रसपङ्क इति स्मृतः ॥ ६ ॥**

यदि उपर्युक्तविधि से बनी कज्जली में द्रवपदार्थ मिलाकर घोटाजाय तब उसको रसपङ्क कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ पिष्टी—

**अर्कांशतुल्याद्रसतोऽथगन्धान्निष्कार्धतुल्यात्त्रुटिशोऽभिखल्ले ।**
**अर्कातपे तीव्रतरे विमर्द्यात् पिष्टीभवेत्सा नवनीतरूपा ॥ ७ ॥**

आधा निष्क ( २ माषा ) गन्धक और गन्धक से द्वादशांश (१२ वां भाग) शुद्ध पारद लेकर खरल में डालकर तेजधूप में घोटना चाहिए । जब घोटते २ मक्खन के समान चिकना चूर्ण होजाय तब उसको पिष्टि कहते है ॥ ७ ॥

मतान्तरम्—

**खल्ले विमर्द्य गन्धेन दुग्धेन सह पारदम् ।**
**पेषणात्पिष्टतां याति सा पिष्टीति मता परैः ॥ ८ ॥**

खरल के अन्दर दुग्ध के साथ बराबर २ शुद्ध पारद तथा गन्धक को घोटने से जब वह पिष्टि के रुप में हो जाय तब पिष्टि कहलाती है । यह भी अन्य आचार्य का मत है ॥ ८ ॥

अथ पातनपिष्टी—

**चतुर्थांशसुवर्णेन रसेन घृष्टपिष्टिका ।**
**भवेत्पातनपिष्टी सा रसस्योत्तमसिद्धिदा ॥ ९ ॥**

एक भाग शुद्ध पारद को चौथाई भाग सुवर्ण पत्रों के साथ घोटने से जो पिष्टी ( कज्जली ) तैय्यार होती है उसको पातन पिष्टी कहते हैं ( अर्थात् सुवर्ण के साथ इस तरह पारद को घोटकर पिष्टि बना के उसका उर्ध्वपातन करते हैं ) । इससे पारद के अन्दर अनेक गुणों का आधान होता है ॥ ९ ॥

अथ स्वर्णरौप्ययोः कृष्टि—

**रूप्यं वा जातरूपं वा रसगन्धादिभिर्हतम् ।**
**समुत्थितं च बहुशः सा कृष्टी हेमतारयोः ॥ १० ॥**

पारद और गन्धक आदि के द्वारा भस्म किये हुए स्वर्ण तथा रजत को उद्ध्वं-पातन यन्त्र द्वारा अनेक औषधियों से जो पुनरुत्थापित कहते हैं, यह स्वर्ण और रजत की कृष्टी कही जाती है ॥ १० ॥

अथ कृष्टया उपयोगः—

**कृष्टीं क्षिपेत्सुवर्णान्तर्न वर्णो हीयते तया ॥ ११ ॥**

उक्तविधि से की हुई स्वर्ण या रौप्य की कृष्टी को अग्निपर गलाकर स्वर्ण में मिलाने से स्वर्ण का रङ्ग कम नहीं होता है ॥ ११ ॥

स्वर्णकृष्टयाः कार्यम्—

**स्वर्णकृष्टया कृतं बीजं रसस्य परिरञ्जनम् ॥ १२ ॥**

स्वर्ण कृष्टी से किया हुआ बीज ( बनाने की विधि आगे है ) पारद का रञ्जन करता है ॥ १२ ॥

अथ वरलोहकम्—

**ताम्रं तीक्ष्णसमायुक्तं द्रुतं निक्षिप्य भूरिशः ।**
**सगन्धलकुचद्रावे निर्गतं वरलोहकम् ॥ १३ ॥**

तीक्ष्णलौह तथा ताम्र को बहुतवार ( प्रायः ७ वार ) साथ ही पिघलाकर गन्धक के चूर्ण को बड़हल के रस में मिलाकर उसमें बुझाने से लोह को वरलोह कहा जाता है ॥ १३ ॥

अथ हेमरक्ती—

**तेन रक्तीकृतं स्वर्णं हेमरक्तीत्युदाहृतम् ॥ १४ ॥**

इस वरलोह के साथ स्वर्ण को पिघलाने से वह उत्तम लालवर्ण का हो जाता है उसको हेमरक्ती कहते हैं ॥ १४ ॥

हेमरक्तीप्रयोगः—

**निक्षिप्ता सा द्रुते स्वर्णे स्वर्णोत्कर्षविधायिनी ।**
**तारस्य रञ्जनी चापि बीजरागविधायिनी ॥ १५ ॥**

यह हेमरक्ती पिघले हुए स्वर्ण के साथ डालकर उसमें मिलाने से उसका रङ्ग

श्रेष्ठ बनादेती है तथा चांदी को रङ्ग देती है और उसके बीजराग को भी बनाती है॥ १५॥

अथ तारवङ्गी—

**एवमेव प्रकर्तव्या तारवङ्गी मनोहरा ।**
**रञ्जनी खलु रूप्यस्य बीजानामपि रञ्जनी ॥ १६ ॥**

हेमवङ्गी की तरह वरलोह के साथ चांदी को गला कर तारवङ्गी बनाते हैं, यह तारवङ्गी चांदी को तथा चांदी के बीजों को भी रङ्ग देती है ॥ १६ ॥

अथ दलम्—

**मृतेन वा बद्धरसेन वाऽन्यल्लोहेन वा साधितमन्यलोहम् ।**
**सितं च पीतत्वमुपागतं तद्दलं हि चन्द्रानलयोः प्रसिद्धम् ॥१७॥**

भस्महुए पारद अथवा निगड़ीकरण क्रिया द्वारा संयमित ( बद्ध ) पारद के साथ या किसी अन्य लोह आदि धातु के साथ सिद्ध की हुई कोई धातु जब श्वेत वर्ण की होजाती है तब उसको चन्द्रदल कहते हैं और जब वह पीतवर्ण की होजाती है तब उसको अग्निदल कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ अन्यविधदलम्—

**आमासकृतबद्धेन रसेन सह योजितम् ।**
**साधितं वाऽन्यलोहेन सितं पीतं च तद्दलम् ॥ १८ ॥**

एक मास तक रस को निगड़ीकरण क्रिया द्वारा बद्ध करके उस ( बद्ध हुए ) के साथ या उसकी भस्म के साथ या किसी अन्य लोह के साथ सिद्ध की हुई किसी धातु को श्वेत होनेपर सितदल और पीत होने पर पीतदल कहते हैं ॥१८॥

अथ शुल्वनागम्—

**माक्षिकेण हतं ताम्रं दशवारं समुत्थितम् ।**
**तद्वद्विशुद्धनागं हि द्वितयं तच्चतुष्पलम् ॥ १९ ॥**
**नीलाञ्जनहतं भूयः सप्तवारं समुत्थितम् ।**
**इति संसिद्धमेतद्धि शुल्वनागं प्रकीर्त्यते ॥ २० ॥**

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक चूर्ण के साथ शुद्ध ताम्र की भस्म बनाकर उसको उत्थापित करें, इस तरह फिर उस उत्थापित ताम्र की शुद्धस्वर्ण माक्षिक के साथ भस्म बनाकर उसको पुनः उत्थापित करें इसी प्रकार से यह क्रिया दसवार करनी चाहिए। शुद्ध नाग को भी शुद्धस्वर्णमाक्षिक के साथ भस्म करके उत्थापित करें इस तरह

इसको भी दसवार भस्म बनाकर उत्थापित करना चाहिए। पश्चात् इस नाग और ताम्र को चारपल की मात्रा में ग्रहणकर नीलाञ्जन के साथ भस्म करके उत्थापन करें। इस तरह भस्म करके सात वार उत्थापन करना चाहिए। इस क्रिया से शुद्ध नाग और ताम्र को शुल्वनाग कहते हैं ॥ १९–२० ॥

अथ शुल्वनागगुणाः—

**साधितस्तेन सूतेन्द्रो वदने विधृतो नृणाम् ।**
**निहन्ति मासमात्रेण मेहव्यूहं विशेषतः ॥ २१ ॥**
**पथ्याशनस्य वर्षेण पलितं वलिभिः सह ।**
**गृध्रदृष्टिर्लसत्पुष्टिसर्वारोग्यसमन्वितः ॥ २२ ॥**

इस शुल्वनाग के साथ पारद की भस्म बना करके गोली बनाकर एक मास तक मुख में धारण करने से मनुष्यों के बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं, इसी तरह जो मनुष्य पथ्य का पालन करता हुआ एक वर्ष तक इस गोली को मुख में धारण करता रहे तो उसके वली ( युवावस्था में ही मुख तथा अन्य अङ्ग के चर्म में झुरियों का पड़ना ) और पलित ( असमय में बालों का सफेद होना ) रोग नष्ट हो जाते हैं तथा उस मनुष्य की अवलोकन शक्ति (दृष्टि) गृध्र के समान बढ जाती है, शरीर पुष्ट हो जाता है, तथा उसका शरीर सब तरह से नीरोग होजाता है ॥ २१-२२ ॥

अथ पिञ्जरी—

**लोहं लोहान्तरे क्षिप्तं ध्मातं निर्वापितं द्रवे ।**
**पाण्डुपीतप्रभं जातं पिञ्जरीत्यभिधीयते ॥ २३ ॥**

एक धा को अन्य धातु के साथ मिलाकर अग्नि में विद्रुत करके किसी त्रिफला इत्यादि के क्वाथ में बुझाने से यदि वह धातु पाण्डुवर्ण लिये हुई पीत वर्ण की हो जाय तब उसको पिञ्जरी कहते हैं ॥ २३ ॥

अथ चन्द्रार्कम्—

**भागाः षोडश तारस्य यथा द्वादश भास्वतः ।**
**एकत्रावर्तितास्तेन चन्द्रार्कमिति कथ्यते ॥ २४ ॥**

चांदी १६ भाग और ताम्र १२ भाग लेकर दोनों को अग्नि में विद्रुत करके घोटकर जो रस तैयार होता है उसको चन्द्रार्क कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ निर्वापणम्—

**साध्यलोहेऽन्यलोहं चेत्प्रक्षिप्तं वङ्कनालतः।**
**निर्वापणं तु तत्प्रोक्तं वैद्यैर्निर्वाहणं खलु ॥ २५ ॥**

अग्नि में विद्रुत हुई धातु में अन्य धातु को विद्रुत कर वङ्कनाल द्वारा डालने को निर्वापण कहते हैं और उसी का पर्याय वैद्य जनोंने निर्वाहण भी कहा है॥२५॥

निर्वापणद्रव्यमात्रा—

**क्षिपेन्निर्वापणं द्रव्यं निर्वाह्ये समभागिकम्।**
**मावाह्यं वापनीये च भागे दृष्टे च दृष्टवत् ॥ २६ ॥**

साध्य लोह में निर्वापण द्रव्य की मात्रा साध्य लोह के बराबर ही होनी चाहिए अथवा जैसी निर्वापण द्रव्य की मात्रा गुरुपरम्परा से सीखी या देखी हो उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए ॥ २६ ॥

अथ वारितरलोहलक्षणम्—

**मृतं तरति यत्तोये लोहं वारितरं हि तत् ॥ २७ ॥**

जो धातु फूंकने के पश्चात् अर्थात् उस धातु की भस्म जल पर तैरती रहे उसमें डूबे नहीं उसको वारितरभस्म या लोह कहते हैं ॥ २७ ॥

मृतलोहलक्षणम्—

**अङ्गुष्ठतर्जनीघृष्टं यत्तद्रेखान्तरे विशेत्।**
**मृतलोहं तदुद्दिष्टं रेखापूर्णाभिधानतः ॥ २८ ॥**

किसी भी लोह ( सप्तलोह ) की भस्म को अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी अङ्गुली के बीच में लेकर घर्षित करने से यदि वह भस्म उन दोनों की रेखाओं में प्रविष्ट हो जाय तथा नीचे नहीं गिरे तब उस धातु की भस्म को मृतलोह अथवा रेखापूर्ण नाम से कहते हैं ॥ ॥ २८ ॥

अपुनर्भवलक्षणम्—

**गुडगुञ्जासुखस्पर्शं मध्वाज्यैः सह योजितम्।**
**नायाति प्रकृतिं धमानादपुनर्भवमुच्यते ॥ २९ ॥**

गुड़, गुञ्जाचूर्ण, सुहागा, शहद, घृत, इनके साथ किसी भी धातु की भस्म को मिलाकर अग्नि में फूंकने से यदि वह अपने स्वरूप को धारण नहीं करे तब उसको अपुनर्भव भस्म कहते हैं ॥ २९ ॥

उत्तमभस्मलक्षणम्—

**तस्योपरि गुरु द्रव्यं धान्यं चोपनयेद्ध्रुवम् ।**
**हंसवत्तीर्यते वारिण्युत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ३० ॥**

फिर इस भस्म को जल पर तैराकर इसके ऊपर कोई वजनी पदार्थ अथवा धान के दाने रखने से यदि वह जल में डूबे नहीं और हंस के समान उस भस्म के सहारे तैरती रहे तब वह उत्तम भस्म होती है। कुछ ग्रन्थकरों ने इसको ऊनम भस्म भी कहा है ॥ ३० ॥

निरुत्थलौहलक्षणम्—

**रौप्येण सह संयुक्तं ध्मातं रौप्येण चेल्लगेत् ।**
**तदा निरुत्थमित्युक्तं लोहं तदपुनर्भवम् ॥ ३१ ॥**

लोह ( सातलोह ) भस्म को चांदी के पत्रों के साथ मिलाकर फूंकने से यदि वह उन रजत पत्रों के साथ मिश्रित हो जाय तब उसको निरूत्थ कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ बीजलक्षणम्—

**निर्वापणविशेषेण तत्तद्गुणं भवेद्यदा ।**
**मृदुलं चित्रसंस्कारं तद्बीजमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥**
**इदमेव विनिर्दिष्टं वैद्यैरुत्तरणं खलु ॥ ३३ ॥**

किसी धातु को गलाकर उसमें अन्य धातु का निर्वापण करने से वह धातु कोमल और अद्भुत गुणों को करने वाली होजाती है इसी का बीज कहते हैं तथा वैद्य लोग इसको उत्तरण भी कहते हैं ॥ ३२–३३ ॥

ताड़नस्वरूपम्—

**संस्पृष्टलोहयोरेकलोहस्य परिनाशनम् ।**
**प्रध्मातं वङ्कनालेन तत्ताडनमुदाहृतम् ॥ ३४ ॥**

दो धातु जब परस्पर मिली हो उनमें से एक धतु को शुद्धि करने के लिये और अन्य धातु को नष्ट करने के लिये उनको मूषायन्त्र में रखकर वङ्कनाल के द्वारा फूंकते हैं इसी को ताड़न कहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ धान्याभ्रलक्षणम्—

**चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके ।**
**निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ ३५ ॥**

शुद्ध अभ्रक के छोटे २ टुकड़े ( चूर्ण ) बनाकर उसको धान के साथ ( भूसी युक्त चांवल ) एक वस्त्र में रखकर पोटली बांन्ध लेते हैं, फिर उस पोट्टली को काञ्जी में भिंगोकर रख देते हैं । बाद में पोट्टली को कूटने से उसमें से जो अभ्रक का चूर्ण निकलता है उसको धान्याभ्रक कहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ सत्त्वलक्षणम्—

**क्षाराम्लद्रावकैर्युक्तं ध्मातमाकरकोष्ठके ।**
**यस्ततो निर्गतः सारः सत्त्वमित्यभिधीयते ॥ ३६ ॥**

किसी धातु की भस्म को क्षार ( टंकण ) अम्ल ( काञ्जी ) और द्रावकवर्ग ( गुञ्जा, मधु, घृत, गुड़, ) के पदार्थों के साथ मिला कर कोष्ठिकायन्त्र में या मूषामें रखकर फूंक देने से जो उस भस्म का सार निकलता है उसको सत्त्व कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ एककोलिसकलक्षणम्—

**कोष्ठिका शिखरापूर्णैः कोकिलैर्ध्मानयोगतः ।**
**मूषाकण्ठमनुप्राप्यैरेककोलीसको मतः ॥ ३७ ॥**

एक कोष्ठिका को कायलों से भरकर उन के बीच में द्रव्यों से भरी मूषा रखकर धौंकनी से फूंकना चाहिये । जब तक मूषा के भीतर का पदार्थ ( धातु ) उड़कर उसके कण्ठ में संलग्न न हो जाय तबतक यह क्रिया जारी रखनी चाहिए, इसी का नाम एककोलीसक है ॥ ३७ ॥

अथ द्रावणादिकर्मसाधने काष्ठनिर्देशः—

**द्रावणे सत्त्वपाते च माधुकाः खादिराः शुभाः ।**
**दुर्द्रवे वंशजास्ते तु स्वेदने बादराः शुभाः ॥ ३८ ॥**

किसी धातु के द्रावण या सत्त्वपातन करने के लिये महुए या खैरके काष्ठ या कोयले श्रेष्ठ हैं तथा जो वस्तु कठिनता से द्रव होती है उसके लिये बांस के काष्ठ या कोयले और स्वेदन कर्म में बैर के कोयलों अथवा लकडियों का प्रयोग करना चाहिए ॥ ३८ ॥

अथ हिङ्गुलाकृष्टरसः—

**विद्याधराख्ययन्त्रस्थादार्द्रकद्रावमर्दितात् ।**
**समाकृष्टो रसो योऽसौ हिङ्गुलाकृष्ट उच्यते ॥ ३९ ॥**

हिङ्गुल को अद्रक के स्वरस में घोटकर विद्याधरयन्त्र के द्वारा ( उसमें लेपकर ) उड़ाकर निकाले हुए पारद को हिङ्गुलाकृष्ट पारद कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ घोषाकृष्टताम्रलक्षणम्—

**स्वल्पतालयुतं कांस्यं वङ्गनालेन ताडितम् ।**
**मुक्तरङ्गं हि तत्ताम्रं घोषाकृष्टमुदाहृतम् ॥ ४० ॥**

कांस्य के अन्दर कुछ हरताल मिलाकर वङ्गनाल के द्वारा अग्नि में फूंकने से वङ्ग का भाग पृथक् हो जाता है और ताम्र पृथक् निकल जाता है इस ताम्र को घोषाकृष्ट ताम्र कहते हैं । कांस्य ताम्र और वंग के संयोग से बनता है उक्तविधि से ताम्र को पृथक् कर लेते हैं ॥ ४० ॥

अथ वरनागलक्षणम्—

**तीक्ष्णनीलाञ्जनोपेतं ध्मातं हि बहुशो दृढम् ।**
**मृदु कृष्णं द्रुतद्रावं वरनागं तदुच्यते ॥ ४१ ॥**

नाग को तीक्ष्ण लौह और नीलाञ्जन के साथ बहुत बार तेज आँच में फूंकने से जब वह अत्यन्त कोमल कृष्णवर्ण और अत्यन्त शीघ्र द्रुत होने लायक होजाय तब उसको वरनाग ( उत्तम शीस ) कहते हैं ॥ ४१ ॥

उत्थापनलक्षणम्—

**मृतस्य पुनरुद्भूतिः सम्प्रोक्तोत्थापनाख्यया ॥ ४२ ॥**

भस्म हुए लोह ( सप्तधातु ) को द्रावक वर्ग की औषधियों के साथ फूंकने से वह अपने स्वरूप में आजाता है इसी को उत्थापन कहते हैं ॥ ४२ ॥

ढालनलक्षणम्—

**द्रुतद्रवस्य निक्षेपो द्रवे तद् ढालनं मतम् ॥ ४३ ॥**

किसी धातु को अग्नि में द्रवित कर के द्रव में बुझाने से वह ढल (घन हो) जाती है, इसी को ढालन कहते हैं ॥ ४३ ॥

अथ नागसम्भूतचपलः—

**त्रिंशत्पलमितं नागं भानुदुग्धेन मर्दितम् ।**
**विमर्द्य पुटयेच्चावद्यावत्कर्षावशेषितम् ॥ ४४ ॥**
**न तत्पुटसहस्रेण क्षयमायाति सर्वथा ।**
**चपलोऽयं समादिष्टो वार्तिकैर्नागसम्भवः ॥ ४५ ॥**

३० पल ( १२० तो० ) नाग का चूर्ण बनाकर मदार के दुग्ध से भावित करके घोटलें, फिर गजपुट में उसे फूंकदें, इसविधि से बार२ मदार के दुग्ध से घोटकर पुट देते देते जब उसकी मात्रा एक कर्ष (एक तोला) शेष रह जाती है उसी को वार्तिककारों ( रसशास्त्रपरिभाषानिर्माताविद्वानों ) ने नाग से उत्पन्न चपल कहा है। इस एक तोले का फिर यदि हजारों पुट भी दिये जावें तो भी वह नष्ट नहीं होता है ॥ ४४–४५ ॥

अथ वङ्गसम्भूतचपलः—

**इत्थं हि चपलः कार्यो वङ्गस्यापि न संशयः ॥ ४६ ॥**

उपर्युक्त विधि से वङ्ग धातु को भी अर्कदुग्ध से भावित कर अनेक पुट द्वारा उससे चपल का निर्माण किया जाता है ॥ ४६ ॥

चपलकार्यम्—

**तत्स्पृष्टहस्तसंस्पृष्टः केवलो बध्यते रसः ॥ ४७ ॥**

इस चपल को हाथों में मलकर पारद का स्पर्श मात्र करने से उसका बन्धन ( गोली ) हो जाता है, यह चपल का प्रभाव है ॥ ४७ ॥

बद्धरसोपयोगः—

**स रसो धातुवादेषु शस्यते न रसायने।**
**अयं हि खर्वणाख्येन लोकनाथेन कीर्तितः ॥ ४८ ॥**

चपल के द्वारा बद्ध हुए रस का उपयोग धातु वाद ( लोह से स्वर्ण बनाने ) में होता है। रसायन कर्म में इस पारे का उपयोग नहीं करना चाहिए। यह विधि खर्वण नामक लोकनाथ ने कही है ॥ ४८ ॥

अथ धौतम्—

**भूभुजङ्गशकृत्तोयैः प्रक्षाल्यापहृतं रजः।**
**कृष्णवर्णं हि तत्प्रोक्तं धौताख्यं रसवादिभिः ॥ ४९ ॥**

केञ्चुओं की विष्ठा को जल में घोल ( विलयन ) बना कर उस घोल में राख ( अर्थात् चपल बनाते समय जो नाग या वङ्ग का भाग राख में रह जाता है उसे ) को घुलाकर छानने से जो काले वर्ण का चूर्ण प्राप्त होता है उसको रसवादी धौत नाग और धौतवङ्ग कहते हैं। कुछ लोगों का यह अभिप्राय है कि केवल केञ्चुओं की विष्ठा को पानी में घोलकर छानने से जो कृष्ण वर्ण का चूर्ण प्राप्त होता है वह धौत कहा जाता है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है ॥ ४९ ॥

अथ द्वन्द्वानम्—

**द्रव्ययोर्मर्दनाध्मानाद्द्वन्द्वानं परिकीर्तितम् ॥ ५० ॥**

दो धातुओं को एक साथ मिलाकर फूंकने से या मर्दन करने से जो एकीकरण किया जाता है उसको द्वन्द्वान् कहते हैं ॥ ५० ॥

अथ भञ्जनी—

**भागाद्द्रव्याधिके क्षेपमनुवर्णसुवर्णके**
**द्रवैर्वा वह्निकाग्रासो भञ्जनी वादिभिर्मता ॥ ५१ ॥**

सुवर्ण आदि धातुओं को विद्रुत कर उनमें अन्य पदार्थों के मिलाने को अनुवर्ण या सुवर्णक कहते हैं और धातुओं को गर्म कर किसी द्रव पदार्थ ( स्वरस ) के द्वारा उनकी अग्नि हरण करने को भञ्जनी कहते हैं ॥ ५१ ॥

अथ चुल्लका—

**पतङ्गीकल्कतो जाता लोहे तारे च हेमता ।**
**दिनानि कतिचित्स्थित्वा यात्यसौ चुल्लका मता ॥ ५२ ॥**

लोह या चांदी में कुछ औषधियों के संसर्ग से जो सुवर्ण सदृश रङ्ग (हेमता) उत्पन्न हो जाता है उसको पतङ्गी कहते हैं और कुछ दिनों के पश्चात् वह हेमता नष्ट हो जाती है उस अवस्था को चुल्लका कहते हैं। कुछ लोगों का मत है कि पतङ्गी नामक औषधि के कल्क में तार या लोह को कुछ दिन रखने से उनमें एक तरह से सुवर्ण के समान वर्ण उत्पन्न हो जाता है इसको चुल्लका कहते हैं ॥ ५२ ॥

अथ पतङ्गीरागः—

**रञ्जिताद्धि चिराल्लोहाद्ध्मानाद्वा चिरकालतः ।**
**विनिर्यास स निर्दिष्टः पतङ्गीरागसंज्ञकः ॥ ५३ ॥**

रञ्जित किये हुए लौह के कुछ दिन तक पड़े रहने से या उस को फूंक देने से जो सत्त्व निकलता है उसको पतङ्गीराग कहते है ॥ ५३ ॥

अथ आवापः—

**द्रुते द्रव्यान्तरक्षेपो लोहाद्ये क्रियते हि यः ।**
**स आवापः प्रतीवापस्तदेवाऽऽच्छादनं मतम् ॥ ५४ ॥**

अग्नि में विद्रुत हुए लोह में जो अन्य द्रव्य का प्रक्षेप किया जाता है उसको आवाप, प्रतीवाप अथवा आच्छादन कहते हैं ॥ ५४ ॥

अथ अभिषेकः—

**द्रुते वह्निस्थिते लोहे विरम्याष्टनिमेषकम् ।**
**सलिलस्य परिक्षेपः सोऽभिषेक इति स्मृतः ॥ ५५ ॥**

वन्हि के संयोग से द्रुत हुए लोहादिक में आठ निमेष के पश्चात् जो जल का छिड़काव दिया जाता है या जल डाला जाता है उसको अभिषेक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अथ निर्वापलक्षणम्—

**तप्तस्याप्सु विनिक्षेपो निर्वापः स्नपनं च तत् ॥ ५६ ॥**

प्रतप्त लोह ( सप्त या अष्ट धातु ) को किसी औषधि के स्वरस में बुझाने को स्नपन या निर्वाप कहते हैं ॥ ५६ ॥

प्रतिवापसमयनिर्देशः—

**प्रतीवापादिकं कार्यं द्रुते लोहे सुनिर्मले ॥ ५७ ॥**

जब लोह अग्नि से द्रव होकर निर्मल हो जाय तभी उसका प्रतीवाप, स्नपन, और अभिषेक करना चाहिए ॥ ५७ ॥

अथ शुद्धावर्तः—

**यदा हुताशो दीप्तार्चिः शुक्लोत्थानसमन्वितः ।**
**शुद्धावर्तस्तदा ज्ञेयः स कालः सत्त्वनिर्गमे ॥ ५८ ॥**

जब अग्नि अच्छी तरह से प्रज्वलित हो जाय और उसमें से शुक्लता लिये हुए लालरंग की तीव्र लपटें निकलने लगें उस समय उसको शुद्धावर्त कहते हैं, धातुओं का सत्त्व इसी अवस्था में निकलता है, अर्थात् धातुओं के सत्त्व को उत्तम रीति से निकालने के लिये इतनी तेज आँच करनी आवश्यक है ॥ ५८ ॥

अथ बीजावर्तः—

**द्राव्यद्रव्यनिभा ज्वाला दृश्यते धमने यदा ।**
**द्रावस्योन्मुखता सेयं बीजावर्तः स उच्यते ॥ ५९ ॥**

किसी धातु का द्रावण करने के लिये उसको अग्नि में रख कर धौंकनी से धौंकते हैं, उस समय अग्नि में उस धातु के रंग के सदृश ज्वाला दिखाई देती है इसी समय में उस धातु का द्रव होना प्रारम्भ होता है इसको बीजावर्त कहते हैं ॥ ५९ ॥

अथ स्वाङ्गशीतलम्—

**वह्निस्थमेव शीतं यत्तदुक्तं स्वाङ्गशीतलम् ॥ ६० ॥**

किसी वस्तु को अग्नि पर पकाकर आंच देना बन्द कर देते हैं, जब वह वस्तु वायुमण्डल की शीतता से चूल्हे पर स्थित ही शीतल हो जाती है उसको स्वाङ्गशीतल कहते हैं ॥ ६० ॥

अथ बहिःशीतलम्—

**अग्नेराकृष्य शीतं यत्तद्बहिः शीतमुच्यते ॥ ६१ ॥**

किसी वस्तु का अग्नि मे पाक कर फिर उसको अग्नि से नीचे रख कर शीतल करते हैं इसको बहिःशीत कहते हैं ॥ ६१ ॥

अथ स्वेदनलक्षणम्—

**क्षाराम्लैरौषधैर्वापि दोलायन्त्रे स्थितस्य हि ।**
**पचनं स्वेदनाख्य स्यान्मलशथिल्यकारकम् ॥ ६२ ॥**

क्षार ( जवाखार, सुहागा, इत्यादि ) तथा अम्लवर्ग की औषधियों का स्वरस दोलायन्त्र में भर कर उस में पारद, लोह, शंख, शुक्ति इत्यादि पदार्थों को उनके साथ पाचन करते हैं, इसको स्वेदन संस्कार कहते हैं। स्वेदन संस्कार करने से उस धातु का कुछ मल भाग पृथक् हो जाता है ॥ ६२ ॥

अथ मर्दनलक्षणम्—

**उदितैरौषधैः सार्धं सर्वाम्लैः काञ्जिकैरपि ।**
**पेषणं मर्दनाख्यं स्याद्बहिर्मलविनाशनम् ॥ ६३ ॥**

भिन्न २ वस्तु के मर्दन के लिये कही हुई औषधियों के साथ या सर्वप्रकार के अम्ल पदार्थों के स्वरस द्वारा (जिसके लिये जिसका शास्त्र में निर्देश हो) अथवा काञ्जी के साथ पारद या अन्य पदार्थ का खरल में पेषण करते हैं। इसको मर्दन संस्कार भी कहते हैं, इस संस्कार से भी पारद या अन्य पदार्थों के बहिर्मल का विनाश होता है ॥ ६३ ॥

अथ मूर्च्छनलक्षणम्—

**मर्दनाऽऽदिष्टभैषज्यैर्दृष्टपिष्टत्वकारकम् ।**
**तन्मूर्च्छनं हि वङ्गाहि-भुजकञ्चुकनाशनम् ॥ ६४ ॥**

मर्दनसंस्कार में कही हुई औषधियों के चूर्ण, स्वरस या क्वाथ के साथ पारद को घोटकर उसकी कज्जली या पिण्डि अथवा सूक्ष्म चूर्ण कर लेते हैं इसको

मूर्च्छन संस्कार कहते हैं। यह संस्कार पारद के नाग, वङ्ग आदि महादोषों(१) को नष्ट करता है। पारद के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का भी मूर्च्छन संस्कार करने से गुणोत्कर्ष होता है ॥ ६४ ॥

अथोत्थापनादिलक्षणम्—

**स्वेदातपादियोगेन स्वरूपापादनं हि यत्।**
**तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम् ॥ ६५ ॥**

मूर्च्छन संस्कार के कारण विरूपित हुए ( निष्पिष्ट हुए ) पारद को फिर दोलायंत्र द्वारा स्वेदन करके या अग्नि और सूर्य के सन्ताप के द्वारा अपने पूर्व रूप में ले आते हैं, इसी को उत्थापन संस्कार कहते हैं। क्योंकि इस संस्कार से पारद पुनः स्वस्वरूप को ग्रहण कर लेता है ॥ ६५ ॥

बन्धलक्षणम्—

**स्वरूपस्य विनाशेन पिष्टत्वाद्बन्धनं हि तत्।**
**विद्वद्भिर्निर्जितः सूतो नष्टपिष्टिः स उच्यते ॥ ६६ ॥**

गन्धकादिक भिन्न २ पदार्थों के साथ पारद को घोटने से उसका श्वेत और चपलगुण नष्ट होकर चूर्ण या कज्जली बन जाती है और इस पेषण के कारण उसका बन्धन ( मूर्तिबद्धरूप अथवा वह्निनाऽनुच्छिद्यमानत्व ) हो जाता है। इस प्रकार से जीते हुए (स्वाधीन किये हुए) पारद का विद्वान् लोग नष्टपिष्टि कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथ पातनलक्षणम्—

**उक्तौषधैर्मर्दितपारदस्य यन्त्रास्यतस्योर्ध्वमधश्च तिर्यक्।**
**निर्यातनं पातनसंज्ञमुक्तं वङ्गाहिसम्पर्कजकञ्चुकघ्नम् ॥ ६७ ॥**

स्वेदन, मर्दनादिक संस्कार में बताई हुई तथा अन्य शास्त्रोक्त ओषधियों के साथ पारद को खरल में घोट करके ऊर्ध्वपातन, अधः पातन और तिर्यक् पातन यन्त्रों में लेप कर के या चूर्ण रूप ही में रख कर क्रम से पारद को ऊपर, नीचे और तिर्यक् मार्ग से उड़ाते हैं, इस को पातन कहते हैं। इस पातन संस्कार से पारद के नाग और वङ्ग से उत्पन्न कञ्चुकादिक दोष नष्ट हो जाते हैं। वास्तव में खनिज पारद में नाग, वङ्ग हरताल आदि बहुत से पदार्थ मिले रहते हैं। उन

---

(१) नागो वङ्गो मलोवह्निश्चाञ्चल्यञ्च विषंगिरिः।
असह्याग्निर्महादोषानिसर्गाः पारदे स्थिताः ॥

पदार्थों से पारद को मुक्त करने के लिये शास्त्रकारों ने तीन प्रकार के पातनों का निर्देश किया है। पारद के अन्दर यह गुण है कि वह अग्नि लगते ही जिधर भी उसे मार्ग मिले उधर ही उड़ जाता है, किन्तु अन्य पदार्थ इस शक्ति से रहित हैं। जब पारद का ऊर्ध्वपातन करते हैं तब वह ऊपर उड़ जाता है किन्तु उसके साथ २ हरताल ( आर्सेनिक ) भी ऊपर उड़ता है इसलिये पारद का तिर्यक् पातन करते हैं। हरताल का तिर्यक् पातन नहीं होता है, इस तरह पारद हरताल से मुक्त हो जाता है। ऊर्ध्व पातन से अन्य नागादिक दोष नीचेही रह जाते हैं। इस वास्ते अशुद्ध पारद ( हिङ्गुलोत्थ पारद से भिन्न ) का तीनों प्रकार से पातन करना आवश्यक है ॥ ६७ ॥

अथ रोधनलक्षणम्—

**जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम् ।**
**स्थितिरास्थापनी कुम्भे याऽसो रोधनमुच्यते ॥ ६८ ॥**

मिट्टी के घड़े में पानी और सैन्धानीमक भरकर पारद को किसी दृढ वस्त्र में बांधकर या ऐसे ही तीन दिन तक पड़ा रहने देते हैं। यह क्रिया स्वेदन मूर्च्छनादिक संस्कारों से षण्ढभावापन्न पारद के दोषों को नष्ट कर उत्कृष्टगुणों का उसमें आस्थापन ( उत्पादन ) करती है और इसको रोधनसंस्कार कहते हैं ॥ ६८ ॥

नियमनलक्षणम्—

**रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये ।**
**क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत् ॥ ६९ ॥**

रोधन संस्कार से उत्कृष्ट शक्ति को प्राप्त हुए पारद के चपल दोष को नष्ट करने के लिये सर्पाक्षी इत्यादि नियामकगण(१) की औषधों के स्वरस में पारद का स्वेदन करते हैं, उसको नियमन संस्कार(२) कहते हैं ॥ ६९ ॥

---

( १ ) नियामकगण—महाबला नागबला यमचिञ्चा पुनर्नवा ।
आखुपर्णी सहचरा वासिका काकमाचिका ॥ १ ॥
गोक्षुरः शरपुङ्खा च विष्णुक्रान्ता घनध्वनिः ।
मण्डूकपर्णी तुलसी बला च गिरिकर्णिका ॥ २ ॥

( २ ) यथा—सर्पाक्षीचिञ्चिका कन्याभृङ्गारकनकाम्बुभिः
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात् स्थिरतां व्रजेत् ।

दीपनलक्षणम्—

**धातुपाषाणमूलाद्यैः संयुक्तो घटमध्यगः।**
**ग्रासार्थं त्रिदिनं स्वेदो दीपनं तन्मतं बुधैः ॥ ७० ॥**

पारद का दोलायन्त्र के द्वारा धातु, उपधातु, पाषाण या अन्य दीपनद्रव्यों ( औषध ) के साथ स्वर्णादिक को ग्रास करने की शक्ति बढ़ाने के लिये तीन दिन तक स्वेदन किया जाता है, इसको विद्वान् दीपनसंस्कार कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ ग्रासमानम्—

**इयन्मानस्य सूतस्य भोज्यद्रव्यात्मिका मितिः।**
**इयतीत्युच्यते याऽसौ ग्रासमानं समीरितम् ॥ ७१ ॥**

इतनी मात्रा में पारद इतनी मात्रा वाले स्वर्ण अभ्रक आदि पदार्थ को ग्रसित कर सकता है, इस प्रकार जो माननिर्देश किया जाता है उसको ग्रासमान कहते हैं ॥ ७१ ॥

अथ जरणाभेदनिर्देशः—

**ग्रासस्य चारणं गर्भे द्रावणं जारणं तथा।**
**इति त्रिरूपा निर्दिष्टा जारणावरवार्तिकैः ॥ ७२ ॥**
**ग्रासः पिण्डः परिणामस्तिस्रश्चाख्याः पराः पुनः ॥ ७३ ॥**
**समुखा निर्मुखा चेति जारणा द्विविधा पुनः ॥ ७४ ॥**

पारद के अन्दर ग्रासयोग्य स्वर्ण आदि का विना अग्नि संयोग के मिलाने को चारण और अग्नि संयोग से ग्रास तथा योग्य पदार्थ को द्रव करके मिलाने को द्रावण तथा रस के अन्दर ग्रासयोग्य द्रवीभूत स्वर्णादिक को मिलाकर विड्यन्त्रादि योग से ( किसी काष्ठ औषधि के साथ ) पाक करने को जारण कहते हैं। इस तरह रस परिभाषा को बनाने वाले विद्वानों ने तीन प्रकार का जारणसंस्कार कहा है। इसी के अन्य नाम ग्रास ( पारद अन्य वस्तु को कवलित कर ले ), पिण्ड ( पिण्ड स्वरूप का जारण ) तथा परिणाम ( अवस्थान्तरप्राप्तिरूपजारण ) हैं फिर जारणा के संमुखजारणा और निर्मुखजारणा ये दो भेद होते हैं ॥ ७२–७४ ॥

---

शतावरी शङ्खपुष्पी श्वेतार्कः कनकाह्वयः।
चक्रमर्दः करञ्जश्च ब्रह्मदण्डी शिखण्डिनी ॥ ३ ॥
गुडूची सैन्धवं पाठा मृगाक्षी सोमवल्लिका।
नियामकगणो ह्येषः प्रोक्तो रसविशारदैः ॥ ४ ॥

निर्मुखजारणालणक्षम्—

**निर्मुखा जारणा प्रोक्ता बीजाऽऽदानेन भागतः ॥ ७५ ॥**

आगे कहे हुए मुख से रहित ( अर्थात् पारद में चतुःषष्ठ्यंश भाग बीज न मिलाया जाय ) भिन्न २ जारण में यथानिर्दिष्ट भाग से बीज का मिलाना या प्रक्षेप करना चाहिए, इसी को निर्मुखजारणा कहते हैं ॥ ७५ ॥

अथ बीजादिनिर्देशः—

**शुद्धं स्वर्णं च रूप्यं च बीजमित्यभिधीयते ॥ ७६ ॥**

शुद्ध स्वर्ण और शुद्ध रूपे को बीज कहते हैं ॥ ७६ ॥

मुखलक्षणम्—

**चतुःषष्ठ्यंशतो बीजप्रक्षेपो मुखमुच्यते ॥ ७७ ॥**

पारद के अन्दर शुद्ध स्वर्ण या शुद्ध रौप्य को पारद की अपेक्षा ६४ भाग की मात्रा में मिलाने को मुख कहते हैं ॥ ७७ ॥

सम्मुखजारणालक्षणम्—

**एवं कृते रसो ग्रासलोलुपो मुखवान् भवेत् ।**
**कठिनान्यपि लोहानि क्षमो भवति भक्षितुम् ॥**
**इयं हि सम्मुखा प्रोक्ता जारणा मृगचारिणा ॥ ७८ ॥**

इस तरह पारद के अन्दर ६४ वें भाग की मात्रा में बीज के मिला देने पर वह मुखवाला होकर अन्य लोह अभ्रक इत्यादि कठिन धातुओं को ग्रसित (भक्षण) करने के लिये समर्थ हो जाता है, इसी को मृगचारी नाम वाले किसी विद्वान् ने सम्मुखजारणा कही है ॥ ७८ ॥

अथ राक्षसवक्त्ररसलक्षणम्—

**दिव्यौषधिसमायोगात्स्थितः प्रकटकोष्ठिषु ।**
**भुञ्जीताखिललोहाद्यं योऽसौ राक्षसवक्त्रवान् ॥ ७९ ॥**

दिव्य औषधियों के साथ या मनःशिला के साथ मिलाकर खुले मुख वाली कोष्ठिका ( यंत्र ) में यदि पारा रखा जाय तो वह सम्पूर्ण लोहादि धातुओं को अपने अन्दर मिलाने में समर्थ हो जाता है, ऐसे पारद को राक्षसमुखी पारद कहते हैं अर्थात् जैसे राक्षस सबको खा जाता है उसी तरह पारद भी अत्यन्त बुभुक्षित हो जाता है ॥ ७९ ॥

चारणालक्षणम्—

**रसस्य जठरे ग्रासक्षपणं चारणा मता ॥ ८० ॥**

पारद के अन्दर किसी ग्रास करने योग्य लोहादि धातु के मिलाने या रस के साथ उसको मिश्रित करने को चारणा कहते हैं ॥ ८० ॥

गर्भद्रुतिलक्षणम्—

**ग्रस्तस्य द्रावणं गभ गर्भद्रुतिरुदाहृता ॥८१ ॥**

पारद के अन्दर ग्रसित हुआ लोहादिक पदार्थ अग्नि संयोग से द्रुत होकर उसमें मिल जाते हैं इस को गर्भद्रुति कहते हैं ॥ ८१ ॥

बाह्यद्रुतिलक्षणम्—

**बहिरेवं द्रुतिं कृत्वा घनसत्त्वादिकं खलु ।**
**जारणाय रसेन्द्रस्य सा बाह्यद्रुतिरुच्यते ॥ ८२ ॥**

अभ्रक का सत्त्व या अन्य लोहादिकों की भस्म को पृथक् द्रव कर के पारद के अन्दर जारण करने के लिये मिलाया जाता है, इस क्रियाको बाह्यद्रुति कहते हैं॥८२॥

द्रुतेर्भेदाः—

**निर्लेपत्वं द्रुतत्वं च तेजस्त्वं लघुता तथा ।**
**असंयोगश्च सूतेन पञ्चधा तिलक्षणम् ॥ ८३ ॥**

१ द्रव पदार्थ के साथ अच्छी तरह मिल जाना या अन्य मलसंसर्ग से रहित होना, २ विशेष रूप से पतला हो जाना, ३ पूर्व स्वरूप की अपेक्षा उत्तम रूप हो जाना, ४ स्वाभाविक गुरुता से कुछ लघुता आजाना, ४ पारद के साथ पृथक होकर दिखाई देना, ये ५ द्रुति के लक्षण हैं ॥ ८३ ॥

द्रुतेः स्वरूपम्—

**औषधाध्मानयोगेन लोहधात्वादिकं तथा ।**
**सन्तिष्ठते द्रवाकारं सा द्रुतिः परिकीर्तिता ॥ ८४ ॥**

द्रावक वर्ग की ओषधियों के साथ सप्त या अष्ट प्रकार के लोह, रत्न, उपरत्न इत्यादि पदार्थ अग्नि में द्रव होकर किसी के साथ लिप्त न होते हुए उसी रूप में स्थित रहते हैं इसी को द्रुति कहते हैं ॥ ८४ ॥

अथ जारणाभेद-जारणालक्षणम्—

**द्रुतग्रासपरीणामो विडयन्त्रादियोगतः ।**

**जारणेत्युच्यते तस्याः प्रकाराः सन्ति कोटिशः ॥ ८५ ॥**

आगे कहे जाने वाले विड्यंत्र मूषायन्त्र इत्यादि के द्वारा द्रुत हुए स्वर्णादिक ग्रसित पदार्थ का पारे के साथ जो पाक किया जाता है उसको जारणा कहते हैं, इसके करोड़ों भेद हैं ॥ ८५ ॥

अथ विडादिलक्षणम्—

**क्षारैरम्लैश्च गन्धाद्यैर्मूत्रैश्च पटुभिस्तथा ।**
**रसग्रासस्य जीर्णार्थं तद्विडं परिकीर्तितम् ॥ ८६ ॥**

क्षार ( यवक्षारादिक ) अम्लपदार्थ ( काञ्जी ) गन्धक आदि धातु, गोमूत्र, और पांचो प्रकार के लवण इनके सहयोग से पारद में मिलि हुई स्वर्णादिक धातु का जारण करते हैं, इसको विडयन्त्र कहते हैं ॥ ८६ ॥

रञ्जनलक्षणम्—

**सुसिद्धबीजधात्वादि-जारणेन रसस्य हि ।**
**पीतादिरागजननं रञ्जनं परिकीर्त्तितम् ॥ ८७ ॥**

उत्तम प्रकार से सिद्ध किये हुए बीज ( स्वर्ण और रौप्य ) तथा धातुओं के साथ पारद का जारण करके उसमें जो पीत रक्त इत्यादि रंग उत्पन्न करते हैं इसको रञ्जन कहते हैं ॥ ८७ ॥

सारणालक्षणम्—

**सूते स्तैलयन्त्रस्थे स्वर्णादिक्षेपणं हि यत् ।**
**वेधाधिक्यकरं लोहे सारणा सा प्रकीर्त्तिता ॥ ८८ ॥**

तैल से भरी हुई अन्धमूषा में पारद डाल कर उसमें स्वर्ण रौप्य आदि धातुओं को डाल कर उनमें वेध करते हैं अर्थात् अद्भुत गुणों का उद्भावन करते हैं इसी को सारणा कहते हैं ॥ ८८ ॥

वेधलक्षणं भेदाश्च—

**व्यवायिभेषजोपेतो द्रव्ये क्षिप्तो रसः खलु ।**
**वेध इत्युच्यते तज्ज्ञैः स चानेकविधः स्मृतः ॥ ८९ ॥**
**लेपः क्षेपश्च कुन्तश्च धूमाख्यः शब्दसंज्ञकः ॥ ९० ॥**

अफीम, भङ्गा, नागवल्ली, कुमारी, धस्तूर इत्यादि व्यवायशक्तिवर्धक पदार्थों के साथ पारद को स्वर्णादि के समान गुण उत्पन्न करने के लिये लोहादिक धातु

में डालते हैं इसको वेध कहते हैं, और यह वेध अनेक प्रकार का है। लेपवेध, क्षेपवेध,कुन्तवेध धूमवेध, शब्दवेध इस तरह से वेध पाँच प्रकार का होता है॥८९-९०॥

लेपवेधलक्षणम्—

**लेपनं कुरुते लोहं स्वर्णं वा रजतं तथा।**
**लेपवेधः स विज्ञेयः पुटमत्र च सौरकम्॥ ९१॥**

लोह आदि धातुओं पर वेधसामर्थ्य उत्पन्न करने वाली विशेष क्रिया से सिद्ध हुए पारद का लेप करके उस लोहादि धातु को स्वर्ण या रोप्य के रूप में परिवर्तित कर देते हैं इसी को लेपवेध कहते हैं। इस क्रिया में उस धातु पर पारद का लेप कर सौरक पुट ( सूर्य पुट ) से उसे पकाते हैं॥ ९१॥

क्षेपवेधलक्षणम्—

**प्रक्षेपणं द्रुते लोहे वेधः स्यात्क्षेपसंज्ञितः॥ ९२॥**

किसी रजत या ताम्र इत्यादि को द्रव कर के उस में पारद ( विशेषऔषध मिश्रित ) को डालते हैं। इसको क्षेपवेध कहते हैं॥ ९२॥

कुन्तवेधलक्षणम्—

**सन्दंशधृतसूतेन द्रुतद्रव्याहुतिश्च या।**
**सुवर्णत्वादिकरणं कुन्तवेधः स उच्यते॥ ९३॥**

किसी धातु को अग्नि में द्रव करके उस द्रवित धातु में मूर्तिबद्ध पारद को संदशयंत्र से पकड़ कर डुबाते हैं इससे वह द्रुत धातु ( जिसमें पारद डुबाया जाता है ) सुवर्ण के समान रूप और गुणों को करने लायक हो जाती है इसी को कुन्तवेध कहते हैं॥ ९३॥

धूमवेधलक्षणम्—

**वह्नौ धूमायमानेऽन्तः प्रक्षिप्तरसधूमतः।**
**स्वर्णाद्यापादनं लोहे धूमवेधः स उच्यते॥ ९४॥**

धूप से युक्त वन्हि की भट्टी पर एक कड़ाही रख देनी चाहिए, फिर इसमें पारद डाल देना चाहिए। जब कड़ाही के अन्दर रखे हुए पारद में धूआं निकलने लगे तब उस में अन्य भट्टी पर गले हुए लोह को डाल देते हैं इससे उस धातु में स्वर्ण के गुण धर्म उत्पन्न हो जाते हैं इसको धूमवेध कहते हैं॥ ९४॥

शब्दवेधलक्षणम्—

**मुखस्थितरसेनाल्पलोहस्य धमनात्खलु ।**
**स्वर्णरूप्यत्वजननं शब्दवेधः स कीर्त्तितः ॥ ९५ ॥**

किसी लौह आदि धातु के कुछ भाग को अग्नि पर विद्रुत कर उसको मुख में रखे हुए पारद ( वेधसमर्थपारद गोली ) से एकनली के द्वारा फूंक के जोर से धमने से वह धातु स्वर्ण या रौप्य के रूप में परिवर्तित हो जाती है इसको शब्द-वेध कहते हैं ॥ ९५ ॥

उद्घाटनलक्षणम्—

**सिद्धद्रव्यस्य सूतेन कालुष्यादिनिवारणम् ।**
**प्रकाशनं च वर्णस्य तदुद्घाटनमीरितम् ॥ ९६ ॥**

मृत किये हुए ( भस्म किये हुए ) लोहादिक द्रव्यों की कलुषता (मालिन्य) विशेष रूप से सिद्ध पारद के द्वारा दूर की जाती है और उस मृत लोहादिक के रङ्ग को भी पारद उत्कृष्ट करता है इस को उद्घाटन कहते हैं ॥ ९६ ॥

स्वेदनलक्षणम्—

**क्षाराम्लैरौषधैः सार्द्धं भाण्डं रुद्ध्वाऽतियत्नतः ।**
**भूमौ निखन्यते यत्नात्स्वेदनं सम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ९७ ॥**

क्षार, अम्ल, ( काञ्जी ) तथा और भी अन्य औषधियों को भाण्ड में भरकर उसमें पारद या अन्य लोह इत्यादि धातु को रख करके भाण्ड का मुख सकोरे से ढक कर कपड़ मिट्टि करके बन्द करदेते हैं फिर उस भाण्ड को पृथ्वी में गाड़ देते हैं, इस को भी स्वेदन यन्त्र कहते हैं । क्योंकि भूमि की आन्तरिक उष्णता से स्वेदन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है ॥ ९७ ॥

संन्यासलक्षणम् ।

**रसस्यौषधयुक्तस्य भाण्डरुद्धस्य यत्नतः ।**
**मन्दाग्नियुतचुल्ल्यन्तः क्षेपः संन्यास उच्यते ॥ ९८ ॥**

किसी भाण्ड में क्षार तथा अम्ल भरकर उसमें पारद रख देते हैं । फिर उस भाण्ड के मुख को कपड़मिट्टी से बन्द कर के मन्द २ आंच वाले चूल्हे के उपर रख देते हैं उसको सन्यास कहते हैं ॥ ९८ ॥

रसस्वेदसंन्यासगुणाः ।

**द्वावेतौ स्वेदसंन्यासौ रसराजस्य निश्चितम् ।**
**गुणप्रभावजनकौ शीघ्रव्याप्तिकरौ तथा ॥ ९९ ॥**

स्वेद और सन्यास इन दोनों विधियों से पारद के अन्दर गुण और देह-सिद्धिजनक प्रभाव उत्पन्न होते हैं तथा ये दोनों संस्कार पारद को शरीर में शीघ्र ही व्याप्त होने योग्य बना देते हैं ॥ ९९ ॥

अथ परिभाषाऽऽवश्यकता—

**रसनिगममहाब्धेः सोमदेवः समन्तात्**
**स्फुटतरपरिभाषानामरत्नानि हृत्वा ।**
**व्यरचयदतियत्नात्तैरिमां कण्ठमालां**
**कलयतु भिषगग्र्यो मण्डनार्थं सभायाम् ॥ १०० ॥**

सोमदेव नामक रसशास्त्र के विशेषज्ञ ने रसशास्त्र रूपी समुद्र से प्रयत्न पूर्वक समग्ररूप से अत्यन्त स्पष्टार्थ बोधक परिभाषाओं की संज्ञा रूपी रत्नों को निकालकर उनकी कण्ठमाला ( अर्थात् कण्ठस्थ करने योग्य परिभाषा एं ) बनाई है । इस माला को रस शास्त्र के पण्डित सभा में स्वविषय का प्रतिपादन करने के लिये धारण करें ॥ १०० ॥

अध्यायपठनफलम्—

**भवेत्पठितवारोऽयमध्यायो रसवादिनाम् ।**
**रसकर्माणि कुर्वाणो न स मुह्यति कुत्रचित् ॥ १०१ ॥**

इति श्री वैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
रसपरिभाषाकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

रस शास्त्र के आचार्यों के मत से परिपूर्ण इस अध्याय का जो विद्वान् बारम्बार अभ्यास ( आवृति ) करेगा, वह रस कर्म को करता हुआ किसी विषय में व्यामोहित ( किंकर्तव्यमूढ) नहीं होगा । अर्थात् वह किसी प्रकार से रसप्रक्रिया में भ्रमित नहीं होता है ॥ १०१ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां
रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां रसपरिभाषा-
कथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

## नवमोऽध्यायः ।

अथ यन्त्राणि—

**अथ यन्त्राणि वक्ष्यन्ते रसतन्त्राण्यशेषतः ।**
**समालोच्य समासेन सोमदेवेन साम्प्रतम् ॥ १ ॥**

श्री सोमदेव ने सम्पूर्ण रसशास्त्र के भिन्न २ तन्त्रों का अवलोकन करके जो यन्त्र बनाने की विधि कही है, उस विधि से प्रयुक्त होने वाले यन्त्रों का इस स्थान पर संक्षेप से वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥

यन्त्रशब्दनिरुक्तिः—

**स्वेदादिकर्मनिर्मातुं वार्तिकेन्द्रैः प्रयत्नतः ।**
**यन्त्र्यते पारदो यस्मात्तस्माद्यन्त्रमिति स्मृतम् ॥ २ ॥**

पारद का स्वेदन, मूर्च्छन, मर्दन आदि अनेक संस्कार करने के लिये जिस उपाय से रस को नियन्त्रित किया जाता है उसको रसपरिभाषाकारक आचार्यों ने यन्त्र कहा है ॥ २ ॥

अथ दोलायन्त्रम्—

**द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरिताधोंदकस्य च ।**
**मुखस्योभयतो द्वारद्वयं कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ३ ॥**
**तयोस्तु निक्षिपेद्दण्डं तन्मध्ये रसपोटलीम् ।**
**बध्वा तु स्वेदयेदेतद्दोलायन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥**

काञ्जी, निम्बूस्वरस, क्षार, या जयन्ती आदि स्वेदन करने में उपयुक्त औषधियों के क्वाथ या स्वरस से एक मिट्टी की हण्डिका को आधी भर करके उस हण्डिका के किनारों पर एक दूसरे के सामने दो छिद्र युक्ति से बनाकर उन में एक लकड़ी लगा देना चाहिये फिर उस लकड़ी के बीच में पारद की पोटली या अन्य स्वेदनीय धातु उपधातु तथा रत्नों की पोटली बांध कर उस द्रव में लटका देते हैं, फिर अग्नि जलाकर चूल्हे पर हण्डिका को रखकर उस पोटली के अन्दर स्थित पदार्थ को स्वेदित करते हैं, इस को दोलायन्त्र कहते हैं। अर्थात् रसादिक की पोटली दोले ( झूले ) के समान दण्ड में बांधकर लटका दी जाती है, अतः दोलायन्त्र कहा गया है ॥ ३-४ ॥

स्वेदनीयन्त्रम्—

**साम्बुस्थालीमुखे बद्धवस्त्रे पाक्यं निवेशयेत् ।**
**पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयन्त्रमुच्यते ॥ ५ ॥**

जल अथवा अन्य औषधियों के स्वरस से हण्डिका को भरकर उसके मुख पर एक वस्त्र बांध देते हैं, फिर उस वस्त्र के अवकाशयुक्त भाग में किसी धातु रत्न या पारद को रखकर ऊपर से सकोरे द्वारा बन्द करके अग्नि द्वारा पाक किया जाता है उसको स्वेदनी यन्त्र कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ पातनायन्त्रम्—

**अष्टाङ्गुलपरीणाहमानाहेन दशाङ्गुलम् ।**
**चतुरङ्गुलकोत्सेधं तोयाधारं गलादधः ॥ ६ ॥**
**अधोभाण्डेमुखं तस्य भाण्डस्योपरि वर्त्तिनः ।**
**षोड़शाङ्गुलविस्तीर्णपृष्ठस्यास्ये प्रवेशयेत् ॥ ७ ॥**
**पार्श्वयोर्महिषीक्षीरचूर्णमण्डूरफाणितैः ।**
**लिप्त्वा विशोषयेत्सन्धिं जलधारे जलं क्षिपेत् ।**
**चुल्ल्यामारोपयेदेतत्पातनायन्त्रमुच्यते ॥ ८ ॥**

आठ अङ्गुल चौड़ा ( विस्तृत ), दस अङ्गुल ऊंचा ( लम्बाई में ) और चार अङ्गुल मोटा ( स्थूल ) एक मिट्टी का भाण्ड लेकर उसको जल से भर दें, फिर इस जल से भरे नीचे के भाण्ड के मुख को गर्दन ( किनारे ) तक एक दूसरे १६ अङ्गुल चौड़ी पीठ ( पृष्ठभाग ) वाले ( जिसके भीतर की तली में निम्बू के रस में घोटे हुए हिङ्गुल का लेप सन्धिबन्धन करने के पहिले किया जा चुका हो ) ऊपर के मिट्टी के भाण्ड के मुख में प्रविष्ट कर देना चाहिए । फिर ( उन दोनों भाण्डों के मुखों को परस्पर मिलादेने से डमरू के समान रचना हो जाती है ) उन दोनों की मुखसन्धि को अगल बगल चारों तरफ भैंस के दुग्ध में चूने की बुकनी, मण्डूर की बुकनी और फाणित ( गुड़ को विकृति राब ) को घोट कर उससे लेप कर के सुखा देवें । फिर इस को चूल्हे पर चढाकर अग्नि जला देनी चाहिए । ऊपर के भाण्ड की पीठपर एक जलाधार ( आलवाल ) या थाला ( उडदी के ओर से ) बनाकर ठण्डाजल भरना चाहिए । ५ मिनिट बाद प्रथम गर्म हुए जलको निकाल कर दूसरा ठण्डा जल भरना चाहिए । यदि आलवाल न बना सको तो एक बा-

ल्टी में जलभर कर कपड़े को चारवार मोड़ कर लत्ते बनाकर जल में भिंगो कर ऊपरी भाण्ड के पृष्ठ पर रखो कुछ देर बाद इनको बदलते रहना चाहिए। इसी को पातना यन्त्र कहते हैं ॥ ६-८ ॥

अथ अधःपातनयन्त्रम्—

**अथोर्ध्वभाजने लिप्तस्थापितस्य जले सुधीः ।**
**दीप्तैर्वनोत्पलैः कुर्यादधःपातं प्रयत्नतः ॥ ९ ॥**

उपर्युक्त विधि से बने हुए पातन यन्त्र के ऊपर वाले भाण्ड में सन्धि बन्धन करने के पहिले निम्बूरस में घोटे हुए हिङ्गुल का लेप कर सुखा लेना चाहिए फिर सन्धिबन्धन करके ऊपर के भाण्ड में एक थाला या पाली बनाकर जङ्गली उपलों को उस पाली में रखकर जला देने चाहिए। इस तरह अग्निके कारण पारद निकल कर नीचे के जल से भरे भाण्ड में गिर जाता है इसको अधः पातन यन्त्र कहते हैं॥९॥

अथ कच्छपयन्त्रम्—

**जलपूर्णपात्रमध्ये दत्त्वा घटखर्परं सुविस्तीर्णम् ।**
**तदुपरि बिडमध्यगतःस्थाप्यः सूतःकृतः कोष्ठ्याम् ॥ १० ॥**
**लघुलोहकटोरिकया कृतषण्मृत्सन्धिलेपयाऽऽच्छाद्य ।**
**पूर्वोक्तघटखर्परमध्येऽङ्गारैःखदिरकोलभवैः ॥ ११ ॥**
**स्वेदनतो मर्दनतः कच्छपयन्त्रस्थितो रसो जरति ।**
**अग्निबलेनैव ततो गर्भे द्रवन्ति सर्वसत्त्वानि ॥ १२ ॥**

एक जल से भरे हुए पात्र ( नाद ) के मध्य भाग में बड़ा कूंडा या घट का गहरा कपाल रख कर उसमें मूषायंत्र को पारे से भर कर रख देना चाहिए। फिर मूषा के ऊपर एक छोटी लोहे की कटोरी ढक कर उसके चारों ओर ६ वार कपड़मिट्टी कर देनी चाहिये। फिर उस घटखर्पर ( कूण्ड या कपाल के खाली भाग में ) में खदिर या बैर ( बदरी काष्ठ ) की लकड़ी के कोयले भर कर अग्नि जला दें, इस तरह स्वेदन और मर्दन दोनों संस्कार होकर इस यन्त्र में रखे हुए पारद का जारण हो जाता है, इसी यन्त्र से अन्य धातुओं का सत्त्वपातन भी करते हैं। इसको कच्छपयन्त्र कहते हैं ॥ १०-१२ ॥

अथ दीपिकायन्त्रम्—

**कच्छपयन्त्रान्तर्गतमृण्मयपीठस्थदीपिकासंस्थः ।**

**यस्मिन्निपतति सूतः प्रोक्तं तद्दीपिकायन्त्रम् ॥ १३ ॥**

उपर्युक्त विधि से कच्छप यंत्र बनाकर उसमें एक मिट्टि का खर्पर रख कर उसमें एक दीपिका या मूषा अथवा सकोरा रख देना चाहिए, इस सकोरे में पारद भर दें, फिर अग्नि के प्रभाव से पारद उस दीपिका से कच्छप यंत्र में उड़ कर गिर जाता है, इसको दीपिकायंत्र कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ डेकीयन्त्रम्—

**भाण्डकण्ठादधश्छिद्रे वेणुनालं विनिक्षिपेत्।**
**कांस्यपात्रद्वयं कृत्वा सम्पुटं जलगर्भितम् ॥ १४ ॥**
**नलिकास्यं तत्र योग्यं दृढं तच्चापि कारयेत्।**
**युक्तद्रव्यैर्विनिक्षिप्तः पूर्वं तत्र घटे रसः ॥ १५ ॥**
**अग्निना तापितो नालात्तोये तस्मिन् पतत्यधः।**
**यावदुष्णं भवेत्सर्वं भाजनं तावदेव हि।**
**जायते रससन्धानं डेकीयन्त्रमितीरितम् ॥ १६ ॥**

एक मिट्टी के बड़े भाण्ड में या घड़े में कुछ ( स्वेदनोपयोगी ) औषधियों ( क्षार, अम्ल इत्यादि ) के साथ घोटे हुए पारद का लेप करके उस भाण्ड को सुखा लेना चाहिए। पश्चात् उस भाण्ड की ग्रीवा से कुछ नीचे ( पास ही ) एक छिद्र बनाकर उसमें बांस की नली का एक भाग प्रविष्ट कर भाण्ड का मुख तथा छिद्र के आस पास कपड़मिट्टी कर देना चाहिए। फिर दो कांस्य के पात्रों (कटोरों) का परस्पर सन्धिबन्धन करके ऊपर के पात्र में एक छिद्र बनाकर इसमें उस बांस की नली का दूसरा भाग प्रविष्ट करके मज़बूती से सन्धिबन्धन कर देना चाहिए, फिर इस भाण्ड को आसानी से चूल्हे पर चढाकर नीचे आग जलादे, अग्नि के ताप से भाण्ड के अन्दर औषधियों के साथ घोटकर लिप्त किया हुआ पारद उड़कर उस बांस की नलिका में होता हुआ कांसे के पात्र के जल में गिर जायगा। सम्पूर्ण भाण्ड के प्रतप्त हो जाने पर प्रायः सब पारा उड़ जाता है, इसको डेकी यन्त्र कहते हैं ॥ १४–१६ ॥

अथ जारणायन्त्रम्—

**लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।**
**ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गन्धकसंयुताम् ॥ १७ ॥**

मूषायां रसयुक्तायामन्यस्यां तां प्रवेशयेत् ।
तोयं स्यात्सूतकस्याध ऊर्ध्वाधो वह्निदीपनम् ॥ १८ ॥

१२ अङ्गुल लम्बी दो लोहे की मूषा बना कर एक मूषा में कुछ छिद्र बनवा कर उस में गन्धक भर दें, फिर इस गन्धक युक्त मूषा को पारद से भरी हुई द्वितीय मूषा के अन्दर रख देवें ( पारद जिसमें भरना हो उसको कुछ बड़ी बनवाना चाहिए ) पश्चात् इन दोनों मूषा को एक जल से भरे हुए भाण्ड में रख कर उस भाण्ड को चूल्हे पर चढाकर अग्नि जला देनी चाहिए। इसको जारण यंत्र कहते हैं ॥ १७–१८ ॥

अथ जारणायन्त्रस्य प्रकारान्तरम्—

रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालितम् ।
दापयेत्प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगन्धकौ ॥ १९ ॥
स्थालीकायां पिधायोर्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु ।
सन्धिं विलेपयेद्यत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि ॥ २० ॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा ।
यन्त्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात्तीव्राग्निमेव वा ॥ २१ ॥
एवं तु त्रिदिनं कुर्यात्ततो यन्त्रं विमोचयेत् ।
तप्तोदके तप्तचुल्ल्यां न कुर्याच्छीतलां क्रियाम् ॥ २२ ॥
न तत्र क्षीयते सूतो न च गच्छति कुत्रचित् ।
अनेन च क्रमेणैव कुर्याद्गन्धकजारणम् ॥ २३ ॥

हे पार्वति ? एक स्थाली के अन्दर पारद और गन्धक दोनों भर कर वस्त्र से छाने हुए लहसुन के पानी (स्वरस) से उन दोनों को खूब भिंगोना ( आप्लावित करना) चाहिए। फिर एक शराव से रस तथा गन्धक को बन्द करके ऊपर एक ओर स्थाली ढककर दोनों स्थालियों की वस्त्र तथा कपड़मिट्टि से सन्धि अच्छी तरह बन्दकर के यंत्र के नीचे तेज आंच दें तथा यंत्र के ऊपर की स्थाली के ऊपर भी उपलों को आंच से कपोत (१)पुट देना चाहिए, इस तरह तीन दिन

---

( १ ) कपोतपुटलक्षणम्—

यत्पुटं दीयते खाते अष्टसङ्ख्यैर्वनोपलैः ।
कपोतपुटमेतत्तु कथितं पुटपण्डितैः ॥ १ ॥

तक अग्नि देना चाहिए । तीसरे दिन के पश्चात् उष्ण चूल्हे पर गरम जल में यंत्र को रख कर खोलना चाहिए । यंत्र को शीतल करके नहीं खोलें । इसी क्रम से पारद के साथ गन्धक का जारण करना चाहिए । यह जारणायंत्र का दूसरा स्वरूप है ॥ १९–२३ ॥

अथ विद्याधरयन्त्रम्—

**यन्त्रं विद्याधरं ज्ञेयं स्थालीद्वितयसम्पुटात् ।**
**चुल्लीं चतुर्मुखीं कृत्वा यन्त्रभाण्डं निवेशयेत् ॥ २४ ॥**
**तत्रौषधं विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्भाण्डकाननम् ।**
**यन्त्रं विद्याधरं नाम तन्त्रज्ञैः परिकीर्त्तितम् ॥ २५ ॥**

दो मिट्टि की स्थालियों को परस्पर कपड़मिट्टि द्वारा बन्द करने की क्रिया को विद्याधर यंत्र कहते हैं । विधि–एक चार मुख वाला चूल्हा बना कर उस पर औषधादिक से भरा हुआ एक मिट्टि का भाण्ड रखना चाहिए, फिर इस भाण्ड पर एक दूसरा भाण्ड रखकर नीचे के भाण्ड के मुख को ऊपर रखे हुए भाण्ड के तल के साथ कपड़मिट्टी द्वारा बन्दकर देते हैं, फिर अग्नि जलाते हैं । इसको रसशास्त्र के पण्डितों ने विद्याधरयंत्र कहा है ॥ २४–२५ ॥

अथ सोमानलयन्त्रम्—

**ऊर्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रससङ्ग्रहः ।**
**सोमानलमिदं प्रोक्तं जारयेद्गगनादिकम् ॥ २६ ॥**

एक स्थाली के अन्दर जल भर कर उसमें पारद से युक्त मूषा रखकर उस स्थाली के मुख को शराव से बन्द करके कपड़मिट्टी कर देते हैं । पश्चात् उस शराव पर उपलों की आँच देते हैं, इस यंत्र का सोमानल यंत्र कहते हैं । क्यों के नीचे सोम (जल) भरा रहता है, बीच में मूषा के अन्दर रस का संग्रह रहता है, ऊपर अग्नि जलाते हैं अतः इसका नाम सोमानल यंत्र है । पारद के साथ मूषा में अभ्रक आदि रखकर इससे जारण करते हैं ॥ २६ ॥

अथ गर्भयन्त्रम्—

**गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिकाभस्मकारकम् ।**
**चतुरङ्गुलदीर्घाञ्च त्र्यङ्गुलोन्मितविस्ताराम् ॥ २७ ॥**
**मृण्मयीं सुदृढां मूषां वर्तुलं कारयेन्मुखम् ।**

**लोणस्य विंशतिर्भागा भाग एकस्तु गुग्गुलाः ॥ २८ ॥**
**सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु वारं वारं पुनः पुनः ।**
**मूषालेपं दृढं कृत्वा लवणार्द्धमृदम्बुभिः ॥ २९ ॥**
**कर्षेत्तुषाग्निना भूमौ स्वेदयेन्मृदु मानवित् ।**
**अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत् ॥ ३० ॥**

नष्टपिष्ट किये हुए पारद को भस्म बनाने के लिये गर्भ यंत्र का वर्णन करते हैं । चार अङ्गुल लम्बी और तीन अङ्गुल चौड़ी मिट्टी की गोल मुखकी दृढ मूषा बनवानी चाहिए, फिर बीस भाग नीमक और एक भाग गुग्गुल, दोनों को नीमक से आधे भाग मिट्टी तथा जल के साथ घोटकर उस मूषा में लेप करना चाहिए, फिर उस मूषा के अन्दर पारद डालकर उसका मुख बन्दकर देवें। सूखनेके बाद मूषा को पृथ्वी में गाड़कर उसके ऊपर जंगली उपलों की अग्नि देकर एक दिन तक अथवा तीन दिन तक स्वेदन करना चाहिए । प्रायः अग्नि यदि तीन दिन तक देना हो तो मृदु अग्नि जलावें । और यदि एक दिन रात में पाक करना हो तो तीव्र आंच देवें, इस को गर्भयंत्र कहते हैं ॥ २७–३० ॥

अथ हंसपाकयन्त्रम्—

**खर्परं सिकतापूर्णं कृत्वा तस्योपरिन्यसेत् ।**
**अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३१ ॥**
**पञ्चक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणं च विडं ततः ।**
**हंसपाकं समाख्यातं यन्त्रं तद्वार्त्तिकोत्तमैः ॥ ३२ ॥**

एक मिट्टीके खर्पर (कूण्डा) को वालुका (रेते) से भरकर ऊपरसे दूसरा खर्पर रख कर ढक देते हैं, और इस में पारद को (१)पांचोक्षार, आठों (२)प्रकार के मूत्र तथा लवण विशेष कर बिड़लवण इत्यादि पदार्थों के साथ पाक करते हैं । इस यंत्र को रसपरिभाषाकार पण्डितों ने हंसपाक यन्त्र कहा है ॥ ३१–३२ ॥

---

(१) यवमुष्ककसर्ज्जानां पलाशतिलयोस्तथा ।
क्षारैस्तु पञ्चभिः प्रोक्तः पञ्चक्षाराभिधोगणः ॥

(२) सैरिभाजाविकरभगोखरद्विपवाजिनाम् ।
मूत्राणीति भिषग्वर्यैर्मूत्राष्टकमुदाहृतम् ॥

अथ बालुकायन्त्रम्—

**सरसां गूढवक्त्रां मृद्वस्त्राङ्गुलघनावृताम् ।**
**शोषितां काचकलशीं त्रिषु भागेषु पूरयेत् ॥ ३३ ॥**
**भाण्डे वितस्तिगम्भीरे वालुकासुप्रतिष्ठिता ।**
**तद्भाण्डं पूरयेत्त्रिभिरन्याभिरवगुण्ठयेत् ॥ ३४ ॥**
**भाण्डवक्त्रं मणिकया सन्धिं लिम्पेन्मृदा पचेत् ।**
**चुल्ल्यां तृणस्य चादाहान्मणिकापृष्ठवर्त्तिनः ॥**
**एतद्धि बालुकायन्त्रं तद्यन्त्रं लवणाश्रयम् ॥ ३५ ॥**

प्रथम एक आतसी शीशी को मल्तानीमिट्टी के अन्दर लिप्त किये हुये वस्त्रोंकी एक तह (आवरण) चढाकर सुखा लेवें, इस तरह शीशी को सुखा कर सात वार कपड़ मिट्टी लगाकर उसे एक अङ्गुल मोटी बना लेवें इस आतसी शीशी का मुख पतला होना चाहिए, फिर इसके तीन भाग को रस ( पारदकज्जली ) से भर कर तीन भाग में बालुका से भरी हुई एक नांदमें (लोहे की या मिट्टी की हो) आतसी शीशी को रख कर उस नांद को शराव अथवा अन्य बड़े कुण्डे से ढक कर सन्धि को कपड़मिट्टी द्वारा बन्दकर देना चाहिए, पश्चात् इस यंत्र को चूल्हे पर चढा कर पाक करें । जब उस शराव पर तृणों को रखने से वे जलनें लगें तब पाक हुआ समझना चाहिए । इसको बालुकायंत्र कहते हैं । यदि रेत के स्थान में लवण भर दिया जाय तो उसे लवण यंत्र कहते हैं ॥ ३३-३५ ॥

अथ बालुकायन्त्रस्य प्रकारान्तरम्—

**पञ्चाढवालुकापूर्णभाण्डे निक्षिप्य यत्नतः ।**
**पच्यते रसगोलाद्यं वालुकायन्त्रमीरितम् ॥ ३६ ॥**

किसी एक भाण्ड में ५ आढक रेती भर कर उसके अन्दर ही शराव में सम्पुटित हुए पारद को रखकर पकाते हैं, इसको भी बालुका यंत्र कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथ लवणयन्त्रम्—

**एवं लवणनिक्षेपात्प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ॥ ३७ ॥**

इसी तरह यदि बालू के स्थान में लवण भर दिया जाय तो वह लवण यंत्र कहलाता है ॥ ३७ ॥

अथ प्रकारान्तरम्—

**अन्तः कृतरसालेपताम्रपात्रमुखस्य च ।**
**लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ॥ ३८ ॥**
**तद्भाण्डं पटुनाऽऽपूर्य क्षारैर्वा पूर्ववत्पचेत् ।**
**एवं लवणयन्त्रं स्याद्रसकर्मणि शस्यते ॥ ३९ ॥**

किसी एक ताम्र के पात्र के अन्दर औषधों के साथ पारद को घोट कर लेप करके उस पात्र को सुखाकर एक मिट्टी के अन्दर ओंधा करके रख दें । फिर उस ताम्रपात्र के मुख को उस भाण्ड या कूण्डे की तली के साथ मिट्टी तथा लवण की पिष्टी बनाकर उससे उन दोनों का सन्धिबन्धन करना चाहिए । फिर उस भाण्ड तथा ताम्र पात्र को बालुका अथवा क्षार या लवण से भर कर पकाना चाहिए । इसको भी लवणयंत्र कहते हैं । इस तरह का लवणयंत्र रसकर्म में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥३८-३९॥

अथ नालिकायन्त्रम्—

**लोहनालगतं सूतं भाण्डे लवणपूरिते ।**
**निरुद्धं विपचेत्प्राग्वन्नालिकायन्त्रमीरितम् ॥ ४० ॥**

एक लोह की नली बनवाकर उसमें उपयुक्त औषधों के साथ पारद को भर कर उसका मुख बन्द कर के लवण यंत्र के मध्य में गाड़ दें । फिर लवण यंत्र के मुख को सकोरे द्वारा कपड़मिट्टी से बन्द करके पकाना चाहिए । इसको नालिकायंत्र कहते हैं ॥ ४० ॥

अथ भूधरयन्त्रम्—

**बालुकागूढसर्वाङ्गं गर्तं मूषां रसान्विताम् ।**
**दीप्तोत्पलैः संवृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम् ॥ ४१ ॥**

पृथ्वी में एक हाथ गहरा गड्ढा खोद कर उसको बालुका से आधा भर दें, फिर उस बालुका पर औषध युक्त पारद से भरी हुई मूषा रख दें । मूषाका मुख बन्द कर के ऊपर से उस मूषा को रेत से ढक कर उस पर जंगली उपलों के जला देना चाहिए, इसको भूधर यंत्र कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पुटयन्त्रम्—

**शरावसम्पुटान्तस्थं करीषेष्वग्निमानवित् ।**
**पचेच्चुल्ल्यां द्वियामं वा रसं तत्पुटयन्त्रकम् ॥ ४२ ॥**

एक सकोरे के अन्दर औषधमिश्रित पारद भर कर उस सकोरे को दूसरे सकोरे के साथ सम्पुट करके कपड़मिट्टी कर सुखा लेवें, फिर उस सम्पुट को उपलों की आँच अथवा चूल्हे पर रखकर यथाप्रमाण के अनुकूल समय तक या दो प्रहर तक पकाना चाहिए। इसको पुटयंत्र कहते हैं ॥ ४२ ॥

अथ कोष्ठीयन्त्रम्—

**षोडशाङ्गुलविस्तीर्णं हस्तमात्रायतं समम्।**
**धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठीयन्त्रमिति स्मृतम् ॥ ४३ ॥**

सोलह अङ्गुल चौड़ी और एक हाथ भर लम्बी तथा समान आकार की एक मूषा बनवाना चाहिए। इसको कोष्ठीयंत्र कहते हैं। यह यंत्र धातु तथा रत्न इत्यादि के सत्त्वों को निकालने के लिये उत्तम होता है ॥ ४३ ॥

अथ वलभीयन्त्रम्—

**यत्र लोहमये पात्रे पार्श्वयोर्वलयद्वयम्।**
**तादृक् स्वल्पतरं पात्रं वलयप्रोतकोष्ठकम् ॥ ४४ ॥**
**पूर्वपात्रोपरि न्यस्य स्वल्पपात्रे परिक्षिपेत्।**
**रसं सम्मूर्च्छितं स्थूलपात्रमापूर्य काञ्जिकैः ॥ ४५ ॥**
**द्वियामं स्वेदयेदेवं रसोत्थापनहेतवे।**
**एतत्स्याद्वलभीयन्त्रं रसे षाड्गुण्यकारकम् ॥**
**सूक्ष्मकान्तमये पात्रे रसः स्याद्गुणवत्तरः ॥ ४६ ॥**

एक बड़े आकार का कान्तलौह का पात्र ( राउण्ड टब ) बनवा कर उसके भीतर की ओर किनारों से कुछ नीचे दोनों पार्श्वों में दो कड़े लगवा देना चाहिये। फिर एक दूसरा छोटा पात्र (राउण्ड टब) बनवा कर उसके बाह्य भाग के बीच में दोनों ओर दो कड़े लगवा देना चाहिए, इस छोटे पात्र को बड़े पात्र के अन्दर रख कर दोनों के कड़ों को परस्पर जञ्जीर से बांध दें। बड़े पात्र में काञ्जी और छोटे पात्र में सम्मूर्छित पारद डाल कर ऊपर से ढक देना चाहिये। फिर इस यंत्र को चूल्हे पर चढ़ा कर दो प्रहर तक स्वेदन करते हैं इस तरह के स्वेदन से संमूर्छित पारद फिर अपने रूप को प्राप्त हो जाता है। यह वलभीयंत्र कहा जाता हैं। इससे स्वेदित पारदके अन्दर ६ प्रकारके विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मृति, तत्परता, क्रिया आदि गुण उत्पन्न होते हैं। साधारण लौहे की अपेक्षा सूक्ष्म कान्तलौह

के बने हुए पात्रमें रसका स्वेदन करने से वह अधिक गुणों वाला हो जाता है॥४४-४६॥

अथ तिर्यक्पातनयन्त्रम्—

**क्षिपेद्रसं घटे दीर्घनताधोनालसंयुते ।**
**तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु ॥ ४७ ॥**
**तत्र रुध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरथ ।**
**अधस्ताद्रसकुम्भस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम् ॥ ४८ ॥**
**इतरस्मिन्घटे तोयं प्रक्षिपेत्स्वादु शीतलम् ।**
**तिर्यक्पातनमेतद्धि वार्तिकैरभिधीयते ॥ ४९ ॥**

एक मिट्टी के घड़े में रस रखकर उसकी ग्रीवा के कुछ नीचे के भाग में एक छिद्र बना कर उस छिद्र में एक लम्बी तथा टेढी नली लगा देनी चाहिए । फिर उस नली के दूसरे भाग को एक दूसरे घड़े के मध्यभाग में छिद्र बनाकर उसमें प्रविष्ट कर देवें । फिर दोनों घड़ों के मुख तथा नालीप्रवेशजन्य छिद्रों को कपड़ मिट्टी द्वारा बन्द कर देना चाहिए । पश्चात् जिस घड़े में पारद रखा हो उसके नीचे अग्नि जला देवें और दूसरे पात्र के ऊपर शीतल जल डालते रहना चाहिए अथवा इस घड़े में मुखबन्धन के पूर्व ही थोड़ा सा शीतल जल भर देना चाहिए । इस तरह अग्नि के ताप से पूर्व घट से पारद उड़ कर तिर्यक् नली के द्वारा वह दूसरे घट के अन्दर पानी में गिर जाता है । वार्तिककारों ने इस यन्त्र को तिर्यक्पातन यंत्र कहा है ॥ ४७-४९ ॥

अथ पालिकायन्त्रम्—

**चषकं वर्तुलं लौहं विनताग्रोर्ध्वदण्डकम् ।**
**एतद्धि पालिकायन्त्रं बलिजारणहेतवे ॥ ५० ॥**

लोहे का एक गोल चषक ( प्याला ) बनाकर उसके किनारे के पास ही अग्र-भाग में झुका हुआ और ऊपर की ओर उठा हुआ एक दण्ड लगवा देना चाहिए। इसको पालिकायंत्र कहते हैं । यह यंत्र गन्धक के जारण करने में उपयोगी होता है ॥५०॥

अथ घटयन्त्रम्—

**चतुष्प्रस्थजलाधारश्चतुरङ्गुलिकाऽऽननः ।**
**घटयन्त्रमिदं प्रोक्तं तदाप्यायनकं स्मृतम् ॥ ५१ ॥**

एक ऐसा घट लेना चाहिए जिसमें चार प्रस्थ ( ६४ पल ) पानी का समा-

वेश हो सके तथा चार अङ्गुल चौड़ा जिसका मुख हो, इस प्रकार के घट को घट-यन्त्र कहते हैं तथा इसका दूसरा नाम आप्यायनक भी है। इस यंत्र के द्वारा रसादिक का तर्पण (प्लावन) करते हैं ॥ ५१ ॥

अथ इष्टिकायन्त्रम्—

**विधाय वर्तुलं गर्तं मल्लमत्र निधाय च ।**
**विनिधायेष्टकां तत्र मध्यगर्तवतीं शुभाम् ॥ ५२ ॥**
**गर्तस्य परितः कुर्यात्पालिकामङ्गुलोच्छ्रयाम् ।**
**गर्ते सूतं विनिक्षिप्य गर्तास्ये वसनं क्षिपेत् ॥ ५३ ॥**
**निक्षिपेद्गन्धकं तत्र मल्लेनाऽऽस्यं निरुद्ध्य च ।**
**मल्लपालिकयोर्मध्ये मृदा सम्यङ् निरुध्य च ॥ ५४ ॥**
**वनोत्पलैः पुटं देयं कपोताख्यं न चाधिकम् ।**
**इष्टिकायन्त्रमेतत्स्याद्गन्धकं तेन जारयेत् ॥ ५५ ॥**

पृथ्वी में एक गोलाकार गड्ढा खोदकर उसमें लोहे का अथवा मिट्टी का १ मजबूत सकोरा रख देवें। फिर उस सकोरे पर बीच में छिद्र की हुई एक इष्टिका (ईंट) रखकर उस इष्टिका के छिद्र के चारों ओर एक अङ्गुल ऊंचाई वाली पाली (थाला या आलवाल) बना करके उस ईंट के छिद्र में पारद डालकर छिद्र के मुख पर एक वस्त्र बांध देना चाहिए। उस वस्त्र पर गन्धक बिछा कर एक दूसरे सकोरे से उसका मुख बन्दकर देना चाहिए। ईंट के छिद्र के चारों ओर बनाई हुई पालिका तथा उस पर ढके हुए मल्ल (कटोरी या सकोरा) इन दोनों के बीच के अवकाश को ठीक तरह से कपड़मिट्टी द्वारा बन्दकर जंगली उपलों की आंच से कपोत पुट देना चाहिए, ज्यादा आंच नहीं देना चाहिए। इसको इष्टिकायंत्र कहते हैं। इससे पारद इत्यादि धातुओं के साथ गन्धक का जारण करते हैं ॥५२–५५॥

अथ हिङ्गुलाकृष्टिविद्याधरयन्त्रम्—

**स्थालिकोपरि विन्यस्य स्थालीं सम्यङ् निरुध्य च ।**
**ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वह्निं प्रज्वालयेदधः ॥**
**एतद्विद्याधरं यन्त्रं हिङ्गुलाकृष्टिहेतवे ॥ ५६ ॥**

एक हण्डिका (जो कि भीतर से चौड़ी हो और जिसके भीतरी भाग में निम्बू के रस में घोटे हुए हिङ्गुल का लेप किया हुआ होना चाहिए) के ऊपर दूसरी

हण्डिका रख कर नीचे की हण्डिका के मुख को ऊपर रखी हुई हण्डिका के पृष्ठ भाग के साथ अच्छी तरह कपड़मिट्टी से बन्द कर के फिर ऊपर की हण्डिका में जल भर देते हैं और चूल्हे पर चढाकर नीचे की हण्डिका को आंच पहूंचाते हैं। इसको विद्याधरयंत्र कहते हैं। इस यंत्र का उपयोग हिंगुल से पारद को निकालने के लिये करते हैं ॥ ५६ ॥

अथ डमरुयन्त्रम्—

**यन्त्रस्थाल्युपरि स्थालीं न्युब्जां दत्त्वा निरुन्धयेत् ।**
**यन्त्रं डमरुकाख्यं तद्रसभस्मकृते हितम् ॥ ५७ ॥**

एक मिट्टी की हण्डिका लेकर इसके मुख को दूसरी हण्डिका के मुख के साथ सन्धिबन्धन कर देते हैं। इस यंत्र की आकृति डमरू के समान हो जाती है इस लिये इसको डमरूयंत्र कहते हैं। यह डमरूयंत्र पारद की भस्म करने के लिये उपयोगी होता है ॥ ५७ ॥

अथ नाभियन्त्रम्—

**मल्लमध्ये चरेद्गर्तं तत्र सूतं सगन्धकम् ।**
**गर्तस्य परितः कुड्यं प्रकुर्यादङ्गुलोच्छ्रितम् ॥ ५८ ॥**
**ततश्चाऽऽच्छादयेत्सम्यग्गोस्तनाकारमूषया ।**
**सम्यक् तोयमृदा रुद्ध्वा सम्यगत्राच्यमानया ॥ ५९ ॥**

एक सकोरे के भीतर गड्ढा बना कर उसमें गन्धक और पारद भर देवें। फिर उस गड्ढे के चारों ओर एक अङ्गुल ऊंची पाली ( अलवाल या मेड़ के समान ) बना कर उस पाली को गाय के स्तन की आकृति वाली मूषा से ( ओंधाकर ) ढक करके अच्छी प्रकार बनाई हुई तोयमृत्तिका से अच्छी तरह पाली तथा मूषा की सन्धि या अवकाश को बन्दकर देना चाहिए इसी को नाभि-यन्त्र कहते हैं ॥ ५८–५९ ॥

तत्र तोयमृल्लक्षणम्—

**लेहवत्कृतबव्वूलक्काथेन परिमर्दितम् ।**
**जीर्णकिट्टरजः सूक्ष्मं गुडचूर्णसमन्वितम् ।**
**इयं हि जलमृत्प्रोक्ता दुर्भेद्या सलिलैः खलु ॥ ६० ॥**

पुराणे लोहकिट्ट के चूर्ण ( मण्डूर चूर्ण ) को चूना और गुड़ के साथ मिला-

कर इन तीनों को बब्बूल के क्वाथ से खूब घोटकर लेह के समान बना लेते हैं। इसको जलमृत्तिका कहते हैं। इस मृत्तिका से सन्धिबन्धन करने से जलादिक से यह सन्धि की मिट्टी नहीं छूट सकती है ॥ ६० ॥

तत्र वह्निमृत्स्ना—

**खटिकापटुकिट्टैश्च महिषीदुग्धमर्दितैः।**
**वह्निमृत्स्ना भवेद्घोरवह्नितापसहा खलु ॥ ६१ ॥**
**एतया मृत्स्नया रुद्धो न गन्तुं क्षमते रसः।**
**विदग्धवनिताप्रौढप्रेम्णा रुद्धः पुमानिव ॥ ६२ ॥**

खड़िया, निमक और मण्डूर के चूर्ण को भैंस के दुग्ध से अच्छी प्रकार घोटकर वन्हिमृत्स्ना बनाई जाती है, यह वन्हिमृत्तिका अत्यन्त तेज अग्नि के ताप को सहन कर सकती है। इस मृत्तिका से कपरौटी करके रोका हुआ पारद अत्यन्त तेज आंच लगने पर भी हावभाव कटाक्षादि करने में चतुर नायिका के प्रगाढ़ प्रेम से रुके हुए पुरुष की तरह कहीं उड़कर नहीं जा सकता है ॥ ६१-६२ ॥

शेषनाभियन्त्रवर्णनम्—

**नन्दी नागार्जुनश्चैव ब्रह्मज्योतिर्मुनीश्वरः।**
**वेत्ति श्रीसोमदेवश्च नापरः पृथिवीतले ॥ ६३ ॥**
**ततो जलं विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेदधः।**
**नाभियन्त्रमिदं प्रोक्तं नन्दिना सर्ववेदिना ॥**
**अनेन जीर्यते सूतो निर्धूमः शुद्धगन्धकः ॥ ६४ ॥**

इस यंत्र की विधि को नन्दी, नागार्जुन, ब्रह्मज्योति, मुनीश्वर और सोमदेव ये ही पांचों रस-शास्त्र के आचार्य जानते हैं। इसको इस पृथ्वी में दूसरा कोई नहीं जानता है। फिर इस प्रकार उस यन्त्र को चूल्हे पर चढा कर के आलवाल तथा मूषा के चारों तरफ़ के बचे हुए सकोरे के अवकाश में जलभर के नीचे आग जला देनी चाहिए। सर्व प्रकार की रस की क्रियाओं के ज्ञाता नन्दी ने इसको नाभियंत्र कहा है। इस यंत्र के द्वारा शुद्धगन्धक के साथ पारद का निर्धूम जारण हो जाता है ॥ ६३-६४ ॥

अथ प्रस्तयन्त्रम्—

**मूषां मूषोदराविष्टामाद्यन्तःसमवर्तुलाम्।**

विपिटां च तले प्रोक्तं अस्तयन्त्रं मनीषिभिः ॥
सूतेन्द्ररन्धनार्थं हि रसविद्भिरुदीरितम् ॥ ६५ ॥

प्रारम्भ से अन्त तक एक समान लम्बी, चौड़ी और गोल तथा तल भाग में कुछ चिपटी हो ऐसी एक मूषा बनवा कर उसमें पारद इत्यादि को भर कर ऐसी ही एक दूसरी मूषा के साथ सन्धिबन्धन कर देना चाहिए। इसको रसशास्त्र के पण्डित अस्तयंत्र कहते हैं। इस यंत्र से पारद का पाक या भस्म करते हैं ॥ ६५ ॥

अथ स्थालीयन्त्रम्—

स्थाल्यां ताम्रादि निक्षिप्य मल्लेनाऽऽस्यं निरुद्धय च ।
पच्यते स्थालिकाधस्तात्स्थालीयन्त्रमिदं स्मृतम् ॥ ६६ ॥

एक मिट्टी की हण्डिका में ताम्र अथवा अन्य धातु भरकर ( अम्लरस या क्वाथ के साथ ) सकोरे से हण्डिका का मुख कपड़मिट्टी से अच्छी तरह बन्दकर के हण्डिका के नीचे अग्नि जलाते हैं। इसको स्थालीयन्त्र कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथ धूपयन्त्रम्—

विधायाष्टाङ्गुलं पात्रं लौहमष्टाङ्गुलोच्छ्रयम् ।
कण्ठाधो द्यङ्गुले देशे गलाधारे हि तत्र च ॥ ६७ ॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिक्षिपेत् ।
तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ ६८ ॥
पत्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ ६९ ॥
मृदा विलिप्य सन्धिञ्च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृत्स्नानि हतान्युक्तविधानतः ॥ ७० ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवन्ति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जलया वा मृताहिना ॥ ७१ ॥
धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवङ्गेन धूपयेत् ॥ ७२ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयन्त्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रवसाधने ॥ ७३ ॥

आठ अङ्गुल चौड़ा और आठ ही अङ्गुल ऊंचा एक लोह का पात्र बनवा कर

उसके कण्ठ के नीचे दो अङ्गुल चौड़े स्थान में एक आधार बनवा कर उस में पतली और तिरच्छी लोहे की शलाकाओं को टेढ़ी रख देनी चाहिए। फिर उन शलाकाओं के ऊपर छोटे २ कण्टक वेध्य सोने के पत्र रखकर प्रथम पत्रों के नीचे गन्धक हरताल आदि की कज्जली लौहपात्र में डालकर उसपात्र को एक दूसरे नीचे मुखवाले पात्र से ढककर कपड़मिट्टी ( या जलमृत्तिका ) से सन्धिबन्धन करके चूल्हे पर चढा कर नीचे आग जलाना चाहिए। इस तरह पात्र में रखी हुई कज्जली के धूम से सोने के पत्र काले पड़ जाते हैं तथा मृत भी हो जाते हैं। इस तरह से मृत सुवर्णपत्रों को पारद तुरन्त ही भक्षण कर जाता है और वे भक्षण किये हुए पत्र पारद में शीघ्र ही द्रुत हो जाते है। गन्धक, हरताल, मनःशिला, इनकी कज्जली से अथवा मृतनाग से स्वर्णपत्रों को प्रथम धूपित करना चाहिए। चांदी के पत्रों को धूपित करने के लिये उन पत्रों को मृतवङ्ग से धूपित करना चाहिए। अन्य यथायोग्य उपरसों से भी तारपत्रों को धूपित करते हैं। ( जिस वस्तु से पत्रों को धूपित करना हो उस वस्तु की कज्जली बनाकर पत्रों के नीचे लोह पात्र में रख देनी चाहिए ) इसको धूपयन्त्र कहते हैं। इस यंत्र को जारण करने योग्य द्रव्यों कि सिद्धि करने के लिये प्रयुक्त करते है ॥ ६७–७३ ॥

अथ कन्दुकयन्त्रम्—

**स्थूलस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वासो बध्वा मुखे दृढम्।**
**तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रपिधाय च ॥ ७४ ॥**
**अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत्कन्दुकाभिधम्। ।**
**स्वेदनीयन्त्रमित्यन्ये प्राहुश्चेदं मनीषिणः ॥ ७५ ॥**

एक बड़े मिट्टी के भाण्ड में जल अथवा किसी औषधि का स्वरस अथवा क्वाथ भर कर उस का मुख एक मज़बूत वस्त्र से बांध कर उस वस्त्र पर स्वेदन करने की वस्तु रख कर उस भाण्ड के मुख को सकोरे द्वारा ढक कर कपड़मिट्टी से बन्द कर देवें। फिर चूल्हे पर चढा कर नीचे अग्नि जलानी चाहिए। इस को कन्दुकयन्त्र कहते हैं। अन्य रस शास्त्र के पण्डितों ने इस को स्वेदनीयन्त्र भी कहा है ॥ ७४–७५ ॥

अथ प्रकारान्तरम्—

**यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं क्षिप्त्वा मुखोपरि।**
**स्वेद्यद्रव्यं परिक्षिप्य पिधानं प्रविधाय च।**

**अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं यन्त्रं तत्कन्दुकं स्मृतम् ॥ ७६ ॥**

अथवा भाण्ड के भीतर जलादिक भर करके मुख पर वस्त्र नहीं लगा कर तृण ( घास फूस ) भर देते हैं और उन तृणों पर स्वेदन करने योग्य वस्तु को रख कर सकोरे से मुख बन्द करके कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्धन कर देते हैं तथा नीचे अग्नि जला देते हैं। इसको भी कन्दुक यन्त्र कहते हैं ॥ ७६ ॥

अथ खल्वयन्त्रम्—

**खल्वयोग्या शिला नीला श्यामा स्निग्धा दृढा गुरुः ।**
**षोडशाङ्गुलकोत्सेधा नवाङ्गुलकविस्तरा ॥ ७७ ॥**
**चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा घर्षणी द्वादशाङ्गुला ।**
**विंशत्यङ्गुलदीर्घा वा स्यादुत्सेधे दशाङ्गुला ॥**
**खल्वप्रमाणं तज्ज्ञेयं श्रेष्ठं स्याद्रसकर्मणि ॥ ७८ ॥**

खरल बनाने के लिये नीली अथवा कालेरंग की चिकनी, मज़बूत और भारी शिला ( पत्थर ) लेनी चाहिए। ऐसी शिला से १६ अङ्गुल ऊंची, ९ अङ्गुल चौड़ी और २४ अङ्गुल लम्बी खरल तथा उसमें घोटने की १२ अङ्गुल लम्बी घर्षणी बनवानी चाहिए। अथवा १० अङ्गुल ऊंची और २० अङ्गुल लम्बी खरल बनवाना चाहिए। इस तरह का खरल की लम्बाई चौड़ाई का प्रमाण पारद आदि के शोधन मर्दन संस्कारों के लिये ठीक होता है ॥ ७७–७८ ॥

अथ खल्वयन्त्रस्य त्रैविध्यनिर्देशः—

**खल्वयन्त्रं त्रिधा प्रोक्तं रसादिसुखमर्दने ॥ ७९ ॥**

रस आदि पदार्थों को अच्छी तरह सुखपूर्वक घोटने के लिये ३ प्रकार के खल्व यन्त्र कहे गये हैं ॥ ७९ ॥

द्विविधखल्वयोः सामान्यलक्षणम् ।

**निरुद्गारौ सुमसृणौ कार्यौ पुत्रिकया युतौ ॥ ८० ॥**

उनमें से दो प्रकार की खरलें स्पर्श में स्निग्ध तथा उनमें रखी हुई वस्तु घोटने से बाहर न गिर सके, ऐसी होनी चाहिएं। साथ में घोटने की घर्षणी ( बत्था ) भी चिकनी और योग्य प्रमाण की होनी चाहिए ॥ ८० ॥

अर्धचन्द्राकृतिखल्वनिर्देशः—

**उत्सेधे स दशाङ्गुलः खलु कलातुल्याङ्गुलायामवान्**
**विस्तारेण दशाङ्गुलो मुनिमितैर्निम्नस्तथैवाङ्गुलैः ।**

पार्श्वयां द्व्यङ्गुलविस्तरश्च मसृणोऽतीवार्द्धचन्द्रोपमो
घर्षो द्वादशकाङ्गुलश्च तदयं खल्लो मतः सिद्धये ॥ ८१ ॥
अस्मिन्पञ्चपलः सूतो मर्दनीयो विशुद्धये ।
तत्तदौचित्ययोगेन खल्लेष्वन्येषु योजयेत् ॥ ८२ ॥

१० अङ्गुल ऊंची, १६ अङ्गुल लम्बी, १० अंगुल चौड़ी और ७ अङ्गुल गहरी तथा किनारों की बनावट दो अङ्गुल चौड़ी और अर्ध चन्द्र के आकार की चिकनी खरल बनवावें तथा उसकी घर्षणी ( मूसली ) १२ अङ्गुल की बनवाना चाहिए । इस खरल को अर्धचन्द्र खरल कहते हैं । यह खरल रसादिकों की सिद्धि के लिये उत्तम है । इस खरल में शुद्धि के लिये ५ पल (२० तो०) पारद डालकर घोटना चाहिए । इसी तरह पारद की मात्रा के अनुसार छोटे या बड़े खरल बनवा कर उनमें योग्य मात्रानुसार पारद घोटना चाहिए ॥ ८१-८२ ॥

वर्तुलखल्वनिर्देशः ।

द्वादशाङ्गुलविस्तारः खल्लोऽतिमसृणोपलः ।
चतुरङ्गुलनिम्नश्च मध्येऽतिमसृणीकृतः ॥ ८३ ॥
मर्दकश्चिपिटोऽधस्तात्सुग्राहश्च शिखोपरि ।
अयं तु वर्तुलः खल्लो मर्दनेऽतिसुखप्रदः ॥ ८४ ॥

१२ अंगुल लम्बी और चौड़ी तथा ४ अंगुल गहरी, अत्यन्त चिकने पत्थर की और विशेष कर बीच के भाग में अत्यन्त चिकनी खरल बनवानी चाहिए तथा उसकी घर्षणी ( मूसली ) नीचे से चिपटी और ऊपर के भाग में उत्तम प्रकार से पकड़ने योग्य होनी चाहिए । इस को वर्तुलखल्ल कहते हैं । रसादिकों के घोटने में यह अत्यन्त उत्तम है ॥ ८३-८४ ॥

अथ तप्तखल्लप्रमाणनिर्देशः—

लौहो नवाङ्गुलः खल्लो निम्नत्वे च षडङ्गुलः ।
मर्दकोऽष्टाङ्गुलश्चैव तप्तखल्लाभिधोऽप्ययम् ॥ ८५ ॥

९ अङ्गुल लम्बी चौड़ी, ६ अङ्गुल गहरी लोहे की खरल और उसकी घर्षणी ८ अङ्गुल की बनवानी चाहिए । इसको तप्तखल्ल कहते हैं ॥ ८५ ॥

अथ तप्तखल्लविधिः—

कृत्वा खल्लाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।

**तस्यां निवेश्य तं खल्लं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥ ८६ ॥**
**तदन्तर्मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ।**
**प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ॥**
**कृतः कान्तायसा सोऽयं भवेत्कोटिगुणो रसः ॥ ८७ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये यन्त्रनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

जिस आकार की लोहे की खरल बनी हो वैसा ही चूल्हा ( भट्टी ) बनवा कर अङ्गारों ( जलतेकोयलें ) से भर देना चाहिए । फिर उस चूल्हे पर खरल को रख कर चूल्हे की अग्नि को पार्श्व से धौंकनी द्वारा प्रदीप्त करनी चाहिए । पश्चात् उस खरल में औषधियों के साथ घोटी हुई पारद की पिष्टी डालकर क्षार तथा अम्ल पदार्थों के साथ खूब घोटते रहना चाहिए । इस तरह स्वेदन करने से पारद की पिष्टी द्रवीभूत हो जाती है । यदि यह तप्त खरल साधारण लोह की न बनवा कर यदि कान्त लोह की बनवाई जाय तो उस में सिद्ध किया हुआ पारद करोड़ गुना अधिक फलप्रद हो जाता है ॥ ८६–८७ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य रत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां यन्त्रनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

## दशमोऽध्यायः ।

अथ मूषादिकथनम्—

अथ मूषायाः पर्यायाः—

**मूषा हि क्रौञ्चिका प्रोक्ता कुमुदी करहाटिका ।**
**पाचनी वह्निमित्रा च रसवादिभिरीर्यते ॥ १ ॥**

रसशास्त्र के व्याख्याताओं ने मूषा के क्रौञ्चिका, कुमुदी, करहाटिका, पाचनी और वह्निमित्रा ये इतने पर्याय शब्द ( एकार्थ वाचक ) कहे हैं ॥ १ ॥

अथ मूषाया निरुक्तिः ।

**मुष्णाति दोषान्मूषा या सा मूषेति निगद्यते ॥ २ ॥**

जो पारद आदि के दोषों को नष्ट करे उसको मूषा कहते हैं ॥ २ ॥

मूषाया उपादानम् ।

**उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लोहमेव च ॥ ३ ॥**

मूषा का निर्माण लोह और मृत्तिका से होता है ॥ ३ ॥

अथ मूषाप्रशंसा—

**मूषा मुखविनिष्क्रान्ता वरमेकापि काकिणी ।**
**दुर्जनप्रणिपातेन धिग्लक्षमपि मानिनाम् ॥ ४ ॥**

मूषा के मुख से निकाली हुई ( भस्म होकर ) एक कोड़ी भी उत्तम है किन्तु दुर्जन की बन्दना करने से प्राप्त हुए लक्ष रुपये भी मानियों के लिये हेय हैं ॥४॥

**विमर्श**—काकिणीशब्द की चर्चा भिन्न २ शास्त्रों में इस तरह है 'वराटकानां दशकद्वयं तत् साकाकिणी' इति लीलावती। 'पणगण्डकयोस्तुर्यं उदमानस्य काकिणी, इति रुद्रोक्तिः। काकिणी पणतुर्यांशे मानदण्डेऽपि दृश्यते। कृष्णलैकवराटयोः स्यादु-न्मानस्यांशकेऽपिच ॥ इति मेदिनी।

सन्धिलेपस्य पर्यायाः—

**मूषापिधानयोर्बन्धे बन्धनं सन्धिलेपनम् ।**
**अन्ध्रणं रन्ध्रणं चैव संश्लिष्टं सन्धिबन्धनम् ॥ ५ ॥**

मूषा और उसके आच्छादन करने के ढक्कन की सन्धियों को बन्द करने में 'बन्धन, सन्धिलेपन, अन्ध्रण, रन्ध्रण, संश्लिष्ट और सन्धिबन्धन इतने शब्द प्रयुक्त होते हैं ॥ ५ ॥

अथ मूषोपयुक्तमृत्तिका

**मृत्तिका पाण्डुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा ।**
**चिराध्मानसहा सा हि मूषार्थमतिशस्यते ॥**
**तदभावे च वाल्मीकी कौलाली वा समीर्यते ॥ ६ ॥**

मूषा बनाने के लिये जो मिट्टी लेते हैं वह पीली और मोटी ( ज्यादा महीन न हो ) या लाल और पाण्डु वर्ण की तथा रेत जिसमें मिली हो और जो बहुत देर तक तेज आंच को फूंकने से भी फटे नहीं ऐसी होनी चाहिए। इस तरह की मृत्तिका मूषानिर्माण करने के लिये अत्यन्त श्रेष्ठ है। यदि उपर्युक्त लक्षणों वाली योग्य मिट्टी नहीं मिले तो उसके स्थान में दीमक अथवा कुम्हार के कार्य में आने वाली मिट्टी लेना चाहिए ॥ ६ ॥

मतान्तरम्—

**या मृत्तिका दुग्धतुषैः शणेन शिखित्रकैर्वा हयलद्दिना च ।**
**लौहेन दण्डेन च कुट्टिता या साधारणा स्यात्खलु मूषिकार्थे ॥७॥**

जलेहुए तुषों की राख ( भूसी की राख ), सनई, कोयले तथा घोड़े की लीद इन सब वस्तुओं को मिट्टी के बराबर लेकर उसमें मिला देवें, फिर एक लोहे के दण्डे से सबको खूब कूटकर बारीक कर लेना चाहिए। इस तरह की बनी हुई मृत्तिका मूषा बनाने के लिये साधारण तथा ठीक होती है ॥ ७ ॥

मूषामृत्तिकायां संयोज्यद्रव्याणि—

**श्वेताश्मानस्तुषा दग्धाः शिखित्राः शणखर्परे ।**
**लद्दिः किट्टं कृष्णमृत्स्ना संयोज्या मूषिकामृदि ॥ ८ ॥**

सफेद पत्थर, जले हुए तुष, कोयले, सनई ( शण ), खर्पर ( घटकपाल ) का चूर्ण, घोड़े की लीद, मण्डूर, कालीमिट्टी, इतनी वस्तुएं मूषा बनाने की मिट्टी, में मिलानी चाहिए ॥ ८ ॥

अथ वज्रमूषा—

**मृदस्त्रिभागाः शणलद्दिभागौ भागश्च निर्दग्धतुषोपलादेः ।**
**किट्टार्धभागं परिखण्ड्य वज्रमूषांविदध्यात्खलु सत्त्वपाते ॥ ९ ॥**

मिट्टी के ३ भाग, सनई और लीद के दो भाग, जले हुए भूसे का १ भाग, श्वेत पत्थर का १ भाग, मण्डूर का आधाभाग, इन सब को अच्छी तरह कूट कर धातु वगैरके सत्त्व पातन करनेके लिये मूषा तैयार करें। इसको वज्रमूषा कहते हैं॥९॥

अथ योगमूषा—

**दग्धाङ्गारतुषोपेता मृत्स्ना वल्मीकमृत्तिका ।**
**तत्तद्बिडसमायुक्ता तत्तद्बिडविलेपिता ॥ १० ॥**
**तया या विहिता मूषा योगमूषेति कथ्यते ।**
**अनया साधितः सूतो जायते गुणवत्तरः ॥ ११ ॥**

जले हुए तुष और कोयलों की राख, दीमक के घर की मिट्टी, पाण्डुरस्थूलादि गुणों वाली मिट्टी और बिड़ ( क्षार, अम्ल, गन्धक, लवण ) इन सब पदार्थों को एकत्रित कर ओंखली में अच्छी प्रकार से कूट करके मूषा बना लेनी चाहिए। फिर इस मूषा को भीतर तथा बाहर से बिड़ के घोल से लिप्त करके सुखा लेनी

चाहिए। इस प्रकार से बनाई हुई मूषा के अन्दर सिद्ध किया हुआ पारद अत्यन्त देहसिद्ध्यादि गुणों को करने लायक हो जाता है। इसको योगमूषा कहते हैं॥१०-११॥

अथ वज्रद्रावणीमूषा—

**गारभूनागधौताभ्यां शणैर्दग्धतुषैरपि ।**
**समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ १२ ॥**
**क्रौञ्चिका यन्त्रमात्रं हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।**
**तया विरचिता मूषा वज्रद्रावणिकोचिता ॥ १३ ॥**

तालाब का चिकना गारा ( मिट्टी ), केञ्चुओं का सत्त्व या उनकी मिट्टी, सनई, जले हुए तुषों की राख, इन सबको समान भाग लेकर तथा इनके बराबर मूषा बनाने की मिट्टी लेकर सबको एकत्रित करके भैंस के दुग्ध से घोट कर जिस यन्त्र में मूषा रखनी हो उस यन्त्र के अनुसार छोटी, बड़ी अनेक प्रकार की मूषा बनानी चाहिए। इस प्रकार की मूषा को वज्रद्रावणिका मूषा कहते हैं। यह मूषा हीरा आदि कठोर पदार्थों के द्रावण करने में उत्तम होती है ॥ १२-१३ ॥

अथ गारमूषा—

**दुग्धषड्गुणगाराष्टकिट्टाङ्गारशणान्विता ।**
**कृष्णमृद्भिः कृता मूषा गारमूषेत्युदाहृता ॥**
**यामयुग्मपरिध्मानान्नासौ द्रवति वह्निना ॥ १४ ॥**

जली हुई गार के ६ भाग तथा मण्डूर, कोयले, सनई ९ ये प्रत्येक ८ भाग लेकर मूषोपयोगी काली मिट्टी में मिला कर के भैंस के दुग्ध में सबको खूब घोट कर मूषा बनानी चाहिए। इसको गारमूषा कहते हैं। यह गारमूषा दो प्रहर तक अग्नि में फूंकने से भी नहीं द्रुत होती है ॥ १४ ॥

अथ वरमूषा—

**वज्राङ्गारतुषास्तुल्यास्तच्चतुर्गुणमृत्तिका ।**
**गारा च मृत्तिकातुल्या सर्वैरेतैर्विनिर्मिता ॥**
**वरमूषेति निर्दिष्टा याममग्निं सहेत सा ॥ १५ ॥**

थूहर की लकड़ी के कोयले ( या उनकी राख ) और तुषों की राख ये दोनों समान भाग लेकर तथा इन दोनों से चौगुनी कालीमिट्टी तथा मिट्टी के बराबर

गारा ( तालाब मृत्तिका ) इन सब के द्वारा बनाई हुई मूषा को वरमूषा कहते हैं। यह एक प्रहर तक अग्नि को सहन कर सकती है ॥ १५ ॥

अथवर्णमूषा—

**पाषाणरहिता रक्ता रक्तवर्गानुसाधिता ।**
**मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥**
**वर्णमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते ॥ १६ ॥**

कंकड़ और पत्थर से रहित तथा रक्तवर्ग की औषधियों (कुसुम्भपुष्प, कत्था, लाक्षा, मजीठ इत्यादि) के स्वरस या क्वाथ से घोटी हुई लाल रंग की मृत्तिका से एक मूषा बना कर उसको इन्द्रगोप ( वीरबहूटी ) अथवा भूनागसत्त्व या काशीश के चूर्ण से लिप्त कर देनी चाहिए। इसको वर्णमूषा कहते हैं। इस मूषा के अन्दर पारद या अन्य लोहादिकों की भस्म करने से उस भस्म का उत्कृष्ट वर्ण हो जाता है ॥१६॥

अथ रौप्यमूषा—

**पाषाणरहिता श्वेता श्वेतवर्गानुसाधिता ।**
**मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥**
**रौप्यमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते ॥ १७ ॥**

पाषाण से रहित और श्वेतवर्ग की औषधियों ( तगर, कुड़े की छाल, चमेली, श्वेतगुञ्जा इत्यादि वर्गोक्त ) के स्वरस या क्वाथ से घोटी हुई श्वेत मिट्टी की मूषा बना कर उसको क्षितिखेचर के चूर्ण से लिप्त कर देनी चाहिए। यह रौप्यमूषा है। इसके अन्दर चांदी आदि की सिद्ध की हुई भस्म अत्यन्त श्वेत होती है ॥ १७ ॥

अथ विडमूषा—

**तत्तद्भेदमृदोद्भूता तत्तद्विडविलेपिता ।**
**देहलोहार्थयोगार्थं विडमूषेत्युदाहृता ॥ १८ ॥**

भिन्न २ प्रकार की मूषोपयोगी मृत्तिका से मूषा बनाकर उसको क्षार, अम्ल या गन्धक, लवण इत्यादि भिन्न २ प्रकार के विड़पदार्थों से लिप्त कर देना चाहिए। इस को विड़मूषा कहते हैं। इसका देह को लोह के समान दृढ करने वाले पारद या लोह आदि पदार्थों को सिद्ध करने के लिये उपयोग होता है ॥ १८ ॥

अथ वज्रद्रावणमूषा—

**गारभूनागधौताभ्यां तुषमृष्टशणेन च ।**

समैः समा च मूषामृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ १९ ॥
क्रोञ्चिका यन्त्रमात्रे हि बहुधा परिकीर्त्तिता।
तया विरचिता मूषा लिप्ता मत्कुणशोणितैः ॥ २० ॥
बालाब्दध्वनिमूलैश्च वज्रद्रावणक्रौञ्चिका।
सहतेऽग्निं चतुर्यामं द्रवेण व्याधिता सती ॥ २१ ॥

तालाब का चिकना गारा १ भाग, केञ्चुओं का सत्त्व १ भाग, तुषों ( भूसे ) की राख १ भाग, कूटा हुआ सन १ भाग तथा इन सबके बराबर मूषा के लायक काली या नीली मिट्टी लेकर सब को एकत्रित कूट कर भैंस के दुग्ध में घोटें। फिर जिस प्रकार की आकृति ( स्वरूप ) वाले यन्त्र में रखना हो उस स्वरूप की मूषा बनाकर उसको खट्मल ( मत्कुण ) के रक्त से लिप्त कर सुखा लेवें। फिर उस को नवीन ( हरे ) कांटेदार चोलाई की जड़ के स्वरस या क्वाथ से अथवा सुगन्धवाला, नागरमोथा, अमरवेल ( आकाशलता ) के काढ़े से लिप्त कर सुखा लेनी चाहिए। फिर इसको द्रवपदार्थों से भरकर हीरा इत्यादि कठोर पदार्थों का इस में द्रव करते हैं। यह मूषा ४ प्रहर तक अग्नि को सहन कर सकती है। इस को वज्रद्रावणक्रौञ्चिकामूषा कहते हैं ॥ १९-२१ ॥

अथ मूषाऽऽप्यायनम्—

द्रवे द्रवीभावमुखे मूषाया धमानयोगतः।
क्षणमुद्धरणं यत्तन्मूषाऽऽप्यायनमुच्यते ॥ २२ ॥

मूषायंत्र में रखे हुए द्रवण होने योग्य लोह, रत्न आदि पदार्थ अग्नि के संयोग से फूंकने से जब द्रवित होने लगते हैं, उस समय उनको क्षण भर स्थायी करने के लिये चूल्हे पर से उतार लेते हैं। इस क्रिया को मूषाऽऽप्यायन कहते हैं ॥२२॥

अथ वृन्ताकमूषा—

वृन्ताकाकारमूषायां नालं द्वादशकाङ्गुलम्।
धत्तूरपुष्पवच्चोर्ध्वं सुदृढं श्लिष्टपुष्पवत् ॥ २३ ॥
अष्टाङ्गुलञ्च सच्छिद्रं सा स्याद्वृन्ताकमूषिका।
अनया खर्परादीनां मृदूनां सत्त्वमाहरेत् ॥ २४ ॥

बैंगन ( वृन्ताक या भण्टा ) के समान आकार की मूषा बनाकर उसमें धत्तूरे के पुष्प के समान और दोनों प्रान्तभागों में छिद्रयुक्त ८ अङ्गुल की एक नलिका

जिस तरह पुष्प डण्ठल के साथ अच्छी तरह लगा रहता है उसी तरह अच्छी तरह से लगा देनी चाहिए। इसको वृन्ताकमूषा कहते हैं। इसके द्वारा कोमल खर्पर जैसे पदार्थों का सत्त्व निकाला जाता है ॥ २३-२४ ॥

अथ गोस्तनीमूषा—

**मूषा या गोस्तनाकारा शिखायुक्तपिधानका।**
**सत्त्वानां द्रावणे शुद्धौ मूषा सा गोस्तनी भवेत् ॥ २५ ॥**

जिस मूषा की आकृति ( बनावट ) गाय के स्तन के समान हो और उसका ढक्कन शिखा के समान नीचे से मोटा और ऊपर से पतला हो ऐसी मूषा को गोस्तनीमूषा कहते हैं। यह मूषा सत्त्वों के द्रवण करने और उनको शोधन करने के लिए उत्तम होती है ॥ २५ ॥

अथ मल्लमूषा—

**निर्दिष्टा मल्लमूषा या मल्लद्वितयसम्पुटात्।**
**पर्पट्यादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्तिता ॥ २६ ॥**

दो मिट्टी के सकोरों को परस्पर जोड कर कपड़मिट्टी से दोनों के मुख की सन्धि को बन्द कर देते हैं। इसको मल्लमूषा कहते हैं। यह मूषा पर्पटी तथा अन्य रसों के स्वेदन करने के लिये बनाई जाती है ॥ २६ ॥

अथ पक्वमूषा—

**कुलालभाण्डरूपा या दृढा च परिपाचिता।**
**पक्वमूषेति सा प्रोक्ता पोट्टल्यादि विपाचने ॥ २७ ॥**

कुम्हार के बनाये हुए भाण्ड ( या उसके घट के लिये बनाये हुये भिन्न २ कपाल के ) के समान आकृति की दृढ मूषा बना कर उसको अग्नि में पका लेनी चाहिए। इस को पक्वमूषा कहते हैं। यह मूषा हिरण्यगर्भ या रसगर्भ पोट्टली आदि के पकाने में काम आती है ॥ २७ ॥

अथ गोलमूषा—

**निर्वक्त्रगोलकाकारा पुटनद्रव्यगर्भिणी।**
**गोलमूषेति सा प्रोक्ता सत्वरद्रवरोधिनी ॥ २८ ॥**

मल्लमूषा के समान मूषा के दो गोल भाग पृथक् २ बनाकर उन में से एक में पुट देने योग्य पदार्थों को भर कर दोनों को परस्पर जोड़कर अच्छी तरह ( मुख

पर छिद्र न रह जाय) बन्द करके कपड़मिट्टी कर देनी चाहिए। इसको गोलमूषा कहते हैं। यह मूषा अग्नि में उड़ने लायक द्रव हुए पदार्थों को बाहर नहीं उड़ने देती है। अथवा द्रव्यों को शीघ्र ही निर्मल कर देती ॥ २८ ॥

अथ महामूषा—

**तले या कूर्पराकारा क्रमादुपरि विस्तृता।**
**स्थूलवृन्ताकवत्स्थूला महामूषेत्यसौ स्मृता।**
**सा चायोऽभ्रकसत्वादेः पुटाय द्रावणाय च ॥ २९ ॥**

जो मूषा तल भाग में कूर्परसन्धि ( एल्बो ज्वाइण्ट ) के समान पतली हो तथा क्रम से ऊपर को विस्तृत ( चौड़ी ) होती जाय और बैंगन के समान मोटी ( प्राय मध्य भाग में ) हो उसको महामूषा कहते हैं। यह मूषा लौह, अभ्रक, इत्यादि धातुओं के सत्त्व को पिघलाने तथा पुट देने के लिये उत्तम होती है ॥२९॥

अथ मण्डूकमूषा—

**मण्डूकाकारमूषा या निम्नताऽऽयामविस्तरा।**
**षडङ्गुलप्रमाणेन मूषा मण्डूकसंज्ञिका।**
**भूमौ निखन्य तां मूषां दद्यात्पुटमथोपरि ॥ ३० ॥**

जो मूषा मेंढक के आकार के समान बीच में चोड़ी और दोनों भागों पर पतली हो तथा जिसकी लम्बाई और चौड़ाई ६ अंगुल हो ऐसी मूषा को मण्डूक मूषा कहते हैं। इस मूषा के अन्दर द्रव्य भर कर पृथ्वी में एक बिलस्त गहरी इसको गाड़ करके उसके ऊपर उपलों से पुट देवें ॥ ३० ॥

अथ मुसलाख्यमूषा—

**मूषा या चिपिटा मूले वर्तुलाऽष्टाङ्गुलोच्छ्रया।**
**मूषा सा मूसलाख्या स्याच्चक्रिबद्धरसे हिता ॥ ३१ ॥**

जो मूषा तल भाग में चपटी तथा ऊपर की ओर गोल स्वरूपवाली तथा ८ अंगुल ऊंची हो उसको मूसलाख्यमूषा कहते हैं। यह मूषा आगे स्त्री रोगाधिकार में कथित चक्रिबद्ध रस के बनाने में हितकर होती है ॥ ३१ ॥

अथ कोष्ठिकानिर्देशः—

**सत्त्वानां पातनार्थाय पातितानां विशुद्धये।**
**कोष्ठिका विविधाकारास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ ३२ ॥**

लोह, अभ्रक, रत्न आदि अनेक पदार्थों के सत्त्वों को निकालने के लिये तथा निकले हुए सत्त्वों की शुद्धि करने के लिये अनेक स्वरूप की कोष्टिकाएं शास्त्र में कही गई हैं, उनके लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ॥ ३२ ॥

अथ अङ्गारकोष्ठी—

**राजहस्तसमुत्सेधो तदर्धायामविस्तरा ।**
**चतुरस्रा च कुड्येन वेष्टिता मृण्मयेन च ॥ ३३ ॥**
**एकभित्तौ चरेद्द्वारं वितस्त्याभोगसंयुतम् ।**
**द्वारं सार्धवितस्त्या च सम्मितं सुदृढं शुभम् ॥ ३४ ॥**
**देहल्यधो विधातव्यं धमनाय यथोचितम् ।**
**प्रादेशप्रमिता भित्तिरुत्तरङ्गस्य चोर्ध्वतः ॥ ३५ ॥**
**द्वारं चोपरि कर्त्तव्यं प्रादेशप्रमितं खलु ।**
**ततश्चेष्टिकया रुद्ध्वा द्वारसंधिं विलिप्य च ॥ ३६ ॥**
**शिखित्रैस्तां समापूर्य्य धमेद्भस्त्राद्वयेन च ।**
**शिखित्रान् धमनद्रव्यमूर्ध्वद्वारेण निक्षिपेत् ॥ ३७ ॥**
**सत्त्वपातनगोलांश्च पञ्च पञ्च पुनः पुनः ।**
**भवेदङ्गारकोष्ठीयं खराणां सत्त्वपातिनी ॥ ३८ ॥**

राजहस्त (साधारण मनुष्य के हस्त से सवाया हस्त राजहस्त मानना चाहिए, प्रायः साधारण मनुष्य का हस्त २४ अङ्गुल लम्बा होता है और राजहस्त तीस अङ्गुल लम्बा माना जाता है, राजहस्त ही को प्रायः गजहस्त कहते हैं ) के समान ऊंची और उसकी आधी अर्थात् पन्द्रह अङ्गुल चौड़ी तथा चार मिट्टी की भित्तियों से युक्त एक चोकोर कोष्ठी बनाकर उसकी एक भित्ति में बीच के भाग से कुछ ऊपरी भाग में एक बालिस्त ( बेंत ) या डेढ बालिस्त चौड़ा द्वार बनावें, तथा देहली के नीचे धौंकनी के द्वारा फूंकने के लिये उचित द्वार बनावें, फिर उस कोष्ठी के ऊपरी भाग में प्रादेश(१) के समान मोटी भीत्ति की छत बनाकर प्रादेश के समान चौड़ा एक द्वार छत में बनाकर ईंट से उसे ढककर सन्धिबन्धन कर देवें, फिर ऊपर के भाग में स्थित भित्ति के द्वार से कोयले तथा सत्त्वपातन

---

( १ ) अङ्गुष्ठ तथा तर्जनी अङ्गुली के मध्य के अवकाश को प्रादेश कहते हैं यथा—"अङ्गुष्ठस्य प्रदेशिन्या न्यासः प्रादेश उच्यते" ।

करने की मूषा या अन्य द्रव्यजात डालें । फिर नीचे से दो धोंकनियों से धमनकर वह्नि को प्रदीप्त करना चाहिए । जिस पदार्थ का सत्त्व निकालना हो उसको किसी द्रव से घोटकर छोटे २ पांच गोले बनाकर डालना चाहिए । यह अङ्गारकोष्ठी कठिन पदार्थों के सत्त्वपातन करने के लिये अच्छी है क्यों कि इससे आंच खूब तेज लगती है ॥ ३३–३८ ॥

अथ पातालकोष्ठी—

दृढभूमौ चरेद्गर्तं वितस्त्या सम्मितं शुभम् ।
वर्तुलं चाथ तन्मध्ये गर्तमन्यं प्रकल्पयेत् ॥ ३९ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारनिम्नत्वेन समन्वितम् ।
गर्ताद्धरणिपर्यन्तं तिर्यङ्नालसमन्वितम् ॥ ४० ॥
किञ्चित्समुन्नतं बाह्य-गर्ताभिमुखनिम्नगम् ।
मृच्चक्रीं पञ्चरन्ध्राढ्यां गर्भगर्तोदरे क्षिपेत् ॥ ४१ ॥
आपूर्य कोकिलैः कोष्ठीं प्रथमेदेकभस्त्रया ।
पातालकोष्ठिका ह्येषा मृदूनां सत्त्वपातिनी ॥
ध्मानसाध्यपदार्थानां नन्दिना परिकीर्त्तिता ॥ ४२ ॥

कठिन मृत्तिका वाली भूमि में एक बालिस्त गहरा तथा उतना ही गोल और चौडा गड्ढा बनाकर उसके मध्य में ऊपरी गड्ढे से टेढि नलिकायुक्त जो पृथ्वी में नीचे के छोटे गड्ढे के पृष्ठ तक गई हो एक चार अङ्गुल लम्बा चाड़ा और गोल गड्ढा बनाकर उसके ऊपर पांच छिद्रों वाली एक लोहे या अन्य धातु की बनी हुई चकरी ढंकदे। फिर ऊपर के गड्ढे में कोयले भरकर कोयलों के बीच में मूषा रख कर नीचे के गड्ढे तक गई हुई नलिका के मुख पर धौंकनी लगाकर धौंकना चाहिए । इस प्रकार की बनी हुई काष्ठिका को पातालकोष्ठी कहते हैं । यह कोष्ठी मृदु पदार्थों के सत्त्वपातन करने के लिये अत्युत्तम है । यह काष्ठी नन्दी नामक आचार्य ने पहिले बनाई थी ॥ ३९–४२ ॥

अथ गारकोष्ठी—

द्वादशाङ्गुलनिम्ना या प्रादेशप्रमिता तथा ।
चतुरङ्गुलतश्चोर्ध्वं वलयेन समन्विता ॥ ४३ ॥
भूरिच्छिद्रवतीं चक्रीं वलयोपरि निक्षिपेत् ।

**शिखिन्नांस्तत्र निक्षिप्य प्रथमेद्वङ्गनालतः ।**
**गारकोष्ठीयमाख्याता मृल्लोहविनाशिनी ॥ ४४ ॥**

बारह अङ्गुल गहरी और प्रादेश के समान मोटी भीतियों वाली एक कोष्ठी बनाकर उसके चार अङ्गुल ऊपर का भाग कुछ वलयाकार बनाकर उस भाग पर बहुत से छोटे छोटे छिद्रों वाली एक लौहे की चक्की ढक कर उस चक्की से ऊपर के कोष्ठिका के अवकाश को कोयलों से भर कर मूषा को कोयलों के बीच में रख कर नीचे से वङ्गनाल के द्वारा धौंकना चाहिये । इस कोष्ठी को गारकोष्ठी कहते हैं। यह गारकोष्ठी शोधितलौहादिक धातुओं की भस्म बनाने के लिये प्रयुक्त होती है॥ ४३-४४॥

अथ वङ्गनालम्—

**मूषा मृद्भिर्विधातव्यमरत्निप्रमितं दृढम् ।**
**अधोमुखं च तद्वक्त्रे नालं पञ्चाङ्गुलं खलु ।**
**वङ्गनालमिदं प्रोक्तं दृढध्मानाय कीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥**

मूषायन्त्र के बनाने में प्रयुक्त होने वाली मृत्तिका(१) की एक हस्त लम्बी दृढ नलिका बनाकर उसके एक मुख को ओर "जो कि भट्टी की तरफ हो" पांच अङ्गुल की नीचे मुख की नलिका बनाकर जोड़ देना चाहिए । इस नालिका के द्वारा दृढ पदार्थों के सत्त्वपातन के समय कोष्ठिकादिक यन्त्रस्थ अग्नि को फूंककर प्रदीप्त करते हैं। इस को वङ्गनाल (२)कहते हैं ॥ ४५ ॥

अथ मूषाकोष्ठी—

**कोष्ठी सिद्धरसादीनां विधानाय विधीयते ।**
**द्वादशाङ्गुलकोत्सेधा सा बुध्ने चतुरङ्गुला ॥**
**तिर्यक्प्रथमनाऽऽस्या च मृदुद्रव्यविशोधनी ॥ ४६ ॥**

सिद्धरसों के पाक करने के लिये बारह अङ्गुल ऊंची और चार अङ्गुल चौड़ी

---

(१) मूषोपयोगि मृत्तिकास्वरूपं यथा—
मृत्तिका पाण्डुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा ।
चिराध्मानसहा सा हि मूषार्थमतिशस्यते ॥ १ ॥

(२) तन्त्रान्तरे वङ्गनाललक्षणं यथा—
करप्रमाणं यन्नालं पित्तलादिविनिर्मितम् ।
वह्नौ फूत्कारदानाय वङ्गनालं तदुच्यते ॥ १ ॥

तथा नीचे के भाग में धौंकनी से फूंकने के लिये कुछ तिरच्छे मुखवाली मृत्तिका की कोष्ठी बनानी चाहिए। इस तरह बनी हुई कोष्ठी को मूषाकोष्ठी कहते हैं। इस कोष्ठी के द्वारा मृदुद्रव्यों का शोधन करना चाहिए ॥ ४६ ॥

अथ पुटस्य लक्षणम्—

**रसादिद्रव्यपाकानां प्रमाणज्ञापनं पुटम् ।**
**नेष्टो न्यूनाधिकः पाकः सुपाकं हितमौषधम् ॥ ४७ ॥**

रस, उपरस, धातु, उपधातुओं के पाक का जिससे ज्ञान हो वह पुट कहा जाता है। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि रसादिक का पाक हुआ है या नहीं, अपितु मृदुद्रव्य का पाक लघुपुट से होता है ऐसी अवस्था में यदि गजपुट का मृदुद्रव्य की सिद्धि में प्रयोग किया जाय तो वह उस मृदुद्रव्य का पाक बिगाड़ कर खर पाक कर देगा और गजपुट से सिद्ध होने योग्य पदार्थ को लघुपुट में सिद्ध किया जाय तो वह लघुपुट उस पदार्थ का ठीक पाक नहीं कर सकता है। इस लिये जिस शब्द से योग्य पाक का ज्ञान हो उसे पुट कहते हैं। कठिन पदार्थ का न्यूनपाक और मृदुद्रव्य का अधिकपाक लाभप्रद नहीं होता है। अपने २ योग्य श्रेष्ठपाकयुक्त औषध ही हितकर होती है ॥ ४७ ॥

अथ पुटस्य फलम्—

**लोहादेरपुनर्भावो गुणाधिक्यं ततोऽग्रता ।**
**अनप्सु मज्जनं रेखापूर्णता पुटतो भवेत् ॥ ४८ ॥**
**पुटाद् भ्रावणो लघुत्वं च शाघ्र्यान्निश्च दीपनम् ।**
**जारितादपि सूतेन्द्राल्लोहानामधिको गुणः ॥ ४९ ॥**
**यथाश्मनि विशेद्वह्निर्बाह्यस्थपुटयोगतः ।**
**चूर्णत्वाद्धि गुणावाप्तिस्तथा लोहेषु निश्चितम् ॥ ५० ॥**

पुट से लौहादिक धातुओं का निरुत्थ मारण होता है, अर्थात् पुटयोग से बनी हुई लौहादिक धातुओं की भस्में मित्रपञ्चक के साथ फूंकने पर भी पुनः स्वस्वरूप को नहीं प्राप्त होती हैं, यही लोहादिक का अपुनर्भव(१) है जोकि पुटों के देने ही से

(१) अपुनर्भवलक्षणं यथा—

समित्रपञ्चकं ध्मातं प्राकृतिं नैति यत्पुनः ।
अपुनर्भवमुक्तं तन्निरुत्थं च तदीरितम् ॥ १ ॥

होता है। बारम्बार पुट देने से धातुओं के अन्दर शरीर को हित पहूंचाने वाले अनेक गुण प्रगट होते हैं इसी पुटक्रिया से उनके अन्दर अग्रता अर्थात् सर्वश्रेष्ठता(१) आ जाती हैं। बारम्बार पुट देने से धातुओं के अवयव इतने सूक्ष्म हो जाते हैं कि वे जल पर रखने से भी डूबते नहीं है इसी को अनप्सुमज्जन(२) कहा है और वे अङ्गुलियों की रेखाओं में प्रविष्ट हो जाते हैं इसी को रेखापूर्ण(३) कहा है। पुटयोग से रत्न उपरत्न आदि जो पाषाण के भेद हैं उनमें लघुता आजाती है और उनकी भस्मों का सेवन करने से शरीर में वे शीघ्र ही व्याप्त होकर शरीर का हित साधन करती हैं तथा पाचक रसों को उद्दीप्त करती हैं। पुटित धातुओं में जारितसंस्कार युक्त पारद से भी अधिक गुण पाया जाता है। जिस तरह बाह्य पुट के प्रभाव से पत्थर के अन्दर वह्नि का प्रवेश हो जाता है उसी तरह चूर्ण किये हुए लौहादिक धातु द्रव्यों में पुट से वह्निका उनमें शीघ्र प्रवेश होकर गुणाधान होता है ॥ ४८–५० ॥

**विमर्शः—हरेक चिकित्सक या औषधनिर्माणकर्ता को चाहिए कि योग्य पुटों से सिद्ध हुई भस्म की मित्रपञ्चक के साथ फूंक कर जांच करें, ऐसा नहीं करने से ये भस्में शरीर के अन्दर वहां के रासायनिकविश्लेषणों से फिर अपने रुक्षरूप (प्रकृति) को प्राप्त कर शारीरिक सेलों का नाश करती हैं तथा अनेक भयङ्कर उदरसम्बन्धिरोग पैदा करके शरीर का नाश करती हैं। आज कल बड़ी बड़ी आयुर्वेदकरसायनशालाओं में मशीनों के द्वारा स्वल्पप्रयास से और थोड़े ही समय में तथा अधिक मात्रा में जो रस तैय्यार कर के सस्ते बेचे जाते हैं उन रसों में यह गुण उत्पन्न होता है यह स्वप्न में भी विश्वास नहीं करना चाहिए, अपि तु ये हीनगुण रस शरीर के भीतर अवगुणों को प्रकट करते हैं और जिस रोग के नष्ट करने के लिये उनका उपयोग किया जाता**

---

(१) अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिकोरसः ॥ १ ॥

(२) अनप्सुमज्जनस्य वारितरस्य वा लक्षणम्—
मृतं लौहं विनिक्षिप्तं यदा तरति वारिणि।
रसतन्त्रमुनिष्णातै स्तद्वारितरमीरितम् ॥ १ ॥

(३) रेखापूर्णतायाः स्वरूपम्—
अङ्गुष्ठतर्जनीघृष्टं विशेद्रेखान्तरन्तु यत्।
धातूनां हि मृतानाञ्च सा रेखापूर्णतोच्यते ॥ १ ॥

है वह कार्य सिद्ध नहीं होता है इससे प्रायः सभी अच्छी ओषधियों से भी मनुष्य का विश्वास हट जाता है। सब वैज्ञानिक यह मानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ गुरुत्वाकर्षण के कारण वियतिविक्षेप करने पर भी वह पृथ्वी की ओर जाता है या गिरता है, इस तरह धातुएं जल्दी ही पृथ्वी की ओर जाती हैं, किन्तु पुट देने से उसके अन्दर पृथ्वी के ओर जाने की शक्ति कम होने से वे आमाशय और पक्वाशय में अधिक देर तक रहेंगी, शीघ्रता से नीचे मलाशय की ओर गमन नहीं करेंगी इससे उन धातुओं का पाचन ठीक होकर सूक्ष्मावयव होने से शरीर के अन्दर ज्यादा मात्रा में जज्ब होंगी तथा रक्त के साथ मिलकर रक्तपरिभ्रमणक्रिया से सर्व शरीर के अङ्गों के सम्पर्क में आकर उनकी विकृति को दूर कर सकती हैं।

अथ महापुटम्—

निम्नविस्तरतः कुण्डे द्विहस्ते चतुरस्रके।
वनोत्पलसहस्रेण पूरिते पुटनौषधम्॥ ५१॥
क्रोड्यां रुद्धं प्रयत्नेन पिष्टिकोपरि निक्षिपेत्।
वनोत्पलसहस्रार्धं क्रौञ्चिकोपरि विन्यसेत्॥
वह्निं प्रज्वालयेत्तत्र महापुटमिदं स्मृतम्॥ ५२॥

दो हस्त गहरे और इतने ही लम्बे चौड़े चोकोर पृथ्वी के अन्दर खोदे हुए गड्ढे में एक हजार जंगली उपलों को भर कर उन पर पाक करने की औषधि या धातु से पूर्ण तथा बाहर से स्निग्ध मृत्तिका से लिप्त और मुखबन्द की हुई मूषा को स्थापित कर फिर उस पर पांच सौ जङ्गली उपले डालकर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। इस को महापुट कहते हैं॥ ५१-५२॥

अथ गजपुटम्—

राजहस्तप्रमाणेन चतुरस्रं च निम्नकम्।
पूर्णं चोपलसाठीभिः कण्ठावध्यथ विन्यसेत्॥ ५३॥
विन्यसेत् कुमुदौ तत्र पुटनद्रव्यपूरिताम्।
पूर्णेच्छुगणतोऽर्धानि गिरिण्डानि विनिक्षिपेत्॥
एतद्गजपुटं प्रोक्तं महागुणविधायकम्॥ ५४॥

राजहस्त के बराबर (साधारण मनुष्य का सवाहाथ) पृथ्वी में लम्बा चौड़ा और गहरा एक चोकोर गड्ढा खोद कर उस गड्ढे के आधे से कुछ अधिक भाग को उपलों या अन्य साठी आदि पदार्थों से भर कर उन पर पुटन द्रव्यों से

पूर्ण तथा स्निग्ध मृत्तिका से चारों ओर लिप्त और बन्द मुख वाली मूषा को रख कर उस पर नीचे रखे हुए उपलों की अपेक्षा आधे उपले डालकर वह्नि प्रदीप्त करना चाहिए। इस को गजपुट कहते हैं। इस गजपुट में फूंकी हुइ धातुएं अधिक गुणों वाली होती हैं ॥ ५३-५४ ॥

अथ वाराहपुटम्—

**इत्थं चारत्निके कुण्डे पुटं वाराहमुच्यते ॥ ५५ ॥**

इसी प्रकार पृथ्वी के अन्दर एक बालिस्त गहरा लम्बा चौकोर गड्ढा खोदकर उसको जङ्गली उपलों से भर कर उपलों के मध्य में पुटन द्रव्यों से पूर्ण मूषा को रख कर ऊपर ओर कुछ कण्डे डाल कर अग्नि लगा दें। इस प्रकार के पुट को वाराहपुट कहते हैं ॥ ५५ ॥

अथ कुक्कुटपुटम्—

**पुटं भूमितले तत्तद्वितस्तिद्वितयोच्छ्रयम् ।**
**तावच्च तलविस्तीर्णं तत्स्यात्कुक्कुटकं पुटम् ॥ ५६ ॥**

दो बालिस्त लम्बा चौड़ा और तलभाग में उतना ही विस्तृत गड्ढा खोदकर उपलों से भर कर सम्पुट को उपलों के मध्य में रख कर पुट देवें। इस प्रकार से जो पुट दिया जाता है उसको कुक्कुट पुट कहते हैं ॥ ५६ ॥

अथ कपोतपुटम्—

**यत्पुटं दीयते भूमावष्टसङ्ख्यैर्वनोपलैः ।**
**बद्ध्वा सूतार्कभस्मार्थं कपोतपुटमुच्यते ॥ ५७ ॥**

पृथ्वी के अन्दर एक छोटा सा गड्ढा खोदकर आठ जङ्गली उपले भर कर भिन्न २ शास्त्रोक्त औषधियों के साथ शुद्ध पारद को घोंट कर उसका गोला बना कर ताम्र की कटोरिकाओं में या दृढमूषा में बन्द कर के सम्पुट को उपलों के मध्य में रखकर उपलों में अग्नि प्रदीप्त कर के पारद की भस्म की जाती है। इस प्रकार के पुट को कपोत पुट कहते हैं। इस पुट में पारद के सिवाय अन्य मृदु पदार्थों की भी भस्म की जाती है ॥ ५७ ॥

अथ गोवरस्वरूपम्—

**गोष्ठान्तर्गोक्षुरक्षुण्णं शुष्कं चूर्णितगोमयम् ।**
**गोवरं तत्समादिष्टं वरिष्ठं रससाधने ॥ ५८ ॥**

गोष्ठ(१)अर्थात् गोशाला के भीतर गौओं के खुरों से छिन्न भिन्न या चूर्णित हुआ गोबर सूख जाता है उसको गोवर नाम से कहा जाता है। यह गोवर रसों की भस्म करने में प्रयुक्त होता है ॥ ५८ ॥

अथ गोवरपुटलक्षणम्—

**गोवरैर्वा तुषैर्वापि पुटं यत्र प्रदीयते ।**
**तद्गोवरपुटं प्रोक्तं रसभस्मप्रसिद्धये ॥ ५९ ॥**

पृथ्वी के अन्दर गड्ढा खोदकर उसमें गोबर या तुषों को भर कर उनके मध्य में पारद का गोला जो कि दृढमूषा या अन्य सम्पुट में बन्द हो रखकर वह्नि प्रदीप्त कर देते हैं। इस प्रकार के पुट को गोवरपुट कहते हैं। इसके द्वारा पारद या अन्य धातुओं की भस्म पुट देकर बनाई जाती है। प्रायः गोवर के शुष्क-चूर्ण को एक बृहद्भाण्ड के अन्दर भरकर उसके मध्य में सम्पुट रख कर पाक करते हैं ऐसी परम्परा है। यह रीति (२)भावप्रकाश में भी वर्णित है।

अथ भाण्डपुटम्—

**स्थूलभाण्डे तुषापूर्णे मध्ये मूषासमन्विते ।**
**वह्निना विहिते पाके तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥ ६० ॥**

एक बड़े मजबूत मिट्टी के भाण्ड के भीतर जो कि धान की भूसी या तुषों से आधा भरा हो पुटनद्रव्यपूरित मूषा या अन्य शराव सम्पुट को रखकर ऊपरके शेष अवकाश को तुषों से पूर्ण भर कर वह्नि प्रदीप्त कर देते हैं। इस प्रकार से जो पुट दिया जाता है उसको भाण्डपुट(३) कहते हैं। वन्हि प्रदीप्त कर के भाण्ड का मुख शराव से बन्द कर देना चाहिए। ऐसा ही भाव प्रकाश में भी है।

अथ बालुकापुटम्—

**अधस्तादुपरिष्टाच्च क्रौञ्चिकाच्छाद्यते खलु ।**

---

(१) यत्र गावस्तिष्ठन्ति तद्गोष्ठं प्रोच्यते बुधैः ।

(२) बृहद्भाण्डस्थितैर्यत्र गोवरै र्दीयते पुटम् ।
तद्गोवरपुटं प्रोक्तं भिषग्भिः सूतभस्मनि ॥ ५९ ॥

(३) भावप्रकाशोक्तभाण्डपुटलक्षणं यथा—
बृहद्भाण्डे तुषैः पूर्णे मध्ये मूषां विधारयेत् ।
क्षिप्त्वाग्निं मुद्रयेद्भाण्डं तद्भाण्डपुटमुच्यते ॥ १ ॥ ६० ॥

**बालुकाभिः प्रतप्ताभिर्मध्ये तद्बालुकापुटम् ॥ ६१ ॥**

एक चौड़े दृढ मिट्टी के भाण्ड में चलनी से छानी हुई बालुका आधे भाग तक भरकर उस पर पुटनद्रव्य से पूरित मुखबन्द मूषा या अन्य सम्पुट रखकर शेष भाण्ड के अवकाश को बालुका से पूर्ण भरकर भाण्ड के मुख को शराव से बन्द कर सन्धिबन्धन कर दें। फिर इस भाण्ड को चूल्हे पर चढ़ाकर यथानिर्दिष्ट समय तक वह्नि जलानी चाहिए। इस प्रकार से जो पुट निर्माण किया जाता है उसे बालुका पुट कहते हैं ॥ ६१ ॥

अथ भूधरपुटम्—

**वह्निमित्रा क्षितौ सम्यङ् निखन्याद् द्व्यङ्गुलादधः।**
**उपरिष्टात्पुटं यत्र पुटं तद्भूधराह्वयम् ॥ ६२ ॥**

पृथ्वी के अन्दर दो अङ्गुल या जिसमें मूषा ठीक बैठ सके इतना गहरा गड्ढा खोदकर पुटनद्रव्यपूरित मूषा को गड्ढे के अन्दर रख कर ऊपर से जङ्गली उपलों को ढककर अग्नि प्रदीप्त करें। जिस प्रकार की मृदु या कठिन पुटनवस्तु हो या जैसा शास्त्र में कहा हो उस प्रमाण के अनुसार मूषा के ऊपर जंगली उपले रखना चाहिए। इस प्रकार के पुट को भूधरपुट कहते हैं। वह्निमित्रा मूषा का पर्यायवाचक शब्द है, यह मूषा वह्नि में बहुत देर तक पिघलती नहीं है, अतः इसको वह्निमित्रा कहते हैं ॥ ६२ ॥

अथ लावकपुटम्—

**ऊर्ध्वं षोडशिकामूत्रैस्तुषैर्वा गोर्वरैःपुटम्।**
**यत्र तल्लावकाख्यं स्यात्सुमृदुद्रव्यसाधने ॥ ६३ ॥**

एक पल से ज्यादा मूत्र से युक्त तुष या गोबर से जहां पुट दिया जाता है उसको लावक पुट कहते हैं ॥ ६३ ॥

**विमर्शः**—यह अर्थ "ऊर्ध्वषोड़शिकामूत्रैस्तुषैर्वा गोर्वरैः पुटमित्यादि प्रकार से पठितपाठ का है। जहां ऊर्ध्व शब्द का व्यस्त पाठ है वहां का अर्थ जमीन के ऊपर ही ( बिना गड्ढा खोदे ) पल से अधिक गोमूत्र से युक्त तुष या गोबर से पुट देकर जो मृदुद्रव्यों की भस्म बनाई जाती है उसका लावक पुट कहते हैं। जहां "ऊर्ध्वं षोड़शिकामात्रैस्तुषैर्वा गोर्वरैः पुटम्" ऐसा पाठ है वहां यह अर्थ है—यथा जहां पल से ज्यादा तुष या गोबर से पुट दिया जाता है उस को लावकपुट कहते हैं। इस प्रकार तीन तरह की व्याख्या में तीसरी व्याख्या कुछ ठीक है। लवकपुट की यथार्थ

परिभाषा यह है—पृथ्वी से एक बालिस्त ऊंचाई तक तुष या गोबर का ढेर या चबूतरा। उत्सेध या छोटी पहाड़ी। बना कर उसके मध्य में मृदु पुटनीय द्रव्यों से भरी हुई मूषा रख कर अग्नि लगा देनी चाहिये। इस प्रकार से जो पुट दिया जाता है उस पुट को लावकपुट कहते हैं। ऐसा (१)ही वर्णन अन्यत्र भी मिलता है ॥ ६३ ॥

अथानुक्तपुटमाने कर्त्तव्यनिर्देशः

**अनुक्तपुटमाने तु साध्यद्रव्यबलाबलात्।**
**पुटं विज्ञाय दात्तव्यमूहापोहविचक्षणः ॥ ६४ ॥**

जिस धातु या रस के पाक करने में पुट का निर्देश जहां नहीं किया हो वहां पर पुटनद्रव्य की मृदुता तथा कठोरता का विचार कर के योग्य मृदु या महापुट का व्यवहार करना चाहिए ॥ ६४ ॥

अथ उपलपर्यायाः—

**पिष्टकं छगणं छाणमुत्पलं चोपलं तथ।**
**गिरिण्डोपलसाठी च वराटी छगणाभिधाः ॥ ६५ ॥**

पिष्टक, छगण, छाण, उत्पल, उपल, गिरिण्ड, उपलसाठी, वराटी ये शब्द शुष्क जङ्गली उपलों के लिये जानना चाहिए। पर्यायवाचक शब्दों का बिना ज्ञान किये अर्थग्रहण में भ्रम हो जाता है, इसलिये निघण्टु का ज्ञान सर्वचिकित्सक के लिये आवश्यक है। निघण्टुज्ञानशून्यवैद्य(२) हास्यता को प्राप्त होता है ॥६५॥

अथ कृत्रिमाकृत्रिमलौहनिर्देशः—

**सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपु सीसकमायसम्।**
**षडेतानि च लोहानि कृत्रिमौ कांस्यपित्तलौ ॥ ६६ ॥**

सुवर्ण, चांदी, ताम्र, त्रपु-वङ्ग (राङ्गा), सीसा, लौह ये छ लौह अकृत्रिम या प्राकृतिक ( तत्त्व ) हैं और कांस्य तथा पित्तल ये दोनों कृत्रिम या बनावटी हैं

---

( १ ) गोवैरै र्वा तुषै र्वापि वितस्त्यूर्द्ध्वं पुटन्तु यत्।
मृदुद्रव्यप्रसिद्ध्यर्थं तल्लावकपुटं स्मृतम् ॥ १ ॥

( २ ) निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हासस्य भाजनम् ॥ १ ॥

क्योंकि इनमें पित्तल ताम्र तथा यशद के संयोग से बनती (१)है और कांस्य ताम्र और वङ्ग के संयोग से बनती(२) है इसलिये इन दोनों को कृत्रिमलौह कहा गया है॥६६॥

अथ षड्लवणानि—

**लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैन्धवं बिडम् ।**
**सौवर्चलं रोमकञ्च चूल्लिकालवणं तथा ॥ ६७ ॥**

समुद्रजल से निर्मित लवण सामुद्र, सिन्धुनदी के निकट खानों से उत्पन्न लवण सैन्धव और विड़लवण, सुवर्चलादेशोद्भवलवण (कालानमक), रोमक (रुमा-नदी से उत्पन्न या साम्भरलवण) और नौसादर ये ६ प्रकार के लवण होते हैं॥६७॥

अथ क्षारत्रयम्—

**क्षारत्रयं समाख्यातं यवसर्जिकटङ्कणम् ॥ ६८ ॥**

यवक्षार, स्वर्जिकाक्षार और सुहागा ये तीनों क्षारत्रय कहलाते हैं ॥ ६८ ॥

अथ क्षारपञ्चकम्—

**पलाशमुष्ककक्षारौ यवक्षारः सुवर्चिका ।**
**तिलनालोद्भवः क्षारः संयुक्तं क्षारपञ्चकम् ॥ ६९ ॥**

पलाशक्षार, मुष्ककक्षार या पाटलक्षार, यवक्षार, सज्जिक्षार, तिल के डण्डों का क्षार, ये पांचो क्षार क्षारपञ्चक के नाम से रसशास्त्र में व्यवहृत हैं ॥ ६९ ॥

---

(१) कृत्रिमपित्तलनिर्माणविधिर्यथा—

द्विभागिकं शुद्धताम्रं भागैकं यशदं तथा ।
निधाय गारमूषायां प्रधमेत् प्रखराग्निना ॥ १ ॥
द्रवीभूतं ततो ज्ञात्वा ढालयेद् रसकोविदः ।
रीत्याऽनया कृतं लोके कृत्रिमं पित्तलं भवेत् ॥ २ ॥

(२) कृत्रिमकांस्यनिर्माणविधिर्यथा—

वेदोन्मितं शुद्धताम्रं समादाय भिषग्वरः ।
भागैकं विमलं वङ्गं दत्त्वा मूषागतं धमेत् ॥ १ ॥
द्रवीभूतं ततो ज्ञात्वा ढालयेद्रसकोविदः ।
रीत्याऽनया कृतं कांस्यं कृत्रिमं गीयते बुधैः ॥ २ ॥

अथ मधुरत्रयम्—

**घृतं गुडो माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ॥ ७० ॥**

घृत, गुड़, माक्षिक-मधु, ये तीनों मधुरत्रय नाम से रसशास्त्र में कहे गये हैं ॥ ७० ॥

अथ रसकर्मणि तैलाहरणोपयोगिद्रव्याणि—

**कङ्गुणी तुम्बिनी घोषा करीर-श्रीफलोद्भवम् ।**
**कटुवार्त्ताकसिद्धार्थसोमराजीविभीतजम् ॥ ७१ ॥**
**अतसीजं महाकाली निम्बजं तिलजं तथा ।**
**अपामार्गाद्देवदाली-दन्ती-तुम्बुरुविग्रहात् ॥ ७२ ॥**
**अङ्कोलोन्मत्तभल्लातपलाशेभ्यस्तथैव च ।**
**एतेभ्यस्तैलमादाय रसकर्मणि योजयेत् ॥ ७३ ॥**

मालकांगणी ( ज्योतिष्मती ), कड़वीतरोई, चिकनीतरोई, करीर-वंशाङ्कुर, श्रीफल-बिल्व, कड़वेबैंगन, सरसों, वाकुची, बहेड़ाफल की मींगी, अतसीबीज, बकायन, निम्बबीज, तिल, अपामार्गबीज, देवदाली ( बन्दाल ) दन्तीबीज, नैपालीधनियां के बीज, अंकोलबीज, धत्तूरे के बीज, भल्लातकफल, पलाश के बीज, इन द्रव्यों के बीज या इन के जिस भाग ( अवयव ) में स्नेह का अंश ज्यादा प्रतीत हो उस भाग का तैल निकालकर रसकर्म में जहां निर्देश हो, प्रयोग करना चाहिए ॥ ७१-७३ ॥

अथ वसावर्गः—

**जम्बूकमण्डूकवसा वसा कच्छपसम्भवा ।**
**कर्कटी शिशुमारी च गोशूकरनरोद्भवा ॥**
**अजोष्ट्रखरमेषाणां महिषस्य वसा तथा ॥ ७४ ॥**

शृगाल, मेंढक, कच्छप, केंकड़ा, गोह, बैल, सूअर, मनुष्य, बकरा, उष्ट्र, गदहा, मेंढा, भैंसा इनकी चर्बी का रसकर्म में भावना देने के निमित्त उपयोग होता है ॥ ७४ ॥

अथ मूत्रवर्गः—

**मूत्राणि हस्तिकरभमहिष-खरवाजिनाम् ।**
**गोऽजावीनां स्त्रियः पुंसां पुष्पं बीजं तु योजयेत् ॥ ७५ ॥**

हस्ती, उष्ट्र, महिषी-भैंसी, गदहा, घोड़ा, गाय, बकरी, अथवा मेंढी इनका मूत्र धातु तथा रसादिकों के शोधन, प्रक्षालन इत्यादि कार्यों में प्रयुक्त होता है ।

कहीं २ पुरुष का मूत्र भी काम में आता है, कहीं २ स्त्रियों का रज और पुरुषों के वीर्य का भी उपयोग होता है ॥ ७५ ॥

अथ माहिषपञ्चकछागलपञ्चकयो र्निर्देशः—

**माहिषाम्बु दधि क्षीरं सर्पिर्घारं शकृद्रसः ।**
**तत्पञ्चमाहिषं ज्ञेयं तद्वच्छागलपञ्चकम् ॥ ७६ ॥**

भैंस का मूत्र, दधि, दुग्ध, घृत, गोबर का रस इनको माहिषपञ्चक कहते हैं। इसी तरह बकरी का मूत्र, दुग्ध, दधि, घृत, गोबर का रस, इन द्रव्यों को छागल पञ्चक कहते हैं ॥ ७६ ॥

अथाम्लवर्गः—

**अम्लवेतसजम्बीरनिम्बकं बीजपूरकम् ।**
**चाङ्गेरी चणकाम्लं च अम्लीकं कोलदाडिमम् ॥ ७७ ॥**
**अम्बष्ठा तिन्तिडीकञ्च नारङ्गं रसपत्रिका ।**
**करवन्दं तथा चान्यदम्लवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥ ७८ ॥**
**चणकाम्लश्च सर्वेषामेक एव प्रशस्यते ।**
**अम्लवेतसमेकं वा सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ।**
**रसादीनां विशुद्ध्यर्थं द्रावणे जारणे हितम् ॥ ७९ ॥**

अम्लवेंत, जम्बीरी नीम्बू बिजौरा नीम्बू, चक्रिका या नोनियाशाक, चणे का खार, इमली, बदरीफल, दाड़िम, अम्बष्ठा ( अम्बाड़ा या अम्ललोणिका ), तिन्तड़ीक-महार्द्रक, नारङ्गी, खट्टापालक या कपित्थ, करोंदा, इनको तथा अन्य जो पदार्थ अम्लरस युक्त हों वे सब अम्लवर्ग के भीतर समाविष्ट हैं। अम्लवर्ग के समग्र पदार्थों में केवल चने की शाक का खार प्रशस्त अम्ल है। अथवा अम्लवर्ग के पदार्थों में केवल अमलवेत श्रेष्ठ है। ये अम्लवर्ग के पदार्थ या इनमें जो श्रेष्ठ हों वे रसादिकों के शोधन, मारण और द्रावणकर्म में प्रयुक्त होते हैं ॥७७-७९॥

अथाम्लपञ्चकम्—

**कोलदाडिमवृक्षाम्लचुल्लिकाचुक्रिकारसः ।**
**पञ्चाम्लकं समुद्दिष्टं तच्चोक्तं चाम्लपञ्चकम् ॥ ८० ॥**

बदरीफल, दाड़िम, वृक्षाम्ल-महार्द्रक या तिन्तिड़ी, चुल्लिका तथा चूके का रस इन पदार्थों को पञ्चाम्ल अथवा अम्लपञ्चक कहते हैं ॥ ८० ॥

अथ पञ्चमृत्तिका—

**इष्टिका गैरिका लोणं भस्म वल्मीकमृत्तिका ।**
**रसप्रयोगकुशलैः कीर्त्तिताः पञ्च मृत्तिकाः ॥ ८१ ॥**

ईंट का चूण, गेरू, लवण, राख, दीमक के गृह की मृत्तिका इनको रसशास्त्र के आचार्यों ने पञ्चमृत्तिका कहा है ॥ ८१ ॥

अथ विषवर्गः—

**शृङ्गीकं कालकूटं च वत्सनाभं सकृत्रिमम् ।**
**पित्तं च विषवर्गोऽयं स वरः परिकीर्त्तितः ॥ ८२ ॥**
**रसकर्मणि शस्तोऽयं तद्भेदनविधावपि ।**
**अयुक्त्या सेवितश्चायं मारयत्येव निश्चितम् ॥ ८३ ॥**

(१) शृङ्गीकविष, (२)कालकूटनामक विष, वत्सनाभ (३)या मीठा तेलिया विष (४)कृत्रिमविष । (५)पित्तविष इस तरह इन पांच विषों को मिलाकर श्रेष्ठ

---

(१) यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम् ।
तत् शृङ्गीकमिति प्राक्तं द्रव्यतत्वविशारदैः ॥

(२) देवासुररणे देवै र्हतस्य पृथुमालिनः ।
दैत्यस्य रुधिराज्जातस्तरुरश्वत्थसन्निभः ॥
निर्यासः कालकूटाऽस्य मुनिभिः परिकीर्तितः ।
सोऽहिक्षेत्रे शृङ्गवरे कोङ्कणे मलये भवेत् ॥

(३) वत्सनामलक्षणं यथा—
सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ।
तत्पार्श्वे न तरा वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥

(४) "सकृत्रिमम्" यहां पर "ससक्तुम्" यह पाठ कहीं २ है वहां पर सक्तुकविष लेना चाहिये । सक्तुकविषलक्षणं यथा—यद्ग्रन्थिः सक्तुकेनैव पूर्णमध्यः ससक्तुकः ।

(५) यह पित्तविष जङ्गमजोवाश्रित है यथाऽत्र सुश्रुतः "दृष्टि निश्वासदंष्ट्रा-नखमूत्रपुरीषशुक्रलालाऽऽतवमुखसन्दंशविशर्द्धितगुदास्थपित्तशुक्रशवानीति" तच्च पित्तं शकुलीमत्स्यरक्तराजीवरकोमत्स्यादीनां बोध्यम् ।

विषवर्ग कहा गया है। यह विषवर्ग रसों के निर्माण या रसकर्म में प्रयुक्त होता है तथा यह विषवर्ग विरेचनकर्म में भी उपयुक्त होता है। इस विषवर्ग को बिना शोधन किये खाने से अथवा अधिक मात्रा में शुद्ध किये हुए को भी खाया जाय तो मृत्यु कर देता है।

राजनिघण्टु में भी विषों का वर्गीकरण इस तरह(१) से मिलता है ॥ ८२-८३॥

अथ उपविषवर्गः—

**लाङ्गली विषमुष्टिश्च करवीरं जया तथा।**
**नीलकः कनकोऽर्कश्च वर्गो ह्युपविषात्मकः ॥ ८४ ॥**

लाङ्गली—कलिहारी, विषमुष्टि-कुचेला, करवीर-कणेर, जया-भांग, नीलक, भल्लातक, कनक-धत्तूरा, आक, ये पदार्थ उपविष में गिने गये हैं। अन्य ग्रन्थों में उपविषवर्ग की गणना इस (२)प्रकार है ॥ ८४ ॥

अथ दुग्धवर्गः—

**हस्त्यश्व-वनिता धेनुर्गर्दभी छागिकाविका।**
**उष्ट्रिकोदुम्बराश्वत्थभानुन्यग्रोधतिल्वकम् ॥ ८५ ॥**
**दुग्धिका स्नुग्गुणश्चैव तथैवोत्तमकण्टिका।**
**एषां दुग्धैर्विनिर्दिष्टो दुग्धवर्गो रसादिषु ॥ ८६ ॥**

हस्तिनी, घोड़ी, वनिता (स्त्री), गाय, गर्दभी (गदही), छागिका (बकरी), अविका (भेड़ी), उष्ट्रिका (ऊंटनी), इन जङ्गम जीवों का दुग्ध तथा स्थावरों में उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल), भानु (मदार) या आक, न्यग्रोध, तिल्वक (लोध्र), दुग्धिका-(दूधी), स्नुग्गण-विविध प्रकार के थूहर, उत्तम

---

(१) शृङ्गीकः कालकूटश्च मुस्तको वत्सनाभकः।
सक्तुकश्चेति योगोऽयं महापञ्चविषाभिधः ॥ १ ॥

(२) "अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकम्।
गुञ्जाहिफेनधुस्तूराः ससोपविषजातयः ॥ १ ॥

अन्यप्रकारेणापि—विषतिन्दुकबीजञ्च त्वहिफेनञ्चरेचकम्।
धत्तूरबीजं विजया गुञ्जाभल्लातकाह्वयः ॥ १ ॥
अर्कक्षीरं स्नुहीक्षीरं लाङ्गली करवीरकम्।
समाख्यातो गणोऽयन्तु बुधैरुपविषाभिधः ॥ २ ॥

कण्टिका-(दन्ती), कुछ लोग दन्ती अर्थ न करके वेतस अश्मन्तक, और एरण्ड, ये तीन अर्थ उत्तम कण्टिका के करते हैं। इनका दुग्ध दुग्धवर्ग में समाविष्ट है। दुग्धवर्ग रसकर्म में प्रयुक्त होता है ॥ ८५-८६ ॥

अथ विड्वर्गः—

**पारावतस्य चाषस्य कपोतस्य कलापिनः।**
**गृध्रस्य कुक्कुटस्यापि विनर्दिष्टो हि विड्गणः ॥**
**शोधनं सर्वलोहानां पुटनाल्लेपनात्खलु ॥ ८७ ॥**

पारावत ( गृहकपोत ), चाष ( स्वर्णचातक ) या नीलकण्ठ, कलापी (मयूर), गृध्र ( गिद्ध ), कुक्कुट (मुर्गा), इनकी विष्ठा को विड्वर्ग कहते हैं। इस विड्वर्ग की विष्ठा को निम्बूरस या काञ्जी से पीसकर लौहों के ऊपर लिप्त करके पुट देते हैं। इस तरह यह विड्वर्ग लोहों के शोधन में उपयुक्त होता है ॥ ८७ ॥

अथ रक्तवर्गः—

**कुसुम्भं खदिरो लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम्।**
**अक्षी च बन्धुजीवश्च तथा कर्पूरगन्धिनी।**
**माक्षिकञ्चेति विज्ञेयो रक्तवर्गोऽतिरञ्जनः ॥ ८८ ॥**

(१)कुसुम्भपुष्प, खदिर (कत्था) लाख, मंजिष्ठा (मजीठ), लालचन्दन, अक्षी (शोभाञ्जन शिग्रु), बन्धुजीव(गुलदुपहरिया), कर्पूरगन्धिनी ( हरिद्राविशेष अथवा कपूरकाचरी) माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक या शहद् ), इन पदार्थों को रक्तवर्ग कहते हैं, तथा ये रक्तवर्ग के पदार्थ धातुओं को रञ्जित करते हैं ॥ ८८ ॥

विमर्श—प्रायः इस वर्गके पदार्थ रक्त की शुद्धि और वृद्धि करते हैं इस कारण ये पदार्थ रक्तवर्ग के नाम से पुकारे जाते हैं। माक्षिक शब्द मधु तथा स्वर्णमाक्षिक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है परन्तु यहां जहां तक स्वर्णमाक्षिक अर्थ ही सङ्गत है किन्तु आगे चल कर रक्तवर्ग के पदार्थों के क्वाथ या स्वरस से भावना देने का निदश आता है ऐसी दशा में माक्षिक शब्द का अर्थ सोनामाखी भी उपयुक्त नही हो सकता क्यों कि उसके द्वारा भावना नहीं दी जाती है अतः माक्षिक का मधु अर्थ भी सङ्गत है। कुछ लोगों का मत है कि माक्षिक के अन्दर जो रङ्ग का भाग है वह पानी में घुल सकता है और उस पानी से भावना दे सकते हैं। ये दोनों सिद्धान्त विज्ञों के सम्मुख

---

( १ ) कुसुम्भपुष्पं सुस्वादुत्रिदोषघ्नं च भेदकम्।
रूक्षमुष्णं पित्तलञ्च वस्त्र (केश) रञ्जकमित्यपि ॥

हैं जैसी स्वीय परम्परा हो ग्रहण करें। लेखक प्रायः भावनास्थल में माक्षिकशब्द का शहद् अर्थ ही उपयुक्त मानता है

अथ पीतवर्गः—

**किंशुकः कर्णिकारश्च हरिद्राद्वितयं तथा।**
**पीतवर्गोऽयमादिष्टो रसराजस्य कर्मणि ॥ ८९ ॥**

किंशुक—पलासपुष्प, कर्णिकार—आरग्वधपुष्प, दोनों प्रकार की हरिद्रा, इन चार पदार्थों को पीतवर्ग कहते हैं। यह पीतवर्ग पारदसिद्धि में प्रयुक्त होता हैं॥८९॥

अथ श्वेतवर्गः—

**तगरः कुटजः कुन्दो गुञ्जा जीवन्तिका तथा।**
**सिताम्भोरुहकन्दश्च श्वेतवर्ग उदाहृतः ॥ ९० ॥**

तगर, कुटज—कूड़े की छाल, कुन्दपुष्प, गुञ्जा—श्वेतगुञ्जा, जीवन्तीशाक श्वेतकमल, कन्द - विदारीकन्द, ये पदार्थ श्वेतवर्ग में प्रयुक्त होते हैं। कुछ लोग 'सिताम्भोरुहकन्दश्च' इस शब्द का अर्थ श्वेतकमल तथा कमलकन्द यह अर्थ भी करते हैं ॥ ९० ॥

अथ कृष्णवर्गः—

**कदली कारवल्ली च त्रिफला नीलिका नलः।**
**पङ्कः कासीसबालाम्रं कृष्णवर्ग उदाहृतः ॥ ९१ ॥**

कदली-केला, कारवेल्ली—वन्यकरेले की लता, त्रिफला (हर्रे, बहेड़े आंवले,) नीलिका-नीलिनी, नल-नरसल, पङ्क-कर्दम ( कीचड़ ), कसीस, बालाम्र-कच्चे आम की मज्जा, इन द्रव्यों को कृष्णवर्ग कहते हैं ॥ ९१ ॥

अथ रक्तवर्गादीनां प्रयोजननिर्देशः—

**रक्तवर्गादिवर्गैश्च द्रव्यं यज्जारणात्मकम्।**
**भावनीयं प्रयत्नेन तद्रागाप्तये खलु ॥ ९२ ॥**

रक्तवर्ग तथा अन्य जो वर्ग कहे गये हैं उनमें से समस्त या व्यस्त अथवा जिसके लिये जिसका मुख्यनिर्देश हो उस पदार्थ के क्वाथ या स्वरस से जारित धातुओं को बारम्बार भावित कर के पुट देना चाहिये। ऐसा करने से उन धातुओं में उस पदार्थ का 'जिससे भावना दी गई है, रङ्ग आ जाता है ॥ ९२ ॥

अथ शोधनीयगणः—

**काचटङ्कणखप्राभिः शोधनीयो गणो मतः ॥ ९३ ॥**

काच—मृत्तिकाविशेष, टङ्कण-सुहागा, शिप्रा-शुक्ति ( मुक्ताशुक्ति ), यह शोधनीय गण कहा गया है ॥ ९३ ॥

अथ लौहमलनाशनगणः—

**सत्त्वानां बद्धसूतस्य लोहानां मलनाशनः ॥**
**कापालीकङ्गुणध्वंसी रसवादिभिरुच्यते ॥ ९४ ॥**

धातुओं का सत्त्व, बद्धपारद तथा अष्ट प्रकार के लौहों के मल को कापाली-अहिंसा ( कांटा गुड़कौंउनी ) कङ्गुण-प्रियङ्गु, ध्वंसी-फलविशेष, ये तीनों द्रव्य नष्ट करते हैं ऐसा रस शास्त्र के आचार्यों का कथन है ॥ ९४ ॥

विमर्शः—कुछ लोग शोधनीयगण के द्रव्यों को ही धातुओं के सत्त्व तथा बद्ध-पारद के कापालिकगण-अर्थात् कपालरोगोत्पादकदुर्गुणों के समूह को नष्ट करता है। ऐसा अर्थ करते हैं।

अथ लौहकाठिन्यनाशको योगः—

**महिषी मेषशृङ्गी च कलिङ्गी धवबीजयुक् ।**
**शशास्थीनि च योगोऽयं लोहकाठिन्यनाशनः ॥ ९५ ॥**

महिषी—भैंस का दुग्ध अथवा महिषनामक कन्द जिसे श्वेतालुक कहते हैं, मेषशृङ्गी—मेढासींङ्गि, कलिङ्ग-इन्द्रयव, धववृक्ष के बीज, खरगोश की अस्थि की भस्म, यह योग लौहादिक कठिन पदार्थों को मृदु करता है ॥ ९५ ॥

अथ द्रावकवर्गः—

**गुडगुग्गुलुगुञ्जाऽऽज्यसारघैष्टङ्गणान्वितैः ।**
**दुर्द्रावाखिललोहादेर्द्रावणाय गणो मतः ॥ ९६ ॥**

गुड़, गुग्गुल, गुञ्जा (घुंघची), घृत, सारघ अर्थात् शहद् और सुहागा ये पदार्थ द्रावकवर्ग में समाविष्ट हैं। इन पदार्थों के साथ कठिनता से पिघलने वाली धातुओं को मिलाकर उनका द्रवण करना चाहिए ॥ ९६ ॥

अथ क्षारादिकानां कार्यम्—

**क्षाराः सर्वे मलं हन्युरम्लं शोधनजारणम् ।**
**मान्द्यं विषाणि निघ्नन्ति स्नैग्ध्यं स्नेहाः प्रकुर्वते ॥ ९७ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये मूषाकोष्टिकापुटादिकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

क्षारवर्ग के पदार्थ मल नष्ट करते हैं अर्थात् क्षारवर्ग के पदार्थों के साथ धातुओं को घोट कर पुट देने से उनका मल भाग (किट्टभाग) नष्ट हो जाता है। अम्लवर्ग के पदार्थों के स्वरस या क्वाथ से धातुओं का शोधन और जारण धातुओं को घोट कर पुट देने से उनकी मन्दता नष्ट होती है। तैल आदि स्नेह-वर्ग के पदार्थों के साथ धातुओं का शोधन अथवा मारण करने से इनके अन्दर की रुक्षता नष्ट होकर उनमें स्निग्धता उत्पन्न होती है ॥ ९७ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरलोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां मूषाकोष्ठिकापुटादिकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

## एकादशोऽध्यायः।

अथ रसशोधनादिकथनम्—

अथ मानपरिभाषा—

षट्त्रुटयश्चैकलिक्षा स्यात्षड्लिक्षा यूकमुच्यते।
षड्यूकास्तु रजःसंज्ञं कथितं तव सुव्रते ॥ १ ॥
षड्रजः सर्षपः साक्षात्सिद्धार्थः स च कीर्तितः।
षट्सिद्धार्थेन देवेशि यवस्त्वेकः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥
षड्यवैरेकगुञ्जा स्यात्त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते।
षड्भिरेव तु गुञ्जाभिर्माष एकः प्रकीर्तितः ॥
माषा द्वादश तोलः स्यादष्टौ तोलाः पलं भवेत् ॥ ३ ॥

छ त्रुटियों की एक लिक्षा ( लीक ) होती है और छ लिक्षाओं के बराबर एक यूका ( जूं ) होती है और छ यूकाओं के समान एक रज ( कण ) तथा छ कणों की एक सरसों होती है इसी को सिद्धार्थ भी कहते हैं। छ सरसों के बराबर एक यव ( जौ ) होता है छ यवों का एक गुञ्जा होती है और तीन गुञ्जाओं के समान १ वल्ल होता है तथा छ गुञ्जाओं अर्थात् २ वल्ल का १ माशा होता है, १२ माशे का १ तोला होता है, और ८ तोलों का एक पल होता है।

त्रुटि शब्द का अर्थ यद्यपि भिन्न २ है किन्तु यहां पर छ परमाणुओं के बराबर और त्रसेरणु का पर्य्यायवाचक त्रुटि शब्द माना गया है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में यह तात्पर्य इस तरह है—

परमाणुद्वयेनाणु स्त्रसरेणुस्तु ते त्रयः"इति।
परमाणुषट्कात्मकं द्वयणुकत्रयात्मकं रजस्त्रुटिः॥ १—३॥

अथ मानपरिभाषायां मतान्तरम्—

त्रुटिः स्यादणुभिः षड्भिस्तैर्लिक्षा षड्भिरीरिता।
ताभिः षड्भिर्भवेद्यूका षड्यूकास्तद्रजः स्मृतम्॥ ४॥
षड्रजः सर्षपः प्रोक्तस्तैः षड्भिर्यव ईरितः।
एका गुञ्जा यवैः षड्भिर्निष्पावस्तु द्विगुञ्जकः॥ ५॥
स्याद्गुञ्जात्रितयं वल्लो द्वौ वल्लौ माष उच्यते।
द्वौ माषौ धरणं ते द्वे शाणनिष्ककलाः स्मृताः॥ ६॥
निष्कद्वयन्तु वटकः स च कोल इतीरितः।
स्यात्कोलत्रितयं तोलः कर्षो निष्कचतुष्टयम्॥ ७॥
उदुम्बुरं पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः।
अक्षं बिडालपदकं शुक्तिः पाणितलद्वयम्॥ ८॥
शुक्तिद्वयं पलं केचिदन्ये शुक्तित्रयं विदुः।
तदेव कथितं मुष्टिः प्रकुञ्चो बिल्वमित्यपि॥ ९॥
पलद्वयं तु प्रसृतं तद्द्वयं कुडवोऽञ्जलिः।
कुडवौ मानिका तौ स्यात्प्रस्थौ द्वे मानिके स्मृतः॥ १०॥
प्रस्थद्वयं शुभं तौ द्वौ पात्रकं द्वयमाढकम्।
तैश्चतुर्भिर्घटोन्माननलवनार्मणशूर्पकाः॥ ११॥
द्रोणस्य शब्दाः पर्यायाः पलानां शतकं तुला।
चत्वारिंशत्पलशत-तुला भारः प्रकीर्तितः॥ १२॥
रसार्णवादिशास्त्राणि निरीक्ष्य कथितं मया।
रसोपयोगि यत्किञ्चिद्दिङ्मात्रं तत्प्रदर्शितम्॥ १३॥

छ अणुओं की १ त्रुटि होती है तथा छ त्रुटियों के बराबर १ लिक्षा (लीक) और छ लीकों की एक यूका तथा छ यूकाओं के बराबर १ रज (कण), छ कणों

का एक सर्षप, छ सरसों का १ यव होता है, और ६ यवों की १ एक गुञ्जा, दो गुञ्जाओं के समान १ निष्पाव ( मटर ) तथा ३ गुञ्जाओं के समान १ वल्ल, दो वल्ल का १ माशा, दो माशे का १ धरण और २ धरण का १ शाण होता है, शाण को निष्क और कला भी कहते हैं। २ निष्क के बराबर १ वटक होता है इसको कोल भी कहते हैं। ३ कोल के समान १ तोला होता है । ४ निष्क का १ कर्ष होता है इस को उदुम्बर, पाणितल, सुवर्ण, कवलग्रह, अक्ष तथा विड़ालपदक कहते हैं। दो पाणितल ( २ कर्ष ) की १ शुक्ति होती है। तथा दो शुक्तियों का १ पल होता है। कोई २ परिभाषाशास्त्र के आचार्य ३ शुक्तियों का एक पल मानते हैं पल को ही मुष्टि, बिल्व और प्रकुञ्च भी कहते हैं। २ पल का १ प्रसृत तथा दो प्रसृत का १ कुड़व होता है। कुड़व का दूसरा नाम अञ्जलि है। दो कुड़व की १ मानिका तथा दो मानिका का १ प्रस्थ होता है। दो प्रस्थ का १ शुभ, दो शुभ का १ पात्रक और दो पात्रक का १ आढक होता है तथा चार आढक का १ द्रोण होता है। द्रोण के घट, उन्मान, नल्वण, अर्मण और शूर्प ये दूसरे पर्य्यायवाचक नाम हैं। १०० पल की १ तुला होती है। १०० पल के बराबर स्वीकृत जो १ तुला है उस तुला का ४० गुना अर्थात् ४० तुला का एक भार होता है ( पलशतात्मकतुलायाः चत्वारिंशत्तुलया एकोभारः ) चरकसम्मत मागधमान का भार २० तुला या दो हजार पल का होता है। अतः यह भार उससे दुगुना हुआ। "पलानां द्वे सहस्रञ्च भार एकः प्रकीर्तितः" अन्यच्च "भारः स्याद्विंशतितुलाः" उपर्युक्त रसशास्त्र के उपयोगी परिभाषा को मैंने रसार्णव ( रस सागर) आदि अनेक रसशास्त्रों का निरीक्षण करके दिङ्मात्र यहां लिखा है॥४-१३॥

अथाष्टादशसंस्काराः—

**अधुना रसराजस्य संस्कारान् सम्प्रचक्षमहे ॥ १४ ॥**

**स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छने च उत्थापनं पतनरोधनियामनानि ।**
**सन्दीपनं गगनभक्षणमानमत्र सञ्जारणा तदनु गर्भगता द्रुतिश्च ॥१५॥**
**बाह्याद्रुतिः सूतकजारणा स्याद् ग्रासस्तथा सारणकर्म पश्चात् ।**
**सङ्क्रामणं वेधविधिः शरीरे योगस्तथाष्टादशधाऽत्र कर्म ॥ १६ ॥**

सम्प्रति सर्वरसों में श्रेष्ठ पारद के संस्कारों का परिगणन किया जाता है। १ स्वेदन, २ मर्दन, ३ मूर्च्छन, ४ उत्थापन, ५ त्रिविधपातन, ६ रोधन, ७

नियामन, ८ सन्दीपन, ९ गगनभक्षणमान, १० सञ्चारणा, ११ गर्भद्रुति, १२ बाह्यद्रुति, १३ जारणा, १४ ग्रास, १५ सारण, १६ सङ्क्रामण, १७ वेध, १८ योग, ये पारद के १८ संस्कार हैं। रसेन्द्रचिन्तामणि में इन संस्कारों के नाम में कुछ परिवर्त्तन है, यथा—१ स्वेदन, २ मर्दन, ३ मूर्च्छन, ४ उत्थापन, ५ पातन, ६ बोधन, ७ नियमन, ८ दीपन, ९ अनुवासन, १० गगनभक्षण, ११ ग्रासप्रमाण, १२ चारण, १३ गर्भद्रुति, १४ बाह्यद्रुति, १५ जारण, १६ रञ्जन, १७ सारण, १८ क्रामण वेधभक्षणानि च ॥ १४–१६ ॥

अथ व्याधिविशेषे रसप्रयोगनिषेधः—

**न योज्यो मर्मणि छिन्ने नच क्षाराग्निदग्धयोः ॥ १७ ॥**

किसी मर्मस्थान के कटजाने पर तथा क्षार ( तेजाब इत्यादि ) और अग्नि से जल जाने पर जब तक वे ठीक न हों तब तक पारद या पारदमिश्रित योगों का सेवन नहीं करना चाहिए ॥ १७ ॥

अथ शुद्धमूर्च्छितरसगुणाः—

**शुद्धः स मृद्वग्निसहो मूर्च्छितो व्याधिनाशनः ॥ १८ ॥**

यथाविधि शुद्ध किया हुआ पारद अग्नि को सहन कर सकता है, अर्थात् उसकी अग्नि के संयोग से तुरन्त उड़ने की शक्ति होती है वह कम हो जाती है। यथाविधि गन्धकादिक के साथ मूर्च्छित किये हुए पारद के सेवन करने से अनेक व्याधियां नष्ट हो जाती हैं ॥ १८ ॥

अथ मृतपारदगुणाः—

**निष्कम्पवेगस्तीव्राग्नावायुरारोग्यदो मृतः ॥ १९ ॥**

यथाविधि मृत ( भस्म किया हुआ ) पारद चाञ्चल्यादिकवेग से रहित हो जाता है तथा तीव्र अग्नि पर भी नहीं उड़ता है और ऐसे पारद के सेवन से आयु बढ़ती है तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥

अथ रसदोषास्तेषांकार्याणि च—

**विषं वह्निर्मलश्चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः।**
**रसे मरणसन्तापमूर्छानां हेतवः क्रमात् ॥ २० ॥**
**योगिकौ नागवङ्गौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकुष्ठदौ ॥**
**औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्तकञ्चुकाः ॥ २१ ॥**

भूमिजा गिरिजा वार्जा ते च द्वे नागवङ्गजौ ॥ २२ ॥
द्वादशते रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः ॥ २३ ॥
पर्पटी पाटिनी भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अन्धकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कञ्चुकाः ॥ २४ ॥
भूमिजाः कुर्वते कुष्ठं गिरिजा जाड्यमेव च ।
वारिजा वातसङ्घातं दोषाढ्यं नागवङ्गयोः ॥ २५ ॥
तस्मात्सूतविधानार्थं सहायैर्निपुणैर्यतः ।
सर्वोपस्करमादाय रसकर्म समारभेत् ॥ २६ ॥

अशुद्ध या खनिज पारद के अन्दर विष, वह्नि, मल, ये ३ दोष स्वाभाविक रहते हैं। इन दोषों से युक्त पारद के सेवन करने से क्रम से ये दोष मनुष्य के मरण, सन्ताप और मूर्च्छा के निमित्त कारण बनते हैं। पारद के नाग और वङ्ग ये दो यौगिक दोष हैं अर्थात् ये दोष खान में संसर्ग से पारद के अन्दर उत्पन्न होते हैं, अथवा व्यापारी लोग इन दोनों धातुओं को पारद में मिला देते हैं। इन दोषो से युक्त पारद का सेवन करने से ये दोष जाड्य, आध्मान और कुष्ठ पैदा करते हैं। इन दो दोषों के सिवाय पारद में सप्तकञ्चुक ( सात आवरण ) दोष भी होते हैं। ये सप्तकञ्चुकदोष औपाधिक दोष हैं। ये दोष भूमि, पर्वत और जल से उत्पन्न होते हैं। पारद के अन्दर पूर्वोक्त ३ ( विष, वह्नि, मल ) दोष तथा ७ कञ्चुकदोष, और नाग तथा वङ्ग ये दो दोष, इस तरह सब मिलकर १२ दोष होते हैं। पर्पटी, पाटिनी, भेदी, द्रावी, मलकरी, अन्धकारी, ध्वांक्षी, ये कञ्चुकों के सात नाम हैं। पारद के भूमि से उत्पन्न कञ्चुक दोष कुष्ठरोग उत्पन्न करते हैं। गिरि से उत्पन्न कञ्चुक दोष, जाड्यता, ( यथार्थज्ञानाभाव या सदसद्विचारशून्यता ) तथा जल से उत्पन्न कञ्चुक दोष वातव्याधि और नाग तथा वङ्गदोष नानाप्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं। इन दोषों से पारद को मुक्त करने के लिये विद्वान् वैद्य को चाहिए कि प्रथम पारदसंस्कार करने में जितने उपयोगी उपकरण हों उन्हें एकत्रित करके निपुण परिचारकों से युक्त होकर पारद के संस्कार प्रारम्भ करे ॥ २०–२६ ॥

अथ संस्कारार्थं पारदस्य परिणामनिर्देशः—

द्वे सहस्रे पलानां तु सहस्रं शतमेव वा ।
अष्टाविंशत्पलान्येव दश पञ्चैकमेव वा ॥ २७ ॥

**पलार्धेनैव कर्त्तव्यः संस्कारः सूतकस्य च ।**
**सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमारभेत् ॥ २८ ॥**

पारद का संस्कार करने के लिये अधिक से अधिक दो हजार पल पारद लें, अथवा एक हजार, या सौ पल, २८ पल, या १० पल या ५ पल पारद लें, अथवा १ पल या आधा पल ही पारद संस्कार करने के लिये ग्रहण करें । दो हजार पल से अधिक और आधे पल से कम पारद संस्कार के लिये ग्रहण करना उचित नहीं है, क्यों कि मात्रा से ज्यादा लेने पर कार्य ठीक नहीं होता है और मेहनत भी अधिक करनी पड़ती है । तथा मात्रा से अल्प लेने में उपकरण प्रायः उतने ही एकत्रित करने पड़ते हैं तथा स्वल्प कार्य होने से मेहनत से फल नहीं होती है, जिस तरह महान पर्वत को खोदने से चूहा प्राप्त हो, इस लिये बुद्धिमान् वैद्य को चाहिए कि अपनी आवश्यकता के अनुसार उचित मात्रायुक्त पारद लेकर शुभवार नक्षत्र, तथा ग्रहबल से युक्त दिन हो तब पारद की संस्कारक्रिया प्रारम्भ करें । रसेन्द्रसारसंग्रह में पारदग्रहणपरिमाण जिस तरह है उसे टिप्पणी नं० १ में देखें ॥ २७-२८ ॥

अथ स्वेदनसंस्कारः—

**त्र्यूषणं लवणासूर्यौ चित्रकार्द्रकमूलकम् ।**
**क्षिप्त्वा सूतो मुहुः स्वेद्यः काञ्जिकेन दिनत्रयम् ॥ २९ ॥**

शुण्ठीचूर्ण, मरिचचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, सेंधानीमक, राई, चित्रकचूर्ण, आर्द्रक और मूली ये सब पदार्थ मिलाकर जितना पारद हो उससे आधी मात्रा में लेकर पत्थर की खरल में इनके साथ पारद को खूब घोट कर गोला बना लें । फिर इस

---

( १ ) यथा—रसो ग्राह्यः सुनक्षत्रे पलानां शतमात्रकम् ।
पञ्चाशत् पञ्चविंशद्वा दशपञ्चैक मेव वा
पलाद्धीनो न कर्तव्यो रससंस्कार उत्तमः ॥
अन्यच्च—शतं पञ्चाशतं वाऽपि पञ्चविंशद्दशैव च ।
पञ्चैकं वा पलञ्चैव पलार्द्धं कर्षमेव च ॥
कर्षान्न्यूनो न कर्तव्यो रससंस्कार उत्तमः ।
प्रयोगेषु च सर्वेषु यथालाभं प्रकल्पयेत् ॥

गोले को तीन या चार वार पर्त किये हुए मजबूत स्वच्छ वस्त्र में बांधकर एक मिट्टि की हण्डिका में काञ्जी भर कर उस काञ्जी में इस गोले को लटका कर (अर्थात् दोलायंत्र विधि से) चूल्हे पर मध्यम अग्नि से तीन दिन तक स्वेदन करें। यदि काञ्जी कम हो जाय तो फिर हण्डिका को भर देवें। अथवा उपर्युक्त पदार्थों का कल्क बनाकर इस कल्क से वस्त्र को एक अङ्गुल लिप्त कर (वस्त्र के जितने भाग में पारद रहे उतने ही भाग पर कल्क को पोतना चाहिए) उसमें पारद डाल कर पोट्टली बनाकर एक डोरे से पोट्टली की ग्रीवा में बन्धन लगा दें, फिर पोट्टली के शेष वस्त्र को एक डण्डे में बांधकर डण्डे के दोनों किनारे काञ्जी से भरी हुई हण्डिका के किनारों पर रख कर पोट्टली को हण्डिका में भरी हुई काञ्जी में लटका दें, (ध्यान रहे कि पोट्टली काञ्जी के मध्य में ही रहे तथा हण्डिका की तली से कुछ ऊपर ही लटकी रहनी चाहिए) फिर चूल्हे पर हण्डिका को रख कर मध्यम अग्नि जलानी चाहिए। इस तरह तीन दिन तक स्वेदन करें। प्रतिदिन काञ्जी नई डालनी चाहिए। जहां तक हो सके यदि कल्क भी नया बना कर वस्त्र पर लीप कर उपर्युक्त विधि से पारा डाल कर पोट्टली बनावें तो उत्तम ही है। रसशास्त्रों में स्वेदन का लक्षण जिस प्रकार है उसे टि० नं० (१) में पढिए॥ २९॥

अथ मर्दनसंस्कारः—

गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधि गुडान्वितम्।
लवणासुरिसंयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत्॥ ३०॥
षोडशांशन्तु तद्द्रव्यं सूतमात्रियोजयेत्।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत्॥ ३१॥
जीर्णाभ्रकं तथा बीजं जीर्णसूतं तथैव च।
नैर्मल्यार्थं हि सूतस्य खल्ले धृत्वा विमर्दयेत्॥ ३२॥
गह्णाति निर्मलो रागान् ग्रासे ग्रासे विमर्दितः।
मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत् सूतगुणकृद्भवेत्॥ ३३॥

रसोई घर का धुआं, लाल ईटों का चूर्ण, दधि, गुड़, सेंधा नीमक, राई, ये

---

(१) दोलायन्त्रे स्थापयित्वा रसेन्द्रं क्षारैरम्लैरौषधैर्वा कषायैः।
युक्त्या यत्स्यात् पाचनं स्वेदनं तत् प्राज्ञैरुक्तं दोषशैथिल्यकारि॥ इति र०त०

प्रत्येक द्रव्य पारद से सोलहवीं मात्रा ( षोड़शांशभाग ) के अनुसार एकत्रित कर पाषाणखल्व में सब को डाल कर स्वेदनसंकार से संस्कृत पारद को मिला कर जल के साथ तीन दिन तक घोटे कुछ विद्वानों का सम्प्रदाय है कि प्रतिदिन उपर्युक्त पदार्थ उपर्युक्त मात्रा के अनुसार लेकर डालना चाहिए तथा कुछ विद्वानों की यह राय है कि उपर्युक्त पदार्थों में से प्रत्येक पदार्थ के साथ तीन तीन दिन पारद को घोटना चाहिए, किन्तु बहुमत यही है कि सब पदार्थ मिलाकर पारद को उन के साथ डाल कर कुछ जल या काञ्जी डालकर घोटना अर्थात् मर्दन(१)करनाचाहिए।

उपर्युक्त विधि से तीन दिन तक मर्दन करने के पश्चात् पारद के निर्मल होने के लिये जीर्ण अभ्रक भस्म, बीज—स्वर्णभस्म और रजतभस्म ( शुद्धं स्वर्णञ्च रौप्यञ्च बीजमित्यभिधीयते ) तथा जीर्ण पारद ये तीनों पृथक् २ पारद की अपेक्षा षोड़शांश मात्रा में लेकर क्रमशः पारद के साथ खल्व में डालकर घोटना चाहिए। इस तरह ज्यों ज्यों पारद उपर्युक्त अभ्रकादिकों का ग्रास करता जायगा त्यो त्यों उसमें उत्तरोत्तर गुण वृद्धि तथा सुन्दर रङ्ग उत्पन्न होंगें। इस प्रकार मर्दन संस्कार से पारद के अन्दर अनेक शरीर के हितकारक गुण प्रगट होते हैं ॥ ३०–३३ ॥

अथ मूर्छनसंस्कारः—

**गृहकन्या मलं हन्यात् त्रिफला वह्निनाशिनी।**
**चित्रमूलं विषं हन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः ॥ ३४ ॥**
**मिश्रितं सूतकं द्रव्यैः सप्तवाराणि मूर्च्छयेत्।**
**इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतो दोषशून्यः प्रजायते ॥ ३५ ॥**

यथोक्त औषधियों के साथ पारक को खल्व में अत्यन्त घोट कर उसे पिष्टी स्वरूप में करना यही (२)मूर्च्छन का अभिप्राय है।

पारद को गृहकन्या—घृतकुमारी के रस ( मज्जा ) के साथ खल्व में सात

---

( १ ) मर्दनलक्षणं यथा—
क्षाराद्यैरौषधै र्वा यत् खल्वे सूतस्य पेषणम्।
तन्मर्दनं बुधैः प्रोक्तं बहिर्मलनिवृत्तये ॥ इति ॥

( २ ) यथा—मर्दनोद्दिष्टभैषज्यै र्नष्टपिष्टत्वकारकम्।
तन्मूर्च्छनं हि वज्राहिमलादिदोषनाशनम् ॥ इति ॥

दिन तक घोटने से उसका मलदोष नष्ट होता है। त्रिफला तथा कुछ जल या काञ्जी के साथ पारे को सात दिन तक घोटने से उसका वह्निदोष नष्ट होता है तथा चित्रक के मूल के चूर्ण या स्वरस के साथ सात दिन तक घोटने से उसका विषदोष दूर हो जाता है। इस प्रकार पारद को उपर्युक्त द्रव्यों के साथ मिलाकर पृथक् २ घोटने से वह मूर्च्छित हो जाता है तथा उसके सर्वदोष विशेष करके मलदोष, वह्निदोष तथा विषदोष नष्ट हो जाते हैं। अन्य ग्रन्थों में पारदमूर्च्छन(१) की भिन्न विधियां लिखी हैं ॥ ३४–३५ ॥

अथ उत्थापनसंस्कारः—

**अस्माद्विरेकात्संशुद्धो रसः पात्यस्ततः परम् ।**
**उद्धृतः काञ्जिकक्काथात्पूतिदोषनिवृत्तये ॥ ३६ ॥**

उपर्युक्त मूर्च्छन संस्कार से शुद्ध हुआ पारद पिष्टि के स्वरूप में हो जाता है अतः उसको फिर अपने स्वरूप में लाने के लिये उसका उत्थापन करना चाहिए, यह उत्थापन संस्कार विविध प्रकार से किया जाता है।

यथा प्रथमविधि—नष्टपिष्ट पारद को खल्व में डालकर काञ्जी के साथ तेज धूप में एक प्रहर तक घोट कर फिर चार तह किये हुए वस्त्र से छान कर जल से धो लेना चाहिए।

द्वितीयविधिः—नष्टपिष्ट पारद को खल्व में डाल कर जम्बीरी निम्बू की मज्जा या रस के साथ तेज धूप में तीन प्रहर तक घोट कर वस्त्र से छान कर जल से धो डालना चाहिए।

तृतीयविधि—मूर्च्छित पारद को दोलायन्त्र की विधि से काञ्जी के अन्दर १ प्रहर तक स्वेदन करके अम्लरस से प्रक्षालित करलेना चाहिए।

चतुर्थविधिः—सुहागा, पञ्चलवण, शहद इनके साथ पारद को घोटकर उसका

---

(१) मतान्तरेण पारदस्य मूर्च्छनं यथा—

यवाग्रजः स्वर्जिका च तथा लवणपञ्चकम् ।
अम्लौषधानि विबुधः प्रक्षिप्य सूतके दृढम् ॥
तावत् सुपेषयेद्यावन्नष्टपिष्टत्वमाप्नुयात् ।
इत्थं सम्मूर्च्छितः सूतो विमुञ्चति मलत्रयम् ॥ इति ।

गोला बनाकर काञ्जी या अम्लरस में दोलायन्त्र की विधि से स्वेदन करना चाहिए। इस तरह तीन बार स्वेदन करने से पारद उत्थित हो जाता है अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। नष्टपिष्ट पारद को फिर अपने स्वरूप में ले आना यही उत्थापन संस्कार का तात्पर्य(१) है। इस संस्कार से पारद का पूति दोष नष्ट होता है॥ ३६॥

अथ पातनसंस्कारः—

**ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वभाजने।**
**वङ्गनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः॥ ३७॥**

उपर्युक्त संस्कारों के करने के पश्चात् पारद के पातन संस्कार करने चाहिए। पारद की अपेक्षा चौथाई भाग शुद्ध ताम्र का चूर्ण लेकर उसके साथ पारद को खल्व में नींबू के रस से घोट कर मिट्टी की हण्डिका के भीतरी तल में लेप कर दूसरी समान हण्डिका के मुख के साथ जोड़कर डमरू स्वरूप का यन्त्र बनाकर दोनों की सन्धियों को चिकनी मिट्टी (मल्तानीमिट्टी) से लिप्त की हुई वस्त्रों की पट्टिकाओं के द्वारा सावधानी से (मज़बूती से) बन्दकर सुखा देवें। नीचे की हण्डिका के अधोभाग पर भी चिकनी मिट्टी का एक लेप कर देना चाहिए। फिर इस यन्त्र को चूल्हे पर चढाकर प्रायः ३ या ४ प्रहर तक मध्यमाग्नि या कुछ तीव्राग्नि की आंच देनी चाहिए। पास में एक पात्र में शीतल जल भरकर उस जल में तीन या चार बार पर्त किये हुए दो जोड़े कपड़ों के लत्ते भिगो कर ऊपर की हण्डिका के पृष्ठभाग पर शीतलता पहुंचाने के लिये रखने चाहिए। तीन या चार मिनिट के बाद ऊर्ध्वहण्डिका के पृष्ठ से गरम हुए लत्ते को शीतल जल में डाल देना चाहिए और दूसरे शीतल लत्ते को उस पृष्ठ पर रखना चाहिए। इस तरह नीचे की हण्डिका से पारद उड़कर ऊपरि हण्डिका के भीतरी पृष्ठ में शीतलता को प्राप्त कर कणों के रूप में चिपक जाता है। स्वाङ्गशीत यंत्र को धीरे से चूल्हे से उतार कर उसीकी सन्धि तोड़ कर ऊपरि हण्डिका के अन्दर लगे हुए पारद को किसी वस्त्र या कागज से खरोंच कर साफ वस्त्र से काच की कटोरी या पाषाण की कटोरी अथवा शुद्धपाषाण खल्व में छान लेना चाहिए। इस तरह ऊर्ध्वपातन संस्कार से पारद नाग और वङ्ग दोनों

(१) स्वेदातपादियोगेन स्वरूपाऽऽपादनं हि यत्।
तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम्॥ इति॥

दोषों से रहित होकर ऊपरी हण्डिका में जा लगता है। नागवङ्ग नीचे ही रह जाते हैं। ज्यादा टपकते हुए लत्ते हण्डिका पर नहीं रखना चाहिए ॥ ३७ ॥

अथोर्द्ध्वाधःपातनयोःसङ्ख्यानिर्देशः—

**शुल्वेन पातयेत्पिष्टीं त्रिधोर्ध्वं सप्तधा त्वधः ॥ ३८ ॥**

उपर्युक्त विधि से प्रत्येक वार ताम्र के साथ पारद को घोट कर तीन वार उसका ऊर्ध्वपातन करना चाहिए और वक्ष्यमाण रीति से सात वार अधःपातन करना चाहिए ॥ ३८ ॥

अथाधःपातनविधिः

**त्रिफला शिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ।**
**नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेच्चोर्ध्वभाजने ॥**
**ततो दीप्तैरधःपातमुत्पलैस्तत्र कारयेत् ॥ ३९ ॥**

त्रिफला—हरीतकीचूर्ण, बिभीतकचूर्ण, आमलकचूर्ण, शिग्रु—सहजन का चूर्ण, शिखी—अपामार्ग का चूर्ण, सैंधानीमक, आसुरी—राई का चूर्ण, ये प्रत्येक चूर्ण पारद से सोलहवें परिमाण से लेकर खल्व में डाल कर पारा मिला दें, फिर कुछ काञ्जी डालकर पारद को खूब घोट कर जब उसका स्वरूप नष्ट होकर पिष्टि बन जाय तब उसको ऊपरी हण्डिका के भीतरी भाग में लेप कर दें, और नीचे की हण्डिका में शीतल जल भर दें, फिर पारद से लिप्त हण्डिका का मुख नीचे की जल भरी हण्डिका के मुख से जोड़ कर दोनों की सन्धिबन्धन कर के पृथ्वी के भीतर गड्ढा ( जिसमें यह यंत्र पूरा बैठ सके, केवल ऊपरी हण्डिका का पृष्ठ पृथ्वी की सतह तक रहना चाहिए ) खोद कर उसमें यंत्र को रख दें, फिर ऊर्ध्वहण्डिका पृष्ठ के ऊपर के जंगली कण्डों को जमा कर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए, उपले प्रायः गजपुट के उपलों के बराबर होने चाहिए । इस तरह अग्नि के ताप से पारद नीचे के शीतलजल में गिर जाता है। स्वाङ्गशीतयंत्र को गड्ढे से निकालकर पानी में के पारद को वस्त्र से छान लेना चाहिए। इस तरह सात बार पारद का अधःपातन करना चाहिए। प्रत्येक वार उपर्युक्त औषधियों के साथ घोटना चाहिए ॥ ३९ ॥

अथ पातने प्रकारान्तराणि—

**हरिद्राऽङ्कोलशम्पाककुमारीत्रिफलाग्निभिः ।**
**तण्डुलीयकवर्षाभूहिङ्गुसैन्धवमाक्षिकैः ॥ ४० ॥**

**पिष्टं रसं सलवणैः सर्पाक्ष्यादीभिरेव वा ।**
**पातयेदथवा देवि व्रणघ्नीयत्तलोचनैः ॥ ४१ ॥**
**इत्थं ह्यधोर्ध्वपातेन पातितोऽसौ यदा भवेत् ।**
**तदा रसायने योग्यो भवेद्द्रव्यविशेषतः ॥ ४२ ॥**
**अथवा दीपकयन्त्रे निपातितः सर्वदोषनिर्मुक्तः ॥ ४३ ॥**

हरिद्रा, अङ्कोल, शम्पाक-अमलतासफलमज्जा, कुमारी-घृतकुमारी का पाठा, त्रिफला-हरीतकीचूर्ण, विभीतक चूर्ण, आमलकचूर्ण, अग्नि-चित्रकमूलचूर्ण, तण्डुलीयक-जंगली कांटों वाली चोलाई, वर्षाभू-पुनर्नवाचूर्ण, हिंगुल या हींगोठ का चूर्ण, सैन्धवलवण, माक्षिक—शहद्, शेष चारों लवण तथा सर्पाक्षी—गन्धनाकुली, आदिशब्द से वक्ष्यमाण सर्पाक्ष्यादिगण(१) की औषधिएं तथा व्रणघ्नी-जङ्गली करेला, यक्ष-न्यग्रोध ( वट ) की छाल का चूर्ण, लांवन-जीरा का चूर्ण इन में से प्रथम हरिद्रा से माक्षिक तक जितने द्रव्य हैं उनमें प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण पारद से सोलहवें भाग की मात्रा से ग्रहण कर खल्व में डाल दे, फिर पारद को भी डाल कर जल या काञ्जी के साथ नष्टपिष्ट हो जाय ऐसा घोट कर अधःपातन यंत्र की ऊपरी हण्डिका में लिप्त कर नीचे की हण्डिका में जल भर के दोनों की सन्धि बन्द कर के पृथ्वी में गाड़ कर ऊपर उपलों की अग्नि जला देवें । स्वाङ्गशीत पारद को निकाल कर वस्त्र से छान लें । अथवा पांचों लवण और सर्पाक्ष्यादिगणोक्त औषधियों को पारद से षोडशांशमात्रा के प्रमाण से लेकर उनके साथ काञ्जी या जल से पारद की पिष्टी बना कर प्रोक्तविधि से अधःपतन कर लेवे । अथवा क्षुद्रकरेला, न्यग्रोध की छाल का चूर्ण, जीरे का चूर्ण—ये सब द्रव्य खरल में डाल कर पारद को इनके साथ कुछ जल या काञ्जी के संयोग से अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर अर्थात् नष्टपिष्ट करके प्रोक्तविधि से अधःपातन कर लेना चाहिए । अथवा नवमाध्याय में कहे हुए दीपकयंत्र से पारद को उड़ा कर ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार विशेष द्रव्यों के साथ ऊर्द्ध्व और अधःपातन संस्कारों के द्वारा उड़ाया हुआ पारद रसायन कार्य में प्रयोग करने योग्य हो जाता है ॥ ४०-४३ ॥

अथ तिर्य्यक्पातनम्—

**तिर्यक्पातनविधिना निपातितः सूतराजस्तु ।**

---

( १ ) "सर्पाक्षी क्षीरिणी वन्ध्या मत्स्याक्षी शङ्खपुष्पिका" ।

श्लक्ष्णीकृतमभ्रदलं रसेन्द्रयुक्तं तथाऽऽरनालेन ॥ ४४ ॥
खल्वे दत्त्वा मृदितं यावत्तन्नष्टपिष्टतामेति ।
कुर्यात्तिर्यक्पातनपातितसूतं क्रमेण दृढवह्निम् ॥ ४५ ॥
संस्वेद्यः पात्योऽसौ न पतति यावद्दृढश्चाग्नौ ।
तदाऽसौ शुद्ध्यते सूतः कर्मकारी भवेद्ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

ऊर्ध्व और अधःपातन करने के पश्चात् तिर्यक्पातन विधि से उड़ाया हुआ पारद सब दोषों से मुक्त हो जाता है ।

अथतिर्य्यक्पातनविधिः—शुद्ध अभ्रकपत्र पारद से चतुर्थांशमात्रा के प्रमाण से लेकर खल्व के अन्दर पारद और अभ्रक को डाल कर काञ्जी के साथ खूब घोटना चाहिए । जब घोटते २ पारद नष्टपिष्ट होकर पिष्टि के रूप में हो जाय तब उसको एक घट के भीतरी तलप्रदेश में लीप दें अथवा ऐसे ही रख कर उस घट का मुख शराव से आच्छादित कर के चिकनी मिट्टी से सन्धिबन्धन कर दें । पश्चात् एक दूसरे घट के भीतर शीतल जल भरकर उसका भी मुख शराव से आच्छादित कर के मिट्टी से सन्धिबन्धन कर दें । फिर पारदयुक्त घट को चूल्हे या छोटी भट्टी ( जो कि जमीन से आधा या एक हस्त ऊंची हो ) पर रख कर उस के पार्श्व भाग में जलपूरितघट रख दें । पारद के घट की ग्रीवा से कुछ नीचे तथा मध्यभाग से कुछ ऊपर युक्ति से एक छिद्र बना कर उस में बांस की या अन्य पतड़े की तिरच्छी बनी हुई नलिका का एक भाग प्रविष्ट कर के छिद्रों को मिट्टि से बन्द कर देना चाहिए । नलिका का ज्यादा भाग भीतर नहीं प्रविष्ट करना चाहिए । फिर उस नली का दूसरा भाग या मुख जल से भरे हुए नीचे के घट के मध्यभाग से कुछ ऊपर तथा ग्रीवा के नीचे छिद्र करके उसमें प्रविष्ट करके सन्धिबन्धन कर दें । पारद के घट के नीचे प्रथम मृदु, मध्य फिर अन्त में तेज आंच जलानी चाहिए । इस प्रकार चार या पांच प्रहर तक अग्नि देने से पारद चूल्हे के ऊपर स्थित घट से उड़कर तिरच्छी नलिका में होकर जल भरे घट में गिर जाता है । जलघट के ऊपर लोटे से शीतल जल का सेचन करते रहना चाहिए । यदि यह तीर्य्यक्पातनसंस्कार तीन वार करें तो अत्युत्तम है । इस तरह से तिर्य्यक्पातित पारद सर्व दोषों से निर्मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है तथा

रसायन कर्म में प्रयुक्त करने से निश्चय ही देहसिद्धि करता है और जरामरणादिक रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ॥ ४४–४६ ॥

अथ मर्दनादीनां गुणः—

**मर्दनैर्मुर्च्छनैः पातैर्मन्दः शान्तो भवेद्रसः ॥ ४७ ॥**

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन और त्रिविधपातन इन संस्करों से मन्द अर्थात् दोष युक्त पारद शान्त ( दोषों से रहित ) हो जाता है ॥ ४७ ॥

अथ निरोधसंस्कारः—

**सृष्टयम्बुजैर्निरोधेन ततो मुखकरो रसः।**
**स्वेदनादिवशात्सूतो वीर्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४८ ॥**

स्वेदन तथा आदि पद से मर्दन, मूर्च्छन और त्रिविधपातन संस्कारों से पारद दोषरहित होता है, परन्तु वह इन संस्कारों से मन्दवीर्यता ( षण्डत्व ) को प्राप्त हो जाता है, इस कारण उसका रोधन संस्कार करना चाहिये। रसेन्द्र चिन्तामण्यादि रस ग्रन्थों में इस संस्कार को बन्धन संस्कार के नाम से लिखा है तथा कुछ पाठ में भी परिवर्तन(१) है।

रोधनसंस्कारविधिः–सृष्टि–वृद्धिचूर्ण, अम्बुज अर्थात् नेत्रवाला का चूर्ण अथवा वत्सनाभचूर्ण लें, क्योंकि विष पारे की मन्दता को दूर करता है यथा "मान्द्यं विषाणि निघ्नन्ति" इन औषधियों के साथ पारद को घोट कर एक घट में कुछ जल भर कर घोटे हुए पारद को भी डालकर घट का मुख बन्द करके तीन दिन तक पृथ्वी में गाड़ देना चाहिए। इस रोधन संस्कार से पारद समुख हो जाता है। अर्थात् अभ्रक तथा स्वर्णादिक धातुओं को अपने में मिला लेने की शक्ति पारद में

---

( १ ) यथा—एवं कदर्थितः सूतः षण्डत्वमधिगच्छति।
तन्मूक्त्यैऽस्य क्रियते बोधनं कथ्यते हि तत् ॥
विश्वामित्रकपाले वा काचकूप्यामथापि वा।
सृष्टयम्बुजं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥
पूरयेत्त्रिदिनं भूम्यां राजहस्तप्रमाणतः।
अनेन सूतराजोऽयं षण्डभावं विमुञ्चति ॥

रसेन्द्रसारसंग्रह में भी यही पाठ है केवल "सृष्टयम्बुजम्" यहां पर "सूते लजम्" तथा "राजहस्त" यहां पर "गजहस्त" इतना पाठ भेद है।

प्रगट हो जाती है और पारद षण्डता को त्याग कर उत्तम वीर्य्य ( शक्ति ) को प्राप्त करता है। मतान्तर से बोधन ( रोधन ) संस्कार की विधि तथा भेद है वह नीचे टि० नं० (१) में हैं ॥ ४८ ॥

अथ नियामनसंस्कारः—

**नियम्योऽसौ ततः सम्यक् चपलत्वनिवृत्तये ।**
**कर्कोटीफणिनेत्राभ्यां वृश्चिकाम्बुजमार्कवैः ॥**
**समं कृत्वाऽऽरनालेन स्वेदयेच्च दिनत्रयम् ॥ ४९ ॥**

ततः=बोधन या रोधन संस्कार करने के पश्चात् पारद की चपलता को नष्ट करने के लिये उसका नियामन संस्कार(२) करना चाहिए।

नियमनविधिः—कर्कोटी ( बांझककोड़ा ) फणिनेत्र-सर्पाक्षी, वृश्चिक-श्वेतपुनर्नवा या विच्छुआघास, अम्बुज-कमल या इज्जल अथवा मुस्तक, मार्कव-भृङ्गराज, इन सब औषधियों को पारद के बराबर लेकर काञ्जी या जल से कल्क बना

---

( १ ) मर्दनादिक्रयोगेन जातक्लैब्यस्य शूलिनः ।
क्लैब्यापहन्तु यत्कर्म बोधनं कथ्यते हि तत् ॥ १ ॥
बोधनस्य प्रथमप्रकारः—
भूर्जपत्रे निधायाथ रसराजं निरोधयेत् ।
प्रक्षिप्य सैन्धवं तोये दोलायन्त्रे पचेद्बुधः ॥ १ ॥
एवं संस्वेदितः सूतो भृशमाप्यायितो भवेत् ।
जातवीर्यप्रकर्षो हि षण्डतामिह मुञ्चति ॥ २ ॥
द्वितीयः प्रकारः—
जलसैन्धवसूतपूरितां क्षितिगर्तें खलु काचकूपिकाम् ।
विनिधाय दिनत्रयं ततो गतषाण्ड्यः सबलो रसो भवेत् ॥ १ ॥
तृतीयः प्रकारः—
सैन्धवेनाम्लपिष्टेन रसेन्द्रं कूपिकागतम् ।
गर्तें निधाय चोद्धर्वन्तु देयो लघुपुटो बुधैः ॥ १ ॥
एवं सम्पुटितः शीघ्रं भृशमाप्यायते रसः ।
जातवीर्य्यप्रकर्षश्च षण्डभावं विमुञ्चति ॥ २ ॥ इति र० त०

(२) नियामनलक्षणं यथा—रोधनाल्लब्धवीर्य्यस्य चपलत्वनिवृत्तये ।
क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत् ॥ १ ॥

कर उस कल्क में पारद को रखकर एक कपड़े में बांधकर दोलायंत्र में काञ्जी भर कर १२ प्रहर तक तीव्राग्नि से स्वेदन करना चाहिए ॥ ४९ ॥

अथ प्रकारान्तरम्—

**मरिचैर्भूखगयुक्तैर्लवणासुरिशिग्रुटङ्कणोपेतैः ।**
**काञ्जिकयुक्तैस्त्रिदिनं ग्रासार्थी जायते स्वेदात् ॥ ५० ॥**

अथवा मरिचचूर्ण, भूखग–सुवर्णमाक्षिक अथवा कैंचुए, सैन्धवलवण, आसुरि–राई, शिग्रु–सहजनमूलत्वचा का चूर्ण, टङ्कण–शुद्धसुहागा, इन को पारद के समान लेकर कल्क बनाकर दोलायंत्र में काञ्जी के साथ तीन दिन तक स्वेदन करना चाहिए। इस प्रकार स्वेदन करने से पारद ग्रासार्थी ( अभ्रक स्वर्णादिक को अपने में मिलाने की शक्ति से युक्त ) हो जाता है। प्रतिदिन नवीन काञ्जी डालनी चाहिए तथा कल्क भी नया बनाया जाय तो उत्तम ही है ॥ ५० ॥

अथ दीपनसंस्कारः—

**त्रिक्षारसिन्धुखगभूशिखिशिग्रुराजीतीक्ष्णाम्लवेतसमुखैर्लवणोषणाम्लः ।**
**नेपालताम्रदलशोषितमारनाले साम्लासवाम्लपुटितं रसदीपनं तत् ॥५१ ।**

तीनों क्षार(१) सैन्धवलवण, खगभू—भूखग ( कैंचुए ), शिखी–अपामार्ग कुछ लोगोंने शिखी शब्द से चित्रक का यहां अर्थ किया है । शिग्रु–सहजन की छाल का चूर्ण, राजी–राई, तीक्ष्ण–वचा, अम्लवेत, शेष चारों लवण, ऊषण–काली-मीरच तथा नेपालदेशोत्पन्न शुद्ध ताम्रपत्रचूर्ण, ये सब द्रव्य मिलाकर पारद के समान लेकर खल्व में डाल दें, फिर थोड़ा काञ्जी या नीम्बू का रस डालकर पारद को खूब घोटना चाहिए । जब घोटते २ पारद की पिष्टी बन जाय तब उसको दोलायन्त्र की विधि से काञ्जी के अन्दर तीन दिन तक स्वेदित करना चाहिए । फिर इस स्वेदित पारद को अम्लासव–काञ्जी और किसी अम्ल ( नीम्बूरस ) से घोट कर लघुपुट से पातित कर लेना चाहिए। यही पारद का दीपनसंस्कार(२) है।

---

( १ ) "स्वर्जिक्षारो यवक्षारः क्षारद्वयमुदाहृतम् ।
सौभाग्येन समायुक्तं क्षारत्रिकमुदाहृतम् ॥ १ ॥

( २ ) रसेन्द्रचिन्तामण्युक्तनियामनप्रकारो यथा—
सर्पाक्षीचिञ्चिकाकन्याभृङ्गारकनकाम्बुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात् स्थिरतां व्रजेत् ॥ १ ॥

नोट—यहां पर स्वेदन करने के पश्चात् पुट देने का तात्पर्य केवल पारद का ऊर्ध्व या अधःपातन करना है ॥ ५१ ॥

अथ प्रकारान्तरेण दीपनम्—

**स्वेदयेदासवाम्लेन वीर्यतेजःप्रवृद्धये ।**
**यथोपयोगं स्वेद्यः स्यान्मूलिकानां रसेषु च ॥ ५२ ॥**

अथवा पारद को खट्टे आसव, अम्ल—काञ्जी या नीम्बूरस अथवा वक्ष्यमाण सर्पाक्ष्यादि मूलिकौषधियों के स्वरस से तीन दिन तक स्वेदन करना चाहिए। इस प्रकार दीपनसंस्कार(१) से पारद के अन्दर वीर्य्य (रोगनाशकप्रभाव) और तेज की वृद्धि होती है ॥५२॥

---

रसतरङ्गिण्युक्तप्रकारो यथा—

अम्लिकानागिनीभृङ्गवन्ध्याब्दकितवोद्भवैः ।
रसैः संस्वेदितः सूतो नियतं नियतो भवेत् ॥

अथवा—रसोनभृङ्गराजाब्दचिञ्चिकानवसादरैः ।
भृशं संस्वेदितः सूतो नियतं नियतो भवेत् ॥

अथवा—नियामकगणोद्दिष्टैः समस्तव्यस्तभेषजैः ।
पूर्वदर्शितमार्गेण भिषक् कुर्यान्नियामनम् ॥ इति ॥

अथ प्रसङ्गान्नियामकगणमाह—

महाबला नागबला यमचिञ्चा पुनर्नवा ।
आखुपर्णी सहचरा वासिका काकमाचिका ॥ १ ॥
गोक्षुरः शरपुङ्खा च विष्णुक्रान्ता घनध्वनिः ।
मण्डूकपर्णी तुलसी बला च गिरिकर्णिका ॥ २ ॥
शतावरीशङ्खपुष्पी श्वेतार्कः कनकाह्वयः ।
चक्रमर्दः करञ्जश्च ब्रह्मदण्डी शिखण्डिनी ॥ ३ ॥
गुडूची सैन्धवं पाठा मृगाक्षी सोमवल्लिका ।
नियामकगणो ह्येषः प्रोक्तो रसविशारदैः ॥ ४ ॥ इति र० त०

(१) अथ रसेन्द्रचिन्तामणौ दीपनसंस्कारकरणविधिः—

कासीसं पञ्चलवणं राजिका मरिचानि च ।
भूशिग्रुबीजमेकत्र टङ्कणेन समन्वितम् ॥ १ ॥

अथ रसभावनादौ मूलिन्यः—

**सर्पाक्षी क्षीरिणि वन्ध्या मत्स्याक्षी शङ्खपुष्पिका ।**
**काकजङ्घा शिखिशिखा ब्रह्मदण्ड्याखुकर्णिका ॥ ५३ ॥**
**वर्षाभूः कम्बुकी दूर्वा सैर्यकोत्पलशिम्बिकाः ।**
**शतावरी वज्रलता वज्रकन्दाग्निकर्णिका ॥ ५४ ॥**
**श्वेतार्कशिग्रुधत्तूरमृगदूर्वारसाङ्कुशाः ।**

---

आलोड्य काञ्जिके दोला-यन्त्रे पाकाद्दिनैस्त्रिभिः ।
दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य जारणे ॥ २ ॥

अथ रसतरङ्गिण्युक्तदीपनस्वरुपं तस्य प्रकाराश्च—

दोलायन्त्रे स्थापयित्वा रसेन्द्रं क्षारायैर्यत्पाचनं स्याद्यथाऽयम् ।
प्रासार्थी वा जारणे च प्रगल्भः शास्त्रज्ञैस्तदीपनं सम्प्रदिष्टम् ॥ १ ॥

इति दीपनस्वरूपम् ।

अथ दीपनस्य प्रथमप्रकारः—

काशीशं मरिचं तथैव तुवरी शोभाञ्जनं काञ्जिकम् ।
सौभाग्यं पटुपञ्चकञ्च दहनो राजी समं मेलयेत् ॥ १ ॥
निक्षिप्याथ दिनद्वयं बुधवरो दोलाख्ययन्त्रे पचेत् ।
प्रासार्थी खलु जारणे च चतुरः सञ्जायते पारदः ॥ २ ॥

अथ द्वितीयः कारः—

सौभाग्यं पटुपञ्चकञ्च मरिचं शोभाञ्जनं चासुरी ।
काशीशं यवजोऽनलश्च तुवरी शेफालिका सर्जिका ॥ १ ॥
तुल्यांशैः सुविचूर्णितैर्गृहजले यन्त्रे तु दोलाह्वये ।
स्विन्नो याममुगं ततो रसवरो ग्रासाभिलाषी भवेत् ॥ २ ॥

अथ तृतीयः प्रकारः—

स्वेदयेदासवाम्लेन सहितं याममात्रकम् ।
भिषग्वरः सूतराजं शीघ्रं वीर्यविवृद्धये ॥ १ ॥

अथ चतुर्थः प्रकारः—

अथवा दहनक्वाथे खदिरं काञ्जिके पचेत् ।
एवं संस्वेदितः सूतो ग्रासार्थी जायते परम् ॥ १ ॥

रम्भा रक्ताभनिर्गुण्डो लज्जालुः सुरदालिका ॥ ५५ ॥
मण्डूकपर्णी पाताली चित्रकं ग्रीष्मसुन्दरा ।
काकमाची महाराष्ट्री हरिद्रा तिलपर्णिका ॥ ५६ ॥
जाती जयन्ती श्रीदेवी भूकदम्बः कुसुम्भकः ।
कोशातकी नीरं कणा लाङ्गली कटुतुम्बिका ॥ ५७ ॥
चक्रमर्दोऽमृता कन्दः सूर्य्यावर्तेषुपुङ्खिका ।
वाराही हस्तिशुण्डी च प्रायेण रसमूलिकाः ॥
रसस्य भावने स्वेदे मूषालेपे च पूजिताः ॥५८॥

सर्पाक्षी–मरहटी ( गन्धनाकुली ), क्षीरिणी–दुधिका, वन्ध्या–बन्ध्याकर्कोटकी ( बाँझककोड़ा ), मत्स्याक्षी–मच्छेछी, शङ्खपुष्पी, काकजङ्घा—नदीकांता, शिखिशिखा–मयूरशिखा, ब्रह्मदण्डी—भार्गी, आखुकर्णिका–मूषापर्णी, वर्षाभू—पुनर्नवा कम्बुकी–असगन्ध, दूर्वा–श्वेत धोब, सैर्यक–श्वेतझिण्टी या हरी कुशा, उत्पल–नीलकमल ( Nelumbium Speciosum ) शिम्बिका–मुद्गपर्णी, शतावरी, ( Asparagus Racamosus ), वज्रलता—अस्थिसंहार (हड़जोड़), वज्रकन्द—जङ्गली सूरण ( शर्कराकन्दालुको वा ) अग्निकर्णिका, श्वेतार्क–सफेद आक ( Calotropis Gigantea ), शिग्रु—सहजन, धत्तूरा, मृगदूर्वा—नीलदूर्वा रसाङ्कुश–टङ्कण अथवा औषधिविशेष, रम्भा–केला ( Musa Sapientum ), रक्ताभ–रतालु, निर्गुण्डी–सम्भालू, लज्जालु–लाजवन्ति, सुरदालिका–देवदाली, मण्डूकपर्णी, पाताली—पातालगरुड़ी ( छिलिहिण्ट ), चित्रक, ग्रीष्म सुन्दर—गीमा, काकमाची–मकोय, महाराष्ट्री–जलपीपल, हरिद्रा, तिलपर्णिका–तिलोनी या श्वेतचन्दन, जाती–चमेली, जयन्ती, श्रीदेवी–सुवर्चला या तुलसी, भूकदम्ब, कुसुम्भ–कसूम, कोशातकी–कड़वी तरोई, नीर–सुगन्धवाला, कणा–पिप्पली (Piperlongum), लाङ्गली—कलिहारी ( Gloriosa Superba ), कटुतुम्बिका—कड़वी तुम्बी, चक्रमर्द—चकवड़, अमृता—गुडूची ( गिलोय Tinospora Cordifolia ), कन्द–जिमिकन्द, सूर्य्यावर्त्त–सूर्य्यमुखी (या हुलहुल), इषुपुङ्खिका–सरफोंका (शरपुङ्खा ), वाराही—वाराहीकन्द, हस्तिशुण्डी—हाथीशुण्डा, ये ओषधियां रस के संस्कार के लिये मूलिका नाम या गण से ख्यात हैं । इन औषधियों के रसया क्वाथ से पारद का स्वेदन करते हैं तथा इनसे भावना दी जाती है । जिस मूषा

में पारद का संस्कार किया जाता है उस मूषा के भीतरी तथा बाहरी भाग को इन औषधियों के रस या जलपिष्ट कल्क से लेपन किया जाता है ॥ ५३-५८ ॥

सूतसंस्कारकार्यत्वनिर्देशः—

**इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने ॥**
**कार्यास्ते प्रथमं शेषा नोक्ता द्रव्योपयोगिनः ॥ ५९ ॥**

पूर्वोक्त स्वेदन संस्कार से प्रारम्भ कर दीपन संस्कार तक कहे हुए पारद के आठ संस्कार द्रव्य अर्थात् औषधविषय और रसायन में समान हैं अर्थात् औषधियों के बनाने में तथा रसायनार्थ या अन्य वाजीकरणयोगों के निर्माण में जो पारद डाला जाता है उसको प्रथम विधिपूर्वक स्वेदनादि आठों संस्कारों से शुद्ध करके डालना चाहिए। साधारण औषधिनिर्माण तथा रसायन निर्माण में प्रयुक्त होने वाले पारद के ये आठों संस्कार एक ही विधि से करने चाहिए। शेष गगन भक्षण मान इत्यादि पारद के संस्कार यहां नहीं कहे गये हैं क्योंकि वे केवल द्रव्योपयोगी ( औषधोपयोगी ) पारद के लिये किये जाते हैं। रसायनोपयोगी पारद में उनका विशेष महत्व नहीं है॥ ५९ ॥

अथ रसबन्धनप्रतिज्ञा तस्य व्युत्पत्तिश्च—

**पञ्चविंशतिसङ्ख्याकान् रसबन्धान् प्रचक्ष्महे।**
**येन येन हि चाञ्चल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति ॥**
**रसराजस्य सम्प्रोक्तो बन्धनार्थो हि वार्तिकैः ॥ ६० ॥**

अब पारद के २५ प्रकार के बन्धनों का वर्णन प्रारम्भ किया जाता। जिस जिस क्रिया से पारद की चञ्चलता और दुर्ग्राह्यता नष्ट होती है उस क्रिया को परिभाषाशास्त्र के आचार्यों ( वार्तिककारों ) ने रसबन्धन के नाम से कहा है ॥६०॥

अथ रसबन्धाः—

**हठारोटौ तथाऽऽभासः क्रियाहीनश्च पिष्टिका।**
**क्षारः खोटश्च पोटश्च कल्कबन्धश्च कज्जलिः ॥ ६१ ॥**
**सजीवश्चैव निर्जीवो निर्बीजश्च सबीजकः।**
**शृङ्खलादुतिबन्धौ च बालकश्च कुमारकः ॥ ६२ ॥**
**तरुणश्च तथा वृद्धो मूर्तिबद्धस्तथाऽपरः।**
**जलबन्धोऽग्निबन्धश्च सुसंस्कृतकृताभिधः॥**

**महाबन्धाभिधश्चेति पञ्चविंशतिरीरिताः ॥ ६३ ॥**
**केचिद्वदन्ति षड्विंशो जलूकाबन्धसंज्ञकः ।**
**स तावन्नेष्यते देहे स्त्रीणां द्रावेऽतिशस्यते ॥ ६४ ॥**

रसबन्धनों के नाम इस तरह हैं यथा–१ हठ, २ आरोट, ३ आभास, ४ क्रियाहीन, ५ पिष्टिका, ६ क्षार, ७ खोट, ८ पोट, ९ कल्कबन्ध, १० कज्जली, ११ सजीव, १२ निर्जीव, १३ निर्बीज, १४ सबीज, १५ शृङ्खलाबद्ध, १६ द्युतिबन्ध, १७ बालक, १८ कुमार, १९ तरुण, २० वृद्ध, २१ मूर्त्तिबद्ध, २२ जलबन्ध, २३ अग्निबन्ध, २४ सुसंस्कृतकृतबन्ध, तथा २५ महाबन्ध, इस प्रकार पारद के २५ बन्धन होते हैं । कुछ रसशास्त्र के आचार्यों ने पारद का २६ वां जलूकाबन्ध माना है इस लिये उनके मत से पारद के २६ बन्धन होते हैं । जलूकाबन्धयुक्त पारद का मनुष्यदेह में प्रयोग नहीं होता है, किन्तु इस प्रकार के पारद का उपयोग स्त्रियों को द्रवित या वश में करने के लिये होता है ॥ ६१–६४ ॥

अथ हठबन्धः—

**हठो रसः स विज्ञेयः सम्यक् शुद्धिविवर्जितः ।**
**स सेवितो नृणां कुर्यान्मृत्युं वा व्याधिमुद्धतम् ॥ ६५ ॥**

जिस पारद की उत्तम विधि से शुद्धि नहीं होती है, इस प्रकार के पारद को हठरस कहते हैं । इस तरह के पारद के सेवन करने से मनुष्यों के शरीर में नानाप्रकार की भयंकर असाध्य व्याधियां उत्पन्न होती हैं तथा मनुष्य की मृत्यु हो जाती है ॥ ६५ ॥

अथ आरोटबन्धः—

**सुशोधितो रसः सम्यगारोट इति कथ्यते ।**
**स क्षेत्रीकरणे श्रेष्ठः शनैर्व्याधिविनाशनः ॥ ६६ ॥**

उत्तम प्रकार से शुद्ध किये हुए पारद को आरोट कहते हैं । इस प्रकार के पारद के मिश्रितयोगों का सेवन करने से क्षेत्री करण अर्थात् देह की दृढता होती है अथवा स्त्रियों का गर्भाशय शुद्ध होकर उसमें गर्भधारण करने की शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ६६ ॥

**विमर्शः—केवल शुद्ध पारद का शरीर के अन्दर सेवन करना उचित नहीं है, इसलिये उसकी कज्जली पर्पटी या इसी तरह के अन्ययोग बनाकर सेवन करना**

चाहिए। यहां पर आरोट संज्ञक पारद के जो गुण बताये हैं, ये इस तरह के पारद से बने योगों के गुण समझने चाहिए। क्षेत्रीकरण शब्द का वास्तविक तात्पर्य यह है कि रसायन सेवन करने के पूर्व पञ्चकर्मों से शरीर की शुद्धि करके यदि शरीर में कोई व्याधि हो तो उसको पारद मिश्रित योगों से या अन्यकाष्ठ औषधियों से दूर कर देनी चाहिए, तदनन्तर नियमपूर्वक रसायन का सेवन करना चाहिए। रसायन सेवन के पूर्व शरीर को उसके सेवन के योग्य बनाने की क्रिया को क्षेत्रीकरण कहते हैं।

यथा क्षेत्रीकरणस्वरूपम्—

सञ्जातपञ्चकृत्यस्य जैत्रैर्यद्वदनाशनम्।
रसायनादौ तत् प्राज्ञैः क्षेत्रीकरणमुच्यते ॥ १ ॥
क्षेत्रीकृत्य निजं देहं सेवेतेह रसायनम्।
विधिना मितपथ्याशो देहसिद्धिं हि विन्दति ॥ २ ॥
रसायनं यः कुरुते क्षेत्रीकरणमन्तरा।
देहसिद्धिर्न तस्य स्यात् प्रत्युत क्लेशकृद्भवेत् ॥ ३ ॥
सुबीजमपि संस्कृतं कृषिविधानदक्षैरिह।
प्ररोहति न कर्हिचित् सुविततोषरासं यथा ॥ ४ ॥

अथ क्षेत्रीकरणप्रक्रिया—

आदौ तु पञ्चकर्माणि कारयित्वाभिषग्वरः।
पश्चात् सिद्धौषधैर्यत्नाद्रोगशान्तिं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥
यदि बालः कृशः क्षीणः स्याद्रसायनसेवकः।
तदा तु पञ्चकर्माणि कारयेन्न भिषग्वरः ॥ २ ॥
समयज्ञस्तदा युक्त्या रेचनं कारयेन्नवा।
ततस्तुसिद्धभैषज्यै र्नीरुजञ्चापि कारयेत् ॥ ३ ॥
सिद्धौषधप्रयोगाच्च रोगशान्तिर्यदा भवेत्।
मृताभ्रमुख्ययोगांश्च तदा संयोजयेद्भिषक् ॥ ४ ॥

आरोट संज्ञक पारद से बने हुए योगों का सेवन करने से धीरे २ सर्व प्रकार की व्याधियां नष्ट होजाती है ॥

अथ आभासबन्धः—

**पुटितो यो रसो याति योगं मुक्त्वा स्वभावताम्।**
**भावितो धातुमूलाद्यैराभासो गुणवैकृतेः ॥ ६७ ॥**

जो पारद धातु-स्वर्ण, रजत, तथा मूल-सर्पाक्षी, क्षीरिणीत्यादि औषधियों के साथ पुट देने से अपने स्वाभाविक नाग, वङ्ग आदि तथा सप्तकञ्चुकादिक दोषों को

त्याग कर शुद्ध योग के रूप में (सेवन करनेयोग्य) हो जाता है, तब उस संस्कारयुक्त पारद को आभासबन्ध पारद कहते हैं ॥ ६७ ॥

अथ क्रियाहीनबन्धः—

**असंशोधितलोहाद्यैः साधितो यो रसोत्तमः ।**
**क्रियाहीनः स विज्ञेयो विक्रियां यात्यपथ्यतः ॥ ६८ ॥**

जो पारद असंशोधित (शास्त्रोक्त शुद्धि से रहित) लौहादिक धातओं के साथ पुटादिक योगों से सिद्ध किया जाता है, उस पारद को क्रियाहीन कहते हैं। क्रिया हीन पारद के सेवन करते समय यदि कुछ भी अपथ्य हो जाय तो वह पारद शरीर में अनेकविध भयङ्कर रोग पैदा कर देता है। इस लिये जब पारद का सेवन करने के लिये जारण अथवा मारण करना हो तब, जारण, मारण, क्रिया में प्रयुक्त होने वाले स्वर्णादिक धातुओं की शुद्धि उत्तम रूप से कर लेनी चाहिए। तदनन्तर उन धातुओं के साद पारद का जारण मारण आदि करना चाहिए॥६८॥

अथ पिष्टिकाबन्धः—

**तीव्रातपे गाढतरावमर्दात्पिष्टी भवेत्सा नवनीतरूपा ।**
**स रसः पिष्टिकाबन्धो दीपनः पाचनस्तराम् ॥ ६९ ॥**

उत्तम रीति से शुद्ध पारद को पाषाण खल्व में डालकर यथोपयोगी द्रव्यों (शुद्धगन्धकादिक तथा मूलकादिक औषधों) के रस के साथ तीव्र धूप में घोटते २ जब वह मक्खन के समान मसृण पिष्टी के स्वरूप का हो जाय तब उसको पिष्टिका बन्ध पारद कहते हैं। इस प्रकार के पारद का (विशेष कर के पिष्टिकाबन्ध पारद से बने योगों) का सेवन करने से पाचकशक्ति बढ़ती है और उससे खाये हुए पदार्थों का पाचन उत्तम रूप से होता है ॥ ६९ ॥

अथ क्षारबन्धः—

**शङ्खशुक्तिवराटाद्यैर्योऽसौ संसाधितो रसः ।**
**क्षारबन्धः परं दीप्तिपुष्टिकृच्छूलनाशनः ॥ ७० ॥**

शङ्ख, शुक्ति, वराट आदि शुद्ध पदार्थों के साथ उत्तम शास्त्रोक्त विधियों से सिद्ध किये हुए पारद को क्षारबन्धपारद कहते हैं। अर्थात् इन शुद्ध पदार्थों के साथ पारद के योग बनते हैं, उनके सेवन करने से देह की पुष्टि होती है तथा पाचनविकृति से उत्पन्न होने वाले उदरादिक अङ्गों के शूल नष्ट होते हैं ॥ ७० ॥

विमर्श—प्रायः शुद्धशङ्ख शुक्ति, तथा विशेष करके कोड़ियों ( वराटिकाएं ) की खातों में पारद की कज्जली तथा अन्यविध पारद के यौगिक द्रव्यों को भरकर रस बनाये जाते हैं, उन रसों में पारद प्रधान रहता है, इस लिये उप रीति से संस्कृत पारद को क्षारबन्धपारद जानना चाहिए।

अथ खोटबन्धः—

**बन्धो यः खोटतां याति धमातो धमातः क्षयं व्रजेत्।**
**खोटबन्धः स विज्ञेयः शीघ्रं सर्वगदापहः॥ ७१॥**

विविध औषधियों तथा धातुओं के साथ पारद की पिष्टी बनाकर मूषा में बन्द कर के यथोपयोगी पुटों के योग से अनेक वार फूंकने से पारद भस्मीभूत हो जाता है। इस प्रकार के पारद को वह्नि पर रखने से फिर वह उड़ता नहीं है ( खोटतां याति—वह्निस्थोऽपि अनुड्डयनस्वभावमाप्नोति ) इस अवस्था को प्राप्त हुए पारद को खोटबन्धपारद कहते हैं। यह खोटबन्धपारद(१) अनुपानभेद से समग्र रोगों को नष्ट करता है॥ ७१॥

अथ पोटबन्धलक्षणम्—

**द्रुतकज्जलिका मोचापत्रके चिपिटीकृता।**
**स पोटः पर्पटी सैव बालाद्यखिलरोगनुत्॥ ७२॥**

शुद्धगन्धक और शुद्धपारद दोनों समानभाग की मात्रा से लेकर पाषाण की खरल में उन्हें डालकर कज्जली बनालें। इस कज्जली को लौहे की बड़ी कलच्छू या लौहे की कड़ाई ( कटाह ) 'जिसमें पहिले ही से कुछ घी पोत दिया हो, में मध्यमाग्नि पर पिघला कर उसे गाय के गोबर के ऊपर ( चौड़ा और कुछ उथला या गहरा गोबर में गड्ढा करके उस पर केले का हरा पत्ता बिच्छाना चाहिए ) रखे हुए कदलीपत्र पर ढाल कर फिर ऊपर से केले का हरा पत्ता ढककर गोबर से दबा दें। इस तरह वह द्रुत कज्जली दबाव ( Pressur ) से चिपटी हो जाती है। इसी प्रकार के संस्कृत पारद को पोटबन्ध कहते हैं, इसी का नाम पर्पटी भी है। यह पर्पटी बालकों के समग्ररोगों को नष्ट करती है॥ ७२॥

अथ कल्कबन्धलक्षणम्—

**स्वेदाद्यैः साधितः सूतः पङ्कत्वं समुपागतः।**

---

( १ ) खोटबन्धस्य लक्षणं यथा—"अग्निमध्ये यदा तिष्ठेत् खोटबन्धस्य लक्षणम्" इति।

**कल्कबद्धः स विज्ञेयो योगोक्तफलदायकः ॥ ७३ ॥**

स्वेदन, मर्दन तथा मूर्च्छनादिक संस्कारों से सिद्ध किया हुआ पारद पङ्क (कीचड़) या पिण्ड के रूप में परिणत हो जाता है, इस अवस्था को प्राप्त हुए पारद को कल्कबद्ध पारद कहते हैं। कल्कबद्ध पारद से बने हुए योग अथवा योगों में परिवर्तित यह पारद योगकथित फल देता है अथवा भिन्न २ अनुपानों के साथ सेवन करने से विविध प्रकार के गुणों को उत्पन्न करता है ॥ ७३ ॥

अथ कज्जलीबन्धलक्षणम्—

**कज्जलीरसगन्धोत्था सुश्लक्ष्णा कज्जलोपमा।**
**तत्तद्योगेन संयुक्ता कज्जलीबन्ध उच्यते ॥ ७४ ॥**

समान मात्रा या यथाशास्त्रवर्णितयोगप्रतिपादन की मात्रा के अनुसार शुद्ध पारद और शुद्धगन्धक लेकर शुभ पाषाण की खल्व में डालकर अत्यन्त घोटते घोटते जब दोनों की कज्जल के समान काली और सुश्लक्ष्ण अर्थात् मसृण या चिकनी कज्जली तैय्यार हो जाय तब उस अवस्था में प्राप्त हुए पारद को कज्जली-बन्ध पारद कहते हैं। यह कज्जली(१) अनेक प्रकार के योगों के साथ संयुक्त हो कर योगोक्तफल को देती है ॥ ७४ ॥

अथ सजीवबन्धलक्षणम्—

**भस्मीकृतो गच्छति वह्नियोगाद् रसः सजीवः स खलु प्रदिष्टः।**
**संसेवितोऽसौ न करोति भस्मकार्यं जवाद्रोगविनाशनं च ॥ ७५ ॥**

सर्व प्रकार से उत्तम शोधन, मर्दन, मूर्च्छनादिक संस्कारों के करने के पश्चात् भिन्न २ काष्ठौषधियों के साथ अथवा माक्षिकादिक खनिज पदार्थों के साथ वह्नि के संयोग से पारद की भस्म करते समय उसमें से कुछ भाग आस पास के स्थान में उड़ जाता है, इस तरह से उड़े हुए पारद को सजीवबन्धयुक्त पारद कहते हैं। इस प्रकार के पारद के सेवन करने से पारदभस्म के गुण नहीं होते हैं। अर्थात् यह पारद पारदभस्म के समान गुणकारी नहीं है और व्याधियों को शीघ्र नष्ट

---

(१) कज्जली स्वरूपं यथा—

निर्द्रवैर्धातुभिश्चाथ गन्धादिभिः पेषितः पारदः श्लक्ष्णतां प्रापितः ॥
कज्जलाभो यदा जायतेऽसौतदानामतः कोविदैः कज्जलीत्युच्यते ॥ १ ॥

इति र० त०।

नहीं कर सकता है । यह पारद वह्नि के संयोग से उड़ जाता है इसलिये इसका मारण नहीं होता है, अत एव इसकी सजीवबन्ध संज्ञा रक्खी है ॥७५॥

अथ निर्जीवबन्धलक्षणम्—

**जीर्णाभ्रको वा परिजीर्णगन्धो भस्मीकृतश्चाखिललोहमौलिः ।**
**निर्जीवनामा हि स भस्मसूतो निःशेषरोगान्विनिहन्ति सद्यः ॥ ७६ ॥**

अभ्रक के साथ जारित अथवा अभ्रक का ग्रास किये हुई पारद की भस्म, अथवा शुद्ध गन्धक के साथ भस्म किया हुआ पारद सम्पूर्ण लोहों ( धातु ) में (१)श्रेष्ठ होता है । इस विधि से भस्मीभूत पारद को निर्जीवबन्ध पारद कहते हैं। निर्जीवपारद भस्म सब प्रकार के रोगों को शीघ्र नष्ट करती है ॥ ७६ ॥

अथ निर्बीजबन्धलक्षणम्—

**रसस्तु पादांशसुवर्णजीर्णः पिष्टीकृतो गन्धकयोगतश्च ।**
**तुल्यांशगन्धैः पुटितः क्रमेण निर्बीजनामा सकलामयघ्नः ॥ ७७ ॥**

पारद की अपेक्षा चतुर्थांश जीर्णस्वर्ण–स्वर्णभस्म और पारद को खल्व में अत्यन्त घोटकर समान शुद्ध गन्धक के साथ पिष्टी बनाकर दो शरावों में सम्पुट करके पुट दे देना चाहिए । प्रथमपुट के पश्चात् केवल पारद के बराबर शुद्ध-गन्धक मिला के खरल में घोंटकर शेष ६ पुट देने चाहिए । इस तरह से भस्मी-भूत पारद निर्बीजबन्धपारद कहलाता है । यह सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है । गन्धक के साथ पारद की पिष्टी बनाने के लिये थोड़ा सा गोघृत या निम्बू का रस अथवा केवल जल ही डालकर पिष्टी बनानी चाहिए ॥ ७७ ॥

**विमर्श—बीज शब्द की परिभाषा "शुद्धं स्वर्णञ्च रूप्यञ्च बीजमित्यभीधीयते" शुद्धस्वर्ण और रजत है । इस योग में केवल स्वर्ण ही पड़ता है । रजत का इसमें अंश नहीं है, इसी लिये इसको निर्बीजबन्धपारद कहा गया है ।**

अथ सजीवबन्धलक्षणम्—

**पिष्टीकृतैरभ्रकसत्त्वहेमतारार्ककान्तैः परिजारितो यः ।**
**हतस्ततः षड्गुणगन्धकेन स बीजबद्धो विपुलप्रभावः ॥ ७८ ॥**

प्रथम अभ्रकसत्व, हेम–स्वर्णभस्म, तारराजतभस्म, अर्क–ताम्रभस्म, कान्त–

---

( १ ) (अखिललौहेषु–सकलस्वर्णादिकधातुषु, मौलिः–श्रेष्ठः शिरोभूषणस्वरूप इत्यर्थः, जीर्णाभ्रकः—ग्रासी कृताभ्रकः) ।

कान्तलौहभस्म, इनमें से प्रत्येक पारद की अपेक्षा चतुर्थांशपरिमाण के अनुसार लेकर खल्व में गोघृत के साथ पारदयुक्त इन सबको घोटकर पिष्टी ( गोला ) बनाकर जारण करना चाहिए। जारण होने के पश्चात् पारद से ६ गुणा शुद्धगन्धक लेकर दोनों को खल्व में घोट कर गोला बनाकर मूषा में बन्द करके अथवा अन्य सम्पुटविधियों से सम्पुट करके पुट दे देना चाहिए। इस तरह से भस्मीभूत पारद को बीजबद्धपारद कहते हैं। इसमें स्वर्ण तथा रजत ( बीज ) का भाग होने से इसकी बीजबद्ध संज्ञा पड़ी है। यह बीजबद्धपारद अनेक गुणों को करता है। कुछ सम्प्रदाय है कि अभ्रकसत्त्वादिकों के साथ जारण करने के पश्चात् पारद को ७ वार षड्गुणगन्धक मिलाकर भस्मीभूत करना चाहिए ॥ ७८ ॥

अथ शृङ्खलाबन्धलक्षणम्—

**वज्रादिनिहतः सूतो हतः सूतः समोऽपरः।**
**शृङ्खलाबद्धसूतस्तु देहलोहविधायकः॥**
**चित्रप्रभावां वेगेन व्याप्तिं जानाति शङ्करः॥ ७९॥**

हीरा अथवा अन्य रत्नों के साथ भस्म किया हुआ पारद लेकर उसके बराबर ही अन्य गन्धकादिक द्रव्यों के साथ भस्म किया हुआ पारद लेकर दोनों को खल्व में डालकर अच्छी प्रकार घोटना चाहिए। इस प्रकार दोनों प्रकार के पारदों की भस्म के यौगिकरूप को शृङ्खलाबद्ध पारद कहते हैं। इसके सेवन करने से शरीर लोहे के समान मजबूत हो जाता है, अर्थात् इसके सेवन से देह की धातुओं की वृद्धि और पुष्टि होती है। इसके सेवन से शरीर के अन्दर प्रगट या व्याप्त होने वाली विचित्रशक्ति को केवल शङ्कर भगवान ही जानते हैं ॥ ७९ ॥

**विमर्शः—शरीर के सेलों में तथा विविध संस्थानों में ऐसे २ विचित्र भौतिक ( Physical ) तथा रासायनिक परिवर्तन ( Chemical Changes ) होते हैं जिन्हें क्रियाविज्ञान ( Physiology ) के विद्वानों ने बहुत परिश्रम करके अभीतक भी सफलता प्राप्त नहीं की है, इसीलिये उपर्युक्त शृङ्खलाबद्ध पारद के सेवन से निश्चय ही शरीर में विचित्र शक्ति उत्पन्न होती होगी जो कि साधारण विज्ञों के लिये अज्ञेय हो सकती है।**

अथ द्रुतिबन्धलक्षणम्—

**युक्तोऽपि बाह्यद्रुतिभिश्च सूतो बन्धङ्गतो वा भसितस्वरूपः।**
**स राजिकापादमितो निहन्ति दुस्साध्यरोगान्द्रुतिबद्धनामा॥ ८०॥**

(१)बाह्यद्रुतिभिः—अर्थात् पारद से पृथग् कटाहादिक में द्रुत हुए अभ्रकसत्त्व, स्वर्ण आदि धातुओं के साथ जारण आदि विधियों से बन्धनता को प्राप्त हुआ पारद अथवा भस्मीभूत पारद द्रुतिबन्ध पारद कहलाता है। यह पारद राई के बराबर नित्य सेवन करने से अनेक दुःसाध्य रोगों को नष्ट करता है॥ ८०॥

अथ बालकबन्धलक्षणम्—

**समाभ्रजीर्णः शिवजस्तु बालः संसेवितो योगयुतो जवेन।**
**रसायनो भाविगदापहश्च सोपद्रवारिष्टगदान्निहन्ति॥ ८१॥**

समानभाग अभ्रकभस्मसत्त्व के साथ जारण किया हुआ शिवज—पारद बालबद्ध पारद कहलाता है। इस प्रकार के पारद को अनेक योगों के साथ उचित मात्रा से सेवन करने से रसायन के समान गुणकारी होता है और भावी व्याधियों को नष्ट करता है तथा सम्पूर्ण उपद्रव(२) और अरिष्टकारक लक्षणों(३) से युक्त व्याधियों को शीघ्र ही नष्ट करता है॥ ८१॥

अथ कुमारबन्धलक्षणम्—

**हरोद्भवो यो द्विगुणाभ्रजीर्णः स स्यात्कुमारो मिततण्डुलोऽसौ।**
**त्रिःसप्तरात्रैः खलु पापरोगसंघातघाती च रसायनं च॥ ८२॥**

हरोद्भव अर्थात् पारद को द्विगुण अभ्रकभस्मसत्त्व के साथ जारण करना चाहिए। इस तरह जारित किया हुआ पारद कुमारबन्ध पारद कहलाता है। इस को प्रतिदिन १ तण्डुल के परिमाण से २१ दिन (त्रिःसप्तरात्रैः) तक रोगानुसार अनुपानों के साथ सेवन करने से निखिल पापरोग (कुष्ठादिक चर्म रोग) तथा मसूरिका आदि नष्ट हो जाते हैं। यह रसायन(४) गुणों को करता है॥ ८२॥

---

(१) बाह्यद्रुतिलक्षणं यथा—बहिरेव द्रुतीकृत्य घनसत्त्वादिकं खलु। जारणाय रसेन्द्रस्य सा बाह्यद्रुतिरुच्यते॥ इति र० र० स०।

(२) उपद्रव का लक्षण—"उपद्रवस्तु रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्योऽन्यविकारः, प्रधानव्याधि को उत्पन्न करने वाले वातादिकदोष के प्रकोप से उत्पन्न हुआ मूलव्याधि से भिन्न अन्य विकार को उपद्रव कहते हैं।

(३) "नियतमरणाख्यापकं लिङ्गमरिष्टम्" इति।

(४) रसायन लक्षणं—"स्वस्थस्यौजस्करं किञ्चित् किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत्।
यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्॥ इति।

अथ तरुणबन्धलक्षणम्—

**चतुर्गुणव्योमकृताशनोऽसौ रसायनाग्र्यस्तरुणाभिधानः ।**
**स सप्तरात्रात्सकलामयघ्नो रसायनो वीर्यबलप्रदाता ॥ ८३ ॥**

पारद को चतुर्गुण अभ्रक के साथ जारण करने से उसकी तरुणबन्धसंज्ञा होती है । इस प्रकार का जारित पारद सब रसायनों में श्रेष्ठ है । तरुणबन्ध पारद को सात दिन तक सेवन करने से समस्त व्याधियां नष्ट हो जाती हैं तथा इसके सेवन से शरीर में बल और वीर्य्य की वृद्धि होती है । यह पारद रसायन गुणों को पैदा करता है ॥ ८३ ॥

वृद्धबन्धलक्षणम्—

**यस्याभ्रकः षडगुणितो हि जीर्णः प्राप्ताग्निसख्यः स हि वृद्धनामा ।**
**देहे च लोहे च नियोजनीयः शिवादृते कोऽस्य गुणान्प्रवक्ति ॥ ८४ ॥**

जो पारद षड्गुण अभ्रक के साथ जारित हो जाता है उसकी अग्नि के साथ मित्रता हो जाती है, अर्थात् फिर वह अग्नि के संयोग से उड़ता नहीं है । इस प्रकार से जारित हुए पारद को वृद्धबन्ध पारद कहते हैं । वृद्धबन्ध पारद को देह के रोग निवारण करने के लिये तथा चांदी आदि को उत्कृष्ट बनाने के लिये प्रयुक्त करना चाहिए । इस पारद के अनेक शुभ गुण हैं जिन्हें शिवजी ही जानते हैं॥८४॥

अथ मूर्तिबन्धलक्षणम्—

**यो दिव्यमूलिकाभिश्च कृतोऽत्यग्निसहो रसः ।**
**विनाभ्रजारणात्स स्यान्मूर्तिबन्धो महारसः ॥ ८५ ॥**
**अयं हि जार्यमाणस्तु नाग्निना क्षीयते रसः ।**
**योजितः सर्वयोगेषु निरौपम्यफलप्रदः ॥ ८६ ॥**

जिस पारद को अभ्रक के विना ही दिव्य औषधियों अर्थात् हिमालय पर्वत की भूमिकाओं में उत्पन्न होने वाली मारकवर्ग की औषधियों के साथ जारित किया जाता है वह अत्यन्त तेज अग्नि से भी नहीं उड़ता है । इस प्रकार के सिद्ध किये हुए पारद को मूर्तिबन्ध पारद कहते हैं । इस पारद का फिर जारण करने से अग्नि के द्वारा नाश नहीं होता है । इस प्रकार के पारद को अनुपान भेद से सर्व प्रकार के योगों के साथ सिद्ध करके प्रयुक्त करने से अगणित तथा अनुपमेय फल प्राप्त होते हैं ॥ ८५-८६ ॥

अथ जलबन्धलक्षणम्—

**शिलातोयमुखैस्तोयैर्बद्धोऽसौ जलबन्धवान्।**
**स जरारोगमृत्युघ्नः कल्पोक्तफलदायकः ॥ ८७ ॥**

शिला अर्थात् पाषाणभेद ( पत्थरचट्टा ) के क्वाथ अथवा शिलोदक, विषोदक, अमृतोदक, इत्यादि अनेक उपयोगी द्रव्यों या औषधियों के क्वाथ या स्वरस से घोटकर बद्ध किया हुआ पारद जलबन्ध कहलाता है। इस प्रकार के पारद से बने हुए योगों का सेवन करने से अनेक योगकथित ( कल्पोक्त ) फल उत्पन्न होते हैं तथा जरा ( वृद्धावस्था ) और उससे होने वाले अनेक रोग तथा अकालमृत्यु इत्यादि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

अथ अग्निबन्धलक्षणम्—

**केवलो योगयुक्तो वा धमातः स्याद्गुटिकाकृतिः।**
**अक्षीणश्चाग्निबद्धोऽसौ खेचरत्वादिकृत्स हि ॥ ८८ ॥**

केवल पारद को अग्नि में फूंकने से अथवा मारकवर्ग की औषधियों के स्वरस या क्वाथ में घोट कर उनके कल्क के मध्य में रख कर मूषायंत्र में बन्द करके अग्नि में फूंकने से जब वह गुटिका ( गोली ) के स्वरूप में हो जाय तथा उसकी मात्रा का फूंकने से ह्रास न हो तब उसको अग्निबद्ध पारद कहते हैं। इस प्रकार के पारद का उपयोग आकाश मार्ग में सञ्चरण करने के लिये होता है। प्रायः इस गोली को ही मुख में रखने से मनुष्य आकाश में उड़ सकता है ॥८८॥

विमर्शः—यह बात कहांतक सत्य है यह जानना कठिन है, सम्भव है कि अग्निबद्ध पारद करने की विस्तृतव्याख्या रही होगी जिसका यह कुछ सूत्र रूप में नष्ट होते २ बचा हुआ भाग ( वर्णन ) है, केवल इसी विधि से खेचरण सिद्ध नहीं हो सकता है।

अथ सूतानां मूर्च्छाकल्पः—

**विष्णुक्रान्ताशशिलताकुम्भीकनकमूलकैः।**
**विशालानागिनीकन्दव्याघ्रपादीकुरण्टकैः ॥ ८९ ॥**
**वृश्चिकालीभशुण्डीभ्यां हंसपाद्या सहासुरः।**
**अप्रसूतगवां मूत्रः पिष्टं वा कुलके पचेत् ॥ ९० ॥**
**पक्कमेवं मृतैर्लोहैर्मर्दितं विपचेद्रसम्।**
**यन्त्रेषु मूर्च्छा सूतानामेष कल्पः समासतः ॥ ९१ ॥**

विष्णुक्रान्ता–अपराजिता, शशी–शुद्धकपूर, लता–लताकस्तूरी, ( कुछ टीकाकार शशिलता, यह एक ही पद मानते हैं इस अवस्था में शशिलता का सफेदजूही-श्वेतयूथिका अर्थ करना चाहिए ) कुम्भी-जलकुम्भी अथवा दन्ती, कनक–धत्तूरा, मूलक–मूली, ( अथवा कनकमूलक यह एक पद है, इसलिये धत्तूरे की जड़ लेना चाहिए ), विशाला–एन्द्रवारुणी ( गोरक्षकर्कटी वा ), नागिनी–नागदौना ( नागदन्ती वा ), कन्द–शूरणकन्द, व्याघ्रपादी बड़ी कटेरी (या विङ्कत), कुरण्टक–पीतपुष्पपियाबांसा ( पीतझिण्टी ), वृश्चिकाली–वृश्चिकपत्री ( विच्छुआघास ), हथशुण्डी–हस्तिशुण्डी, हंसपादी ( गोधापदीलता ) तथा असुर–विड़लवण अथवा राई, इन औषधियों को समान भाग लेकर इनके रस से या क्वाथ से पारद को घोटें, फिर बिना ब्याई हुई गाय के मूत्र से पारद को घोटे। इस तरह घोटने के पश्चात् उपर्युक्त औषधियों को बिना ब्याई हुई गाय के मूत्र से पीसकर मूषा बना लेनी चाहिए। इस तरह बनी हुई मूषा में पारद को रख कर कल्क ही से मूषा का मुख बन्द करके कपड़मिट्टी करके सुखा लेनी चाहिए, सूखने के पश्चात् बालुकायन्त्र के मध्य में इसे रख कर पाक करना चाहिए । अच्छी प्रकार पाक होने के पश्चात् स्वाङ्गशीतयन्त्र से मूषा निकाल के उसका भेदन करके पारद को निकाल लें, फिर उसे खल्व में डालकर उसके बराबर सातों धातुओं की भस्म मिलाकर उपर्युक्त औषधियों के स्वरस या क्वाथ से अच्छी प्रकार घोटकर गोला बनालें । फिर उपर्युक्त औषधियों ` पूर्वरीत्यनुसार बनी हुई मूषा में गोले को रखकर कपडमिट्टी करके बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। इसी रीति से अन्य यन्त्रों में भी पारद का मूर्च्छन हो सकता है । इस क्रिया को सुसंस्कृतबन्ध कहते हैं । यह पारद का २४ वां बन्धन है ॥ ८९–९१ ॥

विमर्श—कहीं २ "यन्त्रेषु मूर्च्छा सूतानामेष कल्पः समासतः" इस पद में यन्त्रेषु मूर्च्छा सूतानामेष कल्पः सुसंस्कृतः, ऐसा पाठ है, वास्तविक में "समासतः" की जगह "सुसंस्कृतः" यही पाठ उत्तम है, क्यों कि रसबन्धन प्रतिज्ञा में २६ बन्धनों का निदश है, तथा अग्निबन्ध के बाद और महाबन्ध के प्रथम सुसंस्कृतबन्ध का निवेश है, ऐसी दशा में यदि "समासतः" इस पाठ को उत्तम मान लिया जाय तो २६ बन्धनों में से २४ वें बन्धन का वर्णन नहीं होने से आचार्य पर प्रतिज्ञा हानि दोष लगता है । यह भी एक तरह का पारद का बन्धन संस्कार है ही तथा अन्य बन्धनों की अपेक्षा उत्तम भी है, अतः यही २४ वां सुसंस्कृतसंज्ञक बन्धन मानना

उचित है। इस ग्रन्थ की संस्कृत टीका करने वाले महाशयों ने जो टीका में यह बात लिख दी है कि इसमें २४ वां बन्धन नहीं है, और नहीं होने का कारण ग्रन्थ के सम्पादक आदिका प्रमाद बताया है, यह टीकाकारों का कथन अनुचित ज्ञात होता है।

अथ महाबन्धलक्षणम्—

**हेम्ना वा रजतेन वा सहचरो ध्मातो व्रजत्येकता-**
**मक्षीणो निबिडो गुरुश्च गुटिकाकारोऽतिदीर्घोज्वलः।**
**चूर्णत्वं पटुवत्प्रयाति निहतो घृष्टो न मुञ्चेन्मलं**
**निर्गन्धो द्रवति क्षणात्स हि महाबन्धाभिधानो रसः ॥९२॥**

जो पारद शुद्धस्वर्ण के अथवा रजत के साथ अच्छी प्रकार घोटकर मारक-वर्ग की औषधियों के कल्क की मूषा में बन्दकर अग्नि में फूंकने से एकाकार हो जाय अर्थात् स्वर्ण और रजत के साथ अच्छी प्रकार मिल कर गुटिका के स्वरूप में होजाय तथा क्षीण न हो और फिर वह्नि पर रखने से उड़े नहीं तथा वजन में भी कम न हो और अत्यन्त उज्ज्वलवर्ण का हो तथा आघात मारने से नीमक (पटु) के समान चूर्ण के रूप में होजाय और खरल में घोटने से मल अर्थात् किट्टभाग का त्याग नहीं करे तथा किसी विशेष गन्ध से भी रहित हो तथा अग्नि में तपाने से शीघ्र द्रवित होजाय इस प्रकार के पारद को महाबन्ध पारद कहते हैं ॥९२॥

अथ जलूकाबन्धः—

**सूते गर्भनियोजितार्धकनके पादांशनागेऽथवा**
**पञ्चाङ्गुष्टकशाल्मलीकृतमदाश्लेष्मातबीजैस्तथा ॥**
**तद्वत्तेजिनिकोलकाख्यफलजैश्चूर्णं तिलं पत्रकं**
**तप्ते खल्लतले निधाय मृदिते जाता जलूका वरा ॥ ९३ ॥**

शुद्ध पारद में आधाभाग शुद्धस्वर्ण और चौथाई भाग शुद्धनागचूर्ण मिला कर उसे पाषाण की खरल में अच्छी प्रकार घोटकर पिष्टी या गोला बना लेना चाहिए, फिर उस गोले को वह्नि में पिघला (द्रवित) कर तप्तखल्व में डाल देना चाहिए, तदनन्तर उसमें पञ्चाङ्गुष्टक—एरण्डमूलचूर्ण, शाल्मली=सेमल के पुष्प या गोंद, कृत-मदा—शुद्धभांग के बीजों का चूर्ण, श्लेष्मातबीज—बड़े गूंदे या लिसौड़े के बीजों का चूर्ण, तेजिनि—मूर्वा अथवा मालकङ्गुनी का चूर्ण, कोलकाख्यफलज—बदरफल (बेर) की मज्जा या बेर की गुठली की गिरी (मींगी) का चूर्ण, तिल—काले तिलों का चूर्ण,

पत्रक–तेजपत्र अथवा तमालपत्र का चूर्ण, ये सब औषधियां मिलाकर गोले के समान अथवा इनमें से प्रत्येक पारद से षोड़शांशभाग के प्रमाण से लेकर प्रतप्त-खल्व के अन्दर द्रुत पारद में मिलाकर अत्यन्त दृढता से घोटना चाहिए। इस प्रकार घोटते २ जब वह अत्यन्त स्निग्ध या मसृण पिष्टी के रूप में होजाय तब जलूकाबन्धन हुआ जानना चाहिए। या इस पारद की पिष्टी को जलूका के समान बना लेनी चाहिए। इस प्रकार की क्रिया को जलूकाबन्ध कहते हैं ॥ ९३ ॥

अथ क्रियाविशेषण जलूकाया गुणविशेषः—

**सैषा स्यात्कपिकच्छुरोमपटले चन्द्रावती तैलके**
**चन्द्रे टङ्कणकामपिप्पलिजले स्विन्ना भवेत्तेजिनी।**
**तप्ते खल्लतले विमर्द्य विधिवद्यत्नाद्धटी या कृता**
**सा स्त्रीणां मददर्पनाशनकरी ख्याता जलूका वरा ॥ ९४ ॥**

उपर्युक्त विधि से बनी हुई जलूका को केवांच की फली या बीज के रोओं या छिलकों से पर्युषितजल या रोओं के क्वाथ में दोलायन्त्र में तीन प्रहरतक स्वेदन करनी चाहिए, फिर इसे चन्द्रावती पुष्प अथवा इलायची के तैल में स्वेदन करें, तदनन्तर चन्द्र–कर्पूर के जल (कर्पूरोदक) में स्वेदन करें, फिर सुहागा तथा काम-दमनक और पिप्पली के क्वाथ में ३ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। कुछ लोगों का मत है कि सब द्रव्यों का एक ही वार क्वाथ बना कर या स्वरस या जिसका तैल लेना हो उसका तैल क्वाथ में मिलाकर २४ घण्टे तक स्वेदन करना चाहिए। फिर इस तरह स्वेदन करने के पश्चात् इस जलूका को प्रतप्त खल्व में डालके पिघलाकर वलयाकार ( अङ्गूठी के समान आकार वाले ) यन्त्र में ढाल देनी चाहिए। इस वलयाकारकृत जलूका को पुरूष अपनी भुजा में बान्धकर या अपने मुख में रखकर स्त्री के साथ रमण करे तो वह स्त्री शीघ्र ही स्खलित होजाती है तथा उस को भोग जन्य सुख भी अत्यन्त होता है, उस का मान भी खण्डित हो जाता है। इस वलयाकार जलूका को योनिमार्ग में रख कर स्त्री के साथ भोग करने से भी उपर्युक्त फल होता है ॥ ९४ ॥

अथ जलूकायाः त्रिविधप्रमाणनिर्देशः—

**बाल्ये चाष्टाङ्गुला योज्या यौवने च दशाङ्गुला।**
**द्वादशैव प्रगल्भानां जलौका त्रिविधा मता ॥ ९५ ॥**

बाला स्त्री ( १२ वर्ष के बाद तथा १६ वर्ष से पूर्व ) के साथ रमण करने के लिये आठ अङ्गुल लम्बी जलूका बनानी चाहिए। युवती स्त्री ( १६ के बाद और ३० वर्ष के पूर्व ) के साथ भोग करने के लिये दश अङ्गुल लम्बी तथा प्रगल्भ ( ३० वर्ष से ऊपर और ५० वर्ष के पूर्व ) स्त्रियों के साथ रमण करने के लिये बारह अङ्गुल लम्बी जलूका बनानी चाहिए। इस तरह अवस्था के प्रमाण के अनुसार ३ प्रकार की जलूका होती है ॥ ९५ ॥

**विमर्शः—इन जलूकाओं को स्त्रियों के योनिमार्ग के अन्दर रखकर भोग किया जाता है। वास्तव में इस प्रकार के कृत्रिम उपायों से कामपिपासा को तृप्त करने के लिये बुद्धिमान् मनुष्य को कभी भी चेष्टा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ये विधियां अधूरी हैं और इनके बनाने की पूर्णरीति भी नष्ट हो गई है। जो शास्त्रों में शेष विधियां मिलती हैं उनके अनुसार बना कर अपना मनोरथ पूर्ण करने से लाभ के बदले में हानि ही पहुँचती है, इस लिये बुद्धिमान् को चाहिए कि प्रकृति को ठुकरा कर कभी भी विकृतिमार्ग या कृत्रिममार्ग में पाद प्रसार न करे।**

अथ जलूकायाः संस्कारविशेषः—

**धृत्वा सूतमुखे पात्रं मेषीक्षीरं प्रदापयेत्।**
**स्थापयेदातपे तीव्रे वासराण्येकविंशतिः ॥ ९६ ॥**
**द्वितीयात्र मया प्रोक्ता जलौका द्रावणे हिता।**
**पुरुषाणां स्थिता मूर्ध्नि द्रावयेद्बीजमद्भुतम् ॥ ९७ ॥**

वलयाकार कृत पारद को एक पात्र में रख कर उस में भेड़ का दुग्ध भर धूप में रख देना चाहिए। जब दुग्ध सूख जाय तो दूसरे दिन फिर दुग्ध भर कर धूप में रखना चाहिए। इस तरह २१ दिन तक भेड़ के दुग्ध में जलूका को भावित करना चाहिए। इस तरह से संस्कार की हुई इस जलूका को पुरुष अपने सिर पर रख कर स्त्री के साथ रमण करे तो अनेक स्त्रियां स्खलित हो जाती हैं। यह दूसरी प्रकार की जलूका है ॥ ९६-९७ ॥

प्रकारान्तरेण जलूकानिर्माणम्—

**मुनिपत्ररसञ्चैव शाल्मलीवृन्तवारि च।**
**जातीमूलस्य तोयञ्च शिंशपातोयसंयुतम् ॥ ९८ ॥**
**श्लेष्मातकफलं चैव त्रिफलाचूर्णमेव च।**
**कोकिलाक्षस्य चूर्णञ्च पारदं मर्दयेद्बुधः ॥ ९९ ॥**

**जलूका जायते दिव्या रामाजनमनोहरा ।**
**सा योज्या कामकाले तु कामयेत्कामिनी स्वयम् ॥ १०० ॥**

मुनिपत्ररस—अगस्त्य वृक्ष के पत्तों का स्वरस, शाल्मलीवृन्तवारि—सेमल वृक्ष के पुष्पों के डण्ठल का स्वरस या क्वाथ अथवा सेमल की छाल का क्वाथ, जातीमूल—चमेली की जड़ का स्वरस या क्वाथ, शिंशपातोय—सीसम की छाल या मूल छाल का क्वाथ, श्लेष्मातकफल—बहुवारफल ( लिसोड़ा या गूंदा के फल की मज्जा अथवा बीज की गिरि का चूर्ण ) का चूर्ण, त्रिफला—हरड़ चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, आंवलों का चूर्ण, कोकिलाक्ष—ताल मखाने का चूर्ण, इन सब द्रव्यों के साथ शुद्ध पारद को एक २ दिन पृथक् २ घोट कर उस की उपर्युक्त विधि के अनुसार जलूका बना लेनी चाहिए। इस प्रकार से बनी हुई जलूका दिव्य अर्थात् अत्यन्त उत्तम है तथा सम्भोग के समय कामिनी स्त्रियों को अत्यन्त आनन्द देती है ॥ ९८–१०० ॥

प्रकारान्तरम्—

**त्रिफलाभृङ्गमहौषधमधुसर्पिश्छागदुग्धगोमूत्रे ।**
**नागं सप्तनिषिक्तं समरसजारितं जलूका स्यात् ॥ १०१ ॥**

त्रिफला क्वाथ, भृङ्गराज का स्वरस, महौषध—सौंठ का क्वाथ, मधु—शहद, सर्पि—घृत, छागदुग्ध—बकरी का दुग्ध, गोमूत्र, इन सातों द्रव द्रव्यों में अग्नि-द्वारा प्रतप्तकर सात २ बार बुझाये हुए सीसे का समान भाग शुद्ध पारद के साथ जारण करके उपर्युक्तविधि से जलूका बनानी चाहिए ॥ १०१ ॥

प्रकारान्तरम्—

**भानुस्वरदिनसङ्ख्याप्रभाणसूतं गृहीतदीनारम् ।**
**अङ्कोलराजवृक्षकन्यारसतश्च शोधनं कुर्यात् ॥ १०२ ॥**
**शशिरेखावरवर्णां सकोकिलाक्षापामार्गकनकानाम् ।**
**चूर्णैः सहैकविंशतिदिनानि सम्मर्दयेत् सम्यक् ॥ १०३ ॥**
**निशायाः काञ्जिकं यूषं दत्वा योनौ प्रवेशयेत् ।**
**बालमध्यमवृद्धासु योज्या विज्ञाय तत्क्रमात् ॥**
**नीरसानामपि नृणां योषा स्यात्सङ्गमोत्सुका ॥ १०४ ॥**

भानु—सूर्य (१२), स्वर—अकारादिक स्वर (७), दिन—दिवस (१), इन

अङ्कों को मिलाने ( जोड़ने ) से जो संख्या हो उतना शुद्ध पारद ( अर्थात् २० कर्ष शुद्ध पारद) तथा एक कर्ष दीनार—शुद्ध स्वर्ण लेकर दोनों को खल्व में डाल कर खूब घोटना चाहिए। फिर अङ्कोल के बीज के क्वाथ से, राजवृक्ष—अमलतास के फल के गूदे से तथा कन्या—घृत कुमारी के स्वरस से पृथक् २ एक २ दिन घोट कर विशेष शुद्धि करलें, फिर उस में शशिलेखा—सोमराजी ( बाकुची ) अथवा गुडूच का चूर्ण, वरवर्णी—गोरोचन अथवा हरिद्रा का चूर्ण, तालमखाने का चूर्ण (कोकिल), अपामार्ग का चूर्ण तथा कनक-धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण, इन में से प्रत्येक द्रव्य को स्वल्प २ मात्रा में डाल कर निशा—हलदी के क्वाथ से तथा काञ्जी से २१ दिन तक खूब घोटना चाहिए। इस तरह घोटने के पश्चात् उपर्युक्त विधि से पारद तथा स्वर्ण को प्रतप्त खल्व में द्रुत करके जलूका बना लेनी चाहिए। इस प्रकार की जलूका बाला स्त्रियों के लिये आठ अङ्गुल लम्बी, मध्यम अर्थात् युवति स्त्रियों के लिये दस अङ्गुल लम्बी और वृद्ध अर्थात् प्रौढ स्त्रियों के लिये १२ अङ्गुल लम्बी बनाकर सम्भोग के समय धारण करनी चाहिए। इस तरह की जलूका के धारण करने से औरतें इतनी कामाकुल होती हैं कि वे नीरस ( विषय वासना रहित ) पुरुष के साथ भी सम्भोग करने के लिये उत्कण्ठित हो जाती हैं॥ १०२-१०४॥

प्रकारान्तरम्—

**रसभागं चतुष्कं च वङ्गभागं च पञ्चमम्।**
**सुरसारसमं युक्तं टङ्कणेन समन्वितम्॥ १०५॥**
**त्रिदिनं मर्दयित्वा च गोलकं तं रसोद्भवम्।**
**लिङ्गाग्रे योनिनिक्षिप्तं यावदायुर्वशङ्करम्॥ १०६॥**

शुद्ध पारद चार भाग (४ तो०), शुद्ध वङ्ग ५ भाग तथा शुद्ध सुहागा १ भाग लेकर प्रथम वङ्ग को अग्नि में पिघला (द्रवित) कर तुरन्त ही पिघले हुए वङ्ग को पत्थर की खरल में रखे हुए पारद में मिला कर घोटना चाहिए। फिर सुहागा डाल कर घोटना चाहिए। बाद में तीनों को तुलसी के स्वरस या क्वाथ से तीन दिन तक लगातार ( सतत ) घोट कर पिष्टी बनालें। इस प्रकार से बनी हुई पिष्टी का पुरुष अपनी जननेन्द्रिय के अग्रभाग पर लेप कर के स्त्री के साथ रमण करे तो वह स्त्री जन्म पर्यन्त उस पुरुष के वश में हो जाती है॥१०५-१०६॥

प्रकारान्तरम्—

**कर्पूरसूरणसुभृङ्गसुमेघनादैर्नागं निषिच्य तु मिथो वलयेद्रसेन ।**
**लिङ्गस्थितेन वलयेन नितम्बिनीनां स्वामी भवत्यनुदिनं स तु जीवहेतुः॥ १०७॥**

नाग—सीसे को वह्नि में द्रवित कर के कर्पूर के जल में बुझावें, फिर सूरण कन्द के स्वरस में द्रवित कर बुझावें, फिर एक २ वार भृङ्गराज और मेघनाद—कांटे वाली चोलाई के स्वरस में बुझाकर सीसे के समान पारद लेकर दोनों को खूब घोट कर वलयाकार (अङ्गूठी के समान) बना लेवें। इस प्रकार पारद तथा सीसे से बने हुए बलय ( अङ्गूठी ) को पुरुष अपनी जननेन्द्रिय में धारण कर स्त्री के साथ सम्भोग करे तो वह स्त्री उस पुरुष को अपने जीव ( प्राण ) से भी अधिक प्यार करती है तथा उसको अपना स्वामी मान लेती है ॥ १०७ ॥

अथ योनिद्रावणम्—

**टङ्कणपिप्पलिकाभिः सूरणकर्पूरमातुलुङ्गरसैः ।**
**कृत्वा स्वलिङ्गलेपं योनिं विद्रावयेत्स्त्रीणाम् ॥ १०८ ॥**

टङ्कण—सुहागा तथा पिप्पली इन दोनों को समान भाग की मात्रा से लेकर खरल में बारीक चूर्ण कर के सूरणकन्द के स्वरस, कर्पूरोदक और मातुलुङ्ग—बिजौरे नीम्बू के रस में खूब घोट कर कल्क या पिष्टी बनालें। इस तरह बनी हुई पिष्टी को पुरुष अपनी जननेन्द्रिय ( शिश्न ) के अग्रभाग पर लेप कर स्त्री के साथ सम्भोग करे तो वह शीघ्र ही स्खलित हो जाती है ॥ १०८ ॥

विमर्श—इस तरह के लेप से स्त्रियों की जननेन्द्रिय तथा पुरुष की जननेन्द्रिय में एक विशेष प्रकार की खुजली चलती है। खुजली से बहुत परेशानी होती है अन्त में खुजलाने से घाव या फोड़े फुन्सी हो जाते हैं इसलिये जहांतक हो सके स्वदेहहितेच्छुक बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि ऐसे कृत्रिम उपायों का स्वप्न में भी प्रयोग करने की न विचारें, अन्यथा शरीर अधिक व्याधियों का मन्दिर बन जायगा। कुछ टीकाकारों ने इस प्रयोग में शुद्ध पारद मिलाने की भी राय प्रगट की है। कहीं २ पिप्पिलिकाशब्दाग्रवर्तिभिः, इस तृतीयाविभक्ति के स्थान में 'मा' का प्रयोग करके पिप्पली शब्द का पृथक् पदच्छेद करके 'कामा' शब्द निकालते हैं और उसका 'नामैकदेशे नाममात्रस्य ग्रहणम्" इस परिभाषा के आधार से काकमाची ( मकोय ) अर्थ करते हैं, परन्तु इस तरह का द्रविड़प्राणायाम करके पिप्पली को 'पिप्पलि' इस तरह का ह्रस्व बनाने की अपेक्षा "पिप्पलिकाभिः" यही पाठ अत्युत्तम है। यहां पर ह्रस्व भी इष्ट ही है, इत्यलम्।

मदनवलयम्—

**अग्न्यावर्त्तितनागे हरबीजं निक्षिपेत्ततो द्विगुणम्।**
**मुनिकनकनागसर्पैर्दन्त्याऽथ सिच्याच्च तन्मध्यम् ॥ १०९ ॥**
**तक्रेण मर्दयित्वा गणेन मदनवलयं कुर्यात्।**
**रतिसमये वनितानां रतिवर्गविनाशनं कुरुते ॥ ११० ॥**

शुद्धसीसे को अग्नि में पिघलाकर उसमें उस से द्विगुण शुद्धपारद मिलाकर मुनि—अगस्त्यपत्रस्वरस, कनक–धस्तूरस्वरस और नागवेल–पान के पत्तों के स्वरस में क्रम से एक २ वार बुझावें, फिर उसे सर्प–सर्पाक्षी और दन्ती की मूल के क्वाथ में पृथक् २ एक २ वार बुझा लें, बुझाने के पश्चात् तिक्तवर्ग या तक्र (मथितोदश्विच्छिच्छिकाधोल) के साथ घोटना चाहिए । इस तरह घोटते २ जब उसकी पिष्टी बन जाय तो एक वलय बनालें । इस वलय को पुरुष अपनी अङ्गुली या जननेन्द्रिय में धारण करके यदि स्त्री के साथ सम्भोग करे तो वह मानिनी स्त्री के रतिगर्व को विनष्ट कर देता है । कहीं २ "तक्रेण" इसके स्थान में "तिक्तेन" और "तीक्ष्णेन" ऐसा भी पाठभेद है ॥ १०९–११० ॥

प्रकारान्तरम्—

**व्याघ्रीबृहतीफलरससूरणकन्दं च चणकपत्राम्लम्।**
**कपिकच्छुवज्रवल्लीपिप्पलिकाम्लिकाचूर्णम् ॥ १११ ॥**
**अग्न्यावर्तितनागं नवसारं मर्दयेदिमैर्द्रव्यैः।**
**स्मरवलयं कृत्वतद्वनितानां द्रावणं कुरुते ॥ ११२ ॥**

शुद्ध सीसे को कटाह के अन्दर डाल अग्नि में पिघला कर छोटी तथा बड़ी कटेरी के फलके क्वाथ या रस में पृथक् २ एक २ वार बुझावें फिर सूरणकन्द के स्वरस में, चने के पत्रों के अम्लोदक में, कौञ्च के बीज के क्वाथ में, वज्रवल्ली–हड़जोड़ के स्वरस में तथा पिप्पलीक्वाथ में, मकोय के स्वरस में, ईमली के पत्रों के स्वरस में, चूर्ण–चूने के जल में पृथक् २ एकवार द्रुत कर के बुझावें, फिर एक एक वार इन सब द्रव्यों के स्वरस अथवा क्वाथ की भावना देकर खूब घोटना चाहिए । इस तरह नौ औषधियों के स्वरस या क्वाथ में नौ बार बुझा कर उनके स्वरस में नौ बार घोटकर उस सीसे की अङ्गूठी बना लेनी चाहिए । इस तरह बनी हुई अङ्गूठी को हस्त की अङ्गुली में पहन कर स्त्री के साथ सम्भोग करने से वह स्त्री शीघ्र ही स्खलित होती है ॥ १११–११२ ॥

पारदभस्म—

**पलाशबीजकं रक्तजम्बीराम्लेन सूतकम् ।**
**सजीवं मर्दितं यन्त्रे पाचितं म्रियते ध्रुवम् ॥ ११३ ॥**

सजीव बन्ध नामक पारद को समान भाग पलाश ( ढाक ) के बीजों के साथ खरल में सूक्ष्म चूर्ण करके रक्तजम्बीर अर्थात् लाल पके हुए जम्बीरी नीम्बू के रस में खूब घोटकर गोला बना लें, फिर सूखने के पश्चात् इस गोले को सम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र में पका लेवें, इस विधि से पारद को निश्चय ही भस्म हो जाती है । कुछ टीकाकारों ने सजीव बन्धनामक पारद न लेकर साधारण हिङ्गुलोत्थ पारद के समान भाग पलाशबीज और सजीव अर्थात् अष्टवर्ग पठित जीवक के साथ बारीक चूर्ण या कज्जली कर निम्बू के रस में घोटकर पुट देने को लिखा है तथा रक्त जम्बीर शब्द से रक्त पद का पृथक् पदच्छेद करके उसका कुङ्कुम अर्थ भी किया है ॥ ११३ ॥

प्रकारान्तरम्—

**खरमञ्जरिबीजान्वितपुष्करबीजैः सुचूर्णितैः कल्कम् ।**
**कृत्वा सूतं पुटयेद् दृढमूषायां भवेद्भस्म ॥ ११४ ॥**

शुद्धपारद, खरमञ्जरी—अपामार्गबीज, पुष्करमूल बीज, ये तीनों समान भाग की मात्रा से लेकर खरल में खूब घोटें, फिर थोड़ा सा जल डालकर खरल करके कल्क बनालें, फिर इस कल्क को मजबूत मूषा में बन्द करके पुट देने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ११४ ॥

प्रकारान्तरम्—

**काकोदुम्बरिकाया दुग्धेन सुभावितो हिङ्गुः ।**
**मर्दनपुटनविधानात्सूतं भस्मीकरोत्येव ॥ ११५ ॥**

कटूमर ( काकोदुम्बर ) के दुग्ध से हींग को सातवार भावित करके फिर इस के साथ पारद को घोटकर दृढमूषा में बन्द करके पुट देने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ११५ ॥

प्रकारान्तरम्—

**देवदार्ली हरिक्रान्तामारनालेन पेषयेत् ।**
**तद्द्रवैः सप्तधा सूतं कुर्यान्मर्दितमूर्च्छितम् ॥ ११६ ॥**

**तत्सूतं खर्परे दद्याद्दत्त्वा दत्त्वा तु तद्द्रवम्।**
**चूल्ल्योपरि पचेच्चाह्नि भस्म स्याल्लवणोपमम् ॥ ११७ ॥**

देवदाली—हस्तिघोषक (बन्दाल) और हरिक्रान्ता—विष्णुक्रान्ता (नीलपुष्पा-पराजिता) इन दोनों को काञ्जी से पीसकर इनसे बने हुए कल्क में पारद को सातवार मर्दन करके मूर्च्छित करें, इस तरह पारद से बनी हुई पिष्टी को खर्पर में रख कर चूल्हे पर चढाकर वह्नि प्रदीप्त कर देवें। बाद में उस खर्पर में देव-दाली तथा विष्णुक्रान्ता का थोड़ा २ स्वरस डालकर कलच्छी से चलाता रहे, इस तरह सुबह से शामतक पकाते रहना चाहिए। इस तरह पकाने से पारद की लवण के समान श्वेत भस्म हो जाती है ॥ ११६-११७ ॥

प्रकारान्तरम्—

**अपामार्गस्य बीजानि तथैरण्डस्य चूर्णयेत्।**
**तच्चूर्णं पारदे देयं मूषायामधरोत्तरम् ॥**
**रुध्वा लघुपुटैः पच्याच्चतुर्भिर्भस्मतां नयेत् ॥ ११८ ॥**

अपामार्ग और एरण्ड के बीजों का चूर्ण दोनों को समान लेकर फिर उस चूर्ण से मूषा को आधी भरकर ऊपर पारद भर दें, फिर पारद को उपर्युक्त चूर्ण से ढक-कर मूषा का मुख बन्द कर के सन्धि लेपन कर देना चाहिए। सूखने के पश्चात् उस मूषा को लघुपुट में फूंक दें। इस प्रकार चारवार लघुपुट में पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ११८ ॥

प्रकारान्तरम्—

**कटुतुम्ब्युद्भवे कन्दे गर्भे नारीपयः प्लुते।**
**सप्तधा स्वेदितः सूतो म्रियते गोमयाग्निना ॥ ११९ ॥**

कड़वी तुम्बी की जड़ का स्त्री के दुग्ध के साथ घोटकर कल्क बना लें, फिर इस कल्क के बीच में गड्ढा करके पारद भरकर ऊपर से गड्ढे को कल्क ही से बन्द करदें फिर इसको दृढमूषा के भीतर बन्द करके गाय के उपलों के द्वारा पुट दे देवें, इस तरह सात वार नया २ कल्क बनाकर उसमें पारद को बन्द करके सात पुट देने से पारद की भस्म हो जाती है। कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार भी अर्थ किया है, यथा-कड़वी तुम्बी (जिसका साधु कमण्डलु बनाते हैं) के बीच में युक्ति से छोटा सा छिद्र बनाकर उस छिद्र में शुद्ध पारद को भरकर तुम्बी के भीतर उसी

छिद्र से स्त्री का दुग्ध भरकर तुम्बी के छिद्र को तुम्बी के कटे हुए टुकड़े ही से ढक कर उस पर चिकनी मिट्टी का लेप कर देवें। फिर पृथ्वी में गड्ढा खोदकर गाय के उपलों को भर दें, उनके बीच में उस तुम्बी को रखकर अग्नि प्रदीप्त कर देवें। इस तरह सात वार पृथक् २ सात तुम्बियों में पारद को रख कर स्वेदन करने से पारे की भस्म हो जाती है ॥ ११९ ॥

प्रकारान्तरम्—

**अङ्कोलस्य शिफावारिपिष्टं खल्ले विमर्दयेत् ।**
**सूतं गन्धकसंयुक्तं दिनान्ते तं निरोधयेत् ।**
**पुटयेद् भूधरे यन्त्रे दिनान्ते स मृतो भवेत् ॥ १२० ॥**

शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक दोनों को बराबर २ लेकर पत्थर की खरल में अच्छी प्रकार घोट कर कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर इस कज्जली को अङ्कोल की जड़ के स्वरस या क्वाथ से प्लावित कर एक दिन तक खूब घोटना चाहिए। फिर इस कज्जली का गोला बनाकर मूषा में बन्द करके अथवा दो मजबूत शरावों में बन्द कर के उन पर कपड़मिट्टी कर के सुखा लें, फिर इस सम्पुट को भूधर-यन्त्र(१) में बन्द कर के चार प्रहर तक (~१ रात ) पकाने से पारद की उत्तम भस्म बन जाती है ॥ १२० ॥

प्रकारान्तरम्—

**वटक्षीरेण सूताभ्रौ मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ।**
**पाचयेत्तेन काष्ठेन भस्मीभवति तद्रसः ॥ १२१ ॥**

शुद्ध पारद तथा अभ्रकभस्म दोनों को समान भाग से लेकर खरल में अच्छी प्रकार घोट लें, फिर वट के दुग्ध से दोनों को आप्लावित करके तीन प्रहर ( ९ घण्टे) तक खूब अच्छी तरह से सतत घोट कर दृढशराव अथवा मूषायन्त्र में बन्द करके बालुका यन्त्र की बालुका के बीच में सम्पुट को रख कर बालू से ढक दें। फिर इस यन्त्र को चूल्हे पर चढाकर वट की शुष्क लकड़ियों की आंच देनी चाहिए। इस तरह चार प्रहर तक पाक करने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ १२१ ॥

---

( १ ) भूधर यन्त्रस्य स्वरूपं यथा—बालुकागूढसर्वाङ्गां गर्त्तें मूषां रसान्विताम् ।
दीप्तोत्पलैः संवृणुयात् यन्त्रं तद्भूधराह्वयम् ॥

अथरसभस्मसेवनविधिः—

**अथातुरो रसाचार्यं साक्षादेवं महेश्वरम् ।**
**साधितं च रसं शृङ्गदन्तवेण्वादिधारितम् ॥ १२२ ॥**
**अर्चयित्वा यथाशक्ति देवगोब्राह्मणानपि ।**
**पर्णखण्डे धृतं सूतं जग्ध्वा स्यादनुपानतः ॥ १२३ ॥**

इस तरह उपर्युक्त विधियों में से किसी एक उत्तमविधि के द्वारा पारद की भस्म बनाकर उसे उत्तमशङ्ख, हस्तिदन्त की भोंगली, अथवा बांस की भोंगली में रख दें, फिर जिस रोगी को पारद की भस्म देनी हो उससे या उसके सम्बन्धियों से रसविद्या के साक्षात् आचार्य (गुरु श्री शङ्कर भगवान् ) को तथा शङ्खादि पात्र-स्थित रस की पूजन कराकर तथा अन्य देवता, गौ और श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजन कराकर आधी रात्रि से प्रारम्भ करके एक रत्ति तक पर्णखण्ड (पान) में रख कर अथवा जैसा रोग तथा दोष का प्रकोप हो उसके योग्य अनुपानों के साथ सेवन कराना चाहिए ॥ १२२–१२३ ॥

विमर्शः—यदि रसायन के लिये पारद का सेवन कराना हो तो प्रथम संशोधन के योग्य व्यक्ति को वमनादिक पञ्चकर्मों से शरीर की शुद्धि कराके यदि कोई रोग हो तो उसे अन्य औषधियों से नष्ट करके स्वस्थ शरीर हो जाने पर यथोचित मात्रा से ( आधीरत्तिका से १ रत्ति तक ) योग्यानुपानों के साथ सेवन कराना चाहिए।

रसायनोचितरस—

**हिरण्यजीर्णो घनसत्त्वजीर्णो वज्रादिजीर्णोऽप्यथवामृतश्च ।**
**रसासनार्थं हि रसो नितान्तं प्रशस्यते ह्यत्र रसागमज्ञैः ॥**

अथ रसभक्षणकालः—प्रत्यूषे भक्षयेत् सूतं पथ्यं यामे तथा दिने ।
द्वितीययामे मतिमानश्नीयाद् भोजनं हितम् ॥

अथ मात्राभेदः—हिरण्यजार्णसूतस्य गुञ्जार्धं वितरद्भिषक् ।
जीर्णवैक्रान्तकस्यापि तथा मात्रां प्रकल्पयेत् ॥
जीर्णवज्ररसेशस्य गुञ्जापादः प्रशस्यते ।
गुञ्जकान्तु तदन्येषां मात्रां प्राज्ञः प्रकल्पयेत् ॥

पञ्चकर्मायोग्यव्यक्तिः—यदि बालः कृशः क्षीणः स्याद्रसायनसेवकः ।
तदा तु पञ्चकर्माणि कारयेन्न भिषग्वरः ॥
समयज्ञस्तदा युक्त्या रेचनं कारयेन्नवा ।
ततस्तु सिद्धभैषज्यै र्नीरुजञ्चापि कारयेत् ॥

सिद्धौषधप्रयोगाच्च रोगशान्तिर्यदा भवेत् ।
मृताभ्रमुख्यथागांश्च तदा संयोजयेद्भिषक् ॥

अथ पारदभस्मनि पथ्यम्—

घृतसैन्धवधान्याकजीरकार्द्रकसंस्कृतम् ।
तण्डुलीयक-धान्याक-पटोलालम्बुषादिकम् ॥ १२४ ॥
गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि ।
हंसोदकं मुद्गरसः पथ्यवर्गः समासतः ॥ १२५ ॥

पारदभस्म सेवन करते समय निम्न भोज्यपेयशाकादिक पथ्य हैं। घृत, सैन्धवलवण, धनियां, जीरा, अद्रक इत्यादि द्रव्यों से संस्कृत चोलाई ( तण्डुलीयक ) का शाक, पटोल ( परवल ) का शाक, अलम्बुषा—रामतरोई की शाक सेवन करें तथा गेहूं ( गोधूम ) के आटे की रोटी, पुराने साठी चावलों का भात, गाय का दुग्ध, घृत और दही, (१)हंसोदक, मूंग की दाल का यूष ये संक्षेप से रसभस्म के सेवक के लिये पथ्य हैं ॥ १२४–१२५ ॥

विमर्शः—हंसोदकं (१)यथा—

दिवा सूर्यांशुसन्तप्तं निशिचन्द्रांशुशीतलम् ।
कालेन पक्वममलमगस्त्येनाविषीकृतम् ॥
हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि ॥

हंसोदक के अभाव में शुद्ध भूमि के कुएं से जल लेकर उसे उबाल कर छान लें तथा मिट्टी के पात्र ( सुराई ) में भर कर रखदें, पीने के लिये इस जल का उपयोग करना चाहिए ।

अथ पारदभस्मनि कुपथ्यम् ।

बृहती बिल्वकूष्माण्डं वेत्राग्रं कारवेल्लकम् ।
माषं मसूरं निष्पावं कुलित्थं सर्षपं तिलम् ॥ १२६ ॥
लङ्घनोद्वर्तनस्नानताम्रचूडसुराऽऽसवान् ।
आनूपमांसं धान्याम्लं भोजनं कदलीदले ॥
कांस्ये च गुरुविष्टम्भि तीक्ष्णोष्णं च भृशं त्यजेत् ॥ १२७ ॥

बृहती—बड़ी कटेरी, बिल्वफल, कूष्माण्ड ( काशीफल ) का शाक, वेत्राग्र—बेंत के अङ्कुर, कारवेल्लक—करेले का शाक, माष—उड़दी की दाल, मसूर की दाल, निष्पाव—मटर की दाल, कुलत्थ, सर्षप—सरसों के पत्तों का शाक तथा

उसका तेल, तिल—तिलपिष्टी तथा तिलतैल, लंघन—उपवास, उद्वर्तन—उबटन ( शरीर को सरसों आदि के कल्क से घर्षित करना या रगड़ना ), स्नान, ताम्रचूड—मुर्गे ( कुक्कुट ) का मांस या अण्डे, सुरा(१), आसव(२), आनूप देश के प्राणियों का मांस, धान्याम्ल—काञ्जी, केले के पत्ते तथा कांसे के पात्र में भोजन, गुरु पदार्थों का सेवन, विष्टम्भि—कब्ज या मलावरोध करने वाले उड़द आदियों का सेवन, तीक्ष्ण ( लाल मिरच, क्षार ) पदार्थों का सेवन तथा अत्यन्त उष्ण पदार्थों का सेवन निरन्तर वर्जित है। इन अपथ्यों में स्नान जैसे आवश्यकीय कार्य दूसरे या चौथे दिन कर सकते हैं ॥ १२६–१२७ ॥

विमर्शः-(१)परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्नां सुरां जगुः ॥ इति सुरा ।

(२)यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥ इत्यासवलक्षणम् ।

आनूपदेशस्वरूप यथा—बहूदकनिम्नोन्नतनदीवर्षगहनो मदुशीतानिलो बहुमहापर्वततृक्षो मृदुसुकुमारोपचितशरीरमनुष्यप्रायः कफवातरोगभूमिष्ठश्चानूपो देशः, इति सुश्रुतः, जहां बहुत जल हो, भूमि कहीं पर नीची और ऊंची हो, बहुत नदी, तालाब, कूपादिक जलाशय हों, प्रायः जहां बहुत पानी बरसता हो तथा कोमल और मन्दशीतल हवा चलती हो तथा जहां अनेक छोटी २ या बड़ी २ पहाड़ियां हों तथा उन पर या जमीन पर हरे२ वृक्ष लगे हों, जहां के मनुष्य ज्यादा करके मृदु, सुकुमार और पुष्ट शरीर वाले हों तथा जहां कफ और वात के रोगविशेष होते हों उसका आनूप देश कहते हैं, ऐसे देशके जलाशयों अथवा स्थलचर प्राणियों का मांससेवन हितकर है।

अथ देवीशास्त्रोक्तककारादिगणः

कण्टारीफलकाञ्जिकञ्च कमठस्तैलं तथा राजिकाम् ।
निम्बूकं कतकं कलिङ्गकफलं कूष्माण्डकं कर्कटी ॥
कारी कुक्कुटकारवेल्लकफलं कर्कोटिकायाः फलम् ।
वृन्ताकं च कपित्थकखलु गणः प्रोक्तःककारादिकः ॥१२८॥
देवीशास्त्रादितः सोऽयं ककारादिगणो मतः ।
शास्त्रान्तरविनिर्दिष्टः कथ्यतेऽन्यप्रकारतः ॥ १२९ ॥

कण्टकारी का फल, काञ्जी या काञ्जी के भींगे बड़े, कमठ–कूर्म का मांस (कमठ के स्थान में कहीं २ "कलमः" ऐसा पाठ है वहां कलमाधान लेना चाहिए), तैल, राजिका–राई, निम्बू, कतक (जल को निर्मल करने वाला निर्मली नाम का

फल), कलिङ्गकफल–इन्द्रयव अथवा तरबूज, कूष्माण्डक–श्वेत तथा अन्य कोहड़ा, कर्कटी–ककड़ी, कारी–कण्टकारी विशेष, ( कारीके स्थान में कहीं २ "कीरी" ऐसा पाठ है वहां तोते ( शुक ) की स्त्री का मांस तथा "केकी" ऐसा भी पाठ है वहां मयूर ( स्त्री ) का मांस ग्रहण करना चाहिए ), कुक्कुट–मूर्गे के अण्डे या मांस, कारवेल्लकफल–करेले के फल का शाक, कर्कोटिकाफल–वन्ध्याकर्कोटी ( बांझककोड़े ) का फल, वृन्ताक–बैंगन ( भण्टे ) का शाक, कपित्थक–कैथ का फल, इन पदार्थों को देवीशास्त्र ( देवीभागवत ) में ककरादिक गण के नाम से कहा गया है। अब आगे अन्य शास्त्रों के मत से प्रतिपादित ककरादिक गणका उल्लेख किया जाता है ॥ १२८–१२९ ॥

**विमर्शः—यद्यपि इस ककारादिकगण के पदार्थों में तुल, राजिका, निम्बू, वृन्ताक, ये शब्द ककारादि में न होने से रहित हैं। तथापि "छत्रिणो गच्छन्ति" "माषराशिः" इत्यादिन्याय के अनुसार इनके होते हुए भी ककारादिकगण से व्यवहार करना अनुचित नहीं है।**

अथ श्रीकृष्णदेवोक्तककारादिगणः—

**कङ्कुः कन्दुककोलकुक्कुटकलक्रोडाः कुलत्थास्तथा**
**कण्टारी कटुतैलकृष्णगलकः कूर्मः कलायः कणा ।**
**कर्कारुश्च कटिल्लकं च कतकं कर्कोटकं कर्कटी**
**कालीकाङ्गिकमेषकादिकगणः श्रीकृष्णदेवोदितः ॥ १३० ॥**

कङ्कु—काङ्गणी ( अथवा कङ्कू नामक पक्षी का मांस ), कन्दुक—सुपारी अथवा कन्दूरी फल, कोल—बेर ( बदरीं फल ), कुक्कट—मूर्गे के अण्डे या मांस, कल—कलकण्ठ (मयूर) तथा हंस और पारावत इत्यादि का मांस, क्रोड–वराह ( सूअर ) का मांस, कुलत्थ, कण्टारी—कण्टकारिका के फल, कटु तैल—सरसों का तैल ( कडुआ तैल ), कृष्णगलक—कृष्णवर्ण की गड़क नामक मच्छली का मांस, कूर्म—कच्छप का मांस ( कच्छुए का मांस ), कलाय—मटर की दाल या मटर की छिमी ( फली ) की शाक, कणा—पिप्पल का चूर्ण, ( कणा के स्थान में "कणी" ऐसा भी पाठ है वहां अश्वकण्ठलता ग्राह्य है ), कर्कारु—कुष्माण्डभेद, कटिल्लक—करेले के फल का शाक, कतक—निर्मली, कर्कोटक—बन्ध्याकर्कोटक ( बांझ ककोड़ा ), कर्कटी—ककड़ी, काली—अरहर या असित वेत्र या काला जीरा, काञ्जी, ये सब पदार्थ श्रीकृष्ण देव नामक आचार्य के मत से ककारादिकगण के नाम से कहे गये हैं ॥ १३० ॥

अथ ककारादिनिषेधस्यापवादः—

**यस्मिन् रसे च कण्ठोक्तया ककारादिर्निषेधितः ।**
**तत्र तत्र निषेद्धव्यं तदौचित्यमतोऽन्यतः ॥ १३१ ॥**

जिस पारद के संयोग से बने हुए रस के सेवन की विधि में ककारादि गण वा अथवा उस गण में पठित जिन पदार्थों का निषेध किया हो वे ही पदार्थ विशेष कर के त्याज्य हैं और जिन ककारादि गण के पदार्थों का नाम लेकर जिस रस की सेवन विधि में निषेध नहीं किया हो उन के गुण दोषों का विचार कर के सेवन कर सकते हैं ॥ १३१ ॥

पारदविकार उपायाः—

**उद्गारे सति दध्यन्नं कृष्णमीनं सजीरकम् ।**
**अभ्यङ्गमनिलक्षोभे तैलैर्नारायणादिभिः ॥ १३२ ॥**
**अरतौ शीततोयेन मस्तकोपरि सेचनम् ।**
**तृष्णायां नारिकेलाम्बु मुद्गयूषं सशर्करम् ॥ १३३ ॥**

पारद भस्म सेवन करने से यदि उद्गार (डकार) या उबकाई का विकार हो जाय तो अग्नि में भर्जित जीरे के चूर्ण से मिले हुए दही के साथ भात का सेवन करना चाहिए, तथा जीरे और घृत से संस्कृत कृष्णमीन ( कालीमच्छली ) का सेवन करना चाहिए । वायु का विकार होने पर नारायणादिक वातहर तैलों से शरीर पर अभ्यङ्ग ( मर्दन ) करना चाहिए । अरुचि अथवा किसी प्रकार की मन में ग्लानि होने पर शीतल जल की धारा से मस्तक पर सेचन करना चाहिए । प्यास अधिक लगने पर शर्करामिश्रित नारीयल का जल अथवा मूंग की दाल का यूष या मूंग का यूष सेवन करें ॥ १३२–१३३ ॥

अथ रससेवने उपचारविधिः—

**द्राक्षादाडिमखर्जूरकदलीनां फलं भजेत् ।**
**रसवीर्यविवृद्ध्यर्थं दधिक्षीरेक्षुशर्कराः ॥**
**शीतोपचारमन्यच्च रसत्यागविधौ पुनः ॥ १३४ ॥**
**भक्षयेद्बृंहणीं बिल्वं सकृत्साधारणो विधिः ॥ १३५ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसशोधनबन्धनभस्मजलूकादिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ।

पारदरस सेवन के समय रस तथा बल की वृद्धि के लिये द्राक्षा–मुनक्का, दाडिम–अनार तथा अनार का रस, खर्जूर–पिण्डखजूर और दधि, दुग्ध, गन्ने का रस तथा चीनी या मिश्री का सेवन करना चाहिए तथा इनके अतिरिक्त शीतल उपचार करें। जब रससेवन का त्याग करना हो तो एकवार प्रथम बृहती का फल तथा पक्का बेल तथा उसका मुरब्बा सेवन करना चाहिए। इसके बाद में साधारण आहार का सेवन या स्वेच्छानुकूल पदार्थों का सेवन करना चाहिए ॥११४–१३५॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां रसशोधनबन्धनादिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः।

---

## द्वादशोऽध्यायः।

अथ ज्वरचिकित्सा—

रोगगणना—

ज्वरस्य रक्तपित्तस्य कासस्य श्वासहिध्मयोः।
वैस्वर्यस्य क्षयस्यापि तथारोचप्रसेकयोः ॥ १ ॥
छर्दिहृद्रोगयोश्चैव तृष्णामद्योद्भवार्शसाम्।
उदावर्तातिसाराणां ग्रहण्यर्तिप्रवाहिणोः ॥ २ ॥
विसूच्या वह्निमान्द्यस्य मूत्रकृच्छ्राश्मरीरुजाम्।
मेहस्य सोमरोगस्य पिडिकानां च विद्रधेः ॥ ३ ॥
वृद्धिगुल्मादिरोगाणां शूलानामुदरस्य च।
पाण्डुशोफविसर्पाणां कुष्ठचित्रनभस्वताम् ॥ ४ ॥
वातास्रस्यावृतानां च वन्ध्यानां गर्भिणीरुजाम्।
सूतिकाबालरोगाणामुन्मादेऽपस्मृतावपि ॥ ५ ॥
नेत्ररोगो कर्णरोगे नासारोगाऽऽस्यरोगयोः।
शिरःसञ्जात रोगेषु व्रणे भङ्गे भगन्दरे ॥ ६ ॥

ग्रन्थ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे विषेषु च ।
जरायास्त्वनपत्यानां बीजपोषणहेतवे ॥ ७ ॥
परिपाट्याऽनया सर्वं रोगाणां हि चिकित्सनम् ।
रसलोहविषैरत्र योगैर्वक्ष्ये यथागमम् ॥ ८ ॥

सर्व प्रकार के ज्वर, रक्तपित्त, कास (खांसी), श्वास (दमा), हिध्म-हिचकी, वैस्वर्य—स्वरविकृति या स्वरभङ्ग, क्षय, अरुचि, प्रसेक, छर्दि—वमन, हृदयरोग, तृष्णा, मद्य से उत्पन्नविकार ( मदात्यय आदि ), अर्श, उदावर्त, अतिसार, ग्रहण्यर्ति—संग्रहणी, प्रवाहिका, विसूची ( हैजा ), अग्निमान्य, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, सोमरोग, पिटिका, विद्रधि, वृद्धि—आन्त्रवृद्धि आदि, गुल्म, शूल, उदररोग, पाण्डुरोग, शोथ, विसर्प, कुष्ठ, श्वित्र—श्वेतकुष्ठ, वातरोग, वातास्र—वातरक्त, वन्ध्यारोग, गर्भिणियों के विकार, सूतिकारोग, बालरोग, उन्माद, अपस्मृति—अपस्मार, नेत्ररोग, कर्णरोग, नासिकारोग, आस्यरोग—मुख के रोग, शिर के रोग, व्रण, अस्थि का भङ्ग, भगन्दररोग, गलगण्ड, गण्डमाला आदि ग्रन्थिकरोग, क्षुद्ररोग, सूजाक, उपदंश आदि गुह्यरोग, विषजन्यरोग, वृद्धावस्था के रोग, अनपत्यरोग तथा वीर्य वृद्धि के उपाय ( रसायन तथा वाजीकरण ) आदि सबरोगों की चिकित्सा यथाक्रम से रस, लौह ( सप्तधातुकृतभस्म ) और विष ( शुद्धवत्सनाभ, कुचला आदि ) से बने हुए शास्त्रानुकूल योगों के द्वारा कही जायगी ॥१-८॥

अथ वातज्वरलक्षणम्—

रोमाञ्चकम्पौ वदने मधुत्वमुज्जृम्भणं मस्तकतोददाहौ ।
वातज्वरस्योक्तमिदं हि लक्षं भुक्तोत्तरः स्याद्यदि शश्वदेव ॥ ९ ॥

शरीर के रोगटों (बालों) का खड़ा होना, कम्प होना तथा मुख में मधुरता होना, बार बार जमुहाईयों का आना, मस्तक में तोद—सूई के चुभाने की सी वेदना तथा दाह होना, तथा हमेशा भोजन करने के पश्चात् ( प्रायः भोजन के पाचन के बाद) ज्वर के वेग का बढना ये सब वातज्वर के बोधक लक्षण हैं ॥९॥

**विमर्शः—"वदने मधुत्वम्, यहां पर "वदनेऽमधुत्वम्, इस तरह से अकार का प्रश्लेष समझना चाहिए क्यों कि वातज्वर में मुख की विरसता होती है, माधुयता नहीं होती है। चरक के निदान स्थान में "आस्यवैरस्यं कषायास्यत्वम्, वातज्वर के लक्षण में मुख का कषायरस हो जाना यही लिखा है ।**

वातज्वरलक्षणं यथा माधवनिदाने—

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम् ।
निद्रानाशः श्रवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ १ ॥
शिरोहृद्वाक्ष्णुवक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्माने जृम्भणञ्च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ २ ॥

अथ पित्तज्वरलक्षणम्—

**विरेकशोषास्यकटुत्वतीव्रतापप्रलापभ्रममूर्च्छनानि ।**
**एतानि पित्तज्वरलक्षणानि वमिः सतृष्णाङ्गविदाहिता च ॥ १० ॥**

विरेक—अर्थात् पतली दस्तें होना, मुख का सूखना तथा मुख में कड़वापन होना, तीव्रातप— शरीर में अत्यन्त तीव्र गरमी (दाह) होकर ज्वर आना, प्रलाप—असंबद्धभाषण (बकवाद) करना, भ्रम—शिर में चक्कर आना तथा शरीर में भी चक्कर आना, मूर्च्छा—बेहोशी होना, वमन, प्यास का आधिक्य और अङ्गों में दाह होना ये सब मिलकर अथवा इनमें से कुछ ही लक्षण प्रगट हों तो पित्तज्वर जानना चाहिए । प्रायः ये लक्षण पित्तज्वर(१) में उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

अथ कफज्वरलक्षणम्—

**कासश्वासौ मुखे जाड्यं माधुर्यं बहुनिद्रता ।**
**प्रस्वेदः स्वल्पदाहश्च श्लेष्मजज्वरलक्षणम् ॥ ११ ॥**

कास, श्वास, शरीर में स्तब्धता अथवा मुख में स्तब्धता तथा मुख में मीठापन, निद्रा का आधिक्य, स्वेद ( पसीना ) की उत्पत्ति, शरीर में थोड़ा सा दाह होना ये सब श्लेष्मजन्य(२) ( कफजन्य ) ज्वर के लक्षण हैं ॥ ११ ॥

---

( १ ) माधवोक्तं पित्तज्वरलक्षणं यथा—

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्रालुत्वं तथा वमिः ।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १ ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ २ ॥

( २ ) माधवोक्तं श्लेष्मजज्वरलक्षणं यथा—

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ १ ॥

अथ द्विदोषजत्रिदोषजज्वरकथनम्—

**मिश्रितं लक्षणं यत्तु द्वयोस्त्रिषु भवेच्च तत् ॥ १२ ॥**

जिस ज्वर में दो दोषों के लक्षण मिलते हों उसको द्विदोषजज्वर समझना चाहिए, जैसे वात तथा पित्त के लक्षण मिलें तो वातपित्तज्वर, वात तथा कफ के लक्षण एकत्र मिलें तो वातकफज्वर और पित्त और कफ के लक्षण एकत्र मिलें तो पित्तकफजन्यज्वर समझना चाहिए। जिस ज्वरमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उस ज्वर को त्रिदोषज या सन्निपातज्वर(१)कहना चाहिए ॥ १२ ॥

---

नात्युष्णगात्रता छर्दिरङ्गसादो विपाकिता ।
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ २ ॥

( १ ) माधवोक्तं द्वन्द्वजसन्निपातजज्वराणां लक्षणं यथा—

वातपित्तज्वरलक्षणम्—

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ १ ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ १ ॥

वातश्लेष्मज्वरलक्षणम्—

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रागौरवमेव च ।
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ॥
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १ ॥

पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम्—

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
महुर्दाहोमुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १ ॥

अथ सन्निपातज्वरलक्षणम्—

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा ।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १ ॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥२॥

अथ त्रैलोक्यसुन्दररसः-(पर्पटीरसः)

**विमर्दिताभ्यां रसगन्धकाभ्यां नीरेण कुर्यादिह गोलकं तम् ।**
**भाण्डे नवीने विनिवेश्य पश्चात्तद्गोलकस्योपरि ताम्रपात्रम् ॥१३॥**
**सार्धं मुहूर्तं विनिरुन्ध्य धीमानुद्दीपयेद्दीप्तकृशानुनाऽस्य ।**
**अधस्ततः सिद्ध्यति पर्पटीयं नवज्वरारण्यकृशानुमेघः ॥ १४ ॥**
**विलिप्य पूर्वं रसनां च तालुदेशं च सिन्धूद्भवजीरकार्द्रैः ।**
**वल्लोन्मितां चार्द्रकतोयमिश्रामेनां नियोज्य खगयेत्पटेन ॥ १५ ॥**
**घर्मोद्गमो यावदतः परं च तक्रौदनं पथ्यमिह प्रयोज्यम् ।**
**कुर्याद्दिनानां त्रितयं यदीत्थं ज्वरस्य शङ्काऽपि तदा भवेत्किम् ॥१६॥**

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समान लेकर पाषाण की खरल में घोटकर उनकी अत्यन्त बारीक कज्जल के समान कज्जली बना लेवें, फिर उस कज्जली में थोड़ा सा जल डालकर अच्छी प्रकार से घोटकर उसका गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को नवीन तथा मजबूत हण्डिका के भीतर रखकर ऊपर से शराव के आकृति वाली शुद्ध ताम्र की कटोरी से गोले को ढककर सन्धिबन्धन कर दें। फिर हण्डिका को बालू से भरकर शराव से मुख ढककर सन्धिबन्धन करके चूल्हे पर चढाकर एक प्रहर तक तीव्र अग्नि जलावें। स्वाङ्गशीत होने पर हण्डिका की बालू को हटा कर कटोरी के नीचे पर्पटी के स्वरूप में सिद्ध हुए रस को ग्रहण करना चाहिए। यह रस नूतनज्वररूपी दावाग्नि के लिये मेघोदक है। इस रस को सेवन करने के पूर्व जिह्वा (रसना) तथा तालुप्रदेश को सैंधवलवण, जीरकचूर्ण

---

परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गतापरम् ।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ ३ ॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरादर्शनमल्पशः ॥ ४ ॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम् ।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥५॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ।
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ ६ ॥

और अदरख को एकत्र पीस कर उनसे लिप्त कर दें ( अर्थात् तीनों को मिलाकर एक तोला के करीब लेकर चटनी के समान पीस कर चटाना चाहिए ) फिर उपर्युक्त विधि से बने हुए रस को एक वल्ल ( ३ गुञ्जा ) की मात्रा के बराबर लेकर अद्रक के स्वरस के साथ चटाना चाहिए। दवा खिलाने के बाद उस रोगी को कपड़ों से जबतक पसीना न हो तबतक ढक देना चाहिए। जब पसीना होजाय तब उसके शरीर को शुद्ध तोलियों से पोंछना चाहिए। ऐसी दशा में सहसा रोगी को हवा के सम्पर्क में नहीं रखना चाहिए। औषध के पच जाने के पश्चात् भूख लगने पर रोगी को गाय के मट्ठे के साथ भात खिलाना चाहिए। इस तरह तीन दिन तक इस दवा का प्रयोग करने से ज्वर दूर हो जाता है ॥ १३-१६ ॥

**विमर्शः—१ वल्ल ( ३ रत्ती ) की मात्रा यहां पर बतलाई है यह पूर्णमात्रा है, इस लिये रोग रोगी की शक्ति तथा अवस्था का विचार करके आधी रत्ति से प्रारम्भ करके ३ रत्ती तक देना चाहिए। बच्चों को १ रत्ति की चौथाई मात्रा देवें।**

अथ त्रैलोक्यडम्बररसः—

**सूतार्कगन्धचपलाजयपालतिक्ता**
**पथ्यात्रिवृच्च विषतिन्दुकजान्समांशान्।**
**सम्भाव्य वज्रिपयसा मधुना त्रिवल्ल-**
**स्त्रैलोक्यडम्बररसोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ १७ ॥**

शुद्ध पारद ( रस सिन्दूर ), अर्क—ताम्रभस्म, शुद्धगन्धक, चपला—चपल धातु (विस्मथ) की भस्म ( चपला का पिप्पलीचूर्ण ऐसा अर्थ भी कुछ टीकाकारों ने किया है ), जयपाल-शुद्धजमालगोटे के बीजों का चूर्ण, तिक्ता-कटुकी का चूर्ण पथ्या—हरड़ का चूर्ण, त्रिवृत् के मूल का चूर्ण, विषतिन्दुकज—कपिलु के शुद्ध बीजों का चूर्ण ( शुद्ध कुचले का चूर्ण ), इन सब द्रव्यों को बराबर २ लेकर प्रथम खरल में पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेष द्रव्यों को मिला के अच्छी प्रकार घोटना चाहिए। फिर इनके चूर्ण को थूहर के शुद्ध किये हुए दुग्ध से सातवार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर काच की शीशी में भरकर रखदें। इस प्रकार बने हुए इस रस को त्रैलोक्यडम्बररस कहते हैं। इस रस की ३ वल्ल ( ९ गुञ्जा "स्याद्गुञ्जात्रितयं वल्लः ) की मात्रा शहद के साथ सेवन करने से अभिनव ( नूतन ) ज्वर दूर हो जाता है ॥ १७ ॥

विमर्शः—परिभाषा के अनुसार ३ वल्ल ९ रत्ति के बराबर होता है, इस लिये यह मात्रा आजकल के लिये अधिक है, प्रायः इस रस को बच्चों के लिये १ रत्ति की मात्रा से शहद और अद्रक के रस के साथ या जैसा दोष का प्रकोप हो तदनुकूल अनुपानों से दें। यदि रोग की अवस्था चिरकालीन हो, रोगी बलवान् हो तो इस रस की १ वल्ल या ३ रत्ति की मात्रा देवें।

जयपाल का चूर्ण, अर्थात् शुद्धजयपाल का लेना चाहिए।

जयपालशोधनविधिर्यथा—

जयपालस्य बीजानि नवानि तु समाहरेत्।
बाह्यस्त्वचमपाकृत्य द्विधा खलु विभेदयेत्॥ १॥
हरिद्वर्णो नातिदीर्घो रसनां तु परिस्पृजेत्।
पोट्टल्यामथ विन्यस्य दोलायन्त्रे विधानतः॥ २॥
गव्यदुग्धे प्रयत्नेन यामैकं स्वेदयेत्ततः।
एवं त्रिवारं सुस्विन्नो जयपालो विशुद्ध्यति॥ ३॥

प्रकारान्तरम्—

जयपालं त्वग्रसज्ञारहितं पोट्टलीगतम्।
दोलायन्त्रे तु यामैकं स्वेदमेद् गव्यदुग्धतः॥ १॥
सम्पेष्य खल्वे नूत्नेषु खर्परेषु प्रलेपयेत्।
विज्ञाय विगतस्नेहं जयपालं समाहरेत्॥ २॥
न्यसेद्वा यत्नतो मध्ये मषीशोषकपत्रयोः।
एवं तु विगतस्नेहो रेचकः शुद्धिमाप्नुयात्॥ ३॥

प्रकारान्तरम्—

त्वग्रसज्ञाविरहितं जयपालस्य बीजकम्।
वस्त्रंशटङ्कणोपेतं पोट्टल्यां रोधयेद् दृढम्॥ १॥
स्वेदयेद् दोलिकायन्त्रे द्वियामं गव्यदुग्धतः।
इत्थं स्विन्नस्तु जेपालः शुद्धिमायात्यनुत्तमाम्॥ २॥

इति जयपालशोधनम्।

शुद्धेन स्नुहीदुग्धेन भावना दीयते तस्माच्छोधनविधिर्यथा—

पलद्वयं सुधादुग्धं तोलकद्वयसम्मितं।
चिञ्चादलद्रवे वस्त्रपूते घर्मे विशोषयेत्॥ १॥
द्रवं विशुष्कं विज्ञाय सुधादुग्धं समाहरेत्।
ततः सर्वत्र योगेषु प्रयुञ्जीत भिषग्वरः॥ २॥

इति स्नुहीदुग्धशोधनम्।

विषतिन्दुकबीजानि शुद्धानि समादाय तेषां चूर्णं प्रक्षिपेदतस्तच्छोधनविधिर्यथा—

विषतिन्दुकबीजानि विन्यसेद् गृहवारिणि।
दिनत्रयं प्रयत्नेन त्वपनीय बहिस्त्वचम् ॥ १ ॥
निदाघे चाथ संशोष्य चूर्णयेच्छिषजां वरः।
एवं विशुद्धिमायाति सर्वथा विषतिन्दुकम् ॥ २ ॥

प्रकारान्तरम्—

विषतिन्दुकबीजानि त्वतिमन्दाग्नियोगतः।
निधाय पिष्टपचने तावदाज्येन भर्जयेत् ॥ १ ॥
यावद्बहिस्त्वचा किञ्चिज्जायते कपिशप्रभा।
कुचेलमेवं त्वरितं शुद्धिमायात्यनुत्तमाम् ॥ २ ॥

प्रकारान्तरम्—

विषतिन्दुकबीजानि पोट्टल्यां विन्यसेच्छिषक्।
स्वेदयेद् गव्यपयसा दोलिकायन्त्रमार्गतः ॥ १ ॥
एवं यामैकमात्रेण शुद्धिमायान्त्यनुत्तमाम्।
शोधितं तिन्दुकं त्वेवं वीतशङ्कः प्रयोजयेत् ॥

इति विषतिन्दुकबीजशोधनम्।

अथ मेघनादरसः—

**पादांशकंसाररविः समांशगन्धो विपक्वः स्वकषायपिष्टः।**
**रसः क्रमान्माषमितोऽनिलादिज्वरेषु नाम्ना किल मेघनादः ॥ १८ ॥**

कंस—कांस्यभस्म, आर—पित्तलभस्म, रवि—ताम्रभस्म, ये प्रत्येक पारद की अपेक्षा चतुर्थांश तथा शुद्धगन्धक पारद के बराबर तथा पारद, ( लेकर अर्थात् कांस्यभस्म १ तो०, पित्तलभस्म १ तो०, ताम्रभस्म १ तो०, शुद्धपारद ४ तो०, शुद्धगन्धक ४ तो०) लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेषद्रव्य मिला के घोट लें, फिर मेघनाद ( कांटेदार चोलाई ) के स्वरस से सातवार भावना देकर खूब अच्छी प्रकार घोटना चाहिए। फिर इसको सम्पुट में बन्दकर के बालुकायंत्र में पकालेवे। इस प्रकार से बने हुए रस को मेघनाद रस कहते हैं। इस रस को १ रत्ति से प्रारम्भ कर १ माषे तक अद्रकस्वरस तथा मधु के साथ वातिकज्वर में तथा अन्य ज्वरों में यथानुपान के साथ सेवन करना चाहिए॥ १८॥

अथ ज्वरगजहरिरसः—( ज्वरगजकेसरी )

**दरदजलदयुक्तं शुद्धसूतं च गन्धं**
**प्रहरमथ सुपिष्टं वल्लयुग्मं च दद्यात्।**

ज्वरगजहरिसंज्ञं शृङ्गवेरादकेन
प्रथमजनितदाही क्षीरभक्तेन भोज्यः ॥ १९ ॥

दरद—शुद्धहिङ्गुल, जलद—अभ्रकभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ये सब समान लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करें, फिर शेष द्रव्य मिला कर एक प्रहर तक अच्छी प्रकार घोटकर सूक्ष्म चूर्ण बना लेवें, फिर इसमें अद्रक के रस की सातवार भावना देनी चाहिए। इस प्रकार से बने हुए इस रस को ज्वरगजहरिरस अथवा ज्वरगजकेसरी रस कहते हैं। इस रस को २ रत्ति की मात्रा से प्रारम्भ कर वल्लयुग्म ( ६ रत्ति ) तक अद्रक के रस तथा मधु के साथ देने से नवीनज्वर दूर होता है। इस रस के सेवन के पश्चात् बुभुक्षा लगने पर दुग्ध तथा भात पथ्य में देने चाहिए ॥ १९ ॥

अथ दीपिकारसः—

सन्तप्तसीसभागं च पारदं गन्धकं कणाम्।
समभागं पृथक् तत्र मेलयेच्च यथाविधि ॥ २० ॥
जम्बीरस्य रसे सर्वं मर्दयेच्च दिनत्रयम्।
मेघनादकुमार्योश्च रसे चापि दिनत्रयम् ॥ २१ ॥
दिनद्वयमजामूत्रे गवां मूत्रे दिनत्रयम्।
भावयेच्च यथायोग्यं तस्मिन्नेतानि दापयेत् ॥ २२ ॥
सैन्धवं चित्रकं भागं सौवर्चलवणं तथा।
तेन सम्मेलनं कृत्वा भावयेच्च पुनः पुनः ॥ २३ ॥
अनेन विधिना सम्यक् सिद्धो भवति तद्रसः।
शर्कराघृतसंयुक्तं दद्याद्वल्लत्रयं रसम् ॥ २४ ॥
गोधूमस्योदनं पथ्यं माषसूपं च वास्तुकम्।
धात्रीफलसमायुक्तं सर्वज्वरविनाशनम्।
दीपिकारस इत्येष तन्त्रज्ञैः परिकीर्तितः ॥ २५ ॥

सीसकभस्म, शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, पिप्पली चूर्ण, प्रत्येक एक २ तोले की मात्रा के प्रमाण से लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करके सीसभस्म तथा पिप्पलीचूर्ण मिलाकर तीन दिन तक चारों को एकत्र खरल में जम्बीरी निम्बूके रस से घोटें (हमेशा नया २ रस डालकर घोटना चाहिए) तथा घोटते २

रस सूख जाय तो फिर रस डाले), पश्चात् जंगली चोलाई तथा घृतकुमारी के स्वरस से पृथक् २ तीन २ दिन घोटे, फिर दो दिन तक बकरी के मूत्र से तथा तीन दिनतक गोमूत्र से भावित करके फिर उसमें सैन्धव लवण, चित्रकचूर्ण, सौंचल लूण, प्रत्येक एक २ तोले की मात्रा से मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर जम्बीररस मेघनादरस, कुमारीस्वरस, अजामूत्र तथा गोमूत्र से उपर्युक्त दिनसंख्या के अनुसार भावना देनी चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को तंत्र शास्त्र के विद्वानों ने दीपिकारस कहा है। इस रस को ३ रत्ती से प्रारम्भ कर ३ वल्ल ( ९ रत्ति तक ) तक मिश्री तथा गोघृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करें बुभूक्षा लगने पर गेहूँ की रोटी अथवा मोटे २ दले हुए गेहूं का संस्कृत भात ( थूली ), उड़दी की दाल, बथुए का शाक, और पुराने चांवलों का भात खाना चाहिए। इस रस को आंवले के चूर्ण या स्वरस तथा मधु के साथ सेवन किया जाय तो प्रायः सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं ॥ २०-२५ ॥

अथ शीतभञ्जीरसः—

**पारदं रसकं तालं तुत्थं गन्धकटङ्कणम्**
**सर्वमेत्समं शुद्धं कारवेल्ल्याद्रवैर्दिनम् ॥ २६ ॥**
**मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ।**
**अङ्गुलार्धार्धमानेन तं पचेत्सिकताह्वये ॥ २७ ॥**
**यन्त्रे यावत्स्फुटन्त्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।**
**ततः सुशीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ २८ ॥**
**शीतभञ्जी रसो नाम चूर्णयेन्मरिचैः समम् ।**
**माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥**
**त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥ २९ ॥**

शुद्ध पारद, शुद्ध खर्पर, शुद्ध हरताल, शुद्ध तुत्थक, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, इन में से प्रत्येक को बराबर २ अर्थात् एक एक तोले की मात्रा के प्रमाण से लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर फिर शेषद्रव्यों को सम्मिलित करके करेले के स्वरस या क्वाथ से अच्छी प्रकार आप्लावित करके एक दिन तक निरन्तर घोटना चाहिए। इस प्रकार घोटने से बनी हुई पिष्टी का शराव के स्वरूप की ताम्रपत्र की कटोरिका के भीतर आध २ अङ्गुल के समान मोटा लेप

कर देवें। फिर उस कटोरी को दूसरी ताम्र की कटोरी से ढककर दोनों के मुख की सन्धि को चिकनी मृत्तिका के गाढे पङ्क ( कीचड़ ) से लिप्त करके सुखा लेवें सम्पुट के ऊपर भी मिट्टी का लेप कर देना चाहिए। इस प्रकार बने हुए इस सम्पुट को बालुका से भरे हुए भाण्ड के बीच में गाड़ कर सारे भाण्ड को बालुका से भरकर भाण्ड के मुख को भी शराव से बन्द करके चिकनी मिट्टी से लीप दें फिर इस बालुकायंत्र को भट्टी पर चढा कर अग्नि प्रदीप्त कर देवें। भाण्डमुखस्थ शराव के भीतर कुछ धान ( छिलकों सहित चांवल ) भर देना चाहिए। जब वह धान वह्नि के संयोग से फूटने लगे ( अर्थात् भड़भूजे के भूंजने के समान भूंज जाय ) तब रस के पाक को सिद्ध हुआ जान कर अग्नि देना बन्द करदें। स्वाङ्गशीत यंत्र को भट्टी से उतारकर उसमें से सम्पुट को निकाल कर युक्ति से तोड़कर ताम्र की कटोरिका से सिद्ध औषध निकाल लें। फिर इस सम्पूर्ण रस का जितना वजन हो उतना ही काली मिरचों का चूर्ण मिलाकर दोनों को खरल में सूक्ष्म (बारीक) पीसकर कांच के पात्र में औषध रख दें। इस को शीतभंजीरस कहते हैं। इस रस को प्रतिदिन २ रत्ति से प्रारम्भ कर जैसा रोग तथा रोगी हो तदनुसार १ माषे तक पान के रस तथा मधु अथवा पानबीड़े में रख कर सेवन करें। इस तरह तीन दिन तक सेवन करने से यह रस सर्व प्रकार के ज्वर, विशेष करके तीव्र(१) विषमज्वर, एकाहिकज्वर, दूसरे दिन में आने वाला ज्वर, तृतीयकज्वर (तिजारी) तथा चतुर्थक (चौथिया) ज्वर को नष्ट करता है॥ २६–२९॥

अथ प्राकारान्तरेण शीतभञ्जीरसः—

**सूततालशिलास्तुल्या मर्दयेत्कर्कटीरसे।**
**ताम्रपात्रे विनिक्षिप्य तत्कल्कं कज्जलीकृतम्॥ ३०॥**

---

( १ ) विषमज्वरलक्षणं यथा—

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्॥ १॥
क्वचिदुष्णेन शीतेन क्वचिद्रात्रौ क्वचिद्दिवा।
प्रशमं याति कोपञ्च ज्वरः स विषमः स्मृतः॥ २॥
यः स्यादनियतात्कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च।
वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः॥ ३॥ इति।

विपचेद्वालुकायन्त्रे यथोक्तविधिना ततः।
दद्यान्मरिचचूर्णेन माषमात्रं भिषग्वरः॥ ३१॥
प्रपिबेदुष्णतोयस्य चुलुकं शीतकज्वरे।
शीतभञ्जी रसः सोऽयं शीतज्वरनिवारणः॥ ३२॥

शुद्धपारद, शुद्धहरिताल, शुद्धमनःशिला इन तीनों को समान लेकर खरल में अच्छी प्रकार घोट कर कर्कटी ( एर्वारु ) के खरस से आप्लावित करके खूब घोटलें, इस तरह घोटते २ जब सब की कज्जल के समान पिष्टी हो जाय तब उस पिष्टि से ताम्रकटोरिका के भीतरी भाग को लिप्त कर पूर्वानुसार सम्पुट करके बालुकायंत्र में यथोक्त विधि से पाक करें स्वाङ्गशीतयंत्र को उतारकर उसमें से सम्पुट को निकाल सिद्धरस को ग्रहण करें। फिर उस सिद्धरस के समान मिरचों का चूर्ण लेकर दोनों को खरल में महीन पीसकर काचपात्र में भरकर रख दें। इस तरह सिद्ध हुए इस शीतभंजी रस को प्रतिदिन २ रत्ति से १ माषे तक अद्रक के रस तथा शहद् से सेवन करके ऊपर से कुछ उष्ण जल एक चुल्लूभर पीना चाहिए। इस तरह यह शीतभंजी रस शीतज्वर को दूर करता है॥ ३०–३२॥

विमर्शः-कहीं २ "कर्कटी" के स्थान में "मर्कटी" ऐसा पाठ है। उस जगह मर्कटी अर्थात् कौंच के बीजों का क्वाथ लेना चाहिए और उससे उपर्युक्त रस को घोटें।

अथ मृतजीवनरसः—

कुष्माण्डचूर्णतिलजैः प्रविशुद्धतालं
गाढं विमर्द्य सुषवीसलिलेन तुल्यम्।
सूतेन हिंगुलभुवा सिकताख्ययन्त्रे
गोलं विधाय परिवृत्तकपालमध्ये॥ ३३॥
पत्रेण तं दिनपतेश्च पिधाय रुद्ध्वा
सन्धिं तयोर्गुडसुधाखटिकाशिवाभिः।
चह्नौ पचेन्मृदुनि पात्रशिरःस्थशाली-
वैवर्ण्यमात्रमवधिं प्रविधाय धीमान्॥ ३४॥
वल्लं ततः सुरसमिश्रममुष्य दद्यात्
सर्पिः सिताकणपयोमधुचानुपेयम्।
जेतुं ज्वरान्प्रविषमानिह वान्तिशान्यै
मौलौ सुशीतलजलस्य ददीत धाराम्॥ ३५॥

**अथामयान्तं रसराजमौलिभूषामणिं तं मृतजीवनाख्यम्।**
**सुधारसेनेव रसेन येन सञ्जीवनं स्यात्सहसाऽऽतुराणाम् ॥ ३६ ॥**

कुष्माण्डस्वरस, चूर्णोदक ( चूने का जल = लाइमवाटर ), तिलज—तिल के क्षार का जल, इनसे क्रमशः शोधित हरताल तथा शुद्धहिङ्गुल से निकाला हुआ पारद दोनों को बराबर बराबर लेकर खरल में अच्छी प्रकार घोटें। फिर करेले के रस या क्वाथ से आप्लावित कर दृढता से घोट कर गोला बना लें, फिर इस गोले को आक के पत्तों से लपेट कर मजबूत मूषा के अन्दर रख दें, फिर गुड़, चूने का चूर्ण, खड़िया और हरड़ का चूर्ण इनको जल से पीसकर इनकी पिष्टी से मूषा का मुख बन्दकर के सुखाकर उसे बालुकायंत्र की बालुका के बीच में गाड़ कर बालुकायंत्र के मुख को भी शराब से ढक कर सन्धिबन्धन कर देना चाहिए। फिर बालुकायंत्र को भट्टी पर रख कर वह्नि प्रदीप्त कर दें। बालुकायंत्र के शराव में कुछ धान रख देवें। जब यह धान फूटने लगे ( पकने लगे ) तब रस को सिद्ध हुआ जानकर अग्नि देना बन्द कर देवें। स्वाङ्गशीत यंत्र से सम्पुट निकाल कर उस में से सिद्ध औषध ग्रहण करें। इस औषध को खरल में सूक्ष्म ( महीन ) पीसकर काचपात्र में भर दें। इस औषध को प्रतिदिन १ वल्ल के समान तुलसी के पत्र के स्वरस के साथ खाकर तदनन्तर पिप्पली के चूर्ण को घी, मिश्री तथा शहद के साथ चाटकर ऊपर से शर्करामिश्रित दुग्ध का अनुपान करें। इस तरह प्रतिदिन सेवन करने से यह रस एकाहिकज्वर तथा विषमज्वर को दूर करता है। इस रसके सेवन से यदि उष्णता ( गरमी ) अधिक प्रतीत हो तथा वमन होने की इच्छा होती हो तो शिरपर शीतलजल की धारा छोड़नी चाहिए। यह रस यथारोगानुपान से सब रोगों को दूर करता है। सब रसों में यह श्रेष्ठ है तथा यह प्राण त्याग करने वाले रोगियों को भी कुछ समय के लिये तुरन्त ही अमृत के समान जीवन प्रदान करता है इस लिये इस को मृतसञ्जीवन रस कहते हैं ॥ ३३-३६ ॥

**विमर्शः—इस रस की पिष्टी को मिट्टी के सकोरे के अन्दर रख कर ऊपर से ताम्र का पत्र ढककर दोनों की सन्धियों को गुड़, चूना, खड़िया तथा हरड़चूर्ण के कल्क या पिष्टी से बन्द कर बालुकायन्त्र में मन्दाग्नि से धान के विवर्ण मात्र होने तक पाक करें, ऐसा भी सम्प्रदाय है।**

चूर्णकुष्माण्डस्वरसयोर्हरितालशोधनविधिर्यथा—

तालकं चूर्णयित्वा तु पोट्टल्यां विनिधाय च ।
दोलायन्त्रे पचेद्यामं कुष्माण्डसलिले भिषक् ॥ १ ॥
यामकं चूर्णतोयेऽपि पचेद्वद्यः प्रयत्नतः ।
इत्थं यामद्वयेनैव शुद्धिमायात्यनुत्तमाम् ॥ २ ॥

अथ प्रसङ्गाच्चूर्णोदकनिर्माणविधिर्यथा—

रक्तिद्वयोन्मितं चूर्णं पञ्चतोलकसम्मिते ।
जले विनिक्षिपेत् प्राज्ञस्त्रियामं स्थापयेत्ततः ॥ १ ॥
ततः सारकपत्रेण सारयेत् काचपात्रके ।
चूर्णोदकमिति ख्यातं तथैव च सुधोदकम् ॥ २ ॥
चूर्णोदकं दृढहरितकाचकूप्यां निधापयेत् ।
तथातिसंयतेनेह पिधानेन निरोधयेत् ॥ ३ ॥

अमुना क्रमेणैव तालस्वेदनार्थं यावन्मितस्य चूर्णोदकस्य आकाङ्क्षा भवेत्तावन्मितं सुधोदकं निर्मापयेत् ।

अथ तिलक्षारोदके तालसंशोधनविधिर्यथा—

तालचूर्णन्तु पोट्टल्यां न्यस्य दोलागतं पचेत् ।
तिलक्षारजलेनैव याममात्रं भिषग्वरः ॥ १ ॥
यामैकं स्वेदनादेवं तालं शुद्धिमवाप्नुयात् ।
इत्थं विशोधितं तालं वीतशङ्कः प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

इति हरितालशोधनम् ।

अथ वृद्धाज्वरांकुशरसः—( हिंगुलेश्वरः )

**रसहिङ्गुलजेपालैर्वृद्धया दन्त्यम्बुमर्दितैः ।**
**दिनार्धेन ज्वरं हन्याद् गुञ्जैकं सितया सह ॥ ३७ ॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्धहिङ्गुल २ तो०, शुद्धजयपालबीजचूर्ण ३ तो० लेकर सबको खरल में महीन पीसकर दन्ती के मूल के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ दिनार्ध ( ६ घण्टे ) तक निरन्तर घोटकर १ रत्ति के प्रमाण की गोलियां बना लेनी चाहिएं । इस रस की एक एक गोली प्रतिदिन मिश्री के साथ घोट कर सेवन करने से यह रस सब प्रकार के ज्वर को दूर करता है । इस रस को वृद्धज्वराङ्कुश तथा अन्य ग्रन्थों में हिङ्गुलेश्वर रस भी कहा है ॥ ३७ ॥

अथ महाज्वरांकुशरसः—

**शुद्धं सूतं विषं गन्धं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ।**

चतुर्भिश्च समं व्योषं चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ३८ ॥
दन्तभाण्डेऽथवा शार्ङ्गे काष्ठे नैव कदाचन ।
वातश्लेष्मज्वरे देयं द्वन्द्वजे वा त्रिदोषजे ॥ ३९ ॥
रसेन शृङ्गवेरस्य जम्बीरस्याऽथवा पुनः ।
गुञ्जाद्वयं च जीर्णेऽस्मिन्दधिभक्तं प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥
एकद्वित्रिदिनैर्हन्याज्ज्वरान्दोषक्रमेण तु ।
महाज्वराङ्कुशो नाम रसोऽयं शम्भुनोदितः ॥ ४१ ॥

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्धवत्सनाभ ( मीठातेलिया ) का चूर्ण १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्ध धत्तूरे के बीजों का चूर्ण तीनों के बराबर ( ३ तो० ) तथा चारों के बराबर ( ६ तोला ) त्रिकटुचूर्ण लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर फिर शेषद्रव्य मिला के सब को एकत्र महीन पीस लें। इस तरह से बने हुए इस रस को हस्तिदन्त के बने हुए पात्र में अथवा महिषादिक के सींग के बने हुए पात्र में रखना चाहिए। काष्ठ के पात्र में कभी भी नहीं रखें। इस रस को दो रत्ति की मात्रा से अद्रक के रस के साथ वातिकज्वर, श्लैष्मिक-ज्वर तथा द्वन्द्वज ( वातश्लेष्मजन्य ) ज्वर में देना चाहिए। त्रिदोषजन्य-ज्वर में जम्बीरी निम्बू के रस के साथ इसको देवें। इस रस के सेवन करने के तीन घण्टे के बाद (औषध पच जाने पर) भूंख लगने पर पथ्य में दधियुक्त भात का सेवन करना चाहिए। यह रस दोषक्रम से अर्थात् एकदोषजन्यज्वर को एक दिन में, द्विदोषजन्यज्वर को दो दिन में तथा त्रिदोषजन्यज्वर को तीन दिन में दूर कर देता है। इस महाज्वराङ्कुशनामकरस को श्रीशङ्कर भगवान् ने प्रथम कहा है ॥ ३८–४१ ॥

**विमर्शः—हस्तिदन्तपात्र तथा शृङ्गपात्र की अपेक्षा इस रस को समयानुसार आजकल सुलभ काचपात्र में ही रखें तो कोई हानि नहीं है।**

**धुस्तूरबीजशोधनविधिर्यथा–**

धत्तूरबीजान्यादाय पोट्टल्यां रोधयेत्ततः ।
स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे गव्यदुग्धेन यामकम् ॥ १ ॥
संस्वेद्य क्षालयेदुष्णतोयेन तु ततो भिषक् ।
इत्थं शुद्धानि बीजानि वीतशङ्कः प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

प्रकारान्तरम्—

नवानि धूर्त्तबीजानि दोलिकायन्त्रयोगतः।
स्वेदयेद् गव्यमूत्रेण यामैकं पोटलीगतम्॥ १॥
खल्वेऽथ खलु सम्पेष्य वस्त्रपूतन्तु कारयेत।
इत्थं शुद्धानि बीजानि वीतशङ्कः प्रयोजयेत॥ २॥

इति धुस्तूरबीजशोधनम्।

व्योषपरिभाषा—

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च मरिचं त्र्यूषणं विदुः।
कटुत्रिकन्तु त्रिकटु व्योषञ्चैव तथोच्यते॥ १॥ इति।

अथ मृत्युंजयरसः—

तालं ताम्ररजो रसश्च गगनं गन्धश्च नेपालकं
दीनारप्रमितं तदर्धमुदितं टङ्कं शिलामाक्षिकम्।
दीनारद्वितयं विषस्य शिखिनः पिष्ट्वा रसैः पाचितो
यश्चिन्तामणिवज्ज्वरौघविजयी नाम्ना तु मृत्युञ्जयः॥४२॥

शुद्ध हरिताल, ताम्रभस्म, रस—शुद्धपारद, गगन—अभ्रकभस्म, शुद्ध-गन्धक, शुद्धजयपालचूर्ण, ये प्रत्येक दीनार के बराबर अर्थात् एक२ शाण तथा टङ्क—शुद्ध सुहागा, शिला—शुद्धमनःशिला और स्वर्णमाक्षिकभस्म ये आधे २ शाण तथा शुद्धवत्सनाभचूर्ण दो शाण भर लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली कर के शेषद्रव्य मिला कर शिखी—अपामार्ग अथवा चित्रक के स्वरस अथवा क्वाथ से घोट कर गोला बना लेना चाहिए। फिर इस गोले को सम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र में पका लेवें। यह मृत्युञ्जय रस चिन्तामणि रस के समान सब ज्वरों के समूह को नष्ट कर देता है। यह रस मृत्यु को भी जीतता है इस लिये इसका नाम मृत्युञ्जय रस पडा है॥ ४२॥

अथ सर्वज्वरारिरसः-( सर्वज्वरांतकः )

तालं ताम्रमयोरजश्च चपला तुत्थाभ्रकं कान्तकं
नागं स्याच्च समांशकं सुमृदितं मूलं च पौनर्नवम्।
भृङ्गीकासहरीपुनर्नवमहामन्दारपत्रोद्भवैः
कल्कं वालुकयन्त्रपाचितमिदं सर्वज्वरस्यान्तकृत्॥ ४३॥

ताल—शुद्धहरताल, ताम्र—ताम्रभस्म, अयोरज—लौहभस्म, चपला—

चपल ( विस्मथ ) धातु की भस्म अथवा पिप्पलीचूर्ण, शुद्धनीलातोत्था, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, नागभस्म, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण ये सब समान लेकर खरल में एकत्र बारीक पीसलें, फिर इनको भृङ्गराज ( भांगरा ), कासहरी–कासमर्द ( कसौंदी ) अथवा कण्टकारी, पुनर्नवा ( गदपूरणा–साठेड़ी ), महा–गोरक्षतण्डुला, मन्दार–पारिभद्रक, या महामन्दार–फरहद के पत्र, प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ एक २ वार भावित कर के घोट कर गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को दो सकोरों में अथवा दृढ मूषा में बन्द कर के बालुकायन्त्र में एक प्रहर तक पकाना चाहिए। स्वाङ्गशीत औषध को महीन पीस कर शीशी में भर दें। यह रस यथादोषानुपान से सब ज्वरों को नष्ट कर देता है। इस लिये इस रस को सर्वज्वरारि रस कहते हैं। मात्रा १ रत्ति से प्रारम्भ कर के रोग तथा रोगी का विचार कर ३ रत्ति तक देवें ॥ ४३ ॥

अथ चंद्रसूर्यरसः-( चंद्रसूर्योदयः )

**तुत्थेन तुल्यः शिवजश्च गन्धो जम्बीरनीरेण विमर्दनीयः ।**
**दिनत्रयंमेलय तेन तुल्यं व्योषं ततःसिद्धयति चन्द्रसूर्यः ॥ ४४ ॥**
**वह्नो विजेतुं विषमावलम्बि दलेन देयो भुजगाख्यवल्ल्याः ।**
**दुग्धं हितं स्यादिह शृङ्गवेररसेन शैत्येषु निषेवणीयः ॥४५॥**
**तक्रं सगर्भाज्वरशूलयोस्तु द्राक्षाम्बुना पथ्यमनन्तरोक्तम् ।**
**रोधं वरायाः सलिलेन शूलं जम्बीरनीरेण वराजलेन ॥ ४६ ॥**
**अपस्मृतावत्र नियोजनीयमभ्यञ्जनं निम्बपयोभवाभ्याम् ।**
**घृतौदनं स्यादिह भोजनाय जम्बीरनीरेण निहन्ति गुल्मम् ॥ ४७ ॥**
**हिंग्वम्लिकानिम्बुरसेन देयं प्लीहोदरे स्यादिह तक्रभक्तः ।**
**स्तम्भार्थमस्मिन्ससितं पयःस्याद्गुडो नियोज्यो वमनप्रशान्त्य ॥४८॥**

शुद्ध नील तुत्थक १ तो०, शुद्ध पारद ( शिवक ) १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो० लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली कर के तूतिया को मिला कर महीन पीस लेना चाहिए। फिर इन सब को तीन दिन तक जम्बीरी निम्बू के रस से अच्छी प्रकार घोट कर तीनों के बराबर ( ३ तो० ) व्योष—त्रिकटु ( शुण्ठी, मिरच, पिप्पली ) का महीन चूर्ण मिला कर घोट लेवें, फिर इस चूर्ण को सूखा कर शीशी में भर कर रख दें। इस प्रकार से यह चन्द्रसूर्यरस सिद्ध

होता है। इस रस को १ वल्ल ( ३ रत्ति ) भर लेकर भुजगवल्ली—नागरबेल के पत्ते के रस तथा मधु के साथ प्रतिदिन देने से सर्व प्रकार के विषमज्वर दूर हो जाते हैं। औषध के जीर्ण होने पर केवल दुग्ध ही क्षुधा शान्ति के लिये देना हितकर है। इस रस को शीतपूर्वकज्वरों में अद्रक के रस तथा मधु के साथ सेवन करना चाहिए तथा तक्र ( मट्ठे ) का अनुपान करना चाहिए। इस रस को गर्भिणी स्त्रियों के ज्वर तथा शूल रोग में द्राक्षा ( काले मुनक्के ) के क्वाथ के साथ देना चाहिए। औषध जीर्ण होने पर प्रकुपित दोषों का विचार कर के यथायोग्य पथ्य कराना चाहिए। इस रस को सर्व प्रकार के शूलों में जम्बीरीनिम्बू के रस के साथ तथा मलावरोध ( कब्जी ) में त्रिफला के पर्युषित कषाय ( रात्रि को मिट्टी के पात्र में भींगो दें दूसरे दिन मजबूती से मल कर कषाय ले लें, त्रिफला फेंक दें ) के साथ सेवन करना चाहिए। इस को अपस्मार में उपर्युक्त विधिनिर्मित त्रिफला के जल से प्रातःकाल सेवन कराकर निम्बपत्र ( पाषाण या सिल पर पीसे हुए ) तथा घृत ( पयोभव ) से शरीर तथा विशेष कर शिर पर मालिश करानी चाहिए। औषध जीर्ण होने पर घृत मिश्रित पुराणे भात पथ्य में सेवन करावें। इस रसको जम्बीरी नीम्बू के रस के साथ गुल्म ( वायगोले ) रोग में तथा वह्निभृष्ट हिङ्गुचूर्ण ( ३ रत्ति ), अम्लिकाक्षार ( ३ रत्ति ) और निम्बु रस ( १ तो० ) के साथ प्लीहवृद्धि और उदररोगों में प्रयुक्त करें। इन रोगों में औषधजीर्ण होने पर मट्ठे तथा भात का पथ्य देना चाहिए। संस्तम्भन के लिये इस रस को २ रत्ति के समान यथादोषानुपानों के साथ सेवन कर के ऊपर से मिश्री या शर्करामिश्रित दुग्ध को पीना चाहिए तथा वमन की शान्ति करने के लिये १ रत्ति भर इस रस को १ तोले पुराने गुड़ के साथ सेवन करना चाहिए ॥ ४४–४८ ॥

अथ विषप्रयोगायोग्यनिर्देशः—

**अशीतिर्यस्य वर्षाणि वसुवर्षाणि यस्य वा।**
**विषं तस्य न दातव्यं दत्तं चेद्दोषकारकम् ॥ ४९ ॥**

जिस रोगी या स्वस्थ पुरुष की अस्सी ( ८० ) वर्ष से ऊपर अवस्था होगई हो तथा जो बालक आठ वर्ष का हो उन दोनों को रोग शान्ति अथवा रसायन के लिये विषमिश्रित ( चाहे वे शुद्ध ही क्यों न हों ) योगों का सेवन नहीं

कराना चाहिए। अर्थात् ८० वर्ष के बाद और आठ वर्ष के पूर्व तक विषयुक्त योगों का सेवन वर्जित है ॥ ४९ ॥

विमर्शः—यह निषेध अत्यन्त ही वैज्ञानिक विचारों से पूर्ण हैं क्यों कि ८ वर्ष के पूर्व प्रायः सभी संस्थान ( सिष्टम्स Systems ) मृदु या कोमल होते हैं विशेष कर के मस्तिष्क ( Brain ), हृदय (Heart) तथा फुफ्फुस ( Lungs ) ये बहुत ही कोमल होते हैं, इस लिये ऐसी अवस्था में इन पर विषों की उग्र क्रिया होती है जिस से अधिक उत्तेजित हो जाते हैं और शक्ति से अधिक कार्य करने से इन के सेल (Sells) शीघ्र ही खराब हो जाते हैं। वृद्धावस्था में ये संस्थान विशेष रूप से कमजोर हो जाते हैं इस लिये इस दशा में भी विषों का प्रयोग निषेध करना उचित ही है। इन अवस्थाओं में यदि किसी उत्पन्न रोग को दूर करना हो तो सौम्य काष्ठ औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

अथ उमाप्रसादनो रसः।

मेघपारदगन्धाश्मविषव्योषपटूनि च।
जीरकद्वयमेतानि समभागानि कारयेत् ॥ ५० ॥
सिन्दुवाररसेनापि लशुनस्य रसेन च।
अपामार्गरसेनापि सप्तरात्रं विमर्दयेत् ॥ ५१ ॥
तत्पक्वं बालुकायन्त्रे गुञ्जामात्रं प्रयोजयेत्।
सनागवल्लीमरिचं ततः शीताम्बु पाययेत् ॥ ५२ ॥
उमाप्रसादनो नाम रसः शीतज्वरापहः।
चातुर्थिकं त्रिरात्रं वा नाशयेत्किमुताऽपरान् ॥ ५३ ॥

मेघ—अभ्रकभस्म, शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, ( गन्धाश्म ), विष-शुद्ध वत्सनाभ ( मीठा तेलिया ) का चूर्ण, व्योष-त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल ), पटु-पांचो (१)लवण, ( सैन्धव, सामुद्र, विड्, सौवर्चल, औद्भिदलवण ), जीरकद्वय-सफेदजीरेकाचूर्ण, काले जीरे का चूर्ण इन में से प्रत्येक को एक २ तोला ( समान ) लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेषद्रव्यों को मिला के सब को एकत्र महीन पीस लेवें। फिर सिन्दुवार-निर्गुण्डी के पत्रों के

( १ ) लवणपञ्चकं यथा—
सैन्धवञ्चाथ सामुद्रं विड्ं सौवर्च्चलं तथा।
औद्भिदञ्चेति विज्ञेयं बुधैर्लवणपञ्चकम् ॥ १ ॥ इति।

स्वरस से, लहसून की गिरी के रस से, अपामार्ग के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ सात २ भावना देनी चाहिए। फिर अच्छी प्रकार घोटकर गोला बना दृढमूषा में अथवा शराव सम्पुट में या कवचीयन्त्र(१) की विधि से बालुकायन्त्र में पका लेना चाहिए। स्वाङ्गशीत औषध को लेकर महीन पीस कर शीशी में भर देवें। इस तरह सिद्ध हुए इस रस को उमाप्रसादनरस कहते हैं। इस रसको एक रत्ति प्रमाण से लेकर मरिचचूर्ण (६ रत्ति), नागरवेल के पान का रस ( १ तो० ) तथा मधु के साथ चाट कर ऊपर से शीतलजल का अनुपान कर लेवें। इस तरह कुछ दिनों तक इस रसके सेवन करने से यह शीतपूर्वकज्वर तथा चातुर्थिक ज्वर ( चोथिया बुखार ) को भी नष्ट कर देता है फिर अन्य ज्वरों की तो बात ही क्या है, अर्थात् यह रस यथादोषप्रकोपानुपान के साथ सेवन करने से सब प्रकार के विषमादिक ज्वरों को दूर कर देता है ॥ ५०–५३ ॥

अथ ज्वराङ्कुशरसः—

टङ्कणं रसगन्धौ च समभागान्प्रकल्पयेत् ।
नेपालं द्विगुणं दत्त्वा मर्दयेत्खल्लमध्यतः ॥ ५४ ॥
श्लक्ष्णतां याति तद्यावत्तावत्तन्मर्दयेच्छनैः ।
सैन्धवं मरिचं शुण्ठीं चिञ्चाक्षारं समाक्षिकम् ॥ ५५ ॥
तत्तुल्यमेतत्कृत्वाऽथ निम्बूतोयेन मर्दयेत् ।
चणप्रमाणवटिकां भक्षयेद्दिवसत्रयम् ॥ ५६ ॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ।
सर्वज्वरविनाशाय ज्वराङ्कुश इति स्मृतः ॥ ५७ ॥

---

( १ ) कवचीयन्त्रनिर्माणविधिर्यथा—

नातिह्रस्वां काचकूपीं नचातिमहतीं दृढाम् ।
वाससा कर्पासाक्तेन परिवृत्य समन्ततः ॥ १ ॥
संलिप्य मृदुमृत्स्नाभिः शोषयेद्भानुरश्मिना ।
निधाय भेषजं तत्र मुखमाच्छादयेत्ततः ॥ २ ॥
कठिन्या दृढया वापि पचेद् यन्त्रे विधानतः ।
कवचीयन्त्रमेतद्धि रसादिपाचने मतम् ॥ ३ ॥ इत्यत्रिसंहिता ।

शुद्ध सुहागा १ तोला, शुद्ध पारद १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो० तथा नेपालदेश की खान से उत्पन्न शुद्ध ताम्र की भस्म २ तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक को पाषाण के खरल में कज्जली बनाकर शेषद्रव्य मिला के श्लक्ष्ण ( चिकना ) चूर्ण कर लेवें, फिर सैन्धवलवण १ तो०, मरिचचूर्ण १ तो०, शङ्खभस्म १ तो०, इमली के पके हुए फल के छिलकों का बनाया हुआ क्षार १ तो०, स्वर्णमाक्षिक-भस्म १ तो० मिलाकर सब को घोट कर निम्बू के रस से आप्लावित करके अच्छी प्रकार मर्दन कर चने के बराबर गोलियां बना उन्हें सुखाकर काच की शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन सेवन करें, इस तरह प्रायः तीन दिन तक सेवन करने से ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर तथा चातुर्थिक ज्वर नष्ट हो जाते हैं। इस रस को यथा दोषानुपान से सेवन करने से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं। यह रस ज्वरों का नियन्त्रण करने के लिये अङ्कुश है ॥ ५४–५७ ॥

अथ सर्वाङ्गसुन्दरचिन्तामणिरसः—

अभ्रकं गन्धकं सूतं तोलकैकं पृथक्पृथक् ।
गृहीत्वा विषतोलार्धं तोलार्धं तिन्तिडीफलम् ॥ ५८ ॥
एतत्सर्वं समं कृत्वा मर्दयेत्खल्लमध्यतः ।
श्लक्ष्णतां याति तद्यावत्तावत्सम्मर्दयेच्छनैः ॥ ५९ ॥
विस्तारे परिणाहे च गर्तां कृत्वा षडङ्गुलाम् ।
फणिवल्लीदलान्यन्तर्गर्तायां प्रक्षिपेन्नरः ॥ ६० ॥
पर्णेषु सूतकल्कं तं गर्तायां स्थापयेद् दृढम् ।
कल्कादुपरि तत्पर्णैर्गर्तावक्त्रं प्रपूरयेत् ॥ ६१ ॥
गर्तायान्तु ततो देयं पुटमारण्यकोत्पलैः
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा समाकर्षेत्ततः परम् ॥ ६२ ॥
सूतलिप्तदलैः सार्धं कल्कं खल्ले विमर्दयेत् ।
तोलार्धममृतं क्षिप्त्वा तोलार्धं तिन्तिडीफलम् ॥ ६३ ॥
स्थापयेत्खल्लितं कल्कं योजयेद् गुञ्जमात्रया ।
शृङ्गवेराम्भसा युक्तं तीक्ष्णचित्रकसैन्धवैः ॥ ६४ ॥
सन्निपाते तथा वाते त्रिदोषे विषमज्वरे ।

अग्निमान्द्ये ग्रहिण्यां च तथा देयोऽतिसारिणि ॥ ६५ ॥
भोजनं दधिभक्तं च रसेऽस्मिन्सम्प्रयोजयेत्।
व्याध्यादिकं यथा कुर्यादुदकं ढालयेत्ततः ॥ ६६ ॥
एष योगवरः श्रीमान्प्राणिनां प्राणदायकः।
चिन्तामणिरिति ख्यातो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ ६७ ॥

अभ्रकभस्म १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो०, शुद्धपारद १ तो०, विष-शुद्धवत्सनाभ ( मीठा तेलिया ) का चूर्ण आधा तोला तथा इमली के फल के बीजों की गिरी का चूर्ण आधा तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर के शेष द्रव्य मिलाकर महीन पीस लें। फिर जल या पान के रस से इन्हें घोट कर गोला बनालें, फिर शुभ पृथ्वी में ६ अङ्गुल लम्बा तथा उतना ही चौड़ा और गहरा गड्ढा खोद कर उस में प्रथम पान के पत्तों को बिच्छा कर उन पर पूर्वोक्त औषध के गोले को रख कर उसे पान के पत्तों से ढक दें, फिर उस गड्ढे को पत्तों ही से बन्द कर के उस पर जङ्गली उपले जमाकर उन में वह्नि प्रदीप्त कर देवें। स्वाङ्ग शीत होने पर गड्ढे से पान के पत्रों के सहित सिद्ध हुई औषध को खरल में महीन पीस कर फिर उस में आधा तोला वत्सनाभ का चूर्ण तथा उतना ही इमली के पक्व फलों के बीजों की गिरी का चूर्ण डालकर सब को महीन पीस कर काचपात्र में रख देवें। इस रस को १ रत्ति की मात्रा से २ रत्ति मिरच चूर्ण, २ रत्ति चित्रकमूल चूर्ण, २ रत्ति सैंधेलूण का चूर्ण और १ तो० अदरख के रस के साथ मिलाकर ( कुछ मधु भी मिलादें ) सन्निपात, ज्वर, वातज्वर, त्रिदोषज्वर, विषमज्वर, अग्निमान्द्य, ग्रहणी और अतिसार में देना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय दधि तथा पुराने चावलों का भात पथ्य में सेवन कराना चाहिए। यदि रस के सेवन से शिर में अथवा सारे शरीर में गरमी अधिक प्रतीत हो तो शीतल जल की धारा सिर पर छोड़नी चाहिए, या बरफ की थैली बांधनी चाहिए। यह योग प्राणियों के जीवन को प्रदान करता है। इस का नाम सर्वाङ्ग सुन्दर चिन्तामणि रस है ॥ ५८-६७ ॥

अथ लोकनाथगुटिका—

सुतेन्द्रं परिमर्द्य पञ्चपटुभिः क्षारैस्त्रिभिस्तं ततः
पिण्डे हिङ्गुमहौषधासुरिमये संस्वेद्य धान्यादके।

निर्गुण्ड्यम्बुहुताशमन्थतिलपर्ण्युन्मत्तभृङ्गार्द्रकं
कामागिरिकर्णिकाप्लवदलापञ्चाङ्गलोत्थैर्जलैः ॥ ६८ ॥
सूतेन्द्रेण समैर्विमर्द्य सहजैः पित्तैस्ततो भावये—
दंष्ट्रिच्छागलुलायमत्स्यशिखिनां सा सन्निपाताञ्जयेत् ।
विख्याता भुवि लोकनाथगुटिका मारीचमात्रा हिता
स्यादस्याः सहितं दधीक्षुशकलं वीर्यं भवेच्छीतलम् ॥६९॥

१ तोला शुद्ध पारद लेकर उस को पत्थर की खरल में डाल कर एक २ तोले पांचो लवण के साथ अच्छी प्रकार से घोटें, फिर एक २ तोले तीनों क्षारों के साथ घोटें, इस तरह घोट कर कुछ जल डाल कर गोला बना लें। फिर इस गोले को हींग, सौंठचूर्ण, आसुरि—राई इनकी बनी हुई मूषा में रख कर दोला यन्त्र की विधि से धान्योदक अर्थात् धान की बनी हुई काञ्जी में २ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। पश्चात् इस गोले को खरल में चूर्ण कर के पारद के बराबर निर्गुण्डीपत्र के स्वरस से, अम्बु—सुगन्धवाला के क्वाथ से, हुताश-मन्थ—अरणी के क्वाथ या स्वरस से, तिलपर्णी—रक्त चन्दन के क्वाथ से, उन्मत्त—धत्तूरे के स्वरस से, भृङ्गराज के स्वरस से, अदरख के स्वरस से, कामाता—काकमाची ( मकोय ) के स्वरस से, गिरिकर्णिका—अपराजिता के स्वरस या क्वाथ से, प्लव-केवट-मोथे के क्वाथ से, दला-नागरवेल के पत्तों के स्वरस से तथा पञ्चाङ्गुल—एरण्ड के पत्तों या जड़ के स्वरस या क्वाथ से क्रमशः पृथक् २ घोटकर फिर दंष्ट्री-जंगली सूकर, छाग-बकरा, लुलाय-महिष (भैंसा), मत्स्य और शिखी-मयूर ( मोर ) इन में से प्रत्येक के स्वाभाविक ( अविकृत, अर्थात् बिना मरे हुए इन प्राणियों का पित्त लेना चाहिए ) पित्त को पारद के बराबर २ लेकर क्रमशः भावना देकर अच्छी प्रकार घोटकर काली मिरच के प्रमाण की गोलियां बना लेनी चाहिए। यह रस संसार में लोकनाथगुटिका के नाम से विख्यात है। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन यथादोषानुपानों के साथ सेवन करनी चाहिए। विशेषकर यह रस सन्निपातादि ज्वर को दूर करता है। इस रस के सेवन करते समय दधि, सांठे (गन्ने) का रस तथा अन्य शीतल पदार्थों का सेवन करना पथ्य है ॥ ६८-६९ ॥

**विमर्शः**—प्रायः जिन रसों के निर्माण में प्राणियों के पित्त तथा विष होते हैं उनके

सेवन से शरीर में अत्यन्त गरमी होती है, इसलिये शीतोपचार करना अत्यन्त आवश्यक है, जैसे कहा भी है।

यथा—

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना।
जलसेकावगाहाद्य बलिन स्तेतु नान्यथा ॥ १ ॥
रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेकः।
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः ॥
तरुणदधिसिताढ्यं नारिकेलीफलाम्भः।
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ २ ॥

पञ्चलवणं यथा—

सौवर्चलं सैन्धवञ्च बिड़मौद्भिदमेवच।
सामुद्रेण सहैतानि पञ्चैव लवणानि च ॥ १ ॥

इति पञ्च लवणानि।

क्षारद्वयं क्षारत्रयञ्च—

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारद्वयमुदाहृतम्।
टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीर्यते ॥ १ ॥

इति क्षारत्रयम्।

अथ सूचिकाभरणरसः—

वज्रवैक्रान्तयोर्भस्म प्रत्येकं निष्कसम्मितम्।
शृङ्गीविषं द्विनिष्कं च त्रिनिष्कं चूलिकापटु ॥ ७० ॥
पञ्चनिष्कोऽग्निजारश्च सर्वमेकत्र मेलयेत्।
तावद्भस्म रसं यावन्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ७१ ॥
शार्ङ्गष्टादिकवर्गस्य क्षारनीरेण भावयेत्।
त्रयाविंशतिवाराणि विमर्द्य च विशोष्य च ॥ ७२ ॥
ततो विमर्द्य दिवसं क्षिपेद्दन्तकरण्डके।
मृतसञ्जीवनाख्योऽयं सूचिकाभरणो रसः ॥ ७३ ॥
सन्निपातेन तीव्रेण मुमूर्षोर्भूगतस्य च।
तालुनि वृश्चयित्वाऽथ रसमेनं विनिक्षिपेत् ॥ ७४ ॥
सूच्यातिसूक्ष्मया तोयभिन्नयाऽतिप्रयत्नतः।
ततस्तैलेन तं लिप्त्वा निर्वाते सन्निवेशयेत् ॥ ७५ ॥

ततोऽर्धप्रहरादूर्ध्वं मुक्तमूत्रपुरीषकम् ।
लब्धसंज्ञं प्रतापाढ्यं दोलयन्तं शिरो मुहुः ॥ ७६ ॥
आयुष्मन्तं विजानीयादन्यथा चान्यथा खलु ।
ततः शीताम्बुसम्पूर्णं कटाहे तं निवेशयेत् ॥ ७७ ॥
तत्र चोत्कथितं तोयमपनीयापरं क्षिपेत् ।
याचमानममुं पश्चात्पाययेत्सर्पितं पयः ॥ ७८ ॥
दधि वा सितयोपेतं नारिकेलजलं तथा ।
रम्भाफलानि दद्याच्च म्रियते सोऽन्यथा खलु ॥ ७९ ॥
लब्धसंज्ञं प्रभाषन्तं याचमानं फलादिकम् ।
तस्मादाकृष्य तैलाक्तं तैलं पिष्ट्वापनीय च ॥ ८० ॥
लेपयेद्गन्धकर्पूरैरापादतलमस्तकम् ।
इत्यादिशिशिरैर्द्रव्यैः सप्तरात्रमुपाचरेत् ॥ ८१ ॥
कर्णाक्षिनासिकावक्त्रे क्षिपेत्पोताश्रयं मुहुः ।
अष्टमेऽहनि सम्प्राप्ते दर्दुरीमूलजं रसम् ॥ ८२ ॥
सरितं पाययेद्वेगमवतारयितुं रसम ।
रसेऽवतारिते पश्चाद्यथेष्टं भोजनं दधि ॥ ८३ ॥
श्वासोच्छ्वासयुतं चान्यैर्मुक्तजीवनलक्षणैः ।
कटाहे जलसम्पूर्णं निक्षिपेद् बोधलब्धये ॥ ८४ ॥
लब्धबोधं तमाकृष्य पूर्ववत समुपाचरेत् ।
जीवित्वा यावदायुष्यं म्रियते तदनन्तरम् ॥ ८५ ॥
सन्निपाते महाघोरे मज्जन्तं मृत्युसागरे ।
उद्धरेत्तस्य धर्मस्य ब्रह्माप्यन्तं न विन्दति ॥ ८६ ॥
सन्निपातमहामृत्युभयनिर्मुक्तमानवः ।
अपि सर्वस्वदानेन प्राणाचार्यं प्रपूजयेत् ॥ ८७ ॥
अन्यथा नरके तावद्यावत्कल्पविकल्पना ।
इत्याज्ञा शाङ्करी ज्ञेया शम्भुना परिकीर्तिता ॥ ८८ ॥
प्रकाशा नैव कर्तव्या रसोत्तारणमूलिका ।
शास्त्रं विना प्रयच्छन्ते मन्दा वित्ताभिकाङ्क्षया ।

गुरुप्रसादमासाद्य सन्निपाते प्रयुज्यताम् ॥ ८६ ॥

वज्र—हीरकभस्म एक (१)निष्क (४ मासा) वैक्रान्तभस्म १ निष्क, शृङ्गी-विष-शुद्धसींगिया विष २ निष्क ( इसके अभाव में कालकूटविष या वत्सनाभविष लेना चाहिए ) चूलिकापटु—चुल्लिकालवण (नौसादर या नरसार) ३ निष्क (१२ मासे), (२)अग्निजार—अग्निनक्र की जरायु या अम्बर ५ निष्क (२० मासे) ये सब एकत्र करके सब के बराबर(४८ मासे) रस भस्म (रस सिन्दूर) लेकर सब को पाषाण की खरल में डालकर तीन दिन तक अच्छी प्रकार मर्दन करें। फिर वक्ष्य-माण ( आगे कही हुई ) शार्ङ्गेष्टादिवर्ग की औषधियों से बने हुए क्षार के जल से पृथक् पृथक् २३ वार भावना देकर अच्छी प्रकार घोटकर सुखा लें, फिर एक दिन तक उत्तम रीति से घोटकर सुखा के दन्तकरण्डक अर्थात् हस्ति के दांत की बनी हुई शीशी में तदभावे काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को मृतसंजीवन या सूचिकाभरणरस कहते हैं। इस रस को तीव्रसन्निपात के कारण अचेत ( संज्ञारहित ) होकर पृथ्वी पर गिरे हुए, मृत्यु जिसकी सन्निकट ही हो ऐसे प्राणी के तालु प्रदेश में छिद्र करके शुद्ध की हुई ( क्वथित जल में पड़ी हुई) सूई की नोक से इस रस को लेकर युक्ति से प्रविष्ट कर दें, फिर रोगी के समस्त अङ्ग पर तैल की धीरे २ मालिश करके उसे वातरहित ( अर्थात् जोरदार वायु के वेग से रहित स्थान में ) स्थान में बिठा दें, इस तरह अर्धप्रहर या डेढ घण्टे के पश्चात् रोगी सचेत होकर मूत्र तथा पुरीष का त्याग कर शिर आदि को हिलाने लगे तो उसको जीवित समझना चाहिए तथा औषध का भी प्रभाव पड़ा है ऐसा

---

( १ ) "माषैश्चतुर्भिः शाणः स्यात् स निष्कष्टङ्क एव च।

( २ ) ( अग्निजारपरिचयो यथा—

"समुद्रेणाग्निनक्रस्य जरायु र्बहिरुज्झितः।
संशुष्को भानुतापेन सोऽग्निजार इति स्मृतः॥,

अन्यत्रापि—

"जाराभो दहनस्पर्शी पिच्छिलः सागरे भवः।
जरायुः स चतुर्वर्णः तेषु श्रेष्ठः सलोहितः॥" इति।

जराभः जारयति असौ जीर्य्यते अनेन वा इति व्युत्पत्त्या जारः अग्निः तदाभः अग्निवद्भासमान इत्यर्थः )

जानना चाहिए, अन्यथा उसको मृत समझना चाहिए। यदि वह उपर्युक्त शिरः कम्पादिक जीवन के लक्षणों से युक्त हो तो उसको शीतल जल से भरे हुए कटाह या (नांद-टब) या कोठी में बिठा देवें। जब वह शीतल जल उस रोगी की गरमी से ( ज्वर के ताप से ) उत्क्वथित अर्थात् गरम हो जाय तो उसे निकाल कर अन्य शीतल जल भर देना चाहिए। यदि उसको भूख लगे और वह स्वयं खाने की प्रार्थना करता हो तो उस को मिश्री से मिला हुआ दुग्ध या मिश्री युक्त दही अथवा नारियल का पानी पीने को देवें, केले की पकी हुई फलिएं ( पके केले ) भी खाने को देनी चाहिए। इस तरह भूख लगने पर उसको उपर्युक्त पथ्य नहीं देने से मृत्यु हो जाती है, फिर चेतनायुक्त, बोलते हुए तथा फलादिक का याचन करते हुए उस रोगी को उस शीतलजल के पात्र से बाहर निकाल कर उसके शरीर पर लिप्त हुए तैल को चांवलों के पिष्ट अथवा अन्य औषधियों के चूर्ण से शरीर का घर्षण करके दूर करना चाहिए। फिर उसके समस्त शरीर पर अर्थात् पैर से मस्तक तक कर्पूर के साथ घिसे हुए चन्दन आदि शीतल और सुगन्धित द्रव्यों के पङ्क से लेपन करना चाहिए। इस तरह सात दिन तक शीतलोपचार करना चाहिए तथा आंख, नाक, कान और मुख पर कर्पूरोदक छिड़कना चाहिए, पश्चात् आठवें दिन शीतलजल से उसके कान, मुख तथा आखों को धोकर सूचिकाभरणरस के वेग को उतारने के लिये दर्दूरीमूलजरस अर्थात् ब्राह्मी अथवा पुनर्नवा की जड़ के स्वरस में मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए। इस रस के पिलाने से चिकाभरणरस का वेग उतर जाता है। बाद में भूख लगने पर यथेष्ट दधियुक्त पुराने चांवलों का भात खिलाना चाहिए। जिस तीव्र सन्निपात के रोगी के श्वासोच्छ्वास ( Respiration ) के सिवाय जीवन के अन्य लक्षण लुप्त हो चुके हों, ऐसे सन्निपात के मूर्च्छित रोगी को शीतलजल से भरे हुए कटाह या कोठी में बैठा देना चाहिए। इस तरह शीतोपचार से जब सचेत हो जाय तो उसे उस कोठी से निकाल कर पूर्ववत् उपचार करना चाहिए। इस तरह सूचिकाभरण रस के उपचार या प्रयोग से जीवित हुआ रोगी जब तक उसकी अवस्था का प्रमाण रहता है तब तक वह जीवित रहता है। जो वैद्य महाघोर सन्निपातरूपी मृत्यु के समुद्र में डूबते हुए रोगी का उद्धार करता है उस से उत्पन्न हुए पुण्य के अन्त (प्रभाव) को ब्रह्मदेव भी नहीं जान सकते हैं। सन्निपातरूपी मृत्यु (यमराज) के भय से मुक्त

हुआ पुरुष अपनी सम्पत्ति का सम्पूर्ण दान करके अपने जीवन के दान देने वाले प्राणाचार्य की पूजन करे अर्थात् उसको हर प्रकार से जीवन पर्यन्त सन्तुष्ट रखे। जो सन्निपात के भय से मुक्त हुआ पुरुष अपने जीवन दाता प्राणाचार्य के उपकार को भूल जाता है वह अनेकों जन्म तक अथवा कल्पकल्पान्त पर्यन्त घोर नरक में पड़ा रहता है तथा, वहां पर विविध यातनाओं का भोग करता है ऐसी श्रीशङ्करजी की आज्ञा है। इस रस को सहसा प्रकाशित नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रकाशित करने से मूर्खलोग भी यथाविधि शास्त्रों को नहीं पढकर भी इस रस की प्रक्रिया को सुनकर धन की आकांक्षा से प्रयोग करने लग जावेंगे। इस प्रकार अपूर्णज्ञान से ही रसों का प्रयोग करना उचित नहीं है, इसलिये यथाविधि गुरुलोगों की कृपा से रसविद्या का पूर्णरूप से अध्ययन करने के पश्चात् ही उसका सन्निपातादिक रोगों में लाभ होने के लिये उपयोग करें॥ ७०–८९॥

विमर्शः—शृङ्ग्यादिविषों के लक्षण तथा शोधनादिक का ज्ञान आवश्यक है।

शृङ्गीविषलक्षणं यथा—

यस्मिन् गोशृङ्गके बद्धे दुग्धं भवति लोहितम्।
स शृङ्गिक इति प्रोक्तो द्रव्यतत्त्वविशारदैः॥ १॥

अस्य शोधनविधिर्यथा—

विषन्तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डे च बन्धयेत्।
गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम्॥ १॥
गोमूत्रं च प्रदातव्यं प्रत्यहं नूतनं बुधैः।
त्र्यहेऽतीते समुद्धृत्य शोषयेन् मृदु पेषयेत्॥ २॥
शुद्ध्यत्येवं विषं तच्च योग्यं भवति चार्तिजित्।
सर्वरोगहरं नणां जायते शोधितं विषम्॥ ३॥

इति शोधनम्।

मतान्तरेण सूचिकाभरणरसनिर्माणविधिर्यथा—

कृष्णसर्पविषं शुद्धं माषकद्वयसम्मितम्।
रसाहिगन्धकविषं पृथक् माषद्वयोन्मितम्॥ १॥
छागमायूरवाराहमात्स्यपित्तैस्तु भावयेत्।
संमर्द्यार्द्रकतोयेन यामैकमतियत्नतः॥ २॥
कारयेद्वटिका वैद्यः क्षुद्रसर्षपसम्मिताः।
समाख्यातो रसोऽयन्तु सूचिकाभरणाह्वयः॥ ३॥
सान्निपातसमाक्रान्तलोकानुग्रहकाम्यया।
आविष्कृतो रसोऽयन्तु भैरवेण महात्मना॥ ४॥

क्षतादिवर्जितकरस्तथानीचनखः पटुः ।
वटीनिर्मापकश्चास्य कर्तव्यः परिचारकः ॥ ६ ॥
रसं नखान्तसंलग्नमपनीय शलाकया ।
प्रक्षालयेत् करौ का ' भूयोभूयो मलाहिणा ॥ ६ ॥

इति सूचिकाभरणरसः ।

अथ प्रसङ्गात् कृष्णसर्पविषस्याहरणविधिर्यथा—

शुक्तिकां तालपत्रेण खर्जूरस्य दलेन वा ।
आच्छाद्य सर्वतो दीर्घयष्टिकायान्तु बन्धयेत् ॥ १ ॥
कृष्णसर्पो यथा रोषात् तालपत्रे दशेत्तथा ।
निदध्यात् कृष्णसर्पस्य सम्मुखं यष्टिकामिमाम् ॥ २ ॥
निदध्यात्तावदेवन्तु बहुवारं दशेद्यथा ।
शुक्तिकासञ्चितं सर्पविषं त्वथ समाहरेत् ॥ ३ ॥
पुनः पुनः कृष्णसर्पं रोषयन् भिषजां वरः ।
समाहरेद्विषं त्वेवं सावधानतया सदा ॥ ४ ॥

तच्छोधनविधिर्यथा—

तैलाक्तशुक्तिकामध्यसञ्चिते जङ्गमे विषे ।
पादांशं सार्षपं तैलं न्यस्य घर्मे विशोधयेत् ॥ १ ॥
जायते पीतवर्णं तन्निदाघे परिशोषितम् ।
कृष्णसर्पविषं त्वेवं शुद्धिमायात्यनुत्तमाम् ॥ २ ॥

इति कृष्णसर्पविषसंशोधनम् ।

अथ शार्ङ्गष्टादिवर्गः—

शार्ङ्गष्टा च तथा व्याघ्री करीरस्तिलपर्णिका ।
इन्द्रवारुणिका मुस्ता हरिद्राऽङ्कोलमूलिका ॥ ६० ॥
अपामार्गः कणा स्वर्णः कटुतुम्बी च तिन्तिडी ।
शार्ङ्गष्टादिकवर्गोऽयं सन्निपातहरः परम् ॥ ६१ ॥

शार्ङ्गष्टा—काकमाची ( मकोय ), या काकजङ्घा ( नदीकांता ) अथवा बड़ी करज, व्याघ्री—कण्टकारी, करीर—बांस का अङ्कुर ( वंशाङ्कुर ) अथवा मेवाड़ तथा मारवाड़ देश में होने वाला गुलाबीपुष्पों का केर जैसे कहा भी है "करीरः क्रकरः पत्रो ग्रन्थिलो मरुभूरुहः, इति भा० नि० । तिलपर्णिका—रक्तचन्दन, इन्द्रवारुणिका—इन्द्रायण, मुस्ता—नागरमोथा, हरिद्रा—हलदी, अङ्कोलमूलिका—अङ्कोल की जड़, अपामार्ग, कणा—पिप्पली, स्वर्ण—धत्तूरा, कटुतुम्बी ( तिक्तालाबु ),

तिन्तिड़ी-इमली के बीज, इन सब औषधियों के स दाय को शार्ङ्गधादिकवर्ग कहते हैं। इस वर्ग की औषधियों का चूर्ण, स्वरस तथा क्वाथ स्वतंत्र सेवन करने से अथवा योगों के साथ सेवन करने से सन्निपात को दूर करने में बहुत सहायता मिलती है॥ ९०-९१॥

अथ सूचीमुखरसः—

सूतं गन्धकतालकं मणिशिलां ताप्यं लवं तुत्थकं
जेपालं विषटङ्कणं मधुफलं कृत्वा समांशं दृढम्।
कृत्वा कज्जलिकां विषोल्वणफणेः पित्तैश्च सम्भावयेत्
क्षिप्त्वा सीसककूपिके रसवरं सूचीमुखं नामतः॥ ९२॥
ब्रह्मद्वारि विकीर्णलोहितलवे गुञ्जैकमात्रं ददेत्—
दत्त्वा सम्पुटबद्धतन्द्रिकधनुर्वाते सशाखाहिमे।
कासं श्वासमरोचकं प्रलपनं कम्पं च हिक्कातुरं
मूकत्वं बधिरत्वमुग्मदमपस्मारं जयेत्तत्क्षणात्॥ ९३॥

शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्धहरिताल, मणिशिला-शुद्धमनःशिला (मैनसिल), मृततार्क्ष्य-स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धनीला तोत्था (तूतिया-कापरसफेट), शुद्ध जैपालबीजों का चूर्ण, विष-शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण, शुद्ध सुहागा, मधुफल-महुए के फलों की गिरि या पुष्प, इन सब को समान भाग लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर फिर उसमें शेष द्रव्य मिलाकर घोट लें, पश्चात् तीक्ष्णविषवाले काले सर्प के पित्त से सातवार भावित करके सातवार कपड़मिट्टी की हुई काच कूपी में भरकर बालुकायंत्र में पका लेना चाहिए। कुछ लोग पाक नहीं भी करते हैं, केवल सर्पपित्त की भावना देकर घोटकर सुखा के काच कूपी में रख लेते हैं। इस तरह सिद्ध हुए इस रस को सूचीमुखरस कहते हैं। इस रस को गुञ्जापरिमित लेकर मुष्टि जिस में बन्द गई हो तथा सर्वाङ्ग धनुर्वातरोग के समान धनुषाकृति हो गया है और शाखा अर्थात् हस्त पाद जिसके शीतल हो गए हों ऐसे सन्निपातरोग से आक्रान्त तथा मूर्च्छित रोगी के कपाल के मध्य के बाल बनवाकर ब्रह्मरन्ध्र के स्थान में क्वथित जल में शोधित सूक्ष्म सूची के मुख (अग्रभाग) से छोटा सा छेद करके रक्त के बिन्दु के निकलते ही उस रस को प्रविष्ट करके दबा दें। इस प्रकार उपचार करने से सन्निपात का रोगी एक वार निश्चय

ही यमराज की फांस में बन्दकर भी छूट जाता है । इस सूचीमुखरस को यथा-रोगानुपानों के साथ सेवन करने से कास, श्वास, अरुचि, प्रलपन ( बकवाद—असंबद्धभाषण ), कम्प, हिक्कारोग, मूकता, बधिरता, उन्माद, तथा अपस्मार ये शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ९२-९३ ॥

अथ सन्निपातगजांकुशरसः—

रसगन्धकताम्राभ्रं लाङ्गलीवह्निरामठम् ।
वन्ध्यापटोलनिर्गुण्डीसुगन्धानिम्बपल्लवाः ॥ ९४ ॥
पाठाक्षारत्रयं श्वेतवोलधत्तूरतन्दुलैः ।
शृङ्गीमधुकसारं च जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥ ९५ ॥
कुर्याद्धि निष्कमानेन वटिका सा नियच्छति ।
संस्वेददाहाभिन्यासं सन्निपातगजाङ्कुशः ॥ ९६ ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, लांगली—कलिहारी की शुद्ध जड़ का चूर्ण, वह्नि—चित्रकचूर्ण, रामठ—शुद्ध हींग का चूर्ण, बांझककोड़े का चूर्ण, परवर के पत्तों का चूर्ण, निर्गुण्डी ( सम्भालू ) के पत्तों का चूर्ण, सुगन्धबाला का चूर्ण, निम्ब के पत्तों का चूर्ण, पाठाचूर्ण, क्षारत्रय—स्वर्जिक्षार, यवक्षार तथा शुद्ध सुहागा, श्वेत—कृष्णसर्प का शुद्धविष ( इसकी आहरणविधि तथा शोधन विधि सूचिकाभरणरस की टीका में दी है, यदि यह न मिल सके तो शुद्ध वत्सनाभ ( मीठा तेलिया ) का चूर्ण ग्रहण करें ), बोल—गन्धबोल, शुद्ध धत्तूरे के बीजों का चूर्ण, काण्टोंदार चोलाई की जड़ या पञ्चाङ्ग का चूर्ण, शृङ्गी—काकड़ासिंगी का चूर्ण, मधूकसार—मुलेठी का सत्त, इन सबको बराबर २ लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर शेष द्रव्य मिला दें, फिर सब को महीन घोट कर जम्बीरी निम्बू के रस से आप्लावित करके अच्छी प्रकार घोट कर निष्कप्रमाण ( चार मासा ) की गोलियां बनाकर काचपात्र में भर देवें, इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को सन्निपातगजाङ्कुशरस कहते हैं । इस रस की १ गोली यथादोषप्रकोपानुसार अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करने से संस्वेद—पसीना, दाह—जलन, इत्यादि उपद्रवों से युक्त अभिन्यासज्वर को तथा अन्यविध सन्निपातज्वर को दूर करती है ॥ ९४-९६ ॥

विमर्शः—चार मासे का १ निष्क होता है ( चतुर्भिर्माषकैः शाणः स निष्कष्टङ्क एव च ) इस रस की १ निष्क प्रमाण की गोली की पूर्ण मात्रा समझनी चाहिए ।

बच्चों के लिये तथा रोग और रोगी की अवस्था का विचार करके बुद्धि से मात्रा में हेरफेर करना जरूरी है।

लाङ्गल्याः शुद्धमूलस्यैव चूर्णं प्रक्षिपेत्, अन्यथा निम्नदोषा भवन्ति यथा—

अशुद्धा लाङ्गली देहे स्वल्पापि परिशोलिता।
करोति दारुणं दाहं मोहातीसारविभ्रमम् ॥ १ ॥

तच्छोधनविधिर्यथा—

लाङ्गली शुद्धिमायाति दिनं गोमूत्रसंस्थिता ॥ इति।

अभिन्यासज्वरलक्षणं यथा—

त्रयः प्रकुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगामिनः।
आमाभिवृद्धया ग्रथिता बुद्धोन्द्रियमनोगताः ॥ १ ॥
जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढम्।
श्रुतौ नेत्रे प्रसुप्तिः स्यान्न चेष्टां कांचिदीहते ॥ २ ॥
न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने।
न घ्राणं न च संस्पर्शं शब्दं वा नैव बुध्यते ॥ ३ ॥
शिरोलोठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति।
कूजति तुद्यते चैव परिवर्तनमीहते ॥ ४ ॥
अल्पं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते।
प्रत्याख्यातः स भूयिष्ठः कश्चिदेवात्र सिद्ध्यति ॥ ९ ॥

इत्यभिन्यासज्वरलक्षणम्।

अथ चातुर्थिकहरोरसः—

ससारा वैष्णवी सेना अचला कादि कङ्कणा।
रागरुद्रापमोपेता प्रौढा मस्तकशालिनी ॥ ९७ ॥
त्रिभागं तालकं विद्यादेकभागं तु पारदम्।
तदर्धं गन्धकं चैव तदर्धं तु मनःशिला ॥ ९८ ॥
कारवल्लीदलरसमर्दयेतत्प्रहरत्रयम्।
पाचितो बालुकायन्त्रे चातुर्थिकहरो रसः ॥ ९९ ॥

शुद्ध हरताल ३ तो०, शुद्ध पारद १ तो०, शुद्धगन्धक आधा तोला, शुद्ध मनः-शिला ३ मासा लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली करके शेषद्रव्य मिला कर महीन चूर्ण कर लेवें, फिर करेले की वेल (लता) के पत्तों के रस के साथ तीन प्रहर तक निरन्तर घोटकर गोला बना लें, फिर इस गोले को शुद्ध ताम्र के पत्रों के भीतर बन्दकर शराब सम्पुट करके एक भाण्ड के अर्द्धभाग को

बालुका से भरकर उस पर शराव सम्पुट रखकर ऊपर से सम्पूर्ण भाण्ड को बालु से भर देवें। भाण्ड के मुख को चौड़े शराव ( ढकना ) से बन्दकरके सन्धिबन्धन कर शराव में धान ( भूसी युक्त चांवल ) भर के भट्टी पर बालुकायंत्र को स्थापित कर वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। इस तरह पकते २ जब शराव का धान फूटने ( भूंजने ) लगे तब वह्नि बन्द कर देवें। स्वाङ्गशीतलयंत्र को भट्टी से नीचे उतार कर सम्पुट में सिद्ध हुए रस को निकाल लेना चाहिए। इस तरह यह चातुर्थिकहररस सिद्ध होता है। इस रस को २ रत्ति की मात्रा से चातुर्थिक ज्वर ( चोथिया बुखार ) में देना चाहिए। इस रस की निर्माणविधि को ससारा इस एक श्लोक के द्वारा विचित्ररूप (१)से प्रगट की है ॥९७-९९॥

अथ चातुर्थिकगजांकुशरसः—

**स्याद्रसेन समायुक्तो गन्धकः सुमनोहरः।**
**हियावल्लित्रिगुणितो निर्गुण्डीरसमर्दितः॥ १००॥**
**सप्तवाराणि तद्योज्यमार्द्रकस्वरसेन तु।**
**सन्तताद्विज्वरं हन्याच्चातुर्थिकगजाङ्कुशः॥ १०१॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, हियावल्लि-शुद्ध हरिताल ३ तो०, लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर हरताल मिला के महीन पीस

---

( १ ) व्याख्या यथा-ससारा-सारः पारद स्तेन सहिता, ( पारद से युक्त ) सारत्वञ्चास्य शिववीर्य्यत्वाद्बोद्धव्यम्, वैष्णवी सेना-हरितालः, विष्णोर्वीर्य्यत्वाच्चास्य वैष्णवीसेनत्वम् ( हरताल ), अचला-मनः शिला, ( मैनसिल ) कादि-कारवेल्लपत्रस्वरसः ( करेले के पत्तों का रस ), कङ्कण-शुद्धगन्धकः ( शुद्ध गन्धक कुछ लोगों ने 'कादिकं, ऐसा पदच्छेद करके 'कणा' को पृथक् कर उसका पिप्पली अर्थ किया है, यह ठीक नहीं है क्यों कि आगे पदार्थों की मात्रा के विचार प्रकरण में पिप्पली का निर्देश नहीं है, किन्तु गन्धक का निर्देश है, इस लिये, कादि पृथक् और कङ्कण पृथक् है यही ठीक है ) राग:-ताम्रपत्रं, रुद्रोपमा बालुका ताम्रचूर्णेन युक्ता, (ताम्बे का पत्र तथा बालुका से युक्त), प्रौढामस्तकशालिनी-प्रौढा-बृहद्भण्डिका, कथम्भूता मस्तकशालिनी मस्तकेमस्तकनिहितशरावे शालिनी-शालिधान्योपेता, ( एक बड़ी मिट्टी की हण्डिका ( भाण्ड ) जिसके ऊपर ढके हुए शराव में धान भरा हो )

लें, फिर सब को निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस या क्वाथ से सात वार भावित कर अच्छी तरह घोटकर १ रत्ति प्रमाण की गोलियां बनाके सुखाकर काच की शीशी में भर दें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को एक २ गोली प्रति दिन अद्रक के रस के साथ सेवन करने से संततादिक ज्वर नष्ट होते हैं। इस रस का नाम चातुर्थिक-गजाङ्कुश है। यह रस विशेष करके चातुर्थिक ज्वर में बहुत लाभप्रद है ॥ १००–१०॥

अथ मृत्युञ्जयरसः—

ताप्यतालकजेपालवत्सनाभमनःशिलाः।
ताम्रगन्धकसूतं च मुसलीरसमर्दितः॥
मृत्युञ्जय इति ख्यातः कुक्कुटीपुटपाचितः॥ १०२॥
वल्लद्वयं प्रयुञ्जीत यथेष्टं दधिभोजनम्।
नवज्वरं सन्निपातं हन्यादेष महारसः॥ १०३॥

ताप्य–स्वर्णमाक्षिकभस्म, तालक–शुद्ध हरताल, जेपाल–शुद्ध जेपालबीजों का चूर्ण, शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण, शुद्ध मनःशिला, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्धपारद, इन सबको बराबर २ लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर फिर शेष द्रव्य मिला के महीन चूर्ण कर लें, पश्चात् मूषली (तालमूली) के स्वरस या क्वाथ से एकदिन अच्छी प्रकार घोटकर गोला बना लेवें। इस गोले को दो शरावों में बन्द करके कुक्कुटपुट में पुट दे देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुए रस को निकाल के खरल में महीन पीस कर काच की शीशी में भर दें, इस तरह सिद्ध हुए इस रस को मृत्युञ्जयरस कहते हैं। इस रस को दो वल्ल (६ रत्ति) की मात्रा यथा दोषानुपानों के साथ खाने से नवज्वर और सन्निपात ज्वर दूर हो जाते हैं। औषध जीर्ण होने के पश्चात् भूख लगने पर दही के साथ पुराने चावलों का भात पथ्य में खिलाना चाहिए॥ १०२–१०३॥

विमर्शः–प्रायः इसकी मात्रा १ रत्ति से ३ रत्ति तक पर्याप्त है।

कुक्कुटपुटलक्षणं यथा—

पुटं भूमितले यत्तद्वितस्तिद्वितयोच्छ्रितम्।
तावच्च तलविस्तीर्णं तत् स्यात् कुक्कुटकं पुटम्॥ इति।

अथ पञ्चवक्त्ररसः—

शुद्धं सूतं विषं गन्धं मरिचं टङ्कणं कणाम्।
मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत्॥ १०४॥

**पञ्चवक्त्रो रसो नाम द्विगुञ्जः सन्निपातजित् ।**
**अर्कमूलकषायञ्च सज्यूषमनुपाययेत् ।**
**दध्योदनं हितं तत्र जलयोगञ्च कारयेत् ॥ १०५ ॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो०, शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण १ तो०, मरिचों का चूर्ण १ तो०, शुद्ध सुहागा १ तो०, पिप्पली का चूर्ण १ तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर फिर शेषद्रव्य मिला के महीन पीस लें, फिर धत्तूरे के शुद्धबीजों के क्वाथ के साथ एक दिन तक अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के शीशी में भर दें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को पञ्चवक्त्ररस कहते हैं। इस रस को २ रत्ति के प्रमाण से सेवन करके ऊपर से १ मासा त्रिकटु के चूर्ण को २ तो० आक की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ मिलाकर पीना चाहिए तथा औषध के जीर्ण होने पर यदि भूख लगी हो तो दधियुक्त पुराने चावलों का भात पथ्य में खिलाना चाहिए। यदि गरमी अधिक मालूम हो तो शिर पर जल की धारा या बरफ की थैली का उपयोग करना चाहिए। इस विधि से इस रस को सेवन करने से सन्निपात ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ १०४–१०५ ॥

अथ उन्मत्तरसः—

**रसगन्धकतुल्यांशं धत्तूरफलजद्रवैः ।**
**मर्दयेद्दिनमेकन्तु तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत् ।**
**उन्मत्ताख्यो रसो नाम्ना नस्ये स्यात्सन्निपातजित् ॥१०६॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो० लेकर कज्जली कर लें। फिर इस कज्जली को शुद्ध धतूर बीजों के क्वाथ के साथ एक दिन तक अच्छी प्रकार से घोटकर कज्जली के समान ( २ तो० ) त्रिकटु का चूर्ण मिला कर अच्छी तरह घोटकर सुखा के शीशी में भरकर रख दें। इस उन्मत्तरस को नासिका के द्वारा सूंघने से सन्निपातजन्य मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ १०६ ॥

अथ सन्निपाताञ्जनरसः—

**निस्त्वग्जेपालजं बीजं दशनिष्कं प्रचूर्णयेत् ।**
**मरिचं पिप्पली सूतं प्रतिनिष्कं विमिश्रयेत् ॥ १०७ ॥**
**भाव्यं जम्बीरजैर्द्रवैः सप्ताहं तत्प्रयत्नतः ।**
**सन्निपातं निहन्त्याशु अञ्जनेयः शिवः स्मृतः ॥ १०८ ॥**

मदनफलं बिडलवणं सर्षपाः प्रतिनिष्कद्वयम् ।
चूर्णयित्वा त्रिफलाक्काथेन सप्ताहं पिबेत् ॥ १०९ ॥

ऊपर के छिलकों से रहित ( अर्थात् शुद्ध ) जैपाल के बीजों का चूर्ण १० निष्क ( ४० मासा "माषैश्चतुर्भिः शाणः स्यात् स निष्कष्टङ्क एव च ) तथा मरिचचूर्ण १ निष्क, पिप्पली चूर्ण १ निष्क, शुद्धपारद १ निष्क लेकर खरल में डाल कर सब को अच्छी तरह घोट लें, फिर जम्बीरी निम्बू के रस से १ सप्ताह तक भावना देवें। यह रस नेत्रों में अञ्जन के समान आँजने से सन्निपात की मूर्च्छा को दूर करता है। यह रस अञ्जन करने में श्रेष्ठ है। इस रस के अञ्जन करने के पश्चात् त्रिफला (५ तो०) के क्वाथ में मैनफल का चूर्ण २ निष्क, बिड़लवण का चूर्ण २ निष्क, सर्षप का चूर्ण २ निष्क, शुद्ध सुहाग २ निष्क भर ले के महीन पीस कर मिला के दिन में एक वार सेवन करें ॥ १०७—१०९ ॥

विमर्शः—अञ्जन के पश्चात् मैनफल से लेकर सुहागे तक की औषधियों का चूर्ण मिला कर २ निष्क भर लेके त्रिफला के क्वाथ में पीवें। प्रथम हरेक औषधि को २ निष्क के प्रमाण से लेकर खरल में महीन पीसकर वस्त्र से छान के शीशी में भर रखें।

अथ नस्यम्—

कुष्ठे ज्वरे कामलायां कण्ठरोगे ह्यजीर्णके ।
नस्ये च गिरिकर्ण्यत्थ-बीजैकं शीतवारिणा ॥ ११० ॥

केवल अपराजिता के बीजों को शीतल जल के साथ महीन पीस कर नस्य लेने से कुष्ठ, ज्वर, कामला कण्ठरोग और अजीर्ण में लाभ होता है ॥ ११० ॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया है, इन्द्रायण के फल के बीजों को शीतल जल के साथ पीसकर उसमें उपर्युक्त सन्निपाताञ्जनरस मिलाकर नस्य लेने से कुष्ठादिक रोगों में विशेष उपकार होता है।

अथ प्रतापलंकेश्वररसः—

प्रत्येकं रसगन्धयोर्द्विपलयोः कृत्वा मषीं शुद्धयो-
रम्यां म्लेच्छलुलायलोचनमनोधात्रीप्रकुञ्चत्रयम् ।
पथ्याया बदरत्रिकं त्रिकटु षट्पाणं वचा धर्मिणी
वेल्लाम्भोधरपत्रकद्विरदकिञ्जल्काऽश्वगन्धाद्वयम् ॥ १११ ॥
पिष्ट्वैतत्समधूकसारमखिलं कर्षोन्मितं न्यस्य तत्
प्रोन्मर्द्यार्धकरञ्जकामृतयुतं सागास्तिकव्यूषणैः ।

भूधात्रीविजयासरित्पतिफलं ज्वालामुखीमार्कवैः
प्रत्येकं विदधीत निश्चलमतिः सप्त क्रमाद्भावनाः ॥११२॥
पित्तैरथो पञ्च विधाय पञ्चभिः
करञ्जपत्रामृतधूपनं ततः ।
दत्त्वाऽऽर्द्रकस्य स्वरसेन तन्दुला
कृतिं विदध्याद्गुटिकां भिषग्वरः ॥ ११३ ॥
देयैका सन्निपाते प्रतिहतविषये मोहनेत्रप्रसुप्त्योः
स्याद्गुल्मे साजमोदा पवनविकृतिषु त्र्यूषणेन ग्रहण्याम् ।
दातव्या जीरकेण द्विपतुरगनृणां प्राणसंरक्षणाय
कारुण्याम्भोधिरेतं रसकसमरसं वैद्यनाथोऽभ्यधत्त ॥११४॥

शुद्ध पारद २ पल, शुद्ध गन्धक २ पल लेकर खरल में महीन कज्जली कर लें, फिर इस कज्जली में म्लेच्छ—ताम्रभस्म (अथवा शुद्ध हिङ्गुल), लुलायलोचन-महिषाक्षगुग्गुलु ( शुद्ध भैंसिया गूगल ), मनोधात्री—शुद्धमनःशिला ( अथवा मन-जटामांसी और धात्री-आंवले का चूर्ण) ये प्रत्येक तीन तीन पल (प्रकुञ्चत्रय) डालें तथा पथ्या-हरीतकी का चूर्ण ३ कोल(१)अर्थात् आधा कर्षत्रिकटु ( सौंठ, मिरच, पीपल) का चूर्ण मिलाकर ६ शाण (२४ मासा) तथा वचा का चूर्ण, रेणुका ( धर्मिणी ) का चूर्ण, विड्ङ्ग ( वेल्ल ) का चूर्ण, शुद्ध नागरमोथे ( अम्भोधर ) का चूर्ण, तेजपात ( पत्रक ) का चूर्ण, नागकेशर ( द्विरदकिञ्जल्क ) का चूर्ण, असगन्ध ( अश्वगन्धाह्वय ) का चूर्ण, महुवे के पुष्प का सार, ये प्रत्येक एक २ कर्ष डालें तथा करञ्ज की शुद्ध जड़ की छाल का चूर्ण आधा कर्ष, शुद्धवत्सनाभचूर्ण आधा कर्ष, भूई आंवले ( भूम्यामलक ) का चूर्ण आधा कर्ष, शुद्ध भांग (विजया) का चूर्ण आधाकर्ष, समुद्रफल ( सरित्पतिफल ) का चूर्ण आधाकर्ष डालकर सब को पत्थर की बड़ी खरल में एकत्रित कर के महीन पीसकर अगस्त्य के पुष्पों के स्वरस से त्रिकटु ( त्र्यूषण ) के क्वाथ से, चित्रक ( ज्वालामुखी ) के स्वरस या क्वाथ से, भृङ्गराज ( मार्कव—भाङ्गरा ) के स्वरस से पृथक् २ क्रम से हरेक से सात२ वार भावना देवें, फिर सबको अच्छी प्रकार घोटकर पञ्चपित्त से पाँच वार भावना देकर करञ्ज के पत्ते और शुद्धवत्सनाभविष से धूपित करना चाहिए,

(१) (बदरत्रिकं-कोलत्रिकं, केचित्तु त्रिविधं बदरफलमिति तच्चिन्त्यमेव)

फिर अदरख के रस से एकवार अच्छी प्रकार आप्लावित कर के खूब मर्दनकर जब गोला बनाने योग्य हो जाय तब चांवल के प्रमाण की गोलियां बनाके छाया में सूखा कर काचपात्र ( शीशी ) में भरदें। जब सन्निपात के दौरे से रोगी मूर्च्छित होगया हो तथा इन्द्रिएं अपने विषय (शब्दस्पर्शरूपरसादिक) को ग्रहण करने में समर्थ न रहीं हों, और मूर्च्छा के कारण आंखे बन्द हो गई हों ऐसी अवस्था में इस रस की एक गोली अदरख के रस और मधु के साथ खिलानी चाहिए। इससे कुछ देर के बाद रोगी की मूर्च्छा दूर होजाती है और सन्निपात का वेग उतर जाता है। इस की १ गोली अजवाईन के १ मासे चूर्ण के साथ गुल्म के विकार में प्रतिदिन खिलानी चाहिए तथा वातिकरोगों में त्रिकटु के चूर्ण तथा मधु के साथ और ग्रहणीविकार में वह्निभृष्ट जीरकचूर्ण के साथ इस रस की १ गोली प्रतिदिन सेवनकरानी चाहिए। कृपा के समुद्र ( अत्यन्तदयालु ) वैद्यनाथ भगवान् ने मनुष्य, हस्ती तथा घोड़ों के प्राणों की रक्षा करने के लिये अमृत के समान गुणकारी इस प्रतापलंकेश्वररस को बनाया है ॥ १११—११४ ॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने "भूधात्रीविजयासरित्पतिफलज्वालामुखीमार्कवैः", ऐसा समसितपदच्छेद मान कर भूधात्री, विजया और समुद्रफल इन तीनों के स्वरस या क्वाथ से भी भावना देने को लिखा है। यदि बुद्धिमान् वैद्य हस्ती तथा घोड़े को सन्निपात के लक्षणों से आक्रान्त जान लें तो इस रस को घोड़े के लिये ८ गोलियों तथा हस्ती के लिये १२ गोलियों के रूप में प्रयुक्त करें।

पञ्चपित्तं यथा—पित्तं पञ्चविधं मात्स्यगवाश्वरुरूद्भवम् ॥

मातान्तरेण यथा—वाराह-छाग-माहिष-मात्स्य-मायूरपित्तजमिति।

अथ प्राणेश्वररसः—

गन्धकाभ्रसमः सूतो वाराहीरसमर्दितः।
पाचितो वालुकायन्त्रे त्रिफलाव्योषचित्रकैः ॥ ११५ ॥
त्रिक्षारं पञ्चलवण-हिंगुगुग्गुलुदीप्यकैः।
सजीरकैः चेन्द्रयवैः पृथग्रससमैर्युतः ॥ ११६ ॥
माषमात्रोऽनुपानेन द्विपलस्योष्णवारिणः।
अभिन्यासानलभ्रंशग्रहणीपाण्डुगुल्मिनाम् ॥ ११७ ॥
कुर्यात्प्राणपरित्राणमतः प्राणेश्वरः स्मृतः।
व्याधिवृद्धौ प्रयोगोऽस्य द्वौ वारौ वैद्यसम्मतः ॥ ११८ ॥

शुद्धगन्धक १ तो०, अभ्रकभस्म १ तो० तथा दोनों के बराबर शुद्धपारद (२ तो०) लेकर प्रथम पारद गन्धक कीकज्जली बनाकर उसमें अभ्रकभस्म मिला के वाराहीकन्द के स्वरस में घोट कर गोला बना लेना चाहिये। फिर इस गोले को मूषा में बन्द कर के बालुकायन्त्र में पकालें अथवा केवल वाराहीकन्द के रस से तीनों को घोटकर सुखा के सातवार कपड़मिट्टि की हुई आतसी शीशी ( काचकूपी ) में भरकर रससिन्दूर की तरह बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। फिर स्वाङ्गशीत रस को निकालकर खरल में महीन पीसकर उसमें हरड़, बहेड़े, आंवला (त्रिफला), सोंठ, मिरच, पीप्पली (त्रिकटु), चित्रक, स्वर्जिक्षार, यवक्षार, शुद्धसुहागा (त्रिक्षार), सैन्धवलवण, समुद्रलवण, बिड़लवण, सौंचललवण, औद्भिदलवण ( पञ्चलवण ), अग्नि में भूनी हींग, त्रिफलाक्वाथ में शोधित गूगल, अजवाईन (दीप्यक), जीरा, इन्द्रजो ( इन्द्रयव ), इन सब को पृथक् २ पारद के बराबर २ (दो२तो०) लेकर महीन चूर्ण करके मिला देवें, फिर सबको एकत्रित खूब घोटकर काच की शीशी में भर के रख दें। इस रस को एक मासा के प्रमाण से लेकर दो पल गरम जल के साथ खिलाना चाहिए। इस विधि से इस रस को अभिन्यास ज्वर, सान्निपातिक-ज्वर, ग्रहणीविकार, पाण्डुरोग तथा गुल्म विकारवालों को देने से उनके प्राणों की रक्षा होती है ( अर्थात् वे इसके सेवन से उन दारुण रोगों से बच जाते हैं ) इस-लिए इसको प्राणेश्वररस कहते हैं। यदि उपर्युक्तरोग अत्यन्त दुःसाध्य होगये हों, या उनके उपद्रव बढ गये हों तो इस रस को प्रातः और सायं इस तरह दिन में दो वार सेवन कराना चाहिए, ऐसी वृद्ध वैद्यों की सम्मति है ॥ ११५-११८ ॥

अथ मृतसञ्जीवनरसः—

रसायोग्योषकङ्कुष्ठशिलातालाभ्रहिङ्गुलान्।
कुम्भ्यग्निभृङ्गमारीषतण्डुलीयकमाक्षिकान् ॥ ११९ ॥
हस्तिशुण्डीयुतांस्तुल्यांस्तदर्धशिवगन्धकान्।
त्र्यहमार्द्राम्बुना पिष्ट्वा कूपिस्थं वालुकाऽग्निना ॥ १२० ॥
जयाजम्बीरनिर्गुण्डिचाङ्केरीवारि निक्षिपेत्।
पक्त्वा चतुर्दशाहानि पिष्ट्वा द्रार्क्तं विशोषयेत् ॥ १२१ ॥
मृतसञ्जीवनाख्योऽयं रसो वह्निमितोऽशितः।
द्राग्जयेद्दोषधं सन्निपातादीन्सकलान्गदान् ॥ १२२ ॥

शुद्धपारद, लौहभस्म ( अयः ), सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, मुर्दासंग ( कङ्कुष्ठ ), शुद्धमनः शिला, शुद्ध हरताल, अभ्रकभस्म, शुद्धहिङ्गुल, कुम्भी—शुद्धजयपालबीजों का चूर्ण, अग्नि—चित्रकचूर्ण, भृङ्ग—भृङ्गराज का चूर्ण, मारिषशाक, तण्डुलीय—चोलाई की जड़ का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हस्तिशुण्डी का चूर्ण, ये प्रत्येक एक २ तोला तथा इन सब से आधा शिव—शुद्ध सुहागा तथा उतनाही शुद्धगन्धक लेना चाहिए, ( यहां पर शिव का अर्थ सुहागाहै यदि यदि शिव शब्द से पारद लिया जाय तो सर्वप्रथमपठित रस शब्द का अर्थ रसाञ्जन करना चाहिए ) सर्व प्रथम पारद और गन्धककी कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाकर महीन पीसकर तीन दिन तक सबको अद्रक के रस के साथ घोटकर सूखा के सात वार कपड़मिट्टि की हुई कूपिका (आतसी शीशी) के अन्दर भरकर बालुकयन्त्र में मन्दाग्नि से पकाना चाहिए। पाक के समय खुले हुए शीशी के मुख से जया—जयन्ती के पत्तों का स्वरस, जम्बीरीनिम्बू का रस, निर्गुण्डी के पत्रों का रस, चाङ्गेरी (नोनियाशाक) का स्वरस, ये प्रत्येक रस थोड़ी २ मात्रा से छोड़ने चाहिए। इस तरह चौदह दिन तक थोड़ा २ कर पाक करना चाहिये। १५ वें दिन स्वाङ्गशीत कूपी से सिद्ध हुए रस को निकाल कर खरल में अद्रक के रस के साथ महीन पीसकर शुष्क करके शीशी में भरदें। इस तरह सिद्ध हुए इस रसको मृतसञ्जीवनरस कहते हैं। इस रस को १ वल्ल (३ रत्ति) की मात्रा से सेवन करने से सन्निपात आदि ज्वरों को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ११९–१२२ ॥

विमर्शः—प्रायः अन्यरसग्रन्थों में जो मृतसञ्जीवनरस के बनाने की विधि है, वह इस तरह से १४दिनतक काचकूपी में भरकर तथा आर्द्र औषधियों का स्वरस छोड़कर पकाना चाहिये ऐसी नहीं है। इस लिये यथोक्त स्वरसों से भावित द्रव्य को सूखाकर सातबार कपड़मिट्टी की हुई काचकूपिका में भरकर ( कूपी को आधी से भी कम भरनी चाहिये ) रससिन्दूर के पाक की विधि से पकाकर फिर निकालकर खरल में घोटकर जयाजम्बीरादिकरसों के साथ १४दिन तक घोटकर सुखाकर शीशी में भरदें।

अथ द्वितीयमृतसञ्जीवनरसः—

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः।
विषतालकङ्कुष्ठशिलाहिङ्गुललोहकम् ॥ १२३ ॥
वह्नित्रिकटुभृङ्गाह्वहेममाक्षिकमभ्रकम्।
हस्तिशुण्डी विषं कुम्भी तण्डुलीयकताम्रकौ ॥ १२४ ॥

एषां प्रत्येकमेकैकं भागमादाय चूर्णयेत् ।
आर्द्रकस्य द्रवेणैव मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ १२५ ॥
जम्बीरस्य रसो ग्राह्यः पलत्रयपरीक्षितः ।
त्रिफलायाश्च निर्गुण्ड्याः प्रत्येकं च पलत्रयम् ॥ १२६ ॥
रसस्य पलमात्रं तु चाङ्गेर्याः परिकीर्तितम् ।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य यन्त्रे क्षिप्त्वा प्रयत्नवान ॥ १२७ ॥
उद्धृत्यार्द्रकनिर्यासैर्मर्दयित्वा विशोषयेत् ।
मृतसञ्जीवना नाम रसोऽयं विदितो भुवि ॥
गुञ्जाद्वयं ददीतास्य सन्निपातानुपत्तये ॥ १२८ ॥

शुद्धपारद १ तो०, शुद्धगन्धक २तो० लेकर कज्जली बना लें, फिर उस में शुद्धवत्सनाभचूर्ण १तो०, शुद्धहरतालचूर्ण १तो०, शुद्धकंकुष्ठ चूर्ण १तो०, शुद्धमनःशिला का चूर्ण१तो०, शुद्धहिङ्गुल १तो०, लौहभस्म १तो०, वह्नि-चित्रकचूर्ण १तो०, त्रिकटु—शुण्ठीचूर्ण १तो०, मिरचचूर्ण १तो०, पीपलचूर्ण १तो०, भृङ्गराजका चूर्ण १तो०, सुवर्णमाक्षिकभस्म १तो०, अभ्रकभस्म १तो०, हस्तिशुण्डीका चूर्ण १तो०, अतीस का चूर्ण १तो०, कुम्भी—शुद्धजयपालबीजचूर्ण १तो०, चोलाई की जड़ का चूर्ण १तो०, ताम्रभस्म १तो०, ये सब द्रव्य मिलाकर अच्छी प्रकार महीन पीसकर अदरक के रस के साथ ३दिन तक घोटें, फिर काचकूपी में भरकर बालुकायन्त्र में कूपी को रखकर भट्टी में मन्दमन्द अग्नि प्रदीप्त कर दें। फिर जम्बीरीनिम्बू का रस ३पल, त्रिफले का क्वाथ ३पल, निर्गुण्डी के पत्रों का स्वरस ३पल, चाङ्गेरी का रस १पल लेकर इनमें से थोड़ा२ रस काचकूपी में छोड़ते रहना चाहिये। इसतरह सब रस समाप्त हो जाय तथा काचकूपीकास्थित औषध भी पक जाय तब वह्नि देना बन्द कर दें, फिर स्वाङ्गशीतल काचकूपी से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन घोटकर अदरख के रस के साथ एकदिन तक अच्छी प्रकार से खरल करके सुखाकर काच की शीशी में भर दें। इस तरह सिद्ध हुए इस रस को मृतसञ्जीवनरस कहते हैं। इस रस की दो रत्ति की मात्रा अद्रक के रस तथा मधु के साथ सन्निपात के रोगी को प्रतिदिन सेवन करानी चाहिये ॥ १२३–१२८ ॥

अथ सन्निपातकुठाररसः—

वङ्गं नागञ्च सूतञ्च नेपालं गन्धकं तथा ।

शुल्बं विषं समांशेन रसेनार्द्रेण मर्दयेत् ॥ १२९ ॥
पुनर्मर्द्यंत निर्गुण्ड्याश्चाङ्गेर्या रसमर्दितः।
एकवल्लप्रयोगेण रसोऽयं सन्निपातनुत् ॥ १३० ॥

वङ्गभस्म १तो०, नागभस्म १तो०, शुद्धपारद १तो०, नेपाल–शुद्ध मनःशिला १तो०, शुद्धगन्धक १तो०, शुल्व—ताम्रभस्म १तो०, शुद्धवत्सनाभ चूर्ण १तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके घोट लेवें, फिर सब को अदरख के रस के साथ, निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस के साथ तथा चाङ्गेरी के रस के साथ क्रमशः एक २ दिन घोटकर सुखा के शीशी में भर दें। यह रस एक वल्ल की मात्रा से प्रतिदिन अदरख के रस तथा मधु के साथ सेवन करने से सन्निपातज्वर को दूर करता है ॥ १२९—१३० ॥

अथ नवज्वरारिरसः— ( पर्पटिकारसः )

गन्धकञ्च रसं शुद्धं प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
एकत्र कज्जलीं कृत्वा ततः कुर्वीत गोलकम् ॥ १३१ ॥
नवभाण्डे विनिक्षिप्य ताम्रपात्रेण गोपयेत्।
दृढं निरुध्य तत्पात्रमग्नावारोपयेत्ततः ॥ १३२ ॥
व्रीहिस्फुटनमात्रेण स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
नवज्वरे प्रयुञ्जीत रसं पर्पटिकाह्वयम् ॥ १३३ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव त्रिवल्लं त्रिदिनं भिषक्।
ज्वरितं छादयेद्गाढं यावत्स्वेदः समुद्भवेत् ॥ १३४ ॥
तक्रभक्तं भवेत्पथ्यं ज्वरमुक्तस्य देहिनः।
नवज्वरारिरित्येष रसः परमदुर्लभः ॥
वातज्वरे विशेषेण रसः साधारणो मतः ॥ १३५ ॥

शुद्ध गन्धक १ कर्ष, शुद्ध पारद १ कर्ष लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर थोड़ा सा जल डालकर घोट के गोला बना लेना चाहिए, फिर इस गोले को एक हण्डिका के भीतर रख कर ताम्बे की कटोरी से ढककर अच्छी प्रकार से सन्धि-बन्धन करके हण्डिका के शेष भाग को बालुका से भरकर उसके मुख पर शराव ढककर दोनों की सन्धि को बन्दकर के शरावके भीतर धान रखकर यंत्र को भट्टीया चूल्हे पर चढाकर धान के फूटने तक औषध का पाक करना चाहिए, इस प्रकार

सिद्ध हुई औषध को स्वाङ्ग शीतयंत्र से निकाल खरल में महीन पीसके शीशी में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस पर्पटीरस को ३ वल्ल की मात्रा से अद्रक के रस के साथ नवीन ज्वर में प्रयुक्त करें। औषध सेवन करने के पश्चात् जबतक पसीना नहीं निकले तबतक ज्वर के रोगी को गरम ( ऊनी ) कपड़े से ढक देना चाहिए। इस प्रकर तीन दिनतक इस रस के प्रयोग करने से रोगी ज्वर से निर्मुक्त हो जाता है। ज्वर से मुक्त होने के पश्चात् रोगी को दही के साथ पुराने चावलों का भात पथ्य में खिलाना चाहिए। इस रस का दूसरा नाम नवज्वरारिरस है। यह रस नवीन वातिक ज्वर में विशेष लाभ करता है ॥ १३१—१३५ ॥

**विमर्शः**—तीन वल्ल ( ९ रत्ति ) की मात्रा पूर्णमात्रा है, इस लिये ३ रत्ति की मात्रा से प्रारम्भ करना चाहिए और प्रतिदिन ३ रत्ति के हिसाब से देने से तीसरे दिन ३ वल्ल की पूर्ण मात्रा होजाती है। यदि हो सके तो तीन रत्ति की मात्रा में से भी एक २ रत्ति एक २ समय देकर सम्पूर्ण दिन में ३ रत्ति देना चाहिए। समय-प्रातः, मध्याह्न और संध्याकाल। प्रायः ग्रन्थ के अभिप्राय से ३ दिन के पश्चात् दही तथा भात का पथ्य लिखा है, इस लिये तीन दिन तक लंघन ही करना चाहिये। यदि भूख सहन नहीं हो सके तो दूध और साबूदाना तथा काले मुनक्के रोगी को खाने के लिये दे सकते हैं।

अथ जलमञ्जरीरसः—

टङ्कणं रसगन्धौ च मरिचानि समांशकम्।
सर्वं जम्बीरनीरेण दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ १३६ ॥
संशोष्य शर्करायुक्तं मत्स्यपित्तेन भावयेत्।
भावितं तद्रसं सिद्धमार्द्रकस्वरसैस्त्र्यहम् ॥ १३७ ॥
वल्लं वारत्रयं देयं पानार्थं वारि शीतलम्।
तक्रभक्तं भवेत्पथ्यं वृन्ताकफलसंयुतम् ॥
सर्वान्नवज्वरान्हन्ति रसोऽयं जलमञ्जरी ॥ १३८ ॥

शुद्ध टङ्कण ( अग्नि में भृष्ट सुहागा ) १ तो०, शुद्ध पारद १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो० तथा मरिचचूर्ण १ तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाके शेषद्रव्यों को मिलाकर सब को तीन दिनतक जम्बीरी निम्बू के रस के साथ खरल ( घोट ) करके सुखाकर सबसे आधी शर्करा मिला कर मच्छली के पित्त से सात वार भावित करके सुखाकर काचपात्र में रख दें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस

को अदरक के रस के साथ ३ वल्ल (प्रतिदिन एक २ वल्ल) तीन दिनतक सेवन करना चाहिए। पीने के लिये शीतलजल (श्रृतशीत) का प्रयोग करें तथा पथ्य में मट्ठे के साथ पुराने चांवलों का भात और बैंगन की शाक देनी चाहिए। इस प्रकार यह जलमञ्जरीरस सर्व प्रकार के नवीन ज्वरों को दूर करता है। कुछ टीकाकारों ने शर्करा का अर्थ विष भी किया है पित्तज्वर में यह रस विशेष हितकर है ॥ १३६-१३८॥

अथ कान्तरसः—

**कान्तस्य कण्टवेध्यानां पात्राणां भस्म कारयेत्।**
**तत्समश्च रसो गन्धष्टङ्कणो निम्बवारिणा ॥**
**ततः सम्पेष्य तत्कल्कं मर्दयेत्रिदिनं पुनः ॥ १३९ ॥**
**रसतुल्येन मत्स्यस्य पित्तेन परिभावयेत्।**
**सिद्धः कान्तरसो ह्येष प्रयोज्योऽभिनवज्वरे।**
**शृङ्गवेरानुपानेन मात्रया भिषगुत्तमः ॥ १४० ॥**

प्रथम कान्तलौह के बारीक २ पत्रों (जो की सूई की नोक से कई पर्त में जमे होने पर भी छिद सकें) की यथाविधि भस्म बना लें, इस प्रकार से बनी हुई कान्त लौह की भस्म १ तो०, शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्ध टङ्कण (सुहागा) १तो० लेकर पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेषद्रव्यों को मिला के घोटलें। फिर सब को निम्बू के रस के साथ तीन दिनतक घोटकर कल्क बना लेना चाहिए, पश्चात् इस कल्क को पारद के बराबर या जितने से एक भावना अच्छी तरह लग सके उतने मत्स्य के पित्त से भावित करके सुखाकर काच की शीशी में भर देना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुए इस कान्त रस को २ रत्ति की मात्रा से अदरख के रस के साथ नवीन ज्वर में प्रयुक्त करना चाहिए। रोग तथा रोगी के अनुसार मात्रा में परिवर्तन (ह्रास तथा वृद्धि) भी कर सकते हैं ॥ १३९-१४०॥

अथ चन्द्रोदयरसः—

**रसगन्धौ तथा वङ्गमभ्रकं समभागतः।**
**मेलयित्वाथ वङ्गेन समं सूतं विमर्दयेत् ॥ १४१ ॥**
**तत्रैकीकृत्य गन्धाभ्रे पेष्यं जम्बीरवारिणा।**
**सामान्यं पुटमाद्यात्सप्तधा साधितं रसम् ॥ १४२ ॥**
**कुमार्या चित्रकेणापि भावयित्वाऽथ सप्तधा।**

गुडेन जीरकेणापि ज्वरे जीर्णे प्रयोजयेत् ॥ १४३ ॥
कासे श्वासे कुमार्या च त्रिफलाक्काथयोगतः ॥
उन्मादं च धनुर्वातममृताक्काथसंयुतः ॥
इत्येवं रागतापघ्नो रसश्चन्द्रोदयाभिधः ॥ १४४ ॥

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, वङ्गभस्म १ तो०, अभ्रकभस्म १ तो० लेकर प्रथम खल्व में वङ्गभस्म डाल कर उसके साथ पारद को मिला कर दोनों को अच्छी प्रकार घोट लें, फिर गन्धक और अभ्रकभस्म मिला कर अच्छी तरह से कज्जली के समान घोट कर निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द कर के सामान्यपुट ( लघु पुट ) दे देवें। इस प्रकार सात वार निम्बू के रस के साथ घोट कर सात पुट देनें चाहिए। फिर सिद्ध हुए उस रस को खरल में घोट कर घृत कुमारी के रस से सात वार भावित करें तथा चित्रक के स्वरस से भी सात वार भावित करना चाहिए। इस तरह सिद्ध हुए इस रस को दो रत्ति की मात्रा से पुराने गुड़ ( १ तो० ) और वह्निमृष्ट जीरक ( ४ मासा ) के चूर्ण के साथ जीर्ण ज्वर में प्रयुक्त करें। इस को कास ( खांसी ) में घृत कुमारी के स्वरस के साथ तथा श्वास में त्रिफला के क्वाथ के साथ देना चाहिए। यह रस गुडूची के क्वाथ के साथ सेवन करने से उन्माद तथा धनुर्वात को नष्ट करता है। इस प्रकार यह चन्द्रोदय नामक रस यथारोगानुपानों के साथ सेवन करने से उन रोगों को शीघ्र ही नष्ट करता है। कुछ लोग वङ्ग भस्म न लेकर केवल शुद्ध वङ्ग को अग्नि में द्रुत कर के तुरन्त ही पारे के साथ अच्छी प्रकार घोट कर पश्चात् अभ्रक तथा गन्धक मिला कर यथोक्त क्रिया करते हैं। अमृता का आंवला अर्थ भी कुछ टीकाकारों ने किया है ॥ १४१–१४४ ॥

अथ जीर्णज्वरारिरसः—

नागं वङ्गं रसं ताम्रं गन्धकं टङ्कणं तथा ।
सूतं विषं च नेपालं हरितालं समं तथा ॥ १४५ ॥
वटक्षीरेण सम्मर्द्य सर्वं कुर्यात्तु गोलकम् ।
तं गोलकं भाण्डमध्ये पाचयेद्दीपवह्निना ॥ १४६ ॥
तं गोलं शीतलं कृत्वा भृङ्गराजेन मर्दयेत् ।

आर्द्रकस्य रसेनापि मर्दयेच्च पुनः पुनः ॥ १४७ ॥
चणप्रमाणवटकान्रसेनाऽऽर्द्रस्य दापयेत् ।
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन ज्वरं जीर्णं हरत्यसौ ॥ १४८ ॥

नागभस्म, वङ्गभस्म, रस-रसाञ्जन या रससिन्दूर, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, सूत—शुद्ध पारद, विष—शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण, नेपाल-शुद्ध मनःशिला, शुद्ध हरिताल, ये सब बराबर २ लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार से महीन घोटना चाहिए, पश्चात् वट के दुग्ध से सब को आर्द्र कर के घोटकर गोला बनाके उस गोले को भाण्ड की तली में रख कर शराव से ढक सन्धि बन्धन कर के भाण्ड के शेष रिक्तस्थान को बालुका से भर कर मुख बन्द कर के भट्टी पर चढ़ा कर तीव्र अग्नि से एक प्रहर तक पकाना चाहिए । स्वाङ्ग शीतल भाण्ड से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस कर भृङ्गराज ( भांगरा ) और अदरख के रस से पृथक् २ सात २ वार घोट कर चणों के बराबर गोलियां बना कर छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें । यह रस दो रत्ति के प्रमाण से अदरख के रस के साथ सेवन करने से जीर्ण ज्वर ( पुराना बुखार ) को दूर करता है ॥ १४५-१४८ ॥

अथ नवज्वरमुरारिरसः—

हरश्च गन्धकं चैव कुनटी च समं समम् ।
मर्द्यं कर्कोटिकायाश्च रसेन विनियोजयेत् ॥ १४९ ॥
नवज्वरमुरारिः स्याद्वल्लं शर्करया सह ।
तण्डुलीयरसेनानुपानं शर्करयाऽपि वा ॥
गुञ्जाद्वयप्रमाणेन ज्वरान्हन्ति नवान्हठात् ॥ १५० ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये ज्वरचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

हर—शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, कुनटी—शुद्ध मनःशिला १ तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर मैनसिल मिला के महीन पीस कर कर्कोटिका ( बांझककोड़ा ) के स्वरस या क्वाथ के साथ खरल कर के सुखालें। यह नवज्वरमुरारि रस १ वल्ल ( ३ रत्ती ) के प्रमाण से शर्करा ( १ तो० ) तथा चोलाई के रस ( २ तो० ) के साथ प्रतिदिन सेवन करने से नवीन ज्वरों को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। अथवा दो रत्ती की मात्रा से सेवन करने से भी सब नवीन ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १४९–१५० ॥

अथ ज्वरे पथ्यापथ्यव्यवस्था—तत्र पूर्वं पथ्यस्य प्रयोजनम् ।

निदानौषधपथ्यानि त्रीणि यत्नेन चिन्तयेत् । तेनैव रोगाः शीर्यन्ते शुष्के नीर इवाङ्कुराः॥१॥
बुधः सर्वास्वपथ्यानि यथास्वं परिवर्जयेत् । तास्त्वपथ्यैः विवर्धन्ते तोयदैरिव वीरुधः ॥२॥
विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव विलीयते । नतु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥३॥
दोषान्दूष्यान् देशकालौ सात्म्यं सत्वंबलं वयः । विकृति भेषजं वह्निमाहारञ्चविशेषतः॥४॥
नरीक्ष्य मतिमान् वैद्यश्चिकित्सां कर्तुमुद्यतः । पथ्यानि योजयेन्नित्यं यथास्वं सर्वरोगिषु॥५॥
मतःसर्वेषु रोगेषु प्रायः श्रेष्ठतमो ज्वरः । अतस्तस्यैव प्रथमं पथ्यापथ्यं वदाम्यहम् ॥६॥

अथ सामान्येन सर्वविधज्वरेषु पथ्यानि—

तण्डुलीयकवास्तूकबालमूलकपर्पटान् । पटोलं तिक्तशाकञ्च गुडूचीपल्लवानपि ॥ १ ॥
कालशाकं निम्बपुष्पं मारीषं दाविकादलम् । जीवन्ती चापि चाङ्गेरी सुनिषण्णकमाविकैः॥२॥
पत्रशाकप्रियाणान्तु ज्वरितानां प्रदापयेत् । मुद्गान् मसूरांश्चणकान् कुलित्थांश्च मकुष्टकान्॥३॥
यूषार्थं यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत् ।
लावान् कपिञ्जलानेणान् पृशताञ् शरभाञ् शशान् ॥ ४ ॥
कालपुच्छान् कुरङ्गांश्च तथैव मृगमात्रकान् । मांसार्थं मांससात्म्यानां ज्वरितानां प्रदापयेत्॥५॥
सारसक्रौञ्चशिखिनस्तथा तित्तिरकुक्कुटाः । ज्वरितानां न शस्यन्ते इति केचिद् व्यवस्थिताः॥६॥
वृन्ताकपीलुकर्कोटपटोलककठिल्लकम् । फलशाककृते देयं सर्वं निःस्नेहमेव च ॥ ७ ॥
वत्सरोषितधान्यस्य तण्डुलान्धो ज्वरे हितम् । रोटिकार्धं प्रदातव्यं द्विवर्षोषितमल्पशः॥८॥
गोधूमादि यदा सात्म्यमन्यदप्यल्पमर्पयेत् ॥ ९ ॥
श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः । मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमन्विते॥१०॥
स एव सितया युक्तः शीतपित्तज्वरे हितः । उपवासश्रमकृते क्षीणे वाताधिके ज्वरे ॥
दीप्ताग्नि भोजयेत् प्राज्ञो नरं मांसरसौदनम् ॥ ११ ॥
रक्तशाल्यादयः शस्ताःपुराणाःषष्टिकैःसह । यवागूर्नलाजार्थं ज्वरितानां ज्वरापहाः ।॥१२॥
वमनं लङ्घनं कालो यवागूः स्वेदनानि च । कटुतिक्तरसाश्चैव पाचनं तरुणे ज्वरे ॥१३॥

स्नानं विरेकं सुरतं कषायं व्यायाममभ्यञ्जनमह्नि निद्राम्।
दुग्धं घृतं वैदलमामिषं च तक्रं सुरां स्वादु गुरु द्रवं च॥
अन्नं प्रवातं भ्रमणं प्रकोपं त्यजेत्प्रयत्नात्तरुणज्वरार्तः॥ १४॥
नवज्वरेदिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्। क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत्॥१५॥
परिषेकान् प्रदेहांश्च स्नानसंशोधनानि च। दिवास्वप्नं व्यवायञ्च व्यायामं शिशिरं जलम्॥१६॥
क्रोधप्रवातभोज्यानि वर्जयेत्तरुणज्वरी। शोषच्छर्दिमदोमूर्च्छा भ्रमस्तृष्णा ह्यरोचकः।
प्राप्नोत्युपद्रवानेतान् परिषेकादिसेवनात्॥ १७॥
न द्विरह्नः पूर्वाह्णे नाभिष्यन्दि कदाचन। ननक्तं न गुरुप्रायं भुञ्जीत तरुणज्वरी॥१८॥

अथ मध्यमज्वरे हितानि—

पुराणाः षष्टिकशालयश्च वार्ताकसौभाञ्जनकारवेल्लम्।
वेत्राग्रमाषाढफलं पटोलं कर्कोटकं मूलकपोतिका च॥ १॥
मुद्गमसूरैश्चणकैः कुलत्थैर्मकुष्टकैर्वा विहितश्च यूषः।
पाठा मृता वास्तुकतण्डुलीयजीवन्तिशाकानि च काकमाची॥ २॥
द्राक्षा कपित्थानि च दाडिमानि वैकङ्कतान्येव पचेलिमानि।
लघूनि सात्म्यानि च भेषजानि पथ्यानि मध्यज्वरिणाममूनि॥ ३॥

अथ पुराणज्वरे हितानि—

विरेचनं छर्दनमञ्जनञ्च नस्यं च धूमोऽप्यनुवासनञ्च।
शिराव्यधः संशमनं प्रदेहोऽभ्यङ्गोऽवगाहः शिशिरोपचारः॥ १॥
एणः कुरङ्गः हरिणो मयूरो लावः शशस्तित्तिरकुक्कुटौ च।
क्रौञ्चः कुरङ्गः पृषतश्चकोरः कपिञ्जलो वर्तककालपुच्छौ॥ २॥
गवामजायाश्च पयो घृतं च हरीतकी पर्वतनिर्झराम्भः।
एरण्डतैलं सितचन्दनञ्च द्रव्याणि सर्वाणि पुरेरितानि।
ज्योत्स्ना प्रियालिङ्गनमप्ययं स्याद्वर्गः पुराणज्वरिणां सुखाय॥ ३॥

अथागन्तुकज्वरे हितानि—

आगन्तुके ज्वरे नैव नरः कुर्वीत लङ्घनम्। अभिचाराभिशापोत्थे जपहोमादिभेषजम्॥१॥
उत्पातग्रहपीड़ोत्थे दानस्वस्त्ययनादिभिः। कामशोकभयादूभूते सर्वा वातहरीक्रिया॥२॥
आश्वासनं चेष्टलाभो हर्षदायीनि यानि च। हर्षेण च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः॥३॥
क्रोधजे पित्तजित्कार्यं प्रियासङ्गाक्यमेव च। औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रसादनैः॥४॥
अध्वश्रान्तेषु चाभ्यङ्गं दिवानिद्राञ्च कारयेत्। मनःक्षोभसमुत्पन्ने मनसः सान्त्वनानि च॥५॥
अभिघातसमुत्थाने पानाभ्यङ्गौ च सर्पिषः। रक्तावसेकमद्यैश्च तथा मांसरसौदनैः॥ ६॥
क्षतजे व्रणजे चापि क्षतव्रणचिकित्सितम्। इत्यागन्तुकज्वरे पूर्वं भिषग्भिःपथ्यमीरितम्॥७॥

अथ विषमज्वरे हितानि—

विष्णोर्नाम सहस्रस्य पठनं श्रवणं श्रुतेः । देवानां ब्राह्मणानाञ्च गुरूणामपि पूजनम् ॥१॥
ब्रह्मचर्यं तपो होम प्रदानं नियमो जपः । साधूनां दर्शनं श्रेष्ठं रत्नौषधिविधारणम् ॥२॥
मङ्गलाचरणञ्चेति वर्गः सर्वाज्वराजयेत् ॥ ३ ॥
व्यायामञ्च व्यवायञ्च स्नानं चङ्क्रमणानि च।ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान् भवेत्॥४॥
ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात् । क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥५॥
तत्र मारुतश्रुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते । कार्यं न बाले वृद्धे नो न गर्भिण्यां न दुर्बले॥६॥

अतिलङ्घनं वर्ज्यं यथोक्तम्—

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्चकासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः॥१॥
मनसः सम्भ्रमोऽमीक्ष्णमूर्ध्ववातस्तमो हृदि । देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽति कृते भवेत्२

तस्माद्धितकरं लङ्घनं सर्वदा ज्वरादा कार्यम् ॥

तथा च सम्यग्लङ्घितलक्षणानि—

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥१॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि॥२॥

अथ दोषविशेषे शीतोष्णजलपानव्यवस्था—

तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे । मध्योत्थे पैत्तिके वाऽथ शीतलं तिक्तकैःश्रृतम्॥१॥

अथोष्णजललक्षणं यथा—

क्वाथ्यमानन्तु यत्तोयं निष्फेनं निर्मलीकृतम् । भवत्यर्द्धावशिष्टञ्च तदुष्णोदकमुच्यते ॥१॥

इति ज्वरे पथ्यापथ्यादिविमर्शः ।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां ज्वरचि-
कित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

---

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथ रक्तपित्तम्—

कटूवम्लतीक्ष्णलवणोष्णविदाहिरूक्षैः
पित्तं प्रदुष्टमशनैरतिसेवितैस्तैः ।
सन्दुष्य रक्तममुनोभयमार्गवर्ति
निर्यात्यसृक्स्थलयकृत्प्लिहतोऽतिमात्रम् ॥ १ ॥

कटु ( लाल मिर्च आदि ), अम्ल ( ईमली, निम्बू, करौंदा ), तीक्ष्ण, ( क्षा-

रादियुक्त ) लवण, उष्ण ( बैंगन आदि ), विदाही-जलन करने वाले तथा रूक्ष पदार्थों के अत्यन्त ( भोजन के साथ या स्वतन्त्र ) उपयोग ( अति सर्वत्र वर्जयेत् ) करने से दूषित हुआ पित्त रक्त के साथ मिलकर उसको भी दूषित कर देता है, फिर वह रक्त पित्त के साथ उभयमार्गों ( अर्थात् नाक, कान, आंख और मुख तथा शिश्न, येनि, और गुदा ) के द्वारा रक्त के आशय ( असृक्स्थल ) हृदय ( Heart ), यकृत् ( Liver ), तथा प्लीहा ( Spleen ), से शरीर के बाहर निकलता है। इसी को रक्तपित्त कहते हैं ॥ १ ॥

विमर्शः—रक्तपित्त शब्द की व्युत्पत्ति भिन्न २ तरीके से की गई है, यथा-पित्तेन दुष्टं रक्तं रक्तपित्तं रक्तञ्चपित्तञ्च दुष्टं रक्तपित्तं, रागपरिप्लुतं पित्तं रक्तपित्तं, रक्तञ्चतत् पित्तामति रक्तपित्तं निरूच्यते। उक्तञ्च

संयोगाद् दूषणात्तु सामान्याद्वन्द्ववर्णयोः।
रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः ॥ इति।

मतान्तर से रक्तपित्त का निदान और गति यथा—

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः।
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ १ ॥
कोद्रवोद्दालकैश्चान्नैस्तद्युक्तैरतिसेवितैः।
पित्तं विदग्धंस्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् ॥ २ ॥
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधापि वा।
आमाशयाद् व्रजेदूर्ध्वमधः पक्वाशयाद् व्रजेत ॥ ३ ॥
विदग्धयो र्द्वयोश्चापि द्विधाभागं प्रवर्तते।
ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यमेढ्रयोनिगुदैरधः ॥ ४ ॥
कुपितं रोमकूपैस्तु समस्तैस्तत् प्रवर्तते।
केचिच्च यकृतः प्लीह्नः प्रवदन्त्यसृजो गतिम् ॥ ५ ॥ इति।

अथ रक्तपित्ताङ्कुशरसः—

पारदं गन्धकं च ऊर्ध्वयन्त्रेण मेलयेत्।
कुक्कुटाण्डरसं भागं टङ्कणक्षारमेव च ॥ २ ॥
गन्धकस्य तथा भागं घृतेन परिमर्दयेत्।
सिद्धं रसं समादाय जीरतोयेन दापयेत् ॥ ३ ॥
दिनानि त्रीणि मात्रं च ग्रहणीरक्तदोषजित्।
ज्वरदाहविनाशञ्च रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ४ ॥

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध हिङ्गुल १ तो० लेकर दोनों को खरल में महीन पीस कर ऊर्द्ध्वपातनयन्त्र से उड़ा लेवें। फिर ऊर्द्ध्वपातित रस को लेकर खरल में डाल के महीन घोटकर मुर्गे के अण्डे के द्रव से भावित करके घोटना चाहिए। पश्चात् उसमें शुद्ध सुहागा १तो० तथा शुद्धगन्धक १तोला मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर काचकूपी में रससिन्दूर की विधि से पकाकर उपयुक्त मात्रा से तीन दिन तक जीरे के क्वाथ के साथ देने से रक्तपित्त को दूर करता है, तथा ग्रहणी, रक्त-विकार, ज्वर और देहताप को दूर करता है ॥ २–४ ॥

विमर्श:-पारद तथा हिङ्गुल को ऊर्द्ध्वपातन करने का कोई विशेष फल नहीं प्राप्त होता हैं क्योंकि ऊर्द्ध्वपातनयन्त्र से उड़ाने से केवल पारद ही मिलेगा। यदि हिङ्गुलोत्थ पारद ही लेना अभीष्ट था तो केवल सरलता से उसी का निर्देश करना चाहिए था, इस लिये "पारदं हिङ्गुलूकञ्च ऊर्द्ध्वयन्त्रेण मेलयेत्" इस तरह के पाठ की अपेक्षा "पारदं हिङ्गुलूकञ्च पूर्वयन्त्रेण मेलयेत्" ऐसा पाठ उचित है, इस पाठ से निम्नरीति से रस बनाना चाहिए। यथा-शुद्ध हिङ्गुल और पारद दोनों को समभाग लेकर खरल में अच्छी प्रकार घोटकर वुक्कुट ( मुर्गे ) के अण्डे के तरल भाग से भावना देकर शुद्धसुहागा तथा शुद्धगन्धक दोनों को पृथक् २ पारद के बराबर लेकर उपर्युक्त भावित औषधि में मिलाकर महीन पीसलें, फिर गोघृत के साथ भी-एकदिन तक घोटकर एक २ माषे ( उड़द ) के बराबर गोलियां बना लेनी चाहिये।

अथ चन्द्रकलारसः—

प्रत्येकं तोलमानेन सूतकं ताम्रभस्मकम्।
दिनानि त्रीणि गुटिकां कृत्वा चाग्नौ विनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥
ततः शुष्कं समादाय पुनरेव च मर्दयेत्।
समस्तैः समगन्धैश्च कृत्वा कज्जलिकां च तैः ॥ ६ ॥
मुस्तादाडिमदूर्वाभिः केतकीस्तनवारिभिः।
सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्यापि वारिणा ॥ ७ ॥
रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च।
भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ८ ॥
तिक्तं गुडूचिकासत्त्वं पर्पटोशीरमागधीः।
शृङ्गाटं सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णकम् ॥ ९ ॥
द्राक्षादिकषायेण सप्तधा परिभावयेत्।

ततः पोताश्रयं क्षिप्त्वा वट्यः कार्याश्चणोपमाः ॥ १० ॥
अयं चन्द्रकलानामा रसेन्द्रः परिकीर्तितः ।
सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ११ ॥
अन्तर्बाह्यमहादाहविध्वंसनमहाक्षमः ।
ग्रीष्मकाले शरत्काले विशेषेण प्रशस्यते ॥ १२ ॥
कुरुते नाग्निमाद्यं च महातापज्वरं हरेत् ।
श्रमं मूर्च्छां हरत्याशु स्त्रीणां रक्तमहास्रवम् ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वाधो रक्तपित्तं च रक्तवान्तिं विशेषतः ।
मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १४ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला ले कर दोनों को खरल में महीन पीस कर तीन दिनतक जल या वासा के पत्तों के स्वरस के साथ घोटकर गोला बना लेवें, फिर इस गोले को अग्नि में कुछ तपा कर सुखा लें, इस प्रकार सूखने के बाद इस गोले को खरल में महीन पीसकर समानभाग शुद्ध गन्धक मिला के घोटकर कज्जली बनाना चाहिए । पश्चात् इसको मुस्ता ( नागरमोथा ) के क्वाथ से, दाड़िम के रस से, दूर्वा ( धोब या दूब ) के रस से, केवड़े के स्तनसदृश प्रतीयमान अर्थात् केवड़े के पुष्पों के रस से ( अथवा केतकी–केवड़े के रस से तथा गोदुग्ध से ), सहदेवी ( पोतपुष्पा–बला–खरेटी–बरियारा ) के स्वरस या उसकी जड़ के क्वाथ से, घृतकुमारी के स्वरस से, पर्पट ( पित्तपापड़े ) के स्वरस या पर्युषित जल से, रामशीतलिका(१) शाक के स्वरस से तथा शतावरी के कन्द के स्वरस से क्रमशः एक २ वार भावना देनी चाहिए । एक औषधि के रस से रातभर भींगों कर ( आर्द्र कर के ) दूसरे दिन खूब घोटकर स्वरस को सूखा कर फिर संध्या को दूसरी औषधि के स्वरस से भावित करना चाहिए । इस प्रकार पृथक् २ सब से भावना देवें । फिर उसमें चिरायते (तिक्ता) या पटोलपत्र का चूर्ण १ तोला, गुड़च का सत्त्व १ तोला, पित्तपापड़े का चूर्ण १ तोला, खस ( उशीर ) का महीन चूर्ण १ तो०, पिप्पली ( मागधी ) का महीन चूर्ण १ तो०, सिगाड़े का चूर्ण १ तो० तथा सारिवा का चूर्ण १ तोला डालकर

( १ ) रामशीतलिका को आरामशीतलिका कहते हैं तथा दक्षिण देश में रामशालि नाम से प्रसिद्ध है )

सब को अच्छी प्रकार से घोटकर द्राक्षादिगण की औषधियों के क्वाथ से सातवार भावित करके मर्दन करना चाहिए। फिर थोड़ा सा परिस्रुत जल डालके घोटकर चणे के प्रमाण की गोलियां बनानी चाहिए। ( कुछ टीकाकारों ने पोताश्रय शब्द का अर्थ भीमसेनी कपूर किया है ) इस तरह सिद्ध हुए इस रस को चन्द्रकला रस कहते हैं। यह रस सब प्रकार के पित्त के रोगों को, वातके रोगों को तथा वातपित्तजन्य रोगों को नष्ट करता है तथा शरीर की भीतरी तथा बाह्य गरमी ( अधिक बढी हुई ) को दूर करता है। इस रस को ग्रीष्म ऋतु तथा शरद ऋतु में होने वाले रोगों में विशेष रूप से प्रयुक्त करें। इस रस के सेवन से अग्निमांद्य रोग नहीं होता है तथा यह रस अत्यन्त गरमी देकर चढे हुए ज्वर को, थकावट, मूर्च्छा तथा स्त्रियों के ऋतुधर्म में अधिक समय तक होने वाले रक्त स्राव को या रक्तप्रदर जन्य रक्तस्राव को, ऊर्ध्वगरक्तपित्त और अधोगरक्तपित्त, रक्तवमन तथा सर्व प्रकार के मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है, इस में कोई सन्देह नहीं है॥५-१४॥

**विमर्शः—पारद तथा ताम्रभस्म को घोटने के पश्चात् अग्नि में तपाने का तात्पर्य बालुकायन्त्र में रससिन्दूर पाककी विधि से अथवा शराव में या मूषा में बन्द करके पाक करने का है।**

**द्राक्षादिगणौषधियां यथा—**

**द्राक्षामधूकमधुकं रोध्रकाश्मर्यसारिवाः।**
**मुस्तामलकह्रीबेरपद्मकेशरपद्मकम्॥**
**मृणालचन्दनोशीरनीलोत्पलपरूषकम्॥ इति वाग्भटोक्तद्राक्षादिगणः**

अथ सामान्योपायेषु—

पटोलादियोगः—

**पटोलमायसं चूर्णं सूतेन्द्रं समचारितम्।**
**लोहारिवर्गसंघृष्टं रक्तपित्तहरं परम्॥ १५॥**

पटोल—परवल के पत्तों का चूर्ण, आयस—लौह भस्म, सूतेन्द्र—पारे की भस्म अथवा रस सिन्दूर, ये प्रत्येक पदार्थ समान २ ( समचारित—तुल्य ) लेकर खरल में इन्हें डाल कर के महीन पीस लेवें, फिर लोहारि वर्ग ( लोह मारक गण ) की औषधियों के अथवा रक्त रोधक औषधियों के स्वरस या क्वाथ के साथ अच्छी प्रकार से घोट कर सुखा के काचपात्र में भर देवें। यह योग रक्तपित्त के नाश करने के लिये अत्यन्तोपयोगी है। प्रायः इस को २ रत्ती से

लेकर रोग तथा रोगी का विचार करके ४ रत्ती तक द्राक्षादि गण के क्वाथ के अनुपानसे सेवन करना चाहिए ॥ १५ ॥

विमर्शः—लौहारिवर्गस्तु यथा—

त्रिफला त्रिवृता दन्ती कटुकी तालमूलिका।
वृद्धदारकवृश्चीरवृषपत्रकचित्रकाः ॥ १ ॥
भृङ्गबेरविडङ्गौ च भृङ्गभल्लातकौषधम्।
दाडिमस्य च पुष्पाणि शतपुत्रा पुनर्नवा ॥ २ ॥
कुठारकामकौ कन्दः तन्त्री भेकस्य पर्णिका।
हस्तिकर्णपलाशश्च कुलिशः केशराजकः ॥ ३ ॥
माणः खण्डितकर्णश्च गोजिह्वा लौहमारकः।
गिरिशान्तनकः प्रोक्तः त्रिफलादिरयं गणः ॥ ४ ॥

इति त्रिफलादि लौहमारकगणः।

रक्तरोधकौषधयश्च—वृषकापामार्गनीलोत्पलशतावर्यादिकाः। इति।

अथ रसेन्द्रयोगः—

**वृषादलानां स्वरसस्य कर्षं रसेन्द्रगुञ्जामधुशर्कारायुतम्।**
**लिहन्प्रभाते मनुजो निहन्याद् दुःखाकरं दारुणरक्तपित्तम् ॥१६॥**

एक कर्ष वासे ( अडूसा ) के पत्तों के स्वरस के अनुपान के साथ एक रत्ती रस सिन्दूर को शहद् या शर्करा के साथ मिला कर कुछ दिनों तक सेवन करने से अत्यन्त कष्ट देने वाला दारुण रक्तपित्त नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

अन्यश्च—

**सपटोलकहिङ्गूलः सक्षौद्रो रक्तपित्तनुत् ॥ १७ ॥**

शुद्ध हिङ्गुल ( २ रत्ती ) को परवर के पत्तों के ( ३ मासे ) चूर्ण के साथ शहद् में मिला कर खाने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ नवनीतादियोगः—

**नवनीतं सिता लाजा द्राक्षया सह भक्षयेत् ॥ १८ ॥**

नवनीत ( मक्खन ) या शुद्ध गोघृत, मिश्री, धान की खीलें, इन को समान लेकर शुद्ध सिल या खरल में कल्क की तरह घोट कर द्राक्षा के क्वाथ के साथ मिला कर पीने से रक्तपित्त दूर हो जाता है ॥ १८ ॥

अथ शिरोलेपः—

**मस्तके च घृतं दद्याद्रक्तपित्तहरं परम् ॥ १९ ॥**

रक्तपित्त के रोगी के शिर पर घृत ( शतधौतगोघृत ) की मालिश करने से नासादिक मार्गों से निकलने वाला रक्त बन्द हो जाता है ॥ १९ ॥

अथ द्राक्षादिक्वाथः—

**द्राक्षावासायुतं क्वाथं शर्कराभावितं पिबेत् ॥ २० ॥**

द्राक्षा तथा अडूसे का क्वाथ बनाकर उस में कुछ मिश्री डाल कर पीने से रक्तपित्त शान्त हो जाता है। "शर्कराभावितं पिबेत्" इस के स्थान में "पिबेच्च शर्करान्वितम्" ऐसा रसरत्नाकर का पाठ है ॥ २० ॥

अथ योगद्वयम् ।

**वासारसं सिताक्षौद्रैर्लाजान्वा शर्करासमान् ।**
**भक्षयन् रक्तपित्तार्तस्तृष्णादाहज्वरं जयेत् ॥ २१ ॥**

अडूसे के पत्तों के स्वरस में मिश्री और शहद् मिलाकर पीने से रक्तपित्त नष्ट होता है तथा केवल धानकी खीलों को मिश्री के साथ खाने से रक्तपित्त दूर होता है ॥ २१ ॥

अथ सितामृता—

**धात्रीचूर्णं सितायुक्तं भक्षयेद्रक्तपित्तनुत् ॥ २२ ॥**

आंवले के ( ४ मा० ) चूर्ण को मिश्री ( ४ मा० ) के साथ मिला कर प्रतिदिन सुबह सेवन करने से रक्तपित्त दूर हो जाता है ॥ २२ ॥

**अथ रक्तपित्ते साधारणपथ्यः—**

**शालिषष्टिकनीवारकोरदूष-प्रसातिकाः । श्यामाकश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥१॥**
**मसूरमुद्गचणकाः समुकुष्ठाढकीफलाः । प्रशस्ता सूरयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥२॥**

**इति रक्तपित्तम्—**

अथ कासः—

**दोषाः शोषमनोऽभितापकुपिताः कुर्वंति कासं ततः**
**पीतं पूतिकफं प्रतीपनयनः पूयोपमं ष्ठीवति ।**
**शीतोष्णेच्छुरकारणेन बहुभुक्स्निग्धप्रसन्नाननः**
**पार्श्वार्त्यल्पबलत्वयाकृतिरपि प्रादुर्भवत्यन्यथा ॥ २३ ॥**

रस रक्तादि धातुओं का, विशेष कर के सप्तम धातु ( शुक्र ) का क्षय तथा मन का सन्ताप आदि कारणों से प्रकुपित हुए दोष ( वात, पित्त, कफ, ) कास रोग को उपन्न करते हैं। जो मनुष्य कास से पीड़ित या आक्रान्त हो जाता है

उसके दोनों नेत्र पीले हो जाते हैं। तथा कुछ पीतिमायुक्त तथा पूय ( Pus ) के समान दुर्गन्धित कफ को थूंकता ( त्यागता ) है। बिनाही कारण शीत और उष्णता की इच्छा करता है। तथा मात्रा से अधिक भोजन कर लेता है। उसके मुख पर कुछ चिकनाई तथा प्रसन्नता रहती है। कासरोगी के दोनों पार्श्वों में शूल या अन्य कारण से प्रायः वेदना बनी रहती तथा उसका बल क्षीण हो जाता है और क्षयरोगी ( राजयक्ष्मी ) की जैसी आकृति ( शारीरिकदृश्य ) हो जाती है। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त पुरुष को कासरोगी समझना चाहिए ॥ २३ ॥

विमर्शः—माधवोक्तं कासनिदानं यथा—

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥

तस्य सम्प्राप्तिर्यथा—प्राणो हृदुदानानुगतः प्रदिष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः।
निरेति वक्त्रात् सहसा स दोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः॥२॥इति॥

अथ कासनाशनरसः—

सार्कतीक्ष्णाभ्रकोऽगस्त्यकासमर्दवरारसैः।
मर्दितो वेतसाम्लेन पिण्डितः कासनाशनः ॥ २४ ॥

अर्क—ताम्रभस्म १ तोला, तीक्ष्णलौहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला लेकर सबको खरल में डाल कर घोटना चाहिए, फिर अगस्त्य के पुष्पों के स्वरस, कासमर्द ( कसौंदी ) के क्वाथ, त्रिफला ( वरा ) के क्वाथ तथा अमलवेंत के रस से क्रमशः एक २ वार घोटना चाहिए। फिर अच्छी तरह घोट लेने के पश्चात् एक २ रत्ती की गोलियां बना के छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली को प्रतिदिन मुख में रखकर चूसने से सर्व प्रकार के कास नष्ट हो जातेहैं॥२४॥

अथ कासहररसः—

तारे पिष्टशिलां क्षिप्त्वा हरितालाच्चतुर्गुणाम्।
वासगोक्षुरसाराभ्यां मर्दयेत् प्रहरद्वयम् ॥ २५ ॥
प्रस्विन्नो वालुकायन्त्रे गुञ्जाद्वितयसम्मितः।
कासं त्रिकटुनिर्गुण्डीमूलचूर्णयुतो हरेत् ॥ २६ ॥

चांदी की भस्म १ तोला, शुद्ध हरिताल १ तोला तथा मनःशिला हरिताल से चतुर्गुण अर्थात् ४ तोला लेकर सबको खरल में अच्छी प्रकार बारीक पीस लेना

चाहिए, फिर सब को दो प्रहर तक ( ६ घण्टे ) अडूसे के पत्तों के स्वरस के साथ खूब घोटकर फिर दो प्रहर तक गोक्षुर ( गोखरु ) के क्वाथ के साथ घोटकर शराव अथवा मूषा में बन्द करके बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतयन्त्र से औषधि निकाल कर खल्व में पीस करके काच की शीशी में भर देवें। इस रस की दो गुञ्जा ले कर त्रिकटुचूर्ण (४ मा०), और निर्गुण्डी (मेउड़ी-सम्भालू ) की जड़ के चूर्ण ( ४ मा० ) के साथ प्रतिदिन सेवन करने से कास-रोग दूर हो जाता है ॥ २५-२६ ॥

अथ रत्नकारण्डरसः—

भूनागाभ्रकयोः सत्त्वं कान्तहेमाभ्ररूप्यकम् ।
मुक्ताफलानि रत्नानि ताप्यं वैक्रान्तमेव च ॥ २७ ॥
भस्मीकृतमिदं सर्वं पृथङ् माषमितं मतम् ।
निष्कमात्रमितं शुद्धं राजावर्तरजस्तथा ॥ २८ ॥
एतत्सर्वं समं योज्यं मर्दयित्वाम्लवेतसैः ।
रुद्ध्वा मूषोदरे कोष्ठ्यां धमेदाकाशदर्शनम् ॥ २९ ॥
शतवारं धमेदेवं मर्दयित्वाऽम्लवेतसैः ।
ततः सञ्चूर्णिते चास्मिन्मुक्ताभस्म द्विशाणकम् ॥ ३० ॥
मरिचं पञ्च शाणेयं क्षिप्त्वा सम्मर्द्य यत्नतः ।
रम्ये करण्डके क्षिप्त्वा स्थापयेत्तदनन्तरम् ॥ ३१ ॥
साऽयं रत्नकरण्डका रसवरो मध्वाज्यसङ्कामणो
हन्याच्छ्वासगदं ज्वरं ग्रहणिकां कासं च हिध्मामयम् ।
शूलं शार्षमहोदरं बहुविधं कुष्ठं च हन्याद्बलान्
बल्यो वृष्यकरःप्रदीपनतमःस्वस्थोचितो वेगवान् ॥ ३२ ॥

भूनाग—कैञ्चुए (अर्थ वार्म) का सत्त्व १ माशा, अभ्रकभस्म का सत्त्व एक माशा, कान्तलौह भस्म १ माशा, स्वर्णभस्म १ माशा, अभ्रकभस्म एक माशा रजत ( चांदी ) की भस्म १ माशा, मुक्ताफल—मोतियों की भस्म १ माशा तथा सूर्य्यकान्तमणि, चन्द्रकान्तमणि, हीरा, माणिक, पुखराज, गोमेद, प्रवाल, पन्ना, वैदूर्य्यमणि, नीलम, इनमें से जितने रत्न मिल सकें उनमें से प्रत्येक की एक २ माशा भस्म लेवें तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म १ माशा, वैक्रान्तभस्म एक माशा,

शुद्धराजावर्त्त की भस्म १ माशा लेकर सब को खरल में डालकर पीस लें, फिर अमलबेंत के क्वाथ से भावित कर के घोटकर गोला बनाकर मूषा में बन्द कर के सन्धिबन्धन कर देवें। सूखने पर मूषा को कोष्ठिकायन्त्र में रखकर फूंके। जब कोष्ठी में रखी हुई मूषा में से सफेद तथा नीले रङ्ग की ज्वाला निकलने लगे तब तक पकाना चाहिए। फिर स्वाङ्ग शीतल होने पर मूषा से सिद्ध हुए रस को खरल में डालकर महीन पीस के अमलबेंत के रस से घोटकर गोला बना के मूषा में बन्द कर फिर उपर्युक्त प्रकार से पकावें। इस प्रकार सौवार अमलबेंत के रस के साथ घोटकर सौवार फूंकना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को खरल में महीन पीसकर उसमें दो शाण ( ८ माशा ) मुक्ताभस्म तथा कपड़े से छना हुआ महीन मिरचों का चूर्ण ५ शाण ( २० माशा ) मिलाकर अच्छी प्रकार से घोटकर सुन्दर काच के पात्र ( शीशी ) में भर देवें। इस को रत्न करण्डक रस कहते हैं। एक रत्ती के बराबर यह रस शहद् तथा घृत के साथ आलोड़ित ( मिला ) कर के प्रतिदिन सेवन करने से श्वास, ज्वर, संग्रहणी, कास, हिक्का, शूल, शोष, उदररोग तथा सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करता है। यह रस देह के बलको बढाता है, वृष्यगुण करता है, पाचनशक्ति को बढाता है तथा इसको स्वस्थ पुरुष भी सेवन कर सकते हैं ॥ २७-३२ ॥

अथ भूताङ्कुशरसः—

**शुद्धसूतस्य भागैकं भागैकं शुद्धगन्धकम्।**
**भागत्रयं मृतं ताम्रं मरिचं पञ्चभागिकम् ॥ ३३ ॥**
**मृताभ्रस्य चतुर्भागं भागमेकं विषं क्षिपेत्।**
**भूताङ्कुशस्य भागकं सर्वं चाम्लेन मर्दयेत् ॥ ३४ ॥**
**यामं भूताङ्कुशं नाम माषैकं वातकसाजित्।**
**अनुपानं लिहेत्क्षौद्रैर्विभीतकफलत्वचः ॥**
**पित्तकासारुचिश्वासक्षयकासांश्च नाशयेत् ॥ ३५ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, ताम्रभस्म ३ तोला, मरिचों का चूर्ण ५ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला तथा शङ्खभस्म १ तोला, लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेषद्रव्यों को डालकर महीन पीसलेवें, फिर सब को अमलबेंत के रस के साथ एक प्रहर ( ३

घण्टे ) तक अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस तरह बने हुए इस रस को भूताङ्कुशरस कहते हैं। एक माशाभर यह रस बहेड़े के फल के छिलकों के (१ माशा) चूर्ण तथा शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से (१)पैत्तिककास, अरुचि, श्वास और (२)क्षयकास—को नष्ट करता है ॥ ३३-३५ ॥

विमर्शः—इस रस की मात्रा प्रायः १ रत्ती है तथापि [रोगी और रोग के अनुसार मात्रा में ह्रास या वृद्धि भी करना आवश्यक है।

(१) पैत्तिककासलक्षणं यथा—

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्त्तः।
पित्तेन पीतानि वमेत् कटूनि कासेत् सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ १ ॥

(२)क्षयकासनिदानलक्षणादिकं यथा—

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात्।
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयोमलाः ॥
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥१॥

लक्षणं—सगात्रशूलज्वरदाहमोहान् प्राणक्षयं चोपलमेतकासी।
शुष्कं स निष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥
तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥ १ ॥
इत्येषः क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः।
साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षयोत्थितः ॥ २ ॥ इति ॥

अथ बोलबद्धरसः—

रसभस्म विषं तुल्यं गन्धकं द्विगुणं मतम्।
बोलतालकवाह्लीककर्कोटीमाक्षिकं निशा ॥ ३६ ॥
कण्टकारी यवक्षार-लाङ्गलीक्षारसैन्धवम्।
मधूकसारं सञ्चूर्ण्य सप्ताहं चार्द्रकद्रवैः ॥ ३७ ॥
गुटिकां बदराकारां श्लेष्मकासापनुत्तये।
भक्षयेद् बोलबद्धोऽयं रसः सश्वासपाण्डुजित् ॥ ३८ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, तथा बोल ( गन्धरस ) १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, हिङ्गुचूर्ण १ तोला, बांझककोड़े का चूर्ण १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, हरिद्रा का चूर्ण १ तोला, कण्टकारी का चूर्ण १ तोला, यवक्षार १ तोला, कलिहारी की शुद्ध जड़ का चूर्ण १ तोला, सज्जीखार १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला, मुलैठी

का चूर्ण १ तोला लेकर इन सब को खरल में अच्छी प्रकार से महीन पीसकर सातदिन तक अदरख के रस से भावित कर के घोटकर बैर के फल की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर शीशी में भर देवें। इसको बोलबद्ध रस कहते हैं। यह रस विशेषरूप से श्लैष्मिककास(१) को नष्ट करता है तथा श्वास और पाण्डुरोग को भी दूर करता है ॥ ३६-३८ ॥

**विमर्शः—इस रस को ४ रत्ती से प्रारम्भ करके एक माशे तक देना चाहिए।**

(१)कफजकासलक्षणं यथा—

प्रलिप्यमानेन मुखेन सोदन् शिरोरुजार्त्तः कफपूर्णदेहः।
अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ १ ॥

अथाग्निरसः—

**रसगन्धकपिप्पल्यो हरीतकयक्षवासकम्।**
**षडुत्तरगुणं चूर्णं बब्बुलक्काथभावितम् ॥ ३९ ॥**
**एकविंशतिवाराणि शोषयित्वा विचूर्णयेत्।**
**भक्षयेन्मधुना हन्ति कासमग्निरसो ह्ययम् ॥ ४० ॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो; पिप्पलीचूर्ण ३ तो; हरीतकी (हरड़) का चूर्ण ४ तो; बहेड़े का चूर्ण ५ तो; वासक ( अड़ूसे ) का चूर्ण ६ तोल ले कर प्रथम पारद और गन्धक को कज्जली बनाकर शेष द्रव्यों को मिला के महीन पीसकर बब्बूल ( बोल्या ) की छाल के क्काथ से अच्छी प्रकार आप्लावित करके रातभरदें के लिये रख, फिर दूसरे दिन धूप में अच्छी प्रकार से घोंटते घोंटते सुखालेवें।, यह एक भावना हुई। सूखने के बाद फिर बब्बूल की छाल या पञ्चाङ्ग से निर्मित क्काथ से अच्छी प्रकार आप्लावित (भींगो) कर रातभर ढककर रखदें। दूसरे दिन सन्ध्या तक खूब घोटें, यह दूसरी भावना हुई। इस तरह बब्बूलक्काथ से २१ बार भावित करके ( सब जगह इसी विधि से स्वरस या क्काथ से भावनाएं देनी चाहिएं ) सूखाकर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुआ यह अग्निरस ४ रत्ती से एक माशे तक प्रतिदिन शहद् के साथ सेवन करने से कास को नष्ट कर देता है ॥ ३९-४० ॥

अथ स्वयमग्निरसः—

**त्रिकटु त्रिफला चैला जातीफललवङ्गकम्।**
**एतेषां समभागानां समः पूर्वरसो भवेत् ॥ ४१ ॥**

**सञ्चूर्ण्याऽऽलोडयेत्क्षौद्रे भक्षयेा निष्कद्वयं द्वयम् ।**
**स्वयमग्निरसो नाम्ना क्षयकासनिकृन्तनः ॥ ४२ ॥**

त्रिकटु—शुण्ठीचूर्ण १ तोला, मरिचचूर्ण १ तोला, पिप्पली चूर्ण १ तोला, त्रिफला—हरीतकीचूर्ण १ तोला, विभीतकफलत्वचश्चूर्ण १ तोला आमलकचूर्ण १ तोला, बड़ी इलायची का चूर्ण १ तोला, जायफल का चूर्ण १ तोला, लवङ्ग का चूर्ण १ तोला लेकर खरल में घोट लें । फिर इन सबके बराबर अर्थात् ९ तो ले भर ऊपर कहा हुआ अग्निरस मिलाकर सबको एकत्रित पीसकर महीन करके शीशी में भर देवें । इस प्रकार बने हुए रस को स्वयमग्निरस कहते हैं । दो निष्कभर यह रस प्रतिदिन शहद में घोटकर सेवन करने से क्षय तथा क्षय-जन्य कास को नष्ट करता है ॥ ४१-४२ ॥

**विमर्शः**-दो निष्क ८ माशे के बराबर होता है । तथा-चतुर्भिर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टङ्क एव च ॥ इति । यद्यपि इस रस में काष्ठौषधियां ज्यादा है तथापि प्रायः इसको एक निष्क ( ४ माशा ) ही देना उचित हैं ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्र भृङ्गराजयोगः—

**भृङ्गराजस्य पत्राणि मधुना चूर्णितानि हि ।**
**गोलकं धारयेद्वक्त्रे कासविष्टम्भशान्तये ॥ ४३ ॥**

भृङ्गराज के पत्तों का चूर्ण करके उसमें मधु मिलाकर एक २ माशे भर की गोलियां बनालेवें । जब खांसी चलने लगे तब एक गोली मुख में रख कर चूसनी चाहिए । इस तरह से खांसी दूर होजाती है तथा इन गोलियों को मुख में रखकर चूसने से विष्टम्भरोग ( कब्जी या मलावरोध ) भी दूर होजाता है ॥ ४३ ॥

अथ अर्कादियोगः ।

**अर्कैरण्डस्य पत्राणां रसं पीत्वा च कासजित् ॥ ४४ ॥**

आक के तथा एरण्ड के पत्तों के स्वरस का पान करने से खांसी नष्ट हो जाती है । प्रायः दोनों को मिलाकर अथवा पृथक् २ एक तोला भर रस पीना चाहिए । आक के पत्तों का पुटपाक करके रस निकालना चाहिए ॥ ४४ ॥

अथ कासघ्नधूमद्वयम्—

**दन्तीमूलस्य धूमं वा निर्गुण्ड्या वा पिबेज्जयेत् ॥ ४५ ॥**

दन्ती की जड़ के चूर्ण का अथवा निर्गुण्डी की जड़ के चूर्ण का धूम्रपान करने से कासरोग नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

विमर्शः— प्रायः जड़ के चूर्ण की तैलादिक स्नेह के साथ वर्ति बना कर धूम्रपान करना चाहिए, अथवा शुष्क चूर्ण को चिलम में भरकर ऊपर निर्धूम अङ्गार रख कर यथाविधि धूम्र पान करें, अथवा एक मिट्टी के सकोरे में निर्धूम तथा दीप्त अङ्गार रख-कर उस पर चूर्ण को डालकर एक मध्यसूक्ष्मछिद्रवाले अन्य समान सकोरे से ढक देवें तथा बीच के छिद्र से निकलते हुए धूएं का पान करें।

यथोक्तम्—व्यपेत धूमाङ्गारे स्थिरे समाहितशरावे प्रक्षिप्य वर्तिं मूलच्छिदेणाग्येन शरावेण पिधाय तस्मिन् छिद्रे नेत्रमूलं संयाज्य धूममासेवेत, इति, धूमपान ( Inhalation ) प्रायः दिन में आठवार करना चाहिए, जैसे कहा भी है

"प्रयोगपाने तस्याष्टौ कालाः सम्परिकीर्तिताः ।
वातश्लेष्मसमुत्क्लेशः कालेष्वेषु हि लक्ष्यते ॥ १ ॥
स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दन्तान्निघृष्य च ।
नावनाञ्जननिद्रान्ते चात्मवान् धूमपो भवेत् ॥ २ ॥

धूमपानविधिः—

ऋज्वक्षचक्षुस्तच्चेताः सूपविष्टस्त्रिपर्ययम् ।
पिबेच्छिद्रं पिधायैकं नासया धूममात्मवान् ॥ १ ॥
धूमयोग्यः पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये ।
घ्राणेनास्येन कण्ठस्थे मुखेन घ्राणपोवमेत् ॥ २ ॥
आस्येन धूमकवलान् पिबन् घ्राणेन नोद्वमेत् ।
प्रतिलोमं गता ह्याशु धूमोहिस्याद्धि चक्षुषो ॥ ३ ॥

आजकल डाक्टरी चिकित्सा पद्धति में भी राजयक्ष्मा, प्रतिश्याय, श्वास तथा कास आदि श्वसन संस्थान ( Respiratory System ) के रोगों में औषधि धूम-पान ( Inhalation ) का प्रयोग होता है, इस धूमपान के लिये जो यन्त्र होते हैं उनको इनहेलर्स ( Inhalers ) या रेस्पिरेटर्स ( Respirators ) कहते हैं ॥। कासरोगी यदि निम्न दशाओं से आक्रान्त हो तो धूमपान न करें।

यथा—न विरिक्तः पिबद्धूमं न कृते बस्तिकर्मणि ।
न रक्तो न विषेणार्त्तो न शोचो न च गर्भिणी ॥
न श्रमे न मदे नामे न पित्ते न प्रजागरे ।
न मूर्च्छाभ्रमतृष्णासु न क्षीणे नापि च क्षते ॥
न मद्यदुग्धे पीत्वा च न स्नेहं न च माक्षिकम् ।
धूमं न भुक्त्वा दध्ना च नरुक्षः क्रुद्ध एव च ॥

न तालुशोषे तिमिरे शिरस्यभिहते न च ।
न शङ्खके न रोहिण्यां न मेहे न मदात्यये ॥
एषु धूममकालेषु मोहात् पिबति यो नरः ।
रोगास्तस्य प्रवर्धन्ते दारुणा धूमवभ्रमात् ॥ इति ॥

अथ क्षयकासान्तको योगः ।

इन्द्रवारुणिकामूलं भृङ्गीकृष्णातिलैः सह ।
भक्षयेत्क्षयकासार्तो निष्कमात्रं प्रशान्तये ॥ ४६ ॥

[ इति कासचिकित्सा ]

इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण, भृङ्गराज का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, काले तिलों का चूर्ण, ये सब समान २ लेकर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को एक निष्क भर प्रतिदिन सेवन करने से क्षयकास नष्ट हो जाताहै ॥४६॥

अथ वातकासे पथ्यानि—

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौड़िकाः१
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च । शस्यते वातकासे तु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥२॥
ग्राम्यानूपोदकैः शालीयवगोधूमषाष्टकान् । रसैर्मांषात्मगुप्तानां यूषैर्वाभोजयेद्धितान् ॥३॥

इति वातकासपथ्यविवेकः ।

अथ कासे साधारणपथ्यनिर्देशः—

शालिषष्टिकगोधूममाषमुद्गकुलत्थकाः।छागयाः पयो घृतं बिम्बी वार्ताकं बालमूलकम्॥१॥
कासमर्दकजीवन्तीवास्तुकं बीजपूरकम् । गोस्तनी लशुनं लाजा व्योषमुष्णोदकं मधु ॥२॥
पथ्यमेतद्यथादोषमुक्तं कासगदातुरे । मथुनं स्निग्धमधुरं दिवास्वप्नं पयो दधि ॥
पिष्टान्नं पायसादीनि कासी धूमञ्च वर्जयेत् ॥ ३ ॥

इति कासरोगे पथ्यापथ्यम् ॥

इति कासचिकित्सा ।

अथ श्वासः—

श्लेष्मोपरुद्धगमनः पवनोऽतिदुष्टः
सन्दूषयन्ननु जलान्नवहाश्रुनाडीः ।
आमाशयाद्भवमिमं विदधात्युरस्थः
श्वासं च वक्रगमनो हि शरीरभाजाम् ॥ ४७ ॥

श्वासनलिका ( Trachea ) में कफ के आधिक्य होने से या जमजाने से प्राणवायु का सञ्चार ठीक नहीं होता है इसलिये वायु दूषित होकर जल तथा अन्न वाहक नाड़ी ( Oesophagus ) को दूषित करता हुआ तथा वक्रगति अर्थात्

अप्राकृतिक भिन्न २ मार्गों में सञ्चरण करता हुआ वक्षस्थल में पहुंच कर श्वास-रोग—एस्थमा ( Asthma ) उत्पन्न कर देता है। इसका प्रथम दौरा आमाशय से शुरू होता है ॥ ४७ ॥

अथ ऊर्ध्वश्वासारिः—

**इन्द्रवारुणिकामूलं देवदारु कटुत्रयम् ।**
**शर्करासहितं खादेदूर्ध्वश्वासप्रशान्तये ॥ ४८ ॥**

इन्द्रवारुणी की जड़, देवदारु तथा सौंठ, मिरच और पीपल ये प्रत्येक बराबर १ लेकर चूर्णकर के सबचूर्ण के बराबर शर्करा मिलाकर शीशी में भर दें। इस चूर्ण को प्रति दिन आधे तोले भर सेवन करने से ऊर्द्ध्व श्वास नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

विमर्शः—ऊर्द्ध्वश्वासलक्षणादिकं यथा—

**ऊर्द्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ।**
**श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥**
**ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः ।**
**प्रमुह्यन् वेदनार्त्तश्च शुक्लास्योऽरतिपीड़ितः ॥**
**ऊर्द्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते ।**
**मुह्यत स्ताम्बतश्चोर्द्ध्वं श्वासस्तस्यैवहन्त्यसून ॥ इति ।**

अथ सूर्यावर्तरसः—

**सूतार्धं गन्धकं मर्द्यं यामैकं कन्यकाद्रवैः ।**
**द्वयोः समं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन मेलयेत् ॥ ४९ ॥**
**दिनैकं हण्डिकायन्त्रे पक्वमादाय चूर्णयेत् ।**
**सूर्यावर्तरसो ह्येष द्विगुञ्जः श्वासजिद् भवेत् ॥ ५० ॥**

शुद्ध पारद १ पल तथा शुद्ध गन्धक आधापल लेकर दोनों को पत्थर की खरल में घोट कर कज्जली बना लेवें, फिर इसको घृत कुमारी के स्वरस के साथ एक प्रहर ( ३ घण्टे ) तक अच्छी प्रकार घोटकर इस कल्क को डेढ़ पल शुद्ध ताम्र के पत्तों पर लेप करके इन्हें एक हण्डिका में रख कर सकोरे से ढक के सन्धिबन्धन कर देवें, फिर हण्डिका के शेष शून्य भाग को बालू से भर कर शराब से हण्डिका का मुख बन्द करके उसे छोटी भट्टी या चूल्हे पर चढा कर एक दिन तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीत यंत्र से सिद्ध औषध निकाल कर

खरल में महीन पीस कर शीशी में भर दें। इसको सूर्यावर्त रस कहते हैं। यह रस २ रत्ती भर श्वासनाशक अनुपानों के साथ सेवन करने से श्वास को दूर करता है ॥ ४९-५० ॥

**विमर्शः**—"सूतार्द्धं गन्धकं मर्द्यं, इसका षष्ठी समास ( सूतस्यार्द्धं गन्धकमर्थात् सूतस्यैकोभागस्तथा गन्धकस्य चार्द्धभागः ) के बल से टीका में अर्थ कर दिया है, किन्तु बहुव्रीहि समास ( सूतः अर्द्धो यत्र तादृशं गन्धकं, तेन सूतस्यार्द्धो भागस्तथा गन्धकस्य च भागैकम् ) के बल से शुद्ध पारद का आधा भाग तथा शुद्धगन्धक का एक भाग लेकर कज्जली करें, यह अर्थ होता है. वस्तुतस्तु अर्द्धशब्दसमानार्थकवाची भी है यथा "अर्द्धं समेंऽशके, इत्यमरः। इस लिये ( सूतः अर्द्धं समभागं यत्र तादृशं गन्धकं ग्राह्यं तेन सूतकगन्धकयोः समभागः, नत्वन्यथा ) बहुव्रीहिसमास के बल से पारद के समान जहां ऐसा गन्धक अर्थात् दोनों समान २ लेकर कज्जली कर लेवें यह अर्थ करना चाहिए तथा तन्त्रान्तर में कथित सूर्यावर्तरस से भी प्रमाणित होता है कि दोनों समान ही लेवें तथा रसेन्द्रसारसंग्रहे-"गन्धकं सूतकं मर्द्यं यामैकं कन्यकाद्रवैः, इति दिक्।

अथ श्वसान्तकरसः—

**सूतः षोडश तत्समो दिनकरस्तस्यार्धभागो बलिः**
**सिन्धुस्तस्य समः सुसूक्ष्ममृदितः षट्पिप्पलीचूर्णितः।**
**जम्बीरस्वरसेन मर्दितमिदं तप्तं सुपक्वं भवेत्**
**कासश्वाससगुल्मशूलजठरं पाण्डुं लिहन्नाशयेत् ॥ ५१ ॥**

शुद्ध पारद १६ तो०, ताम्रभस्म १६ तो०, शुद्ध गन्धक ८ तो०, सैन्धव लवण ८ तो० तथा वस्त्र से छाना हुआ छोटी पिप्पली का चूर्ण ६तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेषद्रव्य मिलाकर सब को महीन पीसकर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ अच्छी प्रकार घोटकर गोला बनाके उसको शराव में रखकर दूसरे शराव से ढककर सन्धिबन्धन करके एक दिन तक बालुकायंत्र में पकाना चाहिए। स्वाङ्गशीतयंत्र से सिद्ध औषध निकालकर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें। यह रस २ रत्ती भर प्रतिदिन यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से श्वास, कास, गुल्म, शूल, अग्निमांद्य तथा पाण्डुरोग को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

**विमर्शः**—कुछ टीकाकारों ने पारद युक्त ताम्र से आधा गन्धक (अर्थात् १६ तो०)

लेने को लिखा है, अथवा अर्द्ध शब्द को समानार्थकवाची मानकर उसका अर्द्धभाग गन्धक अर्थात् समानभाग ( १६ तो० ) गन्धक लेवें ऐसा लिखा है।

अथ श्वासारिवटकः—

साधारणं तु वटकं वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः।
पारदं गन्धकं चैव पलमेकं पृथक् पृथक् ॥ ५२ ॥
पलत्रयं त्रिकटुकं वङ्गमेकपलं क्षिपेत्।
सर्वमेकत्र संयोज्य दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ ५३ ॥
गोमूत्रेण तथा त्रीणि दिनानि परिमर्दयेत्।
अक्षप्रमाणवटकं छायाशुष्कं तु कारयेत् ॥ ५४ ॥
नित्यमेकं तु वटकं दिनानि त्रिंशदेव च।
श्वासकासज्वरहरमग्निमान्द्याऽरुचिप्रणुत् ॥ ५५ ॥

अब श्वास कासादिकों को नष्ट करने के लिये सर्वजनों के लिये उपयोगी साधारण वटियों के निर्माण का व्याख्यान करता हूं उसको सावधानी से श्रवण करो, यह किसी आचार्य का शिष्य के प्रति कथन है।

शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल, त्रिकटु का चूर्ण ३ पल, वङ्गभस्म १ पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर शेष द्रव्य मिला के सब को तीन दिन तक घोट कर महीन पीसके गोमूत्र के साथ तीन दिन तक अच्छी प्रकार घोटें, फिर बहेड़े के फल की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर उन्हें छाया में सूखा कर शीशी में भर देवें। इन गोलियों में से प्रति दिन एक २ गोली सेवन करें, इस तरह ३० दिन तक सेवन करने से श्वास, कास, ज्वर, अग्निमांद्य और अरुचि आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रायः ४ रत्ती की एक २ गोली बनानी चाहिए ॥ ५२–५५ ॥

अथ सप्तामृतावटी—

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः।
त्रिभागा पिप्पली ग्राह्या चतुर्भागा हरीतकी ॥ ५६ ॥
विभीतः पञ्चभागस्तु वासा षड्गुणिता भवेत् ॥
भार्ङ्गी सप्तगुणा ग्राह्या सर्वं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ५७ ॥
बब्बुलक्वाथमादाय भावयेदेकविंशतिः।

बिभीतकप्रमाणेन मधुना गुटिकां चरेत् ॥ ५८ ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातर्वटी सप्तामृताऽभिधा ॥
श्वासकासादिकं व्याधि तत्क्षणान्नाशयेदियम् ॥ ५९ ॥

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो०, वस्त्र से छाना हुआ पिप्पली का चूर्ण ३ तो०, वस्त्र से छाना हुआ हरीतकी ( हरड़ ) का चूर्ण ४ तो०, वस्त्र से छाना हुआ बहेड़े के फल के छिलकों का चूर्ण ५ तो०, वासे ( अड़ूसे ) का महीन चूर्ण ६ तो०, भारङ्गी ( ब्राह्मणयष्टिका ) का चूर्ण अथवा शोधित भाङ्ग का महीन चूर्ण ७ तो० लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेष द्रव्यों को मिला के बारीक पीसकर बब्बूल के पञ्चाङ्ग ( पत्र, पुष्प, फल या उसकी फलियां या छिमियां, छाल, तथा मूल-जड़) अथवा केवल उसकी छाल के क्वाथ से अच्छी प्रकार खरल में स्थित समग्र औषधी के चूर्ण को आप्लावित करके रात्रिपर्यन्त ढककर रख दें। दूसरे दिन उसको घोटते २ सुखा लेवें, फिर दूसरी बार आप्लावित करके दूसरी भावना प्रथम भावना के अनुसार ही देवें। इस तरह बब्बूल के क्वाथ से २१ वार भावित करके थोड़ा सा शहद डालकर अच्छी प्रकार से घोट कर बहेड़े के फल की अस्थि ( गुठली ) के बराबर की गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को सप्तामृतरस या सप्तामृतावटी कहते हैं। इसकी एक २ गोली प्रति दिन प्रातः काल सेवन करने से श्वास तथा कास आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। प्रायः एक २ माशे भर की गोलियां बनानी चाहिये ॥ ५६-५९ ॥

सूतं शुल्वं सुलोहं बलिममृतयुतं त्रित्रिकं रेणुकाब्दं
गण्डीरं केसराग्निं द्विगुणगुडयुतं मर्दयित्वा समस्तम् ।
कुर्यात्कोलास्थिमात्रान्सुरुचिरवटकान्भक्षयेत्प्राग्दिनादौ
पथ्याशी सर्वरोगान्हरति च नितरां नीलकण्ठाऽभिधानः॥६०॥

शुद्ध पारद १ तो०, शुल्व-ताम्रभस्म १ तो०, कान्तलौह भस्म १ तो०, शुद्धगन्धक १ तोला०, शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण १ तो०, त्रित्रिक अर्थात् तीनों त्रिकों ( त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद ) में से प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला ( सबका सम्मिलित ९ तो०), नागर मोथे का चूर्ण १ तो०, गण्डीर ( शमठ या शुण्ठिया शाक ) का चूर्ण १ तो०, नागकेशर का चूर्ण १ तोला०, चित्रक के पञ्चाङ्ग या केवल जड़

का चूर्ण १ तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाकर सबको महीन पीसकर समग्र चूर्ण से द्विगुण ( दोगुना अर्थात् ३८ तो०, ) पुराना गुड़ मिलाकर अच्छी तरह मर्दन करके कोल अर्थात् बैर की गुठली के बराबर की मनोहर गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर काँच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार सिद्ध किये हुए इस रस को नीलकण्ठरस कहते हैं । इस रस की प्रति दिन एक २ गोली प्रातःकाल यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रायः त्येक रोग की चिकित्सा के अन्त में श्लोक-बद्ध पथ्यापथ्य का उल्लेख किया हुआ है। तदनुसार पथ्य का सेवन और अपथ्य का परिवर्जन करना चाहिये ॥ ६० ॥

विमर्शः—प्रायः एक २ माशे भर की गोलियां बनानी चाहिए ।

त्रिकत्रयस्वरूपं यथा—पिप्पली शृङ्गवेरञ्च मरिचं त्र्यूषणं विदुः ।
विडङ्गमुस्तचित्रैश्च त्रिमदः समुदाहृतः ॥
पथ्याविभीतधात्रीणां फलैः स्यात् त्रिफला समैः ॥ इति ।

अथ श्वासकासकरिकेसरीरसः—

तारताम्ररसपिष्टिका शिला गन्धतालसमभागिकं रसैः ।
आर्द्रकर्षसुरसार्द्रसम्भवैर्मर्दयं प्रकुरु गोलकं ततः ॥ ६१ ॥
मृत्स्नया च परिवेष्टय गोलकं यामयुग्ममथ भूधरे पचेत् ।
गन्धकेन कुरु तत्समं ततश्चार्द्रकर्षकटुकैर्विभावयेत् ॥६२॥
श्वासकासकरिकेसरीरसो वह्निमस्य परिसेवयेद्बुधः ॥६३॥

तार—चांदी की भस्म १ तो०, शुद्ध पारद १ तो० अथवा अष्टम अध्याय में कही हुई पारद और गन्धक की पिष्टी १ तो०, शुद्धमनःशिला १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्ध हरताल १ तो० लेकर प्रथम पारद और गंधक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको महीन पीसकर अड़ूसा ( वासा ), तुलसी ( सुरसा ) और अद्रक के स्वरस से क्रमशः एक २ बार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर गोला बना लेवें । फिर उस गोले को मूषा में बन्द करके मूषा का मुख बन्द कर उसके चारों ओर मिट्टी पोतकर सुखा के दो प्रहर ( ६ घण्टे ) तक भूधरयन्त्र में पकावें । खाङ्गशीतयंत्र से सिद्ध औषधि को निकालकर खरल में महीन चूर्णकर उसमें एक तोला शुद्ध गन्धक मिलाकर महीन पीस के

अडूसे और त्रिकटु के क्वाथ से सात २ बार भावित करके अच्छी प्रकार से घोंट कर सुखा के शीशी में भर दें। इसीको श्वासकासकरिकेसरीरस कहते हैं। इस रस को एक वल्ल भर ( ३ रत्ती ) प्रति दिन सेवन करने से श्वास तथा कास नष्ट हो जाता है ॥ ६१-६३ ॥

**विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने पकाने के पश्चात् डाले जाने वाले गन्धक को समान भाग लेकर डालना चाहिए, ऐसा लिखा है।**

अथ सूर्यरसः—

**रसगन्धकताम्राभ्रं कणाशुण्ठ्यूषणं समम् ।**
**भूतमेकं विषं चैकं सूर्यः कासादिनाशनः ॥ ६४ ॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तोला०, ताम्रभस्म १ तो०, अभ्रकभस्म १ तो०, पिप्पली का चूर्ण १ तो०, शुण्ठी ( सोंठ ) का चूर्ण १ तो०, काली मरिचों का चूर्ण १ तो०, भूत-शुद्धमुस्तक चूर्ण अथवा बहेड़े के फल के छिलकों का चूर्ण १ तो०, शुद्धवत्सनाभचूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली करके शेष द्रव्यों को मिलाकर सबको एकत्र महीन घोटकर शीशी में भर दें। इसको सूर्यरस कहते हैं। यह रस एक रत्ती से ३ रत्ती तक प्रतिदिन यथा-रोगानुपानों के साथ सेवन करने से कास, श्वास आदि रोगों को नष्ट करता है ॥६४॥

**विमर्शः—प्रायः जितने पारद तथा गन्धक के पाकनिर्देश रहित योग हैं, उनमें पारद तथा गन्धक न डालकर रससिन्दूर डालना चाहिए तथा शेष योगोक्तद्रव्य मिला के घोट लेवें और जिन पारद गन्धक के यौगिकों का पुट आदि से पाक करने का निर्देश है वहां पारद तथा गन्धक यथोक्त मात्रा से लेकर कज्जली बनाकर शेष-योगोक्त द्रव्य मिला के घोटकर यथायोगोक्त रीति से भावना देकर पुटादि विधि से पाक करके रससिद्धि करना चाहिये।**

अथ सामान्योपचारः—

**गन्धकं मरिचं साज्यं त्रिवेच्छ्वासकफापहम् ।**
**शिला हिङ्गु विडङ्गं च मरिचं कुष्ठसैन्धवम् ॥**
**मध्वाज्याभ्यां लिहेत्कर्षं श्वासकासकफापहम् ॥ ६५ ॥**

इति श्वासचिकित्सा ।

शुद्धगन्धक १ पल, वस्त्र से छाना हुआ काली मरिचों का चूर्ण १ पल लेकर खरल में दोनों को महीन पीसकर दोनों से द्विगुण गाय का ताजा घृत मिलाकर

मिट्टी या काच के पात्र में भरकर रख दें। इस प्रकार के अवलेह को प्रतिदिन एक तोले भर प्रातःकाल सेवन करने से श्वास तथा कफसम्बन्धी ( कफजन्य ) अन्य रोग कुछ दिनों में नष्ट हो जाते हैं।

शुद्ध मनःशिला, अग्नि के संयोग से तवे में घृत के साथ भर्जित (भुनी हुई) हींग, वायविडङ्ग का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, कुष्ठ-शुद्ध मीठे कूट का चूर्ण, सैन्धव लवण, ये प्रत्येक बराबर २ लेकर इन्हें खरल में डालकर महीन पीस कर शीशी में भरकर रख देवें। इस चूर्ण को प्रतिदिन एक कर्ष भर लेकर आधा तोला शहद तथा एक तोले घृत के साथ विलोड़ित ( घोट ) करके प्रातःकाल सेवन करने से श्वास, कास तथा कफजनित समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

अथ श्वासे पथ्यापथ्यम्।

विरेचनस्वेदनधूमपानप्रच्छर्दनानि स्वपनं दिवा च।
पुरातनाः षष्टिकरक्तशालिकुलत्थगोधूमयवाः प्रशस्ताः ॥ १ ॥
शशाहिभूकित्तिरलावदक्षशुकादयो धन्वमृगा द्विजाश्च।
पुरातनं सर्पिरजाप्रभूतं पयो घृतञ्चापि सुरा मधूनि ॥ २ ॥
पटोलवार्ताकरसोननिम्बजम्बीरतण्डूलीयकवास्तुकञ्च।
द्राक्षा तृटिः पौष्करमुष्णवारि निदिग्धिका श्वासिनि पथ्यवर्गः ॥ ३ ॥

अथापथ्यम्

रक्तस्रावः पूर्ववातान्नपानं मेषीसर्पिर्दुर्धमम्भोऽपि दुष्टम्।
मत्स्याः कन्दाः सर्षपाश्चान्नपानं रूक्षं शीतं गुर्वपि श्वासवर्ज्यम् ॥ १ ॥

इति श्वासे पथ्यापथ्यम्।

अथ हिक्का—

विदाहिगुरुविष्टम्भिरुक्षाभिष्यन्दिभोजनैः।
शीतपानाशनस्थानरजोधूमाऽऽतपानिलैः ॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघाताऽपतर्पणैः।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ ६६ ॥

शरीर में दाह उत्पन्न करने वाले उष्णगुणप्रकृतिभूयिष्ठ पदार्थ तथा गुरु अर्थात् तीव्र पाचक रस के अभाव से देर से हजम होने ( पचने ) वाले पदार्थ, विष्टम्भ ( कब्ज या मलावरोधकारक ) कारक पदार्थ तथा रूक्ष ( वातगुण-भूयिष्ठ तथा स्नेहहीन ) और अभिष्यन्द कारक ( अधिक कफमेदोवृद्धिकारक )

पदार्थों का अधिक सेवन करने से तथा ग्रीष्म ऋतु के अतिरिक्त अन्य वर्षा शरदादिक ऋतुओं में अधिक शीतल जलपान स्नान, अधिक शीतल गुण युक्त पदार्थों से निर्मित भोजन का आहार तथा अत्यन्त शीतल स्थान में निवास तथा धूलि ( धूल उड़ने वाली हवा में चलना, घूमना फिरना आदि ), आतप ( धूप ) तथा अधिक शीतल वायु का सेवन करने से और अधिक तथा अयोग्य (१)व्यायाम (परिश्रम) करना, भार (बोझे) का उठाना, मार्ग में चलना, अधारणीय वेगों(२) का धारण करना, चोट लगना, अपतर्पण अर्थात् अतृप्तिकर रूक्ष पदार्थों का अत्यन्त सेवन करना आदि अनेक कारणों से मनुष्यों के (३)हिक्का ( हिचकी ), श्वास और कास ये रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६६ ॥

विमर्शः—अतिव्यायामादिनिषेधो यथा—

( १ ) व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान् ।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया ॥
एतानेवंविधांश्चान्यान्योऽतिमात्रं निषेवते ।
गजः सिंहमिवाकृष्य सहसा स विनश्यति ॥
श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥

व्यायामानर्हाः—

भुक्तवान् कृतसम्भोगः कासी श्वासी कृशः क्षयी ।
रक्तपित्ती क्षती शोषी न तं कुर्यात् कदाचन ॥

व्यायामार्हांस्तस्य कालश्च यथा—

स सदा गुणमाधत्ते बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ।

तस्य समयः—

वसन्ते शीतसमये सुतरां सहितो मतः ।
अन्यदापि च कर्तव्यो बलार्धेन यथाबलम् ॥

बलार्धलक्षणं यथा—

हृदयस्थो यदा वायुर्वक्त्रं शीघ्रं प्रपद्यते । मुखं च शोषं लभते तद्बलार्धस्य लक्षणम् ॥
किंवा ललाटे नासायां गात्रसन्धिषु कक्षयोः ।
यदा सञ्जायते स्वेदो बलार्धन्तु तदाऽऽदिशेत् ॥ इति ।

अधारणीया वेगाः—

( २ ) न वेगान्धारयेद्धीमान् जातान्मूत्रपुरीषयोः ।
न रेतसो न वातस्य न छर्द्याः क्षवथोर्न च ॥

नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः ।
न वाष्पस्य न निद्राया निश्वासस्य श्रमेण च ॥
एतान् धारयतो जातान् वेगान् रोगा भवन्ति हि ॥ इति ।

अथ हिक्कास्वरूपं निरुक्तिश्च यथा—

( १ ) मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सत्वनो यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून् यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ १ ॥

अथ तासां पूर्वरूपं यथा—

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता ।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ २ ॥

अथ तासां नामानि—

अन्नजा यमला क्षुद्रा गम्भीरा महती तथा ।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ ३ ॥

अथ हिक्कानाशनरसः—

**रसगन्धकधान्याभ्रतालताप्योपलं क्रमात् ।**
**भागवृद्धं वचाकुष्ठहरिद्राक्षारचित्रकैः ॥ ६७ ॥**
**सपाठा लाङ्गलीव्योषसैन्धवाक्षविषैः समम् ।**
**भावितं भृङ्गनीरेण हिक्कावैस्वर्यकासनुत् ॥ ६८ ॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो०, धान्याभ्रकभस्म ३ तो०, शुद्ध हरताल ४ तो०, ताप्य—स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ तो०, उपल—शुद्ध मनःशिला ६ तोले लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाकर अच्छी प्रकार से घोट लेवें । फिर उसमें पारद से लेकर उपल (मनःशिला) तक लिये हुए पदार्थों के मिलित तौल (बजन के (बराबर ( अर्थात् २१ तोले भर ) वच, मीठाकूट, हल्दी, क्षार—जवाखार, चित्रक, पाठा, शुद्धकलिहारी की जड़, व्योष—त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, छोटी पिप्पली ), सैन्धवलवण, अक्ष—सौवर्चललवण ( साहचर्यात् "सहचरितासहचरितयोर्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणम् ) अथवा बहेड़े के फल के छिलके तथा शुद्धवत्सनाभ का कपड़े में छाना हुआ महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर भृङ्गराज के रस से ( प्रायः जहां भावना की संख्या का निर्देश न हो वहां सात बार भाव्यद्रव्य को भावित करना चाहिए, ऐसी वृद्धलोगों की परम्परा है ) भावित करके सुखाकर शीशी में भर देवें । इस रस को यथारोगानुकूल अनुपान के साथ प्रतिदिन १ रत्ती से ४ रत्तीभर

तक सेवन करने से हिक्कारोग, वैस्वर्य, स्वरभङ्ग तथा कास इत्यादि सब नष्ट हो जाते हैं॥ ६७-६८ ॥

विमर्शः—धान्याभ्रस्वरूपं यथा—

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रबद्धं हि काञ्जिके।
निर्यातं मर्दनाद्वस्त्राद्धान्याभ्रमिति कथ्यते॥

अथवा—अभ्रं कम्बलमध्यस्थं सधान्यं परिमर्दनात्।
धान्येभ्यो निर्गतं यस्मात्तस्माद्धान्याभ्रमुच्यते॥ इति॥

अथ कज्जलयोगः—

**पक्वताम्रे रसः पिष्टो बलिना हिध्मिनां हितः॥ ६९॥**

पक्वताम्र—ताम्रभस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक तीनों को बराबर २ लेकर प्रथम पारद को ताम्रभस्म के साथ अच्छी प्रकार घोटकर फिर उसे गन्धक के साथ घोटकर थोड़ा सा घृत डालकर सबको घोटकर गोला बनालेवें। फिर उसको शरावद्वय में अथवा मूषा में बन्द करके बालुकायन्त्र में पकालेवें। इस प्रकार से सिद्ध हुआ यह रस एक रत्ती भर प्रतिदिन सेवन करने से हिध्म—हिक्कारोग में विशेष लाभ करता है॥ ६९॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों का मत है कि पारद तथा गन्धक को पक्वताम्र के पात्र (अर्थात् नेपालखनिजोत्पन्नताम्रनिर्मितखल्वाकार पात्र) में घोट कर उनकी कज्जली बनाकर ही उपयोग करें, परन्तु वास्तविक में यही सन्मार्ग है कि प्रथम पारद को समान भाग पत्र स्वरूप शुद्धताम्र के ऊपर (घोटने की क्रिया से) चढ़ाकर शुद्धगन्धक को घृत के साथ पीसकर कल्क बनालेवें। फिर उस गन्धक के कल्क को ताम्र तथा पारद के संयुक्त पिण्ड के ऊपर नीचे तथा चारों ओर लपेट कर गोला बना के उस गोले को हण्डिका के भीतरी तल प्रदेश में रखकर उसको एक नये मिट्टी के सकोरे (शराव) से ढककर दोनों की सन्धियों को बन्द करके हण्डिका के अवशिष्ट शून्य स्थान को बालुका से भरकर उसके मुख पर दूसरा शराव ढककर सन्धिबन्धन करके सुखाकर भट्टी या चूल्हे पर चार प्रहर तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतयन्त्र से सुन्दर चमकते हुए सिद्ध औषध के कणीभूत भागों को ग्रहण कर खल्व में महीन पीसकर शीशी में भर देवें।

अथ शिलापूतरसः—

**चूर्णं पाठेन्द्रवारुण्योर्भाण्डे दत्त्वाऽथ कूनटीम्।**
**तत्पृष्ठे शुद्धसूतं च कुनटथंशं प्रदापयेत्॥ ७०॥**

सूताधं कुनटीचूर्णं तस्यार्धं पूर्वमूलिका।
चूर्णं दत्त्वा पचेच्चुल्ल्यां यामाष्टं मृदुवह्निना।
शिलापूतो रसो नाम हन्ति हिक्कां त्रिगुञ्जकः॥ ७१॥

पाठे का चूर्ण ४ तो०, इन्द्रवारुणी ( इन्द्रायण ) की जड़ का चूर्ण ४ तो०, कुनटी ( शुद्धमनःशिला ) का चूर्ण ४ तो० तथा शुद्ध पारद १ कुनटी का चतुर्थांश ( १ तो० ) लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार महीन पीसकर थोड़ा सा जल डालकर घोट के गोला बना लेवें, फिर इस गोले को सुखाकर शराव में रख देवें। आधा तोला शुद्धमनःशिला का चूर्ण तथा ६ माशा पूर्वमूलिका—रास्ना अथवा पाठा और इन्द्रवारुणिकामूल का चूर्ण लेकर दोनों को एकत्र मिलाके गोले के ऊपर नीचे रखकर दूसरे शराव से ढककर सन्धिबन्धन करके सम्पुट के चारों ओर चिकनी मिट्टी का प्रलेप करके उसे सुखाकर बालुकायन्त्र में बन्द करके भट्टी पर चढाकर ८ प्रहर ( २४ घण्टे ) तक मन्दाग्नि से पाक करना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को शिलापूत रस कहते हैं। इस रस को तीन रत्ती भर प्रतिदिन सेवन करने से हिक्का रोग नष्ट हो जाता है॥७०-७१॥

अथ मन्थानभैरवरसः—

मृतसूतं मृतं ताम्रं हिङ्गु पुष्करमूलकम्।
सैन्धवं गन्धकं तालं कटुकं चूर्णयेत्समान्॥ ७२॥
देवदालीपुनर्नव्योर्निर्गुण्डीमेघनादयोः।
तिक्तकोषातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद् दृढम्॥ ७३॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रैः रसं मन्थानभैरवम्।
कफरोगप्रशान्त्यर्थं निम्बक्काथं पिबेदनु॥ ७४॥

मृतसूत—पारदभस्म अथवा रससिन्दूर १ तो०, मृततास्र—ताम्रभस्म १ तो०, शुद्धहींग १ तो०, पुष्करमूल ( पोहकरमूल ) का चूर्ण १ तो०, सैन्धवलवण १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो०, शुद्ध हरताल १ तो०, कटुक—त्रिकटुका चूर्ण १ तो० ले कर प्रथम गन्धक तथा रससिन्दूर को महीन पीसकर शेष द्रव्य मिला के सब को महीन पीस लें। पश्चात् देवदाली—हस्तिघोषक ( वन्दालडोडा ), पुनर्नवा ( गदपूरणा या साठेड़ी ), निर्गुण्डी सम्भालू के पत्र, मेघनाद—जंगली काँटेदार चौलाई, तिक्तकोषातकी—कड़वी तरोई ( तिक्तघोषा ) इन औषधियों

के स्वरस या क्वाथ से क्रमशः पृथक् २ एक २ दिनतक भावना देकर अच्छी प्रकार से घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस को मंथानभैरवरस कहते हैं। इस रस को एक माशे भर ( १–से ३ रत्ती ) लेकर प्रतिदिन प्रातःकाल मधु के साथ सेवन करके ऊपर से निम्ब का क्वाथ पीवें, इस तरह से कफ के कास आदि सर्व विकार दूर हो जाते हैं ॥ ७२–७४ ॥

अथ विश्वादिवटिका—

**विश्वादित्रिकनिर्गतद्रवनिशा-कीरप्रियोत्थं दलं**
**नीलग्रीवगलालयं सुरपतेस्तार्तीयनेत्राभिधम् ।**
**विद्वत्पुञ्जवती कृमिप्रतिभटं निर्गुण्डिकावारिणा**
**तुल्यांशाश्चणकप्रमाणवटिकाः सश्वासकासघ्निकाः ॥ ७५ ॥**

विश्वादित्रिक—त्रिकटु ( अर्थात् सौंठ, मरिच, पिप्पली, ), निर्गतद्रवनिशा शुष्क हरिद्रा, (१)कीरप्रियोत्थदल—सहजन के पत्र, (२)नीलग्रीवगलालय—शुद्धवत्सनाभविष अथवा कृष्णसर्प का शुद्ध विष,(३)सुरपतितार्त्तीयनेत्राभिध—सर्व देवताओं के स्वामी अर्थात् शिव उनके तार्तीयनेत्र अर्थात् अग्नि की संज्ञा जिसकी हो वह अर्थात् चित्रक, (४)विद्वत्पुञ्जवती—ब्राह्मी, कृमिप्रतिभट—वायविड्

---

( १ ) कीराः शुकास्तेषां प्रियः शुकप्रियः—शिरीहस्तदुत्थं तदुत्पन्नं दलं पत्रं, केचित्तु कीरप्रियः कीरेष्टः निम्बवृक्षः तत्पत्रमित्याहुस्तदप्रीतिकरं कुतो भावप्रकाशनिघण्टौ शुकप्रियशब्देन शिरीषस्याभिधानात्, तथा च—शिरीषो भण्डिल भण्डी भण्डीरश्च कपीतनः । शुकपुष्पः शुकतरुर्मृदुपुष्पः शुकप्रियः ॥ इति,

( २ ) नीलग्रीवो नीलकण्ठः "शिवः" इत्यर्थस्तस्य गले कण्ठे आलयः स्थानं यस्येति विष इत्यर्थः, अथवा नीलग्रीवगले शिवकण्ठे आलयः स्थानं यस्येति सर्पः—लक्षणया तस्य विषं ग्राह्यम्, कृष्णसर्पविषाहरणविधिस्तच्छोधनप्रकारश्च ज्वरचिकित्साटीकायां प्रोक्तः ।

( ३ ) सुराणां देवानां पतिस्तस्य हरस्य 'तृतीयनेत्रसाहचर्यात् सुरपतिशब्दस्य इन्द्रवाचकत्वेऽपि हरार्थता बोद्धव्या, तृतीयनेत्रे भवस्तार्तीयनेत्रः वह्निः स अभिधा संज्ञा यस्येति तत्तार्तीयनेत्राभिधं-चित्रकं "चित्रकोऽनलनामा चेति"

( ४ ) केचित्तु विदुषां वैद्यानां पुञ्जः समूहः अत्र अस्तीति सा विद्वत्पुञ्जवती वासा तस्या वैद्यमातृत्वात्, इत्याहु स्तदमनोहरं कुतः ब्राह्म्याः समा-

इन सब औषधियों को बराबर२ लेकर महीन चूर्ण करके निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस या क्वाथ से भावना ( प्रायः सात ) देकर अच्छी प्रकार घोटकर चने के बराबर ( प्रायः २ माशेभर ) गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। यह विश्वादिवटिका श्वास कास आदि कफ के रोगों को नष्ट करती है। एक २ गोली प्रतिदिन सुबह मुख में रखकर चूसनी चाहिए ॥ ७५ ॥

अथ सामान्योपचाराः तत्र रास्नादिक्षीरम्—

**क्वाथं रास्नाबृहत्यग्निबलादुग्धैश्च पाययेत् ॥ ७६ ॥**

रास्ना, बड़ी कटेरी (बृहती), अग्नि-चित्रक, बला-बरियारा या खरैंटी (प्रायः बला, अतिबला, महाबला, नागबला इन चारों का यथालाभ ग्रहण करना चाहिए) ये सब मिलाकर दुग्ध की अपेक्षा अष्टमांश लेकर खरल में पीसकर इनका कल्क बना लेवें, पश्चात् एक मिट्टी की हण्डिका या कटाह में दूध डालकर उसमें दुग्ध से चौगुना जल डालकर कल्क मिलाके चूल्हे पर पाककरें। जब पानी जलजाय तथा दुग्ध शेष रहजाय तब उतार लें। फिर इस दुग्ध के भीतर पड़े हुए कल्क को हस्त से विलोडित (मर्दन) करके फेंककर दुग्ध को छानकर हिक्का के रोगी को प्रतिदिन पिलावें ॥ ७६ ॥

**विमर्श—रास्ना से लेकर बलान्त औषधियों का मिलित कल्क ३ तो०, दुग्ध २५ तो०, जल ९६ तोला, सबको हण्डिका में डाल पकाकर दुग्धावशेष रहने पर उतार और छानकर दुग्ध लेवे।**

**क्षीरपाकविधिर्यथा—**

**द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके स्वयं विधिः॥**

अथ हिक्काघ्नधूमः—

**हिक्किनं पाययेद्धूमं पत्रैः शिखिनिशोद्भवैः ॥ ७७ ॥**

---

श्यं प्रायः बुद्ध्यादिवर्धनार्थं सर्व एव विद्वांसः कुर्वन्ति नतु वासायाः, एवञ्च वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः। यमदंष्ट्रा स्वसा प्रोक्ता स्वल्पभुग् मितभुग्भिषुः ॥ इति श्लोके वैद्यानां शरदर्तोर्मातृत्वं प्रसिद्धं तथा "हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी। कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥" इति च श्लोके किंवैद्यानामपि तु सर्वलोकानामेव हरीतक्या एव मातृत्वभवनं प्रसिद्धं नतु वासायाः, नैव च कुत्रापीदृशानि मातृत्वद्योतकानि पद्यानि दृश्यन्ते पुराणोक्तानि प्रसिद्धानि पद्यानि अवलोक्यन्ते, तथा तदप्यस्तु नास्माकं विरोधः, 'भिन्नरुचिर्हि लोकः, 'विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तयः )

हिक्कारोग से पीड़ित पुरुष को शिखी—चित्रक अथवा अपामार्ग तथा हरिद्रा के पत्तों का शुष्क चूर्ण चिलम में भरकर चूर्ण पर निर्धूम जलता हुआ कोयला ( अङ्गारा ) रखकर धूम्रपान कराना चाहिए। इससे हिक्का का वेग कम हो जाता है ॥ ७७ ॥

अथ गन्धपाषाणयोगः कफे भेषजविशेषनिर्देशश्च—

**कर्षैकं गन्धकं शुद्धं घृतैश्चोष्णोदकैः पिबेत् ।**
**कफं हन्त्यथवा क्षौद्रैः पञ्चवक्त्ररसः खलु ॥ ७८ ॥**

अच्छी प्रकार से शुद्ध ( प्रायः १०० वार ) किये हुए गन्धक के एक कर्ष भर के महीन चूर्ण को गोघृत के साथ मिलाकर भक्षण करें। तदुपरान्त थोड़ा सा सुखोष्णोदक पीलें इस प्रकार से प्रतिदिन ( जब तक रोग दूर न हो ) गन्धक के योग का सेवन करने से कफजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। अथवा पञ्चवक्त्ररस ( २ रत्ती भर ) को शहद् के साथ मिलाकर सेवन करें तो निश्चय ही कफजन्य रोग, श्वास, हिचकी, खांसी इत्यादि सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ७८ ॥

अथ हिक्कायां पथ्यापथ्यम्—

स्वेदनं वमनं नस्यं धूम्रपानं विरेचनम् । निद्रा स्निग्धानि चान्नानि मृदूनि लवणानि च॥१॥
जीर्णाः कुलत्था गोधूमाः शालयः षष्टिका यवाः । एणतित्तिरलावाद्या जाङ्गला मृगपक्षिणः २
उष्णोदकं मातुलुङ्गं पटोलं बालमूलकम् । पक्वं कपित्थं लशुनं क्षौद्रं चेष्टानि हिक्किनाम्॥३॥
निष्पावमाषपिण्याकवारिजानूपमामिषम् । अविदुग्धं दन्तकाष्ठं बस्तिं मत्स्यांश्चसर्षपान् ४
अम्लं तुम्बीफलं कन्दं तैलभृष्टमुपोदिकाम् । गुरु शीतं चान्नपानं हिक्कारोगी विवर्जयेत्॥६॥

इति हिक्कापथ्यापथ्यम् ।

अथ स्वरभङ्गः—

**अत्युच्चभाषणविषाऽध्ययनाभिघात-**
**सन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयश्च ।**
**स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां**
**हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ ७९ ॥**

अत्यन्त जोर २ से भाषण ( व्याख्यान देना तथा गान ) करना, विषभक्षण, जोर २ से वेदादिकों का पठन पाठन तथा कण्ठ तालवादि स्थानों में चोट लगना इत्यादि अनेक कारणों से प्रकुपित हुए वात, पित्त तथा कफ स्वर को उत्पन्न करने वाले स्रोतसों ( कण्ठ तालवादिक स्थान ) में स्थित होकर उन्हें दूषित

करके स्वर को नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार मनुष्य को स्वरभङ्ग रोग हो जाता है । यह स्वरभङ्ग रोग ६ प्रकार का होता है ॥ ७९ ॥

विमर्शः—वातिकस्वरभङ्ग, पैत्तिक स्वरभङ्ग, श्लैष्मिक स्वरभङ्ग, सान्निपातिक स्वरभङ्ग, मेदोवृद्धिजन्य स्वरभङ्ग, धात्वादिक्षय जन्य स्वरभङ्ग इस तरह यह छ प्रकार का है । यथोक्तं माधवेन—

"वातादिभिः पृथक् सर्वैर्मेदसा च क्षयेण च" इति ।

अथ पर्पटीरसः—

रसं द्विगुणगन्धेन मर्दयित्वा सभृङ्गकम् ।
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते द्रावितं बदराग्निना ॥ ८० ॥
ऊर्ध्वाऽधो गोमयं दत्त्वा कदल्याः कोमले दले ।
स्निग्धया लोहदर्व्या च पर्पटाकारतां नयेत् ॥ ८१ ॥
लोहपात्रे विनिक्षिप्ता लोहपर्पटिका भवेत् ।
ताम्रपात्रे विनिक्षिप्ता ताम्रपर्पटिका भवेत् ॥ ८२ ॥
विषपादं च युञ्जीत तत्साध्येष्वामयेषु च ।
सुरसाया जयन्त्याश्च कन्यकाऽऽर्द्रकरूषयोः ॥ ८३ ॥
त्रिफलाया मुनेर्भाङ्ग्या मुण्ड्याश्चित्रकटुत्रयोः ।
भृङ्गराजस्य वह्नेश्च प्रत्यहं द्रवभावितम् ॥ ८४ ॥
आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा भावयेत्पुनः ।
अङ्गारैः स्वेदयेदीषत्पर्पटीरसमुत्तमम् ॥ ८५ ॥
गुञ्जाष्टकं ददीतास्य ताम्बूलीपत्रसंयुतम् ।
पिप्पलीदशकैः क्वाथं निर्गुण्ड्याश्चानुपाययेत् ॥
स्वरभङ्गे कफे श्वासे प्रयोज्यः सर्वदा रसः ॥ ८६ ॥
त्रिकण्टकस्य मूलानि शुण्ठीं सङ्क्षुद्य निक्षिपेत् ।
अजाक्षीरे सनीरार्धं यावत्क्षीरं विपाचयेत् ॥ ८७ ॥
तत्क्षीरं पाययेद्रात्रौ सकणं भोजनेऽपि च ।
कूष्माण्डं वर्ज्जयेच्छिग्रुं वृन्ताक कर्कटीमपि ॥ ८८ ॥
आरनालं च तैलं च संसर्गं च विवर्जयेत् ।
मासत्रयं च सेवेत कासश्वासनिवृत्तये ॥ ८९ ॥

सजीरहिङ्गुकट्योषैः शमयेद्ग्रहणीं रसः ।
दशमूलाम्भसा वातज्वरे त्रिकटुना कफम् ॥ ९० ॥
ज्वरं मधुकसारेण पञ्चकोलेन सर्वजम् ।
यक्ष्माणं मधुपिप्पल्या गोमूत्रेण गुदाङ्कुरान् ॥ ९१ ॥
शूलमेरण्डतैलं च पाण्डुशोफं सगुग्गुलुः ।
कुष्ठानि भृङ्गभल्लातवाकुचीपञ्चनिम्बकैः ॥ ९२ ॥
धत्तूरबीजसंयोगान्मेहोन्मादविनाशिनी ।
अपस्मारं निहन्त्याशु व्याघानम्बुदलैः सह ॥ ९३ ॥
स्तनन्धयशिशूनां तु रसोऽयं नितरां हितः ।
पथ्याक्षचूर्णादिवशाद्याधींश्चान्यान्सुदुस्तरान् ॥ ९४ ॥
सजातीफलशीतोदं योजयेत्पर्पटीरसम् ।
पित्ताजीर्णं शिरश्चास्य शीततोयेन सेचयेत् ॥ ९५ ॥

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक २ तो० लेकर खरल में दोनों की कज्जली बनाकर मृङ्गराज ( भाङ्गरे ) के स्वरस के साथ अच्छी प्रकार घोट कर सुखा के उसको घृत से संलिप्त लोहे की कड़ाही ( कटाह ) अथवा कलच्छू या तवा में डालकर बेर की लकड़ियों के कोयलों को मन्द २ आंच से पिघलावें तथा लोहे की कलछी ( घृतलिप्त ) से चलाते रहना चाहिए, जब सम्पूर्ण कज्जली जल के समान द्रुत होजाय तब उसको गाय के गीले गोबर के ऊपर केले का गीला ( कोमल ) पत्ता रख कर उस पर द्रुत कज्जली को ढाल कर शीघ्र ही उस को कोमल केले के पत्ते से ढक कर तथा पत्ते पर गोबर का पिण्ड रख कर घी से पुते हुए कलछी के अग्रभाग के पृष्ठ से दबा कर चिपटी पर्पटी बना लेवें । यह पर्पटी लोहे की कड़ाही ( कटाह ) में बनाने से लौहपर्पटी और ताम्बे की कड़ाही में बनाने से ताम्रपर्पटी कहलाती है । इस पर्पटी को खरल में महीन पीस कर इस में शुद्ध विष से साध्य ज्वर अतीसार आदि रोगों में प्रयुक्त करने के लिये पर्पटी के तोल की अपेक्षा चौथाई शुद्धविष ( वत्सनाभ ) का चूर्ण मिला कर सब को अच्छी प्रकार से घोट कर तुलसी, जयन्ती, घृतकुमारी, अडूसा, त्रिफला, अगस्त्य ( मुनितरु ), भार्ङ्गी, मुण्डी, त्रिकटु, चित्रक, भृङ्गराज (भाँगरा) तथा भिलावें इन में से प्रत्येक को स्वरस अथवा क्वाथ से एक २ बार भावित

कर के घोटना चाहिए। फिर अद्रक ( आदी अभाव में शुण्ठी क्वाथ ) के रस से सात बार भावना देकर अच्छी प्रकार घोट कर निर्धूम तथा ज्वलदङ्गारों पर कुछ तपाकर सुखा के शीशी में भर देवें इस तरह से उत्तम पर्पटी रस तैयार होजाता है। इस रस को आठ गुञ्जा भर लेकर ताम्बूल पत्र ( पान के बीड़े ) में मिलाकर खावें पश्चात् ऊपर से १० छोटी पिप्पलियों के चूर्ण से मिला हुआ निर्गुण्डी की मूल का क्वाथ अथवा उस के पत्तों का १ छटाक स्वरस पिला देना चाहिए। इस प्रकार से इस रस को स्वरभङ्ग, कफजन्य विकार तथा श्वास आदि रोगों में देना चाहिए तथा रात्रि के समय में गोक्षुर ( त्रिकण्टक—गोखरु ) की जड़ और शुण्ठी या अर्द्रक को पत्थर पर पीसकर कल्क बना लेवे, फिर इस कल्क को एक पात्र में रख कर कल्क से अष्टगुण गोदुग्ध और दुग्ध से आधा जल मिला कर क्षीरावशेष ( दूध शेष रह जाय तब तक ) तक पाक करके पिप्पली के चूर्ण के साथ उस दुग्ध को पिला देना चाहिए, भोजन के बाद भी इसी तरह दुग्ध का पाक कर के पिलाना चाहिए। इस पर्पटी-रस को सेवन करते समय कूष्माण्ड ( काशीफल या कोहड़ा ), इमली, बैंगन का शाक, ककड़ी, आरनाल ( काञ्जी ), तैल, और स्त्रीसंसर्ग ( ग्राम्य-धर्म ) वर्जित करना चाहिए, इस तरह कास और श्वास को जड़ से नष्ट करने के लिये इस रस को तीन महीने तक सेवन करना चाहिए। प्रतिदिन एक रत्ती-भर यह रस शुद्ध हींग ( ३ रत्ती ) अग्नि में भूजा हुआ जीरा ( ३ रत्ती ), और त्रिकटु ( ३ रत्ती के चूर्ण के साथ शीतल जलानुपान पूर्वक सेवन करने से सब प्रकार की ग्रहणी को शान्त करता है। एक रत्तीभर यह रस दशमूल के क्वाथ के साथ सेवन करने से वातिकज्वर, त्रिकटु के चूर्ण या क्वाथ के साथ सेवन करने से कफज्वर मुलेठी के सत्त्व अथवा क्वाथ या चूर्ण के साथ सेवन करने से साधारण ज्वर तथा पञ्चकोल के चूर्ण या क्वाथ के साथ सेवन करने सब प्रकार के ज्वरों को दूर करता है। यह रस पिप्पली चूर्ण तथा मधु के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से यक्ष्मा ( क्षय ), गोमूत्र के अनुपान के साथ सेवन करने से अर्श ( बवासीर ), एरण्ड के तेल के साथ सेवन करने से सर्वविध शूल, शुद्ध गुग्गुलु के साथ खाने से पाण्डुरोग तथा शोथरोग और भृङ्गराज, शुद्धभल्ला-तक ( भिलावा ), बाकुची तथा नीमके पञ्चाङ्ग के साथ सेवन करने से सर्वप्रकार

के कुष्ठ रोगों को नष्ट करदेता है। यह रस धतूरे के शोधित बीजों के अनुपान से भयङ्कर उन्माद तथा त्रिकटु का चूर्ण और निम्बू की मज्जा या रस के साथ सेवन करने से अपस्मार को नष्ट कर देता है। दुग्ध पान करने वाले छोटे २ बच्चों के साधारण रोगों में यह अत्यन्त लाभ करता है। यह रस हरड़ तथा बहेड़े के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सर्व प्रकार की दारुण ( दुःसाध्य ) व्याधियों को नष्ट कर देता है। पित्त ( Bil ) के अभाव या विकारी पित्त से उत्पन्न हुए अजीर्ण रोग में इस पर्पटी रस को जायफल के चूर्ण के साथ मिलाकर शीतलजलानुपान पूर्वक सेवन करना चाहिए। यदि इसके सेवन से या रोगके कारण रोगी को गरमी अधिक प्रतीत हो तो मस्तक पर शीतल जल का सेचन करना चाहिए अथवा बरफ की पोटली शिर पर बांधनी चाहिए ॥ ८०–९५ ॥

**विमर्शः**—प्रायः इस रस को एक रत्ती से लेकर ४ रत्ती तक सेवन करना चाहिए। मूल में जो ९० रत्ती का निर्देशकिया है, वह मात्रा अधिक है! रोग तथा रोगी का बल और अवस्था का विचार करके मात्रा में ह्रास तथा वृद्धि भी हो सकती है। बच्चों के लिये एक रत्ती के चौथाई भाग से प्रारम्भ करके पौन रत्ती तक देना चाहिए। १० वर्ष से ऊपर के बालक को एक रत्ती भर भी दे सकते हैं।

त्रिकटुस्वरूपं यथा—

विश्वोपकुल्या मरिचं त्रयं त्रिकटु कथ्यते।

त्रिफलास्वरूपं यथा—

पथ्याविभीतधात्रीणां फलैः स्यात् त्रिफला समैः।

आरनालस्वरूपं यथा—

आरनालन्तु गोधूमैरामः स्याम्लिस्तुषीकृतैः।
पक्वैर्वा सन्धितैस्तुत्त.....इति

दशमूलस्वरूपं यथा—

उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम्।

उभयपञ्चमूलं यथा—

बिल्वश्योनाकगम्भारी पाटला गणिकारिका।
एतन् महत्पञ्चमूलं संज्ञया समुदाहृतम् ॥
शालपर्णी पृश्निपर्णी वार्ताकी कण्टकारिका।
गोक्षुरः पञ्चभिश्चैतैः कनिष्ठं पञ्चमूलकम् ॥ इति।

अथ कफरोगे क्रियासूत्रम्—

**नस्यं निष्ठीवनं धूमं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।**
**अन्नं रूक्षाल्पतीक्ष्णोष्णं कटुतिक्तकषायकम् ॥**
**चिरकालस्थितं मद्यं योजयेत्कफरोगिणे ॥ ९६ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रक्तपित्त-कासश्वासहिध्माविस्वर्यचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

कफजन्यविकारों से पीड़ित रोगी को यथाशास्त्रोक्त औषधियों के चूर्ण तथा तैल आदि स्नेहों से नस्य कराना, निष्ठीवन अर्थात् मुख से लाला ( लार ) का स्राव कराना, औषधिधूमपान और तीक्ष्ण वमन तथा विरेचन कराना, रूक्ष ( स्नेहांश-शून्य ), तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, तिक्त और कषायरसप्रधान वस्तुओं का सेवन तथा चिरकालीन मद्य का पान कराना इत्यादि हितकर हैं ॥ ९६ ॥

अथ स्वरभेदे पथ्यापथ्य-व्यवस्था—

**स्वेदो वस्ति धूम्रपानं विरेकः कवलग्रहः । नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः॥१॥**
**हंसाट्टवीताम्रचूडकेकिमांसरसाः सुरा । गोकण्टकः काकमाची जीवन्ती बालमूलकम्॥२॥**
**द्राक्षापथ्यामातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम्।ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम्॥३॥**

इति पथ्यम् ।

अथापथ्यम्—

**आमं कपित्थं बकुलं शालूकं जाम्बवानि च । तिन्दुकानि कषायाणि वर्मि स्वप्नं प्रजल्पनम्**
**अन्नपानं च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत् ॥ १ ॥** इति पथ्यापथ्यानि ।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्च-यस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां रक्तपित्तकासश्वासहिध्माविस्वर्य-चिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ राजयक्ष्मा—

**अग्निमान्द्यं ज्वरः शैत्यं वान्तिः शोणितपूययोः ।**
**सत्त्वहानिश्च दौर्बल्यं राजरोगस्य लक्षणम् ॥ १ ॥**

अग्नि की मन्दता, शरीर में प्रायः ज्वर का हर समय कुछ२ अंश में मौजूद रहना, शीत की अधिक प्रतीति होना तथा रक्त और पूय ( Pus ) युक्त वमन का होना, सत्त्व अर्थात् देहधारक ओज की प्रतिदिन हानि होते रहना अथवा स्वभाव या मन की वृत्ति में परिवर्तन होना तथा शरीर में दुर्बलता का आविर्भाव होना ये सब राजयक्ष्मा के लक्षण हैं ॥ १ ॥

विमर्शः—वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥
अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ २ ॥
अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः ।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ३ ॥

मलमूत्र आदि अधारणीय वेगों को रोकना, रसरक्तादि सप्तधातुओं की क्रमशः क्षति होना, अत्यन्त साहस के कार्य करना, विषम भोजन करना अथवा विषम पदार्थों का सेवन करना इन चार हेतुओं से त्रिदोषों का प्रकोप होकर राजयक्ष्मारोग उत्पन्न होता है । अत्यन्त ग्राम्यधर्म ( अष्टविध मैथुन या मैथुन ) करने वाले मनुष्य के अन्तिम धातु ( शुक्र ) की क्षीणता होने के कारण उसके समीप समीप की अवशिष्ट धातुओं का क्षय होता है, इस प्रकार उस पुरुष का शरीर सूख जाता है अर्थात् वह मनुष्य चर्म से ढका हुआ चलता फिरता अस्थिपञ्जर के समान दिखाई देता है । स्कन्ध ( कन्धे ) और पर्श्वों में तथा हस्त और पैरों में पीड़ा और जलन होती रहती हो तथा सम्पूर्ण शरीर में ज्वर का अधिक या स्वल्प अंश सदाही बना रहता हो ये सब राजयक्ष्मा रोगी के लक्षण हैं । यह श्लोक बिन्हीं२ पुस्तकों में प्रक्षिप्त के रूप में लिखा है ।

अथ कनकसुन्दररसः—

रसस्य तुल्यभागेन हेमभस्म प्रकल्पयेत् ।
तालकं गन्धकं तुत्थं माक्षिकं रसदं शिलाम् ॥ २ ॥
रससाम्येन युञ्जेत तुत्थं भस्मीकृतं न्यसेत् ।
वह्नौ भस्मीकृतं चेत्थं मयूरकसुतुत्थकम् ॥ ३ ॥
किञ्चित् टङ्कणकं दत्त्वा मार्जारस्य विशा युतम् ।
प्रथमं पुटयेद्ध्ना द्वितीयं मधुना सह ॥ ४ ॥
तालकं शोधयेदग्रे कूष्माण्डक्षारपाचनात् ।

तैले पचेत्ततः सम्यक् चूर्णं वा परिशोधयेत् ॥ ५ ॥
गन्धकं शोधयेद् दुग्धे रसकं नरवारिणा।
माक्षिकं सिन्धुसंयुक्तं बीजपूररसे पचेत् ॥ ६ ॥
जयन्तीद्रवसम्पिष्टां शिलां तत्रैव पाचयेत्।
एकीकृत्य ततः सर्वमर्कक्षीरेण मर्दयेत् ॥ ७ ॥
जयन्तीभृङ्गराजाभ्यां वासापाठाकृशानुभिः।
अगस्तिलाङ्गलीभ्यां च प्रत्येकं दिवसं शनैः ॥ ८ ॥
ततस्तु गोलकं बद्ध्वा पचेत्पूर्ववदाहृतः।
चूर्णयित्वा ततः सम्यक् भावयेदार्द्रकाम्बुना ॥ ९ ॥
सप्तधा व्योमनिर्यासै रसः कनकसुन्दरः।
गुञ्जाद्वयं त्रयं वास्य राजयक्ष्मापनुत्तये ॥ १० ॥
मधुना पिप्पलीभिश्च मरिचैर्वा घृतान्वितैः।
लेहयेद्रोगिणां वैद्यो बलावस्थाविशेषवित् ॥ ११ ॥
जयपालरजोभिर्वा शुण्ठ्या गव्यघृताक्तया।
ददीत शूलिने प्राज्ञो गुल्मिने च विशेषतः ॥ १२ ॥
कादिवर्ज्यं चरेत्पथ्यं हृद्यं बल्यं च पूर्ववत्।
सन्निपाते ददीतैनमार्द्रकद्रवसंयुतम् ॥
गुडूचीत्रिफलाक्वाथैः संस्कृतो गुग्गुलुर्वरः ॥ १३ ॥

शुद्ध पारद १ तो०, स्वर्ण भस्म १ तो०, शुद्ध हरताल १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्ध नीला तोथा (कापर सल्फेट) १ तो०, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तो०, खर्पर भस्म १ तो०, शुद्ध मनःशिला १ तो० लेवें इन में से तुत्थ की निम्नरीति से भस्म बना कर पारद के समान ही लेवें। निर्मल या शुद्ध किये हुए तूतिये में चतुर्थांश शुद्ध सुहागा तथा मार्जार (बिलाव) की विष्ठा मिलाकर दही के साथ अच्छी प्रकार घोट कर शराव में सम्पुट कर के लघुपुट देवें, स्वाङ्ग शीत पुट से इसे निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के शहद के साथ घोट कर शराव सम्पुट कर के पुट देकर भस्म हुए तुत्थ को डालें। हरताल की साधारण शुद्धि करने के पश्चात् कूष्माण्ड (काशी फल कोहड़ा) के रस में यवक्षार डाल कर दोलायन्त्र की विधि से २ प्रहर तक स्वेदन कर के पश्चात

उसे तिलतैल और चूने के जल ( चूर्णोदक ) में दोलायन्त्र से पृथक् २ एक प्रहर तक स्वेदन कर के शुद्ध कर लेना चाहिए। गन्धक को दुग्ध में शुद्ध करके तथा खर्पर को मनुष्य के मूत्र से दोलायन्त्र में २१ बार स्वेदन करके यथाविधि भस्म बनाकर इस योग में डालें। स्वर्णमाक्षिक को सैन्धव लवण मिले हुए बिजौरे निम्बू के रस से तथा मनःशिला को जयन्ती के पत्तों के स्वरस के साथ घोट कर सैन्धव लवण सहित बीजपूर निम्बू के रस से एक प्रहर तक दोलायन्त्र में शुद्ध कर के इस योग में स्वर्ण माक्षिक की शुद्धि के पश्चात् भस्म बना कर ही उसे डालना चाहिए। इस तरह सब पदार्थों को लेकर प्रथम पारद और गन्धक की उत्तम कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को महीन पीस कर शुद्ध आक दुग्ध के साथ एक दिन तक घोटना चाहिए, फिर जयन्ती पत्र स्वरस, भृङ्गराजस्वरस, अडूसे के पत्तों का रस, पाठा का स्वरस, चित्रक का स्वरस, अगस्त्य के पुष्पों के स्वरस तथा शुद्ध कलिहारी की जड़ के क्वाथ से क्रमशः एक २ दिन घोट कर गोला बना के सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें। पश्चात स्वाङ्गशीत पुट से सिद्ध औषध को निकाल कर खरल में महीन पीस कर सात बार अदरख के रस से भावना देवे, फिर त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पिप्पली, ) के क्वाथ से सात बार भावित करके अच्छी प्रकार घोट कर छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें, इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को कनकसुन्दररस कहते हैं। बुद्धिमान् चिकित्सक रोगी के रोग तथा अवस्था का विचार करके इस रस को दो २ अथवा तीन २ रत्तीभर की मात्रा से शहद तथा पिप्पली के चूर्ण ( १ से २ र० ) के साथ अथवा मरिच चूर्ण ( १ से २ मा० ) और गोघृत ( १ तो० ) के साथ मिला कर राजयक्ष्मा के रोगी को उसके रोग के नष्ट होने के लिये देवें तथा सर्व प्रकार के शूलरोग में इस रस को १-२ रत्ती की मात्रा से शुद्ध जयपाल बीज के चूर्ण ( ४ रत्ती ) के साथ तथा गुल्मरोग में मरिचों के चूर्ण ( १ से २ मा० ) और १ तो० गोघृत के साथ मिलाकर देना चाहिये। इस रस के सेवन करते समय ककाराष्टकवर्ग के पदार्थों को छोड़कर बलकारक, हृद्य और हितकारक आहार का पथ्य कराना चाहिए। सन्निपात में इस रस को अद्रक के स्वरस ( तथा मधु ) के

साथ देना चाहिए तथा सवरोगों में गुडूची ( गिलोय ) और त्रिफला के क्वाथ में शुद्ध की हुई गुग्गुलु के साथ सेवन कराना चाहिये ॥ २-१३ ॥

अथ राजमृगाङ्करसः—

**रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।**
**मृतताम्रस्य भागकं शिलागन्धकतालकम् ॥ १४ ॥**
**प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।**
**वराटान्पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ १५ ॥**
**पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तन्निरोधयेत् ।**
**शुष्कं गजपुटे पच्याच्चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥ १६ ॥**
**रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः ।**
**दशपिप्पलिकाक्षोद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥**
**सघृतैर्दापयेद्वैद्यो रागराजप्रशान्तये ॥ १७ ॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर २ तोला, सुवर्ण की भस्म १ तो०, चांदी की भस्म १ तो०, शुद्धमनःशिला २ तो०, शुद्धगन्धक २ तो०, शुद्ध हरताल २ तो०, लेकर खरल में सब को महीन पीसकर उस चूर्ण को शुद्ध कौड़ियों के भीतर भरकर कौड़ियों के छिद्रों को बकरी के दुग्ध में पिसे हुए सुहागे के कर्दम ( कीचड, पङ्क ) से बन्द करके उन्हें सुखाकर एक छोटी सी मिट्टी की हण्डिका में भरकर उसका मुख बन्द करके उसपर चारों ओर बाह्यपृष्ठ पर चिकनी मिट्टी के पङ्क का लेपकर सुखा के गजपुट में फूँक देवें फिर स्वाङ्ग शीतल होने पर पुट से हण्डिका को निकाल युक्ति से खोलकर कौड़ियों के सहित सिद्ध हुए रस को खरल में महीन पीस कर शीशो में भर देवे। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को राजमृगाङ्करस कहते हैं। इस रस को चार रत्ती भर की मात्रा से १० पिप्पली तथा २१ काली मरिचों का चूर्ण शहद् और घृत के साथ विलोडित कर के प्रतिदिन सेवन करने से राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो जाता है ॥ १४-१७ ॥

अथ शङ्खेश्वररसः—

**शङ्खस्य वलयान्निष्कं चतुर्निष्कं वराटकम् ।**
**निष्कार्धं नीलतुत्थस्य सर्वतुल्यं तु गन्धकम् ॥ १८ ॥**

गन्धतुल्यं मृतं नागं नागतुल्यं मृतं रसम् ।
टङ्कणं रसतुल्यं स्यान्मर्द्यं पाच्यं मृगाङ्कवत् ॥
राजयक्ष्महरः सोऽयं नाम्ना शङ्खेश्वरो मतः ॥ १६ ॥

शङ्ख के वलयाकार भाग अर्थात् शुद्धशङ्ख नाभि का चूर्ण या भस्म १ निष्क(१) शुद्धवराटभस्म ( कौड़ियां ) ४ निष्क, शुद्ध नील तुत्थ आधा निष्क तथा सब के बराबर शुद्ध गन्धक ( ५॥ निष्क ), गन्धक के बराबर मृतनाग ( नागभस्म ५॥ निष्क ), नागभस्म के बराबर मृत रस ( पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर ५॥ निष्क ) तथा रस के तुल्य शुद्ध सुहागा ( ५॥ निष्क ) लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार से महीन पीसकर फिर इस कज्जली के समान पीसी हुई औषधि को शुद्ध कौड़ियों में भरकर उनके मुखछिद्रों को बकरी के दुग्ध से पिष्ट टङ्कण की पिष्टी से बन्द कर के छोटी हण्डिका में भरकर उसका शराव से मुख बन्द कर के सम्पूर्ण बाह्य पृष्ठ पर चिकनी मिट्टी के पङ्क का लेप कर सुखा के गजपुट में फूक देना चाहिये, स्वाङ्गशीत हुए पुट से हण्डिका को निकाल कर युक्ति से उसका भेदन कर के सिद्ध रस को ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को शङ्खेश्वररस कहते हैं । यह इस राजयक्ष्मा रोग को नष्ट करता है । मात्रा–१ रत्ती से चार रत्ती तक, अनुपान पिप्पली चूर्ण (४ रत्ती), मरिचचूर्ण ( ४ रत्ती ) शहद, घृत, आदि ॥ १८–१९ ॥

अथ मृगाङ्कपोट्टलीरसः—

शङ्खनाभिं गवां क्षीरैः पेषयेन्निष्कषोड़श ।
तेन मूषा प्रकर्तव्या तन्मध्ये भस्मसूतकम् ॥ २० ॥
निष्कार्धं गन्धकात्त्रीणि चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ।
रुद्ध्वा तद्वेष्टयेद्वस्त्रे मृत्तिकां लेपयेद्बहिः ॥ २१ ॥
शोष्यं गजपुटे पच्यान्मूषया सह चूर्णयेत् ।
गुञ्जैकमनुपानेन क्षयं हन्ति मृगाङ्कवत् ॥ २२ ॥

१६ निष्क ( ६४ मा० ) शङ्खनाभि की भस्म को गाय के दुग्ध से पीस कर उससे बने हुए कल्क की एक मूषा बनानी चाहिये। फिर उस मूषा में आधा निष्क

---

( १ ) ( चतुर्भिर्माषकैः शाणःस निष्कष्टङ्क एव च ) ।

भर पारद की भस्म या रससिन्दूर और तीन निष्क शुद्धगन्धक इन दोनों की कज्जली बनाकर भर देवें फिर उस मूषा को बकरी के दुग्ध से पीसे हुए सुहागे की पिष्टी से बन्द करके उस के समग्र बाह्यपृष्ठ पर कपड़मिट्टी करके सुखाकर गजपुट में पकाना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध भेषज को निकाल कर मूषा के सहित उसे खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को मृगाङ्क पोट्टली रस कहते हैं। एक रत्ती भर यह रस राजमृगाङ्कोक्त अनुपानों के साथ सेवन करने से क्षय को नष्टकरता है ॥ २०-२२ ॥

अथ मृगाङ्कपोट्टलीरसः—

**द्विनिष्कं भस्म सूतस्य निष्कैकं स्वर्णभस्मकम्।**
**शुद्धगन्धकनिष्कौ द्वौ चूर्णित्वा चित्रकद्रवैः ॥ २३ ॥**
**द्वियामान्ते विशोष्याथ तेन पूर्या वराटिकाः।**
**वराटान्मृण्मये भाण्डे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ २४ ॥**
**स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याऽथ पोट्टलीं हेमगर्भिताम्।**
**मृगाङ्कवच्चतुर्गुञ्जं भक्षितं राजयक्ष्मनुत् ॥ २५ ॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर दो निष्क, सुवर्ण की भस्म १ निष्क, शुद्ध गन्धक दो निष्क लेकर पाषाण की खरल में सब को महीन पीसकर चित्रक के स्वरस के साथ दो प्रहर ( ६ घण्टे ) तक निरन्तर मर्दन कर के सुखाकर शुद्ध कौड़ियों में भर के उनके मुखछिद्रों को बकरी के दुग्ध से पीसे हुए सुहागे के कल्क ( पिष्टी ) से बन्द कर के उन्हें एक छोटी हण्डिका में भर कर उसका मुख सकोरे से बन्द करके उसके समग्र बाह्यपृष्ठ पर कपड़मिट्टीकर के सुखाकर गजपुट में पकावें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से हण्डिका को निकाल के उसे युक्ति से विभिन्न ( भेदन ) करके कौड़ियो के सहित सिद्ध रस को खरल में महीन चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को हेमगर्भपोट्टलीरस कहते हैं। यह रस राजमृगाङ्क रस के समान १ रत्ती से ४ रत्ती भर तक सेवन करने से राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। अनुपान—पिप्पली चूर्ण ६ रत्ती, मरिच-चूर्ण ६ रत्ती, घृत १ तो० ॥ २३-२५ ॥

अथ यक्ष्मणि औषधविशेषसेवनोपदेशः—

**स्वयमग्निरसं खादेत्त्रिनिष्कं राजयक्ष्मनुत् ॥ २६ ॥**

राजयक्ष्मा रोग को नष्ट करने के लिये कासाधिकार में कहे हुए स्वयमग्नि रस को ३ निष्क भर प्रति दिन सेवन करना चाहिये ॥ २६ ॥

अथ पञ्चामृतरसः—

**भस्मसूताभ्रलोहानां शिलाजतुविषं समम् ।**
**गुडूचीत्रिफलाक्काथैः संस्कृतं गुग्गुलुं तथा ॥ २७ ॥**
**मृतं नेपालताम्रं च सूतस्थाने नियोजयेत् ।**
**एकीकृत्य द्विगुञ्जं तद्धक्षयेद्राजयक्ष्मनुत् ॥ २८ ॥**
**पञ्चामृतरसो नाम ह्यनुपानं च पूर्ववत् ॥ २९ ॥**

भस्मसूत— पारद की भस्म या रससिन्दूर १ तो०, अभ्रकभस्म १ तो०, लौहभस्म १ तो०, शुद्धशिलाजतु १ तो०, शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण १ तो०, गुडूची ( गिलोय ) तथा त्रिफले के क्वाथ में शोधित गुग्गुलु १ तो० तथा नेपाल देश की खान से निकले हुए शुद्ध ताम्र की भस्म १ तो० लेकर सब को खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें । इसको पञ्चामृत रस कहते हैं । यह रस दो रत्तीभर प्रतिदिन राजमृगाङ्कोक्त अनुपानों के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। अनुपान-पिप्पली चूर्ण ४ रत्ती, मरिचचूर्ण ४ रत्ती, घृत १ तो० ॥२७-२९॥

अथ जयन्तीप्रयोगः—

**हरेत्क्षीराजगन्धाभ्यां जयन्ती वा क्षयापहा ॥ ३० ॥**

जयन्ती के पत्रों का स्वरस १ तो० लेकर उसको असगन्ध के चूर्ण और दुग्ध के साथ मिलाकर प्रतिदिन पान करने से राजयक्ष्मा नष्ट होता है। कुछ टीकाकारों ने जयन्ती प्रयोग को पञ्चामृत रस के सेवन करने के पश्चात् अनुपान स्वरूप में सेवन करने को लिखा है ॥ ३० ॥

अथ क्षयशामकरसः—

**तुल्यं पारदगन्धकं त्रिकटुकं ताभ्यां रजः कम्बुजं**
**तैस्तुल्यं च भवेत्कपर्दभसितं स्यात्पारदाष्टङ्गणम् ।**
**पादांशं सकलः समानमरिचं लिह्यात्क्रमात्साज्यकं**
**यावन्निष्कमितं भवेत्प्रतिदिनं मासात्क्षयः शाम्यति ॥ ३१ ॥**

शुद्ध पारद १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, त्रिकटु ( सौंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण २ तो० तथा पारद, गन्धक और त्रिकटुचूर्ण के बराबर ( अर्थात्-

४ तो० ), कम्बुजरज ( शङ्खभस्म ) तथा इन सबके बराबर (८ तो०) कर्पदिका (कौड़ी ) की भस्म, पारद की अपेक्षा शुद्ध सुहागा चतुर्थांश अर्थात् ३ मा० तथा मरिचों का महीन चूर्ण सब के बराबर ( अर्थात् १६ तो० ३ मा० ) लेकर प्रथम पत्थर की खरल में पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अत्यन्त महीन पीसकर शीशी में भर देवें । इस रस को एक रत्ती से प्रारम्भ कर प्रतिदिन मात्रा को बढ़ाते हुए एक मास के अन्ततक एक निष्क तक करके घृत के साथ सेवन करने से क्षय रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥

अथ लोकनाथरसः—

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ।
गन्धकं द्विगुणं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकाम्बुना ॥ ३२ ॥
चराचरास्ये सम्पूर्य टङ्कणेन निरुध्य च ।
भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुन्धीत मृत्स्नया ॥ ३३ ॥
शोषयित्वा पुटेद्वर्तेऽरत्निमात्रेऽपराह्णके ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य चूर्णयित्वाऽथ विन्यसेत् ॥ ३४ ॥
एष लोकेश्वरो नाम पुष्टिवीर्यविवर्धनः ।
गुञ्जाचतुष्टयं साज्यं मरिचैश्च समन्वितम् ॥ ३५ ॥
खादेत्परमया भक्त्या लोकेशे सर्वदर्शिनि ।
अङ्गकार्श्येऽग्निमान्द्ये च रसोऽयं कासहिक्कयोः ॥ ३६ ॥
मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदात्तव्यो दिनत्रयम् ।
लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं सदधि भोजनम् ॥ ३७ ॥
एकविंशद्दिनं यावन्मरिचं सघृतं पिबेत् ।
पथ्यं मृगाङ्कवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ ३८ ॥
वमने सम्प्रवृत्ते तु गुडूचीद्रवमाहरेत् ।
मधुना पाययेत्साधं दग्धवृन्ताकमाशयेत् ॥ ३९ ॥
स्नानं शीतलतोयेन मूर्ध्नि धारां विनिक्षपेत् ।
जाते श्लेष्मविकारे तु कदलीफलमाहरेत् ॥ ४० ॥
भृष्ट्वा तन्मरिचैः साधं भोजयेच्छ्लेष्मनुत्तये ।
आर्द्रकं मधुमिश्रं वा गुडार्द्रकमथापि वा ॥ ४१ ॥

भृष्ट्वा कुस्तुम्बरीमाषान्निस्तुषांश्चूर्णयेत्ततः ।
शर्कराघृतसम्मिश्रान्ददीताऽरुचिशान्तये ॥ ४२ ॥
भृष्ट्वा कुस्तुम्बरीं सम्यग्घृते शर्करया पिबेत् ।
एलां मरिचसंयुक्तां यावद्भ्रान्तिः प्रशाम्यति ॥ ४३ ॥
अजमोदं विडङ्गं च पिष्ट्वा तक्रेण पाययेत् ।
कृमिकोपप्रशान्त्यर्थं क्वाथं वातघ्नमुस्तयोः ॥ ४४ ॥
संस्कृत्य दुग्धिकां वह्नौ विरेके च प्रयोजयेत् ।
ईषद्भृष्ट्वा जयाचूर्णं मधुना खादयेन्निशि ॥ ४५ ॥
अङ्गतोदे घृतेनाङ्गं मर्दयित्वोष्णवारिणा ।
स्नापयेद्रोगिणं वैद्यो लोकनाथं रसं स्मरन् ॥ ४६ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तो०, रसभस्म की अपेक्षा स्वर्णभस्म चतुर्थांश ( ४ मा० ) तथा शुद्ध गन्धक रसभस्म से द्विगुण ( २ तो० ) लेकर सबको चित्रक के रस के साथ एकदिन तक खरल में महीन पीसकर शुद्ध कौड़ियों के भीतर ( चराचराणां शुद्धकपर्दिकानां आस्ये मुखे ) भरकर उनके मुखछिद्रों को बकरी के दुग्ध में पीसी हुई सुहागे की पिष्टी से बन्द करके एक छोटी मिट्टी की हण्डिका में चूने का लेप करके उसमें इन कौड़ियों को भरकर हण्डिका के मुख को सकोरे से बन्द करके कपड़ मिट्टी करके सुखाकर पृथ्वी में अरत्निपरिमित लम्बे चौड़े ( वाराहपुट में ) खोदे हुए गड्ढे में उपले भर कर उनमें हण्डिका को रखकर अपराह्णकाल में वह्नि प्रदीप्त करके पुट दे देना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध औषध को निकाल कर खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें इस प्रकार से बने हुए इस रस को लोकेश्वर रस कहते हैं। यह रस विधिपूर्वक सेवन करने से शरीर की पुष्टि करता है तथा वीर्य्य को भी बढ़ाता है। इस रस को ४ रत्ती भर लेकर घृत ( १ तो० ) और २१ मरिचों के चूर्ण के साथ मिलाकर सर्वदर्शी परमेश्वर में परम भक्ति रखता हुआ प्रतिदिन सेवन करें शरीर की कृशता, अग्निमांद्य, कासरोग तथा हिक्कारोग में इस रस को मरिच चूर्ण और घी के साथ सेवन करना चाहिए। इस रस को सेवन करते समय लवण नहीं खाना चाहिए। घृत और दधियुक्त भोजन करना चाहिए। इस प्रकार इस रस को ३ दिन तक सेवन करना चाहिए, पश्चात् २१ दिन तक २ तोला गो-

घृत में १ माशा काली मरिचों का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाया करें। इस रस के सेवन करते समय शेष पथ्य राजमृगाङ्क के पथ्य के अनुसार सेवन करें, विशेष करके उत्तान पाद होकर शयन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने से यदि रोगी को वमन होने लगे तो उसको रोकने के लिये गुडूची के स्वरस (१ तो०) को शहद् के साथ मिलाकर पीलावें तथा बैंगन का भर्त्ता खिलाना चाहिए। शीतल जल से स्नान करावें और शिर पर शीतलजल की धारा से सेचन करना चाहिए अथवा बरफ की थैली शिरपर रखनी चाहिए। इस रस के सेवन से अथवा रोग के उपद्रव स्वरूप में यदि कफ का प्रकोप हो तो रोगी को केले की फली को घी में भूनकर उसमें काली मरिचों का चूर्ण डालकर भोजन कराना चाहिए। अथवा अद्रक को या उसके स्वरस को मधु के साथ मिलाकर अथवा अदरख और गुड़ मिलाकर खिलाना चाहिए। यदि इस रस के सेवन से रोगी को अरुचि प्रतीत हो तो उसको तुष से रहित धनिये को थोड़ा सा अग्नि में भून कर बारीक पीस के एक माषा के परिमाण से लेकर शर्कर। और घृत के साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिए इससे अरूचि नष्ट हो जाती है। यदि वमन होता हो तो भी भूने हुए धनिये के चूर्ण को चीनी और गोघृत के साथ पान करावें, अथवा बड़ी इलायची का चूर्ण और काली मरिचों का चूर्ण दोनों मिलाकर १ मा० के प्रमाण से लेकर घृत तथा शर्करा (चीनी) के साथ मिलाकर खिलाने से वमन की शान्ति हो जाती है। यदि रोगोत्पादक कृमियों के द्वारा कोई उपद्रव हो गया हो तो इस रस के सेवन करने के उपरान्त अजवाइन तथा वायविड़ङ्ग का चूर्ण तक्र (मट्ठे) के साथ सेवन करने से कृमिजन्य उपद्रव शान्त हो जाता है। अथवा एरण्ड के पञ्चाङ्ग अथवा उसकी जड़ और नागर मोथे का क्वाथ बनाकर सेवन करने से कृमिजन्योपद्रव दूर हो जाता है। यदि इस रस के सेवन करने से या शारीरिक दोषों के कारण यदि दस्त अर्थात् अतीसार का उपद्रव उत्पन्न हो जाय तो उसको शान्त करने के लिये दुग्धिका के चूर्ण को तवे में डालकर मन्दाग्नि में भूनकर अथवा पुटपाक कर के उसका स्वरस निकाल कर या उसका क्वाथ बनाकर पान कराना चाहिए। अथवा शुद्ध भङ्गा (भांग) के चूर्ण को घृत में कुछ भूनकर शहद् में मिलाकर रात्रि में सोते समय खिलाना चाहिए। यदि सम्पूर्ण शरीर में अथवा स्कन्ध और दोनों पार्श्वभागों में सूई के चूभाने के समान

पीड़ा अथवा शूल चलता हो तो सारे शरीर पर घृत की मालिश करा के रोगी को मन्दोष्ण जल से स्नान कराना चाहिए। शिर पर उष्ण जल नहीं डालना चाहिए ॥ ३२-४६ ॥

अथ वैद्यनाथरसः—

**शङ्खस्य वलयं निष्कं चतुर्निष्कं वराटिकाः ।**
**कर्षांशं नीलतुत्थं च तालं गन्धाश्मटङ्कणम् ॥ ४७ ॥**
**तुत्थं नागं रसं चार्धं निष्कांशं पूर्ववत्पुटेत् ।**
**वराटचूर्णं मण्डूरकल्पितालेपने पचेत् ॥ ४८ ॥**
**अस्यार्धमाषं मरिचार्धमाषं ताम्बूलवल्लीरसभावितं च ।**
**तत्पत्रलिप्तं मधुनाऽवलिह्याद्धैयङ्गवीनेन घृतेन वाऽपि ॥ ४९ ॥**
**नाडीमार्गे निर्गते चाल्पमल्पं पथ्यं भोज्यं लोकनाथोपदिष्टम् ।**
**यामे यामे चवमामण्डलान्तात् सिद्धं सद्यः शोषजिद्वैद्यनाथः ॥५०॥**

शङ्खनाभि की भस्म १ निष्क ( ४ मा० ), वराट ( कौड़ियों ) की भस्म ४ निष्क (१६ मा०) तथा शुद्ध नीलतुत्थ ४ मा०, शुद्ध हरताल ४ माशा, शुद्ध गन्धक ४ मा०, शु सुहागा ४ माशा तथा तुत्थ(१) अर्थात् खर्परीतुत्थ अर्द्ध निष्क (२ मा०), नागभस्म अर्द्धनिष्क (२ मा०), शुद्ध पारद अर्द्धनिष्क (२ मा०) तथा वराटभस्म निष्कांश अर्थात् १ मा० लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर शेष द्रव्यों को सम्मिलित करके सबको एकत्र महीन पीसकर दुग्ध में पीसी हुई मण्डूरभस्म की पिष्टी से छोटी हण्डिका अथवा मूषा के भीतरी भाग को लीपकर उसमें उपर्युक्त चूर्ण भरकर मुख बन्द कर के उपर्युक्त विधि से वाराह पुट में पाक करना चाहिए। ( अथवा उपर्युक्त चूर्ण को शुद्ध कौड़ियों में भरकर उनके मुख को दुग्ध में पीसी हुई मण्डूरभस्म की पिष्टी से बन्द करके उन्हें छोटी हण्डिका में भरकर उसका मुख बन्द कर के गजपुट में रख कर पाक करना चाहिए ऐसी भी प्रणाली है ) स्वाङ्ग शीतल होने पर सम्पुट से सिद्ध औषधि को निकाल कर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें, इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को वैद्यनाथरस कहते हैं । यह रस आधामाशा तथा मरिचों का

(१) (कहीं २ "तुत्थं नागरसं,, यहां पर "तारं नागरसं,, ऐसा पाठ है, वहां तार से रजतभस्म लेवें वस्तुतस्तु "तारं नागरसं, यह पाठ ठीक है )

चूर्ण आधा माशा दोनों को छोटी पत्थर की खरल में रात्रि भर पान के रस से भींगो देवें, दूसरे दिन प्रातःकाल इसको घोटकर पान के पत्र के पृष्ठ पर लगा कर बांड़े के समान बनाकर सेवन करें तथा सेवन करने के पश्चात् थोड़ा सा ( आधा तो० ) शहद् तथा १ तोला घृत मिलाकर अनुपान कर लेवें तथा औषध के जीर्ण होने के पश्चात् लोकनाथरस(१) में कहे हुए पथ्य का थोड़ी २ मात्रा में एक २ प्रहर के पश्चात् सेवन करना चाहिए । इस प्रकार इस रस को ४८ दिन तक सेवन करने से यह वैद्यनाथ रस निश्चय ही राजयक्ष्मा को नष्ट कर देता है ॥ ४७–५० ॥

अथ लोकनाथरसः—

**अध्यर्धनिष्कौ रसतुत्थभागौ पृथक्पृथग्गन्धकटङ्ककर्षम् ।**
**शङ्खस्य कर्षं मृततास्रतो द्वौ वराटिकानां नव सम्पुटस्थान् ॥५१॥**
**पक्त्वा पचेदर्कदलद्रवार्द्रान् भूगोऽर्धभागेन करीषकाणाम् ।**
**अस्यार्धपादं मरिचार्धभागं गन्त्राश्मनिष्कं च घृतेन लिह्यात् ॥५२॥**
**अश्नीयात्पूर्ववत्पथ्यं वासराण्येकविंशतिः ।**
**लोकनाथरसो नाम्ना रोगराजनिकृन्तनः ॥ ५३ ॥**

शुद्धपारद आधानिष्क ( २ मा० ), शुद्ध तुत्थक आधानिष्क, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, शुद्ध टङ्गण ( सुहागा ) १ कर्ष, शङ्खभस्म १ कर्ष, ताम्रभस्म दो कर्ष तथा शुद्ध कौड़ियों की भस्म ९ कर्ष लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सब का अच्छी तरह से घोटकर आक के पत्रों के स्वरस से पीसकर टिकिया बना के उन्हें शराव में रखकर दूसरे शराव से ढककर दोनों की सन्धि को कपड़ मेट्टी द्वारा बन्द करके वाराहपुट में पाक करें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से औषधि को निकाल कर खरल में फिर आक के पत्रों के स्वरस के साथ घोटकर शराव में बन्द कर के पूर्वपुट की अपेक्षा आधे उपलों के मध्य में सम्पुट को रख कर वह्नि प्रदीप्त कर के पाक करना चाहिये । इस तरह स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुई औषध का निकाल महीन पीसकर शीशी में भर देवें । इस रस को चार रत्तीभर लेकर २ माशे मरिचचूर्ण और ४ माशे

---

( १ ) ( लोकेश्वररसोक्तं पथ्यं कार्यं लोकनाथरसेपथ्यविधेरनपदेशादिति )

शुद्ध गन्धक तथा २ तोले गोघृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करें, तथा लोकनाथ रस के अनुसार २१ दिनतक पथ्य का सेवन करने से यह लोकनाथ रस राजयक्ष्मा को नष्ट कर देता है ॥ ५१–५३ ॥

अथ प्राणनाथरसः—

**अयोरजो विंशतिनिष्कमानं विभावितं भृङ्गरसाढकेन ।**
**धत्तूरभार्ङ्गित्रिफलारसार्द्रं तुल्यांशताप्यं विपचेत्पुटेषु ॥ ५४ ॥**
**सूतश्च निष्कं समभागतुत्थं गन्धोपलौ द्वौ चतुरो वराटान् ।**
**पक्त्वा पुटाग्नौ समलोहचूर्णान् पचेत्तथा पूर्वरसैर्विमिश्रान् ॥५५॥**
**चूर्णेऽस्मिन्मरिचाः सप्त तुत्थटङ्कणयोर्दश ।**
**संसृजेत्तत्पृथङ्निष्कान्प्राणनाथाह्वयोदितः ॥ ५६ ॥**
**अर्धपादो रसाद्भक्ष्यः केवलाद्राजयक्ष्मिभिः ।**
**शोषोदराऽर्शोग्रहणीज्वरगुल्माद्युपद्रुतैः ॥ ५७ ॥**

लौहभस्म २० निष्क लेकर उसको खरल में डालकर भृङ्गराज के एक आढक परिमित स्वरस से भावित कर के उस में २० निष्क स्वर्णमाक्षिक की भस्म डालकर फिर धत्तूर, भार्ङ्गी और त्रिफला के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ एक २ वार घोट कर पुट दे देवें, फिर उसे सम्पुट से निकाल कर खरल में पीस कर उसमें शुद्ध पारद १ निष्क, शुद्ध नीलातुत्थ १ निष्क, शुद्धगन्धक दो निष्क तथा वराट ( कौड़ी ) की भस्म ४ निष्क मिलाकर सबको अच्छी प्रकार से महीन पीसकर सम्पुट करके पुट दे देवें। स्वाङ्गशीत सम्पुट से औषध को निकाल के खरल में पीस कर सब औषधियों के मिलित तौल के बराबर अर्थात् ४८ निष्क लौह भस्म मिलाकर भृङ्गराज के स्वरस से घोटकर एक पुट देवें तथा उसी तरह धत्तूरा भारङ्गी और त्रिफला के क्वाथ से एक २ वार भावित करके तीन पुट देवें, स्वाङ्ग शीतल सम्पुट से सिद्ध हुए रस को निकाल करके खरल में डाल कर उसमें मरिच चूर्ण ७ निष्क, शुद्ध तुत्थ १० निष्क, शुद्ध टङ्कण १० निष्क मिलाकर सबको महीन पीसकर शीशी में भर देवें इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को प्राणनाथरस कहते हैं। राजयक्ष्मा से पीड़ित रोगियों को यह रस प्रति दिन १ रत्ति से ४ रत्ती तक सेवन करना चाहिए। यह रस यथारोगानुपानपूर्वक धातुशोष, उदररोग, अर्श,

ग्रहणी, ज्वर और गुल्म आदि रोगों से पीड़ित मनुष्यों को भी सेवन करना चाहिए। पथ्य लोकनाथ रस के अनुसार करें ॥ ५४–५७ ॥

अथ वज्ररसः—

कर्षं खर्परसत्त्वस्य षण्मासे हेम्नि विद्रुते।
षण्निष्कसूतं गन्धाश्मन्यष्टनिष्के प्रवेशितम् ॥ ५८ ॥
प्रवालमुक्ताफलयोश्चूर्णं हेमसमांशयोः।
क्रमाद् द्वित्रिचतुर्निष्कं मृतायः सीसभास्करम् ॥ ५९ ॥
चाङ्गेर्यम्लेन यामांस्त्रीन्मर्दितं चूर्णितं पृथक्।
द्वौ निष्कौ नीलवटकव्योमायस्कान्तताल्कात् ॥ ६० ॥
अङ्कोल्लकङ्गुणीबीजतुत्थेभ्यश्चतुरः पृथक्।
अष्टौ च टङ्गणक्षाराद्वराटानां च विंशतिः ॥ ६१ ॥
महाजम्बीरनीरस्य प्रस्थद्वन्द्वेन पेषयेत्।
एतदष्टशरावस्थं शुद्धं खार्यास्तुषस्य च ॥ ६२ ॥
करीषभारे च पचेदथ माषद्वयं ततः।
एतावद्वन्धकात्पादं मरिचाद्भावितादपि ॥ ६३ ॥
मधुनाऽलोडितं लिह्यात्ताम्बूलीपत्रलेपितम्।
गतेऽस्य घटिकामात्रे प्रतियामं च पथ्यभुक् ॥ ६४ ॥
नो चेद्दीपितो वह्निः क्षणाद्धातून्पचत्यतः।
दिनमेकं निषेव्यैनं त्याज्यान्यामण्डलं त्यजेत् ॥ ६५ ॥
ततः परं यथेष्टाशी द्वादशाब्दं सुखी भवेत्।
एकमेकं दिनं भुक्त्वा वर्षे वर्षे महारसम् ॥ ६६ ॥
वर्षादौ च त्यजेत्त्याज्यं द्वादशाब्दं जरां जयेत्।
एष वज्ररसो नाम क्षयपर्वतभेदनः ॥ ६७ ॥

यथाविधि शुद्ध किये हुए ६ माशे स्वर्ण को वह्नि में पिघलाकर उस में एक कर्ष खर्पर का सत्त्व मिलाकर अच्छी प्रकार घोटलें, फिर शुद्ध किये हुए ८ निष्क गन्धक में ६ निष्क शुद्ध पारद मिलाकर दोनों की उत्तम कज्जली बना लेवें, पश्चात् प्रवालभस्म ६ मा०, मुक्ताभस्म ६ माशा, लौहभस्म २ निष्क, सीसभस्म (नागभस्म) ३ निष्क, ताम्रभस्म ४ निष्क लेकर उपर्युक्त खर्परसत्त्व मिले हुए

स्वर्ण तथा कज्जली में मिलाकर एक बड़ी खरल में सब को डालकर चाङ्गेरी ( अम्ललोणी या लोनिया शाक ) के रस के साथ तीन प्रहर ( ९ घण्टे ) तक अच्छी प्रकार घोटकर उसमें नीलवटक ( नीलबड़ी या काला खपरिया का सत्त्व ) २ निष्क, अभ्रकभस्म २ निष्क, कान्तलौहभस्म २ निष्क, शुद्ध हरताल २ निष्क तथा अङ्कोल के बीजों का चूर्ण ४ निष्क, मालकङ्गनी के बीजों का चूर्ण ४ निष्क, शुद्धनीलतुत्थक चूर्ण ४ निष्क, शुद्ध टङ्गण ( सुहागा ) ८ निष्क तथा वराट ( कौड़ियों ) की भस्म २० निष्क मिलाकर २ प्रस्थ बड़े जम्बीरी निम्बू के रस में से थोड़ा २ रस डालकर घोटें जब घोटते २ रस सूख जाय तब फिर रस डाल कर घोटें, इस तरह दो प्रस्थ रस के साथ घोटने के पश्चात् उसका गोला बनाकर उसको अष्टशराव ( अर्थात् दृढ शराव या इष्टि के शराव ) में बन्द कर के उस के चारों ओर कपड़मिट्टी कर के सुखा लेना चाहिए। फिर जमीन में गजपुट से भी अधिक लम्बा चौड़ा एक गड्ढा खोदकर उसमें एक (१) खारी भर ( ५ मन, ४ सेर, १२ छटाङ्क, चार तोले मागध मान के हिसाब से तथा ४ मन, १० सेर, ८ छ०, १३ तो०, ५ आ०, दो रत्ती भर कलिङ्ग मान के हिसाब से एक खारी होती है, ) तुष तथा एक भार ( दो हजार पल यानी आठ हजार तोले भर अर्थात् ढाई मन मागध मान के हिसाब से तथा बीस तुला यानी २ मन, ३ सेर, ५ छटाङ्क, १ तोले, ७ आने, २ रत्तीभर कलिङ्ग मान के हिसाब से १ भार होता है ) जङ्गली उपले डालकर उनके बीच में सम्पुट को रख कर अग्नि प्रदीप्त कर के पकाना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुई औषधि को निकाल कर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए रस को २ माशे भर लेकर २ माशे शुद्धगन्धक तथा आधा माशे मरिचों के महीन चूर्ण के साथ मिलाकर तीनों को छोटी खरल में महीन पीसकर शहद् के साथ आलोड़ित कर के ताम्बूल के पत्र के पृष्ठ पर लेप कर के पानबीडे के समान बीड़ा बनाकर भक्षण करना चाहिए। औषध सेवन करने के पश्चात् एक घड़ीभर समय बीत जाने पर ( अर्थात् औषध के जीर्ण होने पर या बुभुक्षा के प्रतीत होने पर ) एक२ प्रहर का अन्तर देकर पथ्य पूर्वक थोड़ा२ भोजन करना चाहिए। इस प्रकार से एक२ प्रहर के पश्चात् थोड़ा२ भोजन सेवन नहीं करने से रस के प्रभाव से उद्दी-

(१) द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः।

पित पाचकाग्नि (विविध पाचकरस) खाद्य पदार्थों के अभाव में शरीर की धातुओं को पचाकर उन्हें नष्ट कर देती है । इस रस को केवल एकदिन उपर्युक्त विधि से सेवन करके ४८ दिनतक अपथ्य अर्थात् परिहार्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिए तथा ४८ वें दिन के बाद यथेष्ट आहार का सेवन करें । इस प्रकार एकवार इस रस को सेवन करने से ११ वर्ष तक वह पुरुष नीरोग रहता है। इस रस को हरेक नवीन वर्ष के प्रारम्भ में एकदिन सेवन करके ४८ दिनतक पथ्य से रहें इस तरह लगातार १२ वर्ष तक इसको सेवन करने से वृद्धावस्था तथा अन्य व्याधियां सहसा उस पुरुष को नहीं दबा सकतीं हैं । यह वज्ररस क्षयरोगरूपीपर्वत का भेदन करने के लिए एक तरह का इन्द्र का वज्र ही है । प्रायः इस रस को उचित मात्रा से तथा पथ्याचरणपूर्वक सेवन करने से क्षय रोग से पुरुष बच सकता है॥५८–६७॥

अथ महावीररसः—

**निष्कौ द्वौ तुत्थभागस्य रसादेकं सुसंस्कृतात् ।**
**निष्कं विषस्य द्वौ तीक्ष्णात्कर्षांशं गन्धमौक्तिकात् ॥ ६८ ॥**
**अग्निपर्णीहरिलताभृङ्गार्द्रसुरसारसैः ।**
**मर्दितं लाङ्गलीकन्दप्रलिप्ते सम्पुटे पचेत् ॥ ६९ ॥**
**अर्धपादं च पोटल्याः काकिन्यौ द्वे विषस्य च ।**
**लिहेन्मरिचचूर्णं च मधुना पोट्टलीसमम् ॥ ७० ॥**
**क्षयग्रहण्यतीसारवह्निदौर्बल्यकासिनाम् ।**
**पाण्डुगुल्मवतां श्रेष्ठो महावीरो हितो रसः ॥ ७१ ॥**
**अतिस्थूलस्य पूयासृक्कफानुद्धमता क्षये ।**
**न योजयेत्क्षीररसान्विरुद्धक्रमतत्त्वतः ॥ ७२ ॥**

निर्मलतुत्थ दो निष्क, शुद्ध पारद १ निष्क, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ निष्क, तीक्ष्ण लौहभस्म २ निष्क, शुद्धगन्धक १ कर्ष का चतुर्थांश अर्थात् ४ माशा तथा मुक्ताभस्म ४ माशा लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की कज्जली बनाकर फिर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार से महीन घोटकर अग्निपर्णी ( अग्निमन्थ–अरणी ), विष्णुक्रान्ता ( हरिलता–विष्णुक्रान्ता, ब्राह्मीति केचित् ), भृङ्गराज ( भांगरा ), अद्रक तथा तुलसी इन प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ के साथ क्रमशः पृथक् २ एक २ वार घोटकर गोला बना लेना चाहिए । फिर मूषा अथवा

शराव में कलिहारी की जड़ का पत्थर पर पीसे हुए कल्क ( पिष्टी ) से लेपकर उसमें उक्त औषध के गोले को बन्द करके सम्पुट के चारों ओर कपड़ मिट्टी करके उसे सुखाकर वाराह पुट में पाक कर स्वाङ्ग शीतल सम्पुट से सिद्ध हुई औषध को निकाल कर खरल में उसका महीन चूर्ण करके उसमें समस्त औषध की अपेक्षा चतुर्थांश मृगाङ्क पोटली रस तथा ४ माशे शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण मिलाकर सबको महीन पीसकर शीशी में भर कर रख देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को महावीर रस कहते हैं। इस रस को १ रत्ती से ४ रत्ती भर लेकर मरिचों के चूर्ण और शहद् के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से रसरक्तादि धातुओं का क्षय, ग्रहणी, अतीसार, वह्नि ( पाचक रसों ) की दुर्बलता, कास, पाण्डुरोग तथा गुल्म-रोग से आक्रान्त पुरुषों के लिये नितान्त हितकर है। अत्यन्त मेदस्वी तथा पूय, रक्त और कफका वमन करने वाले क्षयरोगी को दुग्ध, मांसरस तथा अन्य जो विरुद्धपदार्थ हो उन्हें सेवन नहीं कराना चाहिए ॥ ६८–७२ ॥

अथ राजयक्ष्मणि साधारणपथ्यम्।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः। मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यताम्॥१॥
शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित्। दद्यात् क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः॥२॥
दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम्। स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यच्च कर्षणम् ॥३॥

दोषाधिकानां प्रवृद्धदोषाणां राजयक्ष्मणां स्निग्धस्वेदकर्मपूर्वकं वमनं विरेचनञ्च दद्यात्, कीदृगित्याह सस्नेहं यच्च कर्षणं न स्यात्, मृदुद्रव्यैर्विरेचनं वमनञ्च शस्तं यथोक्तं वाग्भटे—

बलिनो बहुदोषस्य स्निग्धस्विन्नस्य शोधनम्।
ऊर्ध्वाधो यक्ष्मणः कुर्यात् सस्नेहं यन्न कर्षणम् ॥ इति।

अत्र वमनविधिमाह—

पयसा फलयुक्तेन मधुरेण रसेन वा। सर्पिष्मत्या यवागव्या वा वमनद्रव्यसिद्धया ॥

वामयेदित्यर्थः।

विरेचनमाह—

"विरेचनं दद्यात्त्रिवृच्छ्यामानृपद्रुमान्" इति।

अथ पञ्चकर्मविधानं निषेधन्नाह—

बलिनो बहुदोषस्य पञ्चकर्माणि कारयेत्। यक्ष्मणः क्षाणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम्॥

बलयुक्तयक्ष्मणः कृते पूर्वं पञ्चकर्म यथासाध्यं कृत्वा पश्चात्काष्ठरसौषधानामुपयोगः श्रेयस्करो भवति ॥

इति यक्ष्मचिकित्सा।

अथारुचिस्तस्या निदानम्—

**वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधै र्मनोघ्राशनरूपगन्धः ।**
**एतैः समस्तैश्च अरोचकाःस्युः तेषाञ्च भेदाः कल पञ्चसंख्याः ॥ १ ॥**

वात, पित्त और कफ इनके दूषित होने से तथा अत्यन्त शोक, भय, लोभ तथा क्रोधयुक्त चित्त की वृत्ति होने से, एवं चित्त के अप्रीतिकर पदार्थों के भोजन, अवलोकन तथा चित्त के विरुद्ध गन्धादियों के सूंघने से अरोचक या अरुचिरोग उत्पन्न होता है । यह रोग वातिक, पैत्तिक, श्लष्मिक, द्वन्द्वज और सान्निपातिक, इस तरह से पांच प्रकार का होता है ॥ १ ॥

अरुचेः सलक्षणभेदाः—

**हृच्छूलपीड़नयुतं पवनेनपित्तात्तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम् ।**
**श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्चविद्याद्गुणैयमोहजड़ताभिरथाऽपरं च ॥२॥**

वायु की विशेष दुष्टि से उत्पन्न होने वाले अरोचक में हृदय में शूल तथा सर्वाङ्ग में विशेष कर सन्धियों में वेदना होती है इसको वातिकारोचक कहते हैं । पित्त की विशेष दुष्टि से उत्पन्न होने वाले अरोचक में बारम्बार प्यास लगना, सर्वाङ्ग में जलन प्रतीत होना, तथा चूषने के सदृश शरीर में पीड़ा होना ये लक्षण होते हैं इस को पैत्तिकारोचक कहते हैं । कफ की विशेष दुष्टि से उत्पन्न होने वाले अरूचि रोग में मुख से कफ तथा लाला का अधिक स्राव होता है इसको श्लैष्मिक अरोचक कहते हैं । दो या समस्त दोषों की विशेष दुष्टि से उत्पन्न होने वाले अरोचक में दो या अधिक दोषों के सम्मिलित लक्षण दिखाई देते हैं तथा पीड़ा अधिक होती है तथा मन में विकार, मोह और शरीर में शून्यता आदि उपद्रव होते हैं । ऐसे अरोचक को द्वन्द्वज तथा सान्निपातिक अरोचक कहते हैं ॥ २ ॥

अथारूचि-चिकित्सा—

यवानीखाण्डवचूर्णम्

**यवानी तिन्तिडीकं च नागरं चाम्लवेतसम् ।**
**दाडिमं बदरं साम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ३ ॥**
**धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गं चार्द्धकार्षिकम् ।**
**पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ॥ ४ ॥**
**शर्कराया श्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।**

यवानीखाण्डवं हन्ति चूर्णमेतदरोचकम् ॥ ५ ॥

[ इति प्रक्षिप्ता अरुचिचिकित्सा ]

अजवाइन का चूर्ण १ कर्ष, इमली का सत्त या चूर्ण १ कर्ष, शुण्ठिका चूर्ण १ कर्ष अमलवेंत का चूर्ण १ कर्ष, दाडिम के छिलके या बीजों का चूर्ण १ कर्ष बैर के फल की मज्जा का चूर्ण १ कर्ष, निम्बू का सत्त १ कर्ष, धनिये का चूर्ण आधा कर्ष, सौंचल नीमक आधा कर्ष, जीरेका चूर्ण आधा कर्ष, तज या दाल चीनी का चूर्ण आधाकर्ष, शुद्ध छोटी २ १०० पिप्पलियों का चूर्ण तथा २०० कालीमरिचों का चूर्ण तथा चीनी ४ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें। इसको यवानी खाण्डव चूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण को २ माशे से ६ माशे तक प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करने से अरुचि नष्ट हो जाती है ॥ ३-५ ॥

अथारोचके पथ्यापथ्यव्यवस्था—

गोधूममुद्गारुणशालिषष्टिका मांसं वराहाजशशैणसम्भवम् ।
चेङ्गो झषाण्डं मधुरालिकेल्लिशः प्रोष्ठी खलीशः कवयो च रोहितः ॥
कर्कारुवेत्राग्रनवीनमूलकं वार्ताकुशोभाञ्जनमोचदाडिमम् ।
भक्ष्यं पटोलं बृंहकं घृतं पयो बालानि तालानि रसोनशूरणम् ॥ १ ॥
द्राक्षा रसालं नलदम्बुकाञ्जिकं मद्यं रशाला दधि तक्रमार्द्रकम् ।
कक्कोलखर्जूरपियालतिन्दुकं पक्वं कपित्थं बदरं विकंकतम् ॥
तालास्थिमज्जाहिमवालुकासिता पथ्या यवानी मरिचानि रामठम् ।
स्वाद्वम्लतिक्तानि च देहमार्जना वर्गोऽयमुक्तोऽरुचिरोगिणे हितः ॥ २ ॥

इति पथ्यम् ।

अथापथ्यानि—

कासोद्गारक्षुधानेत्रवारिवेगविधारणम् । अह्न्याग्नमसुखम्मोक्षं क्रोधं लोभं भयं शुचम् ॥
दुर्गन्धारूपसेवाञ्च न कुर्यादरुचौ नरः । इत्यपथ्यम् ॥

अथ छर्दिरोगः

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति ।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ १ ॥
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात् क्रिमिदोषतः ।
नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ २ ॥
बीभत्सहेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितोबलात् ।
छादयन्ननानं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः

निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ३ ॥

[ प्रक्षिप्त–श्लोकाः ]

अत्यन्त द्रव ( पतले ) पदार्थों के सेवन से, अत्यन्त स्निग्ध अर्थात् स्नेहांश-युक्त पदार्थों के सेवन से, हृदय के प्रतिकूल अर्थात् अरुचिकार और अधिक लवण युक्त पदार्थों के सेवन से, असमय में अधिक मात्रा से तथा असात्म्य ( आत्मनि उपशेते यत्तत् सात्म्यं न सात्म्यमसात्म्यम् ) आहार ( भोजन ) के करने से तथा अधिकश्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, क्रिमिदोष इत्यादि कारणों से तथा गर्भवती स्त्री और अत्यन्त शीघ्रता से ( बिना चबे या स्वल्प चबाकर ) भोजन करना तथा बीभत्स रङ्गरूप युक्त पदार्थों का सहसा दीख पड़ना इत्यादि अनेक कारणों से उत्क्लेशित ( प्रकुपित ) उदररथ दोष अपने वेग से अन्न को पीड़ित करता हुआ तथा मुख को पूरित करता हुआ ऊपर को मुख की ओर पहुंच कर बाहर निकलता है तब उसको छर्दि या वमन कहते हैं ॥ १–३ ॥

अथ वान्तिचिकित्सायां मातुलुङ्गादियोगः—

**मातुलुङ्गस्य मूलानि लाजचूर्णं ससैन्धवम् ।**
**पिप्पलीमधुना युक्तं खादेद्वान्तिप्रशान्तये ॥ ७३ ॥**

बिजौरे निम्बू की जड़ का चूर्ण १ पल, लाजों ( धान की खीलें ) का चूर्ण १ पल, सैन्धव लवण १ पल, पिप्पली चूर्ण १ पल लेकर सब को खरल में महीन पीसकर काचपात्र में भर देवें । इस चूर्ण को आधा तोले भर लेकर १ तोले शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से वमन रोग दूर हो जाता है । इस चूर्ण को प्रतिदिन यथाविधि से सेवन करना चाहिए ॥ ७३ ॥

अथ रजन्यादियोगः—

**रजनीशङ्खपूगं च निष्कैकं वान्तिनाशनम् ।**
**निष्कार्धं टङ्कणं वाऽथ काकमाचीद्रवैः पिबेत् ॥ ७४ ॥**

हरिद्रा का चूर्ण, शङ्खभस्म तथा साधारण सुपारी अथवा चिकनी सुपारी का चूर्ण ये तीनों मिलाकर एक निष्क ( ४ मा० ) भर लेकर मधु के साथ सेवन करने से वमन दूर हो जाता है । अथवा आधा निष्क ( २ मा० ) शुद्ध सुहागा लेकर उसको मकोय के स्वरस के साथ मिलाकर भक्षण करने से भी वमन दूर हो जाता है ॥ ७४ ॥

अथ सुगन्धाऽलक्तकयोगौ—

**सुगन्धां वा पिबेत्खादेत्सर्ववान्तिप्रशान्तये ।**
**अलक्तकरसं क्षौद्रे रक्तवान्तिहरं परम् ॥ ७५ ॥**

सुगन्धा ( नेत्रबाला, या तुलसी, अथवा शतपुष्पा–सौंफ ये तीनों पदार्थ वमन को हरने वाले हैं, प्रायः अन्य टीकाकारों ने भी यही भिन्न २ अर्थ किया है ) के स्वरस अथवा चूर्ण को शहद् के साथ पीने से तथा भक्षण करने से वमन दूर होता है । शुद्ध लाक्षा के द्रव को शहद में मिलाकर पान करने से रक्त की छर्दि नष्ट हो जाती है ॥ ७५ ॥

अथ छर्द्यां पथ्यानि—

विरेचनश्छर्दनलङ्घनानि स्नानं मृजा लाजकृतश्च मण्डः ।
पुरातनाः षष्टिकशालिमुद्गकलायगोधूमयवा मधूनि ॥ १ ॥
शशाहिभुक्तित्तिरिलावकाद्या मृगद्विजा जाङ्गलसंज्ञिताश्च ।
मनोज्ञनानारसगन्धरूपा रसाश्च यूषा अपि षाडवाश्च ॥ २ ॥
हरीतकीदाड़िमबीजपूरं जातीफलं बालकनिम्बवासः ।
सिता शताह्वा करिकेशराणि भक्ष्या मनःप्रीतिकरा हिताश्च ॥ ३ ॥
रागाः खड़ाः काम्बलिकाः सुरा च वेत्राग्रकुस्तुम्बुरुनारिकेलम् ।
जम्बीरधात्रीसहकारकोलद्राक्षाकपित्थानि पचेलिमानि ॥ ४ ॥
भुक्तस्य वक्त्रे शिशिराम्बुसेकः कस्तूरिकाचन्दनमिन्दुपादाः ।
मनोज्ञगन्धाम्यनुलेपनानि पुष्पाणि पत्राणि फलानि चापि ॥ ५ ॥
रूपाणि शब्दाश्च रसाश्च गन्धाः स्पर्शाश्च ये यस्य मनोऽनुकूलाः ।
दोहश्च नाभेस्त्रियवोपरिष्टादिदं हि पथ्यं वमनातुरेषु ॥ ६ ॥
कलाययवगोधूममुद्गषष्टिकशालयः ।
शशतित्तिरलावाद्या मृगजाङ्गलसंज्ञिताः ॥ ७ ॥
रागखाण्डववेत्राग्रकोलद्राक्षाफलानि च ।
वमिरोगेषु पथ्यानि मुनिभिः कथितानि तु ॥ ८ ॥

इति पथ्यम् ॥

अथ अपथ्यानि—

नस्यं वस्तिं स्वेदनं स्नेहपानं रक्तस्रावं दन्तकाष्ठं द्रवान्नम् ।
शीतस्तेक्षां भीतिमुद्वेगमुष्णं स्निग्धाम्लास्यं हृद्यवैरोधिकान्नम् ॥ १ ॥
शिम्बी बिम्बी कोषवत्यो मधूकं चित्रामेला सर्षपान् देवदालीम् ।
व्यायामञ्च छर्दिकामञ्जनञ्च छर्द्यां सत्यां वर्जयेदप्रमत्तः ॥ २ ॥

इति छर्दिचिकित्सा ।

अथ हृदयरोगः—

**अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्ताभ्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः।**
**सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥१॥**

अत्यन्त उष्णप्रकृति तथा गुरु, कषाय और तिक्त रस वाले भोज्य पदार्थों के प्रतिदिन सेवन करने से तथा अधिक श्रम करना, हृदयप्रदेश पर चोट लगना, (१)अध्यशन, अधिक स्त्रीसम्भोग, अधिक चिन्ताओं से व्याप्त रहना तथा अधारणीय वेगों का धारण करना इत्यादि कारणों से हृदय रोग ( Heart Diseases ) उत्पन्न होती हैं। यह रोग वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक तथा कृमिजन्य इन भेदों से पांच प्रकार का होता है। हृदय रोग की सम्प्राप्ति तथा सामान्यलक्षण इस प्रकार है यथा—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ १ ॥ इति ॥ १ ॥

अथ-हृदयरोग-चिकित्सा—

दशमूलादिक्वाथः—

**दशमूलकषायस्तु लवणक्षारसंयुतः।**
**पीतो निहन्ति सहसा हृदामयमसंशयम् ॥ १ ॥**

दशमूल के द्रव्यों को मिलाकर एक पल भर लेकर अष्टगुण अथवा षोडश गुण जल में उबाल कर अष्टमांश अर्थात् २ पल जल शेष रहने पर उतार कर छान के उसमें थोड़ा सा (६ मा०) सैंधा नोमक और स्वर्जिखार ( ५ रत्ती ) मिलाकर कुछ गरम २ रहते ही पी लेवें। यह क्रिया कुछ दिनों तक करने से हृदयरोग निश्चय ही र हो जाता है ॥ १ ॥

ककुभार्द्य चूर्णम्—

**घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबेत्तु चूर्णं ककुभत्वचोत्थम्।**
**हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं जित्वा भवेथुश्चिरजीविनस्ते ॥ २ ॥**

अर्जुन की छाल का महीन चूर्ण करके कपड़े से छान कर शीशी में भर देवें। प्रतिदिन ४ माशे से ८ माशे तक इस चूर्ण को गोघृत, गोदुग्ध, अथवा गुड़ या

---

( १ ) पूर्वभोजन के ठीक न पचने पर फिर भोजन करना जैसे कहा भी है ( "अजीर्णे भुज्यते यस्तु तदध्यशनमुच्यते,, )

केवल शीतल जल के साथ सेवन करने से हृदयरोग नष्ट हो जाता है। यह चूर्ण अजीर्ण, ज्वर, रक्तपित्त आदि रोगों में भी हितकर है ॥ २ ॥

हृदयार्णवो रसः—

**शुद्धसूतं समं गन्धं मृताभ्रं तयोः समम् ।**
**मर्दयेत् त्रिफलाक्वाथैः काकमाचीद्रवै दिनम् ॥ ३ ॥**
**चणमात्रां वटीं खादेद् रसोऽयं हृदयार्णवः ।**
**काकमाचीफलं कर्षं त्रिफलाफलसंयुतम् ॥ ४ ॥**
**द्वात्रिंशत्तोलकं तोयं क्वाथमष्टावशेषितम् ।**
**अनुपानं पिबेच्चात्र हृद्रोगश्च कफोत्थिते ॥ ५ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला ले कर दोनों की कज्जली करें। फिर कज्जली के बराबर ( २ तोला० ) ताम्रभस्म मिला दें। सबको पीस कर त्रिफला के क्वाथ से एक दिन तक मर्दन करें। फिर एक दिन मकोय के स्वरस के साथ घोटकर चने के समान गोलियां बनाकर छाया शुष्क कर के शीशी में भर देवें। इसे हृदयार्णव रस कहते हैं। इस रस की प्रतिदिन प्रातः काल एक गोली खाकर ऊपर से त्रिफला और मकोय के फल मिलित एक कर्ष लेकर बत्तीस तोले जल में पकाकर आठवां भाग शेष बच जाने पर उतार के छानकर अनुपान में पीवें। इस तरह प्रतिदिन सेवन करने से यह रस कफज हृदयरोग में विशेष लाभ करता है॥३-५॥

नागार्जुनाभ्रम्—

**सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः ।**
**स्वरसै र्विमर्दितं सप्तदिनं खल्वे विशोषितम् ॥ ६ ॥**
**छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम् ।**
**हृद्रोगं सर्वशूलार्शो हृल्लासच्छर्दिरोचकान् ॥ ७ ॥**
**अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।**
**शोथोदराम्लपित्तञ्च विषमज्वरमेव च ॥**
**हन्त्यन्यान्यपि रोगाणि बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ ८ ॥**

सहस्रवार पुटित अभ्रकभस्म को अर्जुन की छाल के क्वाथ से सातदिन खरल करके छाया में थोड़ी सुखा लेवें। फिर इसकी एक रत्ती भर की गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन सेवन

करने से हृदय के रोग, सर्व प्रकार के शूल, बवासीर, हृल्लास अर्थात् जीमचलाना, वमन, अरुचि, अतीसार, अग्निमांद्य, रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, विषमज्वर ( मलेरिया ) तथा अनुपान भेद से अन्य सब रोगों को नष्ट कर देता है। यह रस बलदायक, वृष्य तथा रसायन है ॥ ६–८ ॥

पञ्चाननरसः—

सूतगन्धौ द्रवै धात्र्या मर्दयेत् गोस्तनीद्रवैः।
यष्टिखर्जूरसलिलै र्दिनञ्च परिमर्दयेत् ॥
धात्रीचूर्णं सितञ्चानु पिबेद् हृद्रोगशान्तये ॥ ९ ॥

[ इति प्रक्षिप्ता हृद्रोगचिकित्सा ]

शुद्ध पारद एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल लेकर पत्थर की खरल में इनकी कज्जली बनाकर आंवले के स्वरस के साथ एकदिन तक घोटें, फिर द्राक्षा के क्वाथ के साथ एकदिन घोटें, इसी प्रकार मुलैठी और खर्जूर के क्वाथ से पृथक् पृथक् एक २ दिन तक घोट कर एक २ रत्तीभर की गोलियां बना के उन्हें छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को धात्री ( आंवले ) के चूर्ण तथा मिश्री के साथ प्रतिदिन सेवन करने से हृदयरोग निश्चय ही दूर हो जाता है ॥ ९ ॥

अथ हृद्रोगे पथ्यापथ्यम्—

शालिमुद्गायवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम्। पटोलं कारवेल्लञ्च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये॥१॥
तैलाम्लतक्रगुर्वन्नकषायश्रममातपम्। रोषं स्त्रीनमचिन्तां वा भाष्यं हृद्रोगवांस्त्यजेत्॥२॥

इति हृद्रोगचिकित्सा।

अथ तृष्णारोगः—

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा
ऊर्द्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां
तालुप्रपन्नं जनयेत् पिपासाम्
स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु
दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः ॥ १ ॥

[ क्षेपकः ]

पित्त की वृद्धि करने वाले तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल इत्यादि पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा अधिक क्रोध और उपवास करने से पित्ताशय (Gall Bladder)

में प्रकुपित हुआ पित्त ( Bile ) अत्यन्त भय तथा परिश्रम के करने से अथवा शारीरिक बल के क्षीण हो जाने से कुपित हुए वायु के साथ मनुष्यों के तालु और क्लोम आदि स्थानों में पहुंच कर पिपासा उत्पन्न कर देता है तथा प्रकुपित वातादिक दोषों के द्वारा जलवाहक स्रोतसों ( Oesophagus ) तथा जल का शोषण करने वाले क्षुद्रान्त्र तथा बृहदन्त्र (Small Intestine and Large Intestine or Colon) के Cells के अवयवों के दूषित हो जाने से भी तृषारोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ तृष्णाहररसः—

**युक्तं गन्धकपिष्टयाऽयस्तालकं स्वर्णमाक्षिकम् ।**
**युक्तया तद्भस्मतां नीतं तृष्णाच्छर्दिनिवारणम् ॥ ७६ ॥**

शुद्धपारद १ तो०, शुद्धगन्धक १ तो० लेकर दोनों की कज्जली बनाकर दुग्ध के साथ घोटकर उनकी पिष्टी(१)बना लें फिर लौह भस्म १ तो०, शुद्धहर, ताल १ तो० तथा गन्धक के योग से बनायी हुई स्वर्णमाक्षिक की भस्म १ तोला लेकर सबको अच्छी प्रकार घोटकर मूषा में बन्द करके बालुकायंत्र में पाक कर लेवें । इस प्रकार से परिपक्व औषध को निकाल कर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें । यह रस १ रत्ती से ३ रत्ती भर तक प्रति दिन यथायोग्य अनुपानों के साथ सेवन करने से तृष्णा तथा छर्दिरोग को नष्ट करता है ॥ ७६ ॥

अथापथ्यम्—

**स्नेहाञ्जनस्वेदनधूमपानव्यायामनस्यातपदत्तकोष्ठम् ।**
**गुर्वन्नमम्लं लवणं कषायं कटु स्त्रियं दुष्टजलानि तीक्ष्णम् ॥**
**एतानि सर्वाणि हिताभिलाषी तृषातुरो नैव भजेत्कदाचित् ॥ २ ॥**

इति तृष्णाचिकित्सा ।

अथ मदात्ययरोगः—

**निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।**
**उत्पादयेत् कष्टतमान् विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १ ॥**
**क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।**

---

( १ ) यथोक्तं—"खल्ले विमर्द्य गन्धेन 'दुग्धेन' सह पारदम् ।
पेषणात् पिष्टतां याति सा पिष्टीति मता परैः" ॥ इति,

व्यायामभाराध्वपरीक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ २ ॥
अत्यम्लरूक्षावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥३॥
शरीरदुःखं बलवत्प्रमेहो हृदयव्यथा ।
अरुचिः सततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः ॥ ४ ॥
शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनां वेदना विक्षते यथा ।
जायतेऽतिबला जृम्भा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥ ५ ॥
उरोविबन्धः कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः ।
शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुखरोगास्त्रिकग्रहः ॥ ६ ॥
छर्दिर्विड्भेद उत्क्लेदो वातपित्तकफात्मकः ।
भ्रमः प्रलापो रुपाणामसतां चैव दर्शनम् ॥ ७ ॥
तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरणम् ।
प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः स मन्यते ॥ ८ ॥
व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां चापि दर्शनम् ।
मदात्ययस्य रुपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ॥ ९ ॥

[ इति क्षिप्तो मदात्ययरोगः ]

जो मनुष्य सर्वदा विना भोजन किये ही अधिकतर मद्य का पान करता रहता है ऐसे पुरुष के शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा उन से उसकी मृत्यु भी हो जाती है । क्रुद्ध, भयभीत, प्यास से व्याकुल, शोक से सन्तप्त, बुभुक्षा से पीड़ित, अधिक व्यायाम, अधिक भार का वहन तथा अधिक मार्ग में चलने से श्रमित या थका हुआ तथा अधारणीयवेगों के धारण करने (रोकने) से पीड़ित, अत्यन्त खट्टे, रूक्ष पदार्थों का अत्यन्त (उदरपूर्ति से भी अधिक) सेवन किया हुआ तथा अजीर्ण की अवस्था ही में भोजन किया हुआ, बल से हीन तथा उष्णता ( गरमी ) से अत्यन्त सन्तप्त हुआ पुरुष यदि मद्य का सेवन करे तो वह पीया हुआ मद्य उस पुरुष के शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है तथा उसके मदात्ययरोग भी उत्पन्न हो जाता है । मदात्यय रोग से ग्रस्त पुरुष के शरीर में अनेक प्रकार के शूलादिक कष्ट तथा असाध्यप्रमेह, हृदय के रोग, अरुचि, वारम्वार प्यास लगना, कभी शीतपूर्वक तथा कभी उष्णता पूर्वक ज्वर

हो जाना, शिर ( Brain ) में, पार्श्व की अस्थियों में ( In the Ribs ) तथा सर्व सन्धियों ( Joints ) में फोड़ने के समान पीड़ा ( वेदना ) होना, बार बार (१)जृम्भा ( जमुहाई ) का आना शरीर में स्फुरण ( फड़कन ), कम्पन तथा थकावट होना, छाती का जकड़ जाना, कास, हिक्का, श्वास ये रोग होना तथा निद्रा का नाश, शरीर कम्पन तथा कर्ण ( Ear ), नेत्र ( Eye ) तथा मुख ( Mouth ) के रोग ( Diseases ) उत्पन्न होना, त्रिकास्थि ( Sacrum ) के समीपवर्ति स्थान में पीड़ा या जकड़ाहट होना, छर्दि, विड्भेद अर्थात् अतीसार, उत्क्लेद ( उबकाई ), वातिकरोग, पैत्तिकरोग, श्लैष्मिकरोग तथा सान्निपातिक रोगों का उत्पन्न होना, भ्रमरोग, प्रलाप करना, स्वप्नावस्था में अथवा जाग्रतावस्था में कुरूप वस्तुओं के दीखने की भ्रान्ति होना, अपने शरीर में घास, फूंस, राख, बेल, पत्ते, धूल इत्यादि लगे हुए के समान भान होना, गृध्र, श्वान, शृगाल आदि जन्तु तथा चील, काक आदि पक्षियों के द्वारा अपने को स्वप्न में घसीटते हुए के समान दृश्य दिखाई देना, भ्रान्त चित्तवृत्ति हो जाना तथा मन को व्याकुल करने वाले अप्रशस्त स्वप्नों का दिखाई देना ये सब मदात्यय रोग से पीड़ित पुरुष के लक्षण हैं ॥ १–९ ॥

अथ राजावर्तरसः—

**राजावर्तो रसः शुल्वं माक्षिकं घृतपाचितम्।**
**मध्वाज्यशर्करायुक्तं हन्ति सर्वान्मदात्ययान् ॥ ७७ ॥**

राजावर्त ( लाजवर्त या कान्तपाषाण ) की भस्म, पारद की भस्म या रससिन्दूर, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म इन सब को बराबर २ लेकर गोघृत के साथ अच्छी प्रकार घोटकर शीशी में भर दें। इस रसको प्रतिदिन एक रत्ती भर लेकर मधु, घृत तथा शर्करा के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के मदात्यय रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथ द्वितीयराजावर्त्तरसः—

**राजावर्तरसः शुल्वं सूतगर्भं नियोजितम्।**
**यष्टीमधुरसैर्घृष्टं घृतमध्ये विपाचितम् ॥ ७८ ॥**

---

( १ ) पीत्वैकमनिलोच्छ्वासमुद्वमेद्विवृताननः।
यं मुञ्चति स नेत्राभ्यु स जृम्भ इति संज्ञितः ॥

मध्वाज्यशर्करायुक्तं हन्ति सर्वान्मदात्ययान् ॥ ७९ ॥

उपर्युक्तविधि से बना हुआ राजावर्त रस तथा ताम्र के योग से मारित पारद अथवा शुद्ध ताम्रपत्र पर चढाया हुआ पारद या पारद के साथ को हुई ताम्र की भस्म ये दोनों एक २ पल लेकर खरल में मधुयष्टि के क्वाथ के साथ घोट लेवें, फिर गोघृत के साथ घोटकर गोला बना के दृढमूषा में अथवा एक हण्डिका के भीतरी तलप्रदेश में रख कर ऊपर से सकोरे ( शराव ) से ढक कर सन्धि-बन्धन करके सुखाकर हण्डिकाशेष भाग को बालुका से भर कर उसका शरावान्तर से मुख ढककर कपड़ मिट्टी करके चूल्हे पर चढा कर ८ प्रहर तक पाक करना चाहिए। फिर स्वाङ्गशीतल हुई हण्डिका से सिद्ध हुई औषध को निकाल के खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को प्रति दिन एक रत्ती से तीन रत्ती भर तक लेकर आधा तोला घृत, १ तोला शहद् तथा एक तोले भर शर्करा के साथ छोटी खरल में घोटकर प्रति दिन सेवन करने से सर्व प्रकार के मदात्यय रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८-७९ ॥

अथ भैरवनाथी पञ्चामृतपर्पटी—

सुवर्णं रजतं ताम्रं सत्त्वाभ्रं कान्तलोहकम् ।
क्रमवृद्धमिदं सर्वं शाणेयौ नागवङ्गकौ ॥ ८० ॥
द्रावयित्वैकतः सर्वं रेतयित्वा ततश्चरेत् ।
पृथक्पलमितं गन्धं शिलालं विनिधाय च ॥ ८१ ॥
सर्वं खल्ल विनिक्षिप्य मर्दयेदम्लवर्गतः ।
ताप्यं नीलाञ्जनं तालं शिलागन्धं च चूर्णितम् ॥ ८२ ॥
दत्त्वा दत्त्वा पुटेत्तावद्यावद्विंशतिवारकम् ।
लोहाद्द्विगुणसूतेन ततो द्विगुणगन्धतः ॥ ८३ ॥
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां क्षिप्त्वा तां लोहपात्रके ।
द्रावयेद् बदराङ्गारैर्मृदुभिश्चाथ निक्षिपेत् ॥ ८४ ॥
हेमादिपञ्चलोहानां भस्म चाथ विलोडयेत् ।
अथ तत्कदलीपत्रे गोमयस्थे विनिक्षिपेत् ॥ ८५ ॥
पत्रेणाऽन्येन सञ्छाद्य कुर्याद्यत्नेन चिप्पिटीम् ।

तस्योपरि क्षिपेत्सद्यो गोमयस्तोकमेव च ॥ ८६ ॥
स्वतःशीतं समाहृत्य पटचूर्णं विधाय च ।
निक्षिपेदूर्ध्वदण्डायां पालिकायां ततः परम् ॥ ८७ ॥
पूर्ववद् बदराङ्गारैर्मृदुभिर्द्रावयेच्छनैः ।
तुल्याऽऽलकशिलागन्धं पलार्धं विषभावितम् ॥ ८८ ॥
पूर्वपर्पटिकातुल्यं तस्मादल्पं मुहुर्मुहुः ।
जारयेत्पलिकामध्ये यथा दह्येन्न पर्पटी ॥ ८९ ॥
पलिकेति विनिर्दिष्टा स्नेहक्षेपणयन्त्रिका ।
जीर्णे तालादिके चूर्णं पटचूर्णं विधीयताम् ॥ ९० ॥
पूतीकरञ्जषट्कालव्याघ्रीशोभाञ्जनाङ्घ्रिभिः ।
एतैः पञ्चपलैः क्वाथं षोडशांशावशेषितम् ॥ ९१ ॥
तेन क्वाथेन संस्वेद्य शोषयेत्सप्तधा हि ताम् ।
विषतिन्दुफलोद्भूतै रसैर्निर्गुण्डिकारसैः ॥ ९२ ॥
विभाव्य पलिकामध्ये क्षिप्त्वा बदरवह्निना ।
ईषत्प्रस्वेदनं कृत्वा स्थापयेदतियत्नतः ॥ ९३ ॥
उक्ता भैरवनाथेन स्यात्पञ्चामृतपर्पटी ।
व्योषाज्यसहिता लीढा गुञ्जाबीजेन सम्मिता ॥ ९४ ॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णं विनिहन्ति क्षयामयम् ।
श्वासं कासं विषूचीं च प्रमेहमुदरामयम् ॥ ९५ ॥
अरोचकं च दुःसाध्यं प्रसेकं च्छर्दिहृद्ग्रहम् ।
सर्वजं गुदरोगं च शूलकुष्ठान्यशेषतः ॥ ९६ ॥
वातज्वरं च विड्बन्धं ग्रहणीं कफजान्गदान् ।
एकद्वन्द्वत्रिदोषोत्थानोगानन्यान् महागदान् ॥ ९७ ॥
अग्निमान्द्यं विशेषेण हन्तीयं पर्पटी ध्रुवम् ।
एवं समूह्य दातव्या रोगेषु भिषगुत्तमैः ॥ ९८ ॥
तत्तद्रोगहरैर्योगैस्तत्तद्रोगानुपानतः ।
क्षयादिसर्वरोगघ्नी स्यात्पञ्चामृतपर्पटी ॥ ९९ ॥

तिलसर्षपबिल्वाम्लकारवेल्लकुसुम्भकम् ।
त्यजेत्पारावतं मांसं वृन्ताकं कुक्कुटं तथा ॥ १०० ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये राजयक्ष्मा-रुचिप्रत्येकवान्तिहृद्रोगतृष्णामदात्ययप्रकरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---

सुवर्ण की भस्म १ तोला, रजत ( चांदी Silver ) की भस्म २ तोला, ताम्र ( Copper ) की भस्म ३ तोला०, अभ्रक ( Silica ) का सत्त्व ४ तो०, कान्त लौह की भस्म ५ तोला, नाग ( सीसा Lead ) की भस्म एक शाण ( ४ माशे ), वङ्ग ( राङ्गा ( Tin ) की भस्म एक शाण ( ४ माशा ) लेकर सबको एक कड़ाही ( कटाह ) में डालकर उसे तीव्राग्नि वाले चूल्हे पर चढा कर लोहे की कलच्छी के चोड़े भाग के पृष्ठ से अच्छी प्रकार मर्दन करता रहे, जब सब द्रव्य पिघल कर घोटने से परस्पर मिल जावें तब उन्हें उतारकर स्वाङ्गशीतल करके खरल में डालकर घोट लें। फिर उसमें शुद्धगन्धक एक पल (४ तो०या ८ तो०), शुद्ध-मनःशिला एक पल, शुद्ध हरताल एक पल मिला कर सबको अच्छी प्रकार घोट-कर अम्लवर्ग के पदार्थों के स्वरस या क्वाथ के साथ पृथक् २ एक २ दिन तक खरल करके गोला बना करके मूषा में रख दें, फिर सुवर्णमाक्षिक भस्म, शुद्ध नीला-ञ्जन ( काला सुरमा ), शुद्ध हरताल, शुद्ध मनःशिला और शुद्ध गन्धक ये सब मिला कर उपर्युक्त विधि से बने हुए गोले की अपेक्षा अर्ध भाग की मात्रा से लेकर उस गोले के ऊपर, नीचे अर्थात् चारों तरफ डाल कर मूषा को बन्द करके उस पर कपड़ मिट्टी करके सुखा कर गजपुट में पकाना चाहिए। इस प्रकार से पकी हुई औषध को निकाल कर खरल में घोट कर उसमें गन्धकादिक चारों पदार्थ डाल कर नीबू के रस से घोट कर गोला बना के उसके चारों ओर स्वर्णमाक्षिका-दिक से गन्धकान्त तक के पांचो पदार्थ डाल कर मूषा में बन्द करके गज-पुट में पाक करें, इस तरह २० पुट देने चाहिए। फिर कान्त लौह भस्म से द्विगुण ( १० तोला ) शुद्ध पारद तथा पारद से द्विगुण ( २० तोला ) शुद्ध गन्धक लेकर दोनों को पत्थर के खरल में कज्जली बनाकर उस कज्जली को घी से पोती ( लिप्त ) हुई लौहे की कड़ाही ( कटाह ) में डाल कर चूल्हे पर चढा

कर बेर की लकड़ियों की अग्नि से मंद मंद आंच देवें तथा कज्जली को लोहे की कलच्छी के अग्रभाग से धीरे २ चलाते रहना चाहिए। इस तरह से तपाने पर जब वह पिघल जाय तब उसमें सुवर्णादिक पांच धातुओं की उपर्युक्त विधि से बनी हुई भस्म डालकर सबको कलच्छी से अच्छी प्रकार चलाकर मिला दें, जब सब द्रुत हो जावें तब उन्हें गीले गोबर के चोकोर चबूतरे ऊपर बिछे हुए कोमल केले के पत्ते के ऊपर ढालकर शीघ्र ही उस पर दूसरा केले का कोमल पत्ता ढक कर और पत्ते के ऊपर गाय का गीला गोबर रख कर दबा देवें। इस तरह दबाने से वह द्रुत कज्जली फैल कर चपटी हो जाती है, फिर स्वाङ्ग शीतल होने पर उसको केले के पत्ते पर से लेकर खरल में डाल कर महीन चूर्ण के समान पीस कर कपडे से छान कर जिसके किनारे पर पकडने के लिये काष्ठ का डण्डा (हत्था) लगा हो ऐसी पालिका अर्थात् कड़ाही या कटोरे के समान लोहे के द्वारा बनाये हुए तथा घी से लिप्त पालिकायन्त्र (१)में डालकर उसे चूल्हे पर चढाकर बेर की लकड़ियों की मन्द मन्द अग्नि से ताप देकर लोहे की कलच्छी से चलाता रहे। जब सब चूर्ण पिघल जाय तब उसमें शुद्ध वत्सनाभ डाल कर या कुचले के स्वरस या क्वाथ की भावना देकर शुद्ध किये हुए हरताल, मनःशिला और गन्धक ये तीनों मिला कर आधा पल लेकर (कुछ टीकाकारों ने विषभावित अर्थ नहीं करके हरताल, मनःशिला, गन्धक, और शुद्धवत्सनाभ विष चूर्ण ये चार वस्तुएं मिलाकर आधे पल भर लेनी चाहिएं, ऐसा लिखा है) थोड़ी २ मात्रा से छोड़ता जाय, इस तरह से पिघली हुई पर्पटिका के साथ इन तीनों का पालिका में जारण करना चाहिए। अग्नि मंद मंद ही देना चाहिए। पर्पटी को जलाना नहीं चाहिए। जिस यंत्र में स्नेहादिक पदार्थ को लगाकर (लीपकर) गन्धकादिक पदार्थों का जारण किया जाता है उसको पालिका कहते हैं। इस तरह पालिकायंत्र में तालक (हरताल) आदि पदार्थों का पर्पटी के साथ अच्छी प्रकार जारण हो जाने के पश्चात् स्वाङ्गशीतल सिद्ध औषध को खरल में डाल कर अत्यन्त महीन पीस कर वस्त्र से छान लेना

---

(१) "चषकं वर्त्तुलं लौहं विनताग्रोद्ध्वदण्डकम्।
एतद्धिपालिकायन्त्रं बलिजारणहेतवे॥" इति।

चाहिए। फिर पूतिकरञ्ज ( नाटाकरञ्ज या सागरगोटा—Caesalpinia Bonduc ) ५ पल, षट्कोल ( सौंठ-Zingiberofficinalis, मरिच-Piper Nigrum, पिप्पली-Piper Longum, पिपरामूल, चव्य-Piperchaba, चित्रकमूल-Pumbago Zeylanica, ) ये मिलाकर ५ पल तथा व्याघ्री ( कण्टकारी-Solanum Xantho Corpum ) ५ पल, शोभाञ्जन (शिग्रु-Moringa Pterygosperma) ५ पल लेकर सबको थोड़ा २ कूटकर सोलह गुने जल में पकावें तथा अष्टमांश या षोडशांश जल शेष रहने पर उतार कर कपड़े से छान लें फिर इस क्वाथ के सात भाग करके प्रथम भाग के क्वाथ को हण्डिका में डालकर उपर्युक्त सिद्ध हुए रस को पोटली में बांध कर एक प्रहर तक दोलायन्त्र की विधि से स्वेदन करना चाहिए। इस प्रकार सातबार स्वेदन करना चाहिए ( कुछ टीकाकारों ने स्वेदन का तात्पर्य उक्त क्वाथ से सिद्ध औषध ( पर्पटी ) को सात वार भावित करना चाहिए ऐसा लिखा है ) स्वेदन करने के पश्चात् विषतिन्दु ( कारस्कर, कुचेला—Nux Vomica ) के फल के रस तथा निर्गुण्डी ( सम्भालू-Vitex Negundo ) के पत्रों के स्वरस से पृथक् २ सातवार भावित करके घोटकर सुखालेवें। फिर इसको पालिका में डालकर चूल्हे पर बैर ( बदरी वृक्ष-Zizyphus jujuba ) की लकड़ी की मन्द २ आंच से तपाकर पिघलाना चाहिए, जब वह पिघल जाय तब गोर्वरस्थ कदली पत्र पर ढाल कर गोबरयुक्त कदली पत्र से दबाकर पर्पटी बना के स्वाङ्ग शीतल होने पर खरल में महीन चूर्ण कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को पञ्चामृतपर्पटी रस कहते हैं। इसको भैरवनाथ नामक आचार्य ने प्रगट की है या उन्होंने प्रथमवार अपने अनुभव से इसका निर्माण किया है। इस पर्पटी रस को गुञ्जा के बीज के बराबर अर्थात् एक रत्तीभर लेकर त्रिकटु के चूर्ण और घृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सर्व प्रकारे के उपद्रवों से युक्त क्षय रोग ( राजयक्ष्मा Tuberculosis ) अच्छा हो जाता है। यह पर्पटीरस यथा रोगानुपानपूर्वक सेवन करने से श्वास, कास, विसूचिका (हैजा-Cholera), प्रमेह, उदररोग, अरोचक, मुख से पानी या लाला का निकलना, वमन, हृदय रोग, विविध प्रकार के गुदा के अर्श, भगन्दर आदि रोग, शूलरोग, कुष्ठरोग, वातिकज्वर, मलावरोध, ग्रहणीरोग, कफ के विकार, एकदोष, द्विदोष तथा त्रिदोष

के प्रकोप से उत्पन्न रोग तथा अन्य भयङ्कर रोग नष्ट हो जाते हैं। यह पर्पटी अग्नि मान्द्य रोग में विशेष लाभ करती है। उत्तम वैद्य इस पर्पटी रस को भिन्न भिन्न रोगों को नष्ट करने वाले अनुपानों के साथ या विविधरोग नाशक योगवाही रसों के साथ भिन्न २ रोगों में प्रयुक्त करें। यह पर्पटी रस क्षय आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करते समय तिलतैल, सर्षप का तैल तथा शाक, बिल्व की मज्जा, खट्टे अर्थात् (१)अम्लवर्ग के पदार्थ, करेले का शाक, कुसुम्भ के बीज या कोहड़ा आदि पदार्थों का सेवन वर्जित हैं तथा कबूतर का मांस, कुक्कुट ( मुर्गे ) के अण्डे, बैंगन की शाक ये भी वर्जित हैं ॥८०–१००॥

अथ मदात्ययपथ्यापथ्यव्यवस्था—

संशोधनं संशमनं स्वपनं लङ्घनं श्रमः। संवत्सरसमुत्पन्नाः शालयः षष्टिकैस्सह ॥१॥
मुद्गा माषाश्च गोधूमाः सतीना रागषाडवौ। एणतित्तिरिलावाजदक्षबर्हिशमामिषम्॥२॥
वेशवारो विचित्रान्नं हृद्यं मद्यं पयः सिता। तण्डुलीयं पटोलञ्च मातुलुङ्गं परूषकम् ॥३॥
धारागृहं चन्द्रपादा मणयो मित्रसङ्गमः। क्षौमाम्बरं प्रियाश्लेषो गीतं वादित्रमुद्धतम्॥४॥
शीताम्बुचन्दनं स्नानं सेव्यमेतन्मदात्यये। इति पथ्यानि
स्वेदोऽग्निं धूमपानं नावनं दन्तघर्षणम्। ताम्बूलञ्चेत्यपथ्यं स्यान्मदात्ययविकारिणाम्॥५॥
इत्यपथ्यानि

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायां राजयक्ष्मारुचिप्रसेकवान्तिहृद्रोगतृष्णामदात्ययप्रकरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।

## पञ्चदशोऽध्यायः।

अथार्शः—

गुदस्य बहिरन्तर्वा जायन्ते चर्मकीलकाः।
सर्वरोगकराः पुंसामर्शांसीति हि विश्रुताः ॥ १ ॥

---

( १ ) अम्लवेतसजम्बीरनिम्बुकं बीजपूरकम्।
चाङ्गेरीचणकाम्लञ्च अम्लीकं कोलदाडिमम् ॥ १ ॥
अम्बष्ठा तिन्तिड़ीकञ्च नारङ्गं रसपत्रिका।
करमर्दं तथा चान्यदम्लवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥

गुदा ( Anus and Anal canal ) के बहिःप्रदेश में तथा भीतरी प्रदेश में नोकीले या विविध प्रकार के मांसाङ्कुर हो जाते हैं तथा उनके उपद्रव स्वरूप में बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसे गुदाङ्कुरों को अर्श कहते हैं ॥१॥

विमर्शः—प्रायः वातादिक दोष तथा कुलपरम्परा के कारण नासिका तथा अन्य शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों की त्वचा में मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं तब इन साधारण मांसाङ्कुरों को साधारण अर्श ( Polypus ) कहते हैं । जो मांसाङ्कुर गुदौष्ठ ( Anus ), गुदनलिका ( Anal Canal ) तथा मलाशय (Rectum) के आखिरी हिस्से में उत्पन्न होते हैं उन्हें विशेष अर्श ( Haemorrhoids or Piles ) कहते हैं। अरिवत् प्राणान् शृणाति हिनस्तीत्यर्शं इति, प्रषोदरादिपाठान्निरुक्तिमाहुः । इस अर्श की उचित चिकित्सा नहीं होने से तथा इसकी वृद्धि के कारणों का सतत सेवन करते रहने से इसके साथ २ अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा अधिक रक्तस्राव के दौरे होने लगते हैं । अर्श की चिरस्थिति रहने से तथा प्रकोपक कारण-कलापों के सेवन करते रहने से मलाशय ( Rectum ), का शोथ ( Proctitis ) गुदविद्रधि, गुदकौकुन्दरविद्रधि ( Ischio Rectal Abscess ), भगन्दर ( Anal fistula ), गुदचीर ( Anal fissure ), अर्शभ्रंश और अर्शविपाश ( Prolapse and Strangulation ), गुदभ्रंश, गुदसन्निरोध इत्यादि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

अर्श मलाशय की शिराओं ( Veins ) का विकार है । मलाशय की शिराएं गुदनलिका ( Anal canal ) की दीवालों में लम्बाई की ओर फैली हुई रहती हैं तथा उनमें कपाट ( Valve ) नहीं होते हैं । मलोत्सर्ग के समय कब्जी के कारण अधिक प्रवाहण करने से दबाव (Pressure) के कारण उनमें रक्त भर जाता है, इस तरह प्रतिदिन प्रवाहण करने से उनमें आया हुआ रक्त वहीं सञ्चित होने लगता है तथा वह रक्त वहां बन्द हो जाता है, इस तरह शिराओं के अन्तिमभाग (Ends) फूल कर मस्से के रूप में विविधाकार के दिखाई देते हैं ॥

पित्तार्शोलक्षणम्—

**रुधिरस्रावि णस्तेषां पित्तजाः परकीर्तिताः ॥ २ ॥**

जिन अर्श में रुधिर का स्राव ( Bleeding ) होता हो उनको पित्तार्श समझना चाहिये ॥ २ ॥

विमर्शः—पित्तार्शसां लक्षणं सुश्रुते यथा—

पित्तान्नीलाग्राणि तनूनि विसर्पीणि पीतावभासानि यकृत्प्रकाशानि शुकजिह्वासंस्थानि यवमध्यानि जलौकावक्त्रसदृशानि प्रक्लिन्नानि च भवन्ति । तैरुपद्रुतः

सदाहं सरुधिरमतिसार्यते, ज्वरादाहप्रिपासामूर्च्छाश्चास्योपद्रवा भवन्ति, पीतत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ।

वातार्शोलक्षणम्—

**वातजा निःसहोत्थाना उदावर्तं प्रकुर्वते ॥ ३ ॥**

जो अर्श सूखे हो तथा जिनमें रक्तस्राव न होता हो तथा मलोत्सर्ग करने में अत्यन्त पीड़ा होती है उन्हें वातिक अर्श कहते हैं । वातिक अर्श के उपद्रव स्वरूप में उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

**विमर्शः**—वातार्शसां लक्षणं सुश्रुते यथा—तत्र मारुतात्परिशुष्कारुणवर्णानि विषमाण्यणूनि कदम्बपुष्पतुण्डिकेरिनाड़ीमुकुलसूचीमुखाकृतीनि च भवन्ति, तैरुद्गतः सशूलं संहतमुपवेश्यते, कटीपृष्ठगार्श्वमेढ्रगुदनाभिप्रदेशेषु चास्य वेदना भवन्ति, गुल्माष्ठीलाप्लीहोदराणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति, कृष्णत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति ।

श्लेष्मार्शसस्त्रिदोषजस्य च लक्षणम्

**श्वयथुं श्लेष्मजाः कुर्युः सर्वं कुर्युस्त्रिदोषजाः ॥ ४ ॥**

कफ जन्य अर्श में सूजन हो जाती है तथा त्रिदोषजन्य अर्श में तीनों दोषों के लक्षण प्रगट होते हैं ॥ ४ ॥

**विमर्शः**—श्लेष्मसन्निपातार्शसां लक्षणं सुश्रुते यथा—

श्लेष्मजानि श्वेतानि महामूलानि स्थिराणि वृत्तानि स्निग्धानि पाण्डूनि करीरपनसास्थिगोस्तनाकाराणि न भिद्यन्ते न स्रवन्ति कण्डूबहुलानि च भवन्ति, तैरुपद्रुतः सश्लेष्माणमनल्पं मांसधावनप्रकाशमतिसार्यते, शीफशीतज्वरारोचकाविपाकशिरोगौरवाणि चास्य तन्निमित्तान्येव भवन्ति, शुक्लत्वङ्नखनयनदशनवदनमूत्रपुरीषश्च पुरुषो भवति, इति श्लेष्मार्शसां लक्षणम् । सन्निपातजानि तु सर्वदोषलक्षणयुक्तानि ज्ञेयानि । इन चार प्रकार के अर्शों के अतिरिक्त दो प्रकार के ( अर्थात् रक्तार्श और सहज ) और भी भेद बताये गये हैं । सुश्रुते रक्तार्शसां लक्षणं यथा—रक्तजानि न्यग्रोधप्ररोहविद्रुमकाकणन्तिकाफलसदृशानि पित्तलक्षणानि च, यदाऽवगाढपुरीष ( प्रवृत्ति ) पीड़ितानि भवन्ति तदाऽऽर्थं दुष्टमनल्पमसृक् सहसा विसृजन्ति, तस्य चाति प्रवृत्तौ शोणितातियोगोपद्रवा भवन्ति । इति रक्तार्शसां लक्षणम् । सहजार्शसां लक्षणं यथा—

सहजानि दुष्टशोणितशुक्रनिमित्तानि, तेषां दोषत एव प्रसाधनं कर्तव्यम् , विशेषतश्चतानि दुर्दर्शनानि परुषाणि पाण्डूनि दारुणान्यन्तर्मुखानि, तैरुपद्रुतः कृशोऽल्पभुक् रसरासम्ततगात्रोऽल्पप्रजः क्षीणरेताः क्षामस्वरः क्रोधनोऽल्पाग्निर्वातशिरोऽक्षि-

अवणरोगवान्, सततमन्त्रकूजाटोपहृदयोपलेपारोचकप्रभृतिभिः पीड्यते ॥ इति सहजार्शसां लक्षणम्।

स्थानिक विकृति तथा व्यवहार की दृष्टि से अर्श के दो भेद किये गये है। प्रथम शुष्क और द्वितीय परिस्रावी, शुष्कस्राविविभेदाच्च द्विविधमर्शस्तदपि दोषप्रकोपप्रधानमेव यथोक्तं "वातश्लेष्मोल्वणान्याहुः शुष्कार्ण्यर्शांसि तद्विदुः। प्रस्रावीणि तथाऽन्यानि रक्तपित्तोल्वणानि च" इति चरकः। पाश्चात्यचिकित्सा शास्त्र में भी अर्श के दो ही भेद हैं। प्रथम-बाह्यार्श ( External Piles ) इनका शुष्कार्श में समावेश करना चाहिए। द्वितीय-आभ्यन्तरिक अर्श (Internal Piles) इनको परिस्रावि अर्श में समावेश करना चाहिए।

अथार्शः कुठाररसः—

शुद्धसूतं पलैकं तु द्विपलं शुद्धगन्धकम्।
मृतं ताम्रं मृतं लोहं प्रत्येकं तु पलत्रयम् ॥ ५ ॥
त्र्यूषणं लाङ्गली दन्ती पिरुकं चित्रकं तथा।
प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टङ्कणम् ॥ ६ ॥
उभौ पञ्चपलौ योज्यौ सैन्धवं पलपञ्चकम्।
द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् ॥ ७ ॥
मृद्वग्निना पचेत्स्थाल्यां सर्वं यावत्सुपिण्डितम्।
माषद्वयं सदा खादेद्रसो ह्यर्शः कुठारकः।
तक्रेण दाडिमाम्भोभिः पक्वकन्देन वाऽथ तत् ॥ ८ ॥

शुद्ध पारद १ पल, शुद्धगन्धक २ पल, ताम्रभस्म ३ पल, लौहभस्म ३ पल, त्र्यूषण–त्रिकटु ( सौंठ, मरिच, पिप्पली ) प्रत्येक २ पल, कलिहारी की शुद्ध जड़ का चूर्ण २ पल, दन्ती की शुद्ध जड़ का चूर्ण २ पल, पीलु के फल का चूर्ण अथवा पीलु की छाल ( Wark ) का चूर्ण २ पल, चित्रक की जड़ का चूर्ण २ पल, यवक्षार ढाईपल, शुद्ध सुहागा ढाई पल ( यवक्षार तथा टङ्कण पृथक् २ पांच पल लेवें ऐसा भी सम्प्रदाय है ), सैन्धव लवण ५ पल, गोमूत्र ३२ पल, स्नुही ( थूहर ) का शुद्ध दुग्ध ३२ पल लेकर प्रथम पाषाण की खरल में पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर ( गोमूत्र तथा दुग्ध के अतिरिक्त शेषद्रव्यों को मिला के अच्छी प्रकार चूर्ण करके एक लौह की बड़ाही अथवा अन्य उपयुक्त स्थाली सदृश पात्र में गोमूत्र और दुग्ध डालकर उपर्युक्त कज्जली आदि के मिलाने से

तैय्यार हुए चूर्ण को मिला कर चूल्हे या भट्टी पर मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। पाक करते समय थोड़ी २ देर में कलच्छी से चलाते रहना चाहिए, जब गोमूत्र और दुग्ध के कुछ जल जाने पर पिण्ड के समान हुई सिद्ध औषध को जान कर अग्नि देना बन्द कर देवे। स्वाङ्गशीतल पाक की हाथों में थोड़ा २ घृत लगा कर दो २ माशे भर की गोलियां बनाकर काचपात्र में भर कर रख देवें। इसको अर्शःकुठार रस कहते हैं। इस रस की प्रति दिन एक २ गोली प्रातः काल मट्ठे के अनुपान से अथवा दाड़िम (अनार) के रस के अनुपान से या पुटपाक करके निकाले हुए सूरणकन्द के रस के अनुपान से सेवन करने से अर्श नष्ट हो जाता है ॥ ५-८ ॥

अथ पित्ताशोंहररसः—

**मृतसूतार्कहेमाभ्रतीक्ष्णमुण्डं सगन्धकम् ।**
**मण्डूरं माक्षिकं तुल्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ ९ ॥**
**अन्धमूषागतं पाच्यं त्रिदिनं तुषवह्निना ।**
**चूर्णितं सितया मात्रं खादेत्पित्तार्शसां जयेत् ॥ १० ॥**

मृत सूत-पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तो०, अर्क-ताम्रभस्म १ तो०, हेम-स्वर्णभस्म १ तो०, अभ्रकभस्म १ तो०, तीक्ष्ण लौहभस्म १ तो०, मुण्डलौहभस्म १ तो०, शुद्ध गन्धक १ तो०, मण्डूरभस्म १ तो०, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तो० लेकर सबको खरल में डालकर अत्यन्त महीन पीसकर घृतकुमारी के स्वरस (मज्जा) के साथ एक दिन तक अच्छी प्रकार घोटकर अन्धमूषा में भर कर उस पर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर पृथ्वी में लघुपुट के समान गड्ढा बनाकर उसके अर्द्धभाग को तुषों से भरकर उन पर मूषा रख के शेष भाग को तुषों से भर कर वह्नि प्रदीप्त कर दें इस तरह तुषों के द्वारा तीन दिन तक पाक करना चाहिए। प्रति दिन जले तुषों की राख निकाल कर नये तुष देकर पाक करें, तीन दिन के बाद स्वाङ्गशीतल मूषा से सिद्ध हुए रस को निकाल के खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को प्रति दिन १ माशे भर लेकर चीनी के साथ घोट कर शीतल जल के साथ मिलाकर पान करने से पैत्तिक अर्श नष्ट हो जाता है ॥ ९-१० ॥

**विमर्शः—माशेभर की मात्रा अधिक है इसलिये रोगी की अवस्था, बल तथा**

रोग की न्यूनता, तीव्रता और चिरकालीनता का विचार करके प्रायः २ रत्ती से ४ रत्ती भर तक की मात्रा पर्याप्त है। कुछ पुस्तकों में निम्न श्लोक का अधिक पाठ है यथा—"भल्लातकं तिलं पथ्याचूर्णं गुड़समायुतम् ।
मोदकं भक्षयेन्मासात् पित्तरक्तार्शसां जयेत् ॥ इति ॥

अथ सर्वलोकाश्रयरसः—

शुद्धं सूतं पलं गन्धं गन्धार्धं तालताप्यकम् ।
अमृतं रसकं चैव तालकार्धविभागिकम् ॥ ११ ॥
एतेषां कज्जलीं कुर्याद्दृढं सम्मर्द्य वासरम् ।
त्रिदिनं मर्दयेच्चाथ दत्त्वा निम्बुजलं खलु ॥ १२ ॥
वटीकृत्य विशोष्याथ काचकुप्यां निधापयेत् ।
निष्कतुल्याऽर्कपत्रेण पिधायास्यं प्रयत्नतः ॥ १३ ॥
सार्द्धाङ्गुलमितोत्सेधं मृत्स्नया तां विलेप्य च ।
ततो भाण्डतृतीयांशे सिकतापरिपूरिते ॥ १४ ॥
निधाय सिकतामूर्ध्नि सिकताभिः प्रपूरयेत् ।
रुद्ध्वाऽऽस्यं तदधो वह्निं ज्वालयेत्सार्धवासरम् ॥ १५ ॥
स्वाङ्गशीतलितं काचघटादाकृष्य तं रसम् ।
पटचूर्णं विधायाथ ताम्रमभ्रं पलद्वयम् ॥ १६ ॥
पलार्धममृतं चैव मरिचं च चतुष्पलम् ।
एकीकृत्य क्षिपेत्सर्वं नारिकेलकरण्डके ॥ १७ ॥
साज्यो गुञ्जाद्विमानो हरति रसवरः सर्वलोकाश्रयोऽयं
वातश्लेष्मोत्थरोगान्गुदजनितगदं शोषपाण्ड्वामयं च ।
यक्ष्माणं वातशूलं ज्वरमपि निखिलं वह्निमान्द्यं च गुल्मं
तत्तद्रोगघ्नयोगैः सकलगदहरं दीपनं तत्क्षणेन ॥ १८ ॥

शुद्धपारद १ पल ( ४ तो० ), शुद्धगन्धक १ पल, गन्धक का आधा शुद्ध-हरताल अर्थात् दो तोले, गन्धक की आधी स्वर्णमाक्षिक भस्म (२ तो०) अथवा दोनों मिलाकर गन्धक की अपेक्षा आधे लेवें इस पक्ष में शुद्ध हरताल १ तोला और स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, शुद्धवत्सनाभ चूर्ण १ तोला, खर्परभस्म १ तो० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर शेषद्रव्य मिला के घोट लेवें। फिर नीम्बू के रस से अच्छी प्रकार आप्लावित करके तीन दिन तक उस रस के

साथ घोटें, घोटते २ निम्बू के रस के सूख जाने और रस डाल देना चाहिए इस प्रकार तीन दिन तक घोट लेने के पश्चात् एक २ तोले भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के उन्हें सातवार कपड़ मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर उसके मुख को एक निष्क ( ४ माशे ) भर ताम्र के पत्र से ढककर दोनों की सन्धियों को जल से पीसे हुए गुड़ और चूने के पङ्क ( पिट्ठी या कर्दम ) से लिप्त कर सुखा के उस शीशी को बालुका से भरे हुए भाण्ड के मध्य में गाड़कर भाण्ड के शेष भाग को रेत ( बालुका ) से भरकर शराव से मुख ढककर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर चूल्हे या भट्टी पर चढाकर डेढ दिन तक मन्द मध्य और तीव्र अग्नि क्रमशः जलानी चाहिए। डेढ दिन के पश्चात् स्वाङ्गशीत हुए यन्त्र से कूपी को निकालकर उस पर की मिट्टी आदि को धीरे २ खुर्चके हटाकर युक्ति से उसका भेदन करके सिद्ध हुई औषध को निकाल लें। फिर उसे खरल से महीन पीसकर कपड़े से छान कर उसमें ताम्रभस्म १ पल, अभ्रकभस्म १ पल, शुद्ध मीठे तेलिए ( वत्सनाभ ) का महीन चूर्ण अर्ध पल ( २ तो० ), कपड़े से छना हुआ काली मरिचों का चूर्ण ४ पल ( १६ तो० ) डालकर खरल में सबको मर्दन करके ठीक तरह से मिलाकर शीशी में भर कर रख देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को सर्वलोकाश्रय रस कहते हैं। इस रस को दो रत्तीभर लेकर गोघृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह रस वात विकार से उत्पन्न, कफ की विकृति से उत्पन्न रोगों को तथा गुदा के रोगों को, शोष, राजयक्ष्मा, पाण्डु, वातिकशूल, सर्व प्रकार के ज्वर, अग्निमांद्य और गुल्म को नष्ट करता है तथा यह रस यथाव्याध्यनुपान तथा यथाव्याध्यनुकूलयोगों के साथ सेवन करने से समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह रस पाचकरसों को उद्दीप्त करता है ॥ ११-१८ ॥

अथ अर्शोघ्नवटकम्—

**अर्शोघ्नं वटकं वक्ष्ये पुत्रक ? शृणु भद्रक ? ।**
**पिप्पली पिप्पलीमूलवनसूरणचित्रकम् ॥ १९ ॥**
**मरिचं कण्टकारी च रक्तपुष्पी समांशका ।**
**पलमेकं पृथक् सर्वं श्लक्ष्णं दूषदि पेषयेत् ॥ २० ॥**
**गजाजपशुमूत्रेषु शुभे भाण्डे विनिक्षिपेत् ।**
**मृद्वग्निना पचेत्सर्वं चूर्णशेषं यथा भवेत् ॥ २१ ॥**

लोणत्रयं च तत्रैव पलमेकं तु निक्षिपेत्।
अक्षप्रमाणवटकान्कुर्यादेवं पृथक्पृथक् ॥ २२ ॥
त्रिंशद्दिनानि मतिमानर्शोघ्नं दीपनं परम्।
घृततक्रसमायुक्तं भोजनं सम्प्रदापयेत् ॥ २३ ॥

हे भद्रक, अर्थात् अर्श आदिव्याधियों से पीड़ित रोगियों के भद्र अर्थात् कल्याण ( रोगनिवृत्ति से ) को करने वाले पुत्र अब मैं अर्श को नष्ट करने वाले वटक तथा उनके बनाने की विधि का वर्णन करता हूं उसे तुम सावधान चित्त होकर सुनो। पिप्पली १ पल, पिप्पलीमूल ( पिपरामूल ) १ पल, जङ्गलीसूरणकन्द १ पल, चित्रक की जड़ १ पल, काली मीरच १ पल, कण्टकारी १ पल, लाल डण्डी वाले या लाल पुष्पवाले आक की जड़ १ पल लेकर सबको कूट पीस कर कपड़े से छान लेवें। फिर एक मिट्टी की मजबूत हण्डिका में हस्ती, बकरी, गौ तथा अन्य जो मूत्रवर्ग के पशु हैं उन में से प्रत्येक का मूत्र बत्तीस २ तोले डाल-कर उपर्युक्त विधि से बने हुए चूर्ण को डाल कर पाक करना चाहिए। जब पाक करते २ पक्व औषध पिण्ड के समान गाढो हो जाय तब अग्नि देना बन्द कर दें, फिर उस में सैन्धव लवण, बिड़लवण, सौवर्च्चल प्रत्येक एक २ पल या समस्त मिलाकर महीन पीसकर एकपल भर डालकर सब को बड़ी कलच्छी से अथवा शुद्ध लकड़ी से अच्छी प्रकार से घोट के मिला कर बहेड़े के फल की गुठली अथवा १ कर्ष के बराबर की गोलियां बनाकर काच के पात्र में भरकर रख देवें। इस प्रकार से बने हुए इस अर्शोघ्नवटक को प्रतिदिन उचित मात्रा से सेवन करें। इसको ३० दिन तक सेवन करने से अर्शरोग नष्ट हो जाता है तथा यह पाचक शक्ति को बढाता है। पथ्य—घृत तथा मट्ठे के साथ सुपाच्य और बलदायक सौम्य पदा-र्थों का आहार के रूप में उपयोग करना चाहिए ॥ १–२३ ॥

अथार्शोघ्नी वटिका—

गन्धकं तारताम्रं च कृत्वा चैकत्र पिष्टिकाम्।
तत्समं चाभ्रकं तीक्ष्णं गन्धकात्पञ्चमांशकम् ॥ २४ ॥
विषं च षोडशांशेन द्वौ भागौ सूतकस्य च।
एकीकृत्य प्रयत्नेन जम्बीरद्रवमर्दितम् ॥ २५ ॥
भाजने मृण्मये स्थाप्य वराक्काथेन भावयेत्।

दशमूलशतावर्योः क्काथे पाच्यः क्रमेण हि ॥ २६ ॥
अथोत्तार्यं प्रयत्नेन वटिकां कारयेद् बुधः ।
गुञ्जात्रयप्रमाणेन हन्ति शूलं गुदाङ्कुरम् ॥ २७ ॥

शुद्ध गन्धक १ तोला, रौप्य ( रजत ) की भस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, गन्धक से पञ्चमांश ( २॥ माशाभर ) तीक्ष्णलौह भस्म तथा गन्धक की अपेक्षा षोड़शांश ( ६ रत्तीभर ) शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण तथा शुद्ध पारद दो तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर शेषद्रव्य मिला के सब को एकत्र अच्छी प्रकार से घोटकर महीन करके जम्बीरी निम्बू के रस से आप्लावित करके एक दिन तक घोट कर मिट्टी के पात्र में रख कर त्रिफला के क्काथ से ७ वार भावित करके फिर उसको कलाई की हुई बड़ी कड़ाही में डालकर सर्व औषधी से सौलह गुने दशमूल द्रव्यों के द्वारा बनाये हुए क्काथ में चूर्णशेषपर्यन्त पाक्कर के उतने ही शतावर के क्काथ में चूर्णशेष-पर्यन्त पाक करके नीचे उतार दें। शीतल होने पर तीन २ रत्ती की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से बने हुए इस रस को ३ रत्ती भर प्रतिदिन सेवन करने से सर्व प्रकार के अर्श तथा शूल आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २४–२७ ॥

अथ मूलकुठाररसः—

वरनागं तथा व्योमसत्त्वं शुल्वं च तीक्ष्णकम् ।
सर्वमेकत्र विद्राव्य क्षिप्त्वाऽऽलं चाल्पमल्पकम् ॥ २८ ॥
चालयेदनिशं यावत्तालकं त्रिगुणं खलु ।
ततस्तेन विमर्द्याथ पिष्टां कुर्याद्रसेन तु ॥ २९ ॥
ततो भल्लातकीवृक्षमूलान्तस्थां खनेच्च ताम् ।
मासादाकृष्य तां पिष्टीं गव्यदुग्धे विनिक्षिपेत् ॥ ३० ॥
ततो भल्लातकीतैलं हृतं पातालयन्त्रतः ।
आयसे भाजने स्निग्धे पिष्टिकां तां निवेश्य च ॥ ३१ ॥
प्रस्थमात्रं हि तत्तैलं जारयेदतियत्नतः ।
तत्तैलभावितैर्गन्धैः पुटित्वा भस्मतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥
ततः कार्तिकमासोत्थकोरण्टदलजै रसैः ।

रसं सम्मर्द्य सम्मर्द्य घर्मे संस्थाप्य मारयेत् ॥ ३३ ॥
तद्भस्म मेलयेत्पूर्वभस्मना समभागिकम् ।
वनसूरणनिर्गुण्डीमहाराष्ट्रीभकण्टिका ॥ ३४ ॥
वज्रवली शिखी चैषां रसैः पिष्ट्वा विशोषयेत् ।
त्रिवारं मार्कवद्रावैर्भावयित्वा विशोषयेत् ।
चूर्णीकृत्य प्रयत्नेन क्षिपेत्काचकरण्डके ॥ ३५ ॥
सोऽयं मूलकुठारको रसवरो दीप्याग्निवेल्लोत्तमा-
संयुक्तः सघृतश्च वल्लितुलितः संसेवितो नाशयेत् ।
अर्शस्याननानासिकाक्षिगुदजान्यत्युग्रपीडानि च
प्लीहानं ग्रहणीं च गुल्मयकृतौ मान्द्यं च कुष्ठामयान् ॥३६॥

वरसंज्ञकनाग ( सीसा ) एक पल, अभ्रक भस्म का सात एक पल, ताम्र-भस्म एक पल, तीक्ष्ण लौह भस्म एक पल लेकर सब को एक मजबूत मूषा अथवा कड़ाही में डालकर उसे चूल्हे पर चढाकर तपाना चाहिए। जब सब धातुएं तपाने से द्रुत (पिघल) होकर परस्पर मिल जावें तब उन में शुद्ध हर-ताल का चूर्ण थोड़ा २ डालकर लोहे की कलच्छी से चलता जाय। इस प्रकार उस द्रुति में सब द्रुति का तीन गुणा ( १२ पल ) हरताल जारित हो जाय तब कड़ाही को चूल्हे से नीचे उतार लेवें। स्वाङ्गशीतल होने के पश्चात् कड़ाही की जारित औषधि को एक पत्थर की बड़ी खरल में डालकर उस में सब औषधि के बराबर शुद्ध पारद मिलाकर अच्छी तरह से घोटकर पिष्टी ( गोला ) बनाकर उस पिष्टी को भल्लातक ( भिलावें ) वृक्ष की जड़ के भीतर खात ( गड्ढा ) बनाकर उसमें भरकर खात के मुख को उसी के अवयव ( छाल या छोडे ) से ढककर जड़ पर धूली आदि डालकर एक मास तक इसी तरह उस में पिष्टी को स्थित रखें। महीना पूर्ण होने के दूसरे दिन खात से पिष्टी को निकाल कर खरल में घोट कर गौ के दुग्ध से सातवार भावित करके अच्छी प्रकार से घोटकर सुखा के कड़ाही में डाल-कर चूल्हे पर चढा देवें। फिर एक प्रस्थभर पातालयन्त्र के द्वारा निकाले हुए भिलावों का तेल लेकर उसमें से थोड़ा २ तेल कड़ाही में डालकर उपर्युक्त औषधि के साथ जारण करना चाहिए। इस तरह जब एक प्रस्थ तेल का औषध के साथ

जारण हो जाय तब अग्नि देना बन्द कर देवें तथा स्वाङ्गशीतल होने पर कड़ाही से निकाल कर पाषाण की बड़ी खरल में डाल कर उसमें भल्लातक के तैल के द्वारा शुद्ध किये हुए सब औषध की अपेक्षा चतुर्थांश गन्धक मिलाकर अच्छी प्रकार से घोटकर एक छोटी बाहर से कपड़मिट्टी की हुई हण्डिका में भरकर शराव से मुख बन्द करके सन्धिबन्धन करके गजपुट में फूंक देवें। इस तरह पुटपाक करने के पश्चात् स्वाङ्गशीत होने पर हण्डिका से निकाल कर खरल में महीन पीस कर सिद्ध हुई भस्म को सुरक्षित रख देवें। निम्न रीति से शुद्ध पारद की भस्म बनानी चाहिए। शुद्ध पारद को पत्थर की खरल में डाल कर कार्तिक के महीने में फलने फूलने वाले कोरण्ट ( झिण्टी या श्वेत पियावांसा ) के पत्रों के स्वरस के साथ खरल कर दिन भर ( सूर्योदय से सूर्यास्त तक ) सूर्य की धूप में खरल को रख देवें। रस के सूख जाने पर फिर रस डालकर खरल करके तीव्र धूप में रखना चाहिए। यह क्रिया तब तक प्रतिदिन करनी चाहिये जब तक पारद की भस्म न हो जाय। अथवा पारद को पियावांसे के रस से अच्छी प्रकार घोटकर पियावांसे को पत्थर पर पीसकर उससे बने कल्क की मूषा बना कर उसमें उक्त-विधि से घोटे हुए पारद को भरकर सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। इस प्रकार सात पुट देने ही से पारद की भस्म हो जाती है। इस प्रकार से बनी हुई पारद की भस्म तथा उतनी ही उपर्युक्त बनी हुई भस्म लेकर दोनों को खरल में डालकर महीन पीसकर जङ्गली सूरणकन्द, निर्गुण्डीपत्र, जलपिप्पली, हस्ति-कर्णपलाश, स्नुही ( थूहर ), अपामार्ग इन औषधियों के स्वरस अथवा क्वाथ से पृथक् २ एक २ वार अच्छी प्रकार आप्लावित करके घोटकर सुखा लेनी चाहिए। फिर भृङ्गराज के स्वरस से भी तीन वार भावित करके घोटकर शुष्क कर के काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को मूलकुठाररस कहते हैं। इस रस को १ वल्ल (३ रत्ती) भर लेकर अजवाईन, चित्रकमूल और वाय-विडङ्ग के चूर्ण तथा घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करने से आंख के समीप के चर्म के अर्श, नासिका के अर्श, मुख के अर्श, गुदा के अर्श नष्ट हो जाते हैं तथा उनसे उत्पन्न हुई तीव्र वेदना भी शान्त हो जाती है तथा यह रस प्लीहा की वृद्धि, यकृत की वृद्धि, अग्निमांद्य, गुल्म, ग्रहणी तथा सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करता है ॥ २८–३६ ॥

अथ महोदयप्रत्ययसाररसः—

रसग्रस्तसमुद्गीर्णगन्धकस्य पलत्रयम् ।
मृतसूताभ्रताम्रायः कर्षं कर्षं पृथक् पृथ ॥ ३७ ॥
पलं हिङ्गुलचूर्णस्य माक्षिकस्य पलत्रयम् ।
पलं कम्पिल्लकस्यापि विषस्यार्धपलं तथा ॥ ३८ ॥
सप्ताहं मर्दयेत्सर्वं दत्त्वा चूर्णोदकं मुहुः ।
ततस्तद्गोलकं कृत्वा सप्ताहं चातपे क्षिपेत् ॥ ३९ ॥
गुडचूर्णं शिलाचूर्णं लिम्पेदङ्गुलिकाघनम् ।
त्रिपलं गन्धकं दत्त्वा क्रौञ्चयामथ च गोलकम् ॥ ४० ॥
गोलकस्योपरिष्टाच्च क्षिपेत्तालपलत्रयम् ।
संरुध्याऽतिप्रयत्नेन दद्याद्गजपुटं खलु ॥ ४१ ॥
स्वाङ्गशीतलमाहृत्य गोलकं लेपनैः सह ।
विचूर्ण्य सप्तवारं हि विषतिन्दुफलोद्भवैः ॥ ४२ ॥
द्रवैरथाऽऽतपे शुष्कं क्षिपेद्रम्ये करण्डके ।
त्रिशदंशेन वैक्रान्तभस्म तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ ४३ ॥
अयं हि नन्दीश्वरसम्प्रदिष्टो रसो विशिष्टः खलु रोगहन्ता ।
निःशेषरोगेष्वहतप्रतापो महोदयप्रत्ययसारनामा ॥ ४४ ॥
हन्यात्सर्वगुदामयान्क्षयगदं कुष्ठं च मन्दाग्नितां
शूलाध्मानगदं कफं श्वसनतामुन्मादकापस्मृती ।
सर्वा वातरुजो महाज्वरगदान्नानाप्रकारांस्तथा
वातश्लेष्मभवं महामयचयं दुष्टग्रहण्यामयम् ॥ ४५ ॥

शुद्ध पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसको आतसी शीशी या कवचीयन्त्र में भरकर बालुकायन्त्र के द्वारा रससिन्दूरनिर्माण करने के लिये पाका करने से रससिन्दूर कूपी की नालिका में उड़कर जम जाता है तथा उसके नीचे के भाग में पारद से उद्गिरीत गन्धक रह जाता है, इस प्रकार का गन्धक ३ पल, अथवा प्रथम पारद को गन्धक के साथ मूर्च्छनविधि से मूर्छित करके फिर उसका ऊर्द्ध्वपातन यन्त्र के द्वारा उत्थापन करने से पारद के ऊपर उड़जाने से उसके नीचे जो उद्गीरित ( वान्त या त्यक्त ) गन्धक रह जाता है ऐसे गन्धक का ३ पल

तथा पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ कर्ष, अभ्रकभस्म १ कर्ष, ताम्रभस्म १ कर्ष, लौहभस्म १ कर्ष, शुद्ध हिङ्गुल १ पल ( ४ तो० ), स्वर्ण माक्षिक भस्म ३ पल, काम्पिल्य ( कबीला ) का चूर्ण १ पल, शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण आधा पल लेकर सब को खरल में महीन पीस कर चूने के पानी के साथ सात दिन तक घोट-कर उसका गोला बनाकर सात दिन तक तीव्र धूप में रख कर सुखाना चाहिए, फिर शुद्ध मनःशिला के चूर्ण को गु के साथ ( थोड़ा सा जल डालकर ) पीसकर उस गोले के चारों ओर एक अङ्गुल मोटा लेप करके सुखाकर एक दृढ तथा बड़ी मूषा के भीतर तीन पल शुद्ध गन्धक डालकर उस पर उस गोले को रखकर उसके ऊपर शुद्ध हरताल का ३ पल भर चूर्ण डालकर मूषा के मुख को बन्द करके उसके सम्पूर्ण भाग पर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर गजपुट में रखकर फूंक देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल मूषा से लेपित किये हुए मनःशिला, गन्धक, हरताल आदि के सहित औषध के गोले को निकाल कर खरल में सब को महीन पीसकर शुद्ध कुचले के क्वाथ से सात वार भावित करके सब औषधि के तोल की अपेक्षा तीसवां भाग दग्ध हीरक की भस्म मिलाकर उत्तम प्रकार से घोट कर सुखा के काच की शीशी में सिद्ध हुए रस को भर देना चाहिए। नन्दिश्वर नाम के आचार्य के द्वारा कथित यह महोदयप्रत्ययसार नामक सर्वोत्तम रस यथाव्याध्यनुपानपूर्वक सेवन करने से सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। विशेष करके यह रस गुदा के अर्श आदि रोग, क्षयरोग, कुष्ठरोग, मन्दाग्नि, शूल, आध्मान ( पेट का फूलना-अफारा ), कफरोग, श्वाससंस्थानसम्बन्धि विकार, उन्माद, अपस्मार सर्व प्रकार के वातरोग, नाना प्रकार के दारुण ( सन्नि-पातादिक ) ज्वर, वातश्लेष्मजन्यज्वर और भयङ्कर ग्रहणी रोग को नष्ट करता है। मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती भर तक, अनुपान—यथारोगानुसार ॥३७-४५॥

अथ कनकसुन्दररसः—

स्याद्रसं धौतमाक्षीकं कान्ताभ्रं नागहाटकम्।
पृथ्वीभटेन संतुल्यं सर्वतुल्यं च गन्धकम् ॥ ४६ ॥
दत्त्वा विद्याधरे यन्त्रे पुटेदारण्यकोत्पलैः।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य त्र्यूषणेन विमिश्रयेत् ॥ ४७ ॥
अर्शोव्याधौ कटीशूले चक्षुःशूले च दारुणे।

सन्निपाते क्षये कासे श्वासे मन्दानले ज्वरे ॥ ४८ ॥
कर्णशूले शिरः शूले दन्तशूले प्रयोजयेत्।
पीनसे प्लीहि हृच्छूले ग्रन्थिवाते च दारुणे ॥ ४९ ॥
एकाङ्गे वा धनुर्वाते कम्पवाते च मूर्च्छिते ॥
ज्वरांश्च विषमान्सर्वान् हन्ति रोगाननेकधा ॥ ५० ॥
सेवितः पथ्ययोगेन रसः कनकसुन्दरः।
गुञ्जामात्रं ददीतास्य यथायुक्तानुपानतः ॥ ५१ ॥
घृतेन संयुतो वाते मधुना पैत्तिके ज्वरे।
पिप्पल्या श्लैष्मिके देयः पित्तोद्भूते सचन्दनः ॥ ५२ ॥
तक्रेण श्लेष्मवातोत्थे वातपित्ते घृतान्वितः।
श्लेष्मपित्ते चार्द्रकेण निर्गुण्ड्या सान्निपातिके ॥ ५३ ॥
फलत्रयेण शूलेषु विषमेषु ज्वरेष्वपि।
आर्द्रकेणाथ वा दद्याद्धिमान्द्ये विशेषतः ॥ ५४ ॥
अभिष्यन्दे शिरःशूले गायत्रीबोलसंयुतम्।
पक्षिमांससमायुक्तं कफवाते च मूर्च्छिते ॥ ५५ ॥
एकाङ्गे च धनुर्वाते क्षीरयुक्तं च पीनसे।
पाण्डुरोगे क्षये कासे मरिचाज्यैश्च कामले ॥ ५६ ॥
अजमोदाविडङ्गैश्च नाभिशूलेऽग्निमान्द्यजित्।
रूक्षज्वरेऽरुचौ देयः कदलीफलसंयुतः ॥
बालेनाऽर्धकटीशूले भाषितं नागबोधिना ॥ ५७ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, रजतमाक्षिक ( रुपामाखी ) की भस्म १ तोला, कान्त-लौहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, नागभस्म १ तोला, सुवर्णभस्म १ तो० तथा सबके बराबर ( ६ तोला ) शुद्ध गन्धक लेकर सबको खरल में बारीक पीस कर जल के साथ मर्दन करके गोला बनाकर विद्याधरयंत्र में बन्द करके जङ्गली उपलों की अग्नि से पुट देना चाहिए। फिर स्वाङ्गशीतलयंत्र से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें समान भाग त्रिकटु का चूर्ण मिलाकर महीन पीस के काच की शीशी में भर देवें। इस रस को उचित मात्रा से तथा यथाव्याध्यनुपानपूर्वक सर्व प्रकार के अर्श, कटि प्रान्त का शूल, भयङ्कर नेत्रशूल,

सन्निपात, क्षयरोग, कासरोग, श्वासरोग, मन्दाग्नि, ज्वर, कर्णशूल, शिरःशूल, दन्तशूल, पीनस ( नासारोग ), प्लीहवृद्धि, हृदयशूल, ग्रन्थिवात ( प्लेग ), एकाङ्गवातविकृति, धनुर्वात, कम्पवात और विविध प्रकार की मूर्च्छा में प्रयुक्त करना चाहिये। यह रस विषमज्वर ( मलेरिया ) तथा अनेक प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है। इस कनकसुन्दर रस को एक रत्ती भर की मात्रा से पथ्यापथ्य का विचार रखते हुए यथारोगानुकूल अनुपानों के साथ सर्व रोगों में देना चाहिए। इस रस को प्रायः गोघृत के साथ वातजन्य रोगों में तथा मधु ( शहद् ) के साथ पित्तजन्य रोगों में तथा पित्तजन्य ज्वर में और पिप्पली के चूर्ण के साथ कफ जन्य रोगों में तथा विशेष करके कफ जन्य ज्वर में, चन्दन के क्वाथ अथवा चूर्ण के साथ पैत्तिक ज्वर में, तक्र ( मट्ठे ) के साथ कफवातजन्य ज्वर में, घृत के साथ वातपित्तजन्य ज्वर में, कफपित्त जन्य ज्वर या अन्य विकारों में अदरख के स्वरस के साथ तथा सान्निपातिक ज्वर में निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस या चूर्ण के साथ तथा त्रिफला के क्वाथ या चूर्ण के साथ शूलरोग तथा सर्व प्रकार के विषमज्वरों में तथा विशेष करके अग्निमांद्य रोग में अदरख के स्वरस के साथ सेवन कराना चाहिए। इस रस को अभिष्यन्द तथा शिरःशूलरोग में खदिर की त्वचा के क्वाथ अथवा खदिर सत्त्व और बोल चूर्ण के साथ तथा कफजन्य विकार और मूर्च्छा की अवस्था में पक्षियों के मांस के साथ या उनके मांस रस के साथ देना चाहिए। एकाङ्गवात ( पक्षाघात ) धनुर्वात और पीनस ( नासारोग ) में गोदुग्ध के साथ तथा पाण्डुरोग, क्षय, कास, श्वास तथा कामला रोग में मरिचों के चूर्ण और घृत के साथ देना चाहिए। इस रस को नाभिशूल और अग्निमांद्य रोग में अजवाईन तथा वायविडङ्ग के चूर्ण के साथ सेवन कराना चाहिए तथा रुग्णज्वर और अरुचि-रोग में केले के पके हुए फल के साथ सेवन कराना चाहिए। इस रस को अर्द्ध कटीशूलरोग में सुगन्धबाला अथवा हीराबोल के साथ उपर्युक्त मात्रा के अनुसार देनी चाहिए। इस रस को नाग बोधिनामक बौद्धमतावलम्बी आचार्य ने कहा है। ४६-५७।

अथ अर्केशः—

**नागं पारदगन्धकं त्रिलवणं वार्यर्कजं मेलये-**
**देकैकं च पलं पलं त्रयमतः पञ्च क्रमान्मर्दयेत्।**

सर्वं तद्दिवसत्रयं तदनु तद्दत्त्वा पुटं भावनाः
कुर्यात्सत्रिफलाग्निवेतसरसैः पञ्चाधिकार्विंशतिः ॥ ५८ ॥
पञ्चैतत् क्रमशस्ततो गुडभवैर्दत्तोऽस्य वल्लो जलै-
र्हन्त्यार्शांस्यखिलानि सूरणधृतैस्तस्यान्नमस्मिन्हितम्
अर्कंशः परिवर्ज्यतामिति मुनिः श्रीवासुदेवोऽवदत्
कूष्माण्डीफलमाषपायसमतिव्यायाममर्कातपम् ॥ ५९ ॥

नागभस्म एक पल, शुद्ध पारद एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, सैन्धव लवण एक पल, सामुद्र लवण एक पल, विड्लवण एक पल ( अथवा तीनों लवण मिलाकर एक पल लेवें ) तथा वारिज अर्थात् जलमें होने वाले शङ्ख की भस्म एक पल अर्कज अर्थात् ताम्र की उपधातु नील तुत्थ(१) एक पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बना कर उसमें शेषद्रव्य मिलाकर सब को महीन पीसकर सम्पुट में बन्द कर के वालुकायन्त्र में पाक करें, फिर स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध औषध को निकाल कर खरल में महीन पीसकर हरड़ का क्वाथ, बहेड़े का क्वाथ, आंवलों का रस अथवा क्वाथ चित्रक की जड़ का स्वरस या क्वाथ तथा अम्लबेंत का रस लेकर क्रमशः एक २ रस या क्वाथ से पांच २ वार भावना देकर अच्छी प्रकार मर्दन करें, फिर पुराने गुड़ के जल अर्थात् जल में गुड़ घोल कर उससे पांच वार अथवा सातवार उपर्युक्त औषधि को भावित करके अच्छीप्रकार से घोटकर हाथों में थोड़ा २ घृत लगाकर तीन २ रत्तीभर की गोलियां बनाकर काचपात्र में भर-कर रख देवें। इस रस को एक वल्ल भर की मात्रा से लेकर ६ माशेभर सूरणकन्द के चूर्ण और एक तोले गोघृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सर्व प्रकार के अर्श नष्ट हो जाते हैं। इस रस के सेवन करते समय पथ्य में घृत से संस्कृत सूरण की शाक तथा अन्य स्निग्ध, सुपाच्य और बलाग्नि वर्द्धक पदार्थों का सेवन करना चाहिए तथा कोहड़े (काशीफल या कुष्माण्ड) की शाक, उड़दी की दाल, पायस अर्थात् दुग्ध में क्षीरपाक विधि से पकाया हुआ पायसान्न ( अत्यन्त ग-रिष्ठ होने से ) वर्जित है तथा अतिव्यायाम, धूप में भ्रमण करना आदि कर्म छोड़

( १ ) ( तुत्थं ताम्रोपधातुर्हि किञ्चित्ताम्रेण तद्भवेत् )

देना चाहिए। अवेंश रस के सेवन में इस पथ्यापथ्य की व्यवस्था को श्रीवासुदेव नामक आचार्य ने कहा है तथा इस रस को भी उन्होंने ही प्रथम कहा है॥५८-५९॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने "वार्धकजम्" इस पद का "वारि" अर्कजम्, ऐसा पदच्छेद करके आक के पत्तों का जल ( स्वरस ) अर्थ किया है तथा उससे कज्जली, और नागकस्मादिक पदार्थों को भावित करके पुट देना चाहिए ऐसी विधि लिखी है परन्तु 'वार्धकजं, इस पद का वार्धकाभ्यां जलताम्राभ्यां जातमर्थाद् वारिजं शङ्खः, अर्कजञ्च नीलतुत्थम्, यह अर्थ करने ही से सम्पूर्ण श्लोक का मूलार्थ स्पष्ट हो जाता है। इस अर्थ से नाग, पारद और गन्धक एक त्रिक तथा सैन्धव, समुद्र, विड्लवण और शङ्ख तथा नीलतुत्थ को लेकर पाञ्च पदार्थों का पञ्चक बन जाता है।

अथ तीक्ष्णमुखरसः—

**रसेन्द्रहेमार्कविडाऽऽलगोल-सुरायसं लोहमलाभ्रगन्धाः॥**
**ताप्यं च कन्यारसमर्दितोऽयं पक्वः पुटे तीक्ष्णमुखोऽर्शसां स्यात्॥६०॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर एक तोला, स्वर्णभस्म एक तोला, ताम्रभस्म एक तोला, बिड़ाल—शुद्धहरताल एक तोला, गोला—शुद्ध मनःशिला एक तोला, सुरायस—तीक्ष्ण-लौहभस्म एक तोला, लोहमल-मण्डूरभस्म एक तोला, अभ्रकभस्म एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला, ताप्य—स्वर्णमाक्षिकभस्म एक तोला लेकर सबको खरल में डालकर महीन चूर्ण करके घृतकुमारी के स्वरस की सात भावना देकर अच्छी प्रकार मर्दन करके अन्धमूषा में बन्द करके उस पर कपड़ मिट्टी करके पुट दे देना चाहिए। स्वाङ्ग शीतलयन्त्र से सिद्ध हुए रस को निकाल करके खरल में महीन चूर्ण करके काच के पात्र में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए रस को तीक्ष्णमुख रस कहते हैं। यह रस १ रत्ती से २ रत्तीभर तक उचितानुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अर्श में लाभ करता है॥६०॥

विमर्शः—रसेन्द्र शब्द से रससिन्दूर अथवा पारद की भस्म लेना चाहिए। प्रायः अन्यरस के ग्रन्थों में जो तीक्ष्णमुखरस के निर्माण का वर्णन है उन सब में रस सिन्दूर अथवा पारद भस्म के लेने ही का निर्देश आया है रसरत्नाकर में तीक्ष्णमुखरस के निर्माण का प्रारम्भिक पाठ इस तरह का है यथा—"मृतसूताभ्रहेमार्क" इति। तथा रसेन्द्रसार संग्रह में भी "मृतसूतार्कहेमाभ्रम्" इसी आशय का पाठ है। इस रस के पाक करने के विषय में रसेन्द्रसार संग्रह में इस प्रकार का वर्णन है यथा—अन्धमूषागतं सर्वं ततः पाच्यं दृढाग्निना" अर्थात् सबको घोटकर अन्धमूषा में बन्द करके दीवाग्नि में पकावें। रसरत्नाकर में इस रस को पाक करने का निर्देश इस

प्रकार है यथा—"अन्धमूषागतं पश्चात् त्रिदिनन्तु तुषाग्निना"। अर्थात् सब औषधि को भावनादिक क्रिया करने के पश्चात् सुखा कर अन्ध मूषा में बन्दकरके पृथ्वी में गड्ढा खोद कर गड्ढे के अर्द्धभाग को तुषों से भर कर उन पर मूषा रख कर शेष भाग को फिर तुषों से भरकर अग्नि सन्दीप्त कर देनी चाहिए। यह पाक तीन दिन तक करना चाहिए। अन्धमूषा की परिभाषा प्रायः बहुत से रसग्रन्थों में नहीं मिलती है। किन्तु "रसार्णव" के चतुर्थ पटल में गोस्तनी मूषा ही अन्धमूषा के नाम से लिखी गई है यथा—

"अन्धमूषा तु कर्त्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
विधानकसमायुक्ता किञ्चिदुन्नतमस्तका॥" इति रसार्णवेचतुर्थपटलः।

अथार्शःकुठाररसः—

**श्रेष्ठा दन्त्यग्नियुग्मत्रिकटुकहलिनीपीलुकुम्भं विपक्वं**
**प्रस्थे मूत्रस्य सस्नुक्पयसि रसपलं द्वे पले गन्धकस्य।**
**लोहस्य त्रीणि ताम्रात्कुडवमथ रजःक्षारयोश्चापि पञ्च**
**क्षिप्त्वा स्थाल्यां पचेत्तु ज्वलति दहनतश्चूर्णमर्शःकुठारः॥६१॥**

श्रेष्ठा—त्रिफले का चूर्ण १ तोला, दन्ती की मूल का चूर्ण १ तोला, अग्नियुग्म अर्थात् चित्रकचूर्ण १ तोला तथा शुद्धभल्लातक चूर्ण १ तोला, त्रिकटु (सौंठ, मरिच, पिप्पली) का चूर्ण १ तोला, हलिनी अर्थात् कलिहारीकी शुद्ध जड़का चूर्ण १ तोला, पीलुवृक्ष की जड़ का चूर्ण १ तोला, कुम्भअर्थात् त्रिवृत की जड़ का चूर्ण १ तोला, गोमूत्र एक प्रस्थ, (६४ तो०), शुद्ध किया हुआ थूहर का दुग्ध १ प्रस्थ, शुद्ध पारद १ पल (४ तो०), शुद्ध गन्धक २ पल (८ तो०), लोहभस्म ३ पल (१२ तो०), ताम्र की भस्म (ताम्रात् रजः) १ कुडव (१६ तो०), यवक्षार और टङ्कणक्षार दोनों मिलाकर ५ पल (२० तो०, कुछ टीकाकारों ने पृथक्२ एक२ पल लेने को लिखा है) लेवें। सर्व प्रथम पारद और गन्धक की पाषाण की खरल में कज्जली बनाकर शेष गोमूत्र तथा स्नुही दुग्ध से अतिरिक्त अन्य शेष पदार्थों को मिलाकर सब को अच्छी प्रकार महीन पीस लेवें। फिर एक लोहे की कलईदार बड़ी कड़ाही में गोमूत्र और स्नुही का दुग्ध डालकर उस में उपर्युक्त सब औषधियों के चूर्ण को डालकर कड़ाही को भट्टी या बड़े चूल्हे पर चढाकर मन्दर२ अग्नि के द्वारा पाक करना चाहिए। पकाते समय लोहे की कलच्छी से औषधि को चलाते रहना चाहिए। इस तरह पाक करते२ जब मूत्र

और दुग्ध जलीयांश आदि नष्ट हो जाय तथा औषधि पिण्ड के रूप में हो जाय तब अग्नि देना बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार पकाने से जलीयांश के नष्ट हो जाने पर चूर्णरूप में शेष रही हुई सिद्ध औषधि को स्वाङ्गशीतल होने के पश्चात् कड़ाही से निकालकर खरल में महीन पीस कर काच पात्र में भरकर रख देवें। इसको अर्शकुठाररस कहते है। इस रस को २ रत्ती से ४ रत्ती भर तक प्रतिदिन सेवन करने से सब प्रकार के अर्श नष्ट हो जाते हैं॥ ६१॥

विमर्शः—इस अर्शःकुठाररस के बनाने के लिये गोमूत्र तथा स्नुही दुग्ध की मात्रा का उल्लेख रसरत्नाकर ग्रन्थ में इस प्रकार है यथा—

"द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरञ्च तत्समम्" इति।

रसेन्द्रसार संग्रह में इस रस के निर्माण की विधि इस प्रकार है यथा—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मृतलौहञ्च ताम्रकम्।
प्रत्येकं द्विपलं दन्ती त्र्यूषणं शूरणं तथा॥ १॥
शुभाटङ्कयवक्षार सैन्धवं पलपञ्चकम्।
पलाष्टकं स्नुहीक्षीरं द्वात्रिंशच्च गवां जलैः॥ २॥
आपिण्डितं पचेदग्नौ खादेत् माषद्वयं ततः।
रसश्चार्शः कुठारोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः॥ ३॥ इति।

त्रैलोक्यतिलकरसः—

वज्रकृष्णाभ्रजं सत्त्वं शोधितं काचटङ्कणम्।
रेतयित्वा रजःकृत्वा भर्जयित्वा घृतेन तत्॥ ६२॥
अष्टांशसस्यकोपेतं पुटेद्वारत्रयं ततः।
त्रिवारं नृपवर्तेन लुङ्गस्वरसयोगिना॥ ६३॥
चतुर्वारं च वर्षाभूवासामत्स्याक्षिकारसैः।
गुग्गुलुत्रिफलाक्वाथस्त्रिंशद्वाराणि यत्नतः॥ ६४॥
तुल्यांशरसगन्धोत्थकज्जल्याऽष्टांशभागया।
पुटेत्पञ्चाशतं वारान्मर्दयेच्च पुटे पुटे॥ ६५॥
शोधितं रेतितं कान्तसत्त्वं च घृतमर्दितम्।
पुटेदष्टांशदरदैः संयुक्तं लकुचाम्बुना॥ ६६॥
दशवारं तथा सम्यक् तारं शुद्धं मनोह्वया।
तथाविंशति वाराणि वलिना मीनदुग्धसैः॥ ६७॥

दशवाराणि ताप्येन कृष्णगोघृतयोगिना ।
उभयं समभागं तत्पुटेन्निर्गुण्डिकारसैः ॥ ६८ ॥
रसगन्धोत्थकज्जल्या दशवारं पुटेत्पुनः ।
तस्मिन्नष्टांशभागेन क्षिपेद्वैक्रान्तभस्मकम् ॥ ६९ ॥
राजावर्तकलांशेन समभागेन पर्पटी ।
तत्सर्वं परिमर्द्याथ भावयित्वाऽऽर्द्रकाम्बुना ॥ ७० ॥
गुडूच्याः स्वरसेनापि भृकदम्बरसेन वा ।
भृङ्गराजरसेनापि चित्रमूलरसेन च ॥ ७१ ॥
व्याघ्रगञ्जाकिनीकन्दैर्भूयोऽप्यार्द्रद्रवेण च ।
पटचूर्णमतः कृत्वा क्षिपेच्छुद्धकरण्डके ॥ ७२ ॥
त्रैलोक्यतिलकः सोऽयं ख्यातः सर्वरसोत्तमः ।
सर्वव्याधिहरः श्रीमाञ्छम्भुना परिकीर्तितः ॥ ७३ ॥
उदावर्तं च विड्बन्धं व्यथां च जठरोद्भवाम् ।
लोहलं मन्दबुद्धित्वं शूलित्वमपिबन्ध्यताम् ॥ ७४ ॥
सूतिरोगानशेषांश्च शूलं नानाविधन्तथा ।
परिणामाख्यशूलञ्च तथा भिन्द्यात्समुत्कटम् ॥ ७५ ॥
रक्तगुल्मं च नारीणां रजःशूलं च दुःसहम् ।
अनुपानं च पथ्यं च तत्तद्रोगानुरूपतः ॥ ७६ ॥

काले वर्ण वाले वज्राभ्रकभस्म का सत्त्व १ तोला तथा काचलवण ( काचाख्यलवण ) १ तोला, शुद्ध टङ्कण १ तोला लेकर सब को खरल में महीन पीसकर लोहे के तवे या छोटी कड़ाही में थोड़ा सा घृत डालकर भून लेना चाहिए । फिर भूनने के बाद खरल में डालकर उसमें सब चूर्ण का अष्टमांश ( ४। माशे भर) खर्पर भस्म (सत्यक) मिलाकर अच्छी प्रकार से घोटकर शराव सम्पुट करके गजपुट दे देवें । इस प्रकार बार २ उपर्युक्त मात्रानुसार खर्परभस्म डालकर तीन पुट दे देवें । पश्चात् सब औषध से अष्टमांश शुद्ध राजावर्त मिलाकर सबको महीन पीसकर एकदिन तक जम्बीरी निम्बू के रस के साथ खरल करके शराव सम्पुट करके गजपुट दे देवें । इस प्रकार बार बार अष्टमांश शुद्ध राजावर्त और जम्बीरी निम्बू के रस के साथ घोटकर तीन पुट देवें । फिर इस रस को पुनर्नवा (वर्षाभू),

अडूसा ( बासा ) और मत्स्याक्षी ( मछैछी ) का स्वरस अथवा क्वाथ बनाकर उसके साथ एकदिन तक खरल करके सूखने पर सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें। इस तरह प्रत्येक वार उपर्युक्त क्वाथ के साथ घोटकर चारपुट देने चाहिए। फिर गूगल और त्रिफला के क्वाथ के साथ बारम्बार घोटकर ३० वार गजपुट में फूंकना चाहिए। फिर उसको खरल में महीन पीसकर उसमें समान भाग पारद और गन्धक से बनी हुई कज्जली सब चूर्ण की अपेक्षा अष्टमांशभर (५ माशे) मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें। इस तरह प्रत्येक वार अष्टमांश भर कज्जली मिलाकर ५० पुट देने चाहिए। प्रत्येक पुट में कज्जली मिलाकर एक दिन तक घोटना चाहिए, फिर पुट देना चाहिए। इस तरह इस भस्म को बनाकर रख लें। फिर रेती से रेत कर कान्तलौह के छोटे २ टुकड़ों का तैलतक्रादि में साधारण शोधन करके त्रिफला के क्वाथ में सात वार प्रतप्त करके बुझाकर यथाविधि भानुपाक और स्थालीपाक कर के कड़ाही के अन्दर थोड़ा सा घृत मिलाकर उसे भून कर खरल में डालकर अष्टमांश शुद्ध हिङ्गुल और बीजोरे निम्बू के रस के साथ अथवा बड़हर के फल के रस या क्वाथ के साथ अच्छी प्रकार से घोटकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें। फिर उसमें मनःशिला के द्वारा शुद्ध की हुई ( भस्म की हुई ) अष्टमांश भर चांदी मिलाकर १० वार पुट देना चाहिए। प्रत्येक पुट में अष्टमांश रजतभस्म मिलानी चाहिए फिर उसमें अष्टमांश शुद्ध गन्धक डालकर महीन चूर्ण करके मछेछी के स्वरस के साथ एकदिन तक खरल करके २० पुट देने चाहिए। प्रत्येक पुट में अष्टमांश शुद्धगन्धक और मछैछी का रस डालकर अच्छी प्रकार सबको घोटना चाहिए। फिर उस औषध में अष्टमांश स्वर्णमाक्षिकभस्म मिलाकर काली गाय के घृत से आप्लावित करके खूब घोटकर पुट देवें। इस प्रकर १० पुट देनें चाहिए। प्रत्येक वार लौहे की अपेक्षा अष्टमांश स्वर्णमाक्षिकभस्म और घृत डाल कर घोटना चाहिए। इस तरह लौह की भस्म तैय्यार करनी चाहिए फिर उपर्युक्त रीति से बनाई हुई प्रथम भस्म तथा यह लोहे की भस्म दोनों को समान भाग लेकर खरल में घोटकर एकदिन तक निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस के साथ अच्छी प्रकार खरल करके सम्पुट करके गजपुट में पाक करें। फिर इसे खरल में डालकर इन दोनों भस्म की अपेक्षा समानभाग पारद गन्धक

से बनी हुई कज्जली अष्टमांश भर मिलाकर अच्छी तरह से घोटकर पुट देना चाहिए। इस तरह प्रत्येक वार दोनों भस्मों की अपेक्षा अष्टमांश पारद गन्धक की कजली मिलाकर घोट के १० पुट देने चाहिएं। फिर दोनों भस्मों की अपेक्षा अष्टमांश वैक्रान्त भस्म मिलाकर घोट के बाद में राजावर्त की भस्म दोनों भस्मों की अपेक्षा षोड़शांश तथा दोनों भस्मों के बराबर समान पारद और गन्धक की कजली से बनाई हुई पर्पटी मिलाकर सब को खरल में महीन चूर्ण करके अदरख के रस के साथ एकदिन तक घोटना चाहिए। फिर इसी तरह एक २ दिन तक गुडूची के स्वरस से, भृकदम्ब के क्वाथ से, भृङ्गराज के स्वरस से, चित्रक की जड़ के क्वाथ से, त्रिकटु के क्वाथ से तथा गजा ( गाजा ) के क्वाथ से, किनि (वृहती) के क्वाथ से अथवा गजाकिनी ( विजयकन्द ) के क्वाथ से घोटकर फिर एक दिन तक अदरख के रस के साथ घोटकर सुखा के महीन कपड़े से चूर्ण कर के छानकर काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को त्रैलोक्यतिलक रस कहते हैं। यह सब रसों में उतम रस है तथा सर्व प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। इस रस को श्रीमहादेवजी ने सर्व प्रथम बताया है। यह रस उचित मात्रा से तथा यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से उदावर्त्त, मलावरोध ( कब्जी ), पेट की पीड़ा, लोहल अर्थात् दूषितरक्त से उत्पन्न व्याधि, मन्दबुद्धित्व ( मूर्खता ), शूलरोग, बन्ध्यारोग, समग्र सूतिका रोग, नाना प्रकार के शूल तथा उत्कट परिणाम शूल, स्त्रियों के रक्तगुल्म और असह्य रजःशूल को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करते समय—पथ्यरोगानुसार अनुपान तथा पथ्य का सेवन करना चाहिए॥ ६२–७६ ॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने काच शब्द से काचाख्यलवण न लेकर शुद्ध स्फटिक मणि लेने का निर्देश किया है। कहीं २ "चतुर्वारञ्च वर्षाभूवासामत्स्याक्षिकारसैः, इसकी जगह पर "चतुर्वारञ्च ताप्येन वातारिस्नेहयोगिना। दशवारञ्च वर्षाभूवासामत्स्याक्षिकारसैः॥" ऐसा पाठान्तर है। किसी २ पुस्तक में या अन्य रसग्रन्थों में इस रसनिर्माणादिकविषयकश्लोकों के पश्चात्—

"कान्तवैक्रान्त शुल्वाभ्ररसगन्धकभस्मना।
सैषावर्ति गुदे धार्या सस्नुक् क्षीरेण सोषणा॥ १॥
सूरणं कासमर्दन्तु शिग्रुवार्ताकवास्तुकम्।

सुपक्वं भोजयेच्छाके पथ्यं गोधूमसक्तुभिः ॥ २ ॥"
इस प्रकार का अधिक पाठ है। इति।

अथ सामान्योपचाराः—

तत्र वचादिमोदकः—

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं जीरनागरम्।
मरिचं पिप्पली कुष्ठं पथ्या वह्नियजमोदकम् ॥ ७७ ॥
क्रमोत्तरगुणं चूर्णं सर्वेषां द्विगुणं गुडम्।
कर्षं चाग्निजलेनानुपिबेद्वातार्शसां जये ॥ ७८ ॥

वच का चूर्ण १ तोला, अग्नि में भूनी हुई हींङ्ग २ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण ३ तोला, सैन्धवलवण ४ तोला, जीरे का चूर्ण ५ तोला, सौंठ का चूर्ण ६ तोला, मरिचों का चूर्ण ७ तोला, पिप्पली का चूर्ण ८ तोला, मीठा कूट का चूर्ण ९ तोला, हरड़ का चूर्ण १० तोला, चित्रक ( वह्नि ) का चूर्ण ११ तोला, अजवाइन का चूर्ण १२ तोला लेकर सबको खरल में एकत्र कर के महीन पीस लेवें, फिर सर्व चूर्ण से द्विगुण पुराना गुड़ मिलाकर अच्छी प्रकार घोट के एक कर्ष के प्रमाण के मोदक बनाकर काच के पात्र में भर कर रख देवें। इसका एक २ मोदक प्रतिदिन उष्ण जल के अनुपान के साथ सेवन करने से वातिक अर्श नष्ट हो जाते हैं ॥ ७७–७८ ॥

विमर्शः—कहीं कहीं पर इस योग के पश्चात्—

"भल्लातकं तिलं पथ्याचूर्णं गुडसमायुतम्।
मोदकं भक्षयेत् मासात् पित्तरक्तार्शसां जयेत् ॥"
ऐसा अधिक पाठ है।

लौहादिचूर्णम्—

मृतं लोहं चेन्द्रयवं शुण्ठीभल्लातचित्रकम्।
बिल्वमज्जाविडङ्गानि पथ्या तुल्यं विचूर्णयेत् ॥
सर्वतुल्यं गुडं योज्यं कर्षं भुक्त्वाऽर्शसां जयेत् ॥ ७९ ॥

लोहभस्म १ तोला, इन्द्रयव का चूर्ण १ तोला, सौंठ का चूर्ण एक तोला, शुद्ध भिलावें का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, शुष्क तथा पके हुए बिल्व फल की मज्जा का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, हरीतकी ( पथ्या या हरड़ ) का चूर्ण १ तोला लेकर सबको एकत्र महीन पीसकर कपड़े से

छानकर सर्व चूर्ण की अपेक्षा सब के बराबर अर्थात् ( ८ तोला ) पुराना गुड़ मिला कर सबको खरल में मर्दन करके एक कर्ष ( १ तो० ) भर की गोलियां बनाकर काच के पात्र में भर कर रख देवें। इस योगकी एक२ गोली प्रतिदिन मन्दोष्ण जल के अनुपान के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अर्श नष्ट हो जाते हैं ॥७९॥

अथ श्लेष्मार्शसि औषधविशेषनिर्देशः—

**श्लेष्मार्शसां प्रशान्त्यर्थं देयमानन्दभैरवम्।**
**मृतताम्रेण सन्तुल्यं देयं गुञ्जात्रयं हि तत् ॥ ८० ॥**

कफ की विकृति के कारण से उत्पन्न हुए श्लैष्मिक अर्शों की शान्ति करने के लिये रोगी को प्रति दिन आनन्द भैरव डेढ़ रत्ती तथा ताम्रभस्म डेढ़ रत्ती लेकर मधु के सा दोनों को मिलाकर सेवन कराना चाहिए ॥ ८० ॥

**वमर्शः—मात्रा का कल्पना रोगी की अवस्था, बल तथा रोग की दशा इन बातों का विचार करके करनी चाहिए। प्रायः आधी रत्ती ताम्रभस्म और आधा रत्ती रामबाण देना चाहिए। यदि रोग बढ़ा हुआ तथा चिरकालीन हो और रोगी की अवस्था प्रौढ हो तो दोनों को मिला कर ग्रन्थोक्त ३ रत्ती की मात्रा एक २ रत्ती के हिसाब से दिन में ३ बार देनी चाहिए। इति।**

अर्शोहरयोगः—

**कुसुम्भमृदुपत्राणि काञ्जिकेनैव पाचयेत्।**
**शाकवद्घृक्षयेन्नित्यमर्शोरोगप्रशान्तये ॥ ८१ ॥**

कसूम के कोमल ( नवीन ) पत्ते लेकर उनको काञ्जी के साथ पका कर शाक की तरह घृतादिक से संस्कृत करके प्रति दिन सेवन करने से अर्श की वेदना कम हो जाती है ॥ ८१ ॥

अथ देवदाल्यादिलेपः—

**देवदाल्याश्च बीजानि सैन्धवेन सुचूर्णितः।**
**आरनालेन लेपोऽयं मूलरोगनिकृन्तनः ॥ ८२ ॥**

देवदाली ( हस्तिघोषक ) के बीजों को सैन्धव नामक और काञ्जी के साथ पत्थर की सील अथवा खरल में घोटकर उसका कल्क बनाकर मस्सों के स्थान पर लेप देना चाहिए। लेप के ऊपर शुद्ध रूई रख कर कपड़े से पट्टी बांध देनी चाहिए। इस विधि से कुछ दिनों तक इस लेप को लगाते रहने से अर्शोरोग नष्ट हो जाता है ॥ ८२ ॥

अथार्शःकुठारलेपः—

**काञ्चनीकुसुमं चूर्णं शङ्खचूर्णं मनः शिलाम् ।**
**गजपिप्पलिकातोयैर्लेपो ह्यर्शःकुठारकः ॥ ८३ ॥**

कचनार के पुष्पों का चूर्ण ( ४ मा० ), शङ्खभस्म ( ३ रत्ती ), शुद्ध मनःशिला का चूर्ण ( ३ रत्ती ) लेकर सबको खरल में गजपिप्पली के क्वाथ के साथ घोटकर अर्श के स्थान ( मस्सों ) पर लेप करना चाहिये । इस विधि से प्रतिदिन लेप करने से मस्से सूख जाते हैं तथा अर्श की पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ८३ ॥

अथार्शोघ्नशौचः—

**देवदाल्याः कषायेण ह्यर्शोघ्नं शौचमाचरेत् ।**
**गुदनिःसरणं चापि शान्तिमायाति नान्यथा ॥ ८४ ॥**

देवदाली के पञ्चाङ्ग के क्वाथ से प्रतिदिन शौचत्याग करने के पश्चात् गुदा का प्रक्षालन करने से अर्श की पीड़ा तथा गुदा का बाहर निकल आना ये दोनों रोग नष्ट हो जाते हैं । यह प्रक्षालन प्रत्येकवार शौच त्याग के पश्चात् जब तक रोग दूर न हो तब तक करते रहना चाहिए ॥ ८४ ॥

अथ दुर्नामहरोलेपः—

**मारनालेन सम्पिष्टा सबीजा कटुतुम्बिका ।**
**सगुडा हन्ति लेपेन दुर्नामानि समूलतः ॥ ८५ ॥**

काञ्जी के साथ कड़वी तुम्बी को बीजों के सहित पीसकर उसमें थोड़ा सा गुड़ मिलाकर सबको घोटकर मलहम के समान बनाकर चौड़े मुंह की शीशी में भर देवें । इसमें से थोड़ा २ लेकर शौच करने के पश्चात् शुद्धजल से गुदप्रक्षालन करके लेप करने से मस्से सूख जाते हैं ॥ ८५ ॥

अथार्शोघ्नीवर्त्तिः—

**पीलुतैलेन संलिप्ता वर्तिका गुदमध्यगा ।**
**घातयत्यर्शसां शीघ्रं सकला वेदनां तथा ॥ ८६ ॥**

पीलु के कल्क से तैलपाक की विधि से तैल पका कर छान के शीशी में भर देवें । फिर इस तैल में ३ इञ्च लम्बी शुद्ध कपड़े की या रूई की बत्ती बनाकर के भीगों कर गुदा के अन्दर शौच करने के पश्चात् प्रतिदिन ( जब तक दूसरी बार शौचत्याग न करें तब तक ) धारण किये रहने से अर्श ( मस्से ) सूख जाते हैं

तथा उनसे होने वाली वेदना भी दूर हो जाती है। प्रतिदिन नई २ वर्त्ति बनाकर धारण करना चाहिए ॥ ८६ ॥

अथ अर्कक्षीरादिलेपः—

**अर्कक्षीरं स्नुहीकाण्डं कटुकालाबुपत्रकम्।**
**करञ्जछागमूत्रेण लेपः स्राव्यर्शसां हितः ॥ ८७ ॥**

आक ( मदार ) का शुद्ध दुग्ध, थूहर की जड़ ( चरक में थूहर का दुग्ध लेने को लिखा है ) तथा कड़वी तुम्बी के पत्ते तथा करञ्ज की जड़ इन सबको बराबर २ ( अर्थात् उतने ही सब द्रव्य लेने चाहिएं जितने से मस्सों पर अच्छी प्रकार लेप हो जाय ) लेकर बकरी के मूत्र के साथ महीन पीसकर पिट्ठी ( कल्क ) बनाकर मस्सों के स्थान पर लेप करने से वे सूख जाते हैं तथा उनसे जो रक्त का स्राव होता रहता है वह भी बन्द हो जाता है। इसी तरह प्रतिदिन नया नया कल्क बनाकर शौचत्याग के पश्चात् जब तक रोग शान्त न हो तब तक लेप करना चाहिए ॥ ८७ ॥

अथ शिग्रुमूलादिलेपः—

**शिग्रुमूलार्कजैः पत्रैर्लेपनं हितमर्शसाम् ॥ ८८ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये अर्शोऽधिकारो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

शिग्रु ( सहजन ) की जड़ तथा आक के कोमल पत्ते इन दोनों को सील पर पीसकर प्रतिदिन शौच त्याग के पश्चात् तथा रात्रि के सोते समय लेप करने से अर्श में अत्यन्त लाभ होता है ॥ ८८ ॥

अथार्शोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

कुलित्था यवकगोधूमाः शालयो रक्तिमाहिताः।
पुनर्नवा सूरणञ्च तक्रं धात्री कपित्थकम् ॥ १ ॥
नवनीतं तु वास्तूकं पटोलं मरिचं तथा।
मृगमांसमजादुग्धं वृन्ताकं काञ्जिकं तथा ॥ २ ॥
अर्शोरोगे तु पथ्यानि मुनिभिः कथितानि तु ॥ ३ ॥
विरेचनं लेपनमल्पमोक्षः क्षाराग्निशस्त्राचरितञ्च कर्म।

अन्नेषु—पुरातना लोहितशालयश्च सपिष्टकाश्चापि यवाः कुलत्थाः ॥ ४ ॥
मांसेषु—गोधाखुलोपाकगवोष्ट्रकूर्मश्वाविद् कुलिङ्गाजखरोतुकीशाः ।
तरक्षुचाषाश्वश्रृगालकाका येऽन्येऽपि मांसात् प्रसहाश्च तेऽपि ॥ ५ ॥
शाकेषु—पटोलपत्तूररसोनवल्गुपुनर्नवाशूरणवास्तुकानि ।
जीवन्तिकादन्तशठा सुरा च शुण्ठी वयस्था नवनीतकञ्च ॥ ६ ॥
बक्कोलधात्रीरुचकं कपित्थमौष्ट्राणि मूत्राज्यपयांसि चापि ।
मल्लातकं सार्षपजञ्च तैलं गोमूत्रसौवीरतुषोदकानि ।
वातापहं यच्च यदग्निकारि तदन्नपानं हितमार्शसेभ्यः ॥ ७ ॥

अथार्शोरोगेऽपथ्यानि—

आनूपमामिषं मत्स्यं पिण्याकं दधि पिष्टकम् ।
माषान् करीरं निष्पावं बिल्वं तुम्बीमुपोदिकाम् ॥ १ ॥
पक्वान्नं शालुकं स्वेदं विष्टम्भीनि गुरूणि च । आतपं जलपानानि वमनं वस्तिकर्म च ॥२॥
प्राच्यवन्नयपरान्तोत्थदीनां सलिलानि चादिरुद्धानि च सर्वाणि मारुतं पूर्वदिग्भवम् ॥३॥
वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानमुत्कटुकासनम् । यथास्वं दोषलब्धान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥
यत्पथ्यं यदपथ्यञ्च वक्ष्यते रक्तपित्तिनाम् । रक्तार्शोरोगिणां तत्तदपि विद्याद्विशेषतः ॥५॥
इत्यर्शोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः ।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्याभाषाटीकायामर्शोऽधि-
कारो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

## षोडशोऽध्यायः ।

अथ उदावर्तः—

रूक्षैः कोद्रवजीर्णमुद्गचणकैः कुद्धोऽनिलोऽधो वहन्
रुद्ध्वा वर्त्म मलं विशोष्य कुरुते विण्मूत्रसङ्गं ततः ।
हृत्पृष्ठोदरबस्तिमस्तकरुजः सश्वासकासं ज्वरं
गच्छन्नूर्ध्वमसौ हि नूनमनिशं कोपादुदावर्तयेत् ॥ १ ॥

कोद्रव ( कोदो आदि जङ्गली धान ), पुराने मूंग तथा चने इत्यादि रूक्ष पदार्थों के प्रतिदिन सेवन करने से वायु दूषित होकर आमाशय (Stomach), पक्वाशय ( Decdentum ), क्षुद्रान्त्र ( Small Intestine ), बृहदन्त्र

( Large Intestine or Colon ) तथा मलाशय ( Rectum ) आदि नीचे के भागों में सञ्चरण ( भ्रमण ) करता हुआ मल तथा मूत्र को शुष्क करके इनके आशयों ( अर्थात् मलमूत्रवाहक स्रोतसों ) के मार्ग को रोक कर मल और मूत्र का अवरोध हो जाता है। अर्थात् वायु के द्वारा इनके स्रोतसों का मार्ग बन्द हो जाने से इनका शरीर से उत्सर्ग नहीं हो सकता है, इस प्रकार मलादिकों के अवरुद्ध हो जाने से हृदय (Heart), पृष्ठ, उदर ( अर्थात् आमाशय से वृहदन्त्र की अन्तिम समाप्ति तक के भाग में ) वस्ति ( मूत्राशय Urinary Bladder ) और मस्तिष्क ( Brain ) में अनेक प्रकार की पीड़ा उत्पन्न हो जाती है तथा श्वास, कास और ज्वर ये उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, फिर यह अधोभाग में गया हुआ वायु बड़े वेग से ऊपर की ओर को आता हुआ अवरुद्ध मलादिकों को भी ऊपर फेंकता है। इस प्रकार के रोग को उदावर्त कहते हैं ॥१॥

अथ उदावर्तहरघृतम्—

**कङ्कुष्ठहिङ्गुसिन्धूत्थत्रिवृद्दन्ति वचाऽभयाः।**
**चित्रकस्य तु मूलं च कल्कीकृत्य पचेद् घृतम् ॥ २ ॥**
**चतुर्गुणे गवां क्षीरे युक्तं स्नुक्क्षीरमात्रया।**
**उदावर्तोदरानाहान्हन्ति पानेन सर्वदा ॥ ३ ॥**

कंकुष्ठ ( मुर्दासंग ), हींग, सैन्धव लवण, त्रिवृत् की जड़, दन्ती की जड़, चवा, हरड़, चित्रक की जड़ ये प्रत्येक एक २ तोले भर लेकर इनको पत्थर पर पीसकर कल्क बना लेना चाहिए। यदि ये सब द्रव्य आर्द्र हों तो ऐसे ही इन्हें पत्थर पर पीस लें। यदि आर्द्र ( गीले ) न हों तो इन्हें एक मिट्टी के पात्र में भरकर ऊपर से इन पर थोड़ा सा जल डाल देवें। फिर रात्रि भर जल से भींग जाने के पश्चात् दूसरे दिन इन्हें सिल पर पीस कर कल्क बना लेना चाहिए। फिर इस कल्क का चतुर्गण ( ३२ तो० ) गाय का घृत और घृत से चतुर्गुण (१२८ तो०) गाय का दुग्ध लेकर सबको कड़ाही में डालकर पाक करना चाहिए। जब जलीयांश नष्ट हो जाय और केवल घृत मात्र शेष रह जाय तब पाक को सिद्ध हुआ जानकर उतार लेवें तथा स्वाङ्गशीतल होने पर कल्क को हाथों के बीच में मजबूती से दबा २ कर ( अर्थात् निचोड़ कर ) स्नेह से बाहर फेंक देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए घृत को काच के पात्र में भरकर रख देवें। इस

घृत को उचित मात्रा से लेकर ( प्रायः आधे तोले से १ तोला भर लेना चाहिए ) उसमें थोड़ा सा थूहर का शुद्ध दुग्ध मिलाकर सेवन करने से उदावर्त्त और आनाह ( पेट फूलना ) रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

विमर्शः—यद्यपि यहां पर केवल दुग्ध ही के साथ कल्क और घृत का पाक करने का लिखा है तथापि अच्छी प्रकार से कल्क के द्रव्यों का सत्व घृत में समाविष्ट करा देने के लिये दुग्ध से चौगुना पानी अथवा केवल घृत ही से चौगुना पानी डाल कर पाक करना चाहिए। जैसे कहा भी है यथा—

स्वरसक्षीरमाङ्गल्यैः पाको यत्रेरितः क्वचित्।
जलं चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावहेत् ॥ १ ॥
कारणं—न मुञ्चति रसं द्रव्यं क्षीरादिभिरुपस्कृतम्।
सम्यक् पाको न जायेत तस्मात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ २ ॥

कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि यदि स्नेह द्रव्य ( घृत तैलादिक ) के पाक करने के लिये जहां केवल दुग्ध ही लिखा हो वहां स्नेह से दूध को चौगुना डाल।

यथा—स्नेहपाकविधौ यत्र क्षीरमेकन्तु कथ्यते।
तोयादीनामनिर्देशे क्षीरमेव चतुर्गुणम् ॥ १ ॥

स्नेह पाक की विधि शार्ङ्गधर में इस प्रकार है यथा—

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा।
चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ १ ॥

स्नेह के पाक की पहचान यथा—

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्त्ततो वर्तिवद्भवेत्।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अन्यच्च—क्षिप्ते कृशानौ न करोति शब्दं नाङ्गुष्ठलेपी विशदोऽपि नास्ति।
संवर्त्तितोवर्त्तिमुपैति कल्कोनिष्पत्तिरेषा घृततैलयोस्तु ॥ २ ॥
शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत्
घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ ३ ॥

पाक करते समय जब जलीयांश नष्ट हो जाय तब उस स्नेह के कल्क को कलछी से थोड़ा सा निकाल कर अङ्गुष्ठ और तर्जनी अङ्गुली के बीच में वर्त्तित करने (बटने) से कल्क की बत्ती ( वर्ति ) के समान कुछ आकृति हो जाय तथा उस कल्क को अग्नि में डालने से चिड़चिड़ाहट के समान शब्द न हो तथा वर्त्ति बनाते समय वह कल्क अङ्गुष्ठ और अङ्गुली में चिपके नहीं और उस स्नेह से फेने निकलना बन्द हो जाय तथा गन्ध, वर्ण और रस ( स्वाद ) जिस तरह से उत्तम सिद्ध स्नेह में

होते हैं उस तरह के हों जाय तब स्नेह ( घृत ) का पाक हुआ जानना चाहिए तथा इन लक्षणों के प्रगट हो जाने पर तुरन्त ही अग्नि बुझा देनी चाहिए और सिद्ध स्नेह को उतार कर स्वाङ्गशीतल करके कल्क को दृढता से दबा २ कर निचोड़ के फेंक दें तथा शेष सिद्ध घृतादि को शुद्ध महीन वस्त्र से छान कर काच के पात्र में भर देना चाहिए। इति दिक्।

उदावर्त्त रोग में वैद्यनाथ वटी, वृहदिच्छाभेदी रस, लौह प्रयोग, वारिशोषणरस तथा अन्य उदररोग के योगों का भी प्रयोग करना चाहिए।

वैद्यनाथवटीनिर्माणं यथा—

पथ्या त्रिकटु सूतञ्च द्विगुणं कानकं तथा।
मन्युमणीरसैरम्ललोणिकाया रसैः कृता॥ १॥
गुड़ी कोदरगुल्मादि-पाण्डवामयविनाशिनी।
गुड़ी सिद्धफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता॥ २॥ र० सा० सं०।

लौहप्रयोगो यथा—

पुटितं भावितं लौहं त्रिवृत्क्वाथैरनेकशः।
उदावर्त्तहरं युञ्ज्यात् ससितं वा यथाबलम्॥ १॥ इति

अथ पथ्यापथ्यानि—

विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च। उदावर्त्ते प्रयत्नेन वर्जयेन्मतिमान्नरः॥१॥
उदावर्त्ते हितं सर्वं पाचकं लघ्वनं तथा। आनाहेऽपि यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः॥२॥

इत्युदावर्तचिकित्सा।

अथातिसारः—

अत्यम्बुपानतिलपिष्टविरूढरूक्ष-
शुष्कामिषाध्यशनवद्धमलग्रहाद्यैः।
क्रुद्धोऽनिलोऽतिसरणाय च कल्पतेऽग्निं
हत्वा मलं शिथिलयन्नपि तोयधातून्॥ ४॥

जल का अत्यन्त पीना तथा तिल और तिलों को पिष्टी से बने हुए पदार्थों का अधिक सेवन करना, विरूढ अर्थात् अङ्कुरित ( प्रायः नये धान का विरूढ शब्द से ग्रहण करना चाहिए) धान्यों का अत्यन्त सेवन करना तथा रूक्ष (वातवर्द्धक ) अन्न, सूखा ( बासी ) मांस, अध्यशन, मलादिकों के वेगों का रोकना इत्यादि विविध कारणों से वायु प्रकुपित होकर जठराग्नि ( अर्थात् पाचकरस ) को नष्ट कर देता है तथा मल और शरीर के जलीयांश को हठात् उनके आशयों

से अत्यन्त मात्रा से गुदा के द्वारा बाहर निकाल देता है। इस प्रकार की व्याधि को अतीसार कहते हैं ॥ ४ ॥

विमर्शः—माधवनिदान में अतीसार का इस प्रकार निदान बताया गया है, यथा—

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥
स्नेहार्द्रैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः ।
शोकाद्दुष्टाम्बुपद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥
जलाभिरमणैर्वेगविघातैः क्रिमिदोषतः ।
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥
संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः ।
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

नवीन तथा पुराने धान्यों के ग्रहण करने का निर्देश यथा—

धान्यं सर्वं नवं स्वादु गुरु श्लेष्मकरं स्मृतम् ।
तच्च वर्षोषितं पथ्यं ततो लघुकरं स्मृतम् ॥ १ ॥
वर्षोषितं सर्वधान्यं गौरवं परिमुञ्चति ।
न तु त्यजति वीर्यं स्वं क्रमान् मुञ्चत्यतः परम् ॥ २ ॥
एतेषु यत्र गोधूमतिलमाषा न वाहिताः ।
पुराणा विरसा रूक्षा न तथा गुणकारिणः ॥ ३ ॥

अध्यशनलक्षणं यथा—

भुक्तं पुर्वान्नशेषे तु पुनरध्यशनं मतम् । इति ।

अथ दर्दुररसः—

सुश्लक्ष्णतीक्ष्णचूर्णं तु रसेन्द्रसमभागिकम् ।
काञ्चनाररसघृष्टं सर्वाऽतीसारनाशनम् ॥ ५ ॥

तीक्ष्ण लौह की अत्यन्त महीन ( अर्थात् वारितर ) भस्म १ पल तथा पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल लेकर दोनों को खरल में अत्यन्त महीन पीस कर कचनार के पुष्पों के स्वरस से सातवार भावित करके अच्छी प्रकार से घोट कर शुष्क करके शीशी में भर कर रख दें। इस रसको एक रत्ती से ३ रत्ती भर तक ग्राही अनुपानों ( जीरक चूर्ण, शहद, बिल्व आदि ) के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अतीसार नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ द्वितीयदर्दुररसः—

**पिष्टः समेन तीक्ष्णेन काञ्चनाराम्बुमर्दितः।**
**पुटपक्वोऽतिसारघ्नः सूतोऽयं दर्दुराह्वयः ॥ ६ ॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल लेकर १ पल तीक्ष्णलौह की भस्म के साथ मिलाकर कचनार के पुष्पों के स्वरस से अथवा उसके पञ्चाङ्ग के क्वाथ से सात वार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर पुट में पाक कर लेना चाहिए। यह द्वितीय दर्दुर नामक रस उचित मात्रा से तथा ग्राही अनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अतीसार को नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

अथ आनन्दभैरवरसः—

**हिङ्गुलं वत्सनाभं च मरिचं टङ्कणं कणा।**
**मर्दयेत्समभागं च रसो ह्यानन्दभैरवः ॥ ७ ॥**
**गुञ्जैकां वार्द्धगुञ्जां वा बलं ज्ञात्वा प्रदापयेत्।**
**मधुना लोहयेच्चानु कुटजस्य फलं त्वचम् ॥ ८ ॥**
**चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारजित्।**
**दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं मवाज्यं तक्रमेव वा ॥**
**पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि ॥ ९ ॥**

शुद्ध हिङ्गुल १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, मरिचों का चूर्ण १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला तथा छोटी पिप्पली का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार से महीन पीसकर कपड़े से छान कर शीशी में भर देवें, अथवा जल के साथ घोटकर ( नीम्बू के रस के साथ घोटकर गोली बनाना श्रेष्ठ है ) एक २ रत्ती भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से बने हुए इस रस को आनन्दभैरव रस कहते हैं। इस रस को आधी रत्ती से १ रत्ती भर तक रोगी के बलाबल का तथा रोग का भी विचार कर के सेवन कराना चाहिए तथा सेवन कराने के पश्चात् १ तोला कुटज (कुड़) की छाल तथा ६ माशे भर इन्द्रयव के चूर्ण को शहद ( २ तो० ) में फेंट कर चटाना चाहिए। इस तरह से प्रतिदिन इस रस के सेवन करने से त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न हुआ भी अतीसार नष्ट हो जाता है। औषध जीर्ण होने के पश्चात् तथा बुभूक्षा लगने पर पथ्य में दधि के साथ पुराने चावलों का भात खिलाना

चाहिए। अश्वा गौके तक्र ( मट्ठे ) में थोड़ा सा गौका घृत मिला कर स्वतन्त्र रूप से अथवा ओदन के साथही पिलाना चाहिए। प्यास की शांन्ति करने के लिये थोड़ा २ शीतल जल पिलाना चाहिए। सन्ध्या के समय भाङ्ग ( विजया ) को यथा विधि से घोट कर पिलाना भी हित कर है ॥ ७–९ ॥

अथ सुधासाररसः—

पृथक्पलिकगन्धाश्मसूतसञ्जातकज्जलीम् ।
प्रद्राव्य निक्षिपेद्योम पलैकं गतचन्द्रिकम् ॥ १० ॥
काष्ठेनालोड्य तत्सर्वं क्षिपेत्कुटजपत्रके ।
पुनः सञ्चूर्ण्य यत्नेन भावयेत्तदनन्तरम् ॥ ११ ॥
बालतिन्दुफलद्रावैः क्षीरैरोदुम्बरैस्तथा ।
अरलुत्वग्रसैश्चापि दुग्धिनीस्वरसैस्तथा ॥ १२ ॥
पुटपक्वस्य बालस्य दाडिमस्य रसैः शुभैः ।
कृष्णकाम्बोजिकामूलरसैः कुटजवल्कजैः ॥ १३ ॥
तुल्यांशविश्वगान्धारीचूर्णं द्विपलिकं क्षिपेत् ।
मुस्तावत्सकदीप्याग्नि मोचासारं सजीरकम् ॥ १४ ॥
वत्सनाभं च कर्षांशं प्रत्येकं तत्र निक्षिपेत् ।
विचूर्ण्य भावयेद्भूयः शुण्ठीक्वाथेन सप्तधा ॥ १५ ॥
इत्थं सिद्धो रसः पिष्टः करण्डे विनिवेशयेत् ।
सुधासार इति ख्यातः सुधारससमद्युतिः ॥ १६ ॥
दीपनः पाचनो ग्राही हृद्यो रुचिकरस्तथा ।
दोषत्रयातिसारं च दुर्जयं भेषजान्तरैः ॥ १७ ॥
आमं चैवामरक्तं च ज्वरातीसारमेव च ।
सातिसारां विषूचीं च प्रतिबध्नाति तत्क्षणात् ।
मान्द्यमानव्यतिक्रान्तिरिव पुण्यफलोदयम् ॥ १८ ॥

शुद्ध पारद १ पल (४ तो०) तथा शुद्धगन्धक १ पल लेकर दोनों को पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उस को घी से पुती हुई लोहे की कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि वाले चूल्हे पर चढ़ा कर लोहे की कलच्छी से चलाता रहे,

जब कज्जली अच्छी प्रकार द्रुत हो जाय तब उस में निश्चन्द्रीकृत अभ्रक की भस्म १ पल भर डाल कर काष्ठ के दण्डे से अथवा लोहे की कलच्छी से चलाते रहना चाहिए। जब अभ्रक भस्म भी द्रुत होकर द्रुत कज्जली में मिल जाय तब गीले गोबर के चबूतरे पर बिच्छे हुए कुटज के पत्ते पर ढाल कर ऊपर से कुटज का ही पत्ता ढक कर तुरन्त गोबर के पिण्ड से दबा देना चाहिए। इस प्रकार इन की पर्पटी तैय्यार हो जाती है। फिर स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल में महीन पीस कर के उस को तिन्दुक के बाल अर्थात् कच्चे फलों का रस अथवा क्वाथ, उदुम्बर ( गूलर ) का दूध, अरलु ( श्योनाक-सोना पाठा ) की छाल का क्वाथ, दुग्धिका का स्वरस तथा पुटपाक कर के निकाले हुए कच्चे दाड़िम के फल का रस, कृष्ण अर्थात् करोंदे के फल का क्वाथ, काम्बोजिका अर्थात् रक्त पुष्पा ( लाल घुंघची ) की लता की जड़ का स्वरस या क्वाथ, कुड़े की छाल का क्वाथ, इन सब क्वाथ के साथ उपर्युक्त औषधि को पृथक् २ एक २ दिन तक भावना देकर फिर उस में शुण्ठी का चूर्ण १ पल, गान्धारी अर्थात् कण्टकारी का चूर्ण १ पल तथा शुद्ध नागर मोथे का चूर्ण १ कर्ष, वत्सक ( इन्द्रयव ) का चूर्ण १ कर्ष, अजवाईन का चूर्ण १ कर्ष, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ कर्ष, मोचरस १ कर्ष, जीरे का चूर्ण १ कर्ष, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ कर्ष डाल कर सब को अच्छी प्रकार से घोट कर फिर सौंठ के क्वाथ से सात बार भावित कर के घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को सुधानिधिरस कहते हैं। यह सुधानिधि रस अमृत के समान गुणकारी है। यह रस अग्नि को दीप्त करता है, भोजन को अच्छी तरह से पचा देता है तथा ग्राही अर्थात अतीसारादिकों के वेगों को रोकता है, हृदय के विकारों को दूर करता है, रुचि को बढ़ाता है, बहुत सी औषधियों के प्रयोग करने से भी दुर्जय अर्थात् विनष्ट नहीं हुए हुए ऐसे त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न अतीसार को नष्ट करता है तथा यह रस आम, आमरक्त, ज्वरातीसार, अतीसार के साथ में उत्पन्न विसूचिका को तुरन्त ही नष्ट कर देता है, जिस प्रकार मान्य ( पूजनार्ह ) पुरुष के मान ( पूजा ) का व्यतिक्रम ( उल्लङ्घन ) करने से पुण्य फलों का उदय प्रतिबद्ध अर्थात् अस्त हो जाता है। मात्रा-२ रत्ती से ४ रत्ती भर तक। अनुपान-दधि, तक्र, ओदन, बिल्व शलाटु आदि ॥ १०-१८ ॥

अथ रसोत्तमः—

पिष्टविश्वाब्दकल्केन विधाय खलु चक्रिकाम् ।
निक्षिपेत्स्वेदनीयन्त्रे पक्त्वार्धघटिकावधि ॥ १९ ॥
आकृष्य यज्जलैरेवं सम्प्रमर्द्याहरेद्रसम् ।
सुधासाररसं तत्र क्षिप्त्वा धान्यकसम्मितम् ॥ २० ॥
पूर्वोदितेषु रोगेषु प्रददीत भिषग्वरः ।
गोतक्रेणाथ दध्ना वा पथ्यं देयं हितं मितम् ॥ २१ ॥
बालरम्भाफलं गुर्वीफलं बिल्वफलं तथा ।
आम्रप्रेशी च मधुकं वृन्ताकं च प्रशस्यते ॥ २२ ॥
सर्वातिसारं ग्रहणीं च हिक्कां मन्दाग्निमानाहमरोचकं च ।
निहन्ति सद्यो विहितामपाके द्वित्रिप्रयोगेण रसोत्तमोऽयम् ॥२३॥

सौंठ का चूर्ण १ पल, नागरमोथे का चूर्ण १ पल दोनों को पत्थर पर थोड़े से जल के साथ पीसकर कल्क बना के उसकी चक्रिका बना लेनी चाहिए। फिर उस चक्रिका को स्वेदनीयन्त्र अर्थात् एक छोटी हण्डिका के भीतर थोड़ा सा जल भरकर उस पर कपड़ा बांधकर उस कपड़े पर टिकिया को रखकर अर्द्धघटिका ( १ दण्ड ) तक स्वेदन करके टिकिया को स्वेदनयंत्र की हण्डिका के पानी के साथ पत्थर पर पीसकर हाथ से कल्क को निचोड़ कर रस निकाल लेना चाहिए। फिर इस रस के भीतर चांवल के बराबर उपर्युक्त सुधासाररस मिलाकर सुधासार रस के निर्माण के प्रसङ्ग में जो जो रोग कह आये हैं उन उन रोगों में प्रयुक्त करें। इस रस को सेवन करते समय पथ्य में गाय के मट्ठे तथा बकरी के दही के साथ हितकारक तथा स्वल्प औदन (भात) भोजन के लिये देने चाहिए तथा केले के कच्चे फल की शाक, चिकनी सुपारी, बिल्व का मुरब्बा, आम की गुठली की गिरि अथवा आम के फल का मांसल भाग, महुआ के पुष्पों का सेवन, तथा बैंगन की शाक भी पथ्य है। यह रस सब प्रकार के अतिसार, ग्रहणी, हिचकी, अग्निमांद्य, आनाह ( अफरा या पेट का फूलना ) और अरुचि को कुछ दिनों तक सेवन करने से अवश्य ही नष्ट कर देता है। इस रस को दो या तीन दिन तक सेवन करने से आम ( अर्थात् ठीक २ पावन के नहीं हो ने से सञ्चित कच्चा भोज्यांश ) पककर मल के रूप में निकल जाता है ॥ १९-२३ ॥

अथ स्वेदनीयन्त्रलक्षणम्—

**साम्बुस्थालीमुखाबद्धे वस्त्रे पाक्यं निधाय च।**
**पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयन्त्रमुच्यते ॥ २४ ॥**

एक मिट्टि की हण्डिका के अर्द्धभाग तक जल भर कर उसके मुखपर शुद्ध वस्त्र बांधकर वस्त्र पर स्वेदन करने योग्य पदार्थ रखकर अग्नि के द्वारा पाक किया जाता है इस को स्वेदनीयन्त्र कहते हैं। स्वेदन करने योग्य पदार्थ को मिट्टी सकोरे आदि से ढक देना आवश्यक है। इसी यन्त्र को तिन्दुक यन्त्र भी कहते हैं ॥२४॥

अथ लोकेश्वररसः—

**द्वौ भागौ गन्धकस्याष्टौ शङ्खचूर्णस्य योजयेत्।**
**एकमेव रसस्यांशमर्कक्षीरेण मर्दयेत् ॥ २५ ॥**
**चित्रकस्य द्रवेणैवं शोषयित्वा पुनः पुनः।**
**एकीकृत्य रसेनाथ क्षारं दत्त्वा तदर्धकम् ॥ २६ ॥**
**अर्कक्षीरेण कुर्वीत गोलकानथ शोषयेत्।**
**निरुध्य चूर्णलिप्तेऽथ भाण्डे दद्यात्पुटं ततः ॥ २७ ॥**
**लोकेश्वररसो ह्येष ग्रहणीरोगकृन्तनः।**
**गुञ्जाचतुष्टयं चास्य मरीचाज्यसमन्वितम्।**
**ददीत दधिभक्तं च पथ्यं लोकेश्वरे तथा ॥ २८ ॥**

शुद्ध गन्धक २ तोला, शङ्खभस्म ८ तोला, शुद्ध पारद १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक को पत्थर की खरल में कज्जली बना कर उस में शङ्ख भस्म मिला कर सब को थूहर के शुद्ध दुग्ध के साथ सात वार मर्दन करें, फिर चित्रक की जड़ के क्वाथ से सात वार भावित कर के घोट लेवें, पश्चात् उस में सम्पूर्ण औषधि की अपेक्षा आधा भाग ( ५॥ तो० ) स्वर्जिक्षार मिला कर सब को आक के दुग्ध के साथ घोट कर छोटी २ (प्रायः एक २ तोले भर की) गोलियां बना के सुखा कर उन्हें पानी में घोले हुए चूने के द्वारा भीतरी भाग में पुती हुई छोटी हण्डिका के भीतर भर के उसका सकोरे से मुख बन्द कर के उस के सम्पूर्ण भाग को कपड़मिट्टी से पोत कर सुखा के गजपुट में रख कर फूंक देवें। स्वाङ्गशीतल हण्डिका से सिद्ध औषध को निकल कर खरल में महीन चूर्ण करके शीशी में भरकर रख देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को लोकेश्वर रस कहते हैं।

यह लोकेश्वर रस ग्रहणी रोग को नष्ट करता है। इस रस को ४ रत्ती भर की मात्रा से लेकर मरिचों के चूर्ण तथा गोघृत के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। औषध के तीन घण्टे बाद पथ्य में दही और भात देना चाहिए ॥ २५-२८ ॥

अथ लोकनाथरसः—

मृतपारदभागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात्।
यामञ्च मर्दयेत्खल्ले तेन पूर्या वराटकाः ॥ २९ ॥
टङ्कणं तु गवां क्षीरैः पिष्ट्वा तेन मुखं लिपेत्।
वराटानां प्रयत्नेन रुध्वा भाण्डे पुटे पचेत् ॥ ३० ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य ततश्चूर्ण्या वराटकाः।
लोकनाथरसो नाम्ना क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ३१ ॥
नागरातिविषामुस्तादेवदारुवचान्वितम्।
कषायमनुपानं स्याद्वातातीसारनाशनः ॥ ३२ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला लेकर दोनों को खरल में एक प्रहर तक महीन पीस कर शुद्ध कौड़ियों में भर देवें। फिर गाय के दुग्ध से शुद्ध सुहागे को पीस कर उस की पिष्टी से कौड़ियों का मुख बन्द करके सुखा कर उन्हें छोटी हण्डिका में भर कर उसपर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर गजपुट में फूंक देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल हण्डिका को खोलकर कौड़ियों के सहित ( कौड़ियों की भस्म हो जाती है ) खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को लोकनाथ रस कहते हैं। इस रस को १ रत्ती से ४ रत्ती भर तक लेकर शहद के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से सौंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु का बुरादा और वचा इन द्रव्यों का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए। इस प्रकार इस रस के सेवन करने से वातिक अतीसार नष्ट हो जाता है ॥ २९-३२ ॥

अथ नागसुन्दररसः—

नागभस्मरसव्योमगन्धरूर्धपलोन्मितः।
कुर्वीत कज्जलीं श्लक्ष्णां प्रक्षिपेत्तदनन्तरम् ॥ ३३ ॥
द्विपलोन्मितरालायां द्रुतायां परिमिश्रिताम्।
भृष्टैर्यक्षाक्षसिन्धूत्थवचाव्योषद्विजोरकैः ॥ ३४ ॥

सपथ्याविजयादीप्यैस्तुल्यांशैरवचूर्णितैः ।
मेलयेत्प्राक्तनं कल्कं भावयेत्तदनन्तरम् ॥ ३५ ॥
महानिंबत्वचासारैः काम्बोजीमूलजद्रवैः ।
रसैर्नागबलायाश्च गुडूच्याश्च त्रिधा त्रिधा ।
ततश्च गुटिकाः कार्या बदरास्थिप्रमाणतः ॥ ३६ ॥
हन्यादेव हि नागसुन्दररसो वल्लोन्मितः सेवितो
नानातोसरणामयं गुदपरिभ्रंशं तथा बिबिशिम् ॥ ३७ ॥

नाग ( सीसे ) की भस्म आधापल, शुद्ध पारद आधा पल, अभ्रक भस्म आधापल, शुद्ध गन्धक आधापल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष नागभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर सबको अच्छी प्रकार से घोटकर कज्जली के समान करलें । फिर एक कड़ाही में २ पल ( ८ तोला० ) राल ( सर्जरस ) डालकर चूल्हे पर चढाकर मन्द मन्द अग्नि जलावें, जब राल पिघल जाय तब उसमें उपर्युक्त कज्जली डालकर सब को घोटकर मिला के कडाही को उतार लेवें । फिर एक कड़ाही में यक्ष अर्थात् वट की छाल का या पञ्चाङ्ग का चूर्ण १। सवा तोला, बहेड़े ( अक्ष ) के फल के छिलकों का चूर्ण १। सवातोला, सैन्धवलवण १। सवा तोला, वच का चूर्ण १। तोला, व्योष अर्थात् सौंठ का चूर्ण १। सवा तोला, मरिच चूर्ण १। सवातोला, पिप्पली का चूर्ण १। सवातोला, सफेद जीरे का चूर्ण १। सवातोला, काले जीरे का चूर्ण १। तोला, हरड़ के फल के छिलकों का चूर्ण १। सवातोला, शुद्ध भांग का चूर्ण १। सवा तोला, अजवाईन ( अजवां ) का चूर्ण १। सवातोला इन चूर्णों को डालकर थोड़े २ भूनकर फिर उन भूने चूर्णों में प्राक्तन कल्क अर्थात् राल में मिली हुई कज्जली के पिण्ड को डालकर अच्छी प्रकार घोट लेवें । फिर इन सब ओषधियों के मिले हुए पिण्ड को एक बड़ी खरल में डालकर महीन घोट के महानिम्ब ( बकायन ) की छाल के सार ( क्वाथ ) के साथ तीन दिन तक घोटें, फिर तीन दिन तक काम्बोजी (मापर्णी ) की जड़ के रस या क्वाथ से घोटें, फिर नागबला ( गंगेरन ) के स्वरस या क्वाथ से तीन दिन तक खरल करके गुडूची ( गिलोय ) के स्वरस अथवा क्वाथ से तीन दिन तक घोटकर बैर की गुठली के प्रमाण की गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस

को नागसुन्दर रस कहते हैं। इस नागसुन्दर रस को एक वल्ल ( अर्थात् ३ रत्ती भर ) प्रमाण से शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से अनेक प्रकार के अतीसार को, गुदके परिभ्रंश (Prolaps प्रोलेप्स) तथा प्रवाहिका को नष्ट करता है॥ ३३-३७॥

विमर्शः—कहीं २ "बिम्बिशम्" के पश्चात्

दुर्नामग्रहणीविकारगुदजान् ये चापि मूलोद्भवाः।
सर्वे ते विलयं प्रयान्ति मनुजे श्रीशम्भुनोक्तं पुरा॥

ऐसा अधिक पाठ मिलता है।

अथ षण्निष्कतैलम्—

**षण्निष्कं तिलतैलस्य निष्कं जम्बीरजं रसम्।**
**लवणं पञ्चगुञ्जं च अङ्गुल्या मर्दयेद् दृढम्॥**
**आमवातातिसारघ्नं लिहेत् पथ्यं च पूर्ववत्॥ ३८॥**

तिलों का शुद्ध तैल ६ निष्क ( २४ मा० ), जम्बीरीनिम्बू का रस १ निष्क ( ४ मा० ), सैंधा नीमक ५ रत्ती लेकर सबको अच्छी प्रकार से अङ्गुलियों के द्वारा विलोड़ित ( मर्दित ) कर के घोल ( इमल्शन Emulsion ) बनाकर काच की शीशी में भर देवें। इस तैल को प्रतिदिन सेवन करने से आमवात और अतीसार नष्ट हो जाते हैं। प्रायः उपर्युक्त औषधियों के प्रमाण से बनाये हुए तैल की एक ही मात्रा है किन्तु इसको दो मात्रा करके सेवन करना चाहिए॥ ३८॥

अथातीसारे पथ्यानि—

लङ्घनं वमनं निद्रा पुराणाः शालिषष्टिकाः। विलेपी लाजमण्डश्च मसूरी तुवरीरसाः॥१॥
शशलावहरिणकपिञ्जलभवा रसाः। सर्वक्षुद्रझषा शृङ्गी डिण्डिशो मधुनालिका॥२॥
तैलं छागघृतं क्षीरं दधि तक्रं गवामपि। दधिजं वा पयोजं वा नवनीतं गवाजयोः॥३॥
नवं रम्भापुष्पफलं क्षौद्रं जम्बूफलानि च। भव्यं महाद्रेकं विल्वं शालूकं च विकङ्कतम्॥४॥
कपित्थं बकुलं बिल्वं तिन्दुकं दाडिमद्वयम् शालूककंण्टकाढ्या च चाङ्गेरी विजयाऽरुणा॥५॥
जातीफलमफेनं च जीरकं गिरिमल्लिका। कुस्तुम्बरुर्महानिम्बः कषायः सकलो रसः॥६॥
अन्नपानानि सर्वाणिदीपनानि लघूनि च। नाभेर्द्वयङ्गुलतोऽधस्ताच्छल्येनाधेन्दुवद्दहेत्॥७॥
तथा वंशास्थिमूलेपि पथ्यवर्गोऽतिसारिणाम्॥ ७॥ इत्यतीसारे पथ्यानि।

अथातीसारेऽपथ्यानि—

स्वेदोऽक्षनं रुधिरमोक्षणमम्बुपानं स्नानं व्यवायमपि जागरधूमनस्यम्॥
अभ्यञ्जनं सकलवेगविधारणञ्च रुक्षाण्यसात्म्यशयनञ्च विरुद्धकन्नम्॥ १॥
गोधूममाषयववास्तुककाकमाचीनिष्पावकञ्च मधुशिग्रुरसालपूगम्।

कूष्माण्डतुम्बिबदरं गुरु चान्नपानं ताम्बूलमिक्षुगुडमद्यमुपोदकी च ॥ २ ॥
द्राक्षाम्लवेतसफलं लशुनञ्च धात्री दुष्टाम्बु मस्तु गृहवारि च नारिकेलम्॥३॥
सस्नेहनं मृगमदोऽखिलपत्रशाकं क्षीरं सराणि सकलानि पुनर्नवा च ।
उर्वारुकं लवणमम्लमपि प्रकोपि वर्गोतिसारगदपीड़ितमानवेषु ॥ ४ ॥
स्नानावगाहनमभ्यङ्गगुरुस्निग्धान्नभोजनम् । व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत्
इत्यतीसारेऽपथ्यानि ।
अथातीसारे पानीयम्—
ह्रीबेरश्रृङ्गबेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा । मुस्तोदीच्यं श्रृतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥१॥
इत्यतीसारे पथ्यापथ्यविवेकः ॥

अथ सङ्ग्रहणी—

मलं सङ्गृह्य सङ्गृह्य कदाचिदतिरेचयेत् ।
अरुचिः श्वयथुर्मान्द्यं ग्रहणीरोगलक्षणम् ॥ ३९ ॥

प्रकुपित हुए दोषों के कारण कभी २ मल रुक २ कर निकलता है तथा कभी २ अत्यन्त द्रुत होकर अतीसार के रुप में उत्सर्गित होता है तथा साथ २ अरुचि, श्वयथु ( शोथ ) और अग्निमांद्य आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ये सब ग्रहणी रोग के लक्षण हैं ॥ १ ॥

विमर्शः—माधवकर ने माधवनिदान में ग्रहणीरोग की सम्प्राप्ति आदि का वर्णन निम्न प्रकार से किया है यथा—

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ।
भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥
एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेवविमुञ्चति ॥ २ ॥
पक्वं वा सहजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥ इति

अथ वज्रकपाटरसः—

मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटङ्कणम् ।
वचा जया समं सर्वं जयन्तीभृङ्गजद्रवैः ॥ ४० ॥
सजम्बीरैस्त्र्यहं मर्द्यं शोषयेत्तं च गोलकम् ।
मन्दवह्नौ शनैः स्वेद्यं यामार्धं लौहपात्रके ॥ ४१ ॥
रससाम्ये प्रतिविशा देया मोचरसस्तथा ।

भावयेद्विजयाद्रावैः शोष्यं पेष्यं च सप्तधा ।
रसो वज्रकपाटोऽयं निष्कार्धं मधुना लिहेत् ॥ ४२ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, यवक्षार १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, कपड़े से छाना हुआ वच का चूर्ण १ तोला, जया—भाङ्ग अथवा जयन्ती का चूर्ण १ तोला ( कुछ टीकाकारों ने जया शब्द का अरणी अर्थ भी किया है ) लेकर सबको खरल में महीन पीसकर जयन्ती और भृङ्गराज के पत्तों के स्वरस से पृथक् २ सात २ बार भावित करके घोटना चाहिए । फिर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ तीन दिन तक घोटकर गोला बना के उसे शुष्क कर लेवें । फिर उस गोले को लोहे की कड़ाही में रखकर मन्द २ अग्नि के द्वारा अर्द्धप्रहर तक स्वेदित करके स्वाङ्ग शीतल होने पर उस को कड़ाही से निकालकर खरल में महीन करके १ तोला शुद्ध अतीस का चूर्ण तथा १ तोला मोचरस का चूर्ण मिलाकर सबको अच्छी प्रकार घोटकर भाङ्ग के स्वरस अथवा क्वाथ से आप्लावित करके रात्रि भर पड़े रहने के पश्चात् दूसरे दिन अच्छी प्रकार घोट कर भाङ्ग के रस को शोषित करना चाहिए । फिर दूसरी बार भाङ्ग के रस से समग्र चूर्ण को अच्छी प्रकार से आप्लावित करके ( भींगोकर ) रात्रिभर पड़े रहने दें तथा दूसरे दिन घोटकर रस को सुखावें, इस प्रकार सात वार भावना देनी चाहिए । प्रत्येक भावना में स्वरस से औषधि को अच्छी प्रकार से गीली कर लेनी चाहिए ( अर्थात् इतना स्वरस देना चाहिए को उससे समग्र चूर्ण भींग कर तर हो जाय तथा दो २ या तीन २ अङ्गुल स्वरस औषधी पर तैरता रहे ) तथा रात्रि भर पड़े रहने देने के पश्चात् दूसरे दिन खूब घोटकर स्वरस को सुखाना चाहिए । इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को सुखाकर काच की शीशी में भर देवें । इसको वज्रकपाटरस कहते हैं । इस रस को ग्रहणी रोग में आधे निष्क अर्थात् २ माशे भर लेकर एक तोले शहद् में मिलाकर प्रति दिन चटाना चाहिए ॥ ४०–४२ ॥

अथ अग्निकुमाररसः—

दग्धां कपर्दिकां पिष्ट्वा त्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ।
गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः ॥ ४३ ॥

**मर्दयेद् भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ।**
**निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥ ४४ ॥**

एक पल शुद्ध की हुई कौड़ियों की सम्पुट के द्वारा भस्म करके खरल में अच्छी प्रकार से महीन चूर्ण करके उसमें त्रिकटु का महीन चूर्ण १ पल, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ पल तथा शुद्ध गन्धक १ पल तथा शुद्ध पारद १ पल दोनों की कज्जली करके मिला दें। फिर सबको बड़ी खरल में एकत्र करके महीन पीसकर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ सात दिन तक खरल करके सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को १ माशे भर की मात्रा से लेकर मरिचों के चूर्ण और गोघृत में मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से ग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है। पथ्य में औषध जीर्ण होने पर गाय के मट्ठे के साथ पुराने चांवलों का भात देना चाहिए ॥ ४३–४४ ॥

अथ कनकसुन्दररसः—

**हिङ्गुलं मरिचं गन्धं पिप्पली टङ्कणं विषम् ।**
**कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ ४५ ॥**
**मर्दयेद्यामामात्रं तु चणमात्रं वटीकृतम् ।**
**भक्षयेद् ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ ४६ ॥**
**अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतिसारं च नाशयेत् ।**
**दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गव्याज्यं तक्रमेव वा ॥ ४७ ॥**

शुद्ध हिङ्गुल १ तोला, मरिचों का महीन चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला लेकर सबको खरल में महीन पीसकर भाङ्ग के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ १ प्रहर तक खरल करके चने के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा कर उन्हें शीशी में भर देवें। इसको कनक सुन्दर रस कहते हैं। यह रस प्रतिदिन यथाव्याध्यनुपानपूर्वक सेवन करने से ग्रहणी, अग्निमांद्य, ज्वर तथा भयङ्कर अतीसार को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करने के ३ घण्टे के पश्चात् अथवा भूख लगने पर पथ्य में दही के साथ पुराने चांवलों का भात तथा गाय का घी और मट्ठा देना चाहिए ॥ ४५–४७ ॥

अथ ग्रहणीहररसः—

**रसाभ्रगन्धाः क्रमवृद्धभागा जयारसेन त्रिदिनं विमर्द्याः ।**
**गद्याणकार्धं मधुना समेतं दद्यात पथ्यं दधिभक्तकं च ॥ ४८ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, शुद्ध गन्धक ३ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें अभ्रक भस्म मिला के तीन दिन तक भांग के स्वरस में अथवा जयन्ती के पत्तों के स्वरस में घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें । इस रस को गद्याण अर्थात् ६ माशे ( गद्याणो माषकैः षड्भिः ) का आधा ( ३ माशे ) लेकर मधु के साथ प्रति दिन भक्षण करना चाहिए । पथ्य में दही के साथ ओदन खाने को देने चाहिए । इस प्रकार यह रस ग्रहणी रोग को नष्ट करता है । प्रायः इसकी मात्रा १ रत्ती से ३ रत्ती तक पर्याप्त है ॥४८॥

अथ चण्डसंग्रहगदैककपाटरसः—

**हिङ्गुलस्थितमहेश्वरबीजं पातयन्त्रविधिना हरणीयम् ।**
**गन्धटङ्कमृताभ्रकतुल्यं कोकिलाक्षमथ चाऽऽयसखल्ले ॥ ४९ ॥**
**मर्दनीयमभिधारणयुक्ते धूमहीनदहनोपरिसंस्थे ।**
**यावदेश जलशोषणदक्षोजीरकार्द्रकयुतेन स वल्लः ॥ ५० ॥**
**सङ्ग्रहज्वरमतिस्रुतिगुल्मानर्शसां च विनिहन्ति समूहम् ।**
**वासुदेवकथितोरसराजश्चण्डसङ्ग्रहगदैककपाटः ॥ ५१ ॥**

प्रथम हिङ्गुल को निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोट कर उसकी छोटी २ टाकिया बनाके अथवा उसको एक हण्डिका के भीतर लीप करके सुखा कर दूसरी समान हण्डिका के मुख के साथ इसका मुख जोड़ कर चिकनी मिट्टी तथा उससे लप्त वस्त्र की लम्बी २ पट्टिकाओं से दोनों हण्डिकाओं की मुख की सन्धि को बन्द करके डमरुयंत्र बनाकर सुखा के भट्टी अथवा चूल्हे पर चढा के ६ प्रहर तक अग्नि देना चाहिए । उपरी हण्डिका की पीठ पर ठण्ढे जल के अन्दर भींजे हुए कपड़े रखने चाहिए । ३ या ४ मिनिट के पश्चात् उष्ण हुए गीले कपड़े को शीतल जल में डाल दें तथा अन्य जल से भींगे हुए कपड़े हण्डिका की पीठ के ऊपर रख दें । इस तरह से नीचे की हण्डिका से पारद उड़कर शीतलता को प्राप्त करके ऊपर की हण्डिका के भीतरी प्रदेश में छोटे २ चमकते हुए कणों के रूप में चिपक जाता है । स्वाङ्गशीतल यन्त्र को चूल्हे से उतार कर धीरे २ हण्डिका को

खोल कर ऊपर की हण्डिका के पारद को कपड़े या कागज से खुर्च कर पांच या छ तह ( आवर्त ) किये हुये कपड़े से शीशे या पत्थर की खरल में अथवा काच या तामचीनी की बड़ी कटोरी में छान लेना चाहिए । इस प्रकार इस पारद को ३ या ४ वार कपड़े की जगह बदल २ कर छानने से निर्मल हो जाता है । उपर्युक्तविधि से हिङ्गुल से ऊर्द्ध्वपातनयन्त्र के द्वारा आहरण किया (निकाला) हुआ महेश्वर ( शिवजी ) का बीज अर्थात् पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला तथा तालमखाने के बीजों का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार से महीन पीसकर लोहे की खरल में डाल कर उसको निर्धूम ( धुएं से रहित ) कोयलों की आंच पर रख कर औषधि को लोहे हा की मुसली से घोटता जाय । इस तरह जब घोटते २ अग्नि के द्वारा औषधि का जलीय भाग नष्ट हो जाय तब खरल को अग्नि से नीचे उतार कर स्वाङ्गशीतल होने के पश्चात् उसको महीन पीसकर काच की शीशी में भरकर रख देवें । इस रस को एक वल्ल अर्थात् तीन रत्ती भर लेकर अग्नि पर भूने हुए जीरे के ४ माशे भर चूर्ण और अदरख के १ तोले भर रस के साथ मिला कर सेवन कराना चाहिए । इस प्रकार प्रति दिन सेवन करने से यह रस संग्रहणीरोग, ज्वर, अतिसृति अर्थात् अतीसार, गुल्म तथा अर्श के समूह को नष्ट करता है । इस रस को सर्व प्रथम वासुदेव नाम के रसशास्त्र के आचार्य ने स्वानुभव से बताया है । इस को चण्डसंग्रहगदैककपाट (१)रस कहते हैं ॥ ४९–५१ ॥

अथ लघुसिद्धाभ्रकरसः—

**समांशं रसगन्धाभ्रदरदं च विशोधितम् ।**
**लोहखल्ले विनिक्षिप्य गव्याज्येन समन्वितम् ॥ ५२ ॥**
**द्रोणीचुल्ल्यां न्यसेत्खल्ले साङ्गारायां प्रयत्नतः ।**
**मर्दकेनापि लौहेन मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥ ५३ ॥**
**इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं लघुसिद्धाभ्रको मतः ।**
**वल्लतुल्यो रसो जोरवारिणा सहितः प्रगे ॥ ५४ ॥**

---

( १ ) चण्डः प्रबलः सर्वोपद्रवयुक्त इत्यर्थः यः सङ्ग्रहो ग्रहणीरोगस्तस्य कृते एको मुख्यः कपाटः कपाटतुल्य इत्यर्थ ।

**पीतो हरति वेगेन ग्रहणीमतिदुर्धराम्**
**अतिसारं महाघोरं सातिसारं ज्वरं तथा ॥ ५५ ॥**
**पाचनो दीपनो हृद्यो गात्रलाघवकारकः ।**
**नागार्जुनेन कथितः सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ ५६ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, शुद्ध हिङ्गुल १ तोला लेकर प्रथम पारद तथा गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर फिर उसको लोहे की खरल में डालकर उसमें शेष द्रव्य मिला के लोहे की मुसली से अच्छी प्रकार सब को महीन पीस कर गाय के घृत के साथ तीन दिन तक खरल कर लेवें । फिर इस खरल को धुएं से रहित अर्थात् पत्थर या लकड़ी के कोयलों की आंचवाली तथा द्रोणी के समान आकार वाली छोटी भट्टी पर चढाकर लोहे की मुसली ( मर्दक ) से घोटते रहना चाहिए । इस प्रकार प्रायः दो दिन तक उस खरल को उसी भट्टी पर रख कर औषधि को घोटते रहना चाहिए । कोयले कम हो जायं तो फिर डालने चाहिएं । घोटने वाला लोहा का मूसल लम्बा होना चाहिए जिससे हाथ न जलने पावें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को लघुसिद्धाभ्रक रस कहते हैं । इस रस को वल्लभर ( ३ रत्ती भर ) लेकर प्रति दिन प्रातःकाल जीरे के क्वाथ के साथ पीना चाहिए । इस प्रकार पीने से यह रस भयङ्कर ग्रहणी रोग को नष्ट कर देता है तथा अतीसार और ज्वरातीसार को भी नष्ट करता है । यह रस पाचक शक्ति को बढ़ाता है, वह्नि को प्रदीप्त करता है, हृदय के लिये हितकर है तथा शरीर को लघु करता है । इस रस को नागार्जुन ने कहा है तथा यह रस उपर्युक्त रोगों में अद्भुत लाभ करता है । कहीं २ पर "दिवसद्वयम्" यहां पर "दिवसत्रयम्" ऐसा पाठान्तर है ॥ ५२-५६ ॥

अथ सर्वरोगरसः-( सर्वारोग्यवटी ) ।

**रसं पलमितं तुल्यं शुद्धनागेन संयुतम् ।**
**द्रावयित्वाऽयसे पात्रे सतैले निक्षिपेत्क्षितौ ॥ ५७ ॥**
**ततो द्रुते विनिक्षिप्य गन्धके तद्विलोडय च ।**
**पुनरायसपात्रे तन्निक्षिप्त्वा प्रद्राव्य निक्षिपेत् ॥ ५८ ॥**
**तत्तुल्यं जारयेत्तालं पुनः सञ्चूर्ण्य पूर्ववत् ।**
**तत्तुल्यां जारयेत्सम्यक्कुनटीं परिशोधिताम् ॥ ५९ ॥**

तत्तुल्यं चूर्णिते तस्मिन्क्षिपेन्नागं निरूत्थकम् ।
तावदेव मृतं ताप्यं सर्वमन्यच्च तत्समम् ॥ ६० ॥
तीक्ष्णायःखर्परं व्योम हिङ्गुलं च शिलाजतु ।
पृथक्कर्षांशमानेन षट्कोलं कट्फलं मिशीम् ॥ ६१ ॥
दीप्यकं च चतुर्जातं रेणुकोशीरवेल्लकम् ।
तुम्बरुं भार्ङ्गिकां रास्नां कङ्कालं चोरपुष्करम् ॥ ६२ ॥
रिङ्गिणीं चिरतिक्तं च बीजान्युन्मत्तकस्य च ।
पलद्वयं च लाङ्गल्याः सर्वेषां द्वादशांशकम् ॥ ६३ ॥
वत्सनाभं सितं भूरि विनिक्षिप्य ततः परम् ।
त्रिफलानां दशाङ्घ्रीणां कषायेण ततः परम् ॥ ६४ ॥
जयन्त्यार्द्रकवासानां मार्कवस्य रसैस्तथा ।
भावयित्वा च कर्तव्या वटकाश्चणकोपमाः ॥ ६५ ॥
एकैका वटिका सेव्या कुर्यात्तीव्रतरां क्षुधाम् ।
विषूचीमरतिं हिक्कां सेव्यं स्वादु च शीतलम् ॥ ६६ ॥
सामां च ग्रहणीं सदाङ्गतुदनं शोषोत्कटं पाण्डुता-
मार्तिवातकफत्रिदोषजनितां शूलं च गुल्मामयम् ।
हिक्काध्मानविषूचिकां च कसनं श्वासार्शसां विद्रधिं
सर्वारोग्यवटी क्षणाद्विजयते रोगांस्तथान्यानपि ॥ ६७ ॥

शुद्धपारद १ पल ( ४ तो० ) तथा शुद्ध सीसा ( नाग ) १ पल भर लेकर दोनों को तैल से पुती हुई कड़ाही में डालकर पिघलावें। जब दोनों पिघल कर परस्पर मिल जाय तब उन्हें पृथ्वी के भीतर कुछ गहरे खुदे हुए गर्त ( गड्ढे ) में तैल भर कर उस में जल्दी से उडेल कर ( डालकर ) बुझावें ( गड्ढे को एक मध्य छिद्र वाले मजबूत सकोरे से ढककर उस छिद्र के द्वारा द्रुत पारद तथा नाग को धीरे धीरे दूर खड़े रहकर डालना चाहिए, ऐसा करने से लगने का भय कम रहता है ) फिर उस तैल से निकाल लेवें। फिर पारद और नाग के समान शुद्ध गन्धक को कड़ाही में डालकर तपावें, जब वह पिघल जाय तब उसमें उपर्युक्त पारद और नाग के पिण्ड को डाल कर लोहे की कलच्छी से खूब घोटें, जब घोटते २ सब मिल जावें तब उन्हें पूर्ववत् तैल में बुझावें। स्वाङ्ग शीतल होने पर

निकाल लें। फिर तैल से लिप्त लोहे की कड़ाही में इस औषध को डालकर इसके साथ दो पल हरताल जारण करनी चाहिए। अर्थात् हरताल का थोड़ा २ चूर्ण डालकर कलच्छी के अग्रिम चौड़े पृष्ठ के भाग से अथवा लोहे की लम्बी मुसल से घोटते रहना चाहिए। जब सम्पूर्ण हरताल उस औषध के साथ जारित हो जाय तब सब औषध को अत्यन्त प्रतप्त करके पूर्ववत् तैल में बुझा लेवें। फिर स्वाङ्ग शीतल औषध को निकाल कर कड़ाही में तपाकर उसके साथ यथाविधि २ पल शुद्ध मनःशिला का जारण करके पूर्ववत् तैल में बुझा लेवें। फिर स्वाङ्ग शीतल होने पर उसको लोहे की बड़ी खरल में घोटकर उसमें नागभस्म २ पल, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ पल, तीक्ष्णलौह की भस्म २ पल, खर्पर भस्म २ पल, अभ्रकभस्म २ पल, शुद्ध हिङ्गुल २ पल तथा शुद्ध शिलाजीत २ पल मिलाकर अच्छी प्रकार से घोट लेवें। फिर उसमें षट्कोल अर्थात् सोंठ का चूर्ण १ कर्ष, मरिच का चूर्ण १ कर्ष, पीपल का चूर्ण १ कर्ष, पीपलामूल का चूर्ण १ कर्ष, चव्य का चूर्ण १ कर्ष, चित्रक का चूर्ण १ कर्ष, कायफल का चूर्ण १ कर्ष, सौंफ का चूर्ण १ कर्ष, अजवाईन का चूर्ण १ कर्ष, चतुर्जात अर्थात् दालचीनी का चूर्ण १ कर्ष, इलायची का चूर्ण १ कर्ष, तेजपत्र का चूर्ण १ कर्ष, नागकेशर का चूर्ण १ कर्ष, हरेणु का चूर्ण १ कर्ष, उशीर ( खस ) का चूर्ण १ कर्ष, वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ कर्ष, धनियां का चूर्ण १ कर्ष, भारङ्गी का चूर्ण १ कर्ष, रास्ना का चूर्ण १ कर्ष, कंकोल का चूर्ण १ कर्ष, चोरक ( ग्रन्थिपर्ण ) का चूर्ण १ कर्ष, पुष्कर मूल अथवा मीठे कूट का चूर्ण १ कर्ष, रिङ्गिण अर्थात् कटेरी का चूर्ण १ क ( कुछ टीकाकारों ने रिङ्गिणी का अर्थ मुद्गपर्णी तथा मुस्तक भी किया है )। चिरायते का चूर्ण १ कर्ष, धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ कर्ष, लाङ्गली ( कलिहारी ) की शुद्ध जड़ का चूर्ण २ पल ( ८ तोले ) तथा सर्व औषधियों की अपेक्षा द्वादशांश ( १२ वां भाग ) शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण तथा सित अर्थात् चांदी की भस्म, भूरि अर्थात् स्वर्ण की भस्म ये एक २ तोला डाल कर सबको अच्छी प्रकार घोट लें। फिर त्रिफला के क्वाथ से सात वार भावित करें। दशांघ्रीण अर्थात् दशमूल के क्वाथ से सात भावना देवें। फिर जयन्ती के पत्तों के स्वरस, अदरख का स्वरस, अड़ूसे का स्वरस और भाङ्गरे के स्वरस से भी पृथक् २ सात २ वार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर चने के प्रमाण की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में

भर देवें । इसकी एक २ वटी प्रति दिन सेवन करने से क्षुधा ( भूख ) बढ़ती है तथा यह रस यथारोगानुपानों के साथ सेवन करने से विसूची ( हैजा ), अरूचि, हिक्कारोग, आमयुक्त ग्रहणी, शरीर में सर्वदा सूई के चुभाने के समान होने वाली पीड़ा, भयङ्कर शोषरोग, पाण्डुरोग, वात, कफ, पित्त इनके विकार तथा शूल, गुल्म, हिचकी, आध्मान ( पेट का फूलना ), विसूची, कास, श्वास, अर्श,॥ विद्रधि तथा अन्यसर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ ५७–६७ ॥

अथग्रहणीगजकेसरीरसः—

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं तुल्यभागयोः ।
द्रावयित्वाऽऽयसे पात्रे रसतुल्यं विनिक्षपेत् ॥ ६८ ॥
चराचरभवं भस्म तत्र मात्तिकसम्भवम् ।
गन्धपाषाणसहितं पात्रे लोहमये क्षिपेत् ॥ ६९ ॥
तत्काष्ठेन विलोड्याथ निक्षिपेत्कदलीदले ।
तत आच्छाद्य सञ्चूर्ण्य निधायाऽऽयसभाजने ॥ ७० ॥
अक्षमात्रं क्षिपेद्भस्म तत्र मात्तिकसम्भवम् ।
सम्यङ्निश्चन्द्रतां नीतं त्र्यमोभस्म पलोन्मितम् ॥ ७१ ॥
विषं विषां च गन्धारी मोचसारं सजीरकम् ।
सर्वं समांशिकं कृत्वा रसे चार्धांशिकं क्षिपेत् ॥ ७२ ॥
सर्वमेतन्मर्दयित्वा भावयेदतियत्नतः ।
जयन्त्या च महाराष्ट्र्या गजाकिन्याऽश्वगन्धया ॥ ७३ ॥
पञ्चकोलकषायैश्च कुर्याच्चूर्णं ततः परम् ।
इत्थं सिद्धो रसः सोऽयं ग्रहणीगजकेसरी ॥ ७४ ॥
नामतो नन्दिता प्रोक्तः कर्मतश्च सुधानिधिः ।
वल्लेन प्रमितश्चायं रसः शुण्ठ्या घृताक्तया ॥ ७५ ॥
सेवितो ग्रहणीं हन्ति सत्सङ्ग इव विग्रहम् ।
पथ्यमत्र प्रदात्तव्यं स्वल्पाज्यं दधितक्रयुक् ॥ ७६ ॥
हितं मितं च विशदं लघु ग्राहि रुचिप्रदम् ।
पाचनो दीपनोऽत्यर्थमामघ्नो रुचिकारकः ॥ ७७ ॥
तत्तद्दोषधयोगेन सर्वातीसारनाशनः ।

**बध्नन्नापि मलं शीघ्रं नाऽऽध्मानं कुरुते नृणाम् ॥ ७८ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला लेकर दोनों की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसको घी से पुती हुई ( घृतलिप्त ) लोहे की छोटी कड़ाही में मन्द २ आंच के द्वारा पिघला कर उसमें चराचर अर्थात् कौड़ी की भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक की भस्म १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला मिलाकर शुद्ध लकड़ी के डण्डे से अथवा लोहे की कलच्छी के चौड़े भाग के पृष्ठ से खूब घोटना चाहिए जब घोटते २ सब द्रुत होकर परस्पर मिल जावें तब उसे गीले ( आर्द्र ) गोबर के चोकोर चौंतरे ( चबूतरे ) पर बिच्छे हुए कोमल केले के पत्ते पर ढाल कर तुरन्त दूसरा पत्ता ऊपर ढककर गोबर से दबा देनी चाहिए, इस तरह से वह द्रुत कज्जली पर्पटी के रुप में बन जाती है । फिर स्वाङ्गशीतल पर्पटी को लोहे की खरल में डालकर महीन पीसकर उसमें स्वर्णमाक्षिकभस्म १ अक्ष ( १ कर्ष ), निश्चन्द्रीकृत अभ्रकभस्म १ पल तथा शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण, अतीस का चूर्ण, गन्धारी ( दुरालभा, जवासा ) का चूर्ण, मोचसार ( शाल्मलिवेष्टक या मोचरस ), अग्नि में भूने हुए जीरे का चूर्ण इन पाँचों द्रव्यों को बराबर २ लेकर पारद से व्योमभस्म तक जितना औषधि का वजन हुआ हो उससे आधे भाग के हिसाब से (अर्थात् पांचों द्रव्यों का महीन चूर्ण मिलाकर ५ तोला डालना चाहिए ) डालकर सबको अच्छी प्रकार से घोटकर जयन्ती के पत्तों के स्वरस से, महाराष्ट्री ( जलपिप्पली ) के स्वरस अथवा क्वाथ से, गजाङ्किनी ( हाथिशुण्डा ) के स्वरस से, असगन्ध के क्वाथ से तथा पञ्चकोल के क्वाथ से पृथक् २ एक २ वार घोट कर सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को ग्रहणीगज केसरी रस कहते हैं । इस रस को नन्दीनाम के आचार्य ने कहा है तथा यह रस सुधा ( अमृत ) का निधि ( खजाना ) है, अर्थात् अमृत के समान गुण करता है । यह रस १ वल्ल भर ( ३ रत्ती ) लेकर शुण्ठी के चूर्ण और घृत के साथ नित्य सेवन करने से संग्रहणी रोग को इस प्रकार विनष्ट करता है जिस तरह सज्जनों की सङ्गति ( उनके साथ बैठना उठना बातचीत करना इत्यादि ) विग्रह ( कलह, जगड़ा ) को नष्ट कर देती है । इस रस के सेवन करते समय पथ्य में थोड़े से घृत और मट्ठे के साथ हितकर, स्वल्प, स्वच्छ, शीघ्र पचने

वाले, ग्राही और रुचिवर्द्धक पदार्थों का आहार के रूप में सेवन कराना चाहिए। यह रस पचाने वाला, पाचक रसों का प्रदीपक, आमदोषविनाशी तथा रुचिकारक है। भिन्न २ औषधियों तथा अनुपानों के साथ देने से सर्व प्रकार के अतीसार को नष्ट करता है तथा अतीसारादिक को रोक कर द्रवमल को बांधता हुआ भी आध्मान आदि उपद्रव उत्पन्न नहीं करता है ॥ ६८–७८ ॥

विमर्शः—कुछ पुस्तकों में "गञ्जाकिनी" के स्थान में "गञ्जा कन्या" ऐसा पाठ है। इस पाठ में गञ्जा शब्द से गाँजा या भाङ्ग तथा कन्या शब्द से घृतकुमारी अर्थ समझना चाहिए।

पञ्चकोललक्षणं यथा—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः।
पञ्चभिः कोलमात्रं यत पञ्चकोलं तदुच्यते ॥ इति

अथ शीघ्रप्रभावरसः—

पारदं गन्धकं व्योम तीक्ष्णं तालं मनःशिला।
सौवीरमञ्जनंशुद्धं विमलं च समांशकम् ॥ ७९ ॥
एभिः कज्जलिकां कृत्वा स्वल्पतैलेन भर्जयेत्।
ग्रन्थिकं जीरकं चित्रं दीप्यकं मुस्तकं विषम् ॥ ८० ॥
वालाम्रं बालबिल्वं च मोचसारं समांशकम्।
विचूर्ण्य पूर्ववत्कल्कं तदर्धेन विनिक्षिपेत् ॥ ८१ ॥
पुनर्विमर्दयेद्यत्नादेकरूपं भवेद्यथा।
भावयेत्सप्तवाराणि पञ्चकोलकषायतः ॥ ८२ ॥
अरलुत्वग्रसेनापि दशवाराणि भावयेत्।
प्रोक्तेन क्रमयोगेन रसा निष्पद्यते ह्ययम् ॥ ८३ ॥
जग्धो विश्वघनाम्बुना स हि रसः शीघ्रप्रभावाभिधो
निष्कार्धप्रमितो महाग्रहणिकारोगेऽतिसारामये।
आध्माने ग्रहणीभवे रुचिहते वाते च मन्दानले
मुक्ते चापि मले पुनश्चलमलाशङ्कासु हिक्कासु च ॥ ८४ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, तीक्ष्णलौहभस्म १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, शुद्धमनःशिला १ तोला, शुद्धसौवीराञ्जन १ तोला, रौप्यमाक्षिकभस्म १ तोला लेकर सबको खरल में महीन कज्जली

बना के उसको लोहे की कड़ाही में डालकर थोड़े से तैल के साथ थोड़ी देर तक भून लेनी चाहिए। फिर पिपरामूल, जीरा, चित्रक, अजवाईन, नागरमोथा, शुद्ध-त्सनाभ, आम के कच्चे फल का सुखा हुआ गुदा तथा मोचरस ये प्रत्येक द्रव्य समान २ लेकर खाण्ड कूट कर चूर्ण करके कपड़े से छानकर इस चूर्ण को उपर्युक्त पारद से लेकर विमल तक जितने पदार्थ आये हैं उनके मिलित वजन से आधी मात्रा के अनुसार लेकर उनकी बनी हुई कज्जली में मिला देवें। फिर सबको अच्छी प्रकार घोट कर महीन चूर्ण करके उसे पञ्चकोल के क्वाथ से सात वार भावित करें तथा अरलु ( श्योनाक या सोनापाठा ) की छाल के स्वरस या क्वाथ से १०० बार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से यह शीघ्रप्रभाव नामक रस तैय्यार होता है इस रस को आधे निष्क भर ( २ माशे ) लेकर सौंठ तथा मुस्तक के २ तोले भर क्वाथ के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह रस भयङ्कर ग्रहणीरोग, अतीसार, आध्मान, ग्रहणी से उत्पन्न उपद्रव, अरुचि, वातव्याधि तथा मल के उत्सर्ग करने के पश्चात् फिर मलोत्सर्ग की इच्छा होना तथा हिचकी इत्यादि रोगों में अत्यन्त लाभ करता है ॥ ७९–८४ ॥

अथ पोट्टलीरसः—

**कपर्दतुल्यं रसगन्धकल्कं लोहं मृतं टङ्कणकं च तुल्यम् ।**
**जयारसेनैकदिनं विमर्द्य चूर्णेन सम्पिष्य पुटेत्तु भाण्डे ॥ ८५ ॥**
**दद्यात तां पोटलिकां च दोषत्रयप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै ॥ ८६ ॥**

कपर्द ( कौड़ी ) की भस्म १ पल तथा शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल, लौहभस्म १ पल, शुद्ध सुहागा १ पल लेकर प्रथम पारे और गन्धक की कज्जली करके शेष द्रव्य मिलाकर सब को अच्छी प्रकार से घोट कर शुद्ध भाङ्ग के रस अथवा क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करें, फिर चूर्ण अर्थात् चूने के पानी के साथ एक दिन तक घोटकर छोटी २ टिकिया बना के सुखाकर सम्पुट में बन्द करके भाण्ड में रख कर पुट दे देवें। स्वाङ्गशीतल भाण्ड से सिद्ध औषधि को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए रस को पोट्टलीरस कहते हैं। इसको १ रत्ती से ३ रत्ती तक रोग

तथा अवस्था का विचार करके ग्राही अनुपानों के साथ त्रिदोषजन्यग्रहणीरोग में प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ८५–८६ ॥

अथ वह्निज्वालावटीरसः—

नष्टपिष्टौ चतुर्मांषमेकैकं रसगन्धकौ ।
अभ्रकं मांषमानं च मातुलुङ्गाम्लमर्दितम् ॥ ८७ ॥
शोधितं सप्तधा चैव द्विमांषं त्र्यूषणं पृथक् ।
त्रिशूली भृङ्गचाङ्गेरी सातला तीक्ष्णपर्णिका ॥ ८८ ॥
श्वेताऽपराजिता कन्या मत्स्याक्षी ग्रीष्मसुन्दरा ।
करिणी कर्णमोटी च रुदन्ती चित्रकाऽऽर्द्रकात् ॥ ८९ ॥
धुस्तूरकाकमाचीभ्यां मुसल्याश्च पृथग्रसैः ।
मर्दितं द्विपलैः कुर्याद्वटिका मांषसम्मिता ॥ ९० ॥
ग्रहण्यां पर्णखण्डेन त्र्योषयुक्ता निषेविता ।
अरुचिं राजयक्ष्माणं मन्दाग्निं सूतिकागदान् ॥
शमयेद्वटिका नाम्ना वह्निज्वालेति गीयते ॥ ९१ ॥

शुद्ध पारद ४ माशा, शुद्ध गन्धक ४ माशा भर लेकर दोनों को अच्छी प्रकार से खरल में पिष्टी ( कज्जली ) बनालेवें फिर उसमें बिजोरे निम्बू के रस में सात-वार भावित की हुई अभ्रक की भस्म १ माशा तथा शुण्ठी चूर्ण २ माशा, मरिच चूर्ण २ माशा, पिप्पली चूर्ण २ माशा डालकर सबको अच्छी प्रकार घोटकर महीन चूर्ण बना लेवें, फिर उस चूर्ण को त्रिशूली अर्थात् शिवलिङ्गी अथवा धत्तूरा, भृङ्गराज ( भाङ्गरा ), चाङ्गेरी, सातला ( थूहर ), तीक्ष्णपर्णिका ( रक्त इक्षु ), श्वेत अपराजिता, घृतकुमारी, मत्स्याक्षी ( मछेछी ), ग्रीष्मसुन्दर ( गीमा शाक ), करिणी ( हस्तिशुण्डी ), कर्णमोटी (बर्ब्बुर), रुदन्ती (रुद्रवन्ती), चित्रक (चीता) अदरख, धत्तूरा, मकोय और मुसली इन औषधियों में से प्रत्येक के पत्र, कन्द, मूल अथवा पञ्चाङ्ग से निकाले हुए दो पल ( ८ तो० ) स्वरस या क्वाथ से क्रम से पृथक् २ एक २ वार भावित करके अच्छी प्रकार से घोटकर एक २ माशे भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के शीशी में भर लेवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए रस को वह्निज्वालारस कहते हैं । इस रस की एक २ वटी प्रतिदिन त्रिकटु के चूर्ण और पान के स्वरस के साथ सेवन करने से ग्रहणीरोग में बहुत

लाभ होता है तथा यह रस अरुचि, राजयक्ष्मा, मन्दाग्नि और सूतिकास्त्रियों के विकारों को नष्ट करता है ॥ ८७–९१ ॥

विमर्शः—रुदन्ती का विशेष परिचय राजनिघण्टु में इस प्रकार है यथा—

"चणपत्रसमं पत्रं क्षुपश्चैव तथाविधः ।
शैशिरे जलावन्दूनास्रवन्तीति रुदन्तिका ॥" इति ।

अथ वज्रधररसः—

रसगन्धकताम्राभ्रं क्षारांस्त्रीन्वरुणो वृषम् ।
अपामार्गस्य च क्षारं लवणं द्विद्विमाषकम् ॥ ९२ ॥
चाङ्गेर्या हस्तिशुण्ड्याश्च रसैः पिष्टं पचेत्पुटे ।
भक्षयित्वा ततो गुञ्जां ग्रहण्यां काञ्जिकं पिबेत् ॥ ९३ ॥
पक्तिशूले च कासे च मन्दाग्नावार्द्रकद्रवम् ।
अम्लपित्ते च धारोष्णं क्षीरं वज्रधरो ह्ययम् ॥ ९४ ॥

शुद्ध पारद २ मा०, शुद्ध गन्धक २ मा०, ताम्रभस्म २ मा०, अभ्रक भस्म २ मा०, क्षारत्रय (१)अर्थात् सर्जिक्षार २ मा०, यवक्षार २ मा०, शुद्ध सुहागा २ मा०, वरुण की छाल का चूर्ण २ मा०, वासा (अडूसा) के पत्रों का चूर्ण २ मा०, अपामार्ग का क्षार २ मा०, सैन्धव लवण २ मा० लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्यों को मिला कर चाङ्गेरी और हस्ति शुण्डी के स्वरस से क्रमशः पृथक् २ एक २ वार घोट कर शराव सम्पुट करके लघुपुट में पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल सम्पुट से औषधि निकाल कर खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को वज्रधर रस कहते हैं। इस रस को ग्रहणीरोग में सेवन करके ऊपर से काञ्जी का अनुपान करना चाहिए । इस रस को परिणामशूल, कास और मन्दाग्नि रोग में आर्द्रक के स्वरसानुपान से तथा अम्लपित्त में धारोष्ण दुग्ध के अनुपान से सेवन करना चाहिये ॥ ९२–९४ ॥

विमर्शः—क्षारत्रयस्वरूपं यथा—

(१) "स्वर्जिक्षारो यवक्षारः क्षारद्वयमुदाहृतम् ।
टङ्कणेन युतं तत्तु क्षारत्रयमुदीरितम् ॥" इति।

वरुण और अडूसे का भी साहचर्यबल से क्षार लेना प्रशस्त है।

अथ ग्रहणीकपाटरसः

रसेन्द्रगन्धाऽतिविषाऽभयाऽभ्रं क्षारद्वयं मोचरसो वचा च ।

**जया च जम्बीररसेन पिष्टं पिण्डीकृतं स्याद्ग्रहणीकपाटः ॥९५॥**
**तस्यार्धमाषं मधुना प्रभाते शम्बूकभस्माज्यमधूनि लिह्यात् ।**
**सक्षीरिणीजीरकमाणिमन्थतीक्ष्णानि चादौ दधिभोजनं च ॥९६॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध अतीस का चूर्ण १ तो०, हरीतकी ( हरड़ ) का चूर्ण १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, क्षारद्वय अर्थात् स्वर्जिक्षार १ तोला, यवक्षार १ तोला, मोचरस १ तोला, वच का चूर्ण १ तोला तथा शुद्ध भाङ्ग का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को मिलाकर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ अच्छी प्रकार से खरल करके आधे २ माशे भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार ग्रहणीकपाट रस तैय्यार हो जाता है । इस रस की एक गोली प्रतिदिन प्रातःकाल मधु के साथ भक्षण करके तदुपरान्त (१)शम्बूक अर्थात् क्षुद्र शङ्ख अथवा जल शुक्ति की भस्म १ रत्ती लेकर १ तो० घृत और आधे तोले शहद् के साथ मिलाकर सेवन करनी चाहिए तथा भोजन करने के पूर्व दुग्धिका का चूर्ण, अग्नि में भूने हुए जीरेका चूर्ण, माणिमन्थ ( सैन्धव लवण ) और कालीमरिचों के चूर्ण को दही में मिलाकर सेवन करना चाहिये ॥ ९५-९६ ॥

अथ सौवर्चलादिचूर्णम्—

**सौवर्चलं जीरकयुग्मधान्य-जयायवानीकणनागरं च ।**
**कपित्थसारेण समं प्रगृह्य ददीत चूर्णं निशि तीव्रपित्ते ॥ ९७ ॥**
**गद्याणमात्रं मधुखण्डयुक्तं तक्रेण युक्तं त्वरुचिप्रशान्त्यै ।**
**वातप्रधाने च कफप्रधाने रात्रौ कषायं कुटजस्य दद्यात् ॥ ९८ ॥**

सौवर्चल ( काला ) नीमक १ तोला, सफेद जीरे का चूर्ण १ तोला, काले जीरे का चूर्ण १ तोला, धनिये का चूर्ण १ तोला, भाङ्ग का चूर्ण १ तोला, अजवाईन का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तोला तथा सब के बराबर कपित्थ ( कैथ ) के सूखे गूदे का महीन चूर्ण लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार से महीन घोटकर वस्त्र से छान कर शीशी में भर देना चाहिए ।

---

( १ ) "क्षुद्रशङ्खाः शङ्खनखाः शम्बूका जलशुक्तयः"

इस चूर्ण को गद्याण ( गद्याणो माषकैः षड्भिः ) । अर्थात् ६ माशे भर लेकर शहद् और मिश्री के साथ तीव्रपित्तप्रकोपजन्यग्रहणी रोग में सेवन कराना चाहिए तथा इस रस को वातप्रधान ग्रहणी, कफ प्रधान ग्रहणी में भी देने से अत्यन्त लाभ होता है तथा संध्या के समय कूड़े की छाल का क्वाथ बना कर पिलाना चाहिए। इस रस के सेवन से अरुचि प्रतीत हो तो गाय का मट्ठा पिलाना चाहिए ॥ ९७–९८ ॥

अथ मुस्तादिचूर्णम्—

**मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रतिविषाविषम् ।**
**धातकीमोचनिर्यासश्चूतास्थिग्रहणीहरम् ॥ ९९ ॥**

शुद्ध नागरमोथे का चूर्ण १ तोला, कूड़े की छाल का चूर्ण १ तोला, पाढ़े का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, व्योष का चूर्ण पृथक् २ एक २ तोला, शुद्ध अतीस का चूर्ण १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, धाय के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, मोचरस १ तोला, आम के फल की गुठली के भीतर की गिरि का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को शहद् के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९९ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्र वह्न्यादिचूर्णम्—

**वह्निशुण्ठीबिडं बिल्वं लवणं पेषयेत्समम् ।**
**पिबेदुष्णाम्भसा चानु वातोत्थां ग्रहणीं जयेत् ॥ १०० ॥**

चित्रक की जड़ का चूर्ण १ पल, सौंठ का चूर्ण १ पल, विड्लवण १ पल, बेल के फल के सूखे गूदे का चूर्ण १ पल, सैन्धवलवण १ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसकर कपड़े से छानकर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को १ तोले मन्दोष्ण जल के साथ भक्षण करने से वातिक ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है ॥१००॥

दग्धशम्बूकादियोगः

**दग्धशम्बूकसिन्धून्थं तुल्यं क्षौद्रेण लेहयेत् ।**
**निष्कैकं निहन्त्याशु ग्रहणीरोगमुत्कटम् ॥ १०१ ॥**

छोटे २ शङ्खों की भस्म १ पल तथा सैन्धव लवण १ पल लेकर दोनों को खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें। इस योग को उचित मात्रा से

शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से भयङ्कर ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है॥१०१॥

अन्योपायः—

**कृशान्वजाजीद्वयमाक्षिकेण कटुत्रयेणापि युतं त्वनुष्णम्।**
**चाङ्गेरिकाजीरकयुग्मधान्यं दुग्धेन्दुशाकाय ददीत दध्ना॥१०२॥**

चित्रक की जड़ का चूर्ण १ पल, काले जीरे का चूर्ण १ पल, सफेद जीरे का चूर्ण १ पल, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ पल, सौंठ का चूर्ण १ पल, मरिच का चूर्ण १ पल, छोटी पीपल का चूर्ण १ पल लेकर सब को खरल में डालकर महीन पीस के कपड़े से छान कर शीशी में भर देवें। इस योग को उचित मात्रा से शीतल जल के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। मात्रा—१ माशा। अनुपान—शहद्, जीरे का चूर्ण, मट्ठा आदि ग्राही पदार्थ। अथवा बड़ी करञ्ज के फलों की गिरी का चूर्ण १ पल, सफेद जीरे का चूर्ण १ पल, काले जीरे का चूर्ण १ पल, धनियां का चूर्ण १ पल तथा दुग्धिका का चूर्ण १ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसकर छान के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को १ माशे भर लेकर शहद् के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। पथ्य में दुग्धिका का शाक, दही, भात, आदि ग्राही पदार्थ सेवन करना चाहिए॥ १०२॥

अथ ग्रहण्यां पथ्यापथ्यविमर्शः—

**मुद्गषष्टिकशाली च आढकी माक्षिकं तथा। छाग्याः पयोदधि घृतं नवनीतं कपित्थकम्॥१॥**
**निःसारं दधि गोबिल्वं रम्भायाः कुसुमं फलम्।**
**दाडिमं लाजकुन्मण्डः शृङ्गाटंक्षुद्रमत्स्यकः॥२॥**
**एणतित्तिरलावानां शशानां क्रव्यमेवच। ग्रहण्यामातुरे पथ्यं कथितंमुनिभिर्हितम्॥३॥**

इति पथ्यानि।

अथ ग्रहण्यामपथ्यानि—

**पिच्छिलानि कठोराणि गुरूण्यन्नानि यानि च।**
**आमकृन्ति न सेव्यानि ग्रहणीरोगिभिःक्वचित्॥**

इति ग्रहण्यां पथ्यापथ्यानि।

अथाजीर्णम्—

**विरेको जठरे शूलं वमनं च मुहुर्मुहुः।**
**हस्तपादादिसङ्कोचः सर्वाजीर्णस्य लक्षणम्॥१०३॥**

बार २ दस्तों की शिकायत, पेट में शूल, वमन और हस्त तथा पैरों में सङ्कोच होना आदि ये सब अजीर्ण के लक्षण हैं॥ १०३॥

अथाजीर्णकण्टकरसः—

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वविचूर्णितम् ।
मरिचं सर्वतुल्यांशं कण्टकार्य्या फलद्रवैः ॥ १०४ ॥
मर्दयेद् भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् ।
वटीं गुञ्जात्रयीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ १०५ ॥
अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विषूचिकाम् ।
वारिणा तिलपर्ण्युत्थमूलं पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ १०६ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला तथा सब के बराबर ( ३ तोला ) मरिचों का चूर्ण लेकर सबके पहिले पारे और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोटकर बड़ी करेली के फलों के स्वरस अथवा क्वाथ से २१ वार भावना देकर ( प्रत्येक भावना में अच्छी प्रकार घोटकर स्वरस को सुखाना चाहिए ) खूब घोटकर तीन २ रत्ति की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ वटी उष्ण जल के साथ सर्व प्रकार के अजीर्णों की शान्ति के लिये सेवन करनी चाहिए। यह अजीर्णकण्टकरस जल में पिसी हुई तिलपर्णी ( तिलोनि या रक्त चन्दन ) के स्वरस के साथ सेवन करने से विसूचिका को नष्ट करता है ॥ १०४-१०६ ॥

अथ विध्वंसरसः—

विमर्द्य गन्धोपलटङ्कणेन सम्भान्य वारानथ सप्त जात्याः
तोयैः फलानामथ सिद्धसूतौ विध्वंसनामा शमनो विषूच्याः ॥ १०७ ॥
मनुष्य गुञ्जा नव दापनीया हन्तुं विषूचीं सितया समेताः ।
तक्रौदनं स्यादिह भोजनाय पथ्यं च शाकं किल वास्तुकस्य ॥१०८॥

शुद्ध गन्धक और शुद्ध सुहागा दोनों समभाग लेकर खरल में महीन पीस कर जाय फल के क्वाथ से सातवार भावित करके अच्छी प्रकार घोट लेवें । फिर दोनों के बराबर सिद्ध सूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रस सिन्दूर को खरल में घोट कर त्रिफला के क्वाथ से सात वार भावित करके उसमें पूर्व में भावित किये हुए गन्धक और सुहागे की पिष्टी मिलाकर सब को उत्तम प्रकार से घोट कर एक २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखाकर काच की शीशी में भर

देवें। इस प्रकार यह विध्वंस रस बनता है। इस रस की ९ रत्ती भर की मात्रा चीनी के साथ मिला कर विसूची को नष्ट करने के लिये सेवन करनी चाहिए। औषध के जीर्ण होने के पश्चात् पथ्य में मट्ठे के साथ भात तथा वास्तूक (बथुए) की शाक सेवन करानी चाहिए। प्रायः इस रस की मात्रा १ रत्ती से ४ रत्ती तक पर्याप्त है॥ १०७-१०८॥

अथ विषूचीविजयरसः—

**रसगन्धटङ्कभसितं समांशकं परिमर्द्य जातिफलस्रभावितम्।**
**सितयोपयुज्यनवरक्तिकोन्मितं मथितान्नभुग्विजयते विषूचिकाम्॥१०९॥**

शुद्ध पारद १ पल शुद्ध गन्धक १ पल, तथा अग्नि में भूने हुए सुहागे का महीन चूर्ण १ पल लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें सुहागा मिला के अच्छी प्रकार से घोट कर जाती फल के क्वाथ से सात वार भावित करके अच्छी तरह से घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को ९ रत्ती भर लेकर एक तोले चीनी के साथ मिला कर सेवन करने से विसूचिका रोगनष्ट हो जाता है। इस रस के सेवन करने के ३ घण्टे के पश्चात् मथित अर्थात् बिना जल ही के दही को मन्थन करके बनाये हुए स्तरयुक्त मट्ठे के साथ अन्न (भात) का सेवन कराना चाहिए॥ १०९॥

अथाग्निकुमाररसः—

**हंसपादीरसैः सिद्धं रसगन्धकयोः पलम्।**
**कोलं च विषचूर्णस्य वालुकायन्त्रपाचितम्॥ ११०॥**
**शाणं विषस्यार्धपलं मरिचस्य विमिश्रयेत्।**
**दीपनोऽग्निकुमारोऽयं ग्रहण्यां च विशेषतः॥ १११॥**
**सवातश्लेष्मजान्रोगान्क्षणादेवापकर्षति।**
**सन्निपातज्वर-श्वासक्षयकासांश्च नाशयेत्॥ ११२॥**

आधा पल शुद्धपारा और आधा पल शुद्ध गन्धक लेकर दोनों की कज्जली बना कर हंसपादी (गोधापदी या गोहालिया) के रस के साथ एक दिन तक अच्छी प्रकार खरल करके उसमें शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ कोल मिलाकर अच्छी प्रकार से घोट कर शराव में सम्पुट करके बालुकायंत्र में ६ प्रहर तक पाक करना चाहिए। फिर स्वाङ्गशीतल सम्पुट से औषधि को निकाल कर खरल में पीस कर

उसमें शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण १ माशा ( ४ मा० ) तथा वस्त्र से छाना हुआ मरिचों का महीन चूर्ण आधा पल ( २ तो० ) मिलाकर सब को अच्छी प्रकार से घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को अग्नि-कुमार रस कहते हैं। यह रस ग्रहणी रोग में बहुत लाभ करता है। यह रस अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा वात और कफ के रोगों को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा सन्निपात ज्वर, श्वास, क्षय और कास रोग को भी नष्ट करता है। मात्रा १–२ रत्ती ॥ ११०–११२ ॥

अथ वडवाग्निरसः—

**टङ्कणं मरिचं तुत्थं पृथक् कर्षत्रयं भवेत् ।**
**सुन्दरं द्वादशं निष्कं त्रिंशन्निष्कमयोमलम् ॥ ११३ ॥**
**चूर्णान्येतानि संयोज्य स्थापयेच्छुद्धभाजने ।**
**शुद्धदेहो नरस्तस्य पानं यद्भोजनोत्तरम् ॥ ११४ ॥**
**अद्यात् पथ्यं ततः स्वल्पं ततस्ताम्बूलभाग्भवेत् ।**
**उदराग्निर्नरस्यास्य वडवाग्निसमो भवेत् ।**
**बहुनात्र किमुक्तेन रसायनमयं नृणाम् ॥ ११५ ॥**
**कान्तं पञ्चरस घृष्टं पुटपक्वं वरारसे ।**
**मार्कवस्वरसे घृष्टं सप्तकृत्वस्त्वयोमलम् ॥ ११६ ॥**

शुद्ध सुहागा ३ कर्ष, वस्त्र से छाना हुआ मरिचों का चूर्ण ३ कर्ष, निर्मल किया हुआ नीले तुत्थ का चूर्ण ३ कर्ष, सुन्दर अर्थात् कान्तलौहभस्म १२ निष्क ( ४८ मा० ) तथा मण्डूरभस्म ३० निष्क ( १२० मा० ) लेकर सबको खरल में अच्छी प्रकार से घोटकर महीन करके काच की शीशी में भर देवें। इस रस को वमन विरेचनादि पञ्चकर्म के द्वारा देह को शुद्ध करके भोजन करने के पश्चात् प्रतिदिन उचित अनुपानों के साथ सेवन करना चाहिए। इस रस के पच जाने के पश्चात् पथ्य में हितकारी तथा थोड़ा २ भोजन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने के पश्चात् अरुच्यादिक की शान्ति करने के लिये ताम्बूल भक्षण करना चाहिए। इस रस के उपर्युक्त विधि के अनुसार सेवन करने से उदर की अग्नि ( पाचकरस ) समुद्र की वड़वाग्नि के समान प्रदीप्त हो जाती है। यह रस मनुष्यों के लिये रसायन है, अर्थात् इसके सेवन करने से सर्व प्रकार के रोग

नष्ट हो जाते हैं तथा वृद्धावस्था जल्दी मनुष्य को आक्रान्त नहीं कर सकती है। इस रस के निर्माण करने के लिये कान्तलौह की भस्म को डालने के पूर्व उसको कमल के पुष्प के स्वरस के साथ घोटकर सातवार गजपुट में फूंके फिर टङ्कणादिक के साथ घोंटे। इसी तरह मण्डूर भस्म को भी भृङ्गराज के स्वरस के साथ सात बार घोट २ कर सात २ पुट देकर फिर टङ्कणादिक के साथ मिलाकर फिर उपर्युक्त विधि से वड़वाग्निरस तैयार करना चाहिए ॥ ११३-११६ ॥

अथ वैश्वानरपोटलीरसः—

शुद्धौ सूतबली चराचररजः कर्षांशतः कज्जलीम्
कृत्वा गोपयसा विमर्द्य दिवसं रुद्ध्वा च मृण्मोदरे।
सिद्धं कुम्भपुटे स्वतश्च शिशिरः पिष्ट्वा करण्डे स्थिता
स्याद्वश्वानरपोटलीति कथिता तीव्राग्निदीप्तिप्रदा ॥ ११७ ॥
एकोनविंशतेश्चूर्णैर्मारचानां घृतान्वितैः।
देयेयं वह्निमानेन वयोबलमवेक्ष्यताम् ॥ ११८ ॥
गिलेद्बलविशुद्ध्यर्थं दधिभक्तमनुत्तमम्
कवलत्रयमानेन दुर्गन्ध्योद्गारशान्तये ॥ ११९ ॥
मध्यन्दिने ततो भोज्यं घृततक्रोपदंशयुक्।
रात्रौ च पयसा सार्धं यद्वा रोगानुसारतः ॥ १२० ॥
विदाहि द्विदलं भूरिलवणं तैलपाचितम्।
बिल्वं च कारवेल्लं च वृन्ताकं काञ्जिकं त्यजेत् ॥ १२१ ॥
इयं हि पोटली प्रोक्ता सिङ्गणेन महीभृता।
मन्दाग्निप्रभवाशेषरोगसङ्घातघातिनी ॥ १२२ ॥
सिङ्गणस्य विनिर्दिष्टा भैरवानन्दयोगिना।
लोकनाथोक्तपोटल्या उपचारा इह स्मृताः ॥
पोटल्या दीपनाः स्निग्धा मन्दाग्नौ नितरां हिताः ॥ १२३ ॥

शुद्ध पारद १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, कौड़ी की भस्म १ कर्ष लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में कौड़ी भस्म मिला के एक दिन तक खरल में घोट कर चूर्ण कर लेवें। फिर उस को गाय के धारोष्ण दुग्ध से आप्लावित कर के एक दिन तक उस दुग्ध के साथ घोट कर गोला बना के

मूषायन्त्र में बन्द कर के गजपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतलयन्त्र से सिद्ध हुए रस को निकाल कर महीन पीस के करण्ड अर्थात् काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को वैश्वानरपोट्टलीरस कहते हैं। यह पोट्टलीरस पाचकाग्नि को दीप्त करता है। इस रस को रोगी की अवस्था और बल का विचार कर के १ रत्ती से १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर तक १९ मरिचों के महीन चूर्ण तथा २ तोले गोघृत के साथ सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने के पश्चात् गले अर्थात् मुख की शुद्धि करने के लिये तथा दुर्गन्धयुक्त उद्गार ( डकार ) की शान्ति के लिये दही में मिले हुए भात के ३ ग्रास भक्षण करने चाहिए। ऐसा करने से मुख शुद्ध हो जाता है तथा खराब उद्गार का वेग भी नष्ट हो जाता है। फिर इस रस के जीर्ण हो जाने के पश्चात् प्रायः मध्याह्न के समय में गोघृत तक्र और उपदंश अर्थात् व्यञ्जन ( पथ्यकारकशाक ) के साथ २ पुराने चांवलों का भात सेवन करना चाहिए। फिर रात्रि के समय दुग्ध के साथ रोटी अथवा भात का सेवन करना चाहिए। अथवा जैसा रोग हो उस के अनुसार उचित पथ्य का सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने वाले मनुष्य को विदाहि ( जलन करने वाले उष्ण पदार्थ ) तथा द्विदली ( दो दल वाले ) दाल आदि अन्न, अत्यन्त लवण का सेवन, तैल से पकाये हुए शाक या अन्य पदार्थ, बेल का फल, करेले की शाक, बैंगन की शाक तथा काञ्जी आदि इन पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए। इस वैश्वानरपोट्टलीरस को सिंघण नामक महाराज ने बताया है तथा सिंघण नामक महाराज को भी भैरवानन्द नाम के योगी ने बताया है। यह पोट्टली रस मन्दाग्नि से उत्पन्न हुए समस्त रोगों को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करते समय लोकनाथ के द्वारा कहे हुए पोट्टली रस के समस्त उपचारों ( पथ्यापथ्य ) का पालन करना चाहिए। बहुधा सर्व प्रकार के पोट्टलीरस अग्नि को प्रदीप्त करने वाले तथा स्निग्ध होते हैं और मन्दाग्नि से उत्पन्न हुए समस्त रोगों में विशेष हित कर होते हैं ॥ ११७–१२३ ॥

चराचरवराटीलक्षणम्—

**पीतवर्णा गुरुस्निग्धा पृष्ठतो ग्रन्थिलाऽमला।**
**चराचरेति सा प्रोक्ता वराटी नन्दिना खलु ॥ १२४ ॥**

जो कौड़ी पीले वर्ण वाली, गुरु अर्थात् वजनदार, स्पर्श में स्निग्ध ( मुलायम चिकनी ) तथा पृष्ठ भाग पर गांठदार और निर्मल होती है ऐसी कौड़ी को नन्दी नाम के आचार्य ने चराचर संज्ञक कौड़ी कही है ॥ १२४ ॥

श्रेष्ठमध्यमाधमवराटिकायालक्षणम्—

**सार्धनिष्कमिता श्रेष्ठा मध्यमा निष्कमानिका ।**
**पादोननिष्कमाना च कनिष्ठात्र वराटिका ॥ १२५ ॥**

चराचर नामक कौड़ियों में भी जो कौड़ि १॥ निष्क ( ६ मा० ) के बराबर वजन वाली होती है वह श्रेष्ठ तथा १ निष्क ( ४ मा० ) के समान वजन वाली मध्यम तथा पाद अर्थात् चतुर्थांश से कम वजन ( ३ मा० ) की कौड़ी कनिष्ठ होती है। इसलिये रसकार्य के लिये यथा सम्भव १॥ निष्क भर की कौड़ी ही को लेकर भस्म करनी चाहिए ॥ १२५ ॥

पुंवराटलक्षणंतस्य दोषाश्च—

**निष्फलाश्च ततो न्यूनाः पुंवराटाश्च पित्तलाः ।**
**दत्त्वा दत्त्वा गुणान्भूयो विकारान्कुर्वते हि ते ॥ १२६ ॥**

उपर्युक्त तीन प्रकार की कौड़ियों से कम वजन वाली कौड़ियां औषधकार्य में निष्फल होने से वर्जित हैं तथा इनसे बड़ी २ कौड़ियों को पुंवराट कहते हैं। इन से बनी हुई भस्म को सेवन करने से पित्त की विशेष वृद्धि होती है तथा इनकी भस्म प्रथम गुणों को उत्पन्न करके अन्त में विकार ही उत्पन्न करती हैं ॥ १२६ ॥

अथ वडवामुखी गुटी—

**शुल्वायोघनभस्मवेल्लहलिनीव्योषाम्बुनिम्बच्छदैः**
**संयुक्तैश्च हरिद्रया समलवैः सार्धं सशुभ्रामृतैः ।**
**भृंगाम्भोविषतिन्दुकार्द्रकरसैः संपिष्य गुञ्जामिता**
**संशुष्का वडवामुखीति गुटिका नाम्नोदिता तारया ॥१२७॥**
**क्षिप्रं क्षुत्परिबोधिनी खलु मता सर्वामयध्वंसिनी**
**श्लेष्मव्याधिविधूननी कसनहृच्छ्वासापहा शूलनुत्**
**क्षुद्वैषम्यहरा च गुल्मशमनी शुलार्तिमूलङ्घषा**
**शोफव्याधिहराऽत्र किं बहुगिरा सर्वामयोत्सादिनी ॥१२८॥**

ताम्रभस्म १ तोला, लौहभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, वायविडङ्ग का

चूर्ण १ तोला, कलिहारी की शुद्ध जड़ का चूर्ण १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, सुगन्धबाला का चूर्ण १ तोला, नीम के पत्रों का चूर्ण १ तोला, हरिद्रा का चूर्ण १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला तथा शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में एकत्र करके महीन पीसकर भृङ्गराज, शुद्ध कुचला और अदरख के साथ क्रम से पृथक् २ एक एक बार घोटकर एक २ रत्ती प्रमाण की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से बनी हुई इस औषधि को वडवामुखीगुटिका कहते हैं तथा इसको तारा नाम की विदुषी ने सर्व प्रथम बताई। यह वटी सेवन करने से तुरन्त क्षुधा को दीप्त करती है। यथाव्याध्यनुपानपूर्वक सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करती है तथा विशेष करके कफ की व्याधि, कास, श्वास, शूल, मुख की विषमता, गुल्मरोग, शूल की पीड़ा और मूलरोग अर्थात् अर्श तथा शोथ आदि सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करती है ॥ १२७-१२८ ॥

अथ क्रव्यादरसः—

द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् ।
पारदं पलमानेन मृतशुल्वायसं पुनः ॥ १२९ ॥
तोलमानेन संक्षिप्य पञ्चाङ्गुलदले क्षिपेत् ।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्यायसभाजने ॥ १३० ॥
चुल्ल्यां निवेश्य यत्नेन ज्वालयेन्मृदुवह्निना ।
पात्रमात्रं हि जम्बीररसं सम्यग्विजारयेत् ॥ १३१ ॥
सञ्चूर्ण्य पञ्चकोलोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः ।
भावनाः खलु कर्तव्याः पञ्चाशत्प्रमितास्ततः ॥ १३२ ॥
भृष्टटङ्कणचूर्णन तुल्येन सह मेलयेत् ।
तदर्धं कृष्णलवणं सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ १३३ ॥
सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा ।
ततः संशोष्य संपिष्य कूपिकाजठरे क्षिपेत् ॥ १३४ ॥
अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्यनेकशः ।
भुक्त्वा च कण्ठपर्यन्तं चतुर्वल्लमितं रसम् ॥ १३५ ॥
षड्वम्लतक्रसहितं पिबेत्तदनुपानतः ।

क्षिप्रं तज्जीयते भुक्तं जायते दीपनं पुनः ॥ १३६ ॥
रसः क्रव्यादनामाऽयं प्रोक्तो मन्थानभरवैः ।
सिंघणक्षोणिपालस्य भूरिमांसप्रियस्य च ॥
दिष्टो ग्रामं समासाद्य भैरवानन्दयोगिना ॥ १३७ ॥
कुर्याद्दीपनमुद्धतं च पचनं दुष्टामसंशोषणं
तुन्दस्थौल्यनिबर्हणं गरहरं मूलार्तिशूलापहम् ।
गुल्मप्लीहविनाशनं ग्रहणिकाविध्वंसनं स्रंसनं
वातग्रन्थिमहोदरापहरणं क्रव्यादनामा रसः ॥ १३८ ॥

शुद्ध गन्धक २ पल लेकर उसको कड़ाही में अग्नि से पिघलाकर उस में १ पल शुद्ध पारद, १ तोला ताम्रभस्म और १ तोला लौहभस्म डालकर सबको अच्छी प्रकार पिघला के गोबर के ऊपर बिच्छे हुए एरण्ड के कोमल पत्ते पर डालकर शीघ्र ही दूसरे पत्ते से आच्छादित करके गीले गोबर से दबा देना चाहिए। इस प्रकार से पर्पटी बन जाती है, फिर उस पर्पटी को लोहे की खरल में महीन पीसकर लोहे की कड़ाही में डाल कर उसे चूल्हे पर चढाकर मन्द २ अग्नि देना प्रारम्भ करें तथा १ पात्र भर ( ६४ पल या १ आढक ) जम्बीरी निम्बू का रस लेकर उसमें से थोड़ा २ रस कड़ही को औषधि में डालकर जारण करना चाहिए। रस डालकर लोहे की कलच्छी अथवा शुद्ध लकड़ी के डण्डे से चलाते रहना चाहिए, इस प्रकार से सम्पूर्ण रस के जारण हो जाने के पश्चात् स्वाङ्गशीतल औषध को उतार कर लोहे की खरल में महीन पीसकर उस चूर्ण को पञ्चकोल ( त्रिकटु, पिपरामूला, चित्रक, ) और अम्लवेत के क्वाथ से क्रम से अलग २ ५० बार भावित करना चाहिए, अर्थात् ५० वार पञ्चकोल के क्वाथ से भावित करके फिर ५० वार अम्लवेत के क्वाथ से भावित करें। क्योंकि अन्य रस ग्रन्थों में दोनों की पचास २ भावना देने से १०० वार भावना देने का प्रमाण मिलता है। यथा रसेन्द्रसारसंग्रहे—

"सुपञ्च कोलोद्भववारिपूरैः सवेतसाम्लैः शतमत्र योज्यम्" ।

भावना देने के पश्चात् उस में भावित औषधि के बराबर (७ तो०) अग्नि में भूना हुआ शुद्ध सुहागा तथा उसका आधा ( ३॥ तो० ) काला नीमक तथा सब के बराबर ( २४॥ तो० ) वस्त्र से छाना हुआ काली मरिचों का चूर्ण मिला

कर सब को अच्छी प्रकार से घोट कर चने के क्षार के पानी ( चणक क्षारोदक ) से सात वार भावित कर के अच्छी प्रकार घोट कर सुखा के फिर महीन पीस कर काचकूपी के भीतर भर के रख देवें। अत्यन्त गरिष्ठ मांस तथा अनेक प्रकार के गरिष्ठ ( देर से पचने वाले ) गोधूम आदि के घृत से बने हुए भोज्य पदार्थों को अती मात्रा से कण्ठ पर्यन्त खाकर फिर चार वल्ल भर ( १२ रत्ती ) इस रस को सैन्धव लवण मिली हुई खट्टी छाछ ( मट्ठे ) के साथ मिला कर पीने से शीघ्र ही खाया हुआ गरिष्ठ भोजन पच जाता है तथा अग्नि फिर प्रदीप्त हो कर बुभूक्षा लग जाती है। मन्थानभैरव नाम के आचार्य के द्वारा कहे हुए इस क्रव्याद नामक रस को भैरवानन्द योगी ने ग्राम ( राजा के गांव या नगर ) में जाकर मांस को अत्यन्त चाहने वाले सिंघण नाम के क्षोणिपाल ( राजा ) को बताया था। यह क्रव्याद नामक रस अग्नि को अत्यन्त दीप्त करता है, खाए हुए गरिष्ठ भोजन को पचाता है, दुष्ट तथा सञ्चित आम को नष्ट करता है तथा निकली हुई तोंद ( उदर की अनुपयुक्तवृद्धि ) और शरीर की सम्प्र स्थूलता को विनष्ट करता है तथा विषविकार, मूल अर्थात् अर्श की पीड़ा, शूल, गुल्म रोग, प्लीहा की वृद्धि, ग्रहणी रोग, रक्त स्राव, वात की ग्रन्थि ( प्लेग आदि रोगों में उत्पन्न होने वाली गांठे ) तथा भयङ्कर उदर के रोगों को नष्ट करता है ॥ १२९-१३८ ॥

अथ राजशेखरवटी—

भागो मृतरसस्यैको वत्सनाभांशकद्वयम्।
रसतुल्यं शिवाचूर्णं गन्धकं त्र्यूषणं तथा ॥ १३९ ॥
विचूर्ण्यातिप्रयत्नेन भावयेत्सप्तवासरम्।
ताम्बूलपत्रतोयेन स्वर्णं धुस्तूरजद्रवैः।
पिष्ट्वा चूर्णमितः कुर्याच्छायाशुष्कास्तु गोलिकाः ॥ १४० ॥
उष्णाम्भोयुतराजशेखरवटी मन्दाग्निनिर्णाशिनि
नानाकारमहाज्वरातिशमनी निःशेषमूलापहा।
पाण्डुव्याधिमहोदरार्तिशमनी शूलान्तकृत्पाचिनी
शोफघ्नी पवनतिनाशनपटुः श्लेष्मामयध्वंसिनी ॥ १४१ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण

२ तोला, हरीतकी का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तो०, मरिच का चूर्ण १ तोला, पीपल का चूर्ण० १ तोला लेकर सबको खरल में महीन पीसकर पान के पत्तों के रस से सात दिन भावित करके घोट लें फिर धत्तूरे के स्वरस से सात दिन तक भावित करके घोटकर चने के बराबर गोलियां बनाकर उन्हें छाया में सूखा के काच की शीशी में भर देवें। इस रस की एक वटी गरम जल के साथ सेवन करने से अजीर्ण रोग नष्ट हो जाता है तथा यह वटी यथा—व्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से अनेक स्वरूप के भयङ्कर ज्वरों की पीड़ा, सर्वप्रकार के अर्श, पाण्डुरोग, भयङ्कर उदर के रोग तथा शूल रोग को नष्ट कर देती है, खाये हुए भोजन को अच्छी प्रकार पचा देती है तथा यह वटी शोथरोग, वातव्याधि की वेदना और कफजन्य विकारों को शीघ्र ही नष्ट कर देती है॥१३९-१४१॥

अथाग्निकुमाररसः—

शुद्धं सूतं विषं गन्धं द्विक्षारं पटुपञ्चकम्।
दशकं तुल्यतुल्यांशं भर्जिता त्रिजया नवा॥ १४२॥
दशानां तुल्यभागा च तस्याद्धं शिग्रुमूलकम्।
तत्सर्वं त्रिजयाद्रावैः शिग्रुचित्रकभृङ्गजैः॥ १४३॥
द्रावैर्दिनत्रयं मर्द्यं रुद्धा भाण्डे पचेल्लघु।
दीपाग्निना तु यामैकं शुष्कं यावत्समुद्धरेत्॥ १४४॥
सप्तधा चाद्रैकद्रावैर्भावयेच्चूर्णयेद्भिषक्।
दीपकोऽग्निकुमारोऽयं निष्कैकं मधुना लिहेत्॥
प्रतिकर्षं गुडं शुण्ठी ह्यनुपानं च दीपनम्॥ १४५॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, स्वर्जिक्षार १ तोला, यवक्षार १ तोला, सैन्धव लवण १ तोला, काला नमक १ तोला, समुद्रनमक १ तोला, सज्जर नमक १ तोला, साँभर नमक १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष आठों द्रव्य मिला के सबको अच्छी तरह से घोट कर दशों पदार्थों के बराबर तवे पर घृत में भूनी हुई नई भाङ्ग १० तोला तथा उसका आधा (५ तोला) शिग्रु की छाल का चूर्ण मिलाकर सबको अच्छी प्रकार से घोट कर भाङ्ग के रस से तीन दिन तक घोटें तथा तीन दिन तक शिग्रु की छाल के क्वाथ से, उतने ही दिन चित्रक

के स्वरस से तथा तीन दिन भृङ्गराज के रस से घोटकर गोला बना के उसको दो सकोरों में बन्द करके कपड़मिट्टी करके भाण्डयंत्र में रखकर एक प्रहर तक दीपाग्नि से पकावें अर्थात् लघुपुट देकर दीप्त अग्नि से पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुए रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके अदरख के रस से सात वार भावित करके अच्छी प्रकार से घोटकर सुखा के चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस अग्निकुमार रस को १ निष्क भर लेकर शहद् के साथ भक्षण करना चाहिए तथा एक कर्ष गुड़ और एक कर्ष सौंठ का चूर्ण बाद में सेवन करें। इस विधि से सेवन करने से यह रस अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा अजीर्णादि रोगों को भी नष्ट कर देता है ॥ १४२–१४५ ॥

विमर्शः— रसरत्नाकर आदि रसके ग्रन्थों में "शुद्धं सूतं विषं गन्धं द्विक्षारं पटुपञ्चकम्" इस जगह "शुद्धसूतं मृतं गन्धं त्रिक्षारं पटुपञ्चकम्" ऐसा पाठ है। अर्थात् उस पाठ में विष की गणना न करके द्विक्षार के स्थान में त्रिक्षार लेकर ही के दश द्रव्य पूरे कर लिये गये हैं। परन्तु मृत शब्द का पारद के साथ विशेषण नहीं हो सकता क्यों कि केवल शुद्ध पारद ही लेना अभीष्ट है तथा गन्धक के साथ भी मृत शब्द को विशेषण नहीं बना सकते हैं इस लिये त्रिक्षार की जगह द्विक्षार और मृत के जगह विष पाठ स्वीकार करके दश द्रव्यों की पूर्ति करना ही सर्व श्रेष्ठ है। संस्कृत टीकाकार ने द्विक्षार का रसरत्नाकर के त्रिक्षार के पाठ के साथ में विरोध दिखाकर जो यहां के विष के पाठ को प्रामादिक बताया है यह उचित नहीं है क्योंकि ये सब रसनिर्माण के पाठ इधर उधर से सङ्ग्रह कर ही के ग्रन्थकर्ता अपनी २ पुस्तकों में रख देते हैं। सङ्ग्रह करते समय वे लोग उन पाठों में थोड़ा इधर उधर का परिवर्तन करके उस पाठ को अपना ही किया हुआ बना लेते हैं।

"दीपाग्निना" यहां पर "दीप्ताग्निना" तथा "आर्द्रकद्रावै र्भावयेच्चूर्णयेद्विषक्" यहां पर "आर्द्रकद्राव श्चित्रकै र्भावयेद्विषक् ऐसा रसरत्नाकर में पाठान्तर मिलता है

अथामृतवटी—

**कुष्ठगन्धविषव्योमत्रिफलापारदैः समैः।**
**मृगाम्बुमर्दितैर्मुद्रमानाऽमृतवटी शुभा ॥**
**अजीर्ण-श्लेष्मवातघ्नी दीपनी रुचिवर्धिनी ॥ १४६ ॥**

शुद्ध कूठ का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, त्रिफला–हरीतकी का चूर्ण १ तोला, बहेड़े का चूर्ण १ तोला, आंवले का चूर्ण १ तोला तथा शुद्ध पारद ९ तोला लेकर सर्व

प्रथम पारद और गन्धक जी कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार से महीन घोटकर फिर भृङ्गराज ( भाङ्गरे ) के स्वरस से सात वार भावित करके अच्छी तरह घोटकर मूंग के बराबर ( १ रत्ती भर ) गोलियां बनाकर सुखा के काच के पात्र में भर कर रख दें। इस प्रकार से बनी हुई यह अमृतवटी अजीर्ण और कफ तथा वात के विकारों को नष्ट करती है तथा रुचि को बढ़ाती है ॥ १४६ ॥

अथ राक्षसनामारसः—

**ताम्रं पारदगन्धकौ त्रिकटुकं तीक्ष्णं च सौवर्चलं**
**खल्ले मर्द्य दृढं विधाय सिकताकुम्भेऽष्टयामं ततः ॥**
**स्विन्नं तस्य च रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं मेलयेत्-**
**सर्वं भावितमातुलुङ्गजरसैर्नाम्ना रसो राक्षसः ॥ १४७ ॥**
**मन्दाग्नौ सततं ददीत मुनये प्रातः पुरा शङ्करः**
**सख्येऽस्मै च्यवनाय मन्दहुतभुग्वर्याय नष्टौजसे ।**
**तेनाऽऽदाय समस्तलोकगुरवे सूर्याय तस्मै नमो**
**मर्त्यानामपि चास्य दानसमये गुञ्जाष्टकं वर्जयेत् ॥१४८॥**

ताम्रभस्म १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तोला, मरिचों का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, तीक्ष्ण लोहे की भस्म १ तोला तथा सौवर्चल लवण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर फिर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार घोट कर उसे सात वार कपड़मिट्टी की हुई आतशी शीशी में उसके चतुर्थांश भाग तक भर के उस शीशी को यथा विधि भाण्ड में रखी हुई बालू में गाड़कर ( प्रथम थोड़ी बालू भाण्ड के तलप्रदेश में डाल कर उस पर आतसी शीशी को रख कर फिर भाण्ड में कूपी के कण्ठ तक बालू भर देनी चाहिए ) भाण्ड को भट्टी पर चढाकर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। जब पाक होते २ कूपी के मुख से गन्धक का धूआं निकलना बन्द हो जाय तब उसके मुख में खड़िए का डाट लगा कर गुड़ और चूने की जल से पिष्टी बना कर उससे डाट और शीशी के छिद्रों को अच्छी प्रकार बन्द कर देने चाहिए। इस तरह इस रस के पाक के लिये आठ प्रहर तक मन्द मध्य और तीव्र अग्नि देनी चाहिए। ८ प्रहर के

पश्चात् अग्नि को बुझा कर चूल्हे ही पर यन्त्र को स्वाङ्गशीतल हो जाने देने के पश्चात् उससे शीशी निकाल कर सिद्ध औषधि को शीशी फोड़ कर युक्ति से निकाल लें। फिर उसे खरल में महीन पीस कर उसमें लाल अपामार्ग अथवा लाल पुनर्नवा सिद्ध औषधि के बराबर मिलाकर अच्छी प्रकार से घोट कर के जम्बीरी निम्बू के रस से सात वार भावित करके अच्छी प्रकार घोट कर सुखा के चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को राक्षसनामारस कहते हैं। इस रस को मन्दाग्नि रोग में प्रति दिन सेवन कराना चाहिए। पूर्व काल में शङ्कर भगवान ने इस रस को मन्दाग्नि रोग से पीड़ित तथा नष्ट ओज (नष्ट बल) वाले अपने मित्र च्यवननामक आचार्य के लिये बताया था तथा च्यवन ऋषि ने मर्त्यलोक के मनुष्यों के हित के लिये इस रस को संसार में उपदेश के रूप से प्रकाशित किया है, इस लिए ऐसे रस के बताने वाले समस्त संसार के गुरु तथा सूर्य्य के समान तेज वाले उन च्यवन ऋषि को नमस्कार है, अथवा सर्व प्रथम च्यवन ऋषि को इस रस के बताने वाले जगत् के गुरू तथा सूर्य्य समान तेजस्वी उन शङ्कर भगवान को नमस्कार है। इस रसको १ रत्ती से प्रथम दिन प्रारम्भ करके प्रति दिन एक २ रत्ती बढा कर ८ रत्ती तक सेवन करना चाहिए तथा आठ रत्ती पूर्ण होने के दूसरे ही दिन से एक २ रत्ती कम कर करके घटाकर सेवन करना चाहिए। अथवा इस रस को एक रत्ती भर ही देवें और इस रस के सेवन के समय में अष्टक अर्थात् ककाराष्टक का वर्जन करना चाहिए॥ १४७-१४८॥

अथ जीवननामा रसः—

**रसगन्धौ सिन्धुकणाटङ्कणमभयाग्निहियावलीकतकफलम्।**
**क्रमशोत्तरञ्च विचूर्णितया बृहतीरससंयुतभावनया॥ १४९॥**
**आर्द्रकहिङ्गुपुनर्नवपूतिच्छिन्नरसैः क्रमात्तु भावनया।**
**तत्र कलांशविषञ्च विमिश्रं तद्रसमानं मानविधया॥ १५०॥**
**सर्वमजीर्णकफमारुतपाण्डुशोफहलीमककामलाशूलम्।**
**नाशयते ह्युदराग्निकरोऽयं दीपनजीवननामरसेन्द्रः॥ १५१॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, सैन्धव लवण ३ तोला, पिप्पली का चूर्ण ४ तोला, शुद्ध सुहागा ५ तोला, हरड़ का चूर्ण ६ तोला, चित्रक की जड़

का चूर्ण ७ तोला, हियावली ( अथवा हिमावली ) का चूर्ण ८ तोला, कतक ( निर्मली ) के फल का चूर्ण ९ तोला इस प्रकार क्रम से इन द्रव्यों को बढा कर लेवें। प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेषद्रव्यों को मिला के सब को अच्छी प्रकार से घोटकर बड़ी कटेली के पञ्चाङ्ग अथवा फल के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ एक दिन तक भावित करके घोटना चाहिए। फिर इसी प्रकार एक २ दिन अदरख के रस से, हिङ्ग के जल से ( हिङ्ग को पानी में घोलकर फिर उस से भावना देनी चाहिए ), पुनर्नवा के स्वरस से, पूतिकरञ्ज के शुद्ध फल के क्वाथ से तथा गुडूची के स्वरस अथवा क्वाथ से अच्छी प्रकार भावना देनी चाहिए। प्रत्येक भावना के साथ औषध को अच्छी प्रकार से घोटनी चाहिए। इस तरह सब द्रव्यों के रस से भावनाएं देने के पश्चात् उस भावित औषध में समस्त औषध की अपेक्षा षोड़शांश ( प्रायः ज्यादा से ज्यादा ३ तोला ) वत्सनाभविष का चूर्ण मिलाकर सब को अच्छी प्रकार से घोटकर एक २ माशे भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के शीशी में भरदेवें। इस रस की एक एक गोली प्रतिदिन यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अजीर्ण, कफ और वायु के विकार, पाण्डुरोग, शोथ रोग, हलीमक, कमला और शूल को नष्ट करता है। यह जीवन नाम वाला रस सब रसों में श्रेष्ठ है तथा उदर के समस्त रोगों को नष्ट करता है तथा उदराग्नि को भी प्रदीप्त करता है ॥१४९-१५१॥

अथ बडवानलरसः—

**शुल्वं तालकगन्धकौ जलनिधेः फेनोऽग्निगर्भाशयः**
**कान्तायो लवणानि हेमपयो नीलाञ्जनं तुत्थकम्।**
**भागो द्वादशको रसस्य तु दिनं वल्ल्यम्बुघृष्टं शनैः**
**सिद्धोऽयं बडवानलो गजपुटे रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ १५२ ॥**

ताम्रभस्म १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, समुद्रफेन १ तोला, अग्नि है गर्भाशय ( मध्य ) में जिसके ( अग्निगर्भाशय ) अर्थात् शमी वृक्ष की छाल का चूर्ण १ तोला अथवा चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, कान्तलौह की भस्म १ तोला, पाँचो लवण ( सैन्धव लवण १ तोला, सामुद्रलवण १ तोला, विड्लवण १ तोला, सञ्चरलवण एक तोला, रोमक या औद्भिद लवण १ तोला ) पृथक् २ एक २ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, हीरे की भस्म १ तोला,

शुद्ध नीलाञ्जन १ तोला, शुद्ध नीला थोथा १ तोला तथा इन समस्त पदार्थों की अपेक्षा १२ वां भाग ( १। तोला ) शुद्ध पारद लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी प्रकार घोटकर फिर पान के रस के साथ एक दिन तक खरल करके सुखाकर शरावसम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक कर स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण करके काच की शीशी में भर कर रख देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को बड़वानल रस कहते हैं। इस रस को १ रत्ती से २ रत्ती भर तक यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व व्याधियों को दूर करता है। कुछ पुस्तकों में "वज्रथम्बुवृष्टं" ऐसा पाठ है, वहां पर थूहर के शुद्ध दुग्ध की भावना देकर एक दिन तक उसके साथ खरल करके फिर पुटपाक करना चाहिए ॥ १५२ ॥

अथाग्निजननीवटी—

**कणनागरगन्धकपारदकं गरलं मरिचं समभागयुतम् ।**
**लकुचस्य रसैश्चणकप्रमिता गुटिका जनयत्यचिरादनलम् ॥१५३॥**

छोटी पीपल का चूर्ण १ तोला, सोंठ का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तो०, शुद्धपारद १ तोला, कृष्णसर्प का शुद्ध विष १ तोला, काली मरिचों का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी प्रकार से घोटकर लकुच (बड़हर या उडहुल) के फल के रस के साथ एक दिन तक घोट कर चने के बराबर गोलियां बना के छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस वटी को प्रतिदिन सेवन करने से अजीर्णादिक समस्त उदर के विकार नष्ट हो जाते हैं तथा पाचकशक्ति भी बढ़ जाती है ॥१५३॥

अथ सर्वरोगान्तका वटी—

**शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदं फलत्रयम् ।**
**सर्जीक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ १५४ ॥**
**सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ।**
**विषमुष्टिः सर्वतुल्या जम्बीराम्लेन मर्दितम् ॥ १५५ ॥**
**मरिचाभां वटीं खादेद्वह्निमान्द्यप्रशान्तये ।**
**पथ्या शुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत्सदा ॥**
**अग्निमान्द्ये वटी ख्याता सर्वरोगकुलान्तका ॥ १५६ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, अजवाईन का चूर्ण १ तोला, त्रिफला–हरीतकी चूर्ण १ तोला, बहेड़े के फल के छिलकों का चूर्ण १ तोला, आंवले का चूर्ण १ तोला, सज्जीक्षार १ तोला, यवक्षार १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला, जीरे का चूर्ण १ तोला, सौवर्चलवण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, सामुद्र लवण १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तोला, मरिचों का चूर्ण १ तोला, छोटी पीपल का चूर्ण १ तोला तथा इन सब द्रव्यों के बराबर शुद्ध कुचले का चूर्ण लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी प्रकार से घोटकर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ एक दिन तक खरल करके मरिच के बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच के पात्र में रख देवें। इसको एक २ वटी प्रतिदिन सेवन कर के फिर हरड़ का चूर्ण ६ माशा, सौंठ का चूर्ण ६ माशा इन दोंनों को १ तोले गुड़ के साथ मिलाकर खाने से वह्निमांद्य रोग नष्ट हो जाता है। यह सर्वरोगकुलान्तक नाम की वटी अग्निमांद्य रोग नष्ट करने के लिये प्रख्यात है ॥ १५४–१५६ ॥

अथ सामान्योपायः—

**मृतं ताम्रं कणातुल्यं चूर्णं क्षौद्रविमिश्रितम्।**
**निष्काधं भक्षयेन्नित्यं नष्टवह्निप्रदीप्तये ॥ १५७ ॥**
**आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रं पलमात्रं पिबेदनु।**
**यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः ॥ १५८ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये उदावर्ता-तिसारग्रहणीविसूचीवह्निमान्द्यचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः।



ताम्रभस्म तथा छोटी पिप्पली के चूर्ण को समान २ लेकर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर के रख देवें। इस चूर्ण को आधे निष्क भर ( २ माशा ) लेकर शहद् में मिला के क्षीण पाचक शक्ति को पुनः प्रदीप्त करने के लिये प्रति दिन सेवन करना चाहिए। प्रायः मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक पर्याप्त है। इस चूर्ण को सेवन करने के उपरान्त २ तोला अदरख का रस तथा २ तोला शहद्

दोनों को परस्पर मिलाकर अनुपान करना चाहिए। इस तरह औषधि सेवन करने के पश्चात् यथाभिलषित घृत से संस्कृत गोधूम ( गेहूं ) के पदार्थ तथा मांस आदि गरिष्ठ पदार्थों का सेवन करने पर भी उपर्युक्त रस के सेवन से प्रदीप्त हुई उदराग्नि ( पाचक रस ) उन्हें ठीक तरह से पचाने के लिये समर्थ हो जाती है ॥ १५७–१५८ ॥

अथाग्निमान्द्यादिषु पथ्यापथ्यव्यवस्था—

श्लैष्मिके वमनं पूर्वं पैत्तिके मृदु रेचनम्। वातिके स्वेदनञ्चाथ यथावस्थं हितञ्च यत् ॥१॥
नानाप्रकारो व्यायामो दीपनानि लघूनि च। बहुकालसमुत्पन्नाः सूक्ष्मा लोहितशालयः॥२॥
विलेपी लाजमण्डश्च मण्डो मुद्गरसः सुरा। एणो बर्ही शशो लावः क्षुद्रमत्स्याश्च सर्वशः॥३॥
शालिञ्चशाकं वेत्राग्रं वास्तूकं बालमूलकम्। लशुनं वृद्धकूष्माण्डं नवीनकदलीफलम्॥४॥
शोभाञ्जनं पटोलञ्च वार्ताकुं नलदम्बु च। ककोटकं कारवेल्लं बार्हतञ्च महार्द्रकम् ॥५॥
प्रसारिणी मेषशृङ्गं चाङ्गेरी सुनिषण्णकम्। धात्रीफलं नागरङ्गं दाडिमं यवपर्पटाः ॥६॥
अम्लवेतसजम्बीर मातुलुङ्गानि माक्षिकम्। नवनीतं घृतं तक्रं सौवीरकतुषोदके ॥७॥
धान्याम्लं कटुतैलञ्च रामठं लवणार्द्रकम्। यमानी मरिचं मेथी धान्यकं जीरकं दधि ॥८॥
ताम्बूलं तप्तसलिलं कटुतिक्तौ रसावपि। मन्दानलेऽप्यजीर्णेऽपि पथ्यमेतन्नृणां भवेत्॥९॥

इति पथ्यानि।

अथापथ्यानि—

विरेचनानि विण्मूत्रवेगानाञ्च विधारणम्। अध्यशनं समशनं जागरं विषमाशनम् ॥१॥
रक्तशुतिशमीधान्यं मत्स्यं मांसमुपोदिकाम्। जलपानं पिष्टकञ्च जाम्बवं सर्वमालुकम्॥२॥
कृच्छिकां मोरटं क्षीरं किलाटञ्च प्रपानकम्। तालास्थिसस्यं तद्बालं स्नेहनं दुष्टवारि च॥३॥
विरुद्धासात्म्यपानान्नं विष्टम्भीनि गुरूणि च। आग्नेमांसेऽप्यजीर्णे च सर्वाणि परिवर्जयेत्॥४॥
भुक्तं पुर्वान्नशेषे तु पुनरध्यशनं मतम्। बहुस्तोकमकाले च तज्ज्ञेयं विषमाशनम् ॥१॥

इत्यग्निमान्द्ये पथ्यापथ्यावधिः।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्यभाषाटीकायामुदावर्त्तातीसार-ग्रहणी-विसूचीवह्निमांद्यचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः।

# सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ मूत्रकृच्छ्राश्मर्यादिचिकित्सनम्—

कटौ कुक्षिप्रदेशे च शूलं प्रथमतो भवेत् ।
पश्चाद्रोधो ज्वलन्मूत्रमश्मरीरोगलक्षणम् ॥ १ ॥

सर्व प्रथम कटी और कुक्षि प्रदेश में शूल चलने की सी वेदना होती है तथा धीरे २ मूत्र का रोध होने लगता है और यदि कुछ मूत्र का त्याग होता भी है तो उस समय मूत्रमार्ग ( Urethra ) में दाह होता है तथा मूत्र भी जलता हुआ निकलता है, ये सब अश्मरी रोग के लक्षण हैं ॥ १ ॥

विमर्शः—कुछ पुस्तकों में इस श्लोक के बाद निम्न पाठ अधिक है ।

यथा—मातापितृजदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ।
अपथ्यादभिघाताच्च जायते चाश्मरीगदः ॥ १ ॥
मूत्राविष्टौ च पितरौ सूरतं क्रियते यदि ।
मूत्रेण सहितं शुक्रं च्यवते गर्भसम्भवे ॥ २ ॥
यत्र यस्य च देहस्य तत्र तस्य च जायते ।
मूत्रं मूत्रस्य संस्थाने करोति बन्धनं नृषु ॥ ३ ॥
सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदो बाल्ये द्रवति मानुषम् ।
तारुण्येऽप्यपचारेण जायते मूत्रशर्करा ॥ ४ ॥
विपरीतरतेनापि उत्तानपुरुषेण वा ।
शुक्रं प्रच्यवते तस्य स्त्री शुक्रञ्च प्रमुञ्चति ॥ ५ ॥
पुनश्च मेहनस्थञ्च ततो वातेन शोषितम् ।
दृषदत्वं प्रपद्येत मूत्रद्वारं प्ररुध्य च ॥ ६ ॥
तेन मूत्रनिरुद्धत्वं जायते तीव्रवेदना ।
अण्डसन्धौ स्थिता याति शर्करा शल्यसाध्यताम् ॥ ७ ॥
अथवा चतुरोनारी मथुनं विदधाति च ।
तत्सौख्येन भवेत् सौख्यं स्त्रीणां योनिविमर्दनम् ॥ ८ ॥

अथ मूत्रदोषाङ्कुशो रस—

अभ्रकं पारदं रुक्मं लौहं वङ्गं शिलाजतु ।
समभागानि चैतानि वसु नीर विमर्दयेत् ॥ १ ॥
त्रिदिनं मुषलीतोयैस्त्रिकण्टकरसेन च ।
मूत्रदोषाङ्कुशस्यास्य वल्लयुरमं प्रदापयेत् ॥ २ ॥

वातकुण्डलिकाऽऽनाहमूत्रसङ्गाश्मरीगदान् ।
वातोल्वणान् जयेद्दोषान् वह्निसन्दीपनः परम् ।
शर्वासिद्धान्तशास्त्रान्तात् मूत्रदोषाङ्कुशोरसः ॥ ३ ॥ इति ।

अर्थात माता और पिता के दोषों से ( गर्भधारण के समय गर्भ में अश्मरी रोग के उत्पादक सूक्ष्म अवयव रज और वीर्य में मिले होने से ) अथवा मूत्र के वेग के रोकने से तथा आहार विहार के अपथ्य के कारण अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। जब माता पिता मूत्र के वेग को रोक कर ग्राम्य धर्म में प्रवृत हो जाते हैं तब उनके द्वारा च्युत होने वाले शुक्र और रज में कुछ मूत्र का भी त्याग होता है, इस प्रकार स्वल्प मूत्र युक्त बीज भागों से जब गर्भ की स्थिति हो जाती है तब उस गर्भ से होने वाली सन्तान के मूत्राशय में यह रोग उत्पन्न होता है। तथा इस से मूत्रावरोध आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यह असाध्य मूत्र रोग मनुष्य की बाल्यावस्थाही में स्वल्प रूप से प्रगट हो जाता है तथा युवावस्था तक विरुद्ध आहार विहार का सेवन करते रहने से मूत्र शर्करा के रूप में परिवर्तित हो जाता है। उत्तान स्त्री तथा अनुत्तान पुरुष जब मैथुन करते हैं तब इस मैथुन को प्राकृत या योग्य मैथुन कहते हैं किन्तु इस के विपरीत अर्थात् काम शास्त्र के आसनों के अनुसार अथवा कामान्ध होकर पशुओं के समान विपरीत मैथुन करने से या पुरुष उत्तान होकर अपने ऊपर अनुत्तान रूप से स्त्री को चढ़ा कर मैथुन करने से जब दोनों के शुक्र का उत्सर्ग होता है तब वह शुक्र कुछ तो पुरुष की जननेन्द्रिय से बाहर निकल जाता है किन्तु कुछ जननेन्द्रिय के प्रारम्भिक मार्ग में ही रुक जाता है, इस तरह से रुका हुआ शुक्र वायु से शोषित होकर पथरी ( अश्मरी ) के रूप में परिणत हो जाता है इस प्रकार की अश्मरी को शुक्राश्मरी ( Seminal or Spermatic Concretions, Spermolith. ) कहते हैं। इस प्रकार की अश्मरी के हो जाने से मूत्रावरोध ( रीटेन्शन ऑफ यूरीन-Retenton of Urine ) होजाता है तथा मूत्र त्याग करते समय तीव्र वेदना ( डिस्यूरिआ ( Dysuria ) भी होने लगती है। इस प्रकार की अश्मरी शस्त्र के द्वारा काट कर निकालने से साध्य हो सकती है।

इन अश्मरियों के नष्ट करने का उपाय—

अभ्रक भस्म, शुद्ध पारद, रजत भस्म, लौह भस्म वङ्ग भस्म और शुद्ध शिला जीत इन को सम भाग लेकर खरल में महीन घोट कर जल के साथ ( घृत कुमारी के साथ घोटना अच्छा है ) आठ दिन तक खरल करें, फिर तीन दिन तक मुषली के क्वाथ से तथा तीन दिन तक कण्टकारी के स्वरस या क्वाथ के साथ घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को मूत्रदोषाङ्कुश रस कहते हैं। इस रस को दो वल्ल भर प्रति दिन सेवन करने से मूत्र के अश्मर्यादिक

जितने भी विकार हैं सब नष्ट हो जाते हैं तथा वातिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। इस रस के सेवन से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। यह रस शैवसिद्धान्तनामक शास्त्र में लिखा हुआ है।

अश्मरी की उत्पत्ति—

आज कल के डाक्टरी विज्ञान के अनुसार अश्मरी की उत्पत्ति में भी प्रायः अनेक मतवादियों के अनेक कारण हैं, तथापि संशोधन के अभाव और आहार विहार के अपथ्य का निरन्तर सेवन करने से अश्मरी रोग होता है। नट्रोजन युक्त दुष्पाच्य पदार्थों के निरन्तर सेवन करने से, हरे शाक तथा क्षार युक्त पदार्थों का तथा लवण का अल्प सेवन, मद्यादिक का निरन्तर सेवन, दुग्ध का अभाव तथा अधारणीय वेगों का विशेष कर के मूत्र के वेग का रोकना, सीसे के घुले हुए जल आदि के सेवन से शरीर में सीसे के विष का सञ्चय, ज्यादा देर तक तीव्र धूप में काम करते रहना, जल का प्यास लगने पर भी उपयोग न करना तथा धूप के कारण स्वेद के अतिमात्रा के रूप में उत्सर्गित होने से, मूत्र के घन पदार्थों की राशि की अतिवृद्धि तथा अन्य अनेक कारणों से अश्मरी की उत्पत्ति होती है। अश्मरी का रोग प्रायः स्त्रियों में कम होता है तथा पुरुषों में उनकी अपेक्षा अधिक होता है। पुरुषों में बाल्य काल तथा युवावस्था में ही इसकी अधिक सम्भावना रहती है। शीतल देशोंकी अपेक्षा उष्णता प्रधान देशों में यह रोग अधिक होता है, क्योंकि गरमी से वहां के पुरुषों के मूत्रगत जल की राशि के अधिक शोषण हो जाने से मूत्र के घन पदार्थों की मात्रा बढ जाती है तथा वृक्क ( Kidney ) में प्रविष्ट हुई रक्त की नलिकाओं से जब मूत्र में यूरिक एसिड ( Uric Acid ), यूरेटस् ( Urets ), आक्जेलेटस् ( Oxalates ), फास्फेटस् ( Phosphates ) आदि लवण अधिक मात्रा में उत्सर्गित होते हैं तब मूत्र के जल में इन का पूर्ण रूप से विलयन नहीं होता है इस कारण इन पदार्थों का अघुलित शेष भाग स्फटिक ( Crystals ) के रूप में वृक्क में गवीनी ( Ureters ) के ऊर्ध्व भाग ( Renal Pelvis ) में या बस्ति ( Urinary Bladder ) में अवक्षेप के रूपमें जमा हो जाता है तथा उसके चारों ओर लवण के सूक्ष्म कण एकत्रित होकर अश्मरी बनती है।

अश्मरी के भेद—आयुर्वेद में वातिकाश्मरी, पैत्तिकाश्मरी, श्लैष्मिकाश्मरी और चौथी शुक्राश्मरी इस प्रकार से चार भेद हैं ( "वातपित्तकफस्तित्रश्चतुर्थी शुक्रजा स्मृता"इति। पाश्चात्यचिकित्सा शास्त्र में जिस अश्मरी में जो पदार्थ अधिक रूप से मिलता है उसके अनुसार उनके भेद हैं यथा—१ आक्जेलेट आँफ् लाईम कयालक्यूलस ( Oxalate of Lime Calculus ) नामक अश्मरी होता है इसकी तुलना वातिकाश्मरी से की जा सकती है।

दूसरी—यूरिक एसिड कल्क्युलस ( Uric Acid Calculus ) है, इसकी साम्यता पित्तजाश्मरी से हो सकती है।

तीसरी—फास्फेट कल्क्युलस ( Phosphatic Calculus ) है, इसकी तुलना श्लैष्मिकाश्मरी से की जा सकती है।

चौथी—सेमिनल या स्पर्मेटिक कान्क्रेशनस स्पर्मोलिथ ( Seminal or Spermatic Concretions. Spermolith ) है। इसकी ठीक २ तुलना शुक्राश्मरी से करनी चाहिए।

अश्मरी का पूर्वरूप तथा लक्षण—

बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परिशोऽतिरुक्।
मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वराऽरुचिः॥
सामान्यलिङ्गं रूढ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु।
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते॥
तद्व्यपायात् सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम्।
तत्संक्षोभात् क्षतेसास्रमायासाद्यातिरुग्भवेत्॥

अर्थात् अश्मरी की उत्पत्ति के कुछ पहिले वस्ति में आध्मान तथा उसके निकट वर्ति भागों में पीड़ा, मूत्र में बकरे के समान गन्ध आना, कष्ट से मूत्र का उत्सर्ग होना, ज्वर होना, अरुचि होना आदि अश्मरी के पूर्वरूप हैं तथा अश्मरी के पूर्ण रूपसे उत्पन्न हो जाने पर मूत्रोत्सर्ग करते समय नाभि, बस्ति, सेवनी, बस्तिशिर ( Internal Urethral Orifice ) आदि इन स्थानों में तीव्र वेदना तथा मूत्र-मार्ग में अश्मरी के अटक जाने से मूत्र धारा एकसी न होकर द्विधा या त्रिधा विभक्त होकर गिरती है तथा कभी २ पूर्ण रूप से मूत्र मार्ग के बन्द हो जाने से मूत्र धारा का बाहर उत्सर्ग होता ही नहीं है तथा अश्मरी की रगड़ ( या घर्षण ) से वस्ति प्रदेश में क्षत हो जाने से मूत्र के साथ रुधिर का निकलना तथा गोभेद के समान स्वच्छ मूत्र सिकता के साथ उत्सर्गित होता है तथा आयास ( दौड़ने, कूदने, तैरने, घोड़े गाड़ी पर सवारी करने ) से वास्तप्रदेश में पीड़ा होती है ये सब अश्मरी के लक्षण हैं। इति।

अथ पाषाणभेदीरसः—

रसं द्विगुणगन्धेन मर्दयित्वा प्रयत्नतः॥ २॥
तद्द्रव्यैर्भावयेदेनं प्रत्येकं तु दिनत्रयम्।
पक्वं मूषागतं शुष्कं स्वेदयेज्जलयन्त्रतः॥ ३॥
पाषाणभेदी नामायं नियुञ्जीतास्य वल्लयुक्।
गोपालकर्कटीदुग्धं भूम्यामलकमूलिका॥

**कुलत्थक्काथतोयेन पिष्ट्वा तदनुपाययेत् ॥ ४ ॥**

शुद्धपारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोला लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर फिर उसे वसु ( वसुहृद् "वकफुल" इति ख्यातः ), पुनर्नवा, अडूसा, कण्टकारी इन में से प्रत्येक के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ क्रम से तीन २ दिनतक खरल करके गोला बनाकर मूषायन्त्र में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें फिर स्वाङ्गशीतल औषध को निकाल कर खरल में पीस कर जलयन्त्र ( अर्थात् दोलायन्त्र या स्वेदनीयन्त्र ) के द्वारा स्वेदन करके सूखाकर शीशी में भर देवें। इसको पाषाणभेदी रस कहते हैं। इस पाषाणभेदी नामक रसकी १ वल्लभर ( ३ रत्ती ) की मात्रा को सेवन करके ऊपर से गोपाल कर्कटी ( आर• ग्यकर्कटीविशेष अथवा कन्दुरुकी का दुग्ध अथवा ककड़ी के बीजों का चूर्ण ) के बीज तथा भूमी आवंले की जड़ का चूर्ण इन दोनों का एक २ तोले भर लेकर १ पल भर कुलत्थ के क्वाथ के साथ घोटकर अनुपान करना चाहिए। इस विधि से प्रतिदिन इस रस को सेवन करने से अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ आदि वस्ति के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २–४ ॥

अथ द्वितीयपाषाणभेदीरसः—

**रसेन सितवर्षाभ्वा रसं द्विगुणगन्धकम् ।**
**घृष्टं पचेच्च मूषायां द्वौ मासौ तस्य भक्षयेत् ॥ ५ ॥**
**पातालकर्कटीमूलं कुलत्थोदैः पिबेदनु ।**
**गोकण्टकसदाभद्रामूलक्काथं पिबेन्निशि ॥**
**अयं पाषाणभिन्नाम्ना रसः पाषाणभेदकः ॥ ६ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक २ तोला लेकर पत्थर की खरल में दोनों की कज्जली बनाकर उसको श्वेत पुनर्नवा के स्वरस से सातवार भावित करके अच्छी प्रकार घोट कर गोला बनाके मूषायन्त्र में बन्द कर के गजपुट में पाक करके स्वाङ्गशीतल सिद्ध हुई औषध को खरल में महीन पीसकर शीशी में भरकर रख देवें। यह द्वितीय पाषाणभेदी रस है। इस रस को प्रतिदिन २ माशे भर सेवन करके ऊपर से पाताल कर्कटी की ( इन्द्रवारुणी की जड़ अथवा पाताल गरुड़ी की जड़ ) जड़ के १ तोले भर चूर्ण को कुलत्थी के क्वाथ के साथ मिला कर पान करना चाहिए तथा सन्ध्या समय में गोखरू और सदाभद्रा (गम्भारी)

की जड़ का क्वाथ पाषाणभेदी रस के अनुपान के रूप में अथवा स्वतन्त्र रूप में प्रतिदिन पीना चाहिए। इस प्रकार अनुपानों के सहित इस पाषाणभेदी रसका सेवन करने से अश्मरी आदि सर्वप्रकार के बस्ति के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥५-६॥

**विमर्शः—रसरत्नाकर में "सदाभद्रा" के स्थान में "शुभाभद्रा" इस प्रकार का पाठ में परिवर्तन है। रसरत्नाकर के पाठ में शुभा से वंशलोचन तथा भद्रा से गम्भारी का ग्रहण करना चाहिए।**

अथ गोक्षुरादिचूर्णम्—

**गोक्षुरबीजसमुत्थं चूर्णमविक्षीरसंयुक्तम्।**
**रसवरमिश्रं पिबतश्चूर्णीभूत्वाऽश्मरी पतति ॥ ७ ॥**

गोखरु का चूर्ण १ तोला तथा रसवर (पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर) २ रत्ती लेकर दोनों को भेड़ के दुग्ध के साथ मिला कर प्रति दिन पान करने से अश्मरी चूर्णित होकर ( शर्करा के रूप में होकर ) मूत्र के साथ बाहर निकल जाती है ॥ ७ ॥

**विमर्शः—रसवर का अर्थ मधु भी हो सकता है क्योंकि अन्यरस ग्रन्थों ( चक्रसङ्ग्रह तथा रसरत्नाकर आदि ) में इस योगका ( गोक्षुरचूर्ण का ) सेवन मधु और मेषी के दुग्ध के साथ एक सप्ताह तक करने को लिखा है यथा—**

**"त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्।**
**अविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरीनाशनम्॥ इति।**

अथ त्रिविक्रमरसः—

**मृतताम्रमजाक्षीरः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे।**
**तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम्॥ ८॥**
**निर्गुण्डयुत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलमन्ध्रयेत्।**
**आमैकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम्॥ ९॥**
**बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत्।**
**रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत्॥ १०॥**

ताम्र भस्म १ तोला लेकर उसको बकरी के दुग्ध के साथ कड़ाही में पकावें, जब पकाते २ दुग्ध नष्ट हो जाय तब उसको कड़ाही से निकाल कर खरल में डाल दें, फिर १ तोले शुद्ध पारद और एक तोले शुद्ध गन्धक की दूसरी खरल में अच्छी तरह से कज्जली बनाकर उपर्युक्त ताम्रभस्म में मिला कर अच्छी प्रकार से सब को घोट कर निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बना कर उसको दृढ मूषा में बन्द करके एक भाण्ड के भीतर बालुका

भर कर उस बालूका के मध्य में मूषा को गाड़ कर ऊपर से फिर बालूका भरके भाण्ड के मुख को सकोरे से बन्द करके १ प्रहर तक तीव्राग्नि देकर पाक करना चाहिए। फिर स्वाङ्गशीतलयन्त्र से मूषा को निकाल कर युक्ति से उसका भेद करके सिद्ध हुई औषधि को निकालकर खरल में महीन पीसकर शीशी में भर कर रख देवें। इस रस को प्रति दिन दो रत्ती भर लेकर मधु के साथ सेवन करके पश्चात् बीजोरे निम्बू की जड़ का चूर्ण ६ माशा लेकर शीतल जल में मिलाकर अनुपान करना चाहिए। इस प्रकार इस त्रिविक्रम रस को एक मास तक सेवन करने से अश्मरी रोग निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ ८-१० ॥

अथ आनन्दभैरवीवटी—

**तिलापामार्गकाण्डं च कारवेल्लथा यवस्य च।**
**पलाशकाष्ठसंयुक्तं सर्वं तुल्यं दहेत्पुटे ॥ ११ ॥**
**तन्निष्कैकमजामूत्रैर्वटीं चानन्दभैरवीम्।**
**पाययेदश्मरीं हन्ति सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ १२ ॥**

तिल, अपामार्ग, करेला और जौ ( यव ) इन चारों का पञ्चाङ्ग तथा पलाश की छाल अथवा लकड़ियां ये सब बराबर २ लेकर सुखा के एक भाण्ड में जला के राखी बना लेनी चाहिए। फिर राखी को छान कर खरल में डाल के बकरी के मूत्र के साथ खरल करके एक २ निष्क प्रमाण की गोलियां बना के छाया में सुखा के शीशी में भर देवें। इसको आनन्द भैरवी वटी कहते हैं। इस की एक २ वटी प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनी चाहिए। इस प्रकार सात दिन तक इस वटी के सेवन करने से अश्मरी रोगनष्ट हो जाता है कुछ टीकाकारों ने उपर्युक्त पदार्थों को जलाकर उनकी राख का क्षारनिर्माण की विधि से क्षार बनाकर फिर उसे बकरी के मूत्र में घोटकर एक निष्क की गोलियां बनाकर प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करनी चाहिए, ऐसा लिखा है ॥ ११-१२ ॥

अथ अश्मरीहरयोगः—

**पाण्डूरफलिकामूलं जलेनैवाऽश्मरीहरम् ॥ १३ ॥**

पाण्डूर फलिका ( अर्थात् पीले रंग के फल वाले "पोटर फल" नामके वृक्ष ) की जड़ का चूर्ण १ तोले भर लेकर जल के साथ पीसकर पीने से अश्मरी नष्ट हो जाती है। अथवा पाण्डुर अर्थात् धवके वृक्ष की छाल तथा फलिका ( अश्व-

त्थ विशेष या पलाशवृक्ष ) की छाल एक २ तोले भर लेकर जल के साथ पत्थर पर पिस कर उस कल्क को जल ही में ठण्डाई की तरह छान कर कुछ दिनों तक प्रतिदिन पान करते रहने से अश्मरी रोग नष्ट हो जाता ॥ १३ ॥

अथ यवक्षारप्रयोगः—

**मधुना च यवक्षारं लीढं स्यादश्मरीहरम् ॥ १४ ॥**

१ माशे भर यवक्षार लेकर उसे मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन ( जबतक रोग ठीक न हो तबतक ) सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥

अथ हरिद्राप्रयोगः—

**हरिद्रागुड़कर्षैकं चारनालेन वा पिबेत् ॥ १५ ॥**

हरिद्रा का चूर्ण आधा कर्ष, पुराना गुड़ आधा कर्ष लेकर प्रतिदिन काञ्जी के साथ सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

शिवोक्तयोगः—

**वन्ध्याकर्कोटकीकन्दं भक्ष्यं क्षौद्रसितायुतम् ।**
**अश्मरीं हन्ति नो चित्रं कर्षमात्रं शिवोदितम् ॥ १६ ॥**

वन्ध्याकर्कोटकी ( बांझ ककोड़ा, तित्तककर्कोटकी वा ) के कन्द का चूर्ण १ कर्ष भर लेकर आधा तोला चीनी और दो तोले शहद् के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से निश्चय ही अश्मरी रोग नष्ट हो जाता है। यह योग शिवजी के द्वारा बताया हुआ हैं, इससे अश्मरी में बहुत लाभ होता है ॥ १६ ॥

अथ लघुलोकेश्वररसः—

**मृतसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात् ।**
**पिष्ट्वा वराटकं तेन रसपादं च टङ्कणम् ॥ १७ ॥**
**क्षीरैः पिष्ट्वा मुखं रुद्ध्वा वराटांश्चान्ध्रयेत्पुटेत् ।**
**स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो रसः ॥ १८ ॥**
**चतुर्गुञ्जारसश्चायं मारिचैकोनविंशतिः ।**
**जातिमूलपलैकं तु अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥**
**शर्कराभावितं चानु पीत्वा कृच्छ्रहरं परम् ॥ १९ ॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला लेकर दोनों को खरल में महीन पीसकर शुद्ध की हुई कौड़ियों के भीतर उन दोनों की

कजली को भरकर पारद भस्म से चतुर्थांश ( ३ मा० ) शुद्ध सुहागा लेकर उसे बकरी के दुग्ध के साथ घोटकर उसकी बनी हुई पिष्टी से उन कौड़ियों के मुख को बन्द करके धूप में सुखादेवें। फिर उन्हें एक छोटी हण्डिका के भीतर बन्द करके हण्डिका पर कपड़मिट्टी करके सुखाकर लघुपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग-शीतल सम्पुट से सिद्ध औषध को कौड़ियों के सहित निकाल कर खरल में महीन पीसकर शीशी में भरकर रख देवें। इस को लघुलोकेश्वर रस कहते हैं। इस रस को ४ रत्ती भर लेकर १९ मरिचों के महीन चूर्ण के साथ मिलाकर शहद् के साथ सेवन करना चाहिए। फिर ऊपर से एक पल (४ तोले) भर जातिमूल अर्थात् चमेली की जड़ अथवा आंवले की जड़ या चूर्ण को लेकर बकरी के दुग्ध के साथ अच्छी प्रकार घोटकर छान के चीनी मिलाकर पान करना चाहिए। इस प्रकार इस रसको प्रतिदिन सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है ॥१७–१९॥

विमर्शः—मूत्रकृच्छ्र प्रायः ज्यादा करके मूत्रमार्ग में अश्मरी के रुक जाने से होता है तथापि उसके निम्न कारण भी हैं—

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमांसाध्यशनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥ इति ॥

अथ सामान्योपायः—

तत्र गोक्षुरप्रयोगः—

**गोक्षुरस्य कषायं तु सघृतं पाययेन्निशि ॥ २० ॥**

गोक्षरू ( गोखरू ) का क्वाथ बनाकर उसमें घृत मिला के संध्या के समय कुछ दिनों तक प्रतिदिन पिलाने से मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट हो जाता है। अथवा गोक्षरू का कल्क बनाकर उसको स्नेह पाक की विधि से पकाकर उस घृत का सेवन करने से भी मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अथ पाण्डूरादियोगः—

**पाण्डूरफलमूलं च भूम्यामलकमूलिका।**
**वंशस्य पेटकार्याश्च मूलं पिष्ट्वा जलं पिबेत् ॥ २१ ॥**

पाण्डूर ( धव ) के फल और जड़, भूम्यामलक की जड़, बांस की जड़, और पेटकारी ( ज्योतिष्मती ) की जड़ इन प्रत्येक को समभाग लेकर चूर्ण करके शीशी में भर देवें। फिर इस चूर्ण को ६ माशे भर लेकर शीतल जल के साथ

सेवन करें। अथवा उपर्युक्त पदार्थों की हरी ( गीली ) जड़ को समभाग लेकर सिल ( पत्थर ) पर पीसकर ठण्डाई की तरह जल में छानकर प्रतिदिन पीने से मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

शुक्लपिण्याकादियोगः—

**शुक्लपिण्याकपिच्छिलीचूर्णमुष्णेन वारिणा ।**
**पिबन्विमुच्यते रोगान्मूत्रकृच्छ्रात्सुदारुणात् ॥ २२ ॥**

सफेद तिलों की पिट्ठी ( कल्क ), और पिच्छिली ( अतसी अथवा लिसोड़े के फल की गिरी ) ये दोनों समभाग लेकर चूर्ण करके प्रतिदिन गरम जल के साथ सेवन करने से कुछ दिनों के भीतर ही मनुष्य भयङ्कर मूत्रकृच्छ्र रोग से निर्मुक्त हो जाता है ॥ २२ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रान्तकोरसः—

**शतावरीरसे पिष्ट्वा तुत्थसूतार्कपिष्टिका ।**
**पाचिता कटुतैलेन मूत्रकृच्छ्रे प्रशस्यते ॥ २३ ॥**

शुद्ध नीला तुत्थ १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, पारद की पिष्टी १ तोला लेकर सबको खरल में अच्छी प्रकार से घोटकर शतावरी के रस के साथ अच्छी प्रकार से घोटकर कटु तैल के साथ कड़ाही में एक प्रहर तक पका कर पाक होने पर निकाल के यथोचित मात्रा से यह रस शहद् के साथ खाने से मूत्रकृच्छ्र रोग में बहुत लाभ करता है ॥ २३ ॥

अथ विदार्य्यादिकषायः—

**विदारीं गोक्षुरं यष्टिं कसेरुं च समं पचेत् ।**
**तं कषायं पिबेत्क्षौद्रं रसभस्मयुतं तथा ।**
**मूत्रकृच्छ्रहरं ख्यातं सप्ताहात्पित्तसम्भवम् ॥ २४ ॥**

विदारीकन्द, गोखरू, मुलेठी, कसेरू इन चारों को समभाग लेकर क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रखकर उसमें शहद् मिला के २ रत्ती भर पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर के सेवन करने के पश्चात् अनुपान के रूप में पीवें। इस तरह से सात दिन तक इस योग के सेवन करने से पित्तविकार से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

अथ क्षारप्रयोगः—

तिलापामार्गकदलीपलाशयवकाण्डकान् ।
दग्ध्वा तद्भस्म तोयेन वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ २५ ॥
तं पचेत्तोयशोषान्तं ततश्चूर्णं द्विगुञ्जकम् ।
दापयेदविमूत्रेण शर्कराकृच्छ्रहृद्भवेत् ॥ २६ ॥

तिल, अपामार्ग, कदली ( केले की जड़ ), पलाश की जड़ तथा छाल और यवके काण्ड अर्थात् इनके पञ्चाङ्ग को समभाग लेकर सुखा के भाण्ड में भरकर जला के भस्म (राख) बना लेवें । फिर इस भस्म को अष्टगुण पानी में घोल कर चार तह किये हुए कपड़े से उस भस्म घुले हुए पानी को २१ बार छान कर शुद्ध छने हुए जल को मन्द २ अग्नि से क्षारपाक की विधि से पकाकर थोड़े से जलके शेष रहते ही ( जिससे क्षार जले नहीं ) उतार कर धूप में सुखाना चाहिए । इस तरप धूप से बचा हुआ जल उड़ ( सूख ) जाता है और पात्र में श्वेत क्रिस्टल के रूप में उपर्युक्त पदार्थों का क्षार जमा हुआ मिलता है । इस क्षार को शीशी में भर कर रख देवें । इस क्षार को दो रत्ती भर लेकर भेड़ के मूत्र के साथ सेवन कराने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है तथा मूत्र में शर्करा का जाना भी बन्द हो जाता है ॥ २५-२६ ॥

अथाश्मरीरोगे पथ्यापथ्यमाह—

कुलत्था मुद्गगोधूमा जीर्णशालियवा हिताः ।
पर्वामिषं तण्डुलीयं जीर्णकुष्माण्डकं फलम् । आर्द्रकं यावशूकञ्च पथ्यमश्मरिरोगिणाम्॥१॥

इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

मूत्रस्य शुक्रस्य च वेगमम्लं विष्टम्भि रूक्षं गुरुवान्नपानम् ।
विरुद्धमन्नाशनमश्मरीमान् विवर्जयेत् सन्ततमप्रमत्तः ॥ २ ॥

इत्यपथ्यानि ।

( इति अश्मरी मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा )

अथ प्रमेहः—

शोषस्तापोऽङ्गकार्श्यं च बहुमूत्रत्वमेव च ।
अस्वास्थ्यं सर्वगात्रेषु मूत्रमेहस्य लक्षणम् ॥ २७ ॥

निरन्तर शरीर की प्रधान रक्षक अन्तिम धातु के नष्ट होते रहने से शरीर

का धीरे २ सूखना, शरीर में सदा अधिक मात्रा से ताप ( अधिक उष्णता ) का बना रहना, अङ्ग प्रत्यङ्गों की कृशता होना, बार २ तथा २४ घण्टे की राशि की अपेक्षा अधिक मात्रा से मूत्र का उत्सर्ग होना, सारे शरीर का अस्वास्थ्य बने रहना आदि ये सब मूत्र मेह ( मूत्र के साथ नष्ट होने वाली धातु अर्थात् प्रमेह ) के लक्षण हैं ॥ २७ ॥

**विमर्शः**—स्वास्थ्य के लक्षण से विपरीत शरीर के दोष धात्वादियों की स्थिति हो को अस्वास्थ्य समझना चाहिए।

**स्वास्थ्यलक्षणं यथा—**

"समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ १ ॥ इति सुश्रुतः।

**प्रमेह की उत्पत्ति में कारण—**

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥ इति मा० नि०।

अन्यच्च—दिवास्वप्नाव्यायामालस्यप्रसक्तं शीतस्निग्धमधुरमेद्यद्रवान्नपानसेविनं पुरुषं जानीयात् प्रमेही भविष्यतीति। सुश्रुत० नि० स्था०।

अन्यच्च—त्रिदोषप्रकोपनिमित्ता विंशतिः प्रमेहा भवन्तीति, चरकः नि० स्था०। प्रायः उपर्युक्त नवान्नपान, गुड़विकार, तथा कफकारक पदार्थ आदि जितने भी प्रमेह की उत्पत्ति के कारण बताये हैं इन कारणों का निरन्तर तथा अतिमात्रा के रूप से सेवन करते रहने से वातादिक दोष प्रकुपित होकर प्रमेह रोग उत्पन्न करते हैं।

**प्रमेह की सम्प्राप्ति—**

मेदश्च मांसञ्च शरीरजञ्च क्लेदं कफोवस्तिगतः प्रदूष्य।
करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्यधातून् सन्दूष्य मेहान् कुरुतेऽनिलश्च ॥ इति

अन्यच्च—तस्य चैवं प्रवृत्तस्यापरिपक्का एव वातपित्तश्लेष्माणो यदा मेदसा सहैकत्वमुपेत्य मूत्रवाहिस्रोतांस्यनुसृत्याधो गत्वा बस्तेर्मुखमाश्रित्य निर्भिद्यन्ते तदा प्रमेहान् जनयन्ति। इति सुश्रुतः। नि० स्था०। उपर्युक्त प्रमेहोत्पादक आहारादि कारणों के निरन्तर सेवन करने वाले पुरुष के अपरिपक्व ( आम ) वात, पित्त तथा कफ मेदोधातु के साथ मिलकर मूत्रवाहक स्रोतसों को प्राप्तकर नीचे की ओर जाकर वस्ति (Urinary Bladder ) के मुख का आश्रय कर बाहर निकलने लगते हैं तब प्रमेहों को उत्पन्न करते हैं।

**प्रमेहों का पूर्वरूप—**

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्रायूपं पाणिपादयोः।

दाहश्चिक्कणता देहे तृट्स्वाद्वास्यञ्च जायते ॥ इति मा० नि० ।

अन्यच्च—तेषां तु पूर्वरूपाणि हस्तपादतलदाहः, स्निग्धपिच्छिलगुरुता गात्राणां, मधुरशुक्लमूत्रता, तन्द्रा, सादः पिपासा दुर्गन्धश्च सास्तालुगलजिह्वादन्तेषु मलोत्पत्तिर्जटिलीभावः केशानां वृद्धिश्च नखानाम् । इति सुश्रुतः । नि० स्था० । हस्त और पाद विशेष करके उनके तलुओं में जलन, शरीराङ्गों में स्निग्धता, पिच्छिलता तथा भारीपन, मूत्र में मधुरता और वर्णशुक्लता, बार २ (१)तन्द्रा का प्रादुर्भाव तथा अङ्गों का ( साद ) टूटना, अधिक प्यास लगना, मुख का सर्वदा मीठा जायका रहना शरीर से दुर्गन्ध आना, थोड़े ही श्रम से अधिक श्वास हो जाना, तालु, गला, जिह्वा तथा दन्त इन पर मैल की उत्पत्ति, केशों का ( विशेषकर शिर के केशों का ) जटा के समान परस्पर गुथ जाना, नखों की अधिक वृद्धि होना ये सब प्रमेहों के पूर्वरूप हैं ।

*प्रमेहों के सामान्य लक्षण तथा भेद—*

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत् संयोगविशेषतः
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ इति । मा० नि० ।

जिस मनुष्य में २४ घण्टों की निश्चित राशि से अधिक राशि में तथा घनमूत्रावियम के विरुद्ध अधिक वार और प्रदुष्ट पदार्थयुक्त मूत्र का त्याग करता है वह रोग प्रमेह कहलाता है । यह प्रमेह रोग मूत्र में निकलने वाले पदार्थ और उसके वर्ण के अनुसार अनेक प्रकार का होता है । प्रमेह को साधारण तथा डाक्टरी में Anomalies of Urinary Secretion ( एनामेलिस आफ यूरिनरी सक्रिशन ) कहते हैं आयुर्वेद में प्रमेहों के २० भेद किये गये हैं "प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः" ।

प्रमेहरोग प्रायः वस्ति का रोग है । यथोक्तम्—

मत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च ।
मूत्रदोषाश्च ते वाऽपि वस्तौ चैव भवन्ति हि ॥

प्रमेह के भेदों की गणना—

दकमेहस्तथा चेक्षुः सान्द्रमेहः सुराभिधः ।
पिष्टप्रमेहः शुक्राख्यः सिकता शीतकः शनैः ॥
लालामेहस्तथा क्षारो नीलमेहोऽथ कालकः ।
हारिद्रमेहमाञ्जिष्ठौ रक्तमेहस्तथाऽपरः ॥
षोढ़शोऽथ वसामेहो मज्जामेहश्च कीर्तितः ।

---

( १ ) इन्द्रियार्थेषु सम्प्राप्ति गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥

क्षौद्रमेहस्तथा हस्ती मेहानां विंशतिः क्रमात् ॥

इनमें से कफकी प्रधान विकृति से होने वाले दश प्रमेह हैं, यथा तत्र कफादुदकेक्षुसुरासिकताक्षैर्लवणपिष्टसान्द्रशुक्रफेनमेहा दस साध्याः दोषदूष्याणां समक्रियत्वात्। इति ।

पित्तकी विकृति से ६ प्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं, यथा—

पित्ताच्छीलहरिद्राम्लक्षारमञ्जिष्ठाशोणितमेहा षट् याप्याः, दोषदूष्याणां विषमक्रियत्वात्। इति ।

वात की विकृति से चार प्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं यथा—

वातात् सर्पिर्वसाक्षौद्रहस्तिमेहाश्चत्वारोऽसाध्यतमाः, महात्ययिकत्वात्। इन तीनों प्रकार के प्रमेहों में एक २ कारण प्रधान होता है किन्तु उसके साथ अन्य कारण भी अप्रधान स्वरूप में वर्तमान रहते हैं, यथोक्तं—तत्र वातपित्तमेदोभिरन्वितः श्लेष्मा श्लेष्मप्रमेहान् जनयति, वातकफशोणितमेदोभिरन्वितं पित्तं पित्तप्रमेहान्, कफपित्तवसामज्जमेदोभिरन्वितो वायुर्वातप्रमेहान् जनयतीति।

दूषित वात, पित्त और मेद से युक्त दूषित कफ उक्त १० प्रकार के कफप्रमेहों को उत्पन्न करता है। दूषित वात, कफ, रक्त और मेद से युक्त दूषित पित्त उक्त ६ प्रकार के पित्त प्रमेहों को उत्पन्न करता है। दूषित कफ, पित्त, वसा, मज्जा तथा मेद से युक्त दूषित वायु उक्त ४ प्रकार के वात प्रमेहों को उत्पन्न करता है।

आयुर्वेदिकलक्षणघटित निम्न प्रमेहों का पाश्चात्य प्रमेहों के साथ समन्वय हो सकता है।

१ लालामेह का सादृश्य अलब्यूमिनयूरिआ (Albuminuria) के साथ मिलता है

२ कालमेह का सादृश्य ब्राउन एण्ड ब्लेक यूरिनस् (Brown and Black Urins) के साथ मिलता है।

निम्न रोगों में भी मूत्र का वर्ण काला हो जाता है।

१ इंडिकन्यूरिआ ( Indicanuria ), इसमें मूत्र के अन्दर इण्डिकन तथा इण्डोल के उच्चश्रेणी के अपद्रव्य अधिक मात्रा से मिले रहते हैं।

२ मेलन्यूरिआ (Melanuria) यह प्रमेह मूत्र के अन्दर मेलयानिन (Melanin) नामक रङ्गद्रव्य की उपस्थिती से होता है।

३ अलक्याप्टन्यूरिआ ( Alkaptonuria ), यह रोग मूत्र में होमो जेन्टिसिनिक एसिड ( Homogenticinic Acid ) की उपस्थिति से होता है।

४ कार्बोल्यूरिआ ( Corboluria ), यह रोग व्रणों के उपचार में कार्बोलिक एसिड ( Corbolic Acid ) का उपयोग करने से उसका रक्त की सूक्ष्मनलियों के द्वारा शोषण हो जाने से उत्पन्न होता है तथा सॅलाल, स्यालिसायलेट, स्यालिक

एसिड रिसोर्सिन आदि पदार्थों के सेवन से भी कार्बोल्यूरिआ ( कालमेह ) उत्पन्न होता है।

उदक मेह या बहुमूत्रमेह का सादृश्य ( Polyuria ) के साथ होसकता है। इस प्रमेह में मूत्र की गुरुता ( Specific Gravity ) और वर्ण ( Colour ) जल के बराबर हो जाता है। डायाबेटिज़ इन्सापीडस (Diabetes Insipidus) यह पिटयूटरी ग्लेण्ड (Pituitary Gland) की विकृति से उत्पन्न होने वाले उदकमेह का भेद है।

इक्षुमेह का सादृश्य ग्लायकासूरिआ ( Glycosuria ) के साथ हो सकता है।

ग्लायकासूरिआ के भेद—१ एलिमेण्टरी ग्लायको सूरिआ ( Alimentary Glycosuria ), यह अधिक सन्तर्पणकारक ( कफकारक ) पदार्थों के सेवन से होता है अतः इसे सन्तर्पणजन्य भी कह सकते हैं।

२ रीनल ग्लायकासूरिआ ( Renal Glycosuria ) यह ग्लायको सूरिआ का द्वितीय भेद है तथा वृक्क की शर्करावन्धनमर्यादा ( Renal threshold ) की कमी हो जाने से उत्पन्न होता है।

सुरामेह का सादृश्य प्रायः फास्फेटयूरिआ ( Phosphaturia ) के साथ अथवा एसिटोन यूरिआ ( Acetonuria ) के साथ करना चाहिए। इस प्रकार में मूत्र की तली में घन अवक्षेप होता है तथा ऊपरी पृष्ट पर मूत्र स्वच्छ होता है।

सिकता मेह का सादृश्य पासेन्ग आफ् ग्रेवल ( Passing of Gravel ) के साथ करना चाहिए। इस प्रकार में ओषध सेवन करने से अथवा प्रकृति ही से पथरी छोटे २ कणों के रूप में विभक्त होकर मूत्र के साथ निकलती रहती है।

पिष्टमेह का सादृश्य काइल्यूरिआ ( Chyluria ) के साथ हो सकता है। इस प्रकार में मूत्र का स्वरूप पिष्टमिश्रित जल ( आटे के धोल ) के समान हो जाता है, इसका कारण अलब्युमिन ( AlbuMln ), पूय ( Pus ) या काइल ( Chyle ) की मूत्र में उपस्थिति रहना है।

शुक्रमेह का सादृश्य अलब्युमिन्यूरिआ ( Albuminuria ) के साथ करना चाहिए। इसका १ भेद स्पर्मेटयूरिआ ( Sperma turia ) है। प्रथम भेद में मूत्र शुक्र की आभा लिये होता है तथा दूसरे भेद ( Spermaturia ) में मूत्र के साथ शुक्र का भी उत्सर्ग होता है।

यथोक्तम्—"शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति"। मूत्र के अन्दर अलब्युमिन की उपस्थिति वृक्कविकार, पाण्डुरोग, हृदय विकार, यकृदाल्यूदर, गर्भावस्था, मदात्यय अनेक रोगों के कारण होती है।

फेनमेह का सादृश्य न्यूमोट्यूरिआ ( Pneumoturia ) के साथ होता है। इस में मूत्र फेनदार होता है इसका कारण वस्ति का मलाशय के साथ सम्बन्ध

तथा वस्ति में बेसिलस कोलिकम्युनिस नामक जीवाणु या यीष्ट नामक जीवाणु के प्रविष्ट हो जाने से मूत्र में एक विशेष प्रकार की वायु उत्पन्न होती है तथा उस का फेन के साथ उत्सर्ग होता है।

नीलमेह का सादृश्य इण्डकन्यूरिआ ( Indicanuria ) के साथ होता है। इस रोग में मूत्र के साथ इण्डिकन नामक पदार्थ का त्याग होता है तथा मूत्र का रङ्ग नीला होता है ( नीलमेहेन नीलाभमिति )।

मञ्जिष्ठामेह का सादृश्य कोल्यूरिआ ( Choluria ) के साथ करना चाहिए। इस प्रकार के प्रमेह में मनुष्य मंजीठ के जल के समान मूत्र का त्याग करता है ( विन्नं माञ्जिष्ठामेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् )। यह मूत्र का पीला रङ्ग उसमें पित्त के बिलिरुबिन ( Bilirubin ) नाम के रङ्ग द्रव्य के मिल जाने से होता है। यह प्रमेह कामला रोग पीड़ित मनुष्यों में विशेष होता है। इसके सिवाय मूत्र के यूरोबिलिन ( Urobilin ) नामक रङ्गद्रव्य की मूत्र में अधिकता हो जाने से भी उसका वर्ण पीला हो जाता है, इस प्रकार के प्रमेह को यूरोबिलिन्यूरिया ( Urobilinuria ) कहते हैं। यूरोबिलिन की वृद्धि पाण्डुरोग, मलेरिया, यकृदाल्यूदर आदि रक्तनाशक रोगों में अधिक होती है।

अम्लमेह का सादृश्य लिथ्यूरिआ ( Lithuria ) के साथ करना चाहिए। इस प्रकार में मूत्र के अन्दर यूरिक एसिड ( Uric Acid ) तथा यूरेट्स ( Urets ) की राशि बढ जाती है, यह प्रमेह अपथ्य के सेवन से तथा वातरक्त के उपद्रव स्वरूप में प्रायः दिखाई देता है।

क्षारमेह का सादृश्य अल्केलाइन्यूरिआ ( Alkaline Uria ) के साथ होता है। "गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्" मूत्र की क्षारीयता बढ जाने से यह क्षारमेह उत्पन्न होता है। प्रायः मूत्रकी प्रतिक्रिया आम्लिक होती है किन्तु कुछ देर के पश्चात् वह क्षारीय हो जाता है। रोग के विना मूत्र जब तक बस्ति से बाहर नहीं निकलता है तब तक उसकी प्रतिक्रिया आम्लिक होती है। किन्तु यदि मूत्र वस्ति में पौरुषग्रन्थि ( Prostate Gland ) की वृद्धि के कारण, या मूत्रमार्ग के सङ्कोच के कारण स्वाभाविक समय से अधिक देर तक रुका रहने से तथा फास्फेट्स (Phosfhates) की अधिकता से तथा पुराने वस्तिविकार से मूत्र क्षारीय हो जाता है।

हारिद्रमेह का सादृश्य हीमोग्लोबिन्यूरिया ( Haemoglobinuria ) के साथ होता है इस विकार में मूत्र के साथ केवल हीमोग्लोबिन निकलता रहता है।

रक्तमेह का सादृश्य हीमेच्यूरिआ ( Haematuria ) के साथ होता है। इस विकार में मूत्र के अन्दर रक्तकणों ( Red Blood Corpeles ) से युक्त रक्त की उपस्थिति मिलती है।

मूत्र में पूय ( Pus ), अलब्यूमिन ( Albumin ) या चर्बी ( Fats ) के उपस्थित होने से सर्पिमेंह तथा वसामेह उत्पन्न होते हैं। जिस मूत्र में पूय ( Pus ) जाता हो उसे पायूरिया ( Pyuria ) कहते हैं और जिसमें वसा जाती है उसे लायप्यूरिआ ( Lipuria ) कह सकते हैं।

क्षौद्रमेह या मधुमेह का सादृश्य डायाबेटिज मेलिटिस (Diabetes Mellitus) के साथ होता है। इस रोग में मूत्र के अन्दर शर्करा का उत्सर्ग होता है तथा मूत्र की स्वाभाविक गुरुता भी बढजाती है। जब रक्त के अन्दर शर्करा की राशि बढ जाती है तो वृक्क उस शर्करा को मर्यादा से ज्यादा होने के कारण रोक नहीं सकते हैं इसलिये इस शर्करा का उत्सर्ग मूत्र के साथ होने लगता है। पिष्टमय पदार्थों के अधिक सेवन करने से भी रक्त की शर्करा वृक्क की शर्करा बन्धन मर्यादा से अधिक हो जाने के कारण मूत्र में शर्करा आने लगती है। मस्तिष्क सम्बन्धि विकारों के कारण भी मानसिकस्थिति या मस्तिष्क का सुचारू रूप से कार्य नहीं होने से मूत्र में शर्करा आने लगती है। अग्न्याशय ( Pancreas ) के लैंगर हैंस के द्वीप ( Ilets of Langerhens ) नामक भाग की खराबी हो जाने से उस से जिस रस का स्राव होता है वह नहीं होता है। इन से उत्पन्न होने वाला स्राव रक्त के अन्दर मिल जाता है, इस स्राव में एक विशेष प्रकार का पदार्थ होता है जिस को इन्स्यूलीन ( Insulin ) कहते हैं। यह पदार्थ पेशियों के द्वारा शर्करा का व्यय कराने तथा शर्करा को यकृत् (Liver) के अन्दर ग्लाइकोजन ( Glycogen ) के रूप में सञ्चित कराने के लिये सहायता करता है, किन्तु इस के उत्पादक अङ्ग की खराबी से जब यह उत्पन्न नहीं होता है तो शर्करा का व्यय और सञ्चय नहीं होता है बल्कि उस का मूत्र के साथ उत्सर्ग होने लगता है। ये ही मूत्र के साथ शर्करा त्याग कराने के कारण हैं। प्रायः मधुमेह के रोगी को इन्स्यूलीन का सेवन कराने से रोग की निवृत्ति में बहुत कुछ सहायता होती है।

अथ चन्द्रप्रभा वटी—

बोलं जातिफलं मधूकयुगलं सारं तथा खादिरं
कर्पूरामलकी शठी बहुसुता घोण्टाम्लसारस्थिराः।
कासीसं भवबीजदाडिमसहा सर्वं समं कल्पितं।
प्रत्येकं दधिदुग्धलाङ्गलिरसैस्तुम्बस्य मुद्गस्य च ॥ २८ ॥
रसेन भावितं तस्य गुटिका सम्प्रकल्पिता।
ज्ञयेच्चन्द्रप्रभा नाम तीव्रान्मेहादिकान्गदान् ॥ २९ ॥

बेल का चूर्ण १ तोला, जायफल का चूर्ण १ तोला, मुलेठी ला चूर्ण १ तोला, महुए के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, खदिर वृक्ष का सार ( कत्था ) १ तोला, शुद्ध कपूर १ तोला, आंवले के फलों के छिलकों का चूर्ण १ तोला, शठी ( कचूर ) का चूर्ण १ तोला, शतावर ( कन्द ) का चूर्ण १ तोला, घोंटा अर्थात् जङ्गलीबेर सुपारी या गोरखमुण्डी का चूर्ण १ तोला, अम्लसार ( अमलबेंत ) का चूर्ण १ तोला, स्थिरा अर्थात् शालपर्णी का चूर्ण १ तोला, कासीस की भस्म १ तोला, भवबीज अर्थात् शिवलिङ्गी के बीजों का चूर्ण या लिसोड़े ( बड़ीगूदी ) के बीजों का चूर्ण १ तोला, अनार के बीजों का चूर्ण १ तोला, सहा अर्थात् माषपर्णी का चूर्ण १ तोला लेकर खरल में मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर दही, दुग्ध, कलिहारी की जड़ का रस या क्वाथ, कड़वी तुम्बी का रस, मुद्गपर्णी का रस, इन प्रत्येक के साथ एक २ बार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर एक २ माशे भर की गोलियां बनाके छाया में सुखाकर काचकी शीशी में भर देवें । इसकी एक गोली सुबह तथा एक गोली सन्ध्या को मेहहर अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है ॥ २८–२९ ॥

अथ प्रमेहगजसिंहरसः—

**चाण्डालीरक्तसीपुष्परसभाव्याज्यटङ्कणम् ।**
**रसं समांशोपरसं समं हेम्ना विमर्दितम् ॥ ३० ॥**
**समांशं पूतिलोहं वा मूषायां विपचेत्क्रमात् ।**
**प्रमेहगजसिंहोऽयं रसः क्षौद्रैर्द्विमाषकम् ॥ ३१ ॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, उपरस अर्थात् अभ्रक की भस्म १ तोला, सुवर्ण की भस्म १ तोला, पूतिलौह अर्थात् नागभस्म १ तोला, वङ्गभस्म १ तोला लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार घोटकर चाण्डाली अर्थात् पञ्चगुरिया ( लिङ्गिनी ) के रस से एक दिन घोट कर मूषा में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें फिर रतनज्योत के दुग्ध के साथ प्रथमवार पुटित औषधि को घोटकर मूषा में बन्द करके गजपुट में फूंके, फिर शहद के साथ घोटकर फूंके, फिर घृत के साथ घोटकर फूंके, फिर सब औषधि का चोथाई शुद्ध सुहागा मिला के अच्छी प्रकार घोटकर मूषा में बन्द करके गजपुट में फूंक देवें । इस प्रकार सिद्ध हुई औषधि को खरल में महीन पीसकर काच की शीशी में भर देवें । इसको प्रमेह-

गजसिंहरस कहते हैं । इस रस को दो माशे भर लेकर (प्रायः दो रत्ती से ४ रत्ती की मात्रा पर्याप्त है ) शहद् के साथ मिला के सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं ॥ ३०–३१ ॥

अथ महाविद्यागुटी—

**मर्दितं किंशुकरसैः कान्तनागाभ्रपारदम् ।**
**कषायैः स्विन्ननाकुल्या वालुकायन्त्रपाचितम् ॥ ३२ ॥**
**राजावर्तशिलाधातुताप्यमण्डूरमाक्षिकैः ।**
**तुत्थवैक्रान्तकासीसैः समैः सर्वैरिमैः समम् ॥ ३३ ॥**
**आधारी कृष्णमूला तु कपित्थश्रावणी हिमम् ।**
**नारिकेलस्य मूलानां मुस्ताचन्दनसारयोः ॥ ३४ ॥**
**काकजम्बूप्रसूनानां रसैः सह विमर्दयेत् ।**
**गुटिकां भक्षयेत्तस्य माषद्वितयसम्मिताम् ॥ ३५ ॥**
**धात्रीरसं चानुपिबेन्नाकुलीचूर्णमात्रया ।**
**रात्रौ धात्रीरसं देयं महाविद्याप्रमेहजित् ॥ ३६ ॥**

कान्तलौहभस्म २ तोला, नाग ( सीस ) भस्म २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर २ तोला लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार घोटकर पलाश के पुष्पों के स्वरस या क्वाथ से सातवार भावित कर के अच्छी प्रकार से घोटें, फिर स्विन्ननाकुली अर्थात् गन्धनाकुली या रास्ना के क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बनाकर दृढ मूषा में बन्द करके बालुकायन्त्र में पाककरें । स्वङ्गशीतल यन्त्र से पक्व औषधि को निकाल कर खरल में अच्छी प्रकार महीन पीसकर रखलें, फिर राजावर्त की भस्म १ तोला, शिलाधातु अर्थात् स्वर्ण गैरिक की भस्म अथवा शिलासम्बन्धि ( पाषाण सम्बन्धि ) धातु ( उपधातु ) अर्थात् शुद्धमनःशिला १ तोला, ताप्य अर्थात् स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, मण्डूरभस्म १ तोला, रौप्यमाक्षिक ( रूपामाखी ) की भस्म १ तोला, शुद्ध किया हुआ नीलतुत्थ १ तोला, वैक्रान्त ( दग्धहीरे ) की भस्म १ तोला, कासीस की भस्म १ तोला इस तरह आठ तोले भर इन भस्मों को उपर्युक्त कान्तलौहादिक चार पदार्थों की बालुका यन्त्र से सिद्ध की हुई ८ तोले औषधि के साथ मिलाकर सब को खरल में अच्छी प्रकार से घोटकर रखलें फिर

आचारी अर्थात् शतावर, कृष्णमूला अर्थात् कृष्णशारिवा, कपित्थ की छाल, श्रावणी अर्थात् मुण्डिरी या गोरखमुण्डी, हिम अर्थात् खस ( उशीर ) या कुछ लोग पद्माख भी लेते हैं, नारियल की जड़, नागर मोथा, रक्तचन्दन ( इनका सार अर्थात् क्वाथ, कुछ लोग सारकशब्द से खदिर का सार ऐसा भी अर्थ करते हैं ), तथा काकजम्बु अर्थात् क्षुद्र जामुन के पुष्प इन द्रव्यों को लेकर इनका पृथक् २ स्वरस निकाल कर अथवा क्वाथ बनाके उससे एक २ वार क्रम से उपर्युक्त खरल की हुई औषधि को भावित करना चाहिए। प्रत्येक औषधि के रस या क्वाथ से औषध को रातभर अच्छी प्रकार भींगो कर दूसरे दिन सुबह से सन्ध्यातक उसी औषधि के रस अथवा क्वाथ से घोटें जब घोटते २ वह रस या क्वाथ सूख जाय तब औषधि को दूसरे द्रव्य के स्वरस अथवा क्वाथ से भींगोकर ( आप्लावित या तर करके ) रात्रि भर पड़े रहने देने के पश्चात् सुबह से सन्ध्यातक उसी के रस या क्वाथ के साथ घोंटे फिर तीसरी औषधि के रस से भावित करके रख दें। इसी प्रक्रिया से सब औषधियों के रस या क्वाथ से क्रमशः भावनाओं के समाप्त हो जाने के पश्चात् दो २ रत्ती भर की गोलियां बनाके छाया में सुखा कर उन्हें शीशी में भर देवें। इस तरह से बनी हुई इस रस की दो रत्ती भर की एक गोली से प्रारम्भ करके रोगी की अवस्था, बल, तथा रोगी की तीव्रता आदि का विचार करके दो माशे भर तक ( अर्थात् ८ गोलियां ) गोलियों का प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए, औषध सेवन करने के पश्चात् ४ माशे भर नाकुली के चूर्ण को २ तोले भर धात्री ( आँवले के फल ) के स्वरस के साथ मिलाकर अनुपान कराना चाहिए। रात्रि के समय आँवले का रस निकाल कर पीना चाहिए। इस प्रकार इस महाविद्या गुटी का प्रतिदिन (जब तक रोग अच्छा न हो तब तक, प्रायः ४० दिन में इससे प्रमेह नष्ट हो जाता ) सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं ॥ ३२–३६ ॥

अथ मेहध्वान्तविवस्वान् रसः—

**वीर्यं पुरारेर्बलिमभ्रसंज्ञं जम्बीरनीरेण विमर्द्य भस्म ।**
**रसार्धभागेन ददीत शुल्वं सर्वं ततो गोपयसा विमर्द्य ॥ ३७ ॥**
**खर्जूरमत्स्यण्डिकहंसपादी द्राक्षेण सत्त्वेन गुडूचिकायाः ।**
**मांसीशिवाकर्कटरुच्यदन्तीबीजैस्तदीयैः सलिलैर्विभाव्य ॥३८॥**

**ततो रसः सिद्ध्यति वल्लमस्य शुक्रप्रमेहे सति शाल्मलीनाम् ।**
**मूलाम्बुना वा कुसुमाम्बुना वा दद्यात्पयोभक्तक्रमत्र योज्यम् ॥ ३६ ॥**
**क्षौद्रेण दुर्नाम्नि तथाश्मरीषु गवां पयोभिर्निखिलप्रमेहे ॥ ४० ॥**

पुरारि अर्थात् महादेव का वीर्य्य अर्थात् शुद्ध पारद १ तोला, बली अर्थात् शुद्धगन्धक १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें अभ्रकभस्म मिलाकर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोटना चाहिए । फिर उसमें पारद की अपेक्षा आधी (आध तोला) शुल्व ( ताम्र ) की भस्म मिलाकर गाय के कच्चे ( धारोष्ण ) दुग्ध के साथ अच्छी प्रकार दिन भर घोटकर सुखालेवें । फिर खर्जूर ( छुहारा ), मत्स्यण्डिका ( राब ), हंसपदी ( गोधापदी ), द्राक्षा ( दाख ), गिलोय का सत्त्व, जटामांसी, शिवा अर्थात् हरड़, काकड़सींगी या बांझककोड़ा, रुच्य अर्थात् कतकफल ( निर्मली ), दन्तीबीज अर्थात् शुद्ध जयपाल, इन समग्र औषधियों के स्वरस अथवा क्वाथ से क्रमशः एक२ बार उक्त औषधि को भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के चूर्ण करके शीशी में भर देवें । इस रस को एक वल्लभर (३ रत्ती) लेकर शाल्मली ( सेमल ) की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ अथवा शाल्मली के पुष्पों के स्वरस के साथ प्रमेह रोग के विनाश के लिये प्रतिदिन सेवन करना चाहिए । औषध के जीर्ण होने पर ( तीन घण्टे के बाद अथवा भूख लगने पर ) दूध और भात का पथ्य कराना चाहिए । इस रस को दुर्नाम अर्थात् अर्शोरोग में तथा अश्मरी रोग में क्षौद्र अर्थात् मधु के साथ सेवन करना चाहिए तथा सर्व प्रकार के प्रमेहों में इस रस को सेवन करके ऊपर से गाय का दुग्ध सेवन कराना चाहिए ॥ ३७-४० ॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने प्रत्येक औषधि के स्वरस या क्वाथ से सात २ वार भावन देने को लिखा है, यह भी ठीक है ( अधिकस्य अधिकं फलम् ) परन्तु कम से कम एक २ वार तो अवश्य ही भावना देनी चाहिए । गुडूच के सत्त्व को पानी में घोल कर उस से भावना देवें अथवा गुडूची के स्वरस या क्वाथ ही से भावना देवें । इस प्रकार सिद्ध हुए रस को मेहध्वान्तविवस्वान रस कहते हैं, अर्थात् प्रमेह रूपी अन्धकार के लिये यह रस एक प्रकार का विवस्वान् अर्थात् सूर्य है । कुछ ग्रन्थों में इस रस का "बहुमावितप्रमेहारिरस" ऐसा नाम है । मत्स्यण्डिका शब्द का 'सांठे ( इक्षु ) के रस को पकाने से जब वह कुछ द्रवांश लिये

हुए गाढा हो जाय तब उसे उतार कर रख लेते हैं उसको राब या फाणित कहते हैं यह अर्थ करना चाहिए जैसे कहा भी है यथा—

"इक्षो रसो यः सम्पक्वो घनः किञ्चिद्द्रवान्वितः।
मन्दं मत्स्यन्दते तस्मात् तन्मत्स्यण्डी निगद्यते" ॥ इति।

अथोमाशम्भुरसः—

रसाभ्रकौ तुत्थसमानभागौ जम्बीरनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य।
कुर्वीत मूषां कुहरं निवेश्य वह्नौ ततस्तस्य पुटानि सप्त ॥ ४१ ॥
बीजाद्वमु(१)ष्काक्षयुगैश्चतस्रः स्युर्भावना द्वे ककुभात्रिवारम्।
यष्टीसिताकेतकजीररम्भा खर्जूरिका जातिदलैः प्रतिस्वम् ॥ ४२ ॥
एवं हि सिद्धस्य रसस्य वल्लो मधुप्रयुक्तः सहसा शिशूनाम्।
सन्तापशोषौ बलहीनतां च तृषां च वासासलिलैः प्रमेहान् ॥ ४३ ॥
निवर्तयेद्वासरसप्तकेन दुग्धौदनं स्यादिह भोजनाय।
नीरेण बब्बूलनवप्रवालान्निषेव्य तैः शर्करया समन्वितैः ॥ ४४ ॥
सर्वप्रमेहान्विनहन्ति दत्तो दिनत्रयं विंशतिवत्सरस्य।
अन्नं ससर्पिः समितं प्रयोज्यं दिनानि सप्त त्रिगुणानि चात्र ॥ ४५ ॥
वरामधुभ्यां सहितस्य यस्य पञ्चाधिका वत्सरविंशतिः स्यात्।
हैयङ्गवीनेन गवां च पथ्यं त्रिसप्तसंख्यानि दिनानि कार्यम् ॥ ४६ ॥
प्रस्विन्नगोधूमरसेन हन्ति स त्रिंशदब्दस्य दिनत्रयेण।
अन्नं ससर्पिः सगुडं हि देयं मध्विक्षुखण्डैस्त्रिदिनं विधातुम् ॥ ४७ ॥
अङ्गानि सम्यग्विनिदावसङ्गतानि खानि स्फुटनं ददीत।
चिञ्चागुडाभ्यां युतमन्नमस्मन्द्राक्षादिनीरेण विमिश्रितः सन् ॥ ४८ ॥
दिनत्रयं लङ्घनजं विशोषं विनाशयेद्गोस्तनिकासिताभ्याम् ॥ ४९ ॥

पथ्यं देयमुमाशम्भौ वासुदेवेन निर्मिते।
पातुं जगन्ति कृपया मेहध्वान्तविवस्वति ॥ ५० ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, शुद्ध किया हुआ नीले रङ्ग का तुत्थ २ तोला लेकर सब को खरल में डालकर अच्छी प्रकार से महीन करके जम्बीरी निम्बू के रस के साथ तीन दिन तक खरल करके

(१) "मुष्क" इत्यत्र "मुस्त" इति पाठान्तरम्।

गोला बनाकर उसको मूषा में बन्द करके कुक्कुट पुट से पाककरें, इस प्रकार जम्बीरी निम्बू के रस के साथ घोट२ कर सात पुट देने चाहिए। फिर इस सिद्ध हुए रस को खरल में घोटकर बीजाढ्य अर्थात् बिजोरे निम्बू के रस अथवा उसकी जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ एक भावना देवें, मुष्क ( पाटला ) के स्वरस या क्वाथ से एक भावना देवें । फिर अक्षयुग अर्थात् बहेड़े के फल के क्वाथ से एक भावना तथा रुद्राक्ष के क्वाथ से एक भावना देवें, अथवा अक्ष अर्थात् बहेड़े के फल की एक भावना और युग अर्थात् ऋद्धि वृद्धि या इनके प्रतिनिधि द्रव्य के स्वरस या क्वाथ की एक भावना देवें । फिर ककुभ अर्थात् अर्जुन की छाल के क्वाथ से दो भावना देवें, फिर यष्टी ( मुलेठी ), सिता ( दूर्वा ), केवड़े के पुष्प अथवा जड़, जीरा, केले की जड़, खर्जूर ( छुहारा ), जातिदल अर्थात् जातिपत्र ( चमेली के पत्ते ) इन औषधियों में से प्रत्येक ( प्रतिस्वम् ) के स्वरस अथवा क्वाथ से क्रमशः पृथक् २ तीन २ भावनाएं देनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक भावना में अच्छी प्रकार घोटने से यह रस सिद्ध हो जाता है । भावनाओं के पश्चात् इस रस को सुखा कर चूर्ण करके शीशी में भर कर रख दें । साधारणतया इस रस को एक वल्ल ( ३ रत्ती ) भर लेकर १ तोले शहद् में मिलाकर सेवन करना चाहिए । इस रसको चोथाई रत्ती से १ रत्ती भर लेकर शहद के साथ बालकों को सेवन कराने से सन्ताप, शोष ( अर्थात् बालकों के शरीर का सूखना ), बल की क्षीणता और तृषा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं । अडूसे के पत्तों के स्वरस और मधु के साथ इस रस को उचित मात्रा से एक सप्ताह तक सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं । इस रस को प्रमेहादिक रोगों में सेवन करते समय पथ्य में दूध और पुराने चावलों का भात सेवन करना चाहिए । इस रस को उचित मात्रा से कोमल ( हरी ) बब्बूल की पत्तियों के स्वरस में मिश्री मिलाकर उसके साथ सेवन करने से तीन दिन ही में बीसवष वाले मनुष्य के सकल प्रकार के प्रमेह को अथवा मनुष्य के बीस वर्ष के पुराने सकल प्रकार के प्रमेह को यह रस नष्ट कर देता है । इस रस के तीन दिन तक सेवन करने के पश्चात् २१ दिन तक घृत तथा चीनी के साथ पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए । इस रस को त्रिफला के चूण और शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से २५ वर्ष वाले पुरुष के समग्र प्रमेहों को नष्ट कर देता है

अथवा मनुष्यों के पचीस वर्ष के पुराने समग्र प्रमेहों को नष्ट कर देता है। इस प्रकार इस रस को तीन दिन तक सेवन करना चाहिए, और २१ दित तक गाय के मक्खन के साथ हित कारक आहार का पथ्य करना चाहिए। इस रस को उबाले हुए गेहूं के रस (क्वाथ) के साथ तीन दिन तक सेवन कराने से ३० वर्ष का पुराना प्रमेह नष्ट हो जाता है। अथवा तीस वर्ष के मनुष्य का प्रमेह नष्ट हो जाता है। इस तरह इस रसको तीन दिन तक सेवन करने के पश्चात् २१ दिन तक घृत के साथ तथा गुड़ के साथ हितकारी अन्न का पथ्य में सेवन कराना चाहिए तथा मधु और सांठे के टुकड़े ( गट्टे ) या सांठे ( इक्षु ) के रस का भी इच्छानुसार सेवन करना चाहिए। विनिदाघ ( विशेष गरमी ) से संगत अर्थात् अत्यन्त पीड़ित हुए अङ्गों को सम्यग् अर्थात् ठीक ( स्वस्थ ) विधातुं अर्थात् करने के लिये तथा उसी प्रकार सन्तप्त इन्द्रियों को और स्फुटन अर्थात् दोषों के कारण रुद्ध हुए स्रोतसों के विकाश को करने के लिये तीन दिन तक इस रस को सेवन करने के लिये उपर्युक्त मधु और इक्षुखण्डादिकों के साथ देना चाहिए। इस औषध के सेवन करते समय तीन दिन तक विशेष आहार का सेवन नहीं करने से जो शरीर का या शरीरस्थ रस रक्तादिधातुओं का शोष हो जाता है उसको दूर करने के लिये इमली के रस में गुड़ डालकर पन्ना ( पणा ) बना के उसके साथ हितकर तथा बलकर पथ्य पदर्थों का भोजन कराना चाहिए, तथा द्राक्षादिगण की औषधियों का क्वाथ बनाकर उसके अन्दर चीनी या मिश्री मिलाकर पान कराना चाहिए। प्रमेह रुपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य के समान प्रभाव शाली तथा वासुदेव नामक आचार्य के द्वारा संसार को रोगों से रक्षा करने के लिये बनाये हुए इस उमाशम्भुनामक रस में साधारणतया गोस्तनी ( द्राक्षा ) के रस और मिश्री अथवा शर्करा के साथ हितकर अन्न का पथ्य देना चाहिए ॥ ४१–५० ॥

अथ रसेन्द्रनागरसः—

**नागं कपालमध्ये क्षिप्त्वा चाग्निं विशोधयेत्क्रमशः।**
**चिञ्चाकवचक्षारं स्वल्पं स्वल्पं विकीर्य कुन्तलेन ॥ ५१ ॥**
**भागं पारदसीसं घृष्ट्वा दृष्ट्वा विचूर्णितं सम्यक्।**
**तिलयुक्खादन्मधुना तरवटबीजेन मिश्रितं क्रमशः ॥५२॥**

मेहगणार्तिविनाशं सपीटकं कुष्ठमनिलं च।
हन्त्यल्पदिनाभ्यासात्सुपथ्ययोगाद्रसेन्द्रनागोऽयम् ॥ ५३ ॥

शुद्धनाग १ पल लेकर उसको मजबूत खर्पर में डालकर अग्नि पर चढाकर पिघलाना चाहिए। जब वह अच्छी प्रकार पिघल जाय तब उसमें इमली के कवच अर्थात् पक्के फलों के छिलके का बनाया हुआ क्षार लेकर उसमें से थोड़ा२ डालकर कुन्तल अर्थात् कलच्छी से घोटना चाहिए। इस प्रकार इमली का क्षार डालकर कलच्छी से घोटते२ जब सीसे की भस्म हो जाय तब उसको स्वाङ्गशीतल करके उतना उसमें शुद्ध पारद डालकर अच्छी प्रकार घोटकर पुट देकर पाक करलेना चाहिए। अथवा पारद और सीसे दोनों को समान लेकर साथ ही खर्पर में डालकर अच्छी प्रकार घोटते रहना चाहिए, जब सीसा पिघल जाय तब उसमें इमली का क्षार थोड़ा२ डालकर जारण करना चाहिए। इस तरह जब तक दोनों की अच्छी प्रकार भस्म न हो जाय तब तक उसमें इमली का थोड़ा २ क्षार डालकर कलच्छी के अगले चौड़े भाग के पृष्ठ से खूब घोटना चाहिए। इस प्रकार जब दोनों की चमक रहित भस्म हो जाय तब उस भस्म को शराव से ढककर एक प्रहर तक तीव्र आँच देनी चाहिए। फिर स्वाङ्गशीतल भस्म को निकालकर शीशी में भर देवें। इस रस की एक रत्ती भर की मात्रा प्रतिदिन तिलों का चूर्ण और तरवट ( चकवड़ ) के बीजों का चूर्ण तथा मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह पिड़काओं के सहित सर्वप्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। यह रस कुछ दिनों तक सेवन करते रहने से सर्वप्रकार के कुष्ठ तथा वातरोग को नष्ट कर देता है। इस रस के सेवन करते समय पथ्य पूर्वक आहार विहार करना चाहिए। इसको रसेन्द्रनाग रस कहते हैं। अथवा इस रस को केवल तरवट के बीजों का चूर्ण और मधु के साथ एक तिल के प्रमाण से प्रारम्भ करके प्रतिदिन क्रम से एक२ तिलभर की मात्रा को बढाते हुए योग्य मात्रा की पूर्ति तक सेवन करना चाहिए॥५१-५३॥

अथ मेहशत्रुरसः—

कान्ताभ्रमण्डूरहरीतकीनां विचूर्णितानां क्रमशः शरांशम्।
रसेन भूतांशमथोदशांशं द्वात्रिंशदष्टोत्तरमुत्तमायाः ॥ ५४ ॥
इलदणं मृदित्वा गुलिकां विधाय तक्रेण पीतं तलपोटकस्य।
बीजं च तेषां द्विगुणं प्रकल्प्य मेहामयान् हन्ति स मेहशत्रुः ॥ ५५ ॥

कान्तलौह भस्म ५ तोला, अभ्रकभस्म ६ तोला, मण्डूरभस्म ५ तोला, हरड़ का चूर्ण १० तोला, त्रिफला का चूर्ण ४० तोला लेकर सब को खरल में डालकर अच्छी प्रकार घोटकर जल के साथ मर्दन करके दो२ रत्ती भर की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस की एक गोली लेकर मधु के साथ भक्षण करके ऊपर से ४ रत्ती भर चकवड़ के बीजों के चूर्ण को गाय के मट्ठे के साथ मिलाकर अनुपान करना चाहिए। इस तरह से इस रस को सेवन करने से प्रमेही पुरुष शीघ्र ही ( कुछ दिनों में ) प्रमेह से छुटकारा पाजाता है॥५४-५५॥

विमर्शः—कान्तभस्म, अभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म और हरीतकी का चूर्ण, इन चार द्रव्यों के ग्रहण करने की मात्रा शरांश से लेकर दशांश तक बताई गई है अर्थात् कान्त भस्म शरांशमित=पञ्चभागमित, अभ्रकभस्म रसेन=षड् भागेन मितं तुल्यमित्यर्थः, मण्डूरभस्म भूतांश=पञ्चभागमित, हरीतकीचूर्णञ्च दशांश=दशभागमितं तथा उत्तमाया त्रिफलायाः ( तस्याः प्रमेह हन्तृत्वात् ) अष्टोत्तरम्=अष्टसंख्याधिकं द्वात्रिंशद् भागमर्थात् तस्याश्चत्वारिंशद्भागाः, इति इस तरह इन चार द्रव्यों को घोट कर गोली बनानी चाहिए। गोली बनाने के लिये जल के साथ चूर्ण को घोटना चाहिए, अथवा गोली हलदी के स्वरस से या त्रिफला के क्वाथ से अथवा आंवलों के रस हा से घोट कर गोलियां बनानी चाहिए। "तलपोटकस्य बीजञ्च तेषां द्विगुणं" इस वाक्य की अर्थ सङ्गति दो प्रकार से करनी चाहिए।

प्रथम—उपर्युक्त चार द्रव्यों की अपेक्षा तलपोटक ( चकवड़ ) के शुद्ध बीज दूगुने लेकर उनका चूर्ण बना के चारों द्रव्यों में मिला कर फिर प्रमेहहरद्रव्यों के स्वरस ( आंवला, त्रिफला, हलदी आदि के रस ) से घोट कर फिर गोलियां बनाई जांय तथा उन्हें प्रमेह को नष्ट करने के लिये मट्ठे के अनुपान से सेवन करनी चाहिए।

द्वितीय—केवल कान्तादिक चारों द्रव्यों को प्रमेह हर द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ से घोट कर गोलियां बनाई जांय फिर उन में से एक२ गोली दूगुने ( गोली की अपेक्षा द्विगुण ) शुद्ध चकवड़ के चूर्ण और मट्ठे के अनुपान से सेवन करनी चाहिए। इति।

अथ कासीसबद्धरसः—

कासीसं कृष्णनागं क्षितिधररुधिरं नीलमभ्रं सुकान्तं
हेमाङ्गं भूरिसारं सलिलरिपुदलं मेहतिष्यारिबीजम्।
गोरेखा चारिमेदः क्षितिरुहसहितं श्वेतगुञ्जाङ्घ्रिबीजं
कापित्थाम्बुभिश्रं क्षितिफलसहितं रोहिणी चाक्षमिश्रम्॥५६॥

**सर्वं सम्पिष्य तोये करिविजयभुवान्मादकानद्धमात्रान्**
**कुर्यात्तक्रेण देयं क्षपयति निखिलं मूत्ररोगं त्रिरात्रात्।**
**सप्ताहाद्भ्रान्तिनाशं तृषमतिबहुलां हन्ति पक्षाद्विधत्ते**
**मासात्सर्वाङ्गवृद्धिं मुनिभिरभिहितो मेहि कासीसबद्धः ॥ ५७ ॥**

शुद्ध कासीस १ तोला, कृष्ण अर्थात् नीलाञ्जन १ तोला, नागभस्म १ तोला, क्षितिधर ( पर्वत ) का रुधिर अर्थात् शुद्ध गेरू १ तोला, नीलाभ्रक (कृष्णाभ्रक) की भस्म १ तोला, अच्छे लक्षणवाले कान्तलौह की भस्म १ तोला, हेम (स्वर्ण) के अङ्ग अर्थात् स्वर्णमाक्षिक की भस्म १ तोला, भूमिसार अर्थात् शुद्ध शिलाजीत १ तोला, सलिलरिपु अर्थात् कुम्भिकशाक विशेष कर उसके दल ( पत्तों ) का चूर्ण १ तोला, अञ्जीर ( मेह ) का चूर्ण १ तोला, आंवले ( तिष्य ) का चूर्ण १ तोला, खदिर ( अरि ) का सत्त १ तोला, गोरेखा ( गोक्षुर या गाज़वे ) का चूर्ण १ तोला, अरिमेद ( विट्खदिर ) का चूर्ण १ तोला, क्षितिरुह ( लता पत्र ) के सहित श्वेतगुञ्जा की जड़ और शुद्ध बीज का चूर्ण १ तोला, कपित्थ ( कैथ ) के सूखे गूदे का चूर्ण १ तोला, असृक् अर्थात् नागकेशर का चूर्ण १ तोला, क्षितिफल ( जामून ) के वृक्ष की छाल का चूर्ण १ तोला, रोहिणी ( कटुका या मजीठ ) का चूर्ण १ तोला, अक्ष ( बहेड़े ) का चूर्ण १ तोला, नागदमनी का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में डालकर अच्छी प्रकार महीन चूर्ण कर के जल के साथ घोटकर एक २ तोले के बराबर लड्डू बनाकर काचपात्र में रख देवें। इस औषधि का एक लड्डू खाकर ऊपर से मट्ठे का अनुपान करना चाहिए। इस तरह तीन दिन तक सेवन करने से सर्व प्रकार के मूत्र के प्रमेह आदि विकार नष्ट हो जाते हैं। एक सप्ताह तक सेवन करने से चित्तकी भ्रान्ति आदि रोग ( उन्माद आदि मानसिक व्याधियां ) नष्ट हो जाते हैं। एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक सेवन करने से अत्यन्त भयङ्कर तृषा रोग ( जल पीने पर भी बार २ जल पीने की इच्छा होना ) दूर हो जाता है तथा इस रस को एक मास तक सेवन करने से शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों की अच्छी प्रकार उचित वृद्धि तथा रस रक्तादि धातुओं की और बल की उत्पत्ति होती है। इस कासीस बद्ध रस को मुनियों ने प्रमेह रोग के नाश करने के लिये बताया है ॥ ५६-५७ ॥

अथ भीमपराक्रमरसः—

तुल्याभ्यां रसगन्धाभ्यां कृत्वा कज्जलिकां ऽथहम् ।
द्रावयित्वाऽऽयसे पात्रे मृदुना बदराग्निना ॥ ५८ ॥
निरुत्थमष्टमांशेन सीसभस्म विनिक्षिपेत् ।
सम्मिश्रं कदलीपत्रे निक्षिप्य तदनन्तरम् ॥ ५९ ॥
आकृष्य परिपिष्ट्वाथ सीसभस्मप्रमाणतः ।
कान्ताभ्रसत्त्वयोर्भस्म राजावर्तकभस्म च ॥ ६० ॥
परिशुद्धं च गोमूत्रे शिलाजतु निधाय च ।
खल्ले निक्षिप्य तत्सर्वं यत्नेन परिमर्दयेत् ॥ ६१ ॥
तुल्यगुञ्जाकुलीबीजचूर्णकल्कोत्थवारिणा ।
कतकङ्घ्रिकषायेण निम्बपत्ररसेन च ॥ ६२ ॥
ततः संशोष्य संचूर्ण्य क्षिप्त्वा लोहस्य भाजने ।
त्रिफलानां कषायेण सप्तधा परिभावयेत् ॥ ६३ ॥
आकुलीबीजबबूर-निर्यासौ भृष्टचूर्णितौ ।
समौ रससमौ कृत्वा रसेस सह मर्दयेत् ॥ ६४ ॥
इति सिद्धरसः सोऽयं भवेद्भीमपराक्रमः ।
नामतः सर्वमेहघ्नो दृष्टप्रत्ययकारकः ॥ ६५ ॥
वल्लद्वयमितो ग्राह्या जलैः पर्युषितैः सह ।
पथ्यं मेहोचितं देयं वर्ज्यं सर्वं विवर्जयेत् ॥ ६६ ॥

शुद्ध पारद १ पल तथा शुद्ध गन्धक १ पल लेकर दोनों को पत्थर की खरल में तीन दिन तक घोटकर अच्छी प्रकार से कज्जली करके उस को घृत से पूति हुई लोहे की कड़ाही में डालकर उसे चूल्हे पर चढाकर बेर की लकड़ियों की मन्द २ आँच देनी चाहिए। कज्जली को लोहे की कलच्छी से धीरे २ चलाते रहना चाहिए। इस तरह जब कज्जली अच्छी प्रकार पिघल जाय तब इसमें निरुत्थ की हुई सीसे की भस्म कज्जली की अपेक्षा अष्टमांश ( १ तोला ) डालकर कलच्छी चलाता रहे, जब यह भस्म भी पिघल कर पिघली हुई कज्जली में मिल जाय तब उसको गोबर के चोकोर चबूतरे पर बिच्छे हुए कोमल केले के पत्ते पर डालकर तुरन्त ऊपर से दूसरा कोमल केले का पत्ता ढककर गीले गोबर के

पिण्ड से दोनों पत्तों के बीच में स्थित द्रुत कज्जली को तुरन्त दबा देनी चाहिए । इस प्रकार दबाने से पर्पटी बनजाती है । फिर स्वाङ्गशीतल पर्पटी को लेकर खरल में महीन पीस कर उस में सीसभस्म के बराबर कान्तलौह की भस्म ( १ तोला ), उतनी ही अभ्रकभस्म का सत्त्व ( १ तोला ), राजावर्त की भस्म (१ तोला) तथा गोमूत्र में शुद्ध की हुई शिलाजीत १ तोला डालकर सब को अच्छी प्रकार घोट लेवें । फिर उस के समान रूप से लिये हुए शुद्ध गुञ्जाबीज के चूर्ण और गन्धनाकुली के चूर्ण को जल से पीस कर फिर उसको पानी में घोलकर उस पानी से एकवार भावित करके फिर एकवार निर्मली के फल के कषाय से भावना देवें, फिर एकवार नीम की कोमल २ पत्तियों के रस की भावना देकर अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के चूर्ण कर लेना चाहिए । फिर इस चूर्ण को लोहे की खरल में डालकर त्रिफला के क्वाथ से सात वार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर उसमें १॥ पल गन्धनाकुली के बीजों का चूर्ण तथा उतना ही अग्नि में भूने हुए बब्बूल के गूंद ( निर्यास ) का महीन चूर्ण मिलाकर सब को अच्छी प्रकार महीन पीसकर काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को भीमपराक्रम रस कहते हैं । यह रस सर्व प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है । इस रस को दो वल्ल ( ६ रत्ती ) भर लेकर पर्य्युषित ( बासी ) तथा स्वच्छ और शुद्ध जल के साथ सेवन करना चाहिए । इस रस के सेवन करते समय प्रमेह के उचित पथ्य आहार विहार का सेवन करना चाहिए । प्रमेह का पथ्यापथ्य रोग की समाप्ति में दिया गया है । इस रस के सेवन करते समय अपथ्य का अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए ॥ ५८-६६ ॥

अथ सञ्जीवनरसः—

**पलमात्रं रसं शुद्धं वरनागसमन्वितम् ।**
**निक्षिप्य पातनायन्त्रे त्रिंशद्वाराणि पातयेत् ॥ ६७ ॥**
**समाहरेद्रसं सम्यक्पातनायन्त्रके मृतम् ।**
**मृते रसे क्षिपेत्तुल्यं भूपालावर्त्तभस्मकम् ॥ ६८ ॥**
**निरुत्थं त्रपुभस्मापि निक्षिपेदष्टमांशतः ।**
**ततो निम्बदलद्रावैस्त्रिंशद्वारं हि भावयेत् ॥**
**ततः संशोष्य सञ्चूर्ण्य क्षिपेद्धरकरण्डके ॥ ६९ ॥**

**सञ्जीवनोऽयं खलु वल्लमानो निशाकुलीचूर्णयुतः सतक्रः ।**
**निहन्ति सर्वानपि मेहरोगान्नृणां नितान्तं कुरुते क्षुधां च ॥ ७० ॥**

शुद्ध पारद १ पल तथा (१)वरनाग १ पल लेकर प्रथम नाग को कड़ाही में पिघला कर उसे तुरन्त ही पत्थर की खरल में रखे हुए पारद में मिलाकर दोनों को अच्छी प्रकार घोटकर ऊर्द्ध्वपातनयन्त्र के द्वारा पारद का ऊर्द्ध्वपातन करना चाहिए। इस प्रकार तीसवार बरनाग मिला २ कर ऊर्द्ध्वपातन करने से पारद की भस्म हो जाती है। फिर इस पारे की भस्म को निकाल कर खरल में डाल कर उसमें उसके बराबर ( १ पल ) ही राजावर्त की भस्म तथा निरुत्थ त्रपुभस्म ( वङ्गभस्म ) पारदभस्म की अपेक्षा अष्टमांश ( आधातोला ) डाल कर सब को अच्छी प्रकार घोटकर नीम के कोमल पत्तों के स्वरस से ३० वार भावित कर के अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के चूर्ण कर के करण्डक अर्थात् काच की शीशी में भरकर रख देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को सञ्जीवन रस कहते हैं। इस रस को १ वल्लभर ( ३ रत्ती ) लेकर हरिद्रा के चूर्ण ( ६ माशे ) और गन्धनाकुली के चूर्ण ( ४ माशे ) के साथ मिलाकर गाय के मट्ठे के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह रस मनुष्यों के सर्व प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है तथा क्षुधा ( भूख ) को भी बढाता है ॥ ६७–७० ॥

अथ मेहमर्दनरसः—

**शुद्धसीसोद्भवं भस्म निर्व्यूढं व्योम्नि सप्तधा ।**
**ततो विचूर्ण्य तन्मध्ये कान्तभस्म समं क्षिपेत् ॥ ७१ ॥**
**गोमूत्रकशिलाधातुद्रवेण परिमर्दयेत् ।**
**शोषयित्वा विचूर्ण्याथ क्षिपेन्नागकरण्डके ॥ ७२ ॥**
**मेहमर्दननामाऽयं दिष्टो भालुकिना खलु ।**
**गुञ्जाद्वयमितो देयो निम्बामलकसंयुतः ॥ ७३ ॥**

---

( १ ) वरनागलक्षण—

तीक्ष्णनीलाञ्जनोपेतं ध्मातं हि बहुशोदृढम् ।
मृदु कृष्णं द्रुतद्रावं वरनागं तदुच्यते ॥ इति ।

निहन्ति सकलान्मेहान्सर्वोपद्रवसंयुतान् ।
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैः सर्वरोगनिबर्हणः ॥
रोगानुरूपं दात्तव्यं पथ्यमत्र यथोचितम् ॥ ७४ ॥

शुद्ध किये हुए सीसे की भस्म १ पल लेकर उसको १ पल अभ्रक भस्म ( व्योम्नि ) में मिलाकर जल के साथ अच्छी प्रकार घोंटकर गोला बना के उस को सम्पुट में बन्दकरके पुट दे देवें । इस प्रकार सात पुट देकर फिर उसे खरल में डालकर चूर्ण करके उसमें कान्तलौह की भस्म १ पल मिलाकर अच्छी प्रकार घोटकर गोमूत्र के साथ एक दिन खरल करना चाहिए । फिर शिलाजीत के पानी से ( शिलाजीत को पानी में घोलकर उससे ) एक दिन घोटकर सुखा के चूर्ण करके नाग ( हस्ती ) के दांत से बने हुए पात्र ( भोंगली ) में अथवा काचकी शीशी में भर कर रख देवें । इस रस को मेहमर्दन रस कहते हैं । भालुकि नामक आचार्य ने इस रस को बताया है । यह रस दो रत्तीभर लेकर निम्ब ( नीम ) के पत्तों के चूर्ण ( ३ माशे ) और आंवले के चूर्ण ( ३ माशे ) के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सम्पूर्ण उपद्रवों के सहित सर्व प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है । इस रस को भिन्न २ व्याधियों को नष्ट करने वाले द्रव्यों के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन करने से सर्व प्रकार की व्याधियां नष्ट हो जाती है । इस रस के सेवन करते समय जैसा रोग हो उसके अनुसार विचार कर पथ्य का सेवन कराना चाहिए । गोमूत्र की अलग भावना न देकर गोमूत्रगन्धवाली शीलाजीत के पानी की भावना देनी चाहिए, ऐसा भी व्यवहार है ॥ ७१–७४ ॥

अथ रामबाणरसः—

त्रपुणा निहतं तारं स्वर्णं नागहतं तथा ।
मृतसूतं तयोस्तुल्यं मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ७५ ॥
आकुलीमूलजैः क्वाथैः शोषयित्वा मुहुर्मुहुः ।
ताप्यवैक्रान्तराड्वर्त्तभस्म सर्वसमं क्षिपेत् ॥ ७६ ॥
विमर्द्य बलिना सर्वं षोढा तुषपुटैः पचेत् ।
माकुली-बीजबर्बूर-क्वथितैर्भावयेत्त्रिधा ॥ ७७ ॥
तं रसं परिचूर्ण्यार्थ स्थापयेत्कूपिकोदरे ।
गुडूचीसत्त्वसंयुक्तो वल्लतुल्यो रसस्त्वयम् ॥ ७८ ॥

**निहन्ति सकलं मेहं मोहं ध्यात इवेश्वरः ।**
**बाणवद्रामचन्द्रस्य सज्जनस्येव भाषितम् ।**
**न याति जातु मेहित्वं रामबाणो रसोत्तमः ॥ ७६ ॥**

त्रपु अर्थात् वङ्ग के साथ की हुई चांदी की भस्म १ तोला, नाग ( सीसे ) के साथ की हुई स्वर्ण की भस्म १ तोला तथा दोनों के बराबर ( २ तोला ) पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर लेकर सबको खरल में डालकर अच्छी प्रकार घोटकर गन्धनाकुली की जड़ के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ तीन दिनतक घोटकर रख देवें । फिर स्वर्णमाक्षिकभस्म, वैक्रान्त ( दग्ध हीरक ) की भस्म तथा राजावर्त की भस्म ये तीनों मिलाकर उक्त घोंटे हुए रस के बराबर ( प्रत्येक एक २ तोला ) लेकर उस में मिलाकर घोट लेवें । फिर सबका चौथाई शुद्ध गन्धक मिलाकर अच्छी प्रकार से जल के साथ घोट के गोला बनाकर सम्पुट करके पृथ्वी के अन्दर गजपुट के समान गड्ढा खोदकर उसके आधे भाग को तुषों से भरकर उनपर सम्पुट रखकर फिर ऊपर से तुष डालकर सम्पूर्ण गड्ढे को भर देवें । फिर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए । स्वाङ्ग शीतल सम्पुट से पक्व औषधि को निकाल कर चौथाई शुद्धगन्धक डालकर जलके साथ अच्छी प्रकार घोटकर गोला बना के पूर्ववत् तुषपुट दे देवें । इस प्रकार ६ पुट देने के पश्चात् सिद्ध हुए रस को खरल में घोंटकर गन्धनाकुली के बीजों के क्वाथ के साथ तीन भावना देकर फिर बबूल की छाल के क्वाथ से अथवा उसके पञ्चाङ्ग के क्वाथ से या स्वरस से तीन वार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के चूर्ण कर शीशी में भरकर रख लेना चाहिए । इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस को १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर लेकर २ माशे गिलोय के सत्त्व और मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए । जिस प्रकार आराधना करने से ईश्वर मोह को नष्ट कर देता है उसी तरह सेवन करने से यह रस सर्व प्रकार के प्रमेह को नष्ट कर देता है । जिस प्रकार रामचन्द्रजी का बाण और सज्जनों के बचन कभी भी निष्फल नहीं होते हैं उसी प्रकार सब रसों में श्रेष्ठ यह रामबाण रस सेवन करने से कभी भी निष्फल नहीं होता है, अर्थात् अवश्य ही प्रमेह रोग को नष्ट कर देता है । अथवा इस रसके सेवन करने से पुरुष कभी भी प्रमेह रोग से पीड़ित

(आक्रान्त) नहीं होता है। यह रस रामचन्द्रजी के बाण और सज्जनों के बचन की तरह सफल होता है ॥ ७५-७९ ॥

अथ राजमृगाङ्करसः—

सुवर्णं रजतं कान्तं ताम्रं त्रपु ससीसकम्।
भस्मीकृत्वा च तत्सर्वं क्रमवृद्ध्या कृतांशकम् ॥ ८० ॥
व्योमसत्त्वभवं भस्म सर्वैस्तुल्यं प्रकल्पयेत्।
कज्जलीं सूतराजस्य सर्वैरेतैः समांशिकाम् ॥ ८१ ॥
प्रद्राव्य लोहभस्माथ पूर्वभस्म विनिक्षिपेत्।
काष्ठेनालोड्य तत्सर्वं सद्रवं हि समाहरेत् ॥ ८२ ॥
ततो विचूर्ण्य तत्सर्वं सप्तवारं विभावयेत्।
आकुलीबीजसम्भूतक्वाथलेहेन यत्नतः ॥ ८३ ॥
रुद्धं तन्मल्लमूषायां सर्वं संस्वेदयेच्छनैः।
इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं चूर्णितः पटगालितः ॥ ८४ ॥
कान्तपात्रस्थितै रात्रौ जलैस्त्रिफलसंयुतैः।
वल्लद्वयमितः प्रातर्दातव्यो मेहरोगिणाम् ॥ ८५ ॥
मृगचारिमुनीन्द्रेण मेहव्यूहविनाशनः।
निर्दिष्टोऽयं रसो राज-मृगाङ्क इति कीर्तितः ॥ ८६ ॥
दीपनः पाचनो वृष्यो ग्रहणीपाण्डुनाशनः।
तापघ्नो रुचिकृत्सर्वरोगघ्नो योगसंवृतः ॥ ८७ ॥

सुवर्णभस्म १ तोला, चाँदी की भस्म २ तोला, कान्तलौह की भस्म ३ तोला, ताम्रभस्म ४ तोला, त्रपु ( वङ्ग ) की भस्म ५ तोला, सीस ( नाग ) की भस्म ६ तोला, अभ्रक के सत्त्व की भस्म सब के बराबर अर्थात् २१ तोला तथा समान भाग शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक ( अर्थात् शुद्ध पारद २१ तोला और शुद्ध गन्धक २१ तोला) की कज्जली सुवर्ण से ले कर व्योमसत्त्वभस्म तक के बराबर लेवें। सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली को घी से चुपड़ी ( लिप्त ) हुई लोहे की कड़ाही में डालकर उसे चूल्हे पर चढाकर मन्द२ अग्नि की आंच देवें तथा शुद्ध लकड़ी के डण्डे अथवा लोहे की कलच्छी ही से चलाता रहे, जब कज्जली पिघल जाय तब उसमें उपर्युक्त भस्मों में से प्रथम कान्तलौह की भस्म डालकर

लकड़ी से चलाता रहे, जब वह पिघल ( द्रुत हो ) कर पिघली हुई कज्जली में मिल जाय तब शेष भस्मों में से एक२ को डालता जाय और लकड़ी से चलाता रहे, इस प्रकार समस्त भस्मों को डालकर पिघला के परस्पर मिला दें। जब सब पिघल कर मिल जावे तब उनको गोबर पर रखे हुए केले के पत्ते पर ढाल कर द्वितीय कोमल कदली पत्र से ढककर गोबर के पिण्ड से दबाकर पर्पटी बना लेवें। फिर स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल में चूर्ण करके फिर उसको गन्धनाकुली के बीजों के अवलेह के समान गाढे क्वाथ से सात वार भावित करके घोटकर गोला बनाकर सुखा के मल्लमूषा में बन्द करके उस पर कपड़ मिट्टी करके बालुकायन्त्र में एक प्रहर तक स्वेदन करके अर्थात् पकाकर स्वाङ्ग शीतल होने पर चूल्हे से उतार कर सिद्ध हुए रस को निकाल के खरल में महीन चूर्ण करके वस्त्र से छान कर काच की शीशी में भर कर रख लेवें। इस विधि से यह रस सिद्ध हो जाता है। इस रस को दो वल्ल ( ६ रत्ती ) भर की मात्रा के प्रमाण से लेकर कान्तलौह के पात्र में रात्रि को जल में भींगी हुई त्रिफला के पानी के साथ प्रतिदिन प्रातः काल प्रमेह में पीड़ित रोगियों को सेवन करने के लिये देना चाहिए। सर्व प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने वाले इस रस को मृगचारी नामक मुनि ने बताया है तथा इस रस को राजमृगाङ्क रस कहते हैं। यह रस पाचक शक्ति को उद्दीप्त करता है, खाये हुए गरिष्ट भोजन को भी शीघ्र पचा देता है, वृष्य गुण को उत्पन्न करता है तथा ग्रहणी, पाण्डुरोग और शरीर के सन्ताप को नष्ट करता है, रुचि को बढ़ाता है। यह रस प्रायः भिन्न २ योगों के साथ सेवन करने से समस्त रोगों को नष्ट करता है ॥ ८०–८७ ॥

**विमर्शः—प्रायः दो सकोरों के बीच में औषधि का गोला रख कर उन को परस्पर बन्द कर के कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्धन कर के उन पर लेप कर देना चाहिए यही मल्लमूषा है, यथोक्तं—**

निर्दिष्टा मल्लमूषा या मल्लद्वितयसम्पुटात्।
पर्पट्यादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्तिता ॥ इति र० र० स०।

**मूल में सूतराज की कज्जली ग्रहण करने को लिखा है, परन्तु उस के लिये गन्धक का निर्देश नहीं है तथापि समान पारद गन्धक को कज्जली बना कर यथा योग्य प्रमाण से ग्रहण करना चाहिए।**

**यद्यपि उपर्युक्त भस्मों के द्रुत होजाने पर उन्हें उसी रूप में शीतल कर के चूर्ण**

करने को लिखा है तथापि पपेटी बनाही के चूर्ण करना चाहिए, यही प्रणाली है।

त्रिफलाजलनिर्माणविधि—

रात्रि के समय कान्त लौह की कटोरी में अथवा ( अभावे ) मिट्टी ही के पुरवे में एक हरड़, दो बहेड़े तथा चार आंवले इन्हें थोड़े २ गुठली समेत कूट कर डाल दें तथा उन को आध पाव शुद्ध जल में डाल कर भींगो दें, फिर उस पुरवे को एक कटोरी या अन्य ढक्कन से ढक कर शुद्ध हवादार खुले ( जमीन से चार हाथ ऊंचे ) स्थान में रख दें। प्रातः कल उन त्रिफला के टुकड़ों को शुद्ध हाथों से मीच कर फेंक दें तथा त्रिफला के जल को शुद्ध कपड़े से छान कर प्रमेही को उपर्युक्त राज मृगाङ्क रस दो वल्ल ( यह मात्रा अधिक है, इस लिये १ वल्ल अर्थात् ३ रत्ती ही पर्याप्त है, धीरे २ मात्रा बढा कर दो वल्ल भी दे सकते हैं सहसा नहीं ) भर लेकर मधु के साथ फेंट कर चटा दें तथा इस त्रिफला के जल को पीला दें। वास्तविक में इस विधि से यह रस प्रमेह में अद्भुत लाभ करता है। प्रायः इस विधि से इस रस को ४० दिन तक सेवन करना चाहिए।

अथ मेहहररसः—

राजावर्तस्य रत्नस्य भस्म गन्धकसाधितम् ।
हतं च भस्मना तेन घनसत्त्वं च कान्तकम् ॥ ८८ ॥
निहतं तेन सूतं च तत्तन्मारणकैः सह ।
सर्वतुल्येन सूतेन तावता गन्धकेन च ॥ ८९ ॥
कज्जल्या कृतया सार्धं पूर्वभस्म नियोजयेत् ।
त्रिदिनं मर्दयित्वा तु मूषायां विनिरुध्य च ॥ ९० ॥
पश्चाढकमितैः शालितुषैश्च पुटमाचरेत् ।
स्वाङ्गशीतं समाहृत्य भावयेत्तदनन्तरम् ॥ ९१ ॥
आकुलीमूलबर्बूरबीजगुञ्जाजटोद्भवैः ।
कषायैरष्टवाराणि पटचूर्णं विधाय तत् ॥ ९२ ॥
विनिक्षिपेत्करण्डान्ते यत्नेन स्थापयेत्ततः ।
तत्तन्मेहहरैर्द्रव्यैः संयुक्तो रसराडयम् ॥ ९३ ॥
निहन्ति सकलान् रोगान्दुरात्मोपकृतीरिव ।
अयं हि सर्वरोगघ्नो भेषजेषु प्रशस्यते ॥ ९४ ॥
धार्मिकेष्विव सर्वेषु दयावानिव मानवः ।
रसोऽयं नन्दिना दिष्टः प्रकृष्टो मेहहारिषु ॥ ९५ ॥

गन्धक के द्वारा की हुई राजावर्त नामक रत्न की भस्म १ पल तथा उसी राजावर्त की भस्म के द्वारा की हुई अभ्रकसत्त्व की भस्म १ पल तथा उसी प्रकार मारे हुए राजावर्त ही के द्वारा की हुई कान्तलौह की भस्म १ पल तथा राजावर्त के द्वारा की हुई अभ्रकसत्त्व की भस्म, कान्तलौह की भस्म और अन्यमारक गण के द्रव्यों के रस, क्वाथ या कल्क के साथ घोटकर की हुई पारद की भस्म १ पल तथा इन समस्त भस्मों' ( राजावर्तभस्म, अभ्रकसत्त्वभस्म, कान्तभस्म, पारदभस्म ) के बराबर अर्थात् ४ पल ( १६ तोले ) शुद्ध पारद और उतनाही ( ४ पल ) शुद्ध-गन्धक लेकर दोनों' की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें उपर्युक्त चारों भस्में' मिलाकर सबको अच्छी प्रकार तीन दिन तक घोटकर दृढ मूषा में' बन्द कर के उसपर कपड़मिट्टी करके सुखा लेवें। फिर पृथ्वी में एक गड्ढा खोदकर उसके आधे भाग में' ढाई आढक शालि धान की भूसी ( तुष ) भर कर उस पर मूषा को रख कर फिर उसपर ढाई आढक शालिधान की भूसी भर कर अग्नि जला देनी चाहिए। सब भूसी ( तुषों' ) के जल जाने पर स्वाङ्गशीतल हुई मूषा को निकाल कर युक्ति से उसका भेदन करके उसमें' से सिद्ध हुई औषध को निकाल कर खरल में' महीन पीस के गन्धनाकुली की जड़ के क्वाथ से आठवार भावित करके घोट कर सुखा लेवें, फिर बबूल के बीजों के क्वाथ से आठ भावनाएं देकर घोट के सुखा लेवें, फिर गुञ्जा ( घुंघुची–चरमू ) की लता की जड़ अथवा पद्माङ्ग के क्वाथ से आठ भावनाएं देकर अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के वस्त्र से छानकर उत्तम करण्ड अर्थात् शुद्ध काच की शीशी में' भर कर रख देवें। यह सब रसों का राजा अर्थात् श्रेष्ठ रस प्रतिदिन प्रमेह हर द्रव्यों के चूर्ण, स्वरस अथवा क्वाथादियों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेहों' को नष्ट कर देता है, जिस तरह दुरात्मा दूसरों' से किये हुए उपकारों' को भूल कर नष्ट कर देता है। सर्वप्रकार के रोगों को नष्ट करने वाला यह रस धर्मात्मा पुरुषों में दयालु पुरुष की तरह सब रस औषधियों में अत्यन्त श्रेष्ठ है। प्रमेहों को नष्ट करने वाले सब रसों में श्रेष्ठ ऐसे इस मेहहर रस को नन्दी नाम के आचार्य ने बताया है ॥८८–९५॥

अथोदयभास्कररसः—

पारदं भागमेकं तु गन्धकं टङ्कणं तथा।
अभ्रकं लोहमेवं तु भागमेकं पृथक् पृथक् ॥ ९६ ॥

शिलाधातुस्तथा भागमम्लवेतसभागकम्।
कट्फलं भागमेकं तु वङ्गेन सह मेलयेत् ॥ ९७ ॥
रसञ्च पञ्चमूत्रेण दिनानि त्रीणि मर्दयेत्।
सर्वमेकत्र संयोज्य जम्बीररससंयुतम् ॥ ९८ ॥
मर्दयेद्दिनचत्वारि खल्लके बुद्धिमान्भिषक्।
मूषिकालेपनं कुर्यान्मांसीगोक्षुरसंयुतम् ॥ ९९ ॥
मर्दयेच्च यथायोग्यं दिनानामेकविंशतिः।
पुटमध्ये परिस्थाप्य कुक्कुटीमात्रके दहेत् ॥ १०० ॥
शीतलं तं समादाय भावयेच्च यथाक्रमम्।
कुमारीचित्रकव्योषजातीफलहियावलीम् ॥ १०१ ॥
विषमुष्टिं नखं चाम्लवेतसं परिमर्दयेत्।
शोषं कृत्वा यथायोग्यं दिनमेकं पृथक् पृथक् ॥ १०२ ॥
तं सिद्धं वल्लमात्रं तु दापयेद् बुद्धिमान् भिषक्।
प्रमेहे मधुना युक्तं प्रयोज्यं भिषजां वरैः ॥ १०३ ॥
शर्करार्द्रकसंयुक्तं रक्तपित्ते प्रयोजयेत्।
त्रिंशद्दिनानि दात्तव्यः शूले च त्रिफलाजलैः ॥ १०४ ॥
मधुना चातिसारस्य श्वासकासस्य शर्करा।
क्षीरेण चाग्निमान्द्यस्य तैलकाञ्जिकसंयुतः ॥
सिद्धनाथेन सम्प्रोक्तो नाम्ना हृदयभास्करः ॥ १०५ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, अभ्रक-भस्म १ तोला, लौहभस्म १ तोला तथा शुद्ध शिलाजीत १ तोला, अमल वेंतका चूर्ण १ तोला, कायफल का चूर्ण १ तोला, वङ्गभस्म १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद को पञ्चमूत्र के साथ तीन दिन तक घोट कर शुद्ध पानी से धोकर कपड़े से छान कर पत्थर की खरल में गन्धक के साथ घोंट के कज्जली बना लेवें। फिर उस कज्जली में शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी प्रकार महीन पीसकर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ चार दिन तक घोटकर सुखालें, फिर उसको जटामांसी और गोखरू के क्वाथ के साथ २१ दिन तक घोटकर उसको मूषा के भीतर लीपकर सुखा के मूषा का मुख बन्द करके उसके सर्वाङ्ग पर कपडमिट्टी करके

सुखा कर उस मूषा को दो सकोरों में बन्द करके अथवा ऐसे ही उस मूषाको कुक्कुट पुट में रख कर फूंक देवें। फिर स्वाङ्ग शीतल होने पर मूषा से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस कर घृतकुमारी, चित्रक, त्रिकटु, जायफल, हियावली अर्थात् हिमावली, विषमुष्टि ( शुद्ध कुचला ), नख और अम्लवेत इन औषधियों के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ पृथक् २ क्रम से एक २ भावना देकर एक २ दिन तक घोटकर सुखा के चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर लेकर मधु के साथ बुद्धिमान् वैद्य प्रमेह से पीड़ित रोगी को प्रतिदिन सेवन करने के लिये देवें। इस रस को चीनी और अद्रक ( आदी ) के साथ उचित मात्रा से रक्तपित्त रोग में प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को तीस दिनतक त्रिफला के जल अथवा क्वाथ के साथ शूल रोग में प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को अतीसार रोग में शहद् के साथ तथा श्वास और कासरोग में मिश्री और दुग्ध के साथ प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को तैल और काञ्जी के साथ अग्निमांद्य रोग में सेवन कराना चाहिए। इस रस को श्री सिद्धनाथ नामक आचार्य ने बताया है तथा इसको उदयभास्कर रस कहते हैं ॥ ९६-१०५ ॥

अथ हिमांशुरसः—

रसस्य कर्षमादाय खल्ले निक्षिप्य बुद्धिमान् ।
रक्तागस्त्यप्रसूनस्य स्वरसेन विमर्दयेत् ॥ १०६ ॥
सप्तवारं तथा साधुश्वेतदूर्वारसेन च ।
निष्कद्वयं टङ्कणं च कर्षं खादिरसारतः ॥ १०७ ॥
कर्पूरं रसतुल्यं च सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
यावच्चिक्कणतां याति युक्त्या चन्दनवारिणा ॥ १०८ ॥
हरेणुमात्रान्वटकाञ्छायायां परिशोषितान् ।
प्रातः प्रातश्च सेवेत मध्याह्ने च विशेषतः ॥ १०९ ॥
निशायां च विशेषेण सेवनीयः प्रयत्नतः ।
एतद्धि मेहनुद् द्रव्यं मुखशोषहरं परम् ॥ ११० ॥
सोमरोगहरं सर्वपिटिकानाशनं मतम् ।
हिमांशुनामतः ख्यातं तृष्णादाहनिवारकम् ॥ १११ ॥

शुद्ध पारद १ कर्ष भर लेकर पत्थर की खरल में डालकर लाल अगस्त्य (मुनितरु) के पुष्पों के स्वरस के साथ सात दिन तक घोटकर श्वेत दूर्वा (सफेद दूब) के रस के साथ भी सात दिन तक घोटकर उसमें दो निष्क (८ माशा) शुद्ध सुहागा, खैर का सार (कत्था) १ कर्ष तथा शुद्ध कपूर पारद के बराबर (१ कर्ष) डालकर सब को अच्छी प्रकार से घोटकर लालचन्दन के चूर्ण के जल अथवा क्वाथ अथवा चन्दन को ओरसिए (चकोर पत्थर) पर जल के साथ घिस कर उससे उतरे हुए कल्क या घासे अथवा पङ्क को जल में घोलकर उस जल के साथ तब तक घोटना चाहिए जब तक वह पारदादिक का चूर्ण चिकना और महीन न हो जाय। इस प्रकार से घोटने के पश्चात् हरेणु अर्थात् मटर के बराबर गोलियां बनाकर उन्हें छाया में सुखा के काच की शीशी में भरकर उसके मुख पर डाट (कार्ग) लगाकर बन्द करके रख देवें। इस रस की एक २ गोली प्रातःकाल, सायङ्काल तथा विशेष करके मध्याह्न और रात्रि के समय मुख में रखकर चूसनी चाहिए। यह रस सर्व प्रकार के प्रमेह, मुख के शोष (अर्थात् तृषारोग) को तथा स्त्रियों के सोमरोग और सर्व प्रकार की प्रमेह पिडिकाओं को नष्ट करता है। यह रस विशेष करके तृष्णा (बार २ प्यास लगना) और शरीर की जलन को नष्ट करता है। यह रस हिमांशु रस के नाम से प्रसिद्ध है॥ १०६-१११॥

अथ वसन्तकुसुमाकररसः—

द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम्।
लोहस्य च त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मनः॥ ११२॥
वङ्गभस्म त्रिभागं स्यात्सर्वमेकत्र कारयेत्।
प्रवालं मौक्तिकं चैव रससाम्येन योजयेत्॥ ११३॥
भावना गव्यदुग्धेन इक्षुवासारसेन च।
हरिद्रावारिजेनैव मोचाकन्दरसेन च॥ ११४॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमेन च।
उशीरद्वयनीरेण सप्त सप्त च संख्यया॥ ११५॥
पश्चान्मृगमदा भाव्यं सुसिद्धो रसराड्भवेत्।
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः॥ ११६॥

गुञ्जामात्रं ददीतास्य मधुना सर्वमेहजित् ।
क्षयकासतृषाश्वासरक्तपित्तविषापहित् ॥
सिताचन्दनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगनुत् ॥ ११७ ॥

स्वर्ण की भस्म २ तोला, अभ्रक की भस्म २ तोला, लौहभस्म ३ तोला, पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर ४ तोला, वङ्ग की भस्म ३ तोला, प्रवाल (मूंगे) की भस्म ४ तोला तथा मोती की भस्म ४ तोला लेकर सब को पत्थर की श्रेष्ठ खरल में डाल कर अच्छी प्रकार घोंटकर गाय के दुग्ध की सात भावना, इक्षु (ऊख-सांठा) के रस की सात भावना, अङ्कुसे के रस की सात भावना, हरिद्रा के गीले कन्द के रस की सात भावना तथा वारिज अर्थात् नेत्रबाला के स्वरस या क्वाथ की सात भावना, मोचाकन्द अर्थात् केले की जड़ के रस की सात भावना, शतपत्र अर्थात् कमल के पुष्पों के रस की सात भावना, मालती के पुष्पों के स्वरस की सात भावना तथा दोनों प्रकार के उशीर ( छोटे तथा बड़े पत्र वाला ) के जड़ के स्वरस या क्वाथ की सात २ भावना देनी चाहिए। प्रत्येक रस की प्रत्येक भावना में रस को एक २ दिन तक घोंटना चाहिए, इस प्रकार घोटते २ जब वह रस सूख जाय तब दूसरी भावना दे कर रात्रिभर उसी तरह खरल को ढक कर रखदें तथा दूसरे दिन सारे दिन घोटकर तीसरी भावना देनी चाहिए। इस विधि से उपर्युक्त द्रव्यों के स्वरसों के साथ भावना देने के पश्चात् मृगमद अर्थात् कस्तूरी के रस की एक भावना देकर अच्छी प्रकार घोटकर एक २ रत्ती भर की गोलियां बना के छाया में सुखा कर काच की शीशी में भर कर उस शीशी के मुख को डाट ( कागे या पेचदार ढक्कन ) से ठीक तरह से बन्द करके यत्न से रख देवें। इस विधि से सिद्ध हुए इस रस को वसन्त कुसुमाकर ( अर्थात् वसन्त पद जिसके पूर्व में हो और कुसुमाकर अन्त में हो अर्थात् वसन्त कुसुमाकर ) रस कहते हैं। इस रस को एक रत्ती भर लेकर मधु के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं। यह रस उचितानुपानों के साथ सेवन करने से क्षय, कास, तृषा, श्वास, रक्तपित्त और विष भक्षण से उत्पन्न हुए उपद्रवों को नष्ट करता है। यह रस शर्करा और चन्दन के चूर्ण के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से अम्लपित्त रोग को नष्ट कर देता है ॥ ११२-११७ ॥

अथ सर्वमेहान्तकरसः—

पारदभस्म शिलाजतु कृष्णा लोहमलत्रिफलाकुलिबीजम् ।
ताप्यनिशारजकोपलकान्तव्योषरजः खपुरश्च कपित्थात् ॥ ११८ ॥
सर्वमिदं परिचूर्ण्य समांशं भावितभृङ्गरसं दिवसादौ
विंशतिवारमिदं मधुलेहं विंशतिमेहहरं हरिदृष्टम् ॥ ११९ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १ तोला, कृष्णा अर्थात् छोटी पीपल का चूर्ण १ तोला, लोहे के मल ( मण्डूर ) की भस्म १तोला, त्रिफला का चूर्ण १ तोला, गन्धनाकुली के बीजों का चूर्ण १ तोला, ताप्य अर्थात् स्वर्ण माक्षिक की भस्म १ तोला, निशा अर्थात् हलदी का चूर्ण १ तोला, रजत ( चांदी ) की भस्म १ तोला, उपलकान्त अर्थात् सूर्यकान्तमणि अथवा कान्तपाषाण की भस्म १ तोला, व्योष ( त्रिकटु—सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण १ तोला ख अर्थात् अभ्रकभस्म १ तोला, पुट अर्थात् शुद्ध शिलाजीत १ तोला, कपित्थ ( कैथ ) के सूखे गूदे का चूर्ण १ तोला लेकर सबको खरल में डालकर अच्छी प्रकार घोट के भृङ्गराज के स्वरस की २० भावनाएं देकर अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के चूर्ण करके काच की शीशी में भरकर रख देवें । इस रस को १–२ रत्ती भर लेकर मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए । इस तरह यह रस सेवन करने से बीस प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है । इस रस का श्रीहरि नामक आचार्य ने अच्छी प्रकार से अनुभव करके बताया है ॥ ११८–११९ ॥

अथ मेहारिरसः—

सूतं बाहुमितं बलीं शशिमितं सम्मर्द्य तत्कज्जलीं
कृत्वा कृष्णहिरण्यतोयसहितां सम्मर्द्य घस्रं पुनः ।
कूप्यामभ्रककालिकां सुपिहितां मृत्स्नांशुकैःसप्तभिः
संवेष्टय त्रिदिनं विशोष्य लवणापूर्णे क्षिपेद्भाण्डके ॥ १२० ॥
दग्ध्वा यामचतुष्टये च शिशिरां भित्त्वा च तां कूपिकां
तं सूतं द्विलवं लवं च गगनं लोहं लवं मर्दयेत् ।
सिद्धो वल्लमितः सिता च मधुना वत्सादनीसत्त्वतो
नोचेःक्षौद्रकणायुतश्च तरसा सर्वप्रमेहाञ्जयेत् ॥ १२१ ॥
रोगाधीश्वरपाण्डुकामलहरिद्राभत्वपित्तोद्भवा-

न्सर्वांश्च प्रदरामयान्विजयते मेहारिनामा रसः ॥ १२२ ॥

शुद्ध पारद २ तोला ( बाहुमित ), शुद्ध गन्धक १ तोला ( शशिमित ) लेकर पत्थर की खरल में दोनों की कज्जली बनाकर उसको एक दिन तक कृष्ण हिरण्य ( काले धत्तूरे ) के तोय ( स्वरस ) के साथ खरल करके सुखाकर चूर्ण कर लेवें । फिर आतसी शीशी के ऊपर चिकनी मिट्टी के पङ्क ( कीचड़ ) से भीगे ( लिप्त ) हुए पुराने वस्त्र की पट्टिकाओं का सात वार लेप करके तीन दिन तक सुखा कर उस कपड़मिट्टी की हुई शीशी में उपर्युक्त सूखी कज्जली भरकर उसके मुख को काले अभ्रक के डाट के समान बनाये हुए खण्ड से ढककर उसके छिद्रों को गुड़ तथा चूने की जल के साथ पीसकर बनाई हुइ पिष्टी से बन्द करके सुखा लेवें । फिर उस कूपी ( आतशी शीशी ) को एक भाण्ड में अथवा नांद में थोड़ा नीमक भरकर उस पर रख कर शीशी के गले तक भाण्ड के शेष भाग को नीमक से भरकर उसे भट्टी पर चढ़ाकर चार प्रहर तक मन्द मध्य और तीव्र आंच क्रम से देकर पाक करना चाहिए । पश्चात् स्वाङ्गशीतल यन्त्र से कूपी को निकाल कर कपड़ मिट्टी हटा के युक्ति से भेदन कर कूपि के कण्ठ में लगे हुए रस को ग्रहण कर लेना चाहिए । इस प्रकार सिद्ध हुए इस रस के २ भाग (२तो०) लेकर खरल में डालकर महीन पीस के उसमें एक भाग ( १ तोला ) अभ्रक भस्म तथा एक भाग ( १ तोला ) लौहभस्म मिलाकर सब को अच्छी प्रकार घोटकर शीशी में भरकर रख देवें । इस रस को १ वल्ल ( तीन रत्ती ) भर लेकर मिश्री, शहद् और गुडूची के सत्त्व अथवा स्वरस के साथ मिलाकर अथवा शहद् और पिप्पली के चूर्ण के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है । यह मेहारि नामक रस यथाव्याध्यनुपान पूर्वक सेवन करने से रोगाधीश्वर अर्थात् राजयक्ष्मा, पाण्डु, कामला, हलीमक तथा पित्त की विकृति से उत्पन्न हुए रोग और स्त्रियों के प्रदरोग को नष्ट कर देता है ॥ १२०–१२२ ॥

विमर्शः—औषधि पाक करने के लिये आतसी शीशी पर कपड़ मिट्टी करने की विधि—प्रारम्भ में गोल तथा चौड़ी और अन्त में लम्बी नलिका से युक्त काच की कूपि ( आतसी शीशी ) लेकर उसकी नली को टेबुल के साथ बंधी हुई पतली लकड़ी के भीतर धंसा कर औंधी कर देवें । फिर एक मिट्टी की हण्डिका में चिकनी मिट्टी तथा पुराने वस्त्रों की चार या पांच अङ्गुल चौड़ी और आधे या एक हाथ लम्बी

पट्टिकाएं डाल कर उस में जल ( जितने से मिट्टी का घोल बन जाय ) भर के एक रात या दो रात तक गल जाने के पश्चात् टेबुल के साथ बन्धी हुई लकड़ी में औंधी धंसाई ( डाली या प्रविष्ट ) हुई आतसी शीशी पर उस मिट्टी के घोल से भींगा हुआ हाथ फेर कर घोल से लिप्त हुई पट्टिका को शीशी के फूले हुए (मोटे) पृष्ठ से प्रारम्भ कर नली के दोनों ओर अन्तिम भाग तक चिपका दें, फिर एक दूसरी पट्टिका लेकर पूर्व पट्टिका के विरुद्ध अर्थात् स्वस्तिकाकार से क्रास कराकर शीशी के पृष्ठ से प्रारम्भ कर नली के अन्तिम दोनों किनारों तक उसे भी चिपकादें । फिर छोटी २ पट्टिकाओं से जहां २ शीशी का भाग बच गया हो उस को ढक कर सब को एक समान कर के उस पर मिट्टी के घोल का एक हाथ फेर कर सूखने के लिये छोड़ दें । यह एक बार शीशी पर कपड़ मिट्टी हुई । इसी तरह सूखने के पश्चात् दूसरी बार कपड़ मिट्टी करनी चाहिए । इस प्रकार सात वार कपड़ मिट्टी कर के शीशी को सुखा कर उस में इस के फूले हुए भाग के चौथाई भाग तक ही औषध के चूर्ण को भर कर यदि बन्द कर के पाक करने का निर्देश हो तो यथाविधि मुख को बन्द कर के बालुकायन्त्र या लवणयन्त्र आदि में पाक करना चाहिए । इसी यन्त्र का आत्र संहिता में वर्णित कवर्चीयन्त्र के साथ थोड़ा २ सादृश्य मिलता है । यथा—

"नातिह्रस्वां काचकूपीं नचाति महतीं दृढाम् ।
वाससाकर्दमार्क्तेन परिवृत्य समन्ततः ॥ १ ॥
संलिप्य मृदुमृत्स्नाभिः शोषयेद्भानुरश्मिना ।
निधाय भेषजं तत्र मुखमाच्छादयेत्ततः ॥
कठिन्या दृढया वाऽपि पचेद् यन्त्रे विधानतः ।
कवर्चीयन्त्रमेतद्धि रसादिपचने मतम् ॥ ३ ॥

पक्व औषध निकालने के लिये कूपीभेद की विधि—

यथानिर्दिष्ट समय के अनुसार रस का पाक हो जाने के पश्चात् भट्टी पर ही स्वाङ्गशीतल हुए यन्त्र से कूपी को निकाल कर उस के ऊपर की कपड़ मिट्टी हटा कर यदि रस का उदूर्ध्वपतन होकर ( रस उड़ कर ) कूपी के कण्ठ या नलिका में स्थित हो तो नली के नीचे ( अर्थात् चौड़े उदर भाग और नली के सन्धि स्थान पर ) किरासीन तेल ( मिट्टी के तेल ) में एक सूत का डोरा ( कुछ मोटा तथा लम्बा होना चाहिए ) अथवा वस्त्र की पतली पट्टिका ही को भींगो कर उस को बांध दें । फिर उस पट्टी को सुलगा दें, जब वह आधी से ज्यादा जल गई हो तब उस पर शीतल जल डाल देना चाहिए । इस तरह से वह शीशी उचित स्थान पर ( जहां डोरा बांधा है वहीं पर ) विभक्त हो जाती है । फिर उस कूपी के कण्ठ में लगे हुए रस को ले लेवें । काच के टुकड़ों का ध्यान रखना चाहिए । यदि एक वार डोरे का

सुलगा कर जल डालने से शीशी का भेदन न हो तो दूसरी बार दूसरा तैल से भींगो कर डोरा बांध के यथाविधि भेदन करना चाहिए।

अथ मेहबद्धरसः—

भस्मसूतं मृतं कान्तं मुण्डभस्म शिलाजतु।
ताप्यं शुद्धं शिलाव्योषं त्रिफलाङ्कोलबीजकम् ॥ १२३ ॥
कपित्थरजनीचूर्णं समं सम्भाव्य भृङ्गिणा।
त्रिंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा ॥ १२४ ॥
निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेहबद्धो रसो महान्।
महानिम्बस्य बीजानि षण्निष्कं पेषितानि तु ॥ १२५ ॥
पलतण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च।
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरन्तनम् ॥ १२६ ॥

शुद्ध पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, कान्त लौहभस्म १ तोला, मुण्ड ( मण्डूर ) की भस्म १ तोला, शुद्धशिलाजीत १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, शुद्ध मनःशिला १ तोला, व्योष अर्थात् त्रिकटु का चूर्ण १ तोला, त्रिफला का चूर्ण १ तोला, अङ्कोल के बीजों का चूर्ण १ तोला, कपित्थ ( कैथ ) के सूखे गूदे का चूर्ण १ तोला, हरिद्रा का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में डालकर अच्छी प्रकार महीन पीस के भृङ्गराज के स्वरस की तीस भावनाएं देकर अच्छी प्रकार घोट के सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को मेहबद्ध रस कहते हैं। इस रसको एक निष्क ( ४ माशे ) भर लेकर शहद के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा बाद में महानिम्ब ( बकायन ) के शुद्ध किये हुए ६ निष्क भर बीजों के चूर्ण, चावलों का जल १ पल तथा २ निष्क भर गाय का घृत इन तीनों को मिला कर अनुपान करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह रस चिरकालीन प्रमेह को भी नष्ट कर देता है ॥ १२३-१२६ ॥

विमर्शः—प्रायः इस रस की मात्रा १ निष्क ( ८ रत्ती ) पर्याप्त है। अथवा २ रत्ती से प्रारम्भ कर के धीरे २ एक निष्क तक भी दे सकते हैं। सहसा १ निष्क की मात्रा नहीं देनी चाहिए।

अथ हरिशङ्कररसः—

मृतं सूताभ्रकं तुल्यं धात्रीफलनिजद्रवैः।

सप्ताहं भावयेत्खल्ले रसोऽयं हरिशङ्करः ॥ १२७ ॥
माषमेकां वटीं खादेन्नीलमेहप्रशान्तये ।
पूर्वयोगानुपानं स्यादसाध्यं साधयेत्क्षणात् ॥ १२८ ॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल, अभ्रक की भस्म १ पल लेकर दोनों को खरल में महीन पीसकर आंवले के फलों के स्वरस की सातदिन तक सात भावनाएं देकर उसे अच्छी प्रकार घोटकर एक २ माशे भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर कर रख देवें। इस रस की एक २ वटी पूर्व में कहे हुए प्रमेह हर अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। यह रस विशेष करके नीलमेह में अत्यन्त लाभ करता है तथा असाध्य प्रमेहों को भी नियम पूर्वक सेवन करने से निश्चय ही नष्ट कर देता है ॥ १२७-१२८ ॥

अथ वङ्गेश्वरो रसः—

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म समाहरेत् ।
मधुना लेहयेत्प्राज्ञो वातमेहप्रशान्तये ॥ १२९ ॥
मुद्गामलकयूषेण पथ्यं देयं सतक्रकम् ।
तिलपिण्डीं च तक्रेण पक्वा दद्यान्न हिङ्गुकम् ॥
घृतं बहु न दद्याच्च तिलतैलेन भोजयेत् ॥ १३० ॥

पारद की भस्म १ पल तथा वङ्ग की भस्म १ पल लेकर दोनों को खरल में अच्छी प्रकार घोटकर काच की शीशी में भर कर रख देवें। इस रस को १ या दो रत्ती भर लेकर वातप्रमेह को नष्ट करने के लिये मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा बाद में मूंग का यूष तथा आंवलों का रस और तक्र मिला कर अनुपान में पिलाना चाहिए तथा तिलों को पत्थर पर पीस कर अथवा तिलों की खली को मट्ठे के साथ पकाकर यथारुचि खिलानी चाहिए। इस रस के सेवन करते समय घृत का तथा हिङ्गु का अधिक सेवन नहीं करना चाहिए। प्रायः तिलों के तैल ही से शाक को संस्कृत कर के तथा अन्य खाद्य पदार्थ तिलतैल में बना कर सेव करने चाहिए ॥ १२९-१३० ॥

अथ गुडमार्कण्डी—

मार्कण्डीचूर्णमादाय सगुडं खादयेन्निशि ॥ १३१ ॥

मार्कण्डी ( भारङ्गी अथवा बांझककोड़ा ) के चूर्ण को ४ माशे भर लेकर उसमें १ तोला पुराना गुड़ मिलाकर सेवन करना चाहिए। इस योग को विशेष कर के अन्य प्रमेहहर रसों के साथ ( अर्थात् उनमें से किसी एक रस को प्रातःकाल सेवन कर के) सन्ध्या के समय इसका सेवन करने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ १३१ ॥

ताम्रयोगः—

**ताम्रेण तुर्यभागेन कुर्वीत रसपिष्टिकाम् ।**
**गोक्षुरस्य द्रवे चैव निक्षिपेत्सप्तकद्वयम् ॥ १३२ ॥**
**निम्बुमध्ये विनिक्षिप्य स्वेदयेत्काञ्जिकेऽहनि ।**
**निम्ब्वन्तरे विनिक्षिप्य वक्त्रे सन्धारयेन्निशि ॥ १३३ ॥**

ताम्र की भस्म १ तोला तथा शुद्ध पारद ४ तोला लेकर दोनों को १४ दिन तक गोखरू के क्वाथ से भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर गोला बना लेवें। फिर इस गोले को जम्बीरीनिम्बू के भीतर बन्द करके दोलायन्त्र की विधि से काञ्जी के अन्दर एक दिन तक स्वेदन कर के निकालकर खरल में पीस के चूर्ण कर शीशी में भर कर रख दें। इस रस को १ रत्ती भर लेकर निम्बू के भीतर रख कर सन्ध्या के समय मुख में धारण करके चूसना चाहिए। इस प्रकार इस रस को सेवन करने से सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं ॥ १३२–१३३ ॥

रक्तप्रमेहे वङ्गप्रयोगः—

**रक्तमेहेऽपि भस्मैव वङ्गस्य मधुना चरेत् ॥ १३४ ॥**

वङ्ग की भस्म १ रत्ती भर लेकर प्रतिदिन मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से रक्तप्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ १३४ ॥

शुक्रप्रमेहे वङ्गप्रयोगः—

**शुक्रमेहप्रशान्त्यर्थं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ॥ १३५ ॥**

भूम्यामलकके रस और अर्जुन की छालके चूर्ण के साथ३ रत्ती वङ्गभस्म तथा शुक्रप्रमेह के नष्ट करने के लिए १ रत्ती भर वङ्ग भस्म को लेकर चार माशे भर हरिद्रा के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए ॥१३५॥

मधुमेहे वङ्गप्रयोगः—

**मधुमेहापनुत्त्यर्थं समालार्जुनचूर्णकम् ।**

**वङ्गभस्मसमायुक्तं खादयेच्छर्करायुतम् ॥ १३६ ॥**

भूम्यामलक के रस और अर्जुन की छाल के चूर्ण के साथ २ रत्ती भर वङ्ग भस्म तथा १ तोला चीनी मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य मधुमेह से छुटकारा पा जाता है ॥ १३६ ॥

अथ शाल्मलिप्रयोगः—

**शाल्मलीद्रुतिमादाय पाययेन्मधुना सह ॥ १३७ ॥**

शाल्मली ( सेमल ) की जड़ का स्वरस अथवा क्वाथ लेकर उसको किसी रस के अनुपान के रूप में, या वङ्गभस्म के साथ अथवा स्वतन्त्र ही प्रतिदिन पान करने से मनुष्य प्रमेह रोग से मुक्त हो जाता है ॥ १३७ ॥

रक्तमेहे बोलबद्धरसोपदेशः—

**बोलवद्धं रसं जग्ध्वा रक्तमेहाद्विमुच्यते ।**
**बीजकस्य कषायं च पिबेदनु सबोलकम् ॥ १३८ ॥**

कास के अधिकार में कहे हुए बोलबद्ध रस को उचित मात्रा से प्रतिदिन सेवन करना चाहिए उसके बाद बीजैसार ( असन ) के क्वाथ में गन्धबोल का चूर्ण मिलाकर अनुपान करना चाहिए। इस विधि से बोल बद्ध रस के कुछ दिन तक सेवन करने से मनुष्य रक्त प्रमेह से निर्मुक्त हो जाता है ॥ १३८ ॥

अथ श्लेष्मातकक्वाथः—

**श्लेष्मातमूलजक्वाथं सघृतं निशि पाययेत् ॥ १३९ ॥**

श्लेष्मात अर्थात् बहुवार ( बड़ी रेंदी-लिसोड़ा ) वृक्ष की जड़ का क्वाथ बनाकर उसमें घृत मिला के अथवा स्नेहपाकविधि से उसमें घृत का पाक कर के प्रतिदिन सन्ध्या के समय पान करना चाहिए। इस प्रकार इस योग के सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है। यह योग रक्तप्रमेह में बोलबद्धादिक रसों के साथ अनुपान के रूप में सेवन करने से हित करता है ॥ १३९ ॥

अथ कुष्माण्डस्वरसप्रयोगः—

**कूष्माण्डस्य रसं वेल्लखण्डयुक्तं तु पाययेत् ॥ १४० ॥**

सफेद कोहड़े ( कुष्माण्ड-काशीफल ) या पेठे के स्वरस को १ पलभर लेकर उसमें ६ माशेभर विड़ङ्ग ( वेल्ल ) का चूर्ण तथा २ तोला शर्करा मिलाकर प्रतिदिन पान करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है ॥ १४० ॥

अथ स्त्रीणां रक्तस्रावे तौवरयोगः—

स्त्रियं वा रुधिरस्रावामामदुग्धेन पाययेत् ।
तुवरीमूलमुद्घृष्टं सम्यक् शर्करयान्वितम् ॥
पिबेत्तण्डुलतोयेन रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥ १४१ ॥

रक्त प्रदर के कारण अथवा रक्त प्रमेह के कारण जिस स्त्री के रुधिर का स्राव प्रतिदिन होता हो उस को तुवरी ( अरहर-रहड़, ) की जड़ को तण्डुल के पानी के साथ घोटकर उसमें थोड़ा सा कच्चा ताजा दुग्ध तथा चीनी मिलाकर प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए। इस योग के कुछ दिनों तक सेवन करने से स्त्री का रुधिर का स्राव बन्द हो जाता है ॥ १४१ ॥

अथ मेहकुठारो रसः—

पिष्ट्वा कार्पासतके रसधरणदृशा तुल्यनागं कपित्था-
न्निर्यासं पञ्चनिष्कं निहितशतजलारातिबीजं च पश्चात् ।
पिण्डान्कृत्वाथ तेन प्रतिदिनमथ तत्पिण्डमेकं कपित्था-
न्निर्यासं पादनिष्कं मथितमधुयुतं मेहजालं रुणद्धि ॥ १४२ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहसोमरोगपिटिकाचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

शुद्ध पारद अथवा रससिन्दूर १ धरण ( शाण ) भर लेकर उस के बराबर ही नागभस्म तथा कपित्थ का निर्यास ( गोंद ) अथवा चूर्ण या स्वरस ५ निष्क तथा शुद्ध कपिकच्छु ( केवांच ) के बीज अथवा आंवले के फल १०० लेकर उनका चूर्ण बनालें, फिर सबको खरल में डालकर अच्छी प्रकार से महीन पीसकर कपास के पुष्पों के स्वरस के साथ सात दिन तक घोटें, फिर सूखने के बाद गाय के मट्ठे के साथ सात दिन तक घोटकर एक २ माशे भर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर कर रख देवें। इस रस की एक २ गोली लेकर कपित्थ के १ माशे भर निर्यास तथा मधु के साथ अच्छी प्रकार घोटकर भक्षण करनी चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह रस सर्व प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है॥१४२॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य–भाषाटीकायां मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहसोमरोगपिटिकाचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ प्रमेहे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

ये विष्किरा ये प्रतुदा विहङ्गास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ।
मन्दाः कषाया रसचूर्णलेहा मसूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः ॥ १ ॥

"भूमिं विलिख्य नखरैर्विष्किरन्तीति विष्किराः" अथवा विकीर्य भक्षयन्त्येते यस्मात्तस्माद्धि विष्किराः इति, ते च—

चर्तकलावर्तीरकपिञ्जलकतित्तिराः । कुलिङ्गकुक्कुटाद्याश्च विष्किराः समुदाहृताः इति ॥
श्यामाककोद्रवबोद्दालगोधूमचूर्णमाढकी ॥ १ ॥

जाङ्गलं तिक्तशाकञ्च यवान्नञ्च श्रमो मधु । कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥ २ ॥
रूक्षमुद्वर्त्तनं गाढं व्यायामो निशि जागरः । यच्चान्यच्छ्लेष्मपित्तघ्नं बहिरन्तश्च तद्धितम् ॥ ३ ॥
मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु । यवास्तस्मात्प्रशस्यन्ते मेहेषु च विशेषतः ॥ ४ ॥
तिक्तशाकं पटोलानि जाङ्गलामिषजा रसाः । सैन्धवं मरिचं चैव मेहिनामाहरेद्भिषक् ॥ ५ ॥
शालिमुद्गकुलित्थाश्च मेहिनां देहिनां हिताः ॥ ६ ॥ इति पथ्यानि ॥

अथापथ्यानि—

सदाऽऽसनं दिवा निद्रा लघ्वन्नानि दधीनि च । मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोक्षणम् ॥ १ ॥
सौवीरकं सुरा सूक्तं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् । अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ २ ॥
इत्यपथ्यानि ॥

---

## अष्टादशोऽध्यायः ।

अथ विद्रधिः—

**अन्नैरध्युषितोष्णशुष्कपरुषरन्यैरसृग्दूषण-**
**र्वक्रैर्वा शयनादिभिस्तनुभृतामन्तर्बहिर्वोत्थितः ।**
**मेदस्त्वक्पलकण्डरास्थिरुधिरं गाढं प्रदूष्य कृतो**
**वृत्तःस्यादथवाऽऽयतोऽधिकरुजः शोथस्त्वसौ विद्रधिः ॥ १ ॥**

अध्युषित ( वासी ), अत्यन्त उष्ण, सूखे हुए तथा स्नेहांश रहित भोजन का प्रतिदिन सेवन करना तथा रक्त को दूषित करने वाले पदार्थों का निरन्तर सेवन, प्रकृति देश तथा ऋतु के विपरीत आहार विहार का सेवन तथा ऊंचे नीचे विषम स्थानों में प्रतिदिन शयन करना, बैठना आदि अनेक कारणों से कूपित हुए दोष मनुष्यों के मेद ( चर्बी Fat ), त्वचा, पल अर्थात् मांस ( मांसपेशियां Muscles ), कण्डरा (Tendons ), अस्थि ( Bones ),

और रक्त ( Blood ) को अत्यन्त दूषित कर के शरीर के भीतरी (गुदा, वस्ति, मुख आदि भीतरी स्थान ) तथा शरीर के बाहरी अङ्गों में गोल अथवा लम्बा शोथ ( Inflamation ) उत्पन्न होता है जिस के कारण अत्यन्त तीव्र वेदना होती है, इस प्रकार के रोग को (पक जाने पर) विद्रधि (Abscess) कहते हैं॥१॥

अथ सर्वेश्वरपर्पटीरसः—

रसोपरसलोहानि कार्षिकाणि पृथक् पृथक् ।
तेषु लोहानि सर्वाणि पाषाणाः कठिनास्तथा ॥ २ ॥
घनसत्त्वं च तत्सर्वं भस्मीकृत्य प्रयोजयेत् ।
रत्नानि वल्लतुल्यानि भस्मीकृत्य च सर्वशः ॥ ३ ॥
एभ्यश्चतुर्गुणः सूतो गन्धस्तस्माच्चतुर्गुणः ।
कृत्वा कज्जलिकां ताभ्यां क्षिपेल्लोहस्य भाजने ॥ ४ ॥
प्रद्राव्य बदराङ्गारैर्निक्षिपेत्तदनन्तरम् ।
रसोपरसलोहानां रत्नानामपि सर्वशः ॥ ५ ॥
चूर्णं भस्म च निक्षिप्य काष्ठेनाऽऽलोड्य मेलयेत् ।
ततश्च षोडशांशेन मिश्रयित्वाऽरुणं विषम् ॥ ६ ॥
गोमयोपरि निक्षिप्य निक्षिपेत्कदलीदले ।
पत्रेणान्येन रम्भायाः समाच्छाद्य प्रयत्नतः ॥ ७ ॥
कराभ्यां चिपटीकृत्य क्षिपेदुपरि गोमयम् ।
ततः शीतं समाहृत्य चूर्णयित्वा च पर्पटीम् ॥ ८ ॥
विनिक्षिपेत्करण्डान्तः सम्पूज्य रसभेषजम् ।
सर्वेश्वराभिधानेयं पर्पटी परिकीर्तिता ॥ ९ ॥
सर्वलोकहितार्थाय नन्दिनेयं प्रकीर्तिता ।
रक्तियुक्तसमानेयं मरिचार्द्रसमन्विता ॥ १० ॥
विद्रधौ षट्प्रकारे स्यात् देया वर्ध्मसु सप्तसु ।
क्षयरोगेषु सर्वेषु पाण्डुरोगे विशेषतः ॥ ११ ॥
ग्रहणीरोगभेदेषु गुल्मेष्वष्टविधेषु च ।
मूलरोगेष्वशेषेषु प्लीहार्थे यकृदामये ॥ १२ ॥
प्रमेहे सोमरोगे च प्रदरे जठरार्तिषु ।

विशेषेण च मन्दाग्नौ सर्वेष्वावर्तकेषु च ॥ १३ ॥
अनुक्तेष्वपि रोगेषु तत्तद्यौचित्ययोगतः ।
रसोऽयं खलु दातव्यः शिवतुल्यपराक्रमः ॥ १४ ॥
यद्यद्द्रव्यमसात्म्यं हि जनानामुपजायते ।
तत्सर्वं सात्म्यमायाति रसस्यास्य निषेवणात् ॥ १५ ॥
पीतं हालाहलं तोयं पर्वताग्रे वरोद्धतम् ।
सलिलं तैलतुल्यं तज्जलं स्यात्सुधोपमम् ॥
दुःसाध्यो विद्रधिर्मासाच्छान्तिमायाति निश्चितम् ॥ १६ ॥

रस अर्थात् पारद और अभ्रक, वैक्रान्त, माक्षीक, विमल, शिलाजीत, तुत्थक, चपल और खर्पर ये आठ महारस तथा गन्धक, गैरिक कासीस ( हीराकस ), सौराष्ट्रमृत्तिका ( काङ्क्षी ), हरताल, मनःशिला, नीलाञ्जन, कङ्कुष्ठ ये आठ उपरस तथा काम्पिल्यादि आठ साधारण रस तथा लौह, सुवर्ण, चांदी, ताम्र नाग, वङ्ग, पित्तल और कांसा ये आठ लौह ( धातु ) लेकर इन में से आठों लौह तथा अन्य जो कठिन पदार्थ हैं उनकी भस्म बनाकर प्रत्येक एक २ कर्ष भस्म लेनी चाहिए तथा शेष पदार्थों का शोधन कर के उन्हें भी एक २ कर्ष भर लवें तथा चौथे अध्याय में वैक्रान्त से प्रारम्भ कर के गिनाये हुए रत्नों में यथा सम्भव जितने मिल सकें उन में से प्रत्येक की एक २ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर भस्म लेनी चाहिए तथा इन रस, उपरस, लौह तथा रत्नों की भस्मों की अपेक्षा चौगुना शुद्ध पारद और पारद से चौगुना शुद्ध गन्धक लेकर इन दोनों की पत्थर की खरल में अच्छी प्रकार उत्तम कज्जली बनाकर उस को घी से चुपड़ी हुई लौहे की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा कर बैर की लकड़ियों की मन्द २ आंच देनी चाहिए । कज्जली को किसी लकड़ी से अथवा घी से पुते हुए लोहे की कलच्छी के अगले चौड़े भाग से चलाते रहना चाहिए । इस प्रकार जब समस्त कज्जली पिघल जाय तब उस में रस, उपरस, लोह और समस्त रत्नों की भस्में तथा जिन की भस्म बनाने की आज्ञा न हो उन को शुद्ध कर यथाकथित प्रमाण से लिये हुए चूर्ण डाल कर सब को लकड़ी के निर्मल डण्डे से या लौहे की कलच्छी से अच्छी प्रकार विलाइन ( मर्दन ) कर के मिला देवें । पश्चात् उस में समग्र औषधि का षोड़शांश ( सोलहवां भाग ) लाल रङ्ग का शुद्ध किया

हुआ वत्सनाभ विष का चूर्ण मिलाकर सब को कलच्छी से या लकड़ी से घोट कर परस्पर मिला के उस को गाय के गीले गोबर के चोकोर छोटे चबूतरे ( चौंतरे ) पर कोमल केले का पत्ता बिच्छा कर उस पर डाल कर दूसरे कोमल केले के पत्ते से ढक कर फिर उस पर तुरन्त ही गीले गोबर का पिण्ड रख कर जोर से दोनों हाथों से दबा देना चाहिए। इस प्रकार से बनी हुई पर्पटी को स्वाङ्गशीत हो जाने के पश्चात् लेकर खरल में डाल कर उस का महीन चूर्ण करके रस भैरव की अथवा उस रसमेषज की पूजन कर के काच की शीशी में भर कर डाट लगा कर रख लेवें। इस को सर्वेश्वर पोटली रस कहते हैं। इस सर्वेश्वर पोटली को समग्र संसार के प्राणियों के हित के लिये श्री नन्दी नाम के रसशास्त्र के आचार्य ने बनाई है। इस को एक रत्ती भर लेकर मरिचों के चूर्ण और अद्रक के रस के साथ ६ प्रकारी की विद्रधि और सात प्रकार के वर्ध्म रोग ( वृद्धि रोग ) में सेवन कर ने को देना चाहिए। विशेष कर के इस सर्वेश्वर पोटली रस को उचित मात्रा से तथा यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सर्व प्रकार के क्षयरोग, पाण्डु रोग, सर्व प्रकार के ग्रहणी रोग, आठ प्रकार के गुल्म, समग्र प्रकार के मूल रोग अर्थात् अर्श, तथा प्लीहा ( तिल्ली ) की वृद्धि ( Inlargment of the Spleen ) तथा उस के अन्य विकार, यकृत् की वृद्धि ( Inlargment of The Liver ) और उस के अन्य विकार तथा प्रमेह, सोमरोग, प्रदर, पेट (उदर) की व्याधियों तथा विशेष कर के अग्निमांद्य, आवर्तक रोग ( एक वार शान्त हो कर फिर जिसका आगमन या दौरा होता हो ) और अनुक्त सब प्रकार के रोगों में सेवन करने से अत्यन्त लाभ करता है। यह रस श्री शिवजी के समान संसार का हितकारी है इस लिये इस को अनुपान भेद से सब रोगों में देना चाहिए। इस रस के सेवन करने से मनुष्यों के असात्म्य अर्थात् स्वभाव ( प्रकृति ) से विरुद्ध द्रव्य भी सात्म्य अर्थात् उन की प्रकृति के अनुकूल हो जाते हैं। इस रस के सेवन करने के प्रभाव से वरोद्धत अथात् अत्यन्त तीव्र हालाहल ( गरल विष ) विष का पान कर लेने पर भी वह पर्वत के अग्र में गिरे हुए जल अर्थात् निर्झरोदक के समान सात्म्य हो जाता है तथा तैल के समान कलुषित ( दुष्ट अर्थात् जिस तरह तैल का वर्ण और उस का गाढ़ापन है उस तरह अन्य पदार्थों के मिल जाने से विवर्ण तथा गाढे हुए )

जल को भी पीने से वह सुधा ( अमृत ) के समान हो जाता है। इस रस के एक मास तक निरन्तर सेवन करते रहने से दुःसाध्य विद्रधि रोग भी दूर हो जाता है ॥ २–१६ ॥

विमर्शः—कहीं कहीं इस सोलहवें श्लोक के बाद निम्न पाठ अधिक है यथा—

"भुक्ता अपि च पाषाणा जीर्य्यन्ते क्षणमात्रतः।
नैतस्मिन्नियतः क्वापि विहाराहारकर्मणि ॥
लोकनाथ रसोऽप्यत्र क्षौद्रैर्गुंजाचतुष्टयम्।
पाठामूलस्य कर्षैकं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥"

अथ सर्वामयहरो रसः—

हरिद्राकन्दमङ्कोलतण्डुलं गन्धकं गुडम्।
मूलानि च महाभर्याः पृथगर्धपलान्वितम् ॥ १७ ॥
तुत्थं च पञ्चपलिकं नारीस्तन्येन पेषितम्।
लिप्तं नालान्ध्रमूषासु धमनात्सत्त्वमाहरेत् ॥ १८ ॥
शस्तं क्षाररसेष्वेतत्पोटल्याः पचनादनु।
घृतेनाऽऽवर्तिते तस्मिन्निष्कद्वितयसंमिते ॥ १९ ॥
प्रवेशितं निष्करसं महाजम्भीरनीरतः।
अम्लपिष्टं शरावान्तर्लिप्तं मृद्वस्त्रमुद्रितम् ॥ २० ॥
अधरोत्तरदत्तानां भ्रष्टानामाढके स्थितम्।
वालुकानां तथाभूतैः खारीपरिमितैस्तुषैः ॥ २१ ॥
एकं शीतकृतं क्षुण्णमष्टौ निष्काणि खपरात्।
चत्वारि सुरभि स्थूल-घनवर्तुलनीरुजाम् ॥ २२ ॥
पीताभानां सगर्भत्वाद्बराटानां च षोडश।
अम्लस्य सार्धप्रस्थेन श्लक्ष्णपिष्टानि पात्रयोः ॥ २३ ॥
जम्बीरमूलिकाकल्केनान्तर्लिप्तानि लिप्तयोः।
पचेच्चुष्ककरीषाणामर्धभारेण यत्नतः ॥ २४ ॥
कृष्णवर्णोऽनुपक्वोऽसौ सुपक्वः शङ्खपाण्डुरः।
काचशङ्खमये पात्रे धारणीयः सुरक्षितः ॥
पटचूर्णवशात्सर्वानामयान्विनियच्छति ॥ २५ ॥

हलदी का चूर्ण आधापल ( २ तोला ), अङ्कोल के बीजों का चूर्ण आधापल शुद्धगन्धक आधापल, गुड़ आधापल, भृङ्गराजरस का चूर्ण आधापल तथा शुद्ध किये हुए तुत्थक का चूर्ण ५ पल ( २० तोले ) लेकर सब को खरल में महीन पीस कर गाय के दुग्ध के साथ अच्छी प्रकार घोटकर कल्क बना लेना चाहिए। फिर उस कल्क को एक लम्बी नाल वाली अन्धमूषा ( गोस्तनाकारमूषा ) के भीतर लिप्त ( लेप ) करके अङ्गारकोष्ठी के भीतर रख कर फूंकने से निकले हुए सत्त्व को ग्रहण करना चाहिए। फिर इस सत्त्व को कपड़े के भीतर बांध कर उसकी पोटली बनाके यवक्षार से मिले हुए गोमूत्र अथवा काञ्जी में एक प्रहर तक स्वेदन करके निकाल कर शुष्क करके खरल में चूर्ण कर लेना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध किया हुआ सत्त्व २ निष्क (८ मा०) तथा शुद्ध पारद १ निष्क (४ मा०) भर लेकर दोनों को खरल में डालकर अच्छी प्रकार पीस कर उसमें थोड़ा सा गाय का घी डालकर घोट लेना चाहिए। फिर उसमें बड़े जम्बीरी निम्बू का रस डालकर अच्छी प्रकार से घोटकर उसको शराव ( सकोरे ) के भीतरी प्रदेश में लीप कर सुखा देवें। फिर सूख जाने पर पूर्व शराव के ऊपर दूसरा शराव ढककर दोनों की सन्धियां कपड़ मिट्टी से बन्द करके सम्पूर्ण सम्पुट पर कपड़ मिट्टी करके उसको सुखा देना चाहिए। फिर एक मिट्टी की स्थाली ( चौड़े मुख का भाण्ड ) लेकर उसमें आधी आढक महीन रेती ( बालुका ) भर कर उस रेती पर शराव सम्पुट रख के उस पर फिर आधा आढक रेती भर कर स्थाली के मुख को बड़े सकोरे से ढककर कपड़ मिट्टी कर देवें। फिर पृथ्वी में एक लम्बा चौड़ा गड्ढा खोद कर उसमें आधी ( अर्द्ध ) खारी तुष ( धान की भूसी ) भर कर उन तुषों पर पूर्वोक्त स्थाली को रख कर उस पर आधी खारी ( अर्द्ध खारी ) तुष डालके अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। सब तुषों के जल जाने पर स्वाङ्गशीतल स्थाली को तुषों की भस्म के ढेर ( समूह ) से निकाल कर उसमें से शराव सम्पुट को निकाल कर सिद्ध रस को ग्रहण करना चाहिए। फिर इस रस को खरल में डाल कर महीन चूर्ण करके उस में खर्पर भस्म ८ निष्क ( ३२ मा० ) तथा सुरभि अर्थात् शुद्ध गन्धक ४ निष्क ( १६ मा० ) मिलाकर महीन घोट के डेढ प्रस्थ भर काञ्जी लेकर उसमें से थोड़ी २ डाल कर उक्त औषधियों के चूर्ण का खरल करें, जब घोटते २ डेढ प्रस्थ काञ्जी समाप्त हो जाय तब उस चूर्ण को सुखा कर

१६ निष्क ( ६४ मा० ) भर मोटी, भारी, गोल, नीरुज अर्थात् अखण्डित तथा बीच में छिद्र वाली पीली कौड़ियां लेकर उनमें भर देवें । फिर औषध से भरी हुई इन कौड़ियों को जम्बीरी निम्बू की जड़ के पत्थर पर पीसे हुए कल्क से भीतर में लेप किये हुए शराब में बन्द करके ( निम्बू की जड़ के कल्क से भीतर पोती हुई हण्डिका में बन्द करना श्रेष्ठ है ) उसी प्रकार के द्वितीय शराब के साथ कौडियों से पूर्ण शराव का सन्धिबन्धन करके उस पर कपड़ मिट्टी कर देनी चाहिए । फिर पृथ्वी में गड्ढा ( गर्त ) खोद कर उसमें सूखे हुए आधे भार ( १००० पल ) उपले रख कर उनके बीच में उपर्युक्त सम्पुट को रख कर वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए । सब उपलों के जल जाने पर स्वाङ्गशीतल सम्पुट को खोल कर उसमें से सिद्ध हुए रस को निकाल लेवें । यदि यह सिद्ध हुआ रस ( भस्म ) काले वर्ण का हो तब उसे अपक्व समझना चाहिए और वह यदि शङ्ख के समान श्वेत तथा पीले वर्ण का हो तब उसे ठीक परिपक्व हुआ जानकर खरल में महीन पीस के सूक्ष्म वस्त्र से छान कर काच के पात्र में अथवा शङ्ख के बने हुए पात्र में भरकर सुरक्षित करके रख देवें । यह रस यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । इसीलिये इसको सर्वामयहररस कहते हैं । कुछ ग्रन्थों में इस रस को शङ्खपाण्डु रस भी कहा है॥१७–२५॥

अथ वरुण–कषायः—

**वरुणावल्कलक्वाथैर्हिङ्गुकासीससन्धवम् ।**
**शिलाजतुसमायुक्तमसाध्यं विद्रधिं जयेत् ॥ २६ ॥**

वरुण ( वरना ) की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें घृतभर्जित हिङ्गु (हींग) का चूर्ण ( २ रत्ती ), पोसा हुआ सैन्धा नोमक ( ६ रती ), कासीस का शुद्ध चूर्ण ( २ रत्ती ) और शुद्ध की हुई शिलाजोत ( ६ रत्ती ) डालकर प्रति दिन पीना चाहिए । इस प्रकार प्रतिदिन क्वाथ बनाकर उसमें उपर्युक्त औषधियां यथा लिखित प्रमाण से डाल कर पान करने से असाध्य विद्रधि भी अच्छी हो जाती है ॥ २६ ॥

अथ शोभाञ्जनादिक्वाथः—

**क्वाथं शिग्रुवचाश्वत्थं हिङ्गुसैन्धवचूर्णितैः ।**
**संयुक्तं पाययेच्छान्त्य विद्रधिरोगपीडितम् ॥ २७ ॥**

सहजन की छाल, वच और पीपल ( अश्वत्थ ) की छाल इन तीनों को समभाग लेकर क्वाथ बना के उसमें घृतभर्जित हिङ्गु का चूर्ण २ रत्ती तथा सैन्धव नीमक ६ रत्ती भर मिलाकर विद्रधि रोग से पीड़ित पुरुष को प्रतिदिन पिलाना चाहिए। इससे विद्रधि रोग अच्छा हो जाता है ॥ २७ ॥

अथ विद्रधिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

आमस्थे रेचनं चैव लेपः स्वेदोऽस्रमोक्षणम्।
जीर्णाः श्यामाककलमाः कुलत्था लशुनानि च ॥ १ ॥
रसश्चिगुश्च निष्पावः कारवेल्लं पुनर्नवा। श्रीपर्णी चित्रकं क्षौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः ॥२॥
पक्वावस्थे शस्तकर्म पुराणा रक्तशालयः। घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसाः ॥ ३ ॥
शालिच्छागं कदलीपटोलं हिमवालुका। चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वं चापित्तजोदितम् ॥४॥
नराणां विद्रधौ व्याधौ यथावस्थं यथाबलम्। पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः ॥५॥

इति पथ्यानि

अथापथ्यानि—

शोफिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामपि यानि च। क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥६॥

इति विद्रधि-चिकित्सा।

अथ वृद्धिचिकित्सा—

अथ वातारिरसः—

रसभागो भवेदेको द्विगुणो गन्धको मतः।
त्रिभागा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः ॥ २८ ॥
गुग्गुलुः पञ्चभागः स्यादेरण्डस्नेहमर्दितः।
क्षिप्त्वाऽत्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ २९ ॥
गुटिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि।
नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत् ॥ ३० ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम्।
विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ ३१ ॥
वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः।
मासेन सुखयत्येव ब्रह्मचर्यपुरः सरः ॥
विजयागुटिकां रात्रौ स्वल्पमात्राञ्च भक्षयेत् ॥ ३२ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, त्रिफला का चूर्ण ४ तोला, चित्रक ( चीते ) की शुद्ध जड़ का चूर्ण ४ तोला तथा शुद्ध गूगल ५ तोला लेकर

सर्व प्रथल गूगल को खरल में डालकर उसमें थोड़ा सा एरण्ड का तैल डालकर घोटनी चाहिए फिर उसमें उपर्युक्त शेष औषधियों में से गन्धक और पारद की कज्जली बनाकर तथा त्रिफला और चित्रक का चूर्ण लेकर मिला के सब को अच्छी प्रकार घोटकर उसमें थोड़ा सा एरण्ड का तैल डाल के घोटकर एक २ कर्ष के प्रमाण की गोलियां बना लेनी चाहिए । प्रायः अर्द्धकर्ष भर की ही गोलियां बनावें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन लेकर उसका चूर्ण करके एरण्ड के तैल के साथ मिलाकर प्रातःकाल सेवन करना चाहिए तथा सेवन करने के पश्चात् नागर अर्थात् सौंठ और एरण्ड की जड़ का क्वाथ बनाकर अनुपान करना चाहिए । इस प्रकार औषध को सेवन करने के पश्चात् रोगी की पीठ पर एरण्ड के तैल की मालिश ( अभ्यङ्ग ) करके गरम बोतलों अथवा गरम ईंटों से स्वेदन करना चाहिए । इस प्रकार के उपचार के करने से कुछ देर के पश्चात् विरेचन होता है । विरेचन हो जाने के पश्चात् रोगी को स्निग्ध और कुछ २ उष्ण भोजन कराना चाहिए । इस वातारि नामक रस के सेवन करते समय निर्वात स्थान में रहना चाहिए, अर्थात् जोर से जहां उष्ण हवा चलती हो ऐसे स्थान में घूमना, बैठना और शयन करना वर्जित है । इस प्रकार एक मास तक नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए इस रस के सेवन करने से वृद्धिरोग विशेष करके आन्त्रवृद्धि आदि सब प्रकार के उपद्रव दूर हो जाते हैं । इस रस के सेवन करते समय सन्ध्या के समय विजया नाम की गुटिका का अथवा भाङ्ग ही को यथाविधि छानकर सेवन करना चाहिए ॥ २८–३२ ॥

अथ सामान्योपायः—

दार्वीप्रयोगः—

**चूर्णं दारुहरिद्राया गवां मूत्रैस्त्रिनिष्ककम् ।**
**चित्रं चिरोत्थितां हन्ति अन्त्रवृद्धिं न संशयः ॥ ३३ ॥**

दारु हलदी का चूर्ण ३ निष्क ( १२ मा० ) भर लेकर गोमूत्र के साथ प्रतिदिन सेवन करने से आन्त्रवृद्धि-हर्निया ( Hernia ) रोग नष्ट हो जाता है । आन्त्र वृद्धि में यह योग अत्यन्त हितकर है ॥ ३३ ॥

अथ वातारिरसस्यप्रयोगोपदेशः—

**रसो वातारिनामा यः सोऽत्र देयः पिबेदनु ।**

**एरण्डतैलकर्षैकं गवां क्षीरं पलद्वयम् ।**
**अण्डवृद्धिहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः ॥ ३४ ॥**

उपर्युक्तविधि से बने हुए वातारि रस को उचितमात्रा से सेवन करा के पश्चात् एरण्ड ( रेड़ी ) का तैल एक कर्ष ( १ तोला ) भर लेकर उसको दो पल उष्ण दुग्ध में मिलाकर अनुपान करना चाहिए। इस प्रकार एक महीने तक वातारि रस के सेवन करने से अण्डवृद्धि अर्थात् अण्डकोषतरलवृद्धि ( Hydrocoele ) रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

अथ तैलार्द्रकप्रयोगः—

**कर्षैकं तिलतैलन्तु पलैकं चार्द्रकद्रवम् ।**
**यः पिबेत्प्रातरुत्थाय तस्याऽन्तर्वृद्धिदृद्भवेत् ॥ ३५ ॥**

एक कर्ष ( १ तोला ) तिल का तैल तथा १ पल ( ४ तो० ) अदरख का रस लेकर दोनों को परस्पर मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक प्रतिदिन इसका पान करने से निश्चय ही आन्त्र वृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथ आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलम्—

**गोमूत्रैरण्डतैलं च छागमांसरसं तथा ।**
**त्रिफलाक्काथतुल्यांशं तैलशेषं तु पाचयेत् ।**
**तत्तैलं तु पिबेत्कर्षमन्त्रवृद्धिप्रशान्तये ॥ ३६ ॥**

गोमूत्र, एरण्ड का तैल तथा बकरी के मांस का रस इन तीनों को समभाग लेकर इनके बराबर त्रिफला का क्वाथ लेकर सब को एक कलईदार लोहे की कड़ाही में डाल कर पकाना चाहिए। इस प्रकार जब पकाते २ तैलमात्र शेष रह जाय तब उसको उतार शीतल कर के कपड़े से छान कर शीशी में भर देना चाहिए। इस तैल को एक कर्ष भर लेकर प्रतिदिन पीने से अन्त्र वृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

अथ आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलान्तरं घृतञ्च—

**दध्यारनालमदिरामातुलुङ्गरसैः समैः ।**
**ताम्रचूडरसैस्तुल्यं तैलं वा घृतमेव वा ॥**
**स्नेहशेषं पचेत्सर्वं तत्पिबेदन्त्रवृद्धिजित् ॥ ३७ ॥**

दही, काञ्जी, मदिरा ( मद्य ), बिजौरे निम्बू का रस और मूर्गे ( कुक्कुट ) का मांसरस ये चारों सम भाग लेकर तथा चारों के बराबर घृत अथवा तैल लेकर सबको कलईदार कड़ाही या मिट्टी के पात्र में डालकर मन्द २ अग्नि के द्वारा पकाना चाहिए। पकाते २ जब स्नेह ( घृत या तैल ) मात्र शेष रह जाय तब उतार कर शीतल कर के कपड़े से छान कर सिद्ध स्नेह को मिट्टी के पात्र में अथवा काच के पात्र में भर कर रख देवें। इस तैल को प्रतिदिन एक २ तोले भरलेकर सेवन करने से अन्त्र वृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥

अथ अन्त्रवृद्धौ मांसरसः—

**अन्त्रवृद्धिहरः पाने मयूरात्तित्तिराद्रसः ॥ ३८ ॥**

मयूर और तित्तिर ( बटेर ) के मांस के रसको संस्कृत कर के प्रतिदिन सेवन करने से अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥

अथ अन्त्रवृद्धौ द्वितीयमांसरसः—

**वार्ताकं कुक्कुटं पक्त्वा तद्रसं पानभोजने ।**
**योजयेदन्त्रवृद्ध्यार्तं शममाप्नोति नान्यथा ॥ ३९ ॥**

वार्त्ताक अर्थात् तित्तिर और कुक्कुट ( मूर्गे ) के मांस को पकाकर उसके रस को यथाविधि संस्कृत करके प्रतिदिन सेवन करने से अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

**अथ वर्धमानवृद्धिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था—**

**संशोधनं बस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च ।**
**एरण्डतैलं सुरभिजलञ्च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ १ ॥**
**पुनर्नवागोक्षुरकाग्निमन्थं ताम्बूलपथ्यारसनारसोनम् ।**
**वार्त्याकनागृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलं च तक्रम् ॥ २ ॥**
**अर्धेन्दुवृद्धेक्षणयोश्च दाहो व्यत्यासतो बाहुशिराव्यधश्च ।**
**यथाक्रमं शास्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्वर्धमानवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥३॥ इति पथ्यानि ।**

**अथापथ्यानि—**

**आनूपमांसानि दधीनि माषाः पिष्टानि दुष्टान्नमुपोदिका च ।**
**गुरूणि शुक्लोत्थितवेगरोधाः स्युर्वर्धमानवृद्ध्यामयिनाममित्राः ॥ १ ॥**
**वेगाहति पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं तथा ।**
**अत्यशनमथाध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥ २ ॥ इत्यपथ्यानि ।**

**इति वृद्धिचिकित्सा ।**

अथ गुल्मः—

**उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।**
**आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥४०॥**

बार बार खट्टी डकारों का आना, मल का अवरोध ( कब्जी ) होना, भोजन न करने पर भी भोजन किये हुए की तरह तृप्ति होना, किसी भी कार्य के करने में अक्षमता ( असमर्थता ) का होना, आन्त्र ( Intestine ) में सदा कूजन अर्थात् एक विशेष प्रकार का सर सर शब्द का होते रहना, पेट में मल के अवरोध और वायु के कारण आटोप अर्थात् गुड़ गुड़ शब्द होना ( आटोपो गुड़ गुड़ाशब्दः ), अपान वायु के रुक जाने से पेट का फूल जाना तथा मन्दाग्नि के कारण पाचन शक्ति का ह्रास ( विनाश ) हो जाना इत्यादि कारण आसन्न गुल्मरोग ( शीघ्रभावी गुल्म ) के लक्षण या सूचक हैं ॥ ४० ॥

अथ गन्धकादिपोटलीरसः—

**गन्धकं तालकं ताप्यं शिलार्द्धं पिप्पलीकृते ।**
**कषाये भावयेत्स्नुह्याः क्षीरे मूत्रे च सप्तशः ॥ ४१ ॥**
**निष्कार्धमस्याः पोटल्याः स्यादर्धं साज्यमादिकम् ।**
**प्रयोज्यं सयकृत्प्लीहि पञ्चकोलपलाशिना ॥ ४२ ॥**

शुद्ध गन्धक १ पल, शुद्ध हरताल १ पल, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ पल, शुद्ध-मनःशिला १ पल लेकर खरल में सब को अच्छी प्रकार घोट कर महीन करके पिप्पली के क्वाथ से सातवार भावित करें, फिर थोहर ( स्नुही ) के शुद्ध दुग्ध से सात बार तथा गोमूत्र से सातवार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर सुखाके चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें । इस प्रकार सिद्ध हुए इस पोटली रस को आधा निष्क ( दो मासाभर ) लेकर दो मासे भर घृत तथा माक्षिक ( मधु ) के साथ प्रतिदिन सेवन करके उसके उपरान्त पञ्चकोल ( पिप्पली, पिपरा मूल, चव्य, चित्रक और सौंठ ) तथा पलाश ( ढाक ) की छाल के क्वाथ का पान करना चाहिए । इस विधि से इस पोटली रसको यकृत् और प्लीहा की वृद्धि तथा उन के अन्य विकारों में देना चाहिए ॥ ४१-४२ ॥

**विमर्शः—किसी २ पुस्तक में "पञ्चकोलपलाशिना" के स्थान पर "पञ्चकोल-पञ्चालिना" ऐसा पाठ है ।**

पञ्चकोलस्वरूपम्—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ।
पञ्चकोलमिदं प्राहुः पञ्चोषणमथापरे ॥ इति ।

अथ गन्धकादिपोट्टल्याः प्रयोगान्तरम्—

वर्षाभूः कारवी शौण्डी सूची वचफलासनम् ।
तिलाक्षियुगमाबाणानिशाकर्कन्धुसूरिका ॥ ४३ ॥
रक्तागस्त्येन्दुरेखाब्दनीलज्योतिरयो मृतम् ।
वल्कलं बहुवल्ल्यर्याः कृष्णः काम्बोजिकाफलम् ॥ ४४ ॥
गवाक्षीरजनीकृष्णा निम्ववेल्लकठिल्लकम् ।
मानिकांशं पृथक् क्षुण्णं तुल्यं भूशर्कराघृतम् ॥ ४५ ॥
त्रिफलाबीजतैलेन भावितं कर्षसम्मितम् ।
प्राङ्गे घृतेन मध्याह्ने गुडेन मधुना निशि ॥ ४६ ॥
पादं पादार्धमात्रं वा पोट्टल्याश्च रजो भवेत् ।
हैयङ्गवीनशाल्यन्नकृष्णगोक्षीरवर्तिनः ॥ ४७ ॥
एवं वर्षत्रयं कुर्यात् स्याद्वलीपलितोज्झितः ।
प्रत्यहं मण्डलं खादेत्पथ्यं त्यक्त्वा ततः परम् ।
इष्टाहारविहारी च सहस्रायुर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ४८ ॥

पुनर्नवा, काला जीरा, शौण्डी अर्थात् छोटी पीपल, सूची अर्थात् कुशा की जड़ (शोर), वचा, त्रिफला, असन (विजयसार), तिल और तिलों की डोढ़ी (फली) के छिलके या तिलनाल की जड़, युग (ऋद्धि या बला), माबाणा अर्थात् शरफोंका, हलदी, कर्कन्धु ( जंगली बेर ), सूरिका अर्थात् राई ( राजिका ), लाल पुष्पवाले अगस्त्य, इन्दुरेखा ( सोमलता ), अब्द अर्थात् नागरमोथा, नीलज्योति ( रसाञ्जन ) अथवा नील ( नीलीवृक्ष ) और ज्योति ( चित्रक ), लौहभस्म, शोभाञ्जन का वल्कल ( छाल ), उष्ण अर्थात् कालीमरिच, काम्बोजिका फल अर्थात् शुद्ध गुञ्जाबीज, गवाक्षी ( ऐन्द्रवारुणी इन्द्रायण की जड़ ), रजनी ( दारु हलदी ), कृष्णा अर्थात् गम्भारी की छाल अथवा छोटी पिप्पली, नीम की छाल, वेल्ल अर्थात् वायविडङ्ग, कठिल्लक अर्थात् करेला, इनमें से प्रत्येक द्रव्य मानिकांश अर्थात् १ शराव ( आठ पल ) भर लेकर लौहभस्म के सिवाय सबको अच्छी

प्रकार कूट कर कपड़े से छान के चूर्ण कर लेवें, फिर उन सब औषधियों के चूर्ण और लौह भस्म को एक बड़ी खरल में मिला कर भूशर्करा अर्थात् चीनी और गाय का घी ये दोनों बराबर २ मिला के उपर्युक्त चूर्ण के बराबर के प्रमाण से लेकर उसी चूर्ण में मिला के सब को एकत्र घोटकर त्रिफला के द्वारा सिद्ध किये हुए तैल से सात वार भावित कर के किसी मिट्टी के स्निग्ध पात्र में अथवा काच के पात्र में रख देवें। इस प्रकार सिद्ध हुई रस औषधि को एक तोले भर लेकर तीन माशे अथवा डेढ माशे भर उपर्युक्त गन्धक पोट्टलीरस के साथ मिला के प्रातः काल घृत के साथ, मध्याह्न में गुड़ के साथ तथा संध्या के समय शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। भोजन की इच्छा होने पर मक्खन या ताजे घी शालिधान का भात तथा काली गाय के दुग्ध आदि हितकर मधुर, स्निग्ध पदार्थ पथ्य में सेवन करना चाहिए। इस प्रकार तीन वर्ष तक निरन्तर इस योग का सेवन करना चाहिए। इस योग के सेवन करने के प्रारम्भ से ४० दिन तक आहार विहार में पथ्य का पालन करना चाहिए पश्चात् पथ्य का विशेष ध्यान न रखते हुए भी तीन वर्ष तक सेवन करते रहना चाहिए। इस प्रकार इस योग के सेवन करने से मनुष्य वली और पलित रोग ( अल्पावस्था ही में शिर के बालों का सपेद होना तथा गिरना ) से मुक्त होकर सहस्रवर्षायु अर्थात् दीर्घजीवी हो जाता है ॥ ४३–४८ ॥

अथ वङ्गेश्वररसः—

**भस्मसूतं वङ्गभस्म पलैकैकं प्रकल्पयेत् ।**
**गन्धकं मृततास्रं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ४९**
**अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् ।**
**रुद्ध्वा तद्भूधरे पाच्यं पुटैकेन समुद्धरेत् ॥ ५० ॥**
**एष वङ्गेश्वरो नाम प्लीहगुल्मादरापहः ।**
**घृतैर्गुञ्जाद्वयं लेह्यं निष्कं श्वेतपुनर्नवा ।**
**गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥ ५१ ॥**

भस्मीभूत पारद ( पारदभस्म अथवा रससिन्दूर ) १ पल, वङ्गभस्म १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल तथा ताम्रभस्म १ पलभर लेकर सबको खरल में अच्छी प्रकार महीन चूर्ण करके आकके शुद्ध दुग्ध के साथ एकदिक तक निरन्तर घोट-

कर गोला बनाकर मूषा में बन्द करके भूधरयन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीत होनेपर पुट से सिद्ध औषध को निकालकर खरल में अच्छी प्रकार महीन चूर्ण करके शीशी में भर कर रख दें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रसको वङ्गेश्वर रस कहते हैं। यह रस प्लीहा की वृद्धि, गुल्म और उदर ( पेट ) के समस्त रोगों को नष्ट कर देता है। इस रस को २ रत्ती भर लेकर गाय के घृत के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करना चाहिए तथा एक निष्क ( ४ माशे ) भर सफेद पुनर्नवा की जड़ अथवा हलदी के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पीना चाहिए॥४९-५१॥

अथ शिखिवाडवरसः—

**मारितं सूततास्राभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम्।**
**मर्दयित्वार्द्रकद्रावैर्यवक्षारयुतैर्दिनम्॥ ५२॥**
**त्रिगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च।**
**वातगुल्महरः ख्यातो रसोऽयं शिखिवाडवः॥ ५३॥**
**विडङ्गं दाडिमं हिङ्गुसैन्धवैलासुवर्चलम्।**
**मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा कर्षैकं सुरया सह॥**
**वातगुल्महरं देयमनुपानं सुखावहम्॥ ५४॥**

मारित सूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल, ताम्रभस्म १ पल, अभ्रकभस्म १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसकर एक दिन तक अदरक के स्वरस तथा एकदिन तक यवक्षारोदक के साथ घोंट कर सुखा के महीन चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस रस को तीन रत्ती भर लेकर नागरवेल के पत्ते ( पान ) के रस के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा वायविड़ङ्ग, दाडिम ( अनार के बीज या छिलके ), शुद्ध हींग, सैन्धव नीमक, इलायची तथा सोंचल नीमक ( कालानीमक ) इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण कर बिजोरे निम्बु के रस के साथ एकदिन तक खरल करके सुखाकर शीशी में भर देवें। फिर इस चूर्ण को १ कर्षभर लेकर सुरा के साथ अथवा डेढ तोले भर कुमार्यासव के साथ उपर्युक्त रस के सेवन करने के पश्चात् अनुपान के रूपमें सेवन करना चाहिए। इस प्रकार से इस रस के सेवन करने के पश्चात् वात और गुल्म अथवा वातिकगुल्म को नष्ट करने वाले उपर्युक्त अनुपान का अवश्य सेवन करना चाहिए।

इस विधि से कुछ दिनों तक इस वातगुल्मनाशक वड़वाग्नि रस को सेवन करना चाहिए। वातगुल्म को नष्ट करने के लिये यह रस प्रसिद्ध है ॥ ५२-५४ ॥

अथ दीप्तामररसः—

**शुद्धं सूतं समं गन्धं सूतांशं मृतताम्रकम् ।**
**शाकवृक्षोत्थपञ्चाङ्गद्रवैर्मर्द्यं दिनत्रयम् ॥ ५५ ॥**
**दिनं सर्पाक्षिजैर्द्रावै रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।**
**पञ्चधा भूधरे चाथ चूर्णं जैपालतुल्यकम् ॥ ५६ ॥**
**द्विगुञ्जं भक्षयेच्चाज्यैः पित्तगुल्मप्रशान्तये ।**
**द्राक्षाहरीतकीक्काथमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥**
**रसो दीप्तामरो नाम पित्तगुल्मं नियच्छति ॥ ५७ ॥**

शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल तथा ताम्रभस्म १ पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक को कज्जली बनाकर उसमें ताम्रभस्म डालकर अच्छी प्रकार घोंट के शाकवृक्ष अर्थात् सागोन के पञ्चाङ्ग (त्वक् पत्र, पुष्प फल, मूल) के क्काथ के साथ तीन दिन तक घोंटना चाहिए। फिर सर्पाक्षी ( गन्धनाकुली–रास्नाभेद ) के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ एकदिन तक खरल करके शरावसम्पुट करके अथवा मूषामें बन्द करके गजपुट में फूंकना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध भेषज को निकालकर खरल में महीन चूर्ण करके फिर गन्धनाकूली के स्वरस के साथ घोंटकर शरावसम्पुट करके दूसरी बार गजपुट में पाक करना चाहिए। इस तरह शेष तीन वार उपर्युक्त औषध के स्वरस के साथ घोंटकर पाक करना चाहिए। सिद्ध रसको अच्छी प्रकार खरल में घोंटकर उसमें सिद्धरस के बराबर शुद्ध जयपाल का चूर्ण मिलाकर सबको महीन पीसकर काचकी शीशी में भर देना चाहिए। इसको दीप्तामर रस कहते हैं। दो रत्ती भर इस रसको गोघृत के साथ प्रतिदिन पित्तगुल्म के नष्ट करने के लिये सेवन करना चाहिए औषध सेवन करने के पश्चात् बड़ी दाख और हरड़ का क्वाथ बनाकर अनुपान करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह दीप्तामर रस पित्तगुल्म को नष्ट कर देता है॥५५-५७॥

अथ विद्याधररसः—

**गन्धकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ।**
**शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ ५८ ॥**

**पिप्पल्यास्तु कषायेण भावयेत्स्नुग्भवेन च ।**
**निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रगुल्मं प्लीहं विनाशयेत् ॥**
**रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ ५६ ॥**

शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, ताम्रभस्म, शुद्धमनःशिला और शुद्ध पारद ये सब द्रव्य समप्रमाण अर्थात् प्रत्येक एक २ पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको खरल में महीन घोटकर छोटी पिप्पली के क्वाथ के साथ भावित करके एक दिन तक घोटना चाहिए । फिर इसी प्रकार एक दिन तक थूहर ( स्नुही ) के शुद्ध दुग्ध के साथ घोटकर सुखा के महीन चूर्ण करके काच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख देवें । इसको विद्याधर रस कहते हैं । इस रस को निष्कार्ध अर्थात् दो माशे भर लेकर शहद् ( क्षौद्र ) के साथ प्रति दिन सेवन करना चाहिए तथा बाद में थोड़ा सा गोमूत्र का अनुपान करना चाहिए । इस तरह कुछ दिन तक सेवन करने से यह रस गुल्म और प्लीहा की वृद्धि को नष्ट कर देता है ॥ ५८–५९ ॥

अथ रक्तोदरकुठाररसः—

**पारदं शिखितुत्थं च जैपालं पिप्पली समम् ।**
**आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीदुग्धेन भावयेत् ॥ ६० ॥**
**सूक्ष्ममात्रां वटीं खादेत्स्त्रीणां हन्याज्जलोदरम् ।**
**चिञ्चाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ।**
**रक्तोदरं हरेत्सैव कठिनं रेचयेदनु ॥ ६१ ॥**

शुद्ध पारद, शुद्ध किया हुआ नील तुत्थ, शुद्ध जयपाल के बीजों का चूर्ण छोटी पीपल का चूर्ण तथा आरग्वध ( अमलतास ) के फल ( फली ) का भीतरी सूखे हुए गूदे का चूर्ण इन सब द्रव्यों को बराबर २ लेकर खरल में महीन पीस के वज्री अर्थात् थूहर के शुद्ध दुग्ध के साथ भावित करके एक दिन तक अच्छी प्रकार घोटकर दो २ रत्ती भर की गोलियां बना के छाया में सुखाकर उन्हें काच की शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ वटी प्रातःकाल सेवन करके इमली के पके हुए फल के क्वाथ का अनुपान करना चाहिए । औषध के जीर्ण हो जाने पर अथवा भूख लगने पर दही के साथ पुराने चांवलों के भात का पथ्य के रूप में सेवन करना चाहिए । इस प्रकार इस रस को प्रति दिन सेवन करने से स्त्रियों का

जलोदर और रक्तोदर अर्थात् रक्तगुल्म को शीघ्र ही नष्ट कर देता है। यह रस रेचक भी है, अर्थात् इस रस की वटी के भक्षण करने के कुछ समय के पश्चात् रक्तगुल्म के रक्त को स्रवित करके निकाल देता है ॥ ६०-६१ ॥

**विमर्श.—रसरत्नाकर में "जैपालं पिप्पली समम्" इस स्थान पर "जैपालं गन्धकं समम्" ऐसा पाठ है, वहां पर उसी प्रमाण से पिप्पली न लेकर शुद्ध गन्धक लेना चाहिए तथा "सूक्ष्ममात्रां वटीं खादेत् स्त्रीणां हन्यात् जलोदरम्" इस स्थान पर "धात्रीफलरसंखादेत् स्त्रीणां रक्तोदरं हरेत्" ऐसा पाठ भेद है, प्रायः यह पाठ युक्त भी है क्योंकि स्त्रियों को जलोदर प्रायः नहीं होता है। रसेन्द्रसार संग्रह में इसी रस को उदरारिरस तथा रसरत्नाकर में नाराचक रस कहा है। इस रस के निर्माण में उक्तग्रन्थों में इस ग्रन्थ के पाठ से थोड़ा ही मत भेद है शेष सब पाठ समान ही है।**

अथ वैश्वानररसः—

**विष्णुक्रान्ता च जैपालं लाङ्गली सुरदारिका ।**
**यवचिञ्चाम्बुसारेण तासां द्विगुणगन्धकम् ॥ ६२ ॥**
**पक्वं विमर्दितं सूतं स्वेदयेन्मृदुनाऽग्निना ।**
**गुल्मे गुञ्जात्रयं चास्य सोष्णाम्बुघृतसन्धवम् ॥ ६३ ॥**
**वातजे कफजे लिह्यान्मध्वार्द्रकसमन्वितम् ।**
**सशितामाक्षिकं पैत्ते सोऽयं वैश्वानरो रसः ॥ ६४ ॥**

विष्णुक्रान्ता ( अपराजिता ), शुद्ध जयपाल के बीजों का चूर्ण, कलिहारी की जड़ का चूर्ण, सुरदारिका ( स्फूर्का अथवा देवदाली ) का चूर्ण इन में से प्रत्येक को एक २ पल तथा इन से द्विगुण ( ८ पल ) शुद्ध गन्धक और गन्धक के बराबर ही शुद्ध पारद लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना के उस में उपर्युक्त औषधियों का महीन चूर्ण मिला कर सब को एकत्र महीन पीस के यव ( जौ ), चिञ्चा ( पकी इमली ) और अम्बु अर्थात् सुगन्ध वाला इन तीनों का क्वाथ बनाकर उस के साथ एक पक्ष तक घोट कर गोला बना के शराव सम्पुट कर के कुक्कुट पुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीतल होने पर सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस के काच की शीशी में भर कर रख दें। इस को वैश्वानर रस कहते हैं। इस रस को तीन रत्ती भर ले कर घृत और सैन्धव नीमक के साथ मिला कर गरम जल के साथ प्रतिदिन वातिक गुल्म में सेवन कराना चाहिए। तीन रत्ती भर इस रस को शहद् और अदरख

के रस के साथ प्रतिदिन श्लैष्मिक गुल्म में सेवन कराना चाहिए तथा इस रस की उक्त मात्रा ही के प्रमाण से मिश्री और शहद् के साथ मिलाकर प्रतिदिन पैत्तिक गुल्म में सेवन कराना चाहिए ॥ ६२-६४ ॥

अथाग्निकुमाररसः—

(१)नैपालगन्धाश्मरसत्रयाणां फलत्रयस्यापि कटुत्रयस्य ।
मूत्रे गवां षोडशभागमाने भागान्नवैकत्र दिनत्रयं च ॥ ६५ ॥
विमर्द्य तेषां बदरप्रमाणां बद्ध्वा वटीमुष्णजलानुपानात् ।
एकत्र युक्ता सहसा निहन्ति सा रेचयित्वा मलजालमादौ ॥६६॥
गुल्मं यकृत्पाण्डुविबन्धशूलं मान्द्यं ज्वरं चाथ जलोदरं च ।
अग्नेः कुमारः सहसा निहन्यादुद्दीपितो दीप इवान्धकारम् ॥६७॥

नेपाल अर्थात् ताम्र भस्म १ तोला, गन्धाश्म ( शुद्ध गन्धक ) १ तोला, शुद्ध पारद एक तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, बहेड़े का चूर्ण १ तोला, आंवले का चूर्ण १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष औषधियों का चूर्ण और ताम्र भस्म मिला कर सब को एकत्र अच्छी प्रकार महीन घोट कर सोलह तोले गोमूत्र के साथ तीन दिन तक घोट कर बेर की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन उष्ण ( मन्दोष्ण ) जल के साथ सेवन करनी चाहिए। इस रस की गोलियां सेवन करने से प्रथम सञ्चित हुए दूषित मल के समूह को निकाल देती हैं तथा पश्चात् सर्व प्रकार के गुल्म, यकृत् की वृद्धि, पाण्डु रोग, विबन्ध ( मलावरोध या कब्जी ), शूल, अग्निमान्द्य, ज्वर और जलोदर को शीघ्र ही नष्ट कर देती हैं। इस प्रकार यह अग्नि कुमार रस प्रतिदिन सेवन करने से उपर्युक्त रोगों को नष्ट कर देता है जैसे उद्दीप्त दीपक अन्धकार को नष्ट कर देता है ॥ ६५-६७ ॥

अथ सर्वाङ्गसुन्दररसः—

शुद्धमभ्रं रसं गन्धं मेलयित्वा समांशकम् ।
तालमूलीरसैर्मर्द्यं कल्कं सम्पादयेच्छुभम् ॥ ६८ ॥

---

( १ ) नेपाल इत्यत्र जैपाल इति पाठान्तरम् ।

तत्कल्कं कूपिकामध्ये कृत्वा वक्त्रं निरुन्धयेत् ।
खटिन्या मुखमाच्छाद्य मृदा खर्परसंज्ञया ॥ ६९ ॥
कूपिकां लेपयेत्सर्वां शोषयेदातपे खरे ।
कूपिकां भूमिगर्तायां कृत्वा तां पुटयेत्ततः ॥ ७० ॥
कूपिकां मर्दयेत्कृत्स्नां खटिन्या सह संयुताम् ।
त्रिभिः क्षारैस्तु तच्चूर्णं पञ्चभिर्लवणैस्तथा ॥ ७१ ॥
त्र्यूषणं त्रिफला हिङ्गु पुरमिद्रयवास्तथा ।
गुञ्जाकिनी तथा चित्रमजमोदा यमानिका ॥ ७२ ॥
एतानि समभागानि समादाय विचूर्णयेत् ।
योजयेत्सह सूतेन ततः सिद्धयति सूतकः ॥ ७३ ॥
सिद्धसूतस्य चूर्णेन(२) मार्षं सर्वरुजापहम् ।
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय रसः सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ ७४ ॥
उष्णोदकानुपानं तु पाययेच्चुलुकद्वयम् ।
भक्षयेदेकवारं तु द्विवारं न कथञ्चन ॥ ७५ ॥
दिनमध्ये वारमेकं दातव्यो भिषजा रसः ।
शीतोदकं सकृद्देयं तृडभावेऽप्यहर्निशम् ॥ ७६ ॥
भोजने वर्जयेत्तत्र शाकाम्लं द्विदलं तथा ।
तैलाभ्यङ्गं ब्रह्मचर्यं वर्जयेच्छयनं दिवा ॥ ७७ ॥
हितं तत्सेवयेत्पथ्यमहितं च विवर्जयेत् ।
अनेनैव प्रकारेण योजयेत्प्रतिवासरम् ॥ ७८ ॥
यस्त्वचेतनतां याति सन्निपाती कथञ्चन ।
तस्य नातिप्रयोक्तव्यो रसो यत्नाद्विषग्वरैः ॥ ७९ ॥
देवाग्निऋषिविप्रांश्च कुमारीयोगिनी गणान् ।
पूजयित्वा यथाशक्त्या सेव्यः प्राणेश्वरो रसः ॥ ८० ॥
गुल्मं चाष्टविधं वातं शूलं च परिणामजम् ।
सन्निपातज्वरं चैव प्लीहानमपकर्षति ॥ ८१ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च मन्दाग्निं ग्रहणीं तथा ।

---

( २ ) चूर्णेन इत्यत्र पर्णेन इति पाठान्तरम् ।

**शिववत्सेवितो हन्ति रसः प्राणेश्वरस्त्वयम् ॥ ८२ ॥**

शुद्ध अभ्रकभस्म १ पल, शुद्ध पारद १ पल तथा शुद्ध गन्धक १ पल लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें अभ्रक भस्म मिला के तालमूली ( मुसली ) के रस के साथ एक दिन तक घोटकर सुखा के चिकनी मिट्टी के कर्दम ( पङ्क या कीचड़ ) से लिप्त हुए वस्त्र की पट्टिकाओं से सात वार कपड़ मिट्टी करके सुखाई हुई आतसी शीशी में भर कर उसके मुख को खड़िया के डाट से बन्द करके जल में पीसे हुए गुड़ और चूने की पिष्टी से सन्धिबन्धन करके सुखा कर उस शीशी को पृथ्वी में गाड़ कर उसके ऊपर जंगली उपले डाल कर वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए, फिर स्वाङ्गशीतल यंत्र को पृथ्वी में से निकाल कर उसके ऊपर की मिट्टी वस्त्र आदि को हटाकर शीशी को साफ करके जहां पर सिद्ध रस लगा हो उसके अनुसार शीशी को फोड़ कर निकाल लें। फिर इस रस को खरल में महीन पीस लेना चाहिए। पश्चात् यवक्षार, स्वर्जिक्षार, शुद्ध सुहागा पांचो नीमक ( सैन्धव, समुद्र, विड, सौवर्च्चल, रोमक ), सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, आंवले का चूर्ण, शुद्ध हींग, पुर अर्थात् शुद्ध गूगल, इन्द्रयव ( इन्द्रजौ ) का चूर्ण, गुञ्जाकिनी अर्थात् शुद्ध गुञ्जाबीजों का चूर्ण, चित्रक का चूर्ण, अजमोद का चूर्ण और अजवाइन का चूर्ण इन सबको समभाग लेकर उपर्युक्त सिद्ध रस के बराबर के प्रमाण से उस में मिलाकर सब को एकत्र अच्छी प्रकार घोट कर महीन चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह सर्वाङ्गसुन्दर नामक रस सिद्ध होता है। इस रस को एक माशे भर लेकर पान के रस के साथ प्रति दिन सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से दो चुल्लभर गरम ( मन्दोष्ण ) जल पीना चाहिए। प्रायः इस रसको उपर्युक्त मात्रा के अनुसार दिनमें एकवार ( प्रातःकाल ) ही सेवन करना चाहिए, दूसरी वार सेवन करना निषिद्ध है। इस रसके सेवन करने के पश्चात् चाहे प्यास लगे या न लगे तो भी दिनमें या रात्रि में कमसे कम एकवार अवश्य ही शीतल जल पिलाना चाहिए। इस रसके सेवन करते समय भोजन के साथ शाक और अम्ल-पदार्थों का त्याग करना चाहिए, तथा भोजन में भी द्विदली अन्न का सेवन वर्जित है, एवं दिन में निद्रा भी नहीं निकालनी चाहिए तथा तैलकी मालिश करना भी वर्जित है। प्रायः ब्रह्मचर्य का पालन और हितकारक पदार्थों का सेवन

करना पथ्य है। इसी विधिसे प्रतिदिन इस रसका सेवन करना चाहिए। सन्निपात के कारण रोगी मूर्च्छित हो गया हो तब उस दशामें बुद्धिमान् वैद्य इस रसको अधिक मात्रा में प्रयुक्त नहीं करें, स्वल्प मात्रा ही में देनेसे लाभ हो सकता है। देवता, अग्नि, ऋषि, महर्षि, ब्राह्मण, कुमारी ( छोटी बालिकाएं) योगिनी और रुद्रगण इत्यादि पूजनीयों को यथाविधि तथा यथाशक्ति से पूज कर इस रसका सेवन करना चाहिए। यह सर्वाङ्गसुन्दरप्राणेश्वर रस आठ प्रकार के गुल्म, वातरोग, परिणामशूल, सन्निपातज्वर, प्लीहा की वृद्धि, कामला, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि और ग्रहणी रोग को नष्ट कर देता है जिस प्रकार शिवजी अपने भक्त के कष्टों को दूर कर देते हैं ॥ ६८–८२ ॥

अथ गुल्मनाशनरसः—

**गन्धकं रसतुल्यं च द्विभागं सैन्धवस्य च ।**
**त्रिभागं टङ्कणं प्रोक्तं चतुर्भागं च तुत्थकम् ॥ ८३ ॥**
**पञ्चमं तु वराटं स्यात्षड्भागं शङ्खमेव च ।**
**वह्निमूलकषायेण चिरबिल्वरसेन च ॥ ८४ ॥**
**आर्द्रकस्य रसेनात्र प्रत्येकं तु पुटत्रयम् ।**
**तत्समं मारिचं चूर्णं शाणार्धं भक्षयेन्नरः ॥**
**पञ्चगुल्मं क्षयं श्वासं मन्दाग्निं चाशु नाशयेत् ॥ ८५ ॥**

शुद्ध गन्धक एक पल, शुद्ध पारद एक पल, सैन्धानीमक दो पल, शुद्ध टङ्कण ३ पल, शुद्ध नीला थोथा ४ पल, वराट ( कौड़ी ) को भस्म ५ पल लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार महीन पीसकर चित्रक की जड़ के क्वाथ के साथ घोट कर पुट देना चाहिए। इस प्रकार चित्रक की जड़ के क्वाथ के साथ घोट कर तीन पुट देना चाहिए, फिर उसी तरह अदरख के स्वरस के साथ घोट करके तीन पुट देने चाहिए। इस प्रकार पुट देने के पश्चात् सिद्ध हुए रस को खरल में महीन पीसकर उसमें उस रस के समान ही काली मरिचों का महीन चूर्ण मिलाकर अच्छी प्रकार घोट के काच की शीशी में भर देवें। इस रस को आधे शाण ( २ माशे ) भर लेकर यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से पांच प्रकार के गुल्म, क्षय, श्वास और मन्दाग्नि को शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥ ८३–८५ ॥

अथ सामान्योपायः—

तिलक्काथः—

**तिलक्काथो गुडं चाज्यं व्योषं भार्ङ्गीरजोऽन्वितम्।**
**पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पे तु योषितः॥ ८६॥**

एक पल भर तिल के क्वाथ में १ तोला गुड़, दो तोला गोघृत, ६ माशा त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) का चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन पान करने से स्त्रियों का रक्तगुल्म नष्ट हो जाता है, तथा जिस स्त्री का मासिकधर्म गर्भधारण के अतिरिक्त कारण से रुक गया हो अथवा कठिनता से मासिक धर्म होता हो उस स्त्री को इस योग के सेवन कराने से सब रजःकृच्छ्रादि कष्ट दूर हो जाते हैं॥ ८६॥

देवदार्वादिचूर्णम्—

**देवदारु कणा भार्ङ्गी शुण्ठी करञ्जवल्कलम्।**
**चूर्णं तिलानां क्काथेन रक्तगुल्महरं भवेत्॥ ८७॥**

देवदार १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, भारङ्गी का चूर्ण १ तोला, सौंठ का चूर्ण १ तोला, करञ्ज की छाल का चूर्ण १ तोला लेकर सब को एकत्र खरल में महीन पीसकर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण के प्रतिदिन एक तोले भर लेकर तिलों के पल भर क्वाथ के साथ पान करने से स्त्रियों का रक्तगुल्म नष्ट हो जाता है॥८७॥

अथ गुल्मे पथ्यानि—

**वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम्। खादयेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च॥**

इति गुल्म-चिकित्सा।

देवदालीपञ्चाङ्गचूर्णम्—

**पञ्चाङ्गदेवदाल्यास्तु चूर्णकर्षं शिवाम्बुना।**
**मासमात्रं पिबेद्यस्तु प्लीहा तस्य करोति किम्॥ ८८॥**

देवदाली ( हस्ती घोषक=वन्दाल ) के पञ्चाङ्ग का चूर्ण बना कर काच की शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को प्रतिदिन एक २ कर्ष लेकर हरड़ के क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिए। इस प्रकार एक मास तक इस चूर्ण के सेवन करने से प्लीहा की वृद्धि नष्ट हो जाती है तथा उस से मनुष्य को कुछ भी अनिष्ट या अन्य रोगोपद्रव नहीं होता है॥ ८८॥

तक्रासवः—

**लवणं रजनी राजी प्रत्येकं पलपञ्चकम्।**

चूर्णितं निक्षिपेद्भाण्डे शततक्रपलान्विते ॥ ८९ ॥
त्रिदिनं मुदितं रक्षेत्पश्चात्पञ्चपलं सदा ।
पीत्वा विनाशयेत्प्लीहं त्रिःसप्ताहान्न संशयः ॥ ९० ॥

सैन्धव नीमक ५ पल, हलदी का चूर्ण ५ पल, राई के बीजों का चूर्ण ५ पल लेकर सब को खरल में डाल कर एकत्र पीस कर महीन चूर्ण कर के एक बड़े मिट्टी के भाण्ड में डाल कर उस में सौ पल ( १ तुला ) भर गाय की छाछ ( तक्र ) डाल कर भाण्ड के मुख को सकोरे से ढक कर साफ कपड़े से बन्द कर के कपड़ मिट्टी कर के तीन दिन तक सुरक्षित रख दें, चौथे दिन सुबह उसका मुख खोल कर उस में से ५ पल भर एक प्याले ( कटोरी ) में निकाल कर पीनी चाहिए। छाछ के पीने के पश्चात् उस भाण्ड को ढक कर रख देवें। फिर दूसरे दिन सुबह ५ पल लेकर पान करें इस तरह तीन सप्ताह ( २१ दिन ) तक उस का पान करने से कैसी भी प्लीहा बढ़ी हो वह धीरे २ अवश्य ही नष्ट हो जाती है। प्रायः यह योग प्रत्यक्ष फलप्रद है ॥ ८९-९० ॥

एरण्डक्षारम्—

समूलपत्रमेरण्डं रुद्ध्वा भाण्डे पुटे पचेत् ।
तत्कर्षं पलगोमूत्रः पीतं प्लीहविनाशनम् ॥ ९१ ॥

एरण्ड के पत्र और जड़ को ज्यादा मात्रा से लेकर एक भाण्ड के भीतर भर कर अग्नि जला के बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार भस्म हो जाने के पश्चात् उस राख ( भस्म ) को चौगुने पानी में घोल कर तीन तह किए हुए कपड़े से २१ वार छान कर छने हुए शुद्ध पानी को बड़े पात्र या कड़ाही में भर कर अग्नि से उड़ा कर पात्र में बचे हुए क्षार को ग्रहण करना चाहिए। इस क्षार में से प्रतिदिन १ कर्ष भर क्षार लेकर १ पल भर गोमूत्र के साथ प्रतिदिन ( जब तक रोग ठीक न हो तब तक ) पान करने से प्लीह वृद्धि रोग नष्ट हो जाता है ॥९१॥

**विमर्शः—एरण्ड को जड़ और पत्र ज्यादा मात्रा में नहीं मिले तो सम्पूर्ण एरण्ड के वृक्ष को पञ्चाङ्ग सहित भाण्ड में जलाकर अथवा ऐसे ही पृथ्वी पर खुले मैदान में जलाकर उसकी राख से क्षारनिर्माण की विधि से क्षार बनाना चाहिए।**

**क्षारनिर्माणविधिः—**

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि दग्ध्वा भूतिं समाहरेत् ।
विमले भाजने न्यस्य सलिलन्तु चतुर्गुणम् ॥ १ ॥

प्रक्षिप्य मर्दयेत् सम्यक् यावन्मात्रं भिषग्वरः।
त्रिगुणीकृतवस्त्रेण स्रावयेत् सलिलं ततः॥ २॥
स्रावितं सलिलञ्चाथ वह्नौ सन्तापयेत्ततः।
निःशेषं सलिलं ज्ञात्वा निर्मलं क्षारमाहरेत्॥ ३॥ इति र० त० पृ० १९७१

शुरपुङ्खादियोगः—

शरपुंख्यर्कयोर्मूलं चिरं दन्तैश्च चर्वितम्।
गिलितं नाशयेत्प्लीहं यवागूपानमाचरेत्॥ ९२॥

शरफोंका और आक ( मदार ) की जड़ को दांतों से चबाकर उनके रस को चूसना चाहिए अथवा दोनों का रस निकाल कर उससे यवागू पकाकरी नपी चाहिये। इस योग का कुछ दिनों तक सेवन करते रहने से प्लीहा की वृद्धि नष्ट होकर वह अपने स्वरूप में होजाती है। अर्थात् शारीर शास्त्र ( Anotomy ) के अनुसार उसकी जितनी लम्बाई चौड़ाई लिखीगई है उस रूप में होजाती है॥९२॥

वज्रक्षारप्रयोगः—

वज्रक्षारं तु कर्षैकं भक्ष्यं प्लीहविनाशनम्॥ ९३॥

पूर्व में कही हुई विधि के अनुसार थूहर की भस्म ( राख ) से क्षार बनाकर उसमें से प्रतिदिन एक२ कर्षभर लेकर गौमूत्र अथवा उष्णजल या काञ्जी इनमें से किसी एक के साथ पान करने से प्लीहवृद्धि नष्ट हो जाती है॥ ९३॥

काञ्चनीप्रयोगः—

काञ्चनीमूलचूर्णं तु निष्कमात्रं सदा पिबेत्।
सुरया काञ्जिकैर्वाऽथ हन्ति प्लीहं चिरन्तनम्॥ ९४॥

काञ्चनी ( हरिद्रा अथवा धत्तूरा अथवा कचनार ) की जड़ का महीन चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इसमें से १ निष्क ( ४ माशे ) भर चूर्ण लेकर सुरा अथवा काञ्जी के साथ प्रतिदिन पान करने से पुराना प्लीह-वृद्धि रोग भी अच्छा हो जाता है। विशेष कर यहां पर काञ्चनी शब्दसे हरिद्रा के कन्द का ही प्रयोग करना चाहिए॥ ९४॥

अथ प्लीहि रक्तमोक्षणोपदेशः—

प्लीहानां पृष्ठदेशे तु रक्तस्रावं च कारयेत्।
अर्कक्षीरं ससिन्धूत्थं क्षिपेत्तत्र रुजापहम्॥ ९५॥

जिस मनुष्य की प्लीहा बढ गई हो उस मनुष्य की प्लीहा की स्थिति का ज्ञान

करके उसके पृष्ठ देश से प्लीहा की शिरा (Vein) का वेध करके रक्त मोक्षण करना चाहिए अथवा प्लीहा की शिरा न खोलकर अङ्ग के किसी भी स्थान से शिरावेध करके या जलौका लगा के अथवा अन्य सरलोपाय से रक्तमोक्षण करना चाहिए। रक्तमोक्षण के स्थान पर उत्पन्न हुए घाव की शुद्धि तथा पूर्ति ( रोपण ) के लिये रोपणोपचार करना चाहिए। यदि प्लीहा सम्बन्धि शिरावेध किया हो तो उस जगह रक्त निकल जाने के बाद थोड़े से आक के दुग्ध में सैन्धवलवणचूर्ण मिलाकर भर देना चाहिए ॥ ९५ ॥

विमर्शः—प्लीहा ( Spleen ) निः स्रोतकग्रन्थियों में प्रधान तथा उन सब से बड़ी ग्रन्थि है। यह उदरगुहा में वामपार्श्व में स्थित है। नीरोगावस्था में प्लीहा सात अथवा आठ अङ्गुल लम्बी, चार अङ्गुल चौडी तथा दो अङ्गुल मोटी होती है। यह मोटे खर्पर ( कपाल ) की आकृति का है। इसका रङ्ग पके हुए जामून के समान श्याम होता है। इसका वजन प्रायः १५ तोले भर होता है। विषमज्वर, काला अजार, आदि रोगों में इसका आकार तथा गुरुता बढ जाती है। इसका कार्य आयुर्वेद के मत से रक्त को रञ्जित करने वाले पित्त का निर्माण है तथा डाक्टरी के मत से लालरक्तकण ( Red Bloodcorpcles ) निर्माण करने का है तथा इससे आभ्यन्तरिकस्राव भी होता है ॥

अथ प्लीहरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः—

यकृत्प्लीहगदे प्राज्ञः पथ्यञ्चोदरदर्शितम्।
निषेवेत तथापथ्यं तेनासौ सुखमश्नुते ॥ १ ॥
इति प्लीहरोगचिकित्सा।

अथ शूल-चिकित्सा—

अथाग्निमुखरसः—

मृतसूताभ्रकं ताम्रं गन्धकं चाम्लवेतसम्।
विषं पलत्रयं तुल्यं सर्वं मर्द्यं दिनावधि ॥ ९६ ॥
विषमुष्टिर्जया वासा विजया रक्तशाकिनी।
बृहती च महाराष्ट्री धुस्तुरः पद्मपत्रकः ॥ ९७ ॥
नागवल्ली शमी जम्बू भाव्यमेभिर्द्रवैरहम्।
समांशं पञ्चलवणं दत्त्वाऽऽर्द्रकरसेन च ॥ ९८ ॥

दिनं पेष्यं ततः कुर्याद्वटिका चणमात्रकाः ।
भक्षयेद्वातशूलार्तः सोऽयमग्निमुखोरसः ॥ ९९ ॥
हरितकी प्रतिविषा हिङ्गु सौवर्चलं वचा ।
कलिङ्गेन्द्रयवास्तुल्यं पाययेदुष्णवारिणा ।
कर्षैकमनुपानं स्याद्वातशूलहरं परम् ॥ १०० ॥
चिञ्चाक्षारं जलैःपीतं शूलं शान्तिमवाप्नुयात् ॥ १०१ ॥

मृतसूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, अमल बेंत का चूर्ण १ तोला, शुद्धवत्सनाभविषका चूर्ण १ तोला, त्रिफला का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में महीन पीस कर चूर्ण करलेना चाहिए । फिर विषमुष्टि । (शुद्ध कुचला) जयन्ती, अडूसा ( वासा ), भाङ्ग, लाल पुनर्नवा या लाल डण्डी की चोलाई, बड़ी कटेरी, जल पीपल, धत्तूरा, कमल के पत्र, नागबल्ली ( नागरवेल पान ), शमी-वृक्ष की छाल, जामून के वृक्ष की छाल इन प्रत्येक द्रव्य के स्वरस अथवा क्वाथ से तीन २ बार पृथक् २ मृतसूतादिक के चूर्ण को भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर उसमें पीसा हुआ सैन्धव नीमक १ तोला समुद्री नीमक १ तोला, काला ( विड़ ) नीमक १ तोला, सौंचल नीमक १ तोला, रोमक नीमक १ तोला मिला-कर अच्छी प्रकार घोटकर अदरख के रस के साथ सब को एकदिन तक खरल करके चने के प्रमाण की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इस की एक एक वटी प्रतिदिन वातिकशूल से पीड़ित पुरुष सेवन करें । इसको अग्निमुख रस कहते हैं । इस रस के सेवन करने के पश्चात् हरड़, अतीस, शुद्ध हींग, काला नीमक, वच, कलिङ्ग ( मीठे इन्द्र जो ) और कड़वे अर्थात् जङ्गली इन्द्र जो इन द्रव्यों को समभाग लेकर महीन चूर्ण करके इस चूर्ण को एक तोले भर लेकर गरम जल के साथ पीना चाहिए । इस अनुपान से प्रतिदिन इस रस को सेवन करने से वातिक शूल नष्ट हो जाता है । साधारण शूल में इस रस को इमली के फल के छिलकों की भस्म से बनाये हुए १ माशे भर क्षार के साथ सेवन करने से शान्ति मिलती है । अर्थात् शूल से उत्पन्न होने वाली वेदना दूर हो जाती है ॥ ९६–१०१ ॥

विमर्शः—रसेन्द्रसारसंग्रह में इस रस के निर्माण में "विषमुष्टिः" इस पद से लेकर "जम्बू" इस पदतक

"कनकभुजगवल्लीकण्ट ारीजयाग्निः । कमलसलिलवासामुष्टिवज्यम्बुपूरैः ॥
अरुणसदृशपाकैर्मातुलुङ्गैश्च भोज्यः ।

इस प्रकार का पाठ भेद है तथा रसरत्नाकर में

"विषमुण्डतिका वासा विजया रक्तशालिनी । बृहती च महाराष्ट्री धुस्तूरं पञ्चपत्रकम्
अस्त्यावर्त्यामृताजम्बूर्गव्यं नीलोत्पलद्रवैः ॥"

इस प्रकार की भावना देने के लिए पाठान्तर है । शेष पाठ तुल्य ही है । कुछ सम्प्रदाय के मत से पाञ्चों लवणों को समभाग लेकर मृतसूतादि चूर्णित औषधियों के बराबर डालने के लिये उपदेश किया गया है ।

अथ त्रिनेत्ररसः—

खण्डितं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं शुल्वं मृतं रसम् ।
दिनैकं चार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पचेत्पुटे ॥ १०२ ॥
त्रिनेत्राख्यो रसः सोऽयं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् ॥
सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ।
पक्तिशूलहरं ख्यातं मासमात्रान्न संशयः ॥ १०३ ॥

खण्डित ( चूर्ण ) किये हुए हरिण के शृङ्ग का चूर्ण ( अर्थात् हरिणशृङ्ग भस्म ) १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, शुल्व ( ताम्र ) की भस्म १ तोला, मृत रस अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला लेकर सब को खरल में एकत्र करके अच्छी तरह से घोट कर महीन चूर्ण बना के एक दिन तक अदरख के रस के साथ घोटकर गोला बना के सुखा कर शराव सम्पुट में बन्द कर के घुपुट में पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर कर रख देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को त्रिनेत्र रस कहते हैं । इस रस को एक माशे भर लेकर मधु और घृत के साथ मिलाकर भक्षण करना चाहिए । रस को भक्षण करने के पश्चात् सैंधा नीमक, ( ६ रत्ती ), जीरे का चूर्ण १ मा०, शुद्ध हींग ६ रत्ती भर लेकर महीन चूर्ण करके मधु और घृत के साथ सेवन करें । इस विधि से इस रस को एक मास तक प्रतिदिन सेवन करते रहने से भोजनोत्तर पाचन के समय में होने वाला ( परिमाण ) शूल नष्ट हो जाता है ॥ १०२–१०३ ॥

विमर्शः—रसेन्द्रसार संग्रह तथा रसरत्नाकर में "खण्डितम्", इस पद के स्थान में "टङ्कणम्", इस प्रकार का पाठ है तथा "गुल्वम्" इस जगह पर "गन्धः" इस प्रकार का पाठ रसेन्द्रसारसंग्रह में और "शुद्धम्" इस प्रकार का रसरत्नाकर में पाठान्तर है।

मात्रा—प्रायः इस रस को २ रत्ती से प्रारम्भ करके विवेकपूर्वक एक माशे भर तक प्रतिदिन सेवन कराना चाहिए। 'रसेन्द्रसार संग्रह में इस रस को त्रिगुणाख्य रस कहा गया है॥

अथ सौभाग्ययोगः—

टङ्कणं मूर्च्छितं सूतं यवक्षारं समं समम्।
चूर्णितं भक्षयेन्माषं मधुना पक्तिशूलनुत्॥
जम्बूमांसाज्य योर्यूषमनुपानं पिबेत्सदा॥ १०३॥

शुद्ध टङ्कण १ पल, मूर्च्छित पारद अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल तथा यवक्षार १ पल भर लेकर सबको खरल में महीन पीस कर काच की शीशी में भर देवें। इस रस में से १ माशे भर रस लेकर मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से पक्ति शूल नष्ट होता है। इस रस के सेवन करने के पश्चात् जम्बू ( शृगाल ) के मांस के यूष में घृत मिला कर अनुपान करना चाहिए। अथवा जम्बूमांस और आज्य (अजाया इदमाज्यमिति व्युत्पत्त्या) अर्थात् छाग के मांस के यूष का पान करना चाहिए॥ १०४॥

अथ चिन्तामणिरसः—

सूतेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य कोरण्टनिम्बूत्थरसैर्दिनं तत्।
चिञ्चोद्भवक्षाररसेन चर्कं दिनं च गोलं रविसम्पुटस्थम्॥ १०५॥
लिप्त्वा मृदा शुष्कमतोव कृत्वा सामुद्रयन्त्रेण पुटं ददीत।
उद्धृत्य शीतं रसपादभागं प्रक्षिप्य गन्धं विषवेन्मनाक् च॥ १०६॥
विषं च दत्त्वा रसपादभागं लोहस्य पात्रे तु कृशानुतोयैः।
रसस्तु चिन्तामणिरेष उक्तो वातारितैलेन समक्षिकेण॥ १०७॥
बल्लेन मानं प्रददीत चाम्लं तलं च शीतं परिवर्जयेच्च॥ १०८॥
हन्ति गुल्मं सहाध्मानं तूर्णं प्रतितुनीमपि॥ १०९॥

शुद्ध पारद १ पल तथा उससे द्विगुण ( २ पल ) शुद्ध गन्धक लेकर दोनों को खरल में कज्जली बनाकर फिर उसको पीली कटसरैया के स्वरस या क्वाथ

से एक दिन तक घोट कर निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोटना चाहिए। फिर इमली के क्षार के जल के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बना के ताम्र की कटोरियों के सम्पुट में बन्द कर के सम्पुट के ऊपर चिकनी मिट्टी के पङ्क ( कीचड़ ) का लेप करके सुखा कर सामुद्रयन्त्र ( लवणयन्त्र ) में पाक करके स्वाङ्गशीत सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में अच्छी प्रकार से महीन पीस कर उसमें पारद की अपेक्षा फिर चतुर्थांश शुद्धगन्धक मिलाकर अच्छी तरह घोट के फिर लघुपुट में पाक करना चाहिए। सिद्ध रस को पुट से निकाल कर उसमें पारद की अपेक्षा चोथाई शुद्ध वत्सनाभविष मिलाकर चित्रक के रस के साथ अच्छी प्रकार घोट के लोहे की कडाही के अन्दर डालकर चित्रक के स्वरस के साथ ही कुछ देर तक पकाकर स्वाङ्गशीतल होने पर उतार कर खरल में फिर महीन चूर्ण करके शीशी में भर कर रख दें। इस तरह से सिद्ध हुए इस रस को चिन्तामणिरस कहते हैं। एक वल्ल भर ( ३ रत्ती ) यह रस प्रति-दिन १ तोले भर एरण्ड के तैल और माक्षिक अर्थात् मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से आध्मान के सहित गुल्मरोग तथा वातव्याधि में कहे हुए तूनी और प्रतितूनी रोग को नष्ट करता है। अपथ्य—इस रस के सेवन करते समय खट्टे पदार्थ, तैल और शीतपदार्थों का सेवन करना वर्जित है॥ १०५-१०९॥

अथ शूलकेसरीरसः—

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं यामकं मर्दयेद् दृढम्।
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं सम्पुटे तन्निरोधयेत्॥ ११०॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे धारयेद्भिषक्।
रुद्धा गजपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥ १११॥
सम्पुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम्।
भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिङ्गु शुण्ठीं च जीरकम्॥ ११२॥
वचामरिचसञ्चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत्।
असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं शूलकेसरी॥ ११३॥

शुद्ध पारद एक पल तथा पारद से द्विगुण ( दो पल ) शुद्ध गन्धक लेकर खरल में एक प्रहर तक या इससे भी अधिक देर तक घोटकर दोनों की कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर उस कज्जली के बराबर अर्थात् आठ पल शुद्ध ताम्र के

पत्र लेकर उनको छोटी२ दो कटोरियां बनाकर उसमें से एक में उपर्युक्त कज्जली भरकर दूसरी कटोरी से कज्जली पूर्ण कटोरी को ढककर दोनों की सन्धियों को चिकनी मिट्टी से बन्दकर के समग्र सम्पुट पर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर एक मिट्टी के भाण्ड के आधे भाग को लवण से भरकर उसके ऊपर सम्पुट रख के फिर ऊपर से भाण्ड के अवकाश को लवण से भरकर शराव से उसका मुख बन्द करके पृथ्वी के भीतर गजपुट के प्रमाण का गड्ढा खोदकर उसके अर्द्धभाग को सूखे हुए उपलों से भरकर उनपर भाण्ड रख के गड्ढे के शेष भाग को उपलों से भरकर वहि प्रदीप्त कर देवें। समग्र उपलों के जल जाने के पश्चात् जब अग्नि बुझकर भाण्ड शीतल हो जाय तब उससे सम्पुट को निकाल कर कपडमिट्टी को धीरे२ दूर करके सिद्ध औषध को खरल में महीन पीसकर चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। इस रस को दो रत्ती भर लेकर पान के रस और मधु के साथ अथवा पान के पत्र के भीतर (वा कत्था, चूना आदि से संस्कृत ताम्बूल में) रखकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से शुद्ध हींग, सोंठ, जीरा, वचा, और मरिचों के १ कर्ष भर चूर्ण को उष्ण जल के साथ खाना चाहिए। इस प्रकार इस रस को सेवन करने से असाध्य शूल नष्ट हो जाता है। तथा शूल से उत्पन्न हुई वेदना शीघ्र ही शान्त होजाती है। इसको शूलकेसरीरस कहते हैं॥११०-११३॥

अथ मृतोत्थापनरसः—

**अभ्रं ताम्रं तथा लोहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम्।**
**सर्वमेतत्समाहृत्य गृह्णीयात् कुशलो भिषक्॥ ११४॥**
**आज्ये पलद्वादशके दुग्धे तत्स्वरसंख्यके।**
**पक्त्वा तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं घनतन्तुना॥ ११५॥**
**विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च।**
**पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान्यथासंमिश्रतां नयेत्॥ ११६॥**
**ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे स्थापयेत्तद्विचक्षणः।**
**आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा गुरुं रविम्॥ ११७॥**
**घृतेन मधुना मद्यैः पाययेन्माषकादिकम्।**
**अष्टौ माषान्क्रमेणैव वर्धयेत्तत्समाहितः॥ ११८॥**
**अनुपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा।**

जीर्णे शर्करशाल्यन्नमुद्गमांसरसादयः ॥ ११९ ॥
रसपानाऽविरुद्धानि द्रव्याण्यन्यानि योजयेत् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च आमवातं कफग्रहम् ॥ १२० ॥
गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत्प्लीहानशेषतः ।
अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन साधयेत् ॥ १२१ ॥

संस्कृत अर्थात् साधारण और विशेष दोनों प्रकार की शुद्धियों को करके फिर भस्म किये हुए निम्न द्रव्य ग्रहण करने चाहिए। यथा–अभ्रकभस्म १ पल, ताम्रभस्म १ पल, लौह भस्म १ पल लेकर तीनों को खरल में अच्छी प्रकार घोट के मिलाकर १२ पल घी और १२ पल दुग्ध में मिलाकर लौहे के कटाह में सब का पाक करना चाहिए। जब दुग्ध जल कर घृत मात्र शेष रह जाय तब उसमें विडङ्गचूर्ण, त्रिफला चूर्ण, चित्रकमूलचूर्ण और त्रिकटु ( सौंठ, मरिच, पिप्पली ) का चूर्ण इन चारों को या आठों द्रव्यों को मिलाकर मोटे वस्त्र से महीन छान कर एक पल भर डालें ( अथवा प्रत्येक को एक १ पल भर डालना चाहिए ऐसा भी सम्प्रदाय है किन्तु अधिकतर चारों को या आठों को मिला कर १ पल डालें ) फिर इन सब को कलच्छी से या लकड़ी के डण्डे से अच्छी प्रकार घोट कर मिट्टी के स्निग्ध बर्तन में अथवा काच के बर्तन में भर कर सुरक्षित रख देवें। इस प्रकार इस भेषज के सिद्ध हो जाने के पश्चात् जब रोगी अपने लिये तिथि वारनक्षत्रचन्द्रमादिकग्रहों करके उत्तम दिन हो उसे विचार कर गुरु तथा सूर्य भगवान् की पूजा करके इस रस को प्रथम दिन एक माशे भर लेकर घृत, मधु अथवा मद्य ( आसव अरिष्टादिक ) आदि के साथ सेवन करें तथा दूसरे दिन दो माशे भर लेकर उक्त घृतादिकों में से किसी एक के साथ सेवन करें, इस प्रकार प्रति दिन एक माशा बढाकर आठवें दिन आठ माशे तक इस रस को सेवन करें, तदनन्तर यदि रोग शान्त न हुआ हो तो योग्य मात्रा से इस रस को उन्हीं पदार्थों के साथ सेवन करना चाहिए। अनुपान–औषध सेवन करके ऊपर से दुग्ध अथवा कच्चे नारियल का जल पीना चाहिए तथा औषध के जीर्ण हो जाने पर या बुभूक्षा के प्रतीत होने पर शर्करा मिश्रित शाली चांवलों का भात, मूंग की दाल, मांसरस और अन्य हित कर रस आदि द्रव्यों का उपयोग करना चाहि । इस

प्रकार विधिपूर्वक तथा यथाव्याध्यनुपानों के साथ इस रस को सेवन करने से हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटिग्रह, गुल्म तथा गुल्मजशूल, शिरःशूल, यकृत् और प्लीहा की वृद्धि, अग्निमान्द्य, क्षय, कुष्ठ, कास, श्वास, विचर्चिका, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ११४–१२१ ॥

विमर्शः—रसेन्द्रचिन्तामणि और रसरत्नाकर आदि रस ग्रन्थों में उन ग्रन्थ के निर्माताओं ने "अभ्रं ताम्रं तथा लौहम्" इस स्थान पर "अभ्रं ताम्रं रसं लोहम्" इस प्रकार के पाठ की कल्पना कर के इस रस का नाम "चतुः समलौहम्" रखा है तथा रसेन्द्रसार संग्रह में "अभ्रं ताम्रं रसं लोहं गन्धकं संस्कृतं पलम्" ऐसा पाठ है तथा "अभ्रं गन्धं रसं लोहम्" ऐसा भी पाठान्तर है। रामसेन ने "अभ्रं ताम्रं रसं लोहं प्रत्येकशः पलम्" इस प्रकार का पाठान्तर मान कर अभ्रभस्म, ताम्रभस्म, रस और गन्धक इन चारों का समभाग लेकर चारों के बराबर लौहभस्म को ग्रहण किया है तथा चारों के समान लोह लिया जाता है इस कारण इस योग का नाम चतुःसमलौह पड़ा है। किन्तु रसरत्नसमुच्चय की संस्कृत टीका में इस पर अरुचि प्रकट की है।

अथ क्षारताम्ररसः—

रसेन ताम्रस्य दलानि लिप्त्वा गन्धेन ताम्रद्विगुणेन पश्चात्।
वस्त्रेण बद्ध्वाऽथ समुद्रजेन क्षारत्रयेणापि च वेष्टयित्वा ॥१२२॥
मृदा च संलिप्य पुटं ददीत दलानि ताम्रस्य विचूर्णयेत।
धत्तूरचित्रार्द्रकटुत्रयञ्च विमर्दयेत्तत्त्रिगुणप्रमाणम् ॥ १२३ ॥
कलाप्रमाणेन विषं च दत्त्वा वल्लं ददीतास्य च वातशूले ॥१२४॥

एक पल भर शुद्ध पारद से ताम्र के एक पल भर ही शुद्ध पत्रों को लिप्त करना चाहिए अर्थात् पारद और ताम्रपत्रों को खरल में डाल कर अच्छी प्रकार घोटना चाहिए। घोटते २ जब सम्पूर्ण पारद ताम्र के पत्रों पर चढ़ जाय (लिप्त हो जाय) तब द्विगुण शुद्ध गन्धक लेकर थोड़े से घृत के साथ खरल में घोट कर इस की पिष्टी बना के उस पिष्टी से पारद युक्त ताम्रपत्रों को लीप (लिप्त) कर सुखा देवें। फिर उन ताम्र पत्रों को निम्बू के रस से पोसी हुई सैन्धव नीमक, यवक्षार, सज्जिखार और टङ्कण की पिष्टी से लिप्त कर के ऊपर एक वस्त्र की पट्टिका को लपेट कर फिर उस पर चिकनी मिट्टी के कीचड़ को पोत कर सुखा के सम्पुट में बन्द कर के गज पुट की तीव्र आंच में पुट दे देना

चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुए ताम्र पत्रों को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के उस चूर्ण को धत्तूर के स्वरस के साथ तीन दिन तक खरल कर के चित्रक, अदरख के स्वरस और त्रिकटु के काढे से पृथक् २ तीन २ दिन तक खरल करना चाहिए । फिर उस में ताम्र की अपेक्षा षोड़शांश प्रमाण से शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण मिला कर सब को अच्छी प्रकार घोट कर सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस रस को एक वल्ल ( ३ रत्ती ) भर लेकर वात हर अनुपानों के साथ वातशूल में देना चाहिए ॥ १२२-१२४ ॥

अथ शूलान्तकरसः—

**भस्मसूतस्य खस्यापि पलमेकं पृथक् पृथक् ।**
**ताम्रभस्म पले द्वे तु गन्धकस्य पलत्रयम् ॥ १२५ ॥**
**हरितालस्य कर्षांशं विमलं हेममाक्षिकम् ।**
**पलार्धं हलिनीकन्दं नागवङ्गौ पलार्धकौ ॥ १२६ ॥**
**चतुष्पलं तु त्रिवृतमेतत्सर्वं विचूर्णयेत् ।**
**भूधात्रीस्वरसेनैव भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥ १२७ ॥**
**तथा दन्तीरसैर्वल्लं दद्यादार्द्रकवारिणा ।**
**तेन कोष्ठे विशुद्धे तु दधिभक्तं तु भोजयेत् ।**
**सर्वाणि शूलानि हरेद्रसः शूलान्तको मतः ॥ १२८ ॥**

भस्मसूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल तथा अभ्रक की ( खस्य ) भस्म १ पल, ताम्रभस्म दो पल, शुद्ध गन्धक ३ पल, शुद्ध हरताल १ कर्ष, विमल अर्थात् रौप्यमाक्षिकभस्म १ कर्ष, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ कर्ष, कलिहारी के शुद्ध कन्द का चूर्ण आधा पल, नागभस्म आधापल, वङ्गभस्म आधा पल, त्रिवृत् की जड़ का चूर्ण ४ पल लेकर सब को खरल में डाल कर महीन चूर्ण करके भूम्यामलक ( तामलकी ) के पञ्चाङ्ग के स्वरस आथवा क्वाथ से सात दिन तक भावित करके फिर सात दिन तक दन्ती की जड़ के क्वाथ से सात भावनाएं देकर अच्छी प्रकार घोट के सुखा कर चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को एक वल्ल ( ३ रत्ती ) भर लेकर अदरख के स्वरस के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस औषध के सेवन करने के पश्चात् कुछ दस्तें लग कर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार कोष्ठ के शुद्ध हो जाने के पश्चात्

पथ्य में दही के साथ भात खिलाना चाहिए। इस प्रकार इस रस के सेवन करने से सर्व प्रकार के शूल नष्ट हो जाते हैं। इस को शूलान्तक रस कहते हैं॥ १२५-१२८ ॥

अथ द्वितीयोऽग्निमुखरसः—

**पारदं माक्षिकं ताम्रं कृष्णाभ्रं गन्धकत्रयम् ।**
**मणिमन्थं विषं हिङ्गु त्वग्निशाकन्धकाञ्जनान् ॥ १२९ ॥**
**रक्तमारीषनिर्गुण्डीमहाराष्ट्र्याटरूषकम् ।**
**जयाजयन्तीनिर्यासैस्तथा च विषतिन्दुकान् ॥ १३० ॥**
**मर्दितं कुक्कुटपुटे पचेदग्निमुखाह्वयः ।**
**अष्टगुञ्जामितः सोऽयं प्रयोज्यः साज्यनागरः ।**
**हिङ्गुसौवर्चलोष्णाम्बुयुतो वा गुल्मशूलनुत् ॥ १३१ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, कृष्णाभ्रकभस्म १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला ( अथवा शुद्धगन्धक ३ तोला कुछ लोगोंने श्वेत, पीत, रक्त इन भेदों से तीनों प्रकार के गन्धक को एक २ तोले भर लेने के लिये लिखा है ), मणिमन्थ अर्थात् सैन्धव नामक १ तोला, शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण १ एक तोला, शुद्ध हींग का चूर्ण १ तोला, अग्नि ( चित्रक ) का चूर्ण १ तोला, शाकन्ध ( बेर अथवा शूरणकन्द ) का चूर्ण १ तोला, काञ्चन (धत्तूरे की शुद्ध जड़ अथवा कचनार की छाल ) का चूर्ण १ तोला, रक्तमारीष अर्थात् लाल दण्डी वाली चोलाई ( मेघनाद ) का चूर्ण १ तोला, महाराष्ट्री ( जल पिप्पली ) का चूर्ण १ तोला, अडूसे की जड़ का चूर्ण १ तोला तथा विषतिन्दुक अर्थात् शुद्ध कुचले का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष औषधियों को डालकर सब को अच्छी तरह से महीन पीस कर जया ( भाङ्ग ) और जयन्ती के पत्रों के स्वरस के साथ सातदिन तक खरल करके गोला बना कर सुखा लेना चाहिए। फिर इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में पकाकर स्वाङ्गशीतल होने पर चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। यह द्वितीय प्रकार का अग्निमुख रस है। इस रस को ८ गुञ्जा के प्रमाण से घृत और नागर अर्थात् सौंठ के ( ३ मा० ) चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए। अथवा इस रस को शुद्ध हींग का चूर्ण १ मा० और सौवर्चल लवण ६

माशे भर लेकर उनके साथ मिलाकर सेवन करके कपडे से थोड़ा सा गरम (मन्दोष्ण) जल पी लेना चाहिए। इस विधि से इस रस को सेवन करने से गुल्म और शूल रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२९–१३१ ॥

विमर्शः—"गन्धक त्रयम्" इस जगह पर "गन्धकं समम्" ऐसा पाठान्तर है। "त्वग्निशाकन्द काञ्चनान्" इस जगह पर "त्वग्निशाकाम्लकाञ्चनान्" ऐसा पाठान्तर है।

अथ द्वितीय-त्रिनेत्ररसः—

रसताम्रगन्धकानां त्रिगुणोत्तरवर्धितांशानाम् ।
अम्लेन मर्दितानां पुटपक्वानां निषेवितं भस्म ॥ १३२ ॥
गुञ्जाप्रमाणार्द्रकसिन्धूत्थचूर्णसंयुक्तम् ।
एरण्डतैलमाक्षिकमथवा पटुहिङ्गुजीरकोपेतम् ॥ १३३ ॥
शमयति शूलमशेषं तत्तद्रसभावितं बहुशः ।
उपचूर्णैरनुपानैस्ततस्तः सहितं कफानिलार्तिहरम् ॥ १३४ ॥
एतच्च हरिणशृङ्गभृतकाञ्चनटङ्कणोपेतम् ।
सघृतमधु पक्तिशूलं शमयति शूलं त्रिनेत्ररसः ॥ १३५ ॥

शुद्ध पारद १ पल, ताम्रभस्म ३ पल, शुद्ध गन्धक ९ पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करके ताम्रभस्म को कज्जली में मिलाकर किसी अम्ल पदार्थ (प्रायःनिम्बु) के रस के साथ एक दिन तक खरल कर के गोला बना कर शराव सम्पुट में बन्द करके कुक्कुट पुट में फूंक देना चाहिए। स्वाङ्ग शीतल सम्पुट से सिद्ध भस्म को निकाल कर काच की शीशी में भर कर रख दें। इस भस्म को १ रत्ती भर लेकर १ तोले भर अदरख के रस और ३ माशे भर सैन्धव लवण के साथ अथवा ३ माशे भर एरण्ड के तैल और आधे तोले मधु के साथ या ३ माशे पर पटु (सैन्धव लवण चूर्ण), ५ रत्ती भर अग्नि में भूनी हुई हींग तथा ६ माशे भर अग्नि में भूने हुए जीरे के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करने से समग्र प्रकार के शूल को दूर कर देता है। अथवा उपर्युक्त प्रकार से बने हुए द्वितीय त्रिनेत्र रस को खरल में महीन पीस कर कफ और वात को नष्ट करने वाले द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ के साथ अनेक वार (प्रायः सात २ वार) भावित कर के सुखा कर शीशी में भर देवें। फिर उस रस को योग्य मात्रा के प्रमाण से लेकर जिन २ औषधियों के स्वरसादिक से भावनाएँ

दी हों उन्हीं औषधियों के चूर्ण के अनुपान के साथ सेवन करने से कफ और अनिल ( वात ) से उत्पन्न शूल तथा दोनों के कारण से उत्पन्न शूल नष्ट हो जाता है। एक रत्ती भर इस त्रिनेत्र रस को हरिण के शृङ्ग की भस्म २ रत्ती, सुवर्ण की भस्म $\frac{1}{4}$ रत्ती और १ माशे भर शुद्ध टङ्कण के साथ मिलाकर १ तोले भर घृत तथा १ $\frac{1}{2}$ तोले भर मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करने से पक्ति शूल ( परिणाम शूल ) निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ १३२-१३५ ॥

अथोदयभास्कररसः—

तोलतुल्यं रसं शुद्धं गन्धकं तच्चतुर्गुणम्।
विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां ततो निम्बुकवारिणा ॥ १३६ ॥
तस्य कल्कं प्रकुर्वीत खल्ले यामचतुष्टयम्।
द्वितोलमथ ताम्रस्य तनुपत्राणि सर्वशः ॥ १३७ ॥
कल्केन तेन निम्बूकरसेनाप्लाव्य खल्लके।
स्थापयेदातपे तीव्रे पिण्डीकृत्य ततः परम् ॥ १३८ ॥
मूषामध्ये निरुध्याथ कुक्कुटाख्यैस्त्रिभिः पुटैः।
पचेच्चुल्ल्यां विनिक्षिप्य चुल्लीपरिमितोपलैः ॥ १३९ ॥
तत आकृष्य सम्मर्द्य करण्डे तं विनिक्षिपेत्।
रसोऽयं सर्वरोगघ्नो नृणामुदयभास्करः ॥ १४० ॥
हन्ति शूलानि सर्वाणि तमांसीव दिवाकरः।
पर्णखण्डिकया सार्धं देयश्चेत्यपरे जगुः।
पथ्यं रोगोचितं देयं रसस्यानुचितं त्यजेत् ॥ १४१ ॥

शुद्ध पारद १ तोला तथा उससे चौगुना ( ४ तोला ) शुद्ध गन्धक लेकर दोनों को पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर निम्बु के स्वरस के साथ ४ प्रहर तक अर्थात् एक दिन तक खरल करके उसका कल्क बनालें। फिर दो तोले भर शुद्ध ताम्बे के पत्र लेकर उन पर उस कल्क को लिप्त करके खरल में डालकर इतना निम्बु का रस डालें कि जिससे वे ताम्र के पत्र अच्छी प्रकार उस रस में डूब जावें। फिर उस खरल को तीव्र धूप में रखकर निम्बु के रस को सुखाना चाहिए। जब रस सूख जाय तब उन ताम्र के पत्रों को अच्छी प्रकार घोटकर चूर्ण करके दृढ मूषा के भीतर भरकर उसका मुख बन्द करके कुक्कुट पुट में

पाक करें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से ताम्र के पत्रों को निकाल कर फिर उतने ही पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसको निम्बु के रस के साथ ४ प्रहर तक घोटकर उसे उन पत्रोंपर प्रलिप्त करके उन्हें खरल ही में रखकर पूर्ववत् निम्बु के रस से डुबोकर तीव्र धूप में रखें, फिर अच्छी प्रकार घोटकर शुष्क चूर्ण को मूषा में बन्द करके पूर्ववत् कुक्कुट पुट में पाककरें। फिर इसी विधि से तीसरा पुट देकर सिद्ध रस को खरल में महीन पीसकर काचकी शीशी ( करण्ड ) में भरकर सुरक्षित रखदें। यह रस यथान्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से मनुष्यों के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है। इसको उदयभास्कर रस कहते हैं। यह रस सर्व प्रकार के शूल रोगों को उस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है। कुछ आचार्यों का मत है कि इस रस को उचित मात्रा से ( प्रायः १ रत्ती ) पान के अन्दर रखकर खाना चाहिए। इस रस को जिस रोग में सेवन करें उस रोग के अनुसार हितकर पथ्य का सेवन करना चाहिए तथा अपथ्य का परित्याग करना चाहिए। इस रस का पाक जमीन में गर्त बनाकर न करके चूल्हे ही पर कक्कुट पुट के अनुसार उपले भरकर उनके मध्य में मूषा को रखकर पाक करना चाहिए ॥ १३६–१४१ ॥

अथ शूलगजकेसरीरसः—

पलप्रमाणसूतेन बलिना द्विगुणेन च।
शुद्धत्रिपलतालेन कृत्वा कज्जलिकां त्र्यहम् ॥ १४२ ॥
पलमानेन कर्तव्यः शुद्धताम्रस्य सम्पुटः।
पिधानपात्रसंग्रस्ततलपात्रास्यवान् खलु ॥ १४३ ॥
कज्जलीं सम्पुटस्यान्तर्निदध्यात्तदनन्तरम्।
अधस्तादुपरिष्टाच्च सम्पुटस्याक्षिपेत्खलु ॥ १४४ ॥
आकण्ठं पटुचूर्णं तु पिधाय च निरुध्य च।
विशोष्य गजसंज्ञेन पुटेन पुटयेत्ततः ॥ १४५ ॥
पटचूर्णं विधायाथ सिन्धुमध्ये विनिक्षिपेत्।
पथ्यार्द्रकरसोपेतो वल्लमानेन सेवितः॥
रसो निःशेषशूलघ्नः स्याच्छूलगजकेसरी ॥ १४६ ॥

शुद्ध पारद १ पल तथा उससे द्विगुण ( २ पल ) शुद्ध गन्धक और ३ तीन

पल शुद्ध हरताल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें हरताल डालकर तीन दिन तक अच्छी प्रकार महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। फिर १ पलभर ताम्र का शुद्ध पत्र लेकर उसकी एक कटोरी बनानी चाहिए। उस कटोरी में कज्जली भर कर फिर उसको एक दूसरी ताम्र की ऐसी कटोरी के साथ जोड़े कि उस कटोरी के किनारे कज्जली वाली कटोरी के भीतरी तली तक जा लगें। बाद में उनदोनों की सन्धियों को बन्द करके ऊपर से थोड़ी २ कपड़ मिट्टी करके सुखाकर एक मिट्टी की हण्डिका के आधे भाग में सैन्धव लवण भरकर उस पर उस सम्पुट को रखकर ऊपर से हण्डिका के शेष रिक्त भाग को लवण से भर कर उसका सकोरे से मुख ढक करके सन्धियों को कपड़ मिट्टीसे बन्द करके सुखाकर गजपुट में रखकर फूंक देवें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुए रसको ताम्रके सहित महीन पीस कर कपड़े से छानकर उस रसको काच की शीशीमें भर कर रख देवें। अथवा रसयुक्त इस शीशीको नीमक भरे मिट्टी के भाण्ड में कण्ठतक गाड़कर रखनी चाहिए। जब इस रसको सेवन करना हो तब काच कूपीसे १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर रस लेकर हरड़ का चूर्ण और अदरख के रसके साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार इस रसको प्रतिदिन सेवन करने से सब प्रकार के शूलरोग नष्ट हो जाते हैं। इस रस को शूलगज केसरी रस कहते हैं ॥ १४२–१४६ ॥

अथ द्वितीयक्षारताम्रम्—

**पलमितमृतशुल्वं तन्मितं गन्धचूर्णं**
**वसुमितपलमानं तिन्तिडीक्षारचूर्णम् ।**
**त्रयमिदमभिदिष्टं क्षारताम्राख्यमेत-**
**द्धरति सकलशूलं पीतमुष्णोदकेन ॥ १४७ ॥**

मृतशुल्व अर्थात् ताम्रभस्म १ पल तथा उतना ही ( १ पल ) शुद्ध गन्धक तथा इमली के पके हुए फलों के छिलकों की राखसे बनाया हुआ क्षार ८ पल लेकर सबको खरल में डालकर अत्यन्त महीन चूर्ण बनाके काचकी शीशीमें भर देवें। यह द्वितीय प्रकार का क्षारताम्ररस है। इस रसको २ रत्तीसे ६ रत्ती तक प्रतिदिन गरम जलके साथ सेवन करना चाहिए। इस विधिसे यह रस समग्र प्रकार के शूलको नष्ट करता है ॥ १४७ ॥

अथ ताम्राष्टकम्—

**हिङ्गु व्योषं मधुकरुचकं तिन्तिडीक्षारताम्रं**
**सर्वं चैतन्मसृणमृदितं पीतमुष्णोदकेन ।**
**क्षिप्रं शूलं क्षपयति नृणां तीव्रपीडासमेतं**
**ध्वान्तं भानोरिव समुदयः साधु ताम्राष्टकं हि ॥ १४८ ॥**

शुद्ध हींगका चूर्ण १ तोला, व्योष अर्थात् सौंठका चूर्ण १ तोला, मरिचों का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, मधुक अर्थात् मुलेठी का चूर्ण १ तोला ( कुछ लोगों ने महुए का चूर्ण लेनेको लिखा है ), रूचक अर्थात् सौवर्चल लवण १ तोला, इमली के पके फलों के छिलके या वृक्षकी छाल की राख ( भस्म ) से बनाया हुआ क्षार १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला लेकर इन सबको खरल में एकत्र डालकर अत्यन्त महीन पीसके काचकी शीशी में भर देवें । इस प्रकार से बने हुए योगको ताम्राष्टक कहते हैं । इस रस को १ रत्तीसे ६ रत्ती तक की मात्रासे गरम जलके साथ प्रतिदिन सेवन कराने से मनुष्यों के तीव्र वेदना से युक्त शूलको शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥ १४८ ॥

अथ वडवानलगुटिका—

**तालं ताप्यं कनककुनटीकान्तगन्धार्कसूतै-**
**स्तुल्यांशैस्तैररुणमधुरं दीप्यकं सर्वतुल्यम् ।**
**एतैः सर्वैस्त्रिकटु च समं कज्जलीकृत्य सर्वं**
**हिंस्रम्भोभिर्मुनिमितदिनैर्भावयेत्सप्तकृत्वः ॥ १४९ ॥**
**जयन्त्याःकाकमाच्याश्च निर्गुण्ड्याश्चार्द्रकस्य ।**
**स्वरसैर्भावयेत्पिष्ट्वा सकृदेव दिने दिने ॥**
**कर्त्तव्या मरिचैस्तुल्याश्छायाशुष्कास्तु गोलिकाः ॥ १५० ॥**
**हन्त्येषा वडवानलाख्यगुटिका संसेवितोष्णाम्बुना**
**सर्वं शूलगदं कृमिं च सकलं वैषम्यवृत्तिं क्षुधः ।**
**मन्दाग्निं ग्रहणीगदं श्वयथुरुकपाण्डुं च गुल्मार्शसौ**
**वातश्लेष्मगदं तथोदररुजं श्वासं च कासं ज्वरम् ॥ १५१ ॥**

शुद्ध हरताल १ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, कनक अर्थात् धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला ( कनक से स्वर्ण भस्म भी डालने की परम्परा है )

कुन्टी ( शुद्ध मनःशिला ) का चूर्ण १ तोला, कान्त लौहभस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, अर्क अर्थात् ताम्रभस्म १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला तथा कनक से लेकर सूत तक आये हुए पदार्थों के बराबर ( अर्थात् ६ तोला ) अरुणमधुर अर्थात् शुद्ध किया हुआ लाल वत्सनाभ विष का चूर्ण अथवा अरुण ( लाल जड़ की त्रिवृत् ) और मधुर ( मधुरिका ) ये दोनों मिलाकर कनकादिसूतान्त द्रव्यों के बराबर ग्रहण करें तथा ताल से मधुरान्त सब द्रव्यों के बराबर दीप्यक ( यमानी ) का चूर्ण तथा दीप्यक और पूर्वोक्त समग्र द्रव्यों के बराबर त्रिकटु का सम्मिलित चूर्ण लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को कज्जली के समान ही महीन पीस के शुद्ध होज्ञ के शीतलकषाय से अथवा फाण्टकषाय से सात दिन तक सात भावनाएं देकर इसी प्रकार जयन्ती के पत्तों के स्वरस, मकोय के स्वरस, निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस तथा अदरख के स्वरस इन प्रत्येक के स्वरस से पृथक् २ सात दिन तक सात २ भावनाएं देनी चाहिएं। एक दिन में एक ही भावना देनी चाहिए। अर्थात् खल्व के भीतर रखे हुए चूर्ण को किसी के स्वरस से अच्छी प्रकार भींगो कर फिर ऊपर से खरल को स्वरस से भर कर रात्रि भर रख दें। दूसरे दिन खरल को धूप में रख कर भावित चूर्ण को घोटना चाहिए अथवा छाया ही में रख कर घोटना चाहिए। इस तरह घोटते २ जब समग्ररस सूख जाय तब एक भावना समाप्त हुई, यह जानना चाहिए इस तरह सब भावनाओं को समाप्त कर चने के बराबर गोलियां बनाकर उन्हें छाया में सुखा के काच की शीशी में भर कर सुरक्षित रख देवें। इसको वड़वानल गुटिका कहते हैं। इसको एक २ गोली प्रतिदिन गरम जल के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के शूलरोग, सर्व प्रकार के कृमियों और उनसे उत्पन्न रोगों को तथा बुभूक्षा की वैषम्यवृत्ति (अर्थात् कभी भूख लग जाना और कभी नहीं लगना और कभी असमय में ही भूख लगना ), मन्दाग्नि, ग्रहणीरोग, श्वयथु रोग ( सूजन ), पाण्डुरोग, गुल्म, अर्श, वात विकार, कफविकार तथा वातकफविकार, उदररोग, श्वास, कास और ज्वर इत्यादि सब रोगों को नष्ट कर देती है ॥ १४९-१५१ ॥

अथाग्निकुमाररसः—

**रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं तुल्यभागयोः।**

पादांशममृतं दत्त्वा शुक्तिभस्म कलांशकम् ॥ १५२ ॥
हंसपादीरसैः सम्यङ् मर्दयित्वा दिनत्रयम् ।
स्थूलगोलं ततः कृत्वा परिशोष्य खरातपे ॥ १५३ ॥
निरुध्य वालुकायन्त्रे क्रमपुष्टेन वह्निना ।
पचेदेकमहोरात्रं स्वतःशीतं विचूर्ण्य च ॥ १५४ ॥
तुल्यांशममृतं दत्त्वा मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ।
विलिप्य स्थालिकामध्ये ततोऽन्यस्थालिकोदरे ॥ १५५ ॥
पलार्धममृतं क्षिप्त्वा रससस्थालीं च तन्मुखे ।
न्युब्जां दत्त्वा दृढं रुद्धां चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः ॥ १५६ ॥
यामं प्रज्वालयेदग्निं विचूर्ण्य तदनन्तरम् ।
करण्डके विनिक्षिप्य स्थापयेदतियत्नतः ॥
रसो ह्यग्निकुमाराख्यो दिष्टो मन्थानभैरवैः ॥ १५७ ॥
हन्यादत्यग्निमान्द्यं ज्वरहृजमखिलं वातजातं क्षयार्तिं
शोफाढ्यं पाण्डुरोगं कफजनितगदान्प्लीहगुल्मं गुदार्तिम् ।
सर्वाङ्गीणं च शूलं जठरभवरुजं खञ्जतां पङ्गुलत्वं
सर्वांश्चासाध्यरोगान्हरिरिव दुरितं रक्तगुल्मं वधूनाम् ॥ १५८ ॥

समान भाग रस और गन्धक अर्थात् १ पल शुद्ध पारद और १ पल शुद्ध गन्धक लेकर दोनों को पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उस में कज्जली की अपेक्षा चतुर्थांश ( आधा पल ) शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण तथा कज्जली ही की अपेक्षा षोडशांश ( ८ मा० ) शुक्ति ( सीप ) भस्म मिलाकर सब को अच्छी प्रकार घोटकर हंसपादी ( मण्डूकपर्णी अथवा लज्जालु ) के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ तीन दिन तक घोटकर गोला बना के उसको तीव्र धूप में शुष्क करके शरावसम्पुट में बन्दकर बालुकायन्त्र में क्रम से अर्थात् मन्द, मध्य और तीव्र अग्नि देते हुए एक दिन रात ( २४ घण्टे ) तक पाक करना चाहिए। इस प्रकार पाक हो जाने पर स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के सम्पूर्ण रस के बराबर ( कुछ लोगों का मत है कि पारद के बराबर विष डालें ) शुद्ध मीठे तेलिया का चूर्ण डाल कर अदरख के स्वरस के साथ एकदिन तक अच्छी प्रकार घोटकर कल्क बना के उसको एक मिट्टी की हण्डिका के

भीतरी तली ( तलभाग ) में लिप्त कर दें । फिर उसी के समान एक दूसरी मिट्टी की हण्डिका लेकर उसमें आधा पल शुद्ध मीठा तेलिया ( वत्सनाभविष ) का चूर्ण डाल कर उस के किनारों पर पूर्वोक्त कल्क से लिप्त हुई हण्डिका को उलटी ( औंधी ) कर के दोनों के किनारों को मिलाकर चिकनी मिट्टी के कीचड़ से लिप्त हुई वस्त्र की पट्टिकाओं को लपेट कर सन्धिबन्धन करके सुखा कर उस यन्त्र ( डमरुयन्त्र ) को चूल्हे पर चढाकर एक प्रहर तक पाक करके स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट को खोलकर सिद्ध हुए रस को निकाल कर खरल में महीन पीस कर काच के पात्र ( शीशी ) में सुरक्षित करके रख दें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को अग्निकुमार रस कहते हैं। इस रस को मन्थानभैरव नाम के आचार्य ने संसारहित के लिये बनाया है । इस रस को १ रत्ती से १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर तक प्रतिदिन यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से अग्निमांद्य, वातजन्य ज्वर की पीड़ा धातुओं के क्षय से उत्पन्न वेदना, शोथ से युक्त पाण्डुरोग, कफ की विकृति से उत्पन्न हुए रोग, प्लीहा की वृद्धि, गुल्मरोग, गुदा की वेदना, समग्र अङ्ग में उत्पन्न हुए शूल, पेट के समस्त रोग, खञ्जता (पैर की वातिक विकृति), पङ्गुता ( किसी भी अङ्ग की विशेष कर हस्त और पाद के संज्ञावाहक सूत्रों की विकृति ) तथा स्त्रियों के रक्तगुल्म और सर्व प्रकार के साध्य तथा असाध्य रोगों को नष्ट करता है ॥ १५२-१५८ ॥

अथशूलहरक्षारः—

**वन्ध्या लाङ्गलिकामूलं शङ्खं तु द्विगुणं तयोः ।**
**त्रयाणां भावयेच्चूर्णं त्र्यहं जम्बीरजद्रवैः ॥ १५९ ॥**
**रुध्याद् गजपुटे पक्त्वात्तत्क्षारं मरिचैर्घृतैः ।**
**कर्षमात्रं पिबेच्छूली तत्क्षणात्सुखमाप्नुयात् ॥ १६० ॥**

बाझ ककोड़े ( बन्ध्या कर्कोटकी ) की जड़ का चूर्ण १ पल, लाङ्गली ( कलिहारी ) की शुद्ध जड़ का चूर्ण १ पल तथा दोनों से द्विगुण ( ४ पल ) शङ्ख भस्म लेकर तीनों को खरल में महीन पीस के जम्बीरी निम्बु के रस के साथ तीन दिन तक भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर गोला बना के सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से सिद्ध हुए क्षार को निकाल कर शीशी में भर देवें । इस क्षार को १ कर्ष भर लेकर

मरिचों के ४ माशे भर चूर्ण और १ तोले भर घी के साथ मिलाकर सेवन करने से शूल की पीड़ा से पीड़ित पुरुष तुरन्त ही सुख को प्राप्त होता है अर्थात् वह शूल से निर्मुक्त हो जाता है। इस क्षार को आधे कर्ष भर ही सेवन करना चाहिए ॥ १५९–१६० ॥

अथ क्षारवटी—

**अमृतं मेघभस्माथ शङ्खं चिञ्चासुभास्करम् ।**
**क्रमाद्द्विगुणितं कृत्वा तत्तुल्यं च कटुत्रयम् ॥ १६१ ॥**
**तुलसीभृङ्गराजोत्थमातुलुङ्गार्द्रकद्रवैः ।**
**भावितं बहुशश्चूर्णं रजो वा गुटिकापि वा ॥ १६२ ॥**
**गुञ्जामात्रं तु सेवेत गुल्मशूलान्विनाशयेत् ।**
**मन्दाग्निं ग्रहणीमर्शो रक्तगुल्ममरोचकम् ॥**
**एषा क्षारवटी नाम्ना कृशदेहेषु युज्यते ॥ १६३ ॥**

अमृत अर्थात् शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, मेघ ( अभ्रक ) की भस्म २ तोला, ( कहीं२ मेघभस्म के स्थान पर हेमभस्म का पाठ भी है ), शङ्ख भस्म ४ तोला, इमली के पके हुए फलों के छिलकों की राख ( भस्म ) का बनाया हुआ क्षार ८ तोले, सुभास्कर अर्थात् शुभ ( नेपाली ) ताम्र की भस्म १६ तोले तथा सब के बराबर ( ३१ तोले ) त्रिकटु ( सौंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण लेकर सब को खरल में महीन पीसकर तुलसी, भृङ्गराज, बिजौरे निम्बु और अदरख इन प्रत्येक के स्वरस से पृथक् २ सात२ वार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर सुखा के चूर्ण कर शीशी में भर देवें, अथवा एक२ रत्ती भर की गोलिएं बनाकर उन्हें छाया में सुखा के काच की शीशी में भर दें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को प्रतिदिन एक२ रत्ती भर लेकर यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से गुल्म, शूल, मन्दाग्नि, ग्रहणी, अर्श स्त्रियों का रक्तगुल्म और अरुचि आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। इसको क्षारवटी कहते हैं। इस वटी को कृश (दुर्बल) रोगियों के लिये देने से उनका अत्यन्त हित होता है ॥१६१–१६३॥

अथ सामान्योपायः—

शम्बूकादिलौहम्—

**शम्बूकं त्र्यूषणं पञ्च लवणानि मृतायसम् ।**

**समांशं पेषयेन्मूत्रैः कृष्णाजस्य दिनावधि ॥**
**भक्षयेत्कर्षमात्रं तु परिणामाख्यशूलनुत् ॥ १६४ ॥**

शम्बूक ( क्षुद्र शङ्ख ) को भस्म १ पल, त्र्यूषण ( त्रिकटु ) का चूर्ण १ पल, पाञ्चों लवण ( सैन्धव, सामुद्र, विड, सौवर्चल, रोमक ) मिला कर १ पल, लौहभस्म १ पल लेकर सब को खरल में महीन पीस कर काली बकरी के मूत्र के साथ एक दिन तक घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस योग में से प्रतिदिन १ कर्ष भर लेकर सेवन करने से परिणामशूल नष्ट हो जाता है ॥१६४॥

अथेन्द्रवारुणिकादिचूर्णम्—

**इन्द्रवारुणिकामूलं कटुत्रयसमन्वितम् ।**
**पिबेदुष्णाम्बुना हन्ति शूलमत्यन्तदुःसहम् ॥ १६५ ॥**

इस रस के सेवन करने के पश्चात् अथवा स्वतन्त्र रूप से ३ मा० इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण तथा ३ मा० त्रिकटु ( सौंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण लेकर गरम जल के साथ पीने से अत्यन्त तीव्र वेदना से युक्त शूल भी नष्ट हो जाता है ॥ १६५ ॥

भूदार्वादि योगः—

**भूदारुवटमूलं च शूलजित्सोष्णवारिणा ॥ १६६ ॥**

भू अर्थात् काली जीरी का चूर्ण १ पल, देवदारु का चूर्ण १ पल ( अथवा भूदारु=काष्ठदारु ही का चूर्ण ग्रहण करें ) तथा वट ( वडले ) की जड़ या शुङ्गों का चूर्ण १ पल भर लेकर सब को खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को प्रतिदिन एक २ तोले भर लेकर गरम जल के साथ सेवन करने से शीघ्र ही शूल की व्यथा दूर हो जाती है ॥ १६६ ॥

सद्यःशूलहरो योगः—

**सद्योभवं हरेच्छूलं लवणं वारनालकैः ॥ १६७ ॥**

आधे तोले भर सैन्धव अथवा सौवर्चल लवण को काञ्जी के साथ सेवन करने से सद्योजात शूल अर्थात् भोजन सेवन करते ही उत्पन्न हुआ शूल नष्ट हो जाता है ॥ १६७ ॥

सद्यः शूलहरयोगद्वयम्—

**घृतेन सैन्धवं वाऽथ उष्णतोयैः सुवचलवम्(१) ॥ १६८ ॥**

२ तोले भर गाय के घी के साथ आधे तोले भर सैन्धव नमक को सेवन करने शूल रोग तुरन्त नष्ट हो जाता है। अथवा गरम जल के साथ आधे तोले भर सौवर्चल लवण को सेवन करने से शूलरोग तुरन्त ही नष्टहोजाता है ॥१६८॥

इति शूलचिकित्सा—

अथ कार्श्यचिकित्सा—

अथामृतार्णवरसः—

**रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।**
**सर्वांशममृतासत्त्वं सितामध्वाज्यमिश्रितम् ॥ १६९ ॥**
**दिनैकं मर्दयेत्खल्ले मात्रैकं भक्षयेत्सदा ।**
**कृशानां कुरुते पुष्टिं रसोऽयममृतार्णवः ॥**
**अश्वगन्धापलार्धं च गवां क्षीरैः पिबेदनु ॥ १७० ॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर तीन तोला, स्वर्णकी भस्म १ तोला तथा सबके बराबर ( ४ तोले ) गुडूची का सत्त्व लेकर सबको खरल में डालकर अच्छी

---

( १ ) क्वचिदेतच्छ्लोकानन्तरम्—"नागं वङ्गं सुताम्रं दरदमनःशिला तुल्यताप्याभ्रगन्धं; भस्म स्वर्णेन तुल्यं रसकमपि रविक्षीरघृष्टं सुगोलम् । कृत्वा पक्त्वा च यन्त्रे लवणविरचिते भावयेदार्द्रकाभिर्वारान् सप्त द्विवल्लं समधुमगधया योजितः सेवनीयः॥१॥ कार्श्यस्थे शुलेऽग्निमान्द्ये विविधसमुचितैरौषधैः सन्निपाते हृद्रोगे गुल्ममेहे कफपवनभवे सर्ववातज्वरेऽपि । देयो युक्त्यारसेन्द्रस्त्रिभुवनविदितो भोगिलोके प्रसिद्धो नागानां वल्लभो यो गरगदगलनारक्तपित्तप्रहन्ता ॥२॥ इति नागवल्लभो रसः" ।

अथ द्वितीयः,—

"नागं सुवङ्गं रसभस्मताम्रं सारं शिलाहिङ्गुलभाक्षिकञ्च । घनं सुगन्धं मृतहेम खर्परं सर्वं समं खल्वतले विघृष्टम् ॥ अर्केण ताम्रेण विधाय गोलं मृत्स्नांशुकैः सप्तमितैः सुधर्मे । भाण्डे त्रिभागलवणोपरि सन्निवेश्य सम्पूर्णयेच्चलवणेन निरुध्य यत्नात् । सिद्धं भवेत् भानुमितैस्तु यामकैश्चुल्लचोपरिस्थं मृदुमध्यतीव्रकैः । शीतं समाकृष्य विचूर्ण्य सप्तधा चण्डांशुसंशोषितश्रृङ्गबेरकैः । नागवल्लभरसो द्विवल्लको मागधीमधुयुतश्च सर्वजित्" ॥ इति द्वितीयो नागवल्लभो रसः । इत्यधिकः पाठो दृश्यते ।

प्रकार घोंट के शीशीमें भर देवें। इसको अमृतार्णव रस कहते हैं। इस रसको ४ रत्तीसे १ माशे भर तक लेकर चीनी, शहद् और घृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने के पश्चात् दो तोले भर असगन्ध का चूर्ण लेकर गायके दुग्ध के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार यह रस कृश पुरुषों के शरीर को पुष्ट कर देता है ॥ १६९–१७० ॥

अथ पूर्णचन्द्ररसः—

मृतसूताभ्रलोहं वै शिलाजतु विडङ्गकम्।
ताप्यं क्षौद्रं घृतं तुल्यमेकीकृत्य विमर्दयेत् ॥ १७१ ॥
पूर्णचन्द्ररसो नाम्ना माषैकं भक्षयेत्सदा।
शाल्मलीपुष्पचूर्णं च क्षौद्रैः कर्षं पिबेदनु ॥ १७२ ॥
दुर्बलो बलमाप्नोति मासैकेन यथा शशी।
कृशानां बृंहणं देयं सर्वं पानान्नभेषजम्।
निद्रा चैव दिवारात्रौ छागमांसाशनं तथा ॥ १७३ ॥

मृतसूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, अभ्रक भस्म १ तोला, लौहभस्म १ तोला, शुद्ध शिलाजीत १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला लेकर सबको खरल में महीन पीसकर काचकूपी में भरदेवें, अथवा उसमें १ तोला शहद् और १ तो० घृत मिलाकर दो २ रत्ती भरकी गोलियां बनाकर छायामें सुखा के शीशी में भर दें। इसको पूर्ण चन्द्ररस कहते हैं। इस रस को २ रत्तीसे १ माशे भर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा इसे सेवन करने के पश्चात् १ कर्ष भर सेमल के पुष्पों के चूर्ण को शहद् के साथ मिलाकर प्रतिदिन भक्षण करना चाहिए। इस प्रकार एक महीने तक इस रसके सेवन करने से दुर्बल मनुष्य बलवान् हो जाता है जिस प्रकार क्षीण हुआ चन्द्रमा अमावस्या के पश्चात् पूर्णमासी तक अपनी सब कलाओं से पूर्ण हो जाता है। इस रसके सेवन करते समय कृश मनुष्यों के लिये उनके धातुओं को वृंहण करने वाले अन्न पान तथा औषध का सेवन कराना चाहिए तथा अन्य पुष्टिकर पदार्थ और छाग (बकरे) का मांस भी सेवन कराना चाहिए। दिन तथा रात्रि में जब भी निद्रा आ जाय उन्हें शयन करने देना चाहिए। इस प्रकार के उपचार के करने से वे कुछही दिनों में बलिष्ठ हो सकते हैं ॥ १७१–१७३ ॥

अथ स्थौल्यचिकित्सा—

अथ वडवाग्निमुखरसः—

**शुद्धसूतं मृतं ताम्रं तालं बोलं समं समम् ।**
**अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्य क्षौद्रैर्लेह्यं द्विगुञ्जकम् ॥ १७४ ॥**
**वडवाग्निमुखो नाम स्थौल्यं तुन्दं नियच्छति ।**
**पलं क्षौद्रं पलं तोयमनुपानं पिबेत्सदा ॥ १७५ ॥**

शुद्ध पारद १ पल, ताम्रभस्म १ पल, शुद्ध हरताल १ पल, बोल ( हीरा-बोल या गन्धरस ) १ पल लेकर सबको खरल में महीन चूर्ण करके आकके शुद्ध दुग्ध के साथ एकदिन तक घोंटकर सुखा के शीशी में भर देवें । इस रसको दो रत्ती भर लेकर १ तोले भर शहद् के साथ मिलाके प्रतिदिन सेवन करना चाहिए । इसको बड़वाग्निमुखरस कहते हैं । यह रस देहकी स्थौल्यता और तुन्द ( स्थूलोदरता ) को नष्ट करता है । इस रसके सेवन करने के पश्चात् प्रतिदिन १ पल भर शहत् और एक पलभर जलको परस्पर मिलाकर अनुपान करना चाहिए ॥ १७४–१७५ ॥

अथ स्थौल्ये पूर्वकृत्यनिर्देशः—

**तत्रादौ पञ्चकर्माणि लङ्घनाद्यैरुपाचरेत् ॥ १७६ ॥**

जिस पुरुष की देह मांस, मेद आदि धातुओं की अतिवृद्धि हो जाने से स्थूल हो जाय तब उसकी रसादि चिकित्सा करने के पूर्व वमन विरेचनादिक पञ्चकर्म तथा लङ्घनादिक का प्रयोग करना चाहिए । इस प्रकार के उपचार से उस मनुष्य की बढी हुई धातुएं धीरे २ क्षीण हो जाती हैं ॥ १७६ ॥

अथ मर्द्धार्द्रकप्रयोगः—

**आर्द्रकं मधुना खादेन्मेदोऽनिलकफाञ्जयेत् ॥ १७७ ॥**

एक तोले भर अदरख के स्वरस को एक तोले भर शहद् के साथ मिलाकर प्रतिदिन पीना चाहिए । इस योगके कुछ दिनों तक सेवन करते रहने से बढी हुई मेद ( चर्बी ), वायु और कफ नष्ट हो जाते हैं ॥ १७७ ॥

अथाग्निकुमाररसः—

**गन्धकेन द्विकर्षेण शुद्धसूतेन तावता ।**
**विधाय कज्जलीं सूदमामेकवासरमर्दनात् ॥ १७८ ॥**

कर्षमात्रं विषं दत्त्वा मर्दयित्वा दृढं पुनः ।
हंसपादीरसैस्तैर्वा स्तोकं स्तोकं मुहुर्मुहुः ॥ १७९ ॥
कुडवार्धमितैः पश्चाद्गोलं कृत्त्वा विशोष्य च ।
काचकूप्यां विनिक्षिप्य शुल्वनाडीं विधाय च ॥ १८० ॥
देवीशास्त्रे पुनः प्रोक्तं विषं कर्षविचूर्णितम् ।
ऊर्ध्वाधो गोलकानां हि काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ १८१ ॥
निक्षिपेत्कज्जलीं मध्ये यतश्चाग्र्यं प्रजायते ।
ततश्च द्व्यङ्गुलोत्सेध-मृदा कूपीं विलिप्य ताम् ॥ १८२ ॥
विशोष्य वालुकायन्त्रे यन्त्रवर्त्म प्रकाशिते ।
अधोमुखीं घटीं क्षित्वा क्षिपेदुपरि वालुकाम् ॥ १८३ ॥
निरुध्य भाण्डवक्त्रं च चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः ।
वह्निं प्रज्वालयेत्सार्धं दिनं क्रमविवर्धितम् ॥ १८४ ॥
स्वाङ्गशीतलमाकृष्य सह ताम्रेण मर्दयेत् ।
पलार्धं मरिचं सूक्ष्मं कर्षार्धं वत्सनाभकम् ॥ १८५ ॥
विनिक्षिप्य विमर्द्याथ क्षिपेद्रम्यकरण्डके ।
नन्दिना तु समुद्दिष्टं रसतुल्यं मरीचकम् ॥
वत्सनाभं तु कर्षांशं मिश्रयेत विचूर्ण्य तत् ॥ १८६ ॥
निर्दिष्टोऽग्निकुमारको रसवरो देव्या तथा नन्दिना
सेव्यो वैद्यशःप्रभूतफलदश्चाऽऽनाहविध्वंसनः ।
सद्यः पाचनदीपनो रुचिकरः शीघ्रं तथाष्ठीलिकां
सामां च ग्रहणीं हरेत्कफरुजः कण्ठामयध्वंसनः ॥ १८७ ॥
वल्यो भोजनतोयभक्ष्यसुखदः श्रेष्ठो रसानां प्रभु-
र्मन्दाग्निं कफवातजं क्षयगदं निःशेषशूलामयान् ।
श्वासं कासगदं तथा गुदरुजं स्यौल्यं च पाण्डुं तथा
शोफं वातगदं तथा खलु रतीतुल्योऽर्धपर्णान्वितः ॥१८८ ॥
कणया सितयाज्येन दातव्योऽसौ महारसः ।
प्रत्यष्ठीलादिरोगेषु जलकूर्मगदेषु च ॥ १८९ ॥
नन्दिना तु पुनः प्रोक्तस्तत्तद्रोगहरौषधैः ।

निहन्ति सकलान् रोगान्दुष्पत्नीव मनोरथान् ॥ १६० ॥
रसजनितविदाहे शीततोयाभिषेको
मलयजघनसारालेपनं मन्दवातः ।
तरुणदधिसिताक्तं नारिकेलीफलाम्भो
मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ १६१ ॥
सौभाग्यं मेघनादाङ्घ्रिसितामधुकचन्दनम् ।
तुषोदकेन दातव्यं सर्वस्मिन् रसवैकृते ॥ १६२ ॥
छर्द्यां तृष्णासु दातव्यं कपित्थं वा सितान्वितम् ।
कुमारीशीतलेपश्च सर्वाङ्गीणः प्रशस्यते ॥ १६३ ॥
क्षीरं मधुसितापीतं क्काथो वाऽमृतबन्धुकः ।
उपचारा अमी सर्वे प्रशस्ता रसतापिनाम् ॥ १६४ ॥
रसस्याग्निकुमारस्य प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः ।
गिरिजा नन्दिकेशो वा यद्वा नारायणः प्रभुः ॥ १६५ ॥

दो कर्ष भर शुद्ध गन्धक तथा उतने ही ( २ कर्ष भर ) शुद्धपारद को लेकर दोनों को लोहे की खरल में एकदिन तक अच्छी प्रकार घोट कर उत्तम कज्जली बना लेनी चाहिए । फिर उस कज्जली में १ कर्ष भर शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण डाल कर अच्छी प्रकार घोटना चाहिए । फिर उसमें आधे कुडव ( २ पल ) भर हंसपादी (मण्डूकपर्णी) का रस डाल कर अच्छी प्रकार से घोटना चाहिए। अथवा आधे कुडव भर स्वरस में से थोड़ा २ डालकर घोटें । इस प्रकार घोटने के पश्चात् उसका गोला बनाकर सुखा के उसका चूर्ण कर काचकूपी ( आतशी शीशी ) में भर देवें । फिर उस कूपी के मुख को शुल्व अर्थात् ताम्र के पत्र से ढक देना चाहिए। परन्तु देवी शास्त्र के मत के अनुसार प्रथम काचकूपी में आधे कर्ष भर शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण डाल कर फिर उक्त रस की कज्जली या चूर्ण को काचकूपी में भर कर ऊपर से आधे कर्ष भर वत्सनाभ विष का शुद्ध चूर्ण डालकर फिर काचकूपी के मुख को शुद्ध तामपत्र के ढाट से बन्द कर के सारी ( समग्र ) शीशी को चिकनी मिट्टी के कीचड़ से दो अङ्गुल मोटी लेप कर सुखा लेनी चाहिए। फिर एक लोहे की नांद अथवा मिट्टी के बड़े भाण्ड में थोड़ी सी महीन बालुका भर कर उस पर उक्त मिट्टी से लिप्त की हुई शीशी को रख कर उस शीशी के

मुख पर औंधी ( नीचे मुख ) की हुई एक छोटी सी मिट्टी की हण्डिका ढक कर भाण्ड को बालुका से भर देवें फिर उसके मुख को शराव से ढक कर कपड़ मिट्टी करके सुखा कर चूल्हे या भट्टी पर चढा के भट्टी के नीचे आग जला देनी चाहिए। इस प्रकार डेढ दिन ( ३६ घण्टे ) तक क्रम से मन्द, मध्य और तीक्ष्ण आग देकर पाक करना चाहिए। फिर स्वाङ्ग शीतल होने पर बालुकायन्त्र से शीशी को निकाल कर उसकी मिट्टी दूर कर के जहां पर सिद्ध रस लगा हो उस स्थान पर शीशी का भेदन करके रस को निकाल कर डाट के ताम्र के साथ महीन घोट लेना चाहिए। फिर उसमें आधे पल भर मरिचों का चूर्ण तथा आधे कर्ष भर शुद्धवत्सनाभविष का चूर्ण मिला कर सब को महीन घोट कर सुन्दर काच की शीशी ( करण्डक ) में भर कर सुरक्षित रख दें। किन्तु श्री नन्दी नामक रस शास्त्र के आचार्य के मत से सिद्ध रस के बराबर मरिचों का चूर्ण तथा १ कर्ष भर शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण मिलाना चाहिए। श्री पार्वती देवी ने सब रसों में उत्तम इस अग्निकुमार नामक रस को सर्व प्रथम वर्णन किया तथा उन के बाद नन्दी नामक आचार्य ने इस को समस्त संसार के लिये बताया है। इस रस के प्रयोग करने से रोगों में अद्भुत लाभ होता है। इस से वैद्यों को यश तथा धन आदि प्रभूत फल प्राप्त होता है। यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से यह रस आनाह ( पेट का फूलना ) को विनष्ट करता है। भोजन के पूर्व अथवा पश्चात् सेवन करने से खाये हुए भोजन को तुरन्त पचाता है तथा पाचकाग्नि को बढ़ाता है, रुचि को उत्पन्न करता है। यह रस अष्ठीलिका वृद्धि ( Prostatic Enlargment ), आम के सहित ग्रहणी दोष, कफ से उत्पन्न व्याधियां तथा कण्ठ के रोगों को नष्ट करता है। यह रस अत्यन्त बल कारक तथा खान, पान, भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थों के सेवन करने की रुचि ( इच्छा ) उत्पन्न कर के मनुष्य को सुख प्रदान करता है। यह रस सब रसों में प्रभु ( उत्तम ) है तथा अग्निमान्द्य, कफ और वायु की विकृति से उत्पन्न रोग, क्षय रोग, सर्व प्रकार के शूल रोग, श्वास, कास तथा गुदा के अर्श आदि रोग, स्थूलता, पाण्डु रोग, शोफ ( सूजन ), वात रोग ( वात व्याधियां ) आदि समस्त रोगों को नष्ट करता है। इस रस को एक रत्ती भर की मात्रा से लेकर पान के अर्ध खण्ड में

डाल कर प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य काम देव के समान सुन्दर तथा सम्भोगशक्तिसम्पन्न हो जाता है। इस महारस को उचित मात्रा से प्रत्यष्ठीलादिवात रोगों में तथा भिन्न २ देश देशान्तरों के जल के पीने से उत्पन्न हुए जलरोगों में तथा वात की विकृति से कूर्म ( कच्छप ) के समान अङ्ग प्रत्यङ्ग जिस में सङ्कुचित हो जाय ऐसे वातरोगों में १ माशे पिप्पली के महीन चूर्ण, १ तोले भर चीनी और दो तोले भर गाय के घृत के साथ सेवन कराना चाहिए। श्री नन्दी नामक आचार्य का मत है कि इस महारस को यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन कराने से सब व्याधियों को नष्ट कर देता है जिस प्रकार दुराचारिणी स्त्री अपने सज्जन पति के समस्त मनोरथों को विनष्ट कर देती है। यदि इस रस के सेवन करने से शरीर के अन्दर दाह प्रतीत हो तब रस सेवक पुरुष को डण्ढे जल से भरी हुई नांद ( टब ) में बैठाना या उसके मस्तक तथा समस्त शरीर पर शीतल जल का सेचन करना, चन्दन और कर्पूर को घिसकर उनके पङ्क या कल्क का समस्त देह पर लेप करना, मन्द तथा शीतल सुगन्ध युक्त पवन रोगी की देह में लग सके ऐसा प्रबन्ध करना, तरुण अर्थात् ताजे दही में चीनी मिलाकर सेवन कराना तथा नारियल के फल का पानी पीने को देना इस केअतिरिक्त अन्य जो मधुर और शीतल हितकर खाद्य पेय आदि पदार्थों काउपयोग करना चाहिए। यदि इस रस के सेवन करने से शरीर में किसी प्रकार के अन्य विकार उत्पन्न हो जांय तब उन सब में २ माशे भर शुद्ध सुहागा, मेघनाद अर्थात् लाल डण्डी वाली चोलाई की अङ्घ्रि ( जड़ ) का २ माशे भर चूर्ण, १ तोले भर चीनी, २ माशे भर मुलेठी का सत्त और २ माशे भर लालचन्दन का बुरादा ( चूर्ण ) लेकर सबको परस्पर मिलाकर तुषोदक के साथ प्रतिदिन पीना चाहिए तथा वमन होता हो और बार२ प्यास लगती हो तब कपित्थ ( कैथ ) के रस में मिश्री या चीनी मिलाकर पीलाना चाहिए तथा घृतकुमारी के शीतल गूदे का सारे शरीर पर प्रलेप करना चाहिए तथा दुग्ध के अन्दर शहद् और चीनी मिलाकर पान करना चाहिए अथवा अमृता ( गुडूची ) और बन्धूक ( दुपहरिया ) के पुष्पों का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए। इस के सेवन करने से कुपथ्यादिक के कारण उत्पन्न हुए उपद्रवों से पीड़ित पुरुषों के लिए उपर्युक्त उपचारों में से जैसा उचित हो वैसा उपचार करना चाहिए। इस अग्निकुमार नामक महारस के प्रभाव

को यथार्थ रूप से श्री गिरिजा ( पार्वती ) देवी और नन्दिकेश ( श्रिशिवजी ) अथवा श्रीनारायण ( विष्णु भगवान् ) ही जानते ॥ १७८–१९५ ॥

विमर्शः—यद्यपि तरुण दधि के सेवन करने का शास्त्र में निषेध है तथापि यहां पर तरुण दधि का तात्पर्य ताजा दही है । कुछ टीकारों ने तरुण दधि का "सप्तरात्र-व्यतीते तु दधितरुण मुच्यते, इस लक्षण से सात दिन तक व्युषित करके सेवन करना चाहिए यह अर्थ किया है किन्तु यह उचित नहीं है क्यों कि ऐसा करने से उस दही में फर्मेण्टेशन बहुत होकर वह विकृत हो जाता है, इस लिये एक दिन रात के जमे हुए दही का प्रयोग करना प्रशस्त है ।

अथ स्थौल्ये पथ्यापथ्यमाह—

पुराणशालयो मुद्गकुलत्थोद्दालकोद्रवाः। लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥१॥
श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः। हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥२॥
अस्वप्नाव्यवायाच्च व्यायामं चिन्तनानि च। स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ३
प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम्। उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥४॥

इति पथ्यानि।

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान् सुखशीलताम्।
क्षीरेक्षुविकृती मांषान् सौहित्यं स्नेहनानि च ॥ १ ॥
मत्स्यं मांसं दिवा निद्रां स्रग्गन्धान् मधुराणि च।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

इत्यपथ्यानि।

इति स्थौल्य-चिकित्सा।

अथाम्लपित्तचिकित्सा—

तत्रादौ अम्लपित्तलक्षणम्—

**अम्लोद्गारवमी हस्तपादहृत्कुक्षिदाहता।**
**अम्लपित्ते मुखं तिक्तं भवेच्छूलमरोचकम् ॥ १९६ ॥**

अम्ल अर्थात् खट्टी २ डकारों ( उद्गार ) का बारबार आना, वमन होना तथा हस्त, पाद ( पैर ), हृदय और कुक्षि ( कोख या खांक ) में दाह प्रतीत होना, सारे दिन मुख में कड़वापन प्रतीत होना, शरीर के किसी भी भाग में शूल चलना और अरुचि होना ये सब लक्षण अम्लपित्त रोग में उत्पन्न होते है ॥ १९६ ॥

अथ लीलाविलासरसः—

**शुद्धसूतं शुद्धगन्धं मृतं ताम्राभ्ररौप्यकम्।**

तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ १९७ ॥
अक्षधात्रीहरीतक्याः क्रमवृद्ध्या विपाचयेत् ।
जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषितम् ॥ १९८ ॥
अनेन भावयेत्सर्वं पूर्वं सूतं पुनः पुनः ।
पञ्चविंशतिवारं च तावद्भिर्भृङ्गजैर्द्रवैः ॥ १९९ ॥
शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पञ्चगुञ्जं मधुप्लुतम् ।
रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्तं नियच्छति ॥ २०० ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला तथा रजत ( चांदी ) की भस्म १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके सबको एक प्रहर तक अच्छी प्रकार घोंटकर शराव सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीतल सम्पुट से सिद्ध रसको निकाल कर खरल में महीन पीस लेना चाहिए। इसके पश्चात् बहेड़ा १ तोला, आंवला २ तोला तथा हरड़ तीन तोला लेकर आठ गुणे ( ४८ तोले ) जल में क्वाथ करना चाहिए। जब जल अष्टमांश ( अर्थात् ६ तोला ) शेष रहजाय तब क्वाथ को हण्डिका को चूल्हे से उतार कर क्वाथको कपड़े से छानकर इससे उपर्युक्त चूर्ण की हुई औषधि को भींगोंकर रातभर रहने देवें। फिर दूसरे दिन सुबह से ४ बजेतक घोंटकर क्वाथ को सुखा देना चाहिए। यह एक भावना हुई। इसी प्रकार २५ भावनाएं देनी चाहिए। प्रत्येक भावना में उपर्युक्त नियम के अनुसार क्वाथ्य द्रव्य (हरड़ आदि) तथा जल लेकर क्वाथ बनाना चाहिए। यदि इस प्रकार प्रतिदिन क्वाथ बनाने की सुविधा न हो तो २ या तीन भावना के लिये उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार क्वाथ्य द्रव्य तथा जलकी मात्रा बढाकर क्वाथ बना लेना चाहिए। किन्तु प्रतिदिन नया क्वाथ बनाना श्रेयस्कर है। इस तरह हरड़ आदि द्रव्यों से बनाये हुए क्वाथ के द्वारा २५ भावनाओं के समाप्त हो जाने के पश्चात् भृङ्गराज के स्वरस से भी २५ भावनाएं देनी चाहिए। यदि भृङ्गराज का स्वरस न मिल सके तो "**भाव्य द्रव्यसमं काथ्यम्**" इस परिभाषा के अनुसार उपर्युक्त चूर्णित पारदादिक पदार्थों से सिद्ध हुए रसकी मात्रा के बराबर शुष्क भृङ्गराज ( पञ्चाङ्ग सहित ) लेकर आठगुने जलमें क्वाथ करना चाहिए तथा अष्टमांश शेष रहने पर उतार के छानकर उससे १ भावना

देनी चाहिए। इस प्रकार भृङ्गराज के स्वरस अथवा क्वाथ से २५ भावनाओं के समाप्त होने पर भावित औषध को अच्छी प्रकार से घोटकर सुखाके चूर्ण बनाकर काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार सिद्ध हुए इस रसको १ रत्ती से ५ रत्ती तक लेकर मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इसको लीलाविलास रस कहते हैं। यह रस अम्लपित्त रोग को विनष्ट कर देता है ॥ १९७–२०० ॥

अथ ताम्रद्रुतिरसः—

पलं नेपालशुल्वस्य पत्राणि सुतनूनि च।
कृत्वा कण्टकवेध्यानि कारयेत्तदनन्तरम् ॥ २०१ ॥
कर्षैकं द्विगुणं ग्राह्यं क्रमात्सूतकगन्धयोः।
मर्दितव्यं शिलाखल्ले रसैर्दन्तशठस्य वै ॥ २०२ ॥
तत्कल्कं पङ्कवत्कृत्वा तेन पर्णानि सर्वशः।
लेपयित्वा शिलाखल्ले स्थापयेदातपे खरे ॥ २०३ ॥
यामैकेन समुद्धृत्य द्रवीभवति नान्यथा।
वान्तिं विरेचनं कृत्वा शुद्धकायो यथाविधि ॥ २०४ ॥
पूजयित्वा सुरान्वैद्यान्विप्रान्हेमाम्बरादिभिः।
तां द्रुतिं मधुसर्पिर्भ्यां रक्तिकामाषकादिभिः ॥ २०५ ॥
लीढ्वा तत्र पिबेत्तक्रं धान्याम्लकमथापि वा।
जीर्णे सायं समश्नीयाच्छ्यामं तु पुरातनम् ॥ २०६ ॥
सेव्यमानं निहन्त्येतदम्लपित्तं सुदारुणम्।
कासं क्षयं तथा शोषमर्शांसि ग्रहणीं तथा ॥ २०७ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च कुष्ठान्येकादशैव च।
रक्तपित्तं सखालित्यं शूलं चैवोदराणि च ॥ २०८ ॥
वातरोगं प्रतिश्यायं विद्रधिं विषमज्वरम्।
सन्ततभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनम् ॥ २०९ ॥
ताम्रवत्कुरुते देहं सर्वव्याधिविवर्जितम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं द्वितीय इव भास्करः ॥ २१० ॥

नेपाल देश की खान से निकाले हुए १ पल भर ताम्र को लेकर उसके कण्टक भेद्य ( सुई की नोक से जिन में छिद्र हो सके ) पतले २ पत्र बनवा कर उन्हें

सामान्य और विशेष दोनों प्रकार से शुद्ध कर लेना चाहिए। फिर १ कर्ष शुद्ध पारद तथा उससे द्विगुण ( २ कर्ष ) शुद्ध गन्धक लेकर पत्थर की खरल में दोनों को अच्छी प्रकार कज्जली करके जम्बीरी निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोटकर कीचड़ ( पङ्क ) के समान पतला कल्क करके उससे सब ताम्र के पत्रों को लिप्त करके खरल में रख कर तीव्र धूप में एक प्रहर ( ३ घण्टे ) तक रख दें। इस प्रकार एक प्रहर तक तीक्ष्ण धूप में तपाने से ताम्रपत्रों की द्रुति हो जाती है। एक प्रहर से कम तथा धूप तीक्ष्ण न हो तो द्रुति होना असम्भव है। इस प्रकार से उस द्रुति को खरल में से निकाल कर शीशी में भर देवें। अम्लपित्त रोग से पीड़ित पुरुष प्रथम वमन और विरेचन से यथाविधि अपने देह का शोधन करके हेम ( स्वर्ण ), अम्बर ( वस्त्र ) तथा पत्र पुष्पादियों से यथाशक्ति और यथायोग्य देवता, ब्राह्मण और रसदाता वैद्य इनकी पूजन करके उपर्युक्त ताम्रद्रुति में से १ रत्ती से १ माशे तक ( अर्थात् अपनी अवस्था शक्ति और रोग के न्यूनाधिक्य आदि का विचार करके १ रत्ती से १ माशे तक की मात्रा की कल्पना करें। प्रथम रत्ती ही की मात्रा उचित है, धीरे धीरे १ माशे तक मात्रा बढानी चाहिए) की मात्रा को लेकर विषम मात्रासे गृहीत मधु और घृत के साथ मिला कर सेवन करना चाहिए। द्रुति सेवन करने के पश्चात् तक्र ( मट्ठा या छाछ ) अथवा धान्याम्लक ( काञ्जी ) का अनुपान करना चाहिए। औषध के जीर्ण हो जाने पर सन्ध्या के समय ( अथवा जब बुभूक्षा प्रतीत हो ) पुराने शाली चांवलों का भात खाना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक इस द्रुति को सेवन करने से अम्ल पित्त रोग नष्ट हो जाता है। इस द्रुति का यथाव्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से कास ( खांसी ), क्षय, शोष, सर्व प्रकार के अर्श, ग्रहणी, कामला, पाण्डु-रोग, एकादश प्रकार के (क्षुद्र) कुष्ठ, रक्तपित्त, खालित्य (खल्वाट अर्थात् शिर के केशों के झड़ जाने से गञ्जा हो जाना), शूल, उदर रोग, वात की विकृति से उत्पन्न रोग ( वात व्याधियां ), प्रतिश्याय ( जुखाम ), विद्रधि ( एब्सिस Abscess ), विषम ज्वर ( मलेरिया Malaria ) आदि रोगों को विनष्ट कर देती है तथा इस का निरन्तर सेवन करते रहने से वली पलित ( शिर के केशों का श्वेत होना तथा गिरना ) रोग को नष्ट कर देती है। इस के सेवन करने से सर्व प्रकार की

व्याधियों से विमुक्त होकर पुरुष ताम्र के समान लाल देह वाला हो जाता है (अर्थात् रक्त की अत्यन्त शुद्धि तथा वृद्धि होने से पुरुष का चेहरा चमकने लगता है) तथा सौ वर्ष से भी साग्र अर्थात् अधिक समय तक जीवन को धारण किये रहता है। यह ताम्रद्युति मानों पृथ्वी मण्डल पर द्वितीय सूर्य है अथवा इस के सेवन से पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी हो जाने से मानों वह दूसरा सूर्य ही है॥ २०१-२१०॥

विमर्शः—ताम्र के पत्रों पर कज्जली के कल्क को चढाकर (लेप करके) तीन दिन तक निम्बू के रस के साथ ताम्रपत्र और कज्जली धूप में रख कर घोटना चाहिए, फिर उसे लौह की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर द्रव (पिघला) कर के गोबर के ऊपर रखे हुए कदली पत्र (केले के हरे पत्ते) पर डाल कर (गिराकर) ऊपर से दूसरा केले का हरा पत्र ढककर उस पर गीला गोबर रखकर दबा के पर्पटी बना लेवें, फिर स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल में महीन चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। यह सुगम तथा श्रेष्ठ और गुण प्रद उपाय है इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को चीतशङ्क होकर प्रयोग कर सकते हैं।

अथ कूष्माण्डखण्डलेहः—

**कूष्माण्डोत्थरसस्य सत्पलशतं तुल्यं गवां क्षीरकं-**
**धात्रीचूर्णपलाष्टकं लघु पचेद्यावद्घनं वेत्पिण्डितम्।**
**धात्रीतुल्यसितं पलार्धममृतं तल्लेहकं लेहयेत्**
**ख्यातं कूष्माण्डखण्डं क्षपयति नितरामम्लपित्तं नचान्यत्॥२११॥**

कुष्माण्ड (सफेद कोहड़ा या पेठा) का स्वरस १०० पल, गाय का दुग्ध १०० पल तथा शुष्क आंवलों का चूर्ण ८ पल लेकर प्रथम लोहे की १ बड़ी कड़ाही (जिसमें कलई चढी हो) में पेठे का स्वरस और दुग्ध डालकर मन्द२ अग्नि से पकावें। थोड़ी देर के बाद आंवले का चूर्ण भी डाल देवें। पाक करते समय स्वरसादिक को कलईदार लोहे के खुरपे से चलाते रहना चाहिए। इस प्रकार मन्द२ अग्नि से पाक करते२ जलीयांश के जल जाने पर खोए के समान पिण्ड बन जाय तब उसको अग्नि पर से उतार कर कड़ाही से निकाल लेना चाहिए। फिर उस कड़ाही को चूल्हे पर चढाकर उसमें आंवले के बराबर अर्थात् ८ पल चीनी डालकर थोड़ा सा (तीन छटाङ्क) जल डाल के चासनी बना लेनी चाहिए। फिर उस चासनी में उपर्युक्त पिण्ड को डालकर खुरपे से अच्छी प्रकार

घोटकर उसमें आधे पल भर अमृत अर्थात् गुडूची का सत्त या चूर्ण ( कुछ टीकाकारों ने अमृत का अर्थ शुद्ध वत्सनाभविष मानकर उसे डालने को लिखा है ) डालकर सबको अच्छी प्रकार मिला के मिट्टी के चिकने बर्तन में अथवा चौड़े मुंहवाले काच के पात्र में अथवा मृत्तवाण में भरकर सुरक्षित रख देवें। इसको कुष्माण्डखण्डलेह कहते हैं। यह कुष्माण्डखण्ड सब प्रकार के अम्लपित्त रोग को नष्ट कर देता है। मात्रा १-२ तोले। अनुपान कवोष्ण दुग्ध ॥ २११ ॥

**विमर्शः—जलीयांश के विनष्ट हो जाने पर दुग्ध तथा आंवले के चूर्ण के पिण्ड को ८ पल भर गाय के ताजे घी में भूनना चाहिए। जब भूनते २ वह लाल (सुर्ख) रङ्ग का हो जाय तथा उसको अग्नि में डालने से किसी प्रकार का चिड़ २ शब्द न हो तब उतार कर चासनी तैय्यार करके उसमें मिलाना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध हुआ कुष्माण्डखण्डावलेह अधिक समय ( करीब २ ६ मास ) तक रखने पर भी नहीं बिगड़ता है।**

अथ सामान्योपायः—

**अम्लपित्ते तु वमनं तदन्ते मृदु रेचनम्।**
**ऊर्ध्वगं वमनैर्हन्याद्धोगं रेचनैर्जयेत्॥**
**तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं चापि प्रकल्पयेत्॥ २१२ ॥**

प्रायः अम्लपित्त रोग में अन्य चिकित्सा करने के पूर्व यदि रोगी शक्ति हीन न हो अर्थात् पञ्चकर्मयोग्य हों तब उस को प्रथम वमन करा के मृदु विरेचन कराना चाहिए। प्रायः रोगी को ऊर्ध्वग अम्लपित्त हो तब वमन कराना चाहिए। वमन कराने से उस के दोष वमन के साथ २ निकल जाते हैं तथा अधोगामी अम्लपित्त हो तब मृदु विरेचन का प्रयोग करना चाहिए। वमन या विरेचन द्वारा शुद्धि होने के पश्चात् तिक्त रस प्रधान द्रव्यों का आहार तथा पान सेवन कराना चाहिए ॥ २१२ ॥

अथ वमनयोगः—

**अम्लपित्ते च वमनं पटोलारिष्टवारिभिः ॥ २१३ ॥**

ऊर्ध्वगत अम्ल पित्त के रोगी को परवल ( पटोल ) के पत्तों का स्वरस तथा अरिष्ट अर्थात् नीम के पत्तों का स्वरस पीलाना चाहिए। इस से बिना कष्ट के वमन हो जाता है ॥ २१३ ॥

अथ विरेचनयोगः—

**विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलैर्भवेत् ॥ २१४ ॥**

अधोगत अम्ल पित्त के रोगी को त्रिवृत् की जड़ का चूर्ण २—४ माशे भर लेकर १ तोले भर शहद और आंवले के फलों के २ तोले भर स्वरस अथवा क्वाथ के साथ देना चाहिए ॥ २१४ ॥

अथाम्लपित्तरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

तिक्तभूयिष्ठकाहारं पानञ्चापि प्रकल्पयेत् । यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥१॥
यवास्तंलाजसक्तून्वा सितामधुयुतान् पिबेत् । ऊर्ध्वंगे वमनं पूर्वमधोगे तु विरेचनम् ॥२॥
सर्वत्र शस्यते पथ्याद्विरहञ्चापि शालयः । यवगोधूममुद्गाश्च पुराणाः जाङ्गला रसाः ॥३॥
जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधुशक्तवः । कर्कोटकं कारवेल्लं पटोलं हिलमोचिका ॥४॥
वेत्राग्रवृद्धकूष्माण्डं रम्भापुष्पञ्चवास्तुकम् । कार्पत्थं दार्ढ्मं धात्री तिक्तानि सकलानि च ॥५॥
पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च । अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥६॥

इति पथ्यानि—

अथापथ्यानि—

लवणानि विरुद्धानि पित्तकोपकराणि च । वमिवेगं तिलान् माषं कुलत्थास्तैलभक्षणम् ॥१॥
अविदुग्धञ्च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च । गुर्वन्नं दधिमद्यञ्च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥२॥

इत्यपथ्यानि ।

## अथ पित्तरोग-चिकित्सा—

अथ पित्तान्तकरसः—

**मृतसूताभ्रमुण्डार्कतीक्ष्णमाक्षिकतालकम् ।**
**गन्धकं च भवेत्तुल्यं यष्टीद्राक्षाऽमृताद्रवैः ॥ २१५ ॥**
**जलमण्डपिकावासाद्रावैः क्षीरविदारिजैः ।**
**दिनैकं मर्दयेत्खल्ले सिताक्षौद्रयुता वटी ॥ २१६ ॥**
**निष्कमात्रं निहन्त्याशु पित्तं पित्तज्वरं क्षयम् ।**
**दाहं तृष्णां भ्रमं शोषं वेगात्पित्तान्तका रसः ॥ २१७ ॥**
**सिता क्षीरं पिबेच्चानु यष्टीं सितान्वितां जलः ।**
**पिबेद्वा पित्तशान्त्यर्थं शीततोयेन चन्दनम् ॥ २१८ ॥**

मृतसूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, मुण्डलौहभस्म १ तोला, अर्क अर्थात् ताम्रभस्म १ तोला, तीक्ष्ण लौहभस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक की भस्म १ तोला, शुद्ध हरिताल १ तोला तथा

शुद्धगन्धक १ तोला लेकर सबको खरल में डालकर अच्छी तरह से महीन पीसके यष्टी (मुलैठी), द्राक्षा, अमृता (गुडूची), जलमण्डपिका (वारिपर्णी-जलकुम्भी), वासा (अडूसा) और क्षीरविदारीकन्द इन औषधियों के स्वरस अथवा क्वाथके साथ क्रमसे एक २ दिन तक खरल करके एक २ निष्क (चार २ माशे) भर "माषैश्चतुर्भिः शाणः स्यात् स निष्कष्टङ्क एव च" की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर कर रख दें। इस रसकी एक २ वटी १ तोले भर चीनी और १½ तोले भर शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से पित्ताधिक्य, पित्तज्वर, क्षय, दाह (शरीर की जलन), तृष्णाधिक्य, भ्रम (चक्कर आना) और शोष इन रोगों को तुरन्त ही नष्ट कर देती है। इसको पित्तान्तक रस कहते हैं। इस रसके सेवन करने के पश्चात् पित्तकी शान्तिके लिये दुग्धके अन्दर मिश्री अथवा चीनी डालकर पीना चाहिए। अथवा ६ माशे भर मुलैठी के चूर्ण या सत में १ तोले भर चीनी मिलाकर शीतल जल के साथ पीना चाहिए अथवा केवल ६ माशे भर लाल चन्दन के बुरादे (चूर्ण) को शीतल जलके साथ पीना चाहिए ॥ २१५-२१८ ॥

विमर्शः—रसरत्नाकर में "जलमण्डपिकावासाद्रावः" इस जगह पर "धात्रीशतावरीद्रावैः" ऐसा पाठान्तर है। रसरत्नाकर में इस रस का "वातपित्तान्तको रसः, यह नाम है तथा रसेन्द्रसारसङ्ग्रह के वातव्याधि में कही हुई गगनादिवटी के साथ इसकी समानता है केवल उस वटी में हरताल और अमृताद्रव से भावना देने का विधान नहीं है शेष क्रिया इसी के समान है।

अथ दशसारचूर्णम्—

**यष्टी द्राक्षा फलं धात्र्या एला चन्दनबालकम्।**
**मधूकपुष्पं खर्जूरं दाडिमं पेषयेत्समम् ॥ २१९ ॥**
**सर्वतुल्या सिता योज्या पलार्धं भक्षयेत्सदा।**
**दशसारमिदं ख्यातं सर्वपित्तविकारजित् ॥ २२० ॥**
**मेहतृष्णाऽरतीश्चैव दाहं मूर्च्छां ज्वरं जयेत् ॥ २२१ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये विद्रधि-वृद्धिगुल्मयकृत्प्लीहशूलकार्श्यस्थौल्यापस्मारजलकूर्मरसवैकृतानाह्यम्लपित्तपित्तचिकित्सानामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

मुलैठी ( यष्टी या जेटीमद ) १ तोला, द्राक्षा १ तोला, धात्री ( आंवले ) के फल १ तोला, इलायची १ तोला, चन्दन १ तोला, सुगन्धबाला १ तोला, महुए के पुष्प १ तोला, खजूर ( छुहारा ) १ तोला, दाडिम ( अनार ) के फल के छिलके अथवा बीज १ तोला लेकर प्रत्येकको लोहे की ओखली ( इमामदस्ते ) में खण्ड कूट कर महीन चूर्ण करके सारे चूर्ण के बराबर ( ९ तोला ) चीनी मिलाकर काच की शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को आधे पल ( २ तोले ) भर लेकर जल के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इसको दशसार चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण सर्व प्रकार के पित्त विकार को दूर करता है तथा प्रदेह, तृष्णारोग ( बार २ प्यास लगना ) अरुचि, दाह, मूर्च्छा और ज्वर ( विशेष कर पित्तज्वर ) को नष्ट करता है ॥ २१९-२२१ ॥

विमर्शः—रसेन्द्रसारसङ्ग्रह में "यष्टी द्राक्षा फलं धान्य एलाचन्दनबालकम्" इस जगह पर "यष्टि धात्रीं बलां द्राक्षामेलां चन्दनबालकम्" ऐसा पाठ है। कहीं कहीं पर इस योग के अन्दर।

"हेममल्लसमतारसूतकं मौक्तिकञ्च विषगन्धकं कुरु।
चित्रकार्द्रकरसेन पेषयेच्छोषयेच्च परिपेषयेन्मृदु ॥
भाजने च लवणोदरे क्षिपेदङ्गुलित्रितयमायते तथा।"

इतना अधिक पाठ है।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां विद्रधि-वृद्धि-गुल्म-यकृत्प्लीह-शूल-कार्श्य-स्थौल्य-अष्ठीला-जलकूर्म-रसवैकृतानाह्लपित्तपित्तचिकित्सानामाष्टादशोऽध्यायः।

## एकोनविंशोऽध्यायः।

अथोदरादिचिकित्सा—

जलोदरलक्षणम्—

**उदरं सजलं यस्य सदोषं वलिवर्जितम्।**
**श्वयथुः पादयोः शोफः स्याज्जलोदरलक्षणम् ॥ १ ॥**

जिस पुरुष का उदर ( Abdomin alcavity) अन्नरसवाहकस्रोतसों से स्रवित हुए जल से पूर्ण हो गया हो तथा उसके पेट में वलिएं नहीं पड़ती हों,

सारे शरीर में विशेषकर पैरों में सूजन भी साथ २ हो तो उसके जलोदर रोग समझना चाहिए ॥ १ ॥

वातोदरलक्षणम्—

**उदरं वातसम्पूर्णं सञ्यथं च कृशाङ्गता ।**
**मुहुर्मुहुः श्वसित्येव तद्वातोदरलक्षणम् ॥ २ ॥**

जिस मनुष्य का उदर मलावरोध आदि करणों से इकट्ठी हुई वायु के भर जाने से फूल गया हो, उदर में पीड़ा होती हो, सम्पूर्ण शरीर कृश हो गया हो तथा बार बार रुक २ कर श्वास लेता हो उसके वातोदर रोग समझना चाहिए ॥ २ ॥

**विमर्शः**—उदर की वृद्धि बहुत प्रकार से होती है, साधारणतया उदरवृद्धि को General Abdominal Enlargements जनरल एब्डोमीनल इन्लार्जमेण्ट्स कह सकते हैं। निम्न कारणों से उदर की वृद्धि या उदरोत्सेध होता है।

**वायु**—अपचन मलावरोध आदि उपद्रवों में आन्त्र विशेष कर बृहदन्त्र में दूषित वायु के सञ्चय हो जाने से सम्पूर्ण पेट फूल जाता है इसको आध्मान (टिम्पनाइटिज या मिटियोरिजम Tympanites or Meteorism कहते हैं। इसका लक्षण इस प्रकार है—

"सातोपमत्युग्ररुज माध्मातमुदरं भृशम् ।
आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम् ॥

( सु० नि० अ० १ )

**जल**—उदरावरण ( पेरिटोनियम ) की गुहा में अन्न रस वाहक स्रोतसों की दुष्टि के कारण उन की भित्तियों से अत्यधिक मात्रा में स्रवित होकर अन्नरस जब इकट्ठा हो जाता है तब पेट फूल जाता है इस प्रकार के रोग को जलोदर कहते हैं।

**मल**—आन्त्र की ठीक२ गति न होने से शरीर से उचित मात्रा में मल नहीं निकलता है इस प्रकार प्रतिदिन थोड़ा२ मल सञ्चित होता रहता है जिससे पेट फूल जाता है। इस प्रकार के उदर शोथ में पेट को हाथ से टटोलने पर मल तथा मल की गांठ बृहदन्त्र तथा विशेष कर उसके अन्तिम भाग में प्रतीत होती हैं और जोर से दबाने से वेदना भी होती है। इस में शिर में पीड़ा, अग्निमांद्य, अध्मान आदि लक्षण प्रतीत होते है।

**मेदोवृद्धि**—मेद ( चर्बी ) का ठीक २ पाचन न होने से अथवा मेद की अधिक वृद्धि होने से भी पेट फूल जाता है। इसमें नाभि की गहराई में विशेष परिवर्तन नहीं होता है, उदर के अतिरिक्त शरीर के अन्यान्य अङ्गों में भी मेदोवृद्धि के

लक्षण ( चलस्फिगुदरस्तनः ) प्रतीत होते हैं। दोनों पार्श्व में अधिक शोथ नहीं होता है तथा उदर के ऊपर हाथ रख कर दबाने से गढा नहीं पड़ता है किन्तु अङ्गुलीताड़न करने से एक विशेष प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती। उदराङ्ग वृद्धि—उदर गुहा के अन्दर स्थित यकृत्, प्लीहा, वस्ति, ( Bladder ), गर्भाशय ( Uterus ), आदि के बढ जाने से भी उदर शोथ हो जाता है। उदरावरण में दुष्ट व्रण के हो जाने से भी उदर की वृद्धि हो जाती है। इस लिये किस प्रकार का उदर शोथ है इत्यादि का विनिश्चय कर के स्थानिक तथा साधारण चिकित्सा करनी चाहिए।

अथोदरघ्नरसः—

**जीमूतलोहरसगन्धशिलालताम्र-**
**व्योषाग्निकुष्ठमुषलीविषदीप्यचूर्णम्।**
**निम्बूकनीरलुलितं गुटिकीकृतं तत्**
**भुक्तं निशासु मधुना सकलोदरघ्नम् ॥ ३ ॥**

जीमूत अर्थात् अभ्रक की भस्म १ तोला, लौह भस्म १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध शिला ( मनः शिला या शिलाजीत ) १ तोला, आल अर्थात् शुद्ध हरताल १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, व्योष ( सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण पृथक् पृथक् १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, मीठा कूट का चूर्ण १ तोला, मुसली का चूर्ण १ तोला, विष ( शुद्ध वत्सनाभ ) १ तोला, अजवाईन का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोट कर निम्बू के रस के साथ एक दिन तक मर्दन कर के एक २ माशे भर की गोलियां बना कर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस को उदरघ्न रस कहते हैं। अर्थात् इसकी एक २ गोली प्रतिदिन सन्ध्या के समय मधु के साथ सेवन करने से उदर के समग्र रोगों को नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥

अथ विनोदविद्याधररसः—

**रसेन्द्रबलिटङ्कणैः सजयपालबीजैः समैः**
**रसः सुमृदितो भवेत्खलु विनोदविद्याधरः ॥**
**पयोगुडयुतो हरेत्सकलरेचनीयामयान्**
**ज्वरं च जठरामयान्गुदगदं सशूलं नृणाम् ॥ ४ ॥**
**सम्यग्विरेचनाभावे मुद्गक्वाथं पिबेदनु ।**

भेदाधिक्ये पिबेत्तक्रं बबूराणां त्वचो रसम् ॥ ५ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक ( बलि ) १ तोला, शुद्ध टङ्कण १ तोला, शुद्ध जयपाल चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के एक दिन तक घोट कर बारीक चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इस को विनोद विद्याधर रस कहते हैं। यह रस गुड़ और मन्दोष्ण जल के अनुपान के साथ सेवन करने से विरेचन से दूर होने वाले रोग तथा ज्वर, समस्त उदर के रोग, गुद गद अर्थात् अर्श और शूल की पीड़ा आदि को नष्ट कर देता है। इस रस के सेवन करने से यदि अच्छी प्रकार से विरेचन ( कोष्ठ की शुद्धि ) न हो तो मूंग की दाल का यूष पीना चाहिए तथा अधिक विरेचन हो तो उस को रोकने के लिये तक्र ( मट्ठा ) अथवा बब्बूल की छाल का स्वरस या क्वाथ पीना चाहिए ॥ ४–५ ॥

अथ सुरेचनकररसः—

अष्टौ निस्तुषदन्तिबीजमपि चेच्छुण्ट्यास्त्रयो गन्धकात्
द्वौ च द्वौ मरिचस्य टङ्कणरसं चैकैकभागं पृथक् ।
गुञ्जामात्रमिदं सुरेचनकरं देयं च शीताम्बुना
शोफं गुल्मजलोदरं प्रशमयेत्प्लीहामयघ्नं परम् ॥ ६ ॥

ऊपर के छिलकों से रहित तथा शुद्ध किये हुए जयपाल का चूर्ण ८ तोला, सौंठ का चूर्ण ३ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, मरिचों का चूर्ण २ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला तथा शुद्ध पारद १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोट कर चूर्ण कर के काच की शीशी में भर कर रख देवें। इस रस को १ रत्ती भर लेकर शीतल जल के साथ सेवन करने से विरेचन होता है। यह रस शोथ, गुल्म, जलोदर तथा प्लीहा की वृद्धि आदि रोगों को नष्ट करता है। यथारोगानुसार अनुपान देना चाहिए ॥ ६ ॥

अथ मृत्युञ्जयरसः—

द्विक्षारं त्र्यूषणं पञ्चलवणं शतपुष्पिकाम् ।
समभागमिदं सर्वं पटचूर्णं समाचरेत् ॥ ७ ॥
तत्समौ रसगन्धौ च कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ।

सर्वमेकत्र सम्मेल्य मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ ८ ॥
अयं मृत्युञ्जयो नाम्ना रसः शीघ्रफलप्रदः ।
कथितो मलयार्येण सन्निपातहरः परम् ॥ ९ ॥
सन्निपाते प्रयोक्तव्यो रक्तिकापञ्चमात्रिकः ।
चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थकटुभिर्वा समन्वितः ॥ १० ॥
पीततोयं त्रिदोषार्तं निर्वाते वासयेत्ततः ।
पथ्यं दध्योदनं देयं याचमानाय नान्यथा ॥
गुणो न जायते यस्य तस्य देयो रसः पुनः ॥ ११ ॥
हन्याद्धातगदं तथा कफगदं मन्दानलत्वं ज्वरं
शूलं सर्वमहामयाञ्जठरजां पीडां यकृत्पाण्डुताम् ।
शोफं गुल्मरुजं तथा ग्रहणिकां प्लीहामयं विड्ग्रहं
वान्तिं गुल्मकृतां सकासमभितः श्वासञ्च हिक्कामपि ॥१२॥

स्वर्जिक्षार १ तोला, यवक्षार १ तोला, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ, मरिच और पिप्पली इन प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला, पाचों लवण ( सैन्धव, सामुद्र, विड़ सौवर्चल और रोमक ) प्रत्येक एक २ तोला तथा सौंफ का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में महीन चूर्ण कर के कपड़े से छान लेवें। फिर सब चूर्ण के बराबर सम भाग शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक लेकर दोनों की उत्तम कज्जली बनाकर उस में उपर्युक्त द्रव्यों का चूर्ण डाल कर सब को एकत्र तीन दिन तक मर्दन कर के काच की शीशी में भर देवें। इस को मृत्युञ्जय रस कहते हैं। यह रस यथानुपान के साथ सेवन करने से शीघ्र ही फल देता है तथा विशेष कर सन्निपात को हरण करने में श्रेष्ठ है। इस रस को मलयार्य नामक महात्मा ने कहा है। इस रस को ५ रत्ती की मात्रा से चित्रक चूर्ण, आर्द्रक स्वरस, सैन्धव लवण, त्रिकटु चूर्ण आदि अनुपानों के साथ अथवा केवल जल ही के साथ सन्निपात में प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय रोगी को निर्वात ( अधिक वेगवान् वायु से रहित ) स्थान में निवास कराना चाहिए तथा जब रोगी को भूख लग जाय और वह भोजन के लिये याचना करने लगे तब दही और और पुराने चावलों का भात पथ्य में खिलाना चाहिए। इस रस को ५ रत्ती की मात्रा के एक वार प्रयोग करने से यदि विशेष लाभ न प्रतीत हो तो

उसी विधि से फिर दूसरी मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। यह रस जिस प्रकार के दोष प्रकोप हों उन के शमन करने वाले भिन्न २ अनुपानों के साथ सेवन करने से वातिक रोग, कफ जन्य रोग, मन्दाग्नि, ज्वर, शूल, उदर की पीड़ा, यकृत की वृद्धि, पाण्डु रोग, शोथ, गुल्म, प्रहर्णा, प्लीहा की वृद्धि, मलावरोध ( विबन्ध ), गुल्म के कारण बार २ होने वाले वमन तथा कास, श्वास और हिक्का आदि रोगों को विनष्ट कर देता है ॥ ७-१२ ॥

अथ उदरे विरेचनविधिः—

आदौ सर्वोदराणां च देयमुक्तं विरेचनम् ।
गोमूत्रैर्वाऽथ गोक्षीरैर्योज्यमेरण्डतैलकम् ॥
कर्षमात्रं प्रयत्नेन शुद्धे देयो रसः पुनः ॥ १३ ॥

सर्व प्रकार के उदरसम्बन्धि रोगों में विरेचनार्ह रोगी को प्रथम गोमूत्र अथवा गोदुग्ध में १ कर्ष भर शुद्ध एरण्ड तैल मिलाकर पान कराना चाहिए। इस प्रकार विरेचन से कोष्ठ शुद्धि हो जाने के पश्चात् उदररोग नाशक मृत्युञ्जय रस अथवा अन्य रस का प्रयोग करना चाहिए ॥ १३ ॥

अथ त्रैलोक्यसुन्दररसः—

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृताभ्रं सैन्धवं विषम् ।
कृष्णजीरं विडङ्गं च गुडूचीसत्त्वचित्रकम् ॥ १४ ॥
एला चैव यवक्षारं प्रत्येकं स्याद्रसार्धकम् ।
दिनं निर्गुण्डिकाद्रावैर्बीजपूररसैर्दिनम् ॥ १५ ॥
मर्दयेच्छोषयेत्साऽयं रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः ।
गुञ्जाद्वयं घृतैर्लेह्यो वातोदरकुलान्तकः ॥ १६ ॥
पलमेकं चित्रमूलं द्विर्गोमूत्रैश्चतुर्जलः ।
पाच्यं यावद्भवेत्कल्कं घृतं कल्कं च योजयेत् ॥ १७ ॥
वल्लैकं च यवक्षारं क्षिप्त्वा पक्त्वाऽवतारयेत् ।
तत्कर्षैकं पिबेच्चानु स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ १८ ॥

शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला और अभ्रकभस्म ६ माशे, सैन्धवलवण ६ माशे, शुद्ध वत्सनाभविष ६ माशे, काले जीरेका चूर्ण ६ माशे, वायविडङ्ग का चूर्ण ६ माशे, गुडूची का सत्त्व ६ माशे, चित्रक की जड़ का चूर्ण

६ माशे, इलायची का चूर्ण ६ माशे तथा यवक्षार ६ माशे भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाके उसमें शेष द्रव्य मिला के निर्गुण्डी (सम्भालू) के पत्रों के स्वरस के साथ एकदिन तक घोंटे, फिर बिजौरे निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोंट कर छायाशुष्क कर के चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस को त्रैलोक्य सुन्दर रस कहते हैं। इस रस का दो रत्ती भर लेकर १ तोले भर घृत के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के वातोदर रोग को नष्ट कर देता है। इस रसके सेवन करने के पश्चात् चित्रक की जड़ का चूर्ण १ पल तथा गोमूत्र दो पल और जल ४ पल लेकर सबको कड़ाही में डाल कर द्रवांश के नष्ट होने तक पाक करें फिर उस कल्क में उस (कल्क) से चतुर्गुण घृत और चतुर्गुण जल डाल कर घृतावशेष पर्यन्त पाक करना चाहिए। जब आसन्न पाक हो जाय तब उसमें एक वल्ल (३ रत्ती) भर यवक्षार मिलाकर उतार के स्वाङ्ग शीतल होने पर चौड़े मुख वाली काच की शीशी में भर देवें। उक्त रस के सेवन करने के पश्चात् १ कर्ष भर इसका अनुपान करना चाहिए तथा भूख लगने पर घृत से संस्कृत तथा हितकर उष्ण भोजन का सेवन करना चाहिए॥ १४-१८॥

विमर्शः—रसेन्द्रसार संग्रह और रसरत्नाकर में इस रसके निर्माण में "तथा गन्धम्" इस स्थान पर "द्विधा गन्धम्" ऐसा पाठ है तथा "मृताभ्रम्" इस स्थान पर रसेन्द्रसार संग्रह में "ताम्राभ्रम्" इस प्रकार का पाठ है। रसेन्द्रसार संग्रह में "एला" के स्थान पर उग्रगन्धा और रस रत्नाकर में "वचा" ऐसा पाठान्तर है। दोनों ग्रन्थों में "प्रत्येकं स्याद्रसार्द्धकम्" इसके बजाय में "प्रत्येकं कर्षमात्रकम्" तथा रस रत्नाकर में "वल्लैकम्" के स्थान पर "पलैकम्" ऐसा पाठान्तर है।

अथ महावह्निरसः—

चतुःसूतस्य गन्धोऽष्टौ रजनी त्रिफला शिवा।
प्रत्येकं च द्विभागं स्यात्यूषजीरकदन्तिकाः॥ १९॥
प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत्।
जयन्तीस्नुक्पयोभृङ्गवह्निवातारितैलकैः॥ २०॥
प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक्।
महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत्॥ २१॥
विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम्।
दिनान्ते भोजयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम्॥

**नाभ्युत्तरे जलस्रावं कुर्याद्धन्ति जलोदरम् ॥ २२ ॥**

शुद्ध पारद ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला तथा हरिद्रा चूर्ण २ तोला, त्रिफला का चूर्ण २ तोला, शिवा ( हरीतकी चूर्ण ) २ तोला तथा त्र्यूषण ( त्रिकटु=सोंठ, मरिच, पीपल ) ८ तोला, जीरक चूर्ण ८ तोला, दन्ती की जड़ का चूर्ण ८ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार चूर्ण कर लेना चाहिए। फिर उस चूर्ण को जयन्ती पत्र स्वरस, थूहरा का शुद्ध दुग्ध, भृङ्गराज का स्वरस, चित्रक का स्वरस और एरण्ड तैल इनमें से प्रत्येक से क्रम से पृथक् २ सात २ वार भावित करके अच्छी प्रकार चूर्ण करके शीशी में भर देवें, इसको महावह्नि रस कहते हैं। इस रसको एक निष्क ( ४ माशे ) भर लेकर गरम पानी के साथ सेवन करने से विरेचन होता है। सन्ध्या के समय सैन्धव लवण के सहित भात में मट्ठा मिलाकर पथ्य करना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय शीतल जल का पीना वर्जित है। इस प्रकार इस रस के सेवन से यदि उदर का विकार तथा उदर में सञ्चित जल का शोषण या निःसरण न हो तो नाभी के निचले भाग में शस्त्र कर्म द्वारा सञ्चित जल को निकलवा देना चाहिए। इस तरह जलोदर नष्ट हो जाता है ॥ १९–२२ ॥

**विमर्शः**—अन्य रस ग्रन्थों में "शिवा" की जगह "शिला" ऐसा पाठान्तर है तथा "प्रत्येकञ्च द्विभागं स्यात्" इसके पश्चात् "त्रिवृज्जैपालचित्रकम्" "प्रत्येकञ्च त्रिभागं स्यात्" इतना अधिक पाठ है। महावह्नि रसको रसरत्नाकर में "बह्निवीर्य्य-रसः" इस नाम से कहा है।

अथ गुड़नागरप्रयोगः—

**सर्वोदरहरं योज्यं गुडनागरयोः पलम् ॥ २३ ॥**

उपर्युक्त महावह्नि रस के सेवन करने के पश्चात् अथवा स्वतन्त्र रूप से प्रति-दिन १ तोले भर शुण्ठी चूर्ण में ३ तोले भर गुड़ मिलाकर उष्ण जल के साथ सेवन करने से जलोदरादि रोग में हित होता है ॥ २३ ॥

अथ वैश्वानररसः—

**रसगन्धकताम्राणि शिलाजित्कान्तलोहकम् ।**
**त्रिकटु चित्रकं कुष्ठं निर्गुण्डी मुसली विषम् ॥ २४ ॥**
**अजभृद्भ्श्च सर्वेषां द्वौ द्वौ भागौ प्रकल्पयेत् ।**

चूर्णीकृत्य ततः सर्वं निम्बकाथेन भावयेत् ॥ २५ ॥
एकविंशत्प्रकारेण भृङ्गराजेन सप्तधा ।
मधुना गुटिकां शुष्कां रजन्यां तु प्रदापयेत् ॥
वैश्वानराभिधो योगो जलोदरविशोषणः ॥ २६ ॥

शुद्ध पारद २ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला, ताम्रभस्म २ तोडा, शुद्ध शिलाजीत २ तोला, कान्त लौहभस्म २ तोला, त्रिकटु चूर्ण २ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण २ तोला, मीठा कूट का चूर्ण २ तोला, निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण २ तो०, मुसली कन्द का चूर्ण २ तोला, शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण २ तोला, अजवाईन का चूर्ण २ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद तथा गन्धक को पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार घोट कर निम्ब के पञ्चाङ्ग अथवा केवल उसकी छाल के क्वाथ से २१ वार भावित करके भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करना चाहिए। फिर थोड़ा सा शहद् डाल कर अच्छी प्रकार घोट कर आधे २ माशे भर की गोलियां बनाकर छाया में शुष्क करके कांच की शीशी में भर देवें। इसको वैश्वानर रस कहते हैं। इस रस की एक २ गोली प्रति दिन रात्रि के समय गरम दूध या जल के साथ सेवन करनी चाहिए। इस प्रकार यह योग उदर में सञ्चित हुए जल का शोषण कर देता है ॥२४–२६॥

अथोदयमार्तण्डरसः—

पलोन्मितस्य शुल्वस्य सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ।
तत्समं गन्धकं दत्त्वा खल्ले सर्वं विनिक्षिपेत् ॥ २७ ॥
जम्बीररससंयुक्तं दिनं घर्मे निधापयेत् ।
ततः शुल्वे द्रवीभूते रसकर्षं नियोजयेत् ॥ २८ ॥
तन्मिश्रमुदरे योज्यं शोफे चैव भगन्दरे ।
नाम्ना तूदयमार्तण्डरस एष प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥

एक पल भर शुद्ध ताम्र के पत्र लेकर एक पल भर शुद्ध गन्धक के साथ जम्बीरी निम्बू के रस में एक दिन तक घोट कर एक दिन तक उनको कड़ी (तेज) धूप में रख देवें। इस तरह धूप में रखने से जब ताम्र पत्र पिघल जांय तब १ कर्ष भर शुद्ध पारद डाल कर अच्छी प्रकार सब को घोट कर सिद्ध कर लेवें। अर्थात् इस कज्जली को सम्पुट में बन्द करके गजपुट अथवा बालुका

यन्त्र में सम्पुट को रख कर पाक करना चाहिए। इस विधि से सिद्ध हुए इस रस को उदयमार्त्तण्ड या उदरमार्त्तण्ड रस कहते हैं। इस रस को १ रत्ती की मात्रा से यथानुपानों के साथ उदररोग, शोथ और भगन्दर में प्रयुक्त करें॥२७-२९॥

अथ सूर्यप्रभागुटिका—

भार्ङ्गीवह्निजयायुगाभ्रकदलीपाठावचारोचना-
चव्यं पत्रकचित्रकं त्रिकटुकं क्षारद्वयं गन्धकम्।
त्रायन्तीहरवीजकेसरिविषद्वन्द्वं लवङ्गं कणा।
कुष्ठं शल्लफलं फलत्रययुतं फेनः समुद्रादपि॥ ३०॥
ब्राह्मी बीजं लताबीजं बालबिल्वं विरूढकम्।
लवणानि तथा पञ्च जात्यादिकुसुमाष्टकम्॥ ३१॥
वातारितैलेनैतेषां कल्पिता भिषजां वरैः।
एषा सूर्यप्रभा नाम गुटिकाऽग्निप्रदीपनी॥ ३२॥

भारङ्गी का चूर्ण १ तोला, वह्नि अर्थात् शुद्ध भिलावों का चूर्ण १ तोला, जया-युग अर्थात् जयन्ती के पत्र या मूल का चूर्ण १ तोला तथा हरीतकी का चूर्ण १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, कदली (केले) की जड़ का चूर्ण १ तोला, पाठा का चूर्ण १ तोला, वच का चूर्ण १ तोला, गोरोचन १ तोला चव्य का चूर्ण १ तोला, तेजपात का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला त्रिकटु अर्थात् सोंठ का चूर्ण १ तोला, मरिचों का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, स्वर्जिक्षार १ तोला, यवक्षार १ तोला शुद्ध गन्धक १ तोला, त्रायन्ती (त्रायमाण) का चूर्ण १ तोला, हरबीज अर्थात् शुद्ध पारद १ तोला, नागकेसर का चूर्ण १ तो०, शुद्धवत्सनाभविष १ तोला तथा शुद्ध सर्पविष १ तोला, लवङ्ग का चूर्ण १ तोला, कणा अर्थात् जीरक चूर्ण या पिप्पली का चूर्ण १ तोला, मीठा कूट १ तोला, शल्ल फल (सनई के बीजों का चूर्ण) १ तोला, हरड़ चूर्ण १ तोला, बहेड़े का चूर्ण १ तोला, आंवले का चूर्ण १ तोला, समुद्रफेन १ तोला, पलाश के बीजों का चूर्ण १ तोला, लताकस्तूरी के बीजों का चूर्ण १ तोला, कच्चे बेल (बिल्वफल) के सूखे गूदे का चूर्ण १ तोला, विरूढक अर्थात् अङ्कुरित धान्य अथवा गिलोय का चूर्ण १ तोला, पाञ्चों लवण (सैन्धव, सामुद्र, बिड़, सौवर्चल, रोमक) पृथक् २ एक २ तोला, जाती (चमेली) के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, यूथी (जूही) के

पुष्पों का चूर्ण १ तोला, मोगरे के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, मौलसिरी के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, गुलाब के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, महुवे के पुष्पों का चूर्ण १ तो०, चम्पक के पुष्पों का चूर्ण १ तोला, कदम्ब के पुष्पों का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को डालकर सब को अच्छी प्रकार घोट के एरण्ड के तैल के साथ एक दिन तक खरल करके एक २ माशे भर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इसको सूर्य प्रभा गुटिका कहते हैं। यह सूर्य प्रभा गुटिका पावकाग्नि को प्रदीप्त करती है ॥ ३०-३२ ॥

मतान्तरेणाष्टपुष्पाणि यथा—

जाती यूथी राजवल्ली क्षुद्रयूथी त्रिधामता।
चम्पको नागचम्पश्च वकुलश्च कदम्बकः ॥

अथ वज्रक्षारम्—

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम्।
टङ्कणं सर्जिकाक्षारं तुल्यं चूर्णं विभावयेत् ॥ ३३ ॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैरातपे भावयेत् त्र्यहम्।
अर्कपत्रं लिपेत्तेन रुद्ध्वा चान्तःपुटे पचेत् ॥ ३४ ॥
तत्क्षारं चूर्णयित्वाऽथ त्र्यूषणं त्रिफलारसः।
जीरकं रजनी वह्निश्चव्यकं स्यात्समं समम् ॥ ३५ ॥
क्षारार्धमेतदर्धं च एकीकृत्य प्रयोजयेत्।
अग्निमान्द्येष्वजीर्णेषु भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् ॥ ३६ ॥
वाताधिके जलैः कोष्णैर्घृतैः पित्ताधिके हितम्।।
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालैस्त्रिदोषजे ॥ ३७ ॥
वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना।
सर्वोदरेषु गुल्मेषु शोफशूलेषु योजयेत् ॥ ३८ ॥

समुद्र लवण १ तोला, सैन्धव लवण १ तोला, काचलवण १ तोला, यवक्षार १ तोला, सौवर्च लवण १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, सर्जिक्षार लवण १ तोला लेकर सबको खरल में घोटकर चूर्ण कर लें फिर उसमें आक का शुद्ध दुग्ध और थूहर का शुद्ध दुग्ध डालकर तीन दिन तक तेज धूप में रख देवें। फिर एक पल

भर ताम्र के शुद्ध पत्र लेकर उन पर उपर्युक्त भावित कल्क का लेप करके शराव में बन्द करके बालुकायंत्र में अथवा गजपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध औषध को निकाल कर खरल में महीन पीस के उसमें सोंठ का चूर्ण आधा तोला, मरिच का चूर्ण आधा तोला, पिप्पली का चूर्ण आधा तोला, हरड़ का चूर्ण आधा तोला, बहेड़े का चूर्ण आधा तोला, आंवले का चूर्ण आधा तोला, जीरे का चूर्ण आधा तोला, हरिद्रा का चूर्ण आधा तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण आधा तोला, चव्य का चूर्ण आधा तोला मिलाकर सबको अच्छी तरह से घोट कर चूर्ण करके शीशी में भर देवें। प्रायः त्र्यूषण से लेकर चव्य तक के द्रव्यों को समान २ लेकर उपर्युक्त सिद्ध औषध या क्षार की अपेक्षा आधी मात्रा से डालने चाहिएं। इस प्रकार से सिद्ध हुए क्षार को प्रति दिन दो निष्क ( ८ माशे ) की मात्रा से उष्णोदक के साथ अग्निमांद्य और अजीर्णरोग में सेवन करना चाहिए। इस क्षार को वायु की अधिकता वाले रोग में उष्ण जल के साथ पित्त की अधिकता वाले रोग में घृत के साथ, कफ की अधिकता वाले रोग में गोमूत्र के साथ और सन्निपात ( त्रिदोष प्रकोप युक्त ) रोग में काञ्जी के साथ देना चाहिए। यह सिद्ध वक्षक्षार है। इसको महादेव जी ने स्वयं कहा है। इस क्षार को विशेष करके सर्व प्रकार के उदर रोग, गुल्म, शोथ और शूल में प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ३३–३८ ॥

अथ सामान्योपायाः—

अथ खदिरादियोगः—

**खदिरं देवदारुं च कर्षं गोमूत्रतः पिबेत्।**
**उदरं पाण्डुरोगं च हन्ति शूलं च प्लीहकम् ॥ ३९ ॥**

खदिर का सत्त्व तथा देवदारु का चूर्ण दोनों को समभाग लेकर शीशी में भर देवें। इसको प्रतिदिन एक २ कर्ष भर लेकर गोमूत्र के साथ पीना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन इस योग के सेवन करने से उदररोग, पाण्डुरोग, शूल और प्लीहा की वृद्धि आदि रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

अथ पिप्पलीप्रयोगः—

**दिनैकं पिप्पलीचूर्णं स्नुहीक्षीरेण भावयेत्।**
**निष्कं जलोदरं हन्ति महिषीमूत्रतःपिबेत् ॥ ४० ॥**

एक पल भर छोटी पिप्पली के चूर्ण को खरल में डालकर शुद्धस्नुही दुग्ध के साथ एक दिन तक घोटकर सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को १ निष्क भर प्रतिदिन महिषी ( भैंस ) के मूत्र के साथ पीने से जलोदर रोग को दूर कर देता है ॥ ४० ॥

अथोदररोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

दोषैः कुक्षौ हि सम्पूर्णे बह्निर्मन्दत्वमृच्छति।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १ ॥
शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम्।
विरेकास्थापनश्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ २ ॥
विरेचनं लङ्घनमब्दसम्भवाः कुलत्थमुद्गारुणशालयो यवाः।
मृगा द्विजा जाङ्गलसंज्ञयाऽन्विताः पेया सुरा माक्षिकसीन्धुसैन्धवाः ॥३॥
तक्रं रसोनोरूबुतैलमार्द्रकं शालिञ्जशाकं कुलकं कठिल्लकम्।
पुनर्नवा शिग्रुफलं हरीतकी ताम्बूलमेलायवशूकमायसम् ॥ ४ ॥
अजागवोष्ट्रीमहिषीपयोजलं लघूनि तीक्ष्णानि च दीपनान्यपि।
यथाऽमलं पथ्यगणोयमाश्रितः सखा नृणां स्यादुदरामये सति ॥ ५ ॥
रक्तशालिन् यवान् मुद्गान् जाङ्गलान् मृगपक्षिणः।
पयो मूत्रासवारिष्टमधु शीधु च शीलयेत् ॥ ६ ॥

इति पथ्यानि।

अम्बुपानं दिवास्वप्नं गुर्वभिष्यन्दिभोजनम्।
व्यायामं चाध्वयानञ्च जठरी परिवर्जयेत् ॥ १ ॥

इत्यपथ्यानि।

अथ पाण्डुरोगः—

**विवर्णता शरीरे स्याच्छूवयथुः कार्श्यमेव च।**
**सत्त्वहानिरथाऽऽलस्यं पाण्डुरोगस्य लक्षणम् ॥ ४१ ॥**

शरीर में विवर्णता अर्थात् मुख, आंख, हाथ, पैर और नाखून आदि का पीला हो जाना, शरीर में विशेष कर पैरों पर सूजन होना, शरीर में कृशता होना तथा बल की हानि होना और सुस्ति ( आलस्य ) आदि होना ये सब पाण्डुरोग के लक्षण हैं ॥ ४१ ॥

अथ हंसमण्डूरः—

**मण्डूरं मर्दयेच्छूलदणं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्।**

त्र्यूषणं त्रिफलां मुस्तां विडङ्गं चव्यचित्रकौ ॥ ४२ ॥
दार्वीं ग्रन्थीं देवदारुं तुल्यं तुल्यं विचूर्णयेत् ।
घृतं मण्डूरतुल्यं च पाकान्ते मिश्रयेत्ततः ॥ ४३ ॥
भक्षयेत्कर्षमात्रं च जीर्णान्ते तक्रभोजनम् ।
पाण्डुरोगं हलीमं च ऊरुस्तम्भं च कामलाम् ॥
अर्शांसि हन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरकाह्वयम् ॥ ४४ ॥

मण्डूर की १ पल भस्म को अठगुने ( ८ पल ) गोमूत्र के साथ कड़ाही में डालकर पाक करें। जब पकाते पकाते मण्डूर मात्र शेष रह जाय तब उसमें मण्डूर के बराबर निम्न द्रव्य डालने चाहिएं, अर्थात् त्र्यूषण ( सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण १ पल, त्रिफला ( हरड़े, बहेड़े, आंवले ) का चूर्ण १ पल, शुद्ध नागर मोथे का चूर्ण १ पल, वायविडङ्ग का चूर्ण १ पल, चव्य का चूर्ण १ पल, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ पल, दारु हलदी का चूर्ण १ पल, ग्रन्थिपर्ण का चूर्ण १ पल, देवदारू का चूर्ण १ पल तथा शुद्ध गोघृत एक पल डालकर सबको अच्छी प्रकार लोहे की कलछी से चलाकर (घोट कर) नीचे उतार लें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस हंस मण्डूर को काच की शीशी में भर देवें। इसको कर्ष भर लेकर प्रतिदिन यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग, हलीमक, ऊरूस्तम्भ, कामला तथा सर्व प्रकार के अर्श नष्ट हो जाते हैं। यह हंसमण्डूर निःसन्देह उक्तरोगों को नष्ट करता है ॥ ४२–४४ ॥

अथ कालविध्वंसनरसः—

शुद्धसूतं हेम तारं ताम्रं तुल्यं च मर्दयेत् ।
जम्बीरनीरसंयुक्तमातपे मर्दयेद्दिनम् ॥ ४५ ॥
सर्वतुल्यं पुनः सूतं क्षिप्त्वा पिष्टं प्रकल्पयेत् ।
धत्तूरफलमध्ये तु दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत् ॥ ४६ ॥
धत्तूरोत्थद्रवैरेवं यन्त्रं पूर्यं पुनः पुनः ।
आदाय बन्धयेद्वस्त्रं इष्टिकायन्त्रगं पचेत् ॥ ४७ ॥
जम्बीरगन्धकं पिष्ट्वा अधश्चोर्ध्वं च दापयेत् ।
तुल्यं पुनः पुनर्देयं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ ४८ ॥

षड्गुणे गन्धके जीर्णं तत्तुल्यं मृतलोहकम् ।
दत्वा मर्द्यं दिनैकं च कण्टकार्या द्रवैर्दिनम् ॥ ४९ ॥
रुद्ध्वाथ करिषाग्निस्थकपोताख्यपुटे पचेत् ।
पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं त्रिवारं पूर्वजैर्द्रवैः ॥ ५० ॥
बृहत्युत्थरसैस्तद्वत्त्रिधा मर्द्य पुटेत्त्रिधा ।
वह्न्यर्कनक्तमालानां पृथग्द्रावैर्द्विधा द्विधा ॥ ५१ ॥
मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेत्तद्वद्दशांशं वत्सनाभकम् ।
दत्त्वा तस्मिन्विचूर्ण्याथ गुञ्जामात्रं प्रयोजयेत् ॥ ५२ ॥
कालविध्वंसनो नाम रसः पाण्ड्वामयापहः ।
अभयाऽथ गवां मूत्रैः पिष्ट्वा चानुप्रदापयेत् ॥ ५३ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, रजतभस्म १ तोला तथा ताम्रभस्म १ तोला लेकर सबको खरल में डालकर कज्जली के समान अच्छी प्रकार घोटकर उसमें जम्बीरी निम्बु का रस डालकर धूप में एक दिन तक खरल करना चाहिए। फिर सबके बराबर अर्थात् ४ तोला शुद्धपारद मिलाकर अच्छी प्रकार घोंट कर पिष्टी बना लेनी चाहिए। फिर उस पिष्टी को धत्तूरे के निर्बीज फलों ( रिक्तस्थान ) के अन्दर भर कर धत्तूरे के स्वरस या क्वाथ ही में तीन दिन तक दोलायन्त्र की विधि से स्वेदन करना चाहिए। स्वरस या क्वाथ के जल जाने पर फिर यन्त्र को उस से भर देना चाहिए। इस प्रकार तीन दिन तक स्वेदन कर लेने के पश्चात् औषधपिण्ड को धत्तूरे के फलों में से निकाल कर वस्त्र में पोट्टली रूपसे बांध कर नवमाध्यायोक्त इष्टिकायन्त्र में यथाविधि पाक करके उस पिण्डके बराबर शुद्ध गन्धक को जम्बीरी निम्बू के रस से घोंटकर पिष्टी बनाकर उससे उस औषध पिण्ड को चारों ओर से लिप्त करके सुखाकर शरावसम्पुट में बन्द करके लघुपुट में पाक करना चाहिए। फिर स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध औषध पिण्ड को निकाल कर समान भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर जम्बीरी निम्बू के साथ अच्छी प्रकार घोंटकर गोला बनाके सुखाकर शरावसम्पुट में बन्द करके लघुपुट में पाक करें, इस तरह चार बार और उतना ही गन्धक मिला मिला कर पाक करना चाहिए। जब अच्छी तरह से उक्त रस का छ वार गन्धक के साथ जारण हो जाय तब उसमें मिलित या सिद्ध रस के बराबर लौहभस्म डालकर एक दिनतक घोंटकर फिर उसको

कण्टकारी के स्वरस के साथ एकदिन तक घोंट कर गोला बनाके सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गोमयाग्नि में लघुपुट देना चाहिए। इस प्रकार कण्टकारी के स्वरस के साथ घोंट २ कर तीन पुट देने चाहिए। इसी प्रकार बृहती अर्थात् बनभण्टा या बड़ी कण्टकारी के स्वरस या क्वाथ के साथ भी तीनबार घोंटकर तीन पुट देवें तथा चित्रक की जड़ का क्वाथ, आक की जड़ का क्वाथ या आक का शुद्ध दुग्ध, नक्तमाल अर्थात् करञ्ज के पञ्चाङ्ग का क्वाथ इनमें भी दो २ वार घोंटकर पृथक् २ क्रमशः दो २ पुट देने चाहिए। इस प्रकार पुटों के देने से सिद्ध हुए रस को खरल में महीन पीसकर समग्र रसकी अपेक्षा द्वादशांश शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण मिलाकर घोंटके शीशी में भर देवें। इस रसको एक रत्ती की मात्रा से प्रयुक्त करना चाहिए। इसको कालविध्वंस रस कहते हैं। यह रस पाण्डु रोगको विनष्ट करता है। इस रसके सेवन करने के पश्चात् हरड़ को गोमूत्र के साथ पीसकर फिर थोड़े से गोमूत्र में घोलकर उसका अनुपान करना चाहिए ॥४५–५३॥

अथ पञ्चाननरसः—

मृतं कान्तं सुवर्णं च शुल्वताराभ्रभस्मकम् ।
पृथगक्षमितं सर्वं पटचूर्णकृतं मुहुः ॥ ५४ ॥
रसगन्धककज्जल्या तुल्यया सह मर्दितम् ।
सार्धद्विपलमानेन ताप्यचूर्णेन मर्दयेत् ॥ ५५ ॥
द्विपलं मूषिकामध्ये विनिक्षिप्यालचूर्णकम् ।
ततस्तु कज्जलीं क्षिप्त्वा मनोह्वां तावतीं क्षिपेत् ॥ ५६ ॥
ततो निरुध्य यत्नेन परिशोष्य पुटेन्निशि ।
पुटेन गजसंज्ञेन स्वतः शीतं विचूर्णयेत् ॥ ५७ ॥
चतुर्गुणेन गन्धेन निर्मितां रसकज्जलीम् ।
क्षिप्त्वा पूर्वरसे लुङ्गवारिणा परिमर्दयेत् ॥ ५८ ॥
पचेत्क्रोडपुटेनैव दशवारमतः परम् ।
एवं तालककज्जल्या दशवारं पुटेत्ततः ॥ ५९ ॥
ततश्च मृतवैक्रान्तभस्मना च कलांशतः ।
ततो विचूर्ण्य यत्नेन करण्डांतर्विनिक्षिपेत् ॥ ६० ॥

अयं पञ्चाननो नाम देवराजेन कीर्तितः ।
श्रेष्ठः सर्वरसेन्द्रेषु महारससमो गुणैः ॥ ६१ ॥
पथ्यासुरणशुण्ठीभिः सघृताभिर्निषेवितः ।
सर्वान्पाण्डुगदान्हन्ति कृतघ्न इव सत्कृतिम् ॥ ६२ ॥
यक्ष्माणं जठरं हलीमकरुजं वातार्तिविड्बन्धनं
कुष्ठं च ग्रहणीं ज्वरातिसरणं श्वासं च कासारुचीं ।
श्लेष्मव्याधिमशेषतो गलगदान्दुर्नाममन्दाग्नितां
मेहं गुल्मरुजं च किं बहुगिरा हन्याद्गदांश्चापरान् ॥ ६३ ॥
सेव्यमाने रसे चास्मिन्बिल्वमेकं च वर्जयेत् ।
स्वस्थः सर्वं समश्नीयाद्गदी पथ्यं गदापहम् ॥ ६४ ॥

मृत कान्त अर्थात् कान्त लौह भस्म १ अक्ष अर्थात् १ कर्ष ( १६ मासा ), स्वर्ण भस्म १ कर्ष, शुल्व ( ताम्र ) भस्म १ कर्ष, तार ( रजत ) भस्म १ कर्ष, अभ्रक की भस्म १ कर्ष लेकर सब को खरल में डाल कर अच्छी प्रकार घोट लेवें। फिर उन में सब के बराबर सम भाग से लिए हुए शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक की कज्जली मिला कर एक दिन तक घोटें । फिर एक मजबूत मूषा के अन्दर दो पल शुद्ध हरताल डाल कर उस में उपर्युक्त घोटी हुई औषधि या कज्जली को भर कर उस के ऊपर दो पल शुद्ध मनः शिला का चूर्ण डाल कर मूषा के मुख को बन्द कर के उस के समग्र भाग पर कपड़ मिट्टी कर के सुखा कर सन्ध्या के समय गजपुट में मूषा को रख कर पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीतल पुट से मूषा को निकाल कर उस में सिद्ध हुए रस को लेकर खरल में महीन चूर्ण कर लेवें। फिर उस रस में एक भाग पारद तथा चतुर्भाग शुद्ध गन्धक की बनी हुई सम भाग कज्जली मिला कर लुंग अर्थात् बिजौरे निम्बू के रस के साथ एक दिन तक खरल कर के गोला बना कर सुखा के कोड़ पुट अर्थात् वाराह पुट में फूंक देवें । इस तरह बार २ उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार बनाई हुई कज्जली डाल कर निम्बु के रस में घोट २ कर १० पुट देने चाहिएं । पश्चात् एक भाग शुद्ध पारद और चार भाग शुद्ध हरताल की कज्जली बना कर उपर्युक्त रस में समान मात्रा से मिला कर निम्बू के रस में घोट कर गोला बना के सुखा कर शराव द्वय में बन्द कर के वाराह पुट में दश वार फूंकना चाहिए ।

फिर उपर्युक्त रस की अपेक्षा षोड़शांश मृत वैक्रान्त की भस्म मिला कर सब को एक दिन तक खरल में घोट कर महीन चूर्ण कर के काच की शीशी में भर कर रख दें। इस को पञ्चानन रस कहते हैं। देवताओं के राजा इन्द्र ने इस रस को बताया है। यह रस बड़े २ सब रसों में श्रेष्ठ है तथा महारस अर्थात् अष्टादश संस्कार संस्कृत पारद के जितने गुण बताये हैं वे सब इस में हैं। इस रस को उचित मात्रा से हरड़ चूर्ण (१ मा०), सूरण कन्द चूर्ण (१ मा०), शुण्ठी चूर्ण (१ मा०) तथा गो घृत (१ तो०) के साथ मिला कर सेवन करने से सर्व प्रकार के पाण्डुरोगों को नष्ट कर देता है। जिस तरह कृतघ्न पुरुष सज्जन के शुभ कार्य को नष्ट कर देता है। इस रस को यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से राजयक्ष्मा, जठर रोग (उदर रोग), हलीमक, वातिक व्याधि, विड बन्धन अर्थात् मलावरोध, कुष्ठ, ग्रहणी, ज्वर, अतीसार, ज्वरातीसार, श्वास, कास, अरुचि, सब तरह के कफ से उत्पन्न हुए रोग, गले के समस्त रोग, दुर्नाम अर्थात् अर्श (बवासीर), मन्दाग्नि (अग्नि मान्द्य), प्रमेह, गुल्म रोग तथा अन्य प्रकार के समस्त रोगों को विनष्ट करता है। इस रस के सेवन करते समय बिल्व (बेल का फल मुरब्बा आदि) का सेवन वर्जित है। स्वस्थ होने पर कुछ दिनों के बाद यथेष्ट उचित आहार विहारों का सेवन कर सकते हैं। इस रस को जिस रोग को नष्ट करने के लिये सेवन करना हो उस रोग के अनुसार पथ्यापथ्य का सेवन और वर्जन करना चाहिए ॥ ५४–६४ ॥

अथारोग्यसागररसः—

**एकैकपलगन्धाश्मरससम्भवकज्जलीम् ।**
**तस्या मध्ये द्विपलिकं ताप्यं तालं पलोन्मितम् ॥ ६५ ॥**
**पलमात्रं मनोह्वां च पलमभ्रकभस्मकम् ।**
**सुखस्पर्शस्य कर्षं च निक्षिप्य परिमर्द्य च ॥ ६६ ॥**
**मूषामध्ये विनिक्षिप्य पिनद्धान्तर्मुखीं ततः ।**
**पत्रेण शुद्धताम्रस्य निर्मलेन त्रिकर्षिणा ॥ ६७ ॥**
**मूषां मृद्भिः सवस्त्राभिः परिरुध्य यथा दृढम् ।**
**परिशोष्य गिरिण्डैश्च पुटेद्गजपुटेन हि ॥ ६८ ॥**
**स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य खोटीभूतं विचूर्णयेत् ।**

गन्धतालशिलाचूर्णैः सहितं खल्लचूर्णकम् ॥ ६६ ॥
पुटेत्क्रोडपुटे चैव दशवार ततः परम् ।
क्षिपेद्विंशतिभागेन वैक्रान्तं भस्मतां गतम् ॥ ७० ॥
विमर्द्य गालितं कृत्वा क्षिपेद्रौप्यकरण्डके ।
आरोग्यसागरो नाम रसोऽतिगुणवत्तरः ॥ ७१ ॥
हन्यात्पाण्डुमरोचकं गुदगदं वातं च पित्तं कफं
गुल्माध्मानकशोफरोगमथ च श्वासं शिरोर्तिं वमिम् ।
अत्यर्थानलमन्दतां गुरुमुदावर्तं विचित्रज्वरान्
रोगानप्यपरान् रतिद्वयमितः सूतौ मरीचाज्यवान् ॥ ७२ ॥

एक पल गन्धाश्म अर्थात् शुद्ध गन्धक और एक पल शुद्ध पारद लेकर दोनों की कज्जली बनाकर उसमें दो पल स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा १ पल शुद्ध हरताल, १ पल शुद्ध मनःशिला, १ पल अभ्रक भस्म तथा सुखस्पर्श अर्थात् शुद्ध टङ्कण या स्फटिक मणि की भस्म १ कर्ष डालकर सब को एक दिन तक अच्छी प्रकार घोट के मूषा में भर कर उसके मुख को तीन कर्ष भर शुद्ध ताम्र के पत्रों से ढक कर दूसरी मूषा के मुख के साथ बन्द करके जीर्ण वस्त्रों के साथ घोंटी हुई चिकनी मिट्टी के पङ्क ( कर्दम ) से दोनों मूषा के मुखों को मजबूती से लीपकर सुखा के गजपुट के अन्दर सूखे हुए गिरिण्डों ( उपल या छाणों ) की अग्नि में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से खोटीभूत अर्थात् पिण्ड स्वरुप को प्राप्त हुए सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस कर उसमें पारद के बराबर अर्थात् १ पल शुद्ध गन्धक, १ पल शुद्ध हरताल और १ पल शुद्ध मनःशिला मिलाकर सबको अच्छी तरह से महीन पीस कर वाराहपुट के अन्दर दस वार पाक करना चाहिए। प्रत्येक पुट के पहिले उपर्युक्त प्रमाण से गन्धक, हरताल और मनःशिला डाल कर खूब घोटना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुए रस में बीसवां भाग वैक्रान्त की भस्म मिलाकर महीन पीस के कपड़े से छान कर चांदी की बोतल ( या काच की बोतल ) में भर कर सुरक्षित रख देवें। इसको आरोग्य सागर रस कहते हैं। यह रस मनुष्यों के लिये अत्यन्त गुणकर है। इस रस को १-४ रत्ती की मात्रा के अनुसार यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से पाण्डु-रोग, अरोचक, गुदा के अर्श आदि रोग, दूषितवात, पित्त और कफ तथा इन से

उत्पन्न रोग, गुल्म आध्मान, शोथरोग, श्वास, शिर की पीड़ा, वमन, अग्नि ( पाचक रसों ) की अत्यन्त मन्दता, भयङ्कर उदावर्त्त, विविध प्रकार के ज्वर तथा अन्य प्रकार के सभी रोगों को नष्ट करता है। दो रत्ति भर इस रस को मरिचों के चूर्ण ( १ मा० ) और गोघृत ( १ तो० ) के साथ सूतिका रोग में ( सूतौ ) सेवन कराना चाहिए ॥ ६५-७२ ॥

अथ पाण्डुपङ्कशोषणरसः—

**ताम्रभस्म रसभस्म गन्धकं वत्सनाभमथ तुल्यभागतः ।**
**वह्नितोयपरिमर्दितं पचेद्यामपादमथ मन्दवह्निना ॥ ७३ ॥**
**रक्तिकाद्युगलमानतो भवेच्छ्लोफपाण्डुघनपङ्कशोषणः ॥७४॥**

ताम्र भस्म १ पल, पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल, शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण १ पल लेकर सबको खरल में डाल कर महीन चूर्ण करके चित्रक के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बनाकर सुखा के मूषा या शरावसम्पुट में बन्द करके लघुपुट में मन्द २ वह्नि से पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग शीतल सम्पुट से सिद्ध औषधि को निकाल कर महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस रस को दो रत्ती के प्रमाण से सेवनकरने से गाढ पङ्क ( कीचड़ ) के समान शोथ और पाण्डु रोग को सुखा देता है ॥ ७३-७४ ॥

अथ पित्तपाण्ड्वरिरसः—( गुटी )

**रसस्य भागाश्चत्वारो लोहस्य द्वौ प्रकीर्तितौ ।**
**वह्निमुस्ताविडङ्गानां त्रिकुटत्रिफलस्य च ॥ ७५ ॥**
**भागास्त्वनेकशो ग्राह्याः कुटजस्य तथाऽपरः ।**
**चूर्णयित्वा ततः सर्वं मधुना गुटिकाः किरेत् ॥**
**एकैकां भक्षयेत्प्रातः पित्तपाण्ड्वपनुत्तये ॥ ७६ ॥**

शुद्ध पारद ४ तोला, लौहभस्म २ तोला तथा चित्रक का चूर्ण २ तोला (सहचर्यात्), नागर मोथे का चूर्ण २ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण २ तोला, त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण २ तोला, त्रिफला ( हरड़, बहेड़ा, आंवला ) का चूर्ण २ तोला तथा कुडे की छाल का चूर्ण २ तोला लेकर सबको खरल में डालकर महीन चूर्ण करके थोड़ा सा शहत् ( जितने से गोलियां बन सकें ) डाल

कर मर्दन करके एक एक माशे भर की गोलियां बना के सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस की एक एक गोली प्रतिदिन सेवन करने से पित्त जन्य पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है ॥ ७५–७६ ॥

अथ त्रैलोक्यसुन्दररसः—

**रसगन्धकलोहाभ्रगुडूचीसत्त्वसूकरः ।**
**त्रिफलाशिग्रुमूलानि भृङ्गसारेण भावयेत् ॥ ७७ ॥**
**त्रलाक्यसुन्दरः सोऽयं सघृतक्षौद्रशर्करः ।**
**मृगाङ्कवत्पथ्यभुजः पाण्डुशोफं नियच्छति ॥ ७८ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौह भस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, गिलोय का सत्त १ तोला, सूकर अर्थात् ग्रन्थिपर्ण अथवा वाराही कन्द का चूर्ण १ तोला त्रिफला का चूर्ण १ तोला, सहेजने की जड़ का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार सबको एकत्र घोट कर भृङ्गराज के स्वरस के साथ भावित करके घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इसको त्रैलोक्यसुन्दर रस कहते हैं। इस रस को ३ रत्ती से १ माशे भर तक लेकर गोघृत (१ तो०), शहद् (१½ तो०) तथा चीनी ( १ तो० ) के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग और शोथ को नष्ट कर देता है। इस रस के सेवन करते समय मृगाङ्क रस के अन्दर कहे हुए पथ्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए ॥ ७८–७८ ॥

**युतः किञ्चिद्घृतक्षौद्रगुडतित्तिरिगुग्गुलैः ॥**
**त्रिनेत्राख्यो रसो योज्यः शोफे तोयानुपानतः ॥ ७९ ॥**

शूलाधिकार में कहे हुए त्रिनेत्र नाम के रस को उचित मात्रा से घृत, शहद् गुड़, तीतर का मांसरस अथवा शुद्ध जैपाल का चूर्ण, शुद्ध गुग्गुलु के साथ शीतल वा मन्दोष्ण जल के अनुपान से शोथ पूर्वक पाण्डुरोग में प्रयुक्त करना चाहिए॥ ७९ ॥

अथ जयपालरसः—

**रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालं च गुग्गुलुम् ।**
**समांशमाज्यसंयुक्तां गुटिकां कारयेन्मिताम् ॥**
**एकैकां खादयेद्वैद्यः शोथपाण्डूपनुत्तये ॥ ८० ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, शुद्ध जयपाल का चूर्ण १ तोला तथा शुद्ध गुग्गुलु १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और

गन्धक की कज्जली बनाकर जसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार से घोंटकर जितने से गोलियां बन सके उतना घृत मिलाके घोंटकर एक २ रत्ती भरकी गालियां बना के छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें। इस रसकी एक २ गोली प्रतिदिन शोथ और पाण्डुरोग के नाश करने के लिये सेवन करनी चाहिए॥८०॥

देवदालीचूर्णम्—

**देवदाल्यास्तु पञ्चाङ्गचूर्णं क्षीरैश्च वा जलैः।**
**निष्कमात्रं पिबेन्नित्यं मासात्पाण्डुगदापहम्॥ ८॥**

देवदाली ( वन्दाल=पीतघोषा ) के पञ्चाङ्ग के चूर्ण को १ निष्क (४ माशे) भर लेकर प्रतिदिन मन्दोष्ण दुग्ध अथवा जल के साथ सेवन करने से एकमास में पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है॥ ८१॥

अथ पाण्डुहारीहरीतकी—

**कोरण्टी भृङ्गराजश्च शतावरिपुनर्नवौ।**
**एते सप्तपला ग्राह्याः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णिताः॥ ८२॥**
**एतत्क्वाथे पचेत्सम्यग्घरीतक्याः शतत्रयम्।**
**षष्ट्याधिकं ततः शुष्कं गव्यदुग्धेन पाचयेत्॥ ८३॥**
**शोषयित्वा शनैर्हृत्वा वटिकाभिः प्रपूरयेत्।**
**रसस्य त्रिपलं दत्त्वा गन्धके त्रिपलात्मके॥ ८४॥**
**पक्त्वाथ पातयेत्पत्रे चूर्णयित्वा ततः पुनः।**
**गुडूचीसत्त्वमादाय शुष्कं सत्त्वं पलाष्टकम्॥ ८५॥**
**चूर्णयित्वा ततः सर्वं मधुनागुटिकाः किरेत्।**
**तास्तु सूत्रे समाबद्ध्वा मधुभाण्डे विनिक्षिपेत्॥**
**एकैकां भक्षयेन्नित्यं शुष्कपाण्डुविनाशिनीम्॥ ८६॥**

*कोरण्टी अर्थात् पीली कटसरैया की जड़, भृङ्गराज, शतावर और पुनर्नवा* इनमें से प्रत्येक को महीन चूर्ण करके सात २ पल लेकर अठगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश ( चोथाई ) शेष रहने पर उतार के क्वाथ को छान लेना चाहिए। फिर उस क्वाथ में ३६० बड़ी २ पकी हुई हरड़ों को पधानी चाहिए। पकाते २ जब क्वाथ सूख जाय तब क्वाथ ही के बराबर गाय का दुग्ध डालकर पाक करना चाहिए। जब दुग्ध भी पकते २ चौथाई रह जाय तब उसमें से हरड़ों को निकाल

कर शीतल होनेपर धीरे २ उनकी गुठलीयों को निकाल डालनी चाहिए। पश्चात् तीन पल शुद्ध पारद और तीन पल शुद्ध गन्धक लेकर खरल में कज्जली बनाके लोहे की कड़ाही में वह्नि से पिघला कर गोबर पर रखे हुए हरे केले के पत्ते के ऊपर द्रुत कज्जली को गिराकर ऊपर से हरे पत्ते से ढककर गीले गोबर से दबा कर पर्पटी बना लेवें। फिर स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल में डालकर महीन चूर्ण करके उसमें आठ पल भर गुडूची का सत्त्व डालकर अच्छी प्रकार से घोंटकर थोड़ा सा शहद् डालकर समान प्रमाण की ३६० गोलिएं बनाकर छायामें सुखाके एक २ हरड़ में एक २ गोली रख कर प्रत्येक हरड़ को एक निर्मल डोरे से बांध कर मृतबाण या चौड़े मुखवाले काचके पात्र में शहद् भरके ( जितने में सब हरडें डूब सकें ) उस के मुख पर एक लकड़ी रखके उस लकड़ी के बीचमें सब हरडों को बांध कर शहद् में लटका देवें। फिर उस पात्र के मुखको स्वच्छ वस्त्र से युक्तिपूर्वक ढक कर एक महाने के लिये शुद्ध स्थानमें रख देवें। एकमास के पश्चात् उसमें से एक २ हरड़ प्रतिदिन निकाल कर सेवन करनी चाहिए। यह हरीतकी पाक राजयक्ष्मा और पाण्डुरोग को नष्ट करता है॥ ८२-८६॥

अथ विजयावटिका—

पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम्।
एलात्वक्पत्रमुस्तानां भागोऽर्धपलिको मतः॥ ८७॥
रेणुकार्धपलं प्रोक्तं तदर्धं नागकेसरम्।
त्र्योषं च पिप्पलीमूलं विषं च पलमात्रकम्॥ ८८॥
रसः पलो महागन्धः सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
पुरातने गुडे पक्के तुलार्धं तद्विनिक्षिपेत्॥ ८९॥
हिमस्पर्शं तु गृह्णीयात् घृतेनाऽऽक्त्वा करं बुधः।
बदरास्थिप्रमाणेन विजया गुटिका मता॥
निशायां खादयेदेनां शोफपाण्डुविनाशिनीम्॥ ९०॥

हरीतकी ( हरड़ ) ३ पल, चित्रक की जड़ ३ पल, इलायची आधापल, दालचीनी आधापल, तेजपत्र आधापल, नागरमोथा आधापल, हरेणुका आधापल, नागकेशर एक कर्ष, त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) १ पल, पिप्पलीमूल ( पिपरामूल ) १ पल, शुद्धवत्सनाभविष १ पल, शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक

( नवनीत गन्धक ) १ पल लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें उपर्युक्त सब द्रव्यों का महीन चूर्ण करके मिलाकर एकदिन तक खरल में घोंटना चाहिए। फिर कलईदार लोहे की कड़ाही में आधी तुला ( ५० पल ) भर पुराना गुड़ डाल कर जल में घोल कर पाक करना चाहिए। जब गुड़ का चाशनी की तरह पाक हो जाय तब उसमें उपर्युक्त चूर्ण की हुई औषधियों को मिलाकर अच्छी प्रकार घोट के उतार लेवें । स्वाङ्गशीतल होने पर हाथ में घृत लगाकर बैर की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर सुखा के काच पात्र में भर देवें । इसको विजया गुटिका कहते हैं । इसकी एक गुटी प्रतिदिन सन्ध्या के समय खानी चाहिए । यह गुटिक शोफ और पाण्डुरोग को दूर करती ॥ ८७–९० ॥

अथ टङ्कणादियोगः—

**टङ्कणं मेघनादं च भक्षयेत् विषशान्तये ॥ ९१ ॥**

शत्रुओं से दिये हुए विष के उपद्रवों की शान्ति के लिये अथवा अशुद्ध पारदादिक सेवन से उत्पन्न हुए विष दोष की निवृत्ति के लिये ३ रत्ती भर शुद्ध सुहागे को मेघनाद ( तण्डुलीयक २ चोलाई ) के स्वरस और मधु में मिलाकर सेवन करना चाहिए ॥ ९१ ॥

अथ कामला—

**दग्धमांसरुधिरास्रपित्ततः कामला भ्रमतृषाविदाहिनी ।**
**पीतनेत्रमलवत्युपेक्षया शोफयुग्भवति कुम्भकामला ॥९२॥**

पाण्डु रोग की दशा में अत्यन्त पित्त वर्धक द्रव्यों के सेवन करने से मांस, रक्त तथा रक्त के सहित पित्त के दग्ध अर्थात् दूषित हो जाने से कामला रोग उत्पन्न होता है । इस रोग के भ्रम (चक्कर आना), तृषा और शरीर में अधिक गरमी होना ये प्रधान लक्षण हैं । कामला रोग की उचित चिकित्सा न करने से कुम्भ कामला रोग हो जाता है । इस रोग में नेत्र तथा मल पीला हो जाता है तथा शरीर में विशेष कर के हाथ, पैर और मुख पर सूजन हो जाती है ॥९२॥

अथ कामलाप्रणुद्रसः—

**तीक्ष्णमाक्षिककान्ताभ्रशुल्वसूतकतालकम् ।**
**देवदालीरसे पिष्टं बालुकायन्त्रमूर्च्छितम् ॥ ९३ ॥**

**अमृतोत्पलकह्लारकन्दद्राक्षासमन्वितम्।**
**पिष्टं यष्ट्यम्भसा क्षौद्रसिताभ्यां कामलाप्रणुत्॥ ९४॥**

तीक्ष्ण लोह की भस्म १ पल, स्वर्ण माक्षिक की भस्म १ पल, कान्त लोहे की भस्म १ पल, अभ्रक की भस्म १ पल, ताम्र भस्म १ पल, शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध हरताल १ पल लेकर प्रथम पारद और हरताल की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोट कर देवदाली ( वन्दाल ) के स्वरस अथवा क्वाथ से एक दिन तक खरल कर के सुखा कर मूषा में बन्द कर के उस को बालुकायन्त्र अर्थात् भाण्ड की बालुका के मध्य में गाड़ कर ( रख कर ) पकाना चाहिए। इस रस का तीन दिन तक पाक करना चाहिए। रस रत्नाकर में भी वह्नि देने का यही प्रमाण मिलता है।

यथा—"पाचयेत् बालुकायन्त्रे त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्"॥

स्वाङ्ग शीतल यन्त्र से मूषा को निकाल कर उस में से सिद्ध रस को लेकर खरल में महीन पीस के उस में अमृता अर्थात् गुडूच का सत्त्व या आंवले का चूर्ण, नील कमल की जड़ अथवा पत्रों का चूर्ण, लाल कमल के पत्र या जड़ का चूर्ण, कन्द ( कन्तृण ) अथवा नील और लाल कमल का कन्द ग्रहण करें, काली दाख (मुनक्के) ये सब वस्तुएं सम भाग मिला कर १ पल भर लेकर मिला के मुलेटी के शीतकषाय अथवा क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल कर के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। इस रस को शहत् और चीनी के साथ मिला कर सेवन करने से कामला को नष्ट करता है॥ ९३-९४॥

अथ त्रियोनिरसः—

**ताम्रस्य तुर्यभागेन रसेनोत्प्लुत्य लेपयेत्।**
**निम्बूद्रावेण संयोज्य सूर्यतापे विनिक्षिपेत्॥ ९५॥**
**मत्स्याक्षीमभितो दत्त्वा मृत्स्नया सन्निरुध्य च॥ ९६॥**
**यामद्वयं सुपक्वं च स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्॥**
**गुञ्जामात्रं ददीतास्य साभयं गुडसंयुतम्।**
**त्रियोन्याख्यो रसो ह्येष शोफपाण्ड्वपनोदनः॥ ९७॥**

शुद्ध ताम्र के कण्टक वेधी पत्र ४ तोले तथा शुद्ध पारद १ तोले भर लेकर दोनों को पत्थर की खरल में डालकर अच्छी प्रकार घोटें। जब घोटते २ समग्र

पारद ताम्र के पत्रों पर चढ़ जाय तब उस खरल को निम्बू के रस से भरकर ( जितने से ताम्र पत्र अच्छी तरह डूब जांय ) तीव्र धूप में रख देवें। जब समग्र निम्बू का रस सूख जाय तब उन पत्रों को अच्छी प्रकार घोट कर उन के ऊपर घृत में पिसी हुई गन्धक की पिष्टी का लेप कर के अथवा शराव या मूषा के अन्दर थोड़ा सा शुद्ध गन्धक का चूर्ण डाल के उस पर पारद लिप्त ताम्र पत्र रख कर फिर उन को गन्धक के चूर्ण से ढक कर फिर गन्धक पर मत्स्याक्षी ( मछेछी ) का चूर्ण रख कर दूसरे शराव या मूषा से ढक कर दोनों का चिकनीमिट्टी के पङ्क से सन्धिबन्धन कर के दो प्रहर तक गजपुट में अथवा बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीसकर काच की शीशी में भर देवें। इसको त्रियोनिरस कहते हैं। इसको १ रत्तीभर लेकर हरड़ के चूर्ण ( ३ मा० ) और गुड़ (१ तोला) के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह रस उपर्युक्त विधि के अनुसार कुछ दिनों तक सेवन करने से शोथ और पाण्डुरोग को नष्ट कर देता है ॥ ९५-९७ ॥

अथ कामेश्वररसः—

पलं सूतं पलं गन्धं वज्री पथ्या त्रयं त्रयम् ।
मुस्तैलापत्रकाणां च प्रतिसार्थं पलं क्षिपेत् ॥ ९८ ॥
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं विषं चैव पलं पलम् ।
नागकेसरकर्षैकं रेणुकार्धपलं तथा ॥ ९९ ॥
पुरातनगुडेनैव तुलार्धेन विपाचयेत् ।
मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामैकान्तं घृतेन च ॥ १०० ॥
गुटिका बदराभां तु कारयेद्भक्षयेन्निशि ।
शोषपाण्डुहरः सोऽयं रसः कामेश्वरः स्वयम् ॥ १०१ ॥

शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल तथा वज्री अर्थात् थूहर का शुद्ध दुग्ध और हरड़ का चूर्ण ये प्रत्येक तीन तीन ( त्रयं त्रयम् ) पल तथा नागर मोथा, इलायची, तेजपात, सोंठ, मरिच, पिप्पली, पिपरामूल और शुद्ध वत्सनाभविष इन प्रत्येक का वस्त्र से छाना हुआ महीन चूर्ण एक २ पल तथा नागकेशर का चूर्ण १ कर्ष तथा हरेणुका का चूर्ण आधापल लेकर सर्व प्रथम पारद और

गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को डाल कर अच्छी प्रकार से घोट लेने चाहिए। फिर एक कलईदार लोहे की कड़ाही में आधी तुला (५० पल) पुराना गुड़ डाल कर उसे जल में घोल कर चूल्हे पर चढा कर पाक करें। जब चाशनी की तरह गुड़ का पाक हो जाय तब उस आसन्नपाक में सूतादिक सब द्रव्यों का चूर्ण डाल कर कलच्छी से सब को अच्छी प्रकार घोट के मिला कर उतार लेवें। स्वाङ्गशीतल होने पर घृत कुमारी के स्वरस के साथ एक प्रहर तक मर्दन करें तथा एक प्रहर तक थोड़ा सा घृत डाल कर मर्दन करके बैर के (गुठली के बराबर) समान गोलियां बनाकर छाया शुष्क करके काच के पात्र में भर कर सुरक्षित रख देवें। इसको कामेश्वर रस कहते हैं। इस रस की एक २ गोली प्रति संध्या के समय दुग्ध के साथ सेवन करनी चाहिए। यह रस शोफ (शोथ) और पाण्डु रोग अथवा शोथ युक्त पाण्डुरोग को नष्ट करता है॥ ९८-१०१॥

अथ सिन्दूरभूषणरसः—

शुद्धसूतं च सिन्दूरं पलैकैकं विमर्दयेत्।
वासारसेन यामैकं तेन कुर्याच्च चक्रिकाम्॥ १०२॥
सुपक्वां कारयेन्मूषामुत्तानां द्वादशाङ्गुलाम्।
तन्मध्ये गन्धकं शुद्धं क्षिपेत्पलचतुष्टयम्॥ १०३॥
पूर्वोक्तां चक्रिकां तत्र क्षिप्त्वाऽथ प्रपुटेल्लघु।
जीर्णे गन्धे समुद्धृत्ये चक्रिकां तां विचूर्णयेत्॥ १०४॥
चूर्णाद्दशगुणं योज्यं मृतं लोहं च मर्दयेत्।
लशुनेन दशांशेन चणमात्रा वटीः किरेत्॥ १०५॥
वातपाण्डुहरः सिद्धो रसः सिन्दूरभूषणः।
पिबेच्चानु ह्यपामार्गस्यैरण्डस्य च मूलिकाम्।
तक्रैः पिष्ट्वाऽथ कर्षैकं हन्ति पाण्डुं सकामलम्॥ १०६॥

शुद्ध पारद १ पल तथा रससिन्दूर १ पल लेकर दोनों को खरल में एक दिन तक मर्दन करके अडूसे के पत्तों के स्वरस के साथ एक प्रहर तक घोटकर छोटी २ तथा चिपटे आकार की चक्रिका (टिकियां) बनाकर उन्हें सुखा लेवें। पश्चात् मूषा के उपयुक्त मृत्तिका से बारह अङ्गुल ऊंची तथा चौड़ी मूषा बनाकर उसको कुम्हार जिस तरह से कच्चे बर्तनों को पकाता है उसी तरह पकाकर उसमें ४ पल

शुद्ध गन्धक बिछाकर उस पर उपर्युक्त टिकियाओं को रखकर मूषा के मुख को बन्द करके लघुपुट में रखकर पाक करना चाहिए। जब समग्र गन्ध का जारण हो जाय तब स्वाङ्गशीतल मूषा से चक्रिकाओं को निकाल कर खरल में महीन पीस के समस्त चूर्णित रस से दश गुणी लोहे की भस्म डाल कर एक दिन तक घोट कर समस्त रस की अपेक्षा दशमांश लहसुन की निष्तुष गिरियां या गांठया डाल कर एक दिन तक सब को खरल करके चने के प्रमाण की गोलियां बना कर छाया शुष्क करके काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को सिन्दूरभूषणरस कहते हैं। यह रस वातविकृतिजन्य पाण्डुरोग अथवा वातिक रोग और पाण्डुरोग को नष्ट करता है। इस रस को सेवन करके अपामार्ग (चिरचिटा) और एरण्ड की जड़ प्रत्येक एक २ कर्ष भर लेकर तक्र (मट्ठे) के साथ पीस कर पीने से कामला और पाण्डुरोग नष्ट हो जाते॥ १०२-१०६॥

अथ सुधापञ्चकरसः—

**कंसेन पिष्टः शिलया सहितः पाचितो रसः।**
**हताभ्यां तीक्ष्णताम्राभ्यां युतो हन्ति हलीमकम्॥ १०७॥**

कांस्यभस्म १ पल, शुद्धमनःशिला १ पल, शुद्धपारद १ पल, तीक्ष्ण लौह की भस्म १ पल तथा ताम्रभस्म १ पल लेकर सब को खरल में डाल कर महीन पीस के दृढ मूषा में बन्द कर के बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल मूषा से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवे। इस रस को १-३ रत्ती भर तक मधु के साथ कुछ दिन तक सेवन करने से हलीमक रोग नष्ट हो जाता है॥ १०७॥

अथ मुस्तादिचूर्णम्—

**मुस्ताऽमृताचित्रकयष्टिपिप्पलीविडङ्गशुण्ठीत्रिफलैर्यथोत्तरम्।**
**चूर्णं सहायोरजसा च संयुतं समाक्षिकं पाण्डुगदापहं परम्॥१०८॥**

नागरमोथे का चूर्ण १ तोला, अमृता अर्थात् आंवले या गुडूच का चूर्ण या सत्त्व २ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण ३ तोला, मुलेठी का चूर्ण ४ तोला, पिप्पली का चूर्ण ५ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण ६ तोला, सोंठ का चूर्ण ७ तोला तथा हरड़ का चूर्ण ८ तोला, बहेड़े का चूर्ण ९ तोला, आंवले का चूर्ण १० तोला,

स्वर्णमाक्षिक की भस्म ११ तोला तथा लोहभस्म १२ तोला अथवा लौह भस्म को सर्वद्रव्यों के बराबर लेवें क्यों कि रसरत्नाकर में "सर्वांशं मृतलौहकम्" लौहभस्म को सब के समान लेने का प्रमाण मिलता है। उपर्युक्त सब द्रव्यों को खरल में डाल कर एक दिन तक अच्छी प्रकार पीस कर शीशी में भर देवें। इस योग में से प्रतिदिन २ रत्ती से १ माशे भर तक लेकर मधु के साथ प्रातः सायं दो वार सेवन करने से पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है ॥ १०८ ॥

अथ सामान्योपायः—

**अपामार्गं शमीमूलं पिष्ट्वा तक्रेण पाययेत् ।**
**कामलां श्वयथुं पाण्डुं कर्षमात्रं नियच्छति ॥ १०९ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भटाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये उदरपाण्डुशोथ कामलाकुम्भकामलाहलीमकचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥



अपामार्ग ( आंधी झाड़े ) की जड़ अथवा पञ्चाङ्ग १ कर्ष तथा शमीवृक्ष की जड़ का चूर्ण १ कर्ष लेकर दोनों को तक्र के साथ पीने से कामला, श्वयथु और पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है ॥ १०९ ॥

अथ पाण्डुरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः । पथ्यानि—

**छर्दिर्विरेचनं जीर्णयवगोधूमकालयः । मुद्गाढकीमसूराणां यूषा जाङ्गलजा रसाः ॥१॥**
**पटोलं वृद्धकूष्माण्डं तरुणं कदलीफलम् । जीवन्ति क्षुद्रमत्स्याक्षी गुडूची तण्डुलीयकम् ॥२॥**
**पुनर्नवा द्रोणपुष्पी वार्ताकं लशुनद्वयम् । पक्वाम्रमभया बिम्बी शृङ्गी मत्स्याः गवां जलम् ॥३॥**
**धात्री तक्रं घृतं तैलं सौवीरकतुषोदके । नवनीतं गन्धसारो हरिद्रा नागकेशरम् ॥४॥**
**यवक्षारो लौहभस्म कषायाणि च कुङ्कुमम् । दाहक्षरणयोः सन्धौ नाभेश्च ह्यङ्गुलादधः ॥५॥**
**मस्तके हस्तयोर्मूले मध्ये च स्तनकक्षयोः । यथादोषमिदं पथ्यं पाण्डुरोगवतां भवेत् ॥६॥**

अथापथ्यानि—

**रक्तस्रुति धूम्रपानं वमिवेगविधारणम् । स्वेदनं मैथुनं शिम्बी पत्रशाकानि रामठम् ॥१॥**
**माषोऽम्बुपानं पिण्याकस्ताम्रकूलं सर्षपाः सुराः । मृद्वक्षकं दिवास्वप्नं तीक्ष्णानि लवणानि च ॥२॥**
**सह्यविन्ध्याद्विजातानां नदीनां सलिलानि च ।**
**सर्वाण्यम्लानि दुष्टाऽम्बु विरुद्धान्यशनानि च ॥३॥**

गुर्वन्नञ्च विदाहीनि पाण्डुरोगवतां विषम्। वह्निमातपमायासमन्नपानञ्च पित्तलम् ॥
मैथुनं क्रोधमध्वानं पाण्डुरोगी सदा त्यजेत् ॥४॥

इति पथ्यापथ्यविवेकः

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायामुदरपाण्डुशोथ-कामलाकुम्भकामलाहलीमकचिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥

## विंशोऽध्यायः।

अथ विसर्पजिद्रसः—

**कान्तगन्धकतीक्ष्णाभ्रविषताप्यसमन्वितः।**
**वन्ध्याकर्कोटिकोकन्दे पक्वं सूतो विसर्पजित् ॥ १ ॥**

कान्तलौहभस्म १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, तीक्ष्णलौह भस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, शुद्धवत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला तथा शुद्ध पारद १ तोल लेकर खरल में पारद और गन्धक की महीन कज्जली कर के उसमें सब द्रव्यों को मिलाकर के घोट कर बांझ ककोड़े की जड़ के अन्दर खात ( गड्ढा ) कर के भरकर उसके मुख को बन्दकर के कपड़ मिट्टी कर के सुखाकर गजपुट में पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें । इस रस को सेवन करने से विसर्प रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

**विमर्शः—रसेन्द्रसारसंग्रह में इसको कालाग्निरुद्ररस कहा है तथा इसकी निर्माणविधि और द्रव्य प्रक्षेप में भी भेद है ॥**

**यथा—सूताभ्रकान्तलौहानां भस्म गन्धकमाक्षिकम्।**
**वन्ध्याकर्कोटिकाद्रावैस्तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥**
**वन्ध्या कर्कोटिकाकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः।**
**भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दिनैकं तद्विपाचयेत् ॥**
**दशमांशं विषं योज्यं माषमात्रन्तु भक्षयेत्।**
**रसःकालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् ॥**
**पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥**

प्रातः इसी प्रक्रिया के अनुसार विसर्पजिद्रस को बनाना चाहिए॥

अथ विसर्पनाशनतैलम्—

एरण्डतुम्बिनीनिम्बवाकुचीचक्रमर्दकम्।
तिक्तकोशातकीबीजमङ्कोल्लश्चञ्चुबीजकम् ॥ २ ॥
गोमूत्रदधिदुग्धैस्तु भावयेत्तिलजेन च।
मूत्रेणाजाप्रसूतेन तैलं पातालयन्त्रजम्॥
विसर्पं नाशयत्याशु श्वेतकुष्ठं च तत्क्षणात् ॥ ३ ॥

एरण्ड ( रेंड़ी ) के छिलके रहित बीज ( गिरि ), कड़वी तुम्बी के बीज, निम्ब के बीज, वाकुची के बीज, चक्रमर्द ( चकवड़ ) के बीज, तिक्तकोशातकी ( तिक्तघोषक=कड़वी तरोई ) के बीज, अङ्कोल के बीज और चञ्चु नामक शाकविशेष के बीज इन सब को समभाग लेकर निस्तुष करके थोड़े २ कूट कर गोमूत्र, गोदधि और गोदुग्ध इन में से प्रत्येक से सात २ वार भावित करके तिल के तैल और बकरी के मूत्र से भी एक २ वार भावित करके पाताल यन्त्र की विधि से तैल निकाल लेना चाहिए। इस प्रकार इन बीजों से पाताल यन्त्र के द्वारा निकले हुए तैल को शरीर पर लेप या मालिश के रूप में प्रयुक्त करने से विसप और कुष्ठ को नष्ट कर देता है ॥ २-३ ॥

विमर्शः—एक हण्डिका में उपर्युक्त बीजों के भावित चूर्ण को भर कर छोटे छेद वाली जाली से हण्डिका के मुख को बन्द करके उसके समग्र भागको ( मुख की जाली को छोड़ कर ) मिट्टी से लीप कर सुखा देवें, फिर पृथ्वी में दो हस्त गहरा गड्ढा खोद कर उसमें एक तैल से लिप्त हुई हण्डिका रख कर उसके मुख पर बीजों के चूर्ण से भरी हण्डिका को अधोमुख वाली करके ढककर दोनों के मुख की सन्धि बन्द करके नीचे वाली हण्डिका के कण्ठ से भी कुछ ऊपर तक मिट्टी को डाल देवें, फिर ऊपर की ( जिस में बीज चूर्ण भरा है ) हण्डिका के पाठ पर सूखे हुए उपलों की अग्नि जलानी चाहिए। इस तरह अग्नि के ताप से बीजचूर्ण में से तैल निकल कर मुख पर ढकी हुई जाली से निकल कर नीचे की स्निग्ध हण्डिका में इकट्ठा हो जाता है। स्वाङ्गशीतल अग्नि होने पर राख को दूर करके धीरे से दोनों हण्डिकाओं को निकाल कर युक्ति से ऊपरी हण्डिका को हटा कर नीचे की हण्डिका से तैल निकाल कर शीशी में भर देवें।

अथ विसर्पहरतैलम्—

एरण्डतुम्बीवटुनिम्बचक्रमर्दोत्थबीजानि च सोमराजी।

**अङ्कोलबीजानि समानि कृत्वा पातालयन्त्रेण सुतैलमेषाम् ॥ ४ ॥**
**प्रगृह्य तेनाऽथ विमर्दयीत विसर्पकादीनि कृतं प्रयान्ति ॥ ५ ॥**

एरण्ड ( रेड़ी ), तुम्बीकटु अर्थात् कड़वी तुम्बी अथवा तुम्बी और कटु ( राई के बीज ) तथा निम्ब, चक्रमर्द ( चकवड़ ) इनके बीज तथा सोमराजी अर्थात् बाकुची और अङ्कोल के बीज इन सब को समभाग लेकर पातालयन्त्र की विधि से तेल निकाल लेवे' अर्थात् इन सब बीजों को खरल में पीस कर तिल के तैल के साथ भावित करके पातालयन्त्र से तैल निकालें। इस तैल के मर्दन करने से विसर्प तथा अन्य प्रकार के खुजली वाले रोग ( सामान्य कुष्ठादिक ) नष्ट हो जाते हैं ॥ ४–५ ॥

इति विसर्प चिकित्सा ।

अथ कुष्ठरोगः—

गलत्कुष्ठलक्षणम्—

**पादयोः श्वयथुस्तोदो गलन्त्यङ्गुलयो यदि ।**
**नासिकास्वरयोर्भङ्गो गलत्कुष्ठस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥**

पैरों के ऊपर विशेष कर प्रपद में शोथ तथा सूई के चुभोने के समान पीड़ा होना तथा पैर और हाथों की अङ्गुलियों में से पूय का निरन्तर या कभी २ स्राव हो २ कर धीरे २ उनका गलना ( नष्ट होना ) तथा नासिका में भी कुष्ठ होने के कारण धीरे १ गल कर उसका भङ्ग होना एवं स्वर का भङ्ग होना ये सब गलत् कुष्ठ के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ श्वित्रकुष्ठलक्षणं भेदाश्च—

**श्वित्रं तु कृष्णमरुणं मरुदन्वगामि**
**पित्तेन रोमशतनं च विदाहितां च ।**
**मांसाश्रितं बहुसितं कफतः सकण्डु**
**मेदोगतं बलवदेव यथोत्तरं स्यात् ॥ ७ ॥**

वातकी विकृति से उत्पन्न होने वाला कुष्ठ कुछ श्वेत तथा काला होता है, रक्त की विकृति से उत्पन्न होने वाला कुष्ठ लाल रङ्ग का होता है तथा यह विशेष कर रक्त के अन्दर अर्थात् त्वचा के मध्य के पर्त में जहां की छोटी २ रक्तवाहिनियों का जाल फैला होता है वहां स्थित होता है। पित विकृति से उत्पन्न हुए

कुष्ठ में जिस स्थान में वह पैदा होता है वहां के केश (बाल) गिर जाते हैं और साधारण जलन भी होती रहती है। कफकी विकृति से उत्पन्न हुआ कुष्ठ अत्यन्त श्वेत होता है तथा यह मांस पेशियों में विशेष विकृति करता है और उस स्थान की त्वचा में खुजली भी चलती रहती है। मेद में उत्पन्न कुष्ठ भी खुजली युक्त तथा कुछ श्वेत होता है। इन कुष्ठों में उत्तरोत्तर बलिष्ठ अर्थात् अधिक दोष जुष्ट होने से साध्य, कृच्छ्रसाध्य और असाध्य होते हैं॥ ७॥

अथ वातकुष्ठहररसः—

**विपचेद् गन्धकमध्ये घनपिष्टौ शुल्वपिष्टौ वा।**
**सङ्कोच्य गोलकोऽयं शमयति वातोत्थकुष्ठानि॥ ८॥**

अभ्रक की भस्म को अथवा ताम्रकी भस्म को कुष्ठहर औषधियों के स्वरस के साथ सातदिन तक खरल करके (रात्रि में भावना देकर दिन में घोटना चाहिए) फिर पिष्टी या गोला बनाकर उस गोले को एक सकोरे (शराव) या मूषा में रख कर गोले के नीचे और ऊपर द्विगुण गन्धक डाल कर औषध युक्त शराव या मूषा को द्वितीय शराव या मूषा के मुख के साथ बन्द करके दोनों की सन्धियों को बन्दकर चिकनी मिट्टी के पङ्क (कीचड़) से समग्र भाग को लीपकर सुखा के गजपुट में अथवा बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध हुए रस को १–२ रत्ती भर तक प्रतिदिन मधु के साथ सेवन करने से वातिक कुष्ठ नष्ट हो जाता है॥ ८॥

अथ पित्तकुष्ठहररसः—

**कामलाभ्रकस्य सङ्कोचो घृतगन्धकपाचितः।**
**व्योषाग्निवेल्लत्वङ्मुस्ताव्याधिघातविषैः समः॥ ९॥**
**त्रिगुणः प्राणदो रेणुः पञ्चाशन्मृतकाञ्चनः।**
**बदरास्थिमितो मूत्रेणाजेन गुटिकीकृतः।**
**नाशनः पित्तकुष्ठानामेकविंशतिवासरात्॥ १०॥**

कृष्ण अभ्रक की भस्म १ तोले भर लेकर उसमें चतुर्गुण शुद्धगन्धक और घृत मिलाकर अच्छी प्रकार घोंट कर घोला बनाके शराव सम्पुट या मूषा में बन्द करके बालुकायन्त्र में पाक कर लेवें। फिर स्वाङ्गशीतल होने पर निकाल के खरल में डालकर महीन चूर्ण करके उसमें व्योष अर्थात् सोंठ, मरिच और पिप्पली का

चूर्ण मिलाकर १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, दालचीनी का चूर्ण १ तोला, शुद्ध नागर मोथे का चूर्ण १ तोला, व्याधिघात अर्थात् अमलतास के फल के शुष्क गूदे का चूर्ण १ तोला, शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण १ तोला तथा तीन गुना अर्थात् एकभागापेक्षया त्रिगुणित ( ३ तोला ) प्राणद अर्थात् जीवक का चूर्ण तथा उतना ही हरेणुका का चूर्ण तथा पञ्चांश मृत काञ्चन अर्थात् स्वर्ण भस्म ५ तोले भर डाल कर सब को खरल में अच्छी प्रकार से घोटकर बकरी के मूत्र के साथ एकदिन तक खरल करके बैर की गुठली के बराबर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को २१ दिन तक सेवन करने से पित्तजन्य कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ९–१० ॥

अथ वफकुष्ठहररसः—

**कनकाभ्रकसङ्कोचस्तैलगन्धकपाचितः ।**
**विषव्याघाब्दवेल्लत्वक्तुल्यस्त्रिगुणचित्रकः ॥**
**गुञ्जामानाऽजमूत्रेण पिण्डितः श्लेष्मकुष्ठनुत् ॥ ११ ॥**

स्वर्णभस्म १ तोला तथा अभ्रकभस्म १ तोला लेकर दोनों को घोट कर द्विगुण शुद्धगन्धक और तैल के साथ घोट कर गोला बना के सुखा कर शराव सम्पुट में बन्द कर के कपड़ मिट्टी कर के सुखा कर गज पुट में पाक करना चाहिए। पाक के पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस के फिर उस में शुद्ध वत्सनाभ विष, व्योष ( त्रिकटु ) नागर मोथा, वायविडङ्ग और दालचीनी इन सब को समभाग से लेकर चूर्ण कर के उपर्युक्त रस के बराबर मिलावें तथा उपर्युक्त रस से त्रिगुण चित्रक की जड़ का चूर्ण मिला कर सब को एक दिन तक घोट कर महीन चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इस रस को १ रत्ती के प्रमाण से प्रतिदिन बकरी के मूत्र अथवा शीतल जल के साथ सेवन करने से कफ की विकृति से उत्पन्न कुष्ठ नष्ट हो जाता है। अथवा सब चूर्ण को बकरी के मूत्र से भावित कर के घोट कर एक २ रत्ती भर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस की एक २ गोली प्रतिदिन सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

अथ सन्निपातकुष्ठहररसः—

**तीक्ष्णाभ्रहेमसङ्कोचस्तैलगन्धकपाचितः ।**

तालताप्यविशालाग्निबोलपाठाजटाविषः ॥ १२ ॥
शृङ्गीटङ्कणयष्ट्याह्वसिन्धुवारः समन्वितः ।
रसेन शृङ्गवेरस्य बद्धो बदरसन्निभः ।
छायाविशोषितः कुष्ठं निहन्यात्सन्निपातजम् ॥ १३ ॥

तीक्ष्ण लौह की भस्म १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला तथा स्वर्णमाक्षिक की भस्म १ तोला लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार घोट कर सब से द्विगुण शुद्ध गन्धक और तैल मिला कर घोट के गोला बना कर शराव सम्पुट में बन्द कर के बालुकायन्त्र में पाक कर लेना चाहिए । स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के फिर उस में शुद्ध हरताल, स्वर्णमाक्षिकभस्म, इन्द्रवारुणी, चित्रक की जड़, बोलबद्ध, पाठा, जटामांसी, शुद्धवत्सनाभविष, काकड़ासींङ्गी, शुद्धसुहागा, मुलेठी और निर्गुण्डी की जड़ इन सब को सम भाग लेकर महीन चूर्ण बना के उपर्युक्त रस के बराबर की मात्रा से डाल कर सब को अच्छी प्रकार से घोट कर अद्रक के स्वरस की भावना देकर अच्छी प्रकार घोट के बेर की गुठली ( १ मा० ) के प्रमाण की गोलियां बना के छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन सेवन करने से त्रिदोष की विकृति से उत्पन्न हुआ कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ १२-१३ ॥

अथ विजयरसः—( गुटिका ) ।

रेणुका पिप्पलीमूलं बाकुची विषतिन्दुकम् ।
अश्वगन्धा पलाशास्थि व्योषादिनवकं वचा ॥ १४ ॥
विशाला गन्धकं कुष्ठं सविषं रसभस्मकम् ।
गुडेन गुटिकां कुर्यात्समेन मधुमिश्रिताम् ॥ १५ ॥
तां भक्षयेत्सितासर्पिः क्षीरशाल्यन्नभाग्भवेत् ।
यवौदनं वा भुञ्जानो ब्रह्मचर्यपरायणः ॥ १६ ॥
खादेत्तापे सिताधान्यसर्पिर्नागबलारजः ।
वटिका विजयाख्येयं सप्त कुष्ठान्नियच्छति ॥ १७ ॥

रेणुका ( हरेणुका ) का चूर्ण १ तोला, पिपरामूल का चूर्ण १ तोला, बाकुची का चूर्ण १ तोला, शुद्ध विषतिन्दुक ( कुचिला ) का चूर्ण १ तोला, असगन्ध का

चूर्ण १ तोला, पलाश की फली के बीजों का चूर्ण १ तोला, व्योषादि नवक त्रिकटु त्रिफला और त्रिमद अर्थात् सोंठ का चूर्ण १ तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, बहेड़े का चूर्ण १ तोला, आंवले का चूर्ण १ तोला, वाय विड़ङ्ग का चूर्ण १ तोला, नागर मोथे का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला तथा वचा का चूर्ण १ तोला, इन्द्र वारुणी का चूर्ण १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, मीठा कूट का चूर्ण १ तोला, शुद्धवत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला लेकर सर्व प्रथम रससिन्दूर और गन्धक को महीन पीस कर उस में शेष सब चूर्ण मिला के अच्छी प्रकार घोट कर सब औषधों के बराबर गुड़ मिला कर तथा थोड़ा सा शहद् ( जितने से गोलियां बन सकें ) मिला कर सब को अच्छी प्रकार घोट के एक २ माशे भर की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ गोली शहद् के साथ सेवन करें तथा बुभूक्षा लगने पर चीनी और घी से मिले हुए दुग्ध के साथ शाली चांवलों के भात का सेवन ( भोजन ) करना चाहिए । अथवा यवों ( जौ ) का ओदन ( भात ) बना कर सेवन करना चाहिए । इस रस के सेवन करते समय ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए । इस रस के सेवन करने से शरीर में गरमी अधिक ज्ञात हो तो औषधसेवी रोगी को चीनी, धान की खीलें, घृत और नागबला ( गङ्गेरन ) का चूर्ण इन सब को मिला कर सेवन कराना चाहिए । इस को विजया वटी कहते हैं । इस वटी के सेवन करने से सातों प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १४–१७ ॥

अथ सर्वेश्वररसः—

**पालिकं ताम्रगन्धाभ्रं कर्षांशं लोहपारदम् ।**
**स्नुह्यर्कक्षीरवातारिजम्बीरोशीरवारिभिः ॥ १८ ॥**
**मर्दितं बालुकायन्त्रे स्वेदयेद्दिवसत्रयम् ।**
**कर्षं कणाया निष्कं च विषस्यास्मिन्विनिक्षिपेत् ॥**
**एष सर्वेश्वरः सद्यो गुञ्जामात्रः प्रसूतिजित् ॥ १९ ॥**

ताम्रभस्म १ पल, शुद्धगन्धक १ पल, अभ्रकभस्म १ पल, लोहभस्म १ कर्ष तथा शुद्धपारद १ कर्ष भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के घोट कर थूहर का शुद्ध दुग्ध, आक का शुद्ध

दुग्ध, एरण्ड की जड़ का क्वाथ, जम्बीरी निम्बू का रस, खस का पानी इन सब से क्रमशः एक २ वार एक २ दिन तक घोटकर गोला बना के सुखा कर सकोरे (शराव) में रख कर दूसरे सकोरे के साथ बन्द कर के सन्धिलेप कर सुखा के बालुकायन्त्र में तीन दिन तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके फिर उसमें पिप्पली का चूर्ण १ कर्ष तथा शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण १ निष्क (४ मा०) भर मिला कर सब को अच्छी प्रकार घोट कर चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इसको सर्वेश्वर रस कहते हैं। इस रस को १ रत्ती भर प्रतिदिन सेवन करने से प्रसुप्ति अर्थात् अङ्ग की वातिक सूत्रों की विकृति के कारण उत्पन्न हुई अकर्मण्यता अथवा सुप्तिकुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ १८–१९ ॥

अथ सुप्तकुष्ठारिरसः—

**गन्धो रसश्च कटुतैलभृतो मृतोऽर्को**
**व्योषाग्निवेल्लविषभेद्यभयावचाभिः ।**
**ज्वालामुखीरसविमर्दितमाक्षिकाढ्यः**
**पिण्डीकृतः शमयति स्थिरसुप्तकुष्ठम् ॥ २० ॥**

सरसों के तैल में शुद्ध किया हुआ गन्धक १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला, ताम्र की भस्म १ तोला व्योष अर्थात् सोंठ का चूर्ण १ तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, शुद्धवत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, मेघ अर्थात् मोथे का चूर्ण १ तोला, अभयानामक (पञ्चरेखाऽभयाप्रोक्ता) हरड़ का चूर्ण १ तोला, वचा का चूर्ण १ तोला तथा ज्वालामुखी (कलिहारी) की जड़ के स्वरस में घोट कर शुद्ध कर के बनाई हुई स्वर्णमाक्षिक की भस्म १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के कलिहारी की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बना के मूषा या शराव सम्पुट में बन्द कर के बालुकायन्त्र में पका कर सिद्ध रस को खरल में महीन चूर्ण कर लेवें। अथवा केवल कलिहारी के स्वरस ही से घोट कर एक २ रत्ती भर की गोलियां बना लेनी चाहिए, पाक नहीं करना चाहिए। यह रस स्थिर अर्थात् चिरकालीन सुप्तकुष्ठ को विनष्ट करता है ॥ २० ॥

अथ प्रतापलङ्केश्वरः—

**विपादिकाघ्नं रसगन्धटङ्कणं सताम्रकुष्ठायसपिप्पलीरजः।**
**विमर्दितं काञ्चनपत्रवारिणा प्रतापलङ्केश्वरसंज्ञितो रसः ॥ २१ ॥**

शुद्धपारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, शुद्धसुहागा १ तोला, ताम्र की भस्म १ तोला, मीठा कूट का चूर्ण १ तोला, लौह की भस्म १ तोला तथा पिप्पली का चूर्ण १ तोला लेकर सर्वप्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के धत्तूरे के पत्र के स्वरस के साथ एक दिन तक खरल कर के सुखा कर चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इसको प्रताप लङ्केश्वर रस कहते हैं। यह रस विपादिका तथा अशेष कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ २१ ॥

**विमर्शः—इस रस को रसरत्नाकर में लङ्केश्वर रस कहा है। इस रस की रसरत्नाकर में निर्माणविध निम्न रूप से है।**

**यथा—भस्मसूतार्कलौहानां कृष्णागन्धकटङ्कणम्।**
**कुष्ठतुल्यकतुल्यांशं मर्द्यं धुस्तूरजैर्द्रवैः ॥ १ ॥**
**दिनैकं तद्वटीं कुर्यान्माषमात्रञ्च भक्षयेत्।**
**रसो लङ्केश्वरो नाम्ना प्रसुप्तमण्डलप्रणुत् ॥ २ ॥**
**गन्धकं त्रिफलाचूर्णं निर्विषीं गुग्गुलुं समम्।**
**लिहेद्वैरण्डतैलेन कर्णैकमनुपानकम् ॥ इति ॥ ३ ॥**

अथ कुष्ठनाशनरसः—

**रसगन्धकताप्यार्कशिलाजत्वम्लवेतसम्।**
**अष्टमांशगुडं साज्यमाक्षिकं स्याच्छतारुषि ॥ २२ ॥**

शुद्धपारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, ताम्र की भस्म १ तोला, शुद्धशिलाजीत १ तोला, अमलवेंत का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोटकर उसमें सबकी अपेक्षा अष्टमांश पुराना गुड़ मिलाकर जितने से गोलियां बन सकें उतनी मात्रा में घृत और मधु मिलाकर सबको अच्छी प्रकार घोट कर दो २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन विषम मात्रा से कल्पित घृत और मधु के साथ सेवन करने से शतारुषि नामक कुष्ठ में विशेष लाभ होता है ॥ २२ ॥

अथ कुष्ठजिद्रसः—( कृष्णमणिक्यरसः ) ।

**हेममाक्षिकगन्धाश्मतीक्ष्णकान्ताभ्रकं समम् ।**
**द्विगुणं हरवीर्यं च दशमांशं च सक्तुकम् ॥ २३ ॥**
**मञ्जिष्ठादिकषायेण वालुकायन्त्रपाचितम् ।**
**कृष्णमाणिक्यसङ्काशमिदं भस्मैव कुष्ठजित् ॥ २४ ॥**

शुद्ध की हुई हेममाक्षिक ( स्वर्णमाक्षिक ) की भस्म १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, तीक्ष्णलोह की भस्म १ तोला, कान्तलोह की भस्म १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला तथा सबसे द्विगुण ( १० तोला ) शुद्धपारद तथा शुद्ध सक्तुक नामक विष का चूर्ण सब औषधियों की अपेक्षा दशमांश लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोटकर फिर मञ्जिष्ठादिगण का समस्त या व्यस्त औषधियों के स्वरस अथवा क्वाथ से सात वार भावित करके सुखाकर स्निग्ध मृत्तिका के पङ्क से लिप्त हुई जीर्ण वस्त्र की पट्टिकाओं से सात वार कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भरकर वालुकायन्त्र में रससिन्दूरनिर्माण की विधि से पाक करना चाहिए । गन्धक के जीर्ण होने पर शीशी के मुख को खड़िया के डाट से बन्द करके गुड़ और चूने के जलपिष्ट पङ्क से बन्दकर देना चाहिए । स्वाङ्गशीतलयन्त्र से शीशी को निकालकर मिट्टी आदि को धीरे २ हटाकर युक्ति से शीशी का भेदन करके सिद्धरस को निकालक खरल में महीन पीस के ग्रहण कर लेना चाहिए । यह रस या भस्म कृष्णमाणिक्यरस के समान गुणकारी होने से अथवा कुछ कृष्णवर्ण का होने से कृष्णमाणिक्यरस कहलाता है । इस रस को उचित मात्रा से कुष्ठहर औषधियों के अनुपान के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥

अथ तालेश्वररसः—

**हरितालपले द्वे द्वे द्रङ्क्षणे रसगन्धयोः ।**
**कुर्कुटीपत्रसारेण पिष्टं ताम्रमथारजः ॥ २५ ॥**
**पञ्चशो मर्दितं धात्रीकुर्कुटीरससाक्षिकैः ।**
**वर्षाभूचित्रपत्राढ्यं मूषागर्भे निवेशितम् ॥ २६ ॥**
**पाचितं भूधरे संस्थं पर्णखण्डेन भक्षयेत् ।**
**स्नुहिजम्बीरवातारितैलैः पवनपीडितैः ॥ २७ ॥**

माधूकसारसिन्धूत्थवचाव्योषैर्हृतौजसि ।
शोफे भक्ताम्बुना कुष्ठे घृतेन पयसाऽथवा ॥ २८ ॥
धारोष्णेनाद्रकस्यापि कामलायां रसेन च ।
रसस्तालेश्वराख्योऽयं सर्वकुष्ठहरः परम् ॥ २९ ॥

शुद्ध हरताल १ पल तथा शुद्ध पारद १ द्रङ्क्षण ( १ कोल–८ माशा ), शुद्ध गन्धक १ द्रङ्क्षण तथा कुर्कुटी अर्थात् वन्दाल अथवा कुकुन्दर के पत्र के स्वरस के साथ घोट कर अनेक पुटयोगों से बनाई हुई ताम्र की भस्म १ द्रङ्क्षण तथा कुर्कुटी पत्र स्वरस से भावित करके बनाई हुई लोहे की भस्म १ द्रङ्क्षण लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार से घोटकर आंवले के स्वरस से पांच वार भावित करके घोटें तथा पांच ही वार कुर्कुटी के पत्रों के स्वरस से तथा उतनी ही वार पांच वार शहद् से भावित करके घोटकर गोला बनाके उसको पुनर्नवा और चित्रक के पत्रों से अच्छादित करके अथवा दोनों प्रकार के पत्रों का कल्क बनाकर गोले के चारों ओर उस कल्क को रख कर मूषा को बन्द करके कपड़मिट्टि कर सुखा के भूधर यन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस के गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके शीशी में भर कर रख देवें । साधारणतया इस रस को १–३ रत्ती भर तक की यथावस्थानुसार मात्रा को लेकर पान के पत्ते के स्वरस के साथ भक्षण करना चाहिए। पवन अर्थात् वातकी विकृति से उत्पन्न हुए रोगों ( विशेष कर वातिक कुष्ठ ) में घृतभर्जित हींङ्ग ( ४ रत्ती ) जम्बीरी निम्बू का रस ( ५ माशा ) तथा वातारितैल ( एरण्डतैल ६ माशा ) के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। इस रस को ओज ( सप्तमधातो वीर्यस्य सारभूतमोजः ) की क्षीणता युक्त रोगी के लिये मुलेठी का सत्त्व (१ मा०), सैन्धवलवण (१ मा०), वचा का चूर्ण ( ३ रत्ती ) और त्रिकटु चूर्ण ( १ मा० ) के साथ सेवन कराना चाहिए। इस रस को शोथ में भात के माण्ड अथवा चांवल के धोवन के साथ तथा कुष्ठ रोग में गोघृत अथवा धारोष्ण दुग्ध के साथ और कामला रोग में अदरख के रस के साथ प्रयुक्त करना चाहिए । यह तालेश्वर नामक रस प्रायः सर्व प्रकार के कुष्ठों को कुष्ठहरानुपानों के साथ सेवन करने से नष्ट करता है ॥ २५–२९ ॥

अथ महातालेश्वररसः—

तालताप्यशिलाटङ्करसेन्द्रलवणं समम् ।
तालकाद् द्विगुणं ताम्रं मृतं तद्वच्च गन्धकम् ॥ ३० ॥
अम्लेन पञ्चशः पिष्टं जम्बीरस्य पुटे पचेत् ।
लोहचूर्णस्य चत्वारो भागाः सिद्धरसस्य षट् ॥ ३१ ॥
अष्टौ नेपालताम्रस्य गन्धकेन हतस्य च ।
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं मर्दितं पुटपाचितम् ॥ ३२ ॥
एकत्रिंशांशगरलं माषद्वितयसम्मितम् ।
मदनेन वमिं कुर्याद्विरेकं पथ्ययाऽपि च ॥ ३३ ॥
शुद्धः संशोधनं कुर्वन्मध्ये मध्ये च भक्षयेत् ।
सन्निपाते मधूकेन व्योषेण पवने हितः ॥ ३४ ॥
ग्रहणीकामलापाण्डुगुल्मार्शांसि हलीमकम् ।
क्षयं च शमयत्येष महातालेश्वरो रसः ॥ ३५ ॥

शुद्ध हरताल १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, शुद्धमनःशिला १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला, हरताल से द्विगुण ( २ तोला ) ताम्र की भस्म तथा शुद्धगन्धक २ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली करके उसमें शेष द्रव्य मिला के घोटकर जम्बरी निम्बू के रस से पांच वार भावित करके पीसकर मूषा में बन्द करके भूधरयन्त्र में पाक करना चाहिए । इस तरह प्रत्येक वार भावना देकर ६ वार भूधरयन्त्र में पाक करना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल यन्त्र से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन पीस लेना चाहिए । फिर यह रस ६ तोला, लौहभस्म ४ तोला तथा गन्धक के संयोग से बनाई हुई नेपाल देश के खान से निकाले हुए ताम्र की भस्म ८ तोला लेकर सब को खरल में घोट के जम्बीरी निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बना के शराव सम्पुट में बन्द करके लघुपुट में पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें समस्त रस की अपेक्षा ३१ वां भाग शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण मिला कर घोटके काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को १ रत्ती की मात्रा से प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक २ रत्ती बढा कर दो माशे तक सेवन

करना चाहिए। जिस दिन दो माशे तककी मात्रा पूर्ण हो जाय उस दिन से एक सप्ताह के लिये इस रस का सेवन बन्द कर देना चाहिए। जब दूसरी बार रस सेवन करना हो तब उस के पूर्व में मदन फल के द्वारा वमन और पथ्या नामक हरड के चूर्ण के द्वारा विरेचन इन दोनों क्रियाओं से देह की ठीक शुद्धि हो जाने के पश्चात् पूर्व विधि के अनुसार इस रस का सेवन प्रारम्भ करना चाहिए।

अनुपान–सान्निपातिक ( त्रिदोषप्रकोपजन्य ) रोगों में इस रस को उपर्युक्त विधि से मधूक ( महुए ) की छाल अथवा पुष्पों के स्वरस या क्वाथ के साथ तथा केवल वातिक विकृति से उत्पन्न कुष्ठादिक रोगों में व्योष ( सोंठ, मरिच, पीपल) के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए। यह महातालेश्वर रस यथा व्याध्यनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से ग्रहणी, कामल, पाण्डु, गुल्म, अर्श, हलीमक और क्षय आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है ॥ ३०–३५ ॥

अथ कनकसुन्दररसः—

**समतुलकनकोत्थव्योमसत्त्वोत्थपिष्टीं**
**द्विगुणरससमेतां गोलमध्ये विपाच्य ।**
**त्रिकटुदहनवेल्लैर्वत्सनाभार्धभागै-**
**रससमनवश्लक्ष्णीदारुयुक्तैः समस्तैः ॥ ३६ ॥**
**अजसलिलविपिष्टैर्गुञ्जया तुल्यगोलः**
**कुपितकफसमुत्थं हन्ति कुष्ठं गरिष्ठम् ।**
**तदपरमथ वातश्लेष्मजत्वग्विकारं**
**गुदगदमपि सर्वं वह्निमान्द्यं सुनिन्द्यम् ॥ ३७ ॥**
**तुष्टेन शम्भुनादिष्टः सोऽयं कनकसुन्दरः ।**
**त्वग्विकारावनाशाय कुबेराय महात्मने ॥ ३८ ॥**

स्वर्ण की पिष्टी १ तोला, तोले भर स्वर्णभस्म को द्विगुण गन्धक के साथ घोट कर गोदुग्ध के साथ खरल करके पिष्टी बनानी चाहिए, इसी तरह अभ्रक सत्त्व की भी पिष्टी करें। तथा अभ्रक भस्म के सत्त्व की पिष्टी १ तोला लेकर दो तोले शुद्ध पारद के साथ अच्छी प्रकार घोट कर गोलाकृति मूषा में या शराव सम्पुट में बन्द करके वालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें त्रिकटु ( सोंठ,

मरिच, पिप्पली ) का चूर्ण १ तोला, दहन अर्थात् चित्रक की शुद्ध जड़ अथवा शुद्धभल्लातक का चूर्ण १ तोला, वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ तोला, शुद्धवत्सनाभविष का चूर्ण अर्द्धभाग अर्थात् आधा तोला, पारद के बराबर शुद्ध किये हुए श्रृङ्गी विष और दारुविष का चूर्ण ( अर्थात् दोनों मिलाकर दो तोले भर लें ) मिलाकर सब को दिन भर घोट कर रात्रिपर्यन्त बकरी के मूत्र से भावित करके एक २ रत्ती भर की गोलियां बनाकर सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस रस को एक २ गोली प्रति दिन सेवन करने से कफ के प्रकोप से उत्पन्न हुए भयङ्कर कुष्ठ को नष्ट करती है तथा इसके अतिरिक्त वात और कफ की विकृति से उत्पन्न हुए विकार तथा त्वचा के विकार और गुदा के अर्श आदिविकार तथा वह्निमान्द्य को नष्ट करती है। यह कनकसुन्दर रस है, इस रस को श्रीशङ्कर भगवान् ने त्वचा के विकारों का नष्ट करने के लिये कुबेर नाम के महात्मा को अथवा कुबेर ( धनाधिप ) को बताया है ॥ ३६-३८ ॥

अथ हरिबोलाङ्कुशरसः—

**धनभवमृतसत्त्वं कान्तलोहार्कभस्म**
**त्रिगुणरससमेतं तुल्यगन्धेन युक्तम्।**
**समतुलकृतमेभिष्टङ्कणं ताप्यचूर्णं**
**हरिदलमथ बोलं खण्डसंज्ञं मनोज्ञम् ॥ ३९ ॥**

अभ्रकभस्म का सत्त्व १ तोला, कान्तलोहे की भस्म १ तोला, अर्क अर्थात् ताम्र की भस्म १ तोला तथा इन तीनों के बराबर ( ३ तोला ) शुद्धपारद तथा पारद के बराबर शुद्धगन्धक लेकर सर्व प्रथमपारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार घोटना चाहिए। फिर शुद्धसुहागा, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हरिदल अर्थात् शुद्धनील तुत्थ का चूर्ण, गन्धबोल तथा खाण्ड ( चीनी ) इन सबको समभाग लेकर उपर्युक्त घोटे हुए रस के बराबर की मात्रा से उसी में मिलाकर सबको अच्छी प्रकार घोटकर चूर्ण करके शीशी में भर देवें इसको हरिबोलाङ्कुश रस कहते हैं। यह रस सर्वप्रकार के कुष्ठों को यथादोषानुपानपूर्वक सेवन करने से दूर करता है ॥ ३९ ॥

अथ त्रिपुरान्तकरसः—

**रसममृतमथापि श्रृङ्गवेरं विडङ्गं**
**मधुरदहनपाठा-सिन्दुवारं च वन्ध्या।**

**त्रिफलकनकबीजं ऋद्धिवृद्धी निशे द्वे**
**छगलसलिलपिष्टं सर्वमेतेन जात्या॥ ४० ॥**
**सुलघुबदरबीजस्थूलगोली नराणां**
**हरति पवनपित्तश्लेष्मसञ्जातकुष्ठम् ॥ ४१ ॥**
**उक्तस्त्रिपुरया पूर्वं रसोऽयं त्रिपुरान्तकः।**
**सर्वदोषोत्थकुष्ठघ्नः कृपानिघ्नमनस्कया ॥ ४२ ॥**

पारद की भस्म १ तोला तथा अमृत अर्थात् शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण १ तोला, सोंठ का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, मधुर ( मुलेठी ) का चूर्ण १ तोला, दहन (चित्रक की जड़ का चूर्ण शुद्ध या भल्लातक फल का) १ तोला, पाठे का चूर्ण १ तोला, सिन्दुवार ( निर्गुण्डी ) की जड़ का चूर्ण १ तोला, बांझक-कोड़े ( बन्ध्या ) का चूर्ण १ तोला, त्रिफला का चूर्ण १ तोला, धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला, ऋद्धि का चूर्ण १ तोला, वृद्धि का चूर्ण १ तोला दोनों के अभाव में वाराही कन्द का चूर्ण २ तोला डालें ( ऋद्धि वृद्धिस्थाने वाराहीकन्दं गुणैस्तत्तुल्यं क्षिपेदिति वचनात् ) अथवा ऋद्धि के अभाव में बला ( बरियारा = खरेटी ) की जड़ या पञ्चाङ्ग का चूर्ण १ तोला तथा वृद्धि के अभाव में महाबला ( सहदेवी = पीतपुष्पा ) की जड़ या पञ्चाङ्ग का चूर्ण डालें ( "ऋद्धयभावे बला देया वृद्धयभावे महाबला" ), दोनों हरिद्रा अर्थात् हरिद्रा का चूर्ण १ तोला तथा दारु हलदी का चूर्ण १ तोला लेकर सबको खरल में महीन पीसकर बकरी के मूत्र के साथ एक दिन तक खरल करके जङ्गली बेर ( जङ्गली बेर ) के छोटे फल की गुठली के बराबर की गोलियां बनाके सुखाकर काच की शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन कुष्ठहर द्रव्यों के चूर्ण या क्वाथादिकानुपानों के साथ सेवन करने से वात, पित्त और कफ की पृथक् २ दुष्टि से तथा द्वन्द्वज और सन्निपातिक दुष्टि से उत्पन्न हुए कुष्ठों को नष्ट कर देती है। यह त्रिपुरान्तक रस है, इस रस को किसी प्राचीन समय में कृपा ( भूतदया ) से आर्द्रचित्तवाली ( मृदु-प्रकृतियुक्त ) दुर्गादेवी ने बनाया या सर्व प्रथम बताया है। यह रस सर्वप्रकार के दोषों से उत्पन्न हुए कुष्ठ को विनष्ट करता है ॥ ४०–४२ ॥

अथ विश्वहितरसः—

**रसेन्द्रलिप्ततास्रस्य पत्रं गन्धकमारितम्।**

तत्ताम्रं पलमात्रं हि पलमात्रं तु यावकम् ॥ ४३ ॥
पलं चूर्णितशुद्धालं मर्दयेत्तु दिनत्रयम् ।
इति सिद्धो रसः प्रोक्तो नाम्ना विश्वहितो मतः ।
वल्लाभ्यां तुलितः सेव्यो मरीचघृतसंयुतः ॥ ४४ ॥

दो तोलेभर शुद्धपारद को खरल में डालकर फिर उसमें ४ तोले भर ताम्र के सूक्ष्म ( कण्टक वेधी ) शुद्धपत्र डालकर एकदिन तक घोंटे ( अर्थात् तब तक घोटें जब तक की समग्र पारद ताम्रपत्रों पर न चढजाय )। फिर पारद और ताम्र के बराबर शुद्धगन्धक लेकर उसको थोड़े से घृत के साथ घोंटकर पिष्टी बनाके पारदस्तरयुक्त ताम्रपत्रों पर लेपकर गोला बनाके उस गोले को शूरणकन्द के अथवा पुनर्नवा के कल्क के भीतर रखकर एक हण्डिका की तलो में रखकर सकोरे से गोले को ढक के भीतर ही सकोरे और हण्डिका के भाग की सन्धियों को चिकनी मिट्टी के पङ्क से बन्द करके हण्डिका के शेष रिक्तभाग को महीन बालुका से भरकर यथाविधि पाक करके स्वाङ्गशीतल होनेपर सम्पुट को खोलकर उसमें से चमकते हुए ताम्र के कणों को निकाल कर खरल में महीन पीस के पञ्चामृतके साथ घोटकर पुट देके भस्म तैय्यार कर लेवें। अमृतीकरण के पहिले यदि प्रथमवार ताम्रके चमकते हुए छोटे २ कण न बनें तो फिर थोड़ा २ गन्धक डालकर निम्बू के रसके साथ घोटकर गोला बनाके पाक करें। इस प्रकार से बनाई हुई ताम्रकी भस्म १ पल, यवक्षार १ पल तथा शुद्ध हरताल का चूर्ण १ पलभर लेकर तीनों को खरल में डालकर तीन दिन तक खरल करके सिद्ध हुए रसको शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए रसको विश्व ( संसार ) के लिये हितकारक होने से विश्वहितरस कहते हैं। इस रसको १ रत्ती से प्रारम्भ करके क्रमशः प्रतिदिन एक २ रत्ती बढाकर दो वल्ल ( ६ रत्ती ) तक मरिचों के चूर्ण और घृत के साथ सेवन करना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह रस सर्व कुष्ठों को नष्ट कर देता है ॥ ४३-४४ ॥

अथ व्योषादि गुटिका—

पालिकं व्योषसूताग्निगन्धकं सफलत्रयम् ।
काकोदुम्बरिकाक्षीरैर्मर्दितं गुटिकीकृतम् ॥
माषप्रमाणं सक्षौद्रं कुष्ठार्शःश्वासकासजित् ॥ ४५ ॥

व्योष अर्थात् सोंठ, मरिच और पीपल का चूर्ण १ पल, शुद्धपारद १ पल, अग्नि अर्थात् चित्रक की जड़ अथवा शुद्ध भल्लातक फल का चूर्ण १ पल, शुद्ध-गन्धक १ पल तथा त्रिफला ( हरड़, बहेड़ा, आंवला ) का चूर्ण १ पल भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के काकोदुम्बरिका ( छोटी गूलर ) के दुग्ध के साथ खरल करके एक २ माशे भरकी गोलियां बनाके सुखा कर शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ गुटिका प्रति-दिन शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से कुष्ठ, अर्श, श्वास और कास को नष्ट करती है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठकुठाररसः—

**रसस्य कर्षं कर्षौ द्वौ गन्धकात्कज्जलं तयोः ।**
**तिलपर्ण्यलिमुण्डीनां स्वरसैः कृतभावनम् ॥ ४६ ॥**
**कर्षः कर्षो वचाधात्रीकणातीक्ष्णकृमिच्छिदाम् ।**
**शाणं विषस्य कर्षार्धं जीरकस्य सितस्य च ॥ ४७ ॥**
**पलार्धं मृतताम्रस्य तथा शुण्ठ्याश्च मर्दितम् ।**
**भृङ्गाम्भसि घटे स्निग्धे पचेच्चणकसम्मिताः ॥ ४८ ॥**
**वटिकाः कुष्ठविश्वाग्नित्रिफलासैन्धवान्विताः ।**
**कुर्यात्कुष्ठकुठाराख्यो रसोऽयं सर्वकुष्ठजित् ॥ ४९ ॥**

शुद्ध पारद १ कर्ष तथा शुद्धगन्धक २ कर्ष लेकर दोनों को पत्थर की खरल में महीन पीस कर कज्जली बनाकर उसे तिलपर्णी (लालचन्दन), अलि अर्थात् अरि ( रलयोरभेदात् ) खदिर की छाल अथवा अरणी और गोरखमुण्डी के स्वरस अथवा क्वाथ से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार भावित करके अच्छी प्रकार घोट कर उसमें वचा का चूर्ण १ कर्ष, आंवले का चूर्ण १ कर्ष, पिप्पली का चूर्ण १ कर्ष, तीक्ष्ण लौहभस्म ( अथवा राई का चूर्ण ) १ कर्ष तथा वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ कर्ष, शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण १ शाण ( ४ मा० ), सफेद जीरक का चूर्ण आधा कर्ष, ताम्र की भस्म आधा पल तथा सौंठ का चूर्ण आधा पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को मिला के अच्छी प्रकार घोट कर घृत से स्निग्ध हुए घड़े में सब औषध से अठगुना भृङ्गराज का स्वरस भर के उस रस में औषध चूर्ण डाल कर पाक करना चाहिए।

जब पाक करते २ गोली बनाने के समान गाढा हो जाय तब चूल्हे से उतार कर उसकी चने के बराबर की गोलियां बना कर सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ वटी प्रतिदिन मीठे कूटका चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, चित्रक की जड़ का चूर्ण, त्रिफला चूर्ण और सैन्धव लवण इन के समान भागमिश्रित एक तोले भर चूर्ण तथा मधु ( २ तो० ) के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ दूर हो जाते हैं । अथवा उक्त चूर्णों का भृङ्गराज के स्वरस में पाक हो जाने पर १ तोले भर मीठे कूट का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण १ तोला, चित्रक का चूर्ण १ तोला, त्रिफला का चूर्ण १ तोला तथा सैन्धव लवण १ तोला भर मिला कर घोट के फिर चने के बराबर की गोलियां बना कर कुष्ठहर अनुपान के साथ सेवन करनी चाहिए । इसे कुष्ठकुठाररस कहते हैं । यह कुष्ठनाशन के लिये उत्तम है ॥ ४६-४९ ॥

अथ वज्रशेखररसः—

विष्णुक्रान्ता घनरसः सर्पाक्षी शङ्खपुष्पिका ।
गोजिह्वा क्षीरिणी नीली ब्रह्मवृक्षो रुदन्तिका॥ ५० ॥
निचुलः काकमाची च रसैरेषां विमर्दितम् ।
पक्वं तुषकरीषाग्नौ रसाद्द्विगुणगन्धकम् ॥ ५१ ॥
पर्पटीरसवत्पक्वं खसत्वेनारुणेन च ।
पृथग्गन्धकतुल्येन ताप्येन च रसाङ्घ्रिणा ॥ ५२ ॥
कृतावापं वरीमुण्डीहस्तिकर्ण्यमृतालिकाः ।
मूर्वाविदार्याश्च रसैर्मर्दितं घृतमिश्रितम् ॥ ५३ ॥
कषाये दशमूलस्य विपक्वं लेहतां गतम् ।
रसतुल्यत्रिजाताग्निव्योषयष्ट्याह्वसंयुतम् ॥ ५४ ॥
स्निग्धभाण्डगतं कुष्ठी क्षयी च कृतशोधनः ।
मञ्जिष्ठादिकषायस्य कृत्वा मासं निषेवणम् ।
माषप्रमाणं सेवेत रसोऽयं वज्रशेखरः ॥ ५५ ॥

शुद्ध पारद १ पल तथा शुद्ध गन्धक दो पल भर लेकर दोनों को खरल में

कज्जली बना के उस को विष्णुक्रान्ता ( अपराजिता ), घनरस अर्थात् चुरनहार अथवा मूर्वा या नेत्रबाला, सर्पाक्षी ( गन्धनाकुली ), शङ्खपुष्पी, गोजिह्वा ( गाजवा ), दुग्धिका, नील वृक्ष, रुद्रवन्ती, निचुल ( इज्जल ) और मकोय इन में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ के साथ एक २ दिन तक क्रमशः खरल कर के सूखा कर घृत से लिप्त हुई लौह की कड़ाही में कज्जली को डाल देवें। फिर उस कड़ाही को तुष और कोयलों की अग्नि वाले चूल्हे पर चढ़ा कर कज्जली को अच्छी प्रकार से द्रुत कर के गोबर पर बिछे हुए आर्द्र केले के पत्ते पर गिरा कर दूसरे पत्र से ढक के गीले गोबर के पिण्ड से दबा दें। इस तरह पर्पटी बनने पर स्वाङ्गशीतल होने के पश्चात् उस को खरल में महीन चूर्ण कर के उस में गन्धक के बराबर ( अर्थात् दो पल ) अभ्रक भस्म का सत्त्व तथा लाल रङ्ग के शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण दो पल तथा पारद की अपेक्षा चतुर्थांश ( ४ मा० ) स्वर्णमाक्षिक की भस्म मिला कर सब को खरल में घोट कर पूर्ववत् कड़ाही में अग्नि से द्रुत कर के पर्पटी बनालें। फिर उस स्वाङ्गशीत हुई पर्पटी को खरल में पीस कर शतावर, गोरखमुण्डी, हस्तिकर्णपलाश, गुडूची, आलिका अर्थात् वृश्चिकपत्री या अरणी, मूर्वा तथा विदारीकन्द इन औषधियों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ एक २ वार भावित कर के घोट कर गोघृत मिला के सब से चतुर्गुण दशमूल के क्वाथ से पाक करना चाहिए। पकाते २ जब वह लेह के समान सिद्ध हो जाय तब उस में पारद के बराबर त्रिजातादि निम्न द्रव्यों का चूर्ण मिलाना चाहिए, अर्थात् इलायची का चूर्ण १ पल, दाल चीनी का चूर्ण १ पल, तेज पत्र का चूर्ण १ पल, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ पल, सोंठ का चूर्ण १ पल, मरिच का चूर्ण १ पल, पिप्पली का चूर्ण १ पल तथा मुलेठी का चूर्ण १ पल मिला कर सब को अच्छी प्रकार मर्दन कर के घृत से स्निग्ध हुए मिट्टी या काच के पात्र में भर कर सुरक्षित कर के रख दें। इस अवलेह को एक माशे के बरा बर वमन विरेचनादि कर्मों के द्वारा शुद्ध हुए कुष्ठ रोगी को मंजीठ के १ पल भर कषाय के अनुपान से सेवन कराना चाहिए। इस प्रकार रस को एक मास तक सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। इस को वज्रशेखर रस कहते हैं। कहीं २ इस रस को चन्द्रशेखर रस भी कहा है ॥ ५०–५५ ॥

अथ दद्रुकुष्ठविद्रावणरसः—

( पञ्चाङ्गकृतावटी–नागार्जुनवटी )

**रसगन्धकताप्यालकान्तकृष्णाभ्रभस्मकम् ।**
**हिङ्गुलं मधुकं कुष्ठं सर्वं समविभागिकम् ॥ ५६ ॥**
**अम्लवेतसतोयेन त्रिदिनं परिमर्दयेत् ।**
**विशोष्याज्यमधुभ्यां च मृदित्वा त्रिदिनं पुनः ॥ ५७ ॥**
**दत्त्वा जीर्णं गुडं तुल्यं कोलास्थिप्रमिता वटीः ।**
**छायाशुष्काः प्रकुर्वीत शम्भोरग्रे च पूजयेत् ॥ ५८ ॥**
**इयं हि पञ्चाङ्गकृताभिधाना नागार्जुनोक्ता गुटिका च नूनम् ।**
**सर्वाणि कुष्ठानि विचर्चिकां च दद्रूणि विद्रावयति क्षणेन ॥५९॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, कान्त लौह भस्म १ तोला, कृष्ण अभ्रक की भस्म १ तोला, शुद्ध हिङ्गुल १ तोला, मुलेठी का चूर्ण १ तोला, मीठे कूट का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथल पारद, गन्धक की कज्जली बना कर फिर उस में शेष द्रव्य मिला के अच्छी प्रकार महीन घोट कर अमलवेंत के कषाय के साथ तीन दिन तक खरल कर के सुखा कर विषम मात्रा से घृत और मधु ( शहद् ) मिला कर तीन दिन तक घोटना चाहिए । फिर उस में समग्र औषधि के बराबर पुराना गुड़ मिला कर सब को ठीक तरह से घोट कर बैर के फल की गुठली के बराबर की गोलियां बना कर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें । श्री नागार्जुन के द्वारा कही हुई यह पञ्चाङ्गकृत नामक गुटिका सर्व प्रकार के कुष्ठ, विचर्चिका और सर्व प्रकार के दद्रु को नष्ट करती है ॥ ५६–५९ ॥

अथ माणिक्यतिलकरसः—

**रसगन्धकताप्याभ्रकान्ततीक्ष्णाभ्रभस्मकम् ।**
**हिङ्गुलं मधुकं कुष्ठं सर्वं समविभागिकम् ॥ ६० ॥**
**शतमूलीनिजद्रावैर्मञ्जिष्ठादिकषायतः ।**
**त्रिदिनं त्रिदिनं सम्यक् परिमर्द्य विशोष्य च ॥ ६१ ॥**
**ततस्तु पक्वमूषायां सन्निरुद्ध्यातियत्नतः ।**
**प्रक्षिप्य बालुकायन्त्रे प्रपुटेद्दिवसद्वयम् ॥ ६२ ॥**

**माणिक्यतिलको नाम रसो नासत्यकीर्तितः ।**
**एष कुष्ठं हरत्याशु सन्मित्रमिव हृद्व्यथाम् ॥ ६३ ॥**

शुद्धपारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, कान्तलौह की भस्म १ तोला, तीक्ष्णलौह की भस्म १ तोला तथा अभ्रक की भस्म १ तोला, शुद्धहिङ्गुल १ तोला, मुलेठी का चूर्ण १ तोला मीठे कूट का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी तरह से घोटकर शतावर के स्वरस के साथ तीन दिन तक खरल करके मञ्जीष्ठादिगण की औषधियों के क्वाथ के साथ तीन २ दिन तक खरल करके सुखा लेना चाहिए। फिर इस भावितचूर्णद्रव्य ( कज्जली ) को पकाई हुई दृढ मूषा में भरकर उसके मुख को बन्ध करके चिकनी मिट्टी के कीचड़ से लीप के सुखाकर बालुकायन्त्र की बालुका के मध्य में रख (गाड़) कर दो दिन तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतलयन्त्र से मूषा को लेकर उसमें से सिद्धरस को निकाल के खरल में महीन पीस कर काच की शीशी में भर देवें। इसको माणिक्यतिलक रस कहते हैं। इस रस को अश्विनीकुमार ने कहा है। यह रस सर्वप्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है, जिस तरह सच्चा मित्र अपने मित्र के हृदय की वेदना को दूर कर देता है ॥ ६०-६३ ॥

अथ परहितरसः—

**श्वेतःपाठा जटा श्वेता श्वेता चैव पुनर्नवा ।**
**पिष्ट्वा जलेन तत्कल्कैः प्रकुर्यान्नालमूषिकाम् ॥ ६४ ॥**
**स्थालीमध्ये च तां क्षिप्त्वा क्षिपेत्संशोधितं रसम् ।**
**क्षिपेदुपरि सम्पेष्य द्व्यञ्जलिप्रमितं पटु ॥ ६५ ॥**
**पिधानं तन्मुखे दत्वा सन्निरुध्याऽतियत्नतः ।**
**अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं पिधान्यामम्बु निक्षिपेत् ॥ ६६ ॥**
**यामत्रितयपर्यन्तं जातेऽथ शिशिरे ततः ।**
**क्रोडकेशैः समाकृष्य मृतं पारदमाहरेत् ॥**
**न चेदेतावता भस्म पुनरेव पुटेद्रसम् ॥ ६७ ॥**
**तद्भस्मातिविषं विषं कृमिहरं व्योमोत्तमा गन्धजं**
**चूर्णं द्वादशहाटकं खलु गुडो द्वात्रिंशदंशोन्मितः ।**

तत्सर्वं परिचूर्णितं प्रतिदिनं वल्लैश्चतुर्भिर्मितं
चेत्थं हन्ति समस्तरोगनिवहं नागं गरुत्मानिव ॥६८॥
विशेषात्सर्वकुष्ठघ्नो रसोऽयं परिकीर्तितः।
ख्यातः परहितो नाम्ना भानुना भूरिभानुना ॥ ७९ ॥

सफेद पाठे की जड़, सफेद घुंघची ( चरमु-रत्ती ) की जड़ और सफेद पुनर्नवा जड़ इन तीनों को बराबर २ लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क करके उससे दशमाध्याय में कही हुई वृन्ताक मूषा के सदृश एक लम्बीनाल ( नलिका ) वाली मूषा बना के सुखाकर उस को कुछ उससे बड़े तथा उसी आकृति वाले मिट्टी के कलशे ( घड़े ) में रख कर उस मूषा में अच्छी प्रकार से शुद्ध किया हुआ पारद १ पल भर डाल कर उस में दो अञ्जलि ( दो कुड़व ८ पल ) पीसा हुआ सैन्धव लवण डाल कर उस घड़े के मुख पर सकोरा रख के सन्धिबन्धन तथा घट के सर्वाङ्ग पर कपड़मिट्टी कर देनी चाहिए। फिर उस घट को चूल्हे पर चढा कर सकोरे में पानी भर देवें तथा अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए। इस तरह तीन प्रहर तक मन्द मध्य और तीक्ष्ण क्रम से अग्नि जलाकर बन्द कर देनी चाहिए तथा स्वाङ्गशीतल होने पर घट और सकोरे की सन्धिको धीरे से दूर करके शराव ( ढक्कन ) की पेंदी में लगी हुई पारद की भस्म को सूअर के केशों के गुच्छ से घर्षण करके ले लेवें। यदि भस्म ठीक न हुई हो अर्थात् पारद का ठीक पाक न हुआ हो तो फिर उस अर्धपक्व पारद का पूर्व प्रक्रिया के अनुसार मूषा में बन्द करके पाक करना चाहिए। इस प्रकार से बनी हुई पारद की भस्म १ तोला, शुद्ध अतीस विषका चूर्ण १ तोला, शुद्धवत्सनाभ-विष का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चर्ण १ तोला, व्योष ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) का चूर्ण १ तोला, उत्तमा ( त्रिफला या शुद्धमनःशिला ) का चूर्ण १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, सुवर्ण भस्म १२ तोला अथवा बारहवीं संख्या युक्त (पारदभस्म से गन्धक तक एकादश द्रव्य हैं ) स्वर्णभस्म १ तोला तथा गुड़ ३२ तोला लेकर सब को पत्थर की बड़ी खरल में डाल कर घोट लेवें अर्थात् गुड़ डालने के पूर्व शुष्क द्रव्यों को मिलाकर महीन चूर्ण करके फिर गुड़ मिलाकर मर्दन करके सब को मिला देना चाहिए। इस प्रकार से बना हुआ यह चूर्ण १ वल्ल (३ रत्ती) से लेकर ४ वल्ल तक यथाशक्त्यनुसार प्रतिदिन सेवन करने से समस्त

रोगों को नष्ट कर देता है जिस तरह गरुड़ सर्प को खाकर नष्ट कर देता है। यह रस विशेष करके सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है तथा इसे परहित रस कहते हैं। इस रस को अधिक प्रताप शाली भानुनामक आचार्य ने कहा है ॥ ६४–६९ ॥

अथ तालकेश्वररसः—

वीर्यं पुरारेरिह नागतुल्यं भागद्वयं चाप्यथ तालकस्य ।
शुद्धेन नागेन रसा विशुद्धो विमर्दनीयो हरितालिकं च ॥७०॥
मूत्रं गवां षोडशभागमानं निधाय भाण्डेऽथ पिधाय तस्मिन् ।
दीपाग्निना तत्परिशोष्य सर्वं मूत्रं ततस्तालकशुद्धता स्यात् ॥७१॥
ततस्तु जम्बीररसेन सर्वं विमर्दनीयं त्रिदिनं त्रिवारम् ।
भाव्यं कुमार्याः सलिलेन भृङ्गवज्राह्वकन्देन च वारयुग्मम् ॥७२॥
कुष्ठे ददीतास्य रसस्य वल्लत्रयं रसैराद्रकजैर्विजेतुम् ।
शाखासु पक्वत्वमथो सुषुप्तिं स्तम्भं च मन्यास्वथ मण्डलानि॥७३॥
गवां पयः शर्करया समेतं स्तम्भातिरेके सति सन्नियोज्यम्
औदुम्बरं हन्ति सितामधुभ्यां कृष्णं च कुष्ठं त्रिफलारसेन ॥७४॥
गुडार्द्रकाभ्यां गजचर्मसिध्मविचर्चिकास्फोटविसर्पदद्रून् ।
निहन्ति पाण्डुं विविधां विपादीं सरक्तपित्तं कटुकीसिताभ्याम्॥७५॥
रोगेषु सर्वेष्वपि वासराणि त्रिसप्तसङ्ख्यानि रसः प्रदेयः ।
रसप्रयोगावसितौ सुषुप्त्यां क्वाथं पिबेच्छिन्नरुहासनोत्थम् ॥ ७६ ॥
मासद्वयं मुद्गघृतान्वितान्नं पथ्यं ततोदुम्बरभेषजान्ते
अङ्गानि पञ्चानि पलोन्मितानि दद्यादरिष्टस्य तथाऽऽढकीनाम् ॥७७॥
क्वाथेन युक्तं सघृतौदनं च पथ्याय कृष्णेऽप्यथ कृष्णवर्णे ।
रसावसाने सितया समेतां पादोन्मितामामलकीं प्रदद्यात् ॥७८॥
अन्नं समुद्गं सघृतं नियोज्यं मासद्वयं स्यादथवा विचिह्नम् ।
रसप्रयोगावसितौ प्रयुञ्जयादङ्गानि पञ्च स्रवनिःसृतानि ॥ ७९ ॥
पादोन्मितानीह च मासयुग्मं पथ्याय दुग्धौदनमाददीत ।
स्यात्तालकेशाख्यरसप्रयोगे तक्रं हि मांसं च विवर्जनीयम् ॥८०॥

पुरारि अर्थात् शिवजी का वीर्य्य (शुद्धपारद) १ तोला, नागभस्म १ तोला,

शुद्धहरताल २ तोला लेकर प्रथम पारद को नाग की भस्म के साथ एकदिन तक खरल करें, फिर हरताल को एक कपड़े में बांध कर सौलहगुने गोमूत्र को हण्डिका में भर के उसमें दोलायन्त्र की विधि से लटका कर मुख को बन्दकर के दीपक की आंच से अथवा प्रदीप्त अग्नि वाले चूल्हे पर चढा कर सब गोमूत्र को सुखा देना चाहिए। इस प्रकार से शुद्ध हुए हरताल को उपर्युक्त नाग और पारद के साथ मिलाकर अच्छी प्रकार महीन घोटकर जम्बीरी निम्बू के स्वरस के साथ तीन दिन तक घोट कर घृतकुमारी के स्वरस से तीन वार भावित करें। फिर भृङ्गराज के स्वरस से २ वार तथा स्नूही ( थूहर ) की जड़ के स्वरस से दो वार भावित करके सुखाकर चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस रस को १ वल्ल ( ३ रत्ती ) से ३ वल्ल तक लेकर अदरख के रस के साथ कुष्ठरोग में प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को उचित मात्रा (१-३ रत्ती) से लेकर शर्करायुक्त गाय के दुग्ध के साथ कुष्ठ के कारण हाथ और पैर पक कर उनमें से पानी टपकता हो, अङ्ग की शून्यता होगई हो तथा मन्या नामक नाड़ी जकड़ गई हो तथा मण्डल कुष्ठ ( लाल २ चकत्ते शरीर में पड़ गये हों ) होगया हो तथा रोगी को स्तम्भ का अतिरेक अर्थात् कब्ज आदि की अधिक खराबी हो इन अवस्थाओं में प्रयुक्त करना चाहिए। यह रस चीनी और शहद् के साथ सेवन करने से औदुम्बर (नामक कुष्ठ) को तथा त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से कृष्ण ( शरीर में काले २ चकत्तों वाले ) कुष्ठ को तथा गुड़ और अदरख के स्वरस के साथ सेवन करने से गजचर्म, सिध्म, विचर्चिका, विस्फोट, विसर्प और दद्रु को नष्ट करता है। यह रस यथाव्याध्यनुपानों के साथ अथवा कटुकी चूर्ण और शर्करा के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग, रक्तपित्त और अनेक प्रकार की विपादिकाओं को नष्ट करता है। इस रस को सर्व प्रकार के रोगों में २१ दिन तक सेवन करना चाहिए। सुषुप्ति नामक कुष्ठ अथवा सुषुप्ति ( अङ्ग की शून्यता ) रोग में रस के प्रयोग ( सेवन ) के अवसित अर्थात् समाप्त हो जाने पर भी दो महीने तक छिन्नरुहा और असन ( गुडूची और विजैसार ) के क्वाथ का सेवन करते रहना चाहिए और मूंग की दाल तथा घृत के साथ सुपाच्य और पथ्यकर भोजन का सेवन करना चाहिए। उदुम्बर नामक कुष्ठ में इस रस के प्रयोग के समाप्त हो जाने पर निम्ब के पञ्चाङ्ग ( पत्र, पुष्प, छाल, फल, मूल, ) को एक पल भर लेकर उसका क्वाथ करके

प्रति दिन ( प्रायः १-२ मास तक ) पीना चाहिए तथा आढकी ( रहरतूर ) के क्वाथ ( यूष ) और घृत के साथ भात का भोजन करना चाहिए। काले वर्ण वाले कुष्ठ रोग में इस रस के सेवन की समाप्ति होने पर अथवा रस सेवन के पश्चात् ही आंवलों के स्वरस में १ तोले भर चीनी को मिलाकर पीना चाहिए तथा बुभूक्षा प्रतीत होने पर मूंग की दाल और घृत के साथ रोटी या भात का दो महीने तक अथवा विचिह्न होने तक अर्थात् रोग के शेष उपद्रव तथा लक्षणों की निवृत्ति तक सेवन करना चाहिए। सर्व प्रकार के कुष्ठ रोगों में इस रस की सेवन की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् दो महीने तक निम्बू के पञ्चाङ्ग के क्वाथ अथवा चूर्ण का सेवन कराना चाहिए तथा दूध के साथ भात का सेवन करना चाहिए। इस तालकेश्वर नामक रस के सेवन की समाप्ति के पश्चात् भी दो महीने तक तक्र ( मट्ठा ) और मांस का सेवन नहीं करना चाहिए ॥७०-८०॥

अथ खगेश्वररसः—

**पलेन प्रमितः सूतः पलेन प्रमिता वसा।**
**खगः पलमितः सर्वं मर्दयेदर्जुनद्रवैः ॥ ८१ ॥**
**गोलीकृत्य विशोष्याथ गोलं कूप्यां निरुध्य च।**
**ततस्तां सुदृढे भाण्डे मूषां क्षिप्त्वा निरुध्य च ॥ ८२ ॥**
**पचेत्सार्धदिनं पश्चात्स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत्।**
**खगेश्वरो रसो वल्लप्रमितः कुटजान्वितः ॥ ८३ ॥**
**श्वेतकुष्ठं निहन्त्याशु श्वासकासगदानपि।**
**सघृतः पित्तजं कुष्ठं मधुना मेहमेव च ॥**
**पथ्यं दोषानुरूपेण बुद्धेन मुनिनोदितम् ॥ ८४ ॥**

शुद्धपारद १ पल, वसा अर्थात् शुद्धगन्धक १ पल, खग अर्थात् शुद्धनील तुत्थ १ पल ( संस्कृतटीकाकारने खगशब्द का माक्षिक तथा रसाञ्जन अर्थ भी किया है किन्तु खग का नीलतुत्थ ही अर्थ ठीक है ) लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें नीलतुत्थ मिलाके सबको अच्छी प्रकार घोंट कर अर्जुन के वृक्षकी छाल के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ सातदिन तक घोंटकर सुखाके सातवार कपड़मिट्टी की हुई आतसी शीशी में भर कर उस शीशी को बालुकायन्त्र की बालुका में गले के नीचे के भाग तक रख ( गाड़ ) कर रससिन्दूर

की तरह डेढ दिनतक पाक करना चाहिए। गन्धक के जारण होने के पश्चात् शीशीके मुख को खड़िया के डाट से बन्द करके चूने और गुड़की पिष्टी या कीचड़ से सन्धिबन्धन कर देना चाहिए। अग्नि भी क्रमशः मन्द, मध्य और तीक्ष्ण रूपसे देनी चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल यन्त्रसे कूपी का भेदन करके सिद्ध रसको निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके काचकी शीशीमें भर देवें। इसको खगेश्वर रस कहते हैं। इस रसको १ वल्ल भर (१ वल्ल = ३ रत्ती) लेकर कूडेकी छाल के १ माशे भर चूर्ण ( और शहद् ) अथवा २ तोले भर स्वरस या क्वाथ के साथ सेवन करने से श्वेतकुष्ठ को तथा उसके साथही साथ उपद्रवभूत या स्वतन्त्र रूपसे उत्पन्न हुए श्वास और कासरोग को भी नष्ट करता है। इस रसको घृतके साथ सेवन करने से पित्त विकृतिजन्य कुष्ठ तथा शहद् के साथ सेवन करने से प्रमेह को नष्ट करता है। इस रसके सेवन करते समय जैसे दोष के लक्षण दिखाई दें उनको नष्ट करने वाले अनुपानों का सेवन करना चाहिए। इस रस को बुद्ध-नामक जैनमत के मुनि ने कहा है अथवा श्रीगौतमबुद्धजी ने कहा है ॥८१-८४॥

अथ कुष्ठनाशनरसः—

**सूतभस्म द्विनिष्कं स्याद्गन्धकं च चतुष्पलम्।**
**साधं चतुष्पलं चित्रं चतुर्विंशत्पलं भवेत् ॥ ८५ ॥**
**वाकुचीबीजचूर्णं स्याद्द्वादशघ्नं मरीचकम्।**
**सर्वमेकत्र संयोज्य निष्कद्वितयसम्मितम् ॥**
**मधुना लेहयेत्प्रातः सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ ८६ ॥**

सूतभस्म अर्थात् शुद्धपारद की भस्म अथवा रससिन्दूर २ निष्क (८ माशे), शुद्धगन्धक ४ पल, चित्रक की जड़ साड़े चार पल, वाकुची के बीजों का चूर्ण २४ पल तथा मरिचों का चूर्ण १२ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसके चूर्ण बना कर काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करनेवाले इस कुष्ठनाशन नामक रस को १ माशे से लेकर यथाशक्ति और यथा रोग का विचार करके दो निष्क ( ८ माशे ) भर तक क्रमशः बढा कर मधु के सा। प्रातःकाल सेवन कराना चाहिए ॥ ८५-८६ ॥

अथारोग्यवर्धनी गुटिका-( रसः )।

**रसगन्धकलोहाभ्रशुल्वभस्म समांशकम्।**

त्रिफला द्विगुणा प्रोक्ता त्रिगुणश्च शिलाजतु ॥ ८७ ॥
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम् ।
तिक्ता सर्वसमा ज्ञेया सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ॥ ८८ ॥
निम्बवृक्षदलाम्भोभिर्मर्दयेद्दिनावधि ।
ततश्च वटिका कार्या राजकोलफलोपमा ॥ ८९ ॥
मण्डलं सेविता सैषा हन्ति कुष्ठान्यशेषतः ।
वातपित्तकफोद्भताञ्ज्वरान्नानाप्रकारजान् ॥ ९० ॥
देया पञ्चदिने जाते ज्वरे रोगे वटी शुभा ।
पाचनी दीपनी पथ्या हृद्या मेदोविनाशिनी ॥ ९१ ॥
मलशुद्धिकरी नित्यं दुर्धर्षक्षुत्प्रवर्तिनी ।
बहुनात्र किमुक्तेन सर्वरोगेषु शस्यते ॥ ९२ ॥
आरोग्यवर्धनी नाम्ना गुटिकेयं प्रकीर्तिता ।
सर्वरोगप्रशमनी श्रीनागार्जुनयोगिना ॥ ९३ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लौह की भस्म १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, शुल्वभस्म ( ताम्रभस्म ) १ तोला तथा त्रिफला एक भाग की अपेक्षा द्विगुण अर्थात् हरड़ का चूर्ण २ तोला, बहेड़े का चूर्ण २ तोला, आंवले का चूर्ण २ तोला, शुद्धशिलाजीत २ तोला, शुद्ध गूगल एक भाग की अपेक्षा चतुर्गुण ( ४ तो० ), चित्रक की जड़ का चूर्ण ४ तोला तथा सब के बराबर कुटकी का चूर्ण लेकर सबको खरल में महीन पीसकर उस चूर्ण को नीम के पत्रों के स्वरस अथवा पञ्चाङ्ग ( पत्र, पुष्प, छाल, फल और जड़ ) के क्वाथ के साथ दो दिन तक घोटकर बड़े बेर के फल के बराबर की गोलियां बना कर छाया में शुष्क करके शीशी में भर देवें । प्रायः १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर की गोलियां बनानी चाहिए । यह रस सेवन करने से मण्डल कुष्ठ, समग्र प्रकार के कुष्ठ, वातिक-ज्वर, पैत्तिक ज्वर, श्लैष्मिक ज्वर और द्वन्द्वज तथा सान्निपातिक ज्वरों को भी नष्ट करता है । इस वटी को ज्वरादिक रोगों के चढने के पांच दिन व्यतीत हो जाने पर देनी चाहिए । कुछ टीकाकारों ने एक दिन देकर फिर बीच में बन्द करके पांचवें दिन इस वटी को देनी चाहिए ऐसा लिखा है परन्तु इसको प्रति दिन के हिसाब से दो सप्ताह तक देकर फिर एक सप्ताह तक बन्द कर देनी चाहिए,

इस प्रकार सेवन करने से भी यदि रोग दूर न हुआ हो तो फिर सप्ताह के बाद सेवन करनी चाहिए। यह आरोग्यवर्धिनी वटी खाये हुए अन्न को पचाने वाली, मन्दाग्नि को दीप्त करने वाली, हृदय के लिये हित कर, मेदोवृद्धि को नष्ट करने वाली, मल को निकाल कर शरीर को शुद्ध करने वाली और क्षुधा को बढ़ाने वाली है। इस के गुणों के विषय में क्या कहा जाय, यह वटी यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से सब रोगों में अद्भुत लाभ करती है। इस को आरोग्य वर्द्धिनी गुटिका कहते हैं। इस को नागार्जुन नामक सिद्ध ने बताई है तथा यह सर्व रोगों को शान्त करती है॥ ८७–९३॥

अथ नारायणरसः—

**रसभस्मसमानेन गन्धकेन समन्वितम्।**
**तुल्यभागपुरोपेतं तुल्यत्रिफलयाऽन्वितम्॥ ९४॥**
**वातारितैलसंयुक्तं सेवितञ्च(१)पलोन्मितम्।**
**मासेन नाशयेत्कुष्ठं दुःसाध्यमपि देहिनाम्॥ ९५॥**
**क्षयं भगन्दरं शूलं मूलं गुल्मं च पाण्डुताम्।**
**ग्रहणीं च महाघोरां मन्दाग्निमपि दुस्तरम्॥ ९६॥**
**एवंविधान्महारोगान्विनिहन्ति न संशयः।**
**श्लेष्मरोगान्हरेत्सर्वान् रसो नारायणाभिधः॥ ९७॥**

शुद्ध पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, शुद्धगूगल १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, बहेड़े का चूर्ण १ तोला, आंवले का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के एरण्ड के तैल के साथ एक दिन तक खरल कर के एक २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। इस रस को एक महीने तक सेवन करने से मनुष्यों का दुःसाध्य कुष्ठ भी नष्ट हो जाता है। यह रस यथाव्याध्यनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करने से क्षय, भगन्दर, शूल मूल ( अर्श रोग ), गुल्म, पाण्डु, अत्यन्त प्रदुष्ट ग्रहणी, भयङ्कर मन्दाग्नि, श्लेष्मा ( कफ ) की विकृति से उत्पन्न हुए रोग तथा इन के अतिरिक्त ऐसे ही

---

( १ ) सेव्यं माशकसम्मितमिति पाठो युक्तः

ही अन्य बड़े २ भयङ्कर रोगों को नष्ट कर देता है । इस को नारायणरस कहते हैं ॥ ९४-९७ ॥

अथ मेदिनीसाररसः—

**पलत्रयं मृतं लोहं मृतं शुल्वं पलत्रयम् ।**
**भृङ्गराजाम्बुगोमूत्रत्रिफलाक्वथितैः पृथक् ॥ ९८ ॥**
**पुटेत् त्रिवारं यत्नेन ततस्तस्मिन्विनिक्षिपेत् ।**
**अत्यम्लकाञ्जिकं पश्चात्पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ ९९ ॥**
**ततश्च तुल्यगन्धेन पुटानां विंशतिं पचेत् ।**
**पलमात्रं मृतं सूतं रुद्रांशममृतं तथा ॥ १०० ॥**
**कटुत्रयं समं सर्वैः पिष्ट्वा सम्यग्विधारयेत् ।**
**रसोऽयं मेदिनीसारो नन्दिना परिकीर्तितः ॥ १०१ ॥**
**सेवितो वल्लमानेन घृतत्रिटुकान्वितः ।**
**हन्ति कुष्ठानि सर्वाणि श्वित्राणि विविधानि च ॥ १०२ ॥**
**गुल्मं प्लीहामयं हिक्कां शूलं कुक्ष्यामयं तथा ।**
**उदावर्तं महावातं कफं मन्दानलं तथा ॥ १०३ ॥**
**सर्वाधिकं विषं घोरं व्रणं लूताभगन्दरम् ।**
**विद्रधिं चान्त्रवृद्धिं च शिरस्तोदं च नाशयेत् ॥ १०४ ॥**

लौह की भस्म ३ पल तथा ताम्र की भस्म ३ पल लेकर दोनों को खरल में डाल कर भृङ्गराज के रस के साथ एक दिन तक घोंट कर टिकिया बना के शरावसम्पुट में बन्द कर के गजपुट में पाक करें । स्वाङ्गशीतल सम्पुट से भस्म को निकाल कर खरल में पीस के गोमूत्र के साथ एक दिन तक घोट के टिकिया बना के शरावसम्पुट में बन्द कर के पूर्ववत् पाक कर के त्रिफला के क्वाथ के साथ घोट कर टिकिया बना के शराव सम्पुट में बन्द कर के पूर्ववत पाक करना चाहिए । पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से टिकिया को निकाल कर खरल में महीन पीस के अत्यन्त खट्टी हुई काञ्जी अथवा अभाव में निम्बू के स्वरस के साथ एक दिन तक घोट कर टिकिया बना के शरावसम्पुट में बन्द कर के चार प्रहर तक पाक करना चाहिए । अथवा चूर्ण को कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के उसमें थोड़ी २ अत्यन्त खट्टी काञ्जी को शनैः २ डाल २ कर चार प्रहर

तक पकाना चाहिए तथा साथ में काञ्जी डाल कर बड़ी कलच्छी के चौड़े अग्रभाग के पृष्ठ से चलाते भी रहना चाहिए। इस तरह चार प्रहर तक पाक करने के पश्चात् स्वाङ्गशीतल हो जाने पर कड़ाही में से पक्व चूर्ण को खरल में डाल कर उसमें बराबर शुद्धगन्धक डाल कर एक दिन तक घोट कर शराव सम्पुट कर के पुट दे देवें। इस प्रकार प्रत्येकपुट में समान गन्धक डाल २ कर २० वार पुट देवें। फिर स्वाङ्गशीतल पुट से सिद्ध औषध ( लौहताम्रभस्म ) निकाल कर उसे खरल में डाल के महीन चूर्ण करके उसमें शुद्ध पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल तथा सब ( लोहे ताम्र और पारदभस्म ) की अपेक्षा ग्यारहवां भाग शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण और लोहादि से विपन्न चारों पदार्थों के बराबर त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल, ) का चूर्ण डाल कर सब को अच्छी प्रकार एक दिन तक खरल करके चूर्ण बना कर काच की शीशी में भर देवें। इस को मेदिनीसार रस कहते हैं तथा नन्दी नाम के आचार्य ने इसको कहा है। एक वल्ल ( ३ रत्ती ) भर तक रस लेकर घृत एक तोला और एक माशे भर त्रिकटु के चूर्ण के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से विविध प्रकार के श्वित्रकुष्ठ अथवा निखिल कुष्ठ रोगों को नष्ट कर देता है। यह रस यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से गुल्मरोग, प्लीहा की वृद्धि, हिक्का रोग, शूल, कुक्षि ( उदर ) के रोग, उदावर्त, भयङ्कर वातिक विकृति जन्य रोग अथवा दूषित मेद और कफ से युक्त वातव्याधि, कफ के रोग, मन्दाग्नि, सर्पादि जन्तुओं के विष से उत्पन्न भयङ्कर रोग, व्रणशोथ, लूता ( मकड़ी ) के विष की बाधा, भगन्दर, विद्रधि, अन्त्रवृद्धि और शिर के अन्दर सूई के चुभाने के समान व्यथा आदि अनेक रोगों को दूर कर देता है ॥ ९८-१०४ ॥

**विमर्शः**—कुछ ग्रन्थों में "उदावर्त्तं महावातं कफं मन्दानलं तथा" इस पाठ के पश्चात् "गलग्रहं मदोन्मादं कर्णदन्तामयं तथा,, इतना अधिक पाठ है। लूता रोग प्रायः मकड़ी के काटने से या उसके शरीर पर मर्दित होजाने से उस स्थान पर फफोले उभर आते हैं तथा उनमें कुछ पानी भी भरा रहता है इसी को लूतारोग कहते हैं। सुश्रुत में इसका इतिहास निम्न प्रकार से आया है।

यथा—विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदृषिसत्तमम्।
वशिष्ठं कोपयामास गत्वाऽऽश्रमपदं किल॥
कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात स्वेदबिन्दवः।

अपतन् दर्शनादेवमधस्तात्तीक्ष्णवर्चसः ॥
लूने तृणे महर्षिणां धेन्वर्थं सम्भृतेऽपि च ।
ततो जातास्त्विमा घोरा नानारूपा महाविषाः ॥
अपकाराय वर्तन्ते नृपसाधनवाहने ।
यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः ॥
तस्माल्लूतास्तु भाष्यन्ते संख्यया ताश्च षोड़श ।
त्रिमण्डला तथा श्वेता कपिला पीतिका तथा ।
आलमूत्रविषा रक्ता कसना चाष्टमी स्मृता ॥
सौवर्णिका लाजवर्णा जालिन्येणी पदी तथा ।
कृष्णारिनवर्णा काकाण्डा मालागुणाष्टमी स्मृता ॥

अत्र मधुकोषव्याख्येत्थम्—"इति किल श्रुतिः, विश्वामित्रो नरपतिः कामधेनो र्बलात्कारपरिग्रहेण मुनिसत्तमं वशिष्ठगुरुं कोपयाञ्चकार । कुपितेन च तेन अन्तर्ज्वलनाभृशकोपानलस्खलितं तदभ्रूलम्बगरलमिव निरवहनपटलं लोचनद्वयं वहता भगवान् रविरवलोकितः । ततस्तस्य भ्रूकुटिकुटिलोद्भवो भयङ्करो ललाटतटप्रस्यन्दी स्वेदबिन्दूत्करः प्रचण्डतरः प्रत्यासन्नलूनतृणे धेन्वर्थमुपात्ते निपतितो लूताभूदिति ।

इस प्रकार के लूताजन्य शोथ पर दिन में ३-४ बार गन्धकद्रव के लगाने से वहां का जल सूख जाता है तथा शोथ शान्त हो जाता है ।

अथ जन्तुघ्नी गुटिका–( रसः ) ।

सूतगन्धौ समौ ताभ्यां मण्डूरं समभांशतः ।
विधाय कज्जलीमाखुकर्ण्या सम्मर्दयेद्दृढम् ॥ १०५ ॥
ततो मण्डूरमानेन क्षुद्रदीप्यं विनिक्षिपेत् ।
आरुष्करकषायेण दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ १०६ ॥
ब्रह्मबीजं समुद्रस्य फलं जातीफलं तथा ।
विषतिन्दुकबीजं च ताप्यं सर्वं समांशकम् ॥ १०७ ॥
विडङ्गं समभेतैश्च सूक्ष्मचूर्णं प्रकल्पयेत् ।
रसतुल्यं हितञ्चूर्णं रसेन सह मेलयेत् ॥ १०८ ॥
वासा च निम्बत्वग्वंशो वेल्लव्योषाम्बुदं तथा ।
एषां क्वाथेन सप्ताहं त्र्यहं मूर्वाढके रसे ॥ १०९ ॥
भावयित्वा चणप्राया: कर्तव्या वटिकाः शुभाः ।
अश्वनिम्बादिजक्वाथे प्रदत्तैका वटी शुभा ॥ ११० ॥

पातयेज्जठराज्जन्तून्सर्वदेहगदान्हरेत्।
कुष्ठजन्तून्निहन्त्याशु द्वित्रिवारप्रयोगतः॥ १११॥

शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला लेकर दोनों की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें दोनों की अपेक्षा सप्तमांश ( सातवां भाग ) मण्डूर भस्म मिला कर आखुपर्णी ( मूषाकानी ) के स्वरस या क्वाथ के साथ दो दिन तक खरल करके उसमें मण्डूर भस्म ही के बराबर अजमोदा ( अजवाईन ) का चूर्ण मिला कर शुद्ध भिलावें के फल के क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करनी चाहिए। पश्चात् पलाश के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला, समुद्रफल का चूर्ण १ तोला, जायफल का चूर्ण १ तोला, विषतिन्दुक ( कुचले ) के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला, स्वर्ण माक्षिक की भस्म १ तोला तथा इन सब चूर्णों के बराबर ( ४ तोला ) वायविडङ्ग का चूर्ण लेकर सबको उपर्युक्त रस में मिला कर एक दिन तक घोट के अडूसा, नीम की छाल, बांस के हरे २ अङ्कुर, वेल्ल-वायविडङ्ग तथा त्रिकटु इन सब के ( समस्त या व्यस्त ) स्वरस या क्वाथ के साथ सात दिन तक खरल करके तीन दिन तक मूर्वा के १ आढक भर रस के साथ घोटें अथवा मूर्वा और अरहर की जड़ के क्वाथ के साथ तीन दिन तक घोटें। इस तरह उपर्युक्त काष्ठौषधियों के क्वाथादिक से अच्छी प्रकार भावनाओं के देने के पश्चात् चने के बराबर गोलियां बनाकर सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन बकायन या नीम की जड़ की छाल के क्वाथ के अनुपान के साथ सेवन करने से पेट के क्रिमियों को तथा कुष्ठरोग के क्रिमियों को शरीर से बाहर निकाल देती है और शरीर के सब रोगों को भी नष्ट कर देती है। इस वटी का दो या तीन वार प्रयोग करना चाहिए। वास्तव में जब तक रोग अच्छा न हो तब तक इसका सेवन करना चाहिये॥ १०५-१११॥

अथ धन्वन्तरिरसः—

सूतगन्धार्कसौभाग्यकुष्ठं रक्तचन्दनम्।
कणा चैतानि तुल्यानि मर्दयेल्लुङ्गवारिणा॥ ११२॥
एकाहमथ संशाष्य स्थापयेदतियत्नतः।
रसो निःशेषकुष्ठघ्नो धन्वन्तरिरिति स्मृतः॥ ११३॥
निर्दिष्टः शम्भुना सर्वरोगभीतिविनाशनः।

पथ्याघृतयुतो वायुं सिन्धुविश्वान्वितोऽपि वा ॥ ११४ ॥

शुद्धपारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, ताम्र की भस्म १ तोला, शुद्ध-सुहागा १ तोला, कुङ्कुष्ठ १ तोला, लालचन्दन का चूर्ण ( बुरादा ) १ तोला तथा पिप्पली का चूर्ण १ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेषद्रव्य मिलाके घोटकर बिजोरे निम्बू के रस के साथ एक दिन तक खरल करके अच्छी प्रकार सुखाके चूर्ण बनाकर काच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख दें। यह सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करता है तथा इसे धन्वन्तरि रस कहते हैं। इस रसको श्री महादेवजी ने कहा है तथा यह सर्व प्रकार के रोगों से उत्पन्न हुए भय को दूर करता है तथा हरड़ का चूर्ण और घृत के साथ मिलाकर या सैन्धानीमक और सोंठ के चूर्ण के साथ सेवन करने से वातिकविकार विशेषकर वातजन्य कुष्ठको दूर करता है ॥ ११२-११४ ॥

अथ वज्रधाररसः—

वज्रसूताभ्रहेम्नां च भस्म योज्यं समं समम् ।
सर्वांशं तालकं तुल्यं शिग्रुधुस्तूरजद्रवैः ॥ ११५ ॥
मर्द्यं स्नुह्यर्कजैः क्षीरैर्दिनैकं चाथ भावयेत् ।
सप्ताहं वाकुचीतैलैस्तन्माषैकं तु भक्षयेत् ।
वज्रधारो रसः ख्यातः सर्वकुष्ठनिकृन्तनः ॥ ११६ ॥

हीरे की भस्म १ तोला, शुद्धपारद की भस्म अथवा रससिन्दूर १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, स्वर्ण की भस्म १ तोला तथा सब के बराबर (४ तो०) शुद्धहरताल की भस्म लेकर सबको खरल में महीन पीसकर शिग्रु ( सहजन ) और धत्तूरे की जड़का क्वाथ तथा थूहर और आक का शुद्धदुग्ध इनमें से प्रत्येक के साथ क्रमसे एक २ दिन तक घोटकर बाकूची के तैल से एक सप्ताह तक भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर सुखाके चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस रस को एक माशे भर लेकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इसको वज्रधार रस कहते हैं तथा यह सर्व प्रकार के कुष्ठों को विनष्ट कर देता है ॥ ११५-११६ ॥

अथ महातालेश्वररसः—

तालं ताप्यं शिला सूतं शुद्धं सैन्धवटङ्कणम् ।
समांशं चूर्णयेत्खल्ले सूतादूद्विगुणगन्धकम् ॥ ११७ ॥

गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम्।
मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे सम्पुटोदरे ॥ ११८ ॥
पुटे पुटे द्रवैमर्द्यं सर्वमेतत्तु षट्पलम्।
द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुष्पलम् ॥ ११९ ॥
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु।
त्रिंशदंशं पुरश्चास्मिन् क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् ॥ १२० ॥
महिष्याज्येन सम्मिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत्सदा।
मध्वाज्यैर्वाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु।
सर्वकुष्ठं निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ १२१ ॥

शुद्ध हरताल १ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तोला, शुद्ध मनः शिला १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला, सैन्धव लवण १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, पारद से द्विगुण ( २ तो० ) शुद्ध गन्धक और गन्धक के बराबर ताम्र की भस्म लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को एक दिन तक अच्छी प्रकार घोट कर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ ५ दिन तक खरल कर के गोला बना कर सुखा लेना चाहिए। फिर उस गोले का शरावसम्पुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से रस को निकाल कर खरल में महीन पीस के जम्बीरी निम्बू के रस के साथ घोट कर गोला बना के पूर्ववत् भूधरयन्त्र में पाक करें। इस प्रकार प्रत्येक बार जम्बीरी निम्बू के रस के साथ ५ दिन तक खरल कर के शेष ४ पुट देकर स्वाङ्गशीतल होने पर सिद्ध रस को खरल में महीन पीस लेना चाहिए। इस सिद्ध रस को ६ पल भर तथा ताम्र भस्म २ पल, लौह भस्म ४ पल भर लेकर सब को जम्बीरी निम्बू के साथ एक दिन तक घोट कर शरावसम्पुट में बन्द कर के लघुपुट में पकाना चाहिए। फिर पके हुए सिद्धरस को खरल में पीसकर इसमें तीसवां भाग शुद्ध गंधक का महीन चूर्ण मिला कर सब को अच्छी प्रकार घोटकर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को आधे निष्क भर लेकर भैंस के घृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने के पश्चात् वाकूची के १ कर्ष भर चूर्ण को शहद् तथा घृत के साथ मिलाकर भक्षण करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह रस सर्व प्रकार के कुष्ठों

को नष्ट कर देता है तथा इस रस को महातालेश्वर रस कहते हैं ॥ ११७-१२१ ॥

विमर्शः—रसरत्नाकर आदि रस ग्रन्थों में "त्रिंशदंशंपुरञ्जास्मिन्" इस जगह पर "त्रिंशदंशंविषञ्जास्य" इस प्रकार का पाठान्तर है।

अथ कुष्ठकुठाररसः—

सूतभस्मसमं गन्धं मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः।
त्रिफला विषमुष्टी च चित्रकश्च शिलाजतु ॥ १२२ ॥
इत्येवं चूर्णितं कुर्यात्प्रत्येकं निष्कषोडश।
चतुःषष्टिकरञ्जस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १२३ ॥
चतुःषष्टि मृतं ताम्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत्।
स्निग्धभाण्डगतं खादेद् द्विनिष्कं सर्वकुष्ठजित् ॥ १२४ ॥
रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिकृन्तनः।
पथ्यं त्रिमधुरं देयं तदभावे गुडौदनम् ॥ १२५ ॥
पातालगरुडीमूलं मधुपुष्पीं च धान्यकम्।
सितया भक्षयेत्कर्षमतितापप्रणुत्तये।
लिह्यान्नागबलामूलं मध्वाज्यैर्वान्तितापनुत् ॥ १२६ ॥

पारद की भस्म अथवा रस सिन्दूर २६ निष्क, शुद्ध गन्धक १६ निष्क, लौह की भस्म २६ निष्क, ताम्र की भस्म १६ निष्क, शुद्ध गूगल १६ निष्क, त्रिफला का चूर्ण १६ निष्क, विषमुष्टी अर्थात् शुद्ध कुचले का चूर्ण १६ निष्क, चित्रक की जड़ का चूर्ण १६ निष्क, शुद्ध शिलाजीत १६ निष्क, करञ्ज के शुद्ध बीजों का चूर्ण ६४ निष्क तथा ताम्र की भस्म ६४ निष्क लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार महीन पीस कर मधु और घृत से आप्लावित करके एक दिन तक खरल कर घृत से स्निग्ध हुए मिट्टी या काच के पात्र में भर कर रख देवें। इस रस को दो निष्क भर लेकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इससे यह सर्व प्रकार क कुष्ठों को नष्ट करता है। इस औषध को कुष्ठकुठाररस कहते हैं तथा यह विशेष करके गलत्कुष्ठ को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करने के पश्चात् बुभूक्षा लगने पर त्रिमधुर (१) अर्थात् चीनी, शहद और घृत या घृत गुड़ और शहद के

(१) सितामाक्षिकसर्पींषि मिलितानि यदा तदा।
मधुरत्रयमाख्यातं त्रिमधुस्यान्मधुत्रयम् ॥
अथवा घृतं गुडो माक्षिकञ्च विज्ञेयं मधुरत्रयम् इति च।

साथ सुपाच्य तथा बलकारक हितपदार्थों का भोजन के रूप में सेवन करना चाहिए। यदि त्रिमधुर न मिल सके तो केवल गुड़ के साथ ही भात आदि का पथ्य करना चाहिए। उपयुक्त रस के सेवन करते समय यदि रोगी को अपने शरीर में अधिक गरमी प्रतीत हो तो पाताल गरुड़ी (छिल छिण्ड) की जड़, मधुपुष्पी अर्थात् मुलेठी का सत्त्व (अथवा मधुपुष्पी से अधा पुष्पी "बोर हुलो" का ग्रहण करना चाहिए) और धनियां इन तीनों का एक कर्ष भर चूर्ण लेकर सिता (चीनी) के साथ सेवन करना चाहिए। अथवा केवल नागबला (गङ्गेरन) की जड़ के एक कर्ष भर चूर्ण को शर्करा और घृत के साथ मिला कर सेवन करने से वमन और शरीर का दाह दोनों दूर हो जाते हैं॥ १२२-१२६॥

अथ स्वर्णक्षीररसः—

**क्षिप्त्वा तक्रघटे पच्यात् काञ्चनीपलपञ्चकम्।**
**तक्रे जीर्णं समुद्धृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत्॥ १२७॥**
**क्षीरे जीर्णं समुद्धृत्य जलैः प्रक्षाल्य शोषयेत्।**
**तच्चूर्णितं पञ्चपलं मरिचानां पलद्वयम्॥ १२८॥**
**पलैकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत्।**
**निष्कैकं सुप्तकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीररसो ह्ययम्॥ १२९॥**

स्वर्ण क्षीरी (भड़ भांड) की जड़ को ५ पल भर लेकर एक द्रोण भर मट्ठे के अन्दर पका कर जब समग्र मट्ठा सूख जाय तब दुग्ध में डाल कर पाक करना चाहिए। इस तरह जब दुग्ध भी जल जाय तब जल से धोकर सुखा के बारीक चूर्ण कर के उस में से ५ पल भर चूर्ण तथा मरिचों का चूण २ पल, मूर्च्छित पारद एक पल भर लेकर सब को खरल में डाल कर एक दिन तक घोट के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस को स्वर्णक्षीर रस कहते हैं तथा यह रस एक निष्क भर (१ निष्क ४ माशे का होता है, इस रस की १ माशे की मात्रा पर्याप्त है) लेकर कुछ्न अनुपानों के साथ सेवन करने से सुप्तकुष्ठ नष्ट हो जाता है॥ १२७-१२९॥

विमर्शः—मूर्च्छितपारद का स्वरूप—

**गन्धकेन रसं प्राज्ञः सुदृढं मर्दयेद्भिषक्।**
**कज्जलाभो यदा सूता विहाय घनचापलम्॥**

दृष्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितो रसकोविदैः ॥इति र० सा० सं० ।

अन्यच्च—मर्दनोद्दिष्टभेषज्यर्क्षदिष्टत्वकारकम् ।
तन्मूर्च्छनं हि वङ्गादिमलदोषविनाशनम् ॥ इति च ।

यहां पर मूर्च्छित पारद से रससिन्दूर लेना सर्वश्रेष्ठ है ।

अथ त्रैलोक्यविजयतैलम्—

रसं गन्धं विषं तालं स्वर्णक्षीरीं रुदन्तिका ।
वरुणाम्लेन सञ्चूर्ण्य प्रतिनिष्कद्वयं द्वयम् ॥ १३० ॥
हि पेत्तस्मिन् विशोष्याथ क्रमान्निष्कं सदा लिहेत् ।
त्रैलोक्यविजयं तैलं सर्वकुष्ठहरं ध्रुवम् ॥ १३१ ॥

शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ विष, शुद्ध हरताल, स्वर्ण क्षीरी ( भड़ भाण्ड ), रुदन्तिका इन में से प्रत्येक द्रव्य को दो २ निष्क ( ८ मा० ) भर लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी तरह से घोट कर वरुण की छाल से बने हुए अम्ल ( मद्य ) से अथवा काञ्जी से भावित कर के घोट कर सुखा के वक्ष्यमाण महा भल्लातक तैल में डाल कर स्निग्ध बर्तन में रख देवें । इस को एक २ निष्क भर प्रतिदिन चाटना चाहिए । इस को त्रैलोक्यविजय तैल कहते हैं । यह तैल सर्व प्रकार के कुष्ठों को दूर करता है । प्रायः इस की मात्रा १ माशे की करनी चाहिए ॥ १३०-१३१ ॥

विमर्शः—कुछ ग्रन्थों में इस को त्रैलोक्यविजय रस कहा और उचित भी है है तथा वहां का पाठ निम्न प्रकार का है ।

यथा—रसं गन्धं विषं तालं स्वर्णक्षीरी रुदन्तिका ।
*वरुणाम्लेन सञ्चूर्ण्य प्रतिनिष्कद्वयं द्वयम् ।*
त्रैलोक्यविजयः सर्वकुष्ठघ्नो निष्कमात्रया ॥

अथ कुष्ठान्तपर्पटीरसः—

पलैकं शुद्धसूतस्य कर्षैकं शुद्धगन्धकम् ।
गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं सूतांशं मर्दयेद्विषम् ॥ १३२ ॥
सर्वतुल्यं पुनर्गन्धं दत्त्वा किञ्चिद्विशोषयेत् ।
घृताभ्यक्ते लोहपात्रे पच्याद्यावद्द्रवीभवेत् ॥ १३३ ॥
रम्भापत्रे पटे वाथ पातयेत्पर्पटीं तदा ।

माषैकं चूर्णितं खादेद्गजचर्म नियच्छति ॥
निष्कैकं बाकुचीचूर्णं लेहयेदनुपानकम् ॥ १३४ ॥

शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक १ कर्ष तथा गन्धक के बराबर ( १ कर्ष ) ताम्र की भस्म, पारद के बराबर ( १ पल ) शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में ताम्र भस्म और वत्सनाभ चूर्ण मिला के घोट कर उस में समस्त चूर्ण के बराबर फिर और शुद्ध गन्धक मिला कर घोट के कज्जली बना कर घृत से लिप्त हुई लौहे की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। कज्जली को घृत से लिप्त हुए लौह को कलच्छू के अग्र भाग से बार २ धीरे २ चलाते रहना चाहिए। जब सब चूर्ण अच्छी तरह से पिघल जाय तब उस को गीले गोबर के चौकोर चबूतरे पर बिछाए हुए हरे केले के पत्ते पर या कपड़े पर गिरा कर या डाल कर हरे कदलीपत्र ही से ढक कर गोबर के पिण्ड से दबा के पर्पटी बना लेनी चाहिए। स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल में महीन पीस के काच की शीशी में भर देवें। इस रस को एक माशे भर लेकर मधु के साथ प्रतिदिन खाना चाहिए तथा उस के पश्चात् बाकुची के एक निष्क भर चूर्ण को मधु के साथ भक्षण करना चाहिए। इस प्रकार इस रस के प्रतिदिन सेवन करने से गजचर्म नष्ट हो जाता है ॥ १३२-१३४ ॥

अथ कासीसबद्धरसः—

पलं रसं हि कासीसैर्युतं पञ्चगुणैः सह।
मर्दयेद्यामपर्यन्तमर्जुनस्य त्वचो रसैः ॥ १३५ ॥
शरावसम्पुटे रुद्ध्वा पुटेत्क्रोडपुटेन हि।
रसः कासीसबद्धोऽयं मधुना वज्रतुल्यकः ॥ १३६ ॥
शाणबाकुचिकायुक्तः सेवितो हन्ति निश्चितम्।
त्रिभिर्मासैः किलासं हि दद्रूण्यपि विशेषतः ॥ १३७ ॥

शुद्ध पारद की भस्म अथवा रस सिन्दूर १ पल भर लेकर ५ पल भर शुद्ध हीराकसीस के साथ एक दिन तक घोट कर अर्जुन की छाल के क्वाथ या स्वरस के साथ एक प्रहर तक घोट कर शराव सम्पुट में बन्द कर के वाराहपुट में फूंकना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में

महीन चूर्ण कर के काच की शीशी में भर देवें । इस को कासीस बद्ध रस कहते हैं । एक वल्ल ( ३ रत्ती ) भर इस रस को एक शाण ( ४ माशे ) भर बाकुची के चूर्ण और मधु के साथ तीन मास तक सेवन करने से किलास नामक कुष्ठ तथा दद्रूरोग नष्ट हो जाता ॥ १३५–१३७ ॥

अथ सर्वेश्वररसः—

शुद्धसूतं चतुर्गन्धं खल्ले यामं विमर्दयेत् ।
मृततास्राभ्रलोहानि हिङ्गुलं च पलं पलम् ॥ १३८ ॥
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।
माषैकं मृतवज्रं च तालसत्त्वं पलद्वयम् ॥ १३९ ॥
जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥ १४० ॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।
बालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुनाऽग्निना ॥ १४१ ॥
आदाय चूर्णयेत्सूक्ष्मं पलैकं योजयेद्विषम् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥ १४२ ॥
द्विगुञ्जं भक्षयेत्क्षौद्रैः सुतिमण्डलकुष्ठजित् ।
बाकुचीं देवदारुं च कर्षमात्रं सुचूर्णितम् ॥
लिहेदेरण्डतैलेन ह्यनुपानं सुखावहम् ॥ १४३ ॥

शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक ४ तोला लेकर एक प्रहर तक घोट कर कज्जली बना के उस में ताम्र भस्म १ पल, अभ्रक भस्म १पल, लौह भस्म १ पल, शुद्ध हिङ्गुल १ पल, स्वर्ण भस्म १० निष्क, चांदी की भस्म १० निष्क, हीरे की भस्म का सत्त्व १ माशा तथा शुद्ध हरताल का सत्त्व २ पल लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्यों को मिला के सब को एक दिन तक घोटना चाहिए । फिर जम्बीरी निम्बू का रस, धत्तूरे की जड़ का स्वरस या क्वाथ, अडूसे की पत्तियों का स्वरस, थूहर और मदार का शुद्ध दुग्ध, कुचले के फल का क्वाथ और हयारि अर्थात् कनेर की जड़ का स्वरस या क्वाथ इन में से प्रत्येक के साथ एक २ दिन तक उक्त रस को घोटना चाहिए । इस तरह सात दिन तक घोटने के पश्चात् गोला बना के सुखा कर शराव

सम्पुट में बन्द कर के उस को चारों ओर चिकनी मिट्टी के पङ्क से लिप्त हुए वस्त्र की पट्टियों से पोत कर सुखा के बालुकायन्त्र की बालू के मध्य में गाड़ (रख) कर तीन दिन तक मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। स्वाङ्ग-शीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के उस में १ पल भर शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण तथा २ पल भर पिप्पली का चूर्ण मिला कर घोट के शीशी में भर देवें। इस को सर्वेश्वर रस कहते हैं। इस रस को दो रत्ती भर लेकर मधु के साथ सेवन करना चाहिए तथा बाद में बाकुची का चूर्ण आधा क[ष] और देवदारु का चूर्ण आधा कर्ष भर लेकर एक कर्ष भर एरण्ड के तैल में विलोडित करके सेवन करना चाहिए। इस तरह प्रतिदिन इस रसके सेवन करने से सुप्तिकुष्ठ तथा मण्डलकुष्ठ नष्ट हो जाता है॥ १३८–१४३॥

अथ योगराजगुग्गुलुप्रयोगोपदेशः—

**गुग्गुलुर्योगराजो वा योज्यो मण्डलशान्तये॥ १४४॥**

मण्डल कुष्ठ की शान्ति (निवृत्ति) के लिये सर्वेश्वर रस के सेवन करने के पश्चात् वाकुच्यादिचूर्ण के अनुपान के अभाव में वातव्याध्यधिकार में कहे हुए योगराज गुग्गुलु, का सेवन या सर्वेश्वर रस के अभाव में केवल योगराज गुग्गुलु का सेवन करना चाहिए॥ १४४॥

अथ श्वित्रारिरसः—

**काशीसरसगन्धानि मर्दयेत्सुरसारसैः।**
**सम्पुटे पुटयेद्दत्त्वा चाङ्गेरीमधरोत्तरम्॥ १४५॥**
**सर्वमेतच्च सञ्चूर्ण्य तण्डुलान्दश सप्त वा।**
**आरभ्य वर्धयेद्यावत्पञ्चषष्टि क्रमेण हि॥ १४६॥**
**अनुपानाय मध्वाज्यं दध्याज्यं नवनीतकम्।**
**धात्र्यार्द्रकरसैश्चैव तिन्दुकं कदलीफलम्।**
**श्वित्रारिसंज्ञितो ह्येष श्वित्रकुष्ठनिषूदनः॥ १४७॥**

शुद्ध हीराकसीस १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोले भर लेकर सब को खरल में एक दिन तक घोट कर कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर उसको तुलसी के पत्रों के स्वरस या पञ्चाङ्ग से किये हुए क्वाथ से घोट कर गोला बना के उसको चाङ्गेरी (नोनिया) के कल्क के बीच में रख कर शराव

सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में घोट कर चूर्ण करके कांच की शीशी में भर देवें। इस रस को प्रथम दिन ७ या दश चांवल के बराबर की मात्रा के अनुसार प्रारम्भ करके प्रति दिन एक २ चांवल की मात्रा को बढ़ाते हुए ६-५ चांवलों के बराबर की मात्रा की पूर्ति तक बढ़ानी चाहिए। इस रस को मधु और घृत, दही और घृत अथवा मक्खन या आंवले के फलों के स्वरस तथा अदरख के स्वरस के साथ यथादोष का विचार करके मिला कर सेवन करना चाहिए। बुभूक्षा प्रतीत होने पर पके हुए तेंदू के फल और केले के फल का पथ्य में सेवन करना चाहिए। यह श्वित्रकुष्ठ का अरि ( दुश्मन ) होने के कारण श्वित्रारिरस कहा जाता है तथा श्वित्रकुष्ठ को उपर्युक्त विधि के अनुसार सेवन करने से नष्ट करता है ॥ १४५-१४७ ॥

अथ चन्द्रप्रभावटिका-( रसः )

**पिष्टो निम्बुकगोमयूरसलिलैः सार्धो रसो गन्धकात्**
**मूषायां घननादपिण्डसहितं पक्वं करीषे तिलान्।**
**बाकुच्याश्च फलानि गोजलकृता चन्द्रप्रभेति श्रुता**
**श्वित्रं तक्रभुजो निहन्ति वटिकाः क्षाराम्लतैलं त्यजेत् ॥१४८॥**

शुद्ध गन्धक १ पल तथा गन्धक की अपेक्षा सार्ध अर्थात् डेढ़ पल शुद्ध पारद लेकर दोनों की खरल में कज्जली बनाकर निम्बू के रस के साथ एक दिन तक खरल करके फिर दूसरे दिन गोमूत्र के साथ खरल करें और तीसरे दिन मयूर अर्थात् अपामार्ग के पञ्चाङ्ग का क्वाथ या क्षार का पानी अथवा मसूर (मोर) के पित्त के साथ खरल करके गोला बना लेना चाहिए। तदनन्तर उस गोले को घननाद ( मेघनाद—चोलाई ) के कल्क के भीतर रखकर अथवा उस गोले पर दो २ अङ्गुल मोटा चोलाई की जड़ के कल्क का लेप करके मूषा अथवा शराव में बन्द करके कपड़ मिट्टी कर देवें। सूखने पर उस सम्पुट को गजपुट की अग्नि में रख कर पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें पक्वौषध के बराबर तिलों का चूर्ण तथा बाकुची के फलों का चूर्ण मिलाकर गोमूत्र के साथ एक दिन तक खरल करके एक २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें।

इस को चन्द्रप्रभा वटिका या चन्द्रप्रभा रस कहते हैं तथा इस रस की एक २ वटी प्रति दिन सेवन करनी चाहिए और बुभूक्षा लगने पर तक्र (मट्ठे) के साथ भात आदि सुपाच्य और बलबर्द्धक अन्न का सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय क्षार, अम्ल पदार्थ और तैल का सेवन नहीं करना चाहिए ॥१४८॥

अथ किलासनाशनरसः—

**रसद्विगुणगन्धकं त्रिगुणताम्रलिप्तं पचेद्-**
**गृहीतमनुकज्जली खदिरबाकुचीनिम्बजैः।**
**रसैः पुटविपाचितं समलयाकषायं पिबे-**
**त्किलासमरुणं सितं जयति शुद्धतक्राशिनः ॥ १४९ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध गन्धक २ तोला तथा शुद्ध ताम्र के कण्टक वेधी पत्र ३ तोले भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक को कज्जली बनाकर निम्बू के रस में घोट कर कल्क बना के ताम्र के पत्रों पर लेप कर देना चाहिए। फिर उन कज्जली लिप्त ताम्र पत्रों को शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट के अन्दर पाक करना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से ताम्र पत्रों को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके खदिर की छाल के क्वाथ के साथ घोट कर गोला बना के सम्पुट में बन्द करके पकावें। फिर निकाल कर चूर्ण करके बाकुची के स्वरस या क्वाथ के साथ घोट कर पूर्ववत् पुट देवें तथा फिर घोट कर नीम के पञ्चाङ्ग के क्वाथ के साथ खरल करके गोला बना कर शरावसम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करना चाहिए। इस तरह पुटयोगों से सिद्ध हुए रस को खरल में महीन पीस कर काच की शीशी में भर देवें। इस रस का १-३ रत्ती भर तक लेकर मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा सेवन करने के उपरान्त बाकुची के क्वाथ का अनुपान करना चाहिए तथा बुभूक्षा लगने पर मट्ठे के साथ पुराने चांवलों का भात खाना चाहिए। इस तरह इस रस के सेवन करने से काल और श्वेत कुष्ठ दूर हो जाता है ॥ १४९ ॥

अथोदयादित्यरसः—

**शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम्।**
**तद्गोलं हण्डिकामध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत् ॥ १५० ॥**
**सूतकाद्द्विगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन वै।**

पार्श्वे भस्म निधायाऽथ पात्रेऽर्धे गोमयं जलम् ॥ १५१ ॥
किञ्चित्किञ्चित्प्रदातव्यं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत् ।
चण्डाग्निनोद्धृत्य ततः स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ १५२ ॥
काकोदुम्बरिकावह्नित्रिफलाराजवृक्षकम् ।
विडङ्गं बाकुचीबीजं क्वाथयेत्तेन भावयेत् ॥ १५३ ॥
दिनैकमुदयादित्या रसो भक्ष्यो द्विगुञ्जकः ।
खदिरस्य कषायेण बाकुचीबीजचूर्णकम् ॥ १५४ ॥
तुल्यं मृद्वग्निना पिण्डं जातं यावत्पचेल्लघु ।
त्रिनिष्कं तद्रविक्षीरैः क्वाथैर्वा त्रफलरनु ॥ १५५ ॥
त्रिदिनान्ते भवेत्स्फोटः सप्ताहे वा न संशयः ।
नीलीं गुञ्जां च कासीसं धत्तूरं हंसपादिकाम् ॥ १५६ ॥
सूर्यावर्तं चाम्लपर्णीतुल्यं पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ।
स्फोटस्थाने प्रशान्त्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः ॥
श्वेतकुष्ठं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥ १५७ ॥

शुद्ध पारद ४ तोला, तथा शुद्ध गन्धक ८ तोला लेकर दोनों को पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर घृतकुमारी के रस के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बनाके उसको हण्डिका के भीतर रखकर पारद से द्विगुण शुद्ध ताम्रपत्र की कटोरी को अधोमुखी करके गोले के ऊपर ढककर हण्डिका के साथ सन्धिबन्धन कर देना चाहिए । फिर उस कटोरी के ऊपर के हण्डिका के शेष रिक्त स्थान के आधे भाग में पलाश ( ढाक ) की या अन्य उपलादिकों की भस्म ( राख ) भरकर बचे हुए भाग में गोबर का रस भर कर हण्डिका को चूल्हे पर चढाकर दो प्रहर तक तेज अग्नि देनी चाहिए । बीच २ में थोड़ा २ गोबर का रस हण्डिका में डालते रहना चाहिए । जब दो प्रहर तक पाक हो जाय तब स्वाङ्गशीतल होने पर सिद्ध रस को कटोरी के सहित निकालकर खरल में महीन चूर्ण करके उसको छोटी गूलर के दुग्ध, चित्रक की जड़ का स्वरस या क्वाथ, त्रिफलाक्वाथ, अमलतास के फल के गूदे का क्वाथ, विडङ्ग का क्वाथ और बाकुची के बीजों के क्वाथ में एक २ दिन तक पृथक् २ क्रम से घोटकर सुखा के चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को उदयादित्य रस कहते हैं । इस

रस को दो रत्ती की मात्रा से मधु के साथ सेवन करना चाहिए तथा उसके अनन्तर बाकुची के पल भर चूर्ण को एक पल भर खदिर की छाल के क्वाथ के साथ घोटकर गोला बना के शरावसम्पुट में बन्द करके मन्द २ अग्नि के द्वारा पकाकर सम्पुट से निकाल के खरल में चूर्ण करके उस चूर्ण में से तीन निष्क ( १२ माशे ) भर लेकर आक के शुद्ध दुग्ध के साथ या त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करना चाहिए। इस प्रकार इस रस के सेवन करने से तीन दिन के या सात दिन के पश्चात् श्वित्र ( सफेद कुष्ठ ) के स्थान पर एक स्फोट या फोड़ा ( सूजन ) उत्पन्न होता है। इस प्रकार से उठे हुए स्फोट के ऊपर उसकी शान्ति के लिये सात दिन तक नीली, गुञ्जा की जड़, हीरा कासीस, धत्तूरे की जड़, हंस पदी, सूर्यावर्त ( हुलहुल ) की जड़ और अम्ललोनी इन सब औषधियों के समभाग को लेकर पत्थर पर पीसकर उसपर लगा कर पट्टी बांध देनी चाहिए। इस प्रकार वह फोड़ा शान्त होकर साध्य तथा असाध्य श्वेतकुष्ठ नष्ट हो जाता है॥ १५०-१५७॥

अथ अल्पश्वित्रे शिलादिलेपः—

**अल्पं श्वेतं निघृष्यादौ रक्तमण्डलपल्लवैः।**
**शिलाऽपामार्गभस्मापि लिप्त्वा श्वित्रं विनाशयेत्॥ १५८॥**

अल्प अर्थात् ज्यादा स्थान में न फैले हुए या नवीन श्वित्र के स्थान को या श्वित्र को रक्तमण्डल अर्थात् लाल रङ्ग की लज्जालु के पत्ते या लालपुष्प की कनेर के पत्तों से खुरचकर मनःशिला का चूर्ण और अपामार्ग की भस्म ( राख ) को पानी के साथ पीसकर लेप करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है॥ १५८॥

अथ अङ्कोलतैलादिलेपद्वयम्—

**लेपो वाङ्कोलतैलेन काञ्चन्या काञ्जिकेन वा।**
**गुञ्जाफलाग्निमूलञ्च लेपितं श्वेतकुष्ठजित्॥ १५९॥**

काञ्चनी अर्थात् हरिद्रा या स्वर्णक्षीरी के बीजों के चूर्ण को अङ्कोल के तैल के साथ खरल में घोटकर लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है। अथवा गुञ्जा ( घुंघची ) के फलों का चूर्ण और चित्रक की जड़ का चूर्ण इन दोनों को काञ्जी के साथ पीसकर लेप करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है॥ १५९॥

अथ श्वित्रान्तकरसः—

सूते पले भूधरयन्त्रमध्ये सञ्चारयेद् गन्धपलं ततश्च ।
सूतेन गन्धस्य पलत्रयं च दत्त्वाथ निम्बूत्थरसैर्विमर्द्य ॥ १६० ॥
स्वराशिकाबाकुचिकाग्निभृङ्गकोरण्टनीरैः परिमर्दयेत ।
दिनैकमेकं कटुतुम्बिनीजलैर्मर्द्यं ततः काचसुकूपिकान्तः ॥१६१॥
निक्षिप्य भाण्डे सिकतोदरान्तर्यामद्वयं स्वेदय तं ततश्च ।
ददीत वल्लद्वयमस्य कृष्णपर्णेन साधं त्वथवा तदर्धम् ॥ १६२ ॥
पलाशमूलं त्वनुपाययीत तक्रेण साधं च ददीत पथ्यम् ।
उष्णे क्षिपेत्तैलविमर्दितं च स्फोटा यदि स्युः सहसा च गात्रे॥१६३॥

शुद्धपारद १ पल और शुद्धगन्धक १ पल भर लेकर दोनों की कज्जली बनाकर भूधर यन्त्र में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल यन्त्र से सिद्ध रसको निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें तीन पल शुद्धगन्धक मिलाकर अच्छी प्रकार महीन घोटके निम्बू के रसके साथ एकदिन तक खरल करना चाहिए। फिर स्वराशिका अर्थात् मालकाङ्गनी ( या देशान्तर प्रसिद्ध स्वराशिका या सप्तपर्ण अथवा स्वराशिका अर्थात् रस की अपेक्षा प्रत्येक औषधि का स्वरस या क्वाथ सातगुना लेना चाहिए ऐसा अर्थ संस्कृत टीकाकार ने किया है, किन्तु मालकाङ्गनी अर्थ प्रशस्त है ), बाकुची, चित्रक की जड़, भृङ्गराज, पीत कट्सरैया और कड़वी तोम्बी इन औषधियों के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ क्रम से एक २ दिनतक घोटकर सुखा के स्निग्धमृत्तिकापङ्कलिप्त वस्त्रों की पट्टिकाओं से आतसी शीशीपर सात वार कपड़मिट्टी करके सुखा कर उसमें भर के बालुकायन्त्र की बालुका के मध्य में गले तक शीशी को रखकर दो प्रहर तक पाक करना चाहिए। गन्धक के जीर्ण हो जाने पर कूपी के मुख में खडिया का डाट डालकर चूने तथा गुड़ की पिष्टी से मुखबन्धन करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल कूपी से पक्वा रस को युक्ति से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके कांच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख देवें। इस रस को १ रत्ती से प्रारम्भ करके दो वल्ल ( ६ रत्ती ) भर तक लेकर पान के पत्र के स्वरस और मधु के साथ या केवल पान में र कर भक्षण करना चाहिए। पश्चात् पलाश ( ढाक ) की जड़ का स्वरस या क्वाथ बनाकर पीना चाहिए और बुभुक्षा लगने पर तक्र के साथ भात, रोटी आदि पथ्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

यदि इस रस के सेवेन करने से शरीर में फोड़े आदि निकल आवें तो शरीर पर (विशेष कर फोड़े पर) तैल की मालिश कर के सूर्य की उष्णता (घाम) में बैठना चाहिए ॥ १६०-१६३ ॥

अथ श्वेतारियोगः—

**पलत्रयं गन्धकभृङ्गकृष्णतिलोत्थतैलं कटुतुम्बिनी च ।**
**भल्लाततैलं कटुनिम्बबीजं सर्वं समानं परिभावयेत ॥ १६४ ॥**
**त्रिःसप्तकं भृङ्गरसैस्तुतोयं श्वेतारियोगः समुपैति सिद्धिम् ।**
**पलार्धमानेन ददीत चामुं सिताघृताक्तं दिनजन्मकाले ॥ १६५ ॥**
**विवर्जयेत्सूरणमाषमांसवृन्ताकमुद्गानि कषायकादि ॥ १६६ ॥**

शुद्धगन्धक ३ पल भृङ्गराज का चूर्ण ३ पल, काले तिलों का तैल ३ पल, कड़वी तुम्बी का चूर्ण ३ पल, शुद्धभिलावों का तैल ३ पल, कड़वे नीमके फलोंकी गिरी ३ पल तथा तोय अर्थात् नेत्रवाला का चूर्ण ३ पल भर लेकर सबको खरल में डालकर अच्छी प्रकार एकदिन तक घोटकर २१ दिनतक भृङ्गराज के स्वरस से भावित करके घोटकर सुखा के चूर्ण करके काचकी शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से प्रतिदिन आधेपल भर लेकर चीनी और घृतके अन्दर मिला के प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। यह श्वेतारियोग है तथा इस औषध के सेवन करते समय सूरण कन्दकी शाक, माष अर्थात् उड़द की पिट्ठी के बड़े और दाल, मांस, बैंगन की शाक, मूंगकी दाल और कषाय रस वाले द्रव्यों का सेवन करना वर्जित है। इस प्रकार नियम पूर्वक इस औषध के सेवन करने से श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ १६४-१६६ ॥

अथ कृष्णीकरणयोगः—

**कुमार्गजन्तीनुरपक्षसागरैर्वरुष्टिशाभास्करलोकभासया ॥**
**कल्कीकृतं यन्मधुना च संयुतं करोति तारं भ्रमरप्रभं च तत्॥१६७॥**

कु अर्थात् काली मिट्टी (कृष्णवृत्तिका), मार्ग (अपामार्ग), जन्ती (जयन्ती), नुर (देशान्तर प्रसिद्ध तृण विशेष), पक्ष (स्वर्णमाक्षिक), सागर (समुद्र लवण), वरू (वरुण की छाल), ष्टिशा (औषधि विशेष), भास्कर (आक की जड़), लोक (गुडूच का कन्द=कन्दगुडूची) भासा (घृतकुमारी का सत्त्व) इन सब औषधियों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में या सीलर

पीसकर थोड़ा सा शहद् मिला के श्वित्र के स्थान पर लेप करने से वह भ्रमर के समान काला हो जाता है ॥ १६७ ॥

अथ श्वित्रकुष्ठारिरसः—

**रसगन्धकतुत्थार्कबाकुचीक्वाथमर्दितम् ।**
**सेवितं सोमतैलेन श्वित्रकुष्ठं नियच्छति ॥ १६८ ॥**

शुद्ध पारद १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल, शुद्ध नीलतुत्थ १ पल, ताम्र की भस्म १ पल लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना के शेष द्रव्य डाल कर एक दिन तक खरल कर लेवें । फिर बाकुची के क्वाथ के साथ एक दिन तक घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को बाकुची के तैल के साथ अथवा रक्तचन्दन के साथ विलोड़ित करके प्रतिदिन सेवन करने से श्वित्र कुष्ठ दूर हो जाता है ॥ १६८ ॥

अथ स्नुह्यादितैलम्—

**स्नुह्याः कुडवं पयसः प्रस्थं दुग्धस्य नारिकेलस्य ।**
**गन्धकनिशयोः कर्षं पारदकर्षं च साधु संयोज्यम् ॥ १६९ ॥**
**खरतरकिरणातापात्पक्वं तैलं विलेपितं प्राज्ञैः ।**
**कुष्ठकिटिमेऽपहन्ति प्रबलं च समीरणं हन्यात् ॥ १७० ॥**

थूहर का शुद्ध दुग्ध १ कुडव ( आधा शराव ४ पल ), नारियल के कच्चे फल की गिरी का दुग्ध १ प्रस्थ, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण १ कर्ष और शुद्ध पारद १ कर्ष लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें वत्सनाभ विष का चूर्ण मिलाकर एक दिन तक खरल करके थूहर के दुग्ध और नारियल के दुग्ध के साथ घोटकर उसमें १ प्रस्थ भर ( अनिर्दिष्ट प्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते ) कटु तैल मिलाकर सूरज की तेज धूप में रख देवें । जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उसको शीशी में भरकर रख देवें । इस तैल को श्वित्र के स्थान पर मालिश करने से श्वेतकुष्ठ, किटिमकुष्ठ और प्रबल वातव्याधिरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६९-१७० ॥

अथ आरग्वधादितैलम्—

**आरग्वधरसो गुञ्जाबाकुचीगन्धकं त्रयैः ।**
**सरसः कङ्गुणीतैलं जयेत्सिध्ममुदुम्बरम् ॥ १७१ ॥**

आरग्वध ( अमलतास ) की जड़ का क्वाथ १ सेर तथा गुञ्जा, बाकुची, शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद ये चारों मिलाकर १ पाव ( २० तोला ) अर्थात् प्रत्येक पांच २ तोले भर तथा मालकाङ्गनी का तैल १ पाव भर लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें गुञ्जा और बाकुची का चूर्ण मिलाकर एक दिन तक खरल करके एक लोहे की कड़ाही में यह कल्क, आरग्वध का क्वाथ तथा मालकङ्गनी का तैल डालकर पाक करना चाहिए। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब स्वाङ्गशीतल करके उतारकर छान के शीशी में भर लेवें। इस तैल को कुष्ठ की जगह पर लगाने से सिध्म और उदुम्बर कुष्ठ दूर हो जाते हैं ॥ १७१ ॥

अथ गन्धपिष्टीतैलम्—

**विपक्वा कटुतैलेन पामाहृद्गन्धपिष्टिका ॥ १७२ ॥**

गन्धक को खरल में घोटकर पिष्टी बना के चौगुने कटु तैल में मिलाकर सूर्य्य की तीव्र धूप में रख देवें। जब वह तैल सूर्य की प्रखर गरमी से सन्तप्त हो जाय तब शीतल होने पर उसको शीशी में भर देवें। इस तैल के शरीर पर मर्दन करने से पामा आदि कुष्ठ के विकार दूर हो जाते हैं ॥ १७२ ॥

**विमर्शः**—प्रायः शुद्धगन्धक का आभ्यन्तरिक ( Internally ) और बाह्य ( Externally ) दोनों प्रकार से रक्तविकार निवृत्ति के लिये उपयोग होता है। यहां पर ( इस श्लोक में ) प्रायः बाह्य प्रयोग करने ही का आशय समझना चाहिए। साधारणतया चार माशे भर या इससे भी अधिक ( १ तोले तक ) शुद्धगन्धक के चूर्ण को लेकर दो तोले भर कटु तैल के अन्दर मिला के खरल में डालकर दोनों को अच्छी प्रकार घोट के मल्हम या मक्खन सी पिष्टी बना के शरीर पर उससे ( जहां पामा हो ) खूब मर्दन करके वातरहित धूप में खड़े रहना चाहिए। जब शरीर पर मर्दित की हुई औषध सूखजाय तब शिर को छोड़कर मन्दोष्ण जल से स्नान करके दुग्ध के साथ भात का सेवन करना चाहिए। इस प्रक्रिया को जब तक पामा ठीक न हो तब तक करते रहना चाहिये। शुद्धगन्धक के चूर्ण को प्रतिदिन चार रत्ती की मात्रा से मक्खन में मिलाकर सेवन करने से पामादि रक्तविकार दूर हो जाते हैं तथा रक्त भी शुद्ध हो जाता है। गन्धक के सेवन करते समय नीमक का विशेष सेवन नहीं करना चाहिए तथा पथ्य में केवल दुग्ध और भात का सेवन करना चाहिए। फलादिकों का उपयोग भी कर सकते हैं।

गन्धकसेवने वर्जनीयानि—

क्षाराम्लतैलसौवीरविदाहि द्विदलं तथा ।

शुद्धगन्धकसेवायां त्याज्यं योगयुतेनहि ॥
व्यायामं मैथुनायासं गन्धसेवी सदा त्यजेत् ॥ इति ।

तैल के साथ शुद्ध गन्धक के सेवन की विधि

यथा—यो गन्धाष्टमसुचूर्णितं पिबति नो तैलेन कर्षोन्मितम् ।
अभ्यङ्गोष्णजलावसेचनरतः पीत्वा पयः प्रत्यहम् ॥
सप्ताहाद्विषमं निहन्ति सकलं पामादि सर्वं रुजम् ।
नित्याभ्यासवशाद्विनष्टसकलक्लेशोपतापः पुमान् ॥ (वं० से०)

अथ सर्वकुष्ठान्तकतैलम्—

कृष्णाभ्रकं बलिवसां नीलज्योतीरसं रसम् ।
कङ्गुणीनिम्बकार्पासतैलं चाऽयसि मर्दयेत् ॥
तज्जयेत्सर्वकुष्ठानि बहिरन्तश्च सेवितम् ॥ १७३ ॥

कृष्ण अभ्रक की भस्म, बलिवसा अर्थात् शुद्धगन्धक, शुद्धतुत्थ और शुद्ध-पारद इन सबको समभाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके सबको अच्छी प्रकार महीन चूर्ण कर लेना चाहिए । फिर इन द्रव्यों से चतुर्गुण मालकङ्गुनी, नीम की गिरि और कपास के बिनौलों (फलों) का तैल लेकर इन सब को लोहे की कडाही में डालकर तैलपाककी विधि से पाक करके तैल बना लेना चाहिए । इस तैल के शरीर पर लेपन तथा अभ्यङ्ग करने से और मुखद्वारा स्वल्पमात्रा में ( दुग्ध के अन्दर मिलाकर ) सेवन करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १७३ ॥

विमर्शः—बलिवसापरिचयो यथा—

बलिना सेवितः पूर्वं प्रभूतबलहेतवे ।
वासुकीं कर्षतस्तस्य तन्मुखज्वालया द्रुता ।
वसा गन्धकगन्धाढ्या सर्वतो निःसृतातनोः ॥
गन्धकत्वञ्च सम्प्राप्ता गन्धोऽभूत् सविषः स्मृतः ।
तस्माद्बलिवसेत्युक्तो गन्धकोऽतिमनोहरः ॥ इति ।

अथ कुष्ठविद्रावणतैलम्—

द्वात्रिंशत्पलवाकुचीश्रुतजलद्रोणाङ्घ्रिशेषे चतु-
र्विंशत्या दनुजस्य कान्तरसयोर्निष्कैः पृथक् पञ्चभिः ।
ताम्बूलीरसमर्दितैस्तिलभवप्रस्थं श्रुतं चिक्कणे
पाके सत्यवतार्यकल्कसहितं धान्ये द्विपद्यं क्षिपेत् ॥ १७४ ॥

तत्क्षीरान्नाशिना पीतं लिप्तं कुष्ठकुलान्तकम्।
श्वित्रं दाहजमश्वेतं रूपमूलं च लुम्पति ॥ १७५।

बत्तीस पल भर वाकुची के चूर्ण को एक द्रोण भर जल के अन्दर मिला कर क्वाथ करके चतुर्थांशावशेष रहने पर स्वाङ्गशीतल करके छान लेना चाहिए। पश्चात् दनुज अर्थात् शुद्ध गन्धक के २४ पल, कान्त लौहभस्म के ५ निष्क और शुद्ध पारद के ५ निष्क लेकर पारद और गन्धक की कज्जली बना कर लौह भस्म मिला के पान के रस के साथ एक दिन तक घोटें, फिर एक प्रस्थ भर तिल का तैल और उपर्युक्त क्वाथ तथा कज्जली इन सब को एक पात्र में डाल कर तैलमात्र शेष रहने तक पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल तैल को सब औषधियों के सहित एक चिकने मिट्टी के बर्तन में भर कर उसके मुख को शराब से ढक के कपड़ मिट्टी द्वारा सन्धिबन्धन करके मुखा कर उस बर्तन को दो पक्ष तक धान के ढेर में गाड़ कर रख देवें। बाद में धान्यराशि से पात्र को निकाल कर उसमें से तैल को छान के शीशी में भर देवें। यह तैल प्रतिदिन लेपन तथा सेवन करने से श्वित्र (सफेद कुष्ठ), अग्नि के जलाने से उत्पन्न हुआ श्वेत कुष्ठ, अश्वेत अर्थात् रक्त और कृष्णवर्ण का कुष्ठ तथा रजतमूल अर्थात् रजत के समान श्वेत कुष्ठ की मूल (जड़) को भी नष्ट कर देता है। इस तैल के सेवन करते समय दुग्ध के साथ हितकर भोजन का सेवन करना चाहिए ॥१७४-१७५॥

अथ वज्रतैलम्—

वज्रक्षीरं रविक्षीरं धुस्तूरं चित्रकद्रवम्।
महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम् ॥ १७६ ॥
पचेत्तैलावशेषं तु तत्तैलं प्रस्थमात्रकम्।
गन्धकाग्निशिलातालं विडङ्गाऽतिविषाविषम् ॥ १७७
तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचा मांसी कटुत्रयम्।
हरिद्रादारु यष्ट्याह्वं सज्जीक्षारं च जीरकम् ॥ १७८ ॥
कर्षांशं देवदारुं च चूर्णं तैले विमिश्रयेत्।
वज्रतैलमिदं ख्यातं मदनात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १७९ ॥

थूहर का दुग्ध १ सेर, आक का दुग्ध १ सेर, धत्तूरे की जड़ का स्वरस या क्वाथ १ सेर, चित्रक की जड़ का स्वरस या क्वाथ १ सेर, भैंसी के गीले गोबर

का पानी १ सेर तथा सब के बराबर ( ५ सेर ) तिल का तैल लेकर सब को एकत्र बड़ी कड़ाही में डाल कर पकावें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उतार लेना चाहिए। इस तरह पकाये हुए तैल में से १ प्रस्थ ( ६४ तोला ) तैल लेकर उसमें शुद्ध गन्धक का चूर्ण १ कर्ष, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ कर्ष, शुद्ध मनःशिला १ कर्ष, शुद्ध हरताल १ कर्ष, वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ कर्ष, शुद्ध अतीस का चूर्ण कर्ष, शुद्ध हरताल १ कर्ष, वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ कर्ष, शुद्ध अतीस का चूर्ण १ कर्ष, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ कर्ष, कड़वी तरोई का शुष्क चूर्ण १ कर्ष, कूठ का चूर्ण १ कर्ष, वचा का चूर्ण १ कर्ष, जटामांसी का चूर्ण १ कर्ष, त्रिकटु का चूर्ण १ कर्ष, दारुहरिद्रा का चूर्ण १ कर्ष, मुलेठी का चूर्ण १ कर्ष, सज्जीखार १ कर्ष, जीरे का चूर्ण १ कर्ष और देवदारु का चूर्ण १ कर्ष भर मिला कर अच्छी प्रकार विलोड़न करके मिट्टी के चिकने बर्तन में भर कर सुरक्षित रख देवें। इस को वज्रतैल कहते हैं। इस तैल के शरीर पर मर्दन करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १७६–१७९ ॥

अथ महाभल्लाततैलम्—

यत्ताद्विखण्डितं कुर्याद्भल्लातशतपञ्चकम् ।
क्षिप्त्वा पचेच्छनैर्वह्नौ तैले द्वादशपालिके ॥ १८० ॥
यावत्तरन्ति ते पक्वा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ।
मधुपाके तु सम्प्राप्ते ह्यवतार्य तु तत्क्षणात् ॥
सर्वकुष्ठानि हन्त्याशु महाभल्लाततैलकम् ॥ १८१ ॥

शुद्ध किये हुए पांच सौ भिलावों के छोटे २ टुकड़े कर के बारह पल भर कटु तैल में डाल कर मन्द २ अग्नि से कड़ाही में पाक करें। जब भल्लातक फलों के टुकड़े पक कर तैल के ऊपर तैरने लग जायं तब उतार कर छान लेवें। फिर इस तैल को कुछ देर तक मन्द २ अग्नि से पका कर जब मधुर पाक हो जाय तब उतार के शीतल होने पर काच की शीशी में भर देवें। इस को महाभल्लातक तैल कहते हैं। यह तैल सर्व प्रकार के कुष्ठों को दूर करता है ॥ १८०–१८१ ॥

अथ महामार्तण्डतैलम्—

शाकं निम्बाङ्कोलवह्निराजवृक्षाक्षस्नुग्भवम् ।

गर्भशुष्कं शुभं खण्डं नारिकेलं प्रियालकम् ॥ १८२ ॥
वातारिचक्रमर्दस्य बीजं बाकुचिजं तथा ।
समं पातालयन्त्रेण तैलं ग्राह्यं प्रयत्नतः ॥ १८३ ॥
प्रस्थौ द्वौ तिलतैलस्य कुष्ठचूर्णं पलद्वयम् ।
स्वर्णक्षीरीपलैकं च क्षिप्त्वा पक्त्वाऽवतारयेत् ॥ १८४ ॥
पूर्वतैले चतुःप्रस्थे तैलीभूते विनिक्षिपेत् ।
महामार्तण्डतैलं हि लेपात्कुष्ठं नियच्छति ॥
अतिकण्डूं कृमिं पाकं स्फोटकानि च नाशयेत् ॥ १८५ ॥

शाक अर्थात् मारवाड़ देश में ख्यात सागौन नामक वृक्ष के बीज १ कर्ष, नीम के बीज १ कर्ष, अङ्कोल के बीज १ कर्ष, वह्नि अर्थात् चित्रक की जड़ का चूर्ण १ कर्ष अथवा भल्लातक के फल १ कर्ष, अमलतास के फल के सूखे गूदे का चूर्ण १ कर्ष, बहेड़े के फल की गिरी ( मींगी ) १ कर्ष, थूहर का दुग्ध १ कर्ष, गर्भशुष्क अर्थात् आवरण के अन्दर ही सूखे हुए नारियल का शुभ ( पूयादि दोष रहित ) खण्ड ( गिरी ) १ कर्ष तथा वैसी ही सूखी हुई चिरौंजी की गिरी १ कर्ष, वातारि (एरण्ड) के बीजों की गिरी १ कर्ष, चक्रवड़ के बीजों का चूर्ण १ कर्ष, बाकुची के बीजों का चूर्ण १ कर्ष लेकर खरल में महीन घोट के चतुर्गुण तैल की भावना देकर अच्छी प्रकार घोट के पातालयन्त्र की विधि से तैल निकाल लेना चाहिए। पश्चात् दो प्रस्थ ( ६४ प० ) तिलतैल, कुष्ठ का चूर्ण २ पल, स्वर्णक्षीरी की जड़ का चूर्ण १ पल लेकर (१)तैलपाक की विधि से पाक करना चाहिए।

इस प्रकार से सिद्ध हुए इस तैल को भी छान कर ग्रहण कर लेवें। पश्चात् पूर्व में कहा हुआ तैल ४ प्रस्थ तथा पश्चात् प्रोक्त तैल २ प्रस्थ भर लेकर दोनों को मिला के काच की शीशी में भर कर रख देवें। इस प्रकार से बनाये हुए इस तैल को महामार्त्तण्ड तैल कहते हैं। इस तैल के लेप करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इस के अतिरिक्त यह तैल अत्यन्त खुजली, कुष्ठ के कृमि (सिफिलस लेप्री), पाक युक्त कुष्ठ और फोड़े आदि को नष्ट करता है॥ १८२–१८५॥

---

( १ ) प्रायः तैल के पाक के लिये सर्वत्र स्नेह ( तैल ) से चतुर्गुण जल डाल कर तैल मात्र शेष रहने तक पाक करना चाहिए।

अथ श्वित्रारितैलम्—

**अङ्कोलनिम्बनिर्गुण्डीपत्रकाष्ठाद्यथोचितम् ।**
**पातालयन्त्रविधिना तैलं श्वित्रनिबर्हणम् ॥ १८६ ॥**

अङ्कोल के बीज, निम्ब का पञ्चाङ्ग अथवा फल की गिरी, निर्गुण्डी की जड़, पत्र अर्थात् तेजपत्र अथवा निर्गुण्डी के पत्र और काष्ठ—देवदारु या हरिद्रा इन सब को समान लेकर चूर्ण कर लेवें। पश्चात् मिलित चूर्ण से चतुर्गुण तैल लेकर खरल में तैल और चूर्ण को अच्छी प्रकार घोट कर पातालयन्त्र की विधि से तैल निकाल कर शीशी में भर देवें। इस तैल के श्वित्र स्थान पर मर्दन करने से श्वित्र नष्ट हो जाता है ॥ १८६ ॥

अथ कुष्ठारितैलम्—

**नारिकेलं हरिद्रे द्वे बाकुची वचया सह ।**
**अक्षभृङ्गकभल्लातं शाककाष्ठं च काञ्चनम् ॥ १८७ ॥**
**एतानि समभागानि तैलं पातालयन्त्रतः ।**
**सङ्गृह्य लेपयेत्तेन कुष्ठाष्टादशनाशनम् ॥ १८८ ॥**

सूखे हुए नारियल की गिरी, हलदी, दारुहलदी, बाकुची, वचा, अक्ष अर्थात् बहेड़े या उसके फल की मींगी, भृङ्गराज, शुद्धभिलावा, शाककाष्ठ अर्थात् सागौन वृक्ष की छाल और धत्तूरे के बीज इन सबको समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके चूर्ण से चतुर्गुण तैल लेकर सबको घोटकर पातालयन्त्र की विधि से तैल निकाल लेना चाहिए। इस तैल के अभ्यङ्ग, लेप आदि करने से अठारह प्रकार के कुष्ठ दूर हो जाते हैं ॥ १८७-१८८ ॥

**विमर्शः**—यदि पातालयन्त्र से तैल निकालने का प्रबन्ध न हो तो उपर्युक्त चूर्णों को जल के साथ पीसकर कल्क बना के कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल से चतुर्गुण जल लेकर कड़ाही के अन्दर डाल के पाक करना चाहिए। तल मात्र शेष रहने पर अर्थात् जलीयांश के अच्छी प्रकार नष्ट होने पर चूल्हे से उतार कर स्वाङ्गशीतल होने पर तैल को छान के शीशी में भर देवें।

**सिद्धस्नेह ( तैल ) के लक्षण—**

स्नेहकल्को यदाऽङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् ।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥

अन्यच्च—क्षिप्ते कृशानौ न करोति शब्दं नाङ्गुष्ठलेपी विशदोऽपिनास्ति ।

सम्वर्त्तितो वर्त्तिमुपैति कल्को निष्पत्तिरेषा घृततैलयोस्तु ॥
शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥
घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात्कुशलोभिषक्।
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥

अथ कुष्ठामयघ्नगणः—

**मञ्जिष्ठाघनदारुकुष्ठखदिरश्रेष्ठावचावाकुची-**
**पाठापर्पटराजवृक्षकटुका-यष्ट्याह्वमूर्वानिशा।**
**त्रायन्तीकिटिमारवेल्लवृषकं निम्बामृतावत्सकं**
**काकोली सदुरालभा च परमं कुष्ठामयघ्नो गणः ॥१८९॥**

मञ्जीठ, घन अर्थात् नागरमोथा, देवदारू, कूठ, खैर, श्रेष्ठा अर्थात् त्रिफला, वच, बाकुची, पाठा, पित्तपापड़ा, अमलतास, कुटकी, मुलैठी, मूर्वा, हरिद्रा, त्रायमाणा, किटि अर्थात् वाराहीकन्द, मार ( धुस्तूर ) अथवा किटिमार शब्द से अजवायन, वायविड़ङ्ग, अडूसा, नीम, गिलोय, इन्द्रयव, काकोली, यवासा ये इतनी औषधियां कुष्ठामयघ्न नामक गण में हैं। इन औषधियों के गण को मञ्जिष्ठादिगण भी कहा गया है। इस गण की प्रत्येक या समस्त औषधियां कुष्ठरोग को नष्ट करती हैं। इन औषधियों के स्वरस या क्वाथ से कुष्ठघ्न रसों को भावित करना चाहिए। इन औषधियों के चूर्ण को कुष्ठ में सेवन करना चाहिए तथा इन औषधियों के कल्क से तैल पका कर उसके मर्दन करने से भी श्वित्रादिक कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १८९ ॥

अथ महानिम्बादिचूर्णम्—

**महानिम्बस्य सारेण मर्दितां गन्धपिष्टिकाम्।**
**अमृताबाकुचीकान्तात्रिफलाचूर्णसंयुताम् ॥ १९० ॥**
**भक्तयेदायसे न्यस्तां कुष्ठे पाणितलोन्मिताम्।**
**सा कुर्याल्लेपनात्कान्तिं षण्मासाद् वृद्धिमायुषः ॥ १९१ ॥**

दो पल भर शुद्धगन्धक को महानिम्ब अर्थात् बकायन की छाल के क्वाथ के साथ खरल करके उसमें गुडूच, बाकुची, प्रियङ्गु और त्रिफला इन चारों औषधियों के चूर्ण को गन्धक ही के बराबर मिलाकर एक दिन तक खरल में पीस कर महीन चूर्ण कर के लोहे के पात्र में या काच के पात्र में भर कर रख देवें।

इसको गन्धपिष्टी कहते हैं। इस पिष्टी को प्रतिदिन पाणितल अर्थात् एक कर्ष भर लेकर मधु के साथ सेवन करने से कुष्ठरोग नष्ट हो जाता है। इसको जल के अन्दर विलोडित कर के श्वित्र पर लेप भी करना चाहिए। इस तरह छ मास तक उभय प्रकार ( भक्षण और लेपन ) से इस पिष्टी के सेवन करने से शरीर की कान्ति और आयु बढ जाती है ॥ १९०–१९१ ॥

अथ सर्वकुष्ठाङ्कुशचूर्णम्—

**मुशलीबाकुचीबीजं निर्गुण्डीमूलतुल्यकम् ।**
**मध्वाज्याभ्यां लिहेत्कर्षमिदं स्यात्सर्वकुष्ठनुत् ॥ १९२ ॥**

मुसली का चूर्ण आधा पल, वाकुची के बीजों का चूर्ण आधा पल और निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण १ पल भर लेकर सब को खरल में महीन पीस कर चूर्ण कर के काच के पात्र में भर देवें। इस चूर्ण में से प्रतिदिन १ कर्ष भर चूर्ण लेकर शहद् और घृत के साथ मिलाकर सेवन करने से सर्वप्रकार के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ १९२ ॥

अथ श्वित्रनाशनचूर्णम्—

**निम्बपत्रनिशाकृष्णाबाकुचीबीजकं समम् ।**
**चूर्णयित्वा पिबेद्दुग्धैः प्रभाते श्वित्रनाशनम् ॥१९३॥**

नीम के पञ्चाङ्ग का चूर्ण १ पल, तेजपत्र का चूर्ण १ पल अथवा निम्बपत्र का चूर्ण १ पल, हलदी का चूर्ण १ पल, पिप्पली का चूर्ण १ पल, बाकुची के बीजों का चूर्ण १ पल भर लेकर सब को खरल में मिला कर महीन पीस के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से १ तोले भर चूर्ण लेकर प्रतिदिन प्रातः काल गोदुग्ध के साथ सेवन करने से श्वित्र कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥१९३॥

अथ श्वेतकुष्ठहरचूर्णम्—

**उदुम्बरस्य मूलानि चित्रमूलञ्च निम्बजम् ।**
**भवल्गुजस्य बीजानि चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ १९४ ॥**
**उष्णेन वारिणाऽक्षांशं सेवितं क्षीरभोजिना ।**
**कृमिजालं श्वेतकुष्ठं सहसा तद्विनिर्हरेत् ॥ १९५ ॥**

उदुम्बर ( गूलर ) की जड़ की छाल अथवा छाल सहित जड़ का चूर्ण २ तोला, निम्ब के पञ्चाङ्ग या छाल का चूर्ण २ तोला, वाकुची के बीजों का चूर्ण

२ तोला भर लेकर सब को खरल में एकत्र पीस कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को १ अक्ष ( १ कर्ष ) भर लेकर मन्दोष्ण जल के साथ प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करना चाहिए तथा बुभूक्षा के लगने पर दुग्ध के साथ भात का सेवन करना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह चूर्ण श्वेतकुष्ठ के कृमि या अन्य प्रकार के शरीरगत रोगोत्पादक कृमियों के समूह को नष्ट कर देता है ॥ १९४–१९५ ॥

अथ सामान्योपायः—

**सर्वेषां कुष्ठिनामादौ पञ्चकर्माणि कारयेत् ।**
**पक्षे पक्षे च वमनं मासि मासि विरेचनम् ॥ १९६ ॥**
**षण्मासे च शिरामोक्षो नस्यं सप्तदिनान्तरे ।**
**इदं चिरस्थिते कार्यं कुष्ठे स्वल्पेऽल्पशः क्रियाः ॥ १९७ ॥**

सर्व प्रकार के कुष्ठ रोगियों को प्रथम यथाशक्ति वमन, विरेचन, आस्थापन अनुवासन, शिरो विरेचन इन पञ्च कर्मों से शुद्ध करना चाहिए। इस के पश्चात् चूर्ण, अवलेह और रस आदि औषधियों को सेवन करने के लिये देवें तथा औषध सेवन करते समय भी एक २ पक्ष में वमन और एक २ महीने में विरेचन कराते रहना चाहिए तथा छ २ महीने में शिरा मोक्ष और प्रति सातवें दिन नस्य कर्म कराते रहना चाहिए। उपर्युक्त पञ्चकर्म की व्यवस्था चिरकालीन या बहुदोष युक्त कुष्ठी के लिये करनी चाहिए तथा सामान्य कुष्ठी को सामान्य औषध आदि सेवन कराना चाहिए ॥ १९६–१९७ ॥

अथ सिध्मे गन्धपाषाणलेपः—

**मर्दितो मूलकक्षारस्यार्द्रकस्य च वारिणा ।**
**शमयेद्गन्धपाषाणः पिष्टः सिध्मं विलेपनात् ॥ १९८ ॥**

गन्ध पाषाण अर्थात् शुद्ध गन्धक १ पल भर लेकर उस को मूली के क्षार के पानी और अदरख के स्वरस के साथ एक २ दिन तक खरल कर के पिष्टी के स्वरूप में बना लेवें। इस प्रकार के गन्धक के कल्क का लेप करने से सिध्म कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ १९८ ॥

अथ सिध्मे वराटिकालेपः—

**वराटपिष्टीजम्बीरनीरार्द्रा वाऽतपे धृता ॥ १९९ ॥**

वराट अर्थात् कौड़ियों की भस्म को जम्बीरी निम्बू के रस के साथ खरल करके जम्बीरी निम्बू के रस ही से आप्लावित करके एक दिन तक धूप में रख देवें। इस पिष्टी के शरीर पर लेप करने से सिध्म कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥१९९॥

अथ दद्रुकुष्ठे मयूरक्षारादिलेपः—

**मयूरमोक्षकक्षारं मेषशृङ्गीरसौ रसः।**
**त्रिक्षारद्विनिशाव्योषशुल्वं लेपेन दद्रुजित् ॥ २०० ॥**

मयूर अर्थात् अपामार्ग का क्षार, मोक्षक ( घण्टापाटला ) का क्षार, मेढा सींगी का स्वरस, शुद्ध पारद, यवक्षार, सज्जिखार, शुद्ध सुहागा, हरिद्रा, दारु हरिद्रा, त्रिकट अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल और ताम्रभस्म इन सब को समभाग लेकर खरल में अच्छी प्रकार पीस के निम्बू के रस के साथ एक दिन तक घोटकर काच की शीशी में भर देवें। इस औषध का शरीर पर लेप करने से दद्रु आदि कुष्ठ के विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ २०० ॥

अथ चर्मकुष्ठे पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

**चतुर्थांशेन ताम्रस्य भस्मना सक्तुकेन च।**
**कृतापापो हरेत्कुष्ठं चर्माख्यं पर्पटीरसः ॥ २०१ ॥**

रक्तपित्तादि चिकित्सा में "रसं द्विगुणगन्धेन" इत्यादि प्रकार से निर्मित पर्पटी रस १ तोला तथा ताम्र की भस्म ३ माशा, सक्तुक नामक शुद्ध विष या लाल वत्सनाभविष का चूर्ण ३ माशा लेकर सब को खरल में महीन चूर्ण करके काच की शीशी में भर देवें। यह पर्पटी रस प्रतिदिन १–४ रत्ती भर तक सेवन करने से चर्म कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ २०१ ॥

अथ मेघनादाद्युद्वर्तनम्—

**मेघनादामृतानीलीगदाः कृष्णतिला मधु।**
**अश्वमेधाऽमृतं चैतैर्युक्ता गन्धककज्जली ॥**
**उद्वर्तनेन षण्मासाद्गजचर्मविनाशिनी ॥ २०२ ॥**

मेघनाद अर्थात् कांटेदार चोलाई की जड़ का चूर्ण १ तोला, गिलोय का चूर्ण १ तोला, नीली वृक्ष की जड़ का चूर्ण १ तोला, गद अर्थात् कूठ का चूर्ण १ तोला, काले तिलों का चूर्ण १ तोला, मधु (मुलेठी) का चूर्ण १ तोला, असगन्ध का चूर्ण १ तोला, शुद्ध वासनाभविष का चूर्ण १ तोला तथा द्विगुण गन्धक के साथ की

हुई पारद की कज्जली १ तोले भर लेकर सब को खरल में महीन पीस कर चूर्ण बनाके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण का प्रतिदिन शरीर पर उबटन (मर्दन) करना चाहिए। इस तरह ६ मास तक मर्दन करने से गजचर्म नष्ट हो जाता है॥ २०२॥

अथ निर्गुण्ड्यादिप्रलेपः—

**निर्गुण्डीतैलमध्वाज्यकुमारीशाल्मलीरसः।**
**यवो गन्धकपिष्टश्च लेपः कुष्ठक्षयापहः॥ २०३॥**

निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, कटुतैल, मधु (शहद्), घृत, घृतकुमारी, शेमल की जड़ का स्वरस, जो का चूर्ण, शुद्धगन्धक इन सबको बराबर २ लेकर प्रथम घन द्रव्यों का महीन पीस के चूर्ण बनाकर उसमें तैल और स्वरसादिक द्रवपदार्थ डालकर घोट के पिष्टी अर्थात् मलहर(म) बना लेनी चाहिए। इस पिष्टी का प्रतिदिन लेप करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है॥ २०३॥

अथ गुञ्जाशुद्धर्तनम्—

**गुञ्जाचित्रकशङ्खचूर्णरजनीभल्लातकं लाङ्गली-**
**स्नुक् क्षीरोत्तमकन्यकाघनरवाधूमोद्गमः सूतकः।**
**गोमूत्रैडगजं विडङ्गमरिचं सक्षौद्रखारीजलं**
**पामादद्रुविचर्चिकाकिटिमजित्कण्डूघ्नमुद्धर्तनात्॥ २०४॥**

गुञ्जा (घुंघची) के फलों का या पञ्चाङ्ग का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, शङ्खभस्म १ तोला, चूर्ण अर्थात् बुझा हुआ चूना १ तोला (अथवा शङ्खचूर्ण=शङ्खभस्म ही लेना चाहिए) हरिद्रा का चूर्ण १ तोला, शुद्ध भिलावें का चूर्ण १ तोला, लाङ्गली (कलिहारी) की जड़ का चूर्ण १ तोला, थूहर का शुद्ध दुग्ध १ तोला, उत्तमा अर्थात् शुद्धमनःशिला का चूर्ण १ तोला, कन्यका (घृतकुमारी) का स्वरस या गूदा १ तोला, घनरवा अर्थात् मुस्तक का चूर्ण १ तोला, धूमोद्गम अर्थात् रसोई घर का धूआं १ तोला, शुद्धपारद १ तोला, गोमूत्र १ तोला, एडगज अर्थात् चक्रमर्द के बीजों का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, मरिचों का चूर्ण १ तोला, शहद् १ तोला, खारीजल या खारी नदी के पानी से बनाया हुआ निमक १ तोला लेकर प्रथम पारद को चूर्णादिकों के साथ कज्जली की तरह पीस कर द्रव पदार्थ मिलाकर पिष्टी बना लेनी चाहिए।

इस पिष्टी के शरीर पर लेपन करने से पामा, दद्रु, विचर्चिका, किटिम और कण्डु ( खुजली ) आदि कुष्ठ के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २०४ ॥

काञ्चन्यादिप्रयोगः—

**कुष्ठं च काञ्चनीतैलैर्मर्द्यालेप्यं सुघर्षितम् ॥ २०५ ॥**

कुष्ठ को प्रथम अच्छी प्रकार से घर्षित करके काञ्चनी अर्थात् हलदी के चूर्ण और कटुतैल के कल्क से मर्दन करके फिर उसपर उसी कल्क की टिकिया रखकर या लेप करके पट्टबन्धन ( बेण्डेजिङ्ग ) कर देना चाहिए। इस तरह कुछ दिन तक प्रतिदिन उपचार करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ २०५ ॥

कुमार्यादिलेपः—

**कुमारीसैन्धवं लेप्यं शुष्ककण्डूहरं परम् ॥ २०६ ॥**

घृतकुमारी के गूदे में बराबर सैन्धव लवण डालकर दोनों को खरल में थोड़ी देर तक पीस ( घोट ) कर उस कल्क के लेप करने से शुष्क खुजली दूर हो जाती है ॥ २०६ ॥

महामुण्डीलेपः—

**सैन्धवेन महामुण्डीलेपो हन्ति विपा(१)दिकाः ॥ २०७ ॥**

सैन्धव नीमक और गोरखमुण्डी दोनों को पीस कर लेप करने से विपादका ( Chilblains ) नष्ट हो जाती है ॥ २०७ ॥

कण्डूव्रणादिहरः शिलादिप्रलेपः—

**शिलाशम्भुबीजं वरं कुष्ठगन्धं मरीचं तथा जीरकं देवधूपः ।**
**निशा सर्पिषा मर्दितो मन्दवारे हरेत्कायकण्डूव्रणस्फोटगण्डान् ॥२०८॥**

शुद्ध मनः शिला, शम्भुबीज अर्थात् शुद्ध पारद, शुद्ध वत्सनाभविष, मीठा कूठ, शुद्ध गन्धक, काली मरिच, जीरा, देवदारु तथा हलदी इन सब को समान २ लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें चूर्णित किये हुए शेष

---

( १ ) विचर्चिकैव पादयोर्भवन्ती विदारणयोगाद्विपादिका भवति ।
दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मासम्पाणिपादसमाश्रिताः ।
पिडकां जनयन्त्याशु दाहकण्डूसमन्विताम् ।
दाल्यते त्वक् खरा रुक्षा पाण्यो ज्ञेया विचर्चिका ।
पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचर्चिका ॥ इति भोजः ।

द्रव्यों को मिलाकर एक दिन तक सब चूर्ण के बराबर लिये हुए गोघृत के साथ घोट कर चौड़े मुख वाली शीशी में भर देवें। इस मलहर को शनिवार के दिन शरीर पर लगा कर मर्दन करने से कण्डु ( खुजली ), व्रण ( Ulcer ), स्फोट (फोड़े फुन्सियां) और गण्डविद्रधि आदि शरीरके रोग नष्ट हो जाते हैं॥२०८॥

गन्धकादिप्रयोगः—

**गन्धकाश्वत्थरुचकश्वेतसूरणटङ्कणाः।**
**तिलपुष्पं च तत्क्षारः सप्तधा गोजलाप्लुतः॥ २०९॥**
**तत्कर्षं मधुना स्निग्धो तैलाद्यामं खरातपे।**
**विकृते पतिता ह्येवं स्फोटाः स्युस्तान्वरोदकैः॥ २१०॥**
**सिञ्चेत्तुर्यदिनाल्लिप्ते निशातन्दुलतालकैः।**
**गोतक्रकोद्रवान्नाशी सप्ताहाच्छिद्यव्रजित्खलु॥ २११॥**

शुद्ध गन्धक, अश्वत्थ ( पीपल ) की छाल, सफेद घुंघची, सूरण ( जिमिकन्द ), शुद्ध सुहागा, तिलों के पुष्प और तिल के पञ्चाङ्ग का क्षार इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करकेगोमूत्र के साथ सात वार भावित करके घोटकर सुखा के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस औषध में से प्रति दिन एक २ कर्ष भर लेकर मधु के साथ विलोड़ित करके सेवन करना चाहिए तथा दिन में शरीर पर कड़ुए तैल का मर्दन करके एक प्रहर तक धूप में बैठे रहना चाहिए। इस प्रकार इस औषध के प्रायः एक सप्ताह तक सेवन करने से कुष्ठ से विकृत हुए स्थान पर स्फोट ( फफोले या फोड़े ) निकल आते हैं। इन स्फोट को त्रिफला के क्वाथ से चार दिनतक धोते रहना चाहिए। इस तरह व्रणों के शुद्ध हो जाने के पश्चात् हरिद्राचूर्ण और शुद्ध हरताल को चांवल के धोवन के साथ पीसकर उस स्थानपर लिप्त करके बांध देना चाहिए। पथ्य में भूख लगने पर गाय के तक्र के साथ कोदो धान के भात का सेवन करना चाहिए। इस तरह सात दिनतक हरिद्राचूर्णादिक मलहर के लगाते रहने से व्रणों का ठीक तरह से रोहण होकर कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है॥ २०९–२११॥

अथ कुष्ठविध्वंसनोलेपः—

**रसटङ्कणगन्धार्धं पिप्पलीकुष्ठचन्दनम्।**
**कुष्ठाविध्वंसनो लेपो मातुलुङ्गाम्बुमर्दितः॥ २१२॥**

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, अर्क (ताम्र) की भस्म १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, मीढे कूट का चूर्ण १ तोला, लाल चन्दन का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को अच्छी प्रकार घोट कर बिजोरे निम्बू के साथ खरल कर के चोड़े मुख की शीशी में भर देवें। इसको कुष्ठावध्वंसन लेप कहते हैं। इसके लेप करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ २१२ ॥

अथ कुष्ठे पथ्यापथ्यविवेकः

पुराणधान्यानि च जाङ्गलानि मांसानि मुद्गाश्च पटोलयुक्ताः।
यवादयश्चान्न हिताः पुराणा घृतानि शाकानि च तिक्तकानि ॥ १ ॥
पुराणाःशालिगोधूममुद्गाद्याः कुष्ठिनेहिताः। तिक्तशाकं जाङ्गलञ्च पानादौ खदिरोदकम्॥२॥
अन्नपानं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोषणम्। दधिदुग्धगुड़ानूपतिलमाषांस्त्यजेत्तराम् ॥३॥

इति कुष्ठ चिकित्सा।

## अथ कृमिचिकित्सा—

अथ क्रिमिलक्षणम्—

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः श्वसनं भ्रमः।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम् ॥ २१३ ॥

शरीर के विविध अङ्गों में अथवा विशेष कर के पेट (क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्र) में खाद्य पेय पदार्थों के द्वारा क्रिमियों के पहुंच जाने पर ज्वर आना, शरीर के वर्ण (रङ्ग) में विकृति होना, शूल होना, हृदय सम्बन्धी रोग उत्पन्न होना, श्वास प्रश्वास अधिक होना, माथे में चक्कर आना, भोजन में अरुचि और अतीसार होना आदि ये उत्पन्न क्रिमि के लक्षण होते हैं ॥ १२३ ॥

अथाग्नितुण्डरसः—

रसगन्धाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः।
एकद्वित्रितुष्पञ्चभागान्सविषतिन्दुकान् ॥ २१४ ॥
सञ्चूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिनाशिनीम्।
खादयित्वानुतोयं च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥ २१५ ॥
उदराध्माननुत्यर्थं रसो ह्येष निगद्यते।
अग्नितुण्डेति विख्यातः सर्वोदरगदापहः ॥ २१६ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, शुद्धगन्धक २ तोला, अजमोद का चूर्ण ३ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण ४ तोला, पलाश के शुद्ध बीजों का चूर्ण ५ तोला तथा शुद्ध कुचले का चूर्ण ६ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक को कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य डाल कर सब को अच्छी प्रकार घोट कर शहद् मिला के गोलियां बना कर सुखा के काच की शीशी में भर देवें। क्रिमियों के नाश करने के लिये इस की एक २ गोली प्रतिदिन खाकर ऊपर से नागर मोथे का क्वाथ पीना चाहिए। यह रस उदर रोग ( जलोदर ) और आध्मान को भी नष्ट करता है। इस को अग्नितुण्डीरस कहते हैं तथा इस से सर्व प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २१४-२१६ ॥

अथ क्रिमिज्वरे अखुपर्णीप्रयोगः—

**आखुपर्णीकषायं च शर्करां पिब स र्था ।**
**कृमिज्वरोपशान्त्यर्थं खण्डामलकमत्ति वा ॥ २१७ ॥**

उपर्युक्त अग्नितुण्डी रस के सेवन करने के पश्चात् आखुपर्णी के स्वरस या क्वाथ में चीनी डालकर पीना चाहिए अथवा केवल शर्करायुक्त आखुपर्णी के क्वाथ के प्रतिदिन पीने से क्रिमि और क्रिमिजन्यज्वर नष्ट हो जाते हैं। अथवा आंवलों का चूर्ण करके उसमें खाण्ड ( चीनी ) मिलाकर सेवन करना चाहिए, या खण्डामलक अवलेह का सेवन करना चाहिए ॥ २१७ ॥

अथ क्रिमौ पर्पटीप्रयोगोपदेशः—

**स जग्ध्वैवं पर्पटीं च स्नुहीरसं पिबेदनु ।**
**स्नुहीरसं विना कश्चिच्छेत्तुं जन्तून्न शक्नुयात् ॥ २१८ ॥**

क्रिमिरोग से आक्रान्त रोगी को रक्तपित्ताधिकार में कहे हुए पर्पटी रस का सेवन कराके थूहर की जड़ का क्वाथ या पत्तों के स्वरस का अनुपान कराना चाहिए। कृमियों के नाश करने के लिये स्नूही की जड़ या पत्तों का स्वरस या क्वाथ अत्युत्तम है तथा इसके विना कोई भी वैद्य या अन्य औषध कृमियों को जल्दी नष्ट नहीं कर सकता है ॥ २१८ ॥

अथ कीटमर्दनरसः—

**शुद्धसूतं शुद्धगन्धमजमोदो विडङ्गकम् ।**
**विषमुष्टी ब्रह्मबीजं क्रमादुक्तगुणं भवेत् ॥ २१९ ॥**

चूर्णयेन्मधुना लेह्यं निष्कैकं कृमिजिद्भवेत् ।
कीटमर्दो रसो नाम मुस्तातोयं पिबेदनु ॥ २२० ॥

शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, अजमोद का चूर्ण, विडङ्ग का चूर्ण, शुद्ध कुचले का चूर्ण, पलाश (ढाक) के शुद्ध बीजों का चूर्ण इनको क्रम से अधिक लेकर (अर्थात् पारा १ तो०, गन्धक २ तो०, अजमोदचूर्ण ३ तो०, विड्ङ्गचूर्ण ४ तो०, कुचला ५ तो०, पलाशबीजचूर्ण ६ तो० ) प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी प्रकार महीन पीसकर शहद् मिला के चार २ माशे भर की गोलियां बनाकर सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इसको कीटमर्द रस कहते हैं तथा इसकी प्रतिदिन एक २ गोली खाकर मुस्ता के क्वाथ का अनुपान करने से कृमि और उनसे उत्पन्न रोग नष्ट हो जाता है॥२१९-२२०॥

अथ कृमिघ्नरसः—

रसस्य निष्कमादाय गन्धकं तत्समं कुरु ।
ताम्रं देहि तदर्धं च पञ्चाङ्गशाकवारिणा ॥ २२१ ॥
मर्द्यादेकदिनं रात्रौ क्षिपेत्तत्रैव यत्नतः ।
क्षीरिणीक्वाथमादाय तथा कुरु दिनान्तरे ॥ २२२ ॥
दत्त्वा लघुपुटं पञ्च जयपालान्विमर्दयेत् ।
देहि गुञ्जाद्वयं चास्य साज्यं शूलच्छिदे तथा ॥ २२३ ॥

शुद्ध पारद १ निष्क ( ४ मा० ), शुद्ध गन्धक १ निष्क तथा शुद्ध गन्धक का आधा भाग अर्थात् २ माशे भर ताम्रभस्म लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें ताम्रभस्म मिला के सागोन वृक्ष के पञ्चाङ्ग के क्वाथ के साथ एक दिन तक घोट कर सन्ध्या के समय थूहर की जड़ का स्वरस या क्वाथ डालकर दूसरे दिन अच्छी प्रकार घोट के लघुपुट में पाककर लेना चाहिए स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके शुद्ध जयपाल का चूर्ण ५ निष्क भर मिलाकर घोट के काच की शीशी में भर देवें। इस रस को प्रतिदिन दो रत्ती भर लेकर घृतके अन्दर मिला कर शूल के नाश करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिए ॥ २२१–२२३ ॥

अथ क्रिमिहररसः—

शुद्धसूतं चेन्द्रयवमजमोदा मनःशिला ।

**पलाशबीजं तुल्यांशं देवदाल्या द्रवैर्दिनम् ॥ २२४ ॥**
**मर्दयेद्भक्षयेन्नित्यमाखुकर्णीकषायकम्।**
**सितायुतं पिबेच्चानु क्रिमिपातो भवत्यलम् ॥ २२५ ॥**

शुद्ध पारद अथवा रस सिन्दूर १ तोला, इन्द्रयव का चूर्ण १ तोला, अजमोद का चूर्ण १ तोला, शुद्ध मनःशिला का चूर्ण १ तोला तथा पलाश (ढाक) के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोले भर लेकर सबको अच्छी प्रकार खरल में महीन पीस के देवदाली के स्वरस या क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करके चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस को एक माशे भर लेकर मधु के साथ सेवन करके पश्चात् आखुकर्णी के स्वरस में चीनी मिलाकर अनुपान करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन इस रस के सेवन करने से पेट के अन्दर के सब कृमि नष्ट हो कर मलादिक के साथ बाहर निकल जाते हैं ॥ २२४-२२५ ॥

कृमिशूलहरो रसः—

**अजमोदाफलास्थीनि क्षीरिणीरसगन्धकम्।**
**आखुपर्णीरसं खादेत्सताम्रं क्रिमिशूलनुत् ॥ २२६ ॥**

अजमोद का चूर्ण १ तोला, त्रिफले का चूर्ण १ तोला, अस्थिसंहार की जड का चूर्ण १ तोला, दुग्धिका के पञ्चाङ्ग का चूर्ण १ तोला, शुद्धपारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके सब को अच्छी प्रकार घोटकर आखुपर्णी के स्वरस के साथ एक दिनतक खरल करके चूर्ण बनाकर काँच की शीशी में भर देवें। इसको ४ रत्ती से १ माशे भर तक प्रतिदिन मधु के साथ सेवन करने से क्रिमि और क्रिमिजन्यशूल नष्ट हो जाते हैं ॥ २२६ ॥

अथ सूतभस्मप्रयोगः—

**मधुमिश्रनिम्बपल्लवसत्त्वयुतो यदा सूतः।**
**क्रिमिसङ्घातान्नाशयति त्रिभिरहोभिरसौ ॥ २२७ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये विसर्पकुष्ठश्वित्रक्रिमिचिकित्सा नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

पारद की भस्म या रससिन्दूर को १ से ३ रत्ती भर तक लेकर मधु और निम्ब के पत्तों के स्वरस के साथ मिला के तीन दिन तक सेवन करने से क्रिमियों के समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ २२७ ॥

अथ क्रिमिरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

पथ्यानि—आस्थापनं कायशिरोविरेचनं धूमः कफघ्नानि शरीरमार्जनाः ।
चिरन्तना वेणवरक्तशालयः पटोलवेत्राग्ररसोनवास्तुकम् ॥ १ ॥
हुताशमन्दारदलानि सर्षपाः नवीनमोचं बृहतीफलानि ।
तिक्तानि नालीतदलानि मौषिकं मांसं विडङ्गं पिचुमर्दपल्लवम् ॥ २ ॥
पथ्या च तैलं तिलसर्षपोद्भवं सौवीरशुक्तञ्च तुषोदकं मधु ।
प्रचेलिमं तालमरूष्करं गवां मूत्रञ्च ताम्बूलसुरा मृगाण्डजम् ॥ ३ ॥
औष्ट्राणि मूलाज्यपयांसि रामठं क्षाराजमोदा खदिरञ्च वत्सकम् ।
जम्बीरनीरं सुषवी यवानिका साराः सुराह्वा गुरुशिग्रुपोद्भवाः ॥ ४ ॥
तिक्तः कषायः कटुको रसोऽप्यं वर्गो नराणां क्रिमिरोगिणां शुभः ॥ ५ ॥

अपथ्यानि—छर्दिञ्च तद्वेगविधारणञ्च विरुद्धपानाशनमह्नि निद्राम् ।
द्रवञ्च पिष्टान्नमजीर्णताञ्च घृतानि माषान् दधि पत्रशाकम् ।
मांसं पयोऽम्लं मधुरं रसञ्च क्रिमीन् जिघांसुः परिवर्जयेच्च ॥ १ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्न-समुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां विसर्पकुष्ठश्वित्र-क्रिमिचिकित्सानाम विंशोऽध्यायः ।

## एकविंशोऽध्यायः ।

अथाष्टौ महारोगाः—

**वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।**
**अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥**

वातव्याधि, अश्मरी ( पथरीरोग ), कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श, और संग्रहणी ये आठ महारोग कहे जाते हैं ॥ १ ॥

अथ शीतवातलक्षणम्—

**तत्रानेकेऽनिलगदाः शीतवातादयः स्मृताः ।**
**हिमवान्त हि गात्राणि रोमाञ्चज्वरितानि च ॥**
**शिरोऽक्षिवेदनाऽऽलस्यं शीतवातस्य लक्षणम् ॥ २ ॥**

वातव्याधिरोग में अनेक प्रकार के शीतवात आदि वातिक रोग होते हैं। शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों का शीतल होना, रोमाञ्च के सहित शरीर में स्फुरण (फड़-

कन) होना तथा शिर और नेत्रों में वेदना का होना और आलस्य ये सब शीतवात के लक्षण हैं ॥ २ ॥

अथ वातारिरसः—

**रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः ।**
**त्रिभागा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः ॥ ३ ॥**
**गुग्गुलुः पञ्चभागः स्यादेरण्डस्नेहमर्दितः ।**
**क्षिप्त्वात्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैव मर्दयेत् ॥ ४ ॥**
**गुटिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ।**
**नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत् ॥ ५ ॥**
**अभ्यञ्ज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ।**
**विरेके तेन सञ्जाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ ६ ॥**
**वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः ।**
**मासेन सुखयत्येव ब्रह्मचर्यपुरःसरम् ॥ ७ ॥**

शुद्धपारद १ पल, शुद्धगन्धक २ पल, त्रिफला का चूर्ण ३ पल, चित्रक की जड़ का चूर्ण ४ पल, शुद्ध और एरण्ड के तैल में खरल की हुई गुग्गुलु ५ पल लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिला के सबको अच्छी प्रकार घोट के एरण्ड के तैल के साथ एक दिन तक खरल कर के एक २ कर्ष भर की गोलियां बना के सुखाकर काच की शीशी में भर देवें । इसकी एक २ गोली प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन कर के पश्चात् सोंठ तथा एरण्ड की जड़ का क्वाथ बनाकर पीना चाहिए । पश्चात् एरण्ड के तैल का पीठ पर मर्दन करके सुखोष्ण सेक करना चाहिए । इस प्रकार इस योग के सेवन करने से साफ दस्त हो जाती है । दस्त हो जाने के बाद बुभूक्षा लगने पर घृत से संस्कृत उष्ण भोजन का सेवन करना चाहिए । इसका वातारि रस कहते हैं । इस रस को एक मास तक ब्रह्मचर्यपूर्वक सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिक रोगों से मनुष्य को निर्मुक्त करके सुखी कर देता है । इस रस के सेवन करते समय अधिक हवा के वेग से रहित स्थान में निवास करना चाहिए ॥ ३–७ ॥

अथ विजयागुटिकाप्रयोगोपदेशः—

**विजयागुटिकां रात्रौ स्वल्पमात्रां तु भक्षयेत् ॥ ८ ॥**

एकोनविंशोऽध्याय में "पल त्रयं हरीतक्याः" इत्यादि प्रकार से कही हुई विजया गुटिका को स्वल्प प्रमाण से रात्रि में प्रयुक्त करने से वातिक रोगों में विशेष लाभ होता है ॥ ८ ॥

अथ शीतारिरसः—

**रसेन गन्धं द्विगुणं प्रगृह्य पुनर्नवा वह्निरसैर्विमर्द्य ।**
**पक्वार्कपत्रोत्थरसेन पश्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ॥ ९ ॥**
**रसार्धभागेन विषं च दत्त्वा विपाचयेद्वह्निजलैःक्षणं तत् ।**
**शीतारिसंज्ञो हि रसोऽयमस्य वल्लं तदर्द्धं यदि वाऽर्द्धकेन ॥ १० ॥**
**मरीचचूर्णेन घृतप्लुतेन सेवेत मासं सघृतं च पथ्यम् ॥ ११ ॥**

शुद्ध पारद एक पल तथा शुद्धगन्धक दो पल लेकर दोनों को पत्थर की खरल में महीन कज्जली बना कर पुनर्नवा और चित्रक की जड़ के क्वाथ के साथ एक २ दिन तक खरल कर के गोला बना लेना चाहिए। पश्चात् एक मिट्टी की हण्डिका में पके हुए आक के पत्तों के पुटपाकविधि से निकाले हुए आठ गुने स्वरस को भर कर उस में उपर्युक्त गोले को रख कर स्वरस के नष्ट होने तक पाक करना चाहिए। इस तरह पकाए हुए गोले को खरल में महीन पीस कर उस में पारद का आधा ( आधा पल ) शुद्धवत्सनाभ विष का चूर्ण मिला कर चित्रक की जड़ के अठ गुने स्वरस या क्वाथ में पकाना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीत होने पर खरल में महीन चूर्ण कर के काच की शीशी में भर देवें। इस को शीतारिरस कहते हैं तथा इस रस की वल्ल ( ३ रत्ती ) भर या आधे वल्ल ( १½ रत्ती ) भर की मात्रा लेकर उस को अदरक के स्वरस और मधु के साथ अथवा घृत और मरिचों के चूर्ण के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से शीतवात नष्ट हो जाता है। इस तरह इस रस को एक मास तक सेवन करना चाहिए तथा घृत से संस्कृत पदार्थों का पथ्य पूर्वक सेवन करना चाहिए ॥९-११॥

अथ स्पर्शवातः—

**अङ्गेषु तोदनं प्रायो दाहं स्पर्शं न विन्दति ।**
**मण्डलानि च दृश्यन्ते स्पर्शवातस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥**

जिस मनुष्य के समस्त शरीर ( विशेष कर हाथ और पैरों ) में सूई के चुभने के समान वेदना होती है, दाह ( किसी प्रकार के ताप ) और स्पर्श का

ज्ञान न होता हो अथवा अङ्गों में दाह ( जलन ) होता हो और स्पर्श ज्ञान का नाश हो गया हो और शरीर पर मण्डल कुष्ठ ( लाल लाल चकत्ते ) का प्रादुर्भाव हो गया हो तो उसे स्पर्शवात से पीड़ित समझना चाहिए अर्थात् ये सब स्पर्श वात रोग के लक्षण हैं ॥ १२ ॥

अथ सर्वेश्वररसः—

**कर्षमात्रं रसस्य स्याल्लोहहिङ्गुलयोरपि ।**
**भास्वद्गगनयोश्चापि गन्धकस्य च पलं मतम् ॥ १३ ॥**
**व्योषगन्धकताम्राणां प्रत्येकं तु पलं पलम् ।**
**निम्बुद्रावेण सम्मर्द्य भावयेत्सप्तधा पृथक् ॥ १४ ॥**
**हेमार्कस्नुक्पयोवासाह्यारिविषमुद्भिभिः ।**
**पिण्डितं बालुकायन्त्रे स्वेदयेद्दिवसद्वयम् ॥ १५ ॥**
**कर्षमात्रं तु पिप्पल्या निष्कमात्रं विषस्य च ।**
**सञ्चूर्ण्य दापयेदत्र रसे सर्वेश्वराभिधे ।**
**गुञ्जामात्रं ददीतास्य स्पर्शवातापनुत्तये ॥ १६ ॥**

शुद्ध पारद १ कर्ष, लौहभस्म १ कर्ष, शुद्ध हिङ्गुल १ कर्ष, भास्वद् ( ताम्र भस्म ) १ कर्ष तथा गगन ( अभ्रक ) की भस्म १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ पल, व्योष ( सोंठ, मरिच, पीपल ), १ पल, शुद्ध गन्धक १ पल तथा ताम्रभस्म १ पल भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को महीन पीस कर निम्बू के रस के साथ एक दिनतक खरल करके हेम अर्थात् धत्तूरे की जड़ का क्वाथ, आक की जड़ का क्वाथ या आक का दुग्ध, थूहर की जड़ का क्वाथ या दुग्ध, अड़ूसे के पत्तों का स्वरस, हयारि अर्थात् करवीर ( कनेर ) की जड़ का क्वाथ और कुवले का क्वाथ लेकर इन में से प्रत्येक से सात २ बार भावित कर के घोटकर गोला बनाके शराव सम्पुट में बन्द कर के दो दिन तक बालुकायन्त्र के द्वारा पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्धरस को निकालकर खरल में महीन पीस के उस में एक कर्ष भर पिप्पली का चूर्ण और एक निष्क ( ४ मा० ) भर शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण मिला के अच्छी प्रकार घोटकर चूर्ण बना के शीशी में भर देवें । इसको सर्वेश्वर रस कहते हैं । एक रती भर इस रसको शहद् के साथ मिलाकर स्पर्शवात को दूर

करने के लिए प्रतिदिन सेवन करना चाहिए ॥ १३–१६ ॥

अथ अर्केश्वररसः—

**रसेन गन्धं द्विगुणं प्रमर्द्य ताम्रस्य(१) चक्रेण सुतापितेन ।**
**आछाद्य भूत्वा च ततः प्रयत्नाच्चक्री विलग्नं तु रसं प्रगृह्य ॥१७॥**
**विचूर्ण्य तद्द्वादशधाऽर्कदग्धैः पुटेत वह्नित्रिफलाजलैश्च ।**
**सम्भावितोऽर्केश्वर एष सूतो गुञ्जाद्वयं चास्य फलत्रयेण ॥१८॥**
**ददीत मासत्रितयेन सुप्तवाताद्विमुक्तो हि भवेद्विताशी ॥ १९ ॥**

शुद्ध पारद १ पल और शुद्ध गन्धक द्विगुण लेकर दोनों को खरल में महीन कज्जली बनाकर उसको एक मिट्टी की हण्डिका में भर देवें । फिर उस कज्जली को १ पल भर शुद्ध ताम्र के पत्र से ढक कर हण्डिका और ताम्र पत्र की सन्धियों को बन्द कर देनी चाहिए । फिर उस हण्डिका को भस्म ( राख ) से भर कर मुख बन्द कर देना चाहिए । फिर पृथ्वी में गहरा गढा खोद कर उस में उपले भर के उन के बीच में हण्डिका को रख कर ऊपर से फिर उपले डाल कर अग्नि प्रदीप्त करदेनी चाहिए । स्वाङ्गशीतल हण्डिका से ताम्रपत्र के सहित रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके आक के शुद्ध दुग्ध के साथ खरल करके गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र में पाक करना चाहिए । इस तरह आक के दुग्ध के साथ घोट २ कर बारह पुट देना चाहिए । फिर उस रस को चित्रक की जड़ के क्वाथ और त्रिफला के क्वाथ के साथ घोट २ कर पृथक् २ सात २ पुट देने चाहिए । इस प्रकार बने हुए इस रस को अर्केश्वर रस कहते हैं । इस रस को प्रतिदिन दो रत्ती भर की मात्रा में त्रिफला के चूर्ण और शहद् के साथ मिला कर सेवन करना चाहिए । इस प्रकार तीन महीने तक इस रस के सेवन करते रहने से मनुष्य सुप्तवात ( स्पर्शवात ) रोग से निर्मुक्त हो जाता है ॥ १७–१९ ॥

अथ स्पर्शवातघ्नरसः—

**तारं(२)रसेनाष्टगुणं जयांशं विमर्द्य यत्नाद्गुलिकां गुडेन ।**

---

( १ ) चक्रेण—चक्राकारक्षुद्रभाजनविशेषेणेत्यर्थः ।

( २ ) 'तारम्' इत्यत्र तालमिति पाठान्तरम् । तस्य च रसभागापेक्षया अष्टगुणमिति भावः । तालमिति पाठे "तालं रसेन" तुल्यमिति शेषो बोध्यः ।

**निबद्धयतां सेवय मासयुग्मं दिनोदये स्पर्शविकारशान्त्यै ॥२०॥**

शुद्ध पारद अथवा रस सिन्दूर १ तोला तथा उसकी अपेक्षा चांदी की भस्म ८ तोला तथा रजतभस्म की बराबर शुद्ध भांग का चूर्ण लेकर सब को खरल में अच्छी प्रकार महीन पीसकर गोली बनने के योग्य गुड़ डालकर गोली बना के शीशी में भर देवें। इसकी पृथक२ गोली दो मासतक प्रतिदिन सूर्योदय के समय स्पर्शवात के दूर करने के लिये प्रयुक्त करनी चाहिए ॥ २० ॥

**विमर्शः**—कहीं २ पर "तारम्" के स्थान पर "तालम्" ऐसा पाठ है। उस जगह चांदी के स्थान में शुद्ध हरताल रससिन्दूर की अपेक्षा ८ तोले भर लेनी चाहिए। रसेन्द्रसारसंग्रह और रसेन्द्रचिन्तामणि आदि रस ग्रन्थों में इस योग का तालकेश्वर नाम है तथा वहां इसकी निर्माणविधि निम्न प्रकार से है। यथा—

एका भागो रसस्य स्यात् शुद्धतालैकभागिकः।
अष्टौ स्युर्विजयायाश्च गुड़िकां गुड़तश्चरेत् ॥
एकैकां भक्षयेत् प्रातश्छायायामुपवेशयेत्।
तालकेश्वरनामाऽयं योगश्चास्पर्शनाशनः ॥ इति ॥

अथ गन्धाश्मगर्भरसः—

**गन्धं रसेनाष्टगुणं विमर्द्य कृशानुतोयेन विपाचयेत।**
**मृद्वग्निना लोहमयेऽथ पात्रे विषेण पश्चादपि सिद्धिमेति ॥ २१ ॥**
**गन्धाश्मगर्भो हि रसोऽस्य सर्वास्पर्शप्रणुत्यै भज वल्लयुग्मम्।**
**सक्षीरमन्नं सघृतं च भोज्यं वर्ज्यं च सर्वं परिवर्जनीयम् ॥ २२ ॥**

शुद्ध पारद १ पल तथा पारद की अपेक्षा शुद्ध गन्धक आठ पल भर लेकर दोनों को पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसको एक लोहे की कडाही में डालकर फिर उसमें चित्रक की जड़ का स्वरस या क्वाथ डालकर मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब चित्रक का क्वाथ जल जाय तब उसको उतारकर उसमें पारद के बराबर शुद्धवत्सनाभविष का चूर्ण मिलाकर अच्छी प्रकार घोट कर कड़ाही से निकाल कर काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह गन्धाश्मगर्भरस सिद्ध होता है। इस रस को १ वल्ल (३ रत्ती) से प्रारम्भ कर के दो वल्ल तक मधु के साथ सर्व प्रकार के स्पर्श वात के नष्ट करने के लिये प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय दुग्ध और

घृत के साथ भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए तथा वर्जनीय पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

अथ द्वितीयगन्धाश्मगर्भरसः—

**गन्धकं चूर्णितं कृत्वा सूक्ष्मवस्त्रेण बध्य च ।**
**भाण्डे गोदुग्धकं दत्त्वा प्रावृतं खर्परेण च ॥ २३ ॥**
**अग्निं प्रज्वालयेदूर्ध्वं पश्चाच्छीतं समुद्धरेत् ।**
**गन्धकाष्टकभागेन रसं दत्त्वाऽथ पाचयेत् ॥ २४ ॥**
**मृद्वग्निना शीतमुभावुत्तार्योत्तार्य यत्नतः ॥**
**यावद्गन्धकरूपस्य पूर्वस्य ह्यन्यथा भवेत् ॥ २५ ॥**
**सप्तगुञ्जं ददीतास्य यावत्स्यादेकविंशतिः ।**
**प्रत्यहं तु हरीतक्या गुञ्जा देयैकविंशतिः ॥ २६ ॥**
**सक्षीरं सघृतं चान्नं भोजयीत सशर्करम् ।**
**निर्वाते चावतिष्ठेत कम्पस्पर्शापनुत्तये ॥**
**गन्धाश्मगर्भसंज्ञोऽयं योगिभिः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥**

एक मिट्टी की हण्डिका में गाय का दुग्ध भर कर उस के मुख पर स्वच्छ तथा पतला कपड़ा बांध कर उस कपड़े पर आठ तोलेभर गन्धक बिच्छा (रख) कर उस पर सकोरा ( शराव ) ढक के सन्धिबन्धन कर देना चाहिए । हण्डिका के सूखने पर उस को पृथ्वी में खोदे हुए गढे में रख कर उस हण्डिका पर जङ्गली उपलों को रख कर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। स्वाङ्गशीतल हण्डिका को गर्त से निकाल कर युक्ति से उसे खोल कर वस्त्र से छान कर दुग्ध में पड़े हुए शुद्ध गन्धक को निकाल लेना जाहिए । इस प्रकार से शुद्ध किया हुआ गन्धक ८ पल तथा पारद १ पल भर लेकर दोनों को पत्थर की खरल में कज्जली बना कर रससिन्दूर की विधि से काचकूपी में भर कर पाक करना चाहिए । अथवा कज्जली न बनाकर मूल पाठ के अनुसार कड़ाही में गन्धक और पारद डालकर मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए तथा बीच २ में उस कड़ाही को शीतल भूमि पर उतार देनी चाहिए इस तरह जब तक गन्धक के पूर्व रूप का परावर्तन न हो तब तक पकाते रहना चाहिए । पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर पृथ्वी पर कड़ाही को उतार कर उस में से सिद्ध औषध को निकाल लेवें । प्रायः

पूर्व प्रकार से सिद्ध किये हुए रस का वीतशंक होकर प्रयोग कर सकते हैं। इस रस को प्रथम दिन सात गुञ्जाको मात्रा से २१ रत्ती भर हरीतकी के चूर्ण के साथ सेवन करना चाहिए। प्रायः मधु भी मिलाना चाहिए। इस तरह इस रस को प्रतिदिन एक २ रत्ती बढाकर २१ रत्ती पूर्ण होने तक सेवन करते रहना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय घृत और दुग्ध के साथ भोजन का सेवन करना चाहिए तथा निर्वातस्थान ( अर्थात् अधिक वायु के वेग से रहित स्थान ) में रोगी को निवास कराना चाहिए। यह गन्धाश्मगर्भसञ्ज्ञक रस स्पर्शवात के दूर करने के लिये योगियों से कहा गया है ॥ २३-२७ ॥

अथ स्पर्शवातारिरसः—

**पलाशबीजोत्थरसेन सूतं गन्धेन युक्तं त्रिदिनं विमर्द्य।**
**इलदणीकृते तद्विषमुष्टिबीजं संयोजनीयं च कलाप्रमाणम् ॥**
**मासत्रयं निष्कमितं प्रयत्नात्स्पर्शप्रणुत्ये खलु सेवयेत्तत् ॥ २८ ॥**

शुद्धपारद और शुद्धगन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बना के पलाश ( ढाक ) के बीज के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ तीन दिन तक खरल कर के फिर उसमें पारद की अपेक्षा सोलहवां भाग शुद्ध कुचला चूर्ण मिलाकर अच्छी प्रकार घोंट कर काच की शीशी में भर देवें। इस रस को प्रतिदिन १ निष्क भर लेकर शहद् के साथ मिला के सेवन करना चाहिए। इस प्रकार तीन मास तक निरन्तर इस रस को अस्पर्शरोग ( स्पर्शज्ञानशून्यता ) का नाश करने के लिये सेवन करना चाहिए ॥ २८ ॥

अथ स्पर्शवातान्तकृद्वटी—

**अष्टौ भागा रसस्य स्युर्विषतिन्दोर्दशैव तु।**
**गन्धकस्य दश द्वौ च कटुत्रिफलयोस्त्रयः ॥ २९ ॥**
**वह्निचित्रकमुस्तानां वचाश्वगन्धयोर(१)पि।**

---

( १ ) क्वचिदेतदनन्तरम्—अथ पञ्चार्कतैलम्—"मूलैः सपुष्पैः फलपत्रसारैरर्कस्य निष्पीड्य रसाढके तु। भूपालकावन्हिपुनर्नवानां तुरङ्गगन्धाऽर्तगलस्य मूलम् ॥ निर्गुण्डिकायाश्च तथैव पृष्ठं मूलानि पिष्ट्वा पृथगाददीत। एला लवङ्गं तगरञ्च कुष्ठं सर्वैस्त्वयं कर्षमितं पृथक् स्यात् ॥ स्नुक्क्षीरपिष्टाजपयो द्विभागं प्रस्थेन

**रेणुकाविषकुष्ठानां पिप्पलीमूलनागयोः॥ ३० ॥**
**एकैकस्तु भवेद्भाग इत्याद्यायास्तथै च ।**
**चतुर्विंशद्गुडस्यात्र वटिका चणकाकृतिः ।**
**क्रमेणैवानुसेवेत स्पर्शवाताऽपनुत्तये ॥ ३१ ॥**

शुद्धपारद ८ तोला, शुद्ध कुचले का चूर्ण १० तोला, शुद्धगन्धक १२ तोला तथा त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) और त्रिफला ( हरड़, बहेड़ा, आंवला, ) ये प्रत्येक तीन २ तोला तथा वह्नि अर्थात् शुद्ध भल्लातकफल का चूर्ण १ तोला, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, नागरमोथे का चूर्ण १ तोला, वचा का चूर्ण १ तोला, असगन्ध का चूर्ण १ तोला, हरेणुका का चूर्ण १ तोला, शु वत्सनाभ विष का चूर्ण १ तोला, मीठे कूट का चूर्ण १ तोला, पिपरामूल का चूर्ण १ तोला तथा नागकेशर का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के घोट कर २४ तोला गुड़ मिलाकर एक दिन तक खरल कर के चने के बराबर अर्थात् एक २ माशे भर की गोलियां बना लेनी चाहिए। इसकी एक २ गोली प्रतिदिन सेवन करने से स्पर्शवातरोग नष्ट हो जाता है ॥ २९-३१ ॥

अथ स्पर्शवातारितैलम्—

**त्रिगन्धर्कं तुत्थकमश्वगन्धाहयारिनागा-शिति वायसीनाम् ।**
**मूलानि सञ्चूर्ण्य सुभाण्डके च तैलं क्षिपेत्तेन चतुर्गुणेन ॥३२॥**
**पक्वार्कपत्रोत्थरसेन पञ्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ।**
**तत्स्पर्शवाताय भवेद्धि तैलं विलेपयेत्तेन च तत्प्रदेशम् ॥ ३३ ॥**

---

तैलस्य पचेद्धि पक्कम् । पञ्चार्कतैलं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः श्रोणिगतान् सन्धिगतान् निहन्ति ॥ अभ्यञ्जनैश्च त्रिभिरेव सद्यो वातांश्च वेगांश्चिरजानशीतिः" ॥ अथ द्वितीयपञ्चार्कतैलम् ॥ पाठान्तरम् । अर्कवृक्षस्य पञ्चाङ्गमाढके विपचेज्जले । चतुर्गुणेक्षुसिन्धुनिर्गुण्ड्यानि च पीलुकम् । वर्षाभूवाजिगन्धार्तगलं तेषां पृथक् पृथक् । स्नुक्क्षीरं कुडवं दत्वा शनैर्मन्दाग्निना पचेत् ॥ एतदभ्यञ्जनेनैव निहन्यादाशु सन्धिगान् । स्पर्शवातोत्थरोगांश्च कटीपार्श्वगतांस्तथा । ब्रुवन्तितज्ज्ञाः पञ्चार्कतैलं श्रेष्ठं समीरनुत्" ॥ इत्यधिकः पाठ ।

त्रिगन्धक अर्थात् दालचीनी, बड़ी इलायची, तेजपत्र और, नीलाथोथा (कापरसल्फेट = तूतिया), असगन्ध, हयारि अर्थात् कणेर का पञ्चाङ्ग या केवल जड़ का चूर्ण, नाग अर्थात् नाकुली ( रास्ना का भेद ), शिति अर्थात् भुर्जत्वक् और काकमाची ( मकोय ) इन द्रव्यों को एक२ तोले भर लेकर खरल में कूट के पत्थर ( सील ) पर थोड़े से जल के साथ पीसकर कल्क बनालेना चाहिए । फिर इस कल्क से चतुर्गुण (३६ तो०) तैल तथा तैल की अपेक्षा आठ गुना (२८८ ता०) आक के पत्तों का स्वरस लेकर सबको एक मिट्टी के भाण्ड अथवा बड़ी कड़ाही में डालकर पाक करना चाहिए । जब तैल सिद्ध होजाय अर्थात् समग्र जलीयांश नष्ट होजाय और कल्क की बत्ति बनने लगे तथा अग्नि में डालने पर चिड़ चिड़ शब्द न हो तब कड़ाही या भाण्ड को भट्टी या चूल्हे से उतार कर स्वाङ्गशीतल होने पर कल्क को दोनों हाथों के बीच में दबा २ कर फेंक देवें और तैल को छानकर शीशी में भर देवें । इस तैल की स्पर्शवात अर्थात जिस अङ्ग में शून्यता तथा वातिक पीड़ा प्रतीत हो वहां पर मालिश ( मर्दन ) करनी चाहिए । इस तैल का प्रतिदिन अभ्यङ्ग करने से वातिक शून्यता दूर हो जाती है ॥ ३२-३३ ॥

**विमर्शः—त्रिगन्धक शब्द का दालचीनी, एला और तेजपत्र यही अर्थ करना उचित है । कुछ टीकाकारों ने गन्धक का तीन भाग लेना लिखा है या श्वेत पीतादि भेद से त्रिविध गन्धक अथवा मनःशिला हरताल और गन्धक ये तीनों त्रिगन्धशब्द से लेने चाहिए ऐसा अर्थ किया है ।**

स्पर्शवाते राजवृक्षप्रयोगः—

**मूलं पिबेद्राजतरोः शरीरं मासद्वयं तेन विलेपयेत् ॥ ३४ ॥**

राजतरु अर्थात् अमलतास की जड़ या पञ्चाङ्ग का क्वाथ बनाकर दो मास तक निरन्तर पीना चाहिए तथा जिस स्थान पर वातिक शून्यता या पीड़ा आदि हो वहां उसकी जड़ को सीलपर पीस के उसका लेप भी करना चाहिए ॥ ३४ ॥

स्पर्शवाते चक्रमर्दादिः—

**यद्वा सुचूर्णीकृतचक्रमर्दबीजं सुगोमूत्रपरिप्लुतं च ।**
**अर्कस्नुहीक्षीरनिशाद्वयेन युक्तं भजेन्मण्डलनाशनाय ॥ ३५ ॥**

अथवा चक्रमर्द ( चकवड ) के बीजों का एक पल भर चूर्ण बनाकर उसमें हलदी और दारु हलदी का दो पलभर चूर्ण मिलाकर गोमूत्र की सात भावनाएं

देकर फिर आक और थूहर के शुद्ध दुग्ध की एक २ भावना देकर चने के बराबर गोलियां बना लेनी चाहिएं। इसकी एक २ गोली मन्दोष्ण जल के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वातिक रोग तथा मण्डल कुष्ठ आदि विकार नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥

अस्पर्शवाते त्रिगन्धप्रयोगः—

**हियावलीक्वाथविपाचितं च स्पर्शप्रणाशाय ददेत्त्रिगन्धम् ॥ ३६ ॥**

त्रिगन्ध अर्थात् दालचीनी इलायची और तेजपत्र इन तीनों को समभाग लेकर लौह की ओंखली में कूट कर हियावली ( देशान्तर प्रसिद्ध लता विशेष अथवा हलदी ) के क्वाथ के साथ सात वार भावित कर के घोट कर चूर्ण करके सुखा कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण की एक माशे भर की मात्रा को प्रतिदिन गर्म जल या दुग्ध अथवा मधु के साथ सेवन करने से स्पर्शवात नष्ट हो जाता है ॥३६॥

अस्पर्शवाते हियावलीप्रयोगः—

**हियावलीकन्दविलेपनाच्च अस्पर्शदेशः क्षयमेति यत्नात्।**

हियावली के कन्द को पत्थर या सील पर पीस कर कल्क बना के वातजन्य शून्यता तथा वेदना के स्थान पर लगाने से उस स्थान की शून्यता और वेदना दोनों दूर हो जाती हैं ॥ ३६ ॥

अथ यवानीघृतम्—

**यवानिकासिद्धघृतेन वापि स्पर्शप्रणाशाय विलेपयेत् ॥ ३७ ॥**

अजवायन को पत्थर पर जल के साथ पीसकर कल्क बना लेना चाहिए। फिर इस कल्क को चौगुने घृत और आठगुने जल के साथ मिला कर कड़ाही या मिट्टी के पात्र में भर के घृतपाक करलेना चाहिए। इस घृत के लेप या मर्दन करने से स्पर्शवात दूर हो जाता है ॥ ३७ ॥

अथ स्पर्शान्तकरोऽर्कदुग्धप्रयोगः—

**अर्कोत्थदुग्धेन विलेपनाच्च स्फोटीभवेत्तस्य ततः प्रदेशः।**
**घृतेन चोक्तेन विलेपनाद्वा स्पर्शो लयं याति च तत्क्षणेन ॥३८॥**

आक के दुग्ध का स्पर्शवात के स्थान पर प्रलेप करना चाहिए। इस दुग्ध के कुछ दिनों तक लेप करने से उस स्थान पर फोड़ा बन जाता है और वह कुछ दिनों में भर जाता है। इस प्रकार वह स्थान तन्दुरुस्त हो जाता है। अथवा स्पर्शवात के स्थान पर आक के दुग्ध से पड़े हुए फोड़े पर यवानी घृत के अभ्यङ्ग

स्पर्शान्तकोहल्यादियोगः—

करने से ठीक हो जाते हैं इस तरह स्पर्शवातरोग नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥

**यद्वा हलीसूरणकं सिताश्च स्पर्शान्तकः स्यात्खलु लेपनेन ॥ ३९ ॥**

अथवा ( उक्त प्रयोग के अभाव में ) हली ( लाङ्गली ) की शुद्ध जड़, सूरण-कन्द और चीनी इन तीनों को समभाग लेकर थोड़े से जल के साथ पत्थर पर पीस कर लेप करने से स्पर्शरोग नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

स्पर्शवाते रसेन्द्रलेपः—

**आदौ शिरामोक्षणतो रसेन्द्रविलेपनं चापि नियोजयन्ति ॥ ४० ॥**

जिस स्थान पर स्पर्शवात रोग हो वहां की शिरा का वेध करके अशुद्ध रक्त निकाल देना चाहिए। पश्चात् उस स्थान पर पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर को मक्खन में मिला कर प्रलेप करने से स्पर्शवातरोग नष्ट हो जाता है ॥४०॥

अथ रक्तवातचिकित्सा—

तत्रादौरक्तवातलक्षणम्—

**पादयोश्च भवेत्तापः श्वयथुश्च प्रजायते।**
**रक्तच्छायाशरीरे च रक्तवातस्य लक्षणम् ॥ ४१ ॥**

दोनों पैरों में तथा विशेष करके दोनो पैरों के तलुओं में जलन होना तथा समस्त शरीरमें विशेष कर मुख हाथ और पैरों में शोथ होना और समस्त शरीर में लाल वर्ण की छाया ( अर्थात् लाल २ चकत्ते ) हो जाना ये सब रक्तवात के लक्षण हैं ॥ ४१ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ त्रियोनिरसप्रयोगः—

**त्रियोनिरसगुञ्जैकां प्रथमं दापयेद्भिषक्।**
**हरितक्यामलक्यौ च गुडूचीं कटुकां तथा ॥**
**पञ्चाङ्गानि च निम्बस्य चूर्णयित्वा च पाययेत् ॥ ४२ ॥**

इस ग्रन्थ के कामलाधिकार में कहे हुए त्रियोनि नामक रस को एक रत्ती भर लेकर प्रतिदिन मधु के साथ सेवन करना चाहिए। उस को सेवन करके हरड़, आंवले, गुडूची, कुटकी तथा निम्ब का पञ्चाङ्ग ( पत्र, पुष्प, फल, छाल, जड़ ) इन को समभाग लेकर चूर्ण बनाके ३ माशे भर लेकर मन्दोष्ण जल के साथ पीना।

चाहिए। इस तरह इस योग के सेवन करने से रक्तवात रोग नष्ट हो जाता है॥४२॥

अथ कोकिलाक्षादिकषायः—

**कोकिलाक्षस्य मूलानि गुडुचीं नागरं तथा।**
**क्वाथयित्वा रजन्यां तु पाययेदतिशीतलम्॥ ४३॥**

तालमखाने की जड़, गुडूची और सोंठ इन को समभाग लेकर क्वाथ बना के अतिशीत होने पर रात्रि के समय पीलाना चाहिए। इस तरह इस क्वाथ को त्रियोनी रस के सेवन करते समय रात को पीने से रक्तवात रोग दूर हो जाता है॥४३॥

अथ संशोधनोपदेशः—

**अग्रे शिरा विमोक्षार्थं यवचिञ्चाविरेचनम्।**
**वान्तिमङ्कोलबीजेन देवदाल्या जलेन वा॥ ४४॥**

रक्तवात से पीड़ित रोगी को प्रथम यवतिक्ता आदि सौम्य द्रव्यों से विरेचन तथा अङ्कोल के बीज के चूर्ण या क्वाथ अथवा देवदाली का क्वाथ पान कराके वमन कराना चाहिए। इस तरह कोष्ठ शुद्धि होने के पश्चात् शिरामोक्षण ( फस्त खोल ) करके अशुद्धरक्त ( Vainus Blood ) निकाल देना चाहिए॥ ४४॥

अथ रक्तवातेऽपथ्यम्—

**सूरणं माषवृन्ताकं राजिकादि विवर्जयेत्॥ ४५॥**

रक्तवात से पीड़ित रोगी के लिए शूरणकन्द की शाक, उड़द की दाल, बैंगन की शाक और राई आदि उष्ण पदार्थों का सेवन करना वर्जित है॥ ४५॥

अथ आमवातः—

**कट्यां व्यथा भवेन्नित्यं सन्धिषु श्वयथुर्भवेत्।**
**उत्थानेऽप्यसमर्थत्वमामवातस्य लक्षणम्॥ ४६॥**

कटिप्रदेश में शूल अथवा अङ्ग के टूटने की सी सदा पीड़ा होना, सन्धियों ( Joints ) में सूजन और उठने तथा चलने फिरने में असमर्थ होना ये सब आमवात रोग के लक्षण हैं॥ ४६॥

अथ आमवाते वातारिरसप्रयोगोपदेशः—

**एरण्डतैलसंयुक्तं वातारिरसमेव च।**
**आमवातप्रशान्त्यर्थं ददीतोष्णेन वारिणा॥ ४७॥**

वृद्धिचिकित्सा में "रसभागोभवेदेकः, इत्यादि प्रकार से वर्णित वातारि रस

को एरण्ड के तैल के साथ मिलाकर मन्दोष्णजल के साथ आमवातरोग की शान्ति के लिये प्रति दिन प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ४७ ॥

अथ अनिलारियोगः—

**आमानिलस्यास्य रसोऽनिलारिश्चैरण्डतैलेन सकौशिकेन।**
**कटुत्रयेणापि सगन्धकेन वल्लैकमानं परिषेवयेत ॥ ४८ ॥**

एक वल्ल ( तीन रत्ती ) भर अनिलारि ( वातारि ) रस को शुद्ध गूगल और एरण्ड के तैल के साथ अथवा त्रिकटु और शुद्धगन्धक के साथ मिलाकर सेवन करने से आमवातरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

अथ आमवाते एरण्डतैलप्रशंसा—

**आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः।**
**एक एवाग्रणीर्हन्ता एरण्डस्नेहकेसरी ॥ ४९ ॥**

शरीर रूपी वन में विचरण करने वाले आमवात रूपी गजेन्द्र को नष्ट करने के लिये एरण्डतैल रूपी सिंह ही एक अग्रणी अर्थात् श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥

अथामवाते पथ्यापथ्यव्यवस्था—

आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते। पटोलं गोक्षुरश्चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥ १ ॥
यष्टीद्रवशालयादिप्रपुराणं सतिक्तकम्। लावादीनां तथा मांसं तक्रेणामस्तुना हितम् ॥२॥
यवाः कुलत्थाः श्यामाकाः कोद्रवा रक्तशालयः। वास्तुकं शिग्रु वर्षाभूः कारवेल्लं पटोलकम् ३
आर्द्रकं तप्तनीरञ्च लशुनं तक्रसंस्कृतम्। जाङ्गलानां तथा मांसं सामवातगदे हितम् ॥४॥
मन्दारगोकण्टकवृद्धदारं मल्लातकं गोजलमार्द्रकञ्च।
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि स्युरामवातामयिने हितानि ॥ ९ ॥ इति पथ्यानि।

अथापथ्यानि—

दधिमत्स्यगुडक्षीरोपोदिकामाषपिष्टकान्। दुष्टनीरं पूर्ववातं विरुद्धान्यशनानि च ॥१॥
असात्म्यं वेगरोधञ्च जागरं विषमाशनम्। वर्जयेदामवातार्तो मांसञ्चानूपसम्भवम् ॥२॥
इत्यपथ्यानि।

अथापस्मारः—

**मूर्च्छा शरीरस्य भवेदकस्माद्गात्रेषु कम्पश्च मुखे च फेनः।**
**एवं त्वपस्मारगदं विदित्वा नियोजयेत्पर्पटिकाख्यसूतम् ॥ ५० ॥**

सहसा ( अकस्मात् ) मनुष्य के शरीर में मूर्च्छा (बेहोशी या संज्ञाशून्यता) हो जाना, समग्र शरीर में कम्प होना और दौरे या बेहोशी की दशा में मुख से

फेन ( झाग ) निकलना ये अपस्मार रोग के लक्षण हैं। इन लक्षणों से अपस्मार रोग को जान कर उसको दूर करने के लिये पूर्व में कहे हुए पर्पटीरस को अपस्मार हर औषधियों ( शङ्खपुष्पीवचाब्राह्मीकुष्ठमेलादयः ) और मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए ॥ ५० ॥

अथ अपस्मारे पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

**पर्पटीरसगुञ्जे द्वे ब्राह्मीरससमन्विते ।**
**स्वादयेद्रोगिणं वैद्योऽपस्मा(१)रानिलशान्तये ॥ ५१ ॥**

पूर्व में कहे हुए दो रत्ती भर पर्पटीरस को ब्राह्मी के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वातिकापस्मार दूर हो जाता है ॥ ५१ ॥

अथ ब्राह्मयादिनस्यम्—

**ब्राह्मी शुण्ठी वचा कुष्ठं नीलोत्पलससैन्धवम् ।**
**पिप्पलीमपि सञ्चूर्ण्य ब्राह्मीद्रावेण भावयेत् ॥ ५२ ॥**
**सप्तधा नवनीतेन पचेत् क्षिप्त्वा घृतं शुचौ ।**
**वराहकर्णरक्तेन कर्कोट्या नस्यमाचरेत् ॥ ५३ ॥**

ब्राह्मी, सोंठ, वच, कूट, नील कमल, सैन्धव लवण और पिप्पली इन को सम भाग लेकर चूर्ण बना के ब्राह्मी के स्वरस अथवा क्वाथ से सात वार भावित करना चाहिए तथा मक्खन से भी भावित कर के घोट कर फिर घोट कर फिर थोड़ा सा घृत डाल कर पवित्र पात्र में पका के फिर खरल में डाल के वराह के कान के रक्त से या वाराही कन्द के स्वरस और बांझ ककोड़े के स्वरस से घोट कर सुखा के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण के नस्य देने से अपस्मार के दौरे के कारण मूर्च्छित मनुष्य की मूर्च्छा ( बेहोशी ) नष्ट हो जाती है। कुछ टीकाकारों ने ब्राह्मयादि चूर्ण के साथ घृत को घृत पाक विधि से ( अर्थात् चूर्ण से चतुर्गुण घृत और घृत से अष्ट गुण वाराहीकन्द का स्वरस तथा बांझ ककोड़े का स्वरस ) पका कर उस घृत का नस्य देने को लिखा है ॥ ५२-५३ ॥

---

( १ ) कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि ।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥

अथ गवाक्ष्यादिनस्यम्—

**शुष्कां गवाक्षीमादाय घृष्टं कांस्यं च कम्बलम्।**
**गोघृतेनाऽऽयसं पिष्ट्वाऽप्यागते नस्यमाचरेत् ॥ ५४ ॥**

इन्द्रायण की सूखी जड़ लेकर थोड़े से पानी के साथ या गो घृत के साथ कांसी के बर्तन में घीस (घर्षित) कर अपस्मार के दौरे से मूच्छित रोगी को नस्य देना चाहिए, अथवा कम्बल ( ऊर्णा लोम ) को घृत के साथ लोहे की खरल में पीस कर उस का नस्य कराने से अपस्मार की मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ ५४ ॥

अथ श्वेतापराजितादिनस्यम्—

**श्वेतापराजितावीजं विजयावीजमेव च।**
**नरमूत्रेण सम्पिष्य नस्यं दद्याद्भिषग्वरः ॥ ५५ ॥**

श्वेत अपराजिता के बीज और भङ्गा के बीज दोनों को समभाग लेकर नरमूत्र के साथ पीसकर चूर्ण बनालेना चाहिए। इस प्रकार से बनाये हुए चूर्ण का नस्य देने से अपस्मार की मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ ५५ ॥

अथापस्मारहरनस्यम्—

**उन्मत्तकशुनोऽस्थीनि घृष्ट्वा तेनैव वा कुरु ॥ ५६ ॥**

उन्मत्त हुए कुत्ते की अस्थि को जल के साथ अथवा नरमूत्र के साथ घिसकर उसका नस्य देने से अपस्मार रोग की मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ ५६ ॥

अथापस्मारहरो योगः—

**श्वेतापराजितामूलं कर्णे बद्ध्वा सदा बुधः ॥**
**निर्गुण्डीमूलकं जग्ध्वा ह्यपस्माराद्विमुच्यते ॥ ५७ ॥**

श्वेत अपराजिता की जड़ को अपस्मार रोगी के कर्ण में बान्धनी चाहिए तथा निर्गुण्डी की जड़ के चूर्ण को मधु के साथ अथवा एरण्ड के तैल के साथ सेवन करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन इस योग के सेवन करते रहने से कुछ दिनों में अपस्मार के दौरे आदि चले जाते हैं ॥ ५७ ॥

अथापस्मारे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

कार्यं सिराव्यधो दानं त्रासनं बन्धनं भयम्। तर्जनं ताडनं हर्षो धूमपानञ्च विस्मयः १
धीर्धैर्यमादिविज्ञानं स्नानमभ्यञ्जनानि च। लोहिताः शालयो मुद्गा गोधूमाः प्रतनं हविः २
दुग्धमिक्षुरसा द्राक्षा दुग्धं ब्राह्मीदलं वचा। पटोलं वृद्धकूष्माण्डं वास्तूकं स्वादु दाडिमम् ३

शोभाञ्जनं पयः पेटी द्राक्षा धात्री परूषकम्। तैलं खराश्वमूत्रञ्च गवयाम्बु हरीतकी ४
अपस्मारगदे नृणां पथ्यमेतदुदीरितम्। इति पथ्यानि। अथापथ्यम्—
चिन्तांशोकं मद्यक्रोधमशुचीन्यशनानि च। मद्यं मत्स्यं विरुद्धान्नं तीक्ष्णोष्णगुरुभोजनम् १
अतिव्यवायमायासं पूज्यपूज्याव्यतिक्रमम्। त्रीणाकानि सर्वाणि विल्वीमाषादकं फलम्॥
तृषानिद्राक्षुधावेगमपस्मारी परित्यजेत्॥ इत्यपथ्यम्।

अथोन्मादः—

बहु कृत्वा प्र(१)लापश्च विस्मृतिः कार्यवस्तुषु।
हन्ति धावति सर्वत्रोन्मादवातस्य लक्षणम्॥ ५८॥

बार२ प्रलाप अर्थात् असम्बद्ध भाषण करना अपने करने योग्य कार्यों को भूल जाना तथा दूसरों को अकारण ही मारना या पत्थर आदि फेंकना और इधर उधर भागते रहना ये सब वातोन्माद के लक्षण॥ ५८॥

अथ माहेश्वरधूपः—

माहेश्वराख्यधूपश्च दापयेत्सततं निशि।
श्रीवेष्टं दारुवाह्लीकं मुस्ता कटुकरोहिणौ॥ ५९॥
सर्षपा निम्बपत्राणि मदनस्य फलं वचा।
बृहत्यौ सर्पनिर्मोकः कार्पासास्थि यवास्तृषाः॥ ६०॥
गोशृङ्गं खररोमाणि बर्हिपिच्छं विडालविट्।
छागरोमघृतं चेति वस्तमूत्रेण भावयेत्।
एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः॥ ६१॥

श्रीवेष्टक ( नवनीतखोटी या लोबान ), देवदारू, बाह्लीक अर्थात् हींग, मोथा, कुटकी, सरसों, निम्ब के पत्र, मदनफल ( मैनफल ), वचा, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सांप की कांचली, कपास के बीजों की गिरी, जौ की भूसी, गाय के सींग का चूर्ण, गधे के अङ्ग का बाल, मयूर की पुच्छ का अग्रभाग, बिलाव ( मार्जार ) की विष्ठा, बकरी के बाल ये सब समभाग और घृत इन सबकी अपेक्षा आधा या चतुर्थांश लेकर घृत के अतिरिक्त शेष द्रव्यों को महीन चूर्ण करके घृत में मिलाकर डिब्बा में भरकर रख दें। इसको माहेश्वर धूप कहते हैं तथा यह धूप सर्व प्रकार की ग्रह बाधाओं को तथा रोगोत्पादक कीवाणु और जीवाणु वाहक

---

( १ ) प्रलापैश्चेति पाठान्तरम्।

मक्खी मच्छर आदि को नष्ट करता है। इस धूप को प्रायः सन्ध्या के समय उन्माद रोगी के कमरे में तथा उसके आस पास प्रयुक्त करना चाहिए ॥५९-६१॥

अथ उन्मादपर्पटीरसप्रयोगोपदेशः

**पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ धत्तूराद्बीजपञ्चकम्।**
**गोघृतेन च संयोज्य खादेदुन्मादशान्तये ॥ ६२ ॥**

पूर्वोक्त पर्पटी रस आठ रत्ती भर तथा धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण ५ रत्ती भर लेकर दोनों को गोघृत के साथ मिलाकर उन्माद रोग की शान्ति के लिये प्रति दिन सेवन करना चाहिए। प्रायः पर्पटी रस को २ रत्ती से प्रथम प्रारम्भ करना चाहिए। सहसा आठ रत्ती भर की मात्रा नहीं देनी चाहिए। रोगी और रोग की अवस्था का विचार करके मात्रा की कल्पना करनी चाहिए ॥ ६२ ॥

अथ उन्मादे उपचारविशेषाः—

**सघृतं माषमण्डं वा पाययेद् घृतदुग्धकम्।**
**निम्बतैलं समुद्धृत्य स्वभ्यज्यापादमस्तकम् ॥ ६३ ॥**
**गुर्वन्नं प्रायशो दद्याच्छुष्कशाकं च वर्जयेत्।**
**बद्धापि रक्षयेत्तावद्यावच्छान्तिं स गच्छति ॥ ६४ ॥**

माष अर्थात् उड़दों की दाल को अठगुने पानी में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर इसमें थोड़ासा घृत मिला कर पीना चाहिए अथवा इसका यह भी तात्पर्य है कि उड़द और चांवलों को चौदह गुने पानी में उबाल कर घृत मिला के यवागू बना लेनी चाहिए। इस यवागू को सेवन करने से उन्माद रोग नष्ट हो जाता है अथवा केवल गरम दुग्ध में घी मिल कर पीलाना चाहिए तथा निम्ब के बीजों का तैल निकाल कर शिर से पैरों तक मालिश करनी चाहिए। उन्माद रोगी को गुरु पदार्थों का सेवन कराना चाहिए तथा शुष्क शाक या शुष्क (स्नेह रहित) भोजन नहीं कराना चाहिए। यदि उन्माद रोगी मारता हो या भागता फिरता हो तो उसे बांध कर रखना चाहिए। जबतक वह अच्छा न हो तब तक नहीं छोड़ना चाहिए ॥ ६३-६४ ॥

अथोन्मादरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

**गोधूममुद्गारणशालयश्च धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः।**
**घृतं नवं नञ्च पुरातनञ्च कूर्मामिषं धन्वरसा रसालम् ॥ १ ॥**

पुराणकुष्माण्डफलं पटोलं ब्राह्मोदलं वास्तुकतण्डुलीयम् ।
खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् ॥ २ ॥
द्राक्षाकपित्थं पनसञ्च वैद्यै र्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम् ।
मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्रा क्षुधातृट् कृतवेगधारणम् ।
तिक्तानि तीक्ष्णानि भिषक् समादिशेदुन्मादरोगापहतेषु गर्हितम् ॥ ३ ॥
इति पथ्यापथ्यव्यवस्था ।

अथैकाङ्गवातः—

एकस्मिन् देहदेशे च तोदः काश्यं चलात्मता ।
हिमस्पर्शश्च दृश्येतैकाङ्गवातस्य लक्षणम् ॥ ६५ ॥

शरीर के वाम या दक्षिण आदि किसी एक भाग में सूई के चुभाने के समान पीड़ा होना तथा उस भाग में या समग्र शरीर में दुर्बलता का बढ़ना, अङ्ग की अस्थिरता या उस में फड़कन होना तथा उस भाग का अधिक शीतस्पर्श होना ये सब काङ्गवात विकार के लक्षण हैं ॥ ६५ ॥

अथ वडवानलरसः—

शुल्वं तालकगन्धकौ जलनिधेः फेनोऽग्निगर्भाशयः ।
कान्तायो लवणानि हेमवचयोर्नीलाञ्जनं तुत्थकम् ।
भागो द्वादशको रसस्य तदिदं वज्राम्बुघृष्टं शनैः ।
सिद्धोऽयं वडवानलो गजपुटे रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ ६६ ॥
आर्द्रकस्य द्रवेणामुं दशवाराणि भावयेत् ।
दिनद्वयं चित्रकस्य द्रावेणैव तु भावयेत् ॥ ६७ ॥
पादांशममृतं दत्त्वा चित्रद्रावैः क्षणं पचेत् ।
मात्रया योजयेच्चानु दशमूलश्रृतं पयः ॥ ६८ ॥
वातश्लेष्मप्रधाने च दद्याच्यूषणचित्रकम् ।
स्वेदं च कटुतुम्बिन्या प्रयुञ्जीतातियत्नतः ॥
दाहं च जयया कुर्याच्छीतवातं च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥

ताम्र की भस्म १ तोला, शुद्धहरताल १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, समुद्र फेन १ तोला, अग्निगर्भाशय ( अग्निर्गर्भाशये मध्ये यस्य सोऽग्निगर्भाशयः ) अर्थात् सूर्यकान्तमणी की भस्म या शमीवृक्ष की छाल का चूर्ण १ तोला, कान्तलौह की भस्म १ तोला सामुद्रसैन्धवादि लवण १ तोला, स्वर्ण की भस्म १ तोला, वचा

का चूर्ण १ तोला, शुद्धनीलाञ्जन (काला सुरमा) १ तोला, शुद्ध किया हुआ नील तुत्थ १ तोला तथा शुद्ध पारद १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को मिला कर सबको महीन पीस के थूहर के शुद्ध दुग्ध अथवा उसकी जड़ या हरे पत्तों के स्वरस के साथ एक दिन खरल करके गजपुट में फूंक देवें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके फिर अदरख के स्वरस के साथ दश बार भावित करके घोटकर दो दिन तक चित्रक की जड़ के क्वाथ या स्वरस के साथ खरल करें, पश्चात् समस्त औषध की चतुर्थांश शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण मिलाकर चित्रक के रस में पकाकर शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह वड़वानलरस सिद्ध होता है तथा यह रस यथानुपानों के साथ सेवन करने से समस्त रोगों को नष्ट करता है। इस रस को एकाङ्ग वातरोग में मधु के साथ सेवन करके ऊपर से दशमूल के द्रव्यों के कल्क से क्षीरपाकविधि के अनुसार पकाये हुए दुग्ध को पीना चाहिए। यदि वातश्लेष्म प्रधान विकार हो तब इस रस को त्र्यूषण (सोंठ, मरिच पीप्पली) और चित्रक की जड़ के चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त एकाङ्गवात विकृतिवाले मनुष्य के उस अङ्गपर कटुतुम्बो से स्वेदन करना चाहिए। इस रस को जयन्ती के पत्तों के स्वरस के साथ सेवन करने से दाह नष्ट हो जाता है। इस रसके सेवन करते समय शीतल पदार्थों का सेवन तथा ठण्डी २ वायु आदि वर्जित करना चाहिए॥ ६६-६९॥

अथ मार्तण्डेश्वररसः—

समताप्ययुतं शुल्वं पलविंशतिमानकम्।
प्रध्मातं हि चतुर्वारं खण्डयित्वा ततश्चरेत्॥ ७०॥
तत्तुल्यं माक्षिकोपेतं पुटेद्विंशतिवारकम्।
गन्धकेन पुटेत्तावत् यावत्पलमितं भवेत्॥ ७१॥
क्षिपेत्पलमितं तत्र गन्धकेन हतं रसम्।
शाणमात्रं मृतं वज्रं सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥ ७२॥
इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं मार्तण्डेश्वरनामवान्।
कीर्तितो लोकनाथेन लोकानां हितकाम्यया॥ ७३॥
मरीचघृतसंयुक्तः सेवितो मण्डलार्धतः।

**वाताद्यष्टमहारोगाञ्छ्वासकासयुतं क्षयम् ॥ ७४ ॥**
**हलीमकं च पाण्डुं च ज्वरानपि सुदुस्तरान् ।**
**इत्यादिकगदान्सर्वान्विनाशयति निश्चितम् ॥ ७५ ॥**
**करोति दीपनं तीव्रं दीपानलशतोपमम् ।**
**सन्निपातं जयत्याशु व्योषार्द्रकसमन्वितः ॥**
**सर्वासौख्यकरो नृणां स्त्रीणां वन्ध्यत्वनाशनः ॥ ७६ ॥**

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक २० पल तथा शुद्ध किये हुए कण्टकवेधी ताम्रपत्र २० पल भर लेकर मिट्टी की एक मजबूत हण्डिका में आधा सोनामाखी का चूर्ण रखकर उस पर खण्डशः अर्थात् छोटे२ टुकड़े किये हुए ताम्रपत्रों को रख के उनपर अवशिष्ट स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण डालकर एक सकोरे से हण्डिका के मुख को ढककर कपड़मिट्टी करके सुखालेवें । फिर उस हण्डिका को गजपुट में रखकर उपलों में वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए । इस तरह स्वर्णमाक्षिक के साथ चार वार ताम्रपत्रों को गजपुट में फूंक कर फिर उनके बराबर स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण मिलाकर निम्बू के रस या काञ्जी के साथ घोटकर पुट देवें । इस तरह प्रत्येक वार काञ्जी के साथ घोट२ कर २० पुट देवें । फिर समभाग शुद्ध गन्धक मिलाकर काञ्जी के साथ घोटकर पुट दे देवें । इस प्रकार गन्धक के साथ भी २० पुट देकर खरल में महीन चूर्ण कर लेवें । इस प्रकार से सिद्ध हुई ताम्र की १ पल भर भस्म लेकर उसमें गन्धक के द्वारा मारा हुआ पारद ( रससिन्दूर ) १ पल भर तथा १ शाण ( ४ माशा ) हीरे की भस्म मिलाकर सबको एकत्र एक दिन तक खरल कर के शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुआ यह रसेन्द्र ( अर्थात् सर्व रसों मे श्रेष्ठ ) मार्त्तण्डेश्वर नाम से प्रसिद्ध है । इस रस को संसार के जीवों के हित की इच्छा से श्रीलंकनाथ नाम के आचार्य ने सर्व प्रथम बनाया था । यह रस काली मरिचों के चूर्ण और घृत के साथ आधे मण्डल ( २४ दिन ) तक प्रति दिन सेवन करने से वातव्याध्यादिक आठ प्रकार के महारोग ( वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदर के रोग, भगन्दर, अर्श और सद्ग्रहणी ), श्वास और कास से युक्त क्षयरोग, हलीमक, पाण्डु रोग, सर्व प्रकार के दुस्साध्य ज्वर तथा इस तरह अन्य अनेक प्रकार के रोगों को निश्चय ही नष्ट करता है । यह रस पेट के रसों ( पाचक रसों ) को अत्यन्त

प्रदीप्त करता है तथा व्योष (सोंठ, मरिच, पीपल) के चूर्ण और अदरख के स्वरस के साथ सेवन करने से सन्निपात को नष्ट करता है। यह रस मनुष्यों के शरीर को नीरोग कर के उन्हें सर्व प्रकार के सुखों से युक्त करता है तथा स्त्रियों के वन्ध्यत्व को नष्ट करता है ॥ ७०–७६ ॥

अथ चतुःसुधारसः—

समभागे शुभे हेम्नि निर्गूढं ताप्यमुत्तमम् ।
शतधा शतधा रौप्ये शुल्वे च शतवारकम् ॥ ७७ ॥
इत्थं सिद्धमिदं बीजं पृथगत्तप्रमाणतः ।
समावर्त्य तदेकत्र रसे पञ्चपलात्मके ॥ ७८ ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण जारयेदतियत्नतः ।
तप्ते खल्ले रसं दत्त्वा बीजं निष्कमितं तथा ॥ ७९ ॥
मर्दयेदतियत्नेन भवेद्यावद्दिनत्रयम् ।
पूर्वोक्तकच्छपे यन्त्रे वक्ष्यमाणविडान्विते ॥ ८० ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण बीजमेवमशेषतः ।
बलिकासीसकव्योमकांक्षीसौवर्चलैः समैः ॥ ८१ ॥
चक्राङ्गीरससम्भिन्नः शतधा विडमित्रवित् ।
एवं जारितसूतेन पलमात्रेण तावता ॥ ८२ ॥
गन्धकेनापि कर्तव्या सुस्निग्धा वरकज्जला ।
लोहपात्रे घृतोपेतां द्रावयेत्तां तु कज्जलीम् ॥ ८३ ॥
तुल्यसत्त्वाभ्रभसितं क्षिप्त्वा सम्मिश्र्य सर्वशः ।
रम्भापत्रे विनिक्षिप्य कुर्यात्पर्पटिकां शुभाम् ॥ ८४ ॥
विचूर्ण्य पर्पटीं सम्यग्वैक्रान्तं त्रिंशदंशतः ।
निक्षिप्य हिङ्गुतोयेन शतधा परिभावितम् ॥ ८५ ॥
निरुध्य मल्लमूषायां स्वेदयेदतियत्नतः ।
पुनः सञ्चूर्ण्य यत्नेन करण्डे विनिवेशयेत् ॥ ८६ ॥
हन्यात्सर्वमरुद्रदान्क्षयगदं पाण्डुं च नष्टाग्निताम् ।
निर्वीर्यत्वमरोचकं त्वजरणं शूलं च गुल्मादिकम् ।
अर्शो चैव महागदानतितरां व्याधिं सशोषं क्षणाद् ।

भुक्तो मुद्गमितश्चतुःसुधरसः स्वस्थोचितो भूभुजाम् ॥८७॥
मूलकं वर्जयेदस्मिन् रसे नान्यत्तु किञ्चन ।
त्रिवारमेकवारेण बुभूक्षां जनयेद् ध्रुवम् ॥ ८८ ॥

कण्टक वेधी स्वर्णपत्र लेकर उन्हें शुद्ध करके समभाग स्वर्णमाक्षिक के साथ निम्बू के रस में घोटकर शराव सम्पुट करके या मूषा में बन्द करके पुट दे देवें। इस तरह प्रत्येक वार समभाग माक्षिक मिलाकर निम्बू या काञ्जी के साथ घोट २ कर १०० पुट देनें चाहिए। फिर इस को सुरक्षित रख देवें। इसी प्रकार ताम्र के पत्र लेकर सामान्य और विशेष प्रकार से शुद्ध करके समभाग शुद्ध स्वर्णमाक्षिक को मिलाकर काञ्ज्यादिक के साथ घोटकर शराव या मूषा में बन्द करके बालुका यन्त्र में रख कर पुट दे देवें। इस प्रकार बार २ समान शुद्ध स्वर्णमाक्षिक मिला २ कर घोट के १०० वार पुट देकर सुरक्षित रख देवें, पश्चात् चांदी के पत्र लेकर उन्हें शुद्ध करके समभाग शुद्ध स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण मिला कर निम्बू या काञ्जी के साथ घोट के शराव सम्पुट में बन्द करके १ पुट दे देवें। इस प्रकार बारबार शुद्ध स्वर्णमाक्षिक मिला केकाञ्ज्यादिक के साथ घोट २ कर १०० पुट दे कर रख लें। इस प्रकार इन प्रत्येक धातु ( स्वर्ण, ताम्र, चांदी ) का बीज सिद्ध हो जाता है। इन धातुओं प्रत्येक के बीज को अर्थात् स्वर्णबीज १ अक्ष ( १ कर्ष ) ताम्रबीज १ अक्ष और रजतबीज १ अक्ष भर लेकर सबको एकत्र दिनभर खरल करके पांच पलभर शुद्ध पारद के साथ जारण करना चाहिए। जारणविधिः—पृथ्वी में एक खड्डा बनाकर उसमें बकरी की मींगनिएं और तुष भर कर आग जला के उस पर खरल रख देवें। फिर उस खरल में पांच पलभर शुद्ध पारद डालकर पूर्वोक्त तीनों बीजों के मिश्रण में से एक निष्क ( ४ माशा ) भर बीजचूर्ण डालकर कलच्छी से या अन्य मर्दक से घोटें। इस तरह एक निष्क भर बीज डाल २ कर तीन दिन तक घोटते रहें। फिर बीज के साथ जारित किये हुए पारद को खरल में डाल के घोटकर उसमें वक्ष्माण विड् अर्थात् शुद्ध गन्धक, कासीस, व्योम अर्थात् चोलाई का क्षार अथवा अभ्रकभस्म, फिटकिरी और सौवर्च्चल लवण इनको मिला कर पारद के बराबर अर्थात् ५ पल भर लेकर सबको घोट के चक्राङ्गी (कुटकी) के रस के साथ एक दिन तक खरल कर के पूर्वोक्त (नवमाध्यायोक्त) कच्छपयन्त्र में पाक करना चाहिए। इस तरह बार बार गन्धकादिक विड् डाल २ कर चक्राङ्गी के रस के

साथ खरल कर के कच्छपयन्त्र में १०० पुट देने चाहिए। इस प्रकार से जारित किया हुआ पारद १ पल तथा शुद्धगन्धक १ पल भर लेकर दोनों की उत्तम कज्जली बनाकर घी से लिप्त हुई लौहे की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के अग्निप्रदीप्त कर देनी चाहिए। तथा एक घृतलिप्त कलच्छू से चलाते रहना चाहिए। जब सम्पूर्ण कज्जली द्रुत हो जाय तब उसमें अभ्रकभस्म का समभाग सत्व डाल के अच्छी प्रकार कलच्छू से घोटकर मिला देना चाहिए। फिर उस द्रुति को गीले गोबर पर बिच्छे हुए आर्द्र कदली पत्र पर गिरा कर दूसरे केले के पत्ते से ढक के गोबर के पिण्ड से दबा कर पर्पटी बना लेनी चाहिए। स्वाङ्गशीतल होने पर उस पर्पटी का खरल में महीन चूर्ण करके उसमें समस्त चूर्ण की अपेक्षा तीसवां भाग वैक्रान्तभस्म डाल कर हीङ्ग के पानी (घोल) से १०० वार भावित करके मल्लमूषा में बन्द करके तीन घण्टे तक बालुकायन्त्र के द्वारा मन्द २ अग्नि पर स्वेदन (पाक) करना चाहिए। स्वाङ्गशीत मल्ल मूषा से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के काच की शीशी में भर देवें। यह चतुःसुधारस एक मूंग भर (१–३ रत्ती) प्रति दिन यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से सब प्रकार के वातविकार, क्षयरोग, पाण्डु, अग्निमांद्य, निर्बलता, अरुचि, अपचन, शूल, गुल्म, आठों प्रकार की महाव्याधियां और शोष रोग आदि सब को नष्ट कर देता है। यह रस स्वस्थ मनुष्यों और राजा महाराजाओं के लिये अत्यन्त फलप्रद है। इस रस के सेवन करते समय केवल मूली नहीं खानी चाहिये तथापि अन्य लाल मरिच, कटुतैल, खटाई आदि भी त्याग देने चाहिए। इन के अतिरिक्त अन्य सर्व हितकर पदार्थों का सेवन कर सकते हैं। यह रस केवल एक दिन में एक वार अथवा तीन वार सेवन करने ही से अग्निमांद्यादि पचन विकारों को नष्ट कर के बुभूक्षा उत्पन्न कर देता है ॥७७–७८॥

अथ सर्ववातारिरसः—

गन्धकाद्द्विगुणं तालं तालकाद्द्विगुणा शिला।
शिलाया द्विगुणं ताप्यं ताप्याच्च द्विगुणं रसम् ॥ ८९ ॥
खल्लयेत्सर्वमेकत्र यावत्स्याद्दिनसप्तकम्।
सर्वस्याष्टमभागेन दत्त्वारक्तामृतं शुभम् ॥ ९० ॥
विषतिन्दुकजैर्द्रावैः पिष्ट्वा गोलकमाचरेत्।

विशाल्य बालुकायन्त्रे अन्ध्रयेद्दिवसद्वयम् ॥ ९१ ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य तुल्यहिङ्ग्वष्टकान्वितम् ।
भावयेद्बीजपूरस्य सप्तवारं रसेन हि ॥ ९२ ॥
सप्तवारं रसैः शुण्ठ्या चित्रमूलस्य वारिणा ।
इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं सर्ववातारिसंज्ञकः ॥ ९३ ॥
घृतेन सहितो लीढो वल्लद्वयमितो नृभिः ।
निहन्त्यशीतिवातार्तीर्गुल्मानष्टविधानपि ॥ ९४ ॥
चतुर्विधं च मन्दाग्निं शूलानुदरजान् क्रिमीन् ।
आध्मानं च तथा हिक्कां मूढवातं च विड्ग्रहम् ॥ ९५ ॥

शुद्धगन्धक १ पल तथा गन्धक से द्विगुण ( २ पल ) शुद्धहरताल, हरताल से द्विगुनी ( ४ पल ) शुद्धमनःशिला, शिला से द्विगुण ( ८ पल ) शुद्धस्वर्णमक्षिक तथा स्वर्णमाक्षिक से द्विगुण (१६ पल) शुद्धपारद लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सात दिनतक निरन्तर घोटकर महीन कर लेवें । पश्चात् उस में समग्र चूर्णित औषध की अपेक्षा अष्टमांश लाल रङ्ग का शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण मिलाकर शुद्ध विषतिन्दुक ( कुचले ) के कषाय के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बना के सुखा लेना चाहिए । फिर इस गोले को शराव सम्पुट या मूषा में बन्द कर के बालुकायन्त्र में दो दिनतक पाक करना चाहिए । तीसरे दिन स्वाङ्गशीतलयन्त्र से रस को निकालकर खरल में महीन चूर्ण करके उस में समभाग हिंग्वष्टक चूर्ण मिलाकर बिजौरे निम्बू के रस में अच्छी प्रकार भीगोकर रात भर रख के दूसरे दिन चार बजे उसी रस के साथ घोटें, फिर उसको निम्बू के रस से आप्लावित करके रातभर रखकर दूसरे दिन चार बजे तक घोटे । इस तरह बिजौरे निम्बू के रस से सात भावनाएं देकर सोंठ के क्वाथ अथवा अद्रक के स्वरस से सातवार भावित करें तथा उसी प्रकार चित्रक की जड़ के क्वाथ से भी सातवार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर दो २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखाकर काच की शीशी में भर देवें । इस तरह यह सब रसों में इन्द्र अर्थात् श्रेष्ठ सर्ववातारिनामक रस सिद्ध होता है । दो रत्ती भर यह रस प्रतिदिन घृत के साथ सेवन करने से अस्सी प्रकार के वातिक रोग और उनसे उत्पन्न हुई वेदनाएं तथा अन्य उपद्रव, आठ प्रकार के गुल्म, चार प्रकार

का अग्निमान्द्य, सर्व प्रकार के शूल, उदर ( क्षुद्रान्त्र और विशेषतया बृहदन्त्र ) में उत्पन्न हुए क्रिमि, आध्मान ( पेट का फूलना ), हिक्का, मूढवात और मलावरोध आदि सर्व विकारों को नष्ट कर देता है ॥ ८'-९५ ॥

विमर्शः—हिंग्वष्टक चूर्ण निर्माण विधिः—त्रिकटुकमजमादा सैन्धवं जीरके द्वे। समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गु भागः॥ अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल, अजमादा, जीरा, काला जीरा, सैन्धा नोमक ये सब समान तथा सब के बराबर घृत में भूनी हुई हींग लेकर सब का महीन कर के हिंग्वष्टक चूर्ण बनाना चाहिए।

अथ वातविध्वंसनरसः—

मृतमभ्रकसत्वं च कांस्यं शुल्वं हि मालिकम्।
गन्धकं तालकं सर्वं भागोत्तरविवर्धितम् ॥ ९६ ॥
तत्सर्वं कज्जलीकृत्य वातारिस्नेहसंयुतम्।
मर्दयेत्सप्तदिवसं गोलीकृत्य तु यत्नतः ॥ ९७ ॥
निम्बूद्रावेण सम्पिष्टतालकल्केन लेपयेत्।
अर्धाङ्गुलदलं चैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥ ९८ ॥
प्रपचेद्वालुकायन्त्रे यामानां द्वादशावधि।
पटचूर्णं विधायैतद्रावयेत्तदनन्तरम् ॥ ९९ ॥
पञ्चकोलकचित्राङ्घ्रिवरुणादि(१)कषायतः।
दशमूलकषायेण शृङ्गवेररसेन च ॥ १०० ॥
रक्तामृतं कलांशेन दत्त्वा निष्पिष्य यत्नतः।
स्थूलकोनास्थितुलितां छायाशुष्कां वटीं किरेत् ॥ १०१ ॥
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैर्नृणां देया सदा हिता।
हन्यादशीतिधा भिन्नान्वातजातान्महागदान् ॥ १०२ ॥
गुल्मानष्टविधांश्चापि शूलानष्टविधानपि।

---

( १ ) वरुणादि—वरुणादिगणः; स च "वरुणार्त्तगला शिग्रुस्तत्कोरी मधुशिग्रुकः। मेषशृङ्गीकरञ्जौ च बिम्ब्यग्निमन्थमोरटाः॥ शैरीयो वसिरा दर्भो वरी वसु चित्रकौ। बिल्वश्चैवाजशृङ्गी च बृहत्तद्वयमेव च ॥ वरुणादिर्गणः प्रोक्तः" इत्यादिना। "वरुण-सहचरद्वय-शतावरी दहन मोरट बिल्वविषाणिका—द्विबृहती—द्विकरञ्ज जयाद्वय-बहुल-पल्लव-दर्भरुजकराः" इत्यादिना वा प्रेक्षो ग्राह्यः ॥

जठरस्य रुजः सर्वास्तथा च मलनिग्रहम् ॥ १०३ ॥
आध्मानकमथाऽऽनाहं विषूचीं मन्दवह्निताम् ।
आमदोषानशेषांश्च गुल्मं छर्दिश्च दुर्धराम् ॥ १०४ ॥
ग्रहणीं श्वासकासौ च क्रिमिरोगमशेषतः ।
हन्यात्सर्वाङ्गसदनं मन्यास्तम्भं च वाजिनाम् ॥ १०५ ॥
ज्वरे चैवाऽतिसारे च मूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुरूपेण दापनीयं भिषग्वरैः ॥ १०६ ॥
श्रीमता नन्दिना प्रोक्तो वातविध्वंसनो रसः ।
क्षुधार्थिभिः सदा सेव्यः सर्वाहारपरैर्नरैः ॥ १०७ ॥

अभ्रकभस्म का सत्त्व १ पल, कांसे की भस्म दो पल, ताम्र की भस्म ३ पल, शुद्धस्वर्णमाक्षिक ४ पल, शुद्धगन्धक ५ पल, शुद्धहरताल ६ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसकर कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर उस कज्जली को एरण्ड तैल से आप्लावित करके सात दिन तक खरल करें। प्रतिदिन एरण्डतैल थोड़ा२ ( जितने से चूर्ण भींग सके ) डालना चाहिए। पश्चात् निम्बू के रस के साथ सात दिन तक खरल करके गोला बनाकर उसको निम्बू के रस के साथ घोटकर कल्क की हुई हरताल से आधे अङ्गुल मोटा लेप करके सुखालेवें। फिर इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र के द्वारा बारह प्रहर ( ३६ घण्टे ) तक पाक करना चाहिए। पाक होने के पश्चात् स्वाङ्गशीतलयन्त्र से सम्पुट को निकाल कर उसमें से सिद्ध रस को लेके खरल में महीन चूर्ण करके वस्त्र से छान लेना चाहिए। फिर इस छाने हुए चूर्ण को खरल में डालकर पञ्चकोल ( पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक् और सोंठ ) के क्वाथ से सात वार भावित करके चित्रक की जड़ के क्वाथ से सातवार भावित करें। फिर वरुणादिगण की औषधियों के क्वाथ से सात भावनाएं देकर दशमूल के क्वाथ से सात भावनाएं देवें। पश्चात् अद्रक के स्वरस से भी सातवार भावितकरके अच्छी प्रकार घोटकर उस में समस्तौषधि का सोलहवां भाग लाल रङ्ग का शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण मिलाकर सब को एक दिन तक खरल करके बड़े बेर की गुठली के बराबर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह वातविध्वंसन रस तैय्यार होता है। यह रस प्रतिदिन यथाव्याधिहर द्रव्यों के चूर्णादिकों

के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। यह रस अस्सी प्रकार के भिन्न २ वातरोग तथा उन से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव, आठ प्रकार के गुल्म, आठ प्रकार के शूल, उदर की सब व्याधियां, मलावरोध, आध्मान, आनाह, विसूची, अग्निमांद्य, सर्व प्रकार के आमविकार, गुल्म, दुस्साध्य वमन, संग्रहणी, श्वास, कास, समस्त प्रकार के कृमि जन्यरोग, सर्वाङ्ग की पीड़ा, मन्यास्तम्भ और घोड़ों के विकारों को भी नष्ट करता है। इस रस को ज्वर, अतीसार, मूलरोग ( अर्श ) और त्रिदोषजन्य रोगों में भी प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को जिस रोग की निवृत्ति के लिए सेवन करते हों उसके अनुसार पथ्य का सेवन करना चाहिए। इस वातविध्वंसन रस को श्रीमान् नन्दी नामक आचार्य ने कहा है। इस रस को क्षुधार्थी पुरुष अथवा अग्निमांद्य पीड़ित पुरुष सदा सेवन किया करें। उनके लिये इस रस के सेवन करने में कोई विशेष नियम नहीं है। अर्थात् क्षुधार्थीजन इसके सेवन करते समय यथेष्ट आहार का सेवन कर सकते हैं ॥ ९६-१०७ ॥

**विमर्शः—"मृतमभ्रकसत्त्वञ्च" इस जगह रसेन्द्रसारसंग्रह में "सूतमभ्रकसत्त्वञ्च" ऐसा पाठ है। वास्तव में इस रस के निर्माण में कज्जली बनाने का वचन है अतः पारद के बिना कज्जली का बनाना असम्भव है इसलिये पारद का ही ग्रहण करना आवश्यक है।**

अथ वृकोदरगुटिका ( रसः )—

**सूतगन्धकतीक्ष्णाभ्रः सताप्यैः समभागिकैः।**
**रसांशमपरं सर्वं षट्कोलं जीरकद्वयम् ॥ १०८ ॥**
**सौवर्चलं ससिन्धूत्थं विडङ्गं च हरीतकी।**
**अम्लवेतसकं सर्वं बीजपूराम्बुमर्दितम् ॥**
**गुटिकास्तेन कल्केन कार्याः कोलास्थिमात्रकाः ॥ १०९ ॥**
**योगिन्या बहुधातिनामयुतया त्रैलोक्यविख्यातया**
**निर्दिष्टा हि वृकोदरीति गुटिका सोष्णाम्बुना सेविता।**
**निःशेषानिलदोषशोषजरुजः श्लेष्मामरोगोद्भवं**
**मन्दाग्नि ग्रहणीं चतुर्विधमहाजीर्णं च तूर्णं जयेत् ॥११०॥**

शुद्धपारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, तीक्ष्ण लौहभस्म १ तोला, अभ्र-

कभस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला तथा षट्कोल अर्थात् पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर (सोंठ) तथा मरिच, कालाजीरा, सफेद जीरा, सैन्धव लवण, सौवर्चल लवण, वायविडङ्ग, हरड़ और अम्लवेंत इनमें से प्रत्येक द्रव्य रस (पारद) के बराबर अर्थात् एक २ तोले भर अथवा इन्हें समभाग में मिलाकर रस के बराबर लेवें। अधिकतर प्रथमार्थ ही किया जाता है। सर्वप्रथम उक्त पदार्थों में से पारद और गन्धक को लेकर पत्थर की खरल में महीन कज्जली बना के उसमें शेष द्रव्यों को मिलाकर अच्छी तरह से घोंट के महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् बीजोरे निम्बू के रस के साथ एकदिन तक खरल कर के कल्क बना कर बेर की अस्थि (गुठली) के बराबर की गोलियां बना के सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को त्रिलोक में विख्यात बहुधातोनामवाली योगिनो ने वृक्षोदरी गुटिका के नाम से कहा है। यह वृक्षोदरी गुटिका प्रतिदिन उष्ण जल के साथ सेवन करने से सब प्रकार के वायुविकार से उत्पन्न हुए रोग और उनकी वेदना, कफ की विकृति से उत्पन्न रोग, आमदोष से उत्पन्न रोग, अग्निमांद्य, संग्रहणी और चार प्रकार का दुस्साध्य अजीर्ण आदि सब रोगों को नष्ट करता है ॥१०८-११०॥

अथ प्रभावती वटी—(रसः)।

हेमाभ्रालकतीक्ष्णताप्यकमलाश्चैषां समं सप्तकं
सूतं च द्विगुणं विशोध्यनवधूस्नुग्वह्निशौभाञ्जनात् ॥
पाठाशूरणसिन्दुवारविजयैरण्डद्रवैर्मर्दितं
तैलं काङ्गुणिगन्धकं कटु भवेत्कल्के वटीं कल्पयेत् ॥ १११ ॥
प्रभावतीति कथिताऽऽदर्कद्रावैर्निषेविता ।
ततश्चानुपिबेत्तोयं दशमूलप्रसाधितम् ॥ ११२ ॥
सपिप्पलीकं पिबता जलं जये-
न्मरुद्विकारानुदराण्यपस्मृतिम् ॥ ११३ ॥

स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, आलक अर्थात् शुद्धहरताल १ तोला, तीक्ष्णलौहभस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, कमल अर्थात् ताम्रभस्म १ तोला तथा सातवां शुद्धपारद एक भाग की अपेक्षा द्विगुण (२ तो०) लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष

द्रव्य मिला के सब का अच्छी प्रकार से महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। पश्चात् विशोधन अर्थात् नागर वेल, वधू अर्थात् स्रुक्का या शारिवा, ( कुछ टीकाकार विशोधनवधूः, इतना एक पद मान कर उस का शारिवा अर्थ करते हैं ), थूहर, चित्रक की जड़ और शोभाञ्जन, पाठा, सूरण कन्द, निर्गुण्डी, भाङ्ग और एरण्ड की जड़ इन द्रव्यों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से उक्त स्वर्णादि भस्मों के चूर्ण को क्रमशः एक २ वार खरल कर लेना चाहिए। पश्चात् कङ्गनी ( माल काङ्गनी ) के तैल, गन्धक के तैल और त्रिकटु से सिद्ध हुए तैल या कडुए तैल से पृथक् २ एक २ वार घोट कर कल्क बना कर उस को एक २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशो में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुई ओषध को प्रभावती गुटिका कहते हैं। इस की एक २ गोली प्रतिदिन अदरख के स्वरस के साथ सेवन कर के दश मूल के द्रव्यों से बनाए हुए क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण डाल कर पीना चाहिए। इस तरह प्रतिदिन यह रत सेवन करने से सर्व प्रकार के वात रोग, उदर रोग तथा अपस्मार को नष्ट कर देता हैं॥ १११-११३॥

अथ स्वच्छन्दभैरवरसः—

तीक्ष्णाऽयस्कान्तगोदन्तमाक्षिकैर्मर्दितो रसः।
समांशगन्धकः पक्को हण्डिकायन्त्रमध्यगः ११४॥
व्योषाग्निमन्थसुरसाकन्दशृङ्ग्यभयाविषैः।
समैः समं त्र्यहं मुण्डीनिर्गुण्डीरसपिण्डितः॥ ११५॥
सेवितः शमयेद्वातान्नाम्ना स्वच्छन्दभैरवः।
विशेषाद्वातरक्तं च द्विवल्लं चार्द्रकैर्दहेत्॥ ११६॥

तीक्ष्ण लौह की भस्म १ तोला, कान्त लौह की भस्म १ तोला, गोदन्ती भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला कर सब का अच्छी प्रकार महीन चूर्ण करके नवमाध्याय में कहे हुए हण्डिका यन्त्र ( स्थालीयन्त्र ) में बन्द करके पाक करना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल यन्त्र से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें व्योष ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) अग्निमन्थ ( अरणी ) की जड़, तुलसी का पञ्चाङ्ग

सूखा हुआ सूरण कन्द, काकड़ा सींङ्गी, हरड़ और शुद्ध वत्सनाभ इन को समान लेकर महीन चूर्ण करके सिद्ध रस के बराबर लेकर उसमें मिला देना चाहिए। फिर सबको गोरखमुण्डी के क्वाथ में तीन दिन तक घोट कर निर्गुण्डी की जड़ के क्वाथ के साथ तीन दिन तक घोट लेवें। फिर उसकी एक २ माशे भर की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए रस को स्वच्छन्दभैरव रस कहते हैं। यह रस सर्व प्रकार के वातरोगों को नष्ट करता है। दो वल्ल ( ६ रत्ती भर ) यह रस आर्द्रक ( आदी ) के स्वरस के साथ सेवन करने से वात रक्त रोग को नष्ट करता है ॥ ११४–११६ ॥

अथ स्वच्छन्दभैरवरसः—

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यगन्धकतालकम् ।
पथ्याग्निमन्थनिर्गुण्डीत्र्यूषणं टङ्कणं विषम् ॥ ११७ ॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्ले दिनं निर्गुण्डिकारसैः ।
मुण्डोद्रावैर्दिनैकं तं द्विगुञ्जं वटकीकृतम् ॥
भक्षयेत्सर्ववातार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवम् ॥ ११८ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, मृत लौह ( लोह भस्म ) १ तोला, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, अरणी की जड़ का चूर्ण १ तोला, निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण १ तोला, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ का चूर्ण १ तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, शुद्ध टङ्कण १ तोला तथा शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को एक दिन तक अच्छी प्रकार घोट कर निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस और मुण्डी ( गोरख मुण्डी ) के पञ्चाङ्ग के क्वाथ के साथ पृथक् २ एक २ दिन तक खरल करके दो २ रत्ती भर की गोलियां बना लेनी चाहिएं। इस को स्वच्छन्दभैरव रस कहते हैं। इस रस के सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिकरोग नष्ट हो जाते हैं॥ ११७–११८॥

अथ वडवानलरसः—

सूतहाटकवज्रार्ककान्तभस्म समाक्षिकम् ।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थमब्धिफेनं समांशकम् ॥ ११९ ॥
पञ्चानां लवणानां तु भागैकैकं विमर्दयेत् ।

वज्रक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पचेत् ॥ १२० ॥
माषैकं चार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वडवानलम्।
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सपिप्पल्यनुपाययेत् ॥
धनुर्वातं दण्डवातं शृङ्खलाकम्पवातनुत् ॥ १२१ ॥

शुद्धपारद अथवा रससिन्दूर १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, हीरकभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, कान्तलौहभस्म १ तोला, शुद्धस्वर्णमाक्षिक १ तोला शुद्धहरताल १ तोला, शुद्धनीलाञ्जन १ तोला, शुद्धनीलतुत्थक १ तोला, शुद्ध समुद्रफेन १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला, सामुद्रलवण १ तोला, बिड़लवण १ तोला, सौंचललवण १ तोला, रोमकलवण १ तोला लेकर प्रथम सबको खरल में घोटकर महीन चूर्ण बना के थूहर के शुद्धदुग्ध के साथ एक दिनतक खरल करके गोला बना लेवें। इस गोले को भूधरयन्त्र में बन्द करके २४ घण्टे तक पकाना चाहिए। स्वाङ्गशीतलयन्त्र से सिद्ध रसको निकालकर खरलमें महीन पीस के काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए रसको वड़वानल रस कहते हैं। एक माशेभर इस रस को अदरख के स्वरस के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से पिपरामूल के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन इस रसके सेवन करने से धनुर्वात, दण्डवात, शृङ्खलावात और कम्पवात आदि भयङ्कर वातिकरोग नष्ट हो जाते हैं ॥११९–१२१॥

अथ त्र्यम्बकेश्वररसः—

सूतकस्य पलं पञ्च पलैकं ताम्रचूर्णकम्।
जम्बीराणां द्रवैः पिष्टं सूततुल्यं च गन्धकम् ॥ १२२ ॥
नागवल्लीदलैः पिष्टं ताम्रपिष्टं प्रकल्पयेत्।
रुद्ध्वा लघुपुटः पच्याद् भूधरे यामपञ्चकम् ॥ १२३ ॥
आदाय चूर्णयेत्तुल्यैस्त्र्यूषणैः समभिश्रितैः।
अर्धाङ्गकम्पवातार्त्तो भक्षयेच्च द्विगुञ्जकम् ॥ १२४ ॥

शुद्ध पारद ५ पल, ताम्र की भस्म १ पल तथा पारद के बराबर ( ५ प० ) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना के फिर उसमें ताम्रभस्म मिला के जम्बीरी निम्बू के रस के साथ सात दिन तक खरल करके नागरवेलपत्र ( पान ) के स्वरस के साथ सात दिन तक घोटकर गोला बना के

सुखा लेवें। पश्चात् इस गोले को ताम्र के सम्पुट में बन्द करके भूधरयन्त्र में रख करके एक प्रहर तक मन्दर अग्नि से पाक करना चाहिए। अथवा शुद्ध पारद ५ प०, शुद्ध ताम्र के पत्र १ पल और शुद्ध गन्धक ५ पल लेकर पारद गन्धक की कज्जली बना के उसमें ताम्रपत्र मिलाकर जम्बीरीनिम्बू और पान के रस के साथ अच्छी तरह १४ दिन तक घोटकर शराव सम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र में एक प्रहर तक पाक कर लेना चाहिए। स्वाङ्गशीतल यन्त्र से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन पीस के उसमें सिद्धरस के बराबर-सम-भाग त्र्यूषण ( सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण मिलाके घोट कर काच की शीशी में भर देवें। दो रत्ती भर इस रस को प्रतिदिन अद्रक रस और मधु के साथ अर्धाङ्ग और कम्पवात से पीड़ित रोगी को सेवन करना चाहिए ॥ १२२-१२४ ॥

अथ गगनगर्भावटी-( रसः )

**सूताभ्रं तीक्ष्णताम्रं च मृतं तालकगन्धकम् ।**
**भार्ङ्गी शुण्ठी वचा धान्यकम्पिल्लं चाभया विषम् ॥ १२५ ॥**
**मद्यं पर्पटकद्रावैर्निष्कैकां भक्षयेद्वटीम् ।**
**वातश्लेष्महरा ह्याशु वटी गगनगर्भिता ॥ १२६ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, तीक्ष्ण लौह भस्म १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, भारङ्गी का चूर्ण १ तोला, सोंठ का चूर्ण १ तोला, वच का चूर्ण १ तोला, धनिए का चूर्ण १ तोला, कबीले का चूर्ण १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला तथा शुद्ध वत्सनाभ विष चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के पित्त पापड़े के स्वरस या क्वाथ के साथ सात दिन तक घोट कर एक २ निष्क भर की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। इस को गगनगर्भा वटी कहते हैं। इस रस की एक २ वटी प्रतिदिन पान के स्वरस और मधु के साथ सेवन करने से वात और कफ की विकृति से उत्पन्न रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५-१२६ ॥

अथ वातगजाङ्कुशरसः—

**मृतं सूतं मृतं लोहं गन्धकं तालमाक्षिकम् ।**
**पथ्याभृङ्गीविषव्योषमग्निमन्थं च टङ्कणम् ॥ १२७ ॥**

तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिजद्रवैः।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये॥
साध्याऽसाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजाङ्कुशः॥ १२८॥

मृत सूत अर्थात् पारद की भस्म या रस सिन्दूर १ तोला, लौह भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, रजत भस्म १ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तोला अथवा केवल तारमाक्षिक (रूपामाखी) की भस्म १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, (तालमाक्षिक पाठे तु शुद्ध ताल १ तोला और स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तोला लेवें) पथ्या चूर्ण १ तोला, मृङ्गी विष अर्थात् शुद्ध अतिविषा का चूर्ण १ तोला, व्योष चूर्ण (त्रिकटु चूर्ण पृथक्) १ तोला, अरणी की जड़ का चूर्ण १ तोला तथा शुद्धसुहागा १ तोले भर लेकर सब को खरल में महीन पीस के चूर्ण कर लेवें। पश्चात् गोरखमुण्डी के पञ्चाङ्ग के क्वाथ और निर्गुण्डी की जड़ के क्वाथ या पत्तों के स्वरस के साथ पृथक् २ सात २ वार घोट कर दो २ रत्ती भर की गोलियां बनाकर काच की शीशी में भर देवें। इस को वातगजाङ्कुश रस कहते हैं। यह रस साध्य और असाध्य सर्व प्रकार के वातिकरोगों को नष्ट करता है। इस रस के सर्व प्रकार के वातरोगों की शान्ति के लिये वात हर काष्ठौषधिचूर्णोदिकों के साथ सेवन करना चाहिए॥१२७–१२८॥

अथ शतावरीगुग्गुलुः—

शतावरी गुडूची च सारणी गोक्षुरः कणा।
शताह्वा दीप्यका रास्ना ह्यश्वगन्धा च संज्ञका॥ १२९॥
कचोरो नागरश्चैते चूर्णनीयाः समांशकाः।
एतैः सर्वैः समो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः॥ १३०॥
खण्डयित्वा घृतेनाऽऽद्रं पूर्वचूर्णं विनिक्षिपेत्।
सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं कर्षार्धगुलिकां किरेत्॥ १३१॥

शतावर, गुडूची, गन्धप्रसारणी, गोखरू, पिप्पली, सौंफ, अजवाईन, रासना, असगन्ध, संज्ञक (अर्थात् पीतकाष्ठ, पीतचन्दन या पद्मकाष्ठ), कचोर (कचूर) और सोंठ इन औषधियों को समान लेकर लौहे की ओखली (इमामदस्ता) में कूट के महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। फिर समस्त चूर्ण के बराबर महिषाक्ष नामक (मैंसिया) गूगल लेकर प्रथम त्रिफला क्वाथ में यथा विधि उसका

शोधन करके सुखा लेवें । पश्चात् गूगल को गोघृत के साथ अच्छी प्रकार घोट के उस में उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर एक दिनतक खरल करके आधे कर्ष ( ८ मा० ) भर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें । इसको शतावरी गुग्गुलु की एक २ गोली प्रतिदिन गरम पानी या गरम दुग्ध के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिकरोग विशेषकर अर्धाङ्ग वातविकार आदि ठीक हो जाते हैं ॥ १२९-१३१ ॥

अथ योगराजगुग्गुलुः—

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
पाठाविडङ्गेन्द्रयवहिङ्गुभार्ङ्गीवचान्वितैः ॥ १३२ ॥
सर्षपाऽतिविषाजाजीरेणुकाकृष्णजीरकैः ।
गजकृष्णाजमोदाभ्यां कटुकामूर्वमिश्रितैः ॥ १३३ ॥
समभागान्वितैः सर्वैस्त्रिफला द्विगुणा भवेत् ।
त्रिफलासहितैरेतैः समभागस्तु गुग्गुलुः ॥ १३४ ॥
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं मधुना च परिप्लुतम् ।
योगराजमिमं विद्वान्भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ १३५ ॥
आर्शांसि वातगुल्मं च पाण्डुरोगमरोचकम् ।
नाभिशूलमुदावर्तं प्रमेहं वातशोणितम् ॥ १३६ ॥
कुष्ठं क्षयमपस्मारं हृद्रोगं ग्रहणीगदम् ।
महान्तमग्निसादं च श्वासकासभगन्दरम् ॥ १३७ ॥
रेतोदोषाश्च ये पुंसां योनिदोषाश्च योषिताम् ।
निहन्यादाशु तान्सर्वान्दुर्वारान्न च संशयः ॥ १३८ ॥
एष निष्परिहारोऽस्ति पानभोजनमैथुने ।
सततास्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ १३९ ॥
क्षीराज्यरसभुक्तानां दोषधातुमलोचितम् ।
बुभुक्षितो मात्रयाऽन्नमद्याद्गुग्गुलुसेवकः ॥
प्रमेहं योगराजोऽयं दृष्टं दृष्ट्वा जयेदिति ॥ १४० ॥

पिप्पलीचूर्ण १ तोला, पिपरामूलचूर्ण १ तोला, चव्यचूर्ण १ तोला, चित्रकचूर्ण

१ तोला, सोंठ का चूर्ण १ तोला, पाठाचूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, इन्द्रयवचूर्ण १ तोला, शुद्ध हींङ्ग का चूर्ण १ तोला, भारङ्गी का चूर्ण १ तोला, वचा-चूर्ण १ तोला, सरसों का चूर्ण १ तोला, शुद्धअतीस का चूर्ण १ तोला, जीरे का चूर्ण १ तोला, हरेणुका का चूर्ण १ तोला, कृष्णजीरकचूर्ण १ तोला, गजपीपल का चूर्ण १ तोला, अजमोद का चूर्ण १ तोला, कुटकीचूर्ण १ तोला, मूरवा की जड़ का चूर्ण १ तोला तथा इन चूर्णों के बराबर ( २० तोले ) समभाग त्रिफला का चूर्ण और त्रिफला के सहित उपर्युक्त चूर्णों के बराबर ( ४० तो० ) शुद्धगूगल लेकर प्रथम गूगल को खरल में महीन पीस के अथवा गूगल को वस्त्र में पोटली के रुप से बांधकर हण्डिका या कड़ाही में भरे हुए त्रिफला के क्वाथ में लटका देवें। फिर उस पात्र को चूल्हे पर चढा कर अग्नि जला देवें। जब पोटली से समग्र गूगल छन २ कर क्वाथ में मिल जाय तब क्वाथ को गाढा कर लेना चाहिए। पश्चात् उपर्युक्त द्रव्यों के चूर्ण को बड़ी खरल में डाल कर चूर्ण में गरम २ या कुछ शीतल होने पर गुग्गुलुमिश्रित क्वाथ मिला देना चाहिए। फिर सब को एक दिनतक निरन्तर खरल कर के गाढे हो जाने पर शहद् की एक भावना देकर अच्छी तरह घोट के गोली बनाने योग्य होने पर घृत को हाथों या अङ्गुलियों में लगा २ कर आधे २ कर्ष भर की गोलियां बना के सुखाकर काच की शीशी में भर देवें। आयुर्वेदशास्त्र के विद्वान इसको योगराज गुग्गुलु कहते हैं। इस योगराज गुग्गुलु की एक २ गोली प्रतिदिन अथवा एक गोली प्रातःकाल और एक गोली रात को सोते समय गरम जल अथवा गरम दुग्ध के साथ सेवन करनी चाहिए। इस प्रकार इसके सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिकरोग नष्ट हो जाते हैं तथा यह योगराज गुग्गुलु, यथाव्याधयनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अर्श, वातगुल्म पाण्डुरोग, अरुचि, नाभिशूल, उदावर्त्त, प्रमेह, वातरक्त, कुष्ठ, क्षय ( राजयक्ष्मा ), अपस्मार, हृदयके रोग, संग्रहणी, अत्यन्त बढी हुई मन्दाग्नि, श्वास, कास, भगन्दर, पुरुषों के वीर्य्य सम्बन्धी विकार और स्त्रियों के योनिदोष तथा इनके अतिरिक्त अन्य सब व्याधियों को नष्ट करता है। इस गुग्गुलु के सेवन करते समय खाद्य पेय तथा अन्य विहारादिकों का वर्जन कराना या परहेज रखना आवश्यक नहीं है तथापि लाल मिरच, खटाई, तैल और अधिक विषय वासनाओं का त्याग करना अधिक फलप्रद है। इस गुग्गुलु,

को यदि स्वस्थ पुरुष भी सदा सेवन करता रहे तो उस के वली और पलित के रोग नष्ट हो जाते हैं तथा वह अन्य प्रकार की व्याधियों से निर्मुक्त होकर तीन सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है। योगराजगुग्गुलु को सेवन करने वाले पुरुष को चाहिए कि वह अपने वातादिक दोष, धातु तथा मल और प्रकृति के अनुकूल दुग्ध, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के साथ भात, रोटी आदि भोज्य पदार्थों को भूख लगने पर सेवन करता रहे। यह योगराजगुग्गुलु प्रमेह में विशेष हित कर है। ऐसा सब का अनुभव है ॥ १३२–१४० ॥

अथ द्वितीयो योगराजगुग्गुलुः—

**चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी तथा।**
**विडङ्गान्यजमोदाश्च जीरकं सुरदारु च ॥ १४१ ॥**
**वचैला सैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम्।**
**त्रिफला मुस्तकव्योषत्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ १४२ ॥**
**तालीशपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।**
**एतानि समभागानि तावन्मात्रं च गुग्गुलुम् ॥ १४३ ॥**
**सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिपेत्।**
**भक्षयेत्कर्षमात्रं च वातरोगान्विनाशयेत् ॥ १४४ ॥**
**ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारसेवनात्।**
**योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ १४५ ॥**
**आमवाताढ्यवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानि च।**
**प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥**
**अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिबलं तथा ॥ १४६ ॥**

चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, पिप्पली मूल का चूर्ण १ तोला, अजवाईन का चूर्ण १ तोला, काले जीरे का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, अजमोद का चूर्ण १ तोला, सफेद जीरे का चूर्ण १ तोला, देवदारू का चूर्ण १ तोला, चव्यचूर्ण १ तोला, इलायची का चूर्ण १ तोला, सैन्धव लवण १ तोला, कूट का चूर्ण १ तोला, रासना का चूर्ण १ तोला, गोक्षरू का चूर्ण १ तोला, धनिये का चूर्ण १ तोला, त्रिफले का चूर्ण १ तोला, शुद्ध नागर मोथे का चूर्ण १ तोला, व्योष ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) का चूर्ण १ तोला, दालचीनी का चूर्ण १ तोला,

उशीर ( खस ) का चूर्ण १ तोला, यवक्षार १ तोला, तालीश पत्र का चूर्ण १ तोला, तेज पत्र का चूर्ण १ तोला तथा सब के बराबर गूगल लेकर प्रथम गूगल को कपड़े में पोट्टली के रूप में बांध कर हण्डिका या कड़ाही में भरे हुए त्रिफला के क्वाथ में लटका के चूल्हे पर चढ़ा कर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। जब पोट्टली से छन छन कर सब गूगल त्रिफले के क्वाथ में घुल कर मिल जाय तब उस को उपर्युक्त चूर्णों के साथ खरलमें मिला कर एक दिन तक खरल करें। पश्चात् उस को घृत से आप्लुत ( भींगो ) कर के फिर एक दिन तक घोट कर एक २ कर्ष भर की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। प्रायः तीन २ माशे भर ही की गोलियां बनानी चाहिएं। इस योगराजगूगल को ३ माशे से १ कर्ष तक के प्रमाण से प्रतिदिन मन्दोष्ण दुग्ध या पानी के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के पाप रोग नष्ट हो जाते हैं। इस गूगल की अवस्था, रोग की तीव्रातीव्रता और रोगी के बल तथा प्रकृति के अनुसार मात्रा की कल्पना करनी चाहिए। इस गूगल के सेवन करते समय यथेष्ट आहारादिक का सेवन करने में कोई हानि नहीं है। यह योग अमृत के समान गुणकारी है अतः इस को योगराज इन नाम से ख्याति हुई है। यह योगराजगुग्गुलु यथा व्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से आमवात, आढ्यवात अर्थात्सर्व प्रकार के वात रोग क्रिमि और क्रिमिजन्य रोग दुष्ट व्रण, प्लीहा की वृद्धि, गुल्म, उदर के जलोदर और आनाहादिक रोग तथा अर्श को नष्ट करता है। यह योग अग्नि ( पाचक शक्ति ) प्रदीप्त करता है तथा तेज और बल को बढ़ाता ॥ १४१-१४६ ॥

अथ षडङ्गगुग्गुलुः—

**रास्नामृतादेवदारुशुण्ठीवातारितुल्यकम्।**
**गुग्गुलुं सर्वतुल्यांशं कुट्टयेत् घृतवासितम्॥**
**कर्षांशं भक्षयेच्चानुख्यातः षष्ठाङ्गगुग्गुलुः॥ १४७॥**

रास्ना, गुडूची, देवदारू, सोंठ और एरण्ड की जड़ इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् सब चूर्ण के बराबर गूगल लेकर पूर्ववत् त्रिफला क्वाथ में शुद्ध करके चूर्णमें मिलाकर खरल में दिनभर घोंट के गोघृत से अच्छी तरह आप्लुत या भींगो कर रात भरके लिये रख दें। फिर दूसरे दिन दिनभर घोटकर या लोहे की खरल ( ओखली ) में जोर २ से कूट कर तीन २ माशेभर

की गोलियां बनाके शीशी में भर देवें। इसको षडङ्ग या षष्ठाङ्गगुग्गुलु कहते हैं। इसको उचित मात्रा से मन्दोष्ण दुग्ध या जल के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के वातरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४७ ॥

अथ विजयभैरवतैलम्—

धान्याम्लपिष्टसुरभित्रयसूतलिप्त-
तैलार्द्रदीप्तपटवर्तिमुखात्प्रवृत्तम् ।
कम्पोत्तराञ्जयति पानविलेपनाभ्यां
वातामयान्विजयभैरवनाम तैलम् ॥ १४८ ॥

सुरभित्रय अर्थात् गन्धक, हरताल और मनःशिला तथा पारद इन चारों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में महीन कज्जली कर लेनी चाहिए। पश्चात् उसको काञ्जी के साथ अत्यन्त महीन घोंटकर पतला कल्क बना के दो या तीन पर्त की हुई वस्त्र को लम्बी पट्टी पर फैलाकर या लेप करके बत्ती बना कर सुखा लेवें। पश्चात् उस बत्ती को तिल्ली अथवा कटु ( सरसों के ) तैल में आप्लुत (भीगो) करके उसके एक सिरे (भाग) को चिमटे से पकड़ कर लटकते हुए दूसरे सिरे को जला देवें। इस तरह ज्यों २ बत्ती जलती जायगी त्यों २ उस के जलते भागसे तैल की बूंदे टपकेंगी। उनको एक स्निग्ध मिट्टी के छोटे बर्तन में इकट्ठी कर लेनी चाहिए। इस प्रकार से निकले हुए तैल को विजयभैरव तैल कहते हैं। इस तैल को दुग्धमें डालकर स्वल्प मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से तथा वातरोग पीड़ित स्थान पर इसके मर्दन करने से कम्पयुक्त वातिक रोग तथा अन्य प्रकार के वातविकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ द्वितीयविजयभैरवतैलम्—

रसतालशिलागन्धं दिनं सञ्चूर्ण्य काञ्जिकैः ।
लिप्त्वा वस्त्रैः कृतां वर्तिं तैलाक्तां ज्वालयेत्पुनः ॥ १४९ ॥
तद्भृतं(१)सङ्ग्रहेत्तैलमधः पात्रे धृते सति ।
तत्तैललेपितं(२)पत्रं नागवल्ल्याश्च भक्षयेत् ॥ १५० ॥

---

( १ ) तन्त्रान्तरोक्तविजयभैरवतैलमित्यन्ये ।

( २ ) तैलं विजयभैरवमिति पाठान्तरम् ।

बाहुकम्पं शिरःकम्पमेकाङ्गं जानुकम्पनम्।
नाशयेद्भक्षणाल्लेपात्तैलं विजयभैरवम्॥ १५१॥

पारद, गन्धक, मनःशिला और हरताल इन चारों को समभाग लेकर खरल में महीन कज्जली बनाके काञ्जी के साथ एक दिन तक घोटकर कल्क बनाके उसका एक वस्त्र की पट्टी पर प्रलेप करके बत्ती बनाकर सुखा लेवें। इस बत्ती को कटुतैल में भींगो कर पूर्ववत् अग्नि से जला दें तथा उसके नीचे पात्र रख दें। इस तैल को पान के पत्ते पर लगाकर प्रतिदिन सेवन करने से तथा मर्दन करने से बाहु का कम्प, शिरःकम्प एकाङ्गवात, जानुकम्प आदि वातविकार नष्ट हो जाते हैं॥१४९-१५१॥

सूततैलम्—

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात्समांशकम्।
चूर्णयित्वा ततः श्लक्ष्णमारनालेन मर्दयेत्॥ १५२॥
लेपयित्वा तु कल्केन सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम्।
तैलाक्तां कारयेद्वर्तिमूर्ध्वभागे प्रदीपयेत्॥ १५३॥
वर्त्यधः स्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम्।
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षयेदातुरस्तथा॥ १५४॥
नाशयेत्सूततैलं तद्वातरोगाननेकधा।
बाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं ततः परम्॥ १५५॥
एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति रोगाननेकधा।
रोगशान्त्यै सदा देयं सूततैलमिदं शुभम्॥ १५६॥

पारद, गन्धक, मनःशिला और हरताल इन सब को समभाग लेकर अच्छी तरह से पत्थर की खरल में महीन कज्जली कर के आरनाल (काञ्जी) के साथ घोटकर कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क से सूक्ष्म वस्त्र की पट्टी को लीपकर सुखा के तैल में भींगो कर उसके ऊपर के भाग का जला देवें तथा नीचे एक पात्र रख देवें। इस पात्र में बत्ती से तैल टपक २ कर एकत्रित हो जाता है। इस सूततैल को वातसे पीड़ित स्थान पर मर्दन करने से तथा पान के साथ या दुग्ध में डालकर प्रतिदिन सेवन करने से वातरोग नष्ट हो जाते हैं तथा विशेष कर यह तैल बाहुकम्प, शिरःकम्प, जङ्घाकम्प तथा एकाङ्गवात को नष्ट करता है तथा

अन्य रोगों में भी हितकर है। इस शुभ सूततैल को वातिक रोगों की शान्ति के लिये सदा प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १५२–१५६ ॥

अथ एरण्डतैलत्रिफलादिसिद्धघृतमानन्दभैरवोपदेशश्च—

**एरण्डतैलं त्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम् ।**
**सर्पिषा सहितं पक्त्वा सर्वाङ्गं तेन मर्दयेत् ॥ १५७ ॥**
**त्वग्वातघ्नं महाश्रेष्ठं देयञ्चानन्दभैरवम् ।**
**लशुनं सैन्धवं तैलमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ १५८ ॥**

एरण्ड ( रेड़ी ) का तैल आध सेर तथा घृत आध सेर तथा दोनों से चतुर्थांश अर्थात पाव भर समभाग से लिये हुए त्रिफला, चित्रक की जड़ और वत्सनाभ का चूर्ण और स्नेह ( घृत तैल ) से चतुर्गुण गोमूत्र लेकर सबको कड़ाही में डाल के चूल्हे पर पाककरें। जब स्नेहमात्र शेष रह जाय तब उतार के स्वाङ्गशीतल होने पर छान लेवें। इस घृत का सारे शरीर पर लेप ( मर्दन ) करना चाहिए। यह घृत त्वग्गत वातविकार को नष्ट करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है। अथवा त्वचा के विकार तथा वातिकरोगों को नष्ट करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है। कुछ टीकाकारों ने इस योग को निम्नरीति से बनाने के लिये लिखा है। यथा—एरण्ड का तैल, त्रिफलाचूर्ण, गोमूत्र, चित्रक की जड़ का चूर्ण और वत्सनाभविष का चूर्ण इन को समभाग लेकर खरल में घोट के कल्क बनालेवें। फिर इस कल्क से चौगुना घी और घृत से चौगुना जल लेकर स्नेहपाक विधि से घृत सिद्ध कर लेवें। इस घृत का शरीर पर मर्दन करना चाहिए तथा पूर्व में कहे हुए आनन्दभैरव रस को मधु के साथ सेवन करके लहसून का स्वरस, सैन्धव नीमक और तैल इनको समभाग के रूप में मिलाकर पीना चाहिए। इस तरह इस योग के सेवन करने से त्वचा के विकार तथा वातरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १५७–१५८ ॥

अथ सामान्योपायाः—
तत्र पर्पटरसप्रयोगविधिः—

**पर्पटीरसगुञ्जार्धौ पूर्वप्रोक्तं च गुग्गुलुम् ।**
**कर्षार्धं खादयेत्साज्यमेकाङ्गानिलशान्तये ॥ १५९ ॥**
**एरण्डवह्निशुण्ठीनां गुडूच्याश्च कषायकम् ।**
**अनुपानाय दातव्यं चणकक्वाथमेव वा ॥ १६० ॥**

अधिकारान्तर अर्थात् तेरहवें अध्याय में कहे हुए ८ रत्ती भर पर्पटी रस और आधे कर्ष ( ८मा० ) भर पूर्व में कहे हुए शतावरी गुग्गुलु अथवा योगराज गुग्गुलु को छोटी खरल में महीन पीसकर घृत मिला के प्रतिदिन एकाङ्गवात के दूर करने के लिये सेवन करना चाहिए तथा उसके ऊपर समभाग से गृहीत एरण्ड की जड़, चित्रककी जड़, सौंठ और गुडूची का क्वाथ पीलाना चाहिए अथवा चनों को उबाल कर उनका पानी पीलाना चाहिए ॥ १५९-१६० ॥

अथ सर्जतैलम्—

**नलिकायन्त्रयोगेन सर्जतैलं समुद्धरेत् ।**
**तदभ्यङ्गप्रयोगेण वातो दुष्टः प्रशाम्यति ॥ १६१ ॥**

नवम अध्याय में कहे हुए नालिकायन्त्र के द्वारा सर्ज अर्थात् राल का तैल निकालना चाहिए। इस तैल का अङ्ग पर मर्दन करने से दुष्टवात शान्त हो जाता है ॥ १६१ ॥

अथ एकाङ्गवातेपर्पटीरसप्रयोगविध्यन्तरम्—

**अष्टगुञ्जामितं खादेदेकाङ्गे पर्पटीरसम् ।**
**अर्धकर्षं घृतेनानुयोगराजं च गुग्गुलुम् ॥ १६२ ॥**

आठ रत्ती भर अथवा एक रत्ती से प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक२ रत्ती बढाकर आठ रत्ती तक पर्पटी रस को मधु के साथ एकाङ्गवात में सेवन करना चाहिए तथा सेवन करने के पश्चात् आधे कर्ष ( ८ मा० ) भर योगराज गुग्गुलु को घृत के साथ सेवन करें। इस योग से एकाङ्गवात में अवश्य लाभ होता है। गुग्गुलु खाकर ऊपर से मन्दोष्ण दुग्ध या जल पीना चाहिए ॥ १६२ ॥

अथ धूमसारादिषडङ्गप्रयोगः—

**धूमसारं वरा यष्टी टङ्कणं पत्रकं विषम् ।**
**तुल्यं गुञ्जाद्वयं खादेदामवातप्रशान्तये ॥ १६३ ॥**

रसोई घर के धूएं का सार अथवा घृत के दीपक से गृहीत धूम का कज्जल, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) का चूर्ण, सुनेठी का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, तेजपत्र का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण इन सब को समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह से दिन भर घोट के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को दो रत्ती भर प्रतिदिन मधु के साथ आमवात रोग की शान्ति के लिये सेवन करना चाहिए ॥ १६३ ॥

अथ निर्गुण्डीप्रयोगः—

**निर्गुण्डीमूलचूर्णं तु कर्षं तैलेन लेहयेत् ।**
**सन्धिवातः कटीवातः कम्पवातश्च शाम्यति ॥ १६४ ॥**

निर्गुण्डी ( सम्भालू ) की जड़ के एक कर्ष भर चूर्ण को प्रति दिन तैल ( एरण्ड ) में मिला कर सेवन करने से सन्धिवात, कटीवात और कम्पवात आदि रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १६४ ॥

अथ रक्तैरण्डप्रयोगः—

**रक्तस्यैरण्डमूलस्य कर्षं घृष्ट्वा जलौः पिबेत् ।**
**सर्ववातहरं श्रेष्ठं भग्नवाते विशेषतः ॥ १६५ ॥**

लाल एरण्ड ( रेड़ी ) की जड़ के एक कर्ष ( १६ मा० ) भर चूर्ण को प्रति दिन जल के साथ सेवन करना चाहिए । अथवा एरण्ड की १ कर्ष भर जड़ को पत्थर पर जल से चन्दन की तरह घिस कर सेवन करें । यह योग सर्व प्रकार के वातरोगों को तथा विशेषकर भग्नवात को दूर करने के लिये श्रेष्ठ है ॥ १६५ ॥

अथ इन्द्रवारुणीप्रयोगः—

**इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम् ।**
**भक्षयेत्कर्षमात्रं तत्सन्धिवातहरं भवेत् ॥ १६६ ॥**

इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण ६ माशे भर, पिप्पली का चूर्ण २ माशे भर तथा ८ माशे भर गुड़ इन को मिला कर मन्दोष्ण जल के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सन्धिवात नष्ट हो जाता है ॥ १६६ ॥

अथ सर्वाङ्गैकाङ्गवातारिरसः—

**मृतं सूतं मृतं तीक्ष्णं मर्दयेत्कटुकीद्रवैः ।**
**चणमात्रां वटीं खादेत्सर्वाङ्गैकाङ्गवातनुत् ॥ १६७ ॥**

शुद्ध पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर तथा तीक्ष्ण लौह की भस्म इन दोनों को समभाग लेकर खरल में महीन पीस के कुटकी के रस के साथ सात वार भावित करके चने के बराबर गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ गोली प्रति दिन दुग्ध के साथ सेवन करने से एकाङ्ग वात तथा सर्वाङ्ग वात नष्ट हो जाते हैं ॥ १६७ ॥

अथ वातरक्तः—

**सन्धिष्वनिलरक्ताभ्यां शोफोऽन्तर्बहिराश्रयः।**
**छर्दिज्वराऽरुचिकरो भवेद्वातास्रसंज्ञकः॥ १६८॥**

दूषित वात और रक्त के कारण शरीर की भिन्न २ सन्धियों के भीतर तथा बाहर शोथ उत्पन्न हो जाता है तथा वह वमन, ज्वर और अरुचि इन उपद्रवों को उत्पन्न करता है, तब उस को वातरक्त कहते हैं॥ १६८॥

वातरक्ते अधिकारान्तरोक्तौषधप्रयोगोपदेशः—

**त्रिनेत्राख्यं रसं खादेद्वातशोणितपीडितः।**
**वातास्रजिच्छूलगजकेसर्युदयभास्करः॥ १६९॥**

शूलाधिकार में कहे हुए त्रिनेत्र नामक रस को वातरक्त से पीड़ित पुरुष को प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। अथवा प्रमेहाधिकार या शूलाधिकार में कहे हुए उदयभास्कर रस तथा शूलाधिकारोक्त शूलगजकेशरी रस को वातास्र (वातरक्त) में सेवन करना चाहिए॥ १६९॥

अथ वातरक्तादिसर्वरोगेसर्वेश्वरीपर्पटी—

**पूर्वोक्तपर्पटी योज्या सर्वेष्वावरणेषु च।**
**सर्वरोगहिता चैव नाम्ना सर्वेश्वरी शुभा॥ १७०॥**

विद्रधिरोग में सर्वेश्वरी इस नाम से कही हुई पर्पटी को प्रति दिन सर्व प्रकार के वातरक्त आदि रोगों में सेवन करें। सर्वेश्वरी नामक पर्पटी अनुपान भेद से सब रोगों में हितकर है॥ १७०॥

अथ पित्तरोग-चिकित्सा।

अथ चन्द्रावलेहः—

**एलायाश्च तुला ग्राह्या जलद्रोणे विपाचयेत्।**
**अष्टभागाऽवशिष्टं तु शर्करार्धतुलां क्षिपेत्॥ १७१॥**
**शतावर्या विदार्याश्च गोक्षीरं चाढकं पृथक्।**
**लेहवत्साधिते तस्मिन्द्राक्षामधुकपिप्पलाः॥ १७२॥**
**त्रिजातकं च खर्जूरं चन्दनद्वयसारिवा।**
**मुस्तापद्मकहीबेरधात्री चोत्पलचोरकम्॥ १७३॥**
**एतेषां पलमादाय क्षिपेत्क्षीर्याश्चतुष्पलम्।**

क्षौद्रप्रस्थेन संयुक्तं लेहयेत्प्रातरुत्थितः ॥ १७४ ॥
पित्तोन्मादविकारेषु शिरोभ्रमणमूर्च्छते ।
हस्तपादाङ्गदाहे च पित्तरक्तोत्तरावृतौ ॥
छर्दिकासक्षये पाण्डौ चन्द्रवच्चन्द्रभाषितम् ॥ १७५ ॥

एक तुला ( १०० पल४०० तो० ) भर इलायची को लोहे की ओखली ( इमामदस्ता ) में डाल कर मोटी २ कूट के १ द्रोण ( २५६ पल ) भर जल में क्वाथ करके अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार लेवें । इस क्वाथ को शुद्ध वस्त्र से छान कर कलईदार बड़ी कड़ाही में डाल कर फिर उसमें आधी तुला ( ५० पल ) भर चीनी, शतावर का स्वरस १ आढक ( ६४ प० ), विदारी कन्द का स्वरस १ आढक तथा गाय का दुग्ध १ आढक भर डाल कर दो तार की चाशनी बनने तक पाक करना चाहिए । फिर उस कड़ाही को नीचे उतार कर उस चाशनी में पानी से धोई हुई दाख ( किसमिस ) ४ तोले, मुलेठी का चूर्ण ४ तोले, पिप्पली का चूर्ण ४ तोले, त्रिजातक अर्थात् दाल चीनी का चूर्ण ४ तोले, इलायची का चूर्ण ४ तोले तेजपत्र का चूर्ण ४ तोले और खर्जूर (छुहारे) का चूर्ण ४ तोले, लालचन्दन का चूर्ण ४ तोले, पीत या श्वेत चन्दन का चूर्ण ४ तोले, सारिवा का चूर्ण ४ तोले (कुछ लोग दोनों चन्दन न लेकर श्वेत और कृष्ण शारिवा लेते हैं ), शुद्ध मोथे का चूर्ण ४ तौले, पद्माख का चूर्ण ४ तोले, हौबेर ( सुगन्ध बाला ) का चूर्ण ४ तोले, आंवले का चूर्ण ४ तोले, नील कमल के पत्तों का चूर्ण ४ तोले, चोरक अर्थात् चोर पुष्पी या स्तृक्का का चूर्ण ४ तोले, तुगाक्षीरी ९ (वंश-लोचन) का चूर्ण ४ पल ( १६ तो० ) तथा १ प्रस्थ भर मधु मिला कर सब को अच्छी तरह मिला के मृत बाण अथवा काच के बर्तन में भर देवें । इस अव-लेह को प्रातः काल सेवन करना चाहिए । यह अवलेह पैत्तिक रोग तथा पैत्तिक उन्माद, शिरो भ्रमण, मूर्च्छा, हस्तपादाङ्ग दाह, पित्तरक्तावृत रोग, वमन, कास, क्षय और पाण्डु रोग में श्रेष्ठ है ऐसा चन्द्र नामक विद्वान् ने कहा है ॥ १७१–१७५ ॥

अथामृतप्राशचूर्णम्—

पेलेयकं समूलं हि मुद्गपर्णी तथैव च ।
शतावरी विदारी च वाराहीकन्दमेव च ॥ १७६ ॥

मधुकं च मधूकं च तुगाक्षीरी च गोस्तनी।
एतानि द्विपलांशानि चूर्णीकृत्य पृथक् पृथक् ॥ १७७ ॥
सरलं चन्दनं चोचमुत्पलं कुमुदं जलम्।
काकोली क्षीरकाकोलीं द्वे मेदे जीवकर्षभौ ॥ १७८ ॥
एतेषां चार्धपलिकं प्रत्येकं शर्करायुतम्।
ऐलेयबं बिदारी च वाराही मुद्गपर्णिका ॥ १७९ ॥
एतेषां स्वरसैः शुद्धः शतावर्याश्च भावितम्।
एतत्सर्वं समाहृत्य छायाशुष्कं तु सप्तधा ॥ १८० ॥
इक्ष्वामलकयोः क्षौद्रैर्भावितं सप्तधा पुनः।
पयसा तु पिबेत्प्रातर्यथाग्निबलवान्नरः ॥ १८१ ॥
अङ्गदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तं सुदारुणम्।
शिरोऽक्षिकम्पभ्रमणमित्यादिकगदाञ्जयेत् ॥ १८२ ॥

एलबालुक ( घृतकुमारी का सत्त्व ) दो पल तथा घृतकुमारी की जड़ का चूर्ण दो पल, मूंगपर्णी के पञ्चाङ्ग का चूर्ण २ पल, शतखर का चूर्ण २ पल, विदारी कन्द का चूर्ण २ पल, वाराही कन्द का चूण २ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल, महुए के पुष्पों क चूर्ण २ पल, बंशलोचन का चूर्ण २ पल, द्राक्षा २ पल, सरल (पदुमकाठ) का चूर्ण आधा पल, लाल चन्दन का चूर्ण आधा पल, दालचीनी का चूर्ण आधा पल, नील कमल के पत्रों का चूर्ण आधा पल, कुमुद ( श्वेत कमल पत्र ) का चूर्ण आधा पल, नेत्रवाला का चूर्ण आधा पल, काकोली का चूर्ण आधा पल, क्षीरकाकोली का चूर्ण आधा पल, मेदा का चूर्ण आधा पल, महामेदा का चूर्ण आधापल, जीव का काचूर्ण आधापल, ऋषभक का चूर्ण आधापल, तथा शर्करा आधा पल लेकर सब को पत्थर की बड़ी खरल में डाल कर अच्छी तरह से घोट कर घृतकुमारी के सार का घोल, बिदारी कन्द का स्वरस, वाराही कन्द का स्वरस, मुद्गपर्णी का स्वरस तथा शतावर का स्वरस इन स्वरसों से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार अथवा एक २ वार ही भावित करके घोटकर छाया में सुखा लेवें। फिर उस चूर्ण को इक्षु ( ऊख ) के रस तथा आंवलों के स्वरस से सात २ वार भावित करके घोटकर छायाशुष्क करके शहद् के साथ घोटना चाहिए। पश्चात् इसे काच के पात्र या अमृतबाण में भर कर रख देवें। इस प्रकार से बनी हुई इस औषध में से

अग्निबलादिक का विचार करके ३ माशे से १ तोले भर तक लेकर प्रतिदिन प्रातः काल दुग्ध के साथ सेवन करने से अङ्ग की जलन, शिर की जलन, भयङ्कर रक्त-पित्त, शिर का और आंख का भ्रमण या कम्पन आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १७६–१८२ ॥

अथ ऐलेयकतैलम्—

ऐलेयकस्य स्वरसमाढकं तु भिषग्वरः ।
कुमार्याः स्वरसं शुद्धं चतुष्प्रस्थं तु कारयेत् ॥ १८३ ॥
आमलक्याः शतावर्या रसं प्रस्थद्वयं पृथक् ।
तैलाढकसमायुक्तं क्षीरद्रोणविमिश्रितम् ॥ १८४ ॥
चोचं मलयजं वारि सरलं कुमुदोत्पलम् ।
द्वे मेदे मधुकं द्राक्षा तुगाक्षीरी मधूलिका ॥ १८५ ॥
काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षकावुभौ ।
मृगनाभ्यजगन्धा च शशाङ्कश्च पृथक् पृथक् ॥ १८६ ॥
एतेषां चार्धपलकं श्लक्ष्णं चूर्णं विनिक्षिपेत् ।
एतत्सर्वं समालोड्य मन्दं मन्दाग्निना पचेत् ॥ १८७ ॥
समुहूर्तं सुनक्षत्रे नववस्त्रेण पीडयेत् ।
शिरोनेत्रविकारेषु नस्यं स्यात्कर्णयोजितम् ॥ १८८ ॥
अभ्यङ्गोद्वर्तनालेपैः शिरोभ्रमणकम्पनुत् ।
अङ्गदाहं शिरोदाहं नेत्रदाहं च दारुणम् ॥ १८९ ॥
विसर्पकविकारांश्च मूर्ध्नि जातान्बहून् व्रणान् ।
आस्यशोषं भ्रमं चैवं नाशयेन्नात्र संशयः ॥
ऐलेयकमिदं तैलं प्रशस्तं पित्तरोगिणाम् ॥ १९० ॥

एलेयक ( एलबालुक ) का स्वरस १ आढक (चार प्रस्थ अर्थात् ६४ पल), घृत कुमारी का स्वरस चार प्रस्थ ( ६४ पल ), आंवलों का स्वरस दो प्रस्थ ( ३२ पल ), शतावर का स्वरस २ प्रस्थ, तिलतैल १ आढक ( ६५ पल ) तथा दुग्ध १ द्रोण (४ आढक अर्थात् २६५ पल), चोक (दालचोनी) का चूर्ण आधा पल, श्वेत चन्दन का चूर्ण आधापल, नेत्रबाला का चूर्ण आधा पल, पदुमकाठ का चूर्ण आधापल, नीलकमल का चूर्ण आधापल, श्वेत कमल का चूर्ण आधापल,

मेदा का चूर्ण आधापल, महामेदा का चूर्ण आधा पल, मुलेठी का चूर्ण आधापल, द्राक्षा आधापल, वंशलोचन का चूर्ण आधापल, मूर्वे की जड़ का चूर्ण आधापल अथवा मजीठ का चूर्ण आधापल, काकोली का चूर्ण आधापल, क्षीर काकोली का चूर्ण आधापल, जीवक का चूर्ण आधापल, ऋषभक का चूर्ण आधापल, मृगनाभि ( कस्तूरी ) का चूर्ण आधापल, असगन्ध का चूर्ण आधापल तथा कर्पूर आधा पल लेकर प्रथम चोक से कर्पूर तक के द्रव्यों को थोड़े से जल के साथ पत्थर पर पीस के कल्क बना लेना चाहिए। फिर इस कल्क को उपर्युक्त औषधियों के स्वरस तथा तैल में मिलाकर कलईदार लोहे की बड़ी कड़ाही में सब को भर कर अच्छे वार नक्षत्र वाले शुभ मुहूर्त्त में भट्टी पर चढा के मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब तैल सिद्ध हो जाय अर्थात् समग्र जलीयांश के जल जाने पर कड़ाही को भट्टीपर से उतार कर स्वाङ्गशीतल होने पर नवीन वस्त्र से तैल को छान कर निकाल लेवें तथा कल्क को भी अच्छी प्रकार दोनों हाथों के बीच में दबा २ कर या नवीन दृढवस्त्र में भर के सम्पीड़न करके उससे तैल निकाल कर शीशियों में भर देवें। इस तैल को शिर तथा नेत्रों के विकारों में नाक द्वारा नस्य लेने (सूंघने) से तथा कर्णादिक रोगों में कान में टपकाने से वहां के विकार दूर हो जाते हैं। यह तैल अभ्यङ्ग (मालिश), उद्वर्तन ( उबटन ) और आलेपन करने से शिर के चक्कार तथा सर्वाङ्ग के कम्प को नष्ट कर देता है। यह तैल अङ्ग की जलन, शिर की जलन, नेत्रों की जलन, विसर्प रोग तथा उससे उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव, माथे में उत्पन्न हुए फोड़े फुन्सियां तथा मुख का सूखना और भ्रम आदि अनेक विकारों को विनष्ट कर देता है। यह ऐलेयक तैल विशेष करके पित्त के विकार से पीड़ित रोगियों के लिये अत्यन्त हितकर है ॥ १८३–१९० ॥

अथ ऐलेयसर्पिः—

**ऐलेयकस्य स्वरसे घृतं क्षीरं समं पचेत्।**
**चन्दनं मधुकं द्राक्षा मधूकं च तुगा सिता ॥ १९१ ॥**
**ऐलेयकमिदं सर्पिः सर्वपित्तविकारजित्।**
**वातपित्तविकारघ्नं शिरोभ्रमणकम्पनुत् ॥ १९२ ॥**

ऐलेयक का स्वरस स्नेह से चतुर्गुण अर्थात् ४ प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ, दुग्ध १ प्रस्थ तथा लालचन्दन का चूर्ण, मुलेठी का चूर्ण, दाख, महुए के पुष्प, वंशलो-

चन और चीनी इनके सम भाग का कल्क स्नेह से चतुर्थांश लेकर सबको एकत्र करके कलईदार कड़ाही में भर कर भट्टी या चूल्हे पर मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब समग्र जलीयांश नष्ट हो जाय तब घृत को सिद्ध समझ कर उतार के छान लेवें तथा कल्क से भी वस्त्रसम्पीडनादिक उपायों से घृत निकाल कर घृतको काच के पात्र में या मृतबाण में भर कर बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध हुए घृत को ऐलेयकसर्पि कहते हैं। यह घृत प्रति दिन भोजन के साथ अथवा उष्ण दुग्ध में डाल कर सेवन करने से सर्व प्रकार के पित्त के विकार, वात और पित्त के विकार तथा शिर का भ्रमण और कम्प आदि रोगों को नष्ट कर देता है ॥ १९१-१९२ ॥

अथ ऐलेयकप्रयोगः—

**ऐलेयकस्य स्वरसे सक्षीरां शर्करां पिबेत् ।**
**क्वाथं वा शर्करायुक्तं शिरोभ्रमणकम्पनुत् ॥ १९३ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वोरभट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
शीतवातस्पर्शवातरक्तवातामवातापस्मारोन्मादैकाङ्गवात-
सन्धिवातभग्नकम्पवातरक्त–शिरोभ्रमणचिकित्सा-
नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ऐलेयक के स्वरस में दुग्ध और चीनी मिला कर प्रतिदिन पान करने से शिरो भ्रमण तथा अन्य पैत्तिकविकार नष्ट हो जाते हैं अथवा ऐलेयक के क्वाथ में चीनी मिला कर प्रतिदिन पान करने से शिर का भ्रमण तथा कम्प रोग नष्ट हो जाते हैं। ऐलेयक शब्द से यहां पर एक प्रकार का गन्धतृण है उसी का ग्रहण करें अथवा इलायची का भी अभाव में ग्रहण करना श्रेयस्कर है ॥ १९३ ॥

**अथ वातरक्ते पथ्यापथ्यव्यवस्था—**

उत्तानेऽभ्यङ्गनं सेकः सोपनाह प्रलेपनम् । गम्भीरे स्नेहपानञ्च स्थापनञ्च विरेचनम् ॥१॥
द्वयोरक्षस्तुतिः सूचीजलौकाशृङ्ग्यलाबुभिः । शतधौतघृताभ्यङ्गो मेषीदुग्धावसेचनम् ॥२॥
पक्वबिष्टकनीवारकलमारूणशालयः । गोधूमाश्चणकाः मुद्गा स्तुवरीऽपि मकुष्टकाः ॥३॥
अजानां महिषीणाञ्च गवामपि पयांसि च । लावतित्तिरसर्षद्विदूताम्रचूडादिविष्किराः ॥४॥
प्रतुदाः शुकदात्यूहकपोतचटकादयः । उपोदिकाः काकमाची वेत्राग्रं सुनिषण्णकम् ॥५॥

वास्तुकं कारवेल्लञ्च तण्डुलीयः प्रसारणी। पत्तूरो वृद्धकूष्माण्डं सर्पिः शम्पाकपल्लवम् ॥६॥
पटोलं शुक्तितैलञ्च मृद्वीका श्वेतशर्करा। नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरीसितचन्दनम् ॥७॥
शिग्रुपागुरुदेवाहसरलस्नेहमर्दनम्। तिक्तञ्च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ॥८॥

इति पथ्यानि

अपाशथ्यानि—

माषाःकुलत्थानिष्पावा कलायाः क्षीरसेवनम्।अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानिदधीनिच॥१॥

इक्षवो मूलकं मद्यं पिण्याकोऽम्लानि काञ्जिकम्।
दिवास्वप्नादिसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
कटूष्णगुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ २ ॥ इत्यपथ्यानि।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्न-समुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य–भाषाटीकायां शीतवातस्पर्शवातरक्त-वातामवातापस्मारोन्मादैकाङ्गवातसन्धिवातभग्नकम्पवातरक्त–शिरोभ्रमणचिकित्सानामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥



## द्वाविंशोऽध्यायः।

अथ वन्ध्याचिकित्सा—

तत्रादौ वन्ध्यादोषभेदादिकथनम्—

भेदा वन्ध्याऽबलानां हि नवधा परिकीर्तिताः।
तत्राऽऽदिवन्ध्या प्रथमा पापकर्मविनिर्मिता ॥ १ ॥
रक्तेन च पृथग्दोषैः समस्तैः पञ्चधा भवेत्।
भूतदेवाभिचारैश्च तिस्रो वन्ध्याः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥
पुमानपि भवेद्वन्ध्यो दोषैरेतैश्च शुक्रतः ॥ ३ ॥
गर्भस्रावी स्मृता पूर्वं मृतवत्सा द्वितीयका।
तृतीया स्त्रीप्रसूतिः स्यात्काकवन्ध्या सकृत्प्रसूः ॥ ४ ॥

शास्त्रों में बन्ध्या स्त्रियों के नौ भेद कहे गये हैं। उन नौ भेदों में से प्रथम को आदि वन्ध्या कहा गया है। आदिवन्ध्या होने का कारण अपने पूर्व जन्म तथा वर्तमान जन्म के पाप कर्म ही हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी रक्त वन्ध्या होती है। रक्तवन्ध्या होने के कारण अनेक हैं। यथा—दूषित पदार्थों के सेवन करने से

दूषित रक्त ही उत्पन्न होता है और यह दूषित रक्त गर्भाशय आदि स्त्री जननेन्द्रियों में पहुंच कर उनको भी दूषित कर देता है । जिसके कारण मासिकधर्म अर्थात् आर्त्तव ठीक समय पर नहीं होता है, उसमें बदबू आने लगती है तथा वह अधिक कृष्णवर्ण का हो जाता है इस तरह से स्त्री के बीजरक्त में भी दुष्टि पहुंच जाती है और वह वन्ध्या हो जाती है । तीसरी वातवन्ध्या होती है। दूषित वायु से बीजरक्त दूषित हो जाता है तथा उसका गर्भाशय और डिम्ब प्रणाली आदि अङ्ग शुष्क, रूक्ष तथा संकुचित हो जाते हैं । चौथी पित्तवन्ध्या होती है । इसमें पित्त की मात्रा अधिक बढ़ जाने से गर्भाशय के अन्दर पित्त प्रकोप होता है जिससे शुक्र तथा रज ( डिम्ब ) का संयोग नहीं हो सकता है और पित्ताधिक्य से गर्भाशय में अधिक उष्णता रहने से बीजरक्त ( डिम्ब ) की मृत्यु या वह गर्भ धारण के अयोग्य हो जाता है। पांचवीं कफ वन्ध्या होती है, इस में वायु और पित्त की अपेक्षा कफ अधिक बढा हुआ रहता है जिस से गर्भाशय में खुलने वाले डिम्बप्रणाली के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं अत एव वह भी गर्भ धारण नहीं कर सकती । प्रायः देखा जाता है कि जो स्त्रियां प्रतिदिन स्निग्ध भोजन किया करती हैं तथा अपने शरीर से कुछ भी श्रम नहीं कर के बैठी रहती हैं उन्हीं स्त्रियों में मेद का भाग अधिक बढ़ जाता है तथा वे मोटी ( स्थूलकाय ) हो जाती हैं। ऐसी स्त्रियां सम्भोग शक्ति से भी हीन होती हैं तथा उन के प्रत्येक अङ्गों में विशेष कर उत्पादक अङ्गों में चर्बी का भाग अधिक जम जाता है जिस कारण वे सर्वदा के लिये बन्ध्या हो जाती हैं। छठी त्रिदोष बन्ध्या होती हैं। इन में तीनों ( वात, पित्त, कफ, ) दोष प्रकुपित रहते हैं जिस से उन के उत्पातक अङ्ग कर्म हीन हो जाते हैं। इन छ प्रकार की वन्ध्याओं के अतिरिक्त भूत अर्थात् देव, ग्रह, यक्ष, भूत, प्रेत आदि के आवेश के कारण तथा देवबल से या गुरुजन आदि पूज्य पुरुषों की पूजा के व्यतिक्रम से तथा अपचार ( मिथ्याहार विहारादिक ) से तीन प्रकार की बन्ध्याएं और होती हैं । इस तरह नौ प्रकार की वन्ध्याएं होती हैं । पुरुष भी इन्हीं दोषों के कारण तथा शुक्रदुष्टि से वन्ध्य अर्थात् गर्भ धारण कराने में असमर्थ होता है । उपर्युक्त नौ प्रकार की वन्ध्या स्त्रियों में प्रथम प्रकार की वन्ध्या स्त्री गर्भ स्रावी होती है अर्थात् उस का गर्भ चार महीने के अन्दर ही गिर जाता है या द्रुत हो

कर उस का स्राव हो जाता है । दूसरी प्रकार की मृत्वत्सा होती है, इस प्रकार की स्त्री के कभी भी जीवित सन्तान उत्पन्न नहीं होती है । प्रायः उस का गर्भ गर्भाशय ही में मृत हो जाता है । तीसरी प्रकार की स्त्रीप्रसूति होती है अर्थात् यह केवल पुत्रियों को ही उत्पन्न करती है । चौथे प्रकार की स्त्री काक वन्ध्या कही जाती है । यह स्त्री एक वार ही गर्भ धारण करती है, बाद में उस के कोई सन्तान पैदा नहीं होती है ॥ १-४ ॥

अथ जयसुन्दररसः—

सुवर्णं रजतं ताम्रं ताप्यसत्त्वं च वैकृतम् ।
एकैकं निष्कमानेन संशुद्धं परिमारितम् ॥ ५ ॥
एतच्चतुर्गुणं सूतं सूताद्द्विगुणगन्धकम् ।
मर्दयेल्लक्ष्मणातोयैर्बन्धुजीवरसैरपि ॥ ६ ॥
काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा ताम्रपात्रं मुखे न्यसेत् ।
विलिम्पेदभितः कूपीमङ्गुलोत्सेधया मृदा ॥ ७ ॥
विशोष्य च पुटं दद्याद्भूमौ निखिप्य कूपिकाम् ।
गजाख्यपुटपर्यंतैः शाणकर्षमितोत्पलैः ॥ ८ ॥
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ भावयेल्लक्ष्मणा(१)द्रवैः ।
सप्तवारं विशोष्याऽथ करण्डान्तर्विनिक्षिपेत् ॥ ९ ॥
मश्वगन्धारजोयुक्तस्ताम्रगोक्षीरसंयुतः ।
सेवितो गुञ्जया तुल्यः सितया च रसोत्तमः ॥ १० ॥
मासत्रयप्रयोगेण वन्ध्या भवति पुत्रिणी ।
पुत्रिण्यै स्नानशुद्धायै जरत्कौशिकचक्षुषी ॥ ११ ॥
गव्याज्येन च संसाध्य तत्तदानीं हि भोजयेत् ।
ऋतावृताविदं देयं यावन्मासत्रयं भवेत् ॥ १२ ॥
रसेन्द्रः कथितः सोऽयं चक्रपकारण्यवासिभिः ।

---

( १ ) लक्ष्मणाद्रवैः—लक्ष्मणामूलस्वरसैः, लक्ष्मणा च—"पुत्रकाकाररक्तालबिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत्" इत्युक्तलक्ष्मणा स्वनामख्यातेति भावः ।

पूर्णामृताख्ययोगीन्द्रैर्नामतो जयसुन्दरः ॥ ३ ॥
सेवितेऽस्मिन् रसे स्त्रीणां न भवेत्सूतिकागदः ।
भवेत्पुत्रश्च दीर्घायुः पण्डितो भाग्यमण्डितः ॥ १४ ॥

अच्छी प्रकार से शुद्ध करके बनाई हुई स्वर्ण की भस्म १ निष्क ( ४ माशे), चांदी की भस्म १ निष्क, ताम्र की भस्म १ निष्क, स्वर्णमाक्षिक भस्म का सत्त्व १ निष्क, वैक्रत अर्थात् वैक्रान्त मणि की भस्म १ निष्क इन सब की अपेक्षा चतुर्गुण ( २० निष्क ) शुद्ध पारद तथा पारद की अपेक्षा द्विगुण ( ४० निष्क ) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें शेष भस्मों को मिलाकर अच्छी प्रकार घोट के लक्ष्मणा अथवा सफेद कण्टकारी के क्वाथ या स्वरस के साथ सात बार घोटकर बन्धुजीव अर्थात् बन्धूक पुष्पों ( गूल दोपहरिया के फूलों ) के स्वरस के साथ सातवार खरल करें। पश्चात् उस चूर्ण को अच्छी तरह शुष्क करके काचकूपी ( आतसी शीशी ) में भरकर उसके मुखको ताम्बे के पात्र ( कटोरी ) से ढक देवें। पश्चात् उस कूपी के चारों ओर के भागको चिकनी मिट्टी से एक२ अङ्गुल मोटा लीपकर सुखा के गजपुट में रखकर पुट दे देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल होने पर कूपिका के भीतर से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके लक्ष्मणा के स्वरस या क्वाथ से सात वार भावित करके अच्छी प्रकार घोट के सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को १ रत्ती भर लेकर असगन्ध के ३ माशे भर चूर्ण के साथ मिलाकर ताम्र (लाल) वर्ण की गाय के दुग्ध के अनुपान से प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस तरह तीन मास तक सेवन करते रहने से बांझ स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। इस रस के सेवन करने के अतिरिक्त जब पुत्रेच्छा वाली स्त्री मासिक धर्म के स्नान से शुद्ध हो जाय तब उसको वृद्ध उल्लू की दोनों आखों को निकाल कर गाय के घृत के अन्दर पकाकर खिलावें। प्रत्येक ऋतुकाल में औषध सेवन के अतिरिक्त यह उपचार भी जबतक तीन मास पूर्ण न हो करते रहना चाहिए। चम्पकारण्य में रहने वाले श्रीपूर्णामृत नामक योगिराज ने इस सर्व रसों में श्रेष्ठ जयसुन्दर रस को बताया है। इस रस के सेवन करने से स्त्रियों को सूतिकारोग कभी नहीं होता है तथा इस रस के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री के भी अच्छा भाग्य शाली तथा दीर्घायु और बुद्धिमान् पुत्र पैदा होता है ॥ ५-१४ ॥

अथ रत्नभागोत्तररसः—

वज्रं मरकतं पद्मरागं पुष्पं च नीलकम्।
वैडूर्यं चाथ गोमेदं मौक्तिकं विद्रुमं तथा ॥ १५ ॥
पञ्चगुञ्जामितं सर्वं रत्नं भागोत्तरं परम्।
तत्तन्त्रोक्तविधानेन भस्मीकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १६ ॥
सर्वस्मादष्टगुणितं भस्म वैक्रान्तसम्भवम्।
तत्तुल्यं ताप्यजं भस्म तद्वद्विमलभस्म च ॥ १७ ॥
सर्वतस्त्रिगुणां तुल्यां रसगन्धककज्जलीम्।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य छागीदुग्धेन तद्दिनम् ॥ १८ ॥
विधाय पर्पटीं यत्नात्परिचूर्ण्य प्रयत्नतः।
वन्ध्याकर्कोटकीपर्णक्वाथेन परिमर्दयेत् ॥ १९ ॥
काननात्पलविंशत्या पुटेत्वाडशवारकम्।
एवं रसो विनिष्पन्नो रत्नभागोत्तराभिधः ॥ २० ॥
महावन्ध्यादिवन्ध्यानां सर्वासां सन्ततिप्रदः।
देवीशास्त्रे विनिर्दिष्टः पुंसां वन्ध्यत्वरोगनुत् ॥ २१ ॥
सोऽयं पाचनदीपनोरुचिकरो वृष्यस्तथा गर्भिणी-
सर्वव्याधिविनाशनो रतिकरः पाण्डुप्रचण्डार्तिनुत्।
धन्यो बुद्धिकरश्च पुत्रजननः सौभाग्यकृद्योषितां
निर्दोषः स्मरमन्दिरामयहरो योगादशेषार्तिनुत् ॥ २२ ॥

हीरा ५ रत्ती, मरकतमणि ( पन्ना ) ६ रत्ती, पद्मरागमणि ७ रत्ती, पुखराज ८ रत्ती, नीलम ९ रत्ती, वैदूर्यमणि १० रत्ती, गोमेद ११ रत्ती, मुक्ता १२ रत्ती, प्रवाल १३ रत्ती इस प्रकार इन सब रत्नों को क्रमशः उत्तरोत्तर एक २ भाग बढाकर लेवें तथा पश्चात् इन सब का यथाविधि पृथक् २ शोधन तथा मारण करना चाहिए। अथवा इनकी बनी बनाई भस्मों में से उपर्युक्त प्रमाणानुसार ग्रहण करनी चाहिए। तथा उपर्युक्त भस्मों से आठगुनी वैक्रान्तभस्म तथा वैक्रान्तभस्म के बराबर स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा उतनी ही विमल ( रौप्य ) माक्षिक की भस्म तथा वज्र से लेकर विमल तक के द्रव्यों की भस्म से तिगुनी समान भाग में लिये हुए शुद्धपारद और शुद्धगन्धक की कज्जली लेकर सबको एक बडी खरल में मिला

कर अच्छी तरह खरल करके बकरी के दुग्ध के साथ दो दिन तक घोट कर सुखा के कलईदार लोहे की कड़ाही में सब चूर्ण को भर कर अग्नि पर चढा कर लोहे की कलच्छी से चलाते रहना चाहिए। जब समग्र चूर्ण अच्छी तरह से पिघल जाय तब उसको गीले गोबर के ऊपर रखे हुए केले के हरे पत्र पर ढाल कर ऊपर से केले के हरे पत्रही को ढक कर गोबर रख के दबा देवें। जब पर्पटी स्वाङ्गशीतल हो जाय तब उसका खरल में महीन चूर्ण करके बांझक कोढ़े के पत्तों के क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द करके २० जंगली कण्डों के मध्य में रखकर लघुपुट दे देना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से रस के गोले को निकालकर खरल में चूर्ण करके बांझककोढ़े के पत्तों के क्वाथ के साथ खरल करके गोला बनाकर शरावसम्पुट में बन्द करके पूर्ववत् २० कण्डों के मध्य में सम्पुट को रखकर पुट दे देवें। इस तरह सौलह पुट देने चाहिए। इस तरह यह रत्नभागोत्तर नामक रस तैयार हो जाता है। यह रस महावन्ध्या तथा अन्य प्रकार की सब बांझ स्त्रियों को पुत्र देने वाला है। यह रस पुरुषों के वन्ध्यत्व को भी नष्ट करता है, ऐसा देवी भागवत में लिखा है। यह रत्नभागोत्तर रस खाये हुए गरिष्ठान्न को पचाता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है, भोजन की रुचि और वृष्य शक्ति को बढाता है, गर्भिणी स्त्रियों की सर्व प्रकार की बाधाओं को दूर करता है, रति शक्ति को बढाता है, पाण्डुरोग तथा उससे या अन्य रोगों से उत्पन्न हुई भयङ्कर पीड़ाओं को दूर करता है। यह रस अत्यन्त हितकर होने से धन्य है तथा बुद्धि को बढ़ाता है तथा स्त्रियों को पुत्र पैदा कराता है, और उनके सौभाग्य को बढ़ाता है। यह रस सर्व प्रकार के दोषों से रहित है, तथास्त्रियों के स्मरमन्दिर ( जनेन्द्रिय ) के रोगों को नष्ट करता है। यह रस यथा व्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से शरीर के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है ॥ १५–२२ ॥

अथ चक्रिकाबन्धरसः—

गन्धकः पलमात्रश्च पृथगत्तौ शिलाऽऽलकौ ।
त्रिदिनं मर्दयित्वाऽथ विदध्यात्कज्जलीं शुभाम् ॥ २३ ॥
विषाणाकारमूषायां कज्जलीं निक्षिपेत्ततः ।
द्विपलस्य च ताम्रस्य तन्मुखे चक्रिकां न्यसेत् ॥ २४ ॥

सन्निरुध्यातियत्नेन सन्धिबन्धे विशोषिते ।
ततः करिपुटार्धेन पाकं सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥ २५ ॥
स्वतः शीतं समुद्धृत्य चक्रिकां परिचूर्णयेत् ।
स्थगयेत् कूपिकामध्ये वस्त्रेण परिगालितम् ॥ २६ ॥
रसोऽयं चक्रिकाबन्धस्तत्तद्रोगहरौषधैः ।
दातव्यः शूलरोगेषु मूले गुल्मे भगन्दरे ॥ २७ ॥
ग्रहण्यामग्निमान्द्ये च विद्रधौ जठरामये ।
नागोदरे तथैवोपविष्टके जलकूर्मके ॥ २८ ॥
स्कन्देनामन्दकृपया त्रिलोकत्राणहेतवे ।
चक्रिकाबन्धनामाऽयं प्रसूतस्त्रीगदापहः ॥ २९ ॥

शुद्धगन्धक १ पल, शुद्धमनःशिला १ अक्ष ( १ कर्ष=१६ मा० ), शुद्धहरताल १ अक्ष लेकर इन तीनों को पत्थर की खरल में अच्छी तरह से तीन दिन तक घोट कर महीन कज्जली बना लेवें । फिर इस कज्जली को शृङ्ग (सींग) के समान प्रारम्भ (मूल) में चौड़ी तथा ऊपर की ओर क्रमशः सङ्कुचित आकार वाली मूषा में भर कर उस के मुख को दो पल भर शुद्ध ताम्र की टिकिया से ढक कर चिकनी मिट्टी के कीचड़ से सारे शृङ्ग को तथा सन्धि को लीप कर सन्धि बन्धन मजबूत कर के सुखा देवें । फिर उस शृङ्ग को आधे गजपुट की अग्नि में फूंक देवें । इस प्रकार फूंकने के पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से चक्रिका के सहित सिद्ध औषध को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के वस्त्र से छान कर काच की शीशी में भर देवें । इस को चक्रिकाबन्ध रस कहते हैं । इस रस को यथा व्याधिहर अनुपानों के साथ शूल रोग, अर्श, गुल्म, भगन्दर, ग्रहणी, अग्निमान्द्य, विद्रधि, पेट ( उदर ) के विकार, नागोदर, उपविष्टक रोग तथा जल कूर्मक रोगों में प्रयुक्त करना चाहिए । इस रस को स्कन्द नामक आचार्य ने अथवा स्वामी कार्तिकेयजी ने अत्यन्त कृपा कर के तीनों लोकों की रक्षा के निमित्त बताया है । यह चक्रिका बन्ध नामक रस प्रसूता स्त्रियों के समस्त रोगों को नष्ट करता है ॥ २३-२९ ॥

विमर्शः – नागोदर रोग एक दुष्ट गर्भ विशेष रोग है इस का लक्षण सुश्रुत में इस प्रकार मिलता है यथा-शुक्रशोणितं वायुनाऽभिप्रपन्नमवक्रान्तजीवमाधमापयत्युदरं तत् कदाचिद् यदृच्छयोपशान्तं नैगमेषापहमिति मुनयो भाषन्ते तमेव कदाचित्

प्रलीयमानं नागोदरमित्याहुः। इति। चरक में भी निम्न रूप से वर्णन मिलता है यथा—उपवासकर्मपरायाः पुनः कदाचिदाहारायाः स्नेहद्वेषिण्या वातप्रकोपणोक्तान्यासेवमानायाः परिशुष्कत्वात् स कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रमतिमात्रस्पन्दनश्च भवति तं नागोदरमित्याचक्षते, इति।

उपविष्टक तथा जलकूर्मक ये भी दोनों एक प्रकार के गर्भ विकृति होके अवान्तर भेद हैं। उपविष्टक का लक्षण चरक में निम्न रूप से मिलता है, यथा–यस्याः पुनरूष्णतीक्ष्णोपयोगाद्गर्भिण्या महति गर्भे जातसारे पुष्पदर्शनं स्यादन्यो वा योनिस्रावस्तस्या गर्भो न वृद्धि प्राप्नोति निःसृतत्वात्, सकालमवतिष्ठतेऽतिमात्रं तमुपविष्टकमित्याचक्षते केचित्, इति। जलकूर्मक में गर्भ कूर्म की तरह अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों को सङ्कुचित कर लेता है जिससे विशेष विकृति आ जाती है॥

अथ वर्धमानरसः—

पलार्धप्रमिते स्वर्णे ताम्रं दत्वाऽक्षमात्रया।
निर्वापयेच्छृतं वारं निक्षिप्य शुकपिच्छकम्॥ ३०॥
ततश्च सारणायन्त्रे सूत्रस्थानसमीरिते।
सारणातैलसंयुक्तं जीर्णषड्गुणसंयुतम्॥ ३१॥
रसं हि द्विपलं दत्त्वा सारणाविधियोगतः।
सारयित्वा ततः पश्चात्पिष्टं सूतं प्रयत्नतः॥ ३२॥
सूत्रप्रोक्तेष्टिकायन्त्रे स्वेदावेष्टनवाससाम्।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टं चतुर्निष्कमितं दनुम्॥ ३३॥
ऊर्ध्वं च विनिधायाऽथ जारयित्वा चतुर्गुणम्।
तमादाय रसं सम्यग्विचूर्ण्य परिगाल्य च॥ ३४॥
षष्ठांशेन मृतं वज्रं समं वैक्रान्तकं स्मृतम्।
निक्षिप्य लिङ्गिकापत्ररसैरापूर्य वासरम्॥ ३५॥
पुटेद् द्वादशवाराणि मध्वा द्वादशकोपलैः।
बन्धुजीवरसेनाऽथ लक्ष्मणा स्वरसेन च॥ ३६॥
पुनः सञ्चूर्ण्य सम्पूज्य योगिनीपितृदेवताः।
पुत्रिण्याः पूर्णिमायाश्च पूजिताया विधानतः॥ ३७॥
इति कृत्वाऽऽप्नुयाद्गर्भं षण्मासाऽभ्यन्तरे खलु।
आदिवन्ध्यादिका वन्ध्या याश्चान्या दुष्टयोनयः॥ ३८॥

प्राप्नुयुर्जीवपुत्रं हि भाग्यसौभाग्यसंयुतम् ।
पुंसामपि च वन्ध्यत्वं ह्यल्परेतस्त्वमेवच ॥
बीजदोषा विचित्राश्च विनश्यन्ति न संशयः ॥ ३९ ॥
ब्रह्मज्योतिर्मुनिवरमतो वर्धमानो रसोऽयं
वन्ध्यारोगं हरति सकलं योनिदोषानशेषान् ।
सूतोरोगानपि बहुविधान्दुःखसाध्यान्समस्ता-
न्रोगानन्यानपि रसवरो योगयुक्तो(१)निहन्यात् ॥ ४० ॥

आधे पल ( दो कर्ष ) भर शुद्ध स्वर्ण को वह्नि के योग से लौह की कलच्छी या कड़ाही में पिघला कर उसमें १ अक्ष ( १ कर्ष ) भर शुद्ध पिघला हुआ ताम्र मिला कर दोनों को प्रतप्त करें, फिर उनमें दो कर्ष भर गन्धक डालकर अत्यन्त अग्नि देकर गन्धक का जारण हो जाने के पश्चात् उन ( ताम्र स्वर्णद्युति ) को तैल, तक्र, आदि में बुझावें । इस तरह स्वर्ण और ताम्र को बार २ प्रतप्त कर के पिघला कर गन्धक का जारण करके तैलतक्रादियों में बुझावें । इस तरह सौ वार करना चाहिए । फिर इस बुझाये हुए स्वर्ण और ताम्र के योग को सूत्रस्थान अर्थात् नवमाध्याय में "सूते सतैलयन्त्रस्थे" इत्यादि प्रकार से वर्णित सारणायन्त्र में रख देवें, फिर उस स्वर्ण ताम्र के योग में सारणायन्त्र के द्वारा निकाले हुए तैल से अच्छी प्रकार मर्दित तथा ६ गुणे गन्धक के योग से जारित किया हुआ दो पल भर शुद्ध पारद मिला कर सारणाविधि के अनुसार सारणकर्म करके ताम्र और स्वर्ण के सहित उस पारद को खरल में अच्छी प्रकार महीन पीस कर यन्त्राध्याय में कहे हुए इष्टिकायन्त्र में रख देवें । फिर उस इष्टिकायन्त्र के मुख के ऊपर अच्छी तरह से एक मजबूत तथा स्वच्छ कपड़ा बांध कर उस कपड़े के ऊपर बिजोर निम्बू के स्वरस में पीसा हुआ चार निष्क भर गन्धक बिछाकर उसको एक शराव या सकोरे से ढककर शराव और इष्टिकायन्त्र की सन्धि को

---

( १ ) "योगयुक्तो निहन्यात्" इत्यनन्तरं पुस्तकान्तरे—"समजीर्णाभ्रसूतेन भस्मैतत् साधयेत् खलु । अन्यथा न यथा प्रोक्तं फलं दत्तं दुरत्ययम् ॥ पाण्ड्वर्तिग्रहणीप्रमेहगुदजातोसारयक्ष्मापहं; सद्यो दीपनपाचनो रुचिकरो निःशेषगुल्मापहः । कासश्वासबलासपीनसमरुत्पित्तार्तिमात्यन्तिकं वृष्यं पुष्टिकरं समस्तगदहृद्योगेन संयोजितम् ॥ इति योगः" । इत्यधिकः पाठः ॥

अच्छी तरह से बन्द कर देवें। फिर उस सम्पुट को कपोतपुट में रख कर पाक प्रारम्भ कर देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुए रस को निकाल कर खरल में घोट के चूर्ण बना कर वस्त्र से छान लेवें। फिर इस चूर्ण में समग्र रस की अपेक्षा षष्ठांश हीरे की भस्म तथा रस के बराबर वैक्रान्त की भस्म डालकर सबको एकदिन तक निरन्तर पीसकर शिवलिङ्गी के पत्तों के स्वरस अथवा क्वाथ से रात भर भींगोकर दूसरे दिन १२ घण्टे तक घोटकर टिकिया बना के शराव सम्पुट में रखकर १२ कण्डों की अग्नि में लघुपुट दे देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल होनेपर सम्पुट से टिकायाओं को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके शिवलिङ्गी के पत्तों के स्वरस या क्वाथ की रातभर भावना देकर दूसरे दिन दिनभर घोट के टिकिया बनाकर सूखने पर शराव सम्पुट में बन्द करके १२ कण्डों की अग्नि में पाक करना चाहिए। इस तरह शिवलिङ्गी के पत्र-स्वरस या क्वाथ के साथ घोट२ कर बारह वार पाक करना चाहिए। पश्चात् इसी तरह शहद् के साथ घोट२ कर बारह पुट देवें तथा बन्धूकपुष्प (गुलदुपहरिया) के स्वरस या क्वाथ से भी बारह वार भावित करके बारह पुट देने चाहिए। इसी तरह लक्ष्मणा के पञ्चाङ्ग के स्वरस या क्वाथ से अथवा सफेद कण्टकारी की जड़ के क्वाथ से १२ वार भावित करके १२ पुट देने चाहिएं। इस तरह सर्व पुटों के समाप्त होने पर सिद्ध औषध को अच्छी तरह से खरल में महीन घोटकर कपड़े से छान के काच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख देवें। फिर इस रस के सेवन करने के पूर्व पुत्राभिलाषिणी स्त्री अथवा उसके सम्बन्धी जन योगिनी, पितृगण, देवता, पुत्रवती स्त्री तथा पतिव्रता स्त्री इन सब की यथाविधि पूजन करें। इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् इस रसका सेवन प्रारम्भ करना चाहिए तथा ६मास तक निरन्तर दिन में दो वार ( प्रातःसायम् ) सेवन करते रहें। इस क्रम से इस रसके सेवन करने से आदिवन्ध्या, वन्ध्या तथा अन्य दूषित योनिवाली स्त्रियें भी गर्भ धारण करके अपने भाग्य और सौभाग्य से युक्त होकर चिरकाल तक जीवित रहने वाले पुत्रको पैदा करती हैं। इस रस के सेवन करने से पुरुषों का वन्ध्यत्व, अल्पशुक्रता, बीजदोष तथा अन्य प्रकार के शुक्र सम्बन्धी अन्य सब उपद्रव दूर हो जाते हैं, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है। ब्रह्मज्योतिर्नामक मुनिवर के सम्मत अर्थात् उनका अनुभूत यह वर्द्धमान नामक रस यथाविधि प्रतिदिन सेवन

करने से स्त्रियों के सब प्रकार के वन्ध्यारोगों को तथा समग्र योनिदोष और सूतिकारोगों को नष्ट करता है तथा यथाव्याध्यनुपानों के अनुसार सेवन करने से अन्य प्रकार के समस्त दुःसाध्य रोगों को भी नष्ट कर देता है। यह रस अन्य योगों के साथ सेवन करने से सकल रोगों को विनष्ट करता है ॥ ३०-४० ॥

अथ द्रुतिसाररसः—

युक्तं हि व्योमजद्रव्यां तुल्यांशं स्वर्णयुग्रसम् ।
पिष्टीकृतं चिरं पिष्ट्वा मल्लसम्पुटके क्षिपेत् ॥ ४१ ॥
निष्कमात्रं बलिं दत्त्वा शतवारं पुटेत्ततः ।
सम्यङ्निष्पिष्य सङ्कालय करण्डान्तर्विनिक्षिपेत् ॥४२॥
इत्युक्तो द्रुतिसारनामकरसो वन्ध्यामयध्वंसनः
पुत्रीयः खलु सूतिकामयहरो वृष्यश्चिरायुष्करः ।
सम्यक्सिद्धबलिद्रुतिप्रकलितो गुञ्जामितः सेवितः
कुर्यात्तीव्रतरां क्षुधं त्वथ महारोगादि रोगाञ्जयेत् ॥ ४३ ॥
मतः सर्वामयध्वंसी रसोऽयं हरिसूचितः ।
जीवत्पुत्रप्रदः स्त्रिणां यौवनस्थैर्यदायकः ॥ ४४ ॥
भूतप्रेतपिशाचानां भयेभ्योऽभयदायकः ।
जडानां दाहदार्तानां मन्दबुद्धिमतामपि ॥ ४५ ॥
मण्डूकीरससंयुक्तो दातव्यो वचया सह ।
जन्मवन्ध्याः काकवन्ध्या मृतवत्साश्च याः स्त्रियः ।
तासां पुत्रोदयार्थाय शम्भुना सूचितः पुरा ॥ ४६ ॥

एक पल भर शुद्ध स्वर्णपत्र तथा १ पल भर शुद्ध पारद इन दोनों को पत्थर की खरल में एकदिन तक एक साथ घोटें। जब समग्र पारद स्वर्ण के साथ मिल जाय ( पत्रोंपर चढ़जाय ) तब उस दोनों को एक पलभर शुद्ध अभ्रक को कटाह में पिघलाकर उसमें मिला के अच्छी प्रकार घोटकर पिष्टी बना लेवें। फिर उस पिष्टी को एक शराव ( सकोरे ) में रखकर उसके ऊपर तथा नीचे १ कर्ष भर शुद्ध गन्धक डालकर या रखकर दूसरे शराव से ढक के दोनों की सन्धि को गीली कपड़मिट्टी से लिप्त करके बन्द करके सुखा देवें। इस प्रकार सूख जानेपर सम्पुट को कुक्कुटपुट या लघुपुट में रखकर अग्नि प्रदीप्त करके पुट दे देना चाहिए।

पश्चात् स्वाङ्गशीतलसम्पुट से पिष्टी को निकालकर पूर्ववत् दूसरे सकोरे में रख के ऊपर नीचे गन्धक रखकर शरावान्तर से ढक के सन्धिबन्धन कर के पुट दे देवें। इस तरह प्रत्येक वार एक २ कर्ष शुद्ध गन्धक दे २ कर सौ (१००) पुट देने चाहिए। प्रतिपुट में गन्धक को ऐसे ही पिष्टी के चारों ओर रख देवें अथवा पिष्टी तथा गन्धक को खरल में महीन घोटकर फिर सम्पुट में बन्द करके सौ पुट देने चाहिएं। पश्चात् सिद्धरस को खरल में अच्छी तरह पीसकर कपड़े से छान के शीशी में भर देवें। इसको द्रुतिसार रस कहते हैं। यह रस वन्ध्या स्त्रियों के सर्व प्रकार के रोगों को विनष्ट करता है, पुत्र प्रदान करता है, सूतिका रोगो को भी दूर करता है, वृष्य शक्ति को बढाता है तथा आयुको बढाता है। एक रत्ती भर इस रस को विधि पूर्वक बनाई हुई गन्धक की द्रुति के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से बुभूक्षा को प्रदीप्त करता है तथा साथ में अनेक प्रकार के अर्श भगन्दरादिक महारोगों को भी नष्ट करता है। हरिनाम के आचार्य के द्वारा बताया हुआ यह रस यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के रोगों का विध्वंस कर देता है। इस रस के सेवन करने से स्त्रियों का यौवन स्थिर रहता है तथा उनके चिरञ्जीवी पुत्र पैदा होता है। यह रस भूत प्रेत और पिशाच आदि के द्वारा उत्पन्न हुए भय से प्राणियों को निर्मुक्त कर देता है। यह रस जड़ अर्थात् अपस्मार और उन्माद आदि से निश्चेष्ट पुरुष तथा मन्द बुद्धिवाले और दौहद से पीड़ित स्त्रियों के लिये भी अत्यन्त हितकर है। मन्द बुद्धि वाले पुरुषों को ब्राह्मी अथवा मण्डूकपर्णी के स्वरस, क्वाथ या चूर्ण तथा वचा के स्वरस, क्वाथ या चूर्ण और शहद् के साथ इसे सेवन कराना चाहिए। जो स्त्रिएं जन्मवन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा हैं उनके पुत्र उत्पन्न होने के लिये श्रीब्रह्माजी ने पूर्वकाल में इस रस को बताया था ॥ ४१–४६ ॥

विमर्शः—अभ्रक की द्रुति के प्रकार का वर्णन रसेन्द्रचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में निम्न रूप से मिलता है।

यथा—अगस्त्यपत्रनिर्यासैर्मर्दितं शूरणोदरे। गोष्ठभूस्थं घनं मासं जायते जल सन्निभम्। इति। अन्यत्रापि—स्वरसेन वज्रवल्याः पिष्टं सौवर्चलान्वितं गगनम् पक्वञ्च शरावपुटे बहुवारं भवति रसरूपकम्। निजरसबहुपरिभावितसुरदालीचूर्णवापेन। द्रवति पुनः संस्थानं भजते कनकत्वं कालेऽपि ॥ इति।

अथ सामान्योपायाः—

तत्र सर्पाक्षीप्रयोगः—

**समूलपत्रां सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत् ।**
**एकवर्णगवां क्षीरैः कन्याहस्तेन पेषयेत् ॥ ४७ ॥**
**ऋतुकाले पिबेद्वन्ध्या पलार्धं तद्दिने दिने ।**
**क्षीरशाल्यन्नमुद्गं च ह्यल्पाहारं प्रकल्पयेत् ॥ ४८ ॥**
**उद्वेगं त्वथ शोकं च दिवा निद्रां च वर्जयेत् ।**
**न कर्म कारयेत्किञ्चिद्वर्जयेच्छीतमातपम् ॥**
**एवं सप्तदिनं कुर्याद्वन्ध्या भवति गर्भिणी ॥ ४९ ॥**

सर्पाक्षी अर्थात् पान शिउली या रास्नाविशेष औषध को रविवार के दिन प्रातः काल जड़ और पत्तों के सहित उखाड़ कर अपने घर ले आवें । फिर उस में से आधे पल भर लेकर शुद्ध पत्थर पर एकवर्ण वाली गाय के कच्चे दुग्ध के साथ कन्या ( कुंआरी लड़की ) के हस्त से महीन पिसवा कर थोड़ी सी मिश्री या शर्करा मिला कर दुग्ध में घोल कर वन्ध्या स्त्री को मासिक धर्म के स्नान के पश्चात् ४ से ७ दिन तक पिलानी चाहिए तथा बुभुक्षा लगने पर दुग्ध, सांठी के चांवल और मूंग की दाल पथ्य में थोड़ी २ कर के खिलानी चाहिए। साथ में ज्यादा घबड़ाहट, शोक, दिवा शयन, अधिक शीतलपवन, शीतल पदार्थों का सेवन, तेज धूप का सेवन तथा परिश्रम का कार्य आदि त्याग देना आवश्यक है। इस तरह नियम पूर्वक सर्पाक्षी को सात दिन तक पीने से वन्ध्या स्त्री भी गर्भिणी हो जाती है । प्रायः इस प्रयोग को तीन या चार वार मासिक धर्म के समय सेवन करते रहने से यथेष्ट फल प्राप्त होता है तथा मासिक धर्म के समय का रज शुद्ध हो जाता है तथा रजः कृच्छ्र आदि उपद्रव भी समूल नष्ट हो जाते हैं ॥४७–४९॥

अथ देवदालीप्रयोगः—

**देवदालीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे ।**
**निष्कत्रयं गवां क्षीरैः पूर्ववत्क्रमयोगतः ।**
**वन्ध्या प्रलभते गर्भं देयं पथ्यं यथा पुरा ॥ ५० ॥**

देवदाली ( बन्दाल ) की ३ निष्क ( १२ मा० ) भर जड़ को दीतवार

और पुष्य नक्षत्र का योग होने पर प्रातःकाल उखड़ा कर मंगवा लेनी चाहिए। जब वन्ध्या स्त्री रजस्वला होने के पश्चात् चौथे दिन प्रातःकाल स्नान कर के निवृत्त हो जाय तब उस को कन्या के हस्त से एक वर्ण वाली गाय के दुग्ध में देवदाली की जड़ को पिसवाकर दुग्ध में घोल के मिश्री या चीनी डलवा कर पिला देवें। इस तरह सात दिन तक पिलानी चाहिए तथा भूख लगने पर दूध, साठी के चांवलों का भात और मूंग की दाल का थोड़ा २ पथ्य लेना चाहिए, तथा दिन में शयन, काम, क्रोध, उद्वेग और शोक श्रमादिकों का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार इस प्रयोग के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री गर्भिणी हो कर चिरजीवी पुत्र उत्पन्न करती है ॥ ५० ॥

अथ शरपुङ्ख्याप्रयोगः—

**शीततोयेन सम्पिष्टं शरपुङ्खीयमूलकम् ।**
**कर्षं पीत्वा लभेद्गर्भं पूर्ववत्क्रमयोगतः ॥ ५१ ॥**
**नोचेदपरमासे तु कारयेत्पूर्ववत्फलम् ।**
**पतिसङ्गे लभेद्गर्भं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५२ ॥**

उपर्युक्त विधि के अनुसार अर्थात् रविपुष्य योग के दिन उखाड़ी हुई शरपुङ्खा की एक कर्ष भर जड़ को एक वर्णवाली गाय के दुग्ध में कन्या के हाथ से पिसवा कर दुग्ध में घोल के मिश्री या चीनी मिला कर ऋतुस्नान के पश्चात् सात दिन तक पीने से वन्ध्या स्त्री भी गर्भधारण करती है। इस योग से यदि एक वार सात दिन तक पीने से फल ( गर्भ धारण ) न हो तो दूसरे मास में ऋतुस्नान के पश्चात् सात दिन तक पीने से वन्ध्या स्त्री भी गर्भधारण करती है ॥ ५१-५२ ॥

रुद्राक्षादिप्रयोगः—

**एकमेव तु रुद्राक्षं सर्पाक्षी कर्षमात्रकम् ।**
**पूर्ववच्च गवां क्षीरैः ऋतुकाले प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥**
**महागणेशमन्त्रेण रक्षां तस्यास्तु कारयेत् ।**
**एवं दिनत्रयं कृत्वा वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ५४ ॥**

रुद्राक्ष का १ दाना ( मण्या ) तथा १ कर्ष भर मूल ( जड़ ) और पत्र वं

सहित सर्पाक्षी इन दोनों को लेकर रुद्राक्ष को एक वर्ण वाली गाय के दुग्ध में चन्दन की तरह कन्या के हाथ से पिसवाकर पाव भर दुग्ध में मिला दें तथा शरपुङ्खा को भी एक वर्ण वाली गाय के दुग्ध में कन्या के हाथ से पिसवा कर रुद्राक्ष घृष्ट युक्त दुग्ध में मिला दें। फिर उस दुग्ध में थोड़ी सी चीनी या मिश्री मिला कर ऋतुस्नान करने के पश्चात् वन्ध्या स्त्री को पिला देवें तथा औषध पीने के पश्चात् अग्नि पर गूगल आदि की धूप लगाकर "ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा" इस महागणेशमन्त्र ले उस स्त्री को १११ वार झाड़नी चाहिए। इस तरह तीन दिन तक इस योग के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है अर्थात् इस योग के सेवन करने के पश्चात् वह सन्तानोत्पत्ति कराने में समर्थ स्वभर्ता के साथ सङ्गम करने से गर्भवती हो जाती है ॥ ५३-५४ ॥

श्वेतकण्टकारीप्रयोगः—

**सुश्वेतकण्टकार्याश्च मूलं तद्वच्च गर्भकृत् ॥ ५५ ॥**

अथवा श्वेतकण्टकारी की १ कर्ष भर जड़ को एक वर्ण वाली गो के दुग्ध में कन्या से पिसवा कर रुद्राक्ष के घासे के साथ या स्वतन्त्र ( अकेली ही को ) दुग्ध में घोलकर चीनी मिलाकर तीन दिन तक ऋतुस्नान के पश्चात् पीने से स्त्री का वन्ध्यत्व दोष नष्ट हो जाता है और वह शुद्ध शुक्रवाले स्वभर्त्ता के साथ सङ्गम करने से गर्भवती हो जाती है ॥ ५५ ॥

विष्णुक्रान्ताप्रयोगः—

**पूर्वपुत्रवती तासां कर्म तद्वच्च कथ्यते ।**
**पेषयेन्महिषीक्षीरैर्विष्णुक्रान्तां समूलकाम् ॥ ५६ ॥**
**महिषीनवनीतेन ऋतुकाले तु भक्षयेत् ।**
**एवं दिनं दिनं कुर्यात्पथ्ययुक्त्या च पूर्ववत् ॥**
**गर्भं प्रलभते नारी काकवन्ध्या सुशोभनम् ॥ ५७ ॥**

अब पूर्वपुत्रवती अर्थात् जिनके एक वार पुत्र होने के पश्चात् सन्तति न होती हो ऐसी काकवन्ध्या स्त्रियों को पुत्र देने के योग्य कर्म अर्थात् चिकित्सासम्बन्धी योगों का वर्णन किया जाता है। यथा—विष्णुक्रान्ता को जड़ के सहित उखाड़

कर भैंस के दुग्ध में पीसकर भैंस ही के नवनीत ( ताजे घृत या मक्खन ) में मिलाकर थोड़ी सी चीनी डालकर ऋतुस्नान के पश्चात् सात दिन तक सेवन करें। तथा पूर्ववत् पथ्य का पालन करने से काक वन्ध्या स्त्री फिर गर्भधारण करने योग्य हो जाती है ॥ ५६-५७ ॥

अश्वगन्धाप्रयोगः—

**अश्वगन्धोयमूलं तु ग्राह्येत्पुष्यभास्करे ।**
**पेषयेन्महिषीक्षीरैः पलार्धं पाययेत्सदा ॥**
**सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवन्ध्या चिरायुषम् ॥ ५८ ॥**

रविवार के दिन पुष्यनक्षत्र का योग होने पर असगन्ध की जड़ को उखाड़ कर घर ले आवें तथा जिस दिन स्त्री रजस्वला होने के कारण स्नान करके शुद्ध हो जाय उस दिन उस जड़ में से आधी पल ( २ कर्ष ) भर जड़ को भैंस के दुग्ध में पिसवा कर पिला देवें। इस तरह एक सप्ताह तक पिलाने से काकवन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करके चिरजीवी पुत्र को पैदा करती है ॥ ५८ ॥

अथ शिवोक्तान्त्रिकप्रयोगः—

अथ मृतवत्सालक्षणम्—

**गर्भः सञ्जातमात्रस्तु पक्षान्मासाच्च वत्सरात् ।**
**म्रियते द्वित्रिवर्षैर्वा यस्याः सा मृतवत्सका ॥**
**तन्त्रयोगं प्रकुर्वीत यथा शङ्करभाषितम् ॥ ५९ ॥**

जिस स्त्री के ऋतुकाल में स्वभर्त्ता के साथ सङ्गम करने से गर्भधारण होकर फिर उसका १ पक्ष ( १५ दिन ) या एक मास के अन्दर ही स्राव हो जाय अथवा बालक के जन्म हो जानेपर भी १ वर्ष, दो वर्ष या तीन वर्ष के भीतर वह बालक मर जाय तब वह स्त्री मृतवत्सा कहलाती है। ऐसी स्त्री के गर्भ अथवा पुत्र की रक्षा के लिये श्रीशङ्कर भगवान् के द्वारा कहे हुए निम्नलिखित तान्त्रिक प्रयोग का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ५९ ॥

अथ शङ्करोक्तदेवव्यपाश्रयचिकित्सा—

**मार्गशीर्षेऽथवा ज्येष्ठे पूर्णायां लेपिते गृहे ।**
**नूतनं कलशं पूर्णं गन्धतोयेन कारयेत् ॥ ६० ॥**
**शाखाफलसमायुक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ।**

सुवर्णमुद्रिकायुक्तं षट्कोणे मण्डले स्थितम् ॥ ६१ ॥
तन्मध्ये पूजयेद्देवीमेकान्तानामविश्रुताम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥ ६२ ॥
अर्चयेद् भक्तिभावेन मद्यैर्मांसैः समत्स्यकैः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥ ६३ ॥
वाराही च तथा चैन्द्री षट्पत्रेषु च मातृकाः ॥
पूजयेन्मन्त्रलिङ्गेन ओङ्कारैर्नामसंयुतैः ॥ ६४ ॥
दधिभक्तेन पिण्डानि सप्तसङ्ख्यानि कारयेत् ।
षट्संख्या षट्सु पत्रेषु आहृत्य कल्पयेत्पृथक् ॥ ६५ ॥
उल्लेख्य सप्तकं पिण्डं शुचिस्थाने बहिः क्षिपेत् ।
तैर्भुक्तैर्गृहमागच्छेच्चकाग्रे योगमाचरेत् ॥ ६६ ॥
कन्यका योगिनी रामा भोजयेत्सकुटुम्बकम् ।
दक्षिणां दापयेत्तासां देवताग्रे निवेद्य च ॥ ६७ ॥
विसर्ज्य देवतां चाऽथ नद्यां तत्कलशोदकम् ।
शकुनं वीक्षयेद्धीमाञ्शुभेन शुभमादिशेत् ॥ ६८ ॥
विपरीते पुनः कुर्याद्योगं तद्वत्सुसिद्धिदम् ।
प्रतिवर्षमिदं कुर्याद्दीर्घजीवी सुतो भवेत् ॥ ६९ ॥
"ॐ ह्रां ह्रीं एकान्तदेवतायै नमः"
अनेन मन्त्रेण पूजा जपश्च कार्यः ।

मार्गशीर्ष ( अगहन ) अथवा ज्येष्ठमास की पूर्णिमा के दिन अपने गृहको अच्छी प्रकार पीली और गोबर से लीप पोत कर शुद्ध कर लेवें । पश्चात् ताम्र, स्वर्ण, रजत या मृत्तिका के नवीन कलश में शुद्ध जल भरकर उसमें स्वर्ण या रजत की मुद्रा तथा आम की शाखा ( डाली ) और नारियलफल तथा यथालभ्य रत्न, गन्धाक्षत आदि डाल कर उस कलश को उस शुद्धगृह के किसी शुभप्रदेश में षट्कोण का मण्डल बनवाकर वहां धान ( यव, गेहूं ) बिच्छाकर उनपर स्थापित कर दें । पश्चात् उसी कलश के समीप षट्कोण मण्डल में एकान्त नाम से विख्यात देवी की प्रतिमा बनवाकर स्थापित करके जल से स्नान करा कर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा मत्स्य आदि मांस और मद्य आदि अनेक

पदार्थों से तथा "ॐ हां हीं एकान्त देवतायै नमः" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए भक्ति पूर्वक उस देवी की पूजन करनी चाहिए। इस पूजन के पश्चात् षट्कोण मण्डल के प्रत्येक कोण में क्रम से ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही और ऐन्द्री (इन्द्राणी) इन ६ मातृकाओं का आवाहन कर के उन देवियों के बीजमन्त्र का उच्चारण करते हुए पूर्वोक्त पदार्थों से षोडशोपचार पूजन आदि भक्ति भाव से करनी चाहिए। इनकी पूजन करने के पश्चात् भात के अन्दर दही मिलाकर एक २ छटाङ्क के सात पिण्ड बना कर उन में से छ पिण्डों को छ ही मातृका देवियों के निमित्त षट्कोणमण्डल के उन छहों कोणों पर रख देवें तथा सातवें पिण्ड को स्वर्ण या रजत की सलाई या कुशा से उल्लिखित कर के अर्थात् उसपर ५ या सात लकीरें खींच कर घर के बाहर चौराहे के पवित्र स्थान में रख देवें तथा काक और श्वान (कुत्ते) आदि उस पिण्ड को खा जांय तब अपने गृह को आकर उपर्युक्त षट्कोणमण्डल के सन्मुख ही आसन बिछा के बैठ कर "ॐ हाँ हीँ एकान्तदेवतायै नमः" इस मन्त्र का १०००८ अथवा १००८ वार उच्चारण (जप) करना चाहिए। इस प्रकार मन्त्रजप करने के पश्चात् कन्या, योगिनो तथा सौभाग्यवती स्त्रियों को कुटुम्ब सहित भक्तिभाव पूर्वक भोजन करा कर दक्षिणा देवें। इस दक्षिणा को उन्हें देने के पूर्व ही एकान्तादेवी के समीप रख देनो चाहिए। पश्चात् वहां से ले ले कर उन्हें देवें। इसके पश्चात् आहूत देवी देवताओं का विसर्जन करके उस समग्र पूजन सामग्री (पुष्पादिक) तथा कलशोदक को किसी नदी या तालाब आदि में डाल देवें। जब नदी में यह सामग्री डाली जाय तब बुद्धिमान् पुरुष को शुभ शकुन का विचार कर लेना चाहिए जैसे—सामग्री के डालने से जल की लहरें (तरङ्ग) अपनी तरफ आरही हो अथवा सामग्रो डाल के गृह की तरफ लौटते समय कोई पुत्र को लिए (ली) हुई सौभाग्यवती स्त्री मिल जाय तब शुभ शकुन समझने चाहिए। यदि इनके विपरीत लक्षण या शकुन हो अर्थात् जल की तरङ्गे अपनी तरफ न आवें या गृह लौटते समय विधवा स्त्री, वन्ध्या स्त्री या अन्य अपवस्तु का दर्शन हो जाय तब फिर दूसरी वार इस उत्सव को करना चाहिए। इस तरह प्रतिवर्ष इस उत्सव के करते रहने से उस गृह की वन्ध्या स्त्री अपने निर्दोष स्वामी के साथ ऋतुकाल में सम्भोग करने से गर्भ को धारण करके दीर्घ-

जीवी पुत्र को उत्पन्न करती है। "ॐ ह्रौं ह्रौं एकान्त देवतायै नमः" इस मन्त्र से उपर्युक्त उत्सव में एकान्ता देवी का पूजन तथा जप करना चाहिए ॥६०-६९॥

अथ युक्तिव्यपाश्रये वन्ध्याकर्कोटकीप्रयोगः—

**प्राङ्मुखः कृत्तिकाऋक्षे वन्ध्याकर्कोटकीं हरेत्।**
**तत्कन्दं पेषयेत्तोये कर्षमात्रं पिबेत्सदा॥**
**ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीवी सुतो भवेत्॥ ७०॥**

कृत्तिका नक्षत्र में पूर्व दिशाकी तरफ मुख करके बांझ ककोड़े की जड़ को उखाड़ कर घर पर ले आवें। इस जड़ में से १ कर्ष भर जड़ को जल के साथ पीसकर ऋतुस्नान करने के पश्चात् वन्ध्या स्त्री को पिलावें। इस तरह एक सप्ताह तक इस योगके सेवन करते रहने से उस स्त्री के दीर्घजीवी सन्तान पैदा होती है॥ ७०॥

अथ गर्भिणीरोगः—

अथ गर्भिणीरोगापनयन-गर्भपोषणसामान्योपायाः—

तत्र प्रथममासे पद्माकादिकल्कः—

**अकस्मात्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना।**
**गोक्षीरैः पेषयेत्तुल्यं पद्मकोशीरचन्दनम्॥**
**पलमात्रं पिबेन्नारी त्र्यहाद्गर्भः स्थिरो भवेत्॥ ७१॥**

गर्भ धारण करने के पश्चात् प्रथम मास में कभी २ अकस्मात् गर्भ सम्बन्धी पीड़ा प्रारम्भ होती है। इस पीड़ा से गर्भ स्राव होने की सम्भावना रहती है अत एव पीड़ा को दूर करने के लिये पद्माक (पदुमकाठ का चूर्ण) उशीर (खस) और लाल चन्दन का चूर्ण इन तीनों को सम भाग मिला कर १ पल भर वजन ग्रहण कर के गाय के दुग्ध में अच्छी तरह महीन पिसवा के छान कर चीनी मिला के गर्भवती स्त्री को पिला देवें। इस तरह तीन दिन तक उपचार करने से गर्भ सम्बन्धी वेदना नष्ट हो जाती है तथा गर्भ भी स्थिर हो जाता है जिस से उस के स्राव होने की शङ्का दूर हो जाती है॥ ७१॥

अथ द्वितीयमासे नीलोत्पलादिकल्कः—

**नीलोत्पलं मृणालं च खण्डी कर्कटशृङ्गिका।**
**गोक्षीरैर्द्वितये मासि पीत्वा शाम्यति वेदना॥ ७२॥**

यदि गर्भ धारण करने के पश्चात् द्वितीय मास में गर्भ सम्बन्धी पीड़ा

प्रारम्भ हो जाय तब गर्भवती स्त्री को नील कमल, कमल की डण्डी, खण्डी अर्थात् मुद्गपर्णी (खण्ड पाठ होने पर लाल चन्दन) और काकड़ासींङ्गी इन औषधियों को समभाग लेकर चूर्ण बना के उसमें से आधे से १ तोले भर चूर्ण लेकर गाय के दुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए। इस चूर्ण को प्रायः सात दिन तक सेवन करते रहने से द्वितीय मास में उत्पन्न हुई गर्भ की वेदना शान्त हो जाती है तथा गर्भस्राव होने का भय भी नहीं रहता है ॥ ७२ ॥

अथ तृतीयमासेश्रीखण्डादिकल्कः—

**श्रीखण्डं तगरं कुष्ठं मृणालं पद्मकेसरम्।**
**पिबेच्छीतोदकैः पिष्टं तृतीये वेदना न हि ॥ ७३ ॥**

यदि गर्भधारण करने के पश्चात् तीसरे मास में गर्भिणी को गर्भसम्बन्धी वेदना का अनुभव होता हो तब श्रीखण्ड अर्थात् श्वेतचन्दन का चूर्ण, तगर का चूर्ण, मीठे कूट का चूर्ण, पद्म की डण्डी (नाल) और कमलकेसर इन सब को सम भाग लेकर खरल में एकत्र कर के पीस कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से प्रतिदिन १ तोले से ३ तोले तक लेकर शीतल जल के साथ पत्थर पर महीन पीस कर चीनी मिला के वस्त्र से छान कर गर्भिणी स्त्री को पिला देवें। इस तरह एक सप्ताह तक उपचार करते रहने से गर्भ सम्बन्धी वेदना दूर हो जाती है तथा गर्भस्राव होने का भय भी दूर हो जाता है ॥ ७३ ॥

अथ तृतीयमासे नीलोत्पलादिप्रयोगान्तरम्—

**नीलोत्पलमृणालानि गोक्षीरैश्च कसेरुकम् ॥ ७४ ॥**

अथवा नील कमल, कमल की नाल (मृणाल) और कसेरू इन को सम भाग की मात्रा से १ पल भर लेकर पत्थर पर गाय के दुग्ध के साथ महीन पीस कर कपड़े से छान के चीनी मिला कर गर्भिणी को पिलाने से भी तीसरे मास की वेदना दूर हो जाती है ॥ ७४ ॥

अथ गर्भिणीज्वरहरः पाठादिकषायः—

**पाठामुस्तावयःस्थाम्बुसारिवापद्मकैः श्रृतम्।**
**शीतं तोयं निहन्त्याशु गर्भिणीज्वरवेदनाम् ॥ ७५ ॥**

यदि गर्भिणी स्त्री को ज्वर का उपद्रव प्रारम्भ हो जाय तब उसको दूर करना चाहिए। ऐसा न करने से उस ज्वर के प्रतिदिन बढते रहने से गर्भाशय की

गरमी भी बढ जाती है और गर्भ का स्राव हो जाता है। यदि स्राव न भी हो तो वह ज्वर बालक को हानि पहुंचाता तथा गर्भजन्म के पश्चात् प्रसूतीरोग का कारण हो जाता है। निम्न कषायादिक सौम्य उपचारों से गर्भवती स्त्री का ज्वर दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। पाठा, नागरमोथा, वयःस्था अर्थात् ब्राह्मी अथवा आंवले, अम्बु अर्थात् नेत्रवाला, सारिवा (अनन्तमूल) और पद्माख इन सबको समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बनाके चतुर्थांश शेष रहने पर छान करके शीतल होने पर गर्भिणी को पिला देवें। इस क्वाथ को जब तक ज्वर दूर न हो तबतक प्रतिदिन पिलाते रहना चाहिए। इस योग के सेवन करने से गर्भिणी स्त्रियों का ज्वर तथा वेदनाएं दूर हो जाती हैं ॥ ७५ ॥

अथ गर्भिणीज्वरहरश्छिन्नादिकषायः—

**छिन्ना श्रीपर्णिकाक्काथः सिताक्षौद्रयुतो हरेत्।**
**गर्भिणीनां ज्वरं घोरं लङ्केशमिव राघवः ॥ ७६ ॥**

अथवा गुडूची, श्रीपर्णी अर्थात् गम्भारी की छाल इन दोनों को समभाग लेकर अठगुने जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर नीचे उतार के वस्त्र से छान कर मिश्री या चीनी और शहद् मिला कर गर्भिणी स्त्री को पिलावें। यह छिन्नादि कषाय कुछ दिन तक सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों के भयङ्कर ज्वर को तुरन्त ही नष्ट कर देता है, जिस तरह भयङ्कर रावण को श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने नष्ट कर दिया था ॥ ७६ ॥

अथ गर्भिणीज्वरहरः पयस्यादिकषायः—

**पयस्यासारिवायष्टीबलालोध्रमधूद्भवः।**
**दुग्धेन मिश्रितः क्काथो हरेद्गर्भवतीज्वरम् ॥ ७७ ॥**

अथवा पयस्या (क्षीर काकोली), सारिवा (अनन्तमूल), मुलेठी, बला (खरेटी = बरियारा), लोध (पठाणी) और महुए की छाल इन सब को सम भाग अर्थात् प्रत्येक को दो दो माशे भर लेकर अठगुने (९६ माशे भर) जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर चूल्हे से उतार कर शीतल कर के छान लेवें। फिर उस में आध पाव या पाव भर दुग्ध तथा चीनी मिला कर गर्भिणी स्त्री को पिला देवें। यह क्वाथ गर्भवती स्त्रियों के ज्वर को विनष्ट कर देता है ॥७७॥

अथ गर्भिणीज्वरहानिः—

**दुजयः सर्वरोगेषु गर्भिणीनां ज्वरः खलु ।**
**तापो जूर्तिषु गर्भस्य विक्रियां कुरुतेतराम् ॥ ७८ ॥**

गर्भिणी स्त्रियों के अन्य रोगों की अपेक्षा ज्वर अत्यन्त दुःसाध्य होता है। तथा जूर्तियों में अर्थात् अष्ट विध ज्वरों में ताप अर्थात् ज्वर का अधिक ताप गर्भ के अन्दर विकार पैदा कर देता है ॥ ७८ ॥

अथ गर्भिण्यतिसारहरो वृक्षकत्वगादिकषायः—

**वृक्षकत्वग्घनो देवदारुदारुविभावरी ।**
**गर्भिण्या अतिसारघ्नः क्वाथ एषां भवेद् ध्रुवम् ॥ ७९ ॥**

वृक्षक की त्वक् अर्थात् कटुज वल्कल ( कुड़े की छाल ), घन अर्थात् नागर मोथा, देवदार और दारुविभावरी अर्थात् दारुहलदी इन सब को सम भाग लेकर इन का अठ गुने जल में काढा बना के चतुर्थांश शेष रहने पर शीतल कर के वस्त्र से छान कर गर्भिणी स्त्री के अतिसार को दूर करने के लिए पिलावें। इस तरह यह क्वाथ गर्भिणी स्त्रियों के अतिसार को नष्ट करता है ॥ ७९ ॥

अथ गर्भिण्यतीसारहरौ श्रीपर्ण्यादिबलादिक्वाथौ—

**श्रीपर्णीयष्टिगोप्यब्ददार्वीक्काथोऽतिसारनुत् ।**
**बलादुरालभापाठाशुण्ठीमुस्ताकषायवत् ॥ ८० ॥**

श्रीपर्णी अर्थात् गम्भारी की छाल या कायफल, मुलेठी, गोपी अर्थात् सारिवा ( अनन्त मूल ), अब्द अर्थात् नागर मोथा और दारु हरिद्रा इन सब को सम भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ कर के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छान के गर्भिणी स्त्री को पिलाने से अतिसार नष्ट हो जाता है। अथवा बला ( बरियारा ), दुरालभा ( जवासा ), पाठा, सौण्ठ और नागर मोथा इन को सम भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर छान के गर्भिणी स्त्री को पिला देना चाहिए। इस तरह दो या चार दिन पिलाने से गर्भिणी स्त्री का अतिसार नष्ट हो जाता है ॥ ८० ॥

अथ गर्भिण्युदावर्त्तोदिहरः पुनर्नवादिकषायः—

**जातः पुनर्नवार्द्राभ्यां क्काथः क्षीरयुतो निशि ।**
**पीतो हरेदुदावर्तं गुल्मांशः शोफवेदनाम् ॥ ८१ ॥**

पुनर्नवा (साठेड़ी=गदपुर्णा) और अद्रक (आदी) इन दोनों को समभाग लेकर अष्टगुण जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छान कर उसमें एक पाव दुग्ध मिला कर सन्ध्या के समय गर्भिणी स्त्रियों को पिलाना चाहिए। इस तरह इस योग के एक सप्ताह तक सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों का उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, शोथ तथा अन्य गर्भसम्बन्धी वेदनाएं नष्ट हो जाती हैं ॥ ८१ ॥

अथ गर्भिण्याः शोथहरोपायः—

**घृतक्षीरगुडान्याऽऽर्द्रक्वाथसिद्धेन चूर्णिताम् ।**
**कणां संयोज्य सेवेत शोफपित्तापनुत्तये ॥ ८२ ॥**

अन्या अर्थात् हरड और अद्रक का अठगुने जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर वस्त्र से छान के उसमें घृत, दुग्ध और गुड़ मिलाकर रख दें। फिर २ माशे भर पिप्पली का चूर्ण लेकर उसको शहद् के साथ भक्षण कर के उपर्युक्त घृत दुग्धादिमिश्रित क्वाथ को पिला देवें। इस तरह एक सप्ताह तक इस योग के सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों के अङ्ग की सूजन तथा पित्त का विकार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८२ ॥

अथ गर्भिणीशोथहरः पुनर्नवादिलेपः—

**पुनर्नवावचाकल्कधान्यैर्लेपोऽतिशोफनुत् ॥ ८३ ॥**

पुनर्नवा ( गदपूर्णा ) और वचा इन दोनों को धान से बनी हुई काञ्जी के साथ पीस कर कल्क बनाकर गर्भिणी स्त्रियों के अत्यन्त बढे हुए शोथ पर प्रतिदिन लेप करने से वह नष्ट होजाता है ॥ ८३ ॥

अथ गर्भिण्युदावर्त्तादिहरो वर्षाभूक्वाथः—

**गुडाज्यसहितं क्वाथं वर्षाभूमूलसाधितम् ।**
**उदावर्तं च शोफे च गर्भिणीं पाययेद्भिषक् ॥ ८४ ॥**

उदावर्त्त तथा शोथ रोग को दूर करने के लिये वर्षाभू अर्थात् पुनर्नवा के क्वाथ में गुड़ तथा घृत मिलाकर प्रतिदिन गर्भिणी स्त्री को पीलाना चाहिए। इस तरह वैद्य गर्भिणी स्त्री के उदावर्त्त तथा शोथ को दूर करें ॥ ८४ ॥

अथ गर्भिण्याः पित्तार्तिहरोयष्टिकादिक्वाथः—

**पित्तार्तिं हन्ति यष्टीका द्राक्षामलकसाधिता ।**
**पीता दुग्धयवागूश्च गर्भिणीनामसंशयम् ॥ ८५ ॥**

मुलेठी, दाख और आंवले इनको समभाग लेकर अठगुने जल में उबाल के चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें। फिर इस क्वाथ में यवागू सिद्ध कर के दुग्ध मिलाकर सेवन करने से गर्भिणी स्त्रियों की पित्त की वेदना को नष्ट कर देती है॥८५॥

अथगर्भिण्याः श्वासकासहरस्तिक्तकादिकषायः—

**तिक्ताहरीतकीभार्ङ्गीवचाशुण्ठीकषायकम् ।**
**सगुडं पाययेद्वैद्यः श्वासकासापनुत्तये ॥ ८६ ॥**

तिक्ता अर्थात् कुटकी, हरड़, भारङ्गी, वचा और सौंठ इन सबको समभाग लेकर अठगुने जल में उबाल के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छानकर कषाय तैयार कर लेवें। फिर इस कषाय में गुड़ डालकर वैद्य गर्भिणी स्त्रियों को श्वास तथा कास के विनष्ट करने के लिये पिलावें ॥ ८६ ॥

अथ गर्भिणीकासे मरिचप्रयोगः—

**मरीचचूर्णं सक्षौद्रसिताज्यं कासनाशनम् ॥ ८७ ॥**

केवल काली मरिचों का चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से २ माशे भर चूर्ण लेकर चीनी, शहद् और घृत के साथ मिलाके प्रतिदिन सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों का कासरोग नष्ट हो जाता है ॥ ८७ ॥

अथ गर्भिण्या वान्तौ लाजादिकषायः—

**लाजैलाकोलमज्जाम्बु निपीतं वान्तिनाशनम् ॥ ८८ ॥**

लाज ( धान के लावे या खीलें ), बड़ी इलायची, बैर के फल का गूदा अथवा अङ्कोल के फल की गिरी इन सब को समान लेकर अठगुने जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छानकर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसका वमन दूर हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथ गर्भिण्या हिक्कायां बालबिल्वक्वाथः—

**बालबिल्वाद्भवः काथो हिक्कां हन्ति समाक्षिकः ॥ ८९ ॥**

बालबिल्व अर्थात् बेल के कच्चे फलकी गिरी ( गदी ) का अठगुने जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छानकर उस में शहद् मिलाकर गर्भिणी स्त्री को पीलाने से उसका हिक्कारोग नष्ट हो जाता है ॥ ८९ ॥

अथ गर्भिण्या अग्निमान्द्ये अजमोदादिचूर्णम्—

**अजमोदाश्वगन्धा च द्वे कणे जीरकं तथा ।**

**लीढा मधुगुडोपेता निहन्युर्मन्दवन्हिताम् ॥ ९० ॥**

अजमोदा, असगन्ध, छोटी पीपल तथा बड़ी ( गज ) पीपल और जीरा इन सबको बराबर लेकर लौहे की ओंखली में महीन कूट खांड के चूर्णकर लेवें। इस चूर्ण को २ माशे से आधे तोले भर तक लेकर शहद् और गुड़ के साथ मिला के गर्भिणी स्त्री को खिलाने से उसका मन्दाग्निरोग नष्ट हो जाता है ॥ ९० ॥

अथ गर्भिण्या वातरोगे बालबिल्वादिसाधितक्षीरप्रयोगः—

**बालबिल्वविदारीभिः पृश्निपर्ण्या च साधितम्।**
**क्षीरं क्षीरयवाग्वापि पिबेद्वातकृतामये ॥ ९१ ॥**

बेल के कच्चे फल का गूदा, विदारीकन्द और पृष्ठपर्णी इन तीनों को जल के साथ सील ( पत्थर ) पर पीस के कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क में क्षीरपाक विधि से दुग्ध का पाक करके उसको दुग्ध में बनी हुई यवागू के साथ पीने से गर्भिणी स्त्रियों के वातिकरोग तथा उन से उत्पन्न वेदनाएं नष्ट हो जाती हैं ॥ ९१ ॥

अथ गर्भिण्या मूत्ररोगे श्वदंष्ट्रादिकषायः—

**श्वदंष्ट्राबलयोः क्वाथो मूत्ररोगे प्रशस्यते ॥ ९२ ॥**

श्वदंष्ट्रा अर्थात् गोखरू और बला इन दोनों को समान २ लेकर अष्टगुण जल में क्वाथ करके चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से मूत्र रोग ( मूत्रावरोध ) में लाभ होता हैं ॥ ९२ ॥

अथ गर्भिण्या मासानुमासिकयोगाः—

**सुरदारु वयःस्था च शाकबीजं च यष्टिका।**
**बला कुष्णतिलास्ताम्रवल्ली चाश्मन्तकस्तथा ॥ ९३ ॥**
**नीलोत्पलं वयःस्था च गुडूची सारिवा तथा।**
**मधुयष्टी च पद्मं च रास्ना सारिवया सह ॥ ९४ ॥**
**काश्मर्यो बृहती क्षीरी शृङ्गवल्लीत्वचो घृतम्।**
**मधुपर्णावलाशिग्रुश्वदंष्ट्रापृश्निपर्णिका ॥ ९५ ॥**
**सितामधुकशृङ्गाटद्राक्षाबिसकसेरुकाः।**
**सप्तश्लोकार्धनिर्दिष्टान्योगान्सप्त पयोऽन्वितान् ॥**
**पिबेत्क्रमेण मासेषु गर्भस्रावादिवारणान् ॥ ९६ ॥**

सुरदारू (देवदारू), वयःस्था—हरड़ या आंवले, शाकबीज (सागोन के बीज)

और मुलेठी इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध के साथ पीसकर चीनी मिला के प्रथम मास में गर्भिणी स्त्री को पिलावें। बला ( बरियारा ), काले तिल, ताम्र वल्ली अर्थात् मंजीठ और अश्मन्तक ( पाषाण भेद ) इनको समान२ लेकर दुग्ध में पीसकर मिश्री या चीनी मिलाके गर्भिणी स्त्री को द्वितीय मास में पिलावें। नीलकमल, वयस्या ( क्षीरकाकोली ), गुडूची और सारिवा ( अनन्तमूल ) इन को दो२ माशे भर लेकर दुग्ध के साथ पीसकर चीनी मिला के गर्भिणी स्त्री को तृतीय मास में पिलावें। मुलेठी, कमलगट्टा, रास्ना और सारिवा इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध में पीसकर चीनी मिला के चतुर्थ मास में गर्भिणी स्त्री को पिलावें। काश्मरी अर्थात् गम्भारी के फल, बड़ी कटेरी की जड़, दुग्धिका, विदारीकन्द और काकड़ासींङ्गी, ( अथवा 'क्षीरी शुङ्गास्त्वचः' ऐसा भी पाठ है वहां क्षीरीवृक्ष ( वट के शुङ्ग और उसीकी छाल लेवें ) घृत, इनको समभाग लेकर दुग्ध के साथ पीस के गर्भिणी स्त्री को पञ्चम मास में पिलावें। मधुपर्णी अर्थात् मुलेठी अथवा गम्भारी की छाल, बला, सहजन की छाल, गोखरू, पृष्ठपर्णी इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध में पीस के षष्ठ मास में गर्भिणी स्त्री को पिलावें। चीनी, मुलेठी, सिंघाड़े, दाख, कमल की नाल और कशेरू इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध में पीसकर चीनी मिला के गर्भिणी स्त्री को सातवें मास में पिलाना चाहिए। इस तरह इन श्लोकों के आधे२ सात चरणों में कहे हुए सात योगों की औषधियों को दुग्ध के साथ पीसकर अथवा इन औषधियों का क्वाथ बना के दुग्ध में मिलाकर प्रथम मास से प्रारम्भ करके सात मास तक क्रम से गर्भिणी स्त्री को सेवन कराते रहना चाहिए। इन योगों को अपने २ मास के अनुसार ( अर्थात् प्रथम मास में प्रथम योग, एवं द्वितीय मास में द्वितीय योग ) सेवन करने से गर्भस्राव तथा गर्भवेदना आदि गर्भिणी स्त्री के सर्व उपद्रव दूर हो जाते हैं॥९३-९६॥

अथ गर्भिणीवातहरमुशीरादिक्षीरम्—

**उशीरयष्टीसँसिद्धं गर्भिणीवातहृत्पयः ॥ ९७ ॥**

उशीर ( खस ) और मुलेठी इन दोनों को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर या सील पर पीस कर कल्क बना लेवें फिर इस कल्क से क्षीरपाकविधि के अनुसार दुग्ध पका कर उसको पीने से गर्भिणी स्त्री की वातवेदना नष्ट हो जाती है ॥ ९७ ॥

अथ गर्भिणीवातहरीद्राक्षादियवागूः—

**द्राक्षायष्टिकसिद्धा च यवागूश्च तथाफला ॥ ९८ ॥**

अथवा दाख ( मुनक्का ) और मुलेठी को समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर उतार के शुद्ध वस्त्र से छान लेवें । फिर उस क्वाथ में यवागू बना कर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसकी वातिक पीड़ाएं दूर हो जाती हैं ॥ ९८ ॥

अथ गर्भिण्याःपित्तहरो बलादिक्काथः—

**बला वासा पृथक्पर्णी नियूँहश्चापि पित्तनुत् ॥ ९९ ॥**

बला ( बरियारा ), वासा ( अडूसा ) और पृष्ठपर्णी इनको समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छान कर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसकी पित्तजन्य वेदनाएं दूर हो जाती हैं ॥ ९९ ॥

अथ गर्भिणीकामलाद्यपहो बलादिक्काथः—

**सपुनर्दिछन्नया युक्तो गर्भिणीकामलापहः ।**
**कासं श्वासं तथा रक्तपित्तं चाशु विनाशयेत् ॥ १०० ॥**

उसी क्वाथ अर्थात् बला, वासा और पृष्ठपर्णी के क्वाथ के अन्दर गुडूची का सत्व अथवा क्वाथ मिलाकर प्रतिदिन पीने से गर्भिणी स्त्री के कामलारोग को नष्ट करता है तथा यह क्वाथ कास, श्वास और रक्तपित्त को भी जल्दी ही दूर कर देता है ॥ १०० ॥

अथ गर्भिण्याः सर्वरोगहरो बलाक्काथः—

**अघृतः सघृतो वापि सदुग्धो वाप्यदुग्धवान् ।**
**एक एव बलाक्काथो गर्भिणीसर्वरोगनुत् ॥ १०१ ॥**

गर्भिणी स्त्रियों के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करने के लिये केवल बला का क्वाथ जिसमें चाहे घृत मिला हुआ या ऐसे ही, तथा दुग्ध मिला हुआ हो या ऐसे ही हो श्रेष्ठ औषध है ॥ १०१ ॥

गर्भिण्याः पथ्यापथ्यविवेकः—

शालयः षष्टिकामुद्गा गोधूमा लाजशक्तवः । नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा ॥१॥
पनसं कदलीधात्री द्राक्षाम्लं स्वादु शीतलम् । कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् ॥२॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलाः सन्तर्पणं प्रियाश्लेषो विहाराश्च मनोरमाः३
प्रियङ्करं चान्नपानं गर्भिणीनां हितं सदा ॥ ४ ॥ इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

स्वेदनं वमनं क्षारं कदन्नं विषमाशनम् । अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गर्भिणीनां महर्षिभिः ॥१॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा—

विलोमवायुना गर्भो जीवन्यदि न निःसरेत् ।
स गर्भसङ्ग इत्युक्तो मूढगर्भो मृते शिशौ ॥ १०२ ॥

गर्भाशय की वायु के विलोम ( विकृत ) हो जाने से जीवित गर्भ श्रोणि गुहा के भीतर रुक जाता है तथा प्रसव काल के उपस्थित होने पर भी बाहर नहीं निकल सकता है ऐसी दशा में उसे गर्भ सङ्ग कहते हैं किन्तु यदि वह भीतर ही मर जाय तब उस को मूढ गर्भ कहते हैं ॥ १०२ ॥

अन्तर्मृतापत्याया लक्षणम्—

स्तब्धाध्मानं शिशिरजठरं सास्यशोषं समूर्छं
गर्भास्पन्दः श्वसनकमहापूतिगन्धा भ्रमार्तिः ।
कृच्छ्रोच्छ्वासोऽसितरुचिरवपुः स्तब्धनेत्रे व्यथोग्रा
विण्मूत्रार्तिर्भवति हि मृताऽपत्यगर्भाङ्गनायाः ॥१०३॥

गर्भिणी स्त्री के बालक के गर्भ में मर जाने पर निम्न लक्षण प्रगट होते हैं। बालक के मर जाने पर गर्भिणी स्त्री के पेट ( उदर ) में स्तब्धता, आध्मान, उदर प्रदेश में अधिक शीतलता, मुख का बार २ सूखना, मूर्च्छा ( बेहोशी ) का होना, गर्भ के स्पन्दन का अभाव, श्वासोच्छ्वास के समय निकले हुए सांस में सड़ने की सी बदबू आना, चक्कर तथा पीड़ा ( विशेष कर उदर और गर्भाशय में ), श्वास लेने में कठिनाई होना, शरीर का कालिमा लिये हुए नीला हो जाना, दोनों नेत्रों में स्तब्धता तथा सारे शरीर में विशेष कर सन्धियों में उग्र पीड़ा होना, विष्ठा और मूत्र के अवरोध हो जाने से अधिक कष्ट होना आदि ये सब अन्तर्मृतगर्भा स्त्री के लक्षण हैं ॥ १०३ ॥

अथ मूढगर्भाया असाध्यलक्षणम्—

अकालश्वाससंयुक्ता बद्धभ्रष्टभगान्विता ।
शीताङ्गी पूतिकोद्गारा मूढगर्भा न जीवति ॥ १०४ ॥

अकाल श्वास अर्थात् अकस्मात् श्वासोच्छ्वास को तेजी के दौरे होना, योनि का सङ्कोच या अपने स्थान से च्युत हो जाना, समग्र शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों में

शीतलता का अनुभव होना, खट्टी तथा दुर्गन्धित डकारों का बार २ आना इन लक्षणों के प्रगट हो जाने पर मूढगर्भा स्त्री जीवित नहीं रह सकती है ॥ १०४ ॥

अथ गर्भप्रसवसामान्योपायाः—

तत्र करञ्जबीजादिप्रलेपअहिनिर्मोकस्नुहीक्षीरौ च—

**बीजं करञ्जसञ्जातं कपित्थतुलसीजटा ।**
**दुग्धे पिष्ट्वा विलिप्याऽथ नाभिपत्करलेपतः ॥ १०५ ॥**
**सुरया वाऽहिनिर्मोकैः सम्यग्योनिप्रधूपनात् ।**
**सुखं सूते वधूर्मूर्ध्नि स्नुक्पयःक्षेपणादपि ॥ १०६ ॥**

करञ्ज के फल की गिरी, कपित्थ के फल की गूदी और तुलसी की जड़ इन तीनों को समान लेकर पत्थर पर दुग्ध के साथ पीसकर प्रसवोन्मुखी स्त्री की नाभि, पैर और हाथों पर लेप करने से सुख पूर्वक प्रसव हो जाता है । अथवा सर्प की कांचली ( शरीरावरण ) को सुरा ( काञ्जी ) के साथ पत्थर पर पीसकर अग्नि पर रख के योनिप्रदेश को धूपित करने से तथा गर्भिणी स्त्री के माथेपर थूहर के दुग्ध का प्रलेप करने से सुख से प्रसव हो जाता है ॥ १०५-१०६ ॥

अथ हलिनीप्रयोगः—

**हलिनीमूलिका नाभिगुह्यबस्तिप्रलेपिता ।**
**विशल्यां कुरुते नारीं श्वेतपुष्पा च सा क्षणात् ॥ १०७ ॥**

श्वेतपुष्पवाली कालिहारी की जड़ को पत्थर पर दुग्ध अथवा जल के साथ पीस कर गुह्यप्रदेश ( योन्यादि ), वस्ति और नाभि के ऊपर प्रलेप करने से यह योग क्षण भर में स्त्री को विशल्य कर देता है अर्थात् बालक के जन्म हो जाने से गर्भिणी स्त्री शल्य ( दुःख ) से रहित हो जाती है । कुछ टीकाकारों ने श्वेतपुष्पा शब्द का लाङ्गली से पृथक् ( अर्थात् उस का विशेषण न मान कर ) श्वेतापराजिता अर्थ किया है । अर्थात् श्वेत अपराजिता की जड़ को पीस कर बस्ति नाभ्यादि अङ्गों पर प्रलेप करने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ १०७ ॥

अथ यष्टिकादिकल्कः—

**यष्टी लुङ्गजटा पिष्टा पीता सूतिकरी ध्रुवम् ॥ १०८ ॥**

मुलेठी और बिजोरे निम्बू ( मातुलुङ्ग ) की जड़ इन दोनों को दो२ माशेभर

लेकर शीतल जल से पीसकर मिश्री मिला के छानकर प्रसवोन्मुखी स्त्री को पिला देने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ १०८ ॥

अथ लाङ्गल्यादिलेपः—

**लाङ्गलीमधुसिन्धूत्थैर्योनिलेपात्प्रवेद्ध्रुवम् ॥ १०९ ॥**

कलिहारी की जड़, शहद् और सैन्धव लवण इन तीनों को बराबर लेकर पत्थर पर पीसकर योनि पर प्रलेप कर देने से गर्भिणी अर्थात् प्रसव पीड़ावाली स्त्री शीघ्र ही बालक को पैदा करती है ॥ १०९ ॥

अथ मातुलुङ्गीरम्भाप्रयोगौ—

**मातुलुङ्गस्याश्च मूलं हि रम्भाया वा कटिस्थिते ॥ ११० ॥**

बिजोरे निम्बू की जड़ अथवा केले की जड़ को प्रसवोन्मुखी स्त्री के कटिप्रदेश में बांध देने से शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ११० ॥

अथ सिद्धार्थादिवस्तिः—

**सिद्धार्थमागधीकुष्ठगोलोमीमिषिकल्कितः ॥**
**निरूहः स्नेहपटुयुग्जरायुं पातयेत्तराम् ॥ १११ ॥**

सिद्धार्थ अर्थात् सरसों के बीज, पीपल, कूठ, गोलोमी अर्थात् श्वेत दूर्वा या वाराही कन्द या वचा तथा सौंफ अथवा अजवाईन इन सब को समभाग लेकर क्वाथ बना के छानकर उसमे स्नेह ( तैल या घृत ) तथा थोड़ा सा सैंधा नीमक मिलाकर उसकी योनि में पिचकारी लगाने से शीघ्र ही सुखप्रसव होता है तथा अपरा का भी शीघ्र पतन हो जाता है ॥ १११ ॥

अथ सिद्धार्थकानुवासनम्—

**सिद्धं सिद्धार्थकं तैलं पायौ वा स्मरमन्दिरे ।**
**अनुवासनतः शीघ्रमपरां पातयेत्तराम् ॥ ११२ ॥**

अथवा सरसों, पीपल, कूठ, श्वेत दूर्वा और अजवाईन इनको समभाग लेकर पत्थर पर पीस के कल्क बनाकर उसके अन्दर तैलपाकविधि से सरसों का तैल पकाकर छान लेवें । फिर इस तैल की गुदा तथा योनि में पिचकारी लगाने से अपरा जल्दी ही से गिर जाती है ॥ ११२ ॥

अथ सूतिकाचिकिसा—

अथ पर्पटीरसः—

**मञ्जारीमितवज्रहेमरजतैर्योमार्कान्तैर्मृतै-**
**र्भागैस्तूत्तरवर्धितैः समरसैर्गन्धैर्द्विभागोन्मितैः।**
**जातः पर्पटिकारसो घृतकणायुक्तो हरेत्सर्वशः**
**सूतीनां हि महागदान्गदचयं नानानुपानान्वितः॥ ११३॥**

हीरे की भस्म १ तोला, स्वर्णभस्म २ तोला, चांदी की भस्म ३ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, ताम्रभस्म ५ तोला, कान्तलौहभस्म ६ तोला तथा शुद्धपारद सब भस्मों के बराबर अर्थात् २१ तोला तथा शुद्धगन्धक ४२ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष भस्में मिला के एकदिन भर तक अच्छी तरह से घोट कर घृत से लिप्त लोहे की कड़ाही में डाल कर उसे चूल्हे पर चढा के मन्द २ अग्नि से द्रुत करें। जब समग्र कज्जली ठीक तरह से पिघल जाय तब उसको गोबर के ऊपर रखे हुए हरे केले के पत्ते पर गिरा कर दूसरे केले के पत्ते से ढक कर गोबर से दबाकर चपटी पर्पटी बना लेवें। स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल में महीन पीसकर कपड़े से छान के काच की शीशी में भर देवें। इस तरह यह पर्पटिकारस तैय्यार होता है। यह १–४ रत्ती भर रस लेकर घृत और ½ माशे भर पिप्पली के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करने से समस्त प्रकार के सूतिका रोग नष्ट हो जाते हैं। यह रस यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ सेवन करने से नाना प्रकार के भयङ्कर रोगों को नष्ट कर देता है॥११३॥

अथ सूतिकारोगनाशनरसः—

**स्वर्णतारघनभानुतीक्ष्णकं तेषु चैकमतिमात्रमारितम्।**
**सूतिकासकलरोगनाशनं रोगहारि विहितानुपानतः॥ ११४॥**

स्वर्णभस्म, रजतभस्म, (चांदी की भस्म), अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, इन (उपर्युक्त स्वर्णादिभस्मों) में से शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक बनाई हुई किसी एक भस्म को लेकर उस के सेवन करने से सूतिका स्त्री के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ११४॥

अथ सौभाग्यशुण्ठी-( सूतिकामृतम् )

**अञ्जलिद्वितये तोये कंसमात्रपयान्विते।**

तुलार्धशर्करां दत्त्वा गुडपाके कृते क्षिपेत् ॥ ११५ ॥
एलारिङ्गणिकावेल्लव्योषजीरकदीप्यकान् ।
भृङ्गं लवङ्गं बोलं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ११६ ॥
मिषिः पञ्चपला धान्यं पलत्रयमितं तथा ।
शुण्ठीमष्टपलां सम्यग्विचूर्ण्य परिमिश्रयेत् ॥ ११७ ॥
एषा सौभाग्यशुण्ठीति शम्भुदेवेन कीर्तिता ।
सेविता हन्ति सूताया ज्वरं रोगमनेकधा ॥ ११८ ॥
प्लीहानं मलबन्धं च पाण्डुगुल्मारुचीस्तथा ।
कासश्वासकृमीनग्निमान्द्यादिकगदांस्तथा ॥
कायाग्निजननं ह्येतत्सूतिकामृतमुच्यते ॥ ११९ ॥

दो अञ्जली ( १ शराव या ८ पल ) भर जल तथा १ कंस भर (१ आढक) दुग्ध के अन्दर आधी तुला ( ५० पल ) भर चीनी डाल कर गुड़ की तरह पाक करके अर्थात् अच्छी तरह से चाशनी बना लेवें। फिर इलायची का चूर्ण १ पल, रिङ्गिणी अर्थात् केवटी मोथा ( कुछ लोग मुद्गपर्णी डालते हैं ) का चूर्ण १ पल, वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ पल व्योष अर्थात् त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण १ पल, जीरे का चूर्ण १ पल, दीप्यक ( अजवाईन ) का चूर्ण १ पल, भृङ्गराज का चूर्ण १ पल, लवङ्ग का चूर्ण १ पल, बोल ( गन्ध बोल बोलबद्ध, या बोलरस ) का चूर्ण १ पल तथा सौंफ का चूर्ण ५ पल, धनिये का चूर्ण ३ पल तथा सोंठ का चूर्ण ८ पल भर लेकर सब को खरल में एकत्रित करके अच्छी तरह घोट कर उपर्युक्त चाशनी में मिलाकर कलच्छू से घोट कर शीशी में भर देवें। इसे सौभाग्यशुण्ठी कहते हैं। इस को श्रीशङ्कर भगवान् ने बनाई है। इस शुण्ठी पाक को यथाबल और अग्नि के अनुसार सेवन करने से सूतिका स्त्री का ज्वर तथा और अन्य वातिक व्याधियां भी नष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त यह सौभाग्यशुण्ठी प्लीहा, मलबन्ध, पाण्डुरोग, गुल्म, अरुचि, कास, श्वास, कृमिरोग तथा अग्निमांद्य आदि सब रोगों को नष्ट कर देती है। यह सौभाग्य शुण्ठी शरीर की पाचक अग्नि को बढाती है तथा यह सूतिका के लिये अमृत ही के समान है ॥ ११५–११९ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कोरण्टकादिक्वाथः—

**कोरण्टकं कुलत्थं च सर्वैरेभिः श्रृतं जलम्।**
**युक्तं शर्करया पीतं सूतिशूलज्वरापहम्॥ १२०॥**

कोरण्टक अर्थात् पीले पुष्प वाली कट्सरैया (झिण्टी) की जड़ और कुलत्थ इन दोनों को समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करके चतुर्थांश रहने पर या सोलह गुने जल में क्वाथ करके अष्टमांश (औषध से द्विगुण) शेष रहने पर चूल्हे से उतार कर मन्दोष्ण रहते २ छानकर चीनी मिला के प्रतिदिन पीते रहने से सूतिका स्त्री के शूल और ज्वर को नष्ट कर देता है॥ १२०॥

पञ्चमूलक्वाथः—

**लोहखण्डयुतं पञ्चमूलिकासाधितं जलम्।**
**नाशयेत्सूतिकारोगान्सवातान्विविधान्खलु॥ १२१॥**

पञ्चमूल (बृहत्पञ्चमूल जैसे—बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, गणिकारिका) को १ पल भर लेकर अठगुने (८ पल) जल में क्वाथ करके चतुर्थांश (२ पल) शेष रहने पर अथवा सोलहगुने (१६ पल) जल में क्वाथ करके अष्टमांश (दो पल) शेष रहने पर उतार के छान लेवें। फिर उस क्वाथ में प्रतप्त किये हुए शुद्ध लौह को १ वार या सात वार बुझाकर फिर छान लेवें। इस प्रकार पञ्चमूल का क्वाथ बनाकर प्रतिदिन सेवन करने से सूतिका स्त्री के विविध प्रकार के वातिक उपद्रवों से युक्त बड़े २ रोग नष्ट हो जाते हैं॥ १२१॥

**विमर्शः—इस प्रकार के योगों का अन्यत्र भी वर्णन मिलता है यथा—ऽमापयित्वाऽनले लौहं मुद्गयूषे निषेचयेत। पञ्चमूलस्य वा क्वाथे पिप्पलीसक्लिेऽथवा। पीतं यूषादि तच्छीघ्रं सर्वसूतीरुजापहम्॥ इति रसरत्नाकरः।**
**अन्यच्च—पञ्चमूलस्य क्वाथं वा तप्तलोहेन सङ्गतम्।**
**सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वा तद्युतां सुराम्॥ इति योगरत्नाकरः।**

भूनिम्बादितैलम्—

**भूनिम्बनिम्बभद्राश्वगन्धसप्तच्छदत्वचा।**
**तैलं पक्वेत्तदभ्यङ्गात्सूतिकासर्वरोगनुत्॥ १२२॥**

भूनिम्ब अर्थात् चिरायता, निम्ब की छाल या पञ्चाङ्ग, नागरमोथा, असगन्ध और सप्तपर्ण की छाल इन सब को बराबर लेकर जल के साथ पीस कर कल्क

बना लेवें। फिर इस कल्क में तिल तैल पकाकर उसके अभ्यङ्ग करने से सूतिका स्त्रियों के सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२२ ॥

विमर्शः—कहीं २ पर इस योग के पश्चात् निम्न पाठ अधिक मिलता है। यथा-तैलं लाक्षादिकं नाम सर्वामयविनाशनम्। चन्दनं सारिवा लोध्रं वृद्धो का शर्करान्वितम्। क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिण्यां ज्वरशान्तये। होवेरार लुरक्तचन्दनबलाधान्यार्क वत्सादनो, मुस्तोशीरयवासपर्पटवृषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी। नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे। योगाऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्रामवेवूत्तमः। इति।

अथ योनिव्यापच्चिकित्सा—

तत्रादौ योनिशूलहरो निर्गुण्ड्यादिप्रयोगः—

**निर्गुण्डीपत्रनिर्यासो गुडो जीर्णः सुरान्वितः।**
**सेवितस्तक्रभक्ताभ्यां योनिशूलविनाशनः ॥ १२३ ॥**

निर्गुण्डी के पत्तों का निर्यास ( स्वरस ), पुराना गुड़ इन दोनों को समभाग लेकर सुरा ( कुमार्यासव या द्राक्षासवादिक ) के साथ प्रतिदिन सेवन करने से तथा छाछ ( मट्ठा ) और भात का पथ्य करने से स्त्रियों का योनिशूल नष्ट हो जाता है ॥ १२३ ॥

अथ प्रस्रंसिन्यांकारलीकन्दप्रयोगः—

**निर्गतोऽपि विशेद्योनिः कारलीकन्दलेपिता ॥ १२४ ॥**

करेले के कन्द ( जड़ ) को जल में पीस कर बाहर निकली हुई ( स्वस्थानच्युत ) योनि पर लेप करने से वह भीतर चली जाती है ॥ १२४ ॥

अथ शिथिलयोनौ इन्द्रगोपप्रयोगः—

**इन्द्रगोपाग्निलेपेन शिथिलयोनिर्दृढा भवेत् ॥ १२५ ॥**

इन्द्रगोप अर्थात् वीर बहूटी को घृत या जल के साथ पीस कर कल्क बना के उस के प्रलेप करने से शिथिल योनि दृढ हो जाती है ॥ १२५ ॥

अथ विवृतायांमाकन्दमूलादिलेपः—

**माकन्दमूलकर्पूरमधुभिश्च जरत्स्त्रियः।**
**कुरुते संवृतां योनिं कन्यकाया इव ध्रुवम् ॥ १२६ ॥**

माकन्द (आम्र वृक्ष) की जड़ की छाल, कपूर और शहद् इन को सम भाग लेकर पत्थर पर पीस के वृद्धा स्त्रिएं यदि अपनी योनि पर प्रलेप करें तो उन की विवृत योनि कन्याओं के समान संवृत अर्थात् दृढ़ हो जाती है ॥ १२६ ॥

अथ श्रीपर्णीतैलम्—

**श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम्।**
**तत्तैलं तुलिकेनैव स्तनयोः परिदापयेत्॥ १२७॥**
**पतितावुच्छ्रितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ।**
**गजकुम्भसमाकारावुन्नतौ परिमण्डलौ॥ १२८॥**

श्रीपर्णी (गम्भारी) की छाल का स्वरस चार सेर तथा उसी की छाल का कल्क १ पाव भर और तिल का तैल एक सेर लेकर कड़ाही में डाल कर तैल पाक विधि से तैल सिद्ध कर के शीतल होने पर छान के शीशी में भर देवें। फिर रुई के फावे को इस तैल में भींगो कर स्त्रियों के शिथिल स्तनों पर प्रतिदिन लगाने से वे शिथिल स्तन लटके हुए ऊंचे उठ जाते हैं तथा हाथी के गण्डस्थल के समान सुन्दर, कठिन और गोलाकार हो जाते हैं॥ १२७-१२८॥

अथ बालरोगः—

अथ माहेश्वरधूपः—

**श्रीवेष्टदारुबाह्लीकमुस्ताकटुकरोहिणी।**
**सर्षपा निम्बपत्राणि मदनस्य फलं वचा॥ १२९॥**
**बृहत्यौ सर्पनिर्मोककार्पासास्थियवास्तुषाः।**
**गोशृङ्गं खररोमाणि बर्हिपिच्छं बिडालविट्॥ १३०॥**
**छागरोमघृतं चेति वस्तमूत्रेण भावितम्।**
**एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः॥ १३१॥**

श्रीवेष्टक (लोबान या नवनीत खोटो), देवदारु, हींग, मोथा, कुटकी, सरसों, नीम के पत्र, मैनफल, वचा, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सांप की कांचली, कपास के बीज (बिनौले), जौ या उनकी भूसी, गाय के शृङ्ग के ऊपरी पर्त (आवरण), गदहे के बाल, मयूर की पुच्छ का सचन्द्र अर्थात् चमकीला भाग (मोरपंख), बिलाव की विष्ठा, बकरी के बाल तथा बकरी का घृत इन सब को समभाग लेकर लोहे की ओखली में कूट पीस कर चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को वस्त मूत्र अर्थात् बकरे के मूत्र से भावित कर के घोट कर सुखा के शीशी में भर कर बन्द कर के सुरक्षित रख देवें। इस को माहेश्वर धूप कहते हैं। इस धूप को बालकों के शयन के घर में प्रतिदिन सुबह और सन्ध्या के समय धूनी लगाने से सर्वप्रकार की ग्रहबाधाएं दूर ही रहती हैं॥ १२९-१३१॥

अथ विजयधूपः—

**शैलेयगुग्गुलुरसैः सपुरप्रचण्डद्रव्यापहृत्सरसकुन्दुरुभिः सकुष्ठैः।**
**सध्यामकैःसुरभिगन्धरसैश्च धूपःसौभाग्यबुद्धिजयकृद्विजयो विवादे १३२**
**देवासुरोरगपिशाचपितृग्रहेषु गन्धर्वयक्षपिशिताशिषु च ग्रहेषु।**
**जीर्णज्वरेषु विहितश्च विषातुरेषु धूपोयमाजिविजयार्तिषु पार्थिवानाम् १३३**

शैलेय ( भूरि छरिला ), शुद्ध गूगल, शिलारस, नागरमोथा, प्रचण्ड अर्थात् सफेद कनेर की छाल, लाख ( लाह ), अपहृत् अर्थात् चोरक ( ग्रन्थिपर्ण ), सरस अर्थात् काष्ठागुरु, कुन्दरु की जड़, कूठ, धमासा, अथवा गन्धतृण, सुरभि ( सर्जरस = राल ) तथा गन्धरस ( गन्धबोल ) इन सबको समान लेकर एकत्र कूट पीसकर धूप बना लेवें। इसको विजय धूप कहते हैं। इस धूप को बालकों के शयन गृह के भीतर तथा आस पास दिन में दो बार (प्रातः सायं) लगाने से बालकों की सुन्दरता तथा सद् बुद्धि की वृद्धि होती है। इस धूप की वादविवाद तथा युद्ध के स्थलपर धूनी देने से विजय होती है अथवा इस धूप से धूपित बालक वादविवाद में विजय प्राप्त करता है। इस धूप को रोगियों के समीप धूनी लगाने से देव, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षस आदि से समस्त उत्पन्न उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। यह धूप राजाओं के लिये युद्धाङ्गण में विजय कराने में भी श्रेष्ठ है ॥ १३२–१३३ ॥

अथ ग्रहनाशिनीगुटिका—

**राजीकरञ्जपुन्नाटशिरीषार्कनिशाद्वयम्।**
**प्रियङ्गुत्रिफलादारुहिङ्गुव्योषकुचन्दनम् ॥ १३४ ॥**
**मञ्जिष्ठोग्राजमूत्रं च गुटिका ग्रहनाशिनी।**
**पाननस्याञ्जनालेपस्नानोद्वर्तनधूपनात् ॥ १३५ ॥**

राई, करञ्ज के बीज की गिरी, पुन्नाट ( पनवाड़ = चक्रमर्द ), सहजन की छाल या सिरस के बीज, आक की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, त्रिफला (हरड़, बहेड़े, आंवले), देवदारू, हींङ्ग, व्योष ( सोंठ, मरिच, पीपल ), लाल चन्दन, मंजीठ तथा वचा इन सबको समभाग लेकर कूट पीस के चूर्ण बना लेवें। फिर इस चूर्ण को बकरी के मूत्र में भावित कर के घोटकर तीन २ माशे भर की गोलियां बनाकर शीशी में भर देवें। इस गुटिका के जल के साथ घोटकर पीने,

सूंघने, आंखों में आंजने, शरीर पर लेप करने, पानी में डालकर स्नान करने, उबटन करने या धूनी देने से समस्त ग्रहबाधाएं नष्ट हो जाती हैं ॥१३४-१३५॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कणास्वर्णप्रयोगः—

**गर्भनिर्गतबालस्य कणास्वर्णं प्रदापयेत् ॥ १३६ ॥**

पिप्पली का चूर्ण ३ रत्ती तथा स्वर्ण की भस्म $\frac{1}{8}$ रत्ती लेकर दोनों को शहद् में मिलाकर गर्भ से निकले हुए बालक को चटा देवें । प्रथम उत्पन्न हुए बालक के मुखादि अङ्गों की शुद्धि करने के पश्चात् उक्त औषध खिलाना चाहिए ॥ १३६ ॥

सद्योजातबालस्य संज्ञाजननोपायः—

**पाषाणद्वितयं युञ्ज्यात्कांस्यभाजनमुच्चकैः ।**
**तेन त्रस्तः ससंज्ञः स्याद्योनिनिर्गमपीडितः ॥ १३७ ॥**

कष्ट पूर्वक प्रसव होने से कभी २ बालक की चेतना शक्ति सुप्त रहती है । ऐसी दशा में बालक की अचेतनता को दूर करने के लिये दो पत्थर लेकर उन्हें परस्पर जोर २ से बजावें अथवा कांसे के बर्तन को किसी (लकड़ी) डण्डे या पत्थर से जोर २ से बजावें । इस प्रकार की आवाज से बालक डर कर सचेतन हो जाता है ॥ १३७ ॥

अथ सद्योजातबालस्य ज्वरादिनिवारणोपायः—

**सुखोष्णैः काञ्जिकैर्बालं सम्प्रोक्ष्य द्वित्रिवारतः ।**
**देयः शिरसि बालस्य घृतपिण्डो ज्वरापहः ।**
**शिरोगतविकारघ्नो मुख्यो रक्षाकरस्तथा ॥ १३८ ॥**

सद्योजात बालक के शरीर को मन्दोष्ण काञ्जी से दो चार वार धोना चाहिए तथा शुद्धवस्त्र या तोलिए से शरीर को पोंछ कर उसके मस्तिष्क पर घृत का पिण्ड रख कर धीरे २ मलना चाहिए । इस प्रकार का उपचार सद्योजात बालक के ज्वर और शिर के विकार को दूर करता है तथा उससे बालक की शीतादि से रक्षा भी होती ॥ १३८ ॥

अथ पित्तज्वरे रोहिणीक्षीरम्—

**भक्षणं रोहिणीकल्के (१)सिद्धं पानानुलेपतः ।**

---

(१) द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः । इति ।

ज्वरं पित्तोत्तरं हन्ति मुस्ताक्वाथ इव ध्रुवम् ॥ १३९ ॥

रोहिणी ( कटुकी ) को जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना लेवें । फिर इस कल्क का क्वाथ बनाकर उस क्वाथ में यवागू बनाकर भक्षण करने से पित्तज्वर नष्ट होता है अथवा रोहिणी कल्क में क्षीरपाक विधि से सिद्ध किए हुए दुग्ध के पीने से भी पित्तज्वर नष्ट हो जाता है। अथवा केवल रोहिणीकल्क की शरीर पर मालिश ( अभ्यङ्ग ) करने से पित्तप्रधान ज्वर उतर जाता है जिस तरह मोथे के क्वाथ के पीने से पित्तज्वर दूर होता है ॥ १३९ ॥

अथ पित्तज्वरे अश्वत्थक्षीरम्—

अश्वत्थपल्लवैश्चाम्भः क्षीरं पक्वं निषेवितम् ।
पित्तजातं ज्वरं तीव्रं बालानां हन्ति निश्चितम् ॥ १४० ॥

पीपल के पत्तों को अठगुने जलमें उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर छान के इस पानी को पीलाने से बालकों का पित्तज्वर नष्ट हो जाता है। अथवा उसी पानी में दुग्ध को पकाकर दुग्धमात्र शेष रहने पर उसको पिलाने से बालकों का पित्तज्वर दूर हो जाता है ॥ १४० ॥

अथ गन्धोत्पलजटादिकल्कः—

गन्धोत्पलजटा पिष्टा कटुकी नाशयेज्ज्वरम् ॥ १४१ ॥

गन्धोत्पल अर्थात् श्वेतकमल, जटामांसी और कटुकी इन तीनों को समभाग लेकर क्वाथ बना के पिलाने से बालकों का ज्वर दूर हो जाता है ॥ १४१ ॥

अथ सहदेव्यादिचूर्णम्—

सहदेवीकणाभृङ्गत्रयं लीढं हरेच्छिशोः ।
वमिकासज्वरव्याधीन्क्षौद्रेणातिविषा तथा ॥ १४२ ॥

सहदेवी (पीतपुष्पवाली बला), पीपल और भृङ्गराज इन तीनों को समभाग लेकर खरल या ओंखली में कूट पीसकर कपड़ छान करके चूर्ण बना लेवें । इस चूर्ण में से ३ रत्तीभर चूर्ण लेकर मधु के साथ अथवा अतीस के चूर्ण और शहद के साथ सेवन करने से बालकों के वमन, कास और ज्वरादिक व्याधियां नष्ट हो जाती है ॥ १४२ ॥

अथ न्यग्रोधादि ।थः—

न्यग्रोधजम्ब्वाम्रशिरीषकाणां क्काथो रसो वा नवपल्लवानाम् ।
पित्तातिसारज्वरवान्तिमूर्च्छातृष्णां निहन्यान्मधुना शिशूनाम् ॥ १४३ ॥

न्यग्रोध ( बड़ ), जामून, आम और शिरीष इन तीनों को बराबर २ छाल लेकर उस का क्वाथ बना कर सेवन करने से अथवा इन तीनों वृक्षों के नवीन और कोमल पत्तों के स्वरस को शहद् के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से बालकों के पित्तजन्य अतीसार, ज्वर, वमन, मूर्च्छा और तृष्णा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४३ ॥

अथ रक्तातिसारहरचूर्णम्—

**मधवम्बुशृङ्गीपाठाब्दं रक्तातिसाहृच्छिशोः ॥ १४४ ॥**

मुलेठी, अम्बु अर्थात् नेत्र वाला, काकड़ा सींगी, पाठा और नागर मोथा इन सब को बराबर २ लेकर ओखली ( इमाम दस्ता ) में कूट पीस के महीन चूर्ण बना कर वस्त्र से छान के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण में से १ माशे भर चूर्ण को मधु तथा चावलों के धोवन के साथ सेवन करने से बालकों का रक्तातीसार नष्ट हो जाता है ॥ १४४ ॥

अथ सक्षीरबोलप्रयोगः—

**क्षीरं सबोलं कण्ठोरःशिरः कफहरं शिशोः ॥ १४५ ॥**

एक रत्ती भर या दो रत्ती भर गन्धबोल को दुग्ध के अन्दर घोट कर सेवन करने से बालकों के कण्ठ, छाती ( वक्ष ) और शिर के कफ को नष्ट करता है ॥ १४५ ॥

मूत्रविड्ग्रहहरं—

मूत्रविड्ग्रहहरं मधुकादि—

**मधुकं मरिचं पिष्टं गोजलैः परिसेवितम् ।**
**विनाशयति वेगेन बालानां मूत्रविड्ग्रहम् ॥ १४६ ॥**

महुए की छाल या पुष्प अथवा मुलेठी और मरिच इन दोनों को एक २ माशे भर लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर बालकों को सेवन कराने से उनका रुका हुआ मूत्र तथा मल शरीर से उत्सर्जित होने लग जाता है ॥ १४६ ॥

अथ यष्ट्यादिघृतम्—

**यष्टीलोध्रकणागन्धबालाशालमलिसारिवा ।**
**सुगन्धा माक्षिकं चेति सिद्धं सर्पिर्निषेवितम् ॥**
**शुष्यद्गात्रस्य बालस्य बृंहणं बलकारि तत् ॥ १४७ ॥**

मुलेठी, पठाणीलोध, पिप्पली, सुगन्धबाला, सेमल की छाल, सारिवा ( अनन्तमूल ), सुगन्धा ( स्पृक्का ) तथा शहद् इन्हें समभाग लेकर पत्थर पर पीस के कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क से चतुर्गुण घृत तथा स्नेह से चतुर्गुण जल लेकर सब को कड़ाही में डालकर पकावें। जब घृतमात्र शेष रह जाय तब चूल्हे से उतार कर छान के चौड़े मुख वाली शीशी में भर देवें। इस घृत के सेवन करने से सूखते हुए बालक का शरीर मोटा और मजबूत हो जाता है। यह घृत शुष्क और दुर्बल बालकों के लिये अत्यन्त हितकर है ॥ १४७ ॥

शङ्खनाभ्यादिवर्त्तिः—

**शङ्खनाभिकणापथ्यारसाञ्जनविनिर्मिता।**
**वर्तिर्निहन्ति मधुना बालनेत्राखिलामयान् ॥ १४८ ॥**

शङ्ख की नाभि की भस्म, पिप्पली का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण और रसाञ्जन इन सबको समभाग लेकर खरल में डाल के पानी के साथ पीसकर वर्ती बनाकर सुखा लेवें। इस बत्ती को मधु में घिस कर बालकों के नेत्रों में प्रतिदिन अञ्जन की तरह लगाने से उनके नेत्रों के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ अश्वगन्धाघृतम्—

**क्षीरेऽश्वगन्धया ताम्रसूतान्तैः सह साधितम्।**
**घृतं पुष्टिकरं वर्ण्यं बलकृत्सुखकारि च ॥ १४९ ॥**

असगन्ध का चूर्ण, ताम्र की भस्म, पारद की भस्म ( रससिन्दूर ) और नागरमोथा इन चारों को समभाग लेकर पानी में पीस कर कल्क बना लेवें, तथा कल्क से चतुर्गुण घृत तथा घृत से चतुर्गुण दुग्ध और दुग्ध से चतुर्गुण जल डालकर घृत को पका लेवें। यह घृत बालकों के कृश शरीर को पुष्ट करता है, वर्ण बढाता है तथा बलदायक और सुखकारी है ॥ १४९ ॥

अथ तालुकण्टलक्षणम्—

**श्लेष्माहृत्तालुमांसस्थः करोति कुपितः शिशोः।**
**तालुकण्टकमेतेन तालुस्थाने च निम्नता ॥ १५० ॥**
**तृष्णा तालु विपाकश्च स्तन्यद्वेषश्च विड्ग्रहः।**
**भ्रमास्यशोषकण्डूतिर्ग्रीवामूर्धगता वमिः ॥**
**अक्षिरोगादिकं चापि—" ॥ १५१ ॥**

बालक के हृदय और तालु के मांस के अन्दर रहने वाले कफ के दूषित हो जाने से तालुकण्टकरोग उत्पन्न होता है। इस रोग के उत्पन्न होने पर निम्न लक्षण होते हैं। तालु प्रदेश में गड्ढा सा बन जाता है। तालुकण्टकरोग से पीड़ित बालक को अत्यन्त प्यास लगती है, उस के तालु में शोथ पैदा होकर पाक हो जाता है, स्तनपान करने में बालक की रुचि नहीं होती है, मल का अवरोध रहता है, चक्कर आना, मुख का सूखना, गर्दन और माथे में खुजली चलना, वमन होना तथा आंखों के अन्दर रोग आदि लक्षण पैदा होते हैं ॥१५०-१५१॥

अथ तालुकण्टक चिकित्सा—

"—तत्र चोन्नीय तालुकम् ॥
प्रतिसार्य यवक्षारक्षौद्राभ्यामतियत्नतः ॥ १५२ ॥
यद्वा विश्वा कणा सिन्धुगोमयोत्थरसैस्तथा।
पथ्याकुष्ठवचाकल्कं स्तन्येन मधुना सह ॥
पीतं निहन्ति वेगेन बालानां तालुकण्टकम् ॥ १५३ ॥

तालुकण्टक रोगी की अवस्था में बालक रोगी के मुख को खोलकर उसके ऊपरी भाग को ऊंचा उठाकर तालु प्रदेश के भीतर मांसल भागपर शहद् में मिले हुए यवक्षार का प्रतिसारण कर दें अर्थात् लगाकर धीरे २ अङ्गुली से रगड़ें। अथवा सोंठ, पीपल, सैंधानिमक, हरड़, कूठ और वचा इनको समभाग लेकर महीन कूट पीस के गोबर के रसके साथ पीसकर कल्क बना लेवें। इस कल्क को वस्त्र के भीतर पोटली रूप में बांध कर दोनों हाथो से दबाकर रस निकाल लेवें। फिर इस रस में माता का दुग्ध और शहद् मिलाकर बालक को पिला देवें। इस प्रकार इस योग के सेवन करने से बालकों का तालुकण्टक रोग दूर हो जाता है ॥ १५२-१५३ ॥

अथ गुदकीटस्य निदानलक्षणे—

प्रस्वेदान्मललेपाद्वा रक्तश्लेष्मभवो गुदे।
गुदकीटो भवेद्रोगस्तीव्रव्रणसमन्वितः ॥ १५४ ॥

माता या धाई की लापरवाही से बालकों की गुदा में पसीने और मलके लगे रहने से उस स्थान के रक्त तथा कफ इन दोनों के दूषित हो जाने से गुदकीट नामक रोग पैदा हो जाता है अर्थात् गुदा के दूषित रहने से वहां कीड़े

पड़ जाते हैं और वे कीड़े उस बालक के गुदनलिकाद्वार के बहिर्भाग को खाते रहते हैं जिससे वहां तीव्र व्रण बन जाता है ॥ १५४ ॥

अथ गुदकीटचिकित्सा—

**शृतशीताम्बुशैलेयलुक चूर्णं मधूत्थकम् ।**
**तेनापानव्रणं सम्यग्लेपयेद्भिषगुत्तमः ॥ १५५ ॥**
**त्रिफलाबदरीपत्रक्वाथेन परिषेचयेत् ।**
**रागकण्डूमतो रक्तं जलूकाभिः समन्वितम् ॥**
**पित्तव्रणचिकित्सा च सकलात्र प्रशस्यते ॥ १५६ ॥**

शैलेय ( भूरि छरिले ) और चौलाई या घृतकुमारीसार को समान २ लेकर शृतशीतजल के साथ पीस के उसमें शहद् मिलाकर अपान अर्थात् गुदा के व्रणों पर लेप कर के पट्टी बांध देवें तथा दूसरे दिन त्रिफला और बेर के पत्तों का क्वाथ बनाकर उससे गुदा के व्रण की पट्टी खोलकर प्रलेप हटा के धीरे२ गुदव्रण का प्रक्षालन करना चाहिए । बाद में उपर्युक्त औषध लगाकर पट्टी बन्धन कर देवें । कुछदिनो तक इस तरह के उपचार के करने से भी विशेष लाभ न हो और गुदा के आसपास लालिमा तथा खुजली बनी रहे तब जलौकाओं को लगवा कर वहां का अशुद्ध रक्त निकला देवें । गुदकीट रोग में पित्तव्रण की समग्र चिकित्सा भी विशेष फलप्रद होती है ॥ १५५-१५६ ॥

अथ गुदपाकचिकित्सा—

**गुदपाके तु कर्तव्या पित्तव्रणहरा क्रिया ।**
**पानप्रलेपयोः शस्तं विशेषेण रसाञ्जनम् ॥ १५७ ॥**
**अजादुग्धेन संमिश्र्य जीरकाञ्जनचूर्णकैः ।**
**जातीपत्ररसोपेतैः पूर्वप्रोक्तरसैरपि ॥ १५८ ॥**

बालकों की गुदा के पक जाने पर पित्त व्रण को नष्ट करने वाली चिकित्सा को करने से लाभ होता है तथा विशेष कर वे बकरी के दुग्ध में घोटे हुए रसाञ्जन के पीने से तथा गुदा पर लगाने से लाभ होता है । अथवा जीरे और रसाञ्जन को चमेली के पत्तों के स्वरस या पूर्वोक्त त्रिफला बदरी पत्रादि क्वाथ के साथ पीस कर पीने से तथा गुदा पर लेप करने से लाभ होता है ॥ १५७-१५८ ॥

अथ मुखपाकचिकित्सा—

**मुखपाके मुखं लिम्पेद्बोधित्वग्घृतसारधैः ।**
**जातीपत्राऽभयायष्टीमधुदार्व्या च लेपयेत् ॥ १५९ ॥**

बालकों के मुख के भीतर जिह्वा, दांतों के मसूड़े, गले और तालवादि स्थानों में पाक हो जाय तथा छाले पड़ जावें तब उनपर अश्वत्थ ( पीपल ) की छाल ( अन्तर छाल ) के चूर्ण को घृत तथा शहद में मिलाकर लेप करने से आराम हो जाता है । अथवा चमेली के पत्र, हरड़ मुलेठी और दारु हलदी इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण कर के घृत तथा मधु के साथ प्रलेप करने से भी मुख-पाक तथा छाले आदि ठीक हो जाते हैं ॥ १५९ ॥

अथ नाभिपाकचिकित्सा—

**नाभिपाके प्रलेप्तव्यं सिक्तं तैलेन भूरिशः ।**
**रजनीयष्टिकालोध्रप्रियङ्गूणां च कल्कतः ॥**
**चूर्णैनैषां सतैलेन नाभिपाकं शमं नयेत् ॥ १६० ॥**

बालकों के नाभि प्रदेश में उत्पन्न हुए पाक ( शोथ ) पर तैल के साथ पकाये हुए मोम को गरम कर के प्रलेप करना चाहिए । अथवा हलदी, मुलैठी, पठानी लोध और प्रियङ्गु इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना लेवें । फिर इस कल्क से यथाविधि तैल पकाकर उस तैल का मर्दन करना चाहिए, अथवा इन्हीं औषधियों के चूर्ण को तैल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें । फिर उस कल्क को बालकों की पकी हुई या शोथयुक्त नाभि पर लगा देवें । इस तरह इनमें से किसी एक उपचार के यथाविधि करने से बालकों का नाभिपाक दूर हो जाता है ॥ १६० ॥

अथ कुण्डलचिकित्सा—

**अपुष्पाश्वत्थपञ्चाङ्गक्वाथेनापि च कल्कतः ।**
**सिद्धं तैलप्रलेपेन कुण्डलव्याधिनाशनम् ॥ १६१ ॥**

पुष्पों के अतिरक्त पीपल के पञ्चाङ्ग ( मूल, जड़, पत्र, फल ) का क्वाथ चार सेर तथा पीपल के चारों वस्तुओं का कल्क एक पाव तथा तिलतैल एक सेर भर लेकर लोहे की कड़ाही में सबको डालकर चूल्हे या भट्टीपर चढ़ा के मन्द २ अग्नि से पकावें । जब तैल मात्र शेष रह जाय तब कड़ाही को चूल्हे से उतार

कर स्वाङ्गशीतल होने पर तैल को छान के शीशी में भर देवें। कल्क को भी दोनों हाथों से दबाकर तैल निकाल के फेंक देवें। इस तैल का नाभि के नीचे वस्तिप्रदेश पर अभ्यङ्ग करने से कुण्डलव्याधि नष्ट हो जाती है ॥ १६१ ॥

अथ बालपञ्चामृतम्—

**हिङ्गुशुण्ठीकणापथ्यामिशीपञ्चामृतं मतम् ।**
**सर्वबालामयान्हन्ति पाचनं दीपनं परम् ॥ १६२ ॥**

हींङ्ग, सोंठ, पिप्पली, हरड़ और सोंफ ये पांचो द्रव्य बालकों के लिये पञ्चामृत के समान हैं। इन पांचों को बराबर २ लेकर लोहे की ओंखली में कूट खांड के चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण को शहद् या माता के दुग्ध के साथ बालकों को प्रतिदिन चटाने से उन के सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण अत्यन्त पाचन तथा दीपन है ॥ १६२ ॥

अथ तिक्ताद्यं घृतम्—

**तिक्ताग्निव्योषमालूरपथ्यारुचकहिङ्गुलम् ।**
**तुल्यदुग्धं घृतं पक्वं गुल्मानाहविलम्बिकाः ।**
**कासं श्वासं गुदभ्रंशं विनिहन्ति न संशयः ॥ १६३ ॥**

कुटकी, चित्रक, व्योष अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल, मालूर अर्थात् पके हुए बिल्वफल की सूखी गूदी, हरड़ रुचक ( सौवर्चल लवण ) और हींङ्ग इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चतुर्गुण दुग्ध तथा दुग्ध के बराबर घृत और घृत से चतुर्गुण जल लेकर सब को कलईदार कढ़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के मन्द २ अग्नि से पाक करें। जब समस्त जलीयांश नष्ट हो जाय तब सिद्ध हुए घृत को चूल्हे से उतार कर छान के चौड़े मुख वाले काच के पात्र या मृतबान में भर कर रख दें। यह घृत बालकों के गुल्म, आनाह, विलम्बिका, कास, श्वास और गुदभ्रंश आदि रोगों को नष्ट कर देता है ॥१६३॥

अथ राजीकुष्ठादिलेपः—

**राजीकुष्ठनिशागेहधूमत्वत्सकतक्रतः ।**
**लेपो विचर्चिकां सिध्म हन्ति पामां च वेगतः ॥ १६४ ॥**

राई, कूठ, हरिद्रा, रसोई घर का धुंआ और कूडे की छाल इन सबको सम भाग लेकर ओंखली में कूट पीसकर चूर्ण बना लेवें। फिर इस चूर्ण को गाय के

मट्ठे के साथ पीसकर लेप करने से विचर्चिका, सिध्म और पामा आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १६४ ॥

अथ छिन्नातैलम्—

**छिन्नाफणिज्झहंसाङ्घ्रिभानुपत्ररसैः सह ।**
**सस्तन्यं साधितं तैलं लिप्तं सर्वग्रहार्तिजित् ॥ १६५ ॥**

गिलोय, तुलसी, हंसपदी और आक के पत्र इन सबका (दुग्ध से चतुर्गुण) स्वरस तथा माता का या गाय का दुग्ध (तैल से चतुर्गुण) और तैल इन सबको लोहे की कड़ाही में डालकर मन्द २ अग्नि से पाक करें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब कड़ाही को उतारकर तैल को छान के काच की शीशी में भर देवें। इस तैल की बालकों के शरीर पर प्रतिदिन मालिश करने से सर्व प्रकार की ग्रह पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ १६५ ॥

अथ स्फूर्जकादितैलम्—

**स्फूर्जकं हपुषापुष्पं हंसपादिकुरण्टकम् ।**
**करञ्जार्कदलस्फूर्जश्वेतपुष्पं च कल्कितम् ॥**
**तेन संसाधितं तैलं तेनाऽभ्यङ्गं चरेच्छिशोः ॥ १६६ ॥**

तिन्दुक वृक्ष की जड़, हाऊबेर के पुष्प, हंसपादी, कुरण्टक अर्थात् पीले फूल वाली कटसरैया, करञ्ज की जड़, आक के पत्ते और सफेद पुष्प वाली कनेर की जड़ इन सबको समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीसकर कल्क बनालेवें। फिर इस कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल से चतुर्गुण जल लेकर सबको लोहे की कड़ाही में डालकर तैल पका लेवें। इस तैल को बालकों के शरीर पर प्रतिदिन मालिश करने से सर्व प्रकार की ग्रह बाधाएं दूर हो जाती हैं ॥ १६६ ॥

अथ निम्बादिघृतं क्षीरञ्च—

**निम्बाश्वत्थपलाशानां बिल्वार्किशुकयोर्दलैः ।**
**सिद्धं सर्पिस्तथा तैलं पानाद्बालग्रहाञ्जयेत् ॥ १६७ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वागभट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये वन्ध्यागर्भिणीसूतिकाबालरोगचिकित्सा नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नीम, पीपल, पलाश (ढाक), बिल्व और सेमल के कोमल पत्तों को लेकर जल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें। इस कल्क से चतुर्गुण घृत या तैल तथा स्नेह से चतुर्गुण जल लेकर घृत या तैल को सिद्ध कर के शीशी में भर देवें। इस तैल या घृत के पान करने से बालकों की ग्रह बाधाएं दूर हो जाती हैं ॥ १६७ ॥

अथ बालरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

अपथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु। तत्तद्विधेयमौचित्याद् बालानां तेषु जानता ॥१॥
पूर्वं पथ्यमपथ्यञ्च मन्दाग्नौ यत्प्रकीर्तितम्। औचित्याद्योजयेज्जाते बालानां पारिगर्भिके ॥२॥
आगन्तून्मादवातानां पथ्यापथ्यं यदीरितम्। औचित्याद्योजयेत्तत्र बालेषु ग्रहरोगिषु ॥३॥

इति पथ्यापथ्यविवेकः।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य–भाषा–टीकायां वन्ध्यागर्भिणी-सूतिकाबालरोग–चिकित्सानाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

## त्रयोविंशोऽध्यायः।

अथोन्मादरोगः—

तत्रादावुन्मादस्य निदानसम्प्राप्ती—

**आधिव्याधिकृशस्य दुर्बलतनोराहारतो वा भयात्।**
**पूज्यातिक्रमणाद्विषादुपविषाद्दैवादसामर्थ्यतः।**
**वैषम्यादपि कर्मणां हृदि मलाद्बुद्धेर्विधायोल्वणं**
**कालुष्यं हतसौख्यदुःखमथनादुन्मादमातन्वते ॥ १ ॥**

आधि (मनो व्यथा) और व्याधि (ज्वरादिरोगजन्य शरीर व्यथा) के कारण शरीर की धातुओं के क्षीण हो जाने से दुर्बल हुए पुरुष के विरुद्धाहार करने से, भय से, पूज्य पुरुषों की पूजा के व्यतिक्रम से, विष तथा उपविषों के सेवन करने से, दैवयोग से, शरीर की असमर्थता से तथा पञ्चकर्म की विषमता आदि कारणों से कुपित हुए मल अर्थात् वात पित्तादिक दोष हृदय में स्थित होकर

बुद्धि को अत्यन्त कलुषित कर के सुख और दुःख के विनाशक उन्माद रोग को उत्पन्न करते हैं। अर्थात् उन्माद के कारण पुरुष संज्ञा शून्य रहने से सुख दुःखों को एक समान मान कर पागल के सदृश हो जाता है ॥ १ ॥

अथोन्मादलक्षणम्—

**सङ्कल्पको धावति हन्ति चैतदुन्मादवातस्य च लक्षम बोध्यम् ॥ २ ॥**

उन्माद रोग से पीड़ित पुरुष अत्यन्त असम्बद्ध प्रलाप करता है तथा इधर उधर दौड़ता फिरता है तथा लकड़ी और पत्थर या ढेलों से अपने को तथा दूसरों को भी मारता है ये सब उन्माद वात के लक्षण हैं ॥ २ ॥

अथ उन्मादचिकित्सा।

अथ ग्रहघ्नधूपः—

**कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतक-**
**त्वङ्मांसीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः।**
**नागेन्द्रद्विजश्रृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः**
**स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशग्रहघ्नः परम् ॥ ३ ॥**

कपास के बीज, मोर की पुच्छ, बड़ी कटेरी, शिवनिर्माल्य अर्थात् शिवजी के चढ़ाये हुए बिल्व पत्र, माला और पुष्पादिक, पिण्डीतक ( मैन फल ), त्वक् ( तगर या खस ), जटामांसी, अड़ूसा, दंशविट् अर्थात् बिड़ाल ( बिलाव ) की विष्ठा, जौ के तुष, वचा, गदहे के बाल, सांप की काञ्चली, हाथी के दांत, गाय के सींग, हींग और मरिच इन सब को समभाग लेकर खरल में कूट कर धूप बना लेवें। इस धूप की बालक के शयन गृह में धूनी देने से स्कन्दग्रह, उन्माद, पिशाच, राक्षस, असुर और दैव आदि का आवेश तथा समस्त ग्रहपीड़ाएं दूर हो जाती हैं। इस धूप को प्रतिदिन धूनी लगानी चाहिए ॥ ३ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ अर्कमूर्त्तिरस्य प्रयोगविधिः—

**अत्रार्कमूर्त्याख्यरसस्य वल्लं धत्तूरबीजेन समं प्रदद्यात्।**
**मरीचचूर्णेन घृतेन वापि पथ्यं च गुर्वन्नमिह प्रशस्तम् ॥ ४ ॥**
**शुष्कं च शाकं परिवर्जयीत रूक्षं कषायं बहुशीतलं च।**
**निम्बस्य तैलेन विमर्दयेत कलेवरं शाम्यति तेन रोगः ॥५॥**

उन्माद रोग में १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर अर्कमूर्त्ति रस को शुद्ध धत्तूरबीजचूर्ण अथवा मरिचचूर्ण और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय पथ्य में घृतादि से संस्कृत किये हुए गुरु पदार्थों का सेवन करना प्रशस्त है। इस रस के सेवन करते समय शुष्क पदार्थ तथा शुष्क शाक, रुक्षपदार्थ, कषैले पदार्थ और अत्यन्त शीतल पदार्थों का सेवन करना वर्जित है। विशेष कर नीम के पञ्चाङ्ग के कल्क में सिद्ध किये हुए तैल से शरीर की मालिश करने से इस रोग के नाश करने में विशेष सहायता होती है ॥ ४-५ ॥

अथ निर्गुण्डिकादितैलम्—

**निर्गुण्डिकोन्मत्तकतुम्बिनीनां रसैस्तु तैलं परिपाचयीत ॥**
**कलेवरं तेन विलेपयेत मासार्धतः शान्तिमुपैति रोगः ॥६॥**

निर्गुण्डी के पत्ते तथा जड़, धत्तूरे की जड़ और कड़वी तुम्बी इनका स्वरस तैल से चौगुना लेकर उससे तैल पाक करें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उसे छानकर शीतल करके शीशी में भर देवें। इस तैल से प्रतिदिन उन्मादरोगी के शरीर की मालिश करनी चाहिए। इस तरह आधे मास तक मालिश करने से यह रोग उन्माद रोग को नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

अथापस्मारः—

तत्रादावपस्मारसम्प्राप्तिलक्षणे—

**क्रुद्धैर्धातुभिराहते च मनसि प्राणो तमः संविश-**
**न्दन्तान्खादति फेनमुद्गिरति दोः पादौ क्षिपन्मूढधीः ।**
**पश्यन् रूपमसत्त्वितो निपतति प्रायः करोति क्रिया**
**बीभत्सा स्वयमेव शाम्यति गते वेगे त्वपस्मारुक् ॥ ७ ॥**

शरीर के वातादिक धातुओं(१)के प्रकुपित या दूषित हो जाने से अथवा रस रक्तादि धातुओं के दूषित हो जाने से तथा अचानक स्त्री, पुत्र और धनादिक प्रिय वस्तुओं के विनाश के कारण चित्त के आहत ( दुःखित या ताडित ) हो जाने से पुरुष भ्रान्त बुद्धि होकर तमोगुण में अधिक प्रविष्ट होता हुआ दांतों को कटकटाने लगता है, फेन का उद्गिरण करता है, हाथ और पैरों को इधर उधर पटकता है तथा फिर बड़े २ बीभत्स रूपों को देखता हुआ पृथिवी पर लकड़ी के समान निश्चेष्ट

( १ ) धारणाद्धातवः, दूषणाद्दोषाः, मलिनीकरणान्मला इति चरकः ।

होकर यकायक गिर पड़ता है तथा कुछ देर बाद अनेक बीभत्स चेष्टाओंको करता रहता है। इस तरह कुछ समय के पश्चात् दौरे के चले जाने पर वह अपने आप अच्छा हो जाता है। इस तरह की व्याधि को अपस्मार कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ अपस्मारचिकित्सा—

अथ अपस्मारनाशनरसः—

रसगन्धशिलातुत्थकान्तहेमाभ्रफेनकम्।
रजनी तेजनीबीजं कर्षमात्रं पृथक् पृथक ॥ ८ ॥
निम्बुद्रावार्द्रं तेनान्तर्लिप्तां ताम्रपलोन्मिताम्।
पात्रीं न्युब्जां सुभाण्डान्तां रुद्धा खर्परिकां धृताम् ॥ ९ ॥
भस्मनाऽऽपूर्यं भाण्डान्तर्धृत्वाऽधो द्विनिशं पचेत्।
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ रसोऽपस्मारनाशनः ॥ १० ॥
वल्लमस्योदये दद्याद्वचाव्योषविडङ्गयुक्।
अनुदेयमजामूत्रं ततोऽर्धप्रहरे गते ॥ ११ ॥
सार्षपे षोडशपले तैले तत्कलितं पचेत्।
नस्यं तैलेन तेनास्य दद्यात्सव्योषकेण तु ॥ १२ ॥

शुद्ध पारद १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, शुद्ध मनः शिला १ कर्ष, शुद्ध तुत्थक १ कर्ष, कान्तलौह की भस्म १ कर्ष तथा मालकांगनी के बीजों का चूर्ण १ कर्ष भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके सबको एकत्र अच्छी तरह खरल कर लेवें। फिर निम्बू के स्वरस से रात भर भीगो कर दिन भर घोटकर कल्क बना लेना चाहिए। फिर एक पलभर शुद्ध ताम्र के पत्र की पात्री ( कटोरी ) बनाकर उसके भाग में उक्त औषध कल्क को प्रलिप्त करके सुखा लेवें। फिर इस ताम्र की कटोरी को अधोमुखी करके एक हण्डिका के भीतर रखकर उस ताम्र की कटोरी के पृष्ठ को शराव से ढककर हण्डिका और शराव की सन्धियों को चिकनी मिट्टी के कीचड़ से लीप के बन्द करके सुखादें। पश्चात् शराव के ऊपर हण्डिका के खाली भाग में भस्म ( राखी ) भरकर भाण्ड के मुख को भी सकोरे से बन्द करके सन्धिबन्धन कर देवें। फिर इस हण्डिका के सम्पूर्ण बाहरी भाग पर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर चूल्हे पर चढाकर दो दिन और दो रात भर तक पकावें। स्वाङ्गशीतल होने पर हण्डिका में से राखी

निकालकर भीतरी सकोरे को हटा कर ताम्र की कटोरी सहित सिद्ध औषध को खरल में महीन पीसकर चूर्ण बना के कपड़े से छान लेवें। यह रस अपस्मार को नष्ट करता है। एक वल्ल ( ३ रत्ती ) भर इस रस को समभाग गृहीत वचा, सोंठ मरिच, पीपल और वायविडङ्ग इन औषधियों के ४ माशे भर चूर्ण और शहद् के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने के आधे घण्टे के पश्चात् बकरी का मूत्र ( १ पल भर ) पिलाना चाहिए। अथवा वचा, त्रिकटु और वायविडङ्ग इन को समभाग लेकर चार पल भर कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चतुर्गुण अर्थात् १४ पल भर सरसों का तैल और तैल से चतुर्गुण जल लेकर सबको कड़ाही में पकाकर तैलमात्र शेष रहने पर स्वाङ्गशीतल कर के छान कर शीशी में भर देवें। फिर व्योष ( सोंठ, मरिच, पीपल ) के चूर्ण में इस तैल को मिलाकर अपस्मार रोगी को नस्य देवें, तथा तीन या चार बूंद तैल भी रोगी के नाक में टपका देना चाहिए। इस तरह यह रस अपस्मार रोग को विनष्ट करता है ॥ ८–१२ ॥

अथ नवाङ्गवटिका—

**त्रिलोहपिष्टस्रोतोजसृष्टित्रययुतं रसम्।**
**भक्षयेत् पूर्ववत्सिद्धमपस्मारप्रणुत्तये ॥ १३ ॥**

(१)त्रिलौह अर्थात् स्वर्ण भस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म तथा पिष्ट अर्थात् सीसे की भस्म, शुद्ध स्रोतोऽञ्जन, सृष्टि अर्थात् ऋद्धि का चूर्ण, त्रय अर्थात् सोमराजी का चूर्ण और रस ( रस सिन्दूर ) अथवा सृष्टित्रय अर्थात् अभ्रकभस्म, शुद्धमनःशिला और शुद्ध गन्धक तथा रस ( शुद्ध पारद ) इन सबको समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह से एक दिन तक घोट कर देवदाली आदि अपस्मार हर औषधियों के क्वाथ या स्वरस के साथ खरल करके गन्धकतैल में पकाकर सिद्ध कर लेवें। इस रस को अपस्मारहर औषधियों ( शंखपुष्पी, वचा, ब्राह्मी, कुष्ठ, आदि ) के चूर्ण तथा शहद् के साथ प्रतिदिन अपस्मार के नष्ट होने के लिये सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

अथ सूतकप्रत्ययः—

**तथैव पर्पटीसूतं ब्राह्मीरसविमिश्रितम्।**

---

( १ ) सुवर्णं रजतं ताम्रत्रयमेतत् त्रिलोहकम्।

**सूतकः प्रत्ययाख्योऽसौ उन्मादापस्मृतौ हरेत् ॥ १४ ॥**

अथवा पूर्व में कहे हुए पर्पटी रस और पारदभस्म या रससिन्दूर को समभाग लेकर ब्राह्मी के स्वरस या क्वाथ के अनुपान से प्रतिदिन सेवन करते रहने से उन्माद और अपस्मार रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥

सर्वेश्वररसः—

**रसं नारङ्गमूलं च दन्ती पाठा पृथक् पृथक् ।**
**पलमेकं फेनफलमर्कमूलं तथैव च ॥ १५ ॥**
**पलं मृगविषाणं च त्रिफला च पलत्रयम् ।**
**एतेषां क्वाथसंयुक्तं दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ १६ ॥**
**अम्लवेतससंयुक्तमर्कक्षीरसमन्वितम् ।**
**पञ्चपञ्चदिने तद्वदमरीरससंयुतम् ॥ १७ ॥**
**त्रिसप्तदिवसं तद्वन्मर्दयेत्सिद्धमौषधम् ।**
**पिष्टं चित्रकनिष्क्वाथे वल्लत्रयनिषेवितम् ।**
**उन्मादापस्मृतौ हन्यादेष सर्वेश्वरो रसः ॥ १८ ॥**

रस अर्थात् पारदको भस्म अथवा रससिन्दूर १ पल, नारङ्गी की जड़का चूर्ण १ पल, दन्ती की जड़ का चूर्ण १ पल, पाठा का चूर्ण १ पल, फेनफल अर्थात् अफीम के डोड़े के बीजों का चूर्ण १ पल, आक की जड़ का चूर्ण १ पल, हिरन के शृङ्ग को भस्म १ पल, त्रिफला अर्थात् हरड़ का चूर्ण १ पल, बहेड़े का चूर्ण १ पल तथा आंवलों का चूर्ण १ पल भर लेकर सबको खरल में महीन पीस कर चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को नारङ्गादि त्रिफलान्त द्रव्यों के क्वाथ के साथ तीन दिन तक खरल करके अम्ल वेतस के क्वाथ से तथा आक के शुद्ध दुग्ध से पांच २ दिन तक भावित करके घोटें, फिर इसी प्रकार अमरी के स्वरस अर्थात् नील दूर्वा या तुलसी के क्वाथ से भी पांच दिन तक भावित करके घोटें, पश्चात् चित्रक के क्वाथ से २१ बार भावित करके घोट कर सुखा लेवें। इस को सर्वेश्वर रस कहते हैं। इस रस को १ वल्ल ( ३ रत्ती ) से प्रारम्भ करके रोग तथा रोगी के बल के अनुसार विचार करके ३ वल्ल भर तक अपस्मार हर औषधियों के चूर्ण तथा मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करते रहना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह सर्वेश्वर रस उन्माद और अपस्मार को नष्ट कर देता है ॥ १५–१८ ॥

अथ धूस्तूरपञ्चाङ्गघृतम्—

**कृष्णधुस्तूरपञ्चाङ्गं कृष्णगोनवनीतकम् ।**
**षड्गुणं नवनीतात्तु माषकाथं चतुर्गुणम् ॥ १९ ॥**
**क्षिप्त्वा पचेद् घृतं तत्तु पथ्यं शाकोदनादिषु ।**
**शाकेषु काकमाची स्याद् भोजने कृष्णगोपयः ॥ २० ॥**

काले धत्तूरे के पञ्चाङ्ग का कल्क एक पल तथा काली गाय का ताजा घृत ६ पल तथा काले उड़दों ( माष ) का क्वाथ घृत से चौगुना ( २४ पल ) लेकर सब को कलई दार लौह की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर कढ़ाई को चढ़ा कर मन्द २ अग्नि से पाक करें । जब समग्र जलीयांश नष्ट हो जाय अर्थात् घृत सिद्ध हो जाय तब चूल्हे से कड़ाई को उतार कर स्वाङ्गशीतल होने पर घृत को छान के चौड़े मुख वाली शीशी या मृत बाण में भर कर रख देवें । यह घृत शाक तथा ओदन ( भात ) आदि भोज्य पदार्थों के साथ सेवन करने से उन्माद और अपस्मार को नष्ट करने के लिये श्रेष्ठ है । उन्माद तथा अपस्मार रोग में शाकों में मकोय का शाक तथा काली गाय का दुग्ध श्रेष्ठ माना गया है ॥ १९–२० ॥

अथ चूर्णाञ्जनम्—

**शतधा मारिचं चूर्णं कूष्माण्डीपुष्पभावितम् ।**
**कुर्यात्तेनैव चूर्णेन रात्रावञ्जनमाचरेत् ॥ २१ ॥**
**एवं नित्यं कृते याति तृतीयदिवसे ध्रुवम् ।**
**अपस्मारस्तथा मासं सेव्यमेतन्महौषधम् ॥ २२ ॥**

चार पल या इस से अधिक ( यथेष्ट ) काली मरिचों का चूर्ण लेकर उस को खरल में डाल कर सफेद कोहड़े के पुष्पों के स्वरस या क्वाथ से सौ बार भावित कर के घोट कर चूर्ण बना के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को प्रतिदिन रात्रि में अञ्जन की तरह लगाना चाहिए । इस तरह तीन दिन तक अञ्जन लगाने से अपस्मार नष्ट हो जाता है । इस चूर्ण को एक मास तक शहद् के साथ सेवन करने तथा अञ्जन करने से निश्चय ही अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है॥२१–२२॥

अथ मसीयोगः—

**उद्बद्धमानवगलव्यतिषक्तमग्नौ रज्जुं विदह्य निपुणेन कृता मषी या ।**
**सा शीतलेन सलिलेन समं निपीतापुंसामपस्मृतिविनाशकरी प्रसिद्धा २३**

मरने के लिये गले में बंधी हुई मनुष्य की रज्जु ( फांस ) अथवा छोटे २ बालकों के गले में बंधाहुआ सूत का डोरा जब अत्यन्त मैला हो जाय तब उसका अग्नि में जलाकर मस्सी तैयार कर लेवें। इस मस्सी में से थोड़ी सी (१-३ माशे भर ) मस्सी लेकर शीतल जलके साथ पीने से मनुष्यों के अपस्मार रोग को नष्ट कर देती है ॥ २३ ॥

अथ तिलजदीपाञ्जनम्—

**कृष्णं श्वानं स्थितमनशनं स्थापयित्वा विरेकं**
**पश्चाद्घ्नासिततिलयुतं भोजनं भोजयित्वा ।**
**तद्ग्रीवोत्थासिततिलजदीपाञ्जनं लोचनस्थं**
**चापस्मारं हरति विधृतं नैम्बसारे शरावे ॥ २४ ॥**

काले कुत्ते को एकदिन तक भूखा रखकर दूसरे दिन विरेचन औषध सेवन करा के उसके कोष्ठ की शुद्धि कर लेनी चाहिए। पश्चात् तीसरे दिन दही के अन्दर काले तिल मिलाकर जितने वह खा सके उतने उसे खिला देवें। फिर सन्ध्या के समय उसे वामक औषधि खिलाकर सब तिलों को निकाल लें। फिर उन तिलों में तैल पकाकर या उन तिलों का तैल निकालकर दीपक जला के नीम की लकड़ी से बनाये हुए शराव ( सकोरे ) के भीतर अञ्जन एकत्रित करें या पाडें। इस अञ्जन को अपस्माररोगी की आंखों में रात्रि के समय आंजने से अपस्मार नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

अथ चण्डभैरवरसः—

**हेम्ना शुद्धेन सम्पिष्टं दशमांशरसं विषम् ।**
**स्रोतोजं मर्दितं तोयैः शूलिनीदेवदालिजैः ॥**
**गन्धकस्य पचेत्तैले वटिकोन्मादनाशिनी ॥ २५ ॥**

शुद्ध स्वर्ण की भस्म १० माशे भर, शुद्ध पारद १ माशा, शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण १ माशा तथा स्रोतोऽञ्जन १ माशे भर लेकर सब को खरल में डाल कर महीन चूर्ण करशे चित्रक और वन्दाल के स्वरस या क्वाथ से सात २ वार भावित कर के घोट कर सुखा लेवें। फिर इस चूर्ण को गन्धक के तैल के साथ मन्द २ अग्नि से पका कर स्वाङ्गशीतल कर के दो २ रत्ती भर की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को एक २ वटी प्रतिदिन सेवन करने से उन्माद रोग को नष्ट करती है ॥ २५ ॥

विमर्शः—रसरत्नाकर में इस रस का निर्माण निम्न प्रकार से है। यथा-

हेमपादं मृतं सूतं निष्टखल्ले विमर्दयेत्।
शोभाञ्जनं विषं तुल्यं मर्द्यं त्रिशूलिनीद्रवैः॥
देवदाल्या द्रवैश्चाह्नि तद्गोलं पाचयेद्दिनम्।
गन्धकोत्थेन तैलेन तत उद्धृत्य चूर्णयेत्।
मासैकं भक्षयेन्नित्यं पिबेद्ब्राह्मीघृतं ह्यनु।
सर्वभूतग्रहं हन्ति रसोऽयं चण्डभैरवः॥ इति।

अथ पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

**पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ नाकुलीबीजपञ्चकम्।**
**गोघृतेन तु संयोज्य खादेदुन्मादशान्तये॥**
**सघृतं माषमण्डं च पाययेद् घृतदुग्धकम्॥ २६॥**

पूर्वोक्त पर्पटी रस ८ रत्ती भर तथा नाकुली कन्द के ५ बीज लेकर दोनों को छोटी खरल में महीन घोट कर गाय के १ तोले भर घृत में मिला कर उन्माद रोग की शान्ति के लिये प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। अनुपान के लिये उड़दों की दाल के मण्ड ( यूष ) में घृत मिला कर अथवा दुग्ध में घृत मिला कर पीना चाहिए॥ २६॥

अथ पर्पटीरसस्य प्रकारान्तरेण सेवनोपदेशः—

**पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ ब्राह्मीरससमन्वितम्।**
**खादयेद्रोगिणं वैद्यो ह्यपस्मारप्रशुत्तये॥ २७॥**

पूर्वोक्त पर्पटी रस ८ रत्ती भर लेकर ब्राह्मी के स्वरस या क्वाथ के साथ अपस्मार रोग को नष्ट करने के लिए प्रतिदिन सेवन करना चाहिए॥ २७॥

अथ नेत्ररोगाणां संख्या—

**कृष्णे पञ्च नवैवसन्धिषु दश त्रीण्येव शुक्लेऽखिले**
**जाताः षोडशवर्त्मजाः खलु चतुर्विंशो दृशोर्विंशतिः।**
**सप्तातङ्कयुताश्चतुर्नवतिरित्यक्ष्णोरशेषामयान्।**
**यो वेत्ति व्यपहर्तुमेष विदुषामग्रे समर्थो भवेत्॥ २८॥**

आखों की काली पुतली में ५, नेत्र की सन्धियों में ९, नेत्र के समग्र श्वेत भाग में १३, नेत्र के वर्त्म प्रदेश में १६, दृष्टि मण्डल में २४ तथा नेत्र के शेष २७ रोग इस तरह ९४ प्रकार के आखों के रोग होते हैं। जो इन रोगों को

अच्छी तरह से जानता है वही वैद्य सब विद्वानों में अग्रणी हो कर नेत्रों के रोगों को नष्ट करने में समर्थ होता है ॥ २८ ॥

विमर्शः—सुश्रुत में नेत्रों के ७६ रोग माने गये हैं । यथा—

"तैस्त्रिभिस्त्रिंशदुक्तास्ते कफेनाभ्यधिकास्त्रयः ।
रक्तजाः षोडश प्रोक्ताः सर्वजाः पञ्चविंशतिः ॥
बाह्यौ पुनर्द्वौ च तथा रोगाः षट् सप्ततिः स्मृताः ।
नवसन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ॥
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ।
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ॥
द्वौ च बाह्याश्रयावन्त्यावनिमित्तनिमित्तजौ ।
षट् सप्तति नेत्ररोगाः संक्षेपेण प्रकीर्तिताः ॥

यहां ( रसरत्न में ) वाग्भटाचार्य ने नेत्ररोगों की संख्या संक्षेप से न लिख कर विस्तार सहित लिख दी है ।

अथ नेत्ररोगचिकित्सा—

अथ ताम्रवर्तिः—

**आर्द्रालकुचभृङ्गाणां रसपिष्टेन कस्यचित् ।**
**गन्धकेन समांशेन प्रागवत्ताम्रं च मारितम् ॥ २९ ॥**

एक तोले भर ताम्र भस्म लेकर अदरक, लकुच ( बड़हर ) और भृङ्गराज इन तीनों में से किसी एक के रस के साथ घोट कर कल्क किये हुए एक तोले भर शुद्ध गन्धक ( आर्द्रोद्यन्यतमस्वरसकृतकल्कस्वरूपगन्धक ) में मिला कर खरल कर के पूर्ववत् वर्तियां बना लेवें । इस प्रकार की वर्ति को जल में घिस कर नेत्रों में लगाने से नेत्र रोग में विशेष लाभ होता है ॥ २९ ॥

अथ ताम्रद्रुतिः—

**ताम्राभ्रकं च तुल्यं च दशनिष्कं पृथक् पृथक् ।**
**कन्दुकस्थमिदं त्रिंशत्कर्षचूर्णितगन्धकम् ॥ ३० ॥**
**दत्त्वाल्पशोऽग्निनालेन रुद्ध्वा धूमं विसर्जयेत् ।**
**प्रस्थाम्बुमर्दितस्यास्य प्रसादं निसृतं युतम् ॥ ३१ ॥**
**तुत्थनीरशिलाजाभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोषयेत् ।**
**ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिकात् ॥ ३२ ॥**

काचार्मपिल्लाभिष्यन्दव्रणशुक्रप्रणाशिनी ।
तत्किट्टं दद्रुकिटिमं लेपात्पामादिकं जयेत् ॥ ३३ ॥

ताम्र की भस्म १० निष्क ( ४० मा० ), अभ्रक की भस्म १० निष्क, शुद्ध किया हुआ नील तुत्थक १० निष्क भर लेकर सब को एकत्र खरल में अच्छी तरह घोट कर चूर्ण कर लेवें । फिर इस चूर्ण को किसी कन्दुक के आकार के लौह पात्र या लौह की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा के मन्द २ अग्नि से पकावें । जब यह चूर्ण उष्ण हो जाय तब इस में एक कर्ष ( १६ मा० ) भर शुद्ध गन्धक डाल कर काष्ठदण्ड या कलच्छी से सब को एकत्र कर के घोट कर किसी सराव ( सकोरे ) से ढक देवें । जब कर्ष भर गन्धक का जारण हो जाय तथा शराव के अन्दर जारित गन्धक का धुआं एकत्रित हो जाय तब उस सकोरे को हटा कर धुआं निकाल देवें तथा फिर एक कर्ष भर शुद्ध गन्धक मिला के कलच्छी से घोट कर सकोरे से ढक देवें तथा गन्धक जीर्ण हो जाने पर धूएं को निकाल देवें । इस तरह थोड़ी २ देर में एक २ कर्ष भर गन्धक का जारण करें । इस तरह से ३० कर्ष भर गन्धक जारण कर के स्वाङ्गशीत होने पर कड़ाही से उस भस्मी भूत चूर्ण को लेकर १ प्रस्थ (६४ तो०) भर जल में मिला के घोल बना कर कुछ देर ( समय ) के लिये रख दें । जब सार भाग नीचे प्रासाद रूप में बैठ जाय या अवक्षिप्त हो जाय तब धीरे २ जल को नितार कर निकाल देवें । इस अवशिष्ट रहे अवक्षिप्त भाग में तूतिये का पानी १ कर्ष भर तथा शुद्ध शिलाजीत १ कर्ष भर डाल के खरल में दिन भर घोट कर सुखा लेवें । फिर इस में से ३ रत्ती भर चूर्ण लेकर घृत, स्त्री या गाय के दुग्ध अथवा शहद् में मिला कर आंखों में लगाने से काच रोग ( मोतिया बिन्द ), अर्म, पिल्ल, अभिष्यन्द, व्रण तथा नेत्र के शुक्र रोग को नष्ट करता है । ऊपरी जल के साथ निकले हुए किट्ट को शरीर पर लेपन करने से दद्रु, किटिम रोग तथा पामादिक को विनष्ट करता है ॥ ३०–३३ ॥

**विमर्शः**—कुछ टीकाकारों ने उपर्युक्त ताम्रभस्मादिक-जारितौषध के नितरे हुए जल को प्रसाद भाग मान कर उसे अवक्षिप्त भाग से अलग करके उस में एक कर्ष भर तुत्थोदक तथा कर्ष भर शिलाजीत मिलाके घोट कर धूप में सुखा के घृतादिकों के साथ मिलाके आंखों में लगाने के लिए तथा अवक्षिप्त हुई ताम्रादिभस्मों को किट्ट

मान कर उनका द्रुत पामादिक पर प्रलेप करने को लिखा है। इसे मानने में भी कोई हानि नहीं है तथा आगे को ताम्रद्रुति से भी सङ्गत होता है। एवं किसी २ ग्रन्थ में "अर्द्राऽलकुचादि" २९ वें श्लोक में कहे हुए ताम्रवर्ति नामक प्रयोग को पृथक् न मान कर ३० से ३३ तक की संख्या वाले योग हो में मिला दिया है तथा ताम्र अभ्रक की भस्मों में से ताम्र भस्म को २९ वें श्लोक के अनुसार बनाकर ग्रहण करने को लिखा है। अर्थात् ताम्रके शुद्ध पत्र लेकर उन पर आर्द्राऽलकुच भृङ्गादियों में से किसी एक के स्वरस में पिष्ट किये हुए समभाग गन्धक के कल्क का प्रलेप करके शराव सम्पुट में पत्रों को बन्द कर गजपुट द्वारा पत्तों को भस्म बनाना चाहिए। पश्चात् इस विधि से निर्मित ताम्र भस्म १० निष्क, अभ्रक भस्म १० निष्क तथा शुद्ध तुत्थ १० निष्क लेकर शेष कर्म करना चाहिए।

अथ ताम्रद्रुतिः—

शुल्वं गन्धकमभ्रकं च रसकं दिक्सङ्ख्यनिष्कं पृथक्
सर्वं रुद्रजटारसेन बहुशो भृङ्गस्य सारेण वा।
प्रायःश्लक्ष्णतरं सुमर्दितमिदं सम्यक्पुटं कारये-
त्स्थाल्यां तत्पुनरेव शीतलमिदं विन्यस्य तस्यान्तरे ॥ ३४ ॥
निष्कं निष्कमनन्तरं परिपचेज्जीर्णं यथा गन्धकं
स्यादेवं शतनिष्कमात्रमसकृत्तद्भस्म शीतं ततः।
प्रस्थेनाग्नितवारिणा विलुलितं कल्कं विना गालितं
सङ्गृह्याम्बु तदन्तरे शिखिनिभं तुत्थं सुचूर्णीकृतम् ॥ ३५ ॥
कर्षांशांशितमञ्जनं विनिहितं कांस्ये परं शोषये-
त्तां ताम्रद्रुतिमामनन्ति निखिलान्नेत्रामयान्नाशयेत् ॥ ३६ ॥

ताम्रभस्म १० निष्क, शुद्ध गन्धक १० निष्क, अभ्रकभस्म १० निष्क तथा खर्पर भस्म १० निष्क भर लेकर सब को खरल में अच्छी तरह घोट कर रुद्र जटा अथवा भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करके अच्छी तरह खरल करके गोला बना कर सुखा लेवें। फिर इसे शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पकावें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट में से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि द्वारा प्रतप्त करके एक निष्क भर शुद्ध गन्धक डाल कर कलछी से घोट के सकोरे से ढक देवें। जब गन्धक का जारण हो जाय तब सकोरे ( ढक्कन ) को हटा कर फिर एक निष्क भर गन्धक

डाल कर जारण करें। इस तरह एक २ निष्क भर गन्धक डाल २ कर सौ निष्क भर गन्धक समाप्त होने तक जारण करता रहे। पश्चात् स्वाङ्गशीतल कड़ाही में से शीतल हुई ताम्रादिक की भस्म निकाल कर १ प्रस्थ भर जल में डाल के हाथों से मसल २ ( रगड़ २ ) कर कुछ देर के लिये रख दें। जब ताम्रादिकों की भस्म नीचे बैठ जाय तब उसके जल को धीरे २ दूसरे पात्र में नितार कर ले लेवें। फिर उस नीचे शेष रहे ताम्रादिक भस्मों के चूर्ण में अथवा नितारे हुए पानी में एक कर्ष भर शुद्ध किया हुआ मयूर के कण्ठ की आभा के सदृश नील वर्ण का तुत्थचूर्ण और शुद्ध किया हुआ १ कर्ष भर ही असित अञ्जन ( नीलाञ्जन ) मिला कर सब को घोट कर कांस्य पात्र में भरके सूखने के लिये धूप में रख देवें। इस प्रकार से बनी हुई औषध को रसायन शास्त्र के आचार्य ताम्रद्रुति कहते हैं। इस ताम्रद्रुति को घृत, दुग्ध या शहद् के साथ मिला के नेत्रों में लगाने से सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को नष्ट करती है॥ ३४-३६॥

अथ गन्धकद्रुतिः—

आर्द्रकस्य रसे पिष्टं गन्धकेन विमिश्रितम्।
तुत्थं तु निष्कदशकं तन्मानं चाभ्रकं क्षिपेत्॥ ३७॥
दशनिष्केण तन्मानं ताम्रं च शकलीकृतम्।
भर्जयेत्खर्परे क्षिप्त्वा दहेत्तदनु चूर्णयेत्॥ ३८॥
तन्मिश्रं कन्दुकस्थेन चूर्णमेतेन भर्जयेत्।
गन्धकं चूर्णितं कृत्वा कर्षं तु विधिना शनैः॥ ३९॥
भर्जितं तज्जलप्रस्थे नीलं चापि शिलाजतु।
कर्षप्रमाणं निक्षिप्य मर्दयेद्भावयेत्पुनः॥ ४०॥
प्रसादं स्रावयेत्पश्चादातपे परिशोषयेत्।
गन्धकद्रुतिरित्येषा सर्वनेत्रामयापहा॥ ४१॥
विशेषाद् व्रणकुष्ठं च पिल्लं काचं कुकूणकम्॥
जयेत्तस्य घृतक्षौद्रैः सर्वं तत्परिकल्पयेत्॥ ४२॥
व्रणान्कृच्छ्रान्सुसूक्ष्माग्रानपि शीघ्रं निवर्तयेत्।
तत्किट्टं दद्रुकिटिमपामादीन् लेपनाज्जयेत्॥ ४३॥

शुद्ध तुत्थक दश ( १० ) निष्क भर लेकर उतने ही ( १० निष्क भर )

शुद्ध गन्धक के साथ मिला के आर्द्रक का स्वरस डालकर दिन भर तक घोटकर फिर उसमें १० निष्क भर अभ्रकभस्म तथा शुद्ध ताम्र का चूर्ण १० निष्क भर मिलाकर मिट्टी के खर्पर में डाल के भून लेवें। स्वाङ्गशीतल होने पर खरल में डाल के अदरख के स्वरस के साथ घोटकर गोला बना के शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पका लेवें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट में से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके कन्दुकयन्त्र में अथवा लोहे की कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि जला के उष्ण होने पर उस में पूर्ववत् १ कर्ष भर शुद्ध गन्धक डाल कर उस का जारण करें। इस तरह ३० कर्ष भर गन्धक का जारण करके स्वाङ्गशीतल होने पर इस भस्म को १ प्रस्थ भर जल में घोल कर कुछ समय के लिये छोड़ देवें। फिर उसमें १ कर्ष भर नीलाञ्जन तथा १ कर्ष भर ही शुद्ध शिलाजीत मिला के हाथों से अच्छी तरह विलोडित करके घोल बनाकर कुछ देर तक इसी तरह छोड़ दें पश्चात् समस्त जल को धीरे२ निथार कर अलग कर लेवें और शेष ( अवक्षिप्त ) औषध को खरल में डालकर अच्छी तरह घोट के तीव्र धूप में रख देवें। इस प्रकार से बनाई हुई यह गन्धक की द्रुति सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को नष्ट करती है। इस गन्धक द्रुति को शहद्, घृत वा दुग्ध में मिलाकर नेत्रों में लगाने से नेत्रव्रण, कुष्ठ विकार, पिल्ल, काचरोग तथा कुकूणकरोग को नष्ट करती है। इनके अतिरिक्त यह गन्धक द्रुति बड़े २ कठिन तथा सूक्ष्म अग्रभाग वाले नेत्रों के व्रणों को शीघ्र ही नष्ट करती है। इस द्रुति के किट्ट भाग का शरीर पर लेप करने से दद्रु, किटिम और पामादिक रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ३७-४३॥

अथ गरुडाञ्जनम्—

**कतकसैन्धवतुत्थरसाञ्जनं त्रिकटुकस्फटिकाब्दवराटकम्।**
**त्रिकटुताम्रमयोहिमरोहिणी जलधिफेनवचानृकरोटिका॥४४॥**
**उरगपारदटङ्कणमञ्जनं त्रिफलया मधुकेन च संयुतम्।**
**करजवल्करसेन सुपेषितं गरुडदृष्टिसमां कुरुते दृशम्॥ ४५॥**

कतक ( निर्मली ), सैन्धव लवण, तुत्थक, रसाञ्जन, सोंठ, मरिच, पीपल, फिटकरी, नागरमोथा, वराट ( कौड़ी ) की भस्म, सोंठ, मरिच, पीपल, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हिम अर्थात् कर्पूर, रोहिणी, समुद्रफेन, वचा, मनुष्य की खोपड़ी की अस्थियों की भस्म, उरग अर्थात् सीसे की भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध

नीलाञ्जन, हरड़, बहेड़े, आंवले और मुलेठी इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को करञ्ज की छाल के क्वाथ के साथ सात वार भावित करके घोट कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को मधु, गोघृत या दुग्ध के साथ मिलाकर प्रतिदिन नेत्रों में अञ्जन करने से मनुष्य की दर्शन शक्ति गरुड़ के समान हो जाती है ॥ ४४–४५ ॥

अथ तिमिरहराञ्जनम्—

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमञ्जनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ४६ ॥

रसेन्द्र अर्थात् शुद्ध पारद और सीसे की भस्म दोनों समभाग ( अर्थात् एक २ तोले ) और इन दोनों से द्विगुण ( ४ तो० ) शुद्ध नीलाञ्जन तथा थोड़ी सी ( ३ मा० ) भीमसेनी कर्पूर लेकर सबको एकत्र खरल में डालकर एक दिन तक घोटकर चूर्ण बना के शीशी में भर देवें। यह अञ्जन शहद् या गोघृत के साथ प्रतिदिन आखों में लगाते रहने से तिमिर रोग ( आंखों के सामने अंधेरे का छा जाना ) नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

अथ पटलहरांजनम्—

कारवेल्लद्रवैः सार्धं सम्यग् भर्ज्या कपर्दिका ।
सूतकं टङ्कणं लाक्षा तुल्यं जम्बीरजद्रवैः ॥ ४७ ॥
मर्दयेत्ताम्रपात्रे तु तस्मिन् रुद्ध्वा विनिक्षिपेत् ।
धान्यराशौ स्थितं मासमञ्जनं पटलं हरेत् ॥ ४८ ॥

एक तोले भर कौड़ी की भस्म या शुद्ध कौड़ी के चूर्ण को ताम्र के पात्र में डालकर करेले के स्वरस से अच्छी प्रकार से भून लेवें। फिर उस कौड़ी के चूर्ण में शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला तथा लाक्षा का चूर्ण १ तोला डाल कर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ खूब घोटकर उस ताम्र पात्र को समानाकार वाले दूसरे ताम्रपात्र साथ सन्धिबन्धन करके एक मास तक धान के ढेर (राशि) में गाड़ देवें पश्चात् ताम्र सम्पुट से औषध को निकाल कर खरल में महीन घोट के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण के प्रतिदिन आंखो में लगाते रहने से नेत्र पटलों के रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४७–४८ ॥

अथ रक्ताञ्जनम्—

भृङ्गराजरसैर्घृष्टं पलैकं रक्तचन्दनम्।
ताम्रपात्रे स्थितं भाव्यं तद्रसेन पुनः पुनः ॥ ४९ ॥
शतधा भावयेद्यत्नात्पेष्य पेष्य पुनः पुनः।
मधुनाप्यञ्जनं हन्ति षड्विधं तिमिरामयम् ॥ ५० ॥

लालचन्दन के १ पलभर चूर्ण को ताम्रपात्र या ताम्र की खरल में डालकर भृङ्गराज के स्वरस से रातभर तक भींगो कर दूसरे दिन ८ घण्टे तक उसी रसके साथ खरल करें। इस तरह बार २ भृङ्गराज का रस डाल २ कर सौ बार भावित करके बार २ घोट कर चूर्ण बना लेवें। इस अञ्जन को शहद् के साथ नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से ६ प्रकार का तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४९–५० ॥

अथ शम्बूकादिवर्तिः—

शम्बूकं पारदं नागं कांस्यचूर्णं रसाञ्जनम्।
समं सर्वमिदं चिञ्चादलद्रावेण मर्दयेत् ॥ ५१ ॥
ताम्रपात्रगतां वर्तिं छायाशुष्कां तु कारयेत्।
शुक्लार्म तिमिरं पिल्लं हन्ति सा मधुनाऽञ्जिता ॥ ५२ ॥

शम्बूक अर्थात् छोटे शङ्खों या जल शुक्तियों की भस्म, शुद्ध पारद, नाग ( सीसे ) की भस्म, कांसे की भस्म और रसाञ्जन इन सबको सम भाग लेकर ताम्बे की खरल में डाल के अच्छी तरह मर्दन करके महीन चूर्ण बनाकर इमली के पत्तों के स्वरस के साथ सातवार घोटकर छोटी २ ( यव सदृश ) वर्तियां बना के छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें। इस वर्ति को मधु के साथ घिस कर नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से शुक्ल अर्म, तिमिर, पिल्ल आदि नेत्रों के विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ५१–५२ ॥

अथ नक्तान्ध्ये पञ्चाङ्गगुटिका—

ताम्राग्र्यलवणशङ्खैस्तुल्या मगधोद्भवाऽथ वै धात्री।
जलपिष्टा गुटिकेयं सायंसमयान्ध्यमपहरति ॥ ५३ ॥

नेपाली ताम्रकी भस्म, समुद्रलवण और शंखभस्म ये प्रत्येक एक २ तोलेभर तथा पीपल का चूर्ण ३ तोले भर और आंवलों का चूर्ण तीन तोले भर लेकर सब को खरल में जल के साथ दिनभर घोंटकर वर्तियां बना के सुखा कर शीशी में

भर देवें। इस वर्तिको मधु या जल के साथ घिसकर नेत्रों में लगाने से सायङ्काल के समय होनेवाली अन्धता नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥

अथ नवनेत्रदात्रीवर्तिः—

द्विरष्टौ ताम्ररजसो मधुकस्य चतुर्दश ।
कुष्ठस्य द्वादशांशाः स्युर्वचायास्तु दशैव हि ॥ ५४ ॥
रजतस्य तु चत्वारो द्वौ भागौ कनकस्य च ।
सैन्धवस्याष्टमो भागः पिप्पल्याश्च षडेव तु ॥ ५५ ॥
अजाक्षीरेण सम्पेष्य ताम्रपात्रे निधापयेत् ।
अभिष्यन्दमधीमन्थं व्रणशुक्लं कुकूणकम् ॥
तिमिरं पटलं काचं कण्डूं हन्ति विशेषतः ॥ ५६ ॥

ताम्रकी भस्म १६ तोला, मुलेठी का चूर्ण १४ तोला, कूठ का चूर्ण १२ तोला, वचा का चूर्ण १० तोला, चांदी की भस्म ४ तोला, सुवर्ण की भस्म २ तोला, सैन्धव लवण ८ तोला और पिप्पली का चूर्ण ६ तोला भर लेकर सबको ताम्र की खरल में एकत्रित कर के अच्छी तरह घोटकर बकरी के दुग्ध के साथ खरल करके सुखाकर ताम्र की डिब्बी में ही बन्द करके सुरक्षित रख देवें। इस अञ्जन को मधु या गोघृत के साथ प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से अभिष्यन्द, अधिमन्थ नेत्र व्रण, कुकूणक, तिमिर, पटलरोग, काचरोग और नेत्रों की खुजली आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४–५६ ॥

अथ नयनरोगहरा वर्तिः—

कणलवणवचायुग्यष्टिताम्रैः क्रमेण
द्विगुणधरणवृद्धैश्छागदुग्धेन पिष्टैः ।
निखिलनयनरोगान् हन्ति वर्तिर्विशिष्टा
रज इव निशि सर्पिः क्षौद्रयुक्तं वरायाः ॥ ५७ ॥

पिप्पली का चूर्ण १ धरण(१) ४ मा० सैंधा नीमक २ धरण, वचा का चूर्ण ३ धरण, जलज और स्थलज दोनों तरह की मुलेठी का चूर्ण ४ धरण और ताम्र की भस्म ५ धरण भर लेकर सबको खरल में घोटकर बकरी के दुग्ध के साथ खरल करके छोटी २ (यवसमान) वर्तियां बनाकर छाया में सुखा लेवें। जिस प्रकार त्रिफला

(१) माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणं तन्निगद्यते ।

के चूर्ण को शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन रात्रि में सेवन करने से समस्त नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार इस वर्ति को शहद् या गोघृत के साथ घिस कर नेत्रों में लगाने से नेत्रों के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

अथ शिग्रुतैलम्—

**चिञ्चादलस्वरसपेषितशिग्रुबीजं**
**कांस्ये निघृष्य परिशोष्य खरातपेन ।**
**तैलं ततः घृतमिदं शशिपादयुक्तं**
**युञ्ज्यात् व्रणार्मतिमिरे तिलमात्रमक्ष्णि ॥ ५८ ॥**

शिग्रु के बीजों के चूर्ण को इमली के पत्तों के स्वरस के साथ कांसे के पात्र में दिन भर घोटकर दूसरे दिन तेज धूप में सुखा लेवें । इस प्रकार धूप के संयोग से चूर्ण में से तैल निकलकर एकत्रित हो जाय तब उसमें तैल की अपेक्षा चौथाई शुद्ध भीमसेनी कर्पूर मिलाकर घोट के शीशी में भर देवें । इस तैल को तिल की मात्रा के बराबर लेकर व्रण, अर्म और तिमिर रोग युक्त आंख में लगाना चाहिए॥५८॥

अथ नागादिवर्तिः—

**शिलया निहतं नागं रसराजप्रपेषितम् ।**
**द्विगुणं तुत्थमीषच्च कर्पूरं द्रोणपुष्पजैः ।**
**रसैर्विमर्दयेद्वर्तिरेषाऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ ५९ ॥**

शुद्ध मनःशिला के द्वारा की हुई सीसे की भस्म १ तोला, एक तोले भर शुद्ध पारद के साथ घोटा हुआ नील तुत्थक दो तोले भर तथा तीन माशे भर भीमसेनी कर्पूर इन सबको खरल में महीन घोटकर द्रोणपुष्पी ( गूम्मे ) के स्वरस या क्वाथ के साथ खरल करके छोटी२ वर्तियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इस वर्ति को शहद् या घृत के साथ घिसकर नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५९ ॥

अथ वाताभिष्यन्दे इन्द्रादिवर्तिः—

**कार्पासरसपिष्टेन्दुमधुशुल्वरसाञ्जनम् ।**
**वाताभिष्यन्दजे ताम्रे तिलपर्ण्यम्बुमर्दितम् ॥ ६० ॥**

कपास की जड़ का स्वरस या क्वाथ १ तोला, पिष्ट अर्थात् सीसक भस्म १ तोला, भीमसेनी कपूर ३ माशे भर मुलेठी का चूर्ण १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला,

दार्व्यादिक्काथकृतरसाञ्जन १ तोले भर लेकर सबको ताम्र की खरल में घोटकर तिलपर्णी ( लाल चन्दन ) के क्काथ के साथ सातवार खरल करके छोटो२ वर्तियां बनाकर छायाशुष्क करके शीशी में भर देवें। अथवा कर्पूर, मुलेठी का चूर्ण, ताम्रभस्म और रसाञ्जन इनको समभाग लेकर कपास के पत्र के स्वरस से ताम्रपात्र में घोटकर वर्तियां बनाके सुखालेवें। इन वर्तियों को चन्दन के क्काथ के साथ ताम्रपात्र में घिसकर नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से वातिक अभिष्यन्द में अत्यन्त लाभ होता है ॥ ६० ॥

अथ श्लेष्माभिष्यन्दे शुल्वादिवर्तिः—

**शुल्वजीमूतलोहं च सीसं च समभागिकम् ।**
**द्विगुणं नाञ्जनं जातीतिलपर्णीमयूरजैः ॥**
**पिष्टं निघृष्टदध्यर्के श्लेष्माभिष्यन्दनाशनम् ॥ ६१ ॥**

ताम्र की भस्म १ तोला, जीमूत अर्थात् अभ्रक की भस्म १ तोला, लौहे की भस्म १ तोला, सीसे की भस्म १ तोला तथा शुद्ध नीलाञ्जन २ तोला लेकर सबको खरल में डालकर महीन घोट के चमेली के पञ्चाङ्ग के स्वरस, चन्दन के क्काथ और अपामार्ग के क्काथ के साथ पृथक्२ सात२ वार क्रमशः खरल कर के सुखा लेवें। फिर इस चूर्ण को ताम्र की कटोरी में दही के साथ घोटकर आंखों में लगाने से श्लेष्मविकृति जन्य अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

अथ त्रिदोषाभिष्यन्दे रसेन्द्रवर्तिः—

**रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमञ्जनम् ।**
**ईषत्कर्पूरसंयुक्तं दशमांशं च सर्जकम् ॥ ६२ ॥**
**बलानागबलाजाजीरसैस्ताम्रे दिनत्रयम् ।**
**मर्दितं स्यादभिष्यन्दे सन्निपातात्मके हितम् ॥ ६३ ॥**

शुद्ध पारद १ तोला, सीसे की भस्म १ तोला, दोनों से द्विगुण ( २ तो० ) शुद्ध नीलाञ्जन तथा ३ माशे भर भीमसेनी कर्पूर तथा सबकी अपेक्षा दशमांश राल का चूर्ण लेकर सबको पत्थर की खरल में डालकर महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् इस चूर्ण को ताम्बे की बड़ी कटोरी या खरल में डालकर बला ( खरेटी ), नागबला ( गङ्गेरन ) और जीरा इन तीनों में से प्रत्येक के स्वरस या क्काथ से

तीन २ दिन तक खरल करके चूर्ण बनाकर सुखा लेवें । यह चूर्ण सन्निपात जन्य अभिष्यन्द को नष्ट करता है ॥ ६२-६३ ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दे तीक्ष्णादिवर्तिः—

**चूर्णं तीक्ष्णस्य ताम्रस्य रसेन्द्रसमचारितम् ।**
**रसाञ्जनं च द्विगुणं वर्षाभूरसमर्दितम् ॥**
**शर्करामाक्षिकोपेतं पित्ताभिष्यन्दसूदनम् ॥ ६४ ॥**

तीक्ष्ण लौह की भस्म १ तोला, ताम्र की भस्म १ तोला तथा दोनों के बराबर ( २ तो० ) शुद्ध पारद और रसाञ्जन २ तोले भर लेकर सबको खरल में अच्छी तरह घोटकर महीन चूर्ण करके पुनर्नवा के स्वरस के साथ दिन भर खरल करके छोटी वर्तियां बनाकर सुखालेवें । इनमें से एक२ वर्ति लेकर चीनी और शहद् के साथ घिस के नेत्रों में लगाने से पित्त के विकार से उत्पन्न हुआ अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दे नागादिवर्तिः—

**नागपारदधात्रीन्दुरत्नाज्यकणसैन्धवम् ।**
**रसाञ्जनं कणाक्षौद्रं ताम्बूलीपत्रवारिणा ॥**
**ताम्रेण मर्दितं कांस्ये पित्ताभिष्यन्दमन्थनुत् ॥ ६५ ॥**

नाग ( सीस ) की भस्म, शुद्धपारद, आवलों का चूर्ण, शुद्ध कर्पूर, मोती की भस्म, गाय का घृत, पिप्पली का चूर्ण, सैन्धवलवण, रसाञ्जन, जीरे का चूर्ण और शहद् इन सबको समभाग लेकर महीन घोटकर कांसे की खरल या मजबूत कटोरी में डालकर ताम्बे के मर्दन ( मुसली ) से पान के स्वरस के साथ दिन भर खरल करके छोटी२ वर्तियां बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें । इस वर्तिको चीनी, शहद् या पानी के साथ घिसकर आंखों में लगाने से पैत्तिक अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

अथ ताम्रादिवर्तिः—

**ताम्राऽहितारसपीतकरोहिणीन्दु-**
**शौण्डीरसाञ्जननदीजपुराणकांस्यैः ।**
**वर्तिः कृता सकलसम्मितहंसपादी-**
**मूलैर्निहन्ति नयनामयजालमाशु ॥ ६६ ॥**

ताम्र की भस्म, सीसे की भस्म, तार अर्थात् चांदी की भस्म, शुद्ध पारद, पीतक अर्थात् स्वर्णभस्म या पीली लोध का चूर्ण, कटुरोहिणी का चूर्ण ( अथवा पीतक रोहिणी शब्द से केवल गम्भारी की छाल का चूर्ण लेवें ), शुद्ध कर्पूर, शौण्डी अर्थात् पिप्पली का चूर्ण, रसौंत, नदीज अर्थात् क्षुद्र शङ्खभस्म या समुद्र फेन तथा कांसे की पुरानी भस्म इन सबको समभाग लेकर खरल में घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें। फिर सबके बराबर हंसपादी की जड़ लेकर उसका क्वाथ बना के उससे उपर्युक्त चूर्ण को खरल करके छोटी २ वर्तियां बनाकर छाया में सुखा लेवें। यह वर्ति घृत, शहद् या जल में घिस कर प्रतिदिन आंखों में लगाने से नेत्रों के समस्त विकार को नष्ट कर देती है ॥ ६६ ॥

अथ पारदादिवर्तिः—

पारदनागरसाञ्जनसमानदृढशिषिमूलकं सरजम् ।
सप्तदिनं चिञ्चालरसपिष्टं ताम्रपात्रपर्युषितम् ॥ ६७ ॥
वर्तिरनातपशुष्काऽधिमन्थतिरार्मपिल्लशुक्लघ्नी ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारद, सीसे की भस्म, रसौंत, लौहभस्म, शिम्बीधान्य ( हरे मूंग ) की जड़ का चूर्ण और राल इन सबको समभाग लेकर पत्थर की खरल में दिन भर घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् इस चूर्ण को ताम्बे की दृढ कटोरी या खरल में इमली के पत्तों के स्वरस के साथ सात दिन तक घोट २ कर रात्रि भर पड़ा रख के आठवें दिन सुबह छोटी वर्तियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर कर रख देवें। यह वर्ति गोघृत, मधु या जल के साथ घिस कर नेत्रों में प्रति दिन लगाते रहने से अधिमंथ, तिमिर, अर्मरोग, पिल्ल और नेत्रों की सफेदी को नष्ट कर देती है ॥ ६७–६८ ॥

अथ एकत्रिंशाङ्गवर्तिः—

पारदनागरसाञ्जनविद्रुमकासीसलोध्रताम्राणि ।
वृत्तत्रिकटुकगैरिकसिन्धूद्भवतुत्थफेनवराः ॥ ६९ ॥
मौक्तिकगन्धिन्याभागिरिकर्णीपुत्रजीवकनकशिफाः ॥ ७० ॥
चिञ्चाषड्विधमौर्वलवणं पिचुमर्दपत्ररसैः ।
पिष्ट्वा ताम्रलिप्ता वर्तिः स्यादधिमन्थपिल्लघ्नी ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारद, नागभस्म, रसौंत, प्रवालभस्म, शुद्ध कासीस का चूर्ण, लोध का

चूर्ण, ताम्रभस्म, वृत्त अर्थात् सप्तपर्ण या मांसरोहिणी का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गैरिक, सैन्धवलवण, शुद्ध तुत्थक चूर्ण, समुद्र फेन, बरा अर्थात् हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण और आंवलों का चूर्ण, मोतियों की भस्म, गन्धिनी अर्थात् कपूरकाचरी का चूर्ण या सुगांधी का चूर्ण, आभा अर्थात् बबूल के पञ्चाङ्ग या केवल छाल का चूर्ण, गिरिकर्णी अर्थात् श्वेतापराजिता के पञ्चाङ्ग का चूर्ण, जियापोता, धत्तूरे की शुद्ध जड़ का चूर्ण, इमली के बीजों की गिरि का चूर्ण, पांशुलवण, समुद्रलवण, सैन्धवलवण, काला नमक, विडनमक और कचिया ( सौवर्चल ) नीमक इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके ताम्बे की मजबूत कटोरी या खरल में नीम के पत्तों के स्वरस के साथ घोट कर छोटी २ वर्तियां बना के छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। यह वर्ति मधु या जल के साथ घिस कर आंखों में प्रतिदिन लगाते रहने से अधिमन्थ और पिल्ल को नष्ट करती है ॥ ६९-७१ ॥

अथ षडङ्गवर्तिः—

**कर्पूराञ्जनसीसपारदकणातीक्ष्णानि पिष्ट्वा सकृ-**
**न्नन्द्यावर्त्तरसैर्विशोष्य मधुना पिष्ट्वा पुनर्भाजने ।**
**शार्ङ्गे स्फाटिक एव वा विनिहितं शुक्लार्मकाचापहं**
**तैमिर्यं च निराकरोति सहसा नेत्रेऽञ्जनं सर्वदा ॥ ७२ ॥**

शुद्ध कर्पूर, शुद्ध सुरमा, सीसे की भस्म, शुद्ध पारद, पिप्पली का चूर्ण और तीक्ष्ण लौह की भस्म इन सबको समभाग लेकर पत्थर की खरल में डाल के महीन चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को पिण्डतगर या नीम के पत्तों के स्वरस के साथ एक बार खरल करके सुखावें। पश्चात् शहद के साथ घोट कर महीन अञ्जन बना के मृगशृङ्ग या स्फटिक ( श्वेत पत्थर ) के पात्र अथवा काच की शीशी में भर कर रख देवें। यह अञ्जन प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों की सफेदी ( शुक्ल ), अर्म, काच तथा तिमिर आदि समस्त रोगों को विनष्ट कर देता है ॥७२॥

अथ द्वादशाङ्गवर्तिः—

**नेपालतुत्थटङ्कणतार्क्ष्यवरात्रिकटुफेनजलजं च ।**
**जम्बीरनीरपिष्टं काचार्मस्रावतिमिरशुक्लपिल्लघ्नम् ॥७३॥**

नेपाली ताम्र की भस्म, शुद्ध नील तुत्थक का चूर्ण, शुद्ध टङ्कण, तार्क्ष्य अर्थात्

रसाञ्जन, हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, आंवलों का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, समुद्रफेन और जलशुक्ति या क्षुद्रशङ्खभस्म इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके जम्बीरी निम्बू के रस के साथ दिन भर घोट कर छोटी २ वर्तियां बना के छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। यह वर्ति जलादिक के साथ घिस कर नेत्रों में प्रति दिन लगाते रहने से काच, अर्म, नेत्रस्राव, तिमिर, शुक्र और पिल्ल आदि रोगों को नष्ट करती है ॥७३॥

अथ पटलहरेन्द्ररसः—

**रुद्रः कपर्दटङ्कणंलाक्षाजम्बीरयोर्द्रावैः।**
**मासं धान्ये क्षिप्तः सूतः पटलादिरोगहरः ॥ ७४ ॥**

पारद को भस्म अथवा रस सिन्दूर को लाक्षा के क्वाथ और जम्बीरी निम्बू के रस में खरल कर के सुखा कर शुद्ध की हुई कोडियों में भर दें। पश्चात् कौड़ियों के मुख को बकरी के दुग्ध में पीसे हुए सुहागे के कल्क से बन्द कर के सुखा कर उन्हें एक मास तक धान के ढेर ( समूह ) में बन्द कर के रख देवें। महीने बाद कोड़ियों को निकाल कर औषध सहित खरल में महीन चूर्ण कर के छान कर शीशी में भर देवें। इस अञ्जन को गोघृत, मधु या जल के साथ मिला कर आंखों में प्रतिदिन लगाते रहने से नेत्र पटल के रोग दूर हो जाते हैं ॥ ७४ ॥

अथ स्वर्णादिवर्तिः—

**स्वर्णं वराटिकासूतः सारः पूतिकपत्रजः।**
**नवनीतेन संयुक्ता वर्तिः पुष्पं चिरन्तनम् ॥ ७५ ॥**

स्वर्ण की भस्म, कौड़ियों की भस्म तथा शुद्ध पारद इन तीनों को सम भाग लेकर खरल में महीन कज्जली के समान चूर्ण बना कर पूतिकरञ्ज के पत्तों के स्वरस के साथ तीन दिन तक घोट कर छोटी २ वर्तियां बना लेवें। इस वर्ति को गाय के नवनीत ( मक्खन ) के साथ घिस कर नेत्रों में लगाने से बहुत पुराना नेत्रों का पुष्प रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७५ ॥

अथ विशाद्यञ्जनम्—

**विषं धात्रीफलरसैर्दिनैकं परिभावितम्।**
**अञ्जनं शङ्खसहितं प्रगाढतिमिरप्रणुत् ॥ ७६ ॥**

शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण तथा शङ्ख भस्म इन दोनों को सम भाग लेकर

आंवले के फलों के स्वरस या क्वाथ के साथ रात भर आप्लावित कर के ( भींगो कर ) दूसरे दिन दिनभर घोट कर शुष्क अञ्जन बना के शीशी में भर देवें। यह अञ्जन गो घृत या शहद् के साथ प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से दीर्घ कालीन तिमिर रोग को नष्ट कर देता है ॥ ७६ ॥

अथ पुष्पहराञ्जनम्—

**शम्बूकं वा वराटं वा दग्धं सूक्ष्मं विचूर्णयेत् ।**
**अञ्जनं नवनीतेन हन्ति पुष्पं चिरन्तनम् ॥ ७७ ॥**

शम्बूक ( क्षुद्रशङ्ख्या जलशुक्ति ) की भस्म, अथवा कौड़ियों की भस्म गाय के ताजे घृत या मक्खन के साथ मिला कर प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से चिर कालीन पुष्प रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

अथ शिग्रुमूलाद्याश्च्योतनम्—

**शिग्रुमूलं वचां क्षौद्रैर्घृष्ट्वा नेत्रं प्रपूरयेत् ॥ ७८ ॥**

सहजन की जड़ का चूर्ण और वचा का चूर्ण इन दोनों को सम भाग लेकर शहद् में मिला के प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों के विकार दूर हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

अथ नेत्रशूलघ्नमाश्च्योतनम्—

**निष्पिष्याऽऽर्द्रां निशां वाथ सद्यः शूले सुखावहम् ॥ ७९ ॥**

गीली हल्दी की गांठ ( कन्द ) को पत्थर पर महीन पीस कर नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों का शूल नष्ट हो जाता है ॥ ७९ ॥

अथ पौनर्नवाञ्जनम्—

**श्वेतं पुनर्नवामूलं जलेनाञ्ज्यं च शूलनुत् ॥ ८० ॥**

सफेद गदपूर्णा ( साठेड़ी ) की जड़ को जल के साथ पत्थर अथवा सील पर महीन पीस कर कल्क बना लेवें। इस प्रकार का कल्क प्रतिदिन बना कर नेत्रों में लगाने से नेत्रशूल दूर हो जाता है ॥ ८० ॥

अथ नेत्रजलस्रावहरोयोगः—

वक्ररोमहराञ्जञ्च—

**श्वेतं पुनर्नवामूलं घृतघृष्टं समञ्जयेत् ।**
**जलस्रावं निहन्त्याशु, तन्मूलं च निशायुतम् ॥ ८१ ॥**

**अञ्जयेद्वक्ररोमाणि न भवन्ति कदाचन ॥ ८२ ॥**

सफेद पुनर्नवा ( गद पूर्णा ) की जड़ को गाय के घृत में घिस कर प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों से जल का गिरना बन्द हो जाता है तथा उसी की जड़ और हल्दी की गांठ इन दोनों को जल या गोघृत के साथ घिस कर नेत्रों में तथा भोओं पर लगाने से वहां पर टेढे मेढे उगने वाले बाल सीधे हो जाते हैं ॥ ८१-८२ ॥

अथ नृकपालाञ्जनम्—

**निर्घृष्टं नृकपालं तु नारीस्तन्येन चाञ्जयेत् ।**
**शूलं सतिमिरं हन्ति पुष्पं सर्पाक्षिदुग्धतः ॥ ८३ ॥**

मनुष्य के शिर की अस्थि को स्त्री के दुग्ध में घिसकर नेत्रोंमें प्रतिदिन लगाते रहने से अन्धकार ( आंखों के सामने दिन में सहसा अन्धेरे का सा हो जाना ) और नेत्र शूल ये दोनों नष्ट हो जाते हैं तथा मनुष्य के शिरकी अस्थि को सर्पाक्षि के दुग्ध में घिसकर नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों की फूली कट कर धीरे २ निकल जाती है ॥ ८३ ॥

अथ काचान्ध्यहराञ्जनम्—

**बीजपूररसैर्घृष्टं विषतुत्थसितायुतम् ।**
**अञ्जनं कारयेद्रात्रौ काचमा(१)न्ध्यं च नाशयेत् ॥ ८४ ॥**

शुद्ध वत्सनाभ विषका चूर्ण, शुद्धनीलतुत्थक चूर्ण और चीनी अथवा शुद्ध मनःशिला इन तीनों को समभाग लेकर बिजौरे निम्बू के रस में घोंट कर सुखाके शीशी में भर देवें । यह अञ्जन गोघृत या जल के साथ प्रतिदिन रात्रि के समय आंखों में लगाते रहने से काचरोग और आन्ध्य ( दृष्टिमान्द्य या नक्तान्ध्य ) रोग को नष्ट कर देता है ॥ ८४ ॥

अथ रात्र्यन्धहराञ्जनम्—

**अजस्य कृष्णमांसान्तः पिप्पलीमरिचं क्षिपेत् ।**
**सीवयित्वा घृतैः पक्त्वाद्धटिकान्ते समुद्धरेत् ॥**
**मध्वाज्यस्तन्यसम्पिष्टं रात्र्यन्धस्याञ्जनं हितम् ॥ ८५ ॥**

---

( १ ) "शिला" इति पाठान्तरम् ।

बकरे के कृष्णमांस अर्थात् यकृत् (Liver) को निकाल कर उसमें चीर कर गढा कर के पिप्पली चूर्ण तथा मरिच चूर्ण इन दोनों को समभाग लेकर भर के अच्छी तरह सीं (सोवनकर) देवें। पश्चात् उसका उबलते हुए गोघृत में डालकर एक घड़ी तक पकाकर निकाल लेवें। प्रायः पकाने से मांस के जलांश का नाश होकर वह ठीक तरह से कर्कश (कड़ा) हो जाय तब निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को शहद्, घृत, अथवा दुग्धमें पीसकर नेत्रों में लगाते रहने से रात्र्यन्धरोग नष्ट हो जाता है ॥ ८५ ॥

अथाभिष्यन्दहरो योगः—

**मसकृच्छीततोयेन सिञ्चेन्नेत्राभिष्यन्दजित् ॥ ८६ ॥**

*बार२ आंखों पर* शीतल जल को छिड़कते रहने से नेत्राभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है। प्रायः प्रातःकाल उठते ही ताम्रपात्र में रखे हुए बासी जल से मुखको भरकर फिर आंखो पर भी जल छिड़कें। इस तरह पांच या ६ वार करें, मुख में भरे हुए शीतल जल को नेत्रों पर जल छिड़कने के पश्चात् निकाल देवें। तथा फिर भरकर फिर पानी छिड़कें ॥ ८६ ॥

अथ रात्र्यन्धे व्योषाञ्जनम्—

**अजापित्तगतं व्योषं धूमस्थाने विशोष्य च।**
**चिरबिल्वरसैर्घृष्टं रात्र्यन्धस्याञ्जनं हितम् ॥ ८७ ॥**

बकरी के पित्त में त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पिप्पली) के महीन चूर्ण को डालकर अच्छी तरह खरल करके धूम्रस्थान अर्थात् रसोई घरके धूएं की उष्णता से उसे सुखाकर शीशी में भर देवें। फिर इस चूर्ण को करञ्ज की जड़ या पत्तों के स्वरस में घोटकर आंखों में प्रतिदिन लगाते रहने से रात्र्यन्ध रोग में विशेष लाभ होता है ॥ ८७ ॥

अथ रात्र्यन्धे मरिचाञ्जनम्—

**मरिचं मत्कुणे रक्ते रात्र्यन्धहरमञ्जनम् ॥ ८८ ॥**

मरिचों को खरल में महीन पीसकर वस्त्र से छान लेवें। पश्चात् उस चूर्ण को मत्कुण (खटमल) के रक्त में दिन भर घोटकर अञ्जन बना लेवें। यह अञ्जन नक्तान्ध्यरोग में विशेष लाभ करता है ॥ ८८ ॥

अथ तिमिरहराञ्जनम्—

**गन्धकाद्द्विगुणः सूतः सौवीरं चाष्टमांशतः ।**
**कपित्थरससम्पिष्टमञ्जनं तिमिरप्रणुत् ॥ ८९ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये उन्माद-वातापस्मारनेत्ररोगाणामुपचारो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारद दो तोला तथा दोनों की अपेक्षा अष्टमांश शुद्ध सौवीराञ्जन लेकर सब को खरल में महीन कज्जली बनाकर कपित्थ ( कैथ ) के पत्रों के स्वरस या छाल के क्वाथ से दिनभर घोटकर सुखा के अञ्जन बना लेवें । यह अञ्जन प्रतिदिन आंखों में लगाते रहने से तिमिर रोग को नष्ट कर देता है । इस अञ्जन को घृत या मधु के अन्दर मिलाकर लगाना चाहिए ॥ ८९ ॥

अथ नेत्ररोगे पथ्यापथ्यविमर्शः—

**वार्ताककर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकञ्च ।**
**पुनर्नवा मार्कवकाकमाची पत्तूरशाकानि कुमारिका च ॥ १ ॥**
**सेको मनोवृत्तिरथांघ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च ।**
**लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽथ कपिञ्जलश्च ॥ २ ॥**
**विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं दोषचयं निहन्ति ।**
**आश्योतनं लङ्घनमञ्जनञ्च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणञ्च ॥**
**प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ ३ ॥**
**द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थो लोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहच्च ।**
**नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ॥ ४ ॥**
**शालितण्डुलगोधूममुद्गसैन्धवगोघृतम् । गोपयश्च सिताक्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे स्मृतम्॥५॥**

इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

**क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान् ।**
**सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणञ्च स्नानं निशाभोजनमातपञ्च ॥ १ ॥**
**प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ।**
**कालङ्गपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरा मांसमजाङ्गलञ्च ॥ २ ॥**
**ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम् ।**
**नरो न सेवेत हिताभिलाषी सर्वेषु रोगेषु दृगाश्रयेषु ॥ ३ ॥**

सर्वशाकमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम्। जीवन्ती वास्तुमत्स्याक्षी मेघनादः पुनर्नवा॥४॥
माषारनालकटुतैलजलावगाहक्षुद्राक्षुरैश्च सुरतै निशि जागरैश्च।
शाकाम्लमस्त्यदधिफाणितवेसवारैश्चक्षुः क्षयं व्रजति सूर्यविलोकनाच्च ॥५॥
इत्यपथ्यानि।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरलोज्वलाख्यभाषाटीकायामुन्मादवातापस्मार-नेत्ररोगचिकित्सनाम त्रयोविंशोऽध्यायः।

## चतुर्विंशोऽध्यायः।

अथ कर्णरोगः—

तत्रादौकर्णरोगनामानि—

**शूला दोषचयाभिभूतिजनिताः पञ्च प्रतीनाहरुक्**
**कण्डूविद्रधिपालिशोषपरिपोटात्पातलेह्यर्बुदाः।**
**शोफार्शः क्रिमिकूचिकर्णकविदार्यन्मन्थसन्तन्त्रिका-**
**नादः पिप्पलिदुःखवृद्धिबधिरास्ते पूतिकर्णेन च ॥ १ ॥**

वात,पित्त,कफ, रक्त और सन्निपात इस प्रकार से इन पांच दोषों की दुष्टि हो जाने के कारण पांच प्रकार के कर्णशूल रोग होते हैं तथा प्रतिनाहरोग, कर्णकण्डू, कर्णविद्रधि ( कर्णपाक ), कर्णपालिशोष(१) कर्णपरिपोट, कर्णोत्पात, कर्णलेह्य, कर्णार्बुद, कर्णशोफ, कर्णार्श, कर्णक्रिमि, कूचिकर्णक(२) कर्णविदारिका, कर्णोन्मन्थ, कर्णसन्तन्त्रिका(३) कर्णनाद,कर्णपिप्पली(४) कर्णदुःखवृद्धि, कर्णबधिर और पूतिकर्ण ये २० प्रकार के कान के रोग उपर्युक्त पञ्चविधकर्णशूल के साथ मिला कर देने से २५ प्रकार के कर्णरोग होते हैं ॥ १ ॥

---

(१) वाग्भटे "शिरास्थः कुरुते वायुः पालिशोषं तदाह्वयम्।

(२) गर्भेऽनिलात् सङ्कुचिता शष्कुली कूचिकर्णकः इति वा०।

(३) "कृशा दृढा च तन्त्रीवत् पाली वातेन तन्त्रिका इति वा०।

(४) पिप्पलीसमानकर्णमांसाङ्कुरः तथा चोक्तम्, "एको नीरुगनेको वा गर्भे मांसाङ्कुरः स्थिरः" इति।

अथ कर्णरोगचिकित्सा—

तत्रादौ कर्णरोगहरीवज्रादिवटिका—

**वज्रवैक्रान्तविमलतुत्थनागविषान्वितैः ।**
**तुल्यपारदगन्धाश्ममाक्षिकैः कज्जलीकृता ॥ २ ॥**
**रसोनार्द्रकशिग्रूणामरण्या मूलकस्य च ।**
**पृथग्रसैः कदल्याश्च सप्तधा परिभावयेत् ॥**
**एवं सुपिष्टा वल्लेन सेवितः कर्णरोगनुत् ॥ ३ ॥**

हीरे की भस्म, वैक्रान्तमणि की भस्म, विमल ( रौप्यमाक्षिक ) की भस्म, शुद्धनील तुत्थक का चूर्ण, नाग ( सीस ) की भस्म, शुद्धवत्सनाभ विष का चूर्ण, शुद्धपारद, शुद्धगन्धक और स्वर्णमाक्षिक की भस्म इन सब को सम भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को दिन भर एकत्र घोट कर महीन चूर्ण कर लेवें । फिर इस चूर्ण को रसोन ( लहसुन की गांठ ), अद्रक, शिग्रु ( सहजन ) की जड़ अरणी की जड़, मूली, और केले की जड़ या खम्भ इन में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ सात २ वार क्रम से खरल कर के तीन २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें । यह वज्रादि वटिका प्रतिदिन सेवन करते रहने से सब प्रकार के कर्णरोगों को नष्ट कर देती है ॥ २-३ ॥

अथ कर्णमयघृतैलम्—

**कुष्ठशुण्ठीवचाहिङ्गुशताह्वाशिग्रुसैन्धवैः ।**
**बस्तमूत्रैः श्रृतं तैलं सर्वकर्णमयापहम् ॥ ४ ॥**

कूठ, सोंठ, बचा, हींग, सौंफ, सहजने की छाल का चूर्ण और सैन्धव लवण इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना लेवें । फिर कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल से चतुर्गुण बकरे का मूत्र लेकर सब को लोहे की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा के मन्द २ अग्नि द्वारा पाक करें । जब समस्त कल्क का और मूत्र का जलीयांश नष्ट हो जाय अर्थात् तैल मात्र शेष रह जाय तब चूल्हे से कड़ाही को उतार कर स्वाङ्गशीतल कर के तैल को छान कर शीशी में भर देवें । इस तैल को कानों में टपकाने से सर्व प्रकार के कर्णरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ क्रिमिकर्णारितैलम्—

**अब्धिफेनो वचा शुण्ठी सैन्धवं च समं समम्।**
**समतैलार्द्रकद्रावैः पक्वे तस्मिन्पलद्वये ॥ ५ ॥**
**पूर्वोक्तचूर्णं कर्षांशं क्षिप्त्वोत्तार्यं सुशीतलम्।**
**तत्तैलं प्रक्षिपेत्कर्णे ध्रुवं गोमक्षिका व्रजेत् ॥ ६ ॥**

समुद्र फेन, वचा का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण और सैन्धव लवण इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें। पश्चात् कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल के बराबर ही आदी का स्वरस लेकर सब को लोहे की कड़ाही में डाल कर अच्छी तरह से तैल को सिद्ध कर लेवें। सिद्ध हुए तैल को वस्त्र से छान कर उस में से दो पल भर लेकर उस में उपर्युक्त चारों द्रव्यों का एक २ कर्ष भर महीन चूर्ण मिला कर शीशी में भर देवें। इस तैल की तीन या चार बून्दे प्रतिदिन कान में डालते रहने से समस्त प्रकार के कर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं तथा कान में यदि गाय, बैल, कुत्ते आदि की मक्षिका या अन्य जन्तु विशेष घुस जांय तो वे भी इस तैल के डालने से शीघ्र बाहर निकल जाते हैं ॥ ५-६ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कर्णशूले लवणार्द्रकप्रयोगः—

**कर्णशूलहरः क्षेप्यो लवणार्द्रकयो रसः ॥ ७ ॥**

अद्रक के स्वरस में थोड़ा सा नीमक मिला कर कान में टपकाने से कान का शूल नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

कर्णशूले तिलपर्णीप्रयोगः—

**तिलपर्णीद्रवं तैलं कोष्णं कर्णं प्रपूरयेत् ॥ ८ ॥**

तिलपर्णी ( तिलोनी या लाल चन्दन ) के क्वाथ में तिलतैल को पकाकर शीशी में भर देवें। इस तैल को कुछ गरम करके कान में टपकाने से कर्णशूल आदि कान के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अर्कपत्रप्रयोगः—

**अर्कपत्रद्रवं तैलं पूरयेत्कर्णशूलनुत् ॥ ९ ॥**

आक के पत्तों के स्वरस में तैल पकाकर कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट हो

जाता है, अथवा केवल आक के पत्तों के रस को गरम करके कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

लशुनरसप्रयोगः—

**लशुनस्य रसं कोष्णं पूरयेत्कर्णशूलनुत् ॥ १० ॥**

अथवा लहसून की गांठ का स्वरस निकाल कर उसे कुछ गरम करके प्रतिदिन कानों में टपकाने से कर्ण शूल नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

पूयहरो मेघनादस्वरसः—

**मेघनादद्रवैः पूर्णं कर्णं पूयः प्रशाम्यति ॥ ११ ॥**

मेघनाद अर्थात् चोलाई की जड़ या पत्तों के स्वरस को कानों में टपकाने से कान का पूय (मवाद) बहकर निकल जाता है तथा पूय बनना बन्द हो जाता है॥११॥

बाधिर्यहरं मुषल्यादिचूर्णम्—

**मुषलीवाकुचीचूर्णं खादेद्वाधिर्यशान्तये ॥ १२ ॥**

मुषलीकन्द और वाकुची के समभाग चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करते रहने से बाधिर्यरोग नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

कर्णमूलस्फोटहरः केतकादिलेपः—

**केतकं शिग्रुलवणमारनालेन पेषयेत् ।**
**कर्णमूलस्थितं स्फोटं साष्णलेपाद्विनाशयेत् ॥ १३ ॥**

केवड़े की जड़, सहजन की छाल और सैन्धव लवण इन तीनों को समभाग लेकर ओखली में कूटकर महीन चूर्ण कर लेवें । इस चूर्ण को आरनाल (काञ्जी) से पीस कर कल्क बनाके उष्णकर कर्णमूल पर उत्पन्न हुए शोथ पर लगाने से वह नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

कर्णगलादिस्फोटहरः पुत्रजीवलेपः—

**पुत्रजीवफलस्यैव मज्जा जलनिपेषिता ।**
**लेपात्कर्णे गले कक्षे स्फोटं हन्त्युरुमूलकम् ॥ १४ ॥**

पुत्रजीव ( जीयापोता ) के फल की मज्जा को जल में पीसकर कान, गले कक्षा और उरुप्रान्त की उठी हुई गांठो पर लगाने से वे बैठ जाती हैं ॥ १४ ॥

गोमक्षिकानिःसारणार्थं तगरचर्वणादिकम्—

**तगरब्रह्मवृक्षस्य दन्तैर्मूलानि चर्वयेत् ।**

**रसेन श्रवणं तस्य पूरयेदतियत्नतः ॥**
**गोमक्षिका विनिर्याति पूरणस्य विधानतः ॥ १५ ॥**

तगर और ढाक की जड़ को दांतो से चबा कर स्वरस निकाल के कर्ण में टपकाने से गाय बैल आदि जानवरों की मक्षिकाएं कान से निकल जाती हैं। उपर्युक्त तगरादिक की जड़ को कूटकर स्वरस निकाल के कान में टपकाना चाहिए तथा दांतों से जड़ को चबा२ कर थूक देना चाहिए ॥ १५ ॥

कर्णपालीवर्धको मुषलीप्रयोगः—

**मुशलिकन्दचूर्णं हि महिषीनवनीततः।**
**लोलयेद्रोधयेद्भाण्डे धान्यराशौ निधापयेत् ॥**
**सप्ताहादुद्धृतं लेपः कर्णपालीं विवर्धयेत् ॥ १६ ॥**

मुषलीकन्द का महीन चूर्ण लेकर उसमें समभाग या अर्धभाग नवनीत (ताजा घृत या मक्खन) मिलाकर खरल में अच्छी प्रकार घोटकर किसी पात्र में भर के उसका मुख बन्दकर १ सप्ताह तक धान के ढेर में रख देवें। एक सप्ताह के पश्चात् इसको निकाल लेवें। इस कल्क के प्रतिदिन कर्ण पाली पर प्रलेप करने से नष्ट हुई कर्णपाली बढने लगती है ॥ १६ ॥

कर्णवर्धकचर्मचेटप्रयोगः—

**चर्मचेटस्य रक्तेन लेपात्कर्णौ विवर्धते ॥ १७ ॥**

चीमगादड़ के रक्त ( खून ) का लेप करने से नष्ट हुआ कान फिर से बढने लगता है। प्रायः फोड़े आदि के कारण कान का बाहरी भाग गल कर गिर जाता है ऐसी दशा में उसके बढाने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ १७ ॥

कर्णवृद्धिकरो वराहतैलप्रलेपः—

**वराहोत्थेन तैलेन लेपात्कर्णौ विवर्धते ॥ १८ ॥**

वराह की चर्बी को नष्ट हुए कर्णपर लेप करने से कर्ण की वृद्धि होती है॥ १८ ॥

**अथान्ययोगाः—**

करित्थमातुलुङ्गाम्लश्लक्ष्णैरसैः शुभैः। सुखोष्णैः पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥१॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां स्वरसा मूलकस्य च। कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥२॥
अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणाभ्यक्तमेन वै। कोष्णेन पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥३॥
अर्कपत्रपुटे दग्धः स्नुहीपत्रोद्भवो रसः। कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥४॥
बिल्वगर्भं पचेत्तैलं गोमूत्राजशयान्वितम्। बाधिर्ये पूरयेत्तेन कर्णौ सक्रकचव्रतिन् ॥५॥

हरितालं सगोमूत्रं पूरकं पूतिकर्णजित्। पञ्चवल्कलचूर्णञ्च कपित्थस्वरसान्वितम् ॥
मधुना योजितं हन्यात् कर्णस्रावं प्रपूरयेत् ॥ ६ ॥
कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः। पूतिकर्णे पहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥७॥

अथ कर्णरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः। गोधूमः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः॥१॥
लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः। पटोलं शिग्रु वार्ताकुं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥२॥
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम्। उपयुक्तं यथा दोषमिदं कर्णामये हितम् ॥३॥

इति पथ्यानि—

अथापथ्यानि—

दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु। कण्डूयनं तुषारञ्च कर्णरोगी परित्यजेत्॥१॥

अथ नासारोगाः—

षट् पीनसाश्च मलसञ्चयरक्तदुष्टैः
पूयास्रदीसिपिटिकार्बुदपूतिनासाः ॥
स्रावनाहपरिशोषभृशक्षवाशैः
पाकस्त्वपीनसयुतैश्च गदा नसि स्युः ॥ १९ ॥

इति कर्णरोगाः—

दूषित हुए वात, पित्त, कफ और इनके सन्निपात तथा मल के सञ्चय और रक्त की दुष्टि से पीनस रोग के ६ भेद होते हैं। इनके अन्दर नाक से पूय (मवाद) और रक्त निकलता है। नासिका के बाहर तथा भीतर चमकती हुई लालवर्ण की पिटिकाएं (फुन्सियां) पैदा हो जाती हैं। नासिका में अर्बुद उत्पन्न होता है तथा दुर्गन्ध निकलती है। नाक से पानी का स्राव होता है तथा नाह (प्रतिनाह) शोष, भृशक्षव (क्षवथु), अर्श और पाक ये रोग तथा अपीनस आदि नासिका में होते हैं॥ १९ ॥

अथ मणिपर्पटीरसः—

वज्रं मरकतं पुष्पमिन्द्रनीलं सुचूर्णितम्।
रसहिङ्गुलगन्धं च कज्जलीं कारयेद्भिषक् ॥ २० ॥
द्रावयेत्तां लोहपात्रे पर्पट्याकारतां नयेत्।
निर्गुण्डीतुलसीशिग्रुधुस्तूररविवह्निजैः ॥ २१ ॥
रसैर्न्योषवरारम्भासुरसैश्चापि भावयेत्।

आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा परिभावयेत् ॥ २२ ॥
एवं सिद्धो रसो नाम्ना विख्याता मणिपर्पटी।
सेविता गुञ्जया तुल्या निहन्यान्नासिकागदान्।
पथ्योपचारादिवशात्सर्वव्याधीन्विशेषतः ॥ २३ ॥

हीरे की भस्म, मरतकमणि ( पन्ना ) की भस्म, पुष्परागमणि की भस्म, इन्द्रनीलमणि की भस्म, शुद्धपारद, शुद्धहिङ्गुल और शुद्ध गन्धक इन सब को समभाग लेकर प्रथम पारद, गन्धक और हिङ्गुल आदि की महीन कज्जली बनाकर उसमें शेष हीरकादिक भस्में मिलाकर अच्छी तरह सबको घोटकर कलईदार लोहे की घृतलिप्त कड़ाही में डाल के मन्द २ अग्नि वाले चूल्हे पर चढा कर घृतलिप्त कलच्छी से चलाते रहें। जब समस्त चूर्ण द्रुत हो ( पिघल ) जाय तब उसको गीले गोबर के चबूत्तरे के ऊपर बिछाये हुए हरे केले के पत्ते पर गिराकर केले के हरे पत्ते से ही ढककर चपटी कर के पर्पटी बना लेवें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल करके महीन चूर्ण कर लेना चाहिए पश्चात् निर्गुण्डी, तुलसी, शिग्रु ( सहजन ) की छाल, धत्तूरे की जड़, आक की जड़, चित्रक् की जड़, त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ), त्रिफला ( हरड़, बहेड़े, आंवले ), केले की जड़ या खम्भ और सफेद तुलसी तथा अद्रक इन प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ सात २ वार भावित करके घोट कर सुखा के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुआ यह रस मणिपर्पटी नाम से विख्यात है। यह मणिपर्पटी एक रत्ती भर प्रति दिन मधु के साथ सेवन करते रहने से सर्व प्रकार के नासिका के रोगों को नष्ट कर देती है। यह मणिपर्पटी यथाव्याधिहर पथ्य और भोजन पानादि उपचारों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार की व्याधियों को नष्ट कर देती है ॥ २०–२३ ॥

अथ पूयास्रलक्षणम्—

पूयास्रमतिदुर्गन्धि नासायामतितापकृत् ॥ २४ ॥

पूयास्र के होने पर नासा से अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त स्राव निकलता है तथा नासा पटल और नासारन्ध्रों में अत्यन्त जलन भी रहती है ॥ २४ ॥

अथ सामान्योपायः—

कृतं नस्येन हन्यात्तच्छुतजीरं सितायुतम् ॥ २५ ॥

सफेद जीरे को अच्छी तरह महीन कूट पीस कर कपड़े से छान लेवें। पश्चात् इसमें से थोड़े से चूर्ण को पानी में घोल कर उसमें थोड़ी सी मिश्री मिला कर नाक में टपकाने से या नस्यविधि से सूंघने से नासा के सर्वविकार तथा विशेष कर पूयास्र आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥

कुङ्कुमादिनस्यम्—

**घृताक्तं कुङ्कुमं घृष्टं नस्यं पीनसजिद्भवेत् ॥ २६ ॥**

केशर को पत्थर पर गोघृत के साथ पीस कर उसका प्रतिदिन नस्य लेने से पीनसरोग नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥

अथ नासारोगे पथ्यापथ्यम्—

स्नेहः स्वेदःशिरोऽभ्यङ्गः पुराणायवशालयः। कुलित्थमुद्गयोर्यूषःयाम्याजाङ्गलजारसाः॥१॥
वार्ताकं कुलकं शिग्रुःकर्कोटं बालमूलकम्। लशुनं दधि तक्राम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥२॥
कटूष्णलवणं स्निग्धमुष्णञ्च लघुभोजनम्। नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथाबलम् ॥३॥

इति पथ्यानि।

अथापथ्यानि—

स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवातवेगान् शुचं द्रवम्। भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत्॥१॥

अथ कामलाहराञ्जनम्—

**जलेन पेषयेद्धिङ्गुमञ्जनात्कामलां जयेत् ॥ २७ ॥**

हींङ्ग को पत्थर पर जल से घिस कर नस्य लेने से पीनसरोग दूर हो जाता है तथा चिरकालीन पीनसरोग के कारण उत्पन्न हुए कामलारोग को भी अञ्जन करने से हींङ्ग नष्ट कर देती है ॥ २७ ॥

अथ कामलाहरमञ्जनान्तरम्

**तद्वत्तण्डुलतोयेन ह्याकुलीमूलमञ्जयेत्।**
**कामलां हन्ति नो चित्रं नासारोगप्रसङ्गतः ॥ २८ ॥**

आकुली ( नकुलकन्द या अङ्कोल ) की जड़ को चांवलों के धोवन के साथ पत्थर ( सील ) पर पीस कर आंखों में अञ्जन करने से चिरकालीन नासारोग के प्रसङ्ग या कारण से उत्पन्न हुआ कामलारोग नष्ट हो जाता है ॥ २८ ॥

अथ मुखरोगाः—

**एको गण्डभवो गदः षडुदिता जिह्वोद्भवास्तालुजा-**
**श्चाष्टावष्ट च मस्तजाश्च दशनोद्भूता दशौष्ठोद्भवाः**
**सन्त्येकादश च त्रयोदश गदा दन्तस्य मूलोद्भवाः**

**कण्ठेऽष्टादश चोदिता वदनजाः पञ्चाधिका सप्ततिः ॥२९॥**

गण्ड ( कपोल ) प्रदेश में १ प्रकार का रोग, जिह्वा के भिन्न भागों में उत्पन्न होने वाले छ रोग, तालुप्रदेश के ८ रोग, मस्तिष्क सम्बन्धी ८ रोग, दांतों के मसूड़ो में होने वाले १० रोग, ओष्ठों के ११ रोग, दांतों की जड़ों में होने वाले १३ रोग तथा गले ( कण्ठ ) के अन्दर होने वाले १८ रोग इस तरह मुख के भिन्न २ भागों में ७५ प्रकार के रोग होते हैं ॥ २९ ॥

**विमर्शः**—सुश्रुत में गण्डरोग का वर्णन नहीं अपि तु उसको हनुमोक्षरोग माना गया है तथैव सुश्रुते "वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसन्धौ विघट्टिते । हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरदितलक्षणः" इति ।

यहां पर जो ८ प्रकार के मस्तिष्करोग बताये गये है उन्हें शिरोरोग से भिन्न समझना चाहिए । कहीं २ शास्त्रों में मुखरोगों की संख्या में भेद भी मिलता है । भोज ने ६९ प्रकार के मुख रोगों की गणना लिखी है यथा-दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पञ्च च । नव तालुनि जिह्वायां पञ्च सप्तदशास्यतः । कण्ठे त्रयः सर्वसराः एकषष्टिश्चतुःपराः ॥ इति । एवं भावमिश्रेऽपि ६७ प्रकार के मुखरोग लिखे हैं, यथा—स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्त मूलेषु दश षट् तथा । दन्तेऽष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नवतालुनी । कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्ता स्रयः सर्वसराःस्मृताः । एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ इति

अथ मुखरोगचिकित्सा—

तत्रादौ ताप्यादिवटी

**ताप्याभ्रतुत्थकुनटीराजावर्तशिलाजतु ।**
**गुग्गुलुर्हरवार्यं च मुखरोगनिबर्हणम् ॥ ३० ॥**

स्वर्णमाक्षिक की भस्म, अभ्रक की भस्म, शुद्ध किया हुआ नीला थोथा या उसकी भस्म, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध राजावर्त की भस्म, शुद्धशिलाजीत, शुद्ध गूगल और पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर इन सब को समभाग लेकर खरल में जल के साथ एकत्र घोट कर तीन २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें । इस रस की एक २ बटी प्रतिदिन सेवन करते रहने से मुख रोग को नष्ट कर देती है ॥ ३० ॥

अथ धातुबद्धरसगुटिका—

**रूप्यादिचूर्णमादाय पिष्टीं साधय यत्नतः ।**
**निम्बुमध्ये विनिक्षिप्य दिनानां पञ्च धारय ॥ ३१ ॥**
**तालचूर्णं समादाय भानुदुग्धेन भावयेत् ।**

तन्मध्ये गुलिकां क्षिप्त्वा पचस्व तिलतैलके ॥ ३२ ॥
दोलायन्त्रे निबध्यैनां यत्नेन दिवसत्रयम् ।
मलापकर्षणं कृत्वा मधुभाण्डे निधापयेत् ॥
मुखे धारय दन्तानां दार्ढ्याय गुटिकामिमाम् ॥ ३३ ॥

चांदी, वङ्ग, नाग यशद आदि धातुओं में से किसी एक या अनेक की भस्म लेकर उसको समभाग पारद के साथ घोट कर कज्जली बना लेवें । पश्चात् इस कज्जली को लकुच ( बड़हर ) के स्वरस या क्वाथ के साथ घोट कर पिष्टी ( लकुचद्रवसूताभ्यां तारपिष्टीं प्रकल्पयेत् ) बना लेवें । पश्चात् इस पिष्टी को पके हुए बड़े २ निम्बू के अर्द्ध भाग में भर कर शेष अर्द्ध भाग के साथ जोड़ कर सन्धिबन्धन कर देना चाहिए । इस तरह समग्र पिष्टी को निम्बुओं में भर कर पांच दिन तक इसी तरह रहने देवें । छठे दिन निम्बुओं में से समस्त पिष्टी को निकाल कर खरल में एकत्र कर के घोट कर दो माशे भर की गोलियां बना लेनी चाहिए । पश्चात् शुद्ध हरताल लेकर आक के दुग्ध में खरल कर के कल्क बना लेना चाहिए । फिर इस कल्क से उन गोलियों को अच्छी तरह से लिप्त ( लपेट ) कर के तिल के तैल में एक प्रहर तक पाक करना चाहिए। पश्चात् तिल तैल से स्वाङ्गशातल हुई गोलियों को निकाल कर दोलायन्त्र की विधि से अर्थात् इन गोलियों को एक शुद्ध ( स्वच्छ ) और दृढ श्वेत वस्त्र में पोट्टली के रूप में बांध कर एक हण्डिका में काञ्जी भर के हण्डिका की ग्रीवा में आमने सामने बने हुए छिद्रों में एक पतली तथा दृढ लकड़ी डाल कर उस के मध्य में पोट्टली को बांध कर हण्डिका की काञ्जी में लटका देवें । हण्डिका की पेन्दी में पोट्टली का स्पर्श न हो वैसी बांधनी चाहिए । पश्चात् हण्डिका को मन्दाग्नि वाले चूल्हे पर चढ़ाकर तीन दिन तक मलापकर्षण करने के लिये स्वेदन करना चाहिए । काञ्जी की कमी होने पर फिर हण्डिका में काञ्जी भरते रहना चाहिए । इस तरह गोलियों के मल के अपकर्षण ( नाश ) हो जाने के पश्चात् चौथे दिन पोट्टली से उन्हें निकाल कर मृतबाण या काच के पात्र में भरे हुए शहद् में डाल कर मुख बन्द कर के रख देवें । जब किसी मनुष्य के दांत कमजोरी अथवा अन्य विकृति के कारण हिलते हों ऐसी दशा में उन्हें दृढ करने के लिए शहद् में से एक गोली निकाल कर उस को हिलते हुए दांत के नीचे या

आस पास रख कर चूसने के लिए देवें । इस तरह इस गुटिका को दन्तों के दृढ़ करने के लिये कुछ देर तक मुख में धारण करते रहना चाहिए ॥ ३१-३३ ॥

अथ महासरस्वतीचूर्णम्—

**अश्वगन्धाऽजमोदाच वचा कु कटुत्रयम् ।**
**शतपुष्पा ब्रह्मबीजं सैन्धवं च समं समम् ॥ ३४ ॥**
**एतदर्धं वचार्धं च चूर्णितं मधुसर्पिषा ।**
**भक्षयेत्कर्षमात्रं तु जीर्णान्ते क्षीरभोजनः ॥ ३५ ॥**
**सहस्रग्रन्थधारी स्यान्मूको वा वाक्पतिर्भवेत् ।**
**महासरस्वतीचूर्णं बुद्धिजाड्ये परं हितम् ॥ ३६ ॥**

असगन्ध, अजमोद, वचा, कूठ, सोंठ, मरिच, पीपल, शतपुष्पा ( सौंफ ), पलाश ( ढाक ) के बीज और सैन्धव लवण इन सबको सम भाग अर्थात् प्रत्येक को एक २ तोले भर लेकर लोहे की ओखली में कूट कर महीन चूर्ण कर लेवें । पश्चात् इन सबके चूर्ण के बराबर वचा का चूर्ण बनाकर दोनों चूर्णों को परस्पर मिलाकर शीशी में भर देवें । कुछ टीकाकारों ने वचा को छोड़ कर असगन्ध से सैन्धव पर्यन्त द्रव्यों को समभाग तथा इनके बराबर वचा चूर्ण लेकर दोनों को मिला के योग बनाने को लिखा है । इस प्रकार इस चूर्ण में से एक कर्ष ( १६ मा० ) भर चूर्ण लेकर विषमभाग गृहीत घृतमधु के साथ मिलाकर प्रति दिन सेवन करते रहना चाहिए तथा औषध जीर्ण होने ( भूख लगने ) पर दुग्ध के साथ भात आदि सौम्य पदार्थों का भोजन करना चाहिए । अथवा केवल दुग्ध ही का ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार प्रायः ४० दिन तक इस योग के ब्रह्मचर्यादि नियम पूर्वक सेवन करने से सहस्र ग्रन्थों के विषय को कण्ठस्थ करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है तथा मूक पुरुष भी बृहस्पति के समान शास्त्रादि में चतुर हो जाता है । यह महासरस्वती नामक चूर्ण बुद्धिजाड्य रोग में अर्थात् जड़बुद्धि को नष्ट करने में अत्यन्त गुणकर एवं श्रेष्ठ है ॥ ३४-३६ ॥

अथ मुखरोगादिगलगण्डमालारोगाणां
सामान्योपायाः—
तत्रादौ गलकीलके आमलकप्रयोगः—
विषतिन्दुकादि वटी च—

**चूर्णं त्वामलकस्यैव गवां क्षीरेण पाययेत् ॥**

**गलकीलकनुत्यर्थं विषतिन्दुं सनागरम् ॥ ३७ ॥**
**हरीतक्या च संयुक्तं मुखे धारय सन्ततम् ॥ ३८ ॥**

आंवले का महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से ६ माशे भर चूर्ण लेकर प्रतिदिन दुग्ध के साथ गलकीलक को नष्ट करने के लिये सेवन करते रहना चाहिए। अथवा सोंठ का चूर्ण, शुद्ध कुचले का चूर्ण और हरड़ का चूर्ण इन सबको लेकर खरल में जल के साथ घोट के एक २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें। इन गोलियों में से एक २ गोली को प्रति दिन मुख में रखकर चूसने से मुखपाक और गलकीलक नष्ट होजाते हैं॥३७-३८॥

अथ गलकीलके सैन्धवप्रयोगः—

**बहुशो भानुदुग्धेन सैन्धवेन प्रलेपनम् ॥ ३९ ॥**

सैन्धव लवण और आक के दुग्ध इन दोनों को खरल में घोटकर कल्क बना लेवें। इस कल्क के प्रलेप करने से गलकीलक नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

अथ गलकीलके भल्लातकप्रयोगः—

**भल्लातकरसं दत्त्वा चूर्णं चोपरि बन्धयेत् ॥ ४० ॥**

शुद्ध भिलावों का खरल में अच्छी तरह महीन चूर्ण कर के भिलावों के खरस से ही पीस कर गले के बाहर प्रलेप करके पट्टी बन्धन कर देना चाहिए इस प्रयोग के करने से गले के भीतरी और बाहरी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥

अथ दन्तदार्ढ्यकरो जिह्वापूतिगन्धहरश्च जयाप्रयोगः—

**यः प्रातरुत्थेजयंति द्विजाञ्जयाकाष्टेन वज्रद्विज एव जायते।**
**तेनैव तैलोपहितेन मार्जनाज्जिह्वा जहात्युद्धतपूतिगन्धिताम् ॥ ४१ ॥**

जो मनुष्य प्रातः काल उठकर शौच करके अपने दांतो को जयन्ती (जेताक) के काष्ठ से साफ ( दन्तधावन ) करता रहता है उसके हिलते हुए दांत वज्र के समान दृढ हो जाते हैं। इसी तरह जयन्ती के दन्तधन को जयन्ती कल्क से सिद्ध हुए तैल से लिप्त करके उसकी जिह्वा लेखिनी ( जिह्वी ) बनाकर जिह्वा को घर्षित करने से अत्यन्त बदबू देने वाली दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है ॥ ४१ ॥

अथ मुखपाके पर्पटीरसः—

**मुखपाकापनुत्यर्थं मधुना पर्पटीरसम्।**

**खादयेत्कृतगण्डूषो वटिकां चानुधारयेत् ॥ ४२ ॥**

मुखपाक अर्थात् कण्ठ, जिह्वा, मसूड़े और तालु आदि स्थानों में छोटी २ लाल रङ्ग की फुन्सियां ( छाल ) होकर पाक हो जाने पर उसे दूर करने के लिए शहद् युक्त त्रिफला क्वाथ, या शहद् युक्त पञ्च पल्लव क्वाथ से कुरले ( गण्डूष ) करके पूर्वोक्त पर्पटी रस को शहद् के साथ सेवन करना चाहिए। पर्पटी रस सेवन करने के पश्चात् खदिरादि वटिका को चूसनी चाहिए। प्रायः दो तीन दिन इस प्रकार का उपचार करने से मुखपाक रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

अथ मुखशोषे महाराष्ट्री गुटिका—

**महाराष्ट्रीकचूर्णं च चतुष्कृत्वा विभावयेत्।**
**निम्बार्द्रकरसाभ्यां च गुटिका मुखशोषनुत् ॥ ४३ ॥**

महाराष्ट्री ( जल पीपल ) के चूर्ण को निम्बू के रस के साथ चार वार भावित कर खरल कर के सुखालेवें। इसी तरह आदी के स्वरस के साथ चार वार भावित कर खरल करके बेर की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। इन गोलियों में से एक२ गोली प्रतिदिन चूसते रहने से मुख शोष नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ मुखवैवर्ण्ये पुनर्नवाद्युद्वर्तनम्—

**श्वेतं पुनर्नवामूलं सर्पाक्षीमूलसंयुतम्।**
**उद्वर्तनं हरेत्स्त्रीणां मुखच्छायां सुदुःसहाम् ॥ ४४ ॥**

सफेद पुनर्नवा ( गदपुर्णा ) की जड़ और सर्पाक्षी की जड़ इन दोनों को जल के साथ पत्थर ( सील ) पर पीस कर कल्क बना लेवें। इस कल्क का प्रतिदिन उद्वर्तन ( उबटन ) करते रहने से स्त्रियों के मुख पर अत्यन्त फैली हुई कलुषित छाया ( झाईं ) नष्ट हो जाती है ॥ ४४ ॥

अथ नीलिकायां रजन्यादिलेपः—

**महिषीक्षीरसम्पिष्टं रजनीरक्तचन्दनम्।**
**कृतलेपं निहन्त्याशु श्यामिकां गण्डयोः स्थिताम् ॥ ४५ ॥**

हलदी और लाल चन्दन का समभाग चूर्ण लेकर भैंस के दुग्ध से पीस कर

कल्क बना के प्रतिदिन उद्वर्तन ( उबटन ) करते रहने से गालों ( कपोल ) की श्यामता ( नीलिमा ) शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ ४५ ॥

अथ मुखवैवर्ण्ये वङ्गभस्मप्रयोगः—

**मुखच्छायाहरं वङ्गभस्म स्यान्महिषीजलैः ॥ ४६ ॥**

वङ्गभस्म को भैंस के मूत्र या दुग्ध के साथ पीस कर प्रलेप करने से मुख की विकृत छाया ( झाईं ) नष्ट हो जाती है ॥ ४६ ॥

अथ मुखवैवर्ण्यादौ मातुलुङ्गादिप्रलेपः—

**गोमयस्य रसं सर्पिर्मातुलुङ्गं मनःशिला ।**
**मुखवर्णकरं श्रेष्ठं तिलकानां च नाशनम् ॥ ४७ ॥**

गाय के गोबर का रस, गाय का ताजा घृत, बिजोरे निम्बू की जड़ का चूर्ण और शुद्ध मनःशिला इन सब को सम भाग लेकर पत्थर पर महीन पीस के कल्क बना लेवें । इस कल्क का प्रतिदिन मुख पर प्रलेप करने से या उबटन करने से मुख का वर्ण अत्यन्त उज्ज्वल (तेजोयुक्त) हो जाता है तथा काले २ दाग, तिल आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

मञ्जिष्ठादिप्रलेपः—

**उभे हरिद्रे मञ्जिष्ठां घृतं गौराश्च सर्षपाः ।**
**पेष्या गैरिकसंयुक्ता ह्यजाक्षीरेण पाचिताः ॥**
**एतेनैव भवेद्वक्त्रमुदयादित्यसन्निभम् ॥ ४८ ॥**

हलदी का चूर्ण, दारु हलदी का चूर्ण मजीठ का चूर्ण, गाय का घी, सफेद सरसों और शुद्धस्वर्ण गैरिक (गेरू) इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन पीस लेवें । फिर इस चूर्ण को बकरी के दुग्ध के साथ पत्थर पर पीस कर मुख पर प्रलेप या उबटन करें । अथवा बकरी के दुग्ध के साथ चूर्ण को कटोरी में पकाकर शीतल कर के मुख पर प्रलेप करना चाहिए । इस प्रलेप के प्रतिदिन लगाते रहने से मुख की कान्ति उदयकालीन सूर्य के समान चमकने लगती है ॥४८॥

अथ मुखदौर्गन्ध्यनाशिनी कुष्ठादि वटी—

**गोमूत्रैः क्वाथयेत्कुष्ठं बालकं सहरीतकम् ।**
**पिष्ट्वा सर्वं वटीं कुर्यान्मुखदौर्गन्ध्यनाशिनीम् ॥ ४९ ॥**

कुष्ठ का चूर्ण, नेत्रवाला का चूर्ण और हरड़ का चूर्ण इन तीनों को सम

भाग लेकर जल के साथ खरल में पीस के बेर की गुठली के बराबर की गोलियां बना के सुखा लेवें । इन गोलियों को चूसने से मुख की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है ॥ ४९ ॥

अथ मुखदौर्गन्ध्ये गृहधूमक्काथः—

**गृहधूमारनालेन क्काथं समधुसैन्धवम् ॥ ५० ॥**

रसोई घर में इकट्ठे हुए धुएं के चूर्ण को लेकर अठ गुनी काञ्जी के साथ क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें । फिर उस क्वाथ में शहद् और सैन्धव लवण मिला कर उस से कुरले ( गण्डूष ) करने से मुख की दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है ॥ ५० ॥

अथ मुखदौर्गन्ध्ये पथ्यादिवटिका—

**गौमयैः क्वाथिता पथ्यामिषीकृष्णान्विताकणा ।**
**वदनस्य दुरामोदं निहन्ति परिशीलिता ॥ ५१ ॥**

गोबर के रस में हरड़ों को डाल कर पकावें । जब वे पक कर फूल जांय तब उतार कर उन को गुठली निकाल के सुखा लेवें । फिर उन को ओंखली में खाण्ड कूट कर चूर्ण कर लेना चाहिए । इस प्रकार का हरड़ का चूर्ण १ पल, सौंफ का चूर्ण १ पल, पीपल का चूर्ण १ पल तथा काले जीरे का चूर्ण १ पल भर लेकर सब को खरल में जल से घोट कर दो २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा लेवें । ये गोलियां प्रतिदिन चूसते रहने से मुख की दुर्गन्ध को नष्ट कर देती हैं ॥ ५१ ॥

अथ मुखवैरस्ये लाजादिचूर्णम्—

**लाजा जातीफलं पूगं तुल्यं भक्ष्यं पिबेदनु ।**
**शीततोयं पलार्धं च आस्यवैरस्य शान्तये ॥ ५२ ॥**

लाजों ( खीलों ) का चूर्ण, जायफल का चूर्ण और सुपारी का चूर्ण इन तीनों को समभाग लेकर एकत्र मिला के शीशी में भर देवें । आधे पल भर इस चूर्ण को शीतल जल के साथ प्रतिदिन मुख की दुर्गन्धि नष्ट करने के लिये सेवन करना चाहिए ॥ ५२ ॥

अथ उपजिह्वायां निर्गुण्ड्यादियोगः—

**निर्गुण्डामुत्पलं कन्दं चर्वयेदुपजिह्वके ॥ ५३ ॥**

उपजिह्वा ( काग ) की पीड़ा को दूर करने के लिये निर्गुण्डी की जड़ और नीलकमलकन्द इन दोनों को मुख में रख कर चबानी चाहिए ॥ ५३ ॥

अथ क्रिमिदन्ते अभयादिगुटिका—

**ताम्रपात्रे क्षणं पाच्यमभयाचूर्णकं मधु ।**
**करेण गुटिका कार्या दन्तैर्धार्या कृमीन् हरेत् ॥ ५४ ॥**

ताम्र की कड़ाही या कटोरी में हरड़ का चूर्ण डाल कर उस में थोड़ा सा शहद मिला कर पका लेवें । स्वाङ्गशीतल होने पर दो २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें । इन गोलियों को दांतों के नीचे रख कर चूसने से दांतों के कीड़े नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

अथ कृमिदन्ते कासीसादिगुटिका—

**कासीसं हिङ्गु सौराष्ट्री देवदारु समं जलैः ।**
**गुटिकां धारयेद्दन्तैः कृमिशूलहरं परम् ॥ ५५ ॥**

शुद्ध काशीश, शुद्ध हींङ्ग, फिटकरी और देवदारू का चूर्ण इन सब को समान भाग लेकर खरल में डाल के जल के साथ महीन पीस कर गोलियां बना कर सुखा लेवें । इन गोलियों को मुख में धारण करने से दांतों के कीड़े तथा शूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥

अथ क्रिमिदन्ते विशालाधूमः—

**विशालायाः फलं चूर्ण्य तप्तलोहोपरि क्षिपेत् ।**
**तद्धूमाद्भ्रष्टदन्तानां कीटपातो भवत्यलम् ॥ ५६ ॥**

इन्द्रायण के फल का चूर्ण बनाकर अग्नि से प्रतप्त हुए लोहे के टुकड़े या तवे के ऊपर डाल कर कीडा लगे हुए दांतो तथा डाढों में धूनी लगाने से उनके कीड़े निकल पड़ते हैं ॥ ५६ ॥

अथ चलदन्ते जात्यादिदन्तधावनम्—

**जातीकोरण्टपत्रं च चर्वयेत्प्रातरुत्थितः ।**
**स्थिराः स्युश्चलिता दन्तास्तत्काष्ठैर्दन्तधावनात् ॥ ५७ ॥**

चमेली और पीली कटसरैया के पत्तों को प्रातःकाल उठ कर चबाने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं । अथवा चमेली की जड या पीली कटसरैया की

जड़ का प्रतिदिन दन्तधावन ( दत्तूअन ) करते रहने से हिलते हुए दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

अथ चलदन्ते मूलकबीजप्रयोगः—

**मूलबीजं मुखे धार्यं दन्तदार्ढ्यकरं परम् ॥ ५८ ॥**

मूली के बीजों को मुख में रख कर चबाने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

अथ मुखवैरस्ये आरनालगण्डूषः—

**किञ्चिल्लवणसंयुक्तमारनालं विपाचयेत्।**
**तेन गण्डूषमात्रेण मुखवैरस्यनाशनम् ॥ ५९ ॥**

काञ्जी के अन्दर थोड़ा सा सैंधवलवण मिला कर कुछ देर तक चूल्हे पर गरम कर के उतार देवें। इस काञ्जी से गण्डूष ( कुरले ) करने से मुख की विरसता नष्ट हो जाती है ॥ ५९ ॥

मुखदो गण्डूषः—

**ताम्बूलचूर्णदग्धस्य गण्डूषस्तिलतैलतः।**
**काञ्जिकैर्लवणाक्तैर्वा गण्डूषः मुखदायकः ॥ ६० ॥**

तिलों के तैल में जलेहुए पान के पत्तों का चूर्ण मिला कर कुल्ले करने से अथवा काञ्जी में लवण मिला कर कुल्ले करने से मुख की दुर्गन्धि आदि दूर हो जाते हैं॥६०॥

अथ मुखरोगे पथ्यापथ्यविवेकः।

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषःप्रतिसारणम्। कवलोऽञ्जनकृत्तिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्म च॥१॥
तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः। बहुपत्रो कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम् ॥२॥
कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम्। कटुतिक्तौ च वर्गौऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम्॥३॥

इतिपथ्यानि।

अथापथ्यानि—

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम्। दधिक्षीरं गुडं माषं कृशरं कठिनाशनम्॥१॥
अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दिकारि च। मुखरोगेषु सर्वेषु दिवा निद्रां विवर्जयेत् ॥२॥

इत्यपथ्यानि।

अथ कण्ठशालूकादौ पारदादिप्रलेपः—

**पारदं विमलं ताप्यं त्रिकटु ताम्रसैन्धवम्।**
**तुल्यं गवां जलैः पिष्टं मुखोष्णं लेपयेन्मुहुः।**
**ऽयहेण कण्ठशालूकं गलग्रन्थिं च नाशयेत् ॥ ६१ ॥**

पारद की भस्म ( या रससिन्दूर ), रौप्यमाक्षिक की भस्म, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, ताम्रभस्म और सैन्धव लवण इन सब को समानभाग लेकर खरल में महीन पीस कर चूर्ण बना लेना चाहिए। पश्चात् इस चूर्ण को गाय के मूत्र के साथ एक दिन तक खरल कर के अग्नि से पका कर मलहम के समान बना लेवें। इस का गले के बाहर तीन दिन तक सुहाता २ ( मन्दोष्ण ) प्रलेप करने से कण्ठशालूक तथा गले की उभरी हुई गांठे आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

अथ गलकीले सैन्धवप्रयोगः—

**लेपयेद्भानुदुग्धेन सैन्धवं गलकीलनुत् ॥ ६२ ॥**

थोड़ा सा सैन्धव लवण लेकर उसे आक के शुद्ध दुग्ध के साथ पीस कर गले के बाहर प्रलेप करने से गलकीलक नष्ट हो जाता है ॥ ६२ ॥

अथ गलरोगे मण्डूरलेपः—

**महिषीमूत्रसम्पिष्टं लोहकिट्टं क्षणं पचेत् ।**
**तेन लेपो निहन्त्याशु गलरोगं सुदुःसहम् ॥ ६३ ॥**

लोहे के किट्ट को खरल में महीन पीसकर भैंस के मूत्र से भावित कर के घोंट कर थोड़ा सा पका लेना चाहिए। इस तरह इस मन्दोष्ण लौहकिट्ट का प्रलेप करने से गले के समग्र रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

अथ अपचीगण्डमालाचिकित्सा—

**जलेन पेषयेत्तुल्यं काञ्चनीचित्रकं विषम् ।**
**सप्ताहं लेपयेत्तेन ह्यपच्या गण्डमालिकाः ।**
**स्फुटन्ति नात्र सन्देहःस्फोटे लेपमिमं कुरु ॥ ६४ ॥**
**निजद्रावेण सम्पिष्टं मुण्डीमूलप्रलेपनात् ।**
**गण्डमालाः क्षयं यान्ति तद्भवं च पिबेज्जलम् ॥ ६५ ॥**

हलदी या कचनार की छालका चूर्ण, चीते की जड़ का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण इन तीनों को समान भाग लेकर खरल में जल के साथ पीस कर १ सप्ताह तक लेप करने से अपची और गण्डमाला की गांठे पककर फूट जातीहैं। उनके फूट जाने पर निम्नलिखित औषधियों का लेप करना चाहिए। गोरखमुण्डी की जड़ को गोरखमुण्डी के पञ्चाङ्ग के स्वरस या क्वाथ के साथ पीस कर लेप

करना चाहिए तथा गोरखमुण्डी के स्वरस में शहद् मिलाकर पान करना चाहिए। इस तरह १ सप्ताह तक प्रतिदिन उपचार करते रहने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६४–६५ ॥

अथ गण्डमालायां ब्रह्मदण्डीयमूलप्रयोगः—

**ब्रह्मदण्डीयमूलं तु पिष्टं तण्डुलवारिणा।**
**स्फुटितां हन्ति लेपेन गण्डमालां न संशयः ॥ ६६ ॥**

ब्रह्मदण्डी की जड़ को चावलों के धोवन के साथ पीसकर प्रलेप करने से उपर्युक्त विधि से पककर फूटी हुई गण्डमाला ठीक हो जाती है ॥ ६६ ॥

अथ गण्डमालायां गन्धकादिप्रयोगः—

**गन्धकं सूतकं तुल्यमर्कक्षीरेण सैन्धवम्।**
**पिष्ट्वा च काञ्चनीमूलं लेपोऽयं गण्डमालिकाम् ॥ ६७ ॥**
**अदृश्यां स्फोटयत्याशु मुण्डीद्रावेण पेषितम्।**
**तन्मूलं लेपयेत्तत्र त्रिःसप्ताहं प्रशान्तये ॥ ६८ ॥**

शुद्धगन्धक, शुद्धपारद, सैन्धव लवण तथा कचनार की जड़ अथवा हलदी की गांठ का चूर्ण इन सबको समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना के उसमें शेष द्रव्य मिलाकर सबको बारीक पीस लेवें। फिर आक के शुद्ध दुग्ध से इस चूर्ण को खरल करके मलहम बनाकर शीशी में भर देवें। इस मलहम के लेप करने से गले के भीतर की अदृश्य गण्डमाला फूट जाती है। फिर गोरखमुण्डी के स्वरस या क्वाथ से गोरखमुण्डी की जड़ को पीसकर ३ सप्ताह तक गले पर लेप करने से गण्डमाला का स्फुटित व्रण अच्छा हो जाता है ॥६७–६८॥

अथ गण्डमालायां जैपालप्रयोगः—

**पिष्ट्वा जैपालपत्राणि स्वरसेन ततो वटीं।**
**छायाशुष्कां तया लेपात् गण्डमालां विनाशयेत् ॥ ६९ ॥**

जैपाल के पत्तों के चूर्ण को जैपाल पत्र के स्वरस ही से पीसकर दो२ माशे भर की गोलियां बना के छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस वटी को जल के साथ पत्थर पर पीसकर गले के बाहर लेप करते रहने से गण्डमाला दूर हो जाती है ॥ ६९ ॥

अथ चलदन्ते हेमतारादिगुटिका—

**हेमतारयुतं सूतं तालकं क्षीरमर्दितम् ।**
**क्षौद्रे तिलानां तैलेन प्रस्विन्नं दन्तदार्ढ्यकृत् ॥ ७० ॥**

स्वर्णभस्म, चांदी की भस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध हरताल इन चारों को समान भाग लेकर खरल में दिनभर घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें । फिर इस चूर्ण को गाय के दुग्ध के साथ पीसकर चने के बराबर की गोलियां बनाकर सुखालेवें। फिर इन गोलियों को वस्त्र में बांध कर तिलों के तेल से भरे पात्र में लटका के दोलायन्त्र की विधि से एक प्रहर तक स्वेदनकर्म करना चाहिए । स्वेदन होने के पश्चात् गोलियों को शहद् से भरे हुए अमृतबान में डाल कर मुख बन्द कर के रख देवें । इन गोलियों में से प्रतिदिन एक २ गोली दांतों के नीचे रख कर चूसने से हिलते हुए दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ७० ॥

अथ चलदन्ते धातुबद्धरसगुटिकोपदेशः—

**दन्तदार्ढ्यप्रसिद्ध्यर्थं गुटिकां देहि सर्वदा ।**
**रसस्य धातुबद्धस्य चालनं घर्षणं तथा ॥ ७१ ॥**

हिलते हुए दांतों को दृढ करने के लिये सुवर्ण ताम्र आदि धातु के साथ बद्ध किये हुए पारद की गुटिका को मुख में धारण करना चाहिए तथा उसी को मुख में इधर से उधर चलाते रहना चाहिए । अथवा उस गुटिका से हिलते हुए दांतों को घिसना चाहिए ॥ ७१ ॥

दन्तरोगे वर्जनीयम्—

**फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्न दन्तधावनम् ।**
**तथाति कठिनान् भक्ष्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत्**

अथ शिरोरोगाणां नामानि—

**शिरस्तोदाश्चतुर्द्धोक्ता दोषैः सर्वास्रजन्तुभिः ।**
**कम्पश्चार्द्धावभेदश्च सूर्यावर्तोऽपि शङ्खकः ॥ ७२ ॥**

वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक दोष भेद से शिर में चार प्रकार के शूल कहे गये हैं, तथा दोषों के अतिरिक्त रक्त की विकृति से, कृमियों के संसर्ग से शिर में शूल रोग होता है, इस प्रकार ६ प्रकार के शिरःशूल और शिरःकम्प, अर्द्धावभेदक, सूर्यावर्त और शङ्खक से चार प्रकार के रोगों को मिला देने से शिर में १० प्रकार के मुख्य रोग होते हैं ॥ ७२ ॥

अथ शिरोरोगचिकित्सा—

तत्रादौ शिरोरोग रिरसः—

**मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं कान्तं ताम्रं मृतं समम्।**
**स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं पिण्डं तन्माषमात्रकम्॥**
**सप्ताहात्सूर्यवर्तादीन् शिरोरोगान्विनाशयेत्॥ ७३॥**

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर, अभ्रक की भस्म, तीक्ष्ण लौह की भस्म, कान्तलौह की भस्म और ताम्र की भस्म इन पांचों को बराबर १ लेकर थूहर के शुद्ध दुग्ध से दिन भर खरल कर के एक २ माशे भर की गोलियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को एक २ गोली प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनी चाहिए। इस तरह एक सप्ताह तक यह रस सेवन करते रहने से सूर्यावर्त्त आदि शिर के समस्त रोगों को नष्ट कर देता है॥ ७३॥

अथ मस्तकरोगाणां सामान्योपायाः—

तत्रादौ अर्द्धावभेदके गिरिकर्णीप्रयोगः—

**गिरिकर्णीफलं मूलं सजलं नस्यमाचरेत्।**
**मूलं वा बन्धयेत्कर्णे निहन्त्यर्धशिरोव्यथाम्॥ ७४॥**

गिरिकर्णी अर्थात् सफेद अपराजिता के फल और जड़ का चूर्ण बनाकर पानी के साथ पत्थर पर पीस कर प्रतिदिन नस्य लेने से अथवा केवल अपराजिता की जड़ को उखाड़ कर कर्णमूल में बांधे रहने से आधे शिर का दर्द (अधा शीशी) दूर हो जाता है॥ ७४॥

अथ गुड़ादिकस्यम्—

**गुडं करञ्जबीजं च नस्यमुष्णजलैर्हितम्॥ ७५॥**

गुड़ की डली और करञ्ज के शुद्ध बीजों की गिरी इन दोनों को समान भाग लेकर खरल में महीन पीस लेवें। इस चूर्ण को मन्दोष्ण जल में घाल कर नस्य लेने से शिरोरोग में विशेष लाभ होता है॥ ७५॥

अथ मरिचप्रयोगः—

**मरिचं भृङ्गजैर्द्रावैर्लेपोऽयं हन्ति तां रुजम्॥ ७६॥**

काली मरिचों का चूर्ण बनाकर भृङ्गराज के स्वरस से भावित कर के घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को भृङ्गराज के स्वरस में पीस कर शिर पर लेप करने से आधे शिर की पीड़ा दूर हो जाती है॥ ७६॥

अथ शिरःशूले कुङ्कुमादिनस्यम्—

**कुङ्कुमं मधुयष्टी च सिताघृतगुणोत्तरम् ।**
**सप्ताहेन कृते नस्ये दाहं हन्ति शिरोरुजाम् ॥ ७७ ॥**

केशर १ भाग, मुलेठी का चूर्ण २ भाग, चीनी ३ भाग और गाय का घी ४ भाग लेकर सब को खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें । इस योग का १ सप्ताह तक नस्य करते रहने से शिर की गर्मी और पीड़ा आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथार्धशूले मरिचप्रयोगः—

**शिग्रुपत्ररसैर्मर्द्यं मरिचं चार्धशूलनुत् ॥ ७८ ॥**
**कुङ्कुमं घृतसंयुक्तं नस्याद्धन्ति शिरोरुजम् ॥ ७९ ॥**

मरिचों को कूट खांड कर चूर्ण बना के सहजने के पत्तों के स्वरस से भावित करके घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण का नस्य लेने से आधे शीशी की पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ७८–७९ ॥

अथ यूकालिक्षायां पारदप्रयोगः—

**पारदं मर्दयेन्निष्कं कृष्णधुस्तूरजैर्द्रवैः ।**
**नागवल्लीदलैर्वाऽथ वस्त्रखण्डं प्रलेपयेत् ॥ ८० ॥**
**तद्वस्त्रं मस्तके वेष्ट्य धार्यं यामत्रयं बुधैः ।**
**यूकाः पतन्ति निःशेषाः सलिक्षा नात्र संशयः ॥ ८१ ॥**

एक निष्क (४ मा०) भर पारद को पत्थर की खरल में काले धत्तूरे की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ घोटकर अथवा नागरवेल के पत्ते के स्वरस के साथ घोटकर सफेद वस्त्र की पट्टी पर लेप करके उस वस्त्रपट्टी को तीन प्रहर तक शिर में बांधे रहने से समस्त शिर की यूका और लिक्षाएं गिर पड़ती हैं ॥८०–८१॥

अथ दारुणतैलम्—

**कण्टकारीफलरसैस्तैलं तुल्यं विपाचयेत् ।**
**जयापुष्पद्रवैर्वाऽथ तल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ ८२ ॥**

कण्टकारी के फलों का स्वरस और तिल के तैल को समभाग लेकर कड़ाही में डाल के चूल्हे पर चढाकर मन्द मन्द अग्नि से पकावें । जब तैलमात्र

शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवें । अथवा जयन्ती के पुष्पों के स्वरस और तिलतैल को समभाग लेकर तैलपाक कर लेवें । इस तैल का शिर पर प्रलेप करने से दारुण रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८२ ॥

अथ केशपाते हरिद्रादिलेपः—

**द्विनिशा नवतीतेन लेपाद्वा खण्डकेशनुत् ॥ ८३ ॥**

दोनों प्रकार की हलदी को समान लेकर लोहे की ओंखली में कूट कर महीन चूर्ण कर लेवें । इस चूर्ण को नवनीत अर्थात् मक्खन या तुरन्त के घी में मिला कर शिर पर लेप करने ( लगाने ) से खण्डकेश अर्थात् बालों का टूटना दूर हो जाता है ॥ ८३ ॥

अथ दृढकेशकरो जातिपुष्पादिप्रलेपः—

**जातीपुष्पदलं मूलं कृष्णगोमूत्रपेषितम् ।**
**लेपोऽयं सप्तरात्रेण दृढकेशकरः परम् ॥ ८४ ॥**

चमेली के पुष्प, पत्ते और जड़ इन तीनों को सम भाग लेकर ओंखली में कूट के चूर्ण बना लेवें । इस चूर्ण को काली गाय के मूत्र के साथ पीस कर सात दिन तक माथे के बालों पर लेप करने से शिर के बाल मजबूत हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

अथ केशपाते शृङ्गाटादितैलम्—

**शृङ्गाटत्रिफलाभृङ्गीनीलोत्पलमयोरजः ।**
**सूक्ष्मचूर्णं समं कृत्वा पचेत्तैले चतुर्गुणे ॥**
**तल्लेपेन दृढाः केशाः कुटिलाः सरला अपि ॥ ८५ ॥**

सिंघाड़े, हरड़, बहेड़े, आंवले, भृङ्गराज, नीलकमल और लोहे की भस्म इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण कर जल के साथ पीस के कल्क बना लेवें । पश्चात् कल्क से चौगुना तिलों का तैल और तैल से चौगुना जल लेकर सब को कलईदार लोहे की कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि से पाक करें । जब समस्त जल नष्ट होकर तैल का ठीक पाक हो जाय तब शीतल कर के छान कर शीशी में भर देवें । इस तैल को प्रतिदिन शिर में लगाते रहने से टेढ़े मेढ़े तथा कमजोर केश सीधे और दृढ़ हो जाते हैं ॥ ८५ ॥

अथ इन्द्रलुप्ते भल्लातादिलेपः—

**कीटभक्षितकेशान्तःस्थानं स्वर्णेन घर्षयेत् ।**

**यावत् सुतप्ततां याति ततो लेपमिमं शृणु ॥ ८६ ॥**
**भल्लातकं च बृहती गुञ्जामूलं फलं तथा ।**
**मधुना सह लेपेन चाम्परोगचयप्रणुत् ॥ ८७ ॥**

शिर में जुओं अथवा कीड़ों के काटने से बालों की जड़ों में क्षत ( गढे ) बन गये हों तथा बाल न जमते हों ऐसी दशा में उस स्थान को शुद्ध स्वर्ण से खूब रगड़ना ( घिसना ) चाहिए । घिसते २ जब वह गरम हो जाय तब शुद्ध भिलावें, बड़ी कटेरी की जड़, घुंघची ( गुञ्जा ) की जड़ और फल इन को सम भाग लेकर चूर्ण बना के शहद् में मिला कर उस स्वर्णघृष्ट स्थान पर लेप करना चाहिए । इस तरह प्रतिदिन उस स्थान को स्वर्ण से घिस कर उपर्युक्त लेप के लगाते रहने से सर्व प्रकार का चाम्पा रोग (इन्द्रलुप्त) नष्ट हो जाता है ॥८६-८७॥

अथ इन्द्रलुप्ते गुञ्जाप्रयोगः—

**गुञ्जामूलं फलं चूर्णं कण्टकार्याः फलद्रवैः ।**
**तेन लेपेन हन्त्याशुचाम्परोगं सुदुःसहम् ॥ ८८ ॥**

गुञ्जा ( घुंघची ) की जड़ का या फल का चूर्ण बनाकर बड़ी कटेरी के पञ्चाङ्ग के स्वरस या क्वाथ के साथ पीस कर चटनी के समान महीन कल्क बना लेना चाहिए । इस कल्क के प्रतिदिन शिर में लेप करने से दुःसाध्य चाम्परोग नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥

**विमर्शः—वाग्भट में इन्द्रलुप्त रोग का "चाचा" यह पर्याय मिलता है यथा—तदिन्द्रलुप्तं रुढ्याञ्च प्राहुश्चाचेति चापरे" इस लिये चाम्पा के स्थान पर चाचा ऐसा पाठान्तर मानना श्रेष्ठ है तथा चाचा का अर्थ इन्द्रलुप्त है ।**

अथ सूर्यावर्तादौ अभ्रादिवटिका—

**अभ्रजीर्णरसस्तीक्ष्णं स्नुहीक्षीरं सुरायसम् ।**
**शुल्वं च सूर्यावर्तादीञ्छिरोरोगान्निवर्तयेत् ॥ ८९ ॥**

अभ्रक के द्वारा जारण किया हुआ पारद अथवा अभ्रक की भस्म और पारद की भस्म ( या रससिन्दूर), तीक्ष्ण लोहे की भस्म और ताम्रभस्म इनको समभाग लेकर थूहर के शुद्ध किये हुए दुग्ध के साथ खरल कर के चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को १-२ रत्ती भर लेकर सुरायस अर्थात् एक तोले भर लोहासव के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सूर्यावर्त आदि समस्त प्रकार के शिर के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

अथ पलितादौ कटुतैलनस्यम्—

**कटुतैलकृतं नस्यं पलितारुंषिकापहम् ॥ ९० ॥**

प्रतिदिन सरसों के तैल का नस्य लेने से अथवा सरसों के तैल की दो या तीन बूंद नाक में डाल देने से पलित और अरूंषिका ( शिर में सफेद रूसी का जमना ) ये दोनों शिर के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ९० ॥

अथ खालित्ये स्नुह्यादितैलं विषतैलञ्च—

**स्नुह्यर्कक्षीरभृङ्गाम्बुगोमूत्रहलिनीविषैः।**
**गुञ्जाविशालामरिचैः कटुतैलं विपाचितम् ॥**
**खलतिं शमयत्यम्लपिष्टमष्टगुणं विषात् ॥ ९१ ॥**

थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, भृङ्ग राज का स्वरस और गोमूत्र ये चारों सम भाग मिलाकर तैल से चौगुने लेवें तथा कलिहारी की जड़ का चूर्ण, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण, गुञ्जा ( घुंघुची ) की जड़ या फल का चूर्ण, इन्द्रायण के फल का चूर्ण और मरिचों का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर पत्थर पर जल से पीस कर कल्क बना लेवें। पश्चात् कल्क से चतुर्गुण कडुआ तैल तथा तैल से चौगुना उपर्युक्त द्रवद्रव्य लेकर सब को कलईदार कड़ाही में डाल कर मन्द मन्द अग्नि से पकावें। जब समस्त जलीयांश नष्ट होकर तैल सिद्ध हो जाय तब उतार कर वस्त्र से छान के शीशी में भर देवें। इस तैल को शिर में लगाने से खालित्य ( गञ्ज रोग ) नष्ट हो जाता है अथवा शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण का कल्क १ पल तथा अठगुनी ( आठ पल ) खट्टी काञ्जी और कल्क से चतुर्गुण कटुतैल लेकर सब को कड़ाही में डाल के मन्द २ अग्नि से तैल पाक कर लेवें। इस तैल को शिर में लगाने से खालित्य ( खल्वाट या गञ्ज ) रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥

अथ शिरोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपिच।
मुद्गान् माषान् कुलत्थांश्च खादेद्वौ निशि केवलान् ॥ १ ॥
कटुकोष्णान् ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा।
स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपःसेको लङ्घनं शीर्षवस्तिः ॥ २ ॥
रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो जीर्णः सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च।
यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रुर्वांक्षावास्तुकं कारवेल्लम् ॥ ३ ॥
आम्रं धात्री दाडिमं मातुलुङ्गं तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम्।

पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी मुस्तोशीरं चन्दिकागन्धसारः ॥ ४ ॥
कर्पूरञ्च ख्यातिमानेषवर्गः सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम् ॥ ५ ॥
इति पथ्यानि ।
अथापथ्यानि ।
क्षवजृम्भामूत्रवाष्पनिद्राविड्वेगमञ्जनम् । दुग्धं नीरं विरुद्धान्नं विरुद्धजलमज्जनम् ।
दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् । इत्यपथ्यानि ।

व्रणस्य भेदनिर्देशः—

**दोषैर्द्वन्द्वैः समस्तैश्च सासृग्भिस्तैरसृजाऽपि च ।**
**व्रणभेदा इति प्रोक्ता वैद्यशास्त्रविशारदैः ॥ ९२ ॥**

प्रकुपित वात, पित्त और कफ के कारण तीन तथा प्रकुपित वातपित्त, पित्त-कफ और कफवात के कारण तीन तथा सन्निपात के कारण एक और दूषित रक्त युक्त वात, रक्तयुक्त पित्त और रक्तयुक्त कफ के कारण तीन इसी तरह दूषित रक्तयुक्त वातपित्त, रक्तयुक्त पित्तकफ और रक्तयुक्त कफवात के कारण तीन और दूषित रक्तयुक्त सन्निपात के कारण एक तथा केवल दूषित हुए रक्त के कारण एक इस तरह दोष भेद से व्रण के पन्द्रह प्रकार शास्त्र में माने गये हैं ॥ ९२ ॥

अथ जात्यादिघृतम्—

**जातीपत्रं पटोलं च निम्बोशीरकरञ्जकम् ।**
**मञ्जिष्ठा मधुयष्टी च तुत्थपत्रकसारिवाः ॥ ९३ ॥**
**प्रत्येकं चूर्णयेत्कर्षं गव्याज्यं द्वादशं पलम् ।**
**घृताच्चतुर्गुणं तोयं पाचयमाज्यावशेषितम् ॥ ९४ ॥**
**तेनाभ्यङ्गो मर्मजातान्व्रणान्नाडीव्रणानपि ।**
**स्रवन्ति सूक्ष्मरन्ध्राणि पूरयेन्नात्र संशयः ॥ ९५ ॥**

चमेली के पत्ते, परवल के पत्ते, नीम के पत्ते, खस, करञ्ज के पत्ते, मंजीठ, मुलेठी, शुद्ध किया हुआ नीला तुत्थ, पत्रक अर्थात् तेजपत्र या तालीसपत्र और सारिवा ( अनन्त मूल ) ये प्रत्येक ओषधि एक२ कर्ष ( १६ मा० ) लेकर सब को एकत्र कूट पीस कर चूर्णकर लेवें । फिर इस चूर्ण को १२ पल गाय के घी और घी से चौगुने ( ४८ पल ) जल में मिलाकर कलईदार लौह की कड़ाही में सबको डाल के चूल्हे पर चढाकर मन्द२ अग्नि के द्वारा घृतशेषपर्यन्त पाक करना चाहिए । यथाविधि सिद्ध हुए घृत को उतार कर वस्त्र से छान के चौड़े मुख

वाली शीशी या मृतबान में भर देवें। यह घृत अभ्यङ्ग करने से या लेप करने से मर्मस्थलों में उत्पन्न हुए व्रण, नाडीव्रण तथा पूय आदि के कारण बहते हुए छोटे छिद्र वाले व्रणों को शुद्ध करके भर देता है ॥ ९३-९५ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ व्रणशोधनरोपणार्थं शुल्वादिप्रयोगः—

**शुल्वचूर्णं रसे जीर्णं मदयन्तीपुनर्नवे।**
**मेषशृङ्गीरसश्चैतद्व्रणशोधनरोपणम् ॥ ९६ ॥**

जीर्ण हुए शुल्वचूर्ण (ताम्रभस्म) को मदयन्ती अर्थात् नवमल्लिका और पुनर्नवा के रस में घोट कर अथवा केवल मेढासीङ्गी के स्वरस में घोट कर व्रण पर प्रलेप करने से वह शुद्ध होकर भर जाता है ॥ ९६ ॥

अथ व्रणरोपणार्थं पटोलादिलेपः—

**पटोलनिम्बपत्रं च मधुयष्टीनिशातिलाः।**
**त्रिवृद्दन्तीरसैः पिष्ट्वा पूरयेद्व्रणरोपणम् ॥ ९७ ॥**

पटोल (परवल) के पत्ते, नीम के पत्ते, मुलेठी, हलदी और तिल इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण कर के त्रिवृत् और दन्ती की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ पृथक् २ सात २ वार भावित कर के घोट कर मलहम बना लेवें। इस मलहम का व्रण पर लेप करके पट्टीबन्धन करने से वह भर जाता है ॥ ९७ ॥

अथ व्रणरोपणार्थं निम्बपत्रादि प्रयोगः—

**निम्बपत्रं तिलं पिष्ट्वा पूरयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९८ ॥**

नीम के पत्ते और तिल इन दोनों को समभाग लेकर ओखली में कूट खांड कर महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को शहद् और घृत में मिला कर प्रलेप करने से व्रण भर कर ठीक हो जाता है ॥ ९८ ॥

अथ व्रणरोपणे अपामार्गप्रयोगः—

**अपामार्गस्य पत्रोत्थरसेनाऽऽपूरयेद् व्रणम्।**
**किम्वा तद्बीजचूर्णेन व्रणं दुष्टं प्ररोहयेत् ॥ ९९ ॥**

अपामार्ग के पत्तों के स्वरस को निकालकर व्रण में भरने से अर्थात् अपामार्ग के पत्तों के रस में शुद्ध गोज या रुई भींगों कर व्रण पर बांधने से, अथवा इसके

बीजों के चूर्ण को व्रण पर छिडक कर पट्टबन्धन करते रहने से दुष्ट व्रण भी भर जाता है ॥ ९९ ॥

अथ व्रणरोपणे गुडटङ्कणवर्त्तिः—

**पुरातनगुडैस्तुल्यं टङ्कणं सूक्ष्मचूर्णितम् ।**
**तद्वर्त्या पुरयेद्गूढं व्रणं शीघ्रतरं महत् ॥ १०० ॥**

अच्छी तरह महीन चूर्ण किये हुए शुद्ध टङ्कण के चूर्ण को समभाग गृहीत पुराने गुड़ के साथ खरल में घोट कर वर्ति ( बत्ती ) बना लेवें । इस बत्ती को बहुत पुराने तथा गहरे व्रण में भरने से व्रण बहुत जल्दी भर कर सूख जाता है ॥ १०० ॥

अथ दूषितव्रणलेखनार्थं पारदादिप्रयोगः—

**पारदस्य त्रयो भागाः कमलस्यैकविंशतिः ।**
**जम्बीराम्लेन तत्पिष्टं माणिमन्थस्य सप्ततिः ॥ १०१ ॥**
**नवभिर्गन्धकस्यांशैर्भृंगसारेण मर्दयेत् ।**
**सप्ताहमातपे तीव्रे धारितं शस्त्रवल्लिखेत् ॥ १०२ ॥**

शुद्ध पारद तीन भाग, कमल के पत्तों का या कमलकन्द का चूर्ण २१ भाग ( अथवा कमल से ताम्र भस्म लेना चाहिए ), सैन्धव लवण ७ भाग और शुद्ध गन्धक के ९ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर जम्बीरी निम्बू के रस में खरल कर लेवें । फिर उस में शेष द्रव्य मिला कर भृङ्ग राज के स्वरस से प्रातःकाल ( ६ बजे ) से दो पहर ( १२ बजे ) तक घोट कर भृङ्गराज का रस भर के तेज धूप में रख देवें । फिर दूसरे दिन दो पहर तक घोट कर भृङ्गराज का रस भर के तेज धूप में रख देवें । इस तरह सात दिन तक घोट २ कर तीव्र धूप में रख कर सुखा के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को दुष्ट व्रण पर छिड़क कर पट्टबन्धन करते रहने से व्रण के अशुद्ध भाग नष्ट हो कर गिर जाते हैं । इस प्रकार अशुद्ध भाग के गिर जाने से व्रण शुद्ध हो जाता है । फिर उस पर रोपण घृत लगा देना चाहिए ॥ १०१-१०२ ॥

अथ भग्नस्य भेदनिर्देशः—

**भग्नो द्विधा निजागन्तुबाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ १०३ ॥**

भग्नरोग ( फ्रेक्चर ) दो प्रकार का होता है । एक स्वाभाविक भग्न होता

है जो कि बालक के जन्म होने के पूर्व ही विद्यमान रहता है और दूसरा आगन्तुक होता है। यह किसी लाठी, शस्त्र या अन्य प्रकार की चोट आदि लग जाने से उत्पन्न होता है। प्रायः दोनों प्रकार के भग्न बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो २ प्रकार के होते हैं। अर्थात् बाहरी अङ्गों का भग्न दृष्टिगोचर होता है तथा शरीर के भीतरी अस्थि आदि का भग्न चर्म और मांस पेशियों से ढके होने के कारण जल्दी से दृष्टिगोचर नहीं होता है अपि तु अङ्ग को इधर उधर करने तथा टोलने से प्रतीत होता है ॥ १०३ ॥

अथ भग्ने पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

**भग्नेष्वैरण्डतैलेन प्रयुञ्ज्यात्पर्पटीरसम् ॥ १०४ ॥**

पूर्वोक्त पर्पटी रस को एरण्ड के तैल के साथ मिलाकर भग्न रोग में सेवन करना चाहिए ॥ १०४ ॥

अथ भग्ने वज्रीलेपः कान्तपाषाणलेपश्च—

**वज्रीं पिष्ट्वा बालकस्य प्रणुत्यै मेषीदुग्धं कान्तपाषाणतुल्यैः।**
**युक्तं लेपादस्थिभङ्गं निहन्ति बाह्याभ्यन्तः संस्थितं तत्क्षणेन ॥ १०५ ॥**

नेत्र बाला के चूर्ण और थूहर के दुग्ध या हड़जोड़ के चूर्ण को समभाग लेकर पत्थर पर पीसकर टूटे हुए अङ्ग पर प्रलेप करने से भग्न हुआ अङ्ग जुड़ जाता है। अथवा कान्तपाषाण (राजपट्ट) के चूर्ण को भेड़ी के दुग्ध के साथ पत्थर पर पीस कर प्रलेप करने से बाह्य या भीतरी अस्थिभंग शीघ्र ही ठीक हो जाता है ॥१०५॥

अथ भगन्दरलक्षणम्—

**गुदस्य पार्श्वे पिटिकार्तिकारी।**
**शोफादियुक्तः स भगन्दरः स्यात् ॥ १०६ ॥**

गुदा के आस पास या समीपवर्ति प्रदेश में सूजन आदि होकर अत्यन्त कष्ट देने वाली पिडिका उत्पन्न होती है इसी को भगन्दर कहते हैं ॥ १०६ ॥

विमर्शः—भगन्दर को पाश्चात्य वैद्यक में फिश्चुला कहते हैं। इसके स्थानानुसार कई भेद भी होते हैं। वाग्भट में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है यथा-प्रायेण पिटिकापूर्वोयोऽङ्कुले द्व्यङ्गुलेऽपिवा। पायोर्व्रणोऽन्तर्बाह्यो वा दुष्टा सृग्मांसगो भवेत्। वस्तिमूत्राशयाभ्यासगतत्वात् स्यन्दनात्मकः। भगन्दरः स सर्वश्च दारयत्यक्रियावतः॥इति।

अथ भगन्दरस्य निरुक्तिः—

**वृषणासनयोर्मध्ये प्रदेशो भग उच्यते।**

तमेव दारयत्यस्माद्भगन्दर इति स्मृतः ॥ १०७॥

वृषण और आसन ( अस्यते उपविश्यते अनेनेति व्युपत्या गुदस्य ग्रहणम् ) अर्थात् गुदा के मध्य के भाग को भग कहते हैं। एवं इस प्रदेश ( भग ) में व्रण आदि बन कर पूय पड़ जाने के कारण कष्ट होता है, इस कारण इस रोग को भगन्दर कहते हैं ॥ १०७ ॥

अथ रविताण्डवरसः—

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम् ।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा हण्डिकान्ते निरोधयेत् ॥ १०८ ॥
शुद्धेन ताम्रपात्रेण तयोस्तुल्येन यत्नतः ।
तद्भाण्डं भस्मनाऽऽपूर्य चुल्ल्यां तिव्राग्निना पचेत् ॥ १०९ ॥
द्वियामान्ते तदुद्धृत्य चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ।
जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटैः पचेत् ॥ ११० ॥
गुञ्जैकं मधुराहारं दिवा स्वापं च मैथुनम् ।
वर्जयेच्छीतलाहारं रसेऽस्मिन् रविताण्डवे ॥ १११ ॥

शुद्ध पारद १ पल तथा शुद्ध गन्धक दो पल भर लेकर दोनों को खरल में कज्जली बना कर घृत कुमारी के स्वरस ( गूदे ) के साथ तीन दिन तक खरल करके गोला बना लेना चाहिए। फिर इस गोले को एक हण्डिका में रख कर पारद और गन्धक की कज्जली के बराबर शुद्ध ताम्रपत्र की कटोरिका से ढक कर हण्डिका की पेंदी और कटोरी के किनारों की सन्धि को अच्छी तरह बन्द करके कपड़ मिट्टी द्वारा सुखा देवें। पश्चात् इस हण्डिका को राखी से भर कर मुख बन्द करके तीव्र आंच वाले चूल्हे पर चढा कर दो प्रहर तक पाक करना चाहिए। दो प्रहर के पश्चात् हण्डिका को चूल्हे से उतार कर स्वाङ्गशीतल होने के बाद राखी हटा कर कटोरी के सहित गोले को खरल में महीन पीस लेवें। फिर इस को जम्बीरी निम्बू के रस के साथ दिन भर खरल करके गोला बना कर सुखा के शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करें। इस तरह सात वार जम्बीरी निम्बू के रस के साथ खरल करके सात पुट देकर खरल में महीन घोट के शीशी में भर देवें। इस रस को एक रत्ती भर की मात्रा से शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करते

समय मधुर रस युक्त आहार का पथ्य लेना चाहिए तथा दिन में शयन, मैथुन और शीतल पदार्थों का आहार ( भोजन ) आदि वर्जित है। इस प्रकार सेवन करने से यह रस भगन्दर को नष्ट करता है ॥ १०८-१११ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कर्तव्यनिर्देशः—

**आदौ सर्वप्रयत्नेन पाकं रक्षेद्भगन्दरे ।**
**स्राव्यं रक्तं व्रणे जाते जलूकां वा प्रयोजयेत् ॥ ११२ ॥**

भगन्दर में जहां तक हो सके पाक होने का अवसर नहीं आने देना चाहिए। यदि प्रयत्न करने पर भी वह पक कर व्रण (अल्सर) के रूप में हो जाय तब उस स्थान का रक्त और पूय आदि को ठीक तरह से निकाल देना चाहिए। अथवा उस व्रण के समीप प्रदेश में जोंके लगवा कर दूषित रक्त को निकाल देना चाहिए॥ ११२॥

अथ लाङ्गल्यादिप्रलेपः—

**लाङ्गलीकृष्णधत्तूरविषमुष्टीं प्रलेपयेत् ॥ ११३ ॥**

उपर्युक्त विधि से अर्थात् जोंके लगवाने या पूय रक्त आदि का ठीक निर्हरण हो जाने के पश्चात् कलिहारी की जड़ का चूर्ण, काले धत्तूरे की जड़ का चूर्ण और विषमुष्टि अर्थात् शुद्ध कुचले का चूर्ण इन तीनों को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस के प्रलेप लगाकर पट्टी बन्धन कर देना चाहिए ॥ ११३ ॥

अथ कालाग्निरसः—

**रसगन्धकसिन्धूत्थतुत्थनागाः सजीरकाः ।**
**तिक्तकोशातकीसारैः पिष्ट्वा घ्नन्ति भगन्दरम् ॥ ११४ ॥**

अथवा शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, सैन्धवलवण, शुद्धतुत्थ, नागभस्म और जीरे का चूर्ण इन्हें सम भाग लेकर कड़वी तरोई की जड़ के क्वाथ के साथ पीस कर भगन्दर के ऊपर प्रलेप करना चाहिए। इस प्रकार यह योग भगन्दर को नष्ट कर देता है ॥ ११४ ॥

अथ चक्रिकाबद्धरसप्रयोगोपदेशः—

**गुल्मोक्तचक्रिकाबद्धो भगन्दरहरः परम् ॥ ११५ ॥**

गुल्मचिकित्सा में कहा हुआ चक्रिकाबद्ध नामक रस प्रतिदिन सेवन करते रहने से भगन्दर के नष्ट करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ११५ ॥

अथ स्फोटने चतुरङ्गलेपः—

**ताम्रचूर्णं सप्तभागं भागमेकं तु पारदम् ।**
**सैन्धवं सप्तभागं च गन्धकं नवभागिकम् ॥ ११६ ॥**
**भृङ्गीद्रावैः सजम्बीरः सप्ताहं घर्ममर्दितम् ।**
**तेन लिप्तं स्फुटत्याशु यदि पक्वं भगन्दरम् ॥**
**न शस्त्रैश्छेदयेत्प्राज्ञः स्फोटयेल्लेपनादिभिः ॥ ११७ ॥**

शुद्धताम्र का चूर्ण अथवा ताम्रभस्म ७ भाग, शुद्धपारद १ भाग, सैन्धवलवण ७ भाग और शुद्ध गन्धक ९ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के दिन भर घोट कर महीन चूर्ण बना लेवें । फिर उस चूर्ण को भृङ्गराज के स्वरस में घोट कर तीक्ष्ण धूप में रख देवें । इस तरह सात दिन तक भृङ्गराज के स्वरस में घोट २ कर तीक्ष्ण धूप में रखना चाहिए । पश्चात् इसी तरह निम्बू के रस में घोट २ कर सात दिन तक तेज धूप में सुखावें । फिर इस चूर्ण को शीशी में भर कर रख देवें । इस चूर्ण में से थोड़ा सा चूर्ण लेकर जल के साथ घोट के पके हुए भगन्दर पर लगा देने से वह फूट जाता है। बुद्धिमान् वैद्य भगन्दर को शस्त्र के द्वारा कभी नहीं चीरें, केवल औषधियों के प्रलेप की सहायता ही से पके हुए भगन्दर का फोड़ना (खोलना) श्रेष्ठ है ॥ ११६-११७ ॥

अथ स्फोटने हरिद्रादिप्रलेपः—

**हरिद्रानिम्बसिन्धूत्थं पिष्ट्वा लिप्त्वा स्फुटत्यलम् ॥ ११८ ॥**

अथवा केवल हलदी का चूर्ण, नीम के पञ्चाङ्ग का चूर्ण और सैन्धव लवण इन तीनों को सम भाग लेकर नीम की पत्ती के स्वरस में घोट कर भगन्दर की कच्ची फुन्सी पर लेप कर देने से वह फूट जाती है ॥ ११८ ॥

अथ शोषणे नरास्थितैलप्रयोगः—

**नरास्थितैललेपेन स्फुटितं शुष्यति व्रणम् ॥ ११९ ॥**

मनुष्य की अस्थि के कल्क के साथ तैल सिद्ध कर के अथवा अस्थि का चूर्ण और तैल या अस्थि में से निकले हुए तैल का भगन्दर के व्रण पर लगाने से वह सूख जाता है ॥ ११९ ॥

अथ शोधनरोपणे ताम्रभस्म प्रयोगः—

**ताम्रभस्म दिनं मर्द्यं मदयन्तीपुनर्नवे।**
**मेषशृङ्गीद्रवैस्तेनव्रणशोधनरोपणम्॥ १२०॥**

ताम्र की भस्म को मदयन्ती अर्थात् मेंहदी या नवमल्लिका और पुनर्नवा अथवा केवल मेषशृङ्गी ( मेढासींगी ) के स्वरस में घोटकर प्रलेप करने से भगन्दर के व्रण का शोधन हो कर रोपण हो जाता है॥ १२०॥

अथ रोपणे मार्जारास्थिप्रलेपः—

**त्रिफलाक्काथसंयुक्तमार्जारास्थिप्रलेपनात्॥ १२१॥**

मार्जार ( बिलाव ) की अस्थि को त्रिफला के क्वाथ में घिस कर अथवा मार्जारास्थि को भस्म को त्रिफला क्वाथ में घोट कर प्रलेप करने से भगन्दर का व्रण भर जाता है॥ १२१॥

अथ भगन्दरव्रणक्षालने त्रिफलाक्वाथः—

**क्षालयेत् त्रिफलाक्काथैर्हन्याद्दुष्टभगन्दरम्॥ १२२॥**

दुष्ट हुए भगन्दर के व्रण को त्रिफला के क्काथ से प्रतिदिन प्रक्षालित करते रहने से उसकी शुद्धि हो जाती है तथा वह अच्छी तरह से भर कर ठीक हो जाता है॥ १२२॥

अथ भूतलोत्थचूर्णप्रयोगः—

**भूतलोत्थं पिबेच्चूर्णं खररक्तेन संयुतम्॥ १२३॥**

भू ( पृथ्वी ) के तल ( भीतरी ) प्रदेश से उत्पन्न हुए अर्थात् केंचुए के चूर्ण को गदहे के रक्त के साथ घोट कर भगन्दर के व्रण पर लेप करने से वह ठीक हो जाता है॥ १२३॥

अथ कुक्कुरास्थिलेपः—

**श्वानास्थिलेपनं कार्यं शीघ्रं हन्याद्भगन्दरम्॥ १२४॥**

कुत्ते की हड्डी को या हड्डी की भस्म या चूर्ण को त्रिफला के क्वाथ के साथ पीस कर लेप करने से शीघ्र ही भगन्दर नष्ट हो जाता है॥ १२४॥

अथ भगन्दरे पथ्यापथ्यविवेकः—

आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम्। पक्वे पुनः शस्त्रविधिस्तथा क्षाराग्निकर्म च॥१॥
सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गली रसः। पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं धुस्तूरो वालमूलकम्॥२॥

तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु । एतत् पथ्यं नरैः सेव्यं यथादोषं भगन्दरे ॥३॥

इति पथ्यानि—

अथापथ्यानि—

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च । संवत्सरं परिहरेद्यावद्रूगदव्रणो नरः ॥ १ ॥

इत्यपथ्यानि ।

अथ ग्रन्थिलक्षण व्युत्पत्तिश्च—

**मेदोमांसासृगाः कुर्यर्वृत्तं ग्रन्थितमुन्नतम् ।**
**दोषाःशोफादिकं तत्र ग्रथनात् ग्रन्थिमाह तम् ॥ १२५ ॥**

प्रकुपित हुए वात, पित्त आदि दोष शरीर की मेद ( चर्बी ), मांस और रक्त में मिल कर या उन्हें भी दूषित कर के शरीर के किसी अङ्ग में गोल और ऊंची गांठ उत्पन्न कर देते हैं जिसके कारण शोफ ( सूजन ), दाह, पीड़ा आदि अनेक उपद्रव हो जाते हैं तथा वह गांठ सख्त होती है इसलिए उसको ग्रन्थिरोग कहा गया है ॥ १२५ ॥

अथ मेदोग्रन्थौ अरिमेदादिभस्मलेपः—

**अरिमेदपलाशानां ग्रन्थिभस्म विमर्दयेत् ।**
**भस्मना तेन दत्तः सन्मेदोग्रन्थिविनाशनः ॥ १२६ ॥**

विट् खदिर, पलाश (ढाक ) की ग्रन्थि (छाल) इन की राख बना कर अथवा विट्खदिर की गांठ की भस्म और ढाक के बीजों का चूर्ण दोनों को पानी के साथ पीस कर लेप करने से मेदोग्रन्थि नष्ट हो जाती है ॥ १२६ ॥

अथ मेदोवृद्धौ गुडूच्यादिः—

**गुडूची सूरणं निष्कत्रयमुष्णाम्बुमर्दितम् ।**
**मेदोवृद्धिरसाक्तेन हन्ति रोगं च पूर्वजम् ॥ १२७ ॥**

गुडूची ( गिलोय ) का चूर्ण ३ निष्क और सूरणकन्द का शुष्क चूर्ण ३ निष्क भर लेकर दोनों को गरम पानी के साथ पीस कर प्रलेप करने से सर्व प्रकार की मेदोवृद्धि से उत्पन्न हुई गांठे तथा उसके द्वारा उत्पन्न हुए समस्त ग्रन्थिसम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १२७ ॥

अथ गण्डमालायामुदयभास्करः—

**गण्डमालां जयत्याशु गुल्मोक्तोदयभास्करः ॥ १२८ ॥**

शास्त्रान्तरों में गुल्म रोग में कहा हुआ उदयभास्कर रस अथवा इस ग्रन्थ

के शूलरोग में कहा हुआ उदयभास्कररस प्रतिदिन सेवन करने से गण्डमाला को नष्ट कर देता है॥ १२८॥

अथ कालस्फोटादौ पुत्रजीवप्रयोगः—

**पुत्रजीवस्य मज्जां तु जलैः पिष्ट्वा प्रलेपनात्।**
**कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्यात्सवेदनम्॥**
**ग्रन्थ्यादिनिखिलान् रोगान्सर्वरोगाश्रयान्हरेत्(१)॥१२९॥**

पुत्रजीव अर्थात् जियापोता की गिरी को जल में पीसकर प्रलेप करने से कालस्फोट (कृष्णवर्ण के या मृत्युकारक फोड़े) तथा पीड़ा देने वाले विष जन्य स्फोट अच्छे हो जाते हैं। यह प्रलेप ग्रन्थि,अर्बुद आदि समस्त प्रकार की ग्रन्थियों को तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य समस्त रोगों को नष्ट करता है॥१२९॥

अथ सन्धिग्रन्थौ रक्तस्रावविधिः—

**सन्धिग्रन्थिस्तापयुक्तो यदि स्यात्क्षीरं रात्रावोदनं सन्निदध्यात्।**
**पादाङ्गुष्ठस्याग्रदेशेषु रक्तस्रावं कुर्यात्तेन शीघ्रं सुखी स्यात्॥ १३०॥**

यदि रोगी को सन्धियों की या कक्षा, वंक्षण आदि स्थानों की ग्रन्थियां निकल आवें और पित्त की अधिकता के कारण अत्यन्त ताप और पीड़ा होती हो ऐसी दशा में रोगी को रात्रि में दुग्ध और भात का भोजन कराना चाहिए तथा दूसरे दिन पैर के अङ्गुठे के अग्रभाग की शिरा खोलकर अशुद्ध रक्त का स्राव करा देना चाहिए। इस रक्तमोक्षण की क्रिया से रोगी की ग्रन्थि सम्बन्धी पीड़ा और

---

(१) "ग्रन्थ्यादिनिखिलान् रोगान् सर्वदेहाश्रयान् हरेत्। तण्डुलीयकवर्षाभूनागकन्यावरारसे॥ गोमूत्रे च रसः पिष्टः पुटपक्वोऽर्बुदादिजित्। ब्राह्मीपलाशयोः क्वाथे रीतिपत्रं विनिक्षिपेत्। दिनत्रयं ततस्तानि पुनस्तेनैव मर्दयेत्। लघुभाण्डे समादाय चूर्णकुष्माण्डवारिणा। ततस्त्रिवारं कुर्वीत पुटं करभवारिणा॥ मर्दयित्वा पुटं दद्यादजामूत्रेण भावयेत्। ततोऽप्येकपुटं दद्यात् तिस्रस्त्रिकटुभावनाः। आखुपर्णी विडङ्गाग्निजलैरथविभावितः। एवमेष सुसंसिद्धो रसो वल्मीकमृद्रसैः॥ वस्त्रयमितो देयो वल्मीके तस्य मृत्स्नया। वल्मीकं संविलिम्पेत्तु क्रिमिसंघप्रशान्तये। रसैरुत्तरवारुण्याः सभ्रमं हन्ति मारुतम्॥ वासानीरानुपानेन जयेत्कफसमीरणौ"॥ इति क्वचित्पुस्तकेऽधिकः पाठोऽत्रावसेयः॥

जलन दूर हो जाती हैं तथा वह सुखी हो जाता है ॥ १३० ॥

अथ कक्षग्रन्थ्यादौ पुत्रजीवप्रयोगः—

**कक्षग्रन्थिं गलग्रन्थिं कटिग्रन्थिं च नाशयेत् ।**
**अन्यं च स्फोटकं तीव्रं पुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ १३१ ॥**

केवल पुत्रजीव जल के साथ पीसकर प्रलेप करने से कक्ष ( खांक-एग्जिला ) की निकली हुई गांठ, गले की गांठ, कटिप्रदेश की गांठ तथा अन्य प्रकार के तीव्र स्फोट आदि को नष्ट कर देता है ॥ १३१ ॥

अथ कालस्फोटे गुञ्जापत्रादिचूर्णम्—

**गुञ्जापत्रं शिलां यष्टीं गवां क्षीरेण पाययेत् ।**
**कालस्फोटं निहन्त्याशु मज्जा वा पुत्रजीवजा ॥ १३२ ॥**

पुत्र जीव की मज्जा अथवा गुञ्जा ( रती या घुंघची ) की लता के पत्र, शुद्धमनःशिला और मुलेठी इनको समभाग लेकर गाय के दुग्ध के साथ घोटकर चीनी मिला के पिलाना चाहिए । इस प्रकार यह योग प्रति दिन सेवन करने से कालस्फोट को नष्ट कर देता है ॥ १३२ ॥

अथ कालस्फोटे विष्णुक्रान्तादिप्रलेपः—

**विष्णुक्रान्ता च पेटारी काञ्जिकेन तु पेषिता ।**
**कालस्फोटं हरेल्लेपाद् दुष्टग्रन्थिषु का कथा ॥ १३३ ॥**

समान भाग से ली हुई विष्णुक्रान्ता ( अपराजिता ) की जड़ और पेटारी वृक्ष की छाल को काञ्जी या जल के साथ पीसकर प्रलेप करने से कालस्फोट को भी नष्ट करती है फिर अन्य साधारण दुष्ट ग्रन्थि आदियों की क्या कथा है अर्थात् उन्हें भी अवश्य नष्ट करती ॥ १३३ ॥

अथ ग्रन्थ्यादौ पुनर्नवादिप्रलेपः—

**पुनर्नवाऽर्कभयशिग्रुमुष्टिकरञ्जसिन्धूत्थमहौषधं च ।**
**गोमूत्रपिष्टं च सुखोष्णलेपाद् ग्रन्थ्यर्बुदं हन्त्यपची च सद्यः ॥१३४॥**

पुनर्नवा की जड़ या पञ्चाङ्ग का चूर्ण, आक की जड़ का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, सहजने की छाल का चूर्ण, शुद्ध कुचले का चूर्ण, करञ्ज की छाल या बीज का चूर्ण, सैन्धव लवण और सोंठ का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में गोमूत्र के साथ एकत्र खरल करके अग्नि में गर्म कर मन्दोष्ण होने पर प्रलेप करना चाहिए।

यह रस प्रतिदिन प्रयुक्त करते रहने से ग्रन्थि, अर्बुद और अरुची इन्हें शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ १३४ ॥

अथ अर्बुदभेदः—

**मेदो हि दोषमांसोत्थग्रन्थिरूपं ततो महत् ।**
**अर्बुदं दुष्टरुधिरं स्रवेत्तच्छोणिताबुर्दम् ॥ ॥ १३५ ॥**

प्रकुपित हुए वात, पित्त आदि दोष तथा मांस के दूषित होने से जब शरीर की मेद ( चरबी ) धातु दूषित हो जाती है तब प्रथम छोटी सी गांठ उभर आती है तथा धीरे २ वह बढ कर बडी हो जाती है इसी को अर्बुद कहते हैं । जो अर्बुद अधिकतर रक्त के दूषित होने के कारण उत्पन्न होता है तथा उस में से रक्त और पूय आदि का स्राव भी होता रहता है तब उसे शोणिताबुर्द कहते हैं ॥ १३५ ॥

अर्बुदहररसः—

**तुण्डलीयकवर्षाभूनागकन्याबलारसे ।**
**गोमूत्रे च रसः पिष्टः पुटपक्वोऽर्बुदादिजित् ॥ १३६ ॥**

शुद्ध पारद अथवा पारे की भस्म या रस सिन्दूर को कांटेदार चोलाई ( मेघनाद ), पुनर्नवा, ताम्बूल के पत्ते का स्वरस, घृतकुमारी, बला ( बरियारा ) और गोमूत्र में क्रम से एक २ बार एक २ दिन तक घोट २ कर गोला बना के शराव सम्पुट में बन्द करके पुट देकर भस्म बना लेवें । अथवा चोलाई आदि द्रव्यों के स्वरस में पृथक् २ एक २ दिन तक घोट के एक २ पुट देवें । इस तरह प्रत्येक के स्वरस में घोट कर एक २ वार पुट देकर सिद्ध भस्म ग्रहण करके शीशी में भर देवें । यह रस प्रतिदिन सेवन करते रहने से अर्बुद, ग्रन्थि आदि व्याधियों को नष्ट कर देता हैं ॥ १३६ ॥

अथ सामान्यपायोः—

**लिप्तं यवक्षारविडङ्गबीजं गन्धोपलस्याप्यशनैः कृतैर्यत् ।**
**रक्तेन मिश्रैः सरसस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैव ॥ १३७ ॥**

यवक्षार और वायविडङ्ग के चूर्ण को समभाग लेकर जल में पीस कर प्रलेप करने से तथा शुद्ध गन्धक के चूर्ण को मक्खन के साथ सेवन करने से अर्बुद रोग शान्त हो जाता है । अथवा शिरीष के बीजों के चूर्ण को किसी पक्षी या

सरठ के रुधिर के साथ घोटकर प्रलेप करने से अर्बुद नष्ट हो जाता है ॥१३७॥

अथार्बुदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

पुराणघृतपानञ्च जीर्णलोहितशालयः । यवा मुद्गाः पटोलञ्च रक्तशिग्रुः कटिल्लकम् ॥१॥
शालिञ्च-शार्ङ्गवेत्राग्ररक्षाणि च कदूनि च । दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥२॥
गलगण्डे गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदान्तरे । यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत् प्रकीर्तितम् ॥३॥

इति पथ्यानि।

अथापथ्यानि—

दुग्धेक्षुविकृतीः सर्वा मांसं चानूपसम्भवम् । पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दिकारि च ॥
अर्बुदेऽपथ्यमेतद्धि वज्यमर्बुदरोगिभिः ॥ १ ॥ इत्यपथ्यानि ।

विमर्शः—योगरत्नाकर में इस योग का वर्णन इस प्रकार आता है ।

यथा—लिखेत् यवक्षारविडङ्गबीजं गन्धोपलैः स्यान्मसृणीकृतैर्यत् । रक्तेन मिश्रैः सरठस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैतत् ॥ इति ।

अथ गण्डमालाऽपचीलक्षणम्—

मेदोत्था गलकक्षवङ्क्षणतले मन्याद्वयोः कुर्वते
वार्ताकीफलकोपमान्सकठिनान्गण्डान्सकण्डूत्कलाः ।
पच्यन्तेऽल्परुजः स्रवन्ति नितरां रुह्यन्ति नश्यन्त्यलं
दूर्वेव क्षयवृद्धिभागिनि नृणां सा गण्डमालापची ॥ १३८ ॥

दूषित हुए मल ( अर्थात् वात, पित्त, कफ ), मेदो धातु को दूषित कर के गला, कक्षा ( खांक ), वंक्षण, मन्या और नेत्र के समीपवर्ति प्रदेश में वार्ताकी ( भोरिङ्गणी या क्षुद्रभण्टाकी ) के फल के समान ( गोल ) तथा दबाने से कठोर प्रतीत होने वाली और जिन में खुजली चलती हो ऐसी ग्रन्थियां उत्पन्न कर देते हैं । ये ग्रन्थियां कुछ दिनों के पश्चात् पक कर फूट जाती हैं तथा इनमें से रक्त और पूय आदि निकल जाने से अपने आप ठीक भी हो जाती हैं । इन ग्रन्थियों को दबाने से या ऐसे ही थोड़ी २ पीड़ा भी होती है । इस प्रकार ये ग्रन्थियां कुछ दिनों में ठीक हो कर नष्ट हुई दूब ( दूर्वा ) के समान फिर उत्पन्न हो जाती हैं । इस तरह इनका क्षय और प्रादुर्भाव जब तक शरीर में दोष रहते हैं तब तक होता ही रहता है । इस प्रकार के लक्षण जिसमें हों उसे गण्डमालापची रोग कहते हैं ॥ १३८ ॥

विमर्शः—सुश्रुत में गण्डमाला और अपची को पृथक् २ माना है यथा—

कर्कन्धु कोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डः ॥ इति गण्डमालालक्षणम्

ते ग्रन्थयः केचिदवासपाकाः स्रवन्ति नश्यन्त भवन्ति चान्ये ।
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ इत्यपचीलक्षणम् ।

परन्तु इन दोनों में कोई विशेष भेद न होने के कारण इस ( रसरत्नसमुच्चय ) में "सा गण्डमालापची" इस तरह से मिलित लक्षण बता दिया गया है। भाज ने भी अपची और गण्डमाला का प्रायः सम्मिलित लक्षण बताया है। यथा—

वातपित्तकफावृद्धा मेदश्चापि समाचितम् ।
जङ्घयोः कण्डरां प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान् बहून् ॥
कुर्वन्ति ग्रन्थींस्तांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः ।
तान् दोषानूर्ध्वगो वक्षःकक्षामन्यागलाश्रितः ॥
नानाप्रकारान् कुरुते ग्रन्थीन् सा त्वपची मता ।
अपची कण्ठमन्यासु कक्षावंक्षणसन्धिषु ॥
गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥ इति ।

अथ गण्डमालायां सुरवारुण्यादियोगः—

**सुरवारुण्या मूलं गोमूत्रयुतं महेन्द्रकन्या च ।**
**अपकरोति गण्डमालां पित्तं श्लथनं च परिघृष्टम् ॥ १३९ ॥**

इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण और महेन्द्रकन्या अर्थात् श्वेतापराजिता का चूर्ण इन दोनों को समभाग लेकर अथवा पृथक् २ लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर प्रलेप करने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है। अथवा गोरोचन को जल से पीस कर लेप करने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है। कहीं २ पर "पित्त" के स्थान पर "पीतम्" ऐसा पाठान्तर मिलता है, इस लिये इस योग को लेप तथा पीने के लिये प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है ॥ १३९ ॥

अथ गण्डमालायामर्कक्षीरादिलेपः—

**अर्कक्षीरजयापुष्पतैललाक्षारसैः समैः ।**
**गण्डमाला शमं याति प्रलिप्ता सप्तभिर्दिनैः ॥ १४० ॥**

आक का दुग्ध, जयन्ती के पुष्प, तिल का तैल और लाख ( लाक्षा ) का रस इन्हें सम भाग लेकर पत्थर पर पीस कर सात दिन तक प्रलेप करते रहने से गण्डमाला रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १४० ॥

अथ अपच्यां गिरिकर्णिकाप्रयोगः—

**पुष्ये गृहीतं गिरिकर्णिकाया मूलं सिताया गलके निबद्धम् ।**
**गव्येन लीढं यदि वा घृतेन निहन्ति घोरामपचीं तदेव ॥ १४१ ॥**

पुष्य नक्षत्र में श्वेत अपराजिता की जड़ को उखाड़ कर गले में बांधे रहने से तथा उस के चूर्ण को गाय के घृत में मिला कर सेवन करते रहने से भयङ्कर अपची रोग दूर हो जाता है ॥ १४१ ॥

अथ गण्डमालायां छुछुन्दरीतैलम्—

**छुछुन्दरीसाधिततैललिप्ता त्रिभिर्दिनैर्नश्यति गण्डमाला ॥ १४२ ॥**

छुछुन्दरी नामक प्राणी अथवा तन्नामक काष्ठौषधि विशेष का कल्क १ पल तथा तैल ४ पल और जल १६ पल लेकर सब को एकत्र कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के मन्द २ अग्नि के द्वारा पाक करना चाहिए । फिर सिद्ध तैल को छान कर शीशी में भर देवें । इस तैल के तीन दिन तक लगाने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है ॥ १४२ ॥

अथ गण्डमालायां सहदेवीप्रयोगः—

**मूलिका सहदेव्युत्था रवौ ग्राह्याऽथ धारिता ।**
**गण्डमालाहरा कर्णे महादेवेन भाषिता ॥ १४३ ॥**

रविवार के दिन सहदेवी (पीतपुष्पवाली बला का भेद) की जड़ उखाड़ कर कान के मूल प्रदेश ( कर्णमूल) में बांधने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है। यह योग अवश्य ही गण्डमाला को दूर करता है इस में सन्देह नहीं है। यह शङ्कर भगवान् का बताया हुआ योग है ॥ १४३ ॥

अथ अपच्यादौ गुञ्जादिलेपः—

**गुञ्जाटङ्कणशिग्रुमूलरजनीशम्पाकभल्लातकैः**
**स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैन्धववचाकुष्ठाऽभयालाङ्गली ।**
**वर्षाभूशरभूशिरीषलवणव्योषाश्वमारा विषम्**
**गोमूत्रैः शमयेद्विलिप्तमपचीग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदम् ॥ १४४ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये कर्णरोग-नासा-रोग-मुखरोग-गलरोग-मुखपाक-मुखच्छाया-जिह्वा-दन्त-कंठरोग-गंड-माला-शिरोरोग-यूका-दारुण-केशरोग-व्रणरोग-भ्रमरोग-भगन्दरा-पची-ग्रन्थ्यर्बुद-कालस्फोटादि-चिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

शुञ्जा ( घुंघची ) की जड़ का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, सहजने की जड़ की छाल का चूर्ण, हरिद्रा की गांठ का चूर्ण, अमलतास की फली के सूखे हुए गूदे का चूर्ण, शुद्ध भिलावों का चूर्ण, थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, चित्रक की जड़ का चूर्ण, करञ्ज की जड़ या बीजों का चूर्ण, सैन्धव लवण, वचा का चूर्ण, कूठ का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, कलिहारी की जड़ का चूर्ण, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण, शरपुङ्खा की जड़ क चूर्ण, सिरस की छाल का चूर्ण, समुद्र लवण, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, कनेर की जड़ का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण इन सबको समभाग लेकर खरख में गोमूत्र के साथ एकत्र पीसकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से थोड़ा सा चूर्ण लेकर गोमूत्र में मिलाके प्रतिदिन प्रलेप करने से अपची, ग्रन्थि, अर्बुद और श्लीपद आदि रोग अवश्य ही नष्ट होजाते हैं॥१४४॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां कर्णरोग-नासारोग-मुखरोग-गलरोग-मुखपाक-मुखच्छाया-जिह्वा-दन्त-कण्ठरोग-गण्डमाला-शिरोरोग-यूका-दारुण-व्रण-रोग-केशरोग-भगनरोग-भगन्दरापची-गन्थ्यर्बुद-कालस्फोटादिचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।

## पञ्चविंशोऽध्यायः।

अथ क्षुद्ररोगाणां नामानि

व्यङ्गः कच्छपनीलिकाकुनखविद्धोत्कोठकोठालसैः
कक्षारुद्धगुदप्रसुप्तिविवृताविस्फोटवल्मीकरुक्।
विस्फः स्यात्कदराऽजगल्लिजतुमण्यन्धालजीराजिकाः
क्षुद्रा लाञ्छनशर्करेति च यवप्रख्याऽग्निरोहिण्यपि॥ १॥
जालाश्मगर्दभविदारिमसूरिकाभिः
सत्पद्मकण्टकरुजा सहगर्दभी च।
स्याच्छुर्करार्बुदमषाननदूषिकैश्च
गण्डाह्वया पनसिका त्विरिवेल्लिकेति॥ २॥

व्यङ्ग, कच्छप, नीलिका, कुनख, विद्ध, उत्कोठ, कोठ, अलस, कक्षा, रुद्धगुद

( सन्निरुद्ध गुद ), प्रसुप्ति, विवृता, विस्फोटक, वल्मीक, विस्फ ( चिप्प ), कदर, अजगल्ली, जतुमणि, अन्धालजी, राजिका, क्षुद्रा, लाञ्छन ( न्यच्छ ), शर्करा, यवप्रख्या, अग्निरोहिणी, जालगर्दभ, अश्मगर्दभ (पाषाणगर्दभ), विदारी, मसूरिका, पद्मकण्टक, गर्दभी, शर्कराबुंद, मषक, आननदूषिका ( मुखदूषिका ), गण्डाह्वया ( गन्धाह्वया गन्धनामा वा ), पनसिका और इरिवेल्लिका ये क्षुद्ररोग हैं ॥ १–२ ॥

**विमर्शः**—सुश्रुत में ४४ क्षुद्ररोग गिनाये गये हैं यथा—अजगल्लिका, यवप्रख्या, अन्धालजी, विवृता, कच्छपिका, वल्मीक, इन्द्रवृद्धा, पनसिका, पाषाणगर्दभ, जालगर्दभ, कक्षा, विस्फोटक, अग्निरोहिणी, चिप्प, कुनख, अनुशयी, विदारिका, शर्करार्बुद, पामा, विचर्चिका, रकसा, पाददारिका, कदर, अलस, इन्द्रलुप्त, दारुणक, अर्शंषिका, पलित, मसूरिकाः, यौवनपिड़िका, पद्मिनीकण्टक, जतुमणि, मशक, चर्मकील, तिलकालक, न्यच्छ, व्यङ्ग, परिवर्तिका, अवपाटिका, निरुद्धप्रकश, सन्निरुद्धगुद, अहिपूतन, वृषणकच्छू, गुदभ्रंश ।

अथैषां सलक्षणचिकित्स—

अथाजगल्लिकाया लक्षणं चिकित्सा च—

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता ( ग्रन्थिसन्निभा ) नीरुजा मुद्गसन्निभा ।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

चिकित्सा—

तत्राजगल्लिकमामां जलौकाभिरुपाचरेत्।शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चाऽऽलेपयेन्मुहुः॥१॥
कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् । नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः ॥
किमाश्रयं विपच्याशु प्रशाम्यत्यजगल्लिकाः ॥ २ ॥
वृषमूलविषालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम् ॥ ३ ॥
श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकल्कैरपि विलेपयेत् । पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥४॥

अथ यवप्रख्याया लक्षणं चिकित्सा च—

यवाकाराः सुकठिना ग्रन्थिता मांससंश्रिता। पिड़का श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते॥१॥

चिकित्सा—

पूर्वं पिडकास्थाने स्वेदनं कृत्वा मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत् ।
परिपाकगतां भित्त्वा व्रणवत् समुपाचरेत् ॥ १ ॥

अथान्धालज्या लक्षणं चिकित्सा च—

अनामवक्त्रां पिड़कामुन्नतां परिमण्डलाम्।अन्धालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम्॥१॥

चिकित्सा—

पूर्वं स्वेदनकर्म ततोऽवशेषं कर्म यवप्रख्येव कुर्यात् ।

विवृताया लक्षणम्—

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्।
विवृतामिति तां विद्यात् पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥ १ ॥

चिकित्सा—

पूर्वं स्वेदनकर्म कृत्वा। पाके सति पूर्यं निष्काश्य व्रणं काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमापपर्णीमुद्गपर्णीमेदामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुपाक्षीरोपयुक्तप्रपौण्डरीकवृद्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकञ्चेति मधुरौषधसिद्धघृतेन रोपयेत्।

अथ कच्छप्या लक्षणम्—

ग्रन्थयः पञ्च षट् वा दारुणाःकच्छपोन्नताः।
कफानिलाभ्यामुद्भूतां विद्यात्तां कच्छपीमिति ॥ १ ॥

चिकित्सा—

मनःशिलादिकल्केन पाकं कृत्वा विमिश्र च व्रणवदुपाचरेत् ॥

अथ वल्मीकस्य लक्षणम्—

पाणिपादतले सन्धौ ग्रीवायामूर्ध्वजत्रुणि। ग्रन्थिर्वल्मीकवद्यस्तु स्रावैः सम्पूयते शनैः ॥१॥
तोदक्लेदकरीदाहकण्डूमद्भिरणैर्वृतः। व्याधिर्वल्मीक इत्येषः कफपित्तानिलोद्भवः ॥२॥

चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकंक्षारान्निभ्यांप्रसाधयेत्। मनःशिलालमल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः१
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्। वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुछिद्रं बहुव्रणम् ॥२॥

पूर्वं शस्त्रेण वल्मीकमुत्पाट्य क्षाराग्निकर्मणा व्रणस्थं पूर्यं प्रसाधयेत्। ततश्चमनःशिलादीनां कल्कैर्निम्बबीजभवं तैलं यथाविधि साधयित्वा व्रणं रोपयेत्। अथ तैलसाधनविधि र्यथा—द्विप्रस्थमितं निम्बबीजतैलं, मनःशिलादीनां द्रव्यदि पिष्टं कल्कं प्रस्थार्द्धमितं, पाकार्थं जलञ्चाष्टप्रस्थमितं सर्वं कटाहे निक्षिप्य यथाविधिपचेत्। अयं विधिः पक्ववल्मीके कर्तव्यो यथोक्तं हि—

पक्वं वा तद्धि विज्ञाय गतोः सर्वां यथाक्रमम्। अभिज्ञाय ततश्छित्वा प्रदहेन्मतिमान् भिषक् १

इत्यादि।

अपक्वस्य तु पूर्वं शोधनरूक्षमोक्षणलेपैरुपचारः प्रकर्तव्यः।

यथा प्रोक्तं च—

वल्मीकन्तु भवेद्यस्य नातिवृद्धं नमर्मजम्। तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥१॥
कुलत्थिकाया मूलैश्चदन्तीमूलैस्तथैव च। आरेवतस्य मूलैश्च गुडूच्या लक्ष्मणेन च ॥२॥
श्यामामूलैः सपललैः सक्तुभिश्चैः प्रलेपयेत्। सुस्निग्धं चैव सुस्वेद्यं च भिषक् तमुपनाहयेत्३

अथेन्द्रवृद्धलक्षणम्—

पद्मपुष्करवन्मध्ये पिडकाभिः समावृताम्। इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् १

अथेन्द्रवृद्धायाश्चिकित्सा—

अत्र हि पक्वपिडिकानां शोधनं कृत्वा क्षारकाकोल्यादिगणसिद्धसर्षपा रोपणं कार्यम् ॥१॥

अथ पनसिकालक्षणम्—

व्रणोपरिस्मन्ताद्वापृष्ठे वा पिड़कोग्रस्क। शालूकवत्पनसिकांतां विद्याच्छ्लेष्मवातजाम्॥१॥

अथ पनसिकायाश्चिकित्सा—

पूर्वं स्वेदनकर्म पश्चान्मनःशिलादिकल्कलेपं, पक्वञ्च व्रणवदुपाचरेत् ॥

अथ पाषाणगर्दभलक्षणम्—

हनुसन्धौ समुद्भूतशोफमल्परुजं स्थिरम्। पाषाणगर्दभं विद्याद्वलासपवनात्मकम् ॥१॥

चिकित्सा—

सुदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्। कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ १ ॥

अथ जालगर्दभलक्षणमाह—

विसर्पवत् सर्पति यो दाहज्वरकरस्तनुः। अपाकः श्वयथुः पित्तात् स ज्ञेयो जालगर्दभः॥१॥

चिकित्सा—

नीलीपटोलमूलाभ्यां रात्र्याभ्यां लेपनं हितम्। जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम्॥१॥

अथेरिवेल्लिकालक्षणम्—

पिटिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तमुग्ररुजाज्वराम्। सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवल्लिकाम्॥१॥

अस्याश्चिकित्सा जालगर्दभवत्।

अथ कक्षालक्षणम्—

बाहुपार्श्वसक्थासु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्। पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत्॥ एकामेवं विधां दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसन्निभाम्। स्वगतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते॥

चिकित्सा—

कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत चिकित्सकः। पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥१॥

अथ विस्फोटकलक्षणम्—

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्ततः।

क्वचित् सर्वत्र वा देहे स्मृता विस्फोटका इति ॥ चिकित्सा तु कक्षोक्तां तथा पूर्वोक्तान्च कुर्यात्

अग्निरोहिणीलक्षणमाह—

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः। अन्तर्दाहज्वरकरा दोषपावकसन्निभाः॥१॥

सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम्।

तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सन्निपातजाम् ॥ २ ॥

चिकित्सा—

पित्तविसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम्। रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरक्षणम् ॥

शरीरस्य च संशुद्धि तान्तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ १ ॥

अथ चिप्यकुनखयोर्लक्षणं चिकित्सा च—

रक्तमांसमधिष्ठाय पित्तं वातश्च वेदनाम्। करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत्॥१॥
तदेव क्षतरोगाख्यं तथोपनखमित्यपि। अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रक्षोऽसितः खरः॥
भवेत्तं कुनखं विद्यात् कुलीरमितिसंज्ञितम्॥ २॥

अथेतयोश्चिकित्सा—

चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत्। गतोष्माणमथैनन्तु सेचयेदुष्णवारिणा॥१॥
शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्रावयेत्ततः। व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तु विचक्षणः॥२॥
स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रेकृत्वाऽऽयसेऽभयाम्। घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः३
कादम्बाः रसभिः षड्भिः कोमलैः परिवेष्टितः। कड्डुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशुप्रशाम्यति॥४॥
श्लेष्मविद्रधिवल्लेन कुनखं समुपाचरेत्। नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति॥५॥
कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च॥
दाडिमकुसुमयवासैरभया सुश्लक्ष्णचूर्णिता लेपात्।
नखकोटिपूतीभावं शमयति शूलञ्च तत्क्षणादेव॥ ६॥

अथानुशयीलक्षणं चिकित्सा च—

गम्भीरामल्पसंरम्भां सर्वणामुपरिस्थिताम्। कफादन्तःप्रपाकां तां विद्यादनुशयीं भिषक्॥
उपाचरेदनुशयीं श्लेष्मविद्रधिवद्भिषक्॥ १॥

अथ विदारिकाया लक्षणं चिकित्सा च—

विदारीकन्दवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसन्धिषु। रक्तां विदारिकां विद्यात् सर्वजां सर्वलक्षणाम्॥१॥

चिकित्सा—

व्रणविदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम्। पाटनञ्च विपक्वायां ततो व्रणविधिः स्मृतः॥१॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः॥ २॥

अथ शर्कराबुर्दलक्षणं यथा—

प्राप्य मांसं सिरास्नायूः श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः।
ग्रन्थिं कुर्वन्ति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिर्वसानिभम्॥ १॥
स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः। मांसं विशोष्य ग्रन्थितां शर्करां जनयेत् पुनः॥२॥
दुर्गन्धं विलक्षमत्यर्थं नानावर्णं ततः सिराः। स्रवन्ति सहसा रक्तं तद्विद्याच्छर्करार्बुदम्॥३॥

अथास्य चिकित्सा—

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम्।

पामाविचर्चिकारकसानां कुष्ठाधिकारचिकित्साव्याख्यायां व्याख्या कृतमतस्ततो ज्ञेयम्।

अथ पाददारिकाया लक्षणं चिकित्सा च—

परिक्लमणशालस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः। पादयोः कुरुते दारीं पाददारीं तमादिशेत्॥१॥

अथ चिकित्सा—

पाददार्यां शिरां प्राज्ञोवेधयेत्तलशोधिनीम्।स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥१॥
मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः । सर्जोत्थविन्मूत्रवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम् ।
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने ॥ २ ॥

उपोदिकाद्यं तलम्—

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचकर्कारुकैर्वारुकमस्मतोयैः ।
तैलं विपक्वं लवणेन युक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥

इत्युपोदिकाद्यं तैलम् ।

सैन्धवं चन्दनं शालं मधु सर्पिः पुरो गुडः ।
गैरिका स्फुटितौ पादौ लिप्तौ स्तः पङ्कजोपमौ ।
गुडलवणघृतं चेत्तिन्तिडीयुक्तमेतत् द्विगुणमिह विदध्यात् मूत्रमेकत्र कृत्वा ।
कतिचिदथ दिनानि किञ्चिदाशोष्य लेपात् । स्फुटितपदतलं स्यात्पद्मपत्राभमाशु ॥

अथ कदरस्य लक्षणं चिकित्सा च

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ।
ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरस्तु तत् ॥ १ ॥
मेदोरक्तानुगैश्चैव दोषैर्वा जायते नृणाम् ॥
सकीलकठिनो ग्रन्थिर्निम्नमध्योन्नतोऽपिवा।कोलमात्रः सरुक् स्रावी जायते कदरस्तु सः

अथ कदरचिकित्सा—

दहेत् कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ।
अर्थात् शस्त्रादिना कीलकमुत्पाट्य तप्ततैलेन वह्निना वा सोत्सेधं स्थानं दहेत् ।

अथालसस्य लक्षणं चिकित्सा च—

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ । दुष्टरक्तमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत्॥१॥

चिकित्सा—

पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन लेपनं त्वलसे हितम्। पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः॥१॥
क्षुद्रस्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत । ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥२॥
करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु । रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हितः ॥३॥
एतत् सर्वं समं सञ्चूर्ण्य मधुना संमिश्र्यालसे लेपनं हितम् ।

अथेन्द्रलुप्तस्य लक्षणं यथा—

रोमकूपानुगं पित्तंवातेन सह मूर्च्छितम्।प्रच्यावयति रोमाणि ततःश्लेष्मा सशोणितः॥१॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः। तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रूक्षयेति च विभाव्यते॥२॥

अथास्य चिकित्सा—

इन्द्रलुप्ते सिरां मूर्ध्नि स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्। कल्कैः समरिचौद्राक्षिछलाकासीसतुत्थकैः
कुष्ठत्वादारुकल्कैर्लेपनं वा प्रशस्यते। प्रक्षुण्णिस्त्वाऽवगाढं वा गुञ्जाकल्कैः मुहुर्मुहुः ॥२॥
लेपयेदुपशान्त्यर्थं कुर्याद्वापि रसाञ्जनम्। मालतीकरवीराग्निनक्तमालविभावितम्।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ॥ ३ ॥
क्षीरात् समार्कवरसात् द्विप्रस्थे मधुकात्पले।तैलस्य कुडवं पक्त्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥४॥

अथ दारुणकस्य लक्षणम्—

दारुणा कण्डरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते। कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकन्तु तम् ॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

दुग्धेन खासजं बीजं प्रलेपाद्दारुणं हरेत्। कण्टकारी फलरसौ स्तुल्यं तैलं विपाचयेत् ॥
जपापुष्पद्रवैर्वाथ तल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ १ ॥
आम्रबीजस्य चूर्णन्तु शिवाचूर्णं समद्वयम्। दुग्धपिष्टप्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम् ॥२॥

अथारुंषिकाया लक्षणम्—

अरुंषि बहुवक्त्राणि बहुकण्डूनि मूर्ध्नि तु। कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरुंषिकाम् ॥१॥

अथास्याश्चिकित्सा—

अरुंषिकां हृते रक्ते सेचयेन्निम्बवारिणा। दिह्यात् सौन्धवयुक्तेन वाजिविड्वरतेन तु ॥१॥
हरितालनिशानिम्बकल्कैर्वा सापटोलजैः। यष्टीनीलोत्पलैरण्डमार्कवैर्वा प्रलेपयेत् ॥२॥
नीलोत्पलस्य किञ्जल्कौ धात्रीफलसमन्वितः। यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरुंषिकाम् ॥३ ॥

अथ हरिद्रार्थं तैलम्—

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः। घृतं तैलमरुंषीघ्नं सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥१॥
खदिरारिष्टजम्बूनां स्वरसैर्वा मूत्रसंयुतैः।कुष्ठत्वक्सौन्धवं वा लेपाद्धन्यादरुंषिकाम् ॥२॥

अथ पलितस्य लक्षणं यथा—

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः। पित्तञ्च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

अयोरजो भृङ्गराजस्वरिकला कृष्णमृत्तिका। स्थितमिश्रं रसे मार्कवलेपनात् पलितं जयेत् ॥१॥
धात्रीफलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम्। पञ्चाम्रमज्जे लोहस्य कर्षांकं च प्रदीयते ॥२॥
पिष्ट्वा लौहमये भाण्डे स्थापयेदुषितं निशि। लेपोऽयं हन्ति चिरादकालपलितं महत् ॥३॥

अथ मसूरिकाया लक्षणम्—

दाहज्वररुजावन्त स्ताम्रास्फोटाः सपीतकाः।मात्रेषु वर्त्मने वान्तर्विज्ञेया मसूरिकाः ॥१॥

मसूरिकाचिकित्सा पूर्वमुक्ता।

अथ यौवनपिड़काया लक्षणम्—

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः। यूवानपिड़का यूनां विज्ञेया मुखदूषकाः ॥१॥

अथास्थादिचिकित्सा—

प्रथमं शिरावेधं कृत्वा ततश्च लेपादिकर्म कुर्यात् ।

जातीफलं चन्दनञ्च मरिचैः सह पेषितम् । मुखलेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥१॥

अथ पद्मिनीकण्टकलक्षणमाह—

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डुमत्पाण्डुमण्डलम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

पद्मिनीकण्टके रोगेच्छर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् ॥१॥

अथ जतुमणिलक्षणम्—

नीरुजं सममुत्सन्नं मण्डलं कफरक्तजम् । सहजं रक्तमोषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥१॥

चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य क्षाराग्निभ्यां दहेत् ।

अथ मषकलक्षणम्—

अवेदनं स्थिरं चैव यस्य गात्रेषु दृश्यते। माषवत् कृष्णमुत्सन्नमलिनात्मशकं वदेत्॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य क्षाराग्निभ्यां दहेत् ।

अथ तिलकालकलक्षणम्—

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि चावातपित्तकफोद्रेकात्तान् विद्यात्तिलकालकान्१

चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य मतिमान् क्षाराग्निभ्यां दहेत्ततः ।

अथ न्यच्छस्य लक्षणम्—

मण्डलं महदल्पं वा श्यामं वा यदि वा सितम्।सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥१॥

अथ व्यङ्गस्य लक्षणम्—

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः । सहसा मुखमागत्य मण्डलं विसृजत्यतः ॥

नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत् ॥ १ ॥

अथ तयोश्चिकित्सा—

त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिशपा चैभिः ।

उद्वर्तनं विरावितं न्यच्छव्यङ्गापहं सिद्धम् ॥ २ ॥

व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ।

वटाङ्कुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनाः ॥ २ ॥

अथ परिवर्तिकालक्षणम्—

मर्दनात् पाडनाद्वापि तथैवात्यभिघातनः । मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥१॥

तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्म प्रतिनिवर्तते । मणेरधस्तात् कोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥२॥

स्वेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति क्वचित् । मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् ॥
सकण्डूः कठिनाचापि श्लैष्मिकश्लेष्मसमुत्थिता ॥ ३ ॥

अथास्या श्चिकित्सा—

स्वेदोपनाहौ परिवर्तिकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात् ।
प्रवेशयेच्चर्मशनैः प्रविष्टे मांसैः सुपिष्टै रुपनाहयेत्तम् ॥ १ ॥

अथवा—

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः शाल्वणादिभिः ॥ १ ॥
ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म वेशयेत् पीडयेन्मणीम् ।
प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहयेत् ॥
दद्याद्वातहरान् वस्तीन् स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥ २ ॥

अथावपाटिकालक्षणम्—

अल्पीयः खां ( अल्पीयस्यां ) यदा हर्षाद् बालां गच्छेत् स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्तितं बलात् ॥ १ ॥
मदनात् पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः ।
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ २ ॥

अथास्याश्चिकित्सा—

स्नेहस्वेदक्रिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ १ ॥

अथ निरुद्धप्रकाशस्य लक्षणम्—

चाठोपसृष्टमेवन्तु चर्म संश्रयते मणिम् । मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥१॥
निरुद्धप्रकाशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्तते जन्तो र्मणि र्न च विदीर्यते ॥
निरुद्धप्रकाशं विद्यात् सरुजं वातसम्भवम् ॥ २ ॥

अथास्य चिकित्सा—

निरुद्धप्रकाशे नाडीं लौहीमुभयतो मुखीम् । दार्वीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत्॥१॥
परिषिञ्चेद्घृतं मज्जां क्षिपुमारवराहयोः । चुक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥२॥
त्र्यहात् त्र्यहात् स्थूलतरां सम्यक् नाडीं प्रवेशयेत् ।
स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नञ्च भोजयेत् ॥
भित्त्वा वा सीवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ३ ॥

अथ सन्निरुद्धगुदलक्षणम्—

वेगसन्धारणाद्वायु र्विहतो गुदमाश्रितः । निरुणद्धि महत् स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥१॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति । सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात् सुदुस्तरम्॥२

अथास्य चिकित्सा—

स्निग्धरूक्षगुदे तैलैः सेको वातहरैः हितः। तथानिरूद्धप्रकशक्रिया कार्या सदा हिता ॥ १ ॥

अथाहिपूतनलक्षणम्—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपानेशिशोर्भवेत्। स्विन्नस्यास्राव्यमानस्य कण्डूरक्तकफोद्भवः॥१॥
कण्डूयनात्ततःक्षिप्रंस्फोटाः स्रावश्चजायते। एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥२॥

अथास्य चिकित्सा—

तत्र संशोधनैःपूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत्। त्रिफलाखदिरक्वाथे व्रणानां क्षालनं हितम्॥१॥
कट्वङ्गसौवीरयष्ट्याह्वलोपः कार्योऽहिपूतने। पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम्।
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ २ ॥

अथ वृषणकच्छूलक्षणम्—

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः। यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात् कण्डूं जनयते तदा ॥१॥
कण्डूयनात्ततःक्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते। प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम्॥२॥

चिकित्सा—

सर्जाम्बुकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः।
उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ १ ॥
भिषग् वृषणकच्छूं तु चिकित्सेत्पामरोगवत्। अहिपूतनानिर्दिष्टक्रियया पिच तां हरेत्॥२॥
कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककण्डूंव्हिपूतने ॥ ३ ॥

अथ गुदभ्रंशस्य लक्षणमाह—

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः। रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत्॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत्। प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्गव्यसच्छिद्रचर्मणा ॥१॥
पक्षिण्या.कोमलं पत्रं यःखादेच्छकरान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः॥२॥
मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत्। स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥३॥
चाङ्गेरीकोलद्रव्याम्लनागरक्षारसंयुतम्। घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४ ॥
वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम्। तक्रेण शीलयेत्तू पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम्॥५॥

अथ मूषकतैलम्—

मूषकान् दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम्। तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम्॥१॥
अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति। विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगन्दराः॥२॥
गुदं च गव्यपयसा वेशयेदविशङ्कितः। दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः॥३॥
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ४ ॥

अथ क्षुद्ररोगेषु पथ्यापथ्यविधिः—

क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारागानुकारिषु। दोषान् दूष्यानवस्थाञ्चनिरीक्ष्य मतिमान् भिषक्॥१॥

तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः। यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥२

इति सलक्षणपथ्यापथ्यक्षुद्ररोगचिकित्साप्रक्षिप्ता।

अथ क्षुद्ररोगे पर्पटीप्रयोगविधिः—

**सर्पिषा निम्बचूर्णेन प्रयुक्ता पर्पटी हरेत्।**
**मसूरिकाःक्षुद्ररोगानन्यानपि च दुस्तरान्॥ ३ ॥**

पूर्व में कहे हुए पर्पटीरस को यथोचित मात्रा से निम्ब के पञ्चाङ्ग के चूर्ण और घृत के साथ सेवन करने से मसूरिका तथा अन्य प्रकार के समग्र दुःसाध्य क्षुद्ररोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ व्यङ्गे शशरुधिरप्रयोगः; जातीफलप्रयोगश्च—

**तत्कालशस्त्रप्रहतः शशो यस्तस्याऽसृजा नश्यति लिप्यमानम्।**
**व्यङ्गं मुखे जातिफलस्य बाह्यत्वचाऽथवा सन्ततमेव लिप्तम्। ४॥**

तुरन्त मारे हुए खरगोश के रक्त को लेकर मुख पर प्रलेप करने से या मर्दन करने से व्यङ्ग नष्ट हो जाता है अथवा जायफल के बाहरी या ऊपर के छिलकों को जल से पत्थर पर पीस कर प्रलेप करने से व्यङ्ग नष्ट हो जाता है ॥४॥

अथ व्यङ्गे इङ्गुदीमज्जप्रयोगः—

**इङ्गुदीफलसमुद्भवमज्जा पेषिताऽतिशिशिरेण जलेन।**
**एकविंशतिदिनप्रविलिप्ता व्यङ्गमाननभवं परिमार्ष्टि ॥५॥**

इङ्गुदी ( हिङ्गोट ) के फलों को गिरी की अत्यन्त शीतल जल के साथ पीस कर प्रतिदिन मुख पर प्रलेप या मर्दन करना चाहिए। इस प्रकार २१ दिन तक प्रलेप करने से मुख का व्यङ्ग ( झांई ) रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ कुनखे स्नुहीक्षीरादिप्रलेपः—

**उद्धृत्य कुनखं क्षीरं स्नुक्पर्णीटङ्कणं समम्।**
**सम्यङ् निरुद्धदाहं च मूले कृत्वा नखी भवेत्॥ ६ ॥**

कुनख अर्थात् सड़े गले तथा काले नख को शस्त्र से उखाड़ कर वहां के स्थान को तथा नख की जड़ को अग्निकर्म की विधि से दग्ध करके थूहर का दुग्ध, सप्तपर्ण का दुग्ध और शुद्ध सुहागे को सम भाग लेकर पत्थर पर अच्छी तरह पीस के प्रलेप करना चाहिए। इस तरह ३ या ४ दिन प्रलेप करने से खराब नख के स्थान पर सुन्दर नख निकल आता है ॥ ६ ॥

अथ कुनखे अभयाप्रयोगः—

**व्रणपूतिपूयजुष्टं नखविवरं मङ्क्षु रोपयत्यभया ।**
**नानाविधैः किमेतैरास्फोतारविकुरण्टकक्षीरैः ॥ ७ ॥**

केवल हरड़ को पानी के साथ घिस कर व्रण के दुर्गन्धित पूय ( मवाद ) से युक्त नख के विवर में अर्थात् नाखून में व्रण होकर दुर्गन्धित पूय निकलता हो तथा छिद्र भी हो गया हो ऐसे रोग में लगाने से वह शीघ्र ही उसे भर देती है तथा अन्य प्रकार के आस्फोता, आक और कुरण्ट आदि के क्षीर से क्या प्रयोजन । अर्थात् इन सब की अपेक्षा दुर्गन्धित व्रण को शुद्ध कर के भरने में अभया का प्रलेप अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

अथ कुनखे कुष्ठादिप्रलेपप्रयोगः—

**सकुष्ठं जीरकं तोयैः पिष्ट्वा लेपेन नाशयेत् ॥ ८ ॥**

कूठ और जीरे को समभाग लेकर शीतल जल में पीस के कल्क बना लेवें । इस का प्रलेप करने से कुनखादिक नख का विकार नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अथ कुनखे पुत्रजीवप्रयोगः

**पुत्रजीवस्य वा मज्जां तोयैः पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ ९ ॥**

अथवा जिया पोते की मज्जा के चूर्ण को जल में पीस कर प्रलेप करने से भी कुनखरोग में लाभ होता है ॥ ९ ॥

अथ कक्षाग्रन्थौ शिग्रुप्रयोगः—

**शिग्रुमूलं निशातोयैः कक्षाग्रन्थिहरं लिपेत् ॥ १० ॥**

शिग्रु ( सहजन ) की जड़ के चूर्ण को हल्दी के स्वरस या क्वाथ के साथ पीस कर प्रलेप करने से कक्षा और अन्य ग्रन्थि रोग नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

अथ कक्षाग्रन्थौ विषादिलेपः—

**विषं पुनर्नवामूलं जललेपेन तं जयेत् ॥ ११ ॥**

शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण और पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण दोनों को समभाग लेकर जल में पीस के प्रलेप करने से कक्षा की ग्रन्थि अथवा कक्षा और अन्यविध ग्रन्थिरोग नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

अथ स्तनविद्रधौ क्रियाक्रमः—

**सर्वेषां स्तनरोगाणां रक्तमोक्षः प्रशस्यते ।**

**पूयपक्वः स्तनो यः स्याल्लेपस्तस्यावपाटने ॥ १२ ॥**

सर्व प्रकार के सब रोगों में वहां के दूषित रक्त को जलौकावचारण या शिरामोक्ष के द्वारा निकाल देना श्रेष्ठ है। यदि स्तन में पाक हो कर पूय पड़ गया हो तो आगे कही हुई उष्ण औषधियों का प्रलेप करके पके हुए फोड़े को फोड़ देना चाहिए तथा मन्दोष्ण जलमें शुद्ध रुई को भींगो कर धीरे २ धोना चाहिए। इस तरह पूय निकाल कर व्रण को साफ कर देना चाहिए ॥ १२ ॥

अथ स्तनविद्रधिस्फोटने एकवीरप्रयोगः—

**एकवीरस्य मूलं तु आजमूत्रेण लेपयेत्।**
**तत्क्षणात्स्फुटते पक्वं शस्त्रेर्वा स्फोटयेद्भिषक् ॥ १३ ॥**

एकवीर नामक वृक्षकी जड या बांझ ककोड़े की जड़ को बकरी के मूत्र में पीस कर प्रलेप करने से पका हुआ फोड़ा ( विद्रधि ) फूट जाता है। अथवा विद्रधि को शुद्धशस्त्र से खोल कर पूय को निकाल देनी चाहिए तथा उष्ण जल से धोकर शोधक औषधि ( निम्बपत्रचूर्णकल्क ) लगा देनी चाहिए ॥ १३ ॥

अथ स्तनविद्रधिरोपणे यष्ट्यादिचूर्णम्—

**यष्टीनिम्बहरिद्रा च निर्गुण्डी धातकी समम्।**
**चूर्णं स्तनव्रणे देयं रोपणं कुरुते हितम् ॥ १४ ॥**

मुलेठी का चूर्ण, निम्ब के पञ्चाङ्ग का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण, निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण और धाय के पुष्प का चूर्ण इन सब को समभाग लेकर एकत्र खरल में पीस के शीशी में रख देवें। इस चूर्ण को पूय आदि निकल जाने पर शुद्ध हुए स्तन व्रण में भर कर पट्ट बन्धन कर देना चाहिए। यह योग स्तनव्रण को जल्दी ही भर देता है ॥ १४ ॥

अथ स्तनविद्रधिरोपणेदारुवर्तिः—

**मध्वाज्यैर्देवदारुं च पिष्ट्वा वर्तिं प्रलेपयेत्।**
**पूयपक्वे स्नेत क्षिप्त्वा रोपणं कुरुते क्षणात् ॥ १५ ॥**

देवदारु के चूर्ण को शहद और घृत के साथ खरल में घोट कर वर्ति बना लेनी चाहिए। यह वर्ति पके हुए व्रण का फूट कर पूय निकल जाने के बाद व्रण में रखने से उसे अच्छी तरह भर देती है ॥ १५ ॥

अथ लिङ्गरोगचिकित्सा—

तत्रादौबोलप्रयोगः—

**लिङ्गव्याधौ लोहितं स्रावयित्वा**
**पश्चाद्बोलं भक्षयेत्तस्य नुत्यै ॥ १६ ॥**

मनुष्य के जननेन्द्रिय में शोथ हो कर पाक हो गया हो या उस में अन्य किसी प्रकार की उपदंश आदि व्याधि हो तब प्रथम वहां का रक्त मोक्षण करना चाहिए तथा त्रिफलादि क्वाथ से जननेन्द्रिय का प्रक्षालन करना चाहिए। तथा भीतरी सेवन के लिये बोल के चूर्ण का सेवन करने से लिङ्गव्याधि नष्ट हो जाती है॥१६॥

अथ लिङ्गपाके उदुम्बरादिक्षालनम्—

**उदुम्बरवटाश्वत्थसाम्रजम्बूत्वचः श्रृतम्।**
**जलैः क्वाथं च तेनैव क्षालयेल्लिङ्गपाकनुत् ॥ १७ ॥**

उदुम्बर ( गूलर ), बट ( बरगद ), अश्वत्थ ( पीपल ), आम और जामून इन सब की छाल का समभाग चूर्ण लेकर अठगुने जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश शेष रख के छान लेवें। इस क्वाथ से जननेन्द्रिय को बार २ प्रक्षालित करते रहने से उसका पाक आदि रोग नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ लिङ्गपाके जीरकप्रयोगः—

**कुमारीरससम्पिष्टं जीरकं लेपयेद्भिषक्।**
**तेन दाहश्च पाकश्च शममाप्नोति निश्चितम् ॥ १८ ॥**

जीरे के चूर्ण को घृतकुमारी के स्वरस के साथ पीस कर प्रलेप करने से लिङ्ग की जलन, पाक तथा पीड़ा निश्चय ही दूर हो जाती है ॥ १८ ॥

अथ लिङ्गपाके महाशङ्खप्रयोगः—

**महाशङ्खं जलैर्घृष्ट्वा तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥**

अथवा बड़े शङ्ख की नाभि या मनुष्य की शङ्खास्थि (टेम्पोरल बोन) को जलके साथ घिस कर लिङ्ग पर लेप करने से उसकी समस्त व्याधियां नष्ट होजाती हैं॥१९॥

अथ लिङ्गरोगे घोण्टादिलेपः—

**घोण्टां(१)पूगं च वा तोयैः सारं वा खदिरोद्भवम्।**
**जलैः पिष्ट्वा प्रलेपोऽयं लिङ्गरोगहरः परम् ॥ २० ॥**

---

( १ ) "घोण्टांपूगञ्च वा तोयैः" इत्यत्र "कुष्ठं पूगं वचा तोयैः" इति पाठान्तरम्।

बेर की गूदी और सुपारी को समभाग लेकर जल में पीस कर लेप करने से अथवा खैर के सार ( कत्थे ) को जल में पीस कर प्रलेप करने से लिङ्गरोग नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अथ लिङ्गपाके गन्धप्रयोगः—

**सुगन्धजघृतैर्लेपः पक्वलिङ्गे सुखावहः ॥ २१ ॥**

लिङ्ग के पाक में शुद्धगन्धक को गोघृत में पीस कर प्रलेप करना श्रेष्ठ है। अथवा शास्त्रान्तर में बने हुए सुगन्धनामक घृत का लेप लाभदायक होता है ॥२१॥

अथ लिङ्गपाकेनिम्बादिचूर्णम्—

**निम्बखादीरमञ्जिष्ठाचूर्णं च पतनं जयेत् ॥ २२ ॥**

निम्ब का पञ्चाङ्ग, खदिर का सार ( कत्था ) और मंजीठ इन को समभाग लेकर लोहे की ओखली में कूट पीस कर चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण को व्रण में भर कर पट्टबन्धन करने से लिङ्ग के मांसपेशी का पतन ( अर्थात् सडा हुआ लिङ्गपेशी का मांस ) दूर हो जाता है ॥ २२ ॥

अथ लिङ्गव्रणरोपणे सैन्धवप्रयोगः—

**यवचिञ्चारसैर्घृष्टं सैन्धवं रोपयेद्व्रणम्।**
**ग्रन्थिः कट्यां च जघने शममाप्नोति नान्यथा ॥ २३ ॥**

यव ( जौ ) और चिञ्चा ( इमली ) अथवा यवचिञ्चा ( खिरनी ) के स्वरस में सैन्धव लवण को पीस कर प्रलेप करने से उपदंश आदि के व्रण भर जाते हैं। तथा कटिप्रदेश और जघनप्रदेश की ग्रन्थि भी बैठ जाती है अथवा उसका पूय निकल जाने से ठीक हो जाती है ॥ २३ ॥

अथ लिङ्गव्रणादौ शिग्रुप्रयोगः—

**शिग्रुमूलं त्वचस्तोयैः पिष्ट्वा लेपेन तं जयेत् ॥ २४ ॥**

सहजन की जड़ के चूर्ण को दालचीनी के क्वाथ में पीसकर प्रलेप करने से लिङ्ग के उपदंशादि सम्बन्धी व्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

अथ लिङ्गादिग्रन्थौ कुष्ठादिलेपः—

**कुष्ठजीरकयोलपस्तोयैर्ग्रन्थिप्रशान्तये ॥ २५ ॥**

कूठ और जीरे को समभाग लेकर महीन चूर्ण बना लेना चाहिए। यह चूर्ण जल में पीसकर प्रलेप करने से ग्रन्थि ( लिङ्ग ग्रन्थि ) रोग नष्ट हो जाता है ॥२५॥

अथ गुह्यादिगतपीटिकायामश्वत्थादिप्रलेपः—

**अश्वत्थस्य त्वचो भस्म चूर्णेन सह मिश्रितम् ।**
**नवनीतं द्वयोस्तुल्यं मर्द्यं तेन विलेपनात् ॥**
**आसने गुदपार्श्वे च कट्यां च पिटिकां जयेत् ॥ २६ ॥**

पीपल की छाल की राख ( भस्म ) और चूना इन दोनों को बराबर लेकर समभाग मक्खन में पीस कर मलहर ( मलहम ) बना लेना चाहिए। यह मलहर आसन अर्थात् नितम्ब, गुदपार्श्व और कटिप्रदेश में लगा कर मर्दन करने से वहां की पीटिका अर्थात् फोड़े फुन्सियों को नष्ट कर देता है ॥ २६ ॥

अथ लिङ्गादिपिडकायां वाकुचीचित्रकप्रयोगौ—

**गोमूत्रैः क्षालयेत्तां च लेपो वाकुचिबीजकैः ।**
**कृत्वा कण्डूं निहन्त्याशु चित्रकं वा गवां जलैः ॥ २७ ॥**

लिङ्ग की ग्रन्थि अथवा नितम्ब, गुदपार्श्व और कटिप्रदेश की ग्रन्थि को गोमूत्र से प्रथम धोकर उस पर वाकुची के बीजों के चूर्ण की पुल्टिस बांधनी चाहिए। अथवा चित्रक की जड़ के चूर्ण को गोमूत्र में पीस कर कुछ गरम करके प्रलेप करना चाहिए। इस प्रकार यह योग सर्व प्रकार की ग्रन्थि और वहां की खुजली को नष्ट कर देता है ॥ २७ ॥

अथ लिङ्गादिपिडकायां सर्पाक्षीप्रयोगः—

**नरमूत्रेण सर्पाक्षीं पिष्ट्वा लेपेन तां जयेत् ॥ २८ ॥**

सर्पाक्षी की जड़ अथवा पद्माक्ष के चूर्ण को मनुष्य के मूत्र में पीस कर प्रलेप करने से सर्व प्रकार की गांठे नष्ट हो जाती है ॥ २८ ॥

अथ उपदंशहरो ( उपस्थव्याधिहरो )धूपः—

**लवङ्गजानां ल(न)वकं कर्पूरं चणसम्मितम् ।**
**दरदं तोलमानं च सर्वं खल्ले विमर्दयेत् ॥ २९ ॥**
**ब्रह्मवृक्षं कोकिलाक्षैः सर्वं यत्नेन मर्दयेत् ।**
**यावत्कज्जलसङ्काशं श्यामतां च तथैव हि ॥ ३० ॥**
**चतुर्दशसमा कार्या पुडिका बन्धयेद्भिषक् ।**
**रविवारे समादेया ह्यङ्गारे छगणोद्भवे ॥ ३१ ॥**
**तां निक्षिप्याऽथ सङ्गोप्य नासिकां विवृतां नयेत् ।**

**मुखमाच्छाद्य श्वासेन यातायातेन ग्राह्येत् ॥ ३२ ॥**
**वीटिकापूर्णवदनो द्विवारं कारयेत्सदा ।**
**एवं सप्तदिनं कृत्वा पश्चात्स्नानादिकं चरेत् ॥ ३३ ॥**
**पथ्यं निर्लवणं देयं जलं शीतं निषेवयेत् ।**
**अनेन योगराजेन लिङ्गव्याधिः प्रशाम्यति ॥ ३४ ॥**

लवङ्ग का चूर्ण १ लव अर्थात् तोले भर हिङ्गुल की अपेक्षा पादांश (४मा०) तथा एक चने के बराबर भीमसेनी कर्पूर ( कुछ टीकाकारों ने रसकर्पूर अर्थ भी किया है ), शुद्ध हिङ्गुल १ तोला, ब्रह्मवृक्ष अर्थात् ढाक के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला, तालमखाने का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में डालकर अच्छी तरह से मर्दन कर के कज्जल के समान महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। पश्चात् इस चूर्ण की चौदह पुडिएं बना लेनी चाहिए। इस चूर्ण का रविवार के दिन से धूम्रपान करना आरम्भ करना चारिए। चौदह पुडकियों में से एक पुडकी रविवार के दिन लेकर उसको जङ्गली छायों के निर्धूम अङ्गार के ऊपर डाल कर उस पर मध्य में छिद्र वाला एक ढक्कन ढक देना चाहिए। इस ढक्कन के छिद्र में एक रबर या बांस की या मिट्टी की नली लगाकर मुख को बन्द करके नासिका से धूम्रपान करना चाहिए। इस प्रकार दो वार धूएं को श्वास लेते समय भीतर खींच कर श्वास छोड़ते समय निकाल देना चाहिए। पश्चात् जल से कुल्ले करके मुख शुद्धि के लिसे ताम्बूल भक्षण करना चाहिए। इस विधि से सात दिन तक इस योग का धूम्रपान करना चाहिए तथा आठवें दिन स्नान करना चाहिए। इस धूम्रपान के सेवन करते समय पथ्य में निमक से रहित भोजन और शीतल जल का पान करना चाहिए। इस प्रयोग के यथाविधि सात दिन तक सेवन करने से लिङ्ग की समस्त व्याधियां नष्ट हो जाती हैं ॥ २९–३४ ॥

अथ कण्डूवादौ काञ्चनीप्रयोगः—

**लेपयेत्काञ्चनीमूलं नरमूत्रेण पेषितम् ।**
**कण्डूपामा शमं याति सर्वाङ्गीणा न संशयः ॥ ३५ ॥**

काञ्चनी अर्थात् हरिद्रा की जड़ को या कचनार की जड़ को मनुष्य के मूत्र में पीस कर प्रलेप करने से शरीर के किसी भाग में उत्पन्न हुई कण्डू ( खुजली ) और पामा शान्त हो जाती है ॥ ३५ ॥

अथ पामायां शाखोटकक्काथः—

**शाखोटस्य त्वचस्तोयैः पक्त्वा क्वाथं समाहरेत् ।**
**पिबेद्गोमूत्रसन्तुल्यं पामार्तः सुखमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥**

शाखोट नामक वृक्ष की छाल का क्वाथ बना कर उस में सम भाग गोमूत्र मिला कर आधे पल या एक पल के बराबर कुछ दिन तक पीने से पामा रोग से पीड़ित पुरुष सुखी हो जाता है अर्थात् उस की पामा नष्ट हो जाती है ॥३६॥

अथ पादकण्डूहरयोगः—

**पादकण्डूहरं कुर्यान्नवनीतेन मृङ्क्षणम् ।**
**हयारिपत्रधूपेन स्वेदनं तदनन्तरम् ॥ ३७ ॥**

पैर की खुजली को नष्ट करने के लिये प्रथम पैरों के ऊपर मक्खन लगा कर मर्दन करना चाहिए। पश्चात् कनेर के पत्तों की धूनी से पैरों का स्वेदन करना चाहिए॥ ३७ ॥

अथ पाददाहे तिलादिचूर्णम्—

**पाददाहहरक्काथे तिलाद्द्विगुणबाकुची ।**
**चूर्णिता मधुसर्पिर्भ्यां द्विकर्षं तत्प्रशान्तये ॥ ३८ ॥**

पैरों की जलन को नष्ट करने वाले द्रव्यों के क्वाथ में अर्थात् मसूर की दाल के क्वाथ में तिलों का चूर्ण और तिल चूर्ण से द्विगुण वाकुचीबीजचूर्ण डाल कर दिन भर घोटना चाहिए। फिर इस कल्क को शहद और घृत में मिला कर या इन के साथ घोट कर सेवन करना चाहिए। इस तरह यह योग पैरों की जलन की शान्ति के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ३८ ॥

अथपादकण्डूहरं प्रयोगान्तरम्—

**पादकण्डूविनोदार्थं नवनीतेन मृङ्क्षणम् ॥ ३९ ॥**

पैर की खुजली को नष्ट करने के लिये पैरों के ऊपर मक्खन को लगा कर मर्दन करना चाहिए ॥ ३९ ॥

अथ पादस्फुटने पथ्यामर्दनम्—

**पथ्याघृतेन चञ्चूर्ण्य मर्दनं करपादयोः ॥ ४० ॥**
**स्फुटितत्वनिवृत्त्यै,—**

हाथ तथा पैरों में फटी हुई विवाई को नष्ट करने के लिये हरड़ के चूर्ण को घृत के साथ घोट कर हाथ और पैरों में प्रलेप कर के मर्दन करना चाहिए ॥४०॥

अथ कदरे यवचिञ्चादिकषायः—

**—यवर्चिञ्चाऽधपक्वया।**

**शिलादिना कृते भेदे षड्गुणं च द्रवं क्षिपेत्॥ ४१॥**

शिला ( पत्थर, कङ्कड़, ) आदि के द्वारा पैरों में चोट लगने से उत्पन्न हुए कदरादिक रोग को नष्ट करने के लिये उपर्युक्त हरड़ का चूर्ण १ तोला तथा पकी हुई यव चिञ्चा अर्थात् क्षोरिणी ( खिरनी ) की जड़ का चूर्ण आधा तोले भर लेकर षड्गुण जल में क्वाथ बना कर चतुर्थांश शेष रख के उस से पैर का परीषेक या मर्दन करना चाहिए॥ ४१॥

अथ विपादिकायां गुडादिप्रलेपः—

**गुडगुग्गुलुसिन्दूरमुशीरं गैरिकं मधु।**
**मदनं घृतसंयुक्तं पादस्फोटे प्रलेपयेत्॥**
**सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ स्यातां पङ्कजसन्निभौ॥ ४२॥**

पुराना गुड़, शुद्ध गूगल, शुद्ध सिन्दूर, खस का चूर्ण, शुद्ध गेरू का चूर्ण, शहद् और मैन फल का चूर्ण इन सब को सम भाग लेकर खरल में महीन पीस के घृत के साथ घोट कर मलहर बना लेना चाहिए। यह मलहर पैरों पर सात दिन तक लगाने से उन्हें कमल के समान कोमल और सुन्दर कर देता है॥४२॥

अथ विपादिकायां मदनादिप्रलेपः—

**मदनं सिक्थकं तुल्यं सामुद्रं लवणं तथा।**
**महिषीनवनीतेन सुतप्तालेपनाद्भवेत्॥**
**सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ॥ ४३॥**

अथवा मैन फल, मोम, समुद का लवण, इन तीनों को बराबर २ लेकर खरल में महीन पीस के भैंस के मक्खन के साथ घोट कर गरम कर के शीशी में से थोड़ा मलहर निकाल कर गरम कर के पैरों पर प्रतिदिन लेप करना चाहिए। इस तरह एक सप्ताह तक लेप करने से पैर कमल के समान निर्मल हो जाते हैं॥४३॥

अथ कण्डूवादौ रसादिप्रलेपः—

**रसं गन्धं समं मर्द्यं द्वाभ्यां तुल्यं च काञ्चनम्।**
**दिनैकं चित्रकद्रावैः पिष्ट्वा लेपं प्रकारयेत्॥**
**कण्डूगण्डं खुडं हन्ति गुल्फयोरन्तरुत्थितम्॥ ४४॥**

शुद्ध पारद और गन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में घोट

के महीन तथा मसृण कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर कज्जली के बराबर काञ्चन अर्थात् शुद्ध हरताल (कुछ टीकाकारों ने काञ्चन से हरिद्रा या कचनार को लिखा है) लेकर महीन चूर्ण करके कज्जली के साथ चित्रक की जड़ के स्वरस या क्वाथ से दिन भर घोट कर मलहम बना लेना चाहिए। यह मलहर प्रलेप विधि से प्रयुक्त करने पर दोनों गुल्फों के भीतर या एडी या पाद तल आदि में उत्पन्न हुई खुजली, मांस का उठा हुआ गण्ड अर्थात् गांठ और खुड रोग को नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥

अथ स्वरभङ्गे—

धात्रीफलस्वरसप्रयोगः—

**धात्रीफलरसः क्षीरैः पीतः स्यात्स्वरभङ्गनुत् ॥ ४५ ॥**

आंवलों के फलों का १ पल भर स्वरस निकाल कर उस में दुग्ध मिलाकर प्रतिदिन पीने से स्वरभङ्ग रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४५ ॥

अथ स्वरभङ्गे देवदार्वादिचूर्णम्—

**देवदारुकणाव्योषशताह्वापत्रकं शिला ।**
**वचासैन्धवशिग्रुत्थमूलं पेष्यं समं समम् ॥ ४६ ॥**
**कर्षैकं मधुसर्पिर्भ्यां मासमात्रं सदा लिहेत् ।**
**मासैकं कर्षकर्षं च किन्नरैः सह गीयते ॥ ४७ ॥**

देवदारु का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, व्योष अर्थात् सोंठ का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, हींफ का चूर्ण, तेजपत्र का चूर्ण, शुद्धमनःशिला का चूर्ण वचा का चूर्ण, सैन्धव लवण, सहजन की जड़ का चूर्ण, इन सब चूर्णों को समभाग लेकर खरल में एकत्र करके दिन भर पीस कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को एक २ कर्ष (१६ मा०) भर लेकर प्रतिदिन शहद् और गाय के घृत के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। इस तरह एक मास तक सेवन करने के पश्चात् दूसरे महीने तक कर्ष कर्ष अर्थात् दो कर्ष भर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए अथवा प्रथम एक मास तक उपर्युक्त देवदार्वादि चूर्ण को एक कर्ष भर लेकर सेवन करें तथा दूसरे मास में कर्ष अर्थात् बहेडे के १ कर्ष भर चूर्ण को मधु और घृत के साथ सेवन करें। इस प्रकार दो मास तक इस योग के सेवन करने से मनुष्य के गले के रोग (स्वर भङ्गादि) नष्ट हो जाते हैं तथा उसका स्वर किन्नरों के समान कर्णप्रिय हो जाता है ॥ ४६–४७ ॥

अथ स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

स्वेदो वस्ति र्धूमपानं विरेकः कवलग्रहः । नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः॥१॥
हंसाटवीताम्रचूडकेकिमांसरसाः सुराः ।।गोकण्टकः काकमाची जीवन्ती बालमूलकम्॥२॥
द्राक्षापथ्यामातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम्। ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम्॥३॥

इति पथ्यम्।

अथापथ्यम्—

आमं कपित्थं वकुलं शालूकं जाम्बवानि च। तिन्दुकानि कषायाणि वमिः स्वप्नं प्रजल्पवम्
अन्नपानं च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत्। इति पथ्यापथ्यानि।

अथ गलदाहे सैन्धवादिचूर्णम्—

**सैन्धवेन्द्रयवं रात्रौ मरिचं चोष्णवारिणा ।**
**पाययेत्कर्षमात्रं तु गलदाहप्रशान्तये ॥ ४८ ॥**

गले की जलन को दूर करने के लिये रात्रिमें सोते समय सैन्धव लवण, इन्द्रयव और मरिच इन तीनों का समभाग लेकर बनाये हुए चूर्ण में से १ कर्ष भर चूर्ण लेकर गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए ॥ ४८ ॥

अथ गलदाहे करञ्जमज्जापथ्याप्रयोगौ—

**करञ्जबीजमज्जां तु द्विनिष्कां चोष्णवारिणा ।**
**गलदाहहरं खादेत्पथ्या वा क्षौद्रसंयुता ॥ ४९ ॥**

अथवा शुद्ध करञ्ज फल की मज्जा के चूर्ण को दो निष्क ( ८ मासा ) भर लेकर उष्ण जल के साथ गले की जलन को नष्ट करने के लिये सेवन करना चाहिए। अथवा दो निष्क भर हरड के चूर्ण को मधु ( शहद् ) के साथ मिला कर गलदाह नाशार्थ सेवन करना चाहिए ॥ ४९ ॥

अथ स्तनवर्द्धने बलादिप्रलेपः—

**बलानागबलाकुष्ठत्वचां चूर्णं च लेपयेत् ।**
**महिषीनवनीतेन स्यातां पीनौ स्थिरौ स्तनौ ॥ ५० ॥**

बला ( बरियारा ), नागबला ( गंगेरन ), कूठ और तज इन को समभाग लेकर ओखली में कूट के चूर्ण बना कर भैंस के मक्खन में घोट के स्तनों पर प्रलेप करके मर्दन करने से वे दृढ और मोटे हो जाते हैं ॥ ५० ॥

अथ स्तनवर्द्धने स्नेहनस्यम्—

**श्यामानिशाबलाराजीलवणं क्वाथयेत्समम् ।**

तोयैरष्टगुणैरेव पादशेषं समाहरेत् ॥ ५१ ॥
तिलतैलं क्वाथपादं तैलार्धं माहिषं घृतम् ।
स्नेहशेषं पचेत्तेन नस्येन मासमात्रके ।
बालादिवृद्धनारीणां यौवनं कुरुतेऽद्भुतम् ॥ ५२ ॥

प्रियङ्गु, हरिद्रा, बला ( बरियारा ), राई या पीली सरसों और लवण इन सब को समभाग लेकर चूर्ण करके अठ गुने जल में क्वाथ बना कर चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें । फिर इस क्वाथ की अपेक्षा चतुर्थांश ( चोथाई ) तिलतैल तथा तैल से आधा भैंस का घी लेकर सब को एकत्र कड़ाही में या कलईदार पितल के बर्तन ( भगूने ) में डाल कर पकाना चाहिए । जब स्नेहमात्र शेष रह जाय अर्थात् समग्र जलीयांश के नष्ट हो जाने पर चूल्हे से उतार कर सिद्ध स्नेह को छान कर शीशी में भर देवें । इस स्नेह का एक मास तक नस्य करने से बाल, युवा और वृद्ध स्त्रियों के यौवन को संगठित बना देता है ॥ ५१-५२ ॥

अथ स्तनव्रणे कुरुवकतैलम्—

कुरुवत्वक्कषायेण तत्कल्केन च साधितम् ।
तैलं तु वनितानां च कुचकुम्भव्रणापहम् ॥ ५३ ॥

पीली कटसरैया की छाल या पद्माङ्ग का क्वाथ तैल से अष्ट गुण या चतुर्गुण तथा उसी का कल्क तैल से चोथाई लेकर तिलतैल को सिद्ध कर लेवें । यह तैल स्त्रियों के स्तनों की विद्रधि तथा व्रण आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है ॥५३॥

अथ स्तनविद्रधौ शुल्वप्रयोगः—

शुल्वचूर्णं रसे जीर्णं मदयन्ती पुनर्नवा ।
मेषशृङ्गीरसश्चैता व्रणशोषणरोपणम् ॥ ५४ ॥

ताम्र के शुद्ध चूर्ण को पारद के साथ जारण करके अर्थात् पारद के द्वारा बनी हुई ताम्र की भस्म लेकर उसको मदयन्ती ( नवमल्लिका या मेंहदी ), पुनर्नवा और मेढासींङ्गी के स्वरस से पृथक् २ एक २ दिन तक खरल करके सुखा कर शीशी में भर देवें । इस औषध को ३ रती भर लेकर मधु और आदी के स्वरस के साथ प्रतिदिन सेवन करने से स्तनों के व्रण को शुद्ध कर के उसका रोपण कर देती है ॥ ५४ ॥

अथ स्नायुके कुम्भीप्रयोगः—

**कुम्भीपुष्पाणि चादाय गिलयेद्रविवासरे ।**
**यावत्सङ्ख्यानि पुष्पाणि तावद्वर्षाणि स्नायुकः ।**
**न निर्याति न सन्देहः सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ५५ ॥**

रविवार के दिन प्रातः काल कोङ्कण देश में प्रसिद्ध कुम्भीनामक वृक्ष के पुष्पों को लाकर अथवा पाटला के पुष्पों को लाकर पत्थर पर पीस के सर्बत बना कर पी लेना चाहिए । इस तरह जितने ही पुष्पों का सेवन किया जाय उतने वर्ष तक स्नायुक रोग ( नहरू ) नहीं होता है । यह सिद्ध योग है ॥ ५५ ॥

अथ भस्मकलक्षणम्—

**येन भस्मी भवन्त्याशु भक्षितान्यखिलान्यपि ।**
**वस्तूनि स क्षुधारूपो व्याधिर्भस्मक उच्यते ॥ ५६ ॥**

जिस रोग के कारण अतिमात्रा में खाये हुए गुरु लघु आदि अनेक पदार्थ शीघ्र ही पच जाते हैं ऐसे रोग को भस्मक रोग कहते हैं । प्रायः भस्मक रोग वाले पुरुष का शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होकर लकड़ी के समान दिखाई देता है॥५६॥

अथ श्लीपदस्य सम्प्राप्तिलक्षणे—

**कफोत्तरा रक्तचलाश्रिता मलाः पादेष्वधःकायमुपाश्रिताः शनैः ।**
**कुर्वन्ति शोफं घनमाहश्लीपदं तत् कर्णनासादिषु पादवद्भवेत् ॥५७॥**

कफ प्रधान वातपित्तादिक दोष रक्त और मांस को आश्रित करके उन्हें दूषित कर देते हैं तथा ये दोष और दूषित रक्त शरीर के नीचे के अङ्गों में विशेष कर आश्रित हो के घन अर्थात् ठोस शोफ ( सूजन ) उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार के रोग को श्लीपद कहते हैं । पैरों की तरह यह रोग कर्ण और नासिका में भी उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

अथ श्लीपदहररसः—

**ताम्रभस्मसमं सूतं शुद्धं मर्द्यं दिनत्रयम् ।**
**नागवल्लीमेघनादपाठापौनर्नवद्रवैः ॥ ५८ ॥**
**गोमूत्रे मर्दयेद्गाढं चक्रयन्त्रे दिनं पचेत् ।**
**मासैकं भक्षयेत्क्षौद्रैः श्लीपदी च पिबेदनु ॥ ५९ ॥**
**खादिरं शल्लकीकाष्ठं क्षौद्रं चाशनकाष्ठकम् ।**

गवां मूत्रः समं पिष्ट्वा पिबेच्छ्लीपदनाशनम् ॥ ६० ॥

ताम्र की भस्म और पारद की भस्म या रस सिन्दूर दोनों को समभाग लेकर दिन भर खरल में घोटकर नागरबेल के पानके स्वरस, चोलाई का स्वरस और पुनर्नवा के स्वरस में क्रमशः तीन २ दिन तक खरल करें, या सबके स्वरस को मिलाकर उसके तीन भाग करके तीन दिन तक खरल करें। पश्चात् गोमूत्र में दिन भर घोटकर गोला बना के चक्रयन्त्र में पाक करना चाहिए। सिद्ध हुए रस को यन्त्र से निकालकर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस रस को मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा सेवन करने के पश्चात् कत्था, सलई (शल्लकी) की जड़ और विजयसार की जड़ इन तीनों को समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर जल में घोल के थोड़ा सा शहद् मिला के पिलाना चाहिए। इस तरह एक मास तक इस रस को सेवन करने से श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है ॥५८-६०॥

अथ श्लीपदहरलेपः—

गुडूचीकटुकाशुण्ठीदेवदारुविडङ्गकम्।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तो लेपः श्लीपदनाशनः ॥ ६१ ॥

गुडूची, कुटकी, सोंठ, देवदारु और विडङ्ग इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस के प्रलेप करने से श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

अथ श्लीपदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम्।
वार्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लं कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ॥ १ ॥
ऐरण्डतैलं सुरभीजलञ्च पुनर्नवामूलकपोतिकाश्च।
एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां रोगे सति श्लीपदनामधेये ॥ २ ॥ इति पथ्यानि।

पिष्टान्नं दुरधविकृतिं गुडमानूपमामिषम्।
स्वादुम्लं पायसञ्चैव सिन्धुविन्ध्यनदीजलम्।
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ १ ॥ इत्यपथ्यानि।

अथ वल्मीके पित्तलभस्मप्रयोगः—

ब्राह्मीपलाशयोः क्वाथे रीतिपत्रं विनिक्षिपेत्।
दिनद्वयं ततस्तानि पुनस्तेनैव घर्षयेत् ॥ ६२ ॥
लघुभाण्डे समादाय चूर्णं कुष्माण्डवारिणा।
महत्रिवारं कुर्वीत पुटं करभवारिणा ॥ ६३ ॥

मर्दयित्वा पुटं दद्यादजामूत्रेण भावयेत्।
ततोऽप्येकं पुटं दत्वा तिस्रस्त्रिकटुभावनाः ॥ ६४ ॥
*अमर्यजाविडङ्गाऽग्निगोजलैरथ भावितः।*
प्रातरेषः सुसंसिद्धो रसो वल्मीकमृद्रसैः ॥ ६५ ॥
वल्लत्रयमितो देयो वल्मीके तस्य मृत्तया।
वल्मीकं सम्विलिप्यैतत्कृमिसङ्घप्रशान्तये ॥ ६६ ॥
रसैरुत्तरवारुण्याः सभ्रमं हन्ति मारुतम्।
वासानीरानुपानेन जयेत्कफसमीरणम् ॥ ६७ ॥

पित्तल के छोटे २ कण्टकवेधी पत्र बनवा कर ब्राह्मी और ढाक ( पलाश ) के क्वाथ में डुबो कर २ दिन तक रख देवें। तीसरे दिन उन पत्रों को उसी क्वाथ के साथ अच्छी तरह घोट कर छोटे से भाण्ड ( हण्डिका ) में पेठे के स्वरस के साथ दिन भर पकाना चाहिए। जब वह पकाने से चूर्ण के स्वरूप में हो जाय तब हण्डिका से निकाल कर खरल में करभ अर्थात् उष्ट्र या करिशावक ( हाथी के बच्चे ) के मूत्र से घोट कर टिकिया बना के शराव सम्पुट में बन्द कर के दशम अध्यायोक्त महापुट में पाक करना चाहिए। इस तरह तीन वार करभ मूत्र में घोट कर तीन पुट देने चाहिएं। कुछ टीकाकारों ने करभवारि शब्द से अर्जुन की छाल के क्वाथ का ग्रहण किया है। फिर बकरी के मूत्र से भावित कर के टिकिया बना कर शरावसम्पुट में बन्द कर के एक वार गजपुट में पाक करना चाहिए। पश्चात् त्रिकटु के क्वाथ से भावित कर के पुट देना चाहिए। इस तरह तीन वार भावित कर के तीन पुट देने चाहिए। फिर अमरी अर्थात् तुलसी या नीलनिर्गुण्डी, बकरी का मूत्र, विडङ्ग का क्वाथ, चित्रक की जड़ का क्वाथ और गोमूत्र तथा वल्मीक की मिट्टी के घोल इन सब से एक २ वार भावित कर के घोट कर चूर्ण बना लेवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को तीन वल्ल ( ९ रत्ती ) भर लेकर दिन में तीन वार वल्मीक की मिट्टी के घोल के साथ वल्मीक रोग में सेवन करना चाहिए तथा वल्मीक रोग के कृमियों को नष्ट करने के लिये वल्मीक की मिट्टी को जल से पीस कर प्रलेप करना चाहिए। उपर्युक्त रस को इन्द्रवारुणी के स्वरस के साथ सेवन करने से चक्कर ( भ्रम रोग ) और विकृतवात नष्ट हो जाते हैं तथा उपर्युक्त रस को अडूसे की पत्ति

के स्वरस और मधु के साथ सेवन करने से कफ और वात के विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२-६७ ॥

अथ स्थौल्ये विडङ्गादिचूर्णम्—

**विडङ्गं नागरं क्षारं काललोहरजो मधु ।**
**यवामलकचूर्णं च योगोऽतिस्थौल्यदोषजित् ॥ ६८ ॥**

वायविडङ्ग का चूर्ण, नागरमोथे का चूर्ण, क्षार ( यवक्षार ), काललौह की भस्म, मुलेठी का चूर्ण यव और आंवलों का चूर्ण इन सब को सम भाग लेकर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें । यह चूर्ण मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य की बढ़ी हुई स्थूलता को नष्ट कर देता है ॥ ६८ ॥

अथ स्थौल्ये त्रिफलादि-पत्रादिकषायौ—

**वरासनाम्नयः पत्रनिशाक्काथं मधुप्लुतम् ।**
**द्विरदस्थूलदेहोऽपि पिबेन्मासात् कृशो भवेत् ॥ ६९ ॥**

त्रिफला, विजैसार की जड़ और चित्रक की जड़ इन तीनों को समभाग लेके क्काथ बनाकर उस में शहद् मिला के एक महीने तक पान करने से अथवा तेजपत्र और हरिद्रा के क्वाथ में शहद् डाल कर पान करने से हाथी के समान स्थूल मनुष्य भी कृश हो जाता है ॥ ६९ ॥

अथ स्थौल्ये पथ्यापथ्यमाह—

पुराणशालयो मुद्गकुलत्थोद्दालकोद्भवाः । लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥१॥
श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः । हन्त्यबद्धमांसस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥२॥
अस्वप्नञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत्
प्रातर्मधुयुतं वारिसेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्णमम्भस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥३॥

इति पथ्यानि ।

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान् सुखशीलतान् । क्षीरेक्षुविकृतीर्माषान् सौहित्यं स्नेहनानि च
मत्स्यं मांसं दिवा निद्रां स्वगन्धान् मधुराणि च ।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

इति पथ्यानि ।

अथ विपरीतरतिजव्याधिलक्षणम्—

**विपरीते रते प्राप्ते लिङ्गे दाहः प्रजायते ॥ ७० ॥**
**काश्यं च सर्वगात्रेषु,—**

विपरीत प्रकार से ग्राम्य धर्म ( सम्भोग ) करने से पुरुष की जननेन्द्रिय में दाह होने लगता है तथा सारा शरीर कृश हो जाता है। इस प्रकार के विपरीत रति जन्य रोग की चिकित्सा आगे कही जाती है ॥ ७० ॥

अथ विपरीतरतिजन्याधिप्रतीकारः—

—तत्प्रतिकार उच्यते।

**प्रत्यग्रस्तन्निबद्धयैव लिङ्गे चोषणमाचरेत् ॥ ७१ ॥**
**क्षणे त्वेतस्य सञ्जाते क्षालयेच्छीतलाम्बुना।**
**कोलनिर्य्यासमादाय पाययेत्तं सशर्करम् ॥**
**शाल्मलीदूर्वयोर्मुलीरसपायसमाशयेत् ॥ ७२ ॥**

उपर्युक्त अनुचित सम्भोग से पीड़ित हुए लिङ्ग को वस्त्र आदि से लपेट कर प्रथम चोषण कर्म करना चाहिए। तत्पश्चात् उसे शीतल जल से प्रक्षालित कर देना चाहिए। फिर बेर की छाल के या बेर के फलों के क्वाथ में चीनी मिला कर पिलाना चाहिए। अथवा सेमल की जड़ और दूर्वा की जड़ के स्वरस से क्षारपाक कर के पिलाना चाहिए। कुछ टीकाकारों ने सेमल, दूब और मूली के स्वरस तथा दुग्ध इन्हें यथाविधि मिला कर संयुक्त द्रव में चावल पका के उन्हें खिलाना चाहिए ऐसा अर्थ भी किया है ॥ ७१-७२ ॥

अथ उपदंशादिप्रतीकारः—

**पुरुषव्याधिनुत्यर्थं रक्तस्रावो हि पृष्ठके।**
**भक्षणं बोलबद्धस्य मत्स्याक्षीमूललेपनम् ॥ ७३ ॥**
**जानुरुग्ग्रन्थिनुत्यर्थं यवचिञ्चाः प्रलेपयेत्।**
**सामुद्रकाञ्जिकाभ्यां हि लेपं विधेहि सत्वरम् ॥ ७४ ॥**

उपदंश आदि लिङ्ग रोगों को नष्ट करने के लिये लिङ्ग के पृष्ठभाग के मध्य की शिरा का वेध करके अशुद्ध रक्त को निकाल देना चाहिए। पश्चात् मत्स्याक्षी की जड़ को जल के साथ पीस कर लिङ्ग पर प्रलेप करके पट्टबन्धन कर देना चाहिए। एवं बोलबद्ध रस को आभ्यन्तरिक सेवन के लिये मधु के साथ प्रयुक्त करना चाहिए। यदि जानु ( घुटने ) में पीड़ा तथा लसीकाग्रन्थि के निकल आने से वेदना होती हो तो उसे नष्ट करने के लिये यवचिञ्चा को जल में घोटकर लगाना चाहिए। अथवा सामुद्र लवण को काञ्जी के साथ पीस कर जल्दी लेप कर देना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

अथ सर्वरक्तविकारे उपायः—

**सर्वरक्तविकारेषु बोलबद्धस्य सेवनम् ॥ ७५ ॥**

सर्व प्रकार के रक्त जन्य रोगों में बोलबद्ध रस का उचित मात्रा से प्रतिदिन सेवन करना अत्यन्त हितकर है ॥ ७५ ॥

अथ अस्थिभग्ने लाक्षादिप्रलेपः—

**मेषक्षीरं द्रवं चूर्णं कटुतुम्ब्या विनिक्षिपेत् ।**
**प्रलेपनेन सातत्यादस्थिभङ्गः प्रशाम्यति ॥ ७६ ॥**

भेड़ी का दुग्ध, कड़वी तुम्बी का स्वरस और चूर्ण अर्थात् चूना अथवा भेड़ी का दुग्ध और कड़वी तुम्बी की जड़ का चूर्ण तथा स्वरस इन को एकत्र दिन भर घोट कर प्रतिदिन प्रलेप करने से टूटी हुई हड्डी जल्दी ही ठीक हो जाती है॥७६॥

अथ स्नायुके अस्पर्शारिप्रयोगोपदेशः—

**स्नायुकस्यापनुत्यर्थमस्पर्शारिप्रलेपनम् ॥ ७७ ॥**

स्नायुक ( नेहरु ) रोग को नष्ट करने के लिये अस्पर्शारि अर्थात् धमासे को पीस कर प्रलेप करना चाहिए अथवा वातव्याधिचिकित्सा में कहे हुए अस्पर्शवा तारि नामक तैल का अभ्यङ्ग या अस्पर्शारि नामक रस का सेवन करना चाहिए॥७७॥

अथ योनिव्यापन्निदानम्—

**(१)दैवेनातिरते स्त्रीणां विषमोत्कटकासनात् ।**
**जायन्ते व्यापदो योनौ दुष्टबीजार्त्तवात्ततः ॥ ७८ ॥**

दैव अर्थात् पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों से, अत्यन्त सम्भोग करने से, विषमासन तथा उत्कटकासन से, दूषित हुए मातृज तथा पितृज बीज के कारण तथा प्रदुष्ट आर्त्तव के कारण स्त्रियों के बीस प्रकार के योनि के रोग (योनिव्यपाद) उत्पन्न होते हैं ॥ ७८ ॥

अथ योनिव्यापत्सु पिष्टीयोगः—

**पिष्टीतारार्कयोरेका तैले गन्धस्य पाचिता ।**
**सेविता मधुसर्पिर्भ्यां गुह्यरोगान्नियच्छति ॥ ७९ ॥**

---

( १ ) चरकेऽपि—विंशति व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसङ्ग्रहे ।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ।
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥

पूर्व ( अष्टमाध्याय ) में "अर्कांशतुल्यादसताप्यगन्धात्" इत्यादि रूप से कही हुई चांदी और ताम्र की बनी हुई पिष्टी लेकर गन्धक के तैल में कुछ देर तक पका कर खरल में घोट के शीशी में भर देवें। यह पिष्टी प्रतिदिन शहद और घृत या मक्खन के साथ सेवन करते रहने से स्त्रियों के समग्र गुह्य रोगों को नष्ट कर देती है ॥ ७९ ॥

अथ योनिशूले निम्बादिगोलकम्—

**निम्बुद्रावैः सुसम्पिष्टं निम्बैरण्डस्य बीजकम्।**
**योनिशूलहरं क्षिप्त्वा गोलकं योनिमध्यगम् ॥ ८० ॥**

नीम के बीजों की गिरी और एरण्ड के बीजों की गिरी को समभाग लेकर पत्थर पर निम्बू के रस के साथ पिस के गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को योनि में रख देने से योनि का शूल रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८० ॥

यथ योनिरोगे सोमराज्यादिप्रलेपः—

**सोमराजीदेवदारुनिम्बदारुनिशाऽसनम्।**
**तक्रपिष्टं प्रलेपोऽयंयोन्यामयहरो भवेत् ॥ ८१ ॥**

सोमराजी ( बाकुची ), देवदारु, निम्ब का पञ्चाङ्ग, दारु हलदी और विजय सार की जड़ इन सब को समभाग लेकर खट्टी छाछ ( तक्र ) में घोट कर प्रलेप करने से योनि के सर्व प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८१ ॥

अथ योनिकृमिशूले रसोनादिप्रलेपः—

**रसोनं गृहधूपं तु विशाला सविडङ्गकम्।**
**कण्टकारीफलं तोयैः पिष्ट्वा योनौ प्रलेपयेत्।**
**कृमिशूलहरं ख्यातं सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ८२ ॥**

लहसून, रसोई घर का धुंआ, इन्द्रायन की जड़, वायविडङ्ग और कण्टकारी ( बृहती ) के फल इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पीस कर प्रलेप बना लेना चाहिए। इस प्रकार का प्रलेप सात दिन तक योनि में लगाते रहने से वहां के कीड़े तथा शूल को नष्ट कर देता है। यह योग कृमि और शूल को नष्ट करने के लिये निश्चय ही उत्तम है ॥ ८२ ॥

अथ मञ्जिष्ठाद्यृतम्—

**मञ्जिष्ठा तगरं कुष्ठं त्रिफला शर्करा वचा।**

मेदा यष्टी हरिद्रे द्वे दीप्यकं कटुरोहिणी ॥ ८३ ॥
पयस्या हिङ्गुकाकोली वाजिगन्धा शतावरी ।
प्रत्येकं चूर्णयत्कर्षं द्वात्रिंशत्पलकं घृतम् ॥ ८४ ॥
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतशेषं विपाचयेत् ।
योनिशूले शुक्रदोषे गर्भिणीनां च पाययेत् ॥ ८५ ॥

मजीठ, तगर, कूठ, त्रिफला, चीनी, वचा, मेदा, मुलेठी हलदी, दारुहलदी, अजवाईन, कुटकी, क्षीरकाकोली, शुद्धहींङ्ग, काकोली, असगन्ध और शतावर इन में से प्रत्येक औषधि को एक २ कर्ष ( १६ मा० ) भर लेकर ओखली में कूट खांड कर चूर्ण बना लेना चाहिए तथा गाय का घी ३२ पल, घी से चोगुना दुग्ध तथा चोगुना पानी लेकर बड़ी कडाही या कलईदार भाण्ड में डाल कर पूर्वोक्त चूर्ण मिला के मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए । जब घृतमात्र शेष रह जाय तब भाण्ड को भट्टी से उतार कर घृत को छान लेना चाहिए । इस घृत को योनि शूल, शुक्रदोष तथा गर्भिणी स्त्रियों को दुग्ध में मिला कर प्रतिदिन पिलाने से अत्यन्त लाभप्रद होता है ॥ ८३–८५ ॥

अथ रजोनाशे त्रियोनिरसप्रयोगविधिः—

त्रियोनिरसगुञ्जैकं त्रिनिष्कमभयागुडम् ।
पुष्परोधहरं खादेत्पलैकं तिलजीवनम् ॥
ततःशीतोदकं क्षिप्त्वा पुष्पं स्रवति तत्क्षणात् ॥ ८६ ॥

कामला चिकित्सा में कहे हुए त्रियोनि नामक रस को प्रति दिन एक २ रत्ती भर लेकर तीन निष्क ( १२ मा० ) भर हरड के चूर्ण और गुड़ के साथ मिला कर सेवन करना चाहिए तथा उसके पश्चात् एक पल भर तिल्ली का सेवन करना चाहिए, अथवा पल भर तिल्ली को त्रियोनिरस, हरड़ चूर्ण और गुड़ में मिला कर सेवन करना चाहिए । औषध सेवन करने के पश्चात् शीतल जल पीना चाहिए । इस तरह यह योग प्रति दिन सेवन करने से रोग के कारण रुका हुआ मासिक धर्म प्रवृत्त हो जाता है अर्थात् स्त्री रजस्वला होने लग जाती है ॥ ८६ ॥

अथ पुष्परोधहरयोगत्रयम्—

लाङ्गलीकन्दचूर्णं वा मूलं वाऽप्यपामार्गजम् ।
इन्द्रवारुणीमूलं वा योनिस्थं पुष्परोधनुत् ॥ ८७ ॥

कलिहारी की शुद्ध जड़ का चूर्ण अथवा अपामार्ग की जड़ का चूर्ण या इन्द्र वारुणी की जड़ का चूर्ण इन में से किसी एक चूर्ण को योनि में रखने से नष्ट हुआ मासिकधर्म पुनः प्रारम्भ हो जाता है ॥ ८७ ॥

अथ पुष्परोधरक्तगुल्महरयोगद्वयम्—

**तिलमूलकषायं तु ब्रह्मदण्डीयमूलकम् ।**
**यष्टीत्रिकटुकं चूर्णं क्वाथयुक्तं हि पाययेत् ॥**
**पुष्परोधे रक्तगुल्मे स्त्रीणां सद्यः प्रशस्यते ॥ ८८ ॥**

रोग के कारण रुके हुए स्त्रियों के मासिक धर्म में तथा रक्तगुल्म में तिल की जड़ का कषाय ½ पल तथा पलाश ( ढाक ) की जड़ का कषाय ½ पल या चूर्ण ३ माशे भर लेकर उसमें मुलेठी का चूर्ण ३ माशे भर तथा त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल ) का चूर्ण ३ माशे भर मिला कर पिलाना अत्यन्त हितकर है। इस योग से बिना कष्ट के ही रुका हुआ मासिकधर्म प्रवृत्त हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथ पुष्परोधे चणकप्रयोगः—

**चणकानां रसं चैव श्रृतं क्षीरं घृतेन वा ।**
**शर्करामधुसंयुक्तं रक्तदोषहरं पिबेत् ॥ ८९ ॥**

गीले चनों के पानी में या चनों के क्वाथ में चीनी, घृत और शहद मिलाकर सेवन करने से या केवल ओटाये हुए दुग्ध में घृत, चीनी और शहद मिलाकर सेवन करने से या चनों के रस से श्रृतदुग्ध, घृत, शर्करा और शहद इन्हें उचित मात्रा से मिला कर सेवन करने से रक्त के समस्त दोष ( विशेषकर रक्तगुल्म, आदि ) नष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

अथ पुष्परोधे गुडव्योषादिचूर्णम्—

**तिलक्वाथो गुडं व्योषं तिलभार्ङ्गीयुतं पिबेत् ।**
**क्वाथं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेऽथ पाययेत् ॥ ९० ॥**

पुराना गुड़, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, तिलों का चूर्ण और भारङ्गी का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में पीस के दो २ तोले के लड्डू बनाकर पात्र में भर देवें। इनमें से एक २ लड्डू लेकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाकर ऊपर से १ पल भर तिल की जड़ का क्वाथ पीना चाहिए। उपर्युक्त औषधियों के चूर्ण या लड्डू के साथ इस क्वाथ को रक्तगुल्म और नष्टार्त्तव में पिलाना चाहिए ॥ ९० ॥

अथ गर्भाजनने धुस्तूरप्रयोगः—

ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां धुस्तूरस्य तु मूलकम् ।
कटयां बध्वा रमेत्स्वेच्छं न गर्भः सम्भवेत्क्वचित् ॥ ९१ ॥
मुक्तेन लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम् ।
तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः सम्भवेत्क्वचित् ॥ ९२ ॥

किसी महीने की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को धत्तूरे की जड़ उखाड़ कर घर में रख देवें। फिर इस जड़ को अधिकसन्तति से व्यग्र पुरुष अपनी कमर में बांध कर यथेच्छ स्त्री सम्भोग करे तो भी उसकी स्त्री गर्भवती नहीं होती है। यदि सन्तति प्राप्त ( स्त्री को गर्भवती ) करने का इच्छा हो जाय तो उस जड़ को कटि भाग से हटाकर दूर रख के सम्भोग करने से स्त्री गर्भवती हो जाती है। यह पुराने समय में नागार्जुन नामक सिद्ध ने बताया है। अथवा धत्तूरे को जड़ के चूर्ण को योनि में रखकर सम्भोग करने से गर्भधारण नहीं होता है ॥ ९१-९२ ॥

अथ गर्भाजनने सैन्धवप्रयोगः—

ऋतौ जाते क्षिपेद्योनौ तिलतैलाक्तसैन्धवम् ।
द्रवते तत्क्षणादेव तच्छुक्रं पुष्पितामपि ॥ ९३ ॥

ऋतु स्नान करने के पश्चात् तिल के तैल में सैन्धव नामक मिला कर कल्क बना के योनि में प्रविष्ट करने के पश्चात् यथेच्छ सम्भोग करने से गर्भाशय में गया हुआ शुक्र तथा स्त्री का बीजरक्त वापिस निकल जाता है तथा यह योग पुष्पित स्त्री को शीघ्र ही द्रवित भी करता है ॥ ९३ ॥

विमर्शः—यह योग योगरत्नाकर में इस प्रकार है।

यथा—तैलाविलं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डानिजयोनिमध्ये ।
करेण सार्द्धं रतिमातनोति या सा न गर्भं लभते कदाचित् ॥ इति ।

अथ गर्भस्रावणे चूर्णप्रयोगः—

देवालये तु यच्चूर्णं कर्षैकं तोयपेषितम् ।
पिबेद्गर्भवती नारी गर्भः स्रवति तत्क्षणात् ॥ ९४ ॥

पुराने मन्दिरों में की खारी मिट्टी के एक कर्ष भर चूर्ण को जल के साथ पीस कर गर्भवती स्त्री पान करे तो तत्काल उस के गर्भ का स्राव हो जाता है ॥९४॥

अथ गर्भस्रावणे एरण्डप्रयोगः—

काण्डमेरण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं क्षिपेत् ।

**चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥ ९५ ॥**

एरण्ड के पत्ते के पीछे का आठ अङ्गुल लम्बा डण्ठल लेकर योनि में युक्ति से प्रविष्ट कर के छोड़ देवें। इस एरण्डपत्रकाण्ड के योनि में रखने से शीघ्र ही चार मास का गर्भ गिर जाता है ॥ ९५ ॥

अथ गर्भस्रावणे चित्रकप्रयोगः—

**निर्गुण्डीद्रवसम्पिष्टं चित्रमूलं मधुप्लुतम्।**
**कर्षं भुक्त्वा पतत्याशु गर्भो रण्डाकुलोद्भवः ॥ ९६ ॥**

चित्रक की जड़ को या जड़ के कर्ष भर चूर्ण को निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस में दिन भर घोट कर शहद मिला के पीने से विधवा स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है ॥ ९६ ॥

अथातिरक्तस्रावे शरपुङ्खाप्रयोगः—

**मूलं शरपुङ्खायास्तण्डुलाम्बुप्रपेषितम्।**
**पाययेत्कर्षमात्रं तदतिरक्तप्रशान्तये ॥ ९७ ॥**

रक्तप्रदर अथवा गर्भपात के अनन्तर अत्यन्त स्रुत होते हुए रक्त को रोकने के लिये शरपुङ्खा की कर्ष भर जड़ या चूर्ण लेकर चावलों के धोवन के साथ घोटकर पीलाना चाहिए ॥ ९७ ॥

अथातिरक्तस्रावे अर्कमूर्तिरसप्रयोगविधिः—

**स्त्रीणां रक्ते पूयके वा प्रवृत्ते सैसं चूर्णं पेटकारीभवञ्च।**
**दद्यात्प्रातर्मल्लखण्डेन सार्धं दत्त्वा सूतं त्वर्कमूर्तिं घृतेन ॥ ९८ ॥**

स्त्रियों के प्रदरादि रोग अथवा अन्ययोनि रोगों के कारण पूय के सहित निकलते हुए रक्त को रोकने के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल सीसे की भस्म को पेटकारी अथवा ( अभावे ) अरणी की जड़ के चूर्ण और पान के या गुड और चीनी के साथ सेवन करना चाहिए अथवा पारद की भस्म या रससिन्दूर १ रत्ती तथा अर्कमूर्ति रस १ रत्ती भर लेकर दोनों को घृत के साथ सेवन कराना चाहिए। यह योग स्त्रियों की सर्व प्रकार की प्रदरादिक व्याधियों को नष्ट कर देता है ॥ ९८ ॥

विमर्शः—अर्कमूर्तिरस को निम्न प्रकार से बनाना चाहिए। यथा भेषजरत्नावल्यां "लौहाष्टकं मारितमर्कभागं सूतं द्विभागं द्विगुणञ्च गन्धम्। विमर्दयेद् वह्निरसेन तावे दिनत्रयञ्चात्र विषं कलांशम् ॥ निक्षिप्यपित्तैः पारभावितोऽयं रसोऽर्कमूर्तिर्भवति त्रिदोषे ॥ इति।

अथ योनिशूलहरयोगद्वयम्—

**योनौ शूले निम्बवातारिपिष्टीं कुर्याद्यद्वा नागकर्णार्त्थमूलैः ॥ ९९ ॥**

योनि के शूल को नष्ट करने के लिये नीम की छाल और एरण्ड की जड़ दोनों को पीसकर या दोनों के बीजों की गिरी को पीसकर कल्क बना के योनि में रखना चाहिए। अथवा लाल एरण्ड की जड़ की पिष्टी को रखनी चाहिए ॥९९॥

अथ रजोदोषे व्योषादितैलम्—

**तैलं क्वाथं व्योषयष्टिप्रयुक्तं दद्यात्स्त्रीणां रक्तदोषापनुत्यै ॥ १०० ॥**

स्त्रियों के प्रदर, गर्भपात आदि के कारण उत्पन्न हुए रक्त दोष को नष्ट करने के लिये व्योष ( त्रिक ) और मुलेठी के कल्क से बनाये हुए क्वाथ में एरण्ड का तैल या लाल एरण्ड की जड़ के कल्क से सिद्ध किया हुआ तिलतैल मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ १०० ॥

अथ पुष्यानुगं चूर्णम्—

**पाठा जम्ब्वाम्रयोरस्थि शिलोद्भेदं रसाञ्जनम्।**
**अम्बष्ठां शाल्मलीं पिष्ट्वा समङ्गां वत्सकत्वचम् ॥ १०१ ॥**
**वाह्लीकबिल्वातिविषालोध्रतोयदगैरिकम्।**
**शुण्ठीमधुकमार्द्वीकं रक्तचन्दनकट्फलम् ॥ १०२ ॥**
**कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकीमधुकाञ्जनम्।**
**पुष्ये गृहीत्वा सञ्चूर्ण्य सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १०३ ॥**
**पिबेद्दशःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते।**
**दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ॥ १०४ ॥**
**यानिदोषं रजोदोषं श्यावं श्वेतारुणन्त्विदम्।**
**चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १०५ ॥**

पाठा, जामून की गुठली, आम की गुठली या गुठली के भीतर की मींगी, शिलाजीत ( या पाषाण भेद ), रसाञ्जन ( रसौत ), अम्बष्ठा, सेमल का गोंद, मंजीठ, कूडे की छाल, केशर ( या नागकेशर ), बेल के फल की सूखी गूदी, शुद्ध अतीस, पठानीलोध, नागरमोथा, शुद्धगैरिक, सोंठ, मुलेठी, मुनक्का, लाल चन्दन, कायफल, कट्वङ्ग अर्थात् श्योनाक की छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धाय के फूल या आंवले, महुए की छाल और शुद्ध सौवीराञ्जन इन सब औषधियों को

पुष्यनक्षत्र में समभाग लेकर ओंखली मे अच्छी तरह कूट खाण्ड कर महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को आधे तोले भर लेकर शहद् और चावलों के धोवन के साथ अर्श, अतीसार तथा स्त्रियों के रक्तप्रदर तथा बालकों के दोष अर्थात् वात-पित्तादि जन्यरोग, आगन्तुक रोग, योनिदोष, रजोदोष तथा काला, श्वेत और रक्तप्रदर आदि समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। यह पुष्यानुग नामक चूर्ण उपर्युक्त रोगों में अत्यन्त हितकर है। आत्रेय ऋषि ने इस चूर्ण को सर्व प्रथम बताया है ॥ १०१-१०५ ॥

अथ त्रिविधविषनिर्देशः—

**यत्कन्दमूलादिषु जायते ततो विषाद्विषं स्थावरमुग्रवीर्य्यम्।**
**सर्पादिकं जङ्गममुच्यते तद्द्रव्यैरनेकैः कृतकं च यत्तत् ॥ १०६ ॥**

कन्दमूल आदि पद से पत्र, पुष्प, फल, त्वक्, क्षीर, सार, निर्यास और धातु इन दश अधिष्ठानों में उत्पन्न होने वाला विष स्थावर विष कहलाता है। यह स्थावरविष अन्य विषों की अपेक्षा अत्यन्त उग्र वीर्य ( बल ) वाला होता है। सर्प तथा बिच्छू आदि में रहने वाला विष जङ्गमविष कहलाता है और विविध द्रव्यों के संयोग से जो विष उत्पन्न होता है वह कृत्रिमविष कहलाता है। इस प्रकार विष के स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम ये तीन भेद होते हैं ॥ १०६ ॥

अथ विषचिकित्सा—

अथ मेघनादप्रयोगः—

**घननादजटा हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १०७ ॥**

घननाद अर्थात् मेघनाद ( चोलाई ) जी जङ स्थावर और जङ्गम विष को नष्ट कर देती है। प्रायः चोलाई की जड़ को चावलों के धोवन के साथ पीस कर पिलाना चाहिए जैसा कि योगरत्नाकर में लिखा है। यथा—तण्डुलीयकमूलन्तु पीतं तण्डुलवारिणा। तक्षकेणापि सन्दष्टं निर्विषं कुरुते नरम् ॥ इति ॥ १०७ ॥

अथ सूत-शतावरीयोगः—

**ज्येष्ठाम्बुसूतराजेन पीताऽभीरुशिफा तथा ॥ १०८ ॥**

ज्येष्ठाम्बु अर्थात् चावलों का धोवन १ पल तथा पारद की १ या दो रत्ती भर भस्म या रससिन्दूर के साथ शतावर की जड़ का १ तोले भर चूर्ण मिलाकर सेवन करने से सर्पदष्ट में विशेष लाभ होता है। इस योग में १ तोले भर शहद् भी मिला देना चाहिए ॥ १०८ ॥

अथ सूत-सोमराजीयोगः—

**सुरभिशकृद्रसभावितशशिराजीचूर्णसंयुतः सूतः ।**
**स्थावरजङ्गमकृत्रिमविषजिद्गुञ्जामितोऽभ्यस्तः ॥ १०९ ॥**

सुरभि अर्थात् गाय के गोबर के रस से भावित कर के सुखाया हुआ सोमराजी ( शशिराजी=वाकुची ) का चूर्ण १ माशे भर लेकर इसको एक रत्ती भर पारद की भस्म या रससिन्दूर के साथ संयुक्त कर के मधु में मिला कर सेवन करने से स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम विष नष्ट हो जाता है ॥ १०९ ॥

अथ अभ्रकादिप्रलेपः—

**अभ्रकं तालकं ताप्यं शिलाजित्कुष्ठी रसः ।**
**देवदालीरसो व्योषं लेपनाद्विषनाशनम् ॥ ११० ॥**

अभ्रक का शुद्धचूर्ण, शुद्धहरताल, शुद्धस्वर्णमाक्षिक, शिलाजीत, शुद्धमैनसील, शुद्धपारद तथा त्रिकटु का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोट कर महीन चूर्ण बना लेवें । फिर इस चूर्ण को देवदाली के स्वरस या क्वाथ से सात वार भावित कर के घोट कर मलहम बना के रख लेवें । इस मलहम का सर्प काटे स्थान पर प्रलेप करने से विष नष्ट हो जाता है । इन्हीं पदार्थों की मिलितभस्म १ या २ रत्ती भर तथा शुद्धशिलाजीत १ माशे भर तथा देवदाली का स्वरस १ तोले भर और मधु १ तोले भर लेकर खाने के लिये भी देना चाहिए ॥ ११० ॥

अथ लूताविषे सूतभस्मप्रयोगः—

**रसेन चक्रमर्दस्य पुटितः पुटपाचितः ।**
**एरण्डस्नेहसंयुक्तः सूतो लूताविकारजित् ॥ १११ ॥**

शुद्ध पारद को चकमर्द ( चकवड ) के स्वरस से खरल करके दृढ मूषा में बन्द कर गजपुट में पकाना चाहिए । जब पारद अच्छी तरह मूर्च्छित हो जाय तब उसे फिर चकवड के स्वरस से घोट कर शराव सम्पुट में बन्द करके पुट पाक करना चाहिए । इस तरह बनाई हुई पारद की १ रत्ती भर भस्म को रेंडी के तैल में मिला कर खिलाने से तथा काटे हुए स्थान पर रेंडी के तैल में ही मिला कर प्रलेप कर देने से मकड़ी का विष तथा उसके द्वारा उत्पन्न फोड़े आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १११ ॥

अथ महासर्पविषे नागदमनीप्रयोगः—

**जलेन नागदमनीमूलं नस्ये प्रयोजितम्।**
**महासर्पस्य विषमं विषं नश्यति तत्क्षणात्॥ ११२॥**

नागदमनी की जड़ को जल से पीस कर नस्य देने से महाभयङ्कर सर्प का विषम विष तुरन्त ही उतर जाता है॥ ११२॥

अथ पञ्चाङ्गशिरीषप्रयोगः—

**जलपिष्टं शिरीषस्य पञ्चाङ्गं यः पिबेन्नरः।**
**स नागराजदष्टोऽपि मानुषो निर्विषो भवेत्॥ ११३॥**

शिरीष के पञ्चाङ्ग ( पत्रपुष्पफलमूल वल्कल ) के चूर्ण को जल में पीस कर सरबत बना के जो मनुष्य कभी २ पीता रहता है वह यदि नागराज (शेषनाग) से भी काट लिया जाय तो नहीं मरता है। अथवा भयङ्कर सर्प से काटे हुए पुरुष को शिरीष के पञ्चाङ्ग के चूर्ण को जल में पीस कर पिलाने से उस का विष-वेग उतर जाता है॥ ११३॥

अथ अश्वगन्धा-वन्ध्याप्रयोगौ—

**अश्वगन्धाभवं कन्दं वन्ध्याया वाऽथ यः पिबेत्।**
**तस्य देहान्तरं याति विषं स्थावरजङ्गमम्॥ ११४॥**

असगन्ध की जड़ अथवा बाँझककोड़े की जड़ को पानी में पीस कर पीने से स्थावर और जङ्गम विष उस मनुष्य के शरीर से बाहर-निकल जाता है॥ ११४॥

अथ वृश्चिकविषे व्योषादितैलम्—

**व्योषैरण्डस्नावपक्वं तु तैलं लेपायोक्तं वृश्चिकानां सदैव॥ ११५॥**

व्योष अर्थात् सोंठ, मरिच, पिप्पली और एरण्ड के बीजों की गिरी दोनों को सम भाग लेकर पत्थर पर पीस के कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चौगुना तिल तैल और तैल से चौगुना पानी लेकर सब को कलईदार कड़ाही में भर के मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब तैल सिद्ध हो जाय तब उसे छान कर शीशी में भर लेवें। यह तैल वृश्चिक ( बिच्छू ) काटे स्थान पर लेप करने के लिये श्रेष्ठ है॥ ११५॥

अथ मृतसञ्जीवनम्—

**ससिन्दुवारतगरं मृतसञ्जीवनं विषम्॥ ११६॥**

निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, तगर का चूर्ण, पूर्वोक्त मृतसञ्जीवन रस और शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण इन्हें सम भाग लेकर खरल में महीन कर के शीशी में भर देवें। ३ माशे भर इस चूर्ण को शहद् के साथ सेवन करने से तथा काटे स्थान पर लगाने से सब प्रकार का विष निर्विष हो जाता है ॥ ११६ ॥

अथ आखुविषे शिरीषप्रयोगः—

**शिरीषकुसुमं पत्रं विषमाखुविषापहम् ॥ ११७ ॥**

शिरीष के पुष्पों और पत्तों का चूर्ण तथा वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर खरल में एकत्र घोट कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को ३ माशे भर लेकर मधु से सेवन करना चाहिए तथा इसी को काटे स्थान पर लगाना भी चाहिए। इस तरह यह योग भक्षण और प्रलेपन दोनों विधियों से प्रयुक्त करने से चूहे के विष को नष्ट कर देता है ॥ ११७ ॥

अथ सर्पविषे देवदार्वादियोगः—

**देवदारु नतं मांसी लवली बाकुची विषम् ।**
**कुष्ठं च पानलेपाभ्यां समस्तविषनाशनम् ॥ ११८ ॥**

देवदारु, तगर, जटामांसी, लवली ( हरफा रेवड़ी की जड़ ), बाकुची, शुद्ध वत्सनाभविष और कूठ इन द्रव्यों को समभाग लेकर लोहे की ओंखली ( इमाम दस्ता ) में कूट खाण्ड कर महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को ४ माशे भर लेकर शहद् के साथ या जल में घोल कर पीने से तथा काटे हुए स्थान पर लेप करने से समस्त प्रकार का विष नष्ट हो जाता है ॥ ११८ ॥

अथ सर्पविषे टङ्कणप्रयोगः—

**सर्पादिविषनाशाय टङ्कणस्य रजोऽम्भसा ।**
**पानाभ्यञ्जननस्याद्यैरतिगुह्योपदंशिना ॥ ११९ ॥**

सर्प आदि जन्तुओं के विष को विनष्ट करने के लिये टङ्कण ( शुद्ध सुहागा ) का चूर्ण लेकर जल में घोलकर पिला देना चाहिए तथा काटे हुए स्थान पर प्रलेप करना चाहिए, तथा शुद्ध सुहागे को मधु में फेंट ( घोट ) कर नेत्रों में अञ्जन भी लगाना चाहिए। जिस मनुष्य के गुह्य स्थान ( जननेन्द्रिय ) पर उपदंश हो जाय उस के लिये भी टङ्कण अत्यन्त हितकर है। इस को मधु के साथ सेवन करने से तथा उपदंश की पिडकी पर लेप करने से उपदंश नष्ट हो जाता है ॥११९॥

अथ वृश्चिकविषे मनोह्वादिगुलिका—

**मनोह्वा सैन्धवं हिङ्गुमालतीपल्लवानि च।**
**गोशकृद्रसपिष्टानि गुलिका वृश्चिकापहा ॥ १२० ॥**

शुद्ध मैनसिल, सैन्धव लवण, घी में भूनी हुई हींग और चमेली के पत्ते इन्हें समभाग लेकर कूट खाण्ड के चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को गाय के गोबर के रस में दिन भर घोट कर गोलियां बना लेनी चाहिए। इन गोलियों के सेवन करने से तथा जल में घिस कर काटे हुए स्थान पर लगाने से वृश्चिक (बिच्छू) का विष नष्ट हो जाता है ॥ १२० ॥

अथ वृश्चिकविषे पलाशबीजगुलिका—

**अर्कपयसा दिवा ब्राह्मतरोर्भावितैर्मुहुर्बीजैः।**
**गुलिका कृता प्रयत्नाद् वृश्चिकविषमाशु नाशयति ॥ १२१ ॥**

ढाक (पलाश) के बीजों का चूर्ण बना कर आक के दुग्ध से बहुत वार (७ वार) भावित करके घोट कर एक २ माशे भर की गोलियां बनाके सुखा कर शीशी में भर देवें। इन गोलियों को मधु के साथ सेवन करने से तथा जल से पीस कर काटे हुए स्थान पर लेप करने से वृश्चिक का विष शीघ्र ही उतर जाता है ॥ १२१ ॥

अथ गरविषे कनकादिवटी—

**कनकसारसुतीक्ष्णनिदिग्धिका हपुषासिद्धकलांशनिषेवणात्।**
**जयति साधु युवा धनकाङ्क्षया गणिकया परिदत्तगरौषधम् ॥ १२२ ॥**

कनक अर्थात् धत्तूरे की जड़ का चूर्ण या स्वर्णभस्म, सार अर्थात् वङ्गभस्म, तीक्ष्ण लोहे की भस्म, कटेरी की जड़ का चूर्ण, हाऊबेर का चूर्ण, सिद्ध अर्थात् पारद की भस्म या रससिन्दूर, कला अर्थात् शुद्धमनःशिला इन सब को सम भाग लेकर खरल में एकत्र पीस के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को एक माशे भर ले कर मधु के साथ सेवन करने से धनप्राप्ति की इच्छा से वेश्या के द्वारा युवा पुरुष को दिया हुआ विष या विषैली औषधि का प्रभाव नष्ट हो जाता है और वह साधु अर्थात् महाजन (धनिक) युवा पुरुष बच जाता है ॥ १२२ ॥

अथ सविषान्ने वृक्षाम्रादियोगः—

**पुराणवृक्षाम्लयुतं कटुत्रयं नरेण भुक्तं त्वशनावसाने।**

असारवृत्तावलयाऽर्थकाङ्क्षया सहान्नदत्तं विषमाशु नाशयेत् ॥ १२३ ॥

भोजन करने के पश्चात् पुरानी इमली और त्रिकटु के चूर्ण को बराबर लेकर खिला देने से दुष्ट चरित्र वाली ( वेश्या ) द्रव्याभिलाषिणी अबला के द्वारा खाद्य अन्न के साथ मिलाकर दिया हुआ गरल विष भी निर्विष हो जाता है ॥१२३॥

अथ तार्क्ष्यसूतः—

सूतं गन्धं टङ्कणं हेमयुक्तं घर्षेद्यामं मेघनादीरसेन ।
गोलं कृत्वा कान्तपाषाणमूषामध्ये क्षिप्त्वा भूधरे तं पुटेत ॥
एषाद्धर्षेन्मेघनादीरसेन सूतः सिद्धस्त्वेषतार्क्ष्यो विषारिः ॥१२४॥

शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्ध-टङ्कण और स्वर्णभस्म इन्हें बराबर२ लेकर दिनभर खरल में घोट के चूर्ण बना लेवें । फिर चोलाई के स्वरस के साथ एक प्रहर तक खरल करके गोला बनाकर कान्तपाषाण की मूषा के भीतर बन्द करके भूधर यन्त्र में रखकर पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल यन्त्र से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके मेघनाद ( चोलाई ) के स्वरस के साथ दिन भर घोट के सुखाकर शीशी में भर देवें । इस तरह अन्य औषधियों के साथ सिद्ध हुआ यह सूत ( पारद ) तार्क्ष्यरस कहलाता है । यह रस विष को तुरन्त निर्विष कर देता है ॥ १२४ ॥

अथ विषहररसः—

तार्क्ष्यं वन्ध्या भक्षयेद्रक्तिमानं सूतं तस्माद्याति नाशं विषाणि ॥१२५॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
क्षुद्ररोग-गुह्यरोग-स्थावर-जङ्गमविषप्रतिकारो नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

उपर्युक्त तार्क्ष्य रस को १ रत्ती भर लेकर बांझककोड़ी के कन्द के चूर्ण और शहद के साथ मिलाकर सेवन करने से सर्व प्रकार के जङ्गम और स्थावर विष नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

इति श्रीकृष्णाभजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां
रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्य-भाषा-टीकायां क्षुद्ररोग-गुह्य-
रोग-स्थावर-जङ्गमविष प्रतिकारो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

# षड्विंशोऽध्यायः।

अथ जरारोगचिकित्सा—

अथ रसायनगुणाः—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम्॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात्॥ १॥

रसायन गुण को करने वाले रस या काष्ठ ओषधियों के नियमपूर्वक सेवन करने से दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, श्रवण किये हुए निखिलज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि, आरोग्य, तरुण अवस्था, प्रभा, शरीरवर्ण (सुन्दर स्वरूप) और स्वर का औदार्यता (महत्व), देह और इन्द्रियों के बल का वृद्धि, वाणी का सिद्धि, पुष्टि और कान्ति आदि समग्रगुण प्राप्त होते हैं॥ १॥

अथ जराया निदानम्—

पन्थाः शीतं कदन्नानि वयोवृद्धाश्च योषितः।
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः॥ २॥

ज्यादा दिन तकरास्ते में चलते रहना, शीत तथा शीतल पदार्थों का अत्यन्त सेवन, जीवद्रव्य (विटामिन) से रहित रुक्षशुष्कादि खराब अन्न का निरन्तर सेवन करना, अपने अधिक अवस्था वाली या वृद्ध स्त्री के साथ बार २ सम्भोग करना और अपने मन के प्रतिकूल आहार विहारादिकों का गरीबी के कारण या पराधीनता के कारण निरन्तर परिशीलन करना ये पांच जरा (बुढ़ौती) के कारण हैं। अर्थात् इन कारणों से युवा पुरुष भी वृद्ध के समान दुर्बल और रोगग्रसित हो जाता है॥ २॥

अथ वार्धक्यहररसायनम्—

हलिनीरससम्पिष्टौ तुल्यांशौ रसगन्धकौ।
हस्तिपर्णीलवलिकामत्स्याक्षीकल्कवेष्टितौ॥
त्रिःपक्वौ मूकमूषायां सम्योगौ वार्धकापहौ॥ ३॥

शुद्धपारद और शुद्धगन्धक इन दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बना के लाङ्गली की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ दिन भर घोट के गोला बना लेना चाहिए। पश्चात् हस्तिकर्ण पलाश

की जड़, लवलिका अर्थात् हरफारेवडी की जड़ और मच्छेछी इन तीनों को समभाग लेकर पत्थर पर जल में पीस कर कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क से उपर्युक्त रसगन्धक के गोले को एक २ अङ्गुल मोटा लपेट ( अर्थात् गोले के ऊपर एक २ अङ्गुल मोटा कल्क का लेप ) कर अन्धमूषा में गोले को बन्द करके गजपुट या भूधरपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से गोले को निकाल कर खरल में समभाग गन्धक के साथ घोट के लाङ्गली की जड़ के स्वरस से भावित करके घोट कर गोला बना लेवें। फिर इस गोले को हस्तिपर्ण्यादि औषधियों के कल्क से पूर्ववत् लपेट कर अन्धमूषा में बन्द करके पाक करें। इस प्रकार तीन बार पुट देकर खरल में महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। एक रत्ती भर यह रस प्रति दिन त्रिकटु और मधु या मक्खन के साथ मिला कर सेवन करने से जरा रोग को नष्ट कर देता है ॥ ३ ॥

अथ उदयादित्यरसः—

**आवर्तिते रसपलं क्षिप्त्वा द्विपलगन्धके।**
**आर्द्रकद्रवमुष्टीनां विंशत्या मर्दितं पचेत् ॥ ४ ॥**
**मृद्गूढताम्रमूषायां तं गुञ्जाप्रमितं रसम्।**
**ससर्पिर्नागरं भुक्त्वा तप्ताम्बुप्रसृतं पिबेत्।**
**रसोऽयमुदयादित्यः स्याज्जरारजनीहरः ॥ ५ ॥**

दो पल भर शुद्धगन्धक लेकर उसको कड़ाही में डाल कर तपावें। जब वह पिघल ( आवर्तित हो ) जाय तब उसमें १ पल भर शुद्ध पारद डाल कर अच्छी प्रकार कलच्छी से मर्दन कर के मिलाकर कड़ाही को उतार लेवें। इस पारदगन्धक चूर्ण को पत्थर की खरल में डाल कर अच्छी प्रकार दिनभर घोट कर कज्जली बना लेनी चाहिए। कुछ टीकाकारों ने केवल पारद को द्विगुण गन्धक् के साथ घोट कर कज्जली बनाने को लिखा है, उन्होंने गन्धक को द्रुत करने का नहीं लिखा है। अस्तु इस कज्जली को २० पल भर अदरखस्वरस से घोट कर गोला बना के सुखा लेवें। इस गोले को ताम्बे की मूषा में बन्द कर के ऊपर से कपड़ मिट्टी कर के सुखा कर गजपुट में पकावें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर अच्छी तरह महीन चूर्ण कर के शीशी में देना दैवा चाहिए। एक रत्ती भर रस को घृत और सोंठ के चूर्ण के

साथ प्रतिदिन सेवन कर के ऊपर से १ प्रसृत ( दो पल ) भर मन्दोष्ण जल पीना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह उदयादित्य नामक रस बुढ़ौती ( जरा ) रूपी रात्रि को नष्ट करता है ॥ ४–५ ॥

अथ सर्वरोगहररसायनम्—

मूषां तिन्दुकविस्तारामायामे षोडशाङ्गुलाम्।
भाण्डबाह्यस्थपादांशां बालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥ ६ ॥
तस्यां निवेश्य द्विगुणगन्धगर्भगतं रसम्।
याममात्रं पचेच्चुल्ल्यां क्षिपेद्गन्धस्य तूद्गमे ॥ ७ ॥
वायसीनागिनीमत्तमेघनादरसं क्रमात्।
स रसः सर्वरोगघ्नो वलीपलितजिद्भवेत् ॥ ८ ॥

तिन्दुक ( तेन्दू ) के फल के समान चौड़ी और सोलह अङ्गुल लम्बी आतशी शीशी के समान एक मूषा लेकर उस के तीन भाग अर्थात् १२ अङ्गुल तक के भाग को चौड़े मुख वाली नांद ( या भाण्ड ) में रक्खें तथा शेष चौथाई ( ४ अङ्गुल ) भाग को नांद के बाहर रखना चाहिए। फिर भाण्ड को बालू से भर देवें तथा मूषा के भीतर शुद्धपारद की द्विगुण शुद्धगन्धक के साथ की हुई कज्जली को भर कर खुले मुख ही एक प्रहर तक पाक करना चाहिए तथा इतने समय में गन्धक के जल कर धूएं के रूप में निकल जाने पर वायसी ( कौआठोडी या मकोय ), नागिनी ( नागदौना या पान ), धत्तूर और चोलाई इन के दो २ पल भर रस को क्रम से डालते रहना चाहिए। जब सब का स्वरस मूषा में गिर जाय और अग्नि के संयोग से सूख जाय तब भाण्ड को चूल्हे से उतार कर स्वाङ्ग शीतल होने के पश्चात् मूषा के भीतर से सिद्ध रस निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। यह रस मलाई आदि स्निग्ध अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वलीपलितरोग को नष्ट करता है ॥६–८॥

अथ मासिकरसायनम्

रसगन्धकमध्वाज्यशिलाजत्वम्लवेतसम्।
द्विमाषप्रमितं वेगान्मासमात्राज्जरां जयेत् ॥ ९ ॥

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर कार्पासपुष्प या वटशुङ्ग के क्वाथ से सात बार भावित करके सुखा

कर कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भर के यथाविधि बालुकायन्त्र में पाक कर लेवें। स्वाङ्गशीतलयन्त्र में से आतसी शीशी को निकाल कर शीशी की नाल में लगे हुए अरूण वर्ण के सिद्ध रस को युक्ति से निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस रस को दो रत्ती भर लेकर एक तोले भर शहद्, दो तोले भर मक्खन, एक माशे भर शुद्ध शिलाजीत, दो माशे भर अम्लबेंत का चूर्ण इन के साथ मिला के प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस तरह केवल एक मास तक सेवन करने से यह रस बुढौति को नष्ट कर देता है अथवा रस अर्थात् रस सिन्दूर, शुद्धगन्धक, शहद्, घृत, शिलाजीत और अम्लबेंत का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोट कर चूर्ण बनाके या दो २ माशे भर की गोलियां बनाकर प्रतिदिन दुग्धादि अनुपान के साथ एक २ गोली एक मास तक सेवन करनी चाहिए ॥ ९ ॥

अथ षाण्मासिकरसायनम्—

विष्णुकान्ताऽरुणागस्तिक्षीरिणीतरडुलीयकैः।
रसगन्धकयोः पिष्टी स्त्रीस्तन्येन च मर्दिता ॥ १० ॥
यवास्तिला घृतक्षौद्रमेषामुद्वर्तनं जयेत्।
कार्श्यं जरां च षण्मासाद्विधत्ते वृद्धिमायुषः ॥ ११ ॥

शुद्धपारद और शुद्धगन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर विष्णुकान्ता ( अपराजिता ), अतिविषा, अगस्त्यपुष्प, क्षीरिणी अर्थात् क्षीरकाकोली या दुग्धिका और चोलाई इन के स्वरस से क्रमशः एक२ दिन तक घोटकर पिष्टी बना लेवें। फिर इस पिष्टी को स्त्री के अथवा गाय के दुग्ध के साथ दिन भर खरल करके सुखाकर शीशी में भर देवें। इस पिष्टी को १ से तीन रत्ती भर यथोचित मात्रा से मधुरस्निग्ध अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा यव ( जौ ) का आटा और तिलों का चूर्ण दोनों को बराबर लेकर घृत और शहद् के साथ फैण्ट ( मिला ) के शरीर पर प्रातः काल उबटन करना चाहिए तथा मन्दोष्ण जल से स्नान करना चाहिए। इस तरह ६ मास तक शौच, उबटन और स्नान संध्यादि कर्म के पश्चात् उपर्युक्त रस को सेवन करना चाहिए। यह योग शरीर की कृशता और बुढौती को नष्ट करके आयु की वृद्धि करता है ॥ १०-११ ॥

अथ पाक्षिकरसायनम्—

**शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहाऽभयापारदताप्यभक्षः।**
**आपूर्य्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥१२॥**

शुद्धशिलाजीत, वाय विडङ्ग का चूर्ण, लौहभस्म, हरड का चूर्ण, पारद अर्थात् पारदभस्म या रससिन्दर और स्वर्णमाक्षिकभस्म इन सबको समभाग लेकर खरल में घोटकर महीन चूर्ण करके शीशी में भर लेवें। इस रस को १ से ३ माशे तक यथाबलानुसार लेकर शहद् और घृत के साथ मिला के पन्द्रह दिन तक सेवन करना चाहिए तथा घृत दुग्ध के साथ भोजन करना चाहिए। इस तरह इस योग को एक पक्ष तक सेवन करने से क्षीण शरीर तथा रसरक्तादि धातुओं के अभाव से शुष्क देह वाला पुरुष पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान हृष्ट पुष्ट और कान्तिमान् हो जाता हैं ॥ १२ ॥

अथ हेमादिरसायनम्—

**हेम धात्रीफलं क्षौद्रं गायत्रीरसभावितम्।**
**लिहन्ननु पिबेत्क्षीरं दृष्टारिष्टोऽपि जीवति ॥ १३ ॥**

स्वर्ण की भस्म और आंवलों का चूर्ण दोनों को समभाग लेकर खैर की छाल के क्वाथ से सात दिन तक भावित करके घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को यथा बलानुसार ४ रत्ती से माशे भर तक लेकर शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से अच्छी तरह औटाया हुआ शर्करामिश्रित आधा सेर दुग्ध पी लेना चाहिए। इस तरह इस योग के प्रतिदिन सेवन करने से कृश और क्षीण धातु पुरुष मरण के अरिष्ट लक्षणों के प्रगट हो जाने पर भी जीवित रहता है। वास्तविक में यह योग अत्यन्त उत्तम है ॥ १३ ॥

अथ पिप्पल्यादिरसायनम्—

**मधुमागधिकाविडङ्गसारत्रिफलाहेम घृतं सितां च खादन्।**
**जरयाऽनवलीढदेहकान्तिः समधातुश्च समाः शतञ्च जीवेत् ॥१४॥**

मधु ( शहद् ), पिप्पली का चूर्ण, विडङ्ग का सार ( चूर्ण ), त्रिफला ( हरड़, बहेड़े, आंवलों ) का चूर्ण, स्वर्णभस्म, घृत और चीनी इन सब को समभाग लेकर खरल में घोट कर एक २ माशे भर की गोलियां बना लेनी चाहिए। इन गोलियों में से प्रतिदिन एक २ गोली घृत और शहद् के साथ सेवन करनी चाहिए तथा

ऊपर से चीनी मिला हुआ मन्दोष्ण दुग्ध पीना चाहिए। अथवा १ रत्ती भर स्वर्णभस्म, ४ रत्ती भर पिप्पली का चूर्ण, एक माशे भर विडङ्ग का चूर्ण और एक माशे भर त्रिफला का चूर्ण लेकर इन्हें परस्पर मिला कर एक तोले भर शहद, दो तोले भर घृत और ४ तोले भर चीनी के साथ मिला के सेवन करें तथा ऊपर से आध सेर दुग्ध पी लेवें। इस तरह इस योग के प्रतिदिन सेवन करते रहने से पुरुष बुढौती से मुक्त ( दूर ) रह कर हृष्ट पुष्ट शरीर तथा समधातु हो के सौ वर्ष तक आरोग्य और सुख पूर्वक जीता रहता है ॥ १४ ॥

अथाष्टमासिकरसायनम्—

**ज्योतिष्मतीनाम लता पीता पीतफलोज्ज्वला।**
**आषाढे पूर्वपक्षे स्याद्गृहीत्वा बीजमुत्तमम् ॥ १५ ॥**
**आहरेत्तिलवत्तैलं मुष्टिना चाऽपि तत्पचेत्।**
**क्षीरतुल्यं चतुर्थांशमाक्षिकं तैलशेषितम् ॥ १६ ॥**
**ततस्तत्कोलकर्पूरत्वग्जातिफलमिश्रितम्।**
**स्निग्धभाण्डगतं धान्येष्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ १७ ॥**
**पिबेत्सूर्योदये तैलात्पलं याति विसंज्ञताम्।**
**ततः संज्ञां शनैर्लब्ध्वा ततः क्रन्दति रोदिति ॥ १८ ॥**
**एवं मासे श्रुतिधरः परस्मिन्सूर्यसन्निभः।**
**तृतीये पूज्यते देवैश्चतुर्थे नैव दृश्यते ॥ १९ ॥**
**खेचरः पञ्चमे षष्ठे सिद्धैर्मिलति सप्तमे।**
**विष्णोः समदिनं जीवेज्जीवन्मुक्तोऽष्टमे भवेत् ॥ २० ॥**

ज्योतिष्मती नाम की लता पीली होती है और आषाढ महीने के शुक्लपक्ष में वह पीले रङ्ग के फलों से उज्वल अर्थात् शोभायमान होती है। उस समय ( आषाढ शुक्लपक्ष ) में उस लता के पके हुए फलों में से बीजों को मुष्टि से निकाल कर तिलों की तरह तैली से तैल निकलवा लेना चाहिए। फिर उस तैल के बराबर दुग्ध और तैल से चतुर्थांश ( चौथाई ) माक्षिक ( स्वर्णमाक्षिक ) का जल के साथ पत्थर पर पीसा हुआ कल्क तथा तैल से चौगुना जल लेकर सब को कलईदार भाण्ड या कडाही में डाल के मन्द अग्नि से पाक करना चाहिए। जब तैलमात्र शेष रह जाय तब उतार कर वस्त्र से छान के तैल ले लेना चाहिए।

चव्य, कपूर, दालचीनी और जायफल इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बना के तैल की अपेक्षा चौथाई भाग की मात्रा से उपर्युक्त तैल में मिला देवें तथा तैल को स्निग्ध भाण्ड या मृतबान में भर के धान के ढेर में गाड कर एक मास के लिये रख दें। एक मास के पश्चात् तैल को छान कर शीशी में भर देवें। फिर इस तैल में से १ पल भर तैल लेकर दुग्ध में मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिए। इस तैल के पीने से मनुष्य कुछ समय तक बेहोश हो जाता है पश्चात् धीरे २ उसकी बेहोशी नष्ट हो जाती है तथा वह चिल्लाता है और रोने लगता है। इस तरह प्रायः १ से दो घण्टे के बीच में मनुष्य स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है। बुभूक्षा लगने पर घृत, चीनी और दुग्ध के साथ भात खिलाना चाहिए। इस विधि के अनुसार प्रतिदिन एक २ पल भर तैल पीना चाहिए। एक मास तक इस तैल के यथाविधि पान करने से मनुष्य श्रुतिधर अर्थात् एक बार सूनी हुई बातों को धारण करने में समर्थ हो जाता है। दो महीने तक सेवन करने से सूर्य के समान उस के शरीर का तेज हो जाता है। तीन मास तक तैलपान करते रहने से देवताओं से पूजित होता है अर्थात् अन्य मनुष्य देवता के समान उस का आदर सत्कार करते हैं या देवता आकर उसे अपना प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। चार मास तक सेवन करते रहने से उसे अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं जिन के कारण वह सांसारिक मनुष्यों के चर्म चक्षु से अदृष्ट हो जाता है। पांच मास तक सेवन करते रहने से वह स्वेच्छा पूर्वक आकाश मार्ग में विचरण करने लगता है। ६ माश तक सेवन करने से सिद्ध पुरुषों के साथ उस का मिलन हो जाता है। सात मास तक तैल के सेवन करने से विष्णु के दिन के बराबर आयु वाला या विष्णु की अवस्था के बरा बर जीने वाला हो जाता है। इस तैल के आठ मास तक सेवन करते रहने से जीवन्मुक्त हो जाता है॥ १५-२०॥

अथ त्रिवार्षिकरसायनम्—

**भूमावरत्निमात्रायां ताम्रं तैलेन पूरयेत्।**
**षण्मासं तापयेदूर्ध्वं मृदुना तुषवह्निना॥**
**पीत्वा माषादिनिष्कान्तं तत्त्रिवर्षान्महाकविः॥ २१॥**

पृथ्वी में एक हाथ गहरा गर्त (गढहा) खोद कर उसमें ताम्र का घड़े के आकार का या चौड़े मुख का पात्र रख कर उसमें माल कंगुनी अथवा तिल्ली

का तैल भर कर शराव से मुख बन्द कर के कपड़मिट्टी कर देवें। फिर उस गड्ढे को मिट्टी आदि से समानान्तर कर के तुष ( यव के आटे की भूस्सी ) आदि की मन्द २ अग्नि से ६ मास तक तपाना चाहिए। इस प्रकार ६ मासतक तपा कर वहां की मिट्टी को हटा के भीतरी पात्र को निकाल कर उसमें के तैल को छान के शीशी में भर देवें।(कुछ टीकाकारों ने 'छ मास तक पृथ्वी में तैलपूर्ण ताम्रपात्र को गाड़ ( रख ) कर फिर एकप्रहर तक तुषों की मन्द २ अग्नि से पका के छानकर शीशी में भर लेवें', इस प्रकार की विधि लिखी है)। इस तैल को प्रथमदिन १ माशे भर लेकर मन्दोष्ण दुग्ध में मिला के चीनी डाल कर पान करें। दूसरे दिन २ माशे भर, तीसरे दिन तीन माशे भर तथा चौथे दिन चार माशे भर तैल लेकर दुग्ध में मिलाकर पीवें। चार दिन के बाद तीन वर्ष तक प्रतिदिन चार २ माशे भर इस तैल के यथाविधि सेवन करते रहने से वह मनुष्य सर्व रोगों ( जरा आदि ) से मुक्त होकर महाकवि हो जाता है ॥ २१ ॥

अथ षष्ठ्यधिकत्रिशतवर्षायुष्कररसायनम्—

**तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं चतुष्प्रस्थं पयः पचेत्।**
**द्विप्रस्थशेषं तत्पीत्वा मासं त्रिपुरुषायुषः ॥ २२ ॥**

तिलों का या मालकङ्गनी का तैल १ प्रस्थ ( ६४ तोला ), गाय का घी १ प्रस्थ और दुग्ध ४ प्रस्थ भर लेकर सब को कलईदार कडाही में या भाण्ड में डाल कर भट्टी पर चढाके मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब दो प्रस्थ भर स्नेह मात्र शेष रह जाय तब भाण्ड को उतार कर स्नेह को छान के शीशी में भर देवें। इस स्नेह को प्रायः चार तोले और चोअन्नी भर लेकर मन्दोष्ण दुग्ध में मिला के प्रतिदिन पीना चाहिए। इस तरह एक महीने तक इस तैल को यथाविधि पीने से तीन पुरुषायुष अर्थात् ३०० वर्ष और ७५ दिन तकजीवित रहने वाला मनुष्य हो जाता है ॥ २२ ॥

अथ सहस्रवर्षायुष्कररसायनम्—

**तैलं पिबेद्घृतक्षौद्रक्षीरान्यतममिश्रितम्।**
**कुर्याच्च तैलमध्वाज्यैर्नस्यं क्षीरघृताशिनः ॥**
**भुक्त्वा शतायुः षण्मासात्सहस्रायुस्त्रिवर्षतः ॥ २३ ॥**

दुग्ध और घृत के साथ भोजन करने के पश्चात् घृत, मधु और दुग्ध इन

में से किसी एक द्रव्य के साथ मालकङ्गनी का तैल पीना चाहिए तथा तैल, शहद् और घृत इन तीनों को बराबर लेकर मिला के नस्य लेना चाहिए तथा सन्ध्या को दुग्ध, घृत, चीनी आदि स्निग्ध मधुर द्रव्यों के साथ भोजन करना चाहिए। इस प्रकार इस योग के ६ मास तक सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तथा १ वर्ष तक निरन्तर सेवन करने से १ हजार वर्ष तक जीवित रहता है ॥ २३ ॥

अथ त्रिफलारसायनम्—

**मधुकेन तुगाक्षीरी पिप्पली क्षौद्रसर्पिषा।**
**विडङ्गपिप्पलीभ्यां च त्रिफला लवणेन च ॥ २४ ॥**
**संवत्सरप्रयोगेण स्मृतिमेधाबलप्रदा।**
**भवत्यायुःप्रदा पुंसां जरारोगनिबर्हिणी ॥ २५ ॥**

१ शहद् के साथ वंशलोचन का चूर्ण, २ शहद् और घृत के साथ पिप्पली का चूर्ण, ३ वायविङ्ग और पिप्पली के समभागचूर्ण के साथ त्रिफला का चूर्ण, ४ सैन्धव लवण के साथ त्रिफला का चूर्ण इस प्रकार इन चार योगों में से किसी एक योग का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस विधि से इन योगों में से किसी एक योग को वर्ष भर तक सेवन करते रहने से पुरुषों को स्मरणशक्ति, मेधा ( धारणा शक्ति ), बल और आयु की वृद्धि होती है। ये योग जरा ( बुढौति ) तथा अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करते हैं ॥ २४-२५ ॥

विमर्शः—अथवा यहां पर केवल त्रिफला ही को भिन्न२ ( मधु से लवणान्त ) अनुपानों के साथ सेवन करने का तात्पर्य समझना चाहिए। योगकल्पना—१ शहद् के साथ त्रिफला, २ वंशलोचन और त्रिफला, ३ पिप्पली और त्रिफला, ४ शहद् घृत और त्रिफला, ५ वायविडङ्ग, पिप्पली चूर्ण और त्रिफला, तथा ६ सैन्धव लवण और त्रिफला, इस तरह इन ६ योगों में से किसी एक योग का वर्ष भर तक निरन्तर सेवन करने से उपर्युक्त गुण होते हैं। इन ६ योगों की कल्पना का सादृश्य वाग्भटोक्त विविधानुपानप्रयुक्त त्रिफला रसायन के साथ हो सकता है अतः यही अर्थ विशेष महत्त्व का समझा जाता है। तथा च वाग्भटे—मधुकेन तुगाक्षीर्या पिप्पल्या लवणेन च। पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ॥ सितया वा समायुक्ता समायुक्ता रसायनम्। त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेधायुः स्मृतिबुद्धिदा। इति।

अथ द्वितीयत्रिफलारसायनम्—

**खदिरासनभृङ्गसातला कृमिशत्रूदकभाविता मुहुः।**

**गुडमाक्षिकसर्पिरन्विता त्रिफला हन्ति जरां च वत्सरात् ॥२६॥**

खदिर का सार ( कत्था ), अर्जुन ( पीतशाल या बिजैसार ), भृङ्गराज, सातला ( बिना कांटोंवाला अङ्गुली के समान शाखाओं से युक्त थूहर भेद ) और वायविडङ्ग इनके स्वरस तथा स्वरस न मिलने वाले पदार्थों के क्वाथ के साथ पृथक् २ सात २ बार त्रिफला के चूर्ण को भावित करके अच्छी तरह घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार भावित त्रिफला चूर्ण को उचित मात्रा में प्रतिदिन गुड़, शहद् और घृत के साथ मिला के सेवन करना चाहिए। इस विधि से यह त्रिफला योग या रसायन एक वर्ष तक सेवन करने से जरारोग का विनष्ट कर देता है ॥ २६ ॥

अथ तृतीयत्रिफलारसायनम्—

**त्रिफलामसनोदकेन पिष्ट्वा रजनीपर्युषितामयः कपाले।**
**मधुरां मधुना लिहन्निहन्ति स्थविमानं जरसं गदांश्च सर्वान् ॥ २७ ॥**

त्रिफला के चूर्ण को लोहे की खरल में बिजैसार की छाल के क्वाथ के साथ दिन भर घोटकर खरल को ढक के रात भर के लिए रख देवें। फिर दूसरे दिन इसमें शहद् मिला के घोटकर लेह बना के रख देवें। यह त्रिफला रसायन प्रति दिन सेवन करने से स्थूलता ( शरीर की अनावश्यक या बल रहित मोटाई ), बुढौती और अन्य सर्व प्रकार के रोगों को विनष्ट करता है ॥ २७ ॥

अथ षडङ्गरसायनम्—

**कान्ताभ्रकशिलाधातुविषसूतकमाक्षिकम्।**
**शोलितं मधुसर्पिर्भ्यां व्याधिवार्धक्यमृत्युजित् ॥ २८ ॥**

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, शिलाधातु अर्थात् शिलाजतु, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण सूतक अर्थात् रससिन्दूर और स्वर्णमाक्षिकभस्म इन सब का समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इस षडङ्ग रसायन को १ से ३ रत्ती भर तक यथा बलानुसार लेकर शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह षडङ्गरसायन नाना प्रकार की व्याधियां, वार्धक्य ( बुढौति ) और अकाल मृत्यु को नष्ट करता है ॥ २८ ॥

अथ वार्षिकरसायनम्—

**गन्धं लौहं भस्म मध्याज्ययुक्तं सेव्यं वर्षं वारिणा त्रैफलेन।**

**शुभ्रे केशे कालिमा दीर्घदृष्टिः पुष्टिर्वीर्यं जायते दीर्घमायुः ॥ २९ ॥**

शुद्धगन्धक और लौहभस्म दोनों को समभाग लेकर त्रिफला के क्वाथ के साथ तीन दिन तक खरल करके शुष्क चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस योग को १ वल्ल ( ३ रत्ती ) भर की मात्रा से दिन में दो वार शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस तरह एक वर्ष तक इस योग के सेवन करते रहने से शिर के पके हुए सफेद बालों पर कालिमा आ जाती है, दृष्टिशक्ति बढ जाती है तथा वीर्य की पुष्टि और दीर्घायु हो जाती है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठादिहररसायनम्—

**नीलज्योतिः कान्तचूर्णं रुदन्ती धात्रीपत्रैर्वारिणा त्रैफलेन।**
**मध्वाज्याभ्यां वत्सरार्धप्रयोगात्कुष्ठं शुभ्रं रोगजातं निहन्ति ॥३०॥**
**देहे दार्ढ्यं दिव्यदृष्टिः सुपुष्टिर्वीर्यं शौर्यं जायते दीर्घमायुः ॥३१॥**

नीलज्योति अर्थात् शुद्ध तुत्थक और कान्तलौह की भस्म इन दोनों को समभाग लेकर रुद्रवन्ती के स्वरस, आंवले के पत्तों का स्वरस और त्रिफला के क्वाथ से पृथक् २ सात २ वार खरल करके शुष्क चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस रसायन को ३ रत्ती भर लेकर प्रतिदिन शहद् और घृत के साथ दिन में दोवार सेवन करना चाहिए। इस प्रकार आधे वर्ष तक इस प्रयोग के सेवन करने से श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है, शरीर की पुष्टि, दिव्यदृष्टि, वीर्यवृद्धि, शूरता और दीर्घायु उत्पन्न होती है ॥ ३०–३१ ॥

अथ ज्योतिष्मतीतैलरसायनम्—

**ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्यं सगन्धं गुञ्जावृद्ध्या सेवयेन्माषमात्रम्।**
**यावच्च स्याद्यस्तु स प्राप्य मूर्तिमेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियमा ॥३२॥**

ज्योतिष्मती ( मालकङ्गनी ) का उपर्युक्त विधि से निकाला हुआ तैल, गाय का घृत और शुद्धगन्धक इन तीनों को समभाग लेकर खरल में अच्छी प्रकार घोट कर काच के बर्तन में भर देवें। इस रसायन को प्रथम दिन १ रत्ती भर सेवन करना चाहिए तथा प्रतिदिन एक २ रत्ती की मात्रा बढानी चाहिए, इस तरह जब १ माशे भर की मात्रा हो जाय तब मात्रा को वृद्धि न करें। फिर १ माशे भर की मात्रा के अनुसार इस रसायन को जब तक इच्छा हो तब तक सेवन करते रहना चाहिए। इस रसायन के प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य को

मूर्ति अर्थात् शरीर नियक्ष्मा ( रोगरहित ) हो जाता है तथा उसकी धारणा शक्ति बढ जाती है और दिव्यदृष्टि हो जाती है ॥ ३२ ॥

अथ सर्वरोगान्तकरसायनम्—

कान्ताभ्रत्रिफलाविडङ्गरजनीताप्याब्ददेवद्रुम-
व्योषैलाग्निपुनर्नवाद्रिगिरिजाङ्कोलैः समं गुग्गुलुम् ।
पिष्ट्वा भृङ्गजलेन सूक्ष्मगुलिकां खादेद्यथासात्म्यतो
मेदःश्लेष्मसमीरणोल्बणगदेष्वन्येषु वा पूरुषः ॥ ३३ ॥

कान्तलौह की भस्म, अभ्रक की भस्म, त्रिफला का चूर्ण, विडङ्ग का चूर्ण, हरिद्रा का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, नागरमोथे का चूर्ण, देवदारू का चूर्ण, त्रिकटु का चूर्ण, इलायची का चूर्ण, चित्रक की जड़ का चूर्ण, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण, अद्रिज अर्थात् शुद्धशिलाजतु, गिरिज अर्थात् शुद्ध गैरिक और अङ्कोल के बीजों का चूर्ण इन सब को समभाग लेकर तथा सब के बराबर शुद्ध गूगल को खरल में एकत्र मिला के घोटकर अत्यन्त महीन चूर्ण बना लेना चाहिए । फिर इस चूर्ण को भृङ्गराज के स्वरस के साथ सात दिन तक खरल करके एक २ माशे भर की गोलियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर देवें । इस सर्वरोगान्तक रसायन की एक २ गोली प्रतिदिन मेद, कफ और वायु के दूषित होने से उत्पन्न हुए भयङ्कर रोगों में तथा अन्य रोगों में सेवन करनी चाहिए । जैसी व्याधि हो उसके अनुसार अनुपान की व्यवस्था करनी चाहिए । इस रसायन को प्रायः ३ से ६ मास तक निरन्तर सेवन कर सकते हैं ॥ ३३ ॥

अथ कान्तरसायनम्—

कान्तं तुल्याभ्रसत्त्वं चरणपरिमितं हेम तत्तुल्यमर्कं
वैक्रान्तं ताप्यरूप्यं कृमिहरकटुकैस्तुल्यभागैः समेतम् ॥
लीढं देवद्रुतैलैर्विरचयति नृणां देहसिद्धिं समृद्धां
पथ्यं कल्पोक्तमुक्तं हरति च सकलान् रोगपुञ्जाञ्जवेन ॥ ३४ ॥
तदेत्सर्वरोगघ्नं रम्यं कान्तरसायनम् ।
सेव्यं वृष्यं सुपुत्रीयं मङ्गल्यं दीपनं परम् ॥ ३५ ॥

कान्तलौह की भस्म १ तोला, अभ्रकभस्म का सत्त्व १ तोला, स्वर्णभस्म ½ तो० ( चौअन्नी भर ), स्वर्ण की भस्म के बराबर ( चौअन्नी भर ) ताम्र की

भस्म, वैक्रान्तभस्म १ तो०, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तो०, रौप्यमाक्षिकभस्म १ तो० और उपर्युक्त सब औषधियों के बराबर वायविडङ्ग और कुटकी का मिलित चूर्ण लेकर सर्व द्रव्यों को खरल में एकत्रित कर के अत्यन्त महीन पीस के चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस रसायन को तीन रत्ती भर लेकर दिन में दो वार देवदारू के तैल के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह कान्तरसायन मनुष्यों के शरीर को सुदृढ, सुन्दर और नीरोग करता है। भिन्न २ कल्पों (योगों) में कहे हुए पथ्यों के साथ और अनुपानों के साथ यह रसायन सेवन करने से सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है। यह कान्तरसायन सर्वरोगों का नाशक, देह को रम्य (सुन्दर) बनाने वाला, सब अवस्था में निःशङ्क सेवन करने योग्य, वृष्यगुणों को करने वाला, पुत्ररत्न देने वाला, शरीर का मङ्गल (कल्याण) करने वाला तथा प्रणष्ट हुई अग्नि को अत्यन्त प्रदीप्त करने वाला है॥ ३४–३५॥

अथान्यत्रिफलारसायनम्—

**रात्रौ कान्तशरावके त्रिकफला(१) भिन्ना जलैः स्वादुभिः**
**प्रातर्मुष्टिमिताः खलु प्रतिदिनं षण्मासमासेविताः।**
**हन्युः पित्तकफामयान्बहुविधं कुष्ठं प्रमेहांस्तथा**
**पाण्डुं यक्ष्मगदं च कामलगदं पथ्यं च तक्रं तथा॥ ३६॥**

रात्रि के समय कान्तलौह के द्वारा बनाये हुए शराव (कटोरे) में एक मुष्टि के बराबर अर्थात् एक पल भर समभाग त्रिफला डालके स्वादु (मधुर शीतल) जल से शराव को भर कर ढक के रख देवें। प्रातः काल इन फलों की गुठली को निकाल कर खा लेवें तथा ऊपर से उसी जल को पी जाना चाहिए। इस तरह छ मास तक तीनों (हरड, उहेड़ा, आंवला) के फलों को सेवन करते रहने से ये फल पित्त और कफ की विकृति से उत्पन्न हुए सर्व रोग तथा विशेष कर विविध प्रकार के कुष्ठ रोग, प्रमेह, पाण्डु रोग, राजयक्ष्मा और कामला रोग को नष्ट करते हैं। इन फलों के सेवन करते समय भोजन के साथ मट्ठे को अधिक पीना चाहिए। जिन पुस्तकों में "त्रिक फलाः" के साथ में "सुचणकाः"

(१) "सुचणकाः" "त्रिकफलाः" इत्यत्र इति पाठान्तरं। परन्तु चणकेषु कुष्ठयक्ष्मादिहरगुणस्याद्दष्टत्वान्नैव सम्यग्विभाति।

ऐसा पाठान्तर है वहां एक मुट्ठी भर काबुली चनों को कान्तलोह के कटोरे में जल से भीगो कर सुबह शौचादि से निवृत्त हो कर खावें तथा ऊपर से उस जल को भी पी जाना चाहिए ॥ ३६ ॥

अथ द्वितीयकान्तरसायनम्—

**त्रिफलामस्तुसंयुक्तं कान्तं सर्वरसायनम् ॥ ३७ ॥**

कान्त अर्थात् कान्त लोह को सहस्रपुटीभस्म को एक २ रत्ती भर लेकर त्रिफला के क्वाथ या चूर्ण और मस्तु ( दही के पानी ) के साथ प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या के समय सेवन करते रहना चाहिए। यह योग अत्यन्त रसायन गुण प्रद है, अथवा सर्व प्रकार के रसायनशक्तिप्रद योगों में श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥

अथ तृतीयकान्तरसायनम्—

**एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं कान्तस्य दिव्यामृतं**
**सम्यक्सिद्धरसायनं त्रिकटुकोवेल्लाज्यमध्वन्वितम् ॥**
**हन्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं**
**प्रोक्तं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः ॥ ३८ ॥**

त्रिकटु के चूर्ण, वायविडङ्ग के चूर्ण, घृत और मधु ( शहद ) के साथ प्रति दिन १ निष्क भर कान्तलोह की अपुनर्भव अर्थात् निरूत्थ की हुई भसित ( भस्म ) दिन में चार बार सेवन करनी चाहिए। इस तरह प्रायः एक मास तक निरन्तर सेवन करने से यह कान्त लोह भस्म मनुष्य के देह में देवताओं के अमृत के समान गुणों को उत्पन्न करती है। यह भस्म बहुतवार अनुभव करने से सिद्ध रसायन प्रतीत हुई है तथा जरा ( बुढ़ौति ) और मृत्यु तथा जरा के कारण उत्पन्न व्याधियों को विनष्ट कर देती है। यदि दूषित वीर्य्य वाला पुरुष और दूषित मासिक धर्म वाली स्त्री इस भस्म को उपर्युक्त अनुपानों के साथ सेवन करें तो उनका वीर्य्य और रज शुद्ध होकर सत्पुत्र उत्पन्न होता है। प्राचीन काल में श्री शङ्कर भगवान् ने कालयवन नामक राक्षस के पिता को पुत्र की उत्पत्ति के लिये इस प्रयोग को बताया था ॥ ३८ ॥

**विमर्शः**—एक निष्क चार माशे के बराबर होता है ( माशैश्चतुर्भिः शाणः स्यात् स निष्कष्टङ्क एव च ) इस लिये त्रिकटु का चूर्ण ½ मा०, वायविडङ्ग का चूर्ण ½ मा० और शहद १ मा०, घृत डेढ़ मा० तथा शेष अर्थात् आधे माशे ( ४ रत्ती ) भर कान्त-

लौहभस्म लेकर सब को मिला के सेवन करें। इस प्रकार दिन में दो बार सेवन करना चाहिए।

अथ कान्ताभ्रकरसायनम्—

सिद्धमभ्रं समं कान्तं मर्दयेदार्द्रवारिणा ॥
कलांशं हेमचूर्णस्य बीजपूररसे पुनः ॥ ३९ ॥
मर्दयेत्खल्लमध्यस्थं यावत्सप्तदिनावधि ।
आटरूषरसेनैव तथा मुण्डीरसेन च ॥ ४० ॥
तालमूलीरसेनैव दशमूलीरसेन वा ।
तत्तद्रोगहरैः क्वाथैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥ ४१ ॥
त्रिफलाव्योषचूर्णं च मध्वाज्याभ्यां प्रयोजयेत् ।
पञ्चकर्मविशुद्धेन सेव्यमेतद्रसायनम् ॥ ४२ ॥
पाण्डुशोफोदरानाहग्रहणीशोषकासजित् ।
सन्ततं सततं चैव पुराणं विषमं ज्वरम् ॥ ४३ ॥
निहन्यात्सर्वकुष्ठानि प्रमेहान्विंशतिं जयेत् ।
कान्ताभ्रकमिदं श्रेष्ठं रसायनमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥

साधारण और विशेष प्रकार से शुद्ध तथा धान्याभ्रक करने के पश्चात् अच्छी तरह पुट देकर सिद्ध की हुई अभ्रक की भस्म और कान्त लौह की भस्म इन दोनों को समभाग लेकर खरल में एकत्र डाल के सात दिन तक आदी के स्वरस के साथ खरल करें। फिर उसमें ( कान्ताभ्रक को अपेक्षा ) षाडशांश स्वर्णभस्म मिलाकर बिजोरे निम्बू के रस के साथ सात दिन तक घोटना चाहिए। फिर अडूसा ( वासा ), गोरखमुण्डी, तालमूली ( मूसलीकन्द ) और दशमूल इन औषधियों के स्वरस से पृथक्२ भावित करके खरल करें, तथा जिन२ रोगों को नष्ट करने के लिये यह रस देना हो उन२ रोगों को नष्ट करने वाली औषधियों के स्वरस या क्वाथ से सात२ वार भावित करके घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को यथोचित मात्रा से लेकर त्रिफला के चूर्ण, व्याष ( त्रिकटु ) के चूर्ण, शहद और घृत के साथ मिलाकर पञ्चकर्म ( वमनविरेचादिक ) से शुद्ध कोष्ठ वाले व्यक्ति को सेवन करने के लिये देना चाहिए। यह रस पाण्डु, शोथ, उदर ( जलोदर ) रोग, आनाह ( अफरा ), ग्रहणीरोग, शोष और कास को नष्ट

करता है तथा सन्ततज्वर, सततज्वर, पुराणज्वर, विषमज्वर, सर्व प्रकार के कुष्ठ और बीस प्रकार के प्रमेहों को विनष्ट करता है। यह कान्ताभ्रकरसायन अन्य सब रसायनों में अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसके सेवन से मनुष्य सर्वरोगों से मुक्त हो जाता है ॥ ३९–४४ ॥

अथ पाठादिघृतम्—

पालाशोलूखले तन्मलवियुजि विमर्दोद्धृतैराढकांशै
र्मिश्रं ब्राह्मीरसैस्तैर्विधिवदिह पचेत्प्रस्थमात्रं गवाज्यम् ।
पाठाधात्रीहरिद्रात्रिवृदुपरचितेनापि कल्केन सिद्धं
यो वा कीटारिकृष्णासलवणजटिलाभिर्विलीढःसदा स्यात् ॥४५॥
सौकर्यः सप्तरात्रान्मतिमतिविशदां पक्षतो मासमात्रा-
च्चातुर्यं सत्कवित्वं वरसकलकलाऽभिज्ञतां प्राप्नुयात्सः ॥ ४६ ॥

पलाश की लकड़ी से बनाई हुई निर्मल ओखली में जल से साफ की हुई गीली ब्राह्मी को डाल के खाण्ड कूट कर वस्त्र से छान के १ आढक भर स्वरस निकाल लेना चाहिए। फिर एक प्रस्थ भर गाय का घृत तथा घृत से चौथाई पाठा, आंवले, हलदी और त्रिवृत् की जड़ का कल्क लेकर सब को कलईदार बड़े भाण्ड या बड़ी कड़ाही में डाल के मन्द २ अग्नि वाली भट्टी पर पाक करना चाहिए। जब समग्र जलीयांश नष्ट होकर घृत सिद्ध हो जाय तब पात्र को भट्टी से उतार कर घृत को छान लेवें। तथा कल्क को हाथों के बीच में दबा २ कर घृत निकाल लेना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुए घृत को एक तोले भर लेकर उसमें वायविडङ्ग, पिप्पली, सैन्धव लवण और जटामांसी इनके समभागगृहीत कपड़ छान किये हुए ३ माशे भर चूर्ण को मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिये, इस तरह सात दिन तक सेवन करने से यह घृत मनुष्य को सौकर्य अर्थात् विविध कर्म करने में निपुण बना देता है, एक पक्ष तक सेवन करने से बुद्धि को अत्यन्त निर्मल करता है तथा एक मास तक इस घृत के सेवन करते रहने से पुरुष चतुरता तथा अच्छी २ कविताओं के करने की शक्ति से युक्त होजाता है तथा सुन्दर २ सर्व प्रकार की कलाओं के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ॥ ४५–४६ ॥

अथ ताप्यादिवटकः—

ताप्याभ्रकत्रिकटुतुत्थशिलाजकान्त-
मङ्कोल्ललोहमलटङ्कणसैन्धवं च ।

भृङ्गीरसेन वटकांश्च मसूरमात्रा-
न्खादेद्रसायनवरं सकलामयघ्नम् ॥ ४७ ॥

सुवर्ण माक्षिक की भस्म, अभ्रकभस्म, त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पिप्पली ) का चूर्ण, शुद्धतुत्थक की भस्म, शुद्धशिलाजीत, कान्त लौह की भस्म, अङ्कोल के बीजों का चूर्ण, लोहमल अर्थात् मण्डूर की भस्म, शुद्धसुहागा और सैन्धव लवण इन सब को सम भाग लेकर खरल में महीन पीस कर भृङ्गराज के स्वरस में सात दिन तक घोटकर मसूर के बराबर गोलियां बना के छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें। यह भिन्न २ अनुपानों के साथ प्रयुक्त करने से सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। यह सर्व रसायनों में श्रेष्ठ रसायन है, इस के प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य जरादि रोगों से मुक्त हो जाता है ॥ ४७ ॥

अथ कमलाविलासरसः—

लोहाभ्रौ बलिसूतहाटकपविस्तुल्यं कुमारीरसे
पक्वैरण्डदलैर्निबध्य सुदृढं सद्धान्यराशौ त्र्यहम् ।
क्षिप्त्वोद्धृत्य विचूर्णितं मधुवरायुक्तं यथासात्म्यतः
कृष्णात्रेयविनिर्मितं गदजराविध्वंसि सौख्यप्रदम् ॥ ४८ ॥
माज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं सर्वप्रमेहप्रणुत्
कासं पञ्चविधं तथैव तनुगं पाण्डुञ्च हिक्कां व्रणम् ।
श्लेष्माणं पवनं हलीमकगदं हन्याच्च मन्दानलं
कण्डूकुष्ठविसर्पविद्रधिमुखापस्मारकाद्याञ्जयेत् ॥ ४९ ॥
गोप्याद्रोप्यतरः सुखेन सुलभः सर्वत्र सिद्धो रसो
नाम्नाऽयं कमलाविलास इति सद्वैद्यस्य कीर्तिप्रदः ॥ ५० ॥

लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धगन्धक, शुद्धपारद, स्वर्णभस्म और हीरे की भस्म इन सब को समभाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष औषधियों को मिला के दिन भर घोटें। फिर इस को घृतकुमारी के स्वरस में खरल करके गोला बना कर छाया में सुखा लेना चाहिए। इस गोले को पके हुए एरण्ड के पत्तों से अच्छी प्रकार ढक कर ( या लपेट कर ) डोरे से खूब मजबूत बांध देना चाहिए। फिर इस को अच्छे नवीन धान के ढेर के मध्य में गाड कर तीन दिन तक रख देवें। चौथे दिन धान्य के ढेर ( समूह ) से

गोले को निकाल कर पत्रादिकों को दूर करके खरल में दिन भर घोट कर शीशी में भर देवें। इस रस को आधी रत्ती से तीन रत्ती भर तक ले कर या यथाव्याधि-बलादि के अनुसार मात्रा की कल्पना करके शहद और त्रिफला के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह कृष्णात्रेय नामक महर्षि के द्वारा सर्व प्रथम बनाया हुआ है। यह रस मनुष्यों के सकलरोग तथा जरा (बुढौति) को नष्ट करके सुख प्रदान करता है। गुरु लोगों की आज्ञा के अनुसार सिद्ध किया हुआ यह श्रेष्ठ रसायन सर्व प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है। यह रस यथाव्याधि हर अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करते रहने से पांच प्रकार के कास, सर्वदेह में उत्पन्न हुए पाण्डुरोग, हिक्का, दुष्टव्रण, विकृत हुए श्लेष्मा और वायु तथा श्लीपद नामकरोग, मन्दाग्नि, कुजली, विविधकुष्ठ, विसर्प, विद्रधि, मुखरोग और अपस्मार आदि सब रोगों को नष्ट करता है। यह रस अत्यन्त गोपनीय रसों से या वस्तुओं से भी अधिक गोप्य है तथा इसका निर्माण सुखपूर्वक कर सकते हैं। यह अत्यन्त सुलभ और सब रोगों में सिद्धि प्रदान करता है। यह रस रोगों को अवश्य नष्ट कर देने के कारण अच्छे (सात्विक, परोपकारी) वैद्यों की कीर्ति को बढाता है। यह रस कमलाविलास इस नाम से ख्यात है॥ ४८–५०॥

अथ लक्ष्मीविलासरसः—

**वेदेन्दुनेत्राङ्गरसाङ्गभागा भूसूतगन्धोषणतिन्दुटङ्काः।**
**भृङ्गार्द्रगुञ्जाजवनीनवाभिर्भाव्यं त्रिशः स्वेद्यमदोऽर्कपत्रे॥ ५१॥**
**लक्ष्मीविलासः स विशाललक्ष्मीं तनौ तनोति क्षयिणः प्रयोगैः॥५२॥**

लौहभस्म (भू) ४ भाग (वेद), शुद्धपारद (सूत) १ भाग (इन्दु), शुद्धगन्धक २ भाग (नेत्र), समभाग गृहीत ऊषण (मरिच) का चूर्ण ६ भाग (अङ्ग), तेन्दु के फल या शुद्ध कुचले का चूर्ण ६ भाग (रस) और शुद्धटङ्कण (सुहागा) ६ भाग (अङ्ग) लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके दिन भर सब को घोटें। फिर भृङ्गराज, अदरख (आदी), गुञ्जा (घुंघची), अजवाईन (जवनी) और नवा अर्थात् पुनर्नवा इन औषधियों के स्वरस या क्वाथ से क्रमशः तीन २ वार पृथक् २ भावित करके घोटकर गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को आक के पत्तों में रख कर डोरे से लपेट के तुषों की अग्नि में रख कर थोड़ी देर तक स्वेदन करना चाहिए।

पश्चात् स्वाङ्गशीतल गोले के ऊपर से पत्तों को हटा कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस विधि से सिद्ध हुआ यह लक्ष्मी विलास रस यथाग्नि बलानुसार प्रति दिन सेवन करने से क्षयरोग ग्रसित पुरुष के क्षीण शरीर को हृष्ट पुष्ट और शोभायमान कर देता है ॥ ५१–५२ ॥

अथ सौश्रुतनारिकेलप्रयोगः—

**वाराहीमुशलीकन्दकनकाऽहिखरस्तथा।**
**वानरीफलसंयुक्तं चूर्णयित्वा पृथक् पृथक् ॥ ५३ ॥**
**कार्पासमज्जदुग्धेन उत्कलय्य यथाक्रमम्।**
**भावनासप्तकं दत्त्वा सूर्यतापे विशोषयेत् ॥ ५४ ॥**
**नारिकेलं च सम्भृत्य द्वारं रुध्वा यथाविधि।**
**गोदुग्धेन तु तत्कल्पषोडशद्वयमात्रतः ॥ ५५ ॥**
**दर्व्या संवर्तितं भाण्डे यथा दार्ढ्यं न याति च।**
**शीतं चूर्णीकृतं पक्वमाज्येन प्रपचेन्नरः ॥ ५६ ॥**
**जातीफलं लवङ्गं च एलाचूर्णं विनिक्षिपेत्।**
**निष्पन्नं शाणमात्रं तु गृहीत्वा प्रपिबेत्पयः ॥ ५७ ॥**
**वातरोगाः प्रमेहाश्च बलक्षयमथोल्बणाः।**
**सप्तरात्रप्रयोगेण प्रशमं यान्ति सर्वतः ॥ ५८ ॥**
**वृद्धोऽपि तरुणत्वं स प्रहर्षति सदा नरः।**
**सौश्रुताख्यं नारिकेलं गुरुणा परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्न-समुच्चये रसायनविधिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः।



वाराहीकन्द, मुषलीकन्द, धत्तूरे की जड़, अहि अर्थात् अफीम को फलों के छिलके ( पोस्ते ), दुरालभा की जड़ और कौंच के बीज इन सब को समभाग लेकर पृथक् २ चूर्ण बना के प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को पृथक् २ कपास के बीज के क्वाथ या निर्यास से अथवा कपास के बीज डाल करके औटाये (उष्ण किये) हुए

दुग्ध से सात २ वार भावित करना चाहिए। रात के समय कार्पासबीजनिर्यास से अच्छी तरह भींगो कर दूसरे दिन सूर्य की तेज धूप में चूर्ण को सुखाना चाहिए। यह एक भावना हुई। इसी तरह हरेक चूर्ण की सात भावनाएं देवें। पश्चात् सब चूर्णों को एक खरल में मिलाकर दिनभर अच्छी तरह खरल करके शुष्क चूर्ण बना लेवें। फिर एक नारियल लेकर उसके ऊपर की जटा को दूर करके मुख पर छिद्र बना कर उस में वाराही कन्दादि औषधियों के चूर्ण को भी भर कर मुख को अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए। पश्चात् नारियल में भरी हुई औषधि की अपेक्षा द्विषोडशगुण अर्थात् ३२ गुने गोदुग्ध को कलईदार कड़ाही या भाण्ड में भर कर उस में औषधपूर्ण नारियल को मन्द २ अग्नि से पकाना चाहिए तथा कलच्छी से नारियल को चलाते रहना चाहिए। जब समस्त दुग्ध का जलीयांश नष्ट हो जाय अर्थात् खोए के समान पिण्ड बन जाय तब उस में घृत डाल कर अच्छी प्रकार भून लेना चाहिए। ठीक भून जाने पर उसमें जायफल, लवङ्ग और इलायची का थोड़ा २ चूर्ण डालकर अच्छी तरह मिला के चौड़े मुख वाली शीशी या मृत बाण में भर देवें। इस विधि से सिद्ध हुई इस औषध को १ शाण (४ मा०) भर लेकर खावें तथा ऊपर से आध सेर मन्दोष्ण दुग्ध पीना चाहिए। इस औषध के प्रतिदिन सेवन करने से वात की विकृति से उत्पन्न रोग, मेह, बलक्षय तथा अन्य प्रकार के भयङ्कर रोग सर्वदा के लिये नष्ट होजाते हैं। प्रायः इसे सात दिन तक सेवन करें परन्तु यथोक्त रोगों की जब तक शान्ति न हो तब तक सेवन करें। इस औषध के सेवन करने से वृद्ध मनुष्य भी तरुण हो जाता है। यह सौश्रुताख्य नारिकेलरसायन गुरु अर्थात् वृहस्पति के द्वारा सर्व प्रथम बताया गया है ॥ ५३–५९ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्य भाषाटीकायां रसायन-
विधिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः।

# सप्तविंशोऽध्यायः।

वाजीकरणम्—

अथ वाजीकरणगुणाः—

**वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान्।**
**पुष्टिस्तुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संस्थितम्॥ १॥**

सर्वदा विषयों में रत रहने वाले पुरुष को वाजीकरण औषधियों का सेवन करते रहना चाहिए। वाजीकरण औषधियों के सेवन करने से विषयभोग से क्षीण हुए शरीर की पुष्टि होती है, मन प्रसन्न रहता है तथा गुणवान सन्तान की प्राप्ति होती है॥ १॥

अथ वाजीकरणस्य निरुक्तिः—

**वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गनाः।**
**तद्वाजीकरणं विद्धि देहस्योर्जस्करं परम्॥ २॥**

जिन औषधियों के प्रतिदिन सेवन करने से अश्व के समान बलशाली होकर मनुष्य शक्ति आदि से अप्रतिहत होकर अर्थात् क्षीण न होकर अनेक रमणियों के साथ सम्भोग कर सके उन औषधियों को वाजीकरण कहते हैं। वाजीकरण औषधियां शरीर के ओज को अत्यन्त बढाती हैं॥ २॥

अथ शुक्रक्षयस्य निदानम्—

**शुक्रं तु चिन्ताव्यायामव्याधिभिर्दहकर्षणात्।**
**क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चातिनिषेवणात्॥ ३॥**

अत्यधिक चिन्ता, अनुचित और अधिक व्यायाम तथा नाना प्रकार की व्याधियों से, परिश्रम के अनुकूल खाद्य पेय द्रव्यों के अभाव के कारण शरीर के धीरे २ कृष हो जाने से, अधिक या निरन्तर उपवास करने से तथा रसायन और वाजी करण औषधियों के सेवन किये बिना ही अधिक वार स्त्री सम्भोग करने से मनुष्यों का शुक्र (वीर्य्य) नष्ट हो जाता है॥ ३॥

अथ वाजीकरणयोगोपदेशे प्रतिज्ञा—

**तस्मात्प्रयोगान्वक्ष्यामि दुर्बलानां बलप्रदान्।**
**सुखोपयोगाद्बालानां भूयश्च बलवर्धनात्॥ ४॥**

विषयादिकों के अधिक सेवन करने से मनुष्य बल हीन हो कर अनेक रोगों से ग्रसित हो जाते हैं इस लिये इस अध्याय में उपर्युक्त कारणों से क्षीण हुए मनुष्यों को बल देने वाले, तथा जिन के सेवन करने से सुख पूर्वक उपभोग करने में मनुष्य समर्थ हो सके तथा बालकों के या युवा और वृद्धों के भी बल को अधिक बढ़ाने वाले ऐसे अनेक योगों का वर्णन किया जायगा ॥ ४ ॥

अथ वाजीकरणप्रयोगे पूर्वकृत्यम्—

**शुद्धकायो यथापक्ति वृष्ययोगान्प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥**

वाजीकरण योगों के सेवन करने के पूर्व वमन विरेचन आदि पञ्चकर्मों से यथा शक्ति शरीर की शुद्धि कर लेनी चाहिए। शरीर के शुद्ध हो जाने के पश्चात् पाचक शक्ति के अनुकूल वृष्य योगों का प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् योगों की मात्रा इतनी ज्यादा न हो जिस से पाचक शक्ति नष्ट हो कर अग्नि मान्द्यादि रोग प्रगट हो जांय ॥ ५ ॥

अथ कामकलाख्यरसः—

**मुषलीकदलीकन्दवाजिगन्धाकसेरुकैः ।**
**मर्दितं हेमसूताभ्रं मूषास्थं पुटपाचितम् ॥ ६ ॥**
**शाल्मलीचूर्णसंयुक्तं वासरापयेकविंशतिः ।**
**भक्षयित्वा चतुर्मासं गव्यं क्षीरं पिबेदनु ॥ ७ ॥**
**सर्वाङ्गोद्वर्तनं कुर्यात्सयवैः शाल्मलीरसैः ।**
**अन्वहं मधुराहारः सहस्रं रमते स्त्रियः ॥ ८ ॥**

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर या पारे की भस्म और अभ्रक की भस्म इन तीनों को समभाग लेकर मुषली, कदली (केल के खम्भ या जड़), असगन्ध और कसेरू इन प्रत्येक द्रव्यों के स्वरस के साथ क्रम से एक२ वार या सात२ वार भावित करके अच्छी तरह घोटकर गोला बना के सुखाकर दृढ मूषा में बन्द करके पुटपाक कर लेना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से मूषा को निकाल कर उस में से सिद्ध रस को लेके खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें। फिर इस रस को १ माशे भर लेकर उस में तीन माशे भर सेमल के मूल ( जड़ ) का चूर्ण अथवा गोंद का चूरा ( चूर्ण ) मिला मिला कर मक्खन और मिश्री के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से चीनी मिलाया हुआ गाय का मन्दोष्ण दुग्ध पी लेना

चाहिए। रस सेवन करने के पश्चात् अथवा पूर्व ही शौचादि से निवृत्त हो कर सेमल की जड़ के स्वरस या क्वाथ में भींगे हुए यव (जो) के आटे से सारे शरीर पर उद्वर्तन (उबटन या मालिश) करना चाहिए। प्रतिदिन बुभूक्षा लगने पर घृत दुग्ध शर्करा आदि मधुर पदार्थों के साथ भोजन करना चाहिए। इस विधि से प्रतिदिन इस रस को सेवन करने वाला पुरुष सहस्र अर्थात् अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ ६-८ ॥

विमर्शः—रसरत्नाकर में इस रस का वर्णन इस प्रकार है, यथा—

मृतसूताभ्रकं स्वर्णं वाजिगन्धामृतारसैः।
मुषलीकदलीकन्दद्रवैस्तं मर्दयेद्दिनम् ॥
रुद्ध्वा लघ्वग्निनापच्यात् मर्द्यं पूर्वोक्तकैर्द्रवैः।
पुटं देयं पुनर्मर्द्यमेवमष्टपुटः पचेत् ॥
शाल्मलि जातनिर्यासैश्चतुर्मांषञ्च भक्षयेत्।
गोक्षीरैर्मंकटीबीजैः पलार्द्धं पाययेदनु ॥
रसः कामकलाख्योऽयं रमते स्त्री सहस्रधा।
सर्वाङ्गोद्वर्तनं कुर्यात् सयवैःशालमलीरसैः ॥ इति।

अथ कामदेवरसः—

हेमपादयुतः सूतो मर्दितः शाल्मलीरसैः।
कदलीकन्दनिर्यासे क्षीरेक्षुरसगोघृते ॥ ९ ॥
मात्तिके चासकृत्स्विन्नः शाल्मलीक्षीरगोद्भवैः।
शर्करामलकद्राक्षामुशलीमाषमाक्षिकैः ॥ १० ॥
युक्तो रम्भाफलं दत्त्वा कामदेव इति स्मृतः।
सेवनादूर्ध्वलिङ्गः स्याद्द्रावयेद्वनिताशतम् ॥ ११ ॥

स्वर्ण की भस्म या स्वर्ण के कण्टकवेधी पत्र (वर्क) १ भाग तथा शुद्धपारद या रससिन्दूर चार भाग लेकर दोनों को पत्थर की खरल में सेमल की जड़ के स्वरस के साथ दिन भर खरल करें। यदि स्वर्णपत्र और शुद्धपारद लेवें तब प्रथम पारद और स्वर्णपत्र को दिन भर घोटें जिस से समप्रपारद स्वर्ण के पत्रों पर चढ जाय अर्थात् दोनों एक हो जांय। फिर दूसरे दिन सेमल की जड़ के स्वरस से घोटें। फिर इनका गोला बनाकर दोलायन्त्र की विधि से कपड़े में बांध कर केले के कन्द के स्वरस में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसी तरह

गाय के दुग्ध, ऊख के स्वरस और गाय के घृत तथा शहद् के साथ पृथक् २ तीन २ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। स्वेदन हो जाने पर पोट्टली में से गोले को निकाल कर खरल में अच्छी तरह घोट कर महीन चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। फिर इस रस को १ या दो रत्ती भर लेकर सेमल ली जड़ के चूर्ण या गोंद, दुग्ध, गोक्षुर ( गोखरू ) के चूर्ण, चीनी, आंवलों के चूर्ण, द्राक्षा, मुशलीकन्द का चूर्ण, उड़दी का चूर्ण और शहद् इनके साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा बाद में केले के पके हुए फलों को खावें। इस तरह इस रस के सेवन करने से मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर तथा बलशाली हो जाता है। तथा उसकी जननेन्द्रिय सर्वदा सम्भोग करने के लिये तैय्यार रहती है। इस रस के सेवन के प्रभाव से मनुष्य सैकड़ों स्त्रियों को द्रवित कर सकता है ॥ ९–११ ॥

विमर्शः—१ कदली कन्द आदि के निर्यास में असकृत् स्वेदन करना चाहिए अर्थात् प्रत्येक द्रव पदार्थ के साथ सात२ वार स्वेदन करें। प्रत्येक स्वेदन के लिये एक २ प्रहर पर्याप्त है। कुछ सम्प्रदायों में कदली कन्द निर्यास से माक्षिकान्त द्रव्यों को मिलाकर सात वार स्वेदन करने की प्रथा है तथा कहीं२ पृथक् २ स्वेदन भी करते हैं। शालमलीक्षीर गोक्षुर से लेकर माक्षिकान्त द्रव्य अनुपान के लिये है अतः इनमें से जितने की इच्छा हो उतने ही ले लेवें या सबको समभाग लेकर खरल में एकत्र करके घोटकर शुष्क चूर्ण बना के शीशी में भर देवें। फिर इस चूर्ण और उपर्युक्त सिद्धरस को उचित मात्रा से लेकर मक्खन मिश्री आदि के साथ सेवन करें तथा ऊपर से केले के फल खाकर दुग्ध का पान करना चाहिए। इस रस के सेवन करने से ध्वजभङ्ग रोग नहीं होता है तथा अधिक समय तक स्त्री सम्भोग कर सकता है।

अथ मदनसुन्दररसः—

गन्धकेन रसः पिष्टः कल्हाररसमर्दितः।
विपक्वो बालुकायन्त्रे वृष्यो मदनसुन्दरः ॥ १२ ॥

शुद्धगन्धक और शुद्धपारद दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में घोट कर उत्तम कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर लाल कमल के पत्तों या पुष्पों के स्वरस से सात दिन तक घोटकर मूषा में बन्द करके या रस सिन्दूर निर्माण की विधि से बालुका यन्त्र में पका लेवें। स्वाङ्गशीतल होने पर इस रस को खरल में पीस कर शीशी में भर देवें। यह रस अत्यन्त वृष्य है। इसे मदनसुन्दर रस कहते हैं ॥ १२ ॥

विमर्शः—रसेन्द्रसार संग्रह में इस रस को अनङ्गसुन्दर रस के नाम से लिखा है तथा तीन दिन तक लाल कमल के पुष्प या पत्र के स्वरस से घोटकर बालुका यन्त्र में एक प्रहर तक पाक करके फिर घोट कर लाल अगस्त्य और श्वेत कमल पत्र के स्वरस से क्रम से एक २ दिन तक खरल करके सिद्ध करने की विधि लिखी गई है।

यथा—शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कल्हारकद्रवैः।
मर्दितं बालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत्॥
रक्तागस्त्यद्रवैर्भाव्यं दिनैकन्तु सिताम्बुजैः।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत् कामिनी शतम्॥ इति।

भैषज्य रत्नावली में इस रस को कामिनी मन:भञ्जन रस लिखा है।तथा रक्तवर्ग की औषधियों से भावनाएं देकर पाक करने का उपदेश है। जितनी ही औषधियों के स्वरस से भावनाएं दी जावेंगी उतने ही अधिक गुण उत्पन्न होंगे।

अथ पूर्णचन्द्ररसः—

कामदेव इह सोच्चटारसो रक्तपुष्पमुनिसारभावितः।
पूर्णचन्द्र इति विश्रुतो रसः प्राणिनां चरमधातुपूरकः॥ १३॥
रहस्यं कुसुमास्त्रस्य शृङ्गारस्याऽधिदैवतम्।
कार्मणं सुदृशामूचे रसत्रयमिदं हरः॥ १४॥

उपर्युक्त विधि से सिद्ध हुए कामदेव रस को खरल में डाल कर गुञ्जा (घुंघची) की जड़ और लाल पुष्प वाले अगस्त्यवृक्ष के पत्तों के स्वरस के साथ क्रम से एक २ दिन खरल करके सुखा कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह पूर्णचन्द्र इस नाम से प्रसिद्ध रस तैय्यार होता है। यह रस मनुष्यों की अन्तिम धातु अर्थात् शुक्र (वीर्य) को बढ़ाता है। श्री शङ्कर भगवान ने इस रसत्रय (कामदेव, मदनसुन्दर और पूर्णचन्द्र) को कामदेव का रहस्य अर्थात् घनिष्ठ मित्र या गोप्य अस्त्र, शृङ्गार का अधिष्ठातृदेव तथा सुन्दरनयनवाली स्त्रियों को वश में करने वाला एक तरह का शस्त्र बताया है॥ १३-१४॥

अथ मदनमुन्मद्रसः—

मासार्धमात्रं हरजं विमर्द्य रसेन मोचस्य रसेन तेन।
त्रिःसप्तसंख्यानि दिनानिगन्धन्तत्सम्मितं गोघृतमध्यपक्वम्॥१५॥
विभाव्य तेनैव विशोष्य युञ्ज्यात्काचस्थयोर्नागलतादलेन।
तयोर्विमर्द्याथ निषेव्य दुग्धं पिबेन्निशायां कदलीफलं तत्॥ १६॥

मदनं मदयन्मदमुज्वलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् ।
सुरतैः सुखदैर्गतविच्यवनैर्भवसारजुषामयमेव सुहृत् ॥ १७ ॥

शुद्धपारद या हिङ्गुलोत्थ पारद को पत्थर की खरल में सेमल की जड़ के स्वरस के साथ आधे मास ( १५ दिन ) तक खरल करें। इसी तरह दूसरी खरल में पारद के बराबर साधारणरीति से शुद्ध किये हुए गन्धक को सेमल ही की जड़ के स्वरस से २१ दिन तक खरल करें। फिर उस गन्धक को पारद के साथ मिला कर गोला बना के अपने बराबर गाय के घृत में पकावें। दो प्रहर तक पकाने के पश्चात् पारद और गन्धक के गोले को घृत में से निकाल कर खरल में चूर्ण करके सेमल ही के स्वरस से सात वार भावित कर के सुखा कर काच के पात्र में भर देवें। फिर नागरबेल के पान के स्वरस के साथ इस रस को यथोचित मात्रा से काच ही की खरल में घोट कर रात्रि के समय सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से चीनी मिलाया हुआ दुग्ध पीना चाहिए। दुग्ध सेवन करने के बाद केले के फल भी खाने चाहिए। इस तरह प्रति दिन सेवन करने से कामदेव ( सम्भोग शक्ति ) को उत्तेजित करता हुआ, हर्ष को बढ़ाता हुआ, कामिनी स्त्रियों के झुण्ड (समूह) को शुक्र का च्यवन ( स्राव ) शीघ्र न होने के कारण सुख देने वाले सम्भोगरूपी युद्ध से विह्वल करता हुआ यह रस संसार में सारभूत ( कामिनीस्त्रीरूप ) वस्तु को चाहने वाले पुरुषों का अद्वितीय सखा है ॥१५–१७॥

**विमर्शः**—यही रस रत्नाकर में पूर्णेन्दुरस के नाम से ख्यात है। उस ग्रन्थ में इस रस के बनाने का निम्न प्रकार है।

शाल्मलोत्थद्रवैर्मर्द्यं पक्षैकं शुद्धसूतकम् ।
पृथक् खल्वे त्रिसप्ताहं तद्द्रवैर्मर्द्य गन्धकम् ॥
एकीकृत्य घृतैः सार्द्धं मर्दयेत्तच्च गोलकम् ।
यामद्वयं पचेदाज्ये वस्त्रे बद्ध्वा तु पाचयेत् ॥
दिनकं शाल्मलोद्भावैः पिण्डं यामद्वयं पचेत् ।
मर्दयित्वा पुनः पिण्डं नागवल्ल्या च वेष्टयेत् ॥
निक्षिप्य काचकूप्यान्तु द्रवं दत्वा तु शाल्मलम् ।
मलैकपरिमाणन्तु पचेद्यामद्वयं ततः ॥
बालुकायन्त्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ।
द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलान्तरे ॥

मुषली सितां क्षीरैः पलैकां पाययेदनु ।
रसः पूर्णेन्दुनामायं सम्यग्वीर्य्यकरो भवेत् ॥
कामिनीनां सहस्रं वै नरः कामयते ध्रुवम् ॥ इति ।

इस रस को इसी पाठ के अनुसार बना कर सेवन करने से वृष्य शक्ति बढ़ती है ।

अथ कुसुमायुधः—

सूतस्य द्विपलं चतुष्पलमितो गन्धो मृतं काञ्चनं
पादन्यूनपलं सुवर्णविमलाताप्यं रसेनोन्मितम् ।
लोहं कान्तमलस्तथाऽसितघनं कर्षोन्मितावेकशो
हन्तव्यं दरदेन लोहमखिलं चूर्णं ततो मर्दितम् ॥ १८ ॥
मूषायां विगतावृतौ सिकतया यन्त्रे कृते स्थापयेद्
ब्राह्मीवारि दिनं निधेहि तदनु प्रत्येकमेकान्तरम् ।
वासाकुञ्जरशुण्डिकात्रिकटुकं मेषी च निर्गुण्डिका
तालिकुञ्जरशुण्डिकाहुनवहस्तोयानि दत्त्वा पचेत् ॥ १९ ॥
ततस्तं निखिलाम्भोभिर्भिमर्द्य पुटयेल्लघु ।
निर्यासैः शालमलेर्ग्राह्यो वल्लत्रयमितो रसः ॥
वलीपलितनाशार्थं त्रिमासं मधुराशनः ॥ २० ॥
सुरतेषु सुनोत्रना शतैर्गतवीर्यक्षयवनैर्मनो यदि ।
तदमुं रसमाश्रयाऽऽश्रयं कुसुमास्त्रस्य चिराय धन्विनः ॥ २१ ॥
यदि सन्ति सहस्रशः स्त्रियश्चतुराश्लेषमनोहराः प्रसन्नाः ।
सुकवेरिव गुम्फना गिरां सुरसोऽनेन युवारसेन भूयात् ॥२२॥

शुद्धपारद २ पल, शुद्धगन्धक ४ पल, चोथाई से कम १ पल अर्थात् तोन कर्ष भर स्वर्णभस्म तथा स्वर्णगैरिक २ पल, रौप्यमाक्षीक की भस्म २ पल, लौहभस्म २ कर्ष, कान्तमल अर्थात् कान्तलौह के किट्ट ( मण्डूर ) की भस्म २ कर्ष, असितघन अर्थात् कृष्णाभ्रक की भस्म २ कर्ष लेवें । इन में से जो लोह हैं अर्थात् जिनका पाठ सप्तलोह में आता है जैसे स्वर्ण और लौह इन्हें हिङ्गुल के साथ घोट कर कुमारी के स्वरस से भावित करके पुट देवें । इस तरह सात पुट दे कर दोनों को पृथक् भस्म बना लेनी चाहिए । फिर यथोक्त प्रमाण के अनुसार दोनों की भस्म इस योग में ग्रहण करें ।

फिर सब द्रव्यों को एकत्र खरल में घोट कर चूर्ण को एक दृढ मूषा में भर के मूषा को भाण्ड में भरी हुई बालुका ( यन्त्र ) में गाड देवें । मुषा का मुख खुला हुआ तथा बालुका से अनावृत ( अनाच्छादित ) रखना चाहिए । फिर इस बालुकायन्त्र को चूल्हे या भट्टी पर चढा कर मन्द २ अग्नि से पाक प्रारम्भ करना चाहिए तथा मूषा में ब्राह्मी का थोड़ा २ स्वरस डालते रहना चाहिए । इस तरह थोडी २ देर में ब्राह्मी का स्वरस डाल २ कर कलच्छी की डण्डी से धीरे २ चलाते रहना चाहिए । प्रथम दिन ब्राह्मी के स्वरस से उपर्युक्त विधि से पाक करना चाहिए । दूसरे दिन से अडूसा ( वासा ), कुञ्जरशुण्ठी अर्थात् हस्त्याल ( हस्ति कन्द ), त्रिकटु, मेढासीङ्गी, निर्गुण्डी, तालमूली, कुञ्जरशुण्डी अर्थात् हाथीशुड़ां या गजपीपल और हुतवह अर्थात् चित्रक इन ओषधियों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ के साथ क्रम से तीन २ दिन रात तक पाक करना चाहिए । इस प्रकार निर्विघ्न पाक होने के पश्चात् बालुकायन्त्र में की मूषा में से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के उपर्युक्त सब द्रव्यों के मिलित क्वाथ या स्वरस से सात वार भावित करके सात दिन तक खरल करें । अथवा उपर्युक्त द्रव्यों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ के साथ एक २ दिन तक खरल करके लघुपुट के द्वारा पकाकर महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को ३ वल्ल ( ९ रत्ती ) भर लेकर सेमल के गोंद के चूर्ण के साथ मिला कर सेवन करें तथा ऊपर से दुग्धपान करें । इस तरह तीन मास तक इस रस के सेवन करते रहने से वलीपलितरोग नष्ट हो जाता है । इस रस के सेवन करते समय घृत, दुग्ध चीनी आदि मधुरपदार्थों के साथ भोजन करना चाहिए । यदि सुन्दर२ नयन वाली सैकड़ों स्त्रियों के साथ सुरतकाल में चिरकाल तक अस्खलित वीर्य्य हो कर सम्भोग करने की इच्छा जिस पुरुष को हो उसे चाहिए कि पुष्पों के शस्त्र वाले कामदेव के आश्रयभूत ( मित्रभूत ) इस रस का आश्रय करें । कमल के समान प्रसन्न मुख वाली सम्भोग तथा आलिङ्गन करने में अत्यन्त निपुण तथा अपने अङ्गलावण्य से युवकों के मनको आकर्षित ( हरण ) करने वाली सैकडों स्त्रियें भी यदि हों तो उनके साथ निरन्तर आनन्द पूर्वक सम्भोग करने वाला पुरुष इस रस को सेवन के प्रभाव से अच्छे कवि ( आशु कवि ) की अक्षीण काव्य कल्पना की तरह कदापि क्षीण नहीं होता

है। अर्थात् इतनी स्त्रियों के साथ रमण करने पर भी इस रस को सेवन करने वाले पुरुष का शरीर हृष्ट पुष्ट ही बना रहता है जिस तरह आशु कवि अनेक कविताओं की रचना को करने पर भी वारवार नई कविताऐं करता ही जाता है ॥ १८–२२ ॥

अथ सूतेन्द्ररसः—

मुक्ताफलं प्रवालं च सुवर्णं रौप्यमेव च।
रसं गन्धञ्च तत्सर्वं तोलैकैकं प्रकल्पयेत् ॥ २३ ॥
रक्तोत्पलैः पत्ररसैर्मर्दयेत्प त्तलीकृते।
मर्दयेत्तत्पुनर्दत्त्वा गन्धं माषचतुष्टयम् ॥ २४ ॥
तन्मध्ये गन्धकं दत्त्वा मर्दयेत्तदनन्तरम्।
भीत्या काचघटीमध्ये सन्निरुध्य प्रयत्नतः ॥ २५ ॥
बालुकायन्त्रमध्यस्थां कृत्वा काचघटीं ततः।
पाकस्तत्र तथा कार्यो भवेद्यामत्रयं यथा ॥ २६ ॥
काचपात्रं समाकर्षेत्सिद्धं सूतं ततः परम्।
भक्षयेद्रक्तिकाः पञ्च रोगैराक्रान्त पुद्गलः ॥ २७ ॥
भोजनं पूर्वरोगोक्तं यत्नतः कारयेद्भिषक्।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ ॥ २८ ॥
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत्।
मासेनैकेन सूतेन्द्रो रोगनाशाय कल्पते ॥ २९ ॥
शालयो मुद्गयुक्ताश्च गोधूमा भोजने हिताः।
घृतं गव्यं तथा क्षीरं स्निग्धं पथ्यं प्रयोजयेत् ॥
पारावतस्य मांसं च तित्तिरेर्लावकस्य च ॥ ३०॥

मोती की भस्म १ तोला, प्रवाल की भस्म १ तो०, सुवर्ण की भस्म १ तो०, चांदी की भस्म १ तो०, शुद्धपारद १ तो० और शुद्धगन्धक १ तो० ले कर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के दिन भर घोटकर महीन कर लेवें। दूसरे दिन इस चूर्ण को लाल कमल के पत्र के स्वरस के साथ दिन भर घोटना चाहिए या पत्तल के समान चौड़ी पिष्टी बनने तक घोटना चाहिए। फिर तीसरे दिन ४ माशे भर गन्धक डाल कर रक्त कमल

के पत्र के स्वरस से दिनभर घोटें। चौथे दिन फिर उतनाही शुद्ध गन्धक मिला कर रक्तोत्पल के पत्र स्वरस से दिन भर घोटकर शुष्क चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण को सातवार कपड़मिट्टी कर के सुखाई हुई काचकूपी ( आतसी शीशी ) में भर दें तथा काचकूपी को भाण्ड में भरी हुई बालुका में गले पर्यन्त रख ( गाड ) कर बालुकापूर्ण भाण्ड ( बालुकायन्त्र ) को चूल्हे या भट्टी पर चढा कर तीन प्रहर तक मन्द, मध्य और तीव्र अग्नि जला कर पाक कर लेना चाहिए। पाक करते समय कूपी के मुख से गन्धक के जारण का धूआं निकलना बन्द हो जाय तब कूपिका के मुख में इंट का डांट लगाकर गुड और चूने की बनाई हुई पिष्टि से मुख को बन्द कर देना चाहिए। ठीक पाक हो जाने पर भट्टी से स्वाङ्गशीतल यन्त्र को उतार कर उसमें की कूपी निकाल के युक्ति से भेदन कर के सिद्ध रस को निकाल लेवें। इस रस को ५ रत्ती भर लेकर यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ सेवन करना चाहिए तथा वाजीकरण के लिये असगन्ध के चूर्ण, घृत या मक्खन और मिश्री के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से दुग्ध पीना चाहिए। इसके सेवन करते समय रोगी को पूर्व रोगों में कहे हुए भोज्य पदार्थों का सेवन कराना चाहिए। अथवा वृष्य के लिये सेवन करते समय पूर्वयोगोक्त भोजन करना चाहिए अर्थात् पूर्णचन्द्रादिक रसों के सेवन में बताये हुए घृत, दुग्ध, शर्करा आदि मधुर स्निग्ध द्रव्यों के साथ भोजन कराना चाहिए। यह रस निरन्तर सेवन करने से दुर्बल शरीर को सबल ( पुष्ट ) बना देता है तथा शुक्र को बढ़ाता है, ध्वजभङ्ग ( लिङ्ग की शिथिलता तथा टेढ़ा पन ) को नष्ट करता है। प्रायः एक मास तक सेवन करने से यह सूतेन्द्र रस सर्व रोगों को नष्ट कर देता है। इस रस के सेवन करते समय सांठी चांवल, मूंग की दाल, गेहूं के चूर्ण से बनी रोटी, मालपूए आदि खाद्य पदार्थ, गाय का घृत, दुग्ध तथा अन्य स्निग्ध पदार्थों का उपयोग करना चाहिए तथा कबूतर, तितिर और लावा के मांस तथा मांस रस का सेवन अत्यन्त हित कर हैं ॥ २३–३० ॥

अथ मदनकामदेवरसः—

गोलं गन्धकसूतयोस्त्रिकटुकक्काथेन बध्वाऽथभू-
कुष्माण्डान्तरवस्थितं विधिहितं तेनैव लिप्तोपरि।
माषैर्द्व्यङ्गुलमाज्यपक्कमथ तत्कूष्माण्डमध्याद्धरेत्-

तच्चूर्णं पलसम्मिते सुरकृताचूर्णस्य मुष्टिद्वयम् ॥ ३१ ॥
जया शतावरी कृष्णा कपिकच्छूफलं तिलाः।
प्रत्येकं पलसम्माना यवाः पञ्चपलोन्मिताः ॥ ३२ ॥
तावन्मोचफलं द्वे च यष्टी मुष्टिद्वयं शुभा।
निक्षिप्य सप्त सप्ताऽत्र भावनाः क्रमशश्चरेत् ॥ ३३ ॥
महाबलाबलानागबलाभिर्द्राक्षयाऽपि च।
कृष्णाधात्रीक्षुभिश्चापि दन्तपात्रे निवेश्य च ॥ ३४ ॥
मत्स्यण्डिकायुतं वल्लद्वयमानं भजेन्निशि।
अनुपानमिह प्रोक्तं धारोष्णं सुरभेः पयः ॥ ३५ ॥
दोषमार्तवजं हत्वा कुर्याद्वीर्यप्रवर्धनम्।
ध्वजोत्साहं तथा स्त्रीषु वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥
अलं मलयवायुना कुमुदबान्धवेनाप्यलं
मधुव्रतसुखायिनः कलितपञ्चमाः के पिकाः।
अतो भज विशङ्कितं रतिसरोजिनीभास्करं
मनोजपरिदैवतं मदनकामदेवं रसम् ॥ ३७ ॥

शुद्धगन्धक और शुद्धपारद दोनों को सम भाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बना के त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल ) के क्वाथ के साथ दिन भर घोट कर गोला बना कर सुखा लेना चाहिए। इस गोले को भूमि कुष्माण्ड अर्थात् विदारीकन्द या यह न मिले तो सफेद कोहड़े के मध्य में गड्ढा बना कर उसमें रख देवें तथा उसी कोहडे के गढे के लिये काटकर निकाले हुए भाग ( टुकड़े ) से छिद्र को ढककर सन्धियों को उड़द के आटे की पिट्टी से लेप कर बन्द कर देवें। तथा माषपिष्टी ही से दो २ अङ्गुल मोटा लेप करके कड़ाही में पर्याप्त घृत डालकर चूल्हे पर चढ़ा के मन्द २ अग्नि देकर घृत में गोले को पकाना चाहिए। जब पकते पकते गोला लाल हो जाय तब घृत में से निकालकर स्वाङ्गशीतल हो जाने के पश्चात् सन्धि का खोल कर खात में से सिद्ध हुए गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। इस तरह इस सिद्ध रस के एक पल भर चूर्ण में २ पल भर तुलसी के पञ्चाङ्ग का चूर्ण या गुडूची का चूर्ण तथा शुद्ध भांग या जयन्ती की जड़ का चूर्ण १ पल, शतावर का

चूर्ण १ पल, पिप्पली का चूर्ण १ पल, कौंच के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ पल और तिलों का चूर्ण १ पल तथा यव ( इन्द्र यव अथवा जौ ) का चूर्ण ५ पल, केले के पके हुए फल का शुष्क चूर्ण ५ पल या रेमलके गोंद या छाल का चूर्ण ५ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल तथा शुभा अर्थात् वंशलोचन का महीन चूर्ण २ पल भर मिला कर दिन भर बड़ी खरल में सब एकत्र पीस लेवें। फिर महाबला ( सहदेवी ), बला ( बरियार या खरैंटी ), नागबला ( गंगेरन ), दाख, पिप्पली, आंवले और ऊख इनके स्वरस या क्वाथ से क्रम से अलग २ अर्थात् प्रत्येक द्रव्य के स्वरस की सात२ भावनाएं देकर अच्छी प्रकार घोट के शुष्क चूर्ण बनाकर हाथी के दांत के पात्र में या काचपात्र में रख देवें। इस रस को दो वल्ल ( ६ रत्ती ) भर लेकर मत्स्यण्डिका अर्थात् शर्करा में मिला के खावें तथा ऊपर से गाय का धारोष्ण दुग्ध पीवें। यह रस यथाविधि प्रतिदिन सेवन करते रहने से स्त्रियों के दुष्टार्त्तव से उत्पन्न हुए समस्त रोगों को नष्ट करके उन के वीर्य्य अर्थात् प्राणशक्ति को बढाता है तथा पुरुषों के ध्वजभङ्ग रोग को विनष्ट करके सम्भोग के समय इन्द्रिय के उत्साह को उत्पन्न करता है तथा यह रस अत्यन्त उत्तम वाजीकरण है। मलयागिरी पर्वत की परम सुगन्ध युक्त वायु तथा शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की किरणों का सेवन से कोई प्रयोजन नहीं तथा भौंरों के मधुर सङ्गीत और कोकिलाओं के पञ्चम स्वर वाले गायन से भी कोई विशेष लाभ नहीं है इसलिये निःशङ्क होकर अन्य सब विषयों को त्याग के सम्भोग ( रति ) रूपी कमलिनी को विकसित करने वाला ( सम्भोगशक्ति के वर्द्धक ) तथा कामदेव के अधिष्ठातृदेव ऐसे इस मदनकामदेव नामक रस को निरन्तर सेवन करते रहना चाहिए ॥ ३१–३७ ॥

अथ कामधेनुरसः—

हेमाभ्रसत्त्वकान्ताऽर्काः प्रत्येकं पलमात्रकाः ।
एकत्र द्राविताः सर्वे कर्षभूनागसत्त्वकाः ॥ ३८ ॥
पलविंशतिसूतेन तैश्च पिष्टिं प्रकल्पयेत् ।
शतधा पातयेत्सूतं पिष्टिं कृत्वा पुनश्च तैः ॥ ३९ ॥
शिष्टं द्विपलिकं सूतं सन्यासाद्भस्मतां नयेत् ।
भस्मीभूते रसे तस्मिञ्छिष्टे चैकपले ततः ॥ ४० ॥

वज्रं निष्कमितं चाभ्रसत्त्वं षट्पलिकं क्षिपेत्।
द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्विदिनं मर्दयेत्ततः॥ ४१॥
तत्सर्वं लोहजे पात्रे क्षिप्त्वा च मृदुवह्निना।
शाल्मलीमूलजं क्काथं चत्वारिंशत्पलोन्मितम्॥ ४२॥
जारयेद्रसराजस्य दत्त्वा दत्त्वाऽल्पमल्पकम्।
स्वाङ्गशीतं रसं हृत्वा सुगाढं परिमर्दयेत्॥ ४३॥
नालीपातेन तत्क्काथं रजोदग्धं प्रदापयेत्।
ततः करण्डके क्षिप्त्वा यत्नेन स्थापयेत्खलु॥ ४४॥
गुञ्जामात्रः स च घृतयुतः सेवितो हन्ति रोगां-
स्तत्तद्दोषप्रभवकुटिलान्दुःखसाध्यान्समस्तान्।
दद्याद्दीप्तिं जठरशिखिनं स्त्रीशतं सेवयेत्तु-
स्थैर्यं कुर्यादपि च वपुषो नामतः कामधेनुः॥ ४५॥

स्वर्णभस्म १ पल, अभ्रकसत्त्वभस्म १ पल, कान्तलौहभस्म १ पल तथा ताम्रभस्म १ पल और भूनाग (अर्थ वार्म=केंचुआ) का सत्त्व १ कर्ष भर लेकर सब को एक दृढ मूषा में भर के अग्नि में रख कर द्रवित करें। ठीक रूप से द्रवित हुए इन द्रव्यों को मूषा से निकाल कर पत्थर की खरल से रखे हुए २० पल भर शुद्ध पारद के साथ तीन दिन तक घोट कर पिष्टी बना लेनी चाहिए। इस पिष्टी को डमरूयन्त्र या तिर्यक पातन यन्त्र में रख कर यथाविधि अग्नि दे के समस्त पारे को उड़ा (उर्ध्वपतित कर) लेवें। फिर इस उड़े हुए पारद को यथापूर्व प्रमाणगृहीत हेमादि द्रव्यों की द्रुति के साथ घोट कर पिष्टी बनाकर डमरूयन्त्रादि की विधि से पारद को उड़ालेवें। इस तरह सौवार पारे को उक्त द्रव्यों की द्रुति के साथ घोट २ कर उडाना चाहिए। इस तरह सौ बार उड़ाने से केवल दो पल भर पारद रह जाता है। इस पारद को अष्टमाध्याय में कही हुई सन्यास क्रिया के अनुसार भस्म बनानी चाहिए। इस विधि से २ पल भर पारद की १ पल भर भस्म तैय्यार होती है। इस १ पल भर पारदभस्म में १ निष्क (४ मा०) भर हीरे की भस्म, अभ्रक सत्त्व की भस्म ६ पल और २ पल भर शुद्ध गन्धक मिला कर दो दिन तक निरन्तर खरल करें। फिर इस चूर्ण को लोहे की कड़ाही में या नलिकाकार वाली लोहे की मूषा में डाल कर चूल्हे पर चढा के

मन्द २ अग्नि जलानी चाहिए तथा सेमल की जड़ का स्वरस या क्वाथ नाली के मार्ग से थोड़ा २ डाल कर कलच्छी स चलाते रहना चाहिए, तथा उस क्वाथ के दग्ध हो जाने पर फिर दूसरी बार क्वाथ डालें। इस तरह ४० पल भर सेमल की जड़ के क्वाथ को धीरे २ थोड़ा २ डाल कर जारण करना चाहिए। तदनन्तर स्वाङ्ग शीतल सिद्ध रस को कड़ाही या मूषा में से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के वस्त्र से छान कर काच की शीशी में भर के डाट ( ढक्कन ) लगा कर सुरक्षित स्थान में रख देवें। यह रस एक रत्ती भर लेकर घृत के साथ अथवा यथादोषहर या यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ निरन्तर सेवन करते रहने से भिन्न २ या सामूहिक दोषों की विकृति से उत्पन्न हुए सर्व प्रकार के असाध्य या दुःख साध्य रोगों को नष्ट कर देता है। यह रस जठराग्नि को दीप्त करता है तथा इस रस के सेवन करने से पुरुष सैकड़ों स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है। यह रस प्रतिदिन वृष्य अनुपानों के साथ सेवन करते रहने से शरीर को स्थिर अर्थात् सौ वर्ष तक जीवित रहने योग्य कर देता है। विद्वान् लोगों ने इस को काम धेनु रस कहा है ॥ ३८–४५ ॥

अथ महाभ्रसत्त्वम्—

कृष्णाभ्रकस्य धान्याभं कृत्वा भृङ्गाम्बुनि क्षिपेत् ।
तस्मिंश्च तुत्थकं देयं शुद्धं ताप्यभवं रजः ॥ ४६ ॥
टङ्कणं चाग्निना भृष्टं तावदेव विनिक्षिपेत् ।
छागास्थिसम्भवं चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ ४७ ॥
रसभस्माष्टमांशं च गुडगुञ्जापुरस्तथा ।
पञ्चाजेन विनिष्पिष्य गोलीकृत्य विशोष्य च ॥ ४८ ॥
ततो नूतनभाण्डस्य जलघृष्टेन पाण्डुना ।
विलिप्य वटिकाः सर्वा हरेत्सर्वं पुरोक्तवत् ॥
महाभ्रसत्त्वमेतत्स्यादेकमप्यखिलातिनुत् ॥ ४९ ॥

शुद्ध किये हुए १ पल भर कृष्ण अभ्रक का धान्याभ्रक संस्कार करके भृङ्गराज के स्वरस में डाल कर रात भर के लिये रख देवें। फिर उसमें १ पल नील तुत्थ, १ पल स्वर्णमाक्षिक भस्म और अग्नि में भूना हुआ सुहागा १ पल ये तीनों मिलाकर घोटें तथा अभ्रक का चौथाई बकरे की हड्डी का चूर्ण एवं पारद की भस्म

या रससिन्दूर, पुराना गुड, शुद्ध गुग्गा का चूर्ण और शुद्ध गूगल ये प्रत्येक अभ्रक से अष्टमांश डालकर बकरे के दुग्ध, दही, घृत, मूत्र और विष्ठा ( मींगनी ) के रस से घोट कर गोलियां बना के सुखा लेवें। फिर इन गोलियों को नये मिटी के भाण्ड को जल के सङ्ग घिसने से उत्पन्न हुए कीचड या कल्क से पोत कर सुखा के पूर्व में कही हुई विधि के अनुसार अभ्रक सत्त्व निकाल लेना चाहिए। यह महाभ्रक सत्त्व अनुपान भेद से अनेक व्याधियों से उत्पन्न हुई पीडाओं को दूर करता है ॥ ४६-४९ ॥

अथ उमापतिरसः—

त्रिफलाक्वथितैः सार्धं पुटितं च शतावधि ।
इत्थं महाभ्रसत्त्वं तन्मृतं शाणचतुष्टयम् ॥ ५० ॥
एकशाणमितं सम्यग्रसराजस्य भस्म च ।
एकशाणमितं गन्धं त्रिफला च त्रिशाणिका ॥ ५१ ॥
कान्तपात्रे क्षिपेदेतत्सर्वं घृतसितायुतम् ।
मर्दयेदतियत्नेन यावत्स्यात्प्रहराष्टकम् ॥
तत्कल्कं निक्षिपेत्कन्तलोहजातकरण्डके ॥ ५२ ॥
संसिद्धोऽयमुमापतिर्वररसो गुञ्जामितः सेवितो
मासेनैव महामयान्प्रशमयेत्पथ्यादियुक्तिं विना ।
नित्यं क्षीरघृताशनेन च पुनः संसेवितो नाशये-
दब्देनैव जरां वलीपलितकैर्दद्याच्छताब्दं वयः ॥ ५३ ॥
उमापती रसः सोऽयमुमापतिरिवापरः ॥ ५४ ॥

पूर्व में कहा हुआ महाभ्रक सत्त्व लेकर त्रिफला के क्वाथ के साथ दिन भर घोटकर टिकिया बना के। इस तरह त्रिफला के क्वाथ में घोट २ कर १०० पुट देने चाहिएं। सौ पुट देने के पश्चात् उसमें से ४ शाण भर सिद्ध अभ्रकसत्त्व, तथा यथा विधि से की हुई रसराज अर्थात् पारद की भस्म या रस सिन्दूर १ शाण, शुद्ध गन्धक १ शाण तथा त्रिफला का चूर्ण ३ शाण भर लेकर कान्त लौह की खरल में सत्त्व को मिला के गाय के घी और चीनी के साथ आठ प्रहर तक निरन्तर घोटना चाहिए। पश्चात् इस सिद्ध कल्क अर्थात् पिण्ड को कान्त लौह की बनी हुई डिब्बी में बन्द करके रख दें। इस तरह यह उमापति रस

सिद्ध होता है। यह रस एक गुञ्जा ( रत्ती ) भर पथ्यापथ्य के विचार के विना भी मास तक सेवन करने से बड़े२ रोगों को नष्ट कर देता है। यह रस एक वर्ष भर दुग्ध और घृत के अनुपान से सेवन करते रहने से वली और पलित रोगों के साथ२ जरा ( बुढौति ) को नष्ट कर देता है तथा सौ वर्ष को आयु करता है। यह उमापति रस उमापति अर्थात् महादेव के समान ही अपने भक्तों को सुख देता है ॥ ५०-५४ ॥

अथ महाकनकसुन्दररसः—

कान्तकाञ्चनगन्धाश्मजारितं मारितं रसम् ।
चतुर्निष्कमितं चाथ स्वर्णं निष्कमितं मतम् ॥ ५५ ॥
निक्षिप्य कान्तपात्रे तु पञ्चाशन्निष्कसम्मितम् ।
जारयेद्गन्धकं शुद्धगन्धेन वडवाग्निना ॥ ५६ ॥
निष्कतुल्यमिदं चूर्णं श्लक्ष्णीकृत्य प्रयत्नतः ।
निक्षिपेन्मधुसम्पूर्णे घृतसुस्निग्धभाण्डके ॥ ५७ ॥
अमुनैव प्रकारेण पथ्यानां षष्टिसंयुतम् ।
त्रिशतं साधयेद्यत्नाच्छास्त्रदृष्टविधानतः ॥ ५८ ॥
त्रिधा विभज्य तत्रैकां समादाय हरीतकीम् ।
एकपादं दिनाभ्यां च द्वितीयं दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५९ ॥
तृतीयं च ततः पादं चतुर्भिर्दिवसैर्भजेत् ।
एकैकां च ततः पथ्यां भजेदावत्सरं नरः ॥ ६० ॥
जीवेद्वर्षशतं साग्रं वलीपलितवर्जितः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो नित्यं स्त्रीशतसेवकः ॥ ६१ ॥
वलवान्वीर्यवांश्चैव पूर्णसर्वेन्द्रियोदयः ।
जायते नात्र सन्देह आज्ञेयं पारमेश्वरी ॥ ६२ ॥
हन्यादक्षिगदांश्च कुष्ठमखिलं मासान्तमासेवितः
पाण्डुं च ग्रहणीं प्रमेहगुदजान्गुल्मांश्च शूलामयान्
स्थूलत्वं च तथा महाग्निसदनं रोगांस्तथेवापरान्
कुर्याद्दीपनपाचनं खलु नृणां भाव्यामयारोधनम् ॥ ६३ ॥
अयं रसायनो दिव्यो महाकनकसुन्दरः ॥ ६४ ॥

कान्त लौहभस्म, स्वर्णभस्म और शुद्ध गन्धक इनके साथ जारण करके मारा हुआ पारद अर्थात् पारद भस्म चार निष्क ( १६ माशे ) और स्वर्ण भस्म १ निष्क ( ४ माशे ) भर लेकर दोनों को कान्त लौह की मूषा में डाल देवें। फिर उसमें ५० निष्क भर शुद्ध गन्धक लेकर इस में से थोड़ा २ डाल कर तीव्र अग्नि पर जारण करना चाहिए। इस प्रकार से जारण किये हुए रस को १ निष्क भर लेकर ठीक तरह से खरल में महीन करके शहद् से भरे हुए घृत से चिकने हुए मिट्टी के भाण्ड में डाल देवें। फिर ३६० पकी हुई हरडें लेकर उन्हें यथाविधि जल में उबाल कर उसी शहद् से भरे पात्र में डाल कर उसके मुख को ढक कर सन्धिबन्धन करके एक मास तक रख दें। एक मास के पश्चात् उस भाण्ड में से १ हरड़ निकाल कर उसके समान २ तीन टुकड़े करके उन में से पहिले दिन और दूसरे दिन तक उस एक टुकड़े को खावें तथा द्वितीय टुकड़े को तीन दिन तक खावें और तीसरे टुकड़े को चार दिन में खाकर समाप्त करें। इस तरह एक हरड़ के तीन टुकड़ों को ९ दिन तक सेवन करने के पश्चात् प्रतिदिन एक २ हरड़ निकाल कर एक वर्ष भर तक सेवन करें। इस तरह इन हरडों के यथाविधि सेवन करने से मनुष्य वली-पलित रोग से निर्मुक्त तथा सर्व प्रकार की व्याधियों से रहित हो कर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इस हरड़ को सेवन करने वाला मनुष्य प्रतिदिन सैकड़ों स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी बलवान्, वीर्य्यवान् और सर्व इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न रहता है। ऐसा श्री महादेवजी की आज्ञा है। इस रस के गुणों में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। यह रस अर्थात् सिद्ध हरड़ १ मास तक सेवन करने से नेत्रों के विकार, सर्व प्रकार के कुष्ठ, पाण्डु रोग, ग्रहणी, प्रमेह, गुदज अर्थात् बवासीर, गुल्म, शूल, स्थौल्य रोग, अत्यन्त बढ़ी हुई मन्दाग्नि तथा अन्य प्रकार के समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह रस अग्नि को प्रदीप्त कर के पाचन शक्ति को बढ़ाता है तथा मनुष्यों के भविष्य में होने वाले रोगों का निरोध करता है। यह महाकनक सुन्दर रस दिव्य रसायन है ॥ ५५-६४ ॥

अथ अमृतार्णवरसः—

कृत्वा कणटकवेध्यानि पलस्वर्णदलान्यथ।
अष्टांशरसलिप्तानि निक्षिपेदुपले ऽयहम् ॥ ६५ ॥

हिङ्गुहिङ्गुलगन्धाभ्रमताप्यनीलाञ्जनैः समैः ।
कृतं चूर्णमधश्चोर्ध्वं पत्राणां विनिधाय च ॥ ६६ ॥
शतवारं पुटेत्सम्यङ निरुत्थं भस्म जायते ।
तद्भस्मद्विगुणं सूतं तस्माद्द्विगुणहिङ्गुलः ॥ ६७ ॥
तस्माच्च द्विगुणं ताप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
रसेन मातुलुङ्गस्य निरन्तरदिनद्वयम् ॥ ६८ ॥
तुषैः पुटत्रयं दद्याद्गोकरीषैः पुटत्रयम् ।
पुटानि दश विंशत्या छगणानां प्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥
त्रिंशद्भिश्छगणैर्दद्यात्पुटानामथ विंशतिम् ।
तस्मिन्वैक्रान्तजं भस्म निक्षिपेत्पादमात्रया ॥ ७० ॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य भृङ्गराजनिजद्रवैः ।
भावयेत्सप्तवाराणि सिद्धयत्येवमयं रसः ॥
श्रीमता नन्दिना प्रोक्तो रसोऽयममृताण्वः ॥ ७१ ॥
गुञ्जाबीजमितः सिताघृतकणासंयोजितः सेवितः
कुर्याद्वृष्यमनेकशो वरवधूसन्तोषसम्पोषणः ।
यक्ष्मव्याधिविधूननो गरहरः पर्याप्तदीप्तानलो
मूलव्याधिनिवारणः किमपरं सर्वामयध्वंसनः ॥ ७२ ॥
रम्भापक्वफलं घृतं दधि पयः क्षैरेयकं मण्डका
बालं तालफलं सिता च पललं सन्तानिका मोदकाः ।
खर्जूरं वरपानकं च वटकाः पुण्ड्रेक्षवः सारसं
गुर्वन्नं पनसन्तथा शिखरिणी पथ्यं रसेऽस्मिन्मतम् ॥७३॥

एक पल भर शुद्ध स्वर्ण लेकर उसके कण्टक वेधी पत्र बनवा कर स्वर्ण से अष्टमांश शुद्ध पारद को पत्थर की खरल में डालकर उसके साथ स्वर्णदलों को अच्छी प्रकार तीन दिन तक घोट लेवें । पश्चात् शुद्ध हीङ्ग, शुद्ध हिङ्गुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक और शुद्ध नीलाञ्जन इन पाचों को समभाग लेकर महीन चूर्ण बना के पारदलिप्त स्वर्णपत्रों के ऊपर और नीचे रखकर सम्पुट में बन्द करके पुट दे देवें । इस तरह उपर्युक्त हीङ्ग हिङ्गुलादि चूर्ण के साथ १०० वार पुट देने से स्वर्ण की निरुत्थ भस्म हो जाती है । इस विधि से की हुई स्वर्ण भस्म और भस्म

से द्विगुण शुद्ध पारद, पारद से द्विगुण शुद्ध हिङ्गुल और हिङ्गुल से द्विगुण शुद्ध स्वर्णमाक्षिक भस्म लेकर सबको खरल में डालकर महीन पीस के बिजौरे निम्बू के रस के साथ दो दिन तक निरन्तर मर्दन करके गोला बनाकर सम्पुट में बन्दकर के धान की भूसी के मध्य में सम्पुट को रखकर पुट दे देवें। इस प्रकार निम्बू के रस में घोट २ कर तुषों में सम्पुट को रखकर तीन पुट देने चाहिएं। फिर गौ के उपलों की अग्नि द्वारा तीन पुट तथा बीस जङ्गली उपलों की अग्नि द्वारा १० पुट और ३० जङ्गली उपलों की अग्नि द्वारा २० पुट देकर सिद्ध भस्म ग्रहण करें। प्रत्येक पुट देते समय निम्बू के रस में घोटना जरूरी है। फिर इस भस्म में चौथाई भाग लेकर वैक्रान्त मणि की भस्म मिला कर महीन पीस के भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करके घोटकर सुखा लें। इस विधि से यह रस सिद्ध होता है। श्रीमान् नन्दी ने इस अमृतार्णव रस का उपदेश किया है। यह रस १ गुञ्जा भर लेकर शर्करा, घृत और पिप्पली के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वृष्य गुण करता है, अर्थात् मनुष्य वीर्य से परिपूर्ण हो कर अनेक नवविवाहित स्त्रियों को सन्तुष्ट करता है। यह रस राजयक्ष्मा को नष्ट करता है, गरविष को शरीर से निकालता है, उदर की अग्नि को अत्यन्त दीप्त करता है, मूलव्याधि अर्थात् अर्श को नष्ट करता है, ज्यादा क्या कहा जाय, यह रस यथारोगानुपानपूर्वक सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करते समय केले के पके हुए फल, घृत, दही दुग्ध, क्षेरेयक अर्थात् दुग्ध से बना पदार्थ खीर, रबडी आदि तथा (१)मण्डक, ताडके कच्चे फल, चीनी, मांसरस, मलाई, मूङ्ग आदि के लड्डू, पिण्ड खजूर या छुहारा, उत्तम प्रकार के शर्बत, दाल के बड़े, पौण्डे ऊख का रस, सारस पक्षीका मांस, गेहूं आदि गुरु पदार्थ, पनस अर्थात् पका हुआ कटहल

(१)मण्डकपरिभाषा—

वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत्।
हस्तचालनया तस्या लोष्त्रीं सम्यक् प्रसारयेत्॥
आधोमुखघटस्यैतां विस्तृतां प्रक्षिपेद्बहिः।
मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते॥
दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः।
अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा

और शिखरिणी अर्थात् श्रीखण्ड ये सब पदार्थ हितकर हैं ॥ ६५-७३ ॥

अथ मदनसञ्जीवनरसः—

त्रिपलं पारदं शुद्धं गन्धकं च चतुष्पलम् ।
मृतमभ्रकसत्त्वं च स्वर्णं कान्तं च कार्षिकम् ॥ ७४ ॥
द्विपलं हेम विमलं भूनागायाः पलत्रयम् ।
एभिः सर्वैश्च सम्पेष्य प्रकुर्यान्नष्टपिष्टिकाम् ॥ ७५ ॥
वालुकायन्त्रविन्यस्तलाहपात्रे क्षिपेत्ततः ।
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं कारयेत्तदनन्तरम् ॥ ७६ ॥
मण्डूकब्राह्मिकायाश्च मुषल्याश्चित्रकस्य च ।
हस्तिशुण्ड्यास्तथा कृष्ण-निर्गुण्ड्या गोक्षुरस्य च ॥ ७७ ॥
रसं कुडवमानेन क्षिपेत्खल्ले मुहुर्मुहुः ।
तत आकृष्य सम्पिष्य मधुना सह यत्नतः ॥ ७८ ॥
मल्लमूषोदरे क्षिप्त्वा विनिरुध्य विशोष्य च ।
दशभिश्छगणैर्दग्धं पुटं सम्पूज्य भैरवम्
करण्डे क्षेपयेत्पिष्ट्वा समभ्यर्चितकन्यकः ॥ ७९ ॥
रसः ख्यातो नाम्ना भुवि मदनसञ्जीवन इति
द्विवल्लाभ्यां तुल्यो घृतमधुसितादुग्धसहितः ।
निपीत सप्ताहं प्रचुरमधुराहारसहितो
नरं कुर्यान्नारीशतसुरतसुप्रीतहृदयम् ॥ ८० ॥
हन्यादुन्मादमुग्रं क्षयगदमरुचिं कामलामम्लपित्तं
सर्वान्पित्तोत्थरोगान्रुधिरभवगदान्रक्तपित्तज्वरांश्च ।
रक्तार्शः पित्तगुल्मं सततमतिमहाऽऽनाहमन्तर्विदाहं
पाण्डुं मेहांश्च मोहं प्रदरगदमपि स्त्रीजनस्योग्रमाशु ॥८१॥

शुद्ध पारद ३ पल, शुद्ध गन्धक ४ पल, अभ्रक सत्त्व १ कर्ष, स्वर्णभस्म १ कर्ष, कान्तलौह भस्म १ कर्ष, हेमविमल अर्थात् स्वर्णमाक्षिक भस्म २ पल, भूनाग ( केञ्चुओं ) का सत्त्व ३ पल इन सब को एक खरल में अच्छी तरह से खरल करके नष्टपिष्ट कर लेवें । फिर इस चूर्ण को नांद में भरी हुई रेत (बालुका) के अन्दर रखी हुई लौहे की कूपिका या खरल में डालकर नांद को तेज अग्नि

वाली भट्टी पर चढा देवें। फिर उस औषध युक्त खरल में मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, मुषली, चित्रक, हस्ति शुण्डी, काली निर्गुण्डी और गोखरू इसका स्वरस या क्वाथ १ कुडव भर लेकर उसमें से बारबार थोड़ा थोड़ा डालते रहें। समस्त औषधियों के रस के डाल चुकने के पश्चात् स्वाङ्ग शीतल लौह पात्र से औषध को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके मधु के साथ ठीक तरह से घोट लेवें। फिर गोला बनाकर मल्लमूषा में भर कर बन्द करके कपड़ मिट्टी करके सुखा लेवें। पश्चात् श्रीभैरवजी की यथाविधि पूजन करके दश जङ्गली उपलों की अग्नि के द्वारा पुट देकर स्वाङ्गशीतल मूषा को तोड़ कर सि रस को निकाल कर खरल में महीन पीस कर कन्याओं की पूजन करके काच की शीशी में भर देवें। यह रस पृथ्वी में मदनसञ्जीवनी इस नाम से विख्यात हुआ है। यह रस दो वल्ल (दो रत्ती) भर एक सप्ताह तक घृत, शहद्, शक्करा और दुग्ध के साथ तथा अत्यन्त मधुर भोजन का पथ्य करते हुए सेवन करने से मनुष्य को सैकड़ों युवति स्त्रियों के साथ सम्भोग करने के लिये उत्कण्ठित हृदय वाला कर देता है। यह रस यथाव्याध्यनुपान पूर्वक प्रति दिन सेवन करते रहने से अत्यन्त उग्र उन्माद, क्षयरोग, अरुचि, कामला, अम्लपित्त, सर्व प्रकार की पित्त की व्याधियां, दूषित रक्त से उत्पन्न व्याधियां और रक्तपित्त, ज्वर, रक्तार्श (खूनी बवासीर), पित्तगुल्म, निरन्तर हो रहने वाला आनाह रोग (अफरा), शरीर के भीतर की गरमी, पाण्डु, प्रमेह, मूर्च्छा और स्त्रियों के भयङ्कर प्रदर रोग को समूल नष्ट कर देता है ॥ ७४–८१ ॥

अथ पुष्पधन्वा रसः—

**रम्भाकन्दे हेमतारार्कपिष्टीं पक्त्वा यन्त्रे भूधरे तां पचेत।**
**गन्धं दत्त्वा षड्गुणार्धं क्रमेण पश्चात्कान्तं तेन तुल्यं क्रमेण ॥ ८२ ॥**
**दत्त्वा खल्ले शाल्मलीयष्टितोयैः पक्षैकं तन्मर्दयेन्नागवल्याः।**
**नीरैर्यामं घुष्पधन्वा रसः स्याद् वल्लं दद्यादस्य पूर्वोक्तयुक्त्या ॥ ८३ ॥**
**पुष्टिं वीर्यं दीपनं सोऽत्र दद्याद्धन्याद्रोगान् रोगयोग्यानुपानैः ॥ ८४ ॥**

स्वर्ण भस्म, रजत भस्म और ताम्र भस्म इन तीनों को सम भाग लेकर केले की जड़ के स्वरस में घोट कर पिष्टी बनालें। फिर इस पिष्टी को भूधर यन्त्र की विधि से पका कर स्वाङ्ग शीतल होने पर यन्त्र से निकाल कर खरल में

महीन चूर्ण कर लेवें। फिर उस में षड गुण का आधा अर्थात् त्रिगुण शुद्ध गन्धक मिला कर महीन पीसलें, पश्चात् उस में गन्धक के तुल्य प्रमाण ही कान्त लौह की भस्म मिला कर अत्यन्त महीन पीस के सेमल की जड़ और मुलेठी के क्वाथ से एक पक्ष तक भावित कर के नागर वेल के पत्ते ( पान ) के स्वरस में एक प्रहर तक घोट कर सुखा लेवें। इस तरह यह पुष्पधन्वा रस सिद्ध हो जाता है। पूर्वोक्त रस की विधि के अनुसार इस रस की १ वल्ल भर की मात्रा को प्रतिदिन सेवन कराने से पुष्टि, वीर्य्य शक्ति और अग्नि दीपन करता है। यह रस रोगों के अनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से सब रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ८३–८४ ॥

अथ रसेन्द्रचूड़ामणिः—

सूतहेमभुजगाभ्रवङ्गकाः कान्तताप्यविमलाः समाक्षिकाः ।
भागवृद्धिमिलिता विमर्दिता धूर्तपत्रविजयासलिलेन ॥ ८५ ॥
सप्त सप्त चपलाऽमृतवल्ली सारिवासुरतरुत्वगलतोयैः ।
वारिवाहमृतयष्टिकावरीवानरीभुजगदृष्टधुद्केन ॥ ८६ ॥
अर्धभागमहिफेनकं न्यसेन्मर्दयेत्सुरसपुष्परसेन ।
चन्दनार्ककरहाटपिप्पलीश्रावणीकृतरसैः पृथगेव ॥ ८७ ॥
कुङ्कुमेन च ततो विभावयेन्नाभिजद्रवयुतं विभावयेत् ।
सिद्धिमेति रसराडयं शुभः कामिनीमदविधूननदक्षः ॥ ८८ ॥
शर्करामधुयुतो द्विमाषकः स्तम्भकृन्निधुवने वनितानाम् ॥ ८९ ॥
संसेव्य सूतं न रात्रिभोज्यं कुर्वीत पेयं पय एव केवलम् ॥ ९० ॥
तृतीययामे रससेवनं तु कृत्वा निशायाः प्रहरे व्यतीते ॥ ९१ ॥
सेवेत कान्तां कमनीयगात्रां घनस्तनीमुज्वलचारुवस्त्राम् ।
रत्युत्सुकां कातरलोलनेत्रां विलोलहारावलिमोदधानाम् ॥ ९२ ॥
किं कामे तनुकामिनां मलयजेनावश्यजेनाशु किम् ।
किं चन्द्रेण परोपकारजनिना पुंस्कोकिलेनापि किम् ॥ ९३ ॥
सहस्रशः सन्ति यदा तरुण्यो मदालसाः पीनपयोधरा दृढाः ।
तदा रसेन्द्रः परिषेवणीयो विकारकारी भवतीह नान्यथा ॥९४॥

शुद्धपारद १ तोला, स्वर्णभस्म २ तोला, नागभस्म ३ तोला, अभ्रकभस्म

४ तोला, वङ्गभस्म ५ तोला, कान्त लौहभस्म ६ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म ७ तो०, चांदी की भस्म या रौप्यमाक्षिकभस्म ८ तोले भर लेकर सब को खरल में एकत्र महीन पीसकर धत्तूरे के पत्ते और भङ्ग के रस में पृथक् २ सात २ वार घोटें। फिर पीपल, गुडूच, सारिवा, सुरर (ल) ता अर्थात् ज्योतिष्मती, अजजल अर्थात् लज्जालु, नागरमोथा, शुद्ध मीठा तेलिया या वाराहीकन्द, मुलेठी, शतावर, कौञ्च के बीज और भुजगदृष्टि अर्थात् सर्पाक्षि इन प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से सात २ वार भावना देकर पारद की अपेक्षा आधी शुद्ध अफीम मिलाकर तुलसी के पुष्पों (मञ्जरी) के स्वरस या क्वाथ के साथ घोटें। फिर लाल चन्दन, आक की जड़, मैनफल, अकरकरा, पिप्पली, श्रावणी अर्थात् मुण्डी, केसर और नागिज अर्थात् कमलकन्द की जड़ इन द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ में पृथक् २ एक २ वार घोट कर शुष्क चूर्ण बनालें। इस तरह यह कामिनी स्त्रियों के मद को खण्डित करने वाला सर्व रसों में श्रेष्ठ कन्दर्पचूडामणि रस सिद्ध हो जाता है। यह रस दो माशे भर (२ रत्ती) लेकर शक्कर और शहत् के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से स्त्रियों के सङ्ग सम्भोग करने में वीर्यका स्तम्भन करता है। इस रस को सेवन करने के पश्चात् रात्रि में भोजन करना वर्जित है, केवल दुग्ध ही का पान करना चाहिए। इस रस को दिन के तीसरे प्रहर (अर्थात् दो पहर के तीन बजे) के पश्चात् सेवन करना चाहिए तथा रात्रि को १ प्रहर बीत जाने के बाद सुन्दर शरीर वाली, कठिन स्तनों से युक्त, अत्यन्त उज्वल और मनोहर वस्त्रों को धारण की हुई, रति (सम्भोग) के लिये उत्कण्ठित, कातर और चपल नेत्रों वाली तथा चित को आह्लाद देने वाले हार को धारण की हुई ऐसी स्त्री के साथ सम्भोग करना चाहिए। जिन पुरुषों की कामशक्ति (सुरतेच्छा) तनु अर्थात् नष्ट हो गई हो उन पुरुषों के काम का बढ़ाने में मलयाचल की सुगन्धित वायु तथा तत्काल सम्भोग शक्ति वर्धक पदार्थों के सेवन से भी क्या लाभ है? तथा मनुष्यों के परोपकार करने वाले चन्द्रमा की चांदनी से भी क्या लाभ? तथा कोकिलाओं के मधुर स्वर वाले गीतों के श्रवण करने से क्या लाभ है? अर्थात् स्वल्पवीर्य वाले पुरुषों के लिये इन वस्तुओं से कुछ भी लाभ नहीं है, इस लिये प्रथम सम्भोग शक्ति को बढ़ाने के लिये इस रस का सेवन करना चाहिए। इस रस को वे ही मनुष्य सेवन करें जिन के पास काम के मद से उन्मत्त एवं अलस

( मन्दगति युक्त ) तथा दृढ, और मोटे स्तनों वाली हजारों तरुण स्त्रियां हों, अन्यथा यह रस विकार को उत्पन्न करता है ॥ ८५-९४ ॥

अथ पूर्णचन्द्ररसः—

सूतं गन्धं चाश्वगन्धा गुडूचीयष्टीतोयैर्वासरैकं विघृष्य ।
क्षुद्रं शङ्खं मौक्तिकं लौहकिट्टं भस्मीभूतं सूततुल्यं हि दद्यात् ॥९५॥
भृकुष्माण्डैर्वासरैकं विघृष्य गोलं कृत्वा भूधरे तं पुटेत ।
चूर्णं कृत्वा नागवल्लीरसेन दद्यादेकं मर्दयित्वा च निष्कम् ॥९६॥
मध्वाज्याभ्यां पर्णचन्द्रं रसेन्द्रं पुष्टिं वीर्यं दीपनं चैव कुर्यात् ।
योज्यश्चायं पित्तरोगे ग्रहण्यामर्शोरोगे सेवयेद् बोलयुक्तम् ॥९७॥
स्त्रीणां तापे शाल्मलीनीरयुक्तं मात्रामानं देशकालं विचिन्त्य ॥९८॥

शुद्धपारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समभाग लेकर खरल में कज्जली बना कर असगन्ध, गुडूच और मुलेठी इनके क्वाथ से एक दिन घोटकर उसमें छोटे शङ्ख की भस्म, मुक्ताभस्म और लौहकिट्ट अर्थात् मण्डूरभस्म इन प्रत्येक को पारद के समान लेकर उसमें मिलाकर खरल करें । फिर विदारीकन्द के स्वरस में एक दिन तक घोट कर गोला बना लें । फिर इस गोले को सम्पुट में बन्द करके भूधर यन्त्र में पका कर स्वाङ्गशीतल होने पर यन्त्र से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के नागवल्ली के पत्तों के स्वरस के साथ दिन भर खरल करके सुखा कर खीशी में भर देवें । इस रस को एक निष्क भर लेकर शहद् और घृत के साथ संयुक्त करके सेवन करावें । यह रस शरीर की पुष्टि करता है, वीर्य को बढ़ाता है, पाचकाग्नि को प्रदीप्त करता है । इस रस को पित्तजन्यरोग, ग्रहणी विकार तथा अर्श में बोल (गन्ध बोल) के साथ प्रयुक्त करें । इस रस को स्त्रियों के ताप में अर्थात् प्रदर, योनि व्यापद् और सोमरोग आदि रोगों में हस्तपाद दाह अधिक होता हो तब सेमल की जड़ के स्वरस के साथ प्रयुक्त करना चाहिए । इस रस की मात्रा की कल्पना देश काल और रोगी की अवस्था का विचार कर के करनी चाहिए ॥ ९५-९८ ॥

अथ महाकल्कः—( दिव्यामृतरसः )

धान्याभ्रकं विनिक्षिप्य मुशलीरसमर्दितम् ।
स्थाल्यां क्षिप्त्वा निरुध्याऽथ पिधान्या मध्यरन्ध्रया ॥९९॥

स्थालयधा ज्वालयेद्वह्निं यामपर्यन्तमुद्धतम् ।
ततः क्षिपेत्तिधान्यां हि व्योम्नस्त्वष्टगुणं पयः ॥ १०० ॥
जीर्णं पयसि पिष्ट्वा तत्तालमूलीरसैः पुनः ।
इत्थं हि साधयेद्व्योम त्रिवारमतियत्नतः ॥ १०१ ॥
अजादुग्धैः पुटेत्पश्चाद्वाराणि खलु विंशतिः ।
कम्पिल्लकरसेनापि विष्णुक्रान्तारसेन च ॥ १०२ ॥
कदलीकन्दतोयेन तालमूलीरसेन च ।
शतवारं पुटेदेवं भवेद्व्योम रसायनम् ॥ १०३ ॥
तद्व्योमभसितं ताप्यभस्म ताम्रस्य भस्म च ।
शुल्वभस्म च तत्सर्वं समांशं परिकल्पयेत् ॥ १०४ ॥
भावयेत्सप्तधा निम्बरसैर्लोध्ररसेन च ।
केतक्या मार्कवस्यापि कदल्यास्त्रिफलस्य च ॥ १०५ ॥
कोरकस्यापि सारेण तावद्वाराणि यत्नतः ।
इति निष्पन्नकल्केऽस्मिंस्तत्समां त्रिफलां क्षिपेत् ॥ १०६ ॥
भस्मसूतं सितां व्योषं चित्रकं च पृथक् पृथक् ।
मधुना गुटिकाः कार्याः शाणेन प्रमिताः खलु ॥ १०७ ॥
महाकल्क इति ख्यातो दस्राभ्यां परिकीर्तितः ।
एकां गोलीं समारभ्य तथैकैकां विवर्धयेत् ॥ १०८ ॥
चतुर्गोलकपर्यन्तं मण्डले मण्डले खलु ।
सेवितो द्वादशाब्दं तु जरामृत्युविवर्जितः ॥ १०९ ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो दृढदीपनपाचनः ।
भीमतुल्यबलः श्रीमान्पुत्रसन्ततिसंयुतः ॥ ११० ॥
सर्वारोग्यमयो भीमसमानभुजविक्रमः ।
सर्वायाससहिष्णुश्च शीतातपसहस्तथा ॥ १११ ॥
अमन्दसम्पदोपेतः प्रौढस्त्रीरतिरञ्जनः ।
दृढसर्वेन्द्रियो भूत्वा जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ ११२ ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं तथैवार्धौ महागदान् ।
मण्डलार्धेन शमयेज्ज्वरादीनां तु का कथा ॥ ११३ ॥

**सर्वगोरससंयुक्तं पथ्यं कार्यं रसायने ।**
**रोगोचितमथान्यच्च ददीत खलु रोगिणे ॥ ११४ ॥**
**संसारसुखमिच्छद्भिः सुखं जीवितुमिच्छुभिः ।**
**नित्यं रसो निषेव्योऽयं दिव्यामृतसमो मतः ॥ ११५ ॥**

धन्याभ्रक संस्कार किये हुए अभ्रक को खरल में मुषली के रस के साथ दिन भर घोटकर एक स्थाली में भर कर मध्य में छिद्र वाले पिधान अर्थात् सकोरे (शराब) से स्थाली का मुख बन्द करके सन्धियों को कपडमिट्टी से बन्दकर सुखा लें। फिर इस स्थाली को चूल्हे पर चढा कर एक प्रहर तक तेज अग्नि जलावें। फिर ढकन के छिद्र से स्थाली में अभ्रक को अपेक्षा आठ गुना दुग्ध डालना चाहिए। दुग्ध के अच्छी प्रकार से जल जाने पर स्वाङ्गशीतल स्थाली को चूल्हे से नीचे उतार कर सन्धि को पृथक् करके अभ्रक निकाल लें। फिर उस अभ्रक को खरल में मुषली के स्वरस से घोट कर उपर्युक्त विधि से स्थाली में भर कर मध्य छिद्र वाले ढक्कन से मुख बन्द कर के सन्धिबन्धन कर के पूर्ववत् दुग्ध डाल कर पाक करें। इस तरह तीन वार पाक करना चाहिए। इस तरह पाक करने के पश्चात् अभ्रक को खरल में महीन पीस कर बकरी के दुग्ध के साथ घोट कर पुट दे देवें। इस तरह बकरी के दुग्ध में घोट २ कर २० पुट देने चाहिएं। पश्चात् कबीले के रस, विष्णुकान्ता के स्वरस, कदली की जड़ के स्वरस और तालमूली के रस के साथ क्रमशः बीस २ वार घोट २ कर पुट देने चाहिएं। इस तरह अजादुग्धादि ५ द्रव्यों के साथ बीस २ पुट देने से १०० पुट होते हैं। इस विधि से व्योमरसायन तैय्यार होता है। इस विधि से निर्मित अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, ताम्रभस्म, शुल्वभस्म अर्थात् ताम्रभस्म ( यद्यपि ताम्रभस्म प्रथम कह दी है तथापि द्विगुण ग्रहणार्थ पुनर्वचन है ) इन चारों को समभाग लेकर सबको खरल में पीसकर निम्ब (नीम) के पञ्चाङ्ग के क्वाथ से सात वार भावित करके पठानी लोध के क्वाथसे भी सात वार भावित करें, फिर केवड़े की जड़, भृङ्गराज, कदली मूल, त्रिफला और कोरक अर्थात् क्षीरकाकोली या कमल की डण्डी इन के स्वरस या क्वाथ से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार भावना दे कर खरल करें। इस प्रकार भावनाओं के देने से बने हुए कल्क में समभाग त्रिफला का चूर्ण मिश

कर घोटें तथा भस्मसूत अर्थात् पारद की भस्म या रस सिन्दूर, चीनी, त्रिकटु चूर्ण, और चित्रक की जड़ का चूर्ण ये प्रत्येक कल्क के बराबर २ लेकर मिला दें तथा अच्छी प्रकार महीन पीस कर शहद् के साथ खरल कर के चार २ माशे भर की गोलियां बनालें। इस प्रकार यह अश्विनीकुमारों से कहा हुआ महाकल्क नामक प्रसिद्ध रस बनता है। इस रस को प्रत्येक मण्डल में एक २ गोली बढ़ा कर सेवन करनी चाहिए अर्थात् प्रथम मण्डल (४० दिन) में प्रतिदिन एक २ गोली खावें। दूसरे मण्डल में दो २ गोलियां प्रतिदिन सेवन करें, तीसरे मण्डलमें तीन २ और चौथे मण्डलमें प्रतिदिन चार २ गोलियां सेवन किया करें। इस तरह चालीस२ दिन के ४ मण्डल अर्थात् १६० दिनों के पश्चात् प्रतिदिन चार२ गोलियां सेवन करनी चाहिएं। इस तरह १२ वर्ष तक चार २ गोलियां खावें। १२ वर्ष तक इस औषध के सेवन करनेसे मनुष्य जरा (बुढौति) और अकाल मृत्यु से निर्मुक्त होकर सर्व प्रकार के रोगों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है तथा पाचकाग्नि अत्यन्त दृढ हो जाती है, भीम के समान बल बढता है, शरीर की शोभा बढती है, पुत्रों की सन्तति (परम्परा) बढती है, मनुष्य सब प्रकार के आरोग्य से युक्त हो जाता है तथा भीम के समान भुजाओं में बल आ जाता है। सर्व प्रकार के आयासों को सहन करने में एवं शीत और उष्णता को सहन करने में समर्थ, अत्यन्त आनन्द सम्पन्न, प्रौढा स्त्रियों के साथ रति (सम्भोग) करने में उत्सुक तथा दृढ इन्द्रियों वाला होकर मनुष्य १०० वर्ष तक जीवित रहता हैं। यह रस आधे मण्डल (२० दिन) तक ही सेवन करने से श्वास, कास, क्षय, पाण्डु तथा आठ प्रकार के (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह उदर रोग या जलोदर, भगन्दर, अर्श, ग्रहणी) महारोगों को नष्ट कर देता है फिर ज्वरादिरोगों की क्या कथा है? अर्थात् वे तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस रस के सेवन करते समय समस्त गोरसयुक्त अर्थात् गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, आदि के साथ पथ्य पदार्थों के आहार का सेवन करना हितकर है। गोरस के अतिरिक्त रोगी के लिये जो पदार्थ हितकर हों वे भी दिये जांय। जो मनुष्य संसार के विविध सुखों को भोगना चाहें तथा नीरोग होकर जीवित रहने की इच्छा रखते हों उन्हें नित ही इस रस का सेवन करना चाहिए। यह रस दीव्य अमृत के समान है॥ ९९–११५॥

अथ मदनमोदकः—

त्रैलोक्यविजयापत्रं घृतेनाभर्जितं कियत् ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता कुष्ठसैन्धवधान्यकम् ॥ ११६ ॥
शटी तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम् ।
अजमोदा यमानी च यष्टी मधुकमेव च ॥ ११७ ॥
मेथी जीरकयुग्मं च सबीजं भर्जितं तथा ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ॥ ११८ ॥
तावत्येव सिता ग्राह्या यावत्याऽऽर्द्रति बन्धनम् ।
घृतेन मधुना युक्तं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ ११९ ॥
त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणापि वासयेत् ।
स्थापयेद्घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम् ॥ १२० ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम् ॥
कासघ्नं सर्वशूलघ्नं वलीपलितनाशनम् ॥ १२१ ॥
आमवातविकारघ्नं संग्रहग्रहणीहरम् ।
सदा निषेवयेद्धामान् रुच्यमग्निविवर्धनम् ॥ १२२ ॥
एतत्कामविवृद्ध्यर्थं नारदेन प्रकीर्तितम् ।
तेन स्त्रीणां सहस्राणि रेमे स यदुनन्दनः ॥ १२३ ॥

भाङ्ग के पत्ते लेकर उन्हें कड़ाही में घृत डाल कर मन्द २ अग्नि द्वारा भून लेवें। फिर सोंठ का चूर्ण, मरिच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, हरड का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, आंवलों का चूर्ण, नागर मोथे का चूर्ण, मीठे कूट का चूर्ण, सैन्धव लवण, धनियें का चूर्ण, कचूर का चूर्ण, तालीशपत्रचूर्ण, कायफल का चूर्ण, नागकेशर का चूर्ण, अजमोदा का चूर्ण, अजवाईन का चूर्ण, मूलेठी का चूर्ण, महुए की छाल या पुष्पों का चूर्ण, मेथी का चूर्ण, भूने हुए श्वेत और स्याह जीरे का चूर्ण इन सबको समभाग लेकर सब चूर्णों के बराबर बीजों के सहित घृत में भूनी हुई भाङ्ग मिला कर सब को खरल में महीन पीस लें। फिर इस चूर्ण में उतनी ही शर्करा मिलावें जितनी से लड्डू ठीक बन्ध कर मीठे हो जांय, तदनन्तर घृत और शहद छोड कर अच्छी प्रकार घोट कर त्रिसुगन्धि अर्थात् दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और कपूर इन से सुवासित करके छोटे २ लड्डू बना लें। इन्हें घृत से

चिकने हुए मिट्टी के भाण्ड ( मृतबाण ) में रखें। ये ही मदनमोदक लड्डू हैं। इन्हें प्रातः काल उठ कर शौच स्नान सन्ध्यादिकर्म से निवृत्त हो कर सेवन करें तथा ऊपर से गौ का धारोष्ण दुग्ध पीना हितकर है। ये मदनमोदक वात और कफ के विकार, कास, शूल, वलीपलित, आमवात और संग्रहणी आदि रोगों को नष्ट करते हैं। बुद्धिमान् इन्हें सदा सेवन करें, ये मोदक रुचिकर तथा पाचकाग्नि को बढाने वाले हैं। श्री नारद मुनि ने इन मोदकों को कामदेव की वृद्धि के निमित्त बताया है तथा इन्हीं मोदकों के सेवन करने से यदुनन्दन श्री कृष्णजी ने हजारों स्त्रियों के साथ रमण किया है ॥ ११६-१२३ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः—

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगन्धा वचा
मेथी मोचरसो विदारिमुषलीगोक्षुरकेक्षुरकम् ।
रम्भाकन्दशतावरी ह्यजमुदा माषास्तिला धान्यकं
यष्टी नागबला कचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम् ॥ १२४ ॥
भार्ङ्गी ककटशृङ्गिका त्रिकटुकं द्वे जीरके चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणा द्राक्षा शठी बालकम् ।
शाल्मलयङ्घ्रिफलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णये-
च्चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता मध्याज्यमिश्रं तु तत् ॥१२५॥
कषार्धा गुलिकां विलेह्यमथवा कृत्वा च तत्वसेये-
त्पेया क्षीरसिताऽनुवीर्यकरणे स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् ।
रामावश्यकरः सुखातिसुखदः प्रौढाङ्गनाद्रावकः
क्षीणे पुष्टिकरः क्षयक्षयकरो नानामयध्वंसकः ॥ १२६ ॥
नित्यानन्दकरो विशेषकवितावाचाविलासाद्भवं
धत्ते सर्वगुणं महास्थिरवयो ध्यानावधानेऽप्यलम् ।
अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरा-
त्सर्वेषां हितकारको निगदितः श्रीनित्यनाथेन सः ॥ १२७ ॥

शास्त्रानुसार उत्तम विधि से शोधन कर के भस्म किया हुआ अभ्रक तथा काय फल, मीठा कूट, असगन्ध, वच, मेथी, मोचरस अर्थात् सेमल का गोंद, विदारी कन्द, मूषली, गोखरू, ताल मखाना, केले की जड़ या फल, शतावर, अजमोदा,

उडद, तिल, धनियां, मुलेठी, नागबला ( गङ्गेरन ), कचूर, मैनफल, जाय फल, सैन्धव लवण, भारङ्गी, काकड़ासोङ्गी, सोंठ, मरिच, पीपल श्वेत जीरा, स्याह जीरा, चित्रक की जड़, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पुनर्नवा की जड़, गजपीपल, दाख, कचूर, सुगन्ध वाला, सेमल की जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला और शुद्ध किये हुए केंवाच के बीज इन सब को समान भाग लेकर कूट पीस के महीन चूर्ण कर छान लेवें । फिर उपर्युक्त औषध चूर्ण को आधी घृत में भूनी हुई भाङ्ग का चूर्ण और सब से दुगूनी चीनी लेकर सब को बड़ी खरल में एकत्र कर के लड्डू बन्धने के प्रमाण से शहद् और घृत मिला कर अच्छी प्रकार घोट के आधे २ कर्ष के लड्डू या गोलियां बना कर या अवलेह हो के रूप में कर के घृत से स्निग्ध किये हुए भाण्ड में भर कर रख दें । इस औषध को प्रतिदिन आधे कर्ष की मात्रा के अनुसार दुग्ध और चीनी के अनुपान से प्रतिदिन सेवन करें, अर्थात् औषध खाकर ऊपर से चीनी से मीठा किया हुआ आध सेर दुग्ध पीलें । ये लड्डू अधिक कामी पुरुषों के वीर्य को बढ़ाने तथा स्तम्भन करने में अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । यह कामेश्वरमोदक नामक औषध कामिनी स्त्रियों को वश में करने वाला, अत्यन्त सुखप्रद, प्रौढाङ्गनाओं को द्रवित करने वाला, क्षीण धातु की पुष्टि करने वाला, क्षयरोग का नाशक, अनेक प्रकार के रोगों का नाशक, प्रतिदिन नवीन २ आनन्द और उत्साह का देने वाला है तथा इसे सेवन करने वाला पुरुष विशेष प्रकार की कविता और व्याख्यान शक्ति से सम्पन्न तथा सब गुणों को धारण ( ग्रहण ) करने की सामर्थ्य वाला हो जाता है, एवं उसकी आयु अत्यन्त स्थिर तथा ध्यान करने और विषयों को धारण करने में समर्थ हो जाता है । यह कामेश्वर मोदक अभ्यास पूर्वक १ वर्ष तक सेवन करने से अकाल मृत्यु और पलित रोग को नष्ट कर देता है । यह कामेश्वर मोदक सब प्रकार के मनुष्यों के लिये हितकर है । इसको श्रीनित्यनाथ नामक विद्वान ने कहा है ॥ १२४–१२७ ॥

अथ वाजीकरणे सामान्योपायाः—

तत्रादौ मधुकप्रयोगः—

**कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।**
**पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः सदा भवेत् ॥ १२८ ॥**

मुलेठी का चूर्ण बनाकर उसमें से प्रतिदिन १ कर्ष भर लेकर घृत और शहद् के साथ मिला के सेवन करें तथा ऊपर से धारोष्ण दुग्ध पीने से मनुष्य नित्यवेग वाला अर्थात् अक्षयवीर्य्य वाला हो जाता है ॥ १२८ ॥

अथ शृङ्गीप्रयोगः—

**कुलिरशृङ्ग्या यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत् ।**
**सिताघृतपयोऽन्नाशी स नारीषु वृषायते ॥ १२९ ॥**

जो मनुष्य काकड़ासींङ्गी के चूर्ण को जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना के दुग्ध के साथ पीता है तथा चीनी, घृत और दुग्ध के साथ पुष्टि कर भोजन करता है वह सदा स्त्रियों के साथ वृषभ की तरह सम्भोग करता है ॥ १२९ ॥

स्वयङ्गुप्तादिचूर्णम्—

**स्वयङ्गुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ।**
**धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासभायते ॥ १३० ॥**

दुग्ध में उबाल कर शुद्ध किये हुए कौंच के बीज और तालमखाना इन दोनों को समभाग लेकर चूर्ण बना के समान शर्करा मिलाकर इसमें से १ कर्षभर प्रतिदिन धारोष्ण दुग्ध के साथ सेवन करने से मनुष्य गर्दभ के समान स्त्री सम्भोग करने में समर्थ हो जाता है ॥ १३० ॥

अथ तिलप्रयोगः—

**बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ।**
**यः खादेत्ससितान् गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ १३१ ॥**

वस्ताण्ड से सिद्ध ( पकाये ) हुए दुग्ध में भावित किये हुए सफेद तिलों के चूर्ण को धारोष्ण दुग्ध के साथ जो मनुष्य प्रतिदिन सेवन करता रहे तो वह सैकड़ों स्त्रियों के साथ अपूर्व शक्ति से सम्भोग करता है ॥ १३१ ॥

अथ सिन्दूररसः—

**गन्धकेन समं सूतं श्वेताङ्कोलजटारसैः ।**
**त्रिदिनं मर्दितं तेन रसेन गुटिकीकृतम् ॥ १३२ ॥**
**रक्तचित्रकवाराहीपत्रनिर्यासपेषिते ।**
**सद्योहताजमांसस्य पिण्डे न्यस्तं विपाचितम् ॥ १३३ ॥**
**तप्ततैले मज्जयीत यावत्सिन्दूरसन्निभम् ।**

भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां गोक्षीरं च पिबेदनु ॥ १३४ ॥
स्त्रियः सेवेत तत्त्यागे यतः स्फुटति लोचनम् ।
न क्रामति रसः पुंसि क्रान्ते स खलु मन्मथः ॥ १३५ ॥

शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद दोनों को समभाग लेकर खरल में कज्जली बना करके श्वेत अर्कोल की जटा के स्वरस के साथ तीन दिन तक घोट कर गोला बना लें । फिर इस गोले को लाल चित्रक की जड़ और वाराही कन्द के पत्रों के स्वरस से पीसे हुए तुरन्त मारे हुए बकरे के मांस के पिण्ड अर्थात् कल्क के मध्य में रख कर गोला बना के अग्नि पर खौलते हुए तैल में डाल कर सिन्दूर के समान लाल वर्ण का होने तक पकावें । पश्चात् इस पिण्ड या गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के शीशी में भर दें । इसमें से दो २ रत्ती भर चूर्ण लेकर शहद् और घृत के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करें तथा ऊपर से गौ का दुग्ध पीलें । इस रस के सेवन करने के पश्चात् अवश्य स्त्रियों के साथ सम्भोग करना चाहिए, अन्यथा उस पुरुष के नेत्र फूट जाते हैं । इस रस के प्रभाव को अन्य कोई भी औषध नहीं दबा सकती है । इस रस के प्रयोग करने पर वह मनुष्य एक तरह से मन्मथ ही के समान हो जाता है॥१३२-१३५॥

अथ कार्श्यहरयोगः—

शुद्धं सूतं वाजिगन्धां च यष्टीं पक्त्वा दुग्धं तच्च कार्श्यं ददीत ॥१३६॥

शुद्ध सूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर, असगन्ध का चूर्ण और मुलेठी का चूर्ण इन तीनों को दुग्ध में डाल कर उत्तम रूप से पका लें । जब दुग्ध का पानी जल जाय और खोआ मात्र रह जाय तब उसको घृत में भून कर चीनी की चाशनी में मिला के छोटे २ लड्डू बांध लें । इनमें से प्रतिदिन एक २ लड्डू खाकर ऊपर से दुग्ध पीना चाहिए । इस विधि से इस योग का कृशरोग में प्रयोग करना चाहिए ॥ १३६ ॥

अथ कार्श्यहरयोगत्रयम्—

एवं चाप्यं वापयित्वा च दद्याद्यद्वा यष्टिं मागधीं वाजिगन्धाम् ।
मध्वाज्याभ्यां शाल्मलीसत्त्वयुक्तां शम्बूकैर्वा भर्जितैर्वाप्यमिश्रैः ॥१३७॥

उपर्युक्त विधि से कुष्ठ चूर्ण को दुग्ध में पका कर दें । इति प्रथमो योगः । अथवा मुलेठी, पिप्पली और असगन्ध इनको बराबर २ लेकर चूर्ण बना के घृत,

शहद् और सेमल के सत्त्व अर्थात् गोंद या जड़ के स्वरस के साथ दें । इति द्वितीयो योगः । अथवा यष्टि, पिप्पली और असगन्ध को भून चर कुष्ठ के चूर्ण के साथ मिला के शम्बूक के मांस रस के साथ प्रयुक्त करें । इति तृतीयो योगः॥१३७॥

अथ लिङ्गलेपाः–द्रावणश्च—

शशिसूतकटङ्कणमागधिकं घृतसूरणमाक्षिकहेमरसम् ।
मुनिपत्ररसप्लुतलेपवरं युवतीमदपातनवश्यकरम् ॥ १३८ ॥

कपूर, शुद्धपारद, शुद्धसुहागा, पिप्पली, घी, सूरणकन्द, शहद्, नागकेशर और रसाञ्जन इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन पीस के अगस्त्य वृक्ष के पत्तों के स्वरस में घोट कर कल्क (मलहम के समान) बना लें । इस कल्क का लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से युवति स्त्रियों के मद का पतन (भङ्ग) हो जाता है तथा वे स्त्रियां उस मनुष्य के वशीभूत हो जाती हैं ॥ १३८ ॥

अथ द्रावणे सूतप्रयोगः—

योषागर्भरजः सूतं मधुना सह लेपयेत् ।
अवश्यं द्रावयेन्नारीं शुष्ककाष्ठोपमामपि ॥ १३९ ॥

स्त्रियों के गर्भ अर्थात् गर्भाशय का रज (आर्तव रक्त) और पारद इन दोनों को अत्यन्त महीन खरल करके शहद् के साथ मिला कर लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से सूखे हुए काठ के समान प्रकृति वाली स्त्री को भी अवश्य द्रवित कर देता है ॥ १३९ ॥

द्रावणे सिन्दूरमधुलेपः—

सिन्दूरमधुनो लेपं लिङ्गस्य कुरुते यदि ।
अत्यर्थं रमते नारीं द्रावयेद्वशमानयेत् ॥ १४० ॥

सिन्दूर को शहद् में मिला कर मरहम बना के लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से मनुष्य स्त्री के साथ खूब देर तक रमण करता है तथा उसे द्रवित करके अपने वश में कर लेता है ॥ १४० ॥

अथ स्तम्भने कृकवाकुप्रयोगः—

कृकवाकूग्रपिच्छं तु मुद्रिकाकारकं कृतम् ।
ऊर्णनाभेः सुजालेन वेष्टयित्वाऽथ धारयेत् ॥
वामहस्तकनिष्ठायां नरो वीर्यं न मुञ्चति ॥ १४१ ॥

कुक्कुट ( मुर्गे ) के तीक्ष्ण पंख को अङ्गूठी के समान गोल बना कर मकड़ी की जाल से लपेट कर वाम हस्त की कनिष्ठिका अङ्गुली में धारण करके सम्भोग करने से उस पुरुष का वीर्य बहुत देर तक स्खलित नहीं होता है ॥ १४१ ॥

अथ कर्पूरादि प्रलेपः—

**कर्पूरं टङ्कणं सूतं मुनिपुष्परसं मधु ।**
**मर्दयित्वा लिपेत्तेन लेपो यावत्तु तिष्ठति ॥ १४२ ॥**

कपूर, शुद्धसुहागा, शुद्धपारद, अगस्त्य के पुष्पों का स्वरस और शहद् इन सब को खरल में महीन घोट कर कल्क बना के लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करें । जब तक यह कल्क इन्द्रिय पर लगा रहेगा तब तक वीर्य स्खलित नहीं होगा ॥ १४२ ॥

अथ पुण्डरीकप्रयोगः—

**लिङ्गं तु पुण्डरीकस्य चूर्णीकृत्य प्रयोजयेत् ।**
**मधुना तिलकं कृत्वा रेतःस्तम्भं करोत्यलम् ॥ १४३ ॥**

पुण्डरीक अर्थात् श्वेतकमल की केशर (पंखडियों) का चूर्ण बना कर शहद् के साथ कल्क बना कर लिङ्ग पर तिलक के समान प्रलेप कर के सम्भोग करने से अत्यन्त वीर्य्यस्तम्भन होता है ॥ १४३ ॥

अथ मदनजीवनः—

**कर्पूरं रससंयुक्तं सौभाग्यं रससंयुतम् ।**
**लेपाय क्रियते नित्यं नाम्ना मदनजीवनः ॥ १४४ ॥**

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये वाजीकरणनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

कर्पूर और पारद की भस्म अथवा सुहागे और पारद की भस्म को एकत्र मिला कर मधु अथवा जल के साथ कल्क बना कर नित्य ही लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से स्तम्भन शक्ति बढती है । यह मदन जीवन रस है ॥१४४॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां वाजीकरणनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

# अष्टविंशोऽध्यायः ।

अथ लोहकल्पः—

अथ रसस्य प्राधान्यकीर्तनम्—

**अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।**
**क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥ १ ॥**

अल्प मात्रा में प्रयोग होने से, सेवन करते समय अरुचि न होने से तथा शीघ्र ही आरोग्य प्रदान करने से अन्य काष्ठादि औषधियों की अपेक्षा रस औषध अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

अथ रसभेदाः—

**लोहं मृतं कन्दविषं सूतं चेति निगद्यते ॥ २ ॥**

रसायन शास्त्र में रस शब्द से शोधन कर के मारण किये हुए अष्ट लौह जैसे स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांसा, पित्तल, नाग, वङ्ग और लोह तथा कालकूट, वत्सनाभ आदि ८ कन्दविष और पारद इनका ग्रहण होता है ॥ २ ॥

अथ पानीयकषायविधिः—

**कार्यः पानकषायोऽस्मिन्षोडशांशावशेषितः ॥ ३ ॥**

इन रसों के सेवन करते समय अनुपान के लिये जितने कषाय प्रयुक्त होते हैं उन में से षोडशांश प्रमाण से अवशिष्ट रहा हुआ कषाय श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

अथ स्वर्णरौप्यशोधनम्—

**अथ पञ्चमृदा लिप्तं हेम्नः पत्रं पुटानले ।**
**विपचेत्, नागमावाप्य रूप्यं चोर्ध्वाग्निना धमेत् ॥ ४ ॥**

स्वर्ण के छोटे २ कण्टक वेधी पत्र बनवा कर उन्हें जम्बीर रस से पिसी हुई पञ्च मृत्तिका ( अर्थात् इंट का चूर्ण, गेरु, लोणी मिट्टी, राख और वल्मीक मृत्तिका ) से लीप कर सुखा के सम्पुट में बन्द कर के पुट दे दें । चांदी के पत्रों को निम्बू के रस में पीसे हुए शीशे के कल्क से प्रलिप्त कर के भूधर पुट में बन्द कर के उस के ऊपर तेज अग्नि जला कर पुट देना चाहिए । इस तरह चांदी शुद्ध हो जाती है ॥ ४ ॥

अथ ताम्रशोधनम्—

**स्नुह्यर्कक्षीरलवणक्षाराम्लकृतलेपनम् ।**

**तप्ततास्रस्य निर्गुण्ड्या रसे सिञ्चेत्पुनः पुनः ॥ ५ ॥**

थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, लवण और जवाखार इन्हें खरल में निम्बू या काञ्जी के साथ पीस कर कल्क बनालें। फिर इस कल्क से ताम्र के पत्रों को प्रलिप्त कर तीक्ष्णाग्नि में उन्हें प्रतप्त कर के निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस में निर्वापण करें। प्रायः इस विधि से सात वार या १२ वार उक्त कल्क से ताम्र पत्रों को प्रलिप्त कर २ के बुझाने से वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ वङ्गनागयोः शोधनम्—

**वङ्गनागं रसे तस्मिंस्तन्मूलेनावचूर्णकम् ॥ ६ ॥**

नाग और वङ्ग के पत्र या टुकड़ों को निर्गुण्डी की जड़ के चूर्ण के कल्क से प्रलिप्त कर के सुखा कर तीव्र अग्नि में द्रुत कर के निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस में बुझावें। इस विधि से सात वार बुझाने से उन की शुद्धि हो जाती है ॥ ६ ॥

अथ कान्तलौहस्य लक्षणम्—

**यत्पात्राध्युषिते तोये तैलबिन्दुर्न सर्पति।**
**तारेणावर्तते यत्तत्कान्तलोहं तु तत्स्मृतम् ॥ ७ ॥**

जिस लौह के बने हुए पात्र ( कटोरी ) में जल भर कर तैल की बूंदें उस में छोड़ने से वे इधर उधर न फैलें तथा जो लौह चांदी के साथ पिघलाने ( द्रुत करने ) पर उसी के साथ मिश्रित हो जाय वह लौह सर्व लोहों में उत्तम कान्त लौह है ॥ ७ ॥

अन्यत्र भी कान्त लौह के निम्न लक्षण कहे हैं।

यथा—यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते।
दिङ्मुर्गं-धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ॥
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिम्।
कृष्णाङ्गः स्यात् सजलचणकः कान्तलौहं तदुक्तम् ॥

अन्यच्च—स्वादुर्यत्र भवेन्निम्बकल्को रात्रिनिःक्षोषितः।
कान्तं तदुत्तमं यच्च रूप्येणावर्त्तितं मिलेत् ॥

अथ कान्तलौहस्य शोधनम्—

**अयसामुत्तमं सिञ्चेत्तप्तं तप्तं वरारसे ॥ ८ ॥**

सर्व प्रकार की लौह जातियों में श्रेष्ठ लौह अर्थात् कान्त लौह को कलञ्जी

या कटाह में रख कर तीव्राग्नि में प्रतप्त कर के त्रिफला के क्वाथ में बुझाना चाहिए। इस प्रकार सात वार बुझाने से लौह शुद्ध हो जाता है ॥ ८ ॥

लौह शोधनार्थं क्वाथविधिर्यथा—

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम् ।
तत्क्वाथे पादशेषे तु लौहस्य पल पञ्चकम् ॥ १ ॥
कृत्वा तप्तानि पत्राणि सप्तवारं निषेचयेत् ।
एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो लौह सम्भवः ॥ २ ॥

अथ धातूनां सामान्यमारणम्—

**एवं शुद्धानि लोहानि पिष्टान्यम्लेन केनचित् ।**
**मृतसूतस्य पादेन प्रलिप्तानि पुटान्तले ॥**
**पचेत्तुल्यस्य वा ताप्य-गन्धाश्महरतेजसः ॥ ६ ॥**

उपर्युक्त विधियों से शुद्ध किये हुए लोहों ( अष्टलोह ) को किसी अम्ल ( काञ्जी, निम्बूरस ) से पीस कर लौह से चौथाई पारद की भस्म के साथ खटाई डालकर दिन भर घोट कर गोला बनाके सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पकावें। अथवा किसी अम्ल में लोह को पीस लें फिर स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धगन्धक और पारदभस्म इन तीनों को समभाग मिलाकर लोहे के चौथाई प्रमाण से लेकर किसी खटाई से घोट कर उक्त लोह के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बनाकर सुखालें। फिर इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके पुटाग्नि में पाक करें ॥ ९ ॥

अथ स्वर्णमारणम्—

**अथवा मृतनागेन स्नुहीक्षीरेण काञ्चनम् ॥ १० ॥**

उपर्युक्त विधि के अतिरिक्त स्वर्ण के पत्रों को थूहर के दुग्ध में पीस कर कल्क किये हुए नागभस्म से प्रलिप्त करके सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करें। इस तरह आठ वार पुटपाक करने से स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है ॥ १० ॥

अथ रौप्यताम्रमारणम्—

**रूप्यं स्नुक्क्षीरताम्राभ्याम्, ताम्रं मूत्राम्लगन्धकैः ॥ ११ ॥**

थूहर के दुग्ध से पीस कर ताम्रभस्म का कल्क बनाकर उससे चांदी के

पत्रों को प्रलिप्त करके गजपुट में पाक करने से चांदी की भस्म हो जाती है। ताम्र के पत्रों को गोमूत्र, निम्बूरस और गन्धक इनके कल्क से प्रलिप्त करके शराव सम्पुट में बन्द करके पुट देने से उनकी भस्म हो जाती हैं ॥ ११ ॥

अथ वङ्गधीसकमारणम्—

**हरितालपलाशाभ्यां वङ्गम्, नागं मनोह्वया ॥ १२ ॥**
**पारिभद्रस्य च रसेनाऽथवा भर्जयेत्त्रपु ॥ १३ ॥**

शुद्ध हरताल को पलाश के स्वरस से घोट कर कल्क बना लें फिर इस कल्क से वङ्ग को प्रलिप्त करके पुट दे दें। इस तरह तीन वार पुट देने से वङ्ग भस्म तैय्यार हो जाता है।

अन्यत्र वङ्ग भस्मविधि—

पलाशद्रवयुक्तेन वङ्गपत्राणि लेपयेत्।
तालेन पुटितं भस्म त्रिवारं जायते ध्रुवम् ॥

अथवा—माक्षिकं हरितालञ्च पलाशस्वरसेन च।
कृतकल्केन संलिप्य वङ्गपत्राणि मारयेत् ॥

नागभस्म—

शुद्ध नाग को शुद्ध मैन शिल के साथ वासापत्र स्वरस या जल से घोट कर पुट पाक करें। इस तरह ३ या ३२ पुट देने से नागभस्म हो जाती है।

यथोक्तम्—मनःशिलायुतोनागो वासारसविमर्दितः।
त्रिभिर्गजपुटैर्भस्म भवेत्तन्मेहरोगजित् ॥

अथवा—ताम्बूलीरससम्पिष्टशिलालेपात् पुनः पुनः।
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागोनिरूत्थो जायते ध्रुवम् ॥

अथवा शुद्ध त्रपु अर्थात् वङ्ग को लोह की कड़ाही में द्रुत करके पारिभद्र का थोड़ा २ स्वरस छोड़कर डण्डे से चलाते रहें इस तरह तीन प्रहर तक पाक करने से वङ्गभस्म हो जाती है ॥ १२-१३ ॥

अथ सीसकस्य मारणान्तरम्—

**चिञ्चात्वग्भिक्षुवीरद्रुगोधिवृतैरहिं पुनः।**
**अहिमाराहिदमनीवासावज्रलतार्जुनैः ॥ १४ ॥**

शुद्ध सीसे को लोह की कड़ाही में पिघलाकर इमली की छाल, बहेड़े का चूर्ण श्रावणीचूर्ण, शुद्धभल्लातक चूर्ण, पीपल की छाल का चूर्ण, विट्खदिर की छाल

का चूर्ण, नागदमनी का चूर्ण, अडूसे का चूर्ण, हडजोड़ का चूर्ण और अर्जुन की छाल का चूर्ण, इनको क्रमसे थोड़ा २ डालकर पलाश के डण्डे से चलाते रहें। जब सीसे की चमक जाती रहे और वह इन चूर्णों की राख में मिल जाय तब इकट्ठा करके सकोरे से बन्द कर एक प्रहर तक तीव्र अग्नि जलाकर स्वाङ्गशीतल करके उतार लें। इस तरह सीसे की उत्तम भस्म हो जाती है ॥ १४ ॥

अथ लोहमारणम्—

**स्त्रीस्तन्ये हिङ्गुलेनायः पचेल्लिप्त्वा पुटेऽनले ॥ १५ ॥**

शुद्ध हिङ्गुल को स्त्री के दुग्ध अथवा गोदुग्ध से पीसकर कल्क बना लें। फिर इस कल्क का लोह के ऊपर प्रलेप कर के शरावसम्पुट में बन्द करके पाक करें।

अन्यत्र लोहमारणविधि इस तरह है—

हिङ्गुलस्य पलान् पञ्च नारीस्तन्येन पेषयेत्।
तेन लोहस्य पत्राणि लेपयेत् पलपञ्चकम् ॥
रुद्ध्वा गजपुटे पच्यात् कषायैस्त्रैफलैः पुनः।
जम्बीरैरारनालैर्वा विंशत्यंशेन हिङ्गुलम् ॥
पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटेल्लोहं तथैव पाचयेत्पुनः।
चत्वारिंशत्पुटैरेवं कान्तं तीक्ष्णञ्च मुण्डकम् ॥
म्रियते नात्र सन्देहो दत्त्वा दत्त्वा च हिङ्गुलम् ॥ इति ॥ १५ ॥

अथासम्यग्धारितलोहस्य लक्षणम्—

**सर्वमेव मृतं लोहं सोत्थानं यदि सेवनात्।**
**शुकवर्णाभकण्ठत्वक्स्फोटाऽरुचिविबन्धकृत् ॥ १६ ॥**

स्वर्ण, लौह, ताम्रादि समस्त धातुओं की उत्थित (ठीक रूप से न पकने पर) भस्म को सेवन करने से गले की त्वचा तोते के समान नीले रङ्ग की हो जाती है तथा गले में दाह और शूल होता है एवं समस्त शरीर में फोड़े फुन्सियां निकल आती हैं। भोजन करने में अरुचि तथा विबन्ध बना रहता है। अतः इन धातुओं की उत्तम भस्म बनाकर ही सेवन करें ॥ १६ ॥

अथ निरुत्थलोहस्य लक्षणम्—

**पक्वं यावन्निरुत्थानं सेव्यं वारितरं हि तत् ॥ १७ ॥**

उपर्युक्त उपद्रवों के निवारणार्थ समस्त धातुओं की भस्म जब तक निरुत्थ

और जल पर तैरने योग्य न हो जाय तब तक उनका पुटपाक करते रहना चाहिए। जब वें निरुत्थ और वारितर हो जांय तभी सेवन करें ॥ १७ ॥

अथ निरुत्थलोहस्य परीक्षा—

**कान्ते पुनः कलाभागताप्ये सक्षौद्रसर्पिषि।**
**क्षिप्तमावर्तितं तारं स्वप्रमाणं भवेद्यदि ॥**
**जानीयात्तन्निरुत्थानम्, ॥ १८ ॥**

कान्त लौह की भस्म में षोडशांश स्वर्णमाक्षिकभस्म एवं शहद तथा घृत मिलाकर कडाही में तीव्राग्नि से तपावें। फिर उसमें द्रुत की हुई चांदी डालें। घृत आदि के जल जाने पर स्वाङ्गशीतल कटाह को नीचे उतार कर उसमें से चांदी को पृथक् करके तोल लें। यदि तोलने से चांदी का वजन बढे नहीं तथा कम भी न हो ऐसी दशा में उस कान्तभस्म को निरुत्थ समझें। रसरत्नाकर में निरुत्थभस्म परीक्षा इस प्रकार है।

मध्वाज्यमृतलौहञ्च सरूप्यं सम्पुटे पचेत्।
रूद्घ्वाऽऽध्माप्य तु सङ्ग्राह्यं रूप्यञ्च पूर्वमानकम् ॥
तदा लौहं मृतं विद्यादमृतं मारयेत् पुनः। इति।

यहां पर ताप्य मिलाने को नहीं लिखा है ॥ १८ ॥

अथ अनिरुत्थलोहस्य मारणम्—

**सोत्थानञ्च मुहुर्मुहुः।**
**त्रिफलाक्काथसम्पृक्तं विपचेत्पुटपावके ॥ १९ ॥**

अनिरुत्थ ( अपक्व ) भस्म को त्रिफला के क्वाथ से दिन भर खरल करके टिकिया बनाकर सम्पुट में बन्द करके पुट दें। जब तक निरुत्थ न हो जाय तब तक इस विधि से पुट पाक करते रहना चाहिए ॥ १९ ॥

अथ मृत्युहारी रसः—

**मयःपत्रं तिलोत्सेधं प्रतप्तं चतुरङ्गुलम्।**
**एकविंशतिपर्यायं धात्र्या निर्वापयेद्रसे ॥ २० ॥**
**ततः शतपलं स्थाल्यां क्षिप्त्वा धात्रीरसात्तमम्।**
**कृत्वा ततः सुपिहितं भस्मराशौ विनिक्षिपेत् ॥ २१ ॥**
**मासि मासि समुद्धृत्य लोहदण्डेन घट्टयेत्।**

तस्मिन्विशुष्यति प्राग्वद्रसं धात्र्याः प्रदापयेत् ॥ २२ ॥
द्रवीभवति तत्सर्वं वत्सरात्पत्रमायसम् ।
ततः समन्ततोऽङ्गुष्ठपर्वमात्रमुखेन तु ॥ २३ ॥
आयसेन स्रुवेणायः पात्रे कल्कीकृतं ततः ।
श्रृतं पृथक्समांशेन सेवेत मधुसर्पिषा ॥ २४ ॥
जीर्णे साज्यं रसक्षीरयूषान्यतममिश्रितम् ।
षष्टिकौदनमश्नीयादुपयुञ्ज्येत वत्सरम् ॥ २५ ॥
वर्षमन्यच्च शिष्टान्नो यन्त्रितात्मा कुटीं वसेत् ।
अगम्यो रुग्जरामृत्युशस्त्राग्निविषवारिभिः ॥
जीवेद्वर्षसहस्रं वै सर्वभावेष्वतीन्द्रियः ॥ २६ ॥

तिल के समान उत्सेध वाला तथा चार अङ्गुल का एक लौह का पत्र लेकर उसको तीव्राग्नि में प्रतप्त करके आंवलों के स्वरस में सिंचन ( निर्वापण ) करें। इस तरह २१ वार गरम कर २ के नये २ आंवलों के स्वरस में बुझाना चाहिए। पश्चात् एक स्थाली अर्थात् मिट्टी की हण्डिका में उत्तम आंवले का १०० पल स्वरस भर कर उस रस में उस लौह पत्र को डाल कर हण्डिका के मुख को शराव से बन्द करके कपड मिट्टी करके राख के समूह ( ढेर ) में गाड़ दें। फिर प्रतिमास उसको निकाल कर लोहे की खरल में लोहे की मुषली के द्वारा घोटना चाहिए। अच्छी तरह घोटने के पश्चात् फिर उसी हण्डिका में बन्द करके राख के ढेर में गाड़ दें। यदि आंवलों का रस सूख गया हो तो फिर उतना ही रस छोड़ देना चाहिए। इस तरह एक वर्ष तक लौह पत्र को प्रतिमास निकाल कर घोट के फिर स्वरस में डुबो कर रखने से वह पत्र द्रुत हो जाता है। फिर इस द्रुत हुए लोह पत्र को अंगूठे के पर्व के समान चारों ओर से मोटे मुख वाले लोहे के बने हुए स्रुवे से निकाल कर किसी लोहे के पात्र ( कटोरी ) में थोड़ा सा गरम करके ठण्डा करके समांश शहद् और घृत मिला कर अच्छी तरह घोट के कल्क बना कर सेवन करें। इस प्रकार प्रतिदिन हण्डिका में से लोह स्रुवे से (जितना उस में आया के) लौह पत्र के द्रव्य को निकाल कर अग्नि में तपाकर समांश शहद् और घृत मिला कर सेवन करना चाहिए। इस औषध के हजम ( जीर्ण ) हो जाने के पश्चात् अर्थात् जिस वक्त भूख अत्यन्त लग जाय

तब मांस रस, दुग्ध और अन्य प्रकार के यूष इन में से यथा शक्ति किसी एक द्रव से साठी के भात को मिला कर भोजन करना चाहिए। इस तरह एक वर्ष तक इस योग का नियम पूर्वक सेवन करना चाहिए। प्रथम वर्ष में औषध सेवन करना चाहिए तथा दूसरे वर्ष में औषध सेवन न कर केवल हितकर भोजन तथा अन्य फल फुल दुग्ध आदि पथ्य पदार्थों का सेवन करें तथा अपनी आत्मा को वश में किये रहें और एकान्तकुटी में निवास करना चाहिए। दो वर्ष के पश्चात् वह मनुष्य यथेच्छ खाद्य पेय का सेवन कर सकता है तथा कुटी से बाहर भी भ्रमण कर सकता है। इस प्रकार दो वर्ष तक नियम पूर्वक उपर्युक्त विधि को करने से वह मनुष्य रोग, जरा, अकालमृत्यु से रहित हो जाता है तथा शस्त्र, अग्नि, विष और दूषित जल आदि के प्रभाव का उस पर कोई भी बुरा प्रभाव नहीं होता है तथा संसार के समप्रभाव पदार्थों का अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करके १ हजार वर्ष तक जीवित रहता है। कुटीनिर्माण निम्न प्रकार से करें।

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयोविदुः। कुटीप्रावेशिकञ्चैव वातातपिकमेव च॥
कुटी प्रावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते।
नृपवैद्यद्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम्॥
निवासे निर्भये शस्ते प्राप्योपकरणे पुरे।
दिशि पूर्वोत्तरस्यान्तु सुद्भूमौ कारयेत् कुटीम्॥
विस्तारोत्सेधसम्पन्नां त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनां।
घनभित्तिमृदुसुखां सुस्पष्टां मनसः प्रियाम्॥
शब्दादीनामशस्तानामगम्यां स्त्रीविवर्जिताम्।
इष्टोपकरणोपेतां सज्जवैद्योषधद्विजाम्॥

इति चरकः॥ २०–२६॥

अथ लोहकल्पः—

**ताम्ररौप्यसुवर्णानामयमेव पृथग्विधिः।**
**द्विगुणं तद्गुणोत्कर्षाज्ज्ञानोयादुत्तरोत्तरम्॥ २७॥**

उपर्युक्त लौह कल्प की विधि के अनुसार ही ताम्र, चांदी, सुवर्ण आदि की पृथक २ विधि समझनी चाहिए केवल भेद इतना ही है कि लौह कल्प के गुणों की अपेक्षा इन धातुओं से उत्तरोत्तर दो २ गुना अधिक लाभ होता है। अर्थात्

लौह से द्विगुण ताम्र, ताम्र से द्विगुण चांदी, चांदी से द्विगुण सुवर्ण हित कर होता है ॥ २७ ॥

अथ लोहमारणप्रकारः—

अथोष्णवारिपिष्टेन कान्तलोहं सभिन्धुना ।
कफे कुठारछिन्नेन पित्ते वाते गलाऽम्बुना ॥ २८ ॥
उभयेन वयस्तम्भे ताप्येन गलरुक्षु च ।
कण्डूवां मनोह्वया स्रोतोविबन्धे मरिचाङ्घ्रिणा ॥ २९ ॥
क्षिप्तं पक्वेष्टिकायन्त्रे द्रावितं जलसन्निभम् ।
निषिक्तं त्रिफलाक्वाथे पर्पटीभूतमायसे ॥ ३० ॥
सञ्चूर्ण्य तेन क्वाथेन पिष्ट्वा स्थाल्यां विपाचितम् ।
षोडशाङ्गुलगर्तान्तः सम्पुटे चापरीक्षणात् ॥ ३१ ॥
आर्द्रकाभीरुमुषलीविदारीभृङ्गहस्तिजैः ।
रसैस्तथा मुहुस्तात्रं धान्याभ्रं काञ्जिके प्लुतम् ॥ ३२ ॥
तेन पिष्टं घृतं क्षौद्रे मत्स्याक्षीमेघनादयोः ।
जयन्त्यास्तीक्ष्णचाङ्गेर्यामुषलीमाणिमन्थयोः ॥ ३३ ॥
वज्रिणीसातलावाट्यावर्षाभूणां रसेन च ।
क्षीरेण च पृथक्कुर्यात्पेषणादिक्रियात्रयम् ।
कज्जलाभं द्वयं चैतद्यथा क्वाथे विभावयेत् ॥ ३४ ॥

कफरोग में गरमजल से निर्गुण्डी की जड़ को पीस कर उस कल्क से कान्तलौहपत्र को प्रलिप्त करके पकी हुई इंटो से बने हुए यन्त्र में डाल कर तीव्र अग्नि द्वारा द्रुत करें। इसी तरह पित्तरोग में कुठारिका अर्थात् गुडूच की जड़ के कल्क से लिप्त करके पिघलावें तथा वातरोग में अलम्बुषा के कल्क से लिप्त कर द्रुत करें, अवस्था को स्तम्भ अर्थात् दृढ करने में गुडूची और अलम्बुषा दोनों के कल्क से लिप्त कर द्रुत करें, गले की बीमारियों में स्वर्णमाक्षिकभस्म से प्रलिप्त करके द्रुत करें, खुजली में मनःशिलाकल्क से प्रलिप्त कर द्रुत करें तथा स्रोतों की रुकावट में मरिच की जड़ के कल्क से प्रलिप्त कर उक्त यन्त्र में पिघला कर त्रिफला के क्वाथ में बुझा दें। इस तरह पर्पटी के स्वरूप का लौह हो जाता है। जिस रोग के लिये लौह कल्प बनाना

हो उस रोग को नष्ट करने वाले उपर्युक्त औषधकल्क से प्रलिप्त कर इष्टिकायन्त्र में जल के समान द्रुत करके त्रिफला क्वाथ में सेवन करना चाहिए। पश्चात् पर्पटीभूत लौह को खरल में कूट कर चूर्ण बना के त्रिफला ही के क्वाथ से एक दिन तक पीस कर लौहे की थाली में पाक करें। थालीपाक करने के पश्चात् आदी, शतावर, मुषली, विदारीकन्द, मृङ्गराज और हस्तिकर्णपलाश इन द्रव्यों के स्वरस में लौह को खरल करके शराव सम्पुट में बन्द कर दें। फिर १६ अङ्गुल गहरे और चौड़े गढे के भीतर जङ्गली उपले भर कर उनके मध्य में उपर्युक्त औषध से भरे शरावसम्पुट को रखकर अग्नि जला दें। इस तरह जब तक लौह की निरत्थ एवं वारितर भस्म न हो जाय तब तक उक्त समस्त या व्यस्त औषधियों के स्वरस में घोट २ कर यथा विधि पुट देते रहें।

ताम्र और धान्याभ्रक को पृथक् २ वह्नि में द्रुत कर के काञ्जी के अन्दर बुझाना चाहिए। इस तरह दोनों को सात २ वार बुझा लेने के पश्चात् उसी काञ्जी के साथ एक २ दिन तक पृथक् २ खरल कर के सुखालें। फिर घृत, शहद, मट्ठेछां, चोलाई, जयन्ती, राई, चाङ्गेरी ( अम्ल लोणी ), मुषली, सैन्धव लवण, थूहर, सातला ( थूहर भेद ), बांझ ककोड़ा, और पुनर्नवा का स्वरस तथा दुग्ध इन द्रव्यों के साथ उपर्युक्त ताम्र और अभ्रक को पृथक् २ घोट २ कर शराव सम्पुट में बन्द कर के उपर्युक्त प्रकार के गढे में उपले भर कर पुट देने चाहिएं। पुट देते देते दोनों कज्जल के समान हो जाय तथा ताम्र भस्म वान्त्यादिदोष रहित और जल पर तैरने लग जाय तथा अभ्रकभस्म चमकरहित ( निश्चन्द्र ) और वारितर हो जाय तब दोनों की सिद्ध हुई भस्म जान कर ग्रहण करें। प्रायः ६० पुट देने से ताम्र की तथा ७० पुट देने से अभ्रक की निर्दोष एवं उत्तम भस्म हो जाती है। जिन द्रव्यों से स्वरस न प्राप्त हो सके उन से क्वाथ बना कर कार्य करना चाहिए। फिर इन दोनों भस्मों को पृथक् २ भिन्न १ रोगों को नष्ट करने वाली औषधियों के स्वरस या क्वाथ से सात सात वार भावित करके घोट कर शुष्क चूर्ण करके शीशी में भर देवें ॥ २८-३४ ॥

अथ लोहकल्पः—

पलानि पञ्च कान्तस्य सर्वत्राभ्रकचूर्णयोः।
साधं द्वे सप्त सार्धानि वाते पित्ते पुनः क्रमात् ॥ ३५ ॥

पञ्च पादेन युक्तानि पञ्च पञ्च कफे पुनः।
तत्र कान्ताम्रके क्षिप्त्वा त्रिफलाक्वाथमाढकम् ॥ ३६ ॥
प्रस्थितानि गुणस्याष्टौ क्वाथस्य पयसस्तथा।
पलानि षोडशाज्यस्य सिद्धचेत्पाकवशात्पुनः ॥ ३७ ॥
वाताद्यपेक्षया पङ्क्तोत्कारिकाबालुकानिभे।
अफेने वर्णगन्धाढ्ये कदुष्णे पीतसर्पिषि ॥ ३८ ॥
दन्त्यादिचूर्णमावाप्य स्थापितेनेतरेण वा।
घृतेन पोषितं भाण्डे घृतस्निग्धे निधापयेत् ॥ ३९ ॥
कुर्यात्तत्कल्पनापाकं श्लेष्मणीव रसायने।
स्वस्थः शरन्निदाघाभ्यामन्यथा कृतशोधनः ॥ ४० ॥
घृतमाक्षिकमात्रा वा लौहे लौहेन मर्दितः।
रसायनं द्वौ दिवसौ द्वे द्वे गुञ्जे ततः परम् ॥ ४१ ॥
द्वन्द्ववृद्ध्या दिने द्वे द्वे परं विंशतिवासरान्।
प्रातर्विंशतिगुञ्जानां भागौ द्वौ भागमेव च ॥ ४२ ॥
प्राग्भक्तमर्धमर्धं वा भक्षयेदुक्तकालयोः।
एवं मात्राविभागेन व्याधिक्षीणोऽपि सर्वदा ॥ ४३ ॥
लोहादष्टगुणं क्षीरं धारोष्णं श्रुतमेव वा।
वयःस्तम्भेऽनुपातव्यं व्याधौ क्वाथो यथोदितः ॥ ४४ ॥
आस्वाद्य चानु मुस्तानां निर्यासं दन्तपीडितम्।
मूलानि भक्षयेत्तासामास्यवैरस्यनुत्तये ॥ ४५ ॥
क्रूरकोष्ठस्तु दीप्ताग्निरनुलोमयितुं मलान्।
तप्तं क्षीरं पिबेद्भूयस्ताम्बूलं भक्षयेन्मुहुः ॥ ४६ ॥
स्नानमर्दनविष्टम्भिविदाह्यम्लमजाङ्गलम्।
सप्तसप्ताहमथवा त्रिसप्ताहं परित्यजेत् ॥ ४७ ॥
शालिमुद्गरसं सर्पिर्वेत्राग्रं बृहतीद्वयम्।
दीर्घं पटोलवार्ताकं तालकं मूलकन्दकम् ॥ ४८ ॥
शतावर्याः सजीवन्ती-शृङ्गाटसुनिषण्णकम्।
तण्डुलीयकधान्याकं सराजक्षववास्तुकम् ॥ ४९ ॥

जाङ्गलं शफराः कृष्णमीना रोहितमद्गुरौ ।
द्राक्षादाडिमखर्जूररम्भाकोलं च शस्यते ॥ ५० ॥
जीर्णौषधस्तु दीप्ताऽग्नौ प्रातः पित्ताद्बुभुक्षितः ।
अर्धमात्रं पिबेत्क्षीरं सार्धमात्रं कृशो नरः ॥ ५१ ॥
दिवसाः सप्त सप्तास्मिन्दिने द्वित्रिगुणाः क्रमात् ।
जघन्यमध्यप्रवरः सेवाकालो विधीयते ॥ ५२ ॥
पूर्णक्रियेयं द्विगुणा सोत्तरा नात्र यन्त्रणा ।
यथाकालं मलोत्सर्गः शरीरोदरलाघवम् ॥ ५३ ॥
हृदयोद्गारशुद्धिश्च जीर्णलोहस्य जायते ।
लोहाप्रवृत्तौ सामत्वं लोहकिट्टप्रशान्तये ॥ ५४ ॥
उष्णाम्बु सयवक्षारं त्रिदिनात्त्रिदिनात्पिबेत् ।
रसेनाऽगस्त्यपत्राणां विडङ्गं चान्तरान्तरा ॥ ५५ ॥
क्वाथमश्वत्थपत्राणां प्रसङ्गे छर्दिशूलयोः ।
सामान्यसिद्धिमावाप्य भावनापुटपाचनैः ॥ ५६ ॥
यथायोगयुतं पक्वं त्रिफलाक्वाथसर्पिषा ।
साधितं भक्षयेत्कान्तमेकं वा केवलाभ्रकम् ॥ ५७ ॥
इह नानु पिबेत्क्षीरं न कुर्यात्तेन भोजनम् ।
मुद्गयूषं पिबेत्तोये कोष्णं च नियतो भवेत् ॥ ५८ ॥
एतल्लोहरसायनाख्यममृतं पक्वं यथोक्तं क्रमा-
द्भुञ्जानः प्रतिवत्सरं नववपुः सोर्धं तु वर्षेन्द्रियैः ।
दीर्घायुर्नवयौवनोन्नतकुचप्रौढाङ्गनावल्लभो
माद्यद्दन्तिबलो जराविरहितः पुत्रावृतः स्यान्नरः ॥ ५९ ॥

वात प्रकृति वाले रोगी के लिये कान्तलौहभस्म ५ पल, अभ्रक भस्म २½ पल, ताम्र भस्म ५½ पल लें तथा पित्तप्रकृति वाले रोगी के लिये कान्त लौहभस्म ५ पल, अभ्रकभस्म ५ पल तथा ताम्रभस्म ५½ तथा कफ प्रकृति वाले रोगी के लिये यह कल्प बनाना हो तो लौहभस्म ५ पल, अभ्रकभस्म ५ पल तथा ताम्रभस्म ५ पल लें। इस प्रकार जिस दोषप्रकृति वाले रोगी के लिये यह कल्प बनाना हो तदनुकूल प्रमाण से इन तीनों भस्मों

को लेकर खरल में घोटकर लोहे की बडी कडाही में डालकर १ आढक प्रमाण त्रिफला क्वाथ तथा तीनों भस्मों की तोल से अठगुना विशुद्ध गौदुग्ध डालकर पाककरें। जलीयांश के नष्ट हो जाने के पश्चात् उसमें १६ पल शुद्ध घृत मिलाकर पाककरें। वात प्रकृति वाले के लिये यदि यह कल्क बनाना हो तो पङ्क अर्थात् अवलेह ( कीचड ) के समान मृदु पाककरें तथा पित्तप्रकृति वाले के लिये उत्कारिका अर्थात् रबडी के समान मध्यम पाक करना चाहिए तथा कफ प्रकृति वाले के लिये गङ्गाजी की बालुका के समान दानेदार अर्थात् खरपाक करना चाहिए। इस तरह पाक करते२ फेन रहित, वर्ण और सुगन्ध से युक्त तथा पीले वर्ण का घृत हो जाय तब उसे नीचे उतार कर कुछ२ गरम रहे तभी उसमें अग्रलिखित दन्यादि चूर्ण मिलाकर कलच्छी या स्वच्छ डण्डे से अच्छी तरह घोट-कर सबको मिला के घृत से स्निग्ध किये हुए भाण्ड में इस पाकको सुरक्षितकरदें। रसायन के लिये लौह पाक की कल्पना श्लेष्मप्रकृति के लिये पूर्व में कहे हुए पाक के अनुसार अर्थात् बालुका सदृश करनी चाहिए। स्वस्थ पुरुष शरद् और ग्रीष्म ऋतु से अन्य ऋतु में वमन विरेचनादि पञ्चकर्म द्वारा अपने शरीर की शुद्धि करके इस रसायन का सेवन प्रारम्भ करें। प्रथम दो दिन दो २ रत्ती भर इस कान्ताभ्रकरसायन को लेकर लोहे की छोटी खरल में लौह की मुसली से घोटकर घृत और माक्षिक ( शहद् ) के साथ मिला कर सेवन करें। दो दिन के पश्चात् शेष १८ दिन के दो २ युग्म बना कर उस में दो २ रत्ती बढ़ाकर सेवन करें। अर्थात् तृतीय और चतुर्थ दिन में चार २ रत्ती, पञ्चम और षष्ठ दिन में छै छै रत्ती, सप्तम और अष्टम दिन में आठ २ रत्ती, नवम और दशम दिन में दश दश रत्ती, एकादश और द्वादशवें दिन में बारह २ रत्ती, त्रयोदश चतुर्दश दिन में चौदह २ रत्ती, पञ्चदश और षोडशवें दिन में सौलह २ रत्ती सप्तदश और अष्टा-दश दिन में अठारह २ रत्ती, उन्नीस और वीसवें दिन में बीस २ रत्ती, भर सेवन करें। बीस दिन के पश्चात् प्रति दिन बीस २ रत्ती सेवन करनी चाहिए। परन्तु आधी (१० रत्ती) सुबह और आधी अर्थात् शेष १० रत्ती सन्ध्या के समय लौह खरव में घोट कर घृत और शहद् के साथ भोजन करने के पूर्व सेवन करें। इस प्रकार मात्रा की कल्पना कर के समग्रव्याधियों से क्षीण पुरुष भी सेवन करे तो अवश्य ही लाभ होता है। जो स्वस्थ पुरुष अपनी आयु को स्तम्भना

अर्थात् वृद्धि के लिये इसे सेवन करना चाहे तो इस रसायन से अठगुना या जीतना पी सके उतना धारोष्ण अथवा उष्ण कर के शीतल किया हुआ दुग्ध औषध सेवन कर के ऊपर से दोनों समय पी लिया करे । जो पुरुष किसी रोग से मुक्त होने के निमित्त इस रसायन का सेवन करना चाहे तो इस के सेवन करने के बाद उस व्याधि को नष्ट करने वाली काष्ठौषधियों का क्वाथ बना कर पान करे । इस रसायन के सेवन करने के पश्चात् नागर मोथे की जड़ को दांतों से चबा चबा कर उस का रस चूसे या उस को भी निगल जाय ऐसा करने से मुख की विरसता नष्ट हो जाती है । जिस मनुष्य का कोष्ठ अत्यन्त क्रूर हो वह इस रसायन के सेवन करने के पश्चात् मल को अनुलोमित करने के लिये खूब मन्दोष्णा दुग्ध का पान करे तथा थोड़ी २ देर बाद पान बीड़ा चबाया करे । इस विधि से उस का कोष्ठ मृदु हो जाता है जिस से दस्त साफ़ होती है और उदराग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है । इस रसायन के सेवन करते समय सात सप्ताह तक या तीन सप्ताह तक स्नान, तेल की मालिश, मलबन्ध करने वाले, दाह करने वाले तथा खट्टे पदार्थ तथा अजाङ्गल मांस ( ग्राम्यपशुमांस ) ये सर्वथा वर्जित हैं । रस सेवन करने के पश्चात् भूख लगने पर साठी के चांवलों का भात, मूङ्ग की दाल का यूष, घृत, जलवेंत का अग्रभाग, दोनों प्रकार की कटेली, बड़े २ परवल और बेंगन, ताड़के फल, मूली, कन्दे, शतावर की जड़, जीवन्ती शाक, सिंघाड़े, सिरिआरी का शाक, चोलाई का शाक, धनियां, अमलतास के पुष्पों का शाक, बथुऐका शाक, जाङ्गल पशुओं का मांस, शफरी नाम की मछली, काली मछली, रोहू मछली, मद्गुर नामक मच्छ, द्राक्षा, अनार (दाडिम) खजूर, केला और बेर ये सर्व पदार्थ पथ्य हैं । प्रातःकाल औषध सेवन करने के पश्चात् वह ठीक तरह से पच जाय तथा पित्त के बढ जाने के कारण जठराग्नि प्रदीप्त हो जाने से ज्यादा भूख प्रतीत होने लगे तो उतना दुग्ध पीवे जितने से आधी क्षुधा निवृत्त हो जाय, किन्तु यदि औषधसेवी दुर्बल हो तब थोड़ा थोड़ा दुग्ध कई वार पान करे । इस रसायन को ७ दिन सेवन करने को जघन्य काल, १४ दिन सेवन करने को मध्य काल तथा २१ दिन सेवन करने को उत्तम काल माना गया है । २१ दिन तक सेवन करना पूर्ण या पूर्व किया है, इन दिनों के द्विगुण अर्थात् ४२ दिन तक पथ्य पूर्वक रहना चाहिए।

तथा उत्तर क्रिया अर्थात् २१ दिन के बाद भी इस रसायन का सेवन करना हो तो पथ्यापथ्य में कोई विशेष यन्त्रणा अर्थात् नियम नहीं है। ठीक समय पर मल मूत्रादियों का उत्सर्ग हो जाना, शरीर और विशेष कर उदर में हलकापन का अनुभव होना, हृदय की शुद्धि और उद्गार ( डगार ) का ठीक आना, ये सब इस लौह रसायन के जीर्ण अर्थात् ठीक पच जाने के लक्षण हैं। यदि किसी कारण वश या शरीर की अग्नि दुर्बल होने या प्रकृति विरुद्ध होने के कारण लौह का सात्मीकरण ( पचन ) न हो जिससे समय पर मल की अप्रवृत्ति ( अनुत्सर्ग ) हो ऐसी दशा में आम दोष बढ़ जाता है अर्थात् अजीर्ण लौह का किट्ट भाग अन्त्रियों में जम जाता है जिस से विबन्ध हो जाता है तथा आध्मान और शूल आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, इस लिये लौह किट्ट की शान्ति के लिये उष्ण जल में यवक्षार मिलाकर प्रत्येक तीसरे दिन पीना चाहिए। तथा तीसरे दिन खाने के पूर्व वायविडङ्ग का चूर्ण फांककर ऊपर से अगस्त्य के पत्तों का स्वरस निकाल कर पान करें। यदि वमन और शूल प्रारम्भ हो जायं तो उन को रोकने के लिये पीपल के पत्तों का काढ़ा बना कर पीना चाहिए। उपर्युक्त विधि से लौहाभ्रकादि का मिलित कल्प न बन सके तो निम्न रीति से पृथक् २ कल्प तैय्यार करलें। अर्थात् केवल कान्तलौह को लेकर उसकी साधारण और विशेष शुद्धि तथा भानुपाक और स्थाली पाक कर के भिन्न २ औषधियों के स्वरस की भावनाएं देकर पुट पाक करलें। इस तरह जब लौह की वारितर और निरुत्थ भस्म हो जाय तब त्रिफला के क्वाथ और घृत के साथ पृथक् २ सात २ वार घोट कर सात २ पुट देदें। इसी तरह अभ्रक की भी भस्म बना कर दोनों में से किसी एक का सेवन करने से उपर्युक्त समस्त गुण होते हैं। कान्त लौह भस्म या अभ्रक भस्म के सेवन करने के पश्चात् केवल दुग्ध पान कर के मूंग का यूष पीलें और भोजन करें तथा जितने भी जल सम्बन्धि शौच स्नान पानादि कार्य करने हों उन्हें मन्दोष्ण जल से करें शीतल जल का प्रयोग न करें। यथाविधि से पके हुए अमृत के समान गुण करने वाले इस लौह रसायन को जो पुरुष पूर्वोक्त क्रम से मात्रा की वृद्धि कर के प्रतिवर्ष सेवन करता है तो वह पुरुष मनोहर वर्ण और इन्द्रियों की दृढ़ शक्ति से सम्पन्न हो कर दीर्घ आयु वाला हो जाता है तथा नवीन जवानी के कारण ऊंचे और दृढस्तनों वाली प्रौढाङ्गनाओं

का प्रिय हो कर मदोन्मत्त हस्ती के समान बल को धारण करता हुआ बुढौती से रहित होकर अनेक पुत्रों को उत्पन्न कर नीरोग हो कर जीवित रहता है ॥ ३५-५९ ॥

अथ लोहकल्पे दन्त्यादिगणः—

दन्तीत्रिवृच्चित्रकहस्तिकर्णीव्योषाष्टवर्गत्रिफला विडङ्गम् ।
पलाशबीजाग्निजजीरकैला व्याघ्री च दन्त्यादिरिह प्रदिष्टः ॥६०॥

दन्ती की शुद्ध जड़, त्रिवृत् की शुद्ध जड़, चित्रक की शुद्ध जड़, हस्तिकर्ण पलाश की छाल, सोंठ, मरिच, पीपल, अष्टवर्ग अर्थात् जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वायविडङ्ग, पलाश के बीज, नागरमोथा, जीरा, इलायची और कण्टकारी इन औषधियों को समभाग लेकर महीन चूर्ण करलें । ये ही औषधिएं मिल कर दन्त्यादि गण के नाम से कही जाती हैं ॥ ६० ॥

अथ ताम्रद्रुतिसंज्ञको लोहकल्पः—

आर्द्रालकुचभृङ्गाणां रसपिष्टेन कस्यचित् ।
गन्धकेन समांशेन प्राग्वताभ्रं च मारितम् ॥ ६१ ॥
कञ्चुकस्थमिह त्रिंशत्कर्षं चूर्णितगन्धकम् ।
दत्वाऽल्पशोऽग्निनाऽल्पेन दत्त्वा धूमं विसर्जयेत् ॥ ६२ ॥
प्रस्थाम्बुमर्दितस्यास्य प्रसादान्निःसृतं युतम् ।
तुत्थनीलशिलाजाभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोषयेत् ॥ ६३ ॥
ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिका ।
काचार्मपिल्लाभिष्यन्दव्रणशुक्रगतिप्रणुत् ॥
तत्किट्टं दद्रुकिटिमपामार्दोल्लेपनाज्जयेत् ॥ ६४ ॥

अदरख, बड़हर और भृङ्गराज इन तीनों में से किसी एक के स्वरस से ताम्र तुल्य गन्धक को घोट कर कल्क बना के ताम्रपत्रों पर प्रलेप करके पुटपाक में पाक करें । इस तरह भस्मीभूत ताम्र से ३० कर्ष भर ताम्रभस्म लेकर एक लोहे की कड़ाही में डाल कर उसे उपर चढाकर मन्द २ अग्नि जलावें । फिर ३० कर्ष शुद्धगन्ध लेकर उस में से थोडा २ गन्धक उस भस्म में डाल २ कर पकावें । बीच २ में गन्धक डाल कर थोडी २ देर के लिये ताम्रभस्म को किसी शराव से

ढक देना चाहिए तथा गन्धक जलकर उस का धुआं ढक्कन में भर जांय तथा ढक्कन उठाकर धुएं को निकाल दें और फिर थोडा सा गन्धक डाल कर ढक दें। इस तरह ३० कर्ष गन्धक के जारण कर लेने के पश्चात् कडाही को नीचे उतार कर स्वाङ्ग शीतल होने पर उस में १ प्रस्थ भर जल डाल कर खूब मर्दन करके थोडी देर के लिये चुपचाप रहने दें। जब ऊपर स्वच्छ पानी हो जाय तब धीरे २ उसे निथार कर बाहर गिरा दें तथा कडाही की तलीमें बची हुई भस्म में नील तुत्थ और मनःशिला दोनों को एक एक कर्ष भर डाल कर किसी खटाई के साथ घोट के मुखा कर शीशी में भर दें। यह ताम्रद्रुति घृत, स्त्री का दुग्ध और शहद् के साथ मिलाकर नेत्रों में अञ्जन की तरह लगाने से काच ( मोतिया बिन्दू ), अर्म, पिल्ल, नेत्राभिष्यन्द, नेत्रव्रण, नेत्रशुक्र और नेत्रगति आदि नेत्रों के समस्त विकारों को नष्ट कर देती है। इस ताम्रद्रुति को बनाते समय जो किट्टभाग ( मैल ) निकाला है उसको निम्बू स्वरस में पीस कर प्रलेप करने से दाद, किटिम, पामा आदि चर्मरोगों को नष्ट कर देता है ॥ ६१–६४ ॥

अथ क्षयादौ खण्डखाद्याख्यलोहकल्पः—

**वासाभार्ग्यमृताऽभीरुवचाखदिरपुष्करैः।**
**मुषलीभिक्षुकोरण्टैः सूर्पे चापां च मुष्टिकैः ॥ ६५ ॥**
**पक्केऽष्टशिष्टे ताम्रस्थे प्रस्थांशे खण्डसर्पिषी।**
**ताप्येन रुक्मलोहस्य हतस्याप्यञ्जलित्रयम् ॥ ६६ ॥**
**पक्केऽस्मिन्नेहतां याते कुस्तुम्बुरु शिलाजतु।**
**शृङ्गीविडङ्गत्रिफलाजातीफलकटुत्रिकम् ॥ ६७ ॥**
**चातुर्जातं च शुक्त्यंशं प्रस्थार्धं च मधु क्षिपेत्।**
**खण्डखाद्यमिदं लीढं कर्षमात्रं रसायनम् ॥ ६८ ॥**
**क्षीरानुपस्य क्षपयेत्क्षयकासारुचिक्लमान्।**
**शीतपित्ताम्लपित्तास्रवातपित्तास्रकामलाः ॥**
**कुष्ठमेहप्लिहानाहकार्श्यं शूलं च पक्तिजम् ॥ ६९ ॥**

अडूसा, भारङ्गी, गिलोय, शतावर, वचा, खैरसार, पोहकरमूल, मुषली, मुण्डतिका या तालमखाना और पीलीकटसरैया की जड़ इनमें से प्रत्येक को एक२ पल लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनाके दो द्रोण जल में मिलाकर क्वाथ बनावें।

जब पानी जल कर अष्टमांश शेष रह जाय तब उतार कर क्वाथ को छान लें। फिर इस क्वाथ को ताम्र की कड़ाही में भरकर उसमें १ प्रस्थ खांड तथा एक प्रस्थ घृत तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म के योग से बनाई हुई चांदी भस्म या कान्त लौह भस्म १२ पल मिलाकर पाक करें। पकते२ जब अवलेह के समान हो जाय तब नीचे उतार कर उसमें धनियां, शुद्ध शिलाजीत, काकड़ासींगी, वायविडङ्ग, त्रिफला अर्थात् हरड़ बहेड़े आंवले, जायफल, सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, नागकेशर और तेजपात इन प्रत्येक औषधियों का चूर्ण आधा२ पल तथा शहद् आधा प्रस्थ भर मिलाकर सबको बड़ी कलच्छी या लकड़ी से एकम एक करके घृत से स्निग्ध मिट्टी के बर्तन में भर दें। इसे खण्डखाद्य रसायन कहते हैं। १ कर्ष भर यह रसायन प्रतिदिन सेवन करके ऊपर से दुग्ध पान करने से क्षयरोग, खांसी, अरुची, क्लम ( जी मिचलाना ), शीतपित्त, अम्लपित्त, वातरक्त, रक्तपित्त, कामला, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहवृद्धि, आनाह ( अफरा ), कृशरोग और परिणाम शूल को नष्टकर देता है ॥ ६५–६९ ॥

अथ धातुभस्मनां पृथक्पृथक्तत्तद्रोगेषु प्रयोगः—

अथ प्रथमद्वितीयलौहकल्पौ—

**हेम्ना रूप्यस्य वा भस्म वरीभृङ्गाम्बुभावितम् ।**
**गुञ्जाप्रमाणं त्रिफलासितामध्वाज्यमिश्रितम् ॥**
**बृंहणं वृष्यमायुष्यं कामलापाण्डुकुष्ठजित् ॥ ७० ॥**

स्वर्ण अथवा चांदी की भस्म को शतावर और भृङ्गराज के स्वरस से क्रमशः सात २ वार भावित करके घोट कर सुखा के शीशी में भर दें। इसमें प्रतिदिन एक २ रत्ती भर लेकर त्रिफला का चूर्ण, चीनी, शहद् और घृत के साथ मिश्रित करके सेवन करने से बृंहण, वृष्य और आयु को वृद्धि होती है तथा कामला, पाण्डु और कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७० ॥

अथ तृतीयलौहकल्पः—

**गन्धकेन समांशेन प्राग्वत्ताम्रं च मारितम् ।**
**धान्याभ्रकं च तुत्थं च दशनिष्कं पृथक्पृथक् ॥ ७१ ॥**
**भावितं मातुलुङ्गाम्लेनाऽऽर्द्रकस्य रसेन च ।**
**ताम्रं सोष्णोदकं गुल्मप्लीहशूलामवातजित् ॥ ७२ ॥**

समान भाग शुद्धगन्धक के योग से पूर्व विधि की अनुसार की हुई ताम्र की भस्म, धान्याभ्रक की भस्म और शुद्धनीलतुत्थ इन में से प्रत्येक को दश २ निष्क भर लेकर खरल में एकत्र घोटकर बिजरे निम्बू के रस में सात वार भावित करके आदी के स्वरस से सात वार भावित करें पश्चात् घोट के सुखाकर शीशी में भर दें। यह ताम्र की भस्म उष्ण जल के साथ सेवन करने से गुल्म, प्लीहवृद्धि, शूल और आमवात को नष्ट करती है ॥ ७१—७२ ॥

अथ चतुर्थो लोहकल्पः—

**मारितं त्रपुसीसं वा हारिणं शृङ्गमाकुली।**
**कार्पासवासितं तक्रं माहिषं च प्रमेहजित् ॥ ७३ ॥**

वङ्ग अथवा शीशे की भस्म, हरिण के शृङ्ग की भस्म और नाकुली कन्द के बीज इन तीनों को सम भाग लेकर कार्पास के लाल पुष्पों के स्वरस में सात वार घोट कर सुखा के शीशी में भर दें। इस औषध को भैंस की छाछ ( मठे ) के साथ प्रतिदिन सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७३ ॥

अथ पञ्चमो लोहकल्पः—

**नवनवतिस्त्रिफलाया मृतस्य नागस्य शततमो भागः**
**दार्व्याकुलीफलत्रयकनकजलप्रस्थपेषितं निखिलम् ॥ ७४ ॥**
**शतगुलिकाप्रमितं तत्पीतं तक्रेण मेहहरम्।**
**पिबतः कषायमभयादार्व्यक्षसमांशपाठायाः ॥ ७५ ॥**

समभाग ली हुई त्रिफले का चूर्ण निन्न्यानवें तोला तथा १०० वां भाग अर्थात् १ तोला नागभस्म लेकर दोनों को एकत्र खरल में मिला के घोट लें। फिर दारूहलदी, नाकुलीकन्द, त्रिफला और धत्तूरे की जड़ इन्हें सम भाग लेकर चार प्रस्थ पानी में क्वाथ बना के एक प्रस्थ अवशेष रहने पर इस क्वाथ से उक्त औषध को खरल करके १०० गोलियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर दें। इन १०० गोलियों में से प्रतिदिन दो २ गोली मठे के साथ पीकर ऊपर से हरड़, दारूहलदी, बहेड़ा और पाठा समभाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ७४—७५ ॥

षष्ठलोहकल्पः—

**कृष्णलोहेन यात्कव्यो बालेनोपचितो हि सः।**

**कुमारयूनमध्ये तु वरमध्यावरे क्रमात् ॥**
**एकद्वित्रिगुणात्कालादुपयुक्तं गुणावहम् ॥ ७६ ॥**

यह उपर्युक्त त्रिफला और नाग भस्म का योग मृदु पाक वाली कृष्ण लौह की भस्म के साथ प्रयोग करने से उपचित अर्थात् उत्कृष्ट गुण वाला योग बन जाता है। इस प्रकार का यह योग कुमारों ( बालक ) के लिये श्रेष्ठ, युवा पुरुषों के लिये मध्यम और मध्य अवस्था वालों के लिये निकृष्ट है। यदि इस योग का प्रयोग किया जाय तो बालकों के लिये थोडे समय में युवा के लिये द्विगुण समय में और मध्य आयु वालों के लिये तीन गुणे समय में लाभ प्रद होता है ॥ ७६ ॥

शूले सप्तमलौहकल्पः—

**एरण्डवह्निशम्बूकवर्षाभूयोषसैन्धवम् ।**
**अन्तर्धूमं विदह्यायश्चूर्णं सोष्णाम्बु शूलजित् ॥ ७७ ॥**

एरण्ड की जड़, चित्रक की जड़, शङ्खाहुली, पुनर्नवा की जड़, सोंठ, मरिच, पीपल और सैन्धव लवण तथा लौहभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके शराव सम्पुट में बन्द करके पुट दे देवें। इस प्रकार अन्तर्धूम की विधि से भस्मीभूत हुई इस भस्म में से उचित मात्रा लेकर उष्ण जल के साथ पीने से शूल रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

अथ जीर्णज्वरादौ अष्टमो लौहकल्पः—

**त्रिफलामृतनिर्गुण्डीमेघनादपुनर्नवा ।**
**कासमर्दालिधत्तूरवृश्चिणीनां रसैरिदम् ॥ ७८ ॥**
**भावितं गुडमध्वाज्यैर्जलतक्रानुपायिनः ।**
**स्वल्पक्षीररसांशस्य हन्याज्जीर्णज्वरं क्षयम् ॥**
**कुष्ठास्थिस्रावपाण्डुत्वर्शपक्तिशूलप्लिहामयान् ॥ ७९ ॥**

उपर्युक्त लौह मिश्रित एरण्डादि चूर्ण को त्रिफला, गिलोय, निर्गुण्डी, चोलाई, पुनर्नवा, कासमर्द ( कसोंजी ), वृश्चिकपत्री या अमरबेल, इन का स्वरस या क्वाथ तथा धत्तूर और थूहर का दुग्ध इनके साथ क्रमशः एक २ वार भावित करके घोट कर शुष्क चूर्ण बनाके शीशी में भर दें। इस चूर्ण को गुड़, शहद् और घृत में मिला कर सेवन करके ऊपर से मन्दोष्ण जल तथा मट्ठा पीना चाहिए तथा भूख लगने पर थोड़े से दुग्ध और मांस रस के साथ भोजन करें। इस विधि से

सेवन करने वाले पुरुष के जीर्णज्वर, क्षय, कुष्ठ, अस्थिस्राव, पाण्डु, अर्श, परिणामशूल और प्लीहा वृद्धि आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८–७९ ॥

अथ क्षयादौ नवमोलौहकल्पः—

बाकुचीनिम्बपञ्चाङ्गं वेल्लचित्रकवत्सकम् ।
पथ्यानागरशम्पाकगुडूचीकटुकीफलम् ॥ ८० ॥
खदिरासनसारेण भावितं लोहभस्म च ।
कर्षमात्रं समध्वाज्यं क्षयकुष्ठनिषूदनम् ॥ ८१ ॥

बाकुची, निम्ब का पञ्चाङ्ग, वायविडङ्ग, चित्रक, इन्द्रयव, हरड़, सोंठ, आरग्वध, गिलोय, कुटकी, मैनफल और लौहभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में घोट के खैर सार और विजैसार के क्वाथ से क्रमशः सात २ वार भावित करके खरल कर लें। यह रसायन १ कर्ष भर लेकर शहद और घृत के साथ मिला के प्रतिदिन सेवन करने से क्षय और कुष्ठ रोग को नष्ट कर देता है ॥ ८०–८१ ॥

विविधरोगे दशमो लौहकल्पः—

गुडस्य कुडवे पक्वं लोहभस्म पलोन्मितम् ।
कोलप्रमाणं रोगेषु तैस्तैर्योगैः प्रयोजयेत् ॥ ८२ ॥

एक कुडव भर पुराना गुड़ लेकर उसकी चाशनी बनाकर उसमें १ पल भर उत्तम लौहभस्म मिला कर स्वाङ्गशीतल होने पर १ कोल के प्रमाण की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर दें। इस रसायन को निज २ रोग नाशक औषधियों के साथ प्रयुक्त करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८२ ॥

यक्ष्मादौ एकादशोलौहकल्पः—

व्योषादिनवकस्यांशस्तदंशो लोहभस्मनः ।
अंशोऽस्मजतुनः खण्डस्याष्टौ सर्वं समाक्षिकम् ॥
कान्तपात्रगतं यक्ष्मज्वरापस्मारघस्मरम् ॥ ८३ ॥

व्योषादि नव अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक नागर मोथा, अजवाईन और जीरा इन सबको समभाग मिलाकर किया हुआ चूर्ण १ पल तथा लौहभस्म १ पल, शुद्धशिलाजीत १ पल और चीनी ८ पल लेकर खरल में घोट कर शहद मिला के कान्तलौह के पात्र में भर कर रख दें। यह रसायन राजयक्ष्मा, ज्वर और अपस्मार आदि रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ८३ ॥

अथ गरादौ द्वादशत्रयोदशलोहकल्पौ—

**निम्बसारत्रिमधुरत्रिफलालोहगन्धकम् ।**
**चूर्णमर्जुनपत्र्या वा सभृङ्गत्रिफलायसम् ॥**
**सेवितं मधुसर्पिर्भ्यां जरावैरूप्यनाशनम् ॥ ८४ ॥**

निम्ब का सार अर्थात् गोंद, त्रिमधुर अर्थात् शतावर, वाराही कन्द और विदारीकन्द अथवा घृत, गुड़ और शहद् ( घृतं गुडो माक्षिकञ्च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ), त्रिफलाचूर्ण, लौहभस्म और शुद्धगन्धक इन्हें समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोट कर शहद् और घृत के साथ सेवन करने से जरा और अङ्ग वैरूप्य नष्ट हो जाते हैं। अथवा अर्जुन वृक्ष के कोमल पत्रों का चूर्ण, भृङ्गराज का चूर्ण, त्रिफलाचूर्ण और लौहभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में घोट के शहद् और घृत के साथ मिला कर उचित मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से जरा और अङ्ग वैरूप्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

अथाम्लपित्तादौ चतुर्दशोलौहकल्पः—

**मधुकं मृतलोहं च धात्री च त्रिगुणोत्तरम् ।**
**रसेन भावितं छिन्नरुहायाः साज्यमाक्षिकम् ॥ ८५ ॥**
**सेवितं भोजनस्यादौ वातपित्तामयाञ्जयेत् ।**
**मध्ये विष्टम्भमन्तेऽम्लपित्तं शूलं च पक्तिजम् ॥ ८६ ॥**

मुलेठी चूर्ण १ पल, लौहभस्म ३ पल और आंवले का चूर्ण ९पल भर लेकर तीनों को खरल में मिलाकर गुडूची के स्वरस से सातवार भावित करके घोटकर सुखा के शीशी में भर दें। इस रसायन को भोजन के पूर्व घृत और शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वात और पित्त की दुष्टि से उत्पन्न रोगों को नष्ट करता है, भोजन के साथ सेवन करने से विष्टम्भ ( कब्जीयत ) और भोजन के अन्त में सेवन करने से अम्लपित्त और परिणाम शूल को नष्ट करता है॥८५-८६॥

अथ ग्रहण्यादौ पञ्चदशो लौहकल्पः—

**भल्लातकसहस्राभ्यां त्रिफलामुस्तचित्रकैः ।**
**हस्तिपिप्पल्यपामार्गसहदेवीकुठेरकैः ॥ ८७ ॥**
**कणामूलाऽमृताचव्यैर्द्रोणेऽपां कुरुडवोन्मितैः ।**
**पक्वे पादस्थे लोहस्थे तुलार्धं तीक्ष्णलोहतः ॥ ८८ ॥**

मणिकां च घृतात्पक्त्वा विडङ्गं चित्रकत्वचम्।
त्रिफला पञ्चलवणं त्र्यूषणं च पृथक् पलम्॥ ८९॥
पलानि सूरणस्याष्टौ वाराह्या वृद्धदारकम्।
चतुष्पलं पुष्परसस्यार्धप्रस्थं च निक्षिपेत्॥ ९०॥
प्रातर्भोजनकाले वा लीढमेतद्रसायनम्।
निहन्ति च ग्रहण्यर्शः शूलगुल्मकृमिक्षयान्॥ ९१॥

दो हजार शुद्ध भिलावें तथा त्रिफला, मोथा, चित्रक, गजपीपल, अपामार्ग, सहदेवी, तुलसी, पिपरामूल, गिलोय और चव्य ये प्रत्येक एक२ कुडव लेकर थोड़ी२ कूट के १ द्रोण जल में क्वाथ बनाकर चोथाई शेष रहने पर उतार के छान कर लोहे की बडी कडाही में भर के उसमें तीक्ष्ण लौह भस्म आधी तुला अर्थात् ५० पल और घृत १ मणिका भर (३२ तो०) मिलाकर अच्छी तरह पाक करें। ठीक तरह से पक जाने के पश्चात् उसमें वायविडङ्ग चूर्ण १ पल, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ प०, दालचीनीचूर्ण १ प०, त्रिफलाचूर्ण १ प०, पाञ्चों लवण १ प०, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ, मरिच और पिप्पली का चूर्ण १ पल तथा शुद्ध सूरण कन्द ८ पल, वाराहीकन्द ४ पल, वृद्धदारक (विधारे) की जड़ या शुद्ध बीजों का चूर्ण ४ प० और पुष्परस (शहद्) आधे प्रस्थ भर मिला कर अच्छी तरह घोट के मृतबाण मे भरकर रख दें। यह रसायन प्रातःकाल या भोजन के समय प्रतिदिन सेवन करने से ग्रहणी, अर्श, शूल, क्रिमि और क्षयरोग को नष्ट कर देता है॥ ८७–९१॥

अथ सर्वरोगे षोडशलौहकल्पः—

अङ्कोललोहमणिटङ्कणमाक्षिकाभ्र-
ताप्यार्द्रकत्रिकटुतुत्थशिलाजतूनाम्।
भृङ्गोदकेन वटिकां च मसूरमात्रां
खादेज्जयाय जरसः सकलामयानाम्॥ ९२॥

अङ्कोल के बीज, लौहभस्म, मणिभस्म (मुक्ताभस्म), शुद्ध सुहागा, सैन्धव-लवण, स्वर्णमाक्षिक भस्म, अभ्रक चू०, त्रिकटु चू०, शुद्धतुत्थ और शिलाजीत इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन पीस के भृङ्गराज के स्वरस की सात भावनाएं देकर खरल करके मसूर की बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा के शीशी में

भर दें। इस रसायन को जरा ( बुढौति ) और समग्र रोगों को नष्ट करने के लिये प्रतिदिन सेवन करें ॥ ९२ ॥

कुष्ठे सप्तदशो लौहकल्पः—

**अङ्कोल्लवेल्लाभ्रककान्ततार्प्यशिलाजतु व्योषफलत्रयाणाम्।**
**चूर्णं मुषल्याः समभागमेतत्कुष्ठानि लोढं मधुना धुनोति ॥ ९३ ॥**

अङ्कोल के बीज वायविडङ्ग, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धशिलाजीत, सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़े, आंवले और मुषली इन्हें समभाग लेकर महीन करके मिलाकर शीशी में भर दें। यह रसायन शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है ॥ ९३ ॥

मेदःप्रभृतिरोगेषु अष्टादशोलौहकल्पः—

**कान्ताभ्रत्रिफलाविडङ्गरजनीताप्याब्ददेवद्रुम-**
**व्योषैलाग्निपुनर्नवाङ्घ्रिगिरिजाङ्कोलैः समं गुग्गुलुम्।**
**पिष्ट्वा भृङ्गजलेन सूक्ष्मगुटिकां खादेद्यथासात्म्यतो**
**मेदःश्लेष्मसमीरणोल्वणगदेष्वन्येषु वा पूरुषः ॥ ९४ ॥**

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, हरड़चूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, आंवले का चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, हरिद्राचूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म, नागरमोथे का चूर्ण, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत और अङ्कोल के बीजों का चूर्ण इन सब को समभाग लें तथा सब के बराबर शुद्ध गूगल लेकर सब को खरल में मिला के महीन पीस लें। फिर भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करके छोटी २ गोलियां बना कर छाया में शुष्क करके शीशी में भर दें। इन गोलियों को अपनी प्रकृति के अनुसार उचित मात्रा से विकृत मेद, कफ और वातजन्यरोग तथा अन्य उत्कट रोगों में सेवन करें ॥ ९४ ॥

कुष्ठे एकोनविंशोलौहकल्पः—

**व्योषं कृष्णतिलासनस्य कुसुमं मण्डूरसैरेयकं**
**दार्वाशेलुसितात्रिवृत्कृमिहरं भृङ्गाणि भल्लातकम्।**
**श्रेष्ठावाकुचिकान्तलोहजरसस्तत्कान्तपात्रे स्थितं**
**खादेत्कुष्ठहरं रसायनवरं मध्वाज्यसंयोजितम् ॥ ९५ ॥**

सोंठ, मरिच, पीपल, काले तिल, विजैसार के पुष्प, मण्डूरभस्म, कटसरैया,

हरिद्रा, लिसोड़े के बीज, चोनी, त्रिवृत् की जड़, विडङ्ग, भृङ्गराज, शुद्धभिलावें, श्रेष्ठा अर्थात् शतावर या त्रिफला, वाकुची और कान्त लौह की भस्म इन्हें सम-भाग लेकर कूट पीस के कपड छान कर कान्तलौहपात्र या शीशी में भर दें। इस रसायन को शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह सर्व प्रकारके कुष्ठों को नष्ट करता है तथा सब में श्रेष्ठ रसायन है ॥ ९५ ॥

सर्वरोगेषुविंशतितमोलौहकल्पः—

मण्डूरत्रिफलासितेतरतिलाजातोविडङ्गाकुली-
बाकुच्यभ्रककान्तगन्धकनिशामाधूकसारं रजः।
पिष्ट्वा भृङ्गरसेन तस्य वटकान्खादेत्पयः पाचितान्
सर्वव्याधिहरान् रसायनवरान्मृत्योश्च मृत्युप्रदान् ॥ ९६ ॥

मण्डूरभस्म, त्रिफला, काले तिल, जायफल, वायविडङ्ग, गन्धनाकुली, वाकुची, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, शुद्धगन्धक, हरिद्रा, महुए के पुष्पों का चूर्ण अथवा मुलेठी सत्त्व और पित्तपापड़ा इन्हें सम भाग लेकर महीन चूर्ण कर के भृङ्गराज के स्वरस के साथ खरल कर के आधे २ तोले भर के वटक बनाकर दुग्ध में पका के सुखा कर शीशी में भर दें। सर्व रोगनाशक, सर्व रसायनों में श्रेष्ठ तथा यमराज को भी मारने वाले अर्थात् अकालमृत्यु को दूर करने वाले ऐसे इन वटकों का प्रति-दिन उचित प्रमाण से सेवन करना चाहिए ॥ ९६ ॥

नेत्ररोगे कान्तनागाख्यएकविंशलौहकल्पः—

बध्वान्यस्तमहस्त्रयं कमलिनीपत्रे सधात्रीरसे
धौतं भृङ्गरसेन चुम्बकरजोयुक्तं द्विभागोत्तरम्।
स्थाल्यां षड्गुणरक्तमारिषरसे यद्दारुदर्व्या धृतौ
सञ्चाल्याम्भसि कल्कशेषितमिदं शीतेक्षणाद्धालयेत् ॥ ९७ ॥
तस्मादादाय मूषायां स्वल्पायां द्रावयेद्धनम्।
कान्तनागोऽयमुद्केनाञ्जनं नयनामृतम् ॥ ९८ ॥

चुम्बक लौह १ भाग तथा नागभस्म दो भाग लेकर दोनों को एकत्र खरल में महीन घोटकर स्वच्छ कपड़े में बांध कर पोटली बनालें। फिर एक हण्डिका में कमल के पत्ते तथा आंवलों का रस भरकर दोलायन्त्र की विधि से उस में पोटली लटका कर तीन दिन रहने दें। चौथे दिन पोटली में से उस चूर्ण को

निकाल कर मृङ्गराज के स्वरस से घोटकर धो डालें। फिर लौह से ६ गुना लाल डण्डी वाली चोलाई के स्वरस को लोहे की कड़ाही में भरकर उसी में उस चूर्ण को डाल कर पकावें तथा थोडी२ देर में लकडी की कलच्छी से चलाता रहे। पकाते२ जब जलीयांश नष्ट होकर कल्क के समान दिखाई देने लगे तब नीचे उतार कर ठण्डे जल में डाल दें तथा थोडी देर के पश्चात् उस जल में से निकालकर छोटी सी मूषा में बन्द करके अग्नि में पिघलावें। ठीक तरह के पिघल जाने पर उसकी लम्बी सलाई बना लेनी चाहिए। यह कान्त लौह और नाग की बनी हुई सलाई जल के साथ घिसकर आंखों में अञ्जन की तरह लगाने से अमृत के समान गुण करती है ९७-९८

अथ रसायने द्वाविंशलौहकल्पः—

**कान्तपात्रे श्रृतं क्षीरं रसायनमनुत्तमम् ॥ ९९ ॥**

कान्त लौह की बनी हुई कड़ाही में दुग्ध को गरम करके शीतल कर पीने से वह उत्तम रसायन के समान गुणकारक होता है ॥ ९९ ॥

अथारिष्टलक्षणे त्रयोविंशलौहकल्पः—

**हेम धात्रीरसं क्षौद्रं गायत्रीरसभावितम् ॥**
**लिहन्ननुपिबन्क्षीरं दृष्ट रिष्टोऽपि जीवति ॥ १०० ॥**

खदिर के सार के क्वाथ से सात वार भावित की हुई स्वर्णभस्म को आंवले के रस और शहद् में मिला कर प्रति दिन सेवन करके बाद में दुग्ध पीने से मृत्युकारक अरिष्ट लक्षण या स्वप्नादिकों को देखा हुआ मनुष्य भी नीरोग होकर जीवित रहता है ॥ १०० ॥

अथ जरादौ चतुर्विंशलौहकल्पः—

**मधुमागधिकाविडङ्गसारत्रिफलाहेमघृतं सितां च खादन् ।**
**जरयानवलीढदेहकान्तिः समधातुश्च समाः शतं स जीवेत् ॥१०१॥**

जो मनुष्य प्रति दिन पिप्पली, विडङ्ग, त्रिफला इनके चूर्ण और स्वर्णभस्म इन्हें शहद्, घृत तथा चीनी में मिलाकर सेवन करता है वह बुढौति से आक्रान्त न होकर, देह की दिव्य कान्ति प्राप्त करके समधातु होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है ॥ १०१ ॥

अथ पञ्चविंशादिलौहकल्पचतुष्टयम्—

**आयुःकामः शङ्खपुष्प्या समेतं । मेधाकामः काञ्चनं सोग्रगन्धम् ।**

**लक्ष्मीकामः पद्मकिञ्जल्कयुक्तं खादेत्कामं कामकामो विदार्याः ॥१०२॥**

दीर्घायु की कामना वाला शङ्खपुष्पी के चूर्ण के साथ, बुद्धि की कामना वाला वचाचूर्ण के साथ, लक्ष्मी (देहशोभा) की कामना वाला कमल की केशर के साथ तथा काम (सम्भोग) की इच्छा वाला विदारी कन्द के चूर्ण के साथ नित्यप्रति $\frac{1}{2}$ रत्ती स्वर्ण भस्म को सेवन करके ऊपर से दुग्ध पान किया करें ॥१०२॥

रसायने षड्विंशलौहकल्पः—

**सपद्मबीजामलकाभयाक्तं सर्पिर्मधुभ्यां कनकं लिहन्तः।**
**दीर्घायुषो मन्दजरापतापाः सरीसृपाणां च भवन्त्यगम्याः ॥१०३॥**

कमल के बीज, आमलक चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण और घृत तथा मधु में स्वर्ण भस्म को मिलाकर नित्य प्रति सेवन करने वाले पुरुष दीर्घायु प्राप्त करते हैं तथा जरा और सन्ताप से रहित होते हैं तथा वे सर्पादि जन्तुओं के भय से भी निर्मुक्त हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

अथ मृतलौहानां रसत्वकथनादिकम्—

**मृतानि लोहानि रसीभवन्ति निघ्नन्ति रोगान्परिशीलितानि।**
**किञ्चापचारस्य समग्रयोगात्पुष्यन्ति धातूनतिदीर्घमायुः ॥१०४॥**

इतिश्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भटाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये मृतलोहकल्पनिरूपणनामाऽष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उत्तम शास्त्रोक्त विधियों से मारण करने पर लौह अर्थात् स्वर्ण ताम्रादि अष्ट धातुएं पारद भस्म के समान गुण कारक तथा रसायन होती हैं तथा यथाव्याधि हर अनुपानों के साथ नित्यप्रति सेवन करने से समग्र रोगों को नष्ट करती हैं तथा आहार विहार आदि के पथ्य पूर्वक करते हुए इन्हें सेवन करते रहने से ये धातुए रस, रक्त, मांस और मेदादि धातुओं को पुष्ट करती हैं तथा दीर्घआयु को देती हैं१०४

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषा-टीकायां मृत-लौहकल्पनिरूपणं नाम अष्टविंशोऽध्यायः ॥

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ विषकल्पः—

अथ विषोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च ।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यत्रोत्पन्नं महाविषम् ।
भेदास्तस्य वरारोहे ! यत्र यत्र सविस्तरम् ॥ १ ॥
देवदैत्योरगाः सिद्धा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ।
पिशाचाः किन्नराश्चैव मिलित्वा च वरानने ! ॥ २ ॥
एकतो बलिराजश्च ब्रह्माद्याश्च तथैकतः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नागराजेन वेष्टितम् ॥ ३ ॥
क्षीराब्धिमथनं तत्र प्रारब्धं सुरसुन्दरि ! ।
निर्गतास्तत्र रत्नौघाः कामधेन्वादयः प्रिये ! ॥ ४ ॥
अमला कमलोत्पन्ना पश्चादुच्चैःश्रवास्ततः ।
ऐरावतो महाकायो निर्गतं देवि ! चामृतम् ॥ ५ ॥
अतीव मन्थनाद्देवि ! मन्दराघातवेगतः ।
अहिराजश्रमाद्देवि ! विषज्वाला विनिर्गता ॥ ६ ॥
ततोऽतिघोरा सा ज्वाला निमग्ना क्षीरसागरे ।
तया तत्रैव चोत्पन्नं कालकूटं महाविषम् ॥ ७ ॥
प्रलयानलसङ्काशं क्रुद्धः काल इवोत्कटः ।
तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्व दानवाश्च महाबलाः ॥ ८ ॥
विषण्णवदनाः सद्यः प्राप्ताश्चैव मदन्तिकम् ।
ततस्तैः प्रार्थ्यमानोऽहमपिबं विषमुत्तमम् ॥ ९ ॥

पुराकाल में श्रीमहादेव बोले कि हे देवि ? हे वरारोहे ? पार्वति जहां पर यह महा विष उत्पन्न हुआ है उसको तथा इस विष के भेदों का मैं विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं सो सुनो । हे देवताओं में सुन्दरि, एक समय देवता, दैत्य, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच और किन्नर ये सब मिल कर क्षीरसागर के मन्थन ( दोहन ) करने के विचार से वहां गये । वहां जाकर मन्दराचल को मन्थान बनाकर तथा उसे शेषनाग से वेष्टित करके एक तरफ देवता तथा दूसरी तरफ

बलिराज आदि दैत्यों ने शेषनाग के दोनों सिरों को पकड़ कर समुद्रमन्थन प्रारम्भ किया। हे प्रिये इस तरह समुद्र के मन्थन करने से श्रेष्ठ रत्नों के समूह तथा कामधेनु आदि वस्तुएं निकलीं। सर्व प्रथम निर्मल काया वाली लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा उसके पश्चात् उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा निकला। तदनन्तर महान काया वाला ऐरावत हाथी और अमृत निकला। इनके निकलने के पश्चात् भी हे देवि ज्यादा समुद्रमन्थन करने से मन्दराचल के द्वारा बार२ आघात लगने के कारण थके हुए अहिराज (शेषनाग) के शरीर से विष की ज्वाला उत्पन्न हुई। पश्चात् वह अत्यन्त भयानक ज्वाला क्षीरसमुद्र में विलीन हो गई। उस ज्वाला से क्षीरसमुद्र में कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ जो कि प्रलयकारी अग्नि तथा अत्यन्त क्रोधित हुए यमराज के समान था। उस काल कूट विष को देख कर सब देवता और महाबलशाली दानव दुःखित मुख वाले होकर मेरे पास आये तथा उन्होंने यहां आकर मेरी बहुत प्रार्थना की। इस प्रकार प्रार्थना करने से उस विष को मैं पी गया ॥ १–९ ॥

अथ स्थावरविषाणांजातिभेदाः—

**ततोऽवशिष्टमभवन्मूलरूपेण तद्विषम्।**
**पत्ररूपेण कुत्रापि मृत्तिकारूपतः क्वचित् ॥ १० ॥**
**कुत्रचित्तोयरूपेण धातुरूपेण कुत्रचित्।**
**कन्दरूपेण कुत्रापि त्रयोदशविधं विषम् ॥ ११ ॥**

मेरे पीने से जो विष बच गया वह कहीं मूल रूप से, कहीं पत्र रूप से, कहीं मृत्तिका रूप से, कहीं जल रूप से, कहीं धातु रूप से और कहीं कन्दरूप से इस तरह वह संस्थान (आश्रय) भेद से तेरह स्वरूप का हो गया ॥ १०–११ ॥

नोट—कहीं तेरह प्रकार के कन्दविषों के रूप में हो गया, यह अर्थ ठीक है क्यों कि आगे कन्द विष के तेरह भेद बतावेंगे तथा सुश्रुतादियों ने भी कन्दविषों के तेरह भेद बताये हैं।

यथा—कालकूट वत्सनाभ, सर्षप, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृङ्गीविष प्रपुण्डरीक मूलक, हालाहल, महाविष, कर्कटकानीति त्रयोदश कन्दविषाणि। सुश्रुतः ॥

अथ कन्दविषाणां नामानि—

तेषु श्रेष्ठं कन्दविषं त्रयोदशविधं स्मृतम् ।
कर्कटं कालकूटं च वत्सनाभं हलाहलम् ॥ १२ ॥
बालुकं कर्दमं चैव सक्तुकं मूलकं तथा ।
सर्षपं शृङ्गिकं देवि ! मुस्तकं च महाविषम् ॥
हारिद्रकमिति प्रोक्तं त्रयोदशविधं विषम् ॥ १३ ॥

सर्व प्रकार के विषों में कन्दविष अत्यन्त श्रेष्ठ होता है तथा यह तेरह प्रकार का कहा गया है । यथा—कर्कट, कालकूट, वत्सनाभ, हालाहल, बालुक, कर्दम, सक्तुक, मूलक, सर्षप, शृङ्गिक, मुस्तक, महाविष और हारिद्रक इस तरह कन्दविष के तरह भेद हैं ॥ १२-१३ ॥

अथ कर्कटादिकन्दविषाणां लक्षणम्—

कर्कटं कपिवर्णं स्यात्काकचञ्चुनिभं पुनः ।
कालकूटं ततो ज्ञेयं वत्सनाभं तु पाण्डुरम् ॥ १४ ॥
भङ्गुराकन्दवद्देवि ! नीलवर्णं हलाहलम् ।
बालुकं बालुकाभं च कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ १५ ॥
सक्तुकं श्वेतवर्णं स्याच्छुक्लकन्दं तु मूलकम् ।
सर्षपं पीतवर्णं स्याच्छृङ्गिकं कृष्णपिङ्गलम् ॥ १६ ॥
मुस्ताभं मुस्तकं प्रोक्तं रक्तवर्णं महाविषम् ।
हरिद्रकं पीतवर्णं विषभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥

कर्कट विष कपिशवर्ण का, कालकूट कोए की टोढी (चोञ्च) के समान, वत्सनाभ पाण्डुवर्ण का तथा हे देवि हालाहल विष भङ्गुरा अर्थात् अतीसकन्द के समान तथा नीले वर्ण का, बालुक विष रेत के समान दानेदार, कर्दमविष कीचड़ के समान चिपचिपा, सक्तुकविष श्वेत रङ्ग का, मूलकविष सफेद कन्द के समान गांठदार, सर्षपविष पीले वर्ण का, शृङ्गी विष काला और पीलिमा लिये हुआ, मुस्तकविष मोथे के समान गांठदार, महाविष लाल वर्ण का और हारिद्रक विष पीले वर्ण का होता है । इस तरह विष भेद कहे गये हैं ॥ १४-१७ ॥

अथ श्वेतादिवर्णभेदेन विषाणां जातिभेदः—

चतुर्धा वर्णभेदेन विषं ज्ञेयं मनीषिभिः ।

**ब्रह्मक्षत्रियविट् शूद्राः श्वेतरक्ताश्च पीतकाः।**
**कृष्णवर्णः क्रमाज्ज्ञेयो वर्णानामनुपूर्वशः॥ १८॥**

वर्ण अर्थात् जाति और रङ्ग के भेद से बुद्धिमान मनुष्य विषों के चार प्रकार समझें। जैसे ब्राह्मण जाति का विष श्वेत, क्षत्रियजाति का विष लाल, वैश्यजाति का विष पीला और शूद्रजाति का विष काला होता है। इस प्रकार वर्णों के अनुसार यथा क्रम से ही विष की चार जातियां होती हैं॥ १८॥

अथ वर्णभेदेन विषाणां क्रियाभेदः—

**मारणे कृष्णवर्णं स्याद्रक्तं तु रसकर्मणि।**
**पीतवर्णं क्षुद्रकार्यं श्वेतवर्णं रसायने॥ १९॥**

किसी धातु को मारने के लिये कृष्णवर्ण का विष, रसायन कर्म अर्थात् शरीर-पुष्टि के लिये लालवर्ण का विष, क्षुद्रकार्य अर्थात् साधारण कार्य के लिये पीतवर्ण का विष और रसायन औषधियों में डालने के लिये श्वेत वर्ण का विष प्रयुक्त होता है। भावप्रकाश में भी विष का उपयोग इस प्रकार बताया है।

यथा—रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपुष्टये।
वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि॥ इति॥ १९॥

अथ विषामृतयोः तुल्ययोनित्वनिर्देशः—

**क्षीरोदसागरे देवि! मथ्यमाने वरानने।**
**उत्पन्नममृतं देवि तथोत्पन्नं महाविषम्॥ २०॥**
**मात्रया भक्षितं देवि! विषमप्यमृतायते।**
**मात्राधिकं वरारोहे ह्यमृतं हि विषं भवेत्॥ २१॥**

हे वरानने? देवि, क्षीरसागर के मन्थन करते समय अमृत और विष दोनों ही पृथक् २ उत्पन्न हुए हैं तथा गुण भी दोनों के भिन्न हैं फिर भी मात्रा पूर्वक सेवन करने विष भी अमृत के समान गुण कारी हो जाता है और हे सुन्दर मुख वाली देवि? मात्रा से अधिक प्रयुक्त करने पर अमृत भी विष के समान हानि कर होता है। इस लिये मात्रा ही सब वस्तुओं के विष या अमृत होने में कारण है॥ २०-२१॥

अथ रसायनार्थं विषप्रयोगे विधिः—

**विषं युञ्जीत नित्यं वै रसायनगुणैषिणः।**

**घृतोपस्कृतदेहस्य विशुद्धस्य हिताशिनः ॥ २२ ॥**

रसायन गुण की कामना रखने वाले शरीर की वमन विरेचनादि के द्वारा देह शुद्धि किए हुए, सारे शरीर में घृत की मालिश कर के हिताहार करने वाले के लिये विष का प्रयोग करें ॥ २२ ॥

अथ विषप्रयोगार्हपुरुषकालयोर्निर्देशः—

**सात्त्विकस्योदिते भानौ योज्यं शीतवसन्तयोः ।**
**ग्रीष्मे चात्ययिके व्याधौ, न वर्षासु न दुर्दिने ॥ २३ ॥**
**न क्रोधिनि न पित्तार्ते न क्लीबे राजवेश्मनि ॥ २४ ॥**
**क्षुत्तृष्णाभ्रमघर्माध्वव्याध्यन्तरनिपीडिते ।**
**गर्भिण्यां बालवृद्धेषु न रूक्षेषु न च मर्मसु ॥ २५ ॥**

उपर्युक्त प्रकार से शुद्ध शरीर वाले तथा सात्विक पुरुष को प्रातःकाल सूर्योदय में शीत और वसन्त ऋतु में विष सेवन करने को दें । परन्तु किसी भयङ्कर व्याधि के उत्पन्न हो जाने पर उसे नष्ट करने के लिये ग्रीष्म ऋतु में भी प्रयुक्त कर सकते हैं किन्तु वर्षा और दुर्दिन समय में विष का प्रयोग नहीं करें, एवं क्रोधी, पित्त व्याधि से पीड़ित, नपुंसक, राजा के गृह तथा क्षुधा, तृष्णा, भ्रम, धूप, मार्गश्रम और रोग से पीड़ित तथा गर्भिणी, बालक, वृद्ध, रुक्ष ( वातिक प्रकृति ) और मर्म स्थान के रोग से पीड़ित इतने में विष का प्रयोग सर्वथा वर्जित है ॥ २३–२५ ॥

अथ विषे निषिद्धद्रव्याणि—

**अभ्यस्तेऽपि विषे यत्नाद्वर्ज्यवस्तु निवर्तयेत् ।**
**कटूम्ललवणं तैलं दिवास्वप्नानलातपान् ॥ २६ ॥**

बहुत दिनों तक विष के सेवन करते २ अभ्यास हो जाने पर भी नित्य ही पथ्य पदार्थों का सेवन करें तथा अपथ्य पदार्थों का त्याग कर दें । विशेष रूप से कटु, अम्ल, लवण, तैल, दिवा शयन, अग्नि के सन्निकट रहना, धूप में घूमना या काम करना ये सब वर्जित हैं ॥ २६ ॥

अथ अवस्थाविशेषे विषस्यापकरत्वनिर्देशः—

**दृग्विभ्रमं कर्णरुजमन्यांश्चानिलजान्गदान् ।**
**विषं रूक्षाशिनः कुर्यान्मृत्युमेव त्वजीर्णिनः ॥ २७ ॥**

रूक्ष पदार्थों का भोजन करने वाले पुरुष के लिये प्रयुक्त किया हुआ विष उस के नेत्रों में विकार, कानों में पीड़ा तथा अन्य वायु जन्य विकारों को उत्पन्न करता है तथा अजीर्णी पुरुष के लिये प्रयुक्त किया हुआ विष उस की तत्काल मृत्यु ही कर देता है ॥ २७ ॥

विषविद्रावणघृतम्—

विजया पिप्पलीमूलं पिप्पलीद्वयचित्रकैः ।
पुष्करार्द्धा सटी द्राक्षा यमानीक्षारदीप्यकैः ॥ २८ ॥
सितायष्टिद्विबृहतीसैन्धवैः पालिकैः पचेत् ।
सविषार्धपलैः प्रस्थं घृतात्तज्जीर्णभुक् पिबेत् ॥ २९ ॥
दुर्नाममेहगुल्मार्शस्तिमिरकृमिपाण्डुकान् ।
गलग्रहग्रहोन्मादकुष्ठानि च नियच्छति ॥
विषविद्रावणं नाम घृतं विषरुजं हरेत् ॥ ३० ॥

भाङ्ग, पिपरामूल, पिप्पली, हरितपिप्पली, चित्रक, पुष्करमूल, कचूर, द्राक्षा, अजवाईन, यवक्षार, अजमोदा, मिश्री, मुलेठी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और सैन्धव लवण ये प्रत्येक एक २ पल लें तथा शुद्ध विष आधा पल भर लेकर सबको महीन कूट पीस के एकत्र मिलाकर कल्क बनाकर एक प्रस्थ भर घृत में मिला के अष्टगुण जल मिलाकर पाक करें। जब घृतमात्र शेष रह जाय तब उसे छान कर शीशी में भर दें तथा कल्क को फेंक दें। इस घृत को मात्रा से खाली पेट पर अर्थात् खूब तेज भूख लगने के समय पीना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह घृत अर्श, प्रमेह, गुल्म, अर्म, तिमिर, कृमि, पाण्डुरोग, गले की जकड़ाहट, नवग्रह, उन्माद और समस्त प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है। यह विष विद्रावण नामक घृत विषजन्य पीड़ा को निश्चय ही दूर कर देता है॥२८–३०॥

अथ श्वित्रारितैलम्—

लाङ्गलासुराह्वमञ्जिष्ठाकुष्ठपद्मकसारिवाः ।
गुञ्जा मही कुरवको लाङ्गली वज्रकन्दकः ॥ ३१ ॥
वाराहीकन्दकास्फोता सनाह्वा गिरिकर्णिका ।
अर्काश्वमारयोर्मूलं नागपुष्पं नतं निशे ॥ ३२ ॥
दन्तीविषं हस्तिविषं पिप्पल्यौ मरिचानि च ।

**तैस्तैलं कटुतैलं वा चित्रस्याभ्यञ्जनं पचेत् ॥**
**सवर्णकरणं श्रेष्ठमास्तिकस्य वचो यथा ॥ ३३ ॥**

लाख, देवदारू, मजीठ, कूट, पद्माख, सारिवा, गुञ्जा ( रत्ती ), महीं अर्थात् गम्भारी, लाल फुल वाली झिण्टी ( कटसरैया ), कलिहारी की जड़, वाराहीकन्द, आस्फोता ( कोयल ), सप्तपर्ण, गिरिकर्णिका ( श्वेत अपराजिता ), आक की जड़, कनेर की जड़, नागकेशर, नत अर्थात् तगर, हरिद्रा, दन्ती की जड़, वत्स. नाभ विष, हस्तिविष ( हाथी की विष्ठा या विष विशेष ), छोटी पीपल, गज पीपल और मरिच , इन सबको बराबर २ लेकर चूर्ण करके साधारण जल या गोमूत्र से पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चतुर्गुण तिल तैल अथवा सरसों का तैल तथा चौगुना या अठगुना पानी या गोमूत्र लेकर कड़ाही में भस्म कर के कल्क और तैल मिलाकर पाक करें। तैल शेष रहने पर उतार कर छान लें। यह तैल चित्र अर्थात् श्वित्र ( श्वेत कुष्ठ ) की जगह पर प्रतिदिन मालिश करने से वहां का वर्ण शरीर के अन्य वर्ण ( रङ्ग ) के समान हो जाता है। जिस तरह आस्तिक वचन सत्य हो जाता है तद्वत् यह तैल भी श्वित्र को निश्चय ही नष्ट करता है ॥ ३१-३३ ॥

अथ सूर्यप्रभा वर्तिः—

**रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा तिन्तिडीफलसक्तुकैः ।**
**अभयालोध्रकतकनिशाशङ्खकणोषणैः ॥ ३४ ॥**
**मनःशिलाकरञ्जाक्षबीजोग्राफेनसैन्धवैः ।**
**मजाक्षीरैः समविषैर्वर्तयोः विहिता हिताः ॥**
**शुक्लार्मांसपिल्लेषु ग्रन्थिगण्डार्बुदेषु च ॥ ३५ ॥**

लाल चन्दन, मजीठ, इमली के पके हुए फल, सक्तुक नाम का शुद्ध विष, हरड़, पठाणी लोध, निर्मलीफल, हरिद्रा, शङ्खनाभि, पीपल, मरिच, मैनशील, करञ्ज की जड़, बहेड़े की गिरी, वचा, समुद्रफेन, सैन्धवलवण और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें समभाग लेकर महीन चूर्ण बना के महीन कपड़े से छानकर बकरी के दुग्ध में तीन दिन तक खरल करके छोटी २ वर्तियां बना के सुखाकर शीशी में भर दें। इन वर्तियों को जल से पीसकर नेत्र में आंजने से सफेद फूला, अर्म, मांसपिल्ल ( आंख का बढ़ा हुआ मांसल भाग ) आदि नेत्ररोगों में तथा ग्रन्थि

( प्लेग ग्रन्थि ), गण्डमाला और अर्बुद में लाभ करती हैं ॥ ३४-३५ ॥

अथ विषादिगुटिका—

विषशुल्वरसव्योषगन्धकानां पलं पलम् ।
पलद्वयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम् ॥ ३६ ॥
कौन्ती मुस्ता चतुर्जातं कर्षांशं च विचूर्णितम् ।
त्रिगुणश्च गुडः कार्या वटिका माषसम्मिता ॥
भक्षयेत्तां जराग्रस्तो महारोगैश्च पीडितः ॥ ३७ ॥

शुद्ध वत्सनाभ विष, ताम्रभस्म, पारद, सोंठ, मरिच, पीपल और शुद्ध गन्धक इन्हें एक २ पल भर लें तथा हरड का चूर्ण २ पल चित्रक की जड़ का चूर्ण ३ पल तथा रेणुका, नागरमोथा, चतुर्जात अर्थात् दालचीनी, एलायची, तेजपात और नागकेशर ये प्रत्येक एक २ कर्ष भर तथा गुड़ तीन कर्ष भर लेकर सब का महीन चूर्ण कर के एकत्र खरल में घोटकर थोड़ा सा जल मिला के खरल कर एक २ माशे भरकी गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर दें। इन गोलियों को बुढौती से ग्रसित तथा भयङ्कर रोगों से पीड़ित मनुष्य प्रतिदिन सेवन करें ॥ ३६-३७ ॥

जयागुटी—

भस्मसूतगुडक्षौद्रघृतैः सह निषेवितम् ।
जरां जयेदतो नाम्ना गुटिकेयं जयोदिता ॥ ३८ ॥

पारद की भस्म, गुड, शहद और घृत इन के साथ शुद्ध विष मिलाकर घोट के गोली बना लें। ये गोलियां बुढौति ( जरा ) को नष्ट करती हैं, इस लिये जयोदिता या जयागुटिका के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीया जयागुटी—

वासाऽमृताखदिरनिम्बविडङ्गपथ्य-
क्काथे विषत्रिकटुचित्रकलोहनिक्काः ।
भावाप्य माषतुलिता वटिका प्रणीता
क्षौद्रान्विता क्षपयति क्षयकुष्ठजातम् ॥ ३९ ॥

अडूसा, गिलोय, खदिरसार, निम्ब का पञ्चाङ्ग, वायविडङ्ग और हरड इनका क्वाथ बनाकर इस क्वाथ से शुद्ध वत्सनाभविष, त्रिकटु, चित्रक, लौह की भस्म और कुटकी इन के समभाग मिश्रित चूर्ण को एक दिन तक खरल करके एक २

माशे भर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर दें। इन में से एक एक गोली प्रतिदिन पीस कर शहद् के साथ मिला के सेवन करने से क्षय और सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देती है ॥ ३९ ॥

तीया जयागुटिका—

**वचाश्वगन्धा मरिचोपकुल्यातालीशमुस्तापिचुमर्दपाठाः ।**
**विषं च तेषां वटिका जयन्त्यः फले प्रयोगे च जयासमानाः ॥ ४० ॥**

वचा, अश्वगन्ध, मरिच, पीपल, तालीशपत्र, नागरमोथा, नीम की छाल, पाठा और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें समभाग लेकर कूट पीस के महीन चूर्ण बना कर एक २ माशे भर की गोलियां बना लें। ये गोलियां फल में और प्रयोग में उपर्युक्त जया गुटिकाओं के समान हैं ॥ ४० ॥

अथ विषस्य मात्रानिर्देशः—

**आरोटं भक्षयेद् देवि ! विषं सर्षपमात्रकम् ।**
**प्रथमे दिवसे पश्चाद्द्वितीयादौ द्विसर्षपम् ॥ ४१ ॥**
**पञ्चमे दिवसे देवि ! भक्षयेत्सर्षपत्रयम् ।**
**षट्सप्ताष्टदिनेऽप्येवं नवमे वेदसंख्यया ॥**
**भक्षयेद्राजिकावृद्ध्या यावद्गुञ्जामितं भवेत् ॥ ४२ ॥**

हे देवि ? प्रथम दिन १ सरसों के बराबर आरोट अर्थात् शुद्ध विष ( सुशोधितोरसः सम्यगारोट इति कथ्यते ) का सेवन करें तथा दूसरे दिन से चौथे दिन तक दो २ सरसों के बराबर तथा हे देवि ? पांचवें दिन तीन सर्षप के बराबर तथा छटे, सातवें और आठवें दिन तक भी तीन २ सर्षप के समान ही सेवन करें। नवमें दिन ४ सरसों के बराबर विष सेवन करना चाहिए। नौ दिन के पश्चात् एक २ राई के बराबर प्रतिदिन विष की मात्रा बढावें तथा बढाते २ जब १ रत्ती तक मात्रा हो जाय तब न बढावें और जब तक सेवन करने की इच्छा हो तब तक प्रति दिन एक २ रत्ती भर ही सेवन करें ॥ ४१-४२ ॥

अथ प्रयोगकालभेदेन विषस्य क्रियाविशेषः—

**मासत्रयप्रयोगेण कुष्ठान्यष्ट हरेद्विषम् ।**
**पुण्डरीकं सविस्फोटं श्वेतमौदुम्बरं तथा ॥ ४३ ॥**
**छिन्नभिन्नं कपालाख्यं क्लिन्नाह्वं शवगन्धि च ।**

**कुष्ठानि गदितान्यष्ट हन्याद् देवि ! महाविषम् ॥४४॥**
**षण्मासस्य प्रयोगेण कामरूपो भवेन्नरः ।**
**सम्वत्सरप्रयोगेण सर्वरोगान्व्यपोहति ॥**
**द्विवत्सरप्रयोगेण दिव्यदेहो भवेन्नरः ॥ ४५ ॥**

उपर्युक्त विधि से मात्रा को धीरे २ बढा कर एक महीने तक विष को सेवन करने से आठों प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है । १ पुण्डरीक नामक कुष्ठ, २ फोडे फुन्सी युक्त कुष्ठ, ३ श्वेत कुष्ठ, ४ औदुम्बर कुष्ठ, ५ छिन्न भिन्न हुआ कुष्ठ, ६ कपाल कुष्ठ, ७ किलास कुष्ठ ( गलित्कुष्ठ ) और ८ शवगन्धिकुष्ठ इस तरह ये आठ प्रकार के कुष्ठ कहे गये हैं । महाविष इन आठों कुष्ठों को नष्ट कर देता है । ६ मास तक यथाविधि विष के प्रयोग करने से मनुष्य कामदेव के समान रुप वाला हो जाता है । एक वर्ष तक प्रयोग करने से विष मनुष्यों के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है । विष के दो वर्ष तक प्रयोग करने से मनुष्य देवताओं के समान दिव्य अर्थात् सुन्दर देह वाला हो जाता है ॥ ४३-४५ ॥

अथ विषशोधनप्रयोगः—

**अथ गोमूत्रसंयुक्तमातपे शोषयेत्त्रयहम् ।**
**विषं बृंहणमेतद्धि विषस्यादौ प्रशस्यते ॥ ४६ ॥**

एक मिट्टी के पात्र में गोमूत्र भर कर उसमें वत्सनाभविष अथवा अन्य कोई विष डाल कर तीन दिन तक धूप में सूखने दें । गोमूत्र सूख जाय तो और गोमूत्र डालना चाहिए तथा प्रति दिन प्रातः काल पूर्वमूत्र को निकाल कर नया गोमूत्र डालना चाहिए । गोमूत्र के द्वारा शोधन करने से विष का बल अर्थात् गुण बढ़ जाता है । किसी प्रकार का विष हो उसे प्रथम गोमूत्र में शुद्ध करना चाहिए, फिर उसकी अन्य विशेष शुद्धि करें ॥ ४६ ॥

अथ नवज्वरे विषकल्पः—

**तत्पिबेन्मस्तुना वातज्वरे क्षीरेण पित्तजे ।**
**अजामूत्रेण कफजे सर्वजे त्रिफलाम्भसा ॥ ४७ ॥**

शुद्धविष को मस्तु के साथ वातिक ज्वर में, दुग्ध के साथ पैत्तिक ज्वर में, बकरी के मूत्र के साथ कफजज्वर में और त्रिफला के क्वाथ के साथ सान्निपातिक ज्वर में प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ४७ ॥

अथ जीर्णज्वरे विषकल्पः—

**रोध्रचन्दनषड्ग्रन्थाशर्कराघृतमाक्षिकैः ।**
**क्षीरेण च विषं युक्तं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ४८ ॥**

लोध, चन्दन, पिपरामूल इन का समभाग चूर्ण अथवा क्वाथ बनाकर उसमें शर्करा, घृत और शहद् तथा दुग्ध मिला कर फिर½ रत्ती विष मिलाकर पी लें। इस तरह सेवन करने से विष जीर्ण ज्वर को नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

अथ जीर्णज्वरादौ विषकल्पः—

**निकुम्भकुम्भत्रिफलासर्पिर्मधुविषैः कृतः ।**
**निहन्ति मोदको जीर्णज्वरमेहत्वगामयान् ॥ ४९ ॥**

दन्ती की जड़, निशोथ ( त्रिवृत् ) की जड़, त्रिफला और शुद्ध वत्सनाभ विष इनको समभाग लेकर महीन कूट पीस के घृत और शहद् मिला कर मोदक बनाके यथोचित मात्रा से सेवन करना चाहिए। यह मोदक जीर्णज्वर, प्रमेह और चर्म के रोगों को नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

अथ विषमज्वरे विषकल्पः—

**शिखिकर्णिरसोपेतं विषमज्वरजिद्विषम् ॥ ५० ॥**

शिखिकर्णी अर्थात् अरणी ( अथवा शिखि-चित्रक, कर्णी—आरग्वध—अमलतास ) की जड़ का क्वाथ बना कर इस के अनुपान से शुद्ध विष सेवन करने से विषमज्वर को नष्ट करता है ॥ ५० ॥

अथ रक्तपित्ते विषकल्पः—

**विषं यष्ट्याह्वयं रास्ना सेव्यमुत्पलकन्दकम् ।**
**तण्डुलोदकपीतानि रक्तपित्तस्य भेषजम् ॥ ५१ ॥**

विष को उचित मात्रा से लेकर मुलेठी, रास्ना और कमलगट्टा इन के समभाग गृहीत चूर्ण के साथ मिला कर चावलों के धोवन के साथ पीने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥

अथ श्वासकासे विषकल्पः—

**रास्नाविडङ्गत्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ।**
**पद्मकं क्षौद्रममृता विषं च श्वासकासजित् ॥ ५२ ॥**

रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदार, त्रिकटु ( सोंठ, मरिच, पीपल )

कमल गट्टा और गिलोय और शुद्ध विष इन्हें सम भाग लेकर महीन चूर्ण कर के एकत्र मिला कर शीशी में भर दें। इस चूर्ण को एक माशे भर लेकर शहद् के साथ मिला के सेवन करने से श्वास और कास रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

अथ श्वासहिक्कयो विषकल्पः—

**सितारसविषक्षीरप्रवालमधुकान्विता।**
**श्वासहिक्कापहा लीढा; ॥ ५३ ॥**

सिता (चिनी), रस अर्थात पारद की भस्म, शुद्ध वत्सनाभ विष और प्रवाल भस्म इन्हें उचित प्रमाण से लेकर शहद् में मिला कर सेवन करें तथा ऊपर से दुग्ध का अनुपान करने से श्वास रोग और हिचकी दूर हो जाती है ॥ ५३ ॥

अथ छर्द्यां विषकल्पः—

**छर्दिघ्नास्तु विषान्विताः।**
**क्षौद्रोशीरमधुक्षाररजनीकुटजत्वचः ॥ ५४ ॥**

खस का चू०, मुलेठी चू०, यवक्षार, हरिद्रा चू० और कूडे की छाल का चूर्ण तथा शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर शहद् के साथ मिला कर सेवन करने से वमन बन्द हो जाता है ॥ ५४ ॥

अथ क्षये विषकल्पः—

**च्यवनप्राशनोपेतं विषं क्षपयति क्षयम् ॥ ५५ ॥**

१ तो० च्यवन प्राश के साथ ½ रत्ती भर शुद्ध वत्सनाभ विष मिला कर प्रतिदिन सेवन करें तथा ऊपर से दुग्ध पान करें। इस विधि से विष क्षयरोग को नष्ट करता है ॥ ५५ ॥

अथ ग्रहण्यां विषकल्पः—

**मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रतिविषाविषम्।**
**धातकीमोचनिर्यासः चूतास्थिग्रहणीहरम् ॥ ५६ ॥**

नागर मोथा, इन्द्रयव अथवा कूडे की छाल, पाठा, चित्रक की जड़, त्रिकटु, अतीस, शुद्ध वत्सनाभ विष, धातकी अर्थात् आंवले या धाय के पुष्प, मोचरस और आम की गुठली के भीतर की गिरी इन्हें सम भाग लेकर खरल में महीन कूट पीस के चूर्ण बना कर शहद् से चाट कर ऊपर से शीतल जल पीने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५६ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रे विषकल्पः—

**कृच्छ्रघ्नं विषपथ्याग्निदन्तिद्राक्षानिशावृषाः ॥ ५७ ॥**

शुद्ध वत्सनाभ विष, हरड़, चित्रक की जड़, दन्ती की जड़ द्राक्षा, हरिद्रा और अडूसा इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण बना के उष्ण जल के साथ सेवन करने से मूत्र कृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

अथ उदावर्ताश्मर्योः विषकल्पः—

**शिलाजतु विषं व्यूषमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ ५८ ॥**

शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध वत्सनाभ विष, सोंठ, मरिच, पीपल इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन पीस के शहद् के साथ सेवन करने से उदावर्त्त और अश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

अथाश्मर्यां विषकल्पः—

**गोमूत्रक्षारसिन्धूत्थविषपाषाणभेदकम् ।**
**वज्रवद्दारयत्येतदेकतः पीतमश्मरीम् ॥ ५९ ॥**

१ पल भर गोमूत्र में यवक्षार, सैन्धव लवण, शुद्ध वत्सनाभ विष और पाषाण भेद ( पत्थर चट्टे ) का सम भाग मिश्रित चूर्ण मिला कर सेवन करने से वज्र के समान अश्मरी को निश्चय ही फाड़ के गला कर निकाल देता है ॥५९॥

अथ गुल्मे विषकल्पः—

**त्रिफलास्वर्जिकाक्षारैर्विषं गुल्मप्रभेदनम् ॥ ६० ॥**

त्रिफला का चूर्ण, सज्जि खार और वत्सनाभ विष इन का समभाग मिश्रित चूर्ण को उष्णजलानुपान पूर्वक सेवन करने से गुल्म का नष्ट कर देता है ॥ ६० ॥

अथ शूले विषकल्पः—

**पिप्पलीपिप्पलीमूलं विषं शूलहरं तथा ॥ ६१ ॥**

पिप्पली, पिपरामूल और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग कूट पीस कर चूर्ण बना के शहद् तथा उष्णोदकानुपान के साथ सेवन करने से शूल नष्ट होता है ॥६१॥

अथ गुल्मप्लीन्होः विषकल्पः—

**विषं द्रवन्ती मधुकं द्राक्षारास्नाशठीकणा ।**
**विषं वेल्लमिषिक्षीरं गुल्मप्लीहनिबर्हणम् ॥ ६२ ॥**

शुद्ध वत्स नाभ विष, द्रवन्ती अर्थात् दन्ती की जड़, मुलेठी, दाख, रास्ना,

कचूर, पिप्पली, अतीस, वायविडङ्ग और सौंफ इन का सम भाग चूर्ण बना कर दुग्धानुपान के साथ सेवन करने से गुल्म और प्लीहा वृद्धि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

अथ प्लीन्हि विषकल्पः—

**प्लीहोदरघ्नं पयसा शतारुकृमिजिद्विषम् ॥ ६३ ॥**

शतावर, वायविडङ्ग और शुद्ध वत्सनाभ इन का सम भाग कृत चूर्ण को दुग्ध के साथ प्रतिदिन सेवन करने से प्लीहवृद्धि और जलोदरादि उदर विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

अथ कुष्ठे विषकल्पः—

**वायसीमूलनिष्काथपीतं कुष्ठहरं विषम् ॥ ६४ ॥**

मकोय की जड़ के क्वाथ के अनुपान से विष का सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

अन्योविषकल्पः—

**पयस्या राजवृक्षत्वक् त्रायन्तीवाकुचीबलात्।**
**प्लीहग्नीमकणाभ्यां च विषं क्काथेन कुष्ठजित् ॥ ६५ ॥**

क्षीरकाकोली, अमलतास की छाल, त्रायमाणा, बाकुची, वरियारा, रोहीतक की छाल और गजपीपल इनका क्वाथ बना कर इस क्वाथ के अनुपान से विष का सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६५ ॥

कुष्ठघ्नोलेपः—

**अवल्गुजैडगजयोर्बीजं क्षारद्वयं विषम्।**
**लेपः ससैन्धवः पिष्टो वारिणा कुष्ठनाशनः ॥ ६६ ॥**

बाकुची, चक्रमर्द के बीज, यवक्षार, सज्जीखार, शुद्ध वत्सनाभ विष और सैन्धव लवण इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण करके जल के साथ पीस कर प्रलेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

अथ विचर्चिकादौ विषकल्पः—

**चित्रकार्कजटाहस्तिपिप्पलीवाकुचीविषैः।**
**सचन्द्रकैरण्डगजकरञ्जफलसैन्धवैः ॥ ६७ ॥**
**सव्योषस्वर्जिकाक्षारयवक्षारनिशाद्वयैः।**
**अगारधूमसहितैर्बस्तमूत्रेण कल्पितैः ॥ ६८ ॥**

भल्लातकाग्निशम्पाकविषैर्वा मूत्रपेषितैः ।
लेपो विचर्चिकादद्रूरसिकाकिटिमापहः ॥ ६६ ॥

चित्रक की जड़, आक की जड़, गज पीपल, वाकुची, शुद्ध वत्सनाभ विष, कपूर या बौंच के बीज, चकवड़, करञ्ज के फल की गिरी, सैन्धव लवण, सोंठ, मरिच, पीपल, सज्जीखार, यवक्षार, हलदी, दारुहलदी और रसोई घर का धुआं, इन्हें समभाग ले कर बकरे के मूत्र के साथ खरल करके लेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है । अथवा शुद्ध भिलावें, चित्रक की जड़, अमलतास और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें समभाग ले कर चूर्ण करके बकरे के मूत्र से खरल कर प्रलेप करने से विचर्चिका, दाद, खुजली और किटिम आदि कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७—६९ ॥

अथ विचर्चिकादौ विषकल्पः—

शम्पाकपत्रत्वङ्मूलं विषं तक्रं च तद्गुणम् ॥ ७० ॥

अमलतास के पत्ते, छाल, जड़ और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण कर के मट्ठे के साथ पीस कर प्रलेप करने से पामा, दद्रु आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७० ॥

अथ कुष्ठे विषकल्पः—

कुष्ठतुम्बरुबीजानि वाजिगन्धाम्लवेतसम् ।
हारिद्रा वायसी रास्ना हरितालं मनःशिला ॥ ७१ ॥
पटोलनिम्बपत्राणि कणागन्धकसैन्धवम् ।
विषं दारु शिरीषास्थि तक्रं लेपेन कुष्ठजित् ॥ ७२ ॥

कूठ, तुम्बरु के बीज, असगन्ध, अमलवेंत, हलदी, कौआ ठोडी, रास्ना, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसील, परवर के पत्ते, नीमके पत्ते, पिप्पली, शुद्धगन्धक, सैन्धव लवण, शुद्ध वत्सनाभ विष, देवदार, शिरीष के बीजों की छाल या शिरीष की जड़ इन्हें सम भाग लेकर कूट पीस के चूर्ण बनाकर मट्ठे के साथ खरल करके प्रलेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७१–७२ ॥

विषतैलम्—

करञ्जकरवीरार्कमालतीरक्तचन्दनैः ।
आस्फोताकुष्ठमञ्जिष्ठासप्तच्छदनिशानतैः ॥ ७३ ॥

सिन्दुवारवचाद्वेडैर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे।
सिद्धं कुष्ठहरं तैलं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ ७४ ॥

करञ्ज की जड़, करवीर ( कनेर ) की जड़, आक की जड, चमेली की जड़, लाल चन्दन, नेवारी की जड़, कूठ, मजीठ, सप्तपर्ण, हलदी, तगर, निर्गुण्डी की जड़, वचा और विष इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके गोमूत्र के साथ पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चौगुना तिल या सरसों के तैल तथा चौगुना ही गोमूत्र लेकर कड़ाही में सबको मिला के भट्टी पर चढ़ाकर यथाविधि तैल पका लें। यह कुष्ठनाशक तैल प्रलेप करने से दुष्टव्रण का शोधन करता है तथा मर्दन करने से श्वित्रादि कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ ७३–७४ ॥

कुष्ठहरतैलम्—

कुष्ठाश्वमारभृङ्गार्कमूलस्नुक्क्षीरसैन्धवैः।
तैलं सिद्धं विषावापमभ्यङ्गात्कुष्ठजित्परम् ॥ ७५ ॥

मीठा कूठ, कनेर की जड़, भृङ्गराज, आक की जड़, थूहर का दुग्ध और वत्सनाभ विष इन्हें कूट पीसकर गोमूत्र या जल से पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चतुर्गुण तैल और चतुर्गुण जल इन सबको कड़ाही में डालकर तैल पाक करें। यह तैल अभ्यङ्ग करने से कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ ७५ ॥

अथ कुष्ठादौ चन्दनादितैलम्—

भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्वनैः।
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ॥ ७६ ॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम्।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ॥
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीव्रणापचीः ॥ ७७ ॥

सफेद चन्दन, देवदार, हलदी, दारुहलदी, निशोथ और नागरमोथा ये प्रत्येक एक २ पल तथा वत्सनाभविष आधा पल लेकर चूर्ण बनाकर गोमूत्र में पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चौगुना ब्राह्मीस्वरस, उतना ही आक का दुग्ध और उतना ही गाय के गोबर का रस तथा सरसों का तैल १ प्रस्थ भर लेकर सबको कड़ाही में डालकर तैल पाक करें। इस तैल को दुग्ध के साथ पीने से तथा

प्रलेप और अभ्यङ्गादि करने से कुष्ठ, दुष्ट नाडी व्रण और अपची को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ७६-७७ ॥

अथ श्वित्रादौ विषकल्पः—

**विषं भल्लातकीद्वीपिगुञ्जानिम्बफलैर्जयेत् ॥**
**लेपोऽम्लपिष्टैः श्वित्राणि पुण्डरीकं च दारुणम् ॥ ७८ ॥**

वत्सनाभविष, शुद्ध भिलावां, चित्रक की जड़, गुञ्जा ( रत्ती ) और नीम के फलों की गिरी इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके निम्बु के रस या खट्टी छाछ से पीसकर प्रतिदिन प्रलेप करने से सर्व प्रकार के सफेद कोढ तथा असाध्य पुण्डरीक कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

अन्यो योगः

**ककुभारुष्करद्वीपिस्पृक्कापत्रैलवालुकम् ।**
**पिष्टं खादिरतोयेन त्रिरात्रमुषितं पिबेत् ॥ ७९ ॥**
**श्वित्री विषेण सङ्घृष्टं, तत्तत्स्फोटान्किलासजान् ।**
**कण्टकेन विभिद्याशु लेपैर्लिम्पेच्च कौष्ठिकैः ॥ ८० ॥**

अर्जुन की छाल, शुद्ध भिलावां, चित्रक की जड़, असवरग, तेजपात और एलुआ इनको समभाग लेकर चूर्ण बना के खैर की छाल के क्वाथ या कत्थे के पानी के साथ घोटकर तीन दिन तक उसी में भीगो कर रख दें । तीन दिन के बाद उसमें शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण मिलाकर जल के साथ पीस लें तथा इसी औषध कल्क को श्वेतकुष्ठ पर प्रलेप करने से छाले पड़ जाते हैं । उन छालों को काटे से फोड़कर इसी कल्क का अथवा अन्य कुष्ठनाशकौषधियों का प्रलेप कर दें । इस तरह उक्तौषध के द्वारा उपचार करने से श्वेतकुष्ठ शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥७९-८०॥

अन्यो योगः—

**अथवा करवीरार्कमूलबाकुचिकाविषैः ।**
**वस्ताम्बुपिष्टैः सद्वीपिद्विपपिप्पलयरुष्करैः ॥ ८१ ॥**

अथवा उक्तकुष्ठ के फोड़ों पर कनेर की जड़, आक की जड़, बाकुची, शुद्ध वत्सनाभ विष, चित्रक की जड़, गजपीपल और शुद्ध भिलावें इन्हें समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बना के बकरे के मूत्र से पीसकर प्रलेप करना चाहिए ॥ ८१ ॥

अथ वाते विषकल्पः—

**एरण्डतैलं त्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम्।**
**सर्पिषा सहितं पीतं वातार्तत्त्वमपोहति ॥ ८२ ॥**

एरण्ड ( रेंडी ) का तैल, त्रिफला चूर्ण, गोमूत्र, चित्रक की जड़ का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें उचित मात्रा से लेकर घृत के साथ आलोडित कर के पीने से वातजन्य पीडा दूर हो जाती है। अथवा त्रिफला चूर्ण, चित्रक चूर्ण और विष इन्हें सम भाग लेकर गोमूत्र से पीस कर कल्क बना लें, फिर इस कल्क से एरण्ड तैल पका कर घृत के साथ मिला कर पान करना चाहिए ॥८२॥

अथ अग्निदाहे विषकल्पः—

**कोरकं चीरनिष्काथे लाङ्गलीविषसर्षपैः।**
**गन्धकाङ्कोल्लमरिचैः सस्नुक्क्षीरैर्विपाचितम् ॥**
**जयेज्ज्योतिष्मतीतैलमनलत्वग्गदानपि ॥ ८३ ॥**

कोरक अर्थात् शीतल चीनी अथवा क्षीरकाकोली, कलिहारी की जड़, शुद्ध विष, सरसों, शुद्ध गन्धक, अङ्कोल के बीज, मरिच, इन द्रव्यों को समभाग लेकर कूट पीस के चूर्ण बना कर थूहर के दुग्ध के साथ घोट कर कल्क बनालें। फिर इस कल्क से कपास के बीजों के काढे के साथ मालकङ्गनी का तैल यथा विधि बना कर शीशी में भर दें। यह तैल लेप अभ्यङ्गादि करने से अग्नि से जलने के कारण उत्पन्न हुए त्वचा के रोगों को नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

अथ वन्ध्यायां विषकल्पः—

**स्वरसं बीजपूरस्य वचाब्राह्मीरसं घृतम्।**
**वन्ध्या पिबन्ती सविषं सुपुत्रैः परिवार्यते ॥ ८४ ॥**

बिजौरे निम्बू का रस, वचा का स्वरस, ब्राह्मी का स्वरस और घृत इन्हें घृत पाक विधि से पका कर जब घृतमात्र शेष रह जाय तब उस में शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण मिला दें। इस घृत के पीने से बन्ध्या स्त्री भी अच्छी सन्तान से युक्त हो जाती है। अथवा वचा और विष को सम भाग लेकर चूर्ण कर के मातुलुङ्ग के स्वरस और ब्राह्मी स्वरस तथा घृत के अन्दर मिला कर प्रति दिन पीते रहने से उक्त फल होता है ॥ ८४ ॥

अथ मूढगर्भे विषकल्पः—

**वीरालाङ्गलीकादन्तीविषपाषाणभेदकैः ।**
**प्रयोज्यो मूढगर्भाणां प्रलेपो गर्भमोचनः ॥ ८५ ॥**

वीरा अर्थात् पृश्निपर्णी अथवा बन्दी शतावर, कलिहारी की जड़, दन्ती की जड़, शुद्धवत्सनाभविष और पाषाणभेद इन्हें समभाग लेकर जल से पीस कर हाथ पैर के तलुए तथा पेडू के ऊपर प्रलेप करने से मूढ गर्भ उपद्रव युक्त स्त्रियों का गर्भ ( बच्चा ) आसानी से बाहर निकल आता है ॥ ८५ ॥

अथ बुद्धिवर्धने विषकल्पः—

**देवदारुविषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका ।**
**वचा वाक्स्खलनं हन्ति बुद्धेश्च परिवर्धनम् ॥ ८६ ॥**

देवदार, शुद्ध वत्सनाभ विष, कटेरी और बचा इन को समभाग लेकर कूट पीस के चूर्ण कर लें । इस चूर्ण को घृत में मिला कर प्रतिदिन सेवन करें तथा ऊपर से १ पल गोमूत्र पीने से जिह्वास्तम्भ रोग ( रुक २ कर बोलना ) नष्ट हो जाता है तथा बुद्धि बढ़ती है । अथवा देवदार, विष, कटेरी और विष इन्हें गोमूत्र में पीस कर कल्क बना लें। फिर कल्क को चौगुने गोघृत तथा गोमूत्र में मिला कर घृत सिद्ध करके छान लें । १ तोले भर घृत को मन्दोष्ण दुग्ध में मिला कर सेवन करने से उपर्युक्त गुण होते हैं ॥ ८६ ॥

अथ तिमिरे विषकल्पः—

**विषं सर्पिः सिता क्षौद्रं तिमिरापहमञ्जनम् ॥ ८७ ॥**

शुद्ध विष के चूर्ण को घृत, चीनी और शहद में मिला कर आखों में आंजने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८७ ॥

तिमिरे द्वितीयो विषकल्पः—

**विषं चैकमजाक्षीरकल्कितं घृतधूपितम् ॥ ८८ ॥**

बकरी के दुग्ध से विष को पीस कर कल्क बना के निर्धूम अङ्गार पर घृत डाल कर उस धूएं से कल्क को धूपित करके आखों में अञ्जन लगाने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥

तिमिरे तृतीयो विषकल्पः—

**विषं धात्रीफलरसैरसकृत्परिभावितम् ।**

अञ्जनं शङ्खसहितं प्रगाढं तिमिरं जयेत् ॥ ८९ ॥

शङ्खनाभि और विष इन दोनों को खूब महीन पीस कर आंवलों के स्वरस से सात वार भावित करके खरल कर लें। इसका अञ्जन करने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८९ ॥

अथ काचे विषकल्पः—

विषमिन्द्रायुधं स्तन्यैर्घृष्टं काचजिदञ्जनम् ॥ ९० ॥

विष और हींर की भस्म दोनों को समभाग लेकर पीस के स्त्री या गौ के दुग्ध से खरल करके अञ्जन करने से काच रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९० ॥

द्वितीयो विषकल्पः—

बीजपूररसैर्घृष्टं विषं तद्वत्सितान्वितम् ॥ ९१ ॥

विष और चीनी को समभाग लेकर बिजौरे निम्बू के स्वरस के साथ खरल करके अञ्जन करने से काचरोग नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥

तृतीयो विषकल्पः—

विषं मागधिका द्वे च निशि काचघ्नमञ्जनम् ॥ ९२ ॥

विष और पिप्पली के सम भाग चूर्ण को बिजौरे निम्बू के रस से खरल करके अञ्जन करने से काच रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९२ ॥

शुक्लार्मजिद्विषकल्पः—

शुक्लार्मजिद्विषं कृष्णायुक्तं गोमूत्रभावितम् ॥ ९३ ॥

विष और पिप्पली के समभाग चूर्ण को गोमूत्र से सात वार भावित करके अञ्जन करने से नेत्र की सफेदी और अर्म रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९३ ॥

अथ शुक्लादौविषकल्पः—

समुद्रफेनं स्फुटिका कुरुविन्दरसाञ्जनम्।
कूर्मपृष्ठं च तुल्यानि तेभ्योऽर्धांशमनःशिला ॥ ९४ ॥
अर्धमानानि मरिचसैन्धवायोरजांसि च।
अथो यथोत्तरं दद्यादयसा च समं विषम् ॥ ९५ ॥
रसक्रियेयं मधुना शुक्लपिल्लार्मकाचनुत्॥
अभीक्ष्णं शीततोयेन सिञ्चेन्नेत्रं विषाञ्जिते ॥ ९६ ॥

समुद्र फेन, फिट करी, पद्मराग मणि की भस्म, रसाञ्जन और कछुए के पीठ

का चर्म या हड्डी का चूर्ण ये सम भाग तथा इन के मिलित चूण की अपेक्षा अर्द्ध भाग शुद्ध मैन सील तथा मैन सील से आधा मरिच चूर्ण, मरिच से आधा सैन्धव लवण, लवण से आधी लौह भस्म और लौह भस्म के बरा बर शुद्ध वत्स नाभ विष लेकर इन का महीन चूर्ण बना के सहद् के साथ खरल कर नेत्रों में आञ्जने से नेत्र की शुक्लता ( फूला, माडा आदि ), पिल्ल, अर्म और काच रोग नष्ट हो जाते हैं। विष युक्त अञ्जनादिकों के लगाने के पश्चात् नेत्रों को ठण्डे जल से बार २ धोते रहना चाहिए ॥ ९४-९६ ॥

अथ पिल्ले विषकल्पः—

**रसोनकन्दमरिचविषसर्षपसैन्धवैः।**
**पिल्लेक्षणहितं कार्यं सुरसारसपेषितैः ॥**
**पूरयेत्सर्पिषा चानु सर्पिरेव च पाययेत् ॥ ९७ ॥**

लह सून की गिरी, मरिच, वत्सनाभ विष, सरसों और सैन्धव लवण इन्हें बरा बर २ लेकर महीन चूर्ण कर के तुलसी के स्वरस के साथ सात वार भावित कर के पिल्ल रोग युक्त (रुग्ण) नेत्रों में अञ्जन करना चाहिए तथा अञ्जन करने के पश्चात् आंख को गोघृत से भर दें तथा थोड़ा सा घृत पिला दें ॥ ९७ ॥

अथ नक्तान्ध्ये विषकल्पः—

**मधूकसारमधुकविषक्षीरजलैर्घृतम्।**
**पक्वं सन्तर्पणं श्रेष्ठं नक्तान्ध्ये त्वचिरोत्थिते ॥ ९८ ॥**

मुलेठी का सत्त, महुए के पुष्प और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर जल से पीस के कल्क बनालें। फिर कल्क से चतुर्गुण घृत और घृत के बरा बर दुग्ध तथा चतुर्गुण जल लेकर सब को बड़ी कड़ाही में डाल कर पकावें। घृत के सिद्ध हो जाने पर छान के शीशी में भर दें। यह घृत स्वल्प काल के नक्तान्ध्य ( तिमिर ) रोग में नेत्रों में लगाने से रोग नष्ट हो जाता है तथा नेत्र तृप्त हो जाते हैं ॥ ९८ ॥

अथ नक्तान्ध्ये अन्यविषकल्पः—

**अञ्जनं नरपित्तेन रोचनामधुश्रृङ्गिभिः ॥ ९९ ॥**

गोरोचन, मुलेठी का सत्त और शृङ्गी विष इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण कर के मनुष्य के पित्त से पीस कर अञ्जन लगाने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट होजाता है ॥ ९९ ॥

अथ कर्णशूले विषकल्पः—

**स्वर्जिकाक्षारसिन्धूत्थं शुक्लशुक्लं वरं विषम् ।**
**कर्णयोः पूरणं तीव्रकर्णशूलनिबर्हणम् ॥ १०० ॥**

सज्जिखार, सैन्धव लवण, श्वेत लोध या श्वेत रेडी की जड़, केसर और विष इन्हें सम भाग लेकर जल से पीस के स्वरस निचोड़ कर कानों के भीतर टपकाने ( पूरण करने ) से तीव्र कर्ण शूल नष्ट हो जाता है ॥ १०० ॥

अथ शिरःशूले विषकल्पः—

**नस्यं शिरोरुक्शमनं प्रत्यक्पुष्पीसिताविषम् ॥ १०१ ॥**

अपामार्ग के बीज, चीनि और विष इन्हें समभाग ले के पीसकर नस्य करने से शिर की पीड़ा नष्ट हो जाती है ॥ १०१ ॥

शिरःशूले द्वितीयो विषकल्पः—

**अथवा घृतयष्ट्याह्वशर्कराविषसंयुता ॥ १०२ ॥**

अथवा तगर, मुलेठी, चीनी और विष इनका चूर्ण बनाकर नस्य लेने से शिर की पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ १०२ ॥

अथ पूतिनस्ये विषकल्पः—

**शुण्ठी पथ्या विषं पाठा त्रायन्ती पूतिनासजित् ॥ १०३ ॥**

सोंठ, हरड़, विष, पाढल और त्रायमाणा इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके नस्य लेने से पूतिनासा अर्थात् नाक की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है ॥ १०३ ॥

अथ मुखरोगे विषकल्पः—

**प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठाविषतिन्दुसमुद्भवैः ।**
**निहन्ति साधितं तैलं गण्डूषेण मुखामयान् ॥ १०४ ॥**

श्वेतकमल, मजीठ, विष और तिन्दुक इन्हें जल से पीस कर कल्क बनाकर चतुर्गुण तिलतैल और चतुर्गुण जल के साथ मिला कर तैल सिद्ध कर लें । इस तैल के द्वारा गण्डूष ( कुरले ) करने से मुखरोग दूर हो जाते हैं ॥ १०४ ॥

मुखरोगेऽन्योविषकल्पः—

**एलाखादिरकङ्कोलजातिकर्पूरचन्दनैः ।**
**बोलाब्दचालैर्द्विगुणविषैः सारामबुपेषितैः ॥**
**समूत्रा वटिकाः कल्पा धृता घ्नन्ति मुखामयान् ॥ १०५ ॥**

छोटी इलायची, खदिरसार ( कत्था ), कंकोल ( शीतल चीनी ), चमेली

या जायफल, कपूर, लाल चन्दन, बोल ( गन्धबोल ), नागर मोथा और सुगन्ध वाला ये सब वस्तुएं सम भाग तथा सब से द्विगुण शुद्धविष और एक भाग की अपेक्षा द्विगुणविष लेकर सब का महीन चूर्ण कर के खैरसार के पानी से सात वार भावित करके घोटें तथा १ वार गोमूत्र से खरल कर के गोलियां बनाकर सुखा लें। इन वटियों को मुख में रख कर प्रति दिन चूसने से मुख के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १०५ ॥

अथ पलितादौ विषकल्पः—

**कटुतैलविषं नस्यं पलितारुंषिकापहम् ॥ १०६ ॥**

कटुतैल में विष मिला कर नस्य लेने से पलित और शिर की रूसी नष्ट हो जाती है ॥ १०६ ॥

अथ खलतौ विषकल्पः—

**स्नुह्यर्कक्षीरभृङ्गाम्बुगोमूत्रहलिनीविषैः ।**
**गुञ्जाविशालामरिचैः कटुतैलं विपाचितम् ॥**
**खलतिं शमयति ; ॥ १०७ ॥**

थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, कलिहारी की जड़ का चूर्ण, वत्सनाभविष, घुंघची चूर्ण, इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण और मरिचचूर्ण इन्हें समभाग लेकर एकत्र मिला के कल्क बनाकर चतुर्गुण भृङ्गराज स्वरस तथा चतुर्गुण गोमूत्र में मिलादें, तथा चतुर्गुण कटुतैल मिला कर बड़ी कड़ाही में तैल सिद्ध कर लें। यह तैल शिर में प्रतिदिन लगाते रहने से खलति रोग नष्ट हो जाता है ॥ १०७ ॥

अथ दिग्धाहते विषकल्पः—

**अम्लपिष्टमष्टगुणं विषात् ।**
**सिन्धूत्थकार्पासफलं पिण्डितं सह सर्पिषा ।**
**क्षीरेणाजेन वा लेपाद्विषदिग्धायुधप्रणुत् ॥ १०८ ॥**

विष एक भाग तथा अम्ल के साथ पीसे हुए सैन्धवलवण और कार्पास बीजों के कल्क के आठ भाग लेकर तीनों का एकत्र पिण्ड बना के घृत या बकरी के दुग्ध के साथ घोट कर प्रलेप करने से विष से लिप्त किये हुए शस्त्र के घाव को भर कर ठीक कर देता है ॥ १०८ ॥

अथ दुष्टव्रणे विषकल्पः—

**विषं रसाञ्जनं भार्गी वृश्चिकाली महासहा ।**

सवेदने सपाके च व्रणे दुष्टे प्रलेपनम् ॥ १०९ ॥

शुद्धविष, रसौत, भारङ्गी, बिछैछीघास, माषपर्णी इन द्रव्यों को समभाग ले कर जल से पीस कर वेदना और पाक से युक्त दुष्ट व्रण पर प्रलेप करने से वह व्रण भर जाता है ॥ १०९ ॥

अथ अपच्यां कृतमालादिघृताख्यो विषकल्पः—

कृतमालार्कपूतीकवत्सकातिविषाविषम् ।
सिद्धं यदिङ्गुदक्काथैः सर्पिस्तदपचीहरम् ॥ ११० ॥

अमलतास की छाल, आक की जड़, करञ्ज के फल की गिरी इन्द्र यव, अतीस और वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर जल से पीस कर कल्क बनालें। फिर कल्क से चतुर्गुण घृत और चतुर्गुण इङ्गुदी ( तापसतरु ) क्वाथ लेकर सब को बड़ी कड़ाही में डाल कर पाक करें। इस प्रकार से सिद्ध किया हुआ घृत अपची रोग को नष्ट करता है ॥ ११० ॥

अथ अपचघ्नतैलाख्यविषकल्पः—

काकादनीमागधिकानलिकातुण्डिकाफलैः ।
जीमूतबीजककोटिविशालाकृतवेधनैः ॥ १११ ॥
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ।
प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ॥
तज्जयेदपचीं घोरां नावनाभ्यङ्गपानतः ॥ ११२ ॥

कौआठोढी अथवा गुञ्जा, पिप्पली, नली, तुण्डी (प्रज्ञाहरीया बिम्बी) के फलर था कपास के बीज, मोथा, ककोडा, इन्द्रवारुणी, अमलतास और पाठा ये प्रत्येक आधेर पल भर तथा शुद्ध विष १ कर्ष भर लेकर सब का चूर्ण बना के जल से पीसकर कल्क बनालें। फिर इस कल्क को करञ्ज के १ प्रस्थ तैल तथा १ आढक भर निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस में मिलाकर कड़ाही में भर के तैल पाक करलें। यह तैल नस्य, अभ्यङ्ग और मात्रा पूर्वक पीने से भयङ्कर अपची रोग को नष्ट कर देता है ॥ १११–११२ ॥

अथ अपच्यादौ विषकल्पः—

गुञ्जाटङ्कणशिग्रुमूलरजनीशम्पाकभल्लातकाः
स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैन्धववचाकुष्ठाभयालाङ्गलीः ।

वर्षाभूशटिभूशिरीषवरणव्योषाश्वमारारिषं
गोमूत्रं शमयेद्विलिप्तमपचीग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदाम् ॥ ११३ ॥

गुञ्जा, शुद्धसुहागा, सहजने की जड़, हरिद्रा, अमलतास की छाल, शुद्ध भिलावां, थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, चित्रक की जड़, करञ्ज की जड़, सैन्धव लवण, वचा, कूठ, हरड़, कलिहारी की जड़, पुनर्नवा की जड़, कचूर, गम्भारी की छाल, शिरीष की छाल, वरुण की छाल, सोंठ, मरिच, पीपल, कनेर की जड़ और शुद्धवत्सनाभ विष इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण करके गोमूत्र से सात वार भावित करके खरल करलें। यह कल्प प्रलेप करने से अपची, ग्रन्थि, अर्बुद और श्लीपद को नष्ट करता है ॥ ११३ ॥

अथ दुःसाध्यरोगे विषकल्पः—

अन्येष्वपि च रोगेषु होषोपायपरिक्षये ।
प्रत्यहं विषकन्दस्य त्रियवं यवमेव वा ॥
शुद्धस्य राजिकावृद्ध्या वर्षं भुक्त्वा जयेद्गदान् ॥ ११४ ॥

उपर्युक्त कहे हुए रोगों के अतिरिक्त अन्य सर्वरोगों में विविध औषधियों के प्रयोग करने पर सफलता प्राप्त न हुई हो तब रोगी के वमन विरेचनादि द्वारा शरीर की शुद्धि करके एक राई से प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक२ राई भर बढाकर १ यव या ३ यव तक मात्रा हो जाने के पश्चात् इसी मात्रा ( १ यव या ३ यव ) के प्रमाण से वर्ष पर्यन्त विष के सेवन करते रहने से मनुष्य सर्व प्रकार के रोगों को जीत लेता है ॥ ११४ ॥

अथ रसायने विषकल्पः—

वचागन्धकसिन्धूत्थत्रायमाणाम्लवेतसम् ।
व्योषाग्निवेल्लपाठाश्लकर्णीकरिकणाविषम् ॥ ११५ ॥
चाङ्गेरीनागदमनीवायसीत्रिफलारसैः ।
भावितं मधुसर्पिर्भ्यां भक्षितं स्याद्रसायनम् ॥ ११६ ॥

वचा, शुद्धगन्धक, सैन्धवलवण, त्रायमाणा, अम्लवेंत, सोंठ, मरिच, पीपल, चित्रक की जड़, वायविडङ्ग, पाढल, नोनिया, अमलतास की छाल, गजपीपल और विष, इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करके चाङ्गेरी, नागदोनी, काकनासा और त्रिफला इन के पृथक २ वा मिलित क्वाथ से सात वार भावित करके खरल कर

सुखा के शीशी में भरदें । यह चूर्ण प्रतिदिन शहद् और घृत के साथ सेवन करने से अत्यन्त रसायन गुण करता है ॥ ११५-११६ ॥

अथ जयागुडिकाख्यो विषकल्पः—

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च ।
मुस्ता विडङ्गं मूत्रेण पिष्टमाजेन पिण्डितम् ॥ ११७ ॥
नावनाञ्जनपानेषु गोमूत्रासृग्रसाञ्जनैः ।
जयेत्प्रयुक्तं विषमज्वरान्सघृतसाधितम् ॥ ११८ ॥

हलदी, नीम के पत्ते, पिप्पली, मरिच, नागर मोथा और वायविडङ्ग इन के समभाग गृहीत चूर्ण को बकरी के मूत्र के साथ घोट कर गोलियां बनालें । इन गोलियों को गोमूत्र के साथ घिस कर नस्य लेने से, बकरी के रक्त या लालचन्दन के क्वाथ के साथ घोट कर अञ्जन करने से तथा रसाञ्जन के साथ घोट कर पान करने से तथा घृत के साथ सेवन करने से विषमज्वर तथा अन्य प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं ॥ ११७-११८ ॥

अथ तत्तद्रोगेषु विषकल्पः—

सर्वजं समधुर्व्योषं गवां मूत्रेण शीतकम् ।
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तं वृषस्य वा ॥ ११९ ॥
क्षयं क्षीराश्वगन्धाभ्यां कासं श्वासं समाक्षिकम् ।
तक्रेण ग्रहणीरोगं कृच्छ्रं तण्डुलवारिणा ॥ १२० ॥
प्रमेहं मधुना गुल्मं शूलं च गुडवारिणा ।
पाण्डुशोफं गवां क्षीरेणाम्भसा त्रैफलेन वा ॥ १२१ ॥
गवां मूत्रेण कुष्ठानि क्षौद्रेणोदुम्बराह्वयम् ।
तक्रेण युक्तं चालेपाद्द्रुपामाविचर्चिकाः ॥ १२२ ॥
पीतमुष्णाम्भसा वायुं तुलस्यालेपनाद्ग्रहान् ।
समूत्रं विस्मृतिं नस्येनाञ्जनेन दृगामयान् ॥ १२३ ॥
स्यन्दाधिमन्थौ सस्तन्यमर्मकोपं सशोणितम् ।
सकासमदकाचादीन्सभृङ्गीदं निशान्धताम् ॥ १२४ ॥
रम्भाकन्दाम्भसा पुष्पं पिल्लं ताम्रमधूत्कटम् ।
सतूलमार्तिं दन्तानां गण्डूषेण विलेपनात् ॥ १२५ ॥

सगोमूत्रं शिरःशूलं सक्षौद्राम्लं क्षतव्रणान् ।
भृङ्गन्दरापचीग्रन्थीन्सक्षौद्रं सगुडं व्रणान् ॥ १२६ ॥
नारिकेराम्भसा लिङ्गविकारान्सेवनात्पुनः ।
प्रदरं भृङ्गसारेण नागपुष्पस्य सर्पिषा ॥ १२७ ॥
रम्भाकन्दाम्बुसर्पिर्भ्यां पीतं लिप्तमहेर्विषम् ।
गोतक्रनरमूत्राभ्यामथाऽऽखोर्वृश्चिकस्य तु ॥ १२८ ॥
सार्कक्षीरं विलेपेन लूतानां तु जलौदनम् ।
शतपत्ररसाज्याभ्यां विषं सर्वं च सर्वथा ॥ १२९ ॥
भस्मसूतं गुडक्षौद्रघृतैः सह निषेवितम् ।
ज्वरां जयेदतो नाम्ना गुडिकेयं जयोदिता ॥ १३० ॥

सोंठ, मरिच, पीपल इनके चूर्ण और शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से शुद्ध विष सर्वप्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है तथा गोमूत्र के साथ सेवन करने से शीतज्वर, चन्दन अथवा अडूसे के क्वाथ के साथ सेवन करने से रक्तपित्त, दुग्ध और असगन्ध के चूर्ण के साथ सेवन करने से क्षय, मधु के साथ सेवन करने से कास और श्वास, मट्ठे के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग, चांवल के धोवन के साथ सेवन करने से मूत्र कृच्छ्र, शहद् के साथ सेवन करने से प्रमेह, गुड के मन्दोष्णजल के साथ सेवन करने से गुल्म और शूल, गोदुग्ध अथवा त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग और सूजन, गोमूत्र के साथ सेवन करने से कुष्ठ, शहद् के साथ सेवन करने से उदुम्बर नामक कुष्ठ, मट्ठे के साथ पीस कर प्रलेप करने से दाद, पामा और विचर्चिका, गरम जल के साथ सेवन करने से वात रोग तथा तुलसी स्वरस में घोट कर प्रलेप करने से ग्रहों को नष्ट करता है। विष को गोमूत्र के साथ घिस कर नस्य लेने से विस्मृति रोग नष्ट हो जाता है तथा नेत्रों में अञ्जन की तरह लगाने से दृष्टिविकार नष्ट होते हैं। स्त्री के दुग्ध के साथ घोट कर विष के अञ्जन करने से स्यन्द ( नेत्रस्राव ) और अधिमन्थ नाम के नेत्ररोग तथा रक्तविकार और अर्म रोग नष्ट होते हैं। कसोंजी के स्वरस के साथ घोट कर अञ्जन लगाने से काच (मोतिया बिन्द) और भृङ्गराज के स्वरस से घोट कर नेत्रों में लगाने से रात्रि की अन्धता ( रतौंधी ) नष्ट हो जाती है। केले की जड़ या खम्भे के स्वरस में घोट कर विष के अञ्जन करने

से नेत्र की फूली तथा ताम्र के पात्र में शहद् के साथ घोट कर अञ्जन करने से पिल्लरोग नष्ट होता है। रूई या कपास के बीज के क्वाथ में विष को मिला कर कुल्ले करने या प्रलेप करने से दान्तों के शूल (पीडा) को नष्ट करता है। गोमूत्र के साथ पीस कर नस्य लेने से मस्तिष्कशूल दूर हो जाता है तथा शहद् अथवा किसी खटाई में पीस कर लेप करने से क्षत और व्रण नष्ट हो जाते हैं। शहद् के साथ मिला कर लगाने से भगन्दर अपची और ग्रन्थि रोग नष्ट करता है तथा गुड़ के साथ मिला कर लगाने से सर्व प्रकार के व्रणों का रोपण करता है। नारियल के पानी के साथ पीस कर प्रलेप करने से जननेन्द्रिय (लिङ्ग) के विकारों को तथा मृङ्गराज के स्वरस और नागकेशर चूर्ण के साथ विष मिला कर घृत को पकाकर सेवन करने से प्रदररोग को नष्ट करता है। केले की जड़ या खम्भ के स्वरस तथा घृत के साथ मिला कर विष को पीने से तथा काटे स्थान पर प्रलेप करने से सर्पविष उतर जाता है। गाय की छाछ और मनुष्य के मूत्र के साथ विष को मिलाकर प्रलेप करने से चूहे और बिच्छू के विष को नष्ट करता है। आक के दुग्ध में पीस कर प्रलेप करने से लूताविष नष्ट होता है। कमल के पत्तों का स्वरस और घृत के साथ विष को सेवन करने से सर्व प्रकार के विष निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। पारद की भस्म और विष को गुड शहद् और घृत के साथ मिला कर गुटिका बना लें। यह गुटिका जरा रोग को नष्ट करती है। इस लिये इसे जयोदिता गुटी कहते हैं॥ ११९-१३०॥

अथ रसायने विषकल्पः—

**कान्ताभ्रकशिलाधातुविषसूतकमाक्षिकम्।**
**शीलितं मधुसर्पिर्भ्यां व्याधिवार्धक्यमृत्युजित्॥ १३१॥**

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धशिलाजीत, शुद्धविष, पारद की भस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म इन्हें समभाग लेकर महीन पीस के शीशी में भर दें। १-३ रत्ती भर तक यह कल्प शहद् और घृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सर्वरोग तथा बुढौति को नष्ट कर देता है॥ १३१॥

अथ वाजीकरणे विषकल्पः—

**नष्टशुक्रः पयोद्राक्षाकपिकच्छुमहाविषम्।**
**शीलयेन्मधुसर्पिर्भ्यां सखर्जूरं सयष्टिकम्॥ १३२॥**

क्षीणवीर्य वाला मनुष्य प्रतिदिन द्राक्षा, कौञ्चबीज का चूर्ण, महाविष, खजूर और मुलेठी इन का समभाग चूर्ण बनाकर शहद् और घृत के साथ सेवन करे तथा ऊपर से दुग्ध का अनुपान करना चाहिए। इस विधि से क्षीण हुए शुक्र की वृद्धि होती है तथा शरीर पुष्ट होता है ॥ १३२ ॥

विषहरो योगः—

क्षीरक्षौद्रघृतैर्युक्तं पीतं हन्ति विषं विषम् ।
सनिन्दुवारतगरं मृतसञ्जीवनं विषम् ॥ १३३ ॥

शुद्धवत्सनाभविष को दुग्ध, शहद् और घृत के साथ मिलाकर पान करने से विष को नष्ट कर देता है, तथा निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, तगर चूर्ण और वत्सनाभविषचूर्ण इन्हें समभाग मिश्रित करके उचित मात्रा से घृतदुग्धादिक के साथ सेवन करने से मृत पुरुष को भी जीवित कर देता है ॥ १३३ ॥

अथ आखुविषे विषकल्पः—

शिरीषकुसुमं पत्रं विषमाखुविषापहम् ॥ १३४ ॥

शिरीष के पुष्प, पत्र तथा विष इन्हें समभाग से चूर्णित कर मधु के साथ सेवन करने से तथा जल से पीसकर प्रलेप करने से चूहे का विष नष्ट होजाता है ॥१३४॥

अथ सर्वविषे विषकल्पः—

देवदारुनतं मांसी द्रामिली बाकुची विषम् ।
कुष्ठं च पानलेपाभ्यां समस्तविषनाशनम् ॥ १३५ ॥

देवदार, तगर, जटामांसी, द्रामिली अर्थात् फिटकिरी या निर्विषी, बाकुची, वत्सनाभविष और कूठ इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके दुग्ध घृतादि के साथ पीने से तथा जल से पीसकर प्रलेप करने से समस्त विष नष्ट हो जाते हैं ॥ १३५ ॥

अथ संज्ञाजनने विषकल्पः—

मनःशिलाञ्जनाऽऽलैलासिन्दुवारामराह्वयम् ॥
सरक्तं कुङ्कुमविषं ध्मातं निःसञ्ज्ञबोधनम् ॥ १३६ ॥

शुद्धमैनसील, सुरमा, शुद्धहरताल, इलायची, निर्गुण्डी की जड़, देवदारु, लालचन्दन, केशर और विष, इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बनाकर नस्य करने से संज्ञाहीन ( मूर्च्छित ) मनुष्य भी जग जाता है ॥ १३६ ॥

अथ विषदाहे विकल्पः—

**दाहे विषोद्भवे लेपः सक्तुक्षीरघृतैर्युतः ॥ १३७ ॥**

विष के अतियोग से शरीर में जिस जगह जलन प्रतीत हो वहां पर सत्तू, दुग्ध और घृत के साथ विष ही का प्रलेप करने से दाह शान्त होजाता है ॥१३७॥

अथ मात्राऽमात्राभेदेन विषामृतयोर्गुणागुणौ—

**अमृतं सहसा युक्तं शीलितं विषमेव वा।**
**सात्म्याऽसात्म्यं विकाराय मृत्यवे च वरानने! ॥ १३८ ॥**

हे सुन्दर मुखवाली पार्वति ! सात्म्य और असात्म्य का विचार न करके सहसा अमृत अथवा विष के सेवन करने से नाना प्रकार के विकार अथवा मृत्यु हो जाती है ॥ १३८ ॥

अथ सहसा विषसेवने अष्टौ वेगाः—

**वेगाश्चाष्ट प्रजायन्ते सहसा विषशीलिनः।**
**प्रथमे त्वग्विकारः स्याद्द्वितीये वेपथुर्भवेत् ॥ १३९ ॥**
**दाहो वेगे तृतीये स्याच्चतुर्थे विकृतो भवेत्।**
**फेनोद्गतिः पञ्चमे स्यात्स्कन्धयोर्भङ्गता ततः ॥ १४० ॥**
**जाड्यता सप्तमे वेगे चाष्टमे मरणं ध्रुवम्।**
**एवं ज्ञात्वा वरारोहे! प्रतीकारं समाचरेत् ॥ १४१ ॥**

सहसा विष के सेवन करने वाले मनुष्य के शरीर में निम्नलिखित आठ वेग उत्पन्न होते हैं। विष के प्रथम वेग में त्वचा के विकार उत्पन्न होते हैं। द्वितीय वेग में शरीर के अन्दर कम्पन होने लगता है। तृतीय वेग में शरीर में जलन प्रतीत होती है। चतुर्थ वेग में, आंख, नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों में विकृतियां उत्पन्न होती हैं। पांचवें वेग में मुख और नासिका से फेन निकलने लगते हैं तथा दोनों स्कन्धों में भेदन होने लगता है। सातवें वेग में सारे शरीर की मांसपेशियों में जड़ता ( गत्यभाव ) हो जाती है तथा अन्त में आठवें वेग में मनुष्य की निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। इसलिये बुद्धिमान् वैद्य को चाहिए कि वेगों का विचार करके उपयुक्त चिकित्सा करें ॥ १३९–१४१ ॥

अथ विषसेवने संशोधनविधिः—

**पित्तान्तं वमनं कुर्यादामान्तं रेचनं चरेत् ॥ १४२ ॥**

जब तक पित्त निकलता रहे तब तक वमनकारी औषधियों का प्रयोग करना चाहिए, तथा आम के निकलने तक विरेचक औषधियों द्वारा विरेचन करना चाहिए। अथवा पित्त निकलने के पूर्व वमनक्रिया तथा आम निकलने के पूर्व विरेचन क्रिया का प्रयोग करना विषहरण के लिये श्रेष्ठ है ॥ १४२ ॥

अथ विषघ्नो गणः—

**जातिनीलीश्वरोसिन्धुकाकमाच्यद्रिकर्णिका ।**
**त्रिफला करवीरं च कुष्ठं मधुकजीरकम् ।**
**क्षीरिवृक्षत्वगेलेति विषघ्नोऽयं गणः स्मृतः ॥ १४३ ॥**

चमेली की जड़, नील वृक्ष की जड़, शिवलिङ्गी, निर्गुण्डी की जड़ या सैन्धव लवण, मकोय, गिरिकर्णिका ( विष्णुक्रान्ता ), त्रिफला, कनेर की जड़, कूठ, मुलेठी, जीरा, क्षीरीवृक्षों की छाल और इलायची ये औषधियां मिलकर विषनाशक गण कहलाती हैं। अर्थात् इनके चूर्ण, क्वाथ आदि का पीना लेप करना, अञ्जन करना, नस्य करना या इन से घृत पका कर सेवन करने से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है ॥ १४३ ॥

अथ गव्यघृतस्य विषघ्नत्वोक्तिः—

**विषघ्नं गोघृतं देवि ! माङ्गल्यं जीवनं स्मृतम् ॥ १४४ ॥**

हे पार्वति? गाय का घृत सर्वप्रकार के विषों का नष्ट करने वाला, मंगलकारी एवं जीवनदान करने वाला कहा गया है ॥ १४४ ॥

अथ विषस्य प्रयोगविधिः—

**अश्वगन्धां सगोजिह्वां त्रिशूलीं त्रिफलामपि ।**
**प्रथमं भक्षयित्वा च सेवयेद्गरलं ततः ॥ १४५ ॥**
**ब्रह्मचर्यं वरारोहे ! विषकाले समाचरेत् ।**
**पथ्यं स्वस्थमना भुक्त्वा तदा सिद्धिर्न संशयः ॥ १४६ ॥**

गाजुआ, असगन्ध, शिवलिङ्गी और त्रिफला इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बना कर प्रथम उसे सेवन करें तदनन्तर विष का सेवन करना चाहिए। हे सुन्दर मुख वाली पार्वति ? विष के सेवन करते समय ब्रह्मचर्य का धारण करना तथा पथ्यकारक भोजग करना और नित्य प्रति स्वस्थ मन रखना अर्थात् चिन्ता न करना इसविधि से आहारादिक नियमों के पालन करने से अवश्य ही सिद्धिप्राप्त होती १४५-१४६

अथ विषसेविनः पथ्यापथ्यविधिः—

गव्ये क्षीरघृते पेये शालयन्नमिदमेव च।
शीतलं च पिबेत्तोयं पित्तलानि च वर्जयेत् ॥ १४७ ॥
जाङ्गलानि च मांसानि छागलोहं च मद्गुरान्।
शर्करां माक्षिकं क्षीरं सेवनीयं प्रयत्नतः ॥
सेव्यं देवि! सदा पथ्यमपथ्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ १४८ ॥

विष सेवन करते समय गौ का दुग्ध और घृत का पान करना और साठी के चांवलों का भात बनाकर घृत दुग्ध से भोजन करना चाहिए। इन्हीं चांवलों का भोजन करें अन्य भोज्य पदार्थ वर्जित हैं। शीतल जल का पान करना चाहिए, पित्तकारक कोई भी पदार्थ सेवन न करें तथा जङ्गली पशुओं का मांस, बकरी का ताजा रुधिर, मद्गुर नामक मच्छली, चीनी, शहद्, दुग्ध इन पदार्थों को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करके सेवन करना श्रेष्ठ है। हे देवि सदा पथ्य ही का सेवन करें तथा अपथ्य पदार्थों को दूर ही से त्याग देना हितकर है ॥ १४७–१४८ ॥

अथ प्रयोज्यविषाणि—

उद्धृतं फलपाकेन नवं स्निग्धं घनं गुरु।
अव्यापन्नं विषहरैरवातातपशोषितम् ॥ १४९ ॥
रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते वाससि धारितम्।
सक्तुकं मुस्तकं शृङ्गी वालुकं सर्षपाह्वयम् ॥ १५० ॥
वत्सनाभं च कर्मण्यं कालकूटादिकं ततः।
न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं विषे तीक्ष्णे च चारिते ॥ १५१ ॥

वत्सनाभ, सक्तुक आदि विषों में से किसी को भी लेना हो तो उसके ठीक पकने पर स्निग्ध, घन और गुरू हो जाने पर जमीन से खोद लें तथा वह विष विषगुणनाशक जन्तु आदि से हीनवीर्य न हुआ हो और वायु तथा धूप से अत्यन्त सूख न गया हो तभी उसे औषधकर्म में प्रयुक्त करें। उसको जमीन से उखाड़ने के पश्चात् लाल सरसों के तैल से भीगे हुए शुद्ध वस्त्र में लपेट कर तीन दिन तक रखा रहने दें। पश्चात् उसको गोमूत्रादि में यथेष्ट शुद्धि करके सेवनकरें। सक्तुक, मुस्तक, शृङ्गी, वालुक, सर्षपक, वत्सनाभ और कालकूट आदि इन विषों के सेवन करते समय अन्य तीक्ष्ण पदार्थ सेवन नहीं करना चाहिए ॥ १४९–१५१ ॥

अथ तीक्ष्णविषातियुक्तविषयोश्चिकित्सा—

**अतिमात्रे च कर्मण्ये पेयं घृतमनन्तरम् ॥ १५२ ॥**
**सभार्ङ्गीदधिधूमोत्थ-सारिवा तण्डुलीयकम् ।**
**आगारधूमसञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैर्वा समन्वितम् ॥ १५३ ॥**
**लिह्याद्वा मधुसर्पिर्भ्यां चूर्णितामर्जुनत्वचम् ।**
**टङ्कणं मेघनादेन मधुना वाऽऽपि पल्लवान् ॥ १५४ ॥**

प्रयोग करने योग्य विष के अधिक मात्रा में उपयोग कर लेने पर अथवा तीक्ष्ण विष के प्रयोग करने पर उसके हानिकर प्रभाव को नष्ट करने के लिये घृत का अधिक प्रयोग करना चाहिए तथा भारङ्गी, दही, रसोई घर का धुआं, सारिवा और चोलाई इनके समान भाग चूर्ण को घृत और मधु के साथ सेवन करें, अथवा घरका धुआं, मंजीठ मुलेठी इन के समभाग चूर्णको शहद् और घृत के साथ सेवन करें, अथवा केवल अर्जुन की छाल का चूर्ण करके मधु और घृत के साथ सेवन करें या शुद्ध सुहागे को चोलाई के स्वरस और शहद् के साथ या तेजपात के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें ॥ १५२–१५४ ॥

अथ विषे मन्त्रादिक्रियावैफल्ये प्रतीकारः—

**विषे प्रतिविषं युञ्ज्यान्मन्त्रतन्त्रैरसिद्धयति ।**
**अतीते पञ्चमे वेगे सप्तमस्यानतिक्रमे ॥ १५५ ॥**

मन्त्र और तन्त्रों के प्रयोग से सिद्धि ( लाभ ) न होने पर विष के उपद्रव को शान्त करने के लिये पञ्चम वेग के पश्चात् तथा सप्तमवेग के व्यतीत होने के पूर्व ही प्रतिविष का प्रयोग करना चाहिए । अर्थात् स्थावर विष खाया हो तो जङ्गम और जङ्गम खाया हो तो स्थावर का प्रयोग करने से अवश्य ही लाभ होता है ॥ १५५ ॥

अथ सर्पदष्टे विषकल्पः—

**युञ्ज्यान्मूलविषं सर्पदष्टानां पानलेपयोः ॥ १५६ ॥**

सर्प से काटे हुए पुरुषों के दंश स्थान पर मूलविष जल से घिस कर लगाना चाहिए तथा उसी के चूर्ण को घृत के साथ पिलाना चाहिए ॥ १५६ ॥

अथ सर्पविषे मूलविषस्य मात्रा—

**चतुर्भिः षड्भिरष्टाभिर्हीनमध्योत्तमा यवैः।**
**मात्रां विषस्य मूलस्य प्रयुञ्जीत च सर्वदा ॥ १५७ ॥**

४ यव के बराबर हीन, ६ यव के बराबर मध्य और ८ यव के बराबर मूल विष की मात्रा उत्तम होती है। इस लिए विषवेग तथा रोगी की अवस्था का विचार करके हीन मध्य या उत्तम मात्रा का प्रयोग करना चाहिए ॥ १५७ ॥

अथ कीटविषे वृश्चिकविषे च मूलविषस्य मात्रा—

**दष्टस्य द्वौ यवौ कीटैस्तिलमात्रं तु वृश्चिकैः ॥ १५८ ॥**

कीटों के द्वारा काटे पुरुषों के लिये २ यव तथा बिच्छू के द्वारा काटे हुए पुरुषों के लिये तिल के बराबर मूलविष की मात्रा प्रयुक्त करनी चाहिए ॥१५८॥

अथ लूताविषे विषकल्पः—

**नैव त्वसृक्स्थे पाने तु लूतादष्टस्य नेष्यते ॥**
**व्रश्चया लेपयेद्दंशं तस्य ज्ञात्वा सुनिश्चितम् ॥ १५९ ॥**

लूता के काटने पर यदि उसका विष रक्त में न मिल गया हो अर्थात् तुरन्त पता लग जाने पर प्रतिविष का खाने के लिये प्रयोग नहीं करना चाहिए। किन्तु उसके दंश स्थान को निश्चित रूप से पहिचान कर तुरन्त विष का प्रलेप कर देना चाहिए ॥ १५९ ॥

अथ जयावटिकाख्यो विषकल्पः—

**वासामृताखदिरनिम्बविडङ्गपथ्या-**
**क्काथे विषत्रिकटुचित्रकलोहतिक्काः।**
**आवाप्य माषतुलिता वटिका प्रणीता,**
**क्षौद्रान्विता क्षपयति क्षयकुष्ठजातम् ॥ १६० ॥**

अडूसा, गिलोय, खैर सार, निम्ब की छाल या पञ्चाङ्ग और हरड इन का क्वाथ बना कर उससे विष, त्रिकटु, चित्रक की जड़, लौहभस्म और कुटकी इन के समभाग चूर्ण को खरल करके एक २ माशे भर की गोलियां बना कर शीशी में भर दें। ये गोलियां शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करते रहने से क्षय और समस्त कुष्ठों को नष्ट कर देती हैं ॥ १६० ॥

अथ विषसेवनस्य फलम्—

**शत्रुप्रयुक्ताद्विषतो गराद्वा लूताभुजङ्गाखुविषाज्जरायाः ।**
**अकालमृत्युग्रहपाप्मनोऽपि विषाशिनो नास्ति भयं नरस्य ॥१६१॥**

इतिश्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भटाचार्यस्यकृतौ रसरत्नसमुच्चये
विषकल्पो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

नित्यप्रति मात्रा पूर्वक विष सेवन करने वाले मनुष्य को शत्रुओं के द्वारा भोजनादियों में दिये हुए विष से, गरविष से, मकडी, सर्प और चूहों के विष से, बुढापे से, अकाल मरण और दुष्ट ग्रह आदियों से कुछ भी भय नहीं होता है ॥ १६१ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य-सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषा-टीकायां
विषकल्पो नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

## त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ रसकल्पः—

अथ वडवानलो विडः—

**गुञ्जासैन्धवयोश्चूर्णं देवदालीदलद्रवैः ।**
**टङ्कणं किंशुकरसैर्जम्बीराम्लेन चूर्णिकाम् ॥ १ ॥**
**मूलकक्षारगोमूत्रप्रसादेन च गन्धकम् ।**
**स्वर्जिकां भूखगव्योम शिग्रुमूलरसेन च ॥ २ ॥**
**शतशो भावयेत्सर्वं विडोऽयं वडवानलः ॥ ३ ॥**
**एवमग्निसहो लोहसंयुक्तः खलोऽथ वा ।**
**नियामकौषधसिताऽङ्कोलमूलरसादिभिः ॥ ४ ॥**
**वैक्रान्तप्रमुखैर्वापि रसेन्द्रः सह मर्दितः ।**
**यन्त्रस्थः क्रमवृद्धेन वह्निनोर्ध्वंन पाचितः ॥**
**मृतोऽधराग्निना तप्तोऽप्यक्षीणो नोर्ध्वमाश्रयेत् ॥ ५ ॥**

गुञ्जा ( रत्ती ) और सैन्धवलवण के समभाग चूर्ण को वन्दाल के स्वरस या क्वाथ से १०० वार भावित करें तथा सुहागे को पलाश की छाल के क्वाथ से, चुल्लिका लवण अर्थात् नौसादर को जम्बीरी निम्बू के रस से, गन्धक को मूली के क्षारोदक और गोमूत्र से अथवा गोमूत्र के अन्दर मूलीक्षार को घोल कर नितरने के पश्चात् छान कर लिये हुए स्वच्छ द्रव्य से तथा सज्जीखार, सौराष्ट्र मृत्तिका, स्वर्णमाक्षिक और व्योम अर्थात् अभ्रक इन चारों को एकत्र मिलाकर सहजन की जड़ के स्वरस या क्वाथ से सौ सौ वार भावित करके घोट कर सुखा लें। इस तरह इतने द्रव्यों के संयोग से यह वडवानल नामक विड तैय्यार होता है। इस विड के साथ पारद को पीस कर गोला बना के मूषा में बन्द कर तपाने से वह अग्नि सहन करने वाला हो जाता है। अर्थात् अग्नि के संयोग से वह उडता नहीं है। इस तरह के पारद को लौह से संयुक्त करके अथवा एकेले को या नियामक गण की औषधियों के रस या चीनी और अङ्कोल के जड़ के स्वरस के साथ अथवा वैक्रान्त आदि मुख्य २ रत्नों के साथ घोट कर यन्त्र ( मूषा आदि ) में रख कर या भूधरयन्त्र में बन्द करके धीरे २ क्रम से बढाई हुई (पारद सम्पुट के ऊपर) या लगाई हुई अग्नि से पाक करना चाहिए। फिर अधराग्नि अर्थात् पारद सम्पुट को बालुकायन्त्र में गाडकर यन्त्र को भट्टी पर चढा कर नीचे से अग्नि जलाने पर भी प्रतप्त हुआ पारद क्षीण नहीं होता है तथा ऊर्ध्वगति अर्थात् सम्पुट को भेद कर ऊपर आकाश में नहीं उडता है ॥ १-५ ॥

अथ रसमारणम्—

**अथाऽपामार्गतैलेन तथा पुष्करतण्डुलैः।**
**अथवा मलपूक्षीरभावितः श्वेतहिङ्गुना।**
**मर्दितः पुटपाकेन भस्मतां प्रतिपद्यते ॥ ६ ॥**

अपामार्ग के तैल और कमल के बीजों के क्वाथ से उक्त पारद को भावित करके अथवा काठ उदुम्बर के दुग्ध से सात दिन तक भावित करके सफेद हींग के कल्क के साथ पीस कर पुट पाक करने से पारद की भस्म हो जाती है ॥६॥

अथ रसमारणे प्रकारान्तरम्—

**गोमूत्रद्रोणपुष्पाभ्यां पाकाद्वा कान्तभाजने ॥ ७ ॥**

अथवा गोमूत्र के अन्दर द्रोणपुष्पी को घोट कर कल्क बना के उस कल्क

के साथ पारद को घोट कर या गोमूत्र और द्रोणपुष्पी इन दोनों में सात २ बार खरल कर के गोला बना कर कान्त लोह के पात्र में बन्द करके पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ७ ॥

प्रकारान्तरम्—

**कङ्गुणीकृष्णधुस्तूरतैलाभ्यां वा विमर्दितः ॥ ८ ॥**

अथवा कङ्गुनी के तैल और काले धत्तूरे के तैल के साथ खरल करके साधारण शराव सम्पुट में या कान्तलौहसम्पुट में बन्द करके पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरम्—

**मृणालतन्तुवर्तिस्थः पीतगन्धर्वतैलयुक् ।**
**ज्वलितो याममात्रं वा मृतवैक्रान्तसंयुतः ॥ ९ ॥**

कमल की नाल के तन्तुओं को पीले एरण्ड के तैल के साथ पीसकर कल्क बना लें । फिर इस कल्क में पारद और वैक्रान्तभस्म मिलाकर खरल करके तीन घण्टे तक अग्नि देने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरम्—

**वन्ध्याऽमृताकन्दगतः पचनाद्भूधरेऽथवा ॥ १० ॥**

अथवा पारद को मारक वर्ग की औषधियों के साथ खरल करके बांझककोड़े अथवा गिलोय के कन्द के भीतर भर कर चारों ओर मिट्टी के कीचड़ का लेप करके सुखाकर भूधर यन्त्र में बन्द करके पकाने से पारद की भस्म होजाती है ॥ १० ॥

प्रकारान्तरम्—

**चपलोपलनिर्गुण्डीरसाभ्यां रसकेन वा ॥ ११ ॥**
**वाराहीरसयुक्तेन चक्रमर्दरसेन वा ॥ १२ ॥**

चपल धातु और निर्गुण्डी के स्वरस के साथ घोटकर अथवा खर्पर भस्म और वाराही कन्द के रस या चक्रमर्द के रस के साथ घोटकर गोला बना के भूधर यन्त्र में पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ११-१२ ॥

प्रकारान्तरम्—

**गन्धपाषाणयुक्तेन वद्धं वा वाससा रसम् ॥**
**पचेद्गन्धकतैलेन यावदाखोटबन्धनम् ॥ १३ ॥**

गन्धक के चूर्ण को घृत में पीसकर कल्क बना के उसके मध्य में पारद को रखकर वस्त्र से पोट्टली बना लें । गन्धक के तैल से भरे हुए पात्र में दोलायन्त्र की विधि से पोट्टली को लटका कर अग्नि जलावें । खोट बन्धन होने तक तीव्र अग्नि देकर भस्म सिद्ध करलें ॥ १३ ॥

प्रकारान्तरम्—

गन्धाश्मपिष्टं द्विगुणगन्धं वा कान्तसम्पुटे ।
गन्धकाद्धा तृतीयांशं कान्तपर्पटमिश्रितम्
मूलिकामर्दितं लोहपर्पटान्तर्गतं धमेत् ॥ १४ ॥

पारद को समभाग गन्धक के साथ पीसकर कज्जली बनालें । फिर पारद से द्विगुण गन्धक लेकर पीसकर आधो कान्तलोह के सम्पुट में बिछाकर उसपर उपर्युक्त कज्जली रख कर फिर ऊपरसे शेष पिष्ट गन्धक रखकर सम्पुट को बन्द करके कपडमिट्टी करलें । सूखने पर गजपुट में पाक करने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ अथवा १ भाग पारद और ३ भाग गन्धक लेकर दोनों की कज्जली बनाकर मूलिका आदि मारकवर्ग की औषधियों के साथ खरल करके लोहे के सम्पुट में बन्द करके अग्नि में रखकर फूंक देने से पारदभस्म हो जाती है ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरम्—

यद्वा गन्धकपादेन मर्दितं मूलिकारसैः ।
लोहसम्पुटमध्यस्थमङ्गारैर्धमातमुत्खनेत् ॥
रोगोक्तयोगयुक्तोऽयं तत्तद्रोगहरो भवेत् ॥ १५ ॥

अथवा चतुर्थांश शुद्ध गन्धक के साथ पारद को घोटकर कज्जली बना के मूली के रस के साथ खरल करके लोहे के सम्पुट में बन्द करके अङ्गारों से धमन करके निकाल लें । इस प्रकार मारित यह पारद भिन्न२ रोगों में कहे हुए प्रयोगों के साथ मिलाकर सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १५ ॥

अथ पारदजारणम्—

पीतासवाम्लखात्सत्त्वं कान्तं वा तीक्ष्णमेव वा ।
चतुःषष्टितमांशेन प्रमितं क्षिप्तमल्पशः ॥ १६ ॥
तप्तखल्लेऽम्लयोगेन श्लक्ष्णवत्तां विमर्दनात् ।
भूर्जे क्षाराम्ललवणस्नुह्यर्कक्षीरलेपिते ॥ १७ ॥

वद्धं वस्त्रावृते स्विन्नमम्ले समरसे रसम् ।
धौतमुष्णारनालेन शुष्कमङ्गुलिमर्दितम् ॥ १८ ॥
पचेत्कच्छपयन्त्रस्थमष्टमांशविडान्वितम् ।
स्वप्रमाणो रसस्तिष्ठेज्जीर्णे ग्रासे त्वजीर्यति ॥ १९ ॥
पातयेदासवाम्लेन मर्दयेत्स्वेदयेच्च तम् ।
जारणे जारणे वह्निं ग्रासं च परिवर्धयेत् ॥
द्विगुणं योजयेदेवं सत्त्वमभ्रकसम्भवम् ॥ २० ॥

खट्टे आसव या काञ्जी के द्वारा धोये हुए अभ्रक से सत्त्व तथा कान्त या तीक्ष्ण लोहभस्म इन दोनों को मिला कर ६४ भाग ( ३२ भाग अभ्रक सत्त्व और ३२ भाग कान्त लौहभस्म ) लेकर तत खरल के अन्दर रखे हुए पारद में थोड़ी २ मात्रा से डाल कर घोटते रहें, तथा बीच २ में थोड़ी २ मात्रा से डाल कर घोटते रहें । तथा बीच २ में थोड़ी २ काञ्जी डाल कर मर्दन करें । इस तरह अभ्रक सत्त्व और कान्त लौहभस्म डाल कर काञ्जी के द्वारा घोटते २ जब पारद ( समस्त चूर्ण ) अत्यन्त स्निग्ध और महीन हो जाय तब उस को क्षार, अम्ल ( काञ्जी ), नीमक, थूहर तथा आक के दुग्ध इन पदार्थों के कल्क से लिप्त किये हुए भोजपत्र के ऊपर रख कर भोजपत्र की पोटली बनाकर ऊपर से एक शुद्ध वस्त्र से भी लपेट कर पोटली बांध लें । फिर एक घडे में काञ्जी और जल अथवा स्वेदल औषधियों का स्वरस तथा काञ्जी भर कर उक्त पोटली को दोलायन्त्र की विधि से औंधी लटका कर एक प्रहर तक पाचन करें । पश्चात् पोटली को निकाल कर गरम २ काञ्जी से पारद चूर्ण को धो कर सुखा लें । फिर इक्षुरी के तेल के साथ मर्दन कर के अथवा केवल जल से खरल कर के गोला बना कर एक सम्पुट में नीचे ऊपर अष्टमांश पूर्वोक्त वडवानल नामक विड बिच्छाकर उसके मध्य में पारद के गोले को रख कर बन्द करके कपड़मिट्टी कर सुखा लें । इस सम्पुट को कच्छपयन्त्र में रख कर पाक करें । इस प्रकार पाक करने से पारद की मात्रा ( तौल ) की वृद्धि न हुई हो तब उसे अच्छी प्रकार जीर्ण तथा अभ्रकादिक का ठीक ग्रास किये हुए समझना चाहिए । यदि उसका तौल बढ जाय तब ग्रास का ठीक जारण नहीं हुआ है ऐसा जानकर ऊर्ध्वपातन कर्म कर के आसवाम्ल से घोट कर फिर पूर्ववत् स्वेदनादि क्रिया करनी चाहिए ।

प्रत्येक वार जारण करते समय अभ्रक सत्त्व पूर्व की अपेक्षा द्विगुण तथा वह्नि भी दुगुनी देनी चाहिए। इस तरह प्राप्त पदार्थ (अ कादिक) तथा वह्नि को क्रमशः बढाते रहना चाहिए। प्रायः ७ वार जारण करने से पारद की सिद्धि हो जाती है ॥ १६-२० ॥

अथ रसजारणे निषिद्धद्रव्याणि—

**पूतिलोहं विषं मूत्रं रसकं गन्धकत्रयम्।**
**न युञ्ज्याज्जारणे सूतस्तज्जीर्णैः स्फोटकुष्ठकृत् ॥ २१ ॥**

पारद के जारण कर्म में पूति लौह अर्थात् नाग और वङ्ग, विष, गोमूत्र, खर्पर और श्वेत, रक्त, पीत तीन प्रकार का गन्धक अथवा गन्धक, हरताल और मैन सील इन द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इन द्रव्यों के द्वारा जारण किया हुआ पारा सेवन करने से शरीर में फोड़े फुन्सियां और कुष्ठ को उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥

अथ क्षयादौ रसकल्पः—

**कुर्याल्लोहमयीं मूषामायामे द्वादशाङ्गुलाम्।**
**मर्दितं हेमवाराहीगृहकन्यारसैः रसम् ॥ २२ ॥**
**रसोनपिण्डे दधतां लोहमय्या सुरन्ध्रया।**
**निर्गुण्डीपत्रनिर्यासपीतपादसुगन्धया ॥ २३ ॥**
**गर्भमूषिकया युक्तां सचक्रां सपिधानकाम्।**
**लम्भितां जलपात्रस्थखर्परद्वारि पाचयेत् ॥ २४ ॥**
**ऊर्ध्वं वनोत्पलैश्चिञ्चैरङ्गारैः खादिरैरधः।**
**एवमष्टगुणे जीर्णे गन्धके क्षयकुष्ठजित ॥ २५ ॥**

बारह अङ्गुल लम्बी लौहे की मूषा बनालें। फिर पारद को पीले धत्तूरे, वाराहीकन्द और घृत कुमारी के गूदे के साथ क्रमशः खरल कर के गोला बना कर उस गोले के चारों ओर एक २ अङ्गुल मोटा लहसून की गिरी के कल्क का प्रलेप कर के उपर्युक्त मूषा में भर दें। फिर निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस से भावित किये हुए पारदापेक्षया चतुर्थांश गन्धक कल्क से भरी हुई छिद्र वाली छोटी मूषा लेकर बड़ी मूषा को भीतर छिद्र वाले मुख की तरफ से घुसा कर इस के मुख को चक्रयुक्त ( पेचदार ) ढक्कन से बन्द करदें। फिर जल से भरे हुए लोहे के

कण्डाल या कड़ाह में एक छिद्रदार मिट्टी का पात्र रख कर उस में मूषा को रख के ऊपर से एक दूसरे पात्र से ढक दें। इस तरह यन्त्र रचना करने के पश्चात् पात्र के ऊपर सूखे जङ्गली कण्डों की आंच लगावें तथा भट्टी के ऊपर स्थित कड़ाह के नीचे खैर की लकड़ी जलावें। जब गन्धक ठीक तरह से जारित हो जाय तब यन्त्र की मूषा में चौथाई गन्धक डाल कर उपर्युक्त विधि से पाक करें। इस तरह पारद से अठ गुने गन्धक का जारण करने के पश्चात् सिद्ध भस्म को ग्रहण कर उचित मात्रा से प्रयुक्त करने से क्षय और कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं॥ २२–२५॥

अथ वज्रपञ्जररसः—

**क्षेत्रीकरणमित्युक्तं वज्रभस्मसमं रसम्।**
**हंसपादीरसैर्घृष्टं विपचेत्तत्पुटानले॥ २६॥**
**तुल्यमन्यं रसं तेन पूर्ववन्मर्दितं पचेत्।**
**यावच्छुक्लं चतुर्थांशमानेन रसभस्मना॥ २७॥**
**अम्लपिष्टेन सौवर्णं पत्रमम्लेन मारयेत्।**
**राजिकार्धार्धमारभ्य यावन्माषं विवर्धितः॥ २८॥**
**चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थतीक्ष्णासौवर्चलैः सह।**
**सेवितः पलपर्यन्तं रसोऽयं वज्रपञ्जरः॥**
**शरण्यः परिभूतानां व्याधिवार्धकमृत्युभिः॥ २९॥**

वज्र भस्म अर्थात् हीरे की भस्म और पारद भस्म को समभाग मिश्रित कर सेवन करने से देह में क्षेत्री करण अर्थात् रस वीर्यादिक के सहन करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अथवा रस सेवन करने के पूर्व वमन, विरेचन, स्वेदनादि कर्म द्वारा शरीर शुद्धि कर के रोग नाशक औषधियों से शरीर को निरोग करने को क्षेत्रीकरण कहते हैं अर्थात् इस प्रकार से शुद्ध और रोग रहित शरीर रसायन सेवन करने के लिये उत्तम क्षेत्र बन जाता है। हीरे की भस्म और शुद्ध पारद समभाग लेकर कज्जली कर के हंसपादी के स्वरस के साथ सात दिन तक खरल कर के गोला बना कर मूषादि में बन्द कर के पुट पाक करें। फिर पक्व रस को निकाल कर पूर्वोक्त हंसपादी के स्वरस के साथ खरल कर के पुट में पाक करें। इस तरह पारद की भस्म बनाकर ४ भाग

लें तथा यथाशक्ति कण्टकवेधी शुद्ध स्वर्ण पत्र लेकर दोनों को ३ दिन तक किसी खटाई ( काञ्जी आदि ) के साथ घोट कर सम्पुट में बन्द करके भूधर यन्त्र में पकावें। इस तरह कुछ पुट देने से वज्रपञ्जर रस तैयार हो जाता है। इस रस को प्रथम दिन राई के आधे से आधे अर्थात् चौथाई प्रमाण से सेवन कराना चाहिए। तथा दूसरे दिन आधी राई, तीसरे दिन तीन राई, चौथे दिन चार राई के बराबर सेवन करें। फिर पांचवें दिन से प्रति दिन एक २ राई १ माशे भर पूर्ण होने तक बढानी चाहिए। इस प्रकार इस रस को चित्रक, आदी, सैन्धव लवण, मरिच और काले नमक इनके मिश्रित चूर्ण तथा मधु के साथ सेवन करना चाहिए। इस अनुपान के साथ १ पल भर रस पूर्ण होने तक सेवन करने से मनुष्यों को समस्त व्याधियां, वृद्धावस्था और अकाल मृत्यु से रक्षा करता है ॥ २६—२९॥

अथ पञ्चामृतरसः—

**हेममाक्षिककान्ताभ्रवज्रभस्म प्रवेशयेत्।**
**रसे सहेम्नि सप्ताहं मूलिकारसमर्दिताम् ॥ ३० ॥**
**तां पिष्टीं यन्त्रयोगेन पचेत्पञ्चामृताह्वयः।**
**रसोऽयं मधुसर्पिर्भ्यां युक्तः पूर्वाऽधिको गुणैः ॥ ३१ ॥**

स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म और हीरे की भस्म और शुद्ध पारद सम भाग ले कर प्रथम पारद और स्वर्णभस्म को अत्यन्त खरल करके उन में शेष पदार्थ मिलाकर सात दिन तक मूली के स्वरस के साथ घोट कर गोला बना कर सुखा के भूधर यन्त्र में बन्द कर के पाक करें। यह पञ्चामृत रस है इसको उचित मात्रा से शहद और घृत के साथ मिला कर प्रति दिन सेवन करने से पूर्वोक्त वज्रपञ्जर रस से भी अधिक लाभ करता है ॥३०-३१॥

अथ मृतसंजीवनीवटी—

**कान्ताभ्रताप्यसत्त्वानां वज्रहेम्नो रसस्य च।**
**सप्ताहमम्लपिष्टानां गोलके लेपितेऽन्वहम् ॥ ३२ ॥**
**गोजिह्वा चायसी पथ्या निर्गुण्डी मधु सैन्धवम्।**
**स्विन्ने भूमध्ययन्त्रस्थे पक्षात्कठिनतां गते ॥ ३३ ॥**
**यवचिञ्चापलाशाक्षराजिकार्पासतण्डुलैः।**

आवर्तितान्तर्लिप्तायां मूषायां खदिराग्निना ॥ ३४ ॥
टङ्कणं श्वेतकाचञ्च दत्त्वा दत्त्वा विशोषिते ।
मूषायां विडयोगेन समांशं हेम जारयेत् ॥ ३५ ॥
सम्वत्सरं मुखधृता मृतसञ्जीवनी मता ।
गुटिका शुक्रस्तम्भं च कुरुते वार्धमृत्युजित् ॥ ३६ ॥

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, हीरे की भस्म, सुवर्ण भस्म और शुद्ध पारद इन सब को सम भाग लेकर एक सप्ताह तक काञ्जी के साथ खरल कर के गोला बना लें । फिर गाजुआ, काकनासा, हरड़, निर्गुण्डी की जड़, शहद् और सैन्धव लवण इन सब को पीस कर कल्क बना के उक्त गोले पर दो २ अङ्गुल मोटा इस कल्क का प्रलेप करके सुखा कर भूधर यन्त्र में पकावें । इस तरह प्रति दिन गोले के ऊपर उक्त कल्क का प्रलेप कर के भूधर यन्त्र में पकाते रहें । इस तरह पन्द्रह दिन तक पाक करने के पश्चात् क्षीरनी की जड़, पलाश का क्षार, बहेडे का चूर्ण, राई और कपास के बीज इनको जल से पीसकर कल्क करलें । फिर इस कल्क को एक मूषा के भीतर लीप कर उसमें उपर्युक्त गोले को रख कर बालुका यन्त्र में गाड दें, तथा भट्टी के नीचे खैर की लकड़ी जला कर धोंकनी से अग्नि को प्रदीप्त करें । पाक करते समय मूषा के भीतर थोड़ा २ सुहागा और श्वेत कचिया नीम या सोरा डाल २ कर पकावें । फिर उसी मूषा में वडवानल विड डाल कर पारद के समान भाग शुद्ध स्वर्ण देकर जारण करना चाहिए । स्वाङ्ग शीतल मूषा के भीतर से जारित औषध को निकाल कर खरल में महीन घोट कर छोटी २ गोलियां बना कर शीशी में भर दें । यह मृतसञ्जीवनी गुटिका कहलाती है । इन गोलियों को उचित मात्रा से वर्ष भर सेवन करने से या मुख में रख कर चूसने से शुक्र का स्तम्भन करती है तथा जरा और अकाल मृत्यु का हरण करती है ॥ ३२–३६ ॥

अथ महानीलतैलम्—

वटप्ररोहं पिण्डीतमूलत्वक्कृष्णसैर्यकैः ।
केतकीस्तनभृङ्गायः शकलीत्रिफलार्जुनैः ॥ ३७ ॥
पृथग्दशपलैः सार्धं चतुर्द्रोणेष्वपां पचेत् ।
अष्टभागावशिष्टेऽस्मिन्भृङ्गस्वरसपेशिते ॥ ३८ ॥

**त्रिफलानीलयष्ट्यचूर्णं पृथग्द्विपलिकैर्युतम्।**
**तैलाढकं समक्षीरं पक्त्वा मृतरसान्वितम् ॥ ३९ ॥**
**महानीलं सुभाण्डस्थं मण्डलं धान्यमध्यगम्।**
**अभ्यङ्गविधियोगेन केशानां रञ्जनं परम् ॥ ४० ॥**

वट के अङ्कुर, मैनफल वृक्ष के जड़ की छाल, काले पुष्पों वाली कटसरैया, केवड़े के पुष्प का दुग्ध या स्वरस, भृङ्गराज, लौहचूर्ण, त्रिफला और अर्जुन वृक्ष की छाल इनमें से प्रत्येक को दश २ पल लेकर चार द्रोण जल में पकाकर अष्टमांश शेष रख के उतार कर छान लें। पश्चात् त्रिफला चूर्ण, नील वृक्ष की जड़ का चूर्ण और लौहचूर्ण इन्हें दो दो पल भर लेकर भृङ्गराज के स्वरस से खरल कर के उपर्युक्त क्वाथ में मिला दें। फिर उसी क्वाथ में १ आढक तिल तैल तथा १ आढक दुग्ध मिला कर पाक करें। तैल पाक हो जाने पर नीचे उतार के छान कर १ पल भर पारद भस्म मिलाकर चिकने मिट्टी के पात्र में भरकर मुख बन्द करके ४० दिन तक धान के ढेर ( समूह ) में गाड दें। यह तैल शिर में लगाने से केशों को अत्यन्त काले कर देता है ॥ ३७-४० ॥

अथ ज्वरे रसकल्पः—

**समुस्तपर्पटक्काथो भस्मसूतो हरेज्ज्वरम् ॥ ४१ ॥**

नागर मोथे और पित्त पापड़े के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से ज्वर को दूर करती है ॥ ४१ ॥

अथ त्रिदोषज्वरे—

**दशमूलकषायेण पिप्पल्या च समस्तजम् ॥ ४२ ॥**

पारद भस्म को पिप्पली के चूर्ण के साथ मिला कर दशमूलक्वाथ के अनुपान के साथ सेवन करने से त्रिदोष ज्वर नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

अथ रक्तपित्ते—

**माक्षिकाऽभयया वासापिप्पल्या वाऽसृपित्तनुत् ॥ ४३ ॥**

पारदभस्म तथा हरड़ के चूर्ण को मधु के साथ मिला कर अथवा वासा ( अडूसे ) का स्वरस और पिप्पली के चूर्ण के साथ पारदभस्म सेवन करने से रक्तपित्त को नष्ट करती है ॥ ४३ ॥

अथ कासे—

**कण्टकारीकषायेण पिप्पल्या च स कासजित् ॥ ४४ ॥**

पारद भस्म और पिप्पली चूर्ण को कटेरी के क्वाथ के साथ पीने से खांसी नष्ट हो जाती है ॥ ४४ ॥

अथ क्षये—

**अजायाः क्षीरसिद्धेन कणायुक्तेन सर्पिषा ॥**
**त्रिफलागन्धकव्योषगुडैर्वा क्षपयेत्क्षयम् ॥ ४५ ॥**

पिप्पली को बकरी के दुग्ध के साथ पीस कर चौगुने घृत तथा चौगुने ही बकरी के दुग्ध में मिला कर चौगुना पानी डाल के घृत सिद्ध करलें। इस घृत के साथ अथवा त्रिफला, शुद्ध गन्धक, त्रिकटु और गुड़ के सम भाग मिश्रित महीन चूर्ण के साथ पारदभस्म सेवन करने से क्षयरोग को नष्ट करती है ॥४५॥

अथ हिक्कायाम्—

**हिक्कां निहन्ति रुचकबीजपूराम्लमाक्षिकैः ॥ ४६ ॥**

काला नमक, बिजोरे निम्बू का रस और शहद् के साथ पारदभस्म सेवन करने से हिक्का रोग को नष्ट करती है ॥ ४६ ॥

अथ छर्दिदाहयोः—

**छर्दिदाहौ मधुसिताला जामुद्गसिताम्बुभिः ॥ ४७ ॥**

शहद्, चीनी और लावे के चूर्ण को मूंग की दाल के क्वाथ या यूष में मिला कर अथवा केवल चीनी के पानी के साथ पारदभस्म सेवन करने से वमन और शरीर की जलन को दूर करती है ॥ ४७ ॥

अथार्शसि—

**अर्शांसि तैलसिन्धूत्थपुटपाचितसूरणैः ॥ ४८ ॥**

पारद भस्म को पुट से पकाए हुए सूरण कन्द के चूर्ण और कड़ुए तैल तथा सैन्धव लवण चूर्ण के साथ मिला कर सेवन करने से अर्श रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

अथातिसारे विसूच्याञ्च—

**त्वक्पल्लवैः कषायाणां श्रृतेनोदश्विदम्भसा ।**
**क्षीरिण्या वाप्यतीसारं ; विसूचीं कणहिङ्गुना ॥ ४९ ॥**

दुग्ध वाले वृक्षों ( वट आदि ) की छाल और पत्तों के द्वारा श्रृत शीत क्वाथ के साथ, अथवा उदश्विज्जल ( दही और जल समभाग मिलाने से बनता है ) के साथ अथवा खिरनी के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से

अतीसार को नष्ट करती है तथा पिप्पली चूर्ण और घृत भर्जित होङ्ग के साथ सेवन करने से विसूचिका को नष्ट करती है ॥ ४९ ॥

अथ अजीर्णे—

**अजीर्णं काञ्जिकैरण्डक्वाथपथ्यावलेहतः ॥ ५० ॥**

पारद भस्म को काञ्जी या एरण्ड की जड़ के क्वाथ अथवा हरड के अवलेह के साथ सेवन करने से अजीर्ण नष्ट होता है ॥ ५० ॥

अथ प्रवाहिकायाम्—

**कषायपल्लवैः पक्वं बालबिल्वं सनागरम् ।**
**सगुडं सरसं हन्ति बिम्बिसीं दारुणामपि ॥**
**बिल्वकर्कटिकागर्भं मसूरक्वथिताम्बु वा ॥ ५१ ॥**

कसैले वृक्ष अर्थात् जामुन, दाडिम, आदि के पत्तों की लुगदी बनाकर उस में पका हुआ बिल्वफल और आदी रखकर गोला बना के उन्ही पत्तों से लपेट कर कपडमिट्टी करके पुटपाक करें। स्वाङ्गशीतल होने पर मिट्टी हटा के भीतरी गोले का महीन चूर्ण बनाकर उसमें गुड़ और पारद की भस्म मिलाकर सेवन करने से भयङ्कर प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाता है। अथवा बिल्व फल का गूदा और ककडी का मध्य भाग इन दोनों को मसूर की दाल के यूष में मिला कर इस यूष के साथ पारदभस्म सेवन करने से उक्त रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रे—

**कृच्छ्रं मूतरसक्षीरक्षीरिणीक्षुरमाक्षिकैः ॥ ५२ ॥**

पारद की भस्म को दुग्ध, खिरनी की जड़ के चूर्ण, तालमखाने के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५२ ॥

अथ मेहेषु—

**पारदभस्मशिलाजतुकृष्णालोहमलत्रिफलाकुलिबीजम् ।**
**ताप्यनिशारजतोपलकान्तव्योषरजः खपुरश्च कपित्थात्॥५३॥**
**सर्वमिदं परिचूर्ण्य समांशं भावितभृङ्गरसं दिवसादौ ।**
**विंशतिवारमिदं मधुलीढं विंशतिमेहहरं हरिद्वष्टम् ॥ ५४ ॥**

पारद की भस्म, शुद्ध शिलाजीत, पीपलचूर्ण, लौहभस्म या मण्डूरभस्म, त्रिफलाचूर्ण, गन्धनाकुली के बीजों का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हरिद्राचूर्ण, चांदी

की भस्म, सूर्यकान्त मणि की भस्म, त्रिकटु चूर्ण, अभ्रकभस्म, शुद्धगूगल और कैथ का गूदा इन सब को सम भाग लेकर एकत्र महीन पीस के २० वार भांगरे के स्वरस से भावित करके घोट कर शुष्क चूर्ण बना के शीशी में भर दें। इस चूर्ण को प्रतिदिन शहद् के साथ सेवन करने से बीस प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। यह हरि नामक आचार्य का अनुभव किया हुआ योग है॥५३-५४॥

अथ प्लीहादौ—

**न्यग्रोधाद्यसनाद्यैर्वा क्वाथयुक्तो मृतो रसः।**
**पञ्चाल्लशुनगोमूत्रैः प्लीहगुल्मनिबर्हणः॥ ५५॥**

न्यग्रोधादिगण और असनादि गण की औषधियों के क्वाथ के साथ पारद की भस्म को सेवन करके ऊपर से लहसन कल्क मिश्रित गोमूत्र के पीने से प्लीह वृद्धि और गुल्म रोग नष्ट हो जाता है॥ ५५॥

अथ पक्तिशूले—

**कलाययूषशम्बूकक्षाराभ्यां पङ्क्तिशूलनुत्॥ ५६॥**

पारद भस्म को मटर के यूष और शङ्ख भस्म के साथ मिलाकर सेवन करने से परिणाम शूल नष्ट हो जाता है॥ ५६॥

अथ आमशूले—

**सव्यूषणतिलक्काथेनामशूलस्य नाशनः॥ ५७॥**

सोंठ, मरिच, पीपल और तिल के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से आमशूल नष्ट हो जाता है॥ ५७॥

अथ उदरे—

**नवनीतसुधाक्षारभावितोऽभययोदरे॥ ५८॥**

मक्खन और थूहर के क्षार से हरड के चूर्ण को भावित करके उसके साथ पारदभस्म सेवन करने से उदर रोगों को नष्ट करती है॥ ५८॥

अथ कामलायाम्—

**स हितः सहितो यष्टीवारिणा कामलामये॥ ५९॥**

मुलेठी के क्वाथ में पारद भस्म मिलाकर प्रतिदिन पीते रहने से कमलारोग में लाभ होता है॥ ५९॥

अथ पाण्ड्वादौ—

**फलत्रिकादिक्वाथेन पाण्डुशोफे सकामले ॥ ६० ॥**

त्रिफला के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से पाण्डुरोग, शोथ रोग और कामला में लाभ होता है ॥ ६० ॥

अथ शोथे—

**शोफे सविश्वभूनिम्बक्वाथगोमूत्रसंयुतः।**
**निम्बामलककङ्कुष्ठैः प्रशस्तः स मृतो रसः ॥ ६१ ॥**

सोंठ और चिरायते के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पारद भस्म सेवन करके ऊपर से क्वाथ पीने से अथवा नीम की छाल, आंवले और कंकुष्ठ के चूर्ण के साथ पारदभस्म सेवन करने से शोथरोग में लाभ होता है ॥ ६१ ॥

अथ कुष्ठे

**रसोनराजिकावह्निनीलिमार्कवपल्लवैः।**
**तुल्यं भल्लातकं क्षिप्त्वा क्षीरे तैलं विपाचितम् ॥ ६२ ॥**
**भूशिरीषसुपर्णादयोः पञ्चाङ्गं माक्षिकं घृतम्।**
**रसं च लीढ्वा कुष्ठार्तो लिम्पेत्त्रिकटुना तनुम् ॥**
**रसगन्धकपिष्ट्या वा कटुतैलाभियुक्तया ॥ ६३ ॥**
**कर्पूरवल्लीसहनिम्बतैलपातालमूलीरसभावितेन।**
**रसेन लिह्यात्सकलं हठं वा विचूर्णितं पुष्परसं स कुष्ठी ॥६४॥**

लहसून की गिरी, राई, चित्रक, नीली वृक्ष की छाल, भृङ्गराज के पत्ते ये सब समभाग तथा इन के बराबर शुद्ध मिलावां लेकर सब को कूट पीस कर जल से कल्क बनाकर चौगुने दुग्ध में मिलाकर तैल पका लें। इस तैल में पारद भस्म मिलाकर अभ्यङ्ग करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। अथवा शिरीष और पाताल गरूडी अथवा नाग केशर इनका पञ्चाङ्ग लेकर कूट पीस के शीशी में भर दें। इस चूर्ण और पारद भस्म को शहद और घृत में मिला कर कुष्ठार्त मनुष्य सेवन करके त्रिकटु के कल्क से अपने शरीर पर लेपकरें, अथवा कडुए तैल में गन्धक चूर्ण और पारद भस्म मिलाके शरीर पर लेप करें। अथवा कर्पूर, आकाशवल्ली, अर्थात् अमरवेल अथवा कर्पूर लता, सहचर, निम्ब का तैल और पाताल गरूडी के स्वरस से भावित किये हुए मृत पारद के साथ रोहिषतृण का चूर्ण और

जल कुम्भी का चूर्ण मिला कर सबको पुष्परस अर्थात् शहद् में घोट के कुष्ठी सेवन करे ॥ ६२-६४ ॥

अथ कुष्ठे रसकल्पः—

फेनिलफलाहिदर्वीकन्दरसं खादतोऽनुदिनम् ।
फेनिलमूलोद्वर्तनमाचरतोऽपि च कृतः कुष्ठम् ॥ ६५ ॥

रीठों की गिरी और नागदोन कन्द दोनों के चूर्ण के साथ समभाग पारद भस्म मिलाकर प्रतिदिन शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से तथा रीठे की जड़ के कल्क का शरीर पर उबटन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ६५ ॥

अथ किलासे रसकल्पः—

चित्रकवानरिवायसीतुण्डी वाकुचिका द्विगुणाः परिपीताः ।
मूत्रयुता मृतसूतसमेतास्तक्रभुजः शमयन्ति किलासम् ॥६६॥

चित्रक की जड़, कौंच के बीज, काकनासा, बिम्बीफल और वाकुची इन्हें समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बना लें । फिर पारदभस्म २ रत्ती तथा उपर्युक्त चूर्ण ४ रत्ती भर लेकर गोमूत्र में घोलकर प्रतिदिन पीवें तथा मट्ठे के साथ भोजन करें । इस तरह इस योग के सेवन करने से किलासकुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥६६॥

अथ श्वित्रे रसकल्पः—

द्रुतगगनमरीचीवाकुचीतालपत्र्यौ
सलिलरिपुनकुल्यौ कृष्णशुण्ठ्यौ सभृङ्गम् ।
मरिचमसितसोमश्चित्रकाङ्कोलबीजं
वरतिलशशिलेखे त्वक् च शाखोटकस्य ॥ ६७ ॥
फलत्रयं च तत्सर्वं मृतसूतसमन्वितम् ।
क्षीराज्यवर्त्तनो जग्ध्वा श्वित्रमाशु निवर्तयेत् ॥ ६८ ॥

अभ्रकसत्त्व, श्वेत मरुआ या सूर्यकान्त मणि की भस्म, वाकुची चू०, तालमूली चू०, भिलावें का चू०, नकुलकन्द, पिप्पली चू०, सोंठ का चू०, भृङ्गराज चू०, मरिचों का चू०, धवका चू० कर्पूर, चित्रककी जड़ का चू०, अङ्कोलबीज, काले तिलों का चू०, गिलोय का सत्त्व, शाखोट वृक्ष की छाल का चू०, त्रिफला चू० और पारदभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन कर के शीशी में भर दें । प्रतिदिन एक२ माशे भर इस चूर्ण को मधु के साथ सेवन करके दुग्ध के

साथ पथ्य भोजन कर सेवन करने से श्वित्र जल्दी ही नष्ट हो जाता है ॥ ६७-६८॥

अथ क्रिमौ रसकल्पः—

**सनिम्बपल्लवक्षौद्रः कृमीन्हन्ति मृतो रसः ॥ ६९ ॥**

पारदभस्म नीम के पत्तों के चूर्ण और शहद् के साथ सेवन करने से कृमियों को नष्ट करती है ॥ ६९ ॥

अथ वातरोगे रसकल्पः—

**पीतो लशुनसिद्धेन तैलेनानिलजान्गदान् ॥ ७० ॥**

लहसून के कल्क से सिद्ध किये हुए तैल के साथ पारदभस्म सेवन करने से वातजन्य रोगों को नष्ट कर देती है ॥ ७० ॥

अथ गृध्रस्यां रसकल्पः—

**विश्वैरण्डश्रुतक्षीरसहितो गृध्रसीं जयेत् ॥ ७१ ॥**

सोंठ और एरण्ड की जड के कल्क से सिद्ध किये हुए दुग्ध के साथ पारदभस्म सेवन करने से गृध्रसी रोग को नष्ट करती है ॥ ७१ ॥

अथ वातरक्ते विषकल्पः—

**गुडाभयागुडूच्यम्बुयुक्तः पवनशोणितम् ॥ ७२ ॥**

गुड, हरड का चूर्ण और गिलोय के स्वरस के साथ पारदभस्म सेवन करने से वातरक्त को नष्ट करती है ॥ ७२ ॥

अथ स्थौल्ये रसकल्पः—

**त्रिकटुत्रिफलावेल्लैः समांशो गुग्गुलुर्जयेत् ।**
**वातारितैलसंयुक्तः स्थौल्यं भस्मरसान्वितः ॥ ७३ ॥**

त्रिकटु, त्रिफला और वायविडङ्ग के चूर्ण के बराबर शुद्ध गूगल लेकर उस में पारदभस्म मिला के महीन पीसकर एरण्ड के तैल के साथ मिला के प्रतिदिन सेवन करने से स्थौल्य रोग को नष्ट करती है ॥ ७३ ॥

अथ कार्श्ये रसकल्पः—

**मधूदकाभ्यां युक्तो वा, कार्श्यं तु शर्करान्वितः ॥ ७४ ॥**

अथवा शहद् और जल के घोल के साथ पारदभस्म सेवन करने से स्थौल्य रोग नष्ट होजाता है तथा चीनी के साथ सेवन करनेसे कृशरोग कोनष्टकरती है॥७४॥

अथापस्मारादौ रसकल्पः—

**हिङ्गुसौवर्चलव्योषमूत्रसिद्धेन सर्पिषा ॥**
**रसो हन्यादपस्मारमुन्मादं च तथाञ्जनात् ॥ ७५ ॥**

हींङ, सोंचल नीमक, त्रिकटु चूर्ण इनके कल्क और गोमूत्र से सिद्ध किये हुए घृत के साथ पारदभस्म सेवन करने से अपस्मार तथा इसी योग के अञ्जन करने से उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

अपस्मारादौ अन्ययोगः—

**मधूककुनटीतार्क्ष्यपारावतमलैर्युतः ॥ ७६ ॥**

महुए के पुष्प या मुलेठी, मैनसील, रसाञ्जन और कबूतर की पीठ ( विष्ठा ) के साथ पारद भस्म के अञ्जन करने से अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है ॥७६॥

अथ पक्ष्मशाते रसकल्पः—

**धान्याम्लपिष्टाष्टमपिप्पलीकान्कार्पासबीजाङ्करमर्दनेन ।**
**सादाय तैलं मृतसूतयुक्तमक्षिणि प्रयुञ्जीत विशीर्णरोम्णि ॥७७॥**

काञ्जी के साथ पीसी हुई अष्टमांश पिप्पली और कार्पास के बीज दोनों को अच्छी तरह पीस कर तैल निकाल लें । फिर इस तैल में पारदभस्म मिला कर पलकों के नष्ट बाल ( केश ) वाली आंख में अञ्जन करने से लाभ होता है ॥७७॥

अथ नेत्ररोगे रसकल्पः—

**बर्बूरनिम्बकिसलाजपुरीषधूमैः**
**कांसेक्षुराश्मवनितास्तनजेन घृष्टम् ।**
**भल्लातधूपितरसाञ्जनमञ्जयित्वा**
**साभ्यञ्जनस्नपनमक्षिणि रुजं निहन्ति ॥ ७८ ॥**

बबुल ( मोलसिरी ) और नीम के कोमल पत्ते, बकरी की मींगनी, रसोई घर का धुआं, कासतृण या कांसे की भस्म, तालमखाने का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म और भिलावों के धुएं से धूपित की हुई रसौंत तथा पारदभस्म इन्हें समभाग लेकर महीन पीस के स्त्री के या गौ के दुग्ध के साथ घोट कर अञ्जन करें तथा तैल का अभ्यङ्ग करके स्नान करने से नेत्रों के लिये विशेष लाभ होता है तथा नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

अथ तिमिरे—

महाभेरीमूलं तुरगपृथुकाम्भोधिकुवलं-
रसो जम्बीराम्ले जयति तिमिरं काचमपि च ॥ ७६ ॥

वचा की जड़, असगन्ध, हिङ्गुपत्री, समुद्रफेन, नीलमकल और पारदभस्म इन्हें समभाग घोट कर जम्बीरी नीम्बू के रस के साथ खरल करके नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिर और काचरोग नष्ट हो जाता है ॥ ७९ ॥

अथ जाड्ये—

उपात्तं जीमूताद्रविजधरपर्णाम्बुमृदिता-
द्रसस्तैलं लेपादिह विविधजाड्यं च गुदजान् ॥ ८० ॥

आक के अङ्कुर और गिरिनिम्ब इन दोनों के स्वरस से घोषक के बीजों को घोट कर तैल निकाल लें। इस तैल में पारदभस्म मिला कर लेप करने से अर्शरोग (मस्से) नष्ट हो जाता है तथा विविध प्रकार की जड़ता अर्थात् दुर्बलता दूर हो जाती है ॥ ८० ॥

अथ व्रणे—

त्रिफलापटोलमूलन्योषगुडूचीविडङ्गबीजानि।
समगुग्गुलानि मारितरसमिलितानि व्रणघ्नानि ॥ ८१ ॥

त्रिफला, परवर की जड़, त्रिकटु, गिलोय का सत्त्व, वायविडङ्ग ये प्रत्येक सम भाग तथा इनके बराबर शुद्ध गूगल लेकर महीन चूर्ण करके उस में एक भाग पारदभस्म मिलाकर व्रण पर छिड़कने से या जल से पीस कर लेप करने से व्रण भर कर ठीक हो जाता है ॥ ८१ ॥

अथ ग्रन्थौ मसूरिकायाञ्च—

ग्रन्थीन्विलेपयेत्तेषां लेपान्मूलरसान्वितम्।
नारिकेरोदकं तद्वत्पीतं हन्ति मसूरिकाः ॥ ८२ ॥

उपर्युक्त त्रिफलादि पारदान्त चूर्ण के कल्क का ग्रन्थियों पर लेप करने से वे बैठ जाती हैं तथा पारद भस्म को नारियल के जल और ऊख की जड़ के रस के साथ सेवन करने से मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८२ ॥

अथ सिध्मादौ—

मञ्जिष्ठाशररोध्रवं तुवरिका लाक्षा हरिद्राद्वयं

नेपाली हरितालकुङ्कुमगदागोरोचना गैरिकम्
पत्रं पाण्डुवटस्य चन्दनयुगं कालेयकं पारदं
पत्तङ्गं कनकत्वकं कमलजं बीजं तथा केशरम् ॥ ८३ ॥
सिक्थं तुत्थं लाहकिट्टं वस्याज्यमाजं क्षीरं क्षीरवृक्षाम्बु चाम्नौ।
सिद्धं सिध्मव्यङ्गनील्यादिनाशे वक्त्रच्छायामैन्दवीमाशु धत्ते ॥८४॥

मंजीठ, सफेद लोध, फिटकिरी, शुद्ध लाख, हलदी, दारु हलदी, मैनसिल, हरताल, केसर, कूठ, गोरोचन, गेरु, बड़ के पके हुए (पीले) पत्ते श्वेतचन्दन, लालचन्दन, काली अगर, पारदभस्म, पतङ्ग, धत्तूरे की जड़ की छाल या चम्पे की छाल, कमल की डण्डी, कमल के बीज, कमल की केसर, मोम, नील तुत्थ, लौहकीट, वासा, बकरी का घी और दुग्ध और क्षीरी वृक्ष अर्थात् बट, गूलर और पीपल आदि के स्वरस इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण करके गोला बना लें। इस गोले (वल्क) से तैल सिद्ध करके मुखादि पर अभ्यङ्ग करने से सिध्म नामक कुष्ठ, व्यङ्ग और मुख के काले दाग आदि नष्ट हो जाते हैं। इस तैल के प्रतिदिन लगाने से चन्द्रमा के समान मुख की शोभा बढ जाती है ॥ ८३-८४ ॥

अथास्थिस्रावे—

कार्पासपल्लवानन्तारसतैलयुतो हितः।
अस्थिस्रावे मृतरसो; ॥ ८५ ॥

कपास के पत्ते और अनन्तमूल के रस तथा तिलतैल में पारद भस्म मिला कर सेवन करने से अस्थिस्राव रोग में लाभ होता है ॥ ८५ ॥

अथ विषे—

'—विषे स्थावरजङ्गमे।
तण्डुलीयकमूलेन वीरामूलेन वा युतः॥
तण्डुलोदकसम्मिश्रः पाननावनलेपने ॥ ८६ ॥

स्थावर या जङ्गम विष के द्वारा पीडित रोगी को चोलाई जड़ के चूर्ण अथवा क्षीरकाकोली के चूर्ण और चावलों के धोवन के साथ पारदभस्म सेवन कराने (पीने) से तथा नस्य और लेप करने से शीघ्र लाभ होता है ॥ ८६ ॥

अथ विषे प्रयोगान्तरम्—

सुरभिशकृद्रसभावितकर्पूरसमन्वितो मृतः सूतः।
स्थावरजङ्गमकृत्रिमविषजिद्गुञ्जामितो दध्ना ॥ ८७ ॥

गाय के गोबर के स्वरस से सात बार भावित किये हुए कर्पूर चूर्ण के साथ १ रत्ती भर मृत रस (पारद) को दही में मिलाकर सेवन करने से स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम विष नष्ट हो जाता है ॥ ८७ ॥

अथ सर्पविषे—

यज्ञाङ्गफेनिलरसोनकटुत्रयोग्रा-
राजीवराङ्घ्रिबकुलं लकुचाम्बुपिष्टम्।
छायाविशोषितमिदं नरवारिघृष्टं।
सर्पापहं सरसमञ्जनतस्त्रिवारान् ॥ ८८ ॥

बिरौजा या वट वृक्ष की छाल, बहेड़ा, सोंठ का चूर्ण, लहसून, त्रिकटु, वचा, लाल सरसों, श्वेत अपराजिता, मौलसिरी की जड़ और पारद की भस्म इन्हें सम भाग लेकर महीन कूट पीस के बड़हर के रस के साथ भावित कर के घोट कर छाया शुष्क गोलियां बनालें। इन गोलियों को मनुष्य के मूत्र के साथ पीस कर तीन वार अञ्जन लगाने से सर्प का विष नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथ सर्पविषे पिशाचाद्यञ्जनम्—

पिशाचः पञ्चवर्णस्य बीजं मूलं पुनर्नवात्।
देवदाल्याः फलं मूलं मूलं च विषपर्णतः ॥
पेषितं नरमूत्रेण सर्वथाऽहिविषापहम् ॥ ८९ ॥

बहेड़ा, धत्तूरे के बीज, पुनर्नवा की जड़, देवदाली का फल और जड़ और घोषक या बिच्छेछी घास की जड़ इन्हें सम भाग लेकर मनुष्य के मूत्र के साथ पीस कर नेत्रों में अञ्जन करने से निश्चय ही सर्प विष नष्ट हो जाता है। इस योग में पारद भस्म न कहने पर भी १ भाग के प्रमाण से मिलानी चाहिए ॥८९॥

अथ उन्दुरुविषे—

कपित्थपञ्चकं नीरं रसं चाखुविषापहम् ॥ ९० ॥

कैथ के फल, पुष्प, पत्र, जड़ और छाल, नेत्र बाला और पारदभस्म इन्हें सम भाग लेकर महीन चूर्ण कर के सेवन करने से तथा प्रलेप करने से चूहे का विष नष्ट हो जाता है ॥ ९० ॥

अथ वृश्चिकविषे—

कांस्ये ताम्बुल्या नागरं पिष्टमद्भिः
पत्रं शैरीषं पिप्पलीछागदुग्धैः ।
पत्रं कार्पासात्सर्पिषा वाऽपि लेपात् ।
सूतेनोपेतं वृश्चिकानां विषघ्नम् ॥ ९१ ॥

कांसे के बर्तन में नागर वेल के पत्ते के रस से सोंठ के चूर्ण और पारद भस्म को पीस कर लेप करने से अथवा शिरीष के पत्ते और पारद भस्म को पानी से पीस कर अथवा पीपल के चूर्ण और पारद भस्म को बकरी के दुग्ध से पीस कर अथवा कपास के पत्ते और पारद भस्म को कांसे के पात्र में घृत के साथ पीस कर लेप करने से बिच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥

अथ विषदिग्धव्रणे—

भावितश्चणकाम्लेन वस्त्रमम्लेन मर्दयेत् ।
तेन बाकुचिचक्राह्वकार्पासागस्तिपल्लवान् ॥ ९२ ॥
एकस्य लकुचस्याम्ले स्वरसेन रसेन यः ।
प्रक्षालितः प्रयात्येव विषदिग्धव्रणः शमम् ॥ ९३ ॥

चणों के खार से वस्त्र को भीगो कर ७ दिन तक रख दें । प्रतिदिन वस्त्र पर नया २ चने के खार का पानी डालते रहना चाहिए । फिर इस वस्त्र से बाकुची, चकवड़, कपास और अगस्त्य के पत्तों को लपेट कर किसी अम्ल (काञ्जी) से घोट कर रस निकाल कर उस में पारद भस्म मिला कर विषदिग्ध शस्त्र से उत्पन्न व्रण का प्रक्षालन करें । अथवा केवल बड़हर के फल को अम्ल से पीस कर स्वरस निकाल के उस में पारद भस्म मिला कर उक्त व्रण का प्रक्षालन करने से वह निश्चय ही ठीक हो जाता है ॥ ९२-९३ ॥

अथ रसायने रसकल्पः—

रसायनोक्तविधिना शुद्धो लब्धबलः पुनः ।
प्रातः प्रातः कणापथ्याविश्वलैन्धवचित्रकम् ॥ ९४ ॥
पीत्वा संरक्षणायाग्नेरीषदुष्णेन वारिणा ।
भृङ्गामलकनिर्यासे भावितं व्योमकान्तयोः ॥ ९५ ॥
भस्माऽयः सम्पुटे धान्ये स्थापितं मधुसर्पिषा ।

**खादेन्निशि कणा पथ्या मासमेकं तथा पुनः ॥ ९६ ॥**

रसायनों के द्वारा विष के विकार के दूर हो जाने के पश्चात् देह की शुद्धि कर के बल प्राप्त हो जाने पर प्रतिदिन प्रातःकाल पिप्पली, हरड़, सोंठ, सैन्धवनमक और चित्रक की जड़ इन के समभाग चूर्ण को मन्दोष्ण पानी के साथ सेवन करने से जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। पश्चात् अभ्रकभस्म और कान्तलौह की भस्म को समभाग लेकर भृङ्गराज और आंवलों के स्वरस से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार भावित करके लौह के सम्पुट में बन्द करके धान के ढेर में गाड़ दें। फिर निकालकर खरल करके पिप्पली और हरड़ के चूर्ण तथा शहद् और घृत के साथ सन्ध्या के समय एक मास तक सेवन करें ॥ ९४–९६ ॥

अथान्योरसकल्पः—

**पातनाभस्मनायुक्तमथ सूतस्य भस्मना।**
**जीर्णोऽल्पहेम्नः षण्मासाच्छतावर्या रसेन च ॥ ९७ ॥**

उद्धर्वपातनादि संस्कार करने के पश्चात् की हुई पारदभस्म अथवा स्वर्ण के साथ जारित की हुई पारदभस्म को उचित मात्रा से ६ मास तक शतावर के स्वरस के साथ सेवन करने से सर्व रोग नष्ट होकर देह पुष्टि हो जाती है ॥ ९७ ॥

अथ कल्पान्तरम्—

**त्रिफलां मधुसर्पिर्भ्यां खादिरासनभावितम्।**
**मृतहेमरसोपेतां भक्षयेद्भक्षयेज्जराम् ॥ ९८ ॥**

खैर और असन (बिजैसार) के क्वाथ से भावित की हुई त्रिफला का चूर्ण और स्वर्णभस्म तथा पारदभस्म को समभाग लेकर खरल में पीसकर शीशी में भर दें। प्रतिदिन १ माशे भर इस योग के शहद् और घृत के साथ सेवन करने से जरा नष्ट हो जाती है ॥ ९८ ॥

अथ कल्पान्तरम्—

**गन्धकेन हतं सूतं कान्तं धात्रीरसेन च।**
**त्रिफलासहितं खादेज्जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ ९९ ॥**

गन्धक के द्वारा की हुई पारदभस्म और कान्त लौहभस्म को एक २ रत्ती भर लेकर त्रिफला के १ माशे भर चूर्ण के साथ मिला के आंवलों के रस के साथ

सेवन करने से चन्द्र और तारों के रहने तक निरोग होकर जीवित रहता है, अर्थात् दीर्घजीवी हो जाता है ॥ ९९ ॥

कल्पान्तरम्—

**चित्रकं त्रिफला भृङ्गो हरिद्राञ्जनपत्रिका ।**
**रसस्त्रिमधुरश्चापि जरावैरूप्यनाशनः ॥ १०० ॥**

चित्रक की जड़, त्रिफला, भृङ्गराज, हरिद्रा, रसाञ्जन, जावित्री और पारद भस्म इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण करके शीशी में भर दें। इस चूर्ण में से प्रतिदिन एक २ माशे भर चूर्ण लेकर त्रिमधु अर्थात् घृत शहद् और गुड़ के साथ सेवन करने से जरा और कुरुप को नष्ट करता है ॥ १०० ॥

कल्पान्तरम्—

**रसौषधीनां रसभावितानां सितायुतैः क्षीरमधूदकाज्यः ॥ १०१ ॥**

रसायन गुण करने वाली औषधियों ( अष्टवर्ग जीवनीयगणादि ) के चूर्ण को उन्हीं के स्वरस से सात २ वार भावित करके उसमें पारदभस्म मिलाकर चीनी मिले हुए दुग्ध, शहद्, जल और घृत इनके साथ सेवन करने से जरा रोग नष्ट हो जाता है ॥ १०१ ॥

कल्पान्तरम्—

**जरां रसो हन्ति च कान्तपात्रे क्षीरं श्रृतं काञ्चनपादपिष्टया ॥ १०२ ॥**

अथवा कान्तलौह की कडाही में दुग्ध को गरम करके उसमें चौथाई भाग स्वर्ण के द्वारा जारण किये हुए पारद की भस्म ( १ रत्तीभर ) मिलाकर प्रतिदिन पीते रहने से जरा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥१०२॥

अथ वाजीकरणे मदनवर्धनाख्यो रसकल्पः—

**समचीर्णजीर्णहेममाक्षिकयोगेन मारिता वृष्यः ।**
**घृतमधुशतावरीरसदुग्धयुतो मदनवर्धनः सूतः ॥ १०३ ॥**

पुरानी स्वर्णमाक्षिक की समानभस्म के योग से बनाई हुई पारद भस्म १ रत्ती भर लेकर प्रतिदिन घृत, शहद्, शतावर का स्वरस और दुग्ध के साथ सेवन करने से अत्यन्त कामशक्ति को बढ़ाती है ॥ १०३ ॥

अथ वाजीकरणे—

**लाहितागस्तिसारेण कृष्णरम्भाफलद्रुतम् ।**

रसं च घनसारं च पीत्वा स्त्रीषु वृषायते ॥ १०४ ॥

लाल अगस्त्य के पत्तों के या पुष्पों के स्वरस के साथ पिप्पली चूर्ण, केले का फल, पारद भस्म और शुद्ध कर्पूर को घोट कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को दुग्ध के साथ प्रति दिन सेवन करने से मनुष्य की सम्भोग शक्ति बढ़ जाती है ॥ १०४ ॥

अथ रसप्रयोगे उपचारविधिः—

घनसारचतुर्जातकङ्कोलं कटुकीपलम्।
फलं ताम्बूलवल्लीनां रसस्याक्रमणं परम् ॥ १०५ ॥
भुञ्जीत शालिगोधूमयवषष्ठिकजाङ्गलम्।
मुद्गयूषं गवां क्षीरं मस्तु स्यात्सुखाम्भसा ॥
रूपयौवनसम्पन्नामनुरूपां प्रियां भजेत् ॥ १०६ ॥

शुद्ध कर्पूर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शीतलचीनी, त्रिकटु और त्रिफला इनका चूर्ण १ पल भर लेकर पान के स्वरस के साथ घोट कर प्रति दिन सेवन करने से शरीर में पारदभस्म का अच्छी तरह पाचनादि होकर सात्मी करण होता है। रस सेवन करते समय साठी के चांवल के भात, गेहूं की रोटी, जौ का पानी या रोटी, जङ्गलीमांस का रस, मूंग की दाल का पानी, गाय का दुग्ध, दही का पानी सेवन करना चाहिए तथा मन्दोष्ण जल से स्नान करना चाहिए। यदि सम्भोग की प्रबल इच्छा हो तब अपने मन के अनुकूल तथा रुप और सौन्दर्यादि गुणों वाली स्त्री के साथ रमण करे ॥ १०५-१०६ ॥

अथ रससेवनेऽपथ्यानि—

अभ्यङ्गं कटुतैलेन काञ्जीतैलं सुरां दधि।
कालिङ्गकारवेल्लाम्ललशुनासुरिमूलकम् ॥ १०७ ॥
द्विदलं बिल्ववार्ताकं छत्राकं काकमाचिकाम्।
अङ्गसम्मर्दनं रात्रौ जागरं स्वपनं दिवा ॥ १०८ ॥
अत्यम्लतिक्तलवणं स्वादूष्णं शिशिरौषधम्।
शोकवातातपक्रोधचिन्तां च परिवर्जयेत् ॥
साहसं रसलोहानां मारकं च विशेषतः ॥ १०९ ॥

रस सेवन करते समय कडुए तैल से देह की मालिश, काञ्जी, तैल सेवन, मद्य, दही, तरबूज, करेला की शाक, खटाई, लहसुन, राई, मूली, दो दल वाली

दाल, अन्न, बेल का फल, बैंगन, सांप की छतरी, मकोय, अङ्गों का दबवाना, रात्रि में जागना, दिन में शयन, अत्यन्त खट्टे, तीते और नमकीन पदार्थ, अधिक स्वादु, अधिक उष्ण, अधिक शीतल औषधियां, शोक, वात, घाम, क्रोध, चिन्ता, अधिक साहस के काम तथा रस और अष्टलौह के प्रभाव को कम करने वाली वस्तुएं आदि वर्जित हैं ॥ १०७–१०९ ॥

अथ निषिद्धद्रव्यव्यवहारे दोषः—

**सेवया परिहार्याणां रसस्याऽजरणा भवेत् ।**
**शूलो नाभिपले जाड्यं निद्रालस्यं ज्वरस्तमः ॥**
**अङ्गभङ्गाऽरुचिर्दाहः; ॥ ११० ॥**

उपर्युक्त त्याज्य पदार्थों के सेवन करने से खाया हुआ रस ठीक तरह से नहीं पचता है, नाभि के नीचे उदर में शूल, शरीर में जकड़ाहट, निद्रा, आलस्य ज्वर, तमोगुण की वृद्धि, अङ्गों का टूटना, अरुचि और समस्त देह मे जलन होती है ॥ ११० ॥

अथ निषिद्धद्रव्यव्यवहारजदोषे प्रतीकारः—

**'—पिबेत्तत्र दिनत्रयम् ।**
**सौवर्चलं सगोमूत्रं कर्कोटीमूलवारिणा ॥**
**मातुलुङ्गस्य वाऽम्लेन माणिमन्थं सनागरम् ॥ १११ ॥**

अपथ्य के सेवन से उत्पन्न हुए उक्त उपद्रवों की शान्ति करने के लिये गोमूत्र में सोंचल निमक मिला कर तीन दिन तक पान करें अथवा कर्कोटी की जड़ के क्वाथ या बिजोरे निम्बू के स्वरस में सोंठ का चूर्ण और सैन्धव लवण मिला कर तीन दिन तक पान करें ॥ १११ ॥

अथ नागवङ्गयुक्तरससेवने प्रतीकारः—

**नागवङ्गयुतः सूतः प्रमादाद्भक्षितो यदि ।**
**सैन्धवं कारवेल्लस्य कन्दं मूत्रैः पिबेद्वराम् ॥ ११२ ॥**
**कर्कोटीगरुडीपथ्याशतपुष्पैर्विपाचितैः ।**
**अष्टभागावशिष्टं वा गोमूत्रं सैन्धवान्वितम् ॥ ११३ ॥**
**यत्क्षेत्रीकरणं पूर्वं वेधकं च रसं ततः ।**
**सेवेत तस्य सिद्धिः स्यादन्यथा मरणं ध्रुवम् ॥ ११४ ॥**

यदि प्रमाद से नाग और वङ्ग दोष से युक्त पारद का सेवन किया गया हो तब करेली की जड़ को गोमूत्र के साथ पीसकर सैन्धव लवण मिला के पान करे, अथवा बांझ ककोड़ा, पातालगरुड़ी, हरड़ और शरपुङ्खा के कल्क को गोमूत्र में पकाकर अष्टमांश शेष रहने पर सैन्धव लवण डाल कर पान करना चाहिए। इस तरह उपद्रवों की शान्ति हो जाने के पश्चात् क्षेत्रीकरण क्रिया करके वेधनकर्म युक्त पारदभस्म के सेवन करने से पूर्णसिद्धि प्राप्त होती है। अन्यथा शरीर में नाना प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होकर निश्चय ही मृत्यु हो जाती है ॥११२-११४॥

अथ ग्रन्थस्योपसंहारः—

**युगस्वभावाद्यदि चौषधीनां क्रियासु शक्तिःपरिकल्प्यतेऽल्पा।**
**आयुर्बलादिष्वपि सा तथेति तस्मान्निषेव्यानि रसायनानि ॥११५॥**
**न चौषधीनामपि सर्वथैव प्रभावहानिः परिकल्पनीया।**
**फलं प्रयात्युर्ध्वमधस्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्य न सिद्धमेतत् ॥११६॥**

युग (कलि आदि) के प्रभाव से यदि औषधियों की रोगनाशक तथा रसायनादि गुणोत्पादक क्रियाओं की शक्ति कम होगई है अत इन का सेवन निष्फल है ऐसी शङ्का कोई करे तो भी उनका सेवन करना ही चाहिए क्यों की आयु और पाचक शक्ति आदि भी कम हो गई है अतः कुछ न कुछ गुण अवश्य ही होगा। मनुष्यों की शक्ति तो नष्ट होगई है फिर भी औषधियों की शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हुई है क्यों कि मैनफल को वामक तथा त्रिवृत् को रेचक गुणयुक्त जो शास्त्र में बताया हुआ है वह आज भी प्रत्यक्ष विद्यमान ही है। यह इन का गुण किस को नहीं मालूम है अर्थात् सभी जानते हैं ॥ ११५-११६ ॥

औषधीनां गुणदोषकरणे कारणम्—

**अदेशकालोपहितान्यसात्म्यान्यत्युष्णतीक्ष्णानि यथौषधानि।**
**नाशं नयन्ते सहसैव देहं सम्यक् प्रवृत्तानि तथैव वृद्धिम् ॥११७॥**

देश और काल के विचार के विना तथा अपनी प्रकृति के प्रतिकूल तथा अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त तीक्ष्ण औषधियों के सेवन करने से शीघ्र ही देह को नष्ट कर देती हैं तथा देश और काल का विचार कर के प्रकृति के अनुकूल तथा मात्रा आदि का विचार कर के प्रयुक्त की हुई औषधियां अवश्य ही शरीर की वृद्धि करती हैं ॥ ११७ ॥

औषधसेवनविधिः—

**जित्वा तस्मादिन्द्रियादिप्रदुष्टान् कालोपेतः श्रद्दधानो यथावत्।**
**आयुःप्रज्ञातेजसां यद्विवृद्ध्यै वीर्योपेतं शोलयेदौषधं सत्॥ ११८॥**

इसलिये इन्द्रिय और आत्मा को दूषित करने से काम क्रोध आदियों को जीत कर योग्य समय का विचार करके श्रद्धापूर्वक यथाविधि वीर्य अर्थात् रोगहर तथा बलकर गुणों से युक्त और शुद्ध की हुई रस आदि औषधियों को आयु, बुद्धि और तेजोधातु की वृद्धि के लिये सेवन करनी चाहिए॥ ११८॥

अथ आचाररसायनम्—

**शास्त्रानुसारिणी चर्या चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः।**
**बुद्धिरस्खलितार्थेषु परिपूर्णं रसायनम्॥ ११९॥**
**दानं शीलं दया सत्यं ब्रह्मचर्यं कृतज्ञता।**
**रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्वृद्धिकृद्गणः॥ १२०॥**

शास्त्र के अनुसार आहार विहारादि का सेवन करना, मन के अभिप्राय को बिना कहे ही जानने वाले पार्श्ववर्ति मित्र हों, तथा शब्द स्पर्शरूपरसादि अर्थों के ग्रहण करने में अप्रमत्त बुद्धि का होना, ये सब परिपूर्ण अर्थात् पर्याप्त रसायन है अर्थात् जिस तरह रसायन औषध गुण करती है वैसे ही उपर्युक्त भी हैं। इनके अतिरिक्त दीनों को दान देना, शील स्वभाव का होना, दुःखियों पर दया, सत्य बोलना ब्रह्मचर्य का धारण करना, दूसरे से किये हुए उपकार को मानना, अच्छे पुरुषों के साथ मित्रता करना तथा रसायन सेवन करना यह पुण्यायुर्वृद्धिकृत् गुण है। अर्थात् ये सब संसार में पुण्य (यश) का विस्तार तथा आयु की वृद्धि करते हैं॥ ११९-१२०॥

विमर्शः—चरकोक्ताचाररसायनम्—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥ १॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥ २॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥ ३॥

देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम् ।
शस्त्राचारमसङ्कीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥ ४ ॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम् ॥ ५ ॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो रसायनम् ।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते ॥ ६ ॥

इत्याचाररसायनम् ।

अथायुर्वेदोपदेशस्य अवश्यपालनीयोक्तिः—

एतदागमसिद्धत्वात् प्रत्यक्षफलदर्शनात् ।
मन्त्रवत्संप्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथञ्चन ॥ १२१ ॥

यह आयुर्वेद शास्त्र अथवा रसायनोपदेश आगम अर्थात् वेद से सिद्ध या निकला हुआ होने से तथा प्रत्यक्ष फल करने से मन्त्र के समान व्यवहार में लाना चाहिए या रसायनों का प्रयोग करना चाहिए। इस शास्त्र के विषय में किसी प्रकार की शङ्का या कुतर्क आदि नहीं करना चाहिए ॥ १२१ ॥

अथ कुवैद्यवर्जनोपदेशः—

लोभयन्त्यातुरं मूर्खा विचित्रैः कर्मकौशलैः ।
तेभ्यो रक्षेत्सदात्मानमात्मा यस्मात्सुदुर्लभः ॥ १२२ ॥
ते घुणाक्षरवत्कञ्चिदुत्थाप्य नियतायुषम् ।
घ्नन्ति वैद्याभिमानेन शतान्यनियतायुषाम् ॥ १२३ ॥
अज्ञातशास्त्रसद्भावाञ्छास्त्रमात्रपरायणान् ।
तान्वर्जयेद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव ॥ १२४ ॥

वैद्य के वेष में रहने वाले पाखण्डी एवं मूर्ख लोग अपने कर्म कौशल अर्थात् ऐन्द्र जालिक के समान असत् क्रियाओं को भी सत्य की तरह प्रतिपादित कर के रोगी को अपने वश में कर लेते हैं। ऐसे मूर्ख वैद्यों से सर्वदा अपनी आत्मा की रक्षा करते रहना चाहिए। क्योंकि आत्मा का मनुष्य रूप में उत्पन्न होना अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे पाखण्डी वैद्य घुणाक्षरन्याय ( लम्बी चोंच वाला पक्षी जैसे काष्ठ पर चोञ्च मारते २ कभी वहां पर ककारादि वर्ण को बना देता है ) से नियत आयु वाले रोगी को रोग से मुक्त कर के अपने को निपुण वैद्य ख्यात कर

के सैकड़ों अनियत आयु वाले पुरुषों को अपदौषध के प्रयोग से मार डालते हैं। इस लिये बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि शास्त्र के वास्तविक स्वरूप को न जान कर या उस के प्रयोग को न समझ कर केवल शास्त्र के वचन मात्र की डींग मारने वाले ऐसे भिषक् पाशों ( सद्वैद्यों के कण्टकभूत या प्राणियों के प्राण हरण के लिये पाश अर्थात् बन्धनतुल्य ) को यमराज के पाश ( फन्दे ) की तरह दूर ही से त्याग देने चाहिए ॥ १२२-१२४ ॥

अथ शास्त्रज्ञवैद्यस्यसाफल्योक्तिः—

**प्रदीपभूतं शास्त्रं हि दर्शितं विपुला मतिः ।**
**ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥ १२५ ॥**

अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर देने के कारण शास्त्र एक प्रकार का प्रदीप है तथा ऊहापोह गुण युक्त विपुल ( महती ) बुद्धि ही एक प्रकार से नेत्र है, इस लिये प्रदीपभूत शास्त्र और विपुल बुद्धि से जो वैद्य ठीक तरह से युक्त है, वह किसी भी रोगी की चिकित्सा करता हुआ कभी भी अपराध अर्थात् दण्डनीय कर्म नहीं कर सकता है ॥ १२५ ॥

अथ चिकित्सायाः सर्वत्र साफल्यतोक्तिः—

**क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः ।**
**क्वचिदभ्यासयोगश्च चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ १२६ ॥**

ज्ञान पूर्वक चिकित्सा करने से कहीं धन की प्राप्ति होती है, कहीं श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ मित्रता होती है, किसी दीन को निःशुल्क रोग से मुक्त करने से पुण्य की प्राप्ति होती है, कहीं यश मिलता है तथा कहीं अपने अभ्यास ( अनुभव ) की ही वृद्धि होती है इसलिये चिकित्सा कभी भी निष्फल नहीं कही गई है ॥ १२६ ॥

अथ चिकित्साकर्मणि प्रमादे दोषाः—

**ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षन्ते स्खलन्ति वा ।**
**खादन्ति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥ १२७ ॥**

जो मूर्ख वैद्य अपने अज्ञान से चिकित्सा पद्धति को विकृत रूप से कर देते हैं या साध्य रोग को अयोग्यौषध देकर असाध्य कर देते हैं या चिकित्सा करने में उपेक्षा करते हैं तथा चिकित्सा प्रकार में भूल करते हैं ऐसे कुवैद्य रोगी के प्राणों का हरण कर लेते हैं तथा अपने सुकृत अर्थात् पुण्यों का नाश भी करते हैं ॥१२७॥

अथ चिकित्सा-कर्तव्यावधिः—

यावदुच्छ्वसिति प्राणी यावद्भेषजमश्नि च।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या दैवस्य कुटिला गतिः॥ १२८॥

जब तक रोगी की श्वास प्रश्वास क्रिया चलती रहे, और जब तक वह औषध को सेवन कर सकता हो अर्थात् गला ( अन्नमार्गादि ) कफ से रुद्ध न हो गया हो तब तक उस की चिकित्सा करते रहना चाहिए, क्योंकि दैवगति बड़ी ही विचित्र होती है, जीवन की आशा न रहने पर भी दैववशात् अन्त में औषध से लाभ हो कर रोगी स्वस्थ हो जाता है॥ १२८॥

वैद्यातुरयोरन्योन्यकर्तव्यः—

अनाथान् रोगिणो वैद्यः पुत्रवत्समुपाचरेत्।
प्राणाचार्यश्च पितृवत्सम्पूज्यः शक्तिभक्तितः॥ १२९॥

अनाथ अर्थात् योग्य रक्षक ( माता पिता आदि ) से रहित तथा दीन रोगियों को अपने पुत्र के समान समझ कर वैद्य उनकी चिकित्सा करे तथा रोगियों को भी चाहिए कि वे अपने प्राण के रक्षक वैद्य को पिता के तुल्य समझ कर यथाशक्ति भक्तिपूर्वक मन से, धन से तथा या शरीरकर्म से पूजन करें॥ १२९॥

वैद्यस्य सर्वत्रावश्यकता—

न प्राणिरहितो देशो न च प्राणी निरामयः।
तस्मात्सर्वत्र भिषजां कल्पिता एव वृत्तयः॥ १३०॥

कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां कि मनुष्य न रहते हों तथा कोई ऐसा प्राणी नहीं है जो कि सर्वथा रोग रहित हो, इस लिये वैद्यों की सर्वत्र आवश्यकता रहती ही है तथा उनकी जीविकाएं सहज में चल सकती हैं, अतः जीविकानिर्वाह की चिन्ता त्याग देनी चाहिए॥ १३०॥

अथ पुरावृत्तवर्णनद्वारावैद्यस्य सर्वत्रसर्वपूज्यत्वप्रतिपादनम्—

यज्ञस्य च शिरश्छिन्नमश्विभ्यां सन्धितं पुरा।
पातिता दशनाः पूष्णो भगस्य च विलोचने॥ १३१॥
राजयक्ष्मार्दितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव चिकित्सितः।
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः॥ १३२॥
वीर्यवर्णबलोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा॥

एभिश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां महात्मनाम् ॥ १३३ ॥
सौत्रामण्यां च भगवानश्विभ्यां सह मोदते ।
अश्विभ्यां सहितः सोमं प्रायः पिबति वासवः ॥ १३४ ॥
अश्विभ्यां कल्पितो भागो यज्ञेषु च महर्षिभिः ।
अश्विनावग्निरिन्द्रश्च वेदेषु सुतरांस्तुताः ॥ १३५ ॥
वैद्यावित्यश्विनौ देवौ पूज्येते विबुधैरपि ।
अजरैरमरैर्नित्यंसुखितैरेवमादृतैः ॥ १३६ ॥
व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।
किं पुनर्भिषजो मर्त्यैः पूज्याः स्युर्नाम शक्तितः ॥ १३७ ॥

पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति के यज्ञ में नन्दीश्वरने यज्ञ पुरुष का शिर काट दिया था उस कटे हुए शिर को फिर अश्विनी कुमारों ने धड़ के साथ जोड़ दिया, पूषा नामक दैत्य के वीरभद्र के द्वारा गिराए हुए दांत तथा भगदेवता के नष्ट किये हुए नेत्रों को अश्विनी कुमारों ने ठीक कर दिया, राजयक्ष्मा से पीडित चन्द्रमा को अपनी चिकित्सा से उन्हों ने नीरोग किया। वृद्ध भार्गव च्यवन महर्षि कामान्ध हो कर अत्यन्त सम्भोग करने से विकृत हो गये थे उनको अश्विनी कुमारों ने अपनी चिकित्सा से वीर्यशक्ति तथा सौन्दर्य से युक्त करके युवा बना दिया इत्यादि तथा अन्यान्य अनेक उत्तम कार्यों के करने से वैद्यों में श्रेष्ठ दोनों अश्विनी कुमार इन्द्रादि देवता तथा बड़े २ ऋषि महर्षि महात्माओं के द्वारा पूजित हुए थे। सौत्रामण्य नामक यज्ञ में स्वयं भगवान् इन्द्र अश्विनी कुमारों के साथ आनन्द का उपभोग करते हैं तथा उन्हीं के साथ सोमरस का पान करते हैं। महर्षियों ने यज्ञों में अश्विनीकुमारों के लिये भी भाग कल्पित किया है तथा वेदों में अश्विनी कुमार, अग्निदेव तथा इन्द्र इन की अत्यन्त स्तुति ( प्रशंसा ) लिखी गई है। इस कारण दोनों अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य होने के कारण अजर अमर और नाना प्रकार से सुखी रहने पर भी देवता उनकी पूजन ( आदर सत्कार ) नित्य प्रति करते रहते हैं, तब फिर नाना प्रकार के रोग, अकालमृत्यु और जरा से आक्रान्त तथा अनेक दुःखों से पीडित ऐसे सुख चाहने वाले मर्त्यलोक के मनुष्यों के द्वारा यथाशक्ति वैद्य पूजित नहीं होते हैं अपि तु अवश्य ही पूजित होते हैं ॥ १३१-१३७ ॥

अथ ग्रन्थकर्तुर्विज्ञप्तिः—

रसरत्नसमुच्चयो मयेत्थं रचितः
साधु नितान्तमादियन्ताम्।
सुधियो यदि विद्यतेऽत्र दोषः
क्वचिदर्हन्ति प्रमाष्यलं विसोढुम्॥ १३८॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वागभट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसकल्पो नाम त्रिंशोऽध्यायः।



इस प्रकार मैंने सामर्थ्य पूर्वक अनेक रस शास्त्रों का अवलोकन करके यह रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रन्थ बनाया है इसलिये इसका आदर ( अवलोकन ) करना चाहिए, यदि इसमें कहीं पर त्रुटि हो गई हो तो विद्वज्जन उसे कृपा करके सहन करें॥ १३८॥

इति श्रीमेदपाटदेशान्तर्गत मण्डफियाग्रामवासिना काशीहिन्दूविश्वविद्यालयीयायुर्वेद-विद्यालयान्तेवासिना प्राच्यपाश्चात्यचिकित्साशास्त्रधुरन्धरेण सर्वतन्त्र स्वतन्त्रेण गुर्जरगौडविप्रकुलावतंसेन श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण आयुर्वेदाचार्येण श्रीअम्बिकादत्त शास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वला ख्य भाषाटीकायां रसकल्पो नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥



समाप्तश्चायं ग्रन्थः।



# चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी ।

भारतवर्ष भर में छपे आयुर्वैदिक ग्रन्थों का बहुत बड़ा संग्रह हर वक्त विक्रयार्थ प्रस्तुत रहता है ।

आयुर्वैदिक ग्रन्थों के साथ २ परीक्षोपयोगि अन्य शास्त्र के ग्रन्थ भी प्रकाशित होते हैं ।

चौखम्बा-बनारस-काशी-हरिदास संस्कृत सीरिज नामकी चार प्राचीन तथा नवीन ग्रन्थमालायें भी प्रकाशित होती हैं । बड़ा सूचीपत्र मुफ्त ।

प्राप्तिस्थानम्-

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी ।

# रसरत्नसमुच्चयस्य-मूलविषयस्याकाराद्यनुक्रमः—


| | पृ० |
|---|---|
| अग्निकुमाररसः | ४९० |
| अग्निकुमाररसः ( द्वितीयः ) | ५१५ |
| अग्निकुमाररसः ( तृतीयः) | ५८९ |
| अग्निकुमाररसः ( चतुर्थः ) | ६११ |
| अग्निजननी वटी | ५२० |
| अग्निजारगुणाः | १३१ |
| अग्निजारपरिचयः | १३१ |
| अग्निजारनिरूपणम् | ,, |
| अग्नितुण्डरसः | ७२० |
| अग्निदाहे विषकल्पः | १०२३ |
| अग्निबन्धलक्षणम् | ३१९ |
| अग्निमुखरसः | ५९६ |
| अग्निरसः | ३९५ |
| अङ्कोलतैलादिलेपद्वयम् | ७०३ |
| अङ्गारकोष्ठी | २७२ |
| अजीर्णम् | ५०५ |
| अजीर्णे | १०५१ |
| अजीर्णकण्टकरसः | ५०६ |
| अञ्जनसत्त्वाहरणम् | १२३ |
| अञ्जनानां सञ्जिरूपणम् | १२० |
| अञ्जनभेदाः | ,, |
| अञ्जनरसबन्धनम् | १२३ |
| अञ्जनशोधनम् | १२३ |

| | पृ० |
|---|---|
| अतिसारः | ४७९ |
| अतिरक्तस्रावे अर्कमूर्तिरसप्रयोग-विधिः | ९१७ |
| अतिरक्तस्रावे शरपुङ्खाप्रयोगः | ,, |
| अतिसारे विसूच्याञ्च रसकल्पः | १०५० |
| अदीक्षितस्य रसविद्यासाधनवैफल्यनिर्देशः | २१४ |
| अधमादिकथनम् | १७२ |
| अधिकारान्तरोक्तौषधप्रयोगोपदेशः | ७६७ |
| अधः पातनयन्त्रम् | २४८ |
| अधःपातनविधिः | ३०० |
| अध्यायपठनफलम् | २४५ |
| अनिलारियोगः | ७३७ |
| अनिरुत्थलौहस्य मारणम् | ९८४ |
| अनुचरगुणाः | २०४ |
| अनुक्तपुटमानेकर्त्तव्यनिर्देशः | २८१ |
| अन्तर्मृतापत्याया लक्षणम् | ८०० |
| अन्त्रवृद्धौ मांसरसः | ५८१ |
| अन्त्रवृद्धौ द्वितीयामांसरसः | ५८१ |
| अन्यत् त्रिफलारसायनम् | ९३७ |
| अन्यविधदलम् | २२७ |
| अन्यसारादितीक्ष्णलौहगुणाः | १७१ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| अन्यो रसकल्पः | १०६१ | अभ्रकादिप्रलेपः | ९२० |
| अन्यरसकल्पे कल्पान्तरम् | १०६१ | अभ्रप्रयोगः | ६८ |
| ,, ,, ,, | ,, | अभ्रमारणम् | ६६ |
| ,, ,, ,, | १०६२ | ,, | ६३ |
| ,, ,, ,, | ,, | अभ्रशोधनमारणे | ६२ |
| अपचीगण्डमालाचिकित्सा | ८६२ | अभ्रकसत्त्वपातनम् | ६४ |
| अपचीघ्नतैलाख्यविषकल्पः | १०२९ | अभ्रकसत्त्वपातनप्रकारान्तरम् | ६४ |
| अपच्यादौ गुञ्जादिलेपः | ८८४ | अमृतवटी | ५१६ |
| अपच्यादौ विषकल्पः | १०२९ | अमृतार्णवरसः | ६१६ |
| अपच्यां कृतमालादि घृताख्यो विषकल्पः | ,, | ,, | ९६१ |
| अपच्यां गिरिकर्णिकाप्रयोगः | ८८४ | अम्लपित्ते सामान्योपायाः | ६२८ |
| अपस्मरः | ८२० | अमृतप्राशचूर्णम् | ७६८ |
| अपस्मारे पर्पटीरसप्रयोगविधिः | ७३८ | अमृतहस्तवैद्यलक्षणम् | २२१ |
| अपस्मारादौ अन्ययोगः | १०५६ | अम्लपञ्चकम् | २८४ |
| अपस्मारहरनस्यम् | ७३९ | अम्लपित्त-चिकित्सा | ६२३ |
| अपस्मारसम्प्राप्तिलक्षणे | ८२० | अम्लपित्तादौ चतुर्दशो लौहकल्पः | १००० |
| अपस्मारनाशनरसः | ८२१ | अम्लवर्गः | २८४ |
| अपस्मारादौ रसकल्पः | १०५६ | अयोग्यशिष्याः | २०४ |
| अपस्मारचिकित्सा | ८२१ | अर्द्धावभेदके गिरिकर्णीप्रयोगः | ८६५ |
| अपस्मारहरो योगः | ७३९ | अरिष्टलक्षणे त्रयोविंशलौहकल्पः | १००४ |
| अपुनर्भवलक्षणम् | २२९ | अरुचिस्तस्या निदानम् | ४३५ |
| अप्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम् | १३९ | अरुचि-चिकित्सा | ,, |
| अभिष्यन्दहरो योगः | ८४३ | अरुचेः सलक्षणभेदाः | ,, |
| अभिषेकः | २३५ | अर्कक्षीरादिलेपः | ४७५ |
| अभ्रकगुणाः | ५८ | अर्कपत्रप्रयोगः | ८४७ |
| अभ्रकमारणे मतान्तरम् | ६३ | अर्कादियोगः | ३९६ |
| अभ्रकभेदाः | ६० | अर्कमूर्तिरस्य प्रयोगविधिः | ८१९ |
| | | अर्कैलः | ४६४ |

अर्केश्वररसः ७२८
अर्धचन्द्राकृतिखल्लनिर्देशः २६२
अर्धशूले मरिचप्रयोगः ८६६
अर्बुदभेदः ८८१
अर्बुदे सामान्योपायाः ,,
अर्बुदहररसः ,,
अर्शः ४५०
अर्शःकुठाररसः ४५३
,, ४६७
अशुद्धतालसेवनदोषाः ११६
अशुद्धशुद्धदोषगुणाः ११९
अशुद्धापक्कलोहदोषाः १८२
अशुद्धाभ्रस्य दोषाः ६१
अशुद्धामारितस्वर्णदोषाः १५८
अशुभरीतिलक्षणम् १९३
अशुद्धलौहस्य दोषाः १६९
अशोधितामारितस्वर्ण दोषाः १५६-१५८
अशोधितमारितलोहस्य दोषाः १६१
अर्शःकुठारलेपः ४७४
अर्शोघ्नवटकम् ४५६
अर्शोघ्नी वटिका ४५७
अर्शोघ्नशौचः ४७४
अर्शोघ्नीवर्तिः ,,
अर्शसि ( रसकल्पः ) १०५०
अर्शोहरयोगः ४७३
अश्मर्याविषकल्पः १०१८
अश्वत्थिवृक्षे शिलादिलेपः ७०३
अवस्थाविशेषे विषस्यापकरत्व-निर्देशः १०१०
अश्मरीहरयोगः ५२९
अश्वगन्धाप्रयोगः ७८८
अश्वगन्धाघृतम् ८१२
अश्वगन्धावन्ध्याप्रयोगौ ९२१
अष्टमासिकरसायनम् ९३०
अष्टलोहानां द्रावणम् १८३
अष्टलोहानां द्रावणे मत्रान्तरम् ,,
अष्टलौहपूजाक्रमः २१२
अष्टादशसंस्काराः २९२
अष्टौ महारोगाः ७२४
असम्यङ्मारितलौहस्य लक्षणम् ९८३
अस्थिभग्नेलाक्षादिप्रलेपः ९१२
अस्थिस्रावे १०५८
अस्पर्शवाते त्रिगन्धप्रयोगः ७३४
अस्पर्शवाते हियावलीप्रयोगः ,,
आखुविषे विषकल्पः १०३४
आखुविषे शिरीषप्रयोगः ९२२
आचाररसायनम् १०६६
आनन्दभैरवी वटी ५२९
आनन्दभैरवरसः ४८१
आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलम् ५८०
आन्त्रवृद्धौ पानीयतैलान्तरं घृतञ्च ,,
आन्त्रवृद्धौ सामान्योपायाः ५७९
आभासबन्धः ३११
आमवाते एरण्डतैलप्रशंसा ७३७
आमवाते वातारिरसप्रयोगोपदेशः ७३६
आमवातः ,,
आयुर्वेदोपदेशस्यावश्यपालनी-योक्तिः १०६७

| | | | |
|---|---|---|---|
| आरोग्यवर्धिनी गुटिका | ६८५ | उदरे विरेचनविधिः | ६३६ |
| आरोग्यसागररसः | ६४८ | उदावर्तः | ४७६ |
| आरग्वधादितैलम् | ७०६ | उदावर्तहरघृतम् | ४७७ |
| आरोटबन्धः | ३१० | उदावर्ताश्मर्योः विषकल्पः | १०१८ |
| आवापः | २३४ | उन्दुरुविषे | १०५९ |
| आहरणविधिः | ७१ | उद्घाटनलक्षणम् | २४४ |
| इन्द्रवारुणिकादिचूर्णम् | ६१५ | ऊर्ध्वश्वासारिः | ३९९ |
| इन्द्रवारुणीप्रयोगः | ७६६ | उन्मत्तरसः | ३७० |
| इन्द्रलुप्ते गुञ्जाप्रयोगः | ८६८ | उन्मादचिकित्सा | ८१० |
| इन्द्रलुप्ते भल्लातादिलेपः | ८६७ | उन्मादः | ७४० |
| इष्टिकायन्त्रम् | २५७ | उन्मादस्य निदानसम्प्राप्ती | ८१८ |
| उत्तमभस्मलक्षणम् | २३० | उन्मादरोगः | ,, |
| उत्तममध्यमराजावर्त्तलक्षणम् | १५१ | उन्मादरोगे सामान्योपायाः | ८१९ |
| उत्तमरौप्यलक्षणम् | १५९ | उन्मादलक्षणम् | ८१९ |
| उत्तमादिवराटिका | १३० | उन्मादे उपचारविशेषाः | ७४१ |
| उत्तरोत्तरमधिकगुणकरं लौहम् | १८४ | उन्मादे पर्पटीरसप्रयोगोपदेशः | ,, |
| उत्थापनलक्षणम् | २३२ | उपकरणानां पूजाविधिः | २१२ |
| उत्थापनसंस्कारः | २९८ | उपजिह्वायां निर्गुण्ड्यादियोगः | ८५९ |
| उत्थापनादिलक्षणम् | ३३७ | उपदंशहरो धूपः | ९०० |
| उदयभास्कररसः | ५५८ | उपदंशादिप्रतीकारः | ९११ |
| ,, | ६०७ | उपरसानां नामानि | ९४ |
| उदयादित्यरसः | ७०१ | उपरसाः | २११ |
| उदयादित्यरसः | ९२६ | उपलनामानि | २१९ |
| उदयमार्त्तण्डरसः | ६३९ | उपलपर्यायाः | २८१ |
| उदरघ्नरसः | ६३३ | उपविषवर्गः | २८६ |
| उदररोगे सामान्योपायाः | ६४२ | उमापतिरसः | ९५९ |
| उदरादिचिकित्सा | ६३१ | उमाशम्भुरसः | ५४४ |
| उदरे | १०५२ | उमाप्रसादनो रसः | ३५४ |

उद्ध्वाधः पातनयोः सङ्ख्या निर्देशः ३००
एककोलिसकलक्षणम् २३१
एकत्रिंशाङ्गवर्तिः ८३८
एकाङ्गवाते पर्पटीरसप्रयोगविध्यन्तरम् ७६५
एरण्डक्षारम् ५९४
एरण्डतैलत्रिफलादिसिद्धघृतमानन्दभैरवोपदेशश्च ७६४
ऐकाङ्गवातः ७४२
ऐलेयकप्रयोगः ७७२
ऐलेयकतैलम् ७७०
ऐलेयसर्पिः ७७१
औषधीनां गुणदोषकरणे कारणम् १०६५
औषधसेवनविधिः १०६६
ककारादिनिषेधस्यापवादः ३३५
कक्षग्रन्थ्यादौ पुत्रजीवप्रयोगः ८८०
कक्षाग्रन्थौशिग्रुप्रयोगः ८९६
कक्षाग्रन्थौविषादिलेपः ,,
कक्कुभाद्यं चूर्णम् ४३९
कङ्कुष्ठगुणाः १२५
कङ्कुष्ठनिरूपणम् १२४
कङ्कुष्ठशोधनम् १२५
कङ्कुष्ठोत्पत्तिवर्णनम् १२४
कङ्कुष्ठोत्पत्तौ मतान्तराणि १२४
कच्छपयन्त्रम् २४८
कज्जलयोगः ४०८
कज्जली २२५
कज्जलीबन्धलक्षणम् ३१४
कडारमुण्डलक्षणम् १६९
कणास्वर्णप्रयोगः ८०९
कण्ठशालूकादौ पारदादिप्रलेपः ८६१
कण्डूव्रणादिहरःशिलादिप्रलेपः ७१८
कण्डूहरप्रयोगः १००
कण्ड्वादौ काञ्चनीप्रयोगः ९०१
कण्ड्वादौ रसादिप्रलेपः ९०३
कदरे यवचिञ्चादिकषायः ,,
कनकसुन्दररसः ४१८
कनकसुन्दररसः ४९१
कनकसुन्दररसः ४६२
कनकसुन्दररसः ६७२
कन्दविषाणां नामानि १००८
कन्दुकयन्त्रम् २६१
कफकुष्ठहररसः ६६४
कपोतपुटम् २७८
कफज्वरलक्षणम् ३३८
कफरोगे क्रियासूत्रम् ४१७
कमलाविलासरसः ९४१
कामलाश्वयथुपाण्डुरोगेषु सामान्योपायः ६५९
कम्पिल्लः १२६
कम्पिल्लगुणाः १२७
करञ्जबीजादिप्रलेप अहिनिर्मोकस्तुहीक्षीरौ च ८०१
कर्कटादिकन्दविषाणां लक्षणम् १००८
कर्णमूलस्फोटहरःकेतकादिलेपः ८४८

कर्णगलादिस्फोटहरः पुत्रजीवलेपः ८४८
कर्णपालीवर्धको मुषलीप्रयोगः ८४९
कर्णरोगचिकित्सा ८४३
कर्णामयघ्नतैलम् ,,
कर्णरोगः ८४५
कर्णरोगहरी वज्रादिवटिका ८४६
कर्णरोगनामानि ८४५
कर्णवर्धकचर्मचेटप्रयोगः ८४९
कर्णवृद्धिकरोवराहतैलप्रलेपः ,,
कर्णशूले तिलपर्णीप्रयोगः ८४७
कर्णशूले लवणार्द्रकप्रयोगः ,,
कर्णशूले विषकल्पः १०२७
कर्णशूले सामान्योपायाः ८४७
कर्तव्यनिर्देशः ८७५
कर्पूरादिप्रलेपः ९७८
कर्पूरशिलाजतुनो लक्षणादिकम् ८४
कल्कबन्धलक्षणम् ३१३
कस्मै किमर्थं रसविद्या दातव्या तन्निर्देशः २१५
कल्पयुक्तशास्त्रम् २०३
काकतुण्ड्यागुणाः १९३
काकतुण्डीलक्षणम् १९२
काचान्यहराञ्जनम् ८४२
काचे विषकल्पः १०२५
काञ्जनीप्रयोगः ५९५
काञ्जन्यादिप्रयोगः ७१८
कान्तरसायनम् ९३६
कान्तरसः ३५९
कान्तलोहस्य अन्यविधिः १८१
कान्तलौहस्य गुणाः १७७
कान्तलौहस्य ग्राह्याग्राह्यनिर्देशः १७३
कान्ताभ्रकरसायनम् ९३९
कान्तलौहभेदाः १७१
कान्तलोहलक्षणम् १७३
कान्तलौहगुणाः १७४
कान्तलौहस्य लक्षणम् १८०
कान्तलौहस्य रामराजीप्रोक्तगुणाः १८०
कान्तलौहस्य विशेषमारणम् १८३
कान्तलौहस्य शोधनम् १८०
कान्तलौहस्य रामराजीप्रोक्तशोधनम् १८०
कामदेवरसः ९४७
कामकलाख्यरसः ९४६
कामधेनुरसः ९५६
कामला ६१४
कामलायाम् १०५२
कामेश्वरमोदकः ९७३
कामलाहरमञ्जनान्तरम् ८५२
कामलाहराञ्जनम् ,,
कामलाप्रणुद्रसः ६५४
कामेश्वररसः ६५६
काललौहलक्षणम् १७०
कालविध्वंसनरसः ६४४
कालस्फोटादौपुत्रजीवप्रलेपः ८७९
कालस्फोटे गुञ्जापत्रादिचूर्णम् ८८०
कालस्फोटे विष्णुक्रान्तादिप्रलेपः ,,
कालाग्निरसः ८७५

| | |
|---|---|
| कालिनीलक्षणम् | २०९ |
| कालिन्यभावे तदनुकल्पविधिः | ,, |
| काश्र्य–चिकित्सा | ६१६ |
| काश्र्ये रसकल्पः | १०५५ |
| काश्र्यहरयोगः | ९७६ |
| काश्र्यहरयोगत्रयम् | ,, |
| कासः | ३९० |
| कासघ्नधूमद्वयम् | ३९६ |
| कासनाशनरसः | ३९१ |
| कासहररसः | ,, |
| कासीसप्रयोगः | ११३ |
| कासीसबद्धरसः | ५४८ |
| ,, | ६९७ |
| कासीसभेदाः | १११ |
| कासीसरसायनम् | ,, |
| कासीसशोधनम् | ११२ |
| कासीस शोधनान्तरम् | ११३ |
| कासीससत्त्वग्रहणनिर्देशः | ११२ |
| कासे | १०४९ |
| कासे सामान्योपायाः | ३९६ |
| कांस्यगुणाः | १९५ |
| कांस्यमारणम् | १९६ |
| कांस्यमारणे मतान्तरम् | ,, |
| कांस्यम् | १९५ |
| कांस्यशोधनम् | १९६ |
| कांस्योत्पत्तिवर्णनम् | १९५ |
| किट्टात्सत्त्वग्रहणम् | ६५ |
| किलासे रसकल्पः | १०५४ |
| किलासनाशनरसः | ७०१ |
| किमिकर्णारितैलम् | ८४७ |
| किमिज्वरे आखुपर्णीप्रयोगः | ७२१ |
| किमिलक्षणम् | ७२० |
| किमिहररसः | ७२२ |
| किमौ पर्पटीप्रयोगोपदेशः | ७२१ |
| क्रियाविशेषेण जलूकाया गुणवि० | ३२२ |
| क्रियाहीनबन्धः | ३१२ |
| कीटमर्दनरसः | ७२१ |
| कीटविषे वृश्चिकविषे च मूलविषस्य मात्रा | १०३९ |
| कुक्कुटपुटम् | २७८ |
| कुक्कुटास्थिलेपः | ८७७ |
| कुङ्कुमादिनस्यम् | ८५२ |
| कुष्माण्डखण्डलेहः | ६२७ |
| कुण्ठमुण्डलक्षणम् | १६८ |
| कुण्डलचिकित्सा | ८१५ |
| कुनखे अभयाप्रयोगः | ८९६ |
| कुनखे कुष्ठादिप्रलेपप्रयोगः | ,, |
| कुनखे पुत्रजीवप्रयोगः | ,, |
| कुनखे स्नुहीक्षीरादिप्रलेपः | ८९५ |
| कुन्तवेधलक्षणम् | २४३ |
| कुमारबन्धलक्षणम् | ३१७ |
| कुमार्यादिलेपः | ७१८ |
| कुम्भस्थापनादिशिष्यदीक्षादानविधिः | २०८ |
| कुवैद्यवर्जनोपदेशः | १०६७ |
| कुष्ठकुठाररसः | ६७६ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| कुष्ठकुठाररसः | ६९४ | कृत्रिमाकृत्रिमलौहनिर्देशः | २८१ |
| कुष्ठघ्नो लेपः | १०१९ | कृमिचिकित्सा— | ७२० |
| कुष्ठजिद्रसः | ६६९ | कृमिघ्नरसः | ७२२ |
| कुष्ठनाशनरसः | ६६८ | कृमिदन्ते अभयादिगुटिका | ८६० |
| ,, | ६८५ | कृमिदन्ते विशालाधूमः | ,, |
| कुष्ठरोगः | ६६२ | कृमिदन्ते कासीसादिगुटिका | ,, |
| कुष्ठविध्वंसनो लेपः | ७१९ | कृमिशूलहरो रसः | ७२३ |
| कुष्ठविद्रावणतैलम् | ७०८ | कृमौ रसकल्पः | १०५५ |
| कुष्ठहरतैलम् | १०२१ | कृष्णीकरणयोगः | ७०५ |
| कुष्ठादिहररसायनम् | ९३५ | कृष्ट्या उपयोगः | २२६ |
| कुष्ठादौ चन्दनादितैलम् | १०२१ | कृष्णमिश्रश्वेतगुञ्जाबीज-तैलपातनविधिः | २०२ |
| कुष्ठान्तपर्पटीरसः | ६९६ | कृष्णवर्गः | २८८ |
| कुष्ठामयघ्नगणः | ७१३ | केशपाते शृङ्गाटादितैलम् | ८६७ |
| कुष्ठारितैलम् | ७१२ | केशपाते हरिद्रादिलेपः | ,, |
| (सर्वेषां) कुष्ठिनां सामान्योपायाः | ७१५ | केषां रससिद्धिर्भवतीत्याह | २२२ |
| कुष्ठे | १०५३ | कोकिलाक्षादिकषायः | ७३६ |
| कुष्ठेऽन्योविषकल्पः | १०१९ | कोष्ठिकानिर्देशः | २७१ |
| ,, एकोनविंशो लौहकल्पः | १००२ | कोष्ठीयन्त्रम् | २५५ |
| ,, गन्धकप्रयोगः | १०० | क्षयकासान्तको योगः | ३९८ |
| ,, रसकल्पः | १०५४ | क्षयशामकरसः | ४२४ |
| ,, विषकल्पः | १०१९ | क्षयादौ खण्डखाद्याख्यलौहकल्पः | ९९५ |
| ,, विषकल्पः | १०२० | क्षयादौ नवमो लौहकल्पः | ९९९ |
| ,, सप्तदशो लौहकल्पः | १००२ | क्षयादौ रसकल्पः | १०४५ |
| कुष्माण्डस्वरसप्रयोगः | ५६९ | क्षये | १०५० |
| कुसुमायुधः | ९५१ | क्षये विषकल्पः | १०१७ |
| कूपीनिर्माणद्रव्याणि | २१९ | क्षारताम्ररसः | ६०३ |
| कूपीपर्यायाः | ,, | क्षारपञ्चकम् | २८२ |
| कृत्रिमरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च | १६१ | | |

क्षारप्रयोगः ५३३
क्षारबन्धः ३१२
क्षारत्रयम् २८२
क्षारवटी ६१४
क्षारादिकानां कार्यम् २८९
क्षुद्ररोगे पर्पटीप्रयोगविधिः ६९५
क्षेपवेधलक्षणम् २४३
क्षुद्ररोगाणां नामानि ८८५
खगेश्वररसः ६८०
खनिजरौप्योत्पत्तिर्गुणाश्च १६०
खदिरादियोगः ६४२
खनिजस्वर्णोत्पत्तिस्तल्लक्षणगुणाश्च १५५
खरलौह गुणाः १७१
खरलौहलक्षणम् १६९
खर्परस्य भस्म तथा सत्त्वपातनविधिश्च ९१
खर्परशोधनम् ९०
खर्परस्य सत्त्वपातने मतान्तरम् ८३
खर्परसत्त्वप्रयोगविधिः ,,
खर्परसत्त्वमारणम् ९३
खलतौ विषकल्पः १०२८
खल्लयन्त्रम् २६२
खल्लयन्त्रस्य त्रैविध्यनिर्देशः ,,
खालित्ये स्नुह्यादितैलं विषतैलञ्च ८६९
खुरकवज्रशोधनम् १८५
खुरकवज्रस्य मिश्रकवज्रस्य च लक्षणम् १८५
खोटबन्धः ३१३
गगनगर्भो वटी ७५६
गजपुटम् २७७
गण्डमालापचीलक्षणम् ८८२
गण्डमालायां गन्धकादिप्रयोगः ८६३
,, जैपालप्रयोगः ८६३
,, छुछून्दरीतैलम् ८८४
,, ब्रह्मदण्डीयमूलप्रयोगः ८६३
गण्डमालायामर्कक्षीरादिलेपः ८८३
गण्डमालायामुदयभास्करः ८७८
गण्डमालायां सहदेवीप्रयोगः ८८४
,, सुखारुण्यादियोगः ८८३
गन्धकगुणाः १०१
गन्धकगुणाः ९६
गन्धकतैलम् १०१
गन्धकद्रुतिः ९८—६३०
गन्धक-द्रुति-प्रयोगविधिः ९९
गन्धकप्रयोगः ९५
गन्धकभेदाः ९५
गन्धकशुद्धिः ९७
गन्धकशुद्धौ मतान्तरम् ९७—९८
गन्धकसेवने वर्ज्यानि ९९
गन्धकस्यान्यविधप्रयोगविधिः ,,
गन्धकादिप्रयोगः ७१९
गन्धकादिपोट्टल्याः प्रयोगान्तरम् ५८३
गन्धकादिपोट्टलीरसः ५८२
गन्धकोत्पत्तिः ९४
गन्धपाषाणयोगः कफे भेषजविशेषनिर्देशश्च ४१२

गन्धपिष्टीतैलम् ७०७
गन्धाश्मयोः स्वरूपम् ५८
गन्धाश्मगर्भरसः ७२९
गन्धोत्पलजटादिकल्कः ८१०
गरविषे कनकादिवटी ९२३
गरादौ द्वादशत्रयोदशलोहकल्पौ १०००
गरूडाञ्जनम् ८३१
गर्भद्रुतिलक्षणम् २४१
गर्भनिर्गतबालस्य सामान्योपायाः ८०९
गर्भप्रसवसामान्योपायाः ८०१
गर्भयन्त्रम् २५१
गर्भस्रावणे चूर्णप्रयोगः ९१६
गर्भस्रावणे एरण्डप्रयोगः ,,
गर्भस्रावणे चित्रकप्रयोगः ९१७
गर्भोजनने धुस्तूरप्रयोगः ९१६
,, सैन्धवप्रयोगः ,,
गर्भिणीक्षये मरिचप्रयोगः । ७९६
गर्भिणीज्वरहरः पयस्यादिकषायः ७९३
,, पाठादिकषायः ७९२
गर्भिणीज्वरहरश्छिन्नादिकषायः ७९३
गर्भिणीरोगः ७९१
गर्भिणीरोगापनयन—गर्भपोषण सामान्योपायाः ७९१
गर्भिणीज्वरहानिः ७९४
गर्भिण्यतीसारहरो वृक्षकत्वगादिकषायः ७९४
गर्भिण्यतिसारहरौ श्रीपर्ण्यादिबला दिक्काथौ ७९४
गर्भिण्या अग्निमान्द्ये अजमोदादिचूर्णम् ७९६
गर्भिण्याः पित्तार्तिहरोशष्ट्यादिक्काथः ७९५
गर्भिण्या मासानुमासिकयोगाः ७९७
गर्भिण्या मूत्ररोगेश्वदंष्ट्रादिकषायः ,,
गर्भिण्या वातरोगे बालबिल्वादिसाधितक्षीरप्रयोगः ,,
गर्भिण्या वान्तौ लाजादिकषायः ७९६
गर्भिण्या हिक्कायां बालबिल्वादिक्काथः ७९६
गर्भिण्याः शोथहरोपायः ७९५
गर्भिणीशोथहरः पुनर्नवादिलेपः ,,
गर्भिण्याः श्वासकासहरस्तिक्तकादिकषायः ७९६
गर्भिण्युदावर्त्तादिहरः पुनर्नवादिकषायः ७९४
गर्भिण्युदावर्तादिहरो वर्षाभूक्काथः ७९५
गलकीलके आमलकप्रयोगः—विषतिन्दूकादि वटी च ८५५
गलकीलके भल्लातकप्रयोगः ८५६
गलकीलके सैन्धवप्रयोगः ,,
गलकीलेसैन्धवप्रयोगः ८६२
गलत्कुष्ठलक्षणम् ६६२
गलदाहे करञ्जमज्जापथ्याप्रयोगौ ९०५
गलदाहे सैन्धवादिचूर्णम् ९०५
गलरोगे मण्डूरलेपः ८६२
गव्यघृतस्य विषघ्नत्वोक्तिः १०३६

| | |
|---|---|
| गवाक्ष्यादिनस्यम् । | ७३८ |
| गारकोष्ठी | २७३ |
| गारमूषा | २६७ |
| ग्रासमानम् | २३९ |
| ग्रासयोग्याभ्रम् | ६१ |
| ग्राह्यप्रवालस्वरूपः | १३८ |
| गिरिसिन्दूरगुणाः | १३२ |
| गिरिसिन्दूरनिरूपणम् | १३२ |
| गुञ्जायुद्वर्तनम् | ७१७ |
| गुडनागरप्रयोगः | ६३८ |
| गुडमार्कण्डी | ५६७ |
| गुडादिनस्यम् | ८६५ |
| गुदकीटचिकित्सा | ८१४ |
| गुदकीटस्य निदानलक्षणे | ८१३ |
| गुदपाकचिकित्सा | ८१४ |
| गुरुसन्तोषस्य सर्वसिद्धिहेतुत्वनिर्देशः | २१५ |
| गुल्मः— | ५८२ |
| गुल्मनाशनरसः | ५९२ |
| गुल्मप्लीह्नोः विषकल्पः | १०१८ |
| गुल्मे विषकल्पः | १०१८ |
| गुह्यादिगतपीटिकायमश्वत्थादिप्रलेपः | ९०० |
| गृध्रस्यां रसकल्पः | १०५५ |
| गैरिकभेदाः | ११० |
| गैरिकम् | ११० |
| गैरिकशोधनम् | १११ |
| गैरिकस्य शोधनं सत्त्वपातनञ्च | १५३ |
| गोक्षुरादिचूर्णम् | ५२८ |
| गोक्षुरप्रयोगः | ५३१ |
| गोमक्षिकानिःसारणार्थं तगरवर्णादिकम् | ८४८ |
| गोमेदः | १४६ |
| गोमेदगुणाः | ,, |
| गोमेदनिरुक्तिः | ,, |
| गोर्वरपुटलक्षणम् | २७९ |
| गोर्वरस्वरूपम् | २७८ |
| गोलमूषा | २७० |
| गोस्तनीमूषा | ,, |
| गौरिपाषाणः | १२५ |
| गौरिपाषाणशोधनम् | १२८ |
| गौरिपाषाणसत्त्वगुणाः | १२९ |
| गौरिपाषाणसत्त्वग्रहणम् | ,, |
| ग्रन्थकर्तुर्विज्ञप्तिः | १०७१ |
| ग्रन्थकर्तॄणां नामानि | २ |
| ग्रन्थस्योपसंहारः | १०६५ |
| ग्रन्थान्तरोक्ताम्रप्रयोगः | १६७ |
| ग्रन्थौ मसूरिकायाञ्च | १०५७ |
| ग्रन्थ्यादौ पुनर्नवादिप्रलेपः | ८८० |
| ग्रन्थिलक्षणं व्युत्पत्तिश्च | ८७८ |
| ग्रस्तयन्त्रम् | २५९ |
| ग्रहघ्नधूपः | ८१९ |
| ग्रहणीहररसः | ४९२ |
| ग्रहनाशिनीगुटिका | ८०८ |
| ग्रहणीकपाटरसः | ५०२ |
| ग्रहणीगजकेसरीरसः | ४९७ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ग्रहण्यादौ पञ्चदशो लौहकल्पः | १००० | चर्मकुष्ठे पर्पटीरसप्रयोगविधिः | ७१६ |
| ग्रहण्यामन्योपायः | ५०५ | चलदन्ते धातुबद्धरसगुटिकोपदेशः | ८६४ |
| ग्रहण्यां विषकल्पः | १०१७ | चलदन्ते जात्यादिदन्तधावनम् | ८६० |
| ग्रहण्यां सामान्योपायाः | ५०४ | चलदन्ते मूलकबीजप्रयोगः | ८६१ |
| ग्रहप्रसादकरत्नानि | १३५ | चलदन्ते हेमतारादिगुटिका | ८६४ |
| ग्रहानुसारेण रत्नपरिगणनम् | १३६ | चषकस्य पर्यायाः | २९९ |
| घटयन्त्रम् | २५६ | चातुर्थिकगजांकुशरसः | ३६८ |
| घृताख्यो विषकल्पः | १०२९ | चातुर्थिकहरो रसः | ३६७ |
| घोषाकृष्टताम्रलक्षणम् | २३२ | चारणलक्षणम् | २४१ |
| चक्रिकाबन्धरसः | ७७८ | चालनीभेदलक्षणादिकम् | २१८ |
| चक्रिकाबद्धरसप्रयोगोपदेशः | ८७५ | चिकित्साकर्तव्यावधिः | १०६९ |
| चण्डभैरवरसः | ८२५ | चिकित्साकर्मणि प्रमादे दोषाः | १०६७ |
| चण्डसङ्ग्रहगदैककपाटरसः | ४९२ | चिकित्सायाः सर्वत्रसाफल्यतोक्तिः | १०६८ |
| चतुर्थीलोहकल्पः | ९९७ | चिन्तामणिरसः | ५९९ |
| चतुःसुधारसः | ७४५ | चुम्बकर्षकलक्षणम् | १७२ |
| चन्द्रकलारसः | ३८६ | चुल्लका | २३४ |
| चन्द्रप्रभावटिका | ७०० | चूर्णाञ्जनम् | ८२४ |
| चन्द्रप्रभावटी | ५३९ | छर्दिदाहयोः | १०५० |
| चन्द्रार्कम् | २२८ | छर्दिरोगः | ४३६ |
| चन्द्रसूर्यरसः | ३५२ | छर्द्यविषकल्पः | १०१७ |
| चन्द्रावलेहः | ७६७ | छिन्नातैलम् | ८१७ |
| चन्द्रोदयरसः | ३७९ | जन्तुघ्नी गुटिका | ६९० |
| चपलः | ८६ | जयन्तीप्रयोगः | ४२४ |
| चपलकार्यम् | २३३ | जयपालरसः | ६५१ |
| चपलगुणाः | ८८ | जयसुन्दररसः | ७७५ |
| चपलशोधनम् | ८९ | जयागुडिकाख्योविषकल्पः | १०११ |
| चपलसत्त्वपातनम् | ,, | जयागुटि | १०१३ |
| चराचरवराटीलक्षणम् | ५१० | जयाप्रयोगः | ८५६ |

जयावटिकाख्यो विषकल्पः १०३९
जरादौ चतुर्विंशलौहकल्पः १००४
जरायानिदानम् ९२५
जरारोग-चिकित्सा ९२५
जलबन्धलक्षणम् ३१९
जलमञ्जरीरसः ३७८
जलशङ्खनीलयोः स्वरूपम् १४५
जलूकानिर्माणे प्रकारान्तरम् ३२४,३२५,३२६
जलूकाया गुणविशेषः ३२२
जलूकायाःत्रिविधप्रमाणनिर्देशः ,,
जलूकाबन्धः ३२१
जलूकायाः संस्कारविशेषः ३२३
जलोदरलक्षणम् ६३१
जारणाभेदः २४१
जारणाभेदनिर्देशः २३९
जारणायन्त्रस्य प्रकारान्तरम् २५०
जारणायन्त्रम् २४९
जारणालक्षणम् २४१
जाड्ये १०५७
जातिभेदेनाधिकारीभेदकथनम् ९४१
जात्यादिघृतम् ८७०
जीर्णज्वरादौ अष्टमो लौहकल्पः ९९८
जीर्णज्वरादौ विषकल्पः १०१६
जीर्णज्वरारिरसः ३८०
जीर्णज्वरे विषकल्पः १०१६
जीवननामारसः ५१८
जैपालतैलपातनम् २०२
ज्योतिष्मती तैलरसायनम् ९३५
ज्वरगजहरिरसः ३४३
ज्वरचिकित्सा ३३६
ज्वराङ्कुशरसः ३५५
ज्वरे रसकल्पः १०४९
टङ्कणादियोगः ६५४
टीकाकारकृतमङ्गलाचरणं व्याख्या-प्रयोजनञ्च १
डमरुयन्त्रम् २५८
डेकीयन्त्रम् २४९
ढालनलक्षणम् २३२
तक्रासवः ५९३
तत्तद्रोगेषु विषकल्पः १०३१
तत्र रास्नादिक्षीरम् ४११
तत्रादौ अम्लपित्तलक्षणम् ६२३
तत्रादौ कौरण्टकादिक्वाथः ८०५
तप्तखल्लप्रमाणनिर्देशः २६३
तप्तखल्लविधिः ,,
तरुणबन्धलक्षणम् ३१८
तस्य स्वभावतः शुद्धत्वनिर्देशः १३१
ताडनस्वरूपम् २३०
ताप्यादिवटकः ९४०
ताप्यादिवटी ८५३
ताम्बूलानुपानवर्जनम् १२६
ताम्र गुणाः १६४
ताम्रद्रुतिः ८२७–८२९
ताम्रद्रुतिरसः ६२५
ताम्रद्रुतिसंज्ञकोलौहकल्पः ९९४

| | | | |
|---|---|---|---|
| ताम्रभस्म | १६५ | तिमिरे द्वितीयो विषकल्पः | १०२४ |
| ताम्रभस्म (करणे) अन्यविधिः | १६६ | ,, तृतीयो ,, | ,, |
| ताम्रभस्मगुणाः | १६७ | तिमिरे विषकल्पः | ,, |
| ताम्रभेदाः | १६३ | तिर्यक्पातनम् | ३०१ |
| ताम्रम् | १६३ | तिर्यक्पातनयन्त्रम् | २५६ |
| ताम्रयोगः | ५६८ | तिलक्वाथः | ५९३ |
| ताम्रवर्तिः | ८२७ | तिलजदीपाञ्जनम् | ८२० |
| ताम्रशुद्धिः | १६५ | तिलप्रयोगः | ९७५ |
| ताम्रशुद्धौ मतान्तरम् | १६५ | तीक्ष्णमुखरसः | ४६६ |
| ताम्रशोधनम् | ९७९ | तीक्ष्णलौहम् | १६९ |
| ताम्रस्य दोषाः | १६४ | तीक्ष्णलौहभेदाः | १६९ |
| ताम्रादिवर्तिः | ८३७ | तीक्ष्णलौहस्य मारणम् | १७६ |
| ताम्राष्टकम् | ६१० | ,, विशेषमारणम् | १७८ |
| तारारक्ती | २२७ | तीक्ष्णविषातियुक्तविषयोश्चिकित्सा | १०३८ |
| तार्क्ष्यगुणाः | १३९ | तुत्थखर्परमारणम् | ८५ |
| तार्क्ष्यम् | ,, | तुत्थसत्त्वपातनम् | ,, |
| तार्क्ष्यसूतः | ९२४ | तुत्थसत्त्वपातने मतान्तरम् | ८६ |
| तालकभेदाः | ११५ | तुवरीनिरूपणम् | ११३ |
| तालकेश्वररसः | ६८२ | तुवरीपरिचयः | ,, |
| तालकसन्निरूपणम् | ११५ | तुवरीभेदाः | ११४ |
| तालसत्त्वपातने मतान्तरम् | ११७ | तुवरीलक्षणगुणाः | ,, |
| तालसत्त्वपातनम् | ,, | तुवरीशोधनम् | ,, |
| तालुकण्टक–चिकित्सा | ८१३ | तुवरीसत्त्वपातनविधिः | ,, |
| तालुकण्टलक्षणम् | ८१२ | तृतीयकान्तरसायनम् | ९३८ |
| तालेश्वररसः | ६६९ | तृतीयत्रिफलारसायनम् | ९३४ |
| तिक्ताद्यं घृतम् | ८१६ | तृतीयमासे नीलोत्पलादिकल्कान्तरम् | ७९२ |
| तिमिरहराञ्जनम् | ८३२ | तृतीयमासे श्रीखण्डादिकल्कः | ,, |
| तिमिरे | १०५७ | | |

तृतीयलौहकल्पः ९९६
तृतीया जयागुटी १०१४
तृतीयो विषकल्पः १०२५
तृष्णारोगः ४४१
तृष्णाहररसः ४४२
तैलपातनम् २०२
तैलपातनविधिः २००
तैलपातनविधौ मतान्तरम् २००, २०१
तैलार्द्रकप्रयोगः ५८०
तोयमृल्लक्षणम् २५८
त्याज्यकांस्यलक्षणम् १९५
त्रिदोषज्वरे १०४९
त्रिदोषाभिष्यन्दे रसेन्द्रवर्तिः ८३६
त्रिनेत्राख्यरसप्रयोगः ६५१
त्रिनेत्ररसः ५९८
त्रिपुरान्तकरसः ६७३
त्रिफलारसायनम् ९३३
त्रियोनिरसः ६५५
त्रियोनिरसप्रयोगः ७३५
त्रिवार्षिकरसायनम् ९३१
त्रिविक्रमरसः ५२८
त्रिविधमनःशिलालक्षणानि ११९
त्रिविधविषनिर्देशः ९१९
त्रैलोक्यडम्बररसः ३४१
त्रैलोक्यतिलकरसः ४६८
त्रैलोक्यविजयतैलम् ६९६
त्रैलोक्यसुन्दररसः ३३६, ३४०, ३५१
त्र्यम्बकेश्वररसः ७५५
दग्धहस्तवैद्यलक्षणम् २२१
दग्धशम्बूकादियोगः ५०४
दद्रुकुष्ठविद्रावणरसः ६७९
दद्रुकुष्ठे मयूरक्षारादिलेपः ७१६
दर्दुररसः ४८०
दलम् २२७
दशमूलादिक्वाथः ४३९
दशसारचूर्णम् ६३०
दानविधिः २०८
दारुणतैलम् ८१६
दार्वीप्रयोगः ५७९
दिग्धाहते विषकल्पः १०२८
दीपनलक्षणम् २३९
दीपनसंस्कारः ३०५
दीपिकारसः ३४४
दीपिकायन्त्रम् २४८
दीप्तामरसः ५८६
दुग्धवर्गः २८६
दुःसाध्यरोगे विषकल्पः १०३०
दुर्नामहरो लेपः ४७४
दुष्टव्रणे विषकल्पः १०२८
दूषितव्रणलेखनार्थं पारदादिप्रयोगः ८७२
दृढकेशकरोजातिपुष्पादिप्रलेपः ८६७
देवदालीचूर्णम् ६५२
देवदालीपञ्चाङ्गचूर्णम् ५९३
देवदालीप्रयोगः ७८९
देवदाल्यादिलेपः ४७३
देवदार्वादिचूर्णम् ५९३

देवीपूजनमन्त्रम् २०७
देवीशास्त्रोक्तककारादिगणः ३३३
दोलायन्त्रम् २४६
दोषाः १५६, १५८
द्राक्षादिक्वाथः ३९०
द्रावककान्तलक्षणम् १७२
द्रावकवर्गः २८९
द्रावणादिकर्मसाधने काष्ठनिर्देशः २३१
द्रावणे सूतप्रयोगः ९७७
द्रुतिबन्धलक्षणम् ३१६
द्रुतिसाररसः ७८३
द्रुतीनां दीर्घकालरक्षणोपायः १५२
द्रुतेः स्वरूपम् २४१
द्रुतेर्भेदाः ,,
द्वन्द्वानम् २३४
द्वादशाङ्गवर्तिः ८३९
द्वितीयगन्धाश्मगर्भरसः ७३०
द्वितीयोऽग्निमुखरसः ६०५
द्वितीयकान्तरसायनम् ९३८
द्वितीयक्षारताम्रम् ६०९
द्वितीया जयागुटी १०१३
द्वितीयत्रिनेत्ररसः ६०६
द्वितीयत्रिफलारसायनम् ९३३
द्वितीयदर्दुररसः, ४८१
द्वितीयपाषाणभेदीरसः ५२७
द्वितीयमासे नीलोत्पलादिकल्कः ७९१
द्वितीयमृतसञ्जीवनरसः ३७५
द्वितीयो योगराजगुग्गुलुः ७६०
द्वितीयराजावर्त्तरसः ४४४
द्वितीयविजयभैरवतैलम् ७६२
द्विदोषजत्रिदोषजज्वरकथनम् ३३९
द्वितीयो विषकल्पः १०२५
द्विविधकङ्कुष्ठलक्षणम् १२४
द्विविधखल्लयोः सामान्यलक्षणम् २६२
द्विविधमाणिक्यनिर्देशः १३६
धन्वन्तरिभागः २२४
धन्वन्तरिरसः ६९१
धातुबद्धरसगुटिका ८५३
धातुभस्मनां पृथक् पृथक् तत्तद्रोगेषु प्रयोगः ९९६
धातूनां सामान्यमारणम् ९८१
धात्रीफलस्वरसप्रयोगः ९०४
धान्याभ्रकम् ६३
धान्याभ्रमारणम् ,,
धान्याभ्रलक्षणम् २३०
धूपयन्त्रम् २६०
धूमवेधलक्षणम् २४३
धूमसारादिषडङ्गप्रयोगः ७६५
धूस्तूरपञ्चाङ्गघृतम् ८२४
धौतम् २३३
ध्यानम् २०७
नक्तान्ध्ये अन्यविषकल्पः १०२६
नक्तान्ध्ये पञ्चाङ्गगुटिका ८३३
नक्तान्ध्ये विषकल्पः १०२६
नयनरोगहरावर्तिः ८३४
नवज्वरमुरारिरसः ३८१

| | |
|---|---|
| नवज्वरारिरसः | ३७७ |
| नवज्वरे विषकल्पः | १०१५ |
| नवनीतादियोगः | ३८९ |
| नवनेत्रदात्रीवर्तिः | ८३४ |
| नवसारगुणाः | १३० |
| नवसारनिरूपणम् | १२९ |
| नवसारोत्पत्तिः | १२९ |
| नवाङ्गवटिका | ८२२ |
| नस्यम् | ३७१ |
| नागः | १८८ |
| नागभस्म | १८९ |
| नागस्यनिरुत्थभस्मीकरणे मतान्तरम् | १९१ |
| नागरसायनम् | ,, |
| नागवङ्गकांस्यताम्राणांसामान्य-शोधनम् | १८५ |
| नागवङ्गयुक्तरससेवने प्रतीकारः | १०६४ |
| नागस्य निरुत्थभस्मीकरणम् | १९० |
| नागादिवर्तिः | ८३५ |
| नागशुद्धिः | १८९ |
| नागसम्भूतचपलः | २३२ |
| नागसुन्दररसः | ४८६ |
| नागार्जुनाभ्रम् | ४४० |
| नाभिपाकचिकित्सा | ८१५ |
| नाभियन्त्रम् | २५५ |
| नारायणरसः | ६८७ |
| नालिकायन्त्रम् | २५४ |
| नासारोगाः | ८५० |
| नासिकारोगे सामान्योपायाः | ८५१ |
| निकृष्टमाणिक्यलक्षणम् | १३७ |
| निकृष्टरौप्यलक्षणम् | १६० |
| निधिरक्षायोग्यपुरुषाः | २२१ |
| निम्बादिघृतंक्षीरञ्च | ८१७ |
| नियमनलक्षणम् | २३८ |
| नियामनसंस्कारः | ३०४ |
| निरुत्थलौहस्य लक्षणम् | ९८३ |
| निरुत्थलौहलक्षणम् | २३० |
| निरूत्थलौहस्य परीक्षा | ९८४ |
| निरोधसंस्कारः | ३०३ |
| निर्गुण्डीप्रयोगः | ७६६ |
| निर्गुण्डिकादितैलम् | ८२० |
| निर्गुण्ड्यादिप्रलेपः | ७१७ |
| निर्जीवबन्धलक्षणम् | ३१५ |
| निर्देशः | २६२ |
| निर्बीजबन्धलक्षणम् | ३१५ |
| निर्मुखजारणलक्षणम् | २४० |
| निर्वापणद्रव्यमात्रा | २२९ |
| निर्वापणम् | २२९ |
| निर्वापलक्षणम् | २१५ |
| निश्चन्द्रसचन्द्राभ्रयोर्गुणदोषौ | ६१ |
| निषिद्धद्रव्यव्यवहारजदोषे प्रतीकारः | १०६४ |
| निषिद्धद्रव्यव्यवहारे दोषः | ,, |
| नीलकण्ठरसः | ४०२ |
| नीलिकायां रजन्यादिलेपः | ८५७ |
| नीलनिरूपणम् नीलभेदाः | १४५ |

नीलाञ्जनगुणाः १२३
नृकपालाञ्जनम् ८४२
नेत्रजलस्रावहरो योगः ८४१
नेत्ररोग-चिकित्सा ८२७
नेत्ररोगाणां संख्या ८२६
नेत्ररोगे कान्तनागाख्यैकविंश-
लौहकल्पः १००२
नेत्ररोगे रसकल्पः १०५६
नेत्रशूलघ्नमाञ्च्योतनम् ८४१
नेपालताम्रलक्षणम् ,,
न्यग्रोधादिक्काथः ८१०
पक्तिशूले १०५२
पक्कमूषा २७०
पक्ष्मशाते रसकल्पः १०५६
पञ्चमूलक्काथः ८०५
पञ्चमृत्तिका २८५
पञ्चवक्त्ररसः ३६९
पञ्चविंशादिलौहकल्पचतुष्टयम् १००४
पञ्चमो लौहकल्पः ९९७
पञ्चाङ्गशिरीषप्रयोगः ९२१
पञ्चाननरसः ४४१,६४६
पञ्चामृतारसः ४२४,१०४७
पटलहराञ्जनम् ८३२
पटलहरेन्द्ररसः ८४०
पटोलादियोगः ३८८
पतङ्गीरागः २३४
पत्रतालकलक्षणम् ११५
पद्महस्तवैद्यलक्षणम् २२१
परहितरसः ६८०
परिचयः १३३
परिचारकलक्षणम् २२०
परिभाषा २२४
परिभाषाऽऽवश्यकता २४५
पर्पटरसप्रयोगविधिः ७६४
पर्पटीरसः ४१३
पलितादौ विषकल्पः १०१८
पलितादौ कटुतैलनस्यम् ८६९
पर्पटीरसस्य प्रकारान्तरेण सेवनो-
पदेशः ८२६
पर्पटीरसप्रयोगविधिः ,,
,, ७३८
पर्पटीरसः ८०३
पाक्षिकरसायनम् ९२१
पाठादिघृतम् ९४०
पाण्डुपङ्कशोषणरसः ६५०
पाण्डुरोगः— ६४३
पाण्डुहारीहरीतकी ६५२
पाण्डूरादियोगः ५३१
पाण्ड्वादौ १०५३
पातनपिष्टी २२५
पातनसंस्कारः १९९
पातनलक्षणम् २३७
पातनायन्त्रम् २४७
पातने प्रकारान्तराणि ३००
पातालकोष्ठी २७३
पादकण्डूहरयोगः ९०२

पाददाहे तिलादिचूर्णम् ९०२
पादकण्डूहरं प्रयोगान्तरम् ,,
पादस्फुटने पथ्यामर्दनम् ,,
पानीयकषायविधिः ९७९
पामायां शाखोटकक्वाथः ९०२
पारदजारणम् १०४३
पारदभस्म ३२८
पारदभस्मनि कुपथ्यम् ३३२
पारदभस्मनि पथ्यम् ,,
पारदभस्मप्रकारान्तम् ३२८,३२९,३३०
पारदविकार उपायाः ३३५
पारदस्य विशेषतो महत्ता ६
पारदादिवर्तिः ८३८
पारदे सर्वौषधानामन्तर्भावः ९
पालिकायन्त्रम् २५६
पाषाणभेदीरसः ५२६
पाषाणस्वर्णगैरिकयोर्लक्षणम् ११०
पिञ्जरी २२८
पिण्डतालकगुणाः ११५
पिण्डतालकलक्षणम् ,,
पित्तकुष्ठहररसः ६६३
पित्तज्वरलक्षणम् ३३८
पित्तज्वरे अश्वत्थक्षीरम् ८१०
पित्तज्वरे रोहिणीक्षीरम् ८०९
पित्तपाण्डुवरिरसः ६५०
पित्तरोग-चिकित्सा ६२९, ७६७
पित्तलम् १९३
पित्तलद्रुतिः १९४
पित्तलभेदाः १९२
पित्तलरसायनम् १९४
पित्तान्तकरसः ६२९
पित्ताभिष्यन्दे तीक्ष्णादिवर्तिः ८३७
पित्ताभिष्यन्दे नागादिवर्तिः ,,
पित्तार्शोलक्षणम् ४५१
पित्तार्शोहररसः ४५४
पिनाकादीनां लक्षणानि ६०
पिप्पलीप्रयोगः ६४२
पिप्पल्यादिरसायनम् ९२९
पिल्ले विषकल्पः १०२६
पिष्टिकाबन्धः ३१२
पिष्टी २२५
पिष्टीकरणे मतान्तरम् ,,
पीतवर्गः २८८
पुटयन्त्रम् २५४
पुटस्य फलम् २७५
पुटस्य लक्षणम् ,,
पुण्डरीकप्रयोगः ९७८
पुरावृत्तद्वारा वैद्यस्य सर्वत्र सर्वपूज्यत्वप्रतिपादनम् १०६९
पुष्पकासीसगुणाः ११२
पुष्पधन्वारसः ९६५
पुष्परागः १३९
पुष्परागगुणाः १४०
पुष्परोधे गुडत्र्योषादिचूर्णम् ९१५
पुष्परोधे चणकप्रयोगः ,,
पुष्परोधरक्तगुल्महरयोगद्वयम् ,,

पुष्पहराञ्जनम् ८४१
पुष्पाञ्जनगुणाः १२३
पुष्यानुगं चूर्णम् ९१८
पुंवज्रलक्षणम् १४०
पूतिनस्ये विषकल्पः १०२७
पूयहरो मेघनादस्वरसः ८४८
पूयास्रलक्षणम् ८५१
पूर्णचन्द्ररसः ६१७-९४२, ९६८
पोटबन्धलक्षणम् ३१३
पोट्टलीरसः ५००
पौनर्नवाञ्जनम् ८४१
प्रकारान्तरेण दीपनम् ३०६
प्रकारान्तरेण जलूकानिर्माणम् ३२३
प्रकारान्तरेण शीतभञ्जीरसः ३४६
प्रतापलङ्केश्वररसः ३७१
प्रतापलङ्केश्वरः ६६८
प्रतिवापसमयनिर्देशः २३५
प्रतीकारः १०३८
प्रथमद्वितीयलोहकल्पौ ९९६
प्रथममासे पद्माकादिकल्कः ७९१
प्रभावती वटी ७५२
प्रमेहः ५३३
प्रमेहगजसिंहरसः ५४०
प्रयोगकालभेदेन विषस्य क्रिया विशेषः १०१४
प्रयोगविशेषेण गुणविशेषकथनम् १४४
प्रयोज्यविषाणि १०३७
प्रवालगुणाः १३९
प्रवालनिरूपणम् १३८
प्रवाहिकायाम् १०५१
प्रशस्तकांस्यलक्षणम् १९५
प्रशस्तगोमेदलक्षणम् १४६
प्रशस्ततार्क्ष्यलक्षणम् १३९
प्रशस्तमौक्तिकलक्षणम् १३७
प्रशस्तसस्यकगुणाः ८५
प्रशस्तसस्यकलक्षणम् ८४
प्रसंसिन्यां कारलीकन्दप्रयोगः ८०६
प्रा तस्वर्णस्योत्पत्तिः १५४
प्राणनाथरसः ४३०
प्राणेश्वररसः ३७३
प्लीहि रक्तमोक्षणोपदेशः ५९५
प्लीहिविषकल्पः १०१९
प्लीहादौ १०५२
बद्धरसोपयोगः २३३
बन्धलक्षणम् २३७
बलिवसाख्यगन्धकोत्पत्तिः ९६
बलिसाधने नियोज्यपुरुषलक्षणम् २२१
बहिः शीतलम् २३६
बाधिर्यहरं मुषल्यादिचूर्णम् ८४८
बालकबन्धलक्षणम् ३१७
बालपञ्चामृतम् ८१६
बालरोगः ८०७
बालुकापुटम् २७९
बालुकायन्त्रम् २५३
बालुकायन्त्रस्य प्रकारान्तरम् ,,
बालुकासीसगुणाः ११२

| | |
|---|---|
| बाह्यद्रुतिलक्षणम् | २४१ |
| बिडादिलक्षणम् | २४२ |
| बीजलक्षणम् | २३० |
| बीजादिनिर्देशः | २४० |
| बीजावर्तः | २३५ |
| बुद्धिवर्द्धने विषकल्पः | १०२४ |
| बोलप्रयोगः | ८९८ |
| बोलबद्धरसः | ३९४ |
| ब्राह्मथादिनस्यम् | ७३८ |
| भगन्दरलक्षणम् | ८७३ |
| भगन्दरशोधनरोपणे ताम्रभस्मप्रयोगः | ८७७ |
| भगन्दरव्रणक्षालने त्रिफलाकषायः | ,, |
| भगन्दरस्य निरुक्तिः | ८७३ |
| भगन्दरे सामान्योपायाः | ८७५ |
| भस्मस्य भेदनिर्देशः | ८७२ |
| भस्मे पर्पटीरसप्रयोगविधिः | ८७३ |
| भस्मे वज्रीलेपः कान्तपाषाण-लेपश्च | ८७३ |
| भस्त्रनी | २३४ |
| भस्मकलक्षणम् | ९०७ |
| भाण्डपुटम् | २७९ |
| भ्रामकादिलौहकार्यनिर्देशः | १७३ |
| भ्रामककान्तलक्षणम् | १७२ |
| भालुकितन्त्रोक्तप्रयोगविधिः | ८६ |
| भीमपराक्रमरसः | ५५० |
| भूतलोत्थचूर्णप्रयोगः | ८७७ |
| भूताङ्कुशरसः | ३९३ |
| भूदार्वादियोगः | ६१५ |
| भूधरपुटम् | २८० |
| भूधरयन्त्रम् | २५४ |
| भूनागमुद्रिका | २०० |
| भूनागसत्त्वपातनम् | १९८ |
| भूनागसत्त्वपातने मतान्तरम् | १९९ |
| भूनिम्बादितैलम् | ८०५ |
| भृङ्गराजयोगः | ३९६ |
| भेषजाहरणे नियोज्यपुरुषलक्षणम् | २२२ |
| भैरवनाथीपञ्चामृतपर्पटी | ४४५ |
| मञ्जिष्ठादिप्रलेपः | ८५८ |
| मञ्जिष्ठादिघृतम् | ९१३ |
| मणयः | १३५ |
| मणिपर्पटीरसः | ८५० |
| मणीनां नामानि | १३५ |
| मण्डूकमूषा | २७१ |
| मण्डूरम् | १८४ |
| मण्डूरशोधनम् | ,, |
| मण्डूरशोधने मतान्तरम् | ,, |
| मतान्तरे सवलौहानां मारणम् | १७८ |
| मतान्तरेण तालशोधनम् | ११६ |
| मतान्तरेण नवसारोत्पत्तिः | १३० |
| मतान्तरेण वज्रमारणम् | १४२,१४३,१४४ |
| मतान्तरेण वैक्रान्तस्य वर्णभेदकथनम् | ७१ |
| मतान्तरेण शोधनमारणनिरूपणम् | ११६ |
| मतान्तरेण सत्त्वपातनम् | ७९ |
| मतान्तरेणोत्पत्तिः | १३० |

मतान्तरे शोधनमारणे ७१
मदनकामदेवरसः ९५४
मदनजीवनः ९७८
मदनमुन्मद्ररसः ९४९
मदनमोदकः ९७२
मदनवलयम् ३२७
मदनवलये प्रकारान्तरम् ३२७
मदनसञ्जीवनरसः ९६४
मदनसुन्दररसः ९४८
मदात्ययरोगः ४४२
मधुकप्रयोगः ९७४
मधुमेहे वज्रप्रयोगः ५६८
मधुरत्रयम् २८३
मध्वार्द्रकप्रयोगः ६१८
मनःशिलानिरूपणम् ११९
मनःशिलाया भेदाः ,,
मनःशिलाशोधने मतान्तरम् ,,
मनःशिलासत्त्वपातने मतान्तरम् ,,
मनःशिलाशोधनम् ,,
मनःशिलासत्त्वपातनम् ,,
मन्थानभैरवरसः ४०९
मरिचप्रयोगः ८६५
मर्दनलक्षणम् २३६
मर्दनसंस्कारः २९६
मर्दनादीनां गुणाः ३०३
मल्लमूषा २७०
मसीयोगः ८२४
मस्तकरोगाणां सामान्योपायाः ८६५
महाकनकसुन्दररसः ९६०
महाकल्कः ९६८
महाज्वराङ्कुशरसः ३४९
महातालेश्वररसः ६७१ ६९२
महादेवस्थितिवर्णनम् ४
महानिम्बादिचूर्णम् ७१३
महानीलतैलम् १०४८
महापुटम् २७७
महाबन्धलक्षणम् ३२१
महाभ्रसत्वम् ९५८
महामार्त्तण्डतैलम् ७१०
महाभल्लाततैलम् ७१०
महामुण्डीलेपः ७१८
महामूषा २७१
महारसाः ५८ २१२
महावीररसः ४३३
महासरस्वतीचूर्णम् ८५५
महासर्पविषे नागदमनीप्रयोगः ९२१
महावह्निरसः ६३७
महाविद्यागुटी ५४१
महोदयप्रत्ययसाररसः ४६१
माक्षिकम् ७३
माक्षिकगुणाः ७५
माक्षिकस्य गुणाः ७३
माक्षिकभेदाः ७४
माक्षिकोत्पत्तिवर्णनम् ७३
माक्षिकसत्त्वपातनम् ७५
माणिक्यम् १३६

माणिक्यगुणाः १७३
माणिक्यतिलकरसः ६७९
मातुलुङ्गीरम्भाप्रयोगौ ८०२
मात्राऽमात्राभेदेन विषामृतयो गुणागुणौ १०३५
मार्त्तण्डेश्वररसः ७४३
मानपरिभाषा २९०
मानपरिभाषायां मतान्तरम् २९१
मारणार्थं लौहस्य परिमाणनिर्देशः १७४
मारणान्तरम् १६६
मारणे प्रकारान्तरम् ६७
मासिकरसायनम् ९२७
माहिषपञ्चकछागलपञ्चकयोर्निर्देशः २८४
माहेश्वरधूपः ८०७
,, ७४०
भिश्रकवङ्गशोधनम् १८५
मुक्ताद्रावणे विशेषक्रमः १४८
मुखदौर्गन्ध्यनाशिनीकुष्ठादिवटी ८५८
मुखदौर्गन्ध्ये गृहधूमकाथः ८५९
मुखदौर्गन्ध्ये पथ्यादिवटिका ,,
मुखपाकचिकित्सा ८१५
मुखपाके पर्पटीरसः ८५६
मुखभेदेन श्रेष्ठाश्रेष्ठकथनम् १७२
मुखरोगाः ८५२
मुखरोग-चिकित्सा ८५३
मुखरोगादिगलगण्डमालारोगाणां सामान्योपायाः ८५५
मुखरोगेऽन्योविषकल्पः १०२७
मुखरोगे विषकल्पः १०२७
मुखलक्षणम् २४०
मुखवैरस्ये लाजादिचूर्णम् ८५९
मुखवैरस्ये आरनालगण्डूषः ८६१
मुखवैवर्ण्ये पुनर्नवादुद्वर्तनम् ८५७
मुखवैवर्ण्यादौ मातुलुङ्गादिप्रलेपः ८५८
मुखवैवर्ण्ये वङ्गभस्मप्रयोगः ,,
मुखवैवर्ण्ये सामान्योपायाः ८५७
मुखशोषे महाराष्ट्रीगुटिका ८५७
मुण्डगुणाः ११९
मुण्डलौहभेदाः १६८
मुस्तादिचूर्णम् ५०४
,, ६५८
मूढगर्भचिकित्सा ८००
मूढगर्भाया असाध्यलक्षणम् ,,
मूढगर्भे विषकल्पः १०२४
मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः ५३२
मूत्रकृच्छ्राश्मर्यादिचिकित्सनम् ५२३
मूत्रकृच्छ्रे १०५१
मूत्रकृच्छ्रे विषकल्पः १०१८
मूत्रकृच्छ्रे सामान्योपायाः ५३१
मूत्रवर्गः २८३
मूत्रविड्ग्रहहरं मधुकादि ८११
मूर्च्छितादिपारदगुणः ७
मूर्च्छनलक्षणम् २२६
मूर्च्छनसंस्कारः २९७
मूर्तिबन्धलक्षणम् ३१८
मूलकुठाररसः ४५८

मूषाकोष्ठी २७४
मूषादिकथनम् २६४
मूषाऽऽप्यायनम् २६९
मूषाप्रशंसा २६५
मूषाया उपादानम् ,,
मूषाया निरुक्तिः २६४
मूषायाः पर्यायाः ,,
मूषोपयुक्तमृत्तिका २६५
मूषोपयुक्तमृत्तिकायां मतान्तरम् २६६
मूषलाख्यमूषा २७१
मृगाङ्कपोटलीरसः ४२२, ४२३
मृतजीवनरसः ३४७
मृतपारदगुणाः २९३
मृतलौहानां रसत्वकथनम् १००५
मृतलौहलक्षणम् २२९
मृतवत्सालक्षणम् ७८८
मृतवैक्रान्तस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च ७२
,, प्रयोगान्तरम् ७३
मृतसञ्जीवनम् ९२१
मृतसञ्जीवनरसः ३७४
मृतसञ्जीवनीवटी १०४७
मृतोत्थापनरसः ६०१
मृत्युञ्जयरसः ३५१, ३६९, ६३४
मृत्युहारी रसः ९८४
मृदुमुण्डलक्षणम् १६८
मृद्दारश्यङ्गकगुणाः १३३
मृद्दारश्यङ्गम् ,,
मेघनादप्रयोगः ९१९
मेघनादरसः ३४३
मेघनादाद्युद्वर्तनम् ७१६
मेदःप्रभृतिरोगेषु अष्टादशोलौह कल्पः १००२
मेदिनीसाररसः ६८८
मेदोग्रन्थौ अरिमेदादिभस्मलेपः ८७८
मेदोवृद्धौ गुडूच्यादिः ,,
मेहकुठारो रसः ५७०
मेहध्वान्तविवस्वान् रसः ५४२
मेहबद्धरसः ५६६
मेहमर्दनरसः ५५२
मेहारिरसः ५६३
मेहशत्रुरसः ५४७
मेहहररसः ५५७
मेहेषु १०५१
मौक्तिकगुणान्तरम् १३८
मौक्तिकनिरूपणम्– १३७
मौक्तिकशुक्त्योर्गुणाः ,,
म्लेच्छताम्रस्य लक्षणम् १६३
यक्ष्मणि औषधविशेषसेवनोपदेशः ४२३
यक्ष्मादौ एकादशो लौहकल्पः ९९९
यन्त्राणि २४६
यन्त्रशब्दनिरुक्तिः ,,
यवक्षारप्रयोगः ९३०
यवानीखाण्डवचूर्णम् ४३५
यवानीघृतम् ७३४
यष्टिकादिकल्कः ८०१
यष्ट्यादिघृतम् ८११

युक्तिव्यपाश्रये वन्ध्याकर्कटकी प्रयोगः ७९१
यूकालिक्षायां पारदप्रयोगः ८६६
योगद्वयम् ३९०
योगमूषा २६६
योगराजगुग्गुलुप्रयोगोपदेशः ६९९
योगराजगुग्गुलुः ७५८
योनिकृमिशूले रसोनादिप्रलेपः ९१३
योनिद्रावणम् ३२६
योनिरोगे सोमराज्यादिप्रलेपः ९१३
योनिव्यापच्चिकित्सा ८०६
योनिव्यापन्निदानम् ९१२
योनिव्यापत्सु पिष्टीयोगः ,,
योनिशूलहरो निर्गुण्ड्यादिप्रयोगः ८०६
योनिशूलहरयोगद्वयम् ९१८
योनिशूले निम्बादिगोलकम् ९१३
रक्तकारण्डरसः ३९२
रक्तपित्तम् ३८४
रक्तपित्ताङ्कुशरसः ३८५
रक्तपित्ते १०४९
रक्तपित्ते विषकल्पः १०१६
रक्तमेहे बोलबद्धरसोपदेशः ५६९
रक्तमेहे वज्रप्रयोगः ५६८
रक्तवर्गः २८७
रक्तवर्गादीनां प्रयोजननिर्देशः २८८
रक्तवात-चिकित्सा ७३५
रक्तवातलक्षणम् ,,
रक्तवातेऽपथ्यम् ७३६
रक्ताञ्जनम् ७३३
रक्तैरण्डप्रयोगः ७६६
रक्तोदरकुठाररसः ५८७
रजतभेदाः १५९
रजतम् ,,
रजःकृच्छ्रादौ सामान्योपायाः ५९३
रजन्यादियोगः ४३७
रजोदोषे व्योषादितैलम् ९१८
रजोनाशे त्रियोनिरसप्रयोगविधिः ९१४
रञ्जनलक्षणम् २४२
रत्नदोषाः १४२
रत्नधारणगुणाः १५२
रत्ननिरूपणम् १३५
रत्नप्रयोगः १४७
रत्नप्रयोगविषयः १३६
रत्नभस्मक्रमः १४८
रत्नभागोत्तररसः ७७७
रत्नमारणनिषेधः १४६
रत्नशुद्धिः १४७
रत्नादीनां सूतयोग्यत्वनिर्देशः १९७
रत्नानां द्रावणम् १४८
रत्नानां साधारणशोधनम् १४७
रविताण्डवरसः ८७४
रसकः ८९
रसकर्मानर्हताम्रलक्षणम् १६४
रसकल्पः १०४०
रसकशोधने मतान्तरम् ९०
रसकर्मणि तैलाहरणोपयोगिद्रव्याणि २८३

रसकस्य ताम्रादिरञ्जनविधिः ९१
रसक्रमेण कान्तस्य विशेषता १७३
रसक्रियायां कीदृशा वैद्या अन्यो वा नियोज्यास्तत्कथनम् २२०
रसजारणेनिषिद्धद्रव्याणि १०४५
रसदोषास्तेषां कार्याणि च २९३
रसपङ्कः २२५
रसपाककाले मन्त्रजपस्य कर्तव्यतानिर्देशः २२०
रसप्रयोगे उपचारविधिः १०६३
रसबन्धाः ३०९
रसबन्धनप्रतीज्ञा तस्य व्युत्पत्तिश्च ,,
रसभस्मविधिः ३३१
रसभावनादौ मूलिन्यः ३०७
रसभेदाः ९७९
रसमारणम् १०४१
रसमारणे प्रकारान्तरम् १०४१
,, ,, १०४२, १०४३,
रसलिङ्गपूजनफलम् २०६
रसलिङ्गस्थापनादि ,,
रसविद्यागुरुः २०३
रसविद्याया अवश्यगोप्यत्वनिर्देशः २१५
रसशक्तयः २११
रसशाला २१६
रसशोधनादिकथनम् २९०
रससाधनरसशालारसमण्डपाः २०५
रससाधनीयपदार्थाः २१७
रससाधने सिद्धलाभहेतुनिर्देशः २१४
रससिद्धमर्त्यफलम् २२३
रससिद्धसाधकस्य कर्तव्यनिर्देशः २२२
रससिद्धावुपकरणानि २१८
रससिद्धीश्वरब्राह्मणादीनां पूजनम् २१३
रससिद्ध्यर्थं सङ्ग्रहणीयपदार्थाः २३१
रससेवनेऽपथ्यानि १०६३
रससेवने उपचारविधिः ३३५
रस 'स्कारकारणम् १७
रसस्य जीवन्मुक्तिकारणता १०
रसस्य प्राधान्यकीर्त्तनम् ९७९
रसस्य स्थानान्तरगतिवर्णनम् १८
रसस्वेदस्वन्यासगुणाः २४५
रसादीनां निरुक्तिः १६
रसानां भेदाः १४
रसायनगुणाः ९२५
रसाञ्जनगुणाः १२२
रसाञ्जनस्य विशेषशोधनम् १२३
रसायनार्थं विषप्रयोगेविधिः १००९
रसायने द्वाविंशलौहकल्पः १००४
रसायने नियोज्यपुरुषलक्षणम् २२२
रसायने रसकल्पः १०६०
,, ,, ,,
,, विषकल्पः १०३०
,, ,, १०३३
,, षड्विंशलौहकल्पः १००५
रसेन्द्रचूडामणिः ९६६
रसेन्द्रनागरसः ५४६
रसेन्द्रयोगः ३८९

रसेन्द्रयोगः अन्यः ३८९
रसोत्कर्षवर्णनम् ५
रसोत्पत्तिवर्णनम् १३
रसोत्तमः ४८४
रसोपरसानां सामान्यशोधनं सत्त्वपातनविधिश्च १८५
रसोपरसलोहानां सूतसाधकत्व-निर्देशः १९७
राक्षसवक्त्ररसलक्षणम् २४०
राक्षसनामारसः ५१७
रामबाणरसः ५५३
राजमृगाङ्करसः ४२१
,, ५५५
राजयक्ष्मा ४१७
राजावर्तः १५१
राजावर्त गुणाः ,,
राजावर्त्तमारणम् ,,
राजावर्त्तशोधनम् ,,
राजावर्तसत्त्वपातनम् १५२
राजावर्त्तादिसामान्यशोधनम् १५१
राजावर्तरसः ४४४
राजीकुष्ठादिलेपः ८१६
राजेश्वरवटी ५१४
राज्यन्धहराञ्जनम् ८४२
राज्यन्धे व्योषाञ्जनम् ८४३
राज्यन्धे मरिचाञ्जनम् ,,
रौतिकाया गुणाः १९२
रौतिकामारणम् १९३
रौतिकामारणे मतान्तरम् १९४
रौतिकालक्षणम् १९२
रोधनलक्षणम् २३८
रौतिकाशोधनम् १९३
रुद्रभागः २२४
रुद्राक्षादिप्रयोगः ७८६
रेचकयोगः १२५
रोगगणना ३३६
रोपणे मार्जारास्थिप्रलेपः ८७७
रोमकान्तलक्षणम् १७२
रौप्यगुणाः १६०
रौप्यगुणान्तरम् ,,
रौप्यताम्रमारणम् ९८१
रौप्यप्रयोगः १६३
रौप्यमारणम् १६१
रौप्यमारणे अन्यविधिः १६२
रौप्यमूषा २६८
रौप्यस्य निरुत्थीभस्मीकरणम् १६२
रौप्यस्य निरुथत्भस्मीकरणे अन्य-विधिः ,,
रौप्यस्य विशेषशोधनम् १६१
रौप्यस्य विशेषशोधने अन्यविधिः ,,
लक्ष्मीविलासरसः ९१२
लघुलोकेश्वररसः ५३०
लघुसिद्धाभ्रकरसः ४९३
लशुनरसप्रयोगः ,,
लवणयन्त्रम् २५३
लवणयन्त्रस्य प्रकारान्तरम् २५४

लाङ्गल्यादिप्रलेपः ८७५
,, ८०२
लावकपुटम् २८०
लिङ्गपाके उडुम्बरादिक्षालनम् ८९८
,, गन्धप्रयोगः ८९९
,, घोण्टादिलेपः ८९८
,, जीरकप्रयोगः ,,
,, निम्बादिचूर्णम् ८९९
,, महाशङ्खप्रयोगः ८९८
लिङ्गरोग–चिकित्सा ,,
लिङ्गलेपाः, द्रावणश्च ९७७
लिङ्गव्रणरोपणे सैन्धवप्रयोगः ८९९
लिङ्गव्रणादौ शिग्रुप्रयोगः ,,
लिङ्गादिग्रन्थौ कुष्ठादिलेपः ,,
लिङ्गादिपिडकायां वाकुचीचित्रक-
प्रयोगः ९००
लिङ्गादिपिडकायां सर्पाक्षीप्रयोगः ,,
लीलाविलासरसः ६२३
लूताविषे विषकल्पः १०३९
लूताविषे सूतभस्मप्रयोगः ९२०
लेखनस्वरूपम् १२२
लेपवेधलक्षणम् २४३
लोकनाथगुटिका ३५७
लोकनाथरसः ४२५, ४२९, ८८६
लोकेश्वररसः ४८५
लोहकल्पः ९७९
,, ९८६
,, ९८८
लोहकल्पे दन्त्यादिगणः ९९४
लोहजातिपरिगणनम् १५३
लोहमारणप्रकारः ९८७
लोहस्थगिरिजदोषनाशनविधिः १७५
लोहस्थगिरिजदोषनाशनविधौ
मतान्तरम् ,,
लोहस्य मतान्तरेणशोधनं
मारणञ्च १७६
लोहानि १५३
लौहकल्पश्रेष्ठता १७४
लौहकाठिन्यनाशको योगः २८९
लौहत्रयाणामुत्तरोत्तरगुणाधिक्यम् १७४
लौहद्रुतिः १८२
लौहप्रयोगः १८१
लौहभस्मनि मतान्तरम् १७८
लौहभेदाः १६८
लौहम् ,,
लौहमण्डूरयोर्गुणसाम्यता ८८५
लौहमलनाशनगणः २८९
लौहमारणम् ९८३
लोहमारणार्थमुत्तमद्रव्यकथनम् १५६
लौहमारणे मन्त्रः १७४
लौहस्य मारणान्तरम् १७७
लौहादिचूर्णम् ४७२
लौहानां रामराजीप्रोक्तगुणाः १८२
वक्रोमहराञ्जनञ्च ८४१
वङ्गनालम् २७४
वङ्गगुणाः १८५

वङ्गनागयोः शोधनम् ९८०
वङ्गनिरूपणम् १८५
वङ्गभस्म ,,
वङ्गभस्म ( करणे ) मतान्तरम् १८६
वङ्गरसायनम् ,,
वङ्गसम्भूतचपलः २३३
वङ्गसीसकमारणम् ९८२
वङ्गस्य द्वैविध्यनिर्देशः १८५
वज्रेश्वररसः ५८४
वज्रेश्वरो रसः ५६७
वचादिमोदकः ४७२
वज्रकपाटरसः ४८९
वज्रक्षारप्रयोगः ५९५
वज्रक्षारम् ६४१
वज्रगुणाः १४१
वज्रतैलम् ७०९
वज्रद्रावणमूषा २६८
वज्रद्रावणविशेषविधिः १५०
वज्रदावणीमूषा २६७
वज्रधररसः ५०२
वज्रधाररसः ६९२
वज्रपञ्जररसः १०४६
वज्रभेदाः १४०
वज्रमारणम् १४२
वज्रमूषा २६६
वज्रम् १४०
वज्ररसायनम् १४४
वज्ररसः ४३१
वज्रशेखररसः ६७७
वज्रशोधनम् १४२
वडवाग्निमुखरसः ६१८
वडवाग्निरसः ५०८
वडवानलगुटिका ६१०
वडवानलरसः ५१९, ७४२, ७५४
वडवानलोविडः १०४०
वडवामुखी गुटी ५११
वन्ध्यात्वनाशे सामान्योपायाः ७८५
वन्ध्यादिचिकित्सा ७७१
वन्ध्यादोषभेदादिकथनम् ,,
वन्ध्यायां विषकल्पः १०२३
वमनयोगः ६२८
वरनागलक्षणम् २३२
वरमूषा २६७
वरलोहकम् २२६
वराटिकागुणाः १३०
वराटिकालक्षणम् १२०
वराटिकावर्णनम् १३०
वराटिकाशोधनम् १३१
वरुणकषायः ५७७
वर्णमूषा २६८
वर्णभेदेन कार्यभेदकथनम् ७०
वर्णभेदेनाधिकारीभेदकथनम् १४१
वर्णभेदेन विषाणां क्रियाभेदः १००९
वर्णभेदेनाभ्रकस्यभेदास्तेषां क्रिया-विषयश्च ६०
वर्णानुसारकार्यभेदाः १७१

वर्तलौहगुणाः १९६
वर्तलौहमारणम् १९७
वर्तलौहम् १९६
वर्तलौहशोधनम् १९७
वर्तलौहस्वरूपः १९६
वर्त्तुलखल्वनिर्देशः २६३
वर्धमानरसः ७८०
वलभीयन्त्रम् २५५
वल्मीके पित्तलभस्मप्रयोगः ९०८
वसन्तकुसुमाकररसः ५६१
वसावर्गः २८३
वह्निजस्वर्णोत्पत्तिः १५४
वह्निज्वालावटीरसः ५०१
वह्निमृत्स्ना २५९
वह्न्यादिचूर्णम् ५०४
व्यङ्गे इङ्गुदीमज्जप्रयोगः ८९५
व्यङ्गे शशरुधिरप्रयोगः जातिफलप्रयोगश्च ८९५
व्याधिविशेषे रसप्रयोगनिषेधः २९३
व्योषादिगुटिका ६७५
व्रणरोपणार्थं निम्बपत्रादिप्रयोगः ८७१
व्रणरोपणार्थं पटोलादिलेपः ,,
व्रणरोपणे अपामार्गप्रयोगः ,,
व्रणरोपणे गुडटङ्कणवर्त्तिः ८७२
व्रणशोधनरोपणार्थं शुल्वादिप्रयोगः ८७१
व्रणशोधनरोपणार्थाः सामान्योपायाः ,,
व्रणस्य भेदनिर्देशः ८७०
व्रणे १०५७
वाकुचीतैलाहरणविधिः २०२
वाजीकरणगुणाः ९४५
वाजीकरणप्रयोगे पूर्वकृत्यम् ९४६
वाजीकरणम् ९४५
वाजीकरणयोगोपदेशे प्रतिज्ञा ,,
वाजीकरणस्यनिरुक्तिः ,,
वाजीकरणे १०६२
वाजीकरणे मदनवर्द्धनाख्यो रसकल्पः ,,
वाजीकरणे विषकल्पः १०३३
वाजीकरणे सामान्योपायाः ९७४
वाजीरलौहलक्षणम् १५०
वातकुष्ठहररसः ६६३
वातगजाङ्कुशरसः ७५६
वातज्वरलक्षणम् ३३७
वातरक्तादिसर्वरोगे सर्वेश्वरीपर्पटी ७६७
वातरक्तः ,,
वातरक्ते रसकल्पः १०५५
वातरोगे रसकल्पः ,,
वातविकारे सामान्योपायाः ७६४
वातविध्वंसनरसः ७४९
वाताभिष्यन्दे इन्द्रादिवर्तिः ८३५
वातारिरसस्य प्रयोगोपदेशः ५७९
वातारिरसः ५७८
,, ७२५
वातार्शोलक्षणम् ४५२
वाते विषकल्पः १०२३
वातोदरलक्षणम् ६३१

वान्तिचिकित्सायां मातुलुङ्गादियोगः—४३७
वाराहपुटम् २७८
वारितरलौहलक्षणम् २२९
वार्धक्यहररसायनम् ९२५
वार्षिकरसायनम् ९३४
विचर्चिकादौ विषकल्पः १०१९, १०२०
विजयधूपः ८०८
विजयभैरवतैलम् ७६२
विजयरसः ६६५
विजयागुटिकाप्रयोगोपदेशः ७२५
विजयावटिका ६५३
विडमूषा २६८
विडवर्गः २८७
विदार्यादिकषायः ५३२
विद्याधरयन्त्रम् २५१
विद्याधररसः ५८६
विद्रधिः ५७१
विद्रधिरोगे शोभाञ्जनादिक्वाथः ५७७
विध्वंसरसः ५०६
विनोदविद्याधररसः ६३३
विपरीतरतिजव्याधिप्रतीकारः ९११
विपरीतरतिजव्याधिलक्षणम् ९१०
विपादिकायां गुञ्जादिप्रलेपः ९०३
विपादिकायां मदनादिप्रलेपः ,,
विमलस्य प्रयोगविधिर्गुणाश्च ७९
विमलभेदानां प्रयोगनिर्देशः ७८
विमलभेदाः ७७
विमलस्य मारणम् ७८
,, लक्षणगुणाः ७८
,, शोधनम् ,,
,, सत्त्वपातनविधिः ,,
विरेचनयोगः ६२९
विविधरोगे दशमो लौहकल्पः ९९९
विवृतायां माकन्दमूलादिलेपः ८०६
विशाद्यञ्जनम् ८४०
विशुद्धताप्यसत्त्वलक्षणम् ७६
विश्वहितरसः ६७४
विश्वादिवटिका ४१०
विश्वासघातकवैद्यलक्षणम् २२४
विषकल्पः १००६
विषघ्नगणः १०३६
विषचिकित्सा ९१९
विषतैलम् १०२०
विषदिग्धव्रणे १०६०
विषनाशार्थं कङ्कुष्ठप्रयोगविधिः १२६
विषस्य प्रयोगविधिः १०३६
विषे प्रयोगान्तरम् १०५९
विषप्रयोगायोग्यनिर्देशः ३५३
विषमज्वरे विषकल्पः १०१६
विषमुष्टितैलपातनम् २०२
विषवर्गः २८५
विषविद्रावणघृतम् १०११
विषशोधनप्रयोगः १०१५
विषसेवनस्य फलम् १०४०
विषसेवने संशोधनविधिः १०३५
विषसेविनः पथ्यापथ्यविधिः १०३७

विषस्य मात्रानिर्देशः १०१४
विषहररसः ९२४
विषहरो योगः १०३४
विषादिगुटिका १०१३
विषामृतयोः तुल्ययोनित्वनिर्देशः १००९
विषे १०५८
विषे निषिद्धद्रव्याणि १०१०
विषोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च १००६
विष्णुक्रान्ताप्रयोगः ९८७
विसर्पजिद्रसः ६६०
विसर्पनाशनतैलम् ६६१
विसर्पहरतैलम् ,,
विसूचीविजयरसः ५०७
वृक्कोदरगुटिका ७५१
वृश्चिकविषे १०६०
वृश्चिकविषे व्योषादि तैलम् ९२१
वृश्चिकविषे पलाशबीजगुलिका ९२३
वृश्चिकविषे मनोह्वादिगुलिका ९२३
वृद्धज्वराङ्कुशरसः ३४९
वृन्ताकमूषा २६९
वृद्धबन्धलक्षणम् ३१८
वृद्धिचिकित्सा ५७८
वेधजस्वर्णोत्पत्तिर्गुणाश्च १५५
वेधलक्षणं भेदाश्च २४२
वैक्रान्तः ६८
वैक्रान्तद्रावणे अन्यविधिः १५०
वैक्रान्तद्रावणे विशेषक्रमः ,,
,, सत्त्वपातने मतान्तरम् ७२
,, सत्त्वपातनम् ७२
वैक्रान्तशोधने मतान्तरम् ७१
वैक्रान्तशोधनम् ७१
वैक्रान्तस्य गुणाः ६९
,, गुणान्तरम् ७१
,, वर्णभेदाः ६८
,, स्थानं निरुक्तिश्च ७०
वैक्रान्तोत्पत्तिः ६९
वैदूर्यम् १४७
वैदूर्यगुणाः १७७
वैद्यनाथरसः ४२८
वैद्यस्य सर्वत्रावश्यकता १०६९
वैद्यातुरयोरन्योन्यकर्तव्यः १०६९
वैश्वानरपोटलीरसः ५०९
वैश्वानररसः ५८८
वैश्वानररसः ६३८
शङ्कोक्तदेवव्यपाश्रयचिकित्सा ७८८
शङ्खनाभ्यादिवर्तिः ८१२
शङ्खेश्वररसः ४२१
शतावरीगुग्गुलुः ७५७
शब्दवेधलक्षणम् २४४
शम्बूकादिवर्तिः ८३३
शम्बूकादिलौहम् ६१४
शरपुङ्खादियोगः ५९५
शरपुङ्खाप्रयोगः ७८६
शार्ङ्गष्ठादिवर्गः ३६४
शाल्मलिप्रयोगः ५६९
शास्त्रक्रमयोः परस्परापेक्षा २०३

| | | | |
|---|---|---|---|
| शास्त्रज्ञवैद्यस्य साफल्योक्तिः | १०६८ | शीतारिरसः | ७२६ |
| शिखिवाडवरसः | ५८५ | शुकतुण्डकस्य परिचयः | १३१ |
| शिग्रुतैलम् | ८३५ | शुक्रक्षयस्य निदानम् | ९४५ |
| शिग्रुमूलादिलेपः | ४७५ | शुक्रमेहे वङ्गप्रयोगः | ५६८ |
| शिग्रुमूलाद्याञ्जनम् | ८४१ | शुक्लपिण्याकादियोगः | ५३२ |
| शिथिलयोनौ इन्द्रगोपप्रयोगः | ८०६ | शुक्लादौ विषकल्पः | १०२५ |
| शिरोरोगचिकित्सा | ८६५ | शुक्लार्भजिद्विषकल्पः | ,, |
| शिरोरोगाणां नामानि | ८६४ | शुद्धमूर्च्छितरसगुणाः | २९३ |
| शिरोरोगारिरसः | ८६५ | शुद्धशिलाजतुगुणाः | ८२ |
| शिरोलेपः | ३८९ | शुद्धशिलाजतुलक्षणम् | ८१ |
| शिरःशूले कुङ्कुमादिनस्यम् | ८६६ | शुद्धसीसकलक्षणम् | १८८ |
| शिरःशूले द्वितीयोविषकल्पः | १०२७ | शुद्धावर्तः | २३५ |
| शिरःशूले विषककल्पः | ८० | शुभरीतिकालक्षणम् | १९३ |
| शिलाजतुः | ८० | शुल्वनागगुणाः | २२८ |
| शिलाजतुन उत्पत्तिः | ,, | शुल्वनागम् | २२७ |
| शिलाजतु प्रयोगविधिः | ८३ | शूर्पादीनां समर्चनम् | २१९ |
| शिलाजतुभेदाः | ८० | शूलकेसरीरसः | ६०० |
| शिलाजतुशोधनम् | ८२ | शूलगजकेसरीरसः | ६०८ |
| शिलाजतुसत्त्वपातनम् | ,, | शूलचिकित्सा | ५९६ |
| शिलाजतुमारणम् | ८३ | शूलहरक्षारः | ६१३ |
| शिलापूतरसः | ४०८ | शूलान्तकरसः | ६०४ |
| शिवोक्तताम्त्रिकप्रयोगः | ७८८ | शूले विषकल्पः | १०१८ |
| शिवोक्तयोगः | ५३० | शूले समलौहकल्पः | ९९८ |
| शिष्यगुणाः | २०४ | शूले सामान्योपायाः | ६१४ |
| शिष्योपानयननिरूपणम् | २०३ | शृङ्खलाबद्धलक्षणम् | ३१६ |
| शीघ्रप्रभावरसः | ४९९ | शृङ्गीप्रयोगः | ९७५ |
| शीतभञ्जोरसः | ३४५ | शेषनाभियन्त्रवर्णनम् | २५९ |
| शीतवातलक्षणम् | ७२४ | शोथे | १०५३ |

(क्षयीसस्य) ( भगन्दरस्य )
शोधनरोपणे ताम्रभस्मप्रयोगः ८७७
शोधनीयगणः २८८
शोभाञ्जनादिक्काथः ५७७
(भगन्दरस्य)शोषणे नरास्थितैल-
प्रयोगः ८७६
श्रीकृष्णदेवोक्तककारादिगणः ३३४
श्रीपर्णीतैलम् ८०७
श्रेष्ठकान्तलौहस्य लक्षणम् १८२
श्रेष्ठनीलगुणाः १४५
श्रेष्ठनीलमाणिक्यलक्षणम् १३६
श्रेष्ठपुष्परागलक्षणम् १३९
श्रेष्ठमणीनां नामानि १३५
श्रेष्ठमध्यमाधमवराटिकाया लक्ष-
णम् ५११
श्रेष्ठमाणिक्यलक्षणम् १३६
श्रेष्ठवैदूर्यलक्षणम् १४७
श्लीपदस्य सम्प्राप्तिलक्षणे ९०७
श्लीपदहररसः ,,
श्लीपदहरलेपः ९०८
श्लेष्मातककवाथः ५६९
श्लेष्माभिष्यन्दे शुल्वादिवर्तिः ८३६
श्लेष्मार्शसि औषधविशेषनिर्देशः ४७३
श्वासः ३९८
श्वासकासकरिकेसरीरसः ४०३
श्वासकासे विषकल्पः १०१६
श्वासहिक्कयोर्विषकल्पः १०१५
श्वासान्तकरसः ४००
श्वासारिवटकः ४०१
श्वासे सामान्योपचाराः ४०४
श्वित्रकुष्ठलक्षणं भेदाश्च ६६२
श्वित्रकुष्ठारिरसः ७०६
श्वित्रनाशनचूर्णम् ७१४
श्वित्रादौ विषकल्पः १०२२
श्वित्रादौ अन्योयोगः ,,
श्वित्रान्तकरसः ७०४
श्वित्रारितैलम् ७१२ १०११
श्वित्रारिरसः ६९९
श्वित्रे रसकल्पः १०५४
श्वेतकण्टकारीप्रयोगः ७८७
श्वेतकुष्ठहरचूर्णम् ७१४
श्वेतवर्गः २८८
श्वेतादिवर्णभेदेन विषाणां जाति-
भेदः १००८
श्वेतापराजितादिनस्यम् ७३९
श्वेतारियोगः ७०५
षडङ्गगुग्गुलुः ७६१
षडङ्गरसायनम् ९३४
षडङ्गवर्तिः ८३९
षड्लवणानि २८२
षणिष्ककतैलम् ४८८
षष्ठलौहकल्पः ९९७
षष्ठ्यधिकत्रिशतवर्षायुष्कर
रसायनम् ९३२
षाण्मासिकरसायनम् ९२८
सक्षीरबोलप्रयोगः ८११

सङ्ग्रहणी ४८९
सजीवबन्धलक्षणम् ३१४, ३१५
सञ्जीवनरसः ५५१
सत्त्वलक्षणम् २३१
सत्त्वशोधनम् ६५
सत्त्वस्यशोधनमारणे ६७
सत्त्वानां मृदुकरणम् ६५
सत्त्वानां सामान्यशोधनम् ११४
सद्योजातबालस्य ज्वरादिनिवारणोपायः ८०९
सद्योजातबालस्य संज्ञाजननोपायः ,,
सद्यः शूलहरयोगद्वयम् ६१६
सद्यःशूलहरोयोगः ६१५
सन्धिग्रन्थौ रक्तस्रावविधिः ८७९
सन्धिलेपस्य पर्यायाः २६५
सन्निपातकुठाररसः ३७६
सन्निपातगजाङ्कुशरसः ३६६
सन्निपताञ्जनरसः ३७०
सन्यासलक्षणम् २४४
सपर्यायपोगरलक्षणम् १७०
सप्तामृतावटी ४०१
सम्मुखजारणालक्षणम् २४०
सर्जतैलम् ७१५
सर्पदष्टे विषकल्पः १०३८
सर्पविषे १०५९
,, टङ्कणप्रयोगः ९२२
,, देवदार्वादिप्रयोगः ,,
,, पिशाचाद्यञ्जनम् १०५९
सर्पविषे मूलविषस्य मात्रा १०३९
सर्वकुष्ठाङ्कुशचूर्णम् ७१४
सर्वकुष्ठान्तकृत्तैलम् ७०८
सर्वज्वरारिरसः ३५१
सर्वमेहान्तकरसः ५६३
सर्वरक्तविकारे उपायः ९१२
सर्ववातारिरसः ७४७
सर्वविषे विषकल्पः १०३४
सर्वरोगहररसायनम् ९२७
सर्वरोगान्तका वटी ५२०
सर्वरोगरसः ४९४
सर्वरोगान्तकरसायनम् ९३६
सर्वरोगेषु विंशतितमो लौहकल्पः १००२
सर्वरोगेषु षोडशो लौहकल्पः १००१
सर्वलोकाश्रयरसः ४५५
सर्वलौहशुद्धिः १७५
सर्वलौहानां मारणे अन्यविधिः १७९
सर्वाङ्गसुन्दरचिन्तामणिरसः ३५६
सर्वाङ्गसुन्दररसः ५८९
सर्वाङ्गैकाङ्गवातारिरसः ७६६
सर्वामयहरो रसः ५७५
सर्वेश्वरपोट्टलीरसः ५७२
सर्वेश्वररसः ६६६, ६९८, ७२७, ८२३
सविषान्ने वृक्षाम्रादियोगः ९२३
सस्यकः ८४
सस्यकशोधनम् ८५
सस्यकशोधने मतान्तरम् ,,
सस्यकप्रयोगविधिः ८३

सस्यकस्य प्रयोगविषयोगुणाश्च ९०
सस्यकोत्पत्तिवर्णनम् ८४
सहजरौप्योत्पत्तिः १५९
सहजस्वर्णोत्पत्तिः १५४
सहदेव्यादिचूर्णम् ८१०
सहसा विषसेवने अष्टौ वेगाः १०३५
सहस्रावर्षायुष्करसायनम् ९३२
साधारणरसपरिगणनम १२६
सारलौहलक्षणम् १७०
साधारणशोधननिर्देशः १३४
सारणालक्षम् २४२
सिताभूता ३९०
सिन्दूरभूषणरसः ६५७
सिन्दूरमधुलेपः ९७८
सिध्मादौ १०५७
सिध्मे गन्धपाषाणलेपः ७१५
सिध्मे वराटिकालेपः ,,
सिद्धार्थकानुवासनम् ८०२
सिद्धार्थादिवस्तिः ८०२
सीसकगुणाः १८९
सीसकस्य मारणान्तरम् ९८२
सुखदो गण्डूषः ८६१
सुगन्धालक्तकयोगौ ४३८
सुधाचक्रकरसः ६५८
सुधासारारसः ४८२
सुप्तकुष्ठारिरसः ६६७
सुरेचनकररसः ६३४
सुवर्णमाक्षिकरसायनम् ७६, ७७
सुवर्णमाक्षिकशोधनमारणे ७५
सूचिकाभरणरसः ३५९
सूतकप्रत्ययः ८२२
सूचीमुखरसः ३६५
सूतशतावरीयोगः ९१९
सूतसंस्कारकार्यत्वनिर्देशः— २०९
रसबन्धनप्रतिज्ञा
सूततैलम् ७६३
सूतभस्मप्रयोगः ७२३
सूतसोमराजीयोगः ९२०
सूतानां मूर्च्छाकल्पः २१९
सूतिका—चिकित्सा ८०३
सूतिकारोगनाशनरसः ,,
सूतेन्द्ररसः ९५३
सूर्यप्रभागुटिका ६४०
सूर्यप्रभावर्त्तिः १०१२
सूर्यरसः ४०४
सूर्यावर्तादौ अभ्रादिवटिका ८६८
सूर्यावर्तरसः ३९९
सेवनोपदेशः ८२६
सौभाग्ययोगः ५९९
सौभाग्यशुण्ठी ८०३
सौवर्चलादिचूर्णम् ५०३
सौवीराञ्जनगुणाः १२२
सौश्रुतनारिकेलप्रयोगः ९४३
सोमनाथीताम्रभस्म १६६
सोमानलयन्त्रम् २५१
संज्ञाजनने विषकल्पः १०३४

संशोधनोपदेशः ७३६
संस्कारार्थं पारदस्य परिणामनिर्देशः २९४
संयोज्यद्रव्याणि २६६
स्तनवर्द्धने स्नेहनस्यम् ९०५
स्तनविद्रधिरोपणे दारुवर्तिः ८९७
स्तनविद्रधिरोपणे यष्ट्यादिचूर्णम् ,,
स्तनविद्रधिस्फोटने एकवीरप्रयोगः ,,
स्तनविद्रधौ क्रियाक्रमः ८९६
स्तनविद्रधौ शुल्वप्रयोगः ९०६
स्तनव्रणे कुरूवकतैलम् ,,
स्तम्भने कृकवाकुप्रयोगः ९७७
स्त्रीणां रक्तस्रावे तौवर्यप्रयोगः ५७०
स्त्रीनपुंसकवज्रयोर्लक्षणानि १४०
स्थालीयन्त्रम् २६०
स्थावरविषाणां जातिभेदाः १००६
स्थौल्यचिकित्सा ६१८
स्थौल्ये त्रिफलादिपञ्चादिकषायौ ९१०
स्थौल्ये पूर्वकृत्यनिर्देशः ६१८
स्थौल्ये रसकल्पः १०५५
स्नायुके कुम्भीप्रयोगः ९०७
स्नायुकेऽस्पर्शारिप्रयोगोपदेशः ९१२
स्नुह्यादितैलम् ७०६
स्पर्शवातघ्नरसः ७२८
स्पर्शवातः ७२६
स्पर्शवातान्तकृद्वटी ७३१
स्पर्शवातारितैलम् ७३२
स्पर्शवातारिरसः ७३१
स्पर्शवाते चक्रमर्दादिः ७३३
,, रसेन्द्रलेपः ७३५
,, राजवृक्षप्रयोगः ७३३
स्पर्शान्तकरोऽर्कदुग्धप्रयोगः ७३४
स्पर्शान्तको हल्यादियोगः ७३५
स्फूर्जकादितैलम् ८९७
स्फोटने चतुरङ्गलेपः ८७६
स्फोटने हरिद्रादिलेपः ,,
स्रोतोऽञ्जनगुणाः १२२
स्रोतोऽञ्जनलक्षणम् १२३
स्रोतोऽञ्जनस्रस्वपातनविधिः १२४
स्वच्छन्दभैरवरसः ७५३
,, ७५४
स्वयङ्गुप्तादिचूर्णम् ९७५
स्वयमग्निरसः ३९५
स्वरभङ्गः ४१२
स्वरभङ्गे ९०४
स्वरभङ्गे देवदार्वादिचूर्णम् ९०४
स्वर्णकृष्टयाः कार्यम् २२६
स्वर्णक्षीररसः ६९५
स्वर्णगुणाः १५६
स्वर्णत्रयगुणाः १५५
स्वर्णद्रावणम् १५७
स्वर्णद्रावणे अन्यविधिः १५८
स्वर्णभस्मप्रयोगविधिः ,,
स्वर्णभेदाः १५४
स्वर्णमारणम् १५७
,, ९८१
स्वर्णमारणे अन्यविधिः १५७

| | |
|---|---|
| स्वर्णम् | १५४ |
| स्वर्णरौप्ययोः कृष्टिः | २२६ |
| स्वर्णरौप्ययोः सामान्यगुणाः | १५५ |
| स्वर्णरौप्ययोर्द्रावणम् | १६२ |
| स्वर्णरौप्यशोधनम् | ९७९ |
| स्वर्णशोधनम् | १५६ |
| स्वर्णादिधातुसिद्धिनियुक्तियोग्य-पुरुषाः | २२२ |
| (पारदस्य) स्वेदनसंस्कारे प्रकारान्तरम् | ३०५ |
| स्वेदनीयन्त्रम् | २४७ |
| स्वेदनीयन्त्रलक्षणम् | ४८५ |
| हठबन्धः | ३१० |
| हरतालशुद्धिः | ११६ |
| हरिद्राप्रयोगः | ५३० |
| हरिबोलाङ्कुशरसः | ६७३ |
| हरिशङ्कररसः | ५६६ |
| हलिनीप्रयोगः | ८०१ |
| हिक्का | ४०५ |
| हिक्काघ्नधूमः | ४११ |
| हिक्कानाशनरसः | ४०७ |
| हिक्कायाम् | १०५० |
| हिक्कायां सामान्योपचाराः | ,, |
| हिङ्गुलाकृष्टिविद्याधरयन्त्रम् | २५७ |
| हिङ्गुलगुणाः | १३२ |
| हिङ्गुलनिरूपणम् | १३२ |
| हिङ्गुलभेदाः | ,, |
| हिङ्गुलसत्त्वाकर्षणविधिः | १३३ |
| हिङ्गुलाकृष्टरसः | २३१ |
| हिङ्गुलोत्पत्तिवर्णनम् | १९ |
| हिमालयवर्णनम् | ३ |
| हिमांशुरसः | ५६० |
| हृदयार्णवो रसः | ४४० |
| हृदयरोग-चिकित्सा | ४३९ |
| हृदयरोगः | ,, |
| हिङ्गुलशोधनम् | १३३ |
| हृन्नालालौहलक्षणम् | १७० |
| हेमरक्ती | २२६ |
| हेमरक्तीप्रयोगः | ,, |
| हेमादिरसायनम् | ९२९ |
| हेयगोमेदलक्षणम् | १४६ |
| हेयपुष्परागलक्षणम् | १४० |
| हेयप्रवालस्वरूपम् | १३८ |
| हेयमौक्तिकम् | ,, |
| हेयवैदूर्यलक्षणम् | १४७ |
| होमविधिः | २१० |
| हंसपाकयन्त्रम् | २५२ |
| हंसपादलक्षणम् | १३२ |
| हंसमण्डूरः | ६४३ |

# विमर्शस्याकाराद्यनुक्रमः ।


| | पृ० |
|---|---|
| अग्निजारपरिचयः | ३६१ |
| अग्निमान्द्यादिषु पथ्यापथ्य-व्यवस्था | ५२२ |
| अग्निरोहिणीलक्षणम् चिकित्सा च | ८८८ |
| अजगल्लिकाया लक्षणं-चिकित्सा च | ८८६ |
| अञ्जनविमर्शः | १२१ |
| अतिलङ्घनं वर्ज्यम् (ज्वरादौ) | ३८४ |
| अतिव्यायामनिषेधः | ४०६ |
| अतीसारनिदानम् | ४८० |
| अतीसारेऽपथ्यानि | ४८८ |
| अतीसारे पथ्यानि | ,, |
| अतीसारे पानीयम् | ४८९ |
| अथापथ्यम् (स्वरभेदे) | ४१७ |
| अधारणीया वेगाः | ४०६ |
| अध्यशनलक्षणम् | ४३९ |
| ,, | ४८० |
| अनुशयीलक्षणम् चिकित्सा च | ८८९ |
| अन्धमूषापरिभाषा | ४६७ |
| अन्धालज्या लक्षणं चिकित्सा च | ८८६ |
| अपस्मारे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ७३९ |
| अपुनर्भवलक्षणम् | २७५ |
| अभिन्यासज्वरलक्षणम् | ३६७ |

| | पृ० |
|---|---|
| अभ्रकद्युतिप्रकारवर्णनम् | ७८४ |
| अभ्रकस्योत्पत्तिः | ५९ |
| अभ्रकीयविमर्शः | ,, |
| अम्लपित्तरोगे पथ्यापथ्य-विवेकः | ६२९ |
| अम्लवर्गः | ४५० |
| अरिष्टलक्षणम् | ३१७ |
| अर्शषिकाया लक्षणम् | ८९१ |
| अरोचके पथ्यापथ्यव्यवस्था | ४३६ |
| अर्बुदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ८८२ |
| अर्शोरोगेऽपथ्यानि | ४७६ |
| अर्शोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ४७५ |
| अवपाटिकालक्षणम् | ८९३ |
| अशुद्धपारद के लक्षण | ५७ |
| अश्मरी का पूर्वरूप तथा लक्षण | ५२६ |
| अशुद्धलाङ्गलीसेवने दोषाः | ३६७ |
| अश्मरीकीउत्पत्ति | ५२५ |
| अश्मरी के भेद | ,, |
| अश्मरीनाशकोपायाः | ५२४ |
| अश्मरीरोगे पथ्यापथ्य-व्यवस्था | ५३३ |
| अष्टपुष्पाणि | ६४१ |
| आरनालस्वरूपम् | ४६ |

| | |
|---|---|
| आर्सेनिक की उपलब्धि | १२८ |
| ,, की पहचान | ,, |
| ,, के आक्साइड | ,, |
| ,, के सल्फाइड | ,, |
| अष्टमूत्र | २ |
| अष्टादशसंस्काराः | १६ |
| अहिपूतनलक्षणम् | ८९४ |
| आगन्तुकज्वरे हितानि | ३८३ |
| आमवाते पथ्यापथ्यव्यवस्था | ७३७ |
| आयोडोराइट | ३४ |
| आसवः | ३३३ |
| इगलेस्टोनाईट | ३३ |
| इन्द्रलुप्तस्य लक्षणं | ८९० |
| इन्द्रवृद्धायाश्चिकित्सा | ८८८ |
| इन्द्रवृद्धालक्षणम् | ८८७ |
| इरिवेल्लिकालक्षणम् | ८८८ |
| ,, चिकित्सा | ,, |
| उटाह | ४९ |
| उत्थापनस्वरूपम् | २९९ |
| उदररोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ६४३ |
| उदरवृद्धि के कारण | ६३२ |
| उदावर्त्तेऽपथ्यानि | ४७९ |
| उन्मादरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ७४१ |
| उपद्रवलक्षणम् | ३१७ |
| उपविषाणि | २८६ |
| उपविष्टकलक्षणम् | ७८० |
| उपोदिकार्थं तैलम् | ८९० |
| उभयपञ्चमूलम | ४१६ |
| उष्णजललक्षणम् | ३८४ |
| ऊर्द्ध्वश्वासलक्षणादिकम् | ३९९ |
| ओनाफ्राइट | ३३ |
| कक्षालक्षणम् | ८८८ |
| ,, चिकित्सा | ,, |
| कङ्कुष्ठविमर्शः | १२४ |
| कच्छप्यालक्षणं चिकित्सा च | ८८७ |
| कज्जलीस्वरूपम् | ३१४ |
| कदरस्य लक्षणं चिकित्साच | ८९० |
| ,, अलसस्य लक्षणम् | ,, |
| कपोतपुटलक्षणम् | २५० |
| कफकुष्ठहररसः | ६६४ |
| कफजकासलक्षणम् | ३९५ |
| कफप्रमेहाः | ५३६ |
| कर्णरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ८५० |
| कर्णवृद्धावन्ययोगाः | ८४९ |
| कवचीयन्त्रनिर्माणविधिः | ३५५ |
| कवचीयन्त्रलक्षणम् | ५६५ |
| कान्तलौहलक्षणम् | ९८० |
| कामकलाख्यरसनिर्माणप्रकारान्तरम् | ९४७ |
| कार्नकोण्टी | ४३ |
| कालकूटविषपरिचयः | २८५ |
| कालाग्निरुद्ररसः | ६६० |
| कासघ्नधूमविमर्शः | ३९७ |
| कासनिदानम् | ३९१ |
| कासीसविमर्शः | ११० |
| कासे साधारणपथ्यनिर्देशः | ३९८ |

| | |
|---|---|
| कांस्यमाक्षिक | ७४ |
| कुक्कुटपुटलक्षणम् | ३६९ |
| कुटीनिर्माणप्रकारः | ९८६ |
| कुष्ठे पथ्यापथ्यविवेकः | ७२० |
| कृत्रिमकांस्यनिर्माणविधिः | २८२ |
| कृत्रिमपित्तलनिर्माणविधिः | ,, |
| कृमिरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ७२४ |
| कृष्णसर्पविषशोधनविधिः | ३६४ |
| कृष्णसर्पविषस्याहरणविधिः | ,, |
| कोरेलाइन | ३७ |
| कोलोरेडो आईट | ३३ |
| क्लेनाइट | ,, |
| क्षयकासनिदानलक्षणादिकम् | ३९४ |
| क्षारत्रयस्वरूपम् | ५०२ |
| क्षारद्वयं क्षारत्रयञ्च | ३०५ |
| क्षारनिर्माणविधिः | ५९४ |
| क्षीरपाकविधिः | ४११ |
| क्षुद्ररोगेषु पथ्यापथ्यविधिः | ८९४ |
| क्षेत्रीकरणप्रक्रिया | ३११ |
| क्षेत्रीकरणस्वरूपम् | ,, |
| खोटबन्धस्य लक्षणम् | ३१३ |
| गन्धक और गन्धकीय खनिज प्राप्ति के स्थान | १०५ |
| गन्धकनिम्नरूप में मिलता है | ,, |
| गन्धकसेवने वर्जनीयानि | ७०७ |
| गन्धकीयविमर्शः | १०१ |
| गन्धकोपलब्धिः | १०२ |
| गर्भिण्याः पथ्यापथ्यविवेकः | ७९९ |
| गुदभ्रंशस्य लक्षणम् चिकित्सा च | ८९४ |
| गुल्मे पथ्यानि | ५९३ |
| गैरिकविमर्शः | ११० |
| गोवैरपुटलक्षणम् | २७९ |
| गोष्ठस्वरूपम् | ,, |
| गौतमोक्त अष्टगुण | ११ |
| गौरीपाषाणविमर्शः | १२७ |
| ग्रसनप्रकारः | १७ |
| ग्रहणीरोगसम्प्राप्त्यादिवर्णनम् | ४८९ |
| ग्रहण्यामपथ्यानि | ५०५ |
| ग्रहण्यां पथ्यापथ्यविमर्शः | ५०५ |
| ग्वाडलकाजाराइट | ३२ |
| चतुर्थः प्रकारः | ३०७ |
| चपलविमर्शः | ८७ |
| चपलोपस्थिति | ८७ |
| चरकोक्ताचाररसायनम् | १०६६ |
| चर्मारः | २८ |
| चिप्यकुनखयो र्लक्षणं चिकित्साच | ८८९ |
| चूर्णकुष्माण्डस्वरसयोर्हरताल-शोधनविधिः | ३४९ |
| चूर्णोदकनिर्माणविधिः | ,, |
| छर्दौ पथ्यानि | ४३८ |
| जतुमणिलक्षणम् | ८९२ |
| जयपालशोधनविधिः | ३४२ |
| ,, प्रकारान्तरम् | ,, |
| जलकूर्मकलक्षणम् | ७८० |
| जालगर्दभ लक्षणम् | ८८८ |

| | |
|---|---|
| ,, चिकित्सा | ८८८ |
| ज्वरे पथ्यापथ्यव्यवस्था | २८२ |
| जारणलक्षणम् | ६ |
| टेट्राहाईड्राइट परीक्षा | ३१ |
| टेर्लिड्राईट | ३३ |
| तन्द्रालक्षणम् | ५३५ |
| तयोश्चिकित्सा | ८९२ |
| तालकेश्वरः | ७२९ |
| तिलकालकलक्षणम् | ८९२ |
| तिलक्षारोदके तालशोधनविधिः | ३४९ |
| तृष्णारोगेऽपथ्यम् | ४४२ |
| त्रिकटुस्वरूपम् | ४१६ |
| त्रिकत्रयस्वरूपम् | ४०३ |
| त्रिफलारसायनस्य विमर्शः | ९३३ |
| त्रिफलास्वरूपम् | ४१६ |
| त्रिलौहस्वरूपम् | ८२२ |
| त्रैलोक्यविजयरसः | ६९६ |
| दन्तरोगे वर्जनीयम् | ८६४ |
| दशमूलस्वरूपम् | ४१६ |
| दारुणकस्य लक्षणम् | ८९१ |
| दीपनसंस्कारः | ३०५ |
| दीपनसंस्कारकरणविधिः | ३०६ |
| दीपनस्य प्रथमप्रकारः | ३०७ |
| ,, द्वितीयः प्रकारः | ,, |
| ,, द्वितीयः प्रकारः | ,, |
| दीपनस्वरूपम् | ,, |
| दोषगणना | १६ |
| द्राक्षादिगणौषधियां | ३८५ |
| द्वन्द्वजसन्निपातजज्वराणां लक्षणम् | ३३९ |
| ,, | ३०७ |
| धान्याभ्रस्वरूपम् | ४०८ |
| धान्यों के ग्रहण करने का निर्देश | ४८० |
| धस्तूरबीजशोधनविधिः | ३५० |
| ,, प्रकारान्तरम् | ३५१ |
| धूमकालाः | ३९७ |
| धूमपानवर्ज्यावस्था | ,, |
| धूमसेवनविधिः | ,, |
| ध्यानप्रकारः | १८ |
| नवसारविमर्शः | १२९ |
| नागभस्मविधिः | ९८२ |
| नागवल्लभरसः | ६१६ |
| ,, द्वितीयः | ,, |
| नागादिअष्टदोषः | १८ |
| नागोदरलक्षणम् | ७७९ |
| नासारोगे पथ्यापथ्यम | ८५२ |
| नियमनसंस्कारः | २३८ |
| नियामकगणः | ,, |
| नियामकगणः | ३०६ |
| नियामनलक्षणम् | ३०४ |
| निरुत्थभस्मपरीक्षाप्रकारः | २८४ |
| निरुद्धप्रकशस्य लक्षणम् | ८९३ |
| निवाडा | ४७ |
| नीलाञ्जन | १२२ |
| नेत्ररोगविमर्शः | ८२७ |

| | |
|---|---|
| नेत्ररोगे पथ्यापथ्यानि | ८४४ |
| न्यच्छस्य लक्षणम् | ८९२ |
| न्यूकेलिडोनिया | ४० |
| न्यूजीलेण्ड | ३६ |
| पञ्चकर्मायोग्यव्यक्तिः | ३३१ |
| पञ्चकोलस्वरूपः | ४९९ |
| ,, | ५८३ |
| पञ्चक्षार | २५२ |
| पञ्चपित्तम् | ३७३ |
| पञ्चार्कतैलम् | ७३१ |
| पञ्जाब में खनिज मिलता है | १०८ |
| पथ्यस्य प्रयोजनम् | ३८२ |
| पद्मिनीकण्टकलक्षणम् | ८९२ |
| पनसिकायाश्चिकित्सा | ८८८ |
| पनसिकालक्षणम् | ,, |
| परिवर्तिकालक्षणम् | ८९२ |
| पर्पटयादिसप्तकञ्चुकदोषः | ४२ १८ |
| पलितस्य लक्षणम् | ८९१ |
| पाण्डुरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः | ६५९ |
| पाददारिकाया लक्षणाश्चिकित्सा च | ८८९ |
| पारद की उपस्थिति | २१ |
| पारद की सर्वप्रथमप्राप्ति | २३ |
| पारद के दोष | ५२ |
| पारद के भेद | ५५ |
| पारद के सप्तकञ्चुक | ५३ |
| पारदग्रहणपरिमाण | २९५ |
| पारदप्राप्ति के कुछगौण खनिज | ३१ |
| पारदरजतमिश्रक | ,, |
| पारदनिकालने योग्यखनिज | २७ |
| पारदस्थितदोषगणना | १६ |
| पारदीयखनिजप्राप्ति के स्थान | ३५ |
| पारदीयविमर्शः | १२० |
| पालिकायन्त्रस्वरूपः | ४४८ |
| पाषाणगर्दभलक्षणम् | ८८८ |
| ,, चिकित्सा | ,, |
| पित्तज्वरलक्षणम् | ३३८ |
| पित्तप्रमेहाः | ५३६ |
| पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम् | ३३९ |
| पित्तार्शसां लक्षणम् | ४५१ |
| पुराणज्वरे हितानि | ३८३ |
| पुष्पाञ्जन | १२२ |
| पूर्णेन्दुरसः | ९५० |
| पैत्तिककासनिदानम् | ३९४ |
| प्रमेहकी उत्पत्ति में कारण | ५३४ |
| प्रमेहसम्प्राप्ति | ,, |
| प्रमेहविमर्शः | ,, |
| प्रमेहे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ५७१ |
| प्रमेहों का पूर्वरूप | ५१४ |
| प्रमेहों का समन्वय | ५३६ |
| प्रमेहों के सामान्यलक्षण तथा भेद | ५३५ |
| प्राकृतिक पारद | ३१ |
| प्लीहरोगे पथ्यापथ्यनिर्देशः | ५९६ |
| प्लीहविमर्शः | ,, |
| बन्धनप्रकारः | ८ |
| बलार्धलक्षणम् | ४०६ |

बलिवसापरिचयः ७०८
बाधनस्य प्रथमप्रकारः ३०४
बार्सेनाईट ३२
बालरोगे पथ्यापथ्यविवेकः ८१८
बाह्यद्युतिलक्षणम् ३९७
विस्मथ का उपयोग ८८
,, गुण ,,
बोधनस्य तृतीयः प्रकारः ३०४
ब्रह्मज्ञानोपाय १२
भगन्दरे पथ्यापथ्यविवेकः ८७७
भस्मकरणप्रकारः ८
भाण्डपुटलक्षणम् २७९
भूधरयन्त्रस्वरूपम् ३३०
मण्डकपरिभाषा ९६३
मतान्तरेण पारदस्य मूर्च्छनम् २९८
मदात्ययपथ्यापथ्यव्यवस्था ४५०
मधुरत्रयम् ६९४
मध्यमज्वरे हितानि ३८३
मर्दनलक्षणम् २९७
मल्लमूषास्वरूपः ५५६
मशकलक्षणम् ८९२
मसूरिकाया लक्षणं चिकित्सा च ८९१
माक्षिकीयविमर्शः ७४
माक्षिकोपलाब्धिः ७८
मात्राभेदः ३३१
मुखरोगे पथ्यापथ्यविवेकः ८६१
मूत्रकृच्छ्रकारणानि ५३१
मूत्रकृच्छ्रविमर्शः ५२३
मूत्रदोषाङ्कुषो रसः ५२३
मूर्च्छनलक्षणम् २९७
मूर्च्छनाप्रकारः ८
मूर्च्छितपारद का स्वरूप ३९५
मूषकतैलम् ८९४
मूषोपयोगिमृत्तिकास्वरूपम् २७४
मोजेसाइज ३३
मोन्ट्रोयडाईट ,,
यक्ष्मशोधनव्यवस्था ४३४
यवप्रख्याया लक्षणं चिकित्सा च ८८६
यौगिकगन्धक १०२
यौवनपिडिकाया लक्षणम् ८९१
रक्तपित्तनिदान और गति ३८५
रक्तपित्तविमर्शः ,,
रक्तपित्तव्याख्या ,,
रक्तपित्ते साधारणपथ्यः ३९०
रक्तरोधकौषधयः ३८२
रक्तवर्गविमर्शः २८७
रसकर्पूर की प्राचीननिर्माण-विधिः २९
रसकर्पूर की नव्यनिर्माणविधि ३०
रसकविमर्शः ८९
रसाञ्जन १२१
रसतरङ्गिण्युक्तप्रकारः ३०६
रसरक्षामन्त्रः १८
रसभक्षणकालः ३३१
रसायनलक्षणम् ६
,, १६
,, ३१७

रसायनोचितरसः ३३१
राजयक्ष्मणि साधारणपथ्यम् ३३४
राजयक्ष्मनिदानम् ४१८
राजयक्ष्मलक्षणम् ,,
रिमेनाइट ३३
रुदन्तीपरिचयः ५०१
रेखापूर्णतायाः स्वरूपम् २७६
रौप्यमाक्षिक ७४
लक्ष्मणास्वरूपः ७७५
लङ्केश्वररसः ६६९
लवणपञ्चकम् ३५४
लाङ्गलीशोधनविधिः ३६७
लावकपुटलक्षणम् २८१
लावकपुटविमर्शः २८०
लिविङ्गस्टोनाईट ३१
लीवरओर ३७
लूतारोगेतिहासः ६८९
लेहरबेकाइट ३४
लौहप्रयोगः ४७९
लौहमारणविधिः ९८३
लौहशोधनार्थं क्काथविधिः ९८१
लौहारिवर्गः ३८९
वङ्कनालक्षणम् २७४
वङ्गभस्मविधिः ९८२
वत्सनाभलक्षणम् २८५
वमनविधिः ४३४
वरनागलक्षण ५५२
वरुणादिगणः ७४९
वर्ष्मवृद्धिरोगे पथ्यापथ्य व्यवस्था ५८१
वल्मीकस्य लक्षणं चिकित्सा च ८८७
वातकासे पथ्यानि ३९८
वातपित्तज्वरलक्षणम् ३३९
वातरक्ते पथ्यापथ्यव्यवस्था ७७२
वातप्रमेहाः ५३६
वातार्शसां लक्षणम् ४५२
वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् ३३९
वारितरस्य लक्षणम् २७६
विदारिकाया लक्षणं चिकित्सा च ८८९
विद्रधिरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था ५७८
विपादिका ७१८
विमलः ७७
विरेचनम् ४३४
विवृताया लक्षणं चिकित्सा च ८८७
विश्वादिश्लोकव्याख्या ४१०
विस्फोटकलक्षणम् ८८८
विषतिन्दुकबीजशोधनविधिः ३४३
,, प्रक्षरान्तम् ,,
विषदाहे विषकल्पः १०३५
विषनिषेधविमर्शः ३५४
विषमज्वरलक्षणम् ३४६
विषमज्वरे हितानि ३८४
विषवर्गीकरणम् २८६
विहार और उन्नीस १०६
वृषणकच्छूलक्षणम् ८९४
,, चिकित्सा ,,

| | |
|---|---|
| वैक्रान्तीयविमर्शः | ६९ |
| वैक्रान्तोपलब्धिः | ७० |
| वैद्यनाथवटीनिर्माणम् | ४७९ |
| व्यङ्गस्य लक्षणम् | ८९२ |
| व्यायामसमयः | ४०६ |
| व्यायामानर्हाः | ,, |
| व्यायामार्हाः | ,, |
| व्योषपरिभाषा | ३५१ |
| शर्करार्बुदलक्षणं चिकित्सा च | ८८९ |
| शिरोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ८६९ |
| शिलाजतुविमर्शः | ८० |
| शुद्धगन्धकप्रयोगविमर्शः | ७०७ |
| शुद्धपारद के लक्षण | ५६ |
| शृङ्गिकविषलक्षणम् | २८५ |
| शृङ्गीविषलक्षणम् | ३६३ |
| शृङ्गीविषशोधनम् | ,, |
| श्वासे पथ्यापथ्यम् | ४०५ |
| श्लीपदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः | ९० |
| श्लेष्मज्वरलक्षणम् | ३३८ |
| श्लेष्मसन्निपातार्शसां लक्षणम् | ४५२ |
| श्लेष्मार्शसस्त्रिदोषजस्य च लक्षणम् | ४५२ |
| सदाचारनिर्देशः | १२ |
| सन्निपातज्वरलक्षणम् | ३३९ |
| सन्निरुद्धगुदलक्षणम् | ८९३ |
| सम्यग्लङ्घितलक्षणानि | ३८४ |
| सर्वविधज्वरेषु पथ्यानि | ३८२ |
| ससारादिश्लोकव्याख्या | ३६८ |
| सहजार्शसांलक्षणम् | ४५२ |
| सिद्धस्नेह के लक्षण | ७१२ |
| सुरा | ३३३ |
| सूचिकाभरण रसनिर्माविधिः | ३६३ |
| सौवीराञ्जन | १२१ |
| स्टील | ३७ |
| स्थौल्ये पथ्यापथ्यम् | ६२३ |
| ,, | ९१० |
| स्थौल्येविडङ्गादिचूर्णम् | ९१० |
| स्नुहीदुग्धशोधनविधिः | ३४३ |
| स्नेहपाकपरीक्षा | ४७८ |
| स्नेहपाकविधिः | ,, |
| स्रोतोऽञ्जन | १२२ |
| स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था | ४१७ |
| ,, | ९०५ |
| स्वर्णमाक्षिक | ७४ |
| स्वास्थ्यलक्षणम् | ५३४ |
| स्वेदनप्रकारः | २९६ |
| हरतालविमर्शः | ११५ |
| हरिद्राद्यं तैलम् | ८९१ |
| (तासां) हिक्कानां नामानि | ४०७ |
| हिक्कायां पथ्यापथ्यम् | ४१२ |
| हिक्कास्वरूपं निरुक्तिश्च | ४०७ |
| हिङ्गुल | २७ |
| हीरकद्युतिः | २८ |
| हृदयरोगलक्षणसम्प्राप्ती | ४३९ |
| हृद्रोगे पथ्यापथ्यम् | ४४१ |
| हंसोदक | ३३२ |

प्रकाशित हो गये ! ] [ प्रकाशित हो गये !!

श्रीमद्भावमिश्रविरचितः

# भावप्रकाशः-पूर्वार्द्धः

## विद्योतिनी-भाषा टीका परिशिष्ट सहितः ।

यह ग्रन्थ यद्यपि अन्यत्र भी प्रकाशित हुआ है तथापि आकार तथा मूल्य की अधिकता साथही अनुवाद के अधूरेपन से गरीब विद्यार्थियों को बहुत कठिनाई पड़ती हुई देख उनकी सुविधा के लिये मैंने इसका सुन्दर नवीन वैज्ञानिक ढंग की विद्योतिनी नामक अत्यन्त सरल तथा विस्तृत हिन्दी टीका करा कर प्रकाशन किया है।

इसमें और भी सबसे उत्तम विशेषता यह है कि इसके गर्भ-प्रकरण के ऊपर आधुनिक पाश्चात्य आयुर्वेद (डाक्टरी) के अनुसार एक सचित्र परिशिष्ट तथा निघण्टु भाग में प्रत्येक औषधियों के साथ २ एक विशद विवरण भी दिया गया है। जिसके लिये रूपनिघण्टुकार सुप्रसिद्ध श्रद्धेय श्रीरूपलालजी (भूतपूर्व सम्पादक सचित्र बूटीदर्पण) ने अपना अमूल्य समय देकर दर्शनीय लेख प्रकाशित किया है। इसमें प्रत्येक विषयों के यथास्थान नवीन नवीन अवतरण भी प्रकाशित किये गये हैं तथा विशेष २ औषधियों पर चित्र भी दिये गये हैं जिससे 'सोने में सुगन्धि' आ गई है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस संस्करण का मुक़ाबला दूसरे कोई भी संस्करण नहीं कर सकते। सर्व साधारण की सुविधा के लिए कपड़े की मनोहर पक्की जील्द प्रश्नपत्र सहित

[ उत्तरार्द्ध शीघ्र प्रकाशित होगा ] पूर्वार्द्ध का मूल्य ४) है।

# भावप्रकाशः-ज्वराधिकारः

## विद्योतिनी-भाषा टीका परिशिष्ट सहितः ।

विद्यार्थियों के सुविधा के लिये ही इसे अलग प्रकाशित किया है। इसमें श्लोकों का भाषानुवाद नवीन वैज्ञानिक ढङ्ग पर तथा क्वाथादिकों के बनाने की विधि तथा मात्रा आदि का उल्लेख तथा स्थल २ पर आवश्यक टिप्पणियों का भी समावेश किया गया है। एवम् अन्त में परिशिष्ट रूप में ग्रन्थोक्त ज्वरों पर आधुनिक डाक्टरी मतानुसार निदान का सुन्दर रीति से विवेचन किया गया है तथा आधुनिक प्रचलित अन्य भी ज्वरों का डाक्टरी मतानुसार विशद विवरण भी दिया गया है। प्रश्नपत्रों का भी समावेश है। नवीन सुन्दर चमकते टाईप सफेद चिकने मोटे कागज पर ग्रन्थ अत्यन्त उत्तम छपा है। कपड़े की पक्की जील्द का मूल्य अल्प १॥) मात्र है।

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी।

# चक्रदत्तः

## भावार्थसन्दीपिनीविस्तृतभाषाटीकाटिप्पणी सहित।

यह ग्रन्थ भारतवर्ष के वैद्य समाज में सर्वत्र प्रचलित है। अतः इसका विशेष परिचय न देकर केवल इतना ही कहना है कि इसकी उपयोगिता से मुग्ध होकर आयुर्वेद की सभी स्थानों की परीक्षाओं में पाठ्यरूप से इसे स्थान मिला है। यद्यपि इसके १-२ संस्करण अन्यत्र प्रकाशित हुए हैं। मगर उपरोक्त ग्रन्थ की **तत्त्वचन्द्रिका** संस्कृत टीका के अन्दर लिखित आयुर्वेद विषयक गहन विषयों का पूर्ण रुप से हिन्दी में सारांश देकर कोई भी संस्करण नहीं निकला जिससे संस्कृताभिज्ञों का भी उपकार हो अत एव इस त्रुटि को दूर करने के लिये पण्डित **श्री जगदीश्वरप्रसाद त्रिपाठी** आयुर्वेदाचार्य हिन्दूविश्वविद्यालय ने इसकी **भावार्थ-सन्दीपिनी विस्तृत सरल भाषा टीका** तथा **विशद् टिप्पणी** के सहित तैयार किया है आज कलकी प्रकाशित सभी पुस्तकों से टीका तथा टिप्पणी अत्यन्त उपयोगी सरल तथा विस्तृत रूप से है। वैद्यों के सुविधा के लिये परिशिष्ट में क्रम से प्रत्येक रोगों का पथ्यापथ्य तथा निदान भी दिया गया है जिस से चिकित्सकों को इसी एक पुस्तक के द्वारा चिकित्सा करते समय अन्य पुस्तक की आवश्यकता न पड़े।

**इस संस्करण में सबसे बढ़कर विशेषता यह है कि इसमें आयुर्वेद के परीक्षार्थी विद्यार्थियों को डाक्टरी मतानुसार निदानादि तथा नाडी परीक्षा, मूत्रादि परीक्षा के विषयों का भी ज्ञान हो इसलिये उनका भी समावेश कर दिया है तथा अन्यान्य उपयोगी विषयों का परिशिष्ट रूप में संकलन किया गया है।**

अधिक क्या आप इस संस्करण को देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट होंगे ऐसा पूर्ण विश्वास है। सुन्दर आकार प्रकार के संस्करण कपड़े की पक्की जील्द नवीन टाईप सुन्दर ग्लेज कागज छपाई सफाई मनमोहक होते हुए भी मूल्य बहुत अल्प ४) मात्र।

---

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी।